श्रीरामचरितमानस

विजया टीका

द्वितीय भाग

टीकाकार
मानसराजहंस पं० श्री विजयानन्दजी त्रिपाठी

सम्पादक
डा० श्रीनाथ मिश्र रामायणी
डा० सहजानन्द त्रिपाठी

प्रकाशक :
इण्डियन डवलपमेण्ट ट्रस्ट
३१, नेताजी सुभाष रोड
कलकत्ता, ७०००००१

प्रकाशन तिथि .
विजयादशमी १९८० ई०

मूल्य : प्रथम भाग से संबद्ध

मुद्रक :
विश्वम्भरनाथ द्विवेदी
आनन्दकानन प्रेस
सीके ३६/२०, ढुण्ढिराज
वाराणसी, २२१००१

विषयानुक्रमणिका

---

१. राज तजा सो दूषन कहा।

निश्चय। रामजी का सङ्कोच से चुप रह जाना। जनकदूत आगमन। मुनि दूत सवाद। दूत की विदाई दो २७१ ८ तक। पृ० ५६५ से।

जनकागमन प्रसङ्ग रामजी को सङ्कोच। इन्द्र को सोच। कैकेयी की ग्लानि। प्रजा को मोद। दूसरे दिन पञ्चदेवो पासन। प्रार्थना। जनकागमन सुनकर रामजी का समाजसहित लेने जाना। शैल दर्शन होते ही जनक द्वारा रथ त्याग। सबका मिलन। रामजी का लिवा चलना। दोनो राज समाज की विकलता। मुनियो का समझाना। रामघाट स्नान। सबका निर्जल रह जाना। दूसरे दिन वसिष्ठ शतानन्द और विश्वामित्र का समझाना। जनकजी का दूसरी जगह ठहरना। सत्कार। जनकराज रनिवास का कोसलराज रनिवास से भेंट। चलते समय सीता को साथ लाना। जनक से भेंट। सीता की विदाई। जनक सुनैना सवाद दो २८९ २ तक। पृ० ६०८ से।

दूसरी सभा रघुपति प्रबोध प्रसङ्ग गुरुजी से रामजी की प्रार्थना। गुरुजी का जनक के पास जाना। जनक का समाज के सहित भरत के पास जाना। जनक भरत सवाद। सबका रामजी के पास आना। देवताओ की भरत के मत को फेरने के लिए सरस्वती से विनय। सरस्वती का अस्वीकार। देवताओ की माया से भय भ्रम अर्ति और उपचार का प्रादुर्भाव। जनक का राम स आज्ञा मांगना। रामचन्द्रका जनकजी की आज्ञा मानने का शपथ लेना। जनकजी का समासहित सङ्कोच। भरतजी द्वारा सरस्वती का स्मरण। भरत का खडा होकर आज्ञा माँगना। रामजी का हाथ पकडकर निकट बैठाना। भरत की प्रशसा। प्रजा की द्विविध मनोगति। रामचन्द्र का कथन। भरत को सन्तोष। मुनिथल तीरथ वन दर्शन की आज्ञा। भरत कूप। वन अटन दो ३१२ तक। पृ० ६४७ से।

तीसरी सभा भरत की विदाई के लिए प्रार्थना। रामचन्द्र का उपदेश। भरत का प्रबोध। पादुका प्रदान। भाइयो का मिलन। बिदाई। प्रस्थान। राम सीता लक्ष्मण को प्रिय परिजन का वियोग। देवताओ का दुख निवेदन। राम का भरोसा देना। राम लक्ष्मण सीता का पर्णकुटी मे निवास दो ३२१ तक। पृ० ६९६ से।

पादुका सहित अवध प्रत्यागमन प्रसग सब समाज राम विरह से दुखी। यमुना पार होना। उस दिन उपवास। गङ्गा पार करके निवास। निषादराज का सत्कार। सई उतरि गोमतीस्नान। चौथे दिन अवध प्रवेश। जनकजी का चार दिन अवध मे रहकर सब व्यवस्था करना। लोगो का राम-दर्शन के लिए नेम उपवास दो ३२२ तक। पृ० ७१५ से।

भरत रहनि प्रसग सचिव सेवक का अपने अपने कार्य म लग जाना। ब्राह्मणो से आज्ञा देते रहने के लिए भरतजी की प्रार्थना। पुरजन, परिजन प्रजा का समाधान करके स्ववश बसाना। गुरुजी से सनियम रहने के लिए आज्ञा चाहना। राजसिंहासन पर पादुका स्थापन। आज्ञा माँगकर कार्य करना। नन्दिग्राम निवास। भरत की तपस्या। भरतचरित की फल-श्रुति। दो ३२६ तक। पृ० ७२७ से।

उसके अधीन सत्सङ्ग से अनुपम सुखमूल भक्ति की प्राप्ति · भक्तिचिन्तामणि बीज पृ० ७९१ से।

भक्तियोग : साधना · विप्र चरण प्रीति तथा स्वधर्माचरण। उससे विषय विराग। तब भगवद्धर्म मे अनुराग। श्रवणादिक भक्ति की दृढता। भगवत् लीला मे रति। सन्त चरण मे प्रेम। मन क्रम वचन से भजन। लक्ष्मण को सुख प्राप्ति। प्रणाम। विराग, ज्ञान, गुण और नीति विषयक उपदेशों में समय बिताना दो १० २ तक। पृ० ८१५ से।

सूर्पणखा विरूपकरण प्रसग · सूर्पणखा का पञ्चवटी मे आगमन। दोनो भाइयो पर मोहित होना। प्रेम प्रस्ताव। प्रभु का उसे लक्ष्मण के पास भेजना। लक्ष्मण का उसे समझाकर फिर प्रभु के पास लौटाना। रामजी का फिर उसे लक्ष्मण के पास भेजना। लक्ष्मण द्वारा तिरस्कार। सूर्पनखा का प्रभु के पास आकर भयङ्कर रूप प्रकट करना। रामजी के इङ्गित पर लक्ष्मण द्वारा श्रवण नासिका छेदन ११.१। पृ० ८२९ से।

खरदूपणवध प्रसग : सूर्पणखा द्वारा खरदूषण को धिक्कार। खरदूषण का ससैन्य प्रस्थान। लक्ष्मण का सीता को राम की आज्ञा से गिरि कन्दरा मे ले जाना। राम की युद्ध के लिए तैयारी। बगमेल आगमन। खरदूषण का दूत भेजना। रामजी का उत्तर। धावा। धनुपटङ्कार। युद्ध मे तीन धावा। प्रभु की पण्डिताई। सबका वध। देवो द्वारा पुष्पवर्षा। स्तुति। लक्ष्मण का सीता को लाना। प्रभु का सुर मुनि सुखदायक चरित दो १४ ४। पृ० ८३५ से।

दसानन समाचार प्रसंग · खरदूषण का शव देखकर सूर्पणखा का रावण के यहाँ जाना। विलाप करते हुए सभा मे गिर पडना। दशानन के पूछने पर निज दोष गोपन पूर्वक सब वृत्तान्त कहना। रावण का सान्त्वना देना। रावण का रात्रि मे विचार। दृढ मन्त्र। एकाकी रथ पर चढ़कर मारीच के पास जाना दो. १६.७। पृ० ८५० से।

रामजी की युक्ति : लक्ष्मण का कन्द मूल फल लेने वन जाना। रामजी का सीताजी से अपना विचार प्रकट करना। अपना प्रतिबिम्ब वहाँ रखकर सीताजी का अग्नि प्रवेश. दो. १७.५। पृ० ८५७ से।

दशकन्धर मारीच बतकही प्रसग : दशकन्धर का मारीच के यहाँ जाना। प्रणाम करना। पूजा करके मारीच का वृत्तान्त पूछना। रावण का कहना तथा कपटमृग बनकर सीताहरण मे सहायक होने के लिए अनुरोध। मारीच का समझाना। रावण का क्रोध। मारीच निश्चय। रावण के साथ चलना। मारीच का मनोरथ। राम वन के निकट मारीच का हेममृग रूप धारण : दो २०.१। पृ० ८५९ से।

मायासीता हरण प्रसग : सीता का मृग देखना। रामचन्द्र से मृगछाला के सीता की प्रार्थना। लक्ष्मण का पहरा। रामचन्द्र का मृग वध के लिए प्रस्थान। पीछा करना। मृग का कपट। मृग वध। रामचन्द्र के स्वर से मृग का लक्ष्मण को पुकारना। मारीच की गति। प्रभु का लौटना। आर्त्तगिरा सुनकर लक्ष्मण को जाने के लिए सीता का आदेश। लक्ष्मण का समझाना। सीता का क्रोध। लक्ष्मणजी का प्रस्थान। दशानन का यति के वेष मे आगमन।

●

तुम्हरोहि भरोस महेश हमे तुमही मम जीवन के रखवारे।
तजि देह सकौ न सकौं तज तोहिं तुही विजयानंद प्रान पियारे ॥
मन मे न धरौ कछु हानि गलानि करै हम सोइ जोइ निरधारे।
यह प्रेम को नेम न टारे टरे हम भक्तन के अरु भक्त हमारे ॥

—विजयानन्द त्रिपाठी



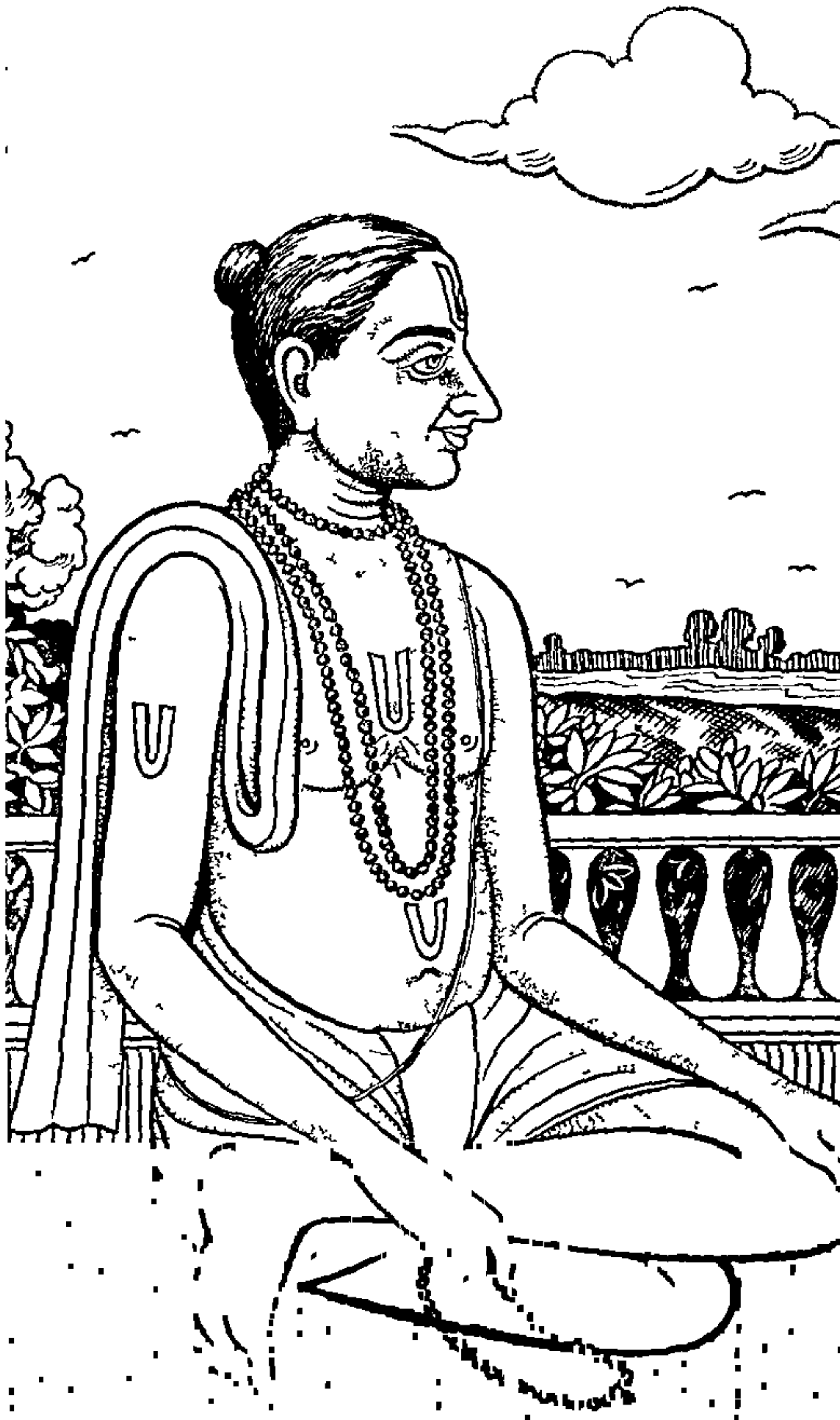
मानसराजहंस प॰ श्रीविजयानन्द जी त्रिपाठी



मानसराजहंस श्रीविजयानन्द त्रिपाठी के प्रमुख शिष्य
डॉ. श्रीनाथ मिश्र रामायणी

श्रीरामचरितमानस

विजया टीका



श्रीराम

श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरवे नमः

श्रीरामचरितमानस

अयोध्याकाण्ड : द्वितीय सोपान

सटीक

मङ्गलाचरण

श्लो. यस्यांके[1] च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट् ।
सोयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातु मां ॥१॥

अर्थ : जिनकी गोद में पार्वतीजी, मस्तक पर गङ्गाजी, ललाट पर बालचन्द्र, गले मे विष और जिनके वक्षस्थल पर सर्पराज विराजमान हैं । वे यही भूतिविभूषण, देवताओ में श्रेष्ठ, सदा सबके स्वामी, संहारकर्ता, सबमें व्याप्त, चन्द्रमा के समान प्रकाशित श्रीशङ्कर शिवजी मेरी रक्षा करें ।

व्याख्या : पार्वतीजी स्वय प्रकाशमान हैं । पर शङ्करजी के अङ्क मे विशेष रूप से प्रकाशमान हुईं । अतः विभाति कहा । यही क्रिया अन्य कर्ताओं के साथ लगेगी । गङ्गाजी भी प्रकाशमान हैं । पर शङ्कर भगवान् के सिर पर विशेष रूप से प्रकाशित होती हैं । उमा गङ्गा दोनों शिवजी की शक्तियां हैं । महेस मुखचद चकोरी होकर उत्कर्ष को प्राप्त हैं । यही बात बालविधु की भी है : यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते । विष भी सुन्दर प्रकाशवाला हो जाता है । अमृत का फल देने लगता है : कालकूट फल दीन्ह अमी के । व्यालराट् भी अधिक उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं । गरुड़ से भी निर्भय हो जाते हैं । आभूषण की भाँति सुशोभित होते हैं । यथा :

---

१ यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है । इसमें १९ अक्षरों का एक पाद होता है । बारह अक्षरों पर यति होती है । इसमें एक मगण, १ सगण, १ जगण, १ सगण, दो तगण और अन्त में एक गुरु होता है ।

भुजगभूति भूषन त्रिपुरारी। सोयम् से प्रसिद्धि कही। विभूति का भी महान् उत्कर्ष हो जाता है। वह श्मशान की अमङ्गल अपावन विभूति महामङ्गलमय और पवित्र हो जाती है। यथा भव अग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी। शिवजी देवाधिदेव महादेव हैं। इसलिए सुरवर कहा। ईश्वर हैं। इसलिए सदा सर्वाधिप कहा। अखण्ड ऐश्वर्य द्योतित किया। सहारकर्ता भी ये ही हैं। इसलिए शर्व कहा। ब्रह्मरूप होने से सर्वगत कहा। प्रलयकाल मे भूतमात्र इन्ही मे शयन करते हैं। इसीलिए शिव कहा। परम आह्लादकारिणी मूर्ति है। इसलिए शशिनिभ कहा अथवा ज्योतिर्मय होने से शशिनिभ कहा। ऐसे श्रीयुक्त शङ्कर से कवि अपनी रक्षा चाहते है। यहाँ श्री का अर्थ उमा है। क्योकि वही शङ्कर की लक्ष्मी हैं। ओर्मा उमा। उ शङ्कर को कहते है। उनकी लक्ष्मी का नाम उमा है।

इसी वर्णन द्वारा शिवजी के अखिल रसामृतमूर्ति होने का वर्णन किया। विभाति भूधरसुता से शृङ्गार कहा। देवापगा मस्तके से हास्य कहा। कैसी ही प्रिय स्त्री हो पर उसे कोई सिर पर चढाये नही फिरता। भाल बालविधु से अद्भुत रस कहा। चन्द्रमा आकाश मे रहते हैं किसी के सिरपर नही रहते। गल च गरल से करुण रस कहा। यथा जरत सकल सुरवृद विषम गरल जेहि पान किय। उरसि व्यालराट् से भयानक रस कहा। भूतिविभूषण से बीभत्स रस कहा श्मशान की विभूति बीभत्स है। सर्वाधिप से वीर रस कहा क्योकि वीरभोग्या वसुन्धरा है। शर्व से रौद्र रस और सर्वगत से शान्त रस कहा।

इसी वर्णन से शिवजी मे विरुद्धधर्माश्रयत्व भी दिखलाया। स्थावर विष गल म जगम विष सर्पराट् छाती पर और अमृताशु चन्द्रमा मस्तक पर। इस भांति विष और अमृत दोनो का आश्रय कहा। एक स्त्री गोद म एक सिर पर है और आप भूतिविभूषण है। यह भी सर्वथा विरुद्ध है। जो शर्व सहारक है। वही सर्वाधिप सबका पालक है। ये दोनो धर्म भी अत्यन्त विरुद्ध हैं। इनके आश्रय शङ्कर भगवान् हैं।

श्री प्रसन्नता[1] या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले[2] वनवासदु खत ।

मुखाबुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मजुलमङ्गलप्रदा ॥२॥

अर्थ जो राज्याभिषेक से प्रसन्नता को न प्राप्त हुई और वनवास के दु ख से मलिन न हुई वह श्रीरघुनन्दन के मुखकमल की श्री शोभा सदा मेरे लिए सुन्दर मङ्गल की देनेवाली हो।

---

१ यह वशस्थ छन्द है। इसमे १२ अक्षरों का एक पाद होता है। इसमे क्रम से जगण तगण जगण और रगण होते है।

२ सुप लुक सुपा तिङा वा विपर्ययश्चात्र बहुल स्यु । प्राकृत मे तिङ् का विपर्यय हो जाता है। अत मम्लौ न लिखकर मम्ले लिखा यह ग्रन्थ ही प्राकृत मे लिखा गया है। यथा प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन हरि चरित बखाने।

व्याख्या मानुष-आनन्द की पराकाष्ठा राज्यप्राप्ति मानी जाती है। लोक मे प्रसिद्ध है : हरखे सकल पाइ जनु राजू और दुःख की पराकाष्ठा वन मे भेजा जाना है। वन के स्मरण से धीरो की धैर्यच्युति होती है। यथा डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ। सो जिसे राज्याभिषेक के समाचार से कोई हर्ष नही हुआ। यथा जनमे एक सग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई। करन वेध उपवीत विवाहू। सग सग सब भयउ उछाहू। विमल वस यह अनुचित एकू। बन्धु बिहाइ बडेहि अभिषेकू। प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन कै कुटिलाई। इसी भाँति वनवास के समाचार से विषाद नही हुआ। यथा मुनु प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखइ राऊ। हृद्गत भावो को प्रकाशक मुखश्री है। यह सुख समाचार से खिल उठती है। और दुःख के समाचार से म्लान हो जाती है। पर रघुनन्दन के मुखकमल की श्री इतने बडे सुख दुःख के समाचार पर न तो प्रसन्नता को प्राप्त हुई और न मलिन हुई। उसका दोनो अवस्थाओ मे एकरस रहना आभ्यन्तर आनन्द का सूचक है। यथा मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। राम सहज आनन्द निधानू। उस श्री का ध्यान विघ्न विध्वसक है। इसलिए कवि कहते हैं कि वह श्री मुझे सदा सुन्दर मङ्गल की देनेवाली हो। क्योकि सरकार की मुखाम्बुजश्री से ही सब सश्रीक हैं।

श्लो [१]नीलाम्बुजश्यामलकोमलाग सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचाप नमामि राम रघुवशनाथम् ॥३॥

अर्थ नील कमल की भाँति जिसके अङ्ग श्यामल और कोमल हैं। सीताजी जिसके वाम भाग मे सुशोभित हैं। दोनो हाथो मे जिसके बडे प्रभावशाली बाण और सुन्दर धनुष है। उन रघुवशनाथ रामजी को मै नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या शृङ्गाररस का वर्ण ही श्याम है। श्याम और कोमल होने से ही श्रीअङ्गो की उपमा नील कमल से दी गई। सीतासमारोपितवामभाग से श्रीसीताजी को अङ्कारूढ कहा। इससे शृङ्गार वर्णन किया। यथा राज भवन सुख विलसत सिय सँग राम। विपिन चले तजि राज सुविधि बड बाम। महासायकचारुचाप से वीररस कहा। यहाँ महासायक से अभिप्राय चण्डशर से है। यथा लव निमेष परमान जुग बर्ष कल्प सर चड। भजसि न मन तेहि राम कहँ काल जासु कोदड। सीतासमारोपितवामभाग से आधेय की आधार से अल्पता कही। माया ब्रह्म के एक देश मे रहती है। श्याम वर्ण से प्रभु का इन्द्रियातीत होना द्योतित किया। यथा स्याम वर्ण सुचि प्रकट लखावत इग त पार रहैया। सीता समारोपितवामभाग स माया का अधिष्ठान होना भी द्योतित किया। महासायकचारचाप से महाकाल-

१ यह इन्द्रवज्रा छन्द है। इसम ग्यारह अक्षरो का एक पाद होता है। इसम क्रम स दो तगण, एक जगण और अत मे दो गुरु होते हैं।

काल होना भी रहा। रघ धातु से रघु शब्द बना है। रघु का अर्थ है जीव। अत रघुवंशनाथ कहकर साक्षात् ब्रह्म रूप कहा।

अयोध्याकाण्ड

सप्त मोक्षपुरी रूपी सातो काण्डो मे अयोध्याकाण्ड मथुरापुरी है। श्रीकृष्ण चन्द्र आनन्दकन्द जिस भाँति मथुरा गये और समस्त गोपीग्वाल को विरहावस्था का अनुभव करना पडा। इसी भाँति सरकार भी इस काण्ड म श्रीअयोध्याजी से चित्रकूट पधारे और समस्त अयोध्यावासियो को विरहज्वाल से सन्तप्त होना पडा। यथा सहि न सके रघुवर विरहागी। चल लोग सब व्याकुल भागी। इसलिए इस काण्ड को मथुरापुरी कहा गया। यथा

वालकाण्ड है[1] अवध, अवध मथुरा मन भावन।
हरद्वार आरण्य काशिका किष्किन्धा मन॥
काची सुन्दर लसत लक उज्जैन सुहावन।
उत्तर द्वारावती पुरी सातो अति पावन॥
लसत जहाँ सोपान प्रति ऐसो राम चरित्र सर।
विजयानद सेवत सुलभ सब सुखकर सब पापहर॥

अन्त के श्लोकानुसार यह काण्ड पापहर है। सातो काण्डो की सक्षेप मे फलश्रुति ग्रन्थ के अन्त म दी गई है। यथा १ पुण्य २ पापहर ३ सदा शिवकर ४ वैराग्यभक्तिप्रद। ५ मायामोहमलापह ६ सुविमल ७ प्रमाम्बुपूर शुभम्। अयोध्या के अन्त म भी कहा है पापपुज कुजर मृगराजू। समन सोक सताप समाजू।

दो श्रीगुरु चरन सरोज रज, निज मनु मुकुरु सुधारि।
बरनउँ रघुवर बिमल जसु, जो दायकु फल चारि॥

अर्थ श्रीगुरुजी के चरणकमलो की धूलि से अपने मनरूपी दर्पणको सुधारकर श्रीरघुवर के विमल यश का वर्णन करता हूँ जो चारो फलो को देनेवाला है। रघुवर शब्द से यहाँ रामजी और भरतजी का ग्रहण है। दोनो के चरित्र पृथक् पृथक् १५६ दोहो म वर्णित है।

व्याख्या गुरु पद मजुल रज अजन। नयन अमिय दृग दोष विभजन। तेहि करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनौ रामचरित भव मोचन। लिखने से मालूम होता है कि बालकाण्ड लिखने के आरम्भ म विवेकरूपी नेत्र को सुधारा। अब मनमुकुर को सुधारते हैं। बालकाण्ड म रामचरित कहना था। इसमे भरत चरित कहना है और भरत महामहिमा सुनु रानी। जानहि राम न सकहि बखानी। उस महामहिमा के वर्णन म जहाँ रुख देखकर काम किया जाता है समझने के

---

[1] बालकाण्ड को अवध कहने का यथेष्ट कारण स्पष्ट है। क्योकि श्री रामावतार तथा बाललीला अवध म ही हुई।

लिए मनमुकुर के अत्यन्त शुद्ध करने की आवश्यकता है। बिना शुद्ध हुए उसमें ठीक-ठीक सूक्ष्मभाव प्रतिफलित न होगा। अतः यहाँ मनमुकुर सुधारा जा रहा है। जिस भाँति दर्पण धूलि से सुधारा जाता है, उसी भाँति मनरूपी दर्पण गुरुपदधूलि से सुधारा जाता है। पूर्वकाल में लोहे के दर्पण बनते थे और उसमें मुख का प्रतिबिम्ब उसी भाँति पड़ता था जिस भाँति तलवार में पड़ता है। इसलिए उसे धूलि से बराबर, रगड़ना पड़ता था। दर्पण का उपयोग प्रतिबिम्ब दर्शन में ही होता है। जितना ही मनमुकुर शुद्ध होगा, उतना ही दूसरों के मनोगत भाव ठीक-ठीक उसमें प्रतिफलित होंगे। इस कमल की पुरइन है : जन मन मंजु मुकुरमल हरनी। मुकुर के वर्णन से ही यह काण्ड प्रारम्भ होता है। यथा : राँय सुभाँय मुकुरु कर लीन्हा। अतः कवि ने भी मनमुकुर को सुधारना आवश्यक समझा।

धर्म, ज्ञान, योग और जप चारों फलों की सिद्धि के लिए किये जाते हैं। सो इनका साधन कलिकाल में अत्यन्त कठिन है। अतः रघुवर यश ही इस काल में चारों फल (धर्मार्थकाम और मोक्ष) दे सकता है। यथा : कठिन कालमल कोस धर्म न ज्ञान न जोग जप। परिहरि सकल भरोस रामहिं भजहिं ते चतुर नर।

१. रामाभिषेक प्रसङ्ग

जब तें राम ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए ॥
भुवन चारिदस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी ॥१॥

अर्थ : जब से रामजी विवाह करके घर आये, तब से नित्य नये मङ्गल और मोद के बधावे होने लगे। चौदह भुवनरूपी भारी पर्वतों पर पुण्य मेघ सुख के जल को बरसाने लगे।

व्याख्या : यह अर्धाली बालकाण्ड के दाब की है। आए ब्याहि रामु घर जब तें। बसे अनद अवध सब तब तें से लेकर जब तें राम ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए तक पहिली सीढ़ी सोपान का दाब[1] है। सुरपुर को आनन्द मङ्गल ने छोड़ दिया है। वहाँ की व्यवस्था यह है : सुरपुर नितहिं परावन होई। मङ्गल उपस्थित होने से मोद होता है और मोद होने से बधावा बजता है। प्रभु बिआह जस भयउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू। सो वह उछाह वहीं समाप्त नहीं हो गया। नित्य अवध में हो रहा है।

जा दिन तें हरि गर्भहिं आए। सकल लोक सुख संपति छाए। भगवान् के गर्भ में आने से ही सुख सम्पत्ति बरसानेवाले मेघ सब लोकों में छा गये थे। पर वर्षा अब हो रही है। मेघ जल बरसाते हैं। पर सुकृतमेघ सुखरूपी जल को बरसाते हैं।

१ इस दाब के अन्तर्गत बारह पंक्तियाँ हैं। इससे दिखलाया कि ब्याह करके घर आने पर बारह वर्ष बड़े आनन्द से बीते। यथा : राज भवन सुख बिलसत, सिय सँग राम।
—बरवै रा

सुकृत मेघ से अवधवासियो का धर्म-मेघ समाधि कहा। सञ्चित समुद्र से जल लेकर बरसाने आये है। अत मेघ से उपमा दी। पर्वत पर सदा पानी बरसा करता है इसलिए चौदहो भुवन की पर्वतो से उपमा दी। जल बहुत गिरा। इससे नदी मे बाढ आगयी। गङ्गाजी ने समुद्र को भरा। पर उनकी साथी दो और बडी नदियाँ हैं यमुना और सरस्वती। यहाँ भी तीन नदी कहेगे : ऋद्धि, सिद्धि और सम्पत्ति।

रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अबुधि कहुँ आई ॥
मनिगन पुर नर नारि सुजाती। सुचि अमोल सुदर सब भाँती ॥

अर्थ ऋद्धि, सिद्धि और सम्पत्ति रूपी नदियाँ उमगकर अवधरूपी समुद्र की ओर दौडी। नगर के स्त्री-पुरुष ही मणिगण हैं। जो सुजाति, पवित्र, अमूल्य और सब भाँति से सुन्दर है।

व्याख्या ऋद्धि, सिद्धि और सम्पत्तिरूपी नदी पहिले से ही अवध समुद्र मे गिरती थी। पर अब चौदह भुवनरूपी पर्वतो पर पुण्यमेघ की अधिक वर्षा होने पर उनमे बाढ आगयी और वे बडे वेग से अवधसमुद्र की ओर दौडी। अवध मे घाटा कोई नही था। समुद्र मे स्वय अगाध जल भरा है। उसे जल की कमी नही है। पर नदी को दूसरी गति नही है। यथा जिमि सरिता सागर महँ जाही। जद्यपि ताहि कामना नाही।

समुद्र मे तो मणिगण रहते है। उसका नाम ही रत्नाकर है। सो अवधसमुद्र मे पुरनरनारि ही मणिगण है। मणि मे जाति होती है। पवित्रता होती है। बहुमूल्यता तथा सुन्दरता होती है। सो अवध नर-नारी भी सुजाति, शुचि, अमोल और सब भाँति से सुन्दर है। वे देवताओ से भी भल हैं। क्योकि देवता लोग सदा स्वार्थी होते है। यथा आए देव सदा स्वारथी। मणि यद्यपि जल मे है। पर जल का उसमे प्रवेश नही। इस भाति पुरजन सुख सम्पत्ति म डूबे हुए है। फिर भी निर्लेप है।

कहि न जाइ कछु नगर बिभूती। जनु एतनिअ बिरचि करतूती ॥
सब बिधि सब पुरलोग[1] सुखारी। रामचद मुख चदु निहारी ॥३॥

अर्थ नगर का वैभव कुछ कहत नही बनता। मानो ब्रह्मदेव की करतूति ही इतनी है। श्रीरामजी के मुखचन्द्र को देखकर सब विधि स सब पुर लोग सुखी है।

व्याख्या नगर का वैभव कवि से कहत नही बनता और देवताओ से देखते नही बनता। यथा देखि न सकहि पराइ बिभूती। दो ही स्थान ऐसे है जहाँ की विभूति नही कही जा सकती। एक अयोध्या की और दूसरी लङ्का की। यथा : गिरि पर चढि लका तेहि देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेखी। अति उतग जल-निधि चहुँ पासा। कनककोट कर परम प्रकासा। लङ्का विधि निर्मित दुर्गम अति भारी है और अयोध्या जनु एतनिअ विरचि करतूती है।

---

१ यह रसगंजा रति है। यथा सम्बन्ध कुलरूपादि सामग्रीगौरव भवेद्।

अयोध्या मे अर्थ काम इतना है पर उससे लोग सब विधि सुखारी नही। रामचन्द्र के मुखचन्द्र को देखकर सब विधि से सुखारी हैं। दूर से दर्शन करते हैं। इस भाँति चन्द्र दर्शन भी दूर से ही होता है। सीताजी अन्त पुर मे हैं। अत उनके लिए नही कहते। लङ्का के लोग भी सुखी हैं। यथा सुखी सकल रजनीचर कीन्हे। पर सब विधि सुखी नही। क्योंकि वहाँ देखने के लिए रामचन्द्र मुखचन्द्र नही है।

मुदित मातु सब सखी सहेली। फलित विलोकि मनोरथ वेली॥
राम रूपु गुन सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ॥४॥

अर्थ मातायें और सब सखी सहली अपनी मनोरथ की वेलि को फलती देखकर प्रसन्न हैं। रामजी के रूप, गुण, शील और स्वभाव को देखकर और सुनकर राजा आनन्दित होते हैं।

व्याख्या पहिले पुरजन का हाल कहकर अब अन्त पुर की चर्चा करते हैं। वहाँ मातायें और सखी सहेलियाँ अपना मनोरथ की वेलि को फलती देखकर प्रसन्न हैं। यहाँ मनोरथ वेलि से सीताजी अभिप्रेत हैं। यथा पुरजन सचिव राउ रानी सब सवक सखा सहेली। लैहैं लोचन लाहु सुफल लखि ललित मनोरथ वेली। माता सखी सहेली आदि सीताजी को निकट से देखती हैं। अत मनोरथ वेली से उपमित किया। अब अन्त मे महाराज का हाल कहते हैं।

राजा चारचक्षु होते हैं। उन्हे अपनी आँखो का भरोसा नही होता। क्योंकि उनके सामने तो सब भल हो रहते हैं। अत उन्हे चारो से सच्ची बातो का पता चलता है। यथा चारै पश्यन्ति राजान। अत रामजी का रूप, गुण, शील और स्वभाव स्वय देखकर और चारो स सुनकर परम प्रसन्न होते हैं। स्वय देखकर यथा आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरखै मन राजा। और सुनकर गुरुजी से कहते है कि सेवक सचिव सकल पुरवासी। जे हमरे अरि मित्र उदासी। सबहि राम प्रिय जेहि विधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही। रामजी का रूप, गुण, शील, और स्वभाव सभी लोकोत्तर हैं।

१ रूप रूप सकहिं नहि कहि श्रुति सेखा। सो जानहिं सपनेहु जिन दखा॥
२ शील को रघुवीर सरिस ससारा। सील सनेह निवाहन हारा॥
३ गुण जल सीकर महि रज गनि जाही। रघुपति गुन नहिं वरनि सिराही॥
४ स्वभाव अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न दखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ॥

दो सबके उर अभिलाषु अस, कहहिं मनाइ महेसु।
आपु अछत जुवराज पदु, रामहि देउ नरेसु॥१॥

अर्थ सबके हृदय म ऐसा अभिलाष है। महेश को मनाकर कहते हैं कि अपने रहते ही युवराजपद रामजी को राजा दें।

व्याख्या सबके हृदय मे कहने का भाव यह कि पुरजन परिजन के हृदय मे मन्त्रियो के हृदय म तथा महारानियो के हृदय मे अभिलाषा है। पुरजन के हृदय

मे अभिलाप यथा कनक सिंहासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चित चेता। मन्त्रियो के हृदय मे यथा मन्त्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत बिरव परेउ जनु पानी। महारानियो के हृदय मे यथा राम तिलकु जौ साँचेहु काली। देउँ भागु मन भावत आली। रामजी को युवराज पद मिल यही अभिलाषा है। पर वृद्ध महाराज के गुणो पर भो जनता ऐसी मुग्ध है कि उनका वियोग सह्य नही है। नियमानुसार राजगद्दी देकर स्वय वन न जाँय। स्वय राजा बने रहे। रामजो को युवराज पद देकर राज्यभार उन्ह दे दें। और आप द्रष्टा रहे।

एक समय सब सहित समाजा। राजसभा रघुराजु बिराजा ॥
नृप सब रहहि कृपा अभिलाषे। लोकप करहि प्रीति रुख राखे ॥१॥

अर्थ एक समय समाज के सहित राजसभा मे रघुराज दशरथजी विराजमान हुए। राजा लोग उनकी कृपा की अभिलाषा करते हैं और लोकपाल रुख रखते हुए प्रीति करते है।

व्याख्या सात्त्विक को अपना भरा पूरा समाज देखकर मृत्यु का स्मरण होता है और तामसिक को परपीडा का उत्साह होता है। दो ही सभा का वर्णन इस ग्रन्थ मे आता है। अयोध्या की सभा तथा लङ्का की सभा का। लङ्का की सभा यथा

दसमुख बैठ सभा एक बारा। देखि अमित आपन परिवारा ॥
सुत समूह जन परिजन नाती। गनै को पार निसाचर जाती ॥
सेन बिलोकि सहज अभिमानी। बोला बचन क्रोध मद सानी ॥
सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबुध बरूथा ॥
ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सबल रिपु जाहिं पराई ॥
तिन्हकर मरन एक बिधि होई। कहहुँ बुझाई सुनहु अब सोई ॥
द्विज भोजन मख होम सराधा। सबकर जाइ करहु तुम बाधा ॥
छुधाछीन बलहीन सुर सहजेहि मिलिहहि आइ।
तब मारिहौ कि छाडिहौ भलीभाँति अपनाइ ॥ इत्यादि।

यह तो आसुरी सम्पत्तिवाल की सभा है। यहाँ करजोरे सुर दिसिप विनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता।

अयोध्या की सभा दैवीसम्पत्तिवाल महाराज दशरथ की सभा है। सभा तो नित्य होती है। पर एकबार सभा मे सब समाज सहित महाराज दशरथ विराजमान हुए। रामजी के विवाह के बारह वर्ष बाद की बात है। उनके वर्षगाँठ की सभा है। इस सभा मे सब राजा कृपा की अभिलाषा करते हुए उपस्थित हैं। लोकपाल लोग महाराज पर प्रीति करते हैं। फिर भी रुख उन्ही का रखते है। क्योकि राजा दशरथ इन्द्र के मित्र हैं। यथा ससुर सुरेस सखा रघुराऊ। आगे होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंहासन आसन देई। यहाँ निम्नकोटि म सब राजाओ की उपस्थिति

कही। और उच्चकोटि मे देवो की प्रीति कही। फिर भी चक्रवर्तीजी का ही देवता लोग रुख रखते हैं। यह कहकर महाराज दशरथ की साहिबी प्रताप दिखलाया।

तिभुवन तीनि काल जग माही। भूरि भाग दसरथ सम नाही॥
मंगल मूल रामु सुत जासू। जो कछु कहिअ थोर सबु तासू॥२॥

अर्थ तीनो भुवन मे और तीनो काल मे दशरथजी के समान भाग्यवान् कोई नही। मङ्गल के मूल रामजी जिसके पुत्र हैं। उसके लिए जो कुछ कहा जाय सब थोडा है।

व्याख्या : तिभुवन तीनि काल से सम्पूर्ण देश और काल कहा। त्रिभुवन मे मर्त्यलोक पाताललोक और स्वर्गलोक तीनो आजाते है और तीन काल मे भूत भविष्यत् और वर्तमान आजाते है। इसीलिए जगमाही कहते हैं : गच्छतीति जगत्। जो परिवर्तनशील है उसे जगत् कहते हैं। अर्थात् जहाँतक परिवर्तन का साम्राज्य है। दशरथजी सा भाग्यशाली कोई नही। क्योकि भाग अभाग तो रामजी के सम्मुख विमुख होने पर निर्भर है।

पिता के पुण्य की परख तो पुत्र से होती है। पु नाम नरक का है। उससे जो पिता को तारे वही पुत्र है। इसीलिए वसिष्ठजी ने कहा 'भयउ न है नहिं अब होनि-हारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा। कहहु तात केहि भाँति कोउ करै बडाई तासु। राम लखन तुम सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु। जनकपुर के दूत ने कहा : तुम्ह तें अधिक पुन्य बड काके। राजन राम सरिस सुत जाके। रामजी मगलभवन अमगल हारी हैं। अत: महाराज दशरथ की प्रशसा करने मे सभी असमर्थ हैं।

राँय सुभायँ मुकुर कर लीन्हा। बदनु बिलोकि मुकुटु सम कीन्हा॥
स्रवन समीप भये सित केसा। मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा॥३॥

अर्थ : राजा ने स्वभाव से ही दर्पण हाथ मे लिया और मुख देखकर मुकुट को ठीक किया। कान के पास के केश श्वेत हो चले। मानो बुढाई यह उपदेश दे रही है।

व्याख्या : सबकें उर अभिलाष अस कहहिं मनाइ महेसु का साफल्य दिखलाते हैं। मुकुरावलोकन मङ्गल है। महेश की प्रेरणा इस प्रकार होती है। दरबार ठाट-बाट से लगा हुआ है। महाराज को इच्छा हुई कि दर्पण मे देखकर मुकुट को ठीक कर लें। बिना मुख देखे मुकुट ठीक नही किया जा सकता और मुकुट का सँभाल राजा के जिम्मे है। इसलिए हाथ मे दर्पण लिया और मुकुट को ठीक किया। पगडी देनेवाले भी इस बात को समझते हैं कि कुछ देर के बाद पगडी ठीक करने की आवश्यकता पड ही जाती है। खुले सिर रहनेवालो को इसका अनुभव नही है। इसलिए शङ्का उठाते हैं। ससार मे सब कुछ क्षण परिणामी है और व्यवहार स्थिरप्राय है। शरीर मे परिवर्तन हो रहा है। राजा को पता नही। कान के समीप के श्वेत केश के देखने से जाना कि जरा आयी। इसी बात को कवि दिखलाते हैं।

दर्पण हाथ मे लिया मुकुट ठीक करने के लिए और ठीक कर भी लिया। पर निगाह पड़ गयी कि कान के समीप के बाल श्वेत हो चले। ध्यान आया कि बुढाई आगयो। और बुढाई मृत्यु की दूतिका है। बालो का श्वेत होना अथवा मृत्यु द्वारा केश का पकडा जाना एक बात है। अत उचित जान पडा कि अपने बाद की व्यवस्था पहिले ही करनी चाहिए। इसी बात को आलङ्कारिक भाषा मे कवि कहते हैं कि मानो कान मे लगकर बुढाई ने उपदेश दिया कि .

नृप जुबराजु राम कहुँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू ॥४॥

दो. यह बिचारु उर आनि नृप, सुदिनु सुअवसरु पाइ।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन, गुरहि सुनायेउ जाइ ॥२॥

अर्थ . राजा! युवराज पद रामजी को देकर जीवन और जन्म का लाभ क्यो नही ले लेते ? ऐसा विचार मनमे लाकर और सुदिन तथा सुअवसर पाकर प्रेम से पुलकित तन और प्रसन्नमन होकर गुरुजी को जाकर सुनाया।

व्याख्या मानो वृद्धावस्था उपदश दे रही है कि प्रजा का भार धुरन्धर पुत्र को सौपो। अब तुम सिंहासन पर बैठकर दर्पण क्या देख रहे हो। मृत्यु सन्निकट ह। श्रीरामजी की अवस्था अब सिंहासनारूढ होकर मुकुट धारण करने की है। राजा के जीवन और जन्म का लाभ प्रजा की रक्षा मे है। सा धुरन्धर पुत्र को सौंपकर ही प्राप्त हो सकता है। अथवा जन्म का लाभ सिंहासनारूढ पुत्रमुखदर्शन से है। यथा : राम बाम दिसि सोहति रमा रूप गुन खानि। देखि मातु सब हरखी जनम सफल निज जानि। और जीवन का लाभ रामप्रीत्यर्थ त्याग से है। यथा जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि राम चरन मन लावा।

सुदिन अर्थात् शुभ मुहूर्त। गुरुजी से कहने के लिए सुदिन चाहिए सो वह दिन भी शुभ था और सुअवसर वही है जब गुरुजी एकाग्र आसीन हो। पुलकि से तन मुदित से मन और गुरहि सुनायो जाय से वचन द्वारा प्रेम प्रकाश कहा। महाराज सब काम गुरुजी स पूछकर करते है। रघुवश मे गुरु ही शरण है। महाराज को जब पुत्र की इच्छा हुई गुरुजी के ही पास गये। यथा . एकबार भूपति मन माँही। भै गलानि मोरे सुत नाही। गुरु गृह गये तुरत महिपाला। पुत्र का व्याह करना है तो : तब उठि भूप बसिष्ठ कहुँ दीन्हि पत्रिका जाइ। अब पुत्र को राज्य देना है तो प्रेम पुलकि तन मुदित मन गुरहि सुनायेउ जाइ।

कहइ भुआलु सुनिअ मुनिनायक। भये रामु सब बिधि सब लायक ॥
सेवक सचिव सकल पुरबासी। जे[1] हमरे अरि मित्र उदासी ॥१॥

अर्थ राजा ने कहा हे मुनिराज! सुनिये। रामजी सब विधि से सब लायक योग्य हो गये। सेवक, मन्त्री, सब प्रजा और जो हमारे शत्रु, मित्र और उदासीन हैं।

१. यहाँ तुल्ययोगिता प्रथम अलङ्कार है।

व्याख्या : भूपाल शब्द के पकार का लोप होकर उसका तद्भव रूप भुआल बना। भाव यह कि महाराज पृथ्वी के पालन करनेवाले हैं। उन्हें पृथ्वीपालन की चिन्ता है। अतः मुनिनायक के सामने अपना विचारा हुआ प्रस्ताव रखते हैं कि बेटे तो चारों लायक हैं। पर रामजी सब विधि से सब लायक हैं। धुरन्धर हैं। सब राज कार्य सँभाल लेंगे। सब लायक शब्द से सर्वशक्तिमत्ता द्योतित होती है। यथा : पुनि मन बचन कर्म रघुनायक। चरन कमल बंदौं सब लायक।

रामजी की सर्वप्रियता कहते हैं। क्योंकि यही राजा के सब लायक होने का अव्यभिचरित लक्षण है। सेवक सचिव सकल पुरवासी से अपने राज्य भर के लोगों का ग्रहण करते हैं और अरि मित्र उदासी कहकर जीवमात्र का ग्रहण करते है। यथा : जीव जन्तु अस को जग मांही। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नांही।

सबहि रामु प्रिय जेहि बिधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही ॥
बिप्र सहित परिवार गोसाईं। करहिं छोहु सब रौरिहि नाई ॥२॥

अर्थ : सबको रामजी वैसे ही प्यारे हैं जैसे मुझे प्यारे है। मानो प्रभु का आशीर्वाद शरीरधारी होकर शोभायमान है। सपरिवार ब्राह्मण लोग हे गोस्वामिन् उनपर वैसा ही छोह करते हैं जैसा कि आप करते हैं।

व्याख्या : राजा को रामजी वैसे ही प्रिय हैं जैसे मछली को जल प्रिय होता है। यथा : मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन मिति तुमहि अधीना। इसी भाँति सबको प्रिय हैं। यथा : अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम करुनाकर धरम धुरीना। अस बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहि जिअत जेहि भेंटहु आई। वसिष्ठजी ने आशीर्वाद दिया था : धरहु धीर होइ हहि सुत चारी। त्रिभुवन विदित भगत भय हारी। सो महाराज कहते हैं कि मानो आपका वही आशीर्वाद शरीर धारण करके रामरूप से प्रकट हुआ है।

अब रामजी की ब्रह्मण्यता कहते हैं। उनकी भक्ति से ब्राह्मण ऐसे प्रसन्न हैं कि आपकी भाँति छोह करते हैं। सहित परिवार कहने का भाव यह कि दस वर्ष का ब्राह्मण बालक भी ६० वर्ष के बूढ़े क्षत्रिय से पितृवत् पूज्य है। सो रामजी ब्राह्मणपरिवार पर भक्ति रखते हैं। अतः वे सपरिवार छोह करते हैं। यथा : जौ हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ। तौ अस को जग सुभट जेहि भय बस नावहिं माथ।

जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं ॥
मोहि सम यहु अनुभयेउ न दूजें। सबु पायेउँ रज पावनि पूजे ॥३॥

अर्थ : जो लोग गुरु चरणों की धूलि को सिर पर धारण करते हैं वे मानो सम्पूर्ण ऐश्वर्य को वश कर लेते हैं। इस बात का अनुभव मेरे समान किसी दूसरे ने नहीं किया। मुझे तो सब कुछ पवित्र धूलि के पूजन से ही प्राप्त हुआ।

व्याख्या : गुणों के होने से ही पात्रता आती है और पात्रता आने से

ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। यथा : पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मस्ततः सुखम्। गुरुचरणरेणु को सिर पर धारण करने से सम्पूर्ण गुणगण वशीभूत हो जाते है। यथा : कियें तिलक गुनगन बस करनी। और सम्पूर्ण गुणगण के वशीभूत होने से सम्पूर्ण ऐश्वर्य की पात्रता हो जाती है और पात्रता होने से ही धनप्राप्ति होती है। यहाँ : जन मन मंजु मुकुर मल हरनी इस पद का साफल्य : श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि से दिखलाकर *कियें तिलकगुनगन बस करनी* : इस पद का साफल्य महाराज दशरथ के उदाहरण से कवि दिखला रहे हैं।

महाराज कहते हैं कि इस बात का अनुभव जैसा मुझे हुआ वैसा किसी दूसरे को हुआ ही नही। क्योकि मैंने सिवा गुरु चरण रेणु के सिर पर धारण करने के और किया ही क्या? बहुत दिनो तक जो तीर्थ मे जाकर तपस्या करता है उसे आज्ञाकारी धर्मात्मा और बुद्धिमान् पुत्र होता है। मैंने तो केवल श्रीचरणो मे अपने अपुत्री होने के कष्ट का निवेदन मात्र कर दिया। तुरन्त आशीर्वाद मिला कि धैर्य धरो। त्रिभुवन विदित भगत भयहारी पुत्र होवेंगे। सो अक्षरश सत्य हुआ। मुझे तो सब कुछ गुरुचरणो से ही मिला।

अब अभिलाषु एकु मन मोरे। पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरे॥
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू। कहेउ नरेस रजायसु देहू॥४॥

अर्थ : अब एक अभिलाषा मेरे मनमें है। वह भी हे नाथ! आपके अनुग्रह से ही पूरी होगी। स्वाभाविक प्रेम देखकर मुनिजी प्रसन्न हो गये। बोले राजन्! आज्ञा दीजिये।

व्याख्या जितनी अभिलाषाएँ थी सभी श्रीचरणो के अनुग्रह से पूरी हुई। सब कुछ था। केवल पुत्र का घाटा था। सो श्रीचरणो के अनुग्रह से सब लायक पुत्र हुआ। अब एक अभिलाषा शेष है। जिन चरणो से सबकी पूर्ति हुई उन्ही के अनुग्रह से इसकी भी पूर्ति होगी। उसी को निवेदन करने के लिए आया हूँ।

स्वाभाविकी गुरुभक्ति देखकर मुनिजी प्रसन्न हो गये। भक्ति से स्थितप्रज्ञ महात्मा प्रसन्न हो जाते है। अत. अत्यन्त आदर से बोले। क्या चाहते हो न कहकर कहते है कि राजाज्ञा क्या है? अथवा मुनिजी त्रिकालज्ञ है जानते है कि इस अभिलाषा की पूर्ति इस समय होनी नही है। अत. अनुग्रहवाली बात छोडकर कहते है कि राजन्! आज्ञा दीजिये।

दो. राजन राउर नामु जसु, सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिपमनि, मन अभिलाषु तुम्हार॥३॥

अर्थ राजन्! तुम्हारा नाम और यश सब मनोरथो को देनेवाला है। हे राजाओ मे मणि! तुम्हारे मनकी अभिलाषा तो फल की अनुगामिनी है।

व्याख्या यहाँ अभिलाषु पाठ है। प्रथमा और द्वितीया के एकवचन म ही उकार आता है। अत यहाँ षष्ठी मानकर अभिलाष का सम्बन्ध फल के साथ नही

हो सकता। अर्थात् यह अर्थ नही हो सकता कि मनोभिलाप का फल तुम्हार अनुगामी है। यह अर्थ होगा कि तुम्हारे मनकी अभिलाषा फल की अनुगामिनी है फल पहिले होता है। अभिलाषा तो उसके पीछे होती है। भाव यह कि सबके प्रिय होने से सबके हृदय पर तो रामजी का राज्य हो ही गया। तदनन्तर आपक अभिलाषा हुई। जिसकी पूर्ति न होनी हो वह अभिलाषा आपको हो है नही सकती।

राजन् ! तुम्हारे नाम और यश के कीर्तन से लोगों के मनोरथ की पूर्ति होत है। तुम्हारा मनोरथ तो पूरा हो ही गया है। यथा दशरथ नाम सुकामतरु फलइ सकल कल्यान। धरनि धाम धन धरम सुत सदगुन रूप निधान। जिसका मन ईश्वर मे लगा है। उसके मनोरथ होने के पहिले ही फल हुआ रहता है। यथा ईश्वरार्पितवुद्धीना स्फुरन्त्यग्रे मनोरथा । काशी खण्ड।

सब विधि गुरु प्रसन्न जिय जानी। बोलेउ राउ रहसि मृदुबानी ॥
नाथ रामु करिअहि जुवराजू। कहिअ कृपा करि करिअ समाजू ॥१॥

अर्थ : अपने मनमे सब भाँति गुरुजी को प्रसन्न जानकर राजा आनन्दित होकर मृदुवाणी बोले कि हे नाथ ! रामजी को युवराज कीजिये। कृपा करके कहिये कि तैयारी की जाय।

व्याख्या : गुरुजी की अमोघ कृपा देखकर राजा प्रसन्न हो उठे। इतनी कृपा है कि आज मेरे नाम और यश को सब अभिमत दातार बना दिया। वसिष्ठजी की वाणी कभी व्यर्थ हो नही सकती। अत यही अवसर निवेदन करने का है। गुरुजी ने कहा है . रजायसु देहू। अत विधि रूप से ही निवेदन करते है कि आप रामजी को युवराज बनाइये। यदि कहा जाय कि युवराज पद देना तो राजा के अधिकार मे है। यदि इच्छा है तो दे दो। इस पर कहते हैं कि आप कृपा करके तैयारी करने की आज्ञा दे दीजिये। राजा के मुख से सरस्वती बोल गयी। रामजी को राजतिलक वसिष्ठजी ही करेंगे। इस समय केवल तैयारी ही होगी।

मोहि अछत यहु होइ उछाहू। लहहि लोग सब लोचन लाहू ॥
प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाही। एह लालसा एक मन माही ॥२॥

अर्थ मेरे रहते ही यह उछाह हो और सब लोग नेत्रो का फल पावें। प्रभु की कृपा से शिवजी ने सब निवाह दिया। अब मन मे केवल एक लालसा रह गयी है।

व्याख्या राम राज्याभिषेक तो एक दिन होना ही है। पर मेरे रहते यह उछाह हो। यह उछाह भी मैं देख लूँ। लोगो को भी इसकी उत्कट इच्छा है। सबकें उर अभिलापु अस कहहि मनाइ महेसु। आपु अछत जुवराजपदु रामहि देउ नरेसु। सो ये लोग भी नेत्रवान् होने के सुख का अनुभव करें। जनकपुरवासी तो राम जानकी का विवाह देखकर लोचन लाभ पा चुके। अब अवधवासी राम जानकी

का अभिषेक देखकर लोचन लाभ लें। यथा : कनक सिंघासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चित चेता।

प्रसाद आपका और निर्वाहक शङ्कर है। आपका प्रसाद अमोघ है। शिवजी तदनुसार कार्य कर रहे हैं। इस भाँति मेरी सब कुछ निवह गयी। अब यही एक लालसा मन में रह गयी। अर्थात् इसकी पूर्ति हो जाने पर मैं आप्तकाम हो जाऊँगा। कामना शेष रहने से ही मनुष्य मरना नही चाहता और यदि मर भी जाता है तो वही कामना उसे फिर संसार में खीच लाती है। उसके पुनर्जन्म का कारण होती है।

पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ। जेहि न होइ पाछें पछिताऊ ॥
सुनि मुनि दसरथ बचन सुहाए। मंगल मोद मूल मन भाए ॥३॥

अर्थ : फिर परवाह नही, चाहे शरीर रहे चाहे जाय। जिसमें पीछे से पछतावा न हो। दशथरजी के मङ्गल मोद मूल और सुहाये वचन सुनकर मुनिजी को अच्छे लगे।

व्याख्या : फिर मैं कृतकृत्य हो जाऊँ। फिर चाहे शरीर रहे चाहे जाय। इसकी चिन्ता न रह जायगी। नही तो शरीरावसान के समय पछितावा रहेगा कि अपने सामने मैंने प्रजारक्षा का भार रामजी को नही सौंपा। शरीर अनित्य है। इसका कुछ ठिकाना नही। तिसपर मृत्यु की दूतिका जरा ने केश पकड़ रखा है। अतः यह कर्त्तव्य भी पूरा होना ही चाहिए।

दशरथजी के वचन सोहाये रहे। इसलिए मुनिजी के मन भाये। मङ्गल यथा : नाथ रामु करिअहिं जुबराजू। मोद। यथा : मोहिं अछत यह होइ उछाहू। दोनों का मूल है श्रीरामजी का अभिषेक। वसिष्ठजी स्वयं मानते हैं : सब कहँ सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद मूल मग एकू। अतः मनोनुकूल होने से वसिष्ठजी को अच्छे लगे।

सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं। जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं ॥
भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी। रामु पुनीत प्रेम अनुगामी ॥४॥

अर्थ : मुनिजी बोले : सुनो राजा! पछताते तो वे हैं जो उनके विमुख होते हैं। जिसके भजन विना जी की जलन नही जाती, वही स्वामी पुनीत राम तुम्हारे पुत्र हुए हैं। क्योंकि वे पुनीत प्रेम के अनुगामी हैं।

व्याख्या : जेहि न होइ पाछें पछिताऊ का उत्तर देते हुए वसिष्ठजी कहते हैं कि तुम्हे पछितावा कैसे होगा। पछतावा तो उनको होता है जो रामविमुख हैं। यथा : सो परत्र दुख पावै सिर धुनि धुनि पछिताइ। कालहिं कर्महिं ईस्वरहिं मिथ्या दोष लगाइ। पछितावा होने से जलन होती है। वह जलन तो बिना रामभजन के जाती नही। यथा : देखे बिनु रघुनाथ पद जिय की जरनि न जाइ। अथवा : सब दुख मिटहिं राम पग पेखी। सो राम, पुनीत राम, प्रेमानुगामी राम

तुम्हारे प्रेम से तुम्हारे पुत्ररूप से अवतीर्ण हुए हैं। तुम्हारे लिए पछितावा की कौन सी वात है? वह राम स्वामी हैं। उनपर किसी का अधिकार नही है। तुम अपना कर्त्तव्य करो। चराचर नायक के लिए यौवराज्यपद क्या है? सोच पछितावा को अपने मन से निकालो।

दो. वेगि[1] विलंवु न करिअ नृप, साजिअ सवुइ समाजु।
सुदिनु सुमगलु तवहि जव, रामु होहि जुवराजु ॥४॥

अर्थ : राजा! जल्दी करो, देर न लगाओ, सब समाज सजाओ। जब रामजी युवराज हो जांय तभी सुदिन और सुमङ्गल है।

व्याख्या : समाज का अर्थ समान है। यथा : अरुधती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढि चले प्रथम मुनिराऊ। राजा ने कहा था : कहिय कृपा करि करिय समाजू। सो मुनिजी कह रहे हैं : साजिअ सवुइ समाजु। परन्तु जल्दी करो। देर न होने पावे। कर्त्तव्य कर्म मे बडी जल्दी होनी चाहिए। नही तो काल उसका रस पी जाता है। यथा : आदानस्य प्रदानस्य कर्त्तव्यस्य च कर्मण:। क्षिप्रमेव प्रकर्तव्यं काल: पिवति तद्रस.। इसमे सुदिन मत देखो : तदेव लग्न सुदिन तदेव, ताराबलं चन्द्रबलं तदेव। विद्यावल दैववल तदेव लक्ष्मीपतेरंघ्रियुग स्मरामि। राम जिस दिन राज्य पर बैठेंगे वही सुदिन हो जायगा। वही सुमङ्गल होगा। वसिष्ठजी मुहूर्त नही देते। जानते हैं कि अभी अभिषेकवाला सुदिन दूर है। रामजी के वन से लौटने पर कहेगे : आज सुघरी सुदिन समुदाई। सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचद्र बैठहि सिंघासन।

मुदित महीपति मंदिर आए। सेवक सचिव सुमंत्रु वोलाए॥
कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए। भूप सुमगल वचन सुनाए ॥१॥

अर्थ : राजा प्रसन्न होकर घर आये। सेवक · कामदार सचिव और सुमन्त्र को बुलवाया। उन लोगो ने जयजीव कहकर अभिवादन किया। राजा ने उन्हे सुमङ्गल वचन सुनाया।

व्याख्या : गुरुजी के पास जिस कार्य के लिए गये थे उसकी सिद्धि हो गयी। गुरुजी ने कह दिया कि जल्दी करो। देर न होने पावे। इसलिए महाराज तुरन्त उठ पडे और आनन्दित होकर घर आये। गुरुजी को भी साथ लेते आये। सेवको को और मन्त्रियो को बुलवाया। विभाग विशेष के मन्त्री को सुमन्त्र कहते हैं। रेफ के गिर जाने से उसका तद्भवरूप सुमन्त हुआ। महाराज के यहाँ जो सुमन्त्र पद पर थे वे उनके सखा भी थे और सारथि भी थे। इन पर महाराज की बडी आस्था थी। इनको अन्त:पुर मे भी रोक नही थी। इसलिए इनके नाम का पृथक् निर्देश है। ये भी बुलाये गये। मन्त्रणा के लिए सभा बैठी। सेवक - वारवारी और

---

१. यहाँ विवृतोक्ति अलङ्कार है।

मन्त्रियो ने जयजीव कहकर राजा का अभिवादन किया। जयजीव का अर्थ है कि आप की जय हो और आप चिरजीवी हो। महाराज ने ऐसा वचन सुनाया कि जिससे ससार का कल्याण हो। इसलिए उस वचन को सुमङ्गल कहा।

जौ पाँचहि मत लागइ नीका। करहु हरषि हिय रामहि टीका ॥
मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत बिरव परेउ जनु पानी ॥२॥

अर्थ यदि पञ्चो को यह राय पसन्द हो तो प्रसन्न मन होकर रामजी का राजतिलक करो। प्रिय वाणी सुनकर मन्त्री ऐसे प्रसन्न हुए जैसे मनोरथ के पौधे मे पानी पडा हो।

व्याख्या महाराज के भीतर रामजी के अभिषेक की उत्कट इच्छा है। फिर भी राजनीति के अनुसार सब निर्णय पञ्चो पर छोडते हैं और कहते है कि मेरा किया हुआ प्रस्ताव समझकर सङ्कोच से स्वीकार न करना। यदि तुम लोग को यह राय पसन्द हो और हर्षित हृदय से करना चाहते हो तो रामजी को राजतिलक करो। यह महाराज दशरथ की नीतिपटुता है कि पहिले चारो द्वारा यह निश्चय करके कि रामजी प्रजामात्र को प्रिय है और सब इनका यौवराज्यपद पर अभिषेक चाहते हैं तब जाकर गुरुजी से सम्मति ली। फिर मन्त्रियो से सम्मति ले रहे हैं।

मन्त्री लोग स्वय यही चाहते थे। परन्तु महाराज दशरथ का शासन निर्दोष था। अत स्वय प्रस्ताव करना उचित नही समझा था। अत उन्हे महाराज की यह वाणी अति प्रिय मालूम हुई और उनका मनोरथरूपी पौधा लहलहा उठा। जैसे उसमे पानी पडा हो। पानी पडने से बडे-बडे पेड भी प्रसन्न दिखाई पडते है। पर पौधो की प्रसन्नता अधिक व्यक्त होती है। इसीलिए महाराज की वाणी की उपमा पानी पडने से और मन्त्रिया के अभिमत की उपमा पौधो बिरवा से दी।

बिनती सचिव करहि कर जोरी। जिअहु जगतपति बरिस करोरी ॥
जग मगल भल काजु बिचारा। बेगिअ नाथ न लाइअ बारा ॥३॥

अर्थ मन्त्री हाथ जोडकर विनय करते है कि हे जगत्पति! आपकी आयु करोडो वर्ष की हो। आपने जगत् का मङ्गल करनेवाला अच्छा कार्य विचारा। सो हे नाथ! शीघ्रता कीजिये। इसमे देर न हो।

व्याख्या राजा के युवराज विषयक प्रस्ताव करने से यह प्रकट होता है कि उन्हे अब अपने जीवन से निराशा है। अथवा नीति के अनुसार चौथेपन मे भगवत् भजन के लिए वन जाना चाहते है। अत मन्त्री हाथ जोडकर विनती करते हैं कि आप जगत्पति रहकर करोडो वर्ष जीवें। आपका जीवन और शासन दोनो हम लोगो को प्रिय है। आप राजा बने रहे और राज्य भार रामजी को युवराज बनाकर सौप दें। यह कार्य जगत् के मङ्गल के लिए है। आपने बहुत अच्छा विचार किया है। पर शीघ्र ही इसे कार्य मे परिणत कीजिये। क्योकि श्रेयासि बहु विघ्नानि। ऐसे श्रेष्ठ कार्य म बहुत-से विघ्न खडे हो जाते है।

नृपहि मोदु सुनि सचिव सुभाषा । बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा ॥४॥
दो. कहेउ भूप मुनिराज कर, जोइ जोइ आयसु होइ ।
राम राज अभिषेक हित, बेगि करहु सोइ सोइ ॥५॥

अर्थ : मन्त्री के सुन्दर वचन सुनकर राजा को आनन्द हुआ । जैसे बढ़ती हुई लता को सुन्दर शाखा मिल जाय । राजा ने कहा कि मुनिराज की जो-जो आज्ञा हो रामजी के राज्याभिषेक के लिए जल्दी-जल्दी वैसा ही करो ।

व्याख्या : लता जब बढ़ती है तब निराधार ऊपर की ओर चलती है । जब उसे आधार नहीं मिलता तो लौट आती है । यदि उसे सुन्दर शाखा मिल जाय तो वह आनन्द से उसमें लिपट जाती है और उसके अधिक ऊपर जाने का मार्ग निरर्गल हो जाता है । उसी भाँति मन्त्रियों की सुभाषा रूपी शाखा पाकर राजा की आनन्द रूपी लता स्वच्छन्द होकर और बढ़ी ।

महाराज ने मन्त्रियों से कहा कि मुझे शीघ्रता के लिए कहते हो तो मेरी आज्ञा हो गयी । अब तुम लोग शीघ्रता करो । यह कर्मकाण्ड का विषय है । इसमें कौन-कौन सी सामग्री अपेक्षित है ? कौन-कौन सी क्रिया अपेक्षित है ? यह सब मुनिराज से जानकर तदनुकूल कार्य सम्पादन करो ।

हरषि मुनीस कहेउ मृदु बानी । आनहु सकल सुतीरथ पानी ॥
औषध मूल फूल फल पाना । कहे नाम गनि मंगल नाना ॥१॥

अर्थ : हर्षित होकर मुनिजी ने मृदु वाणी से कहा कि सभी सुन्दर तीर्थों का जल मँगाओ । फिर उन्होंने, औषध, मूल, फूल, फल, पान, और अनेक मङ्गल वस्तुओं के नाम गिनाये ।

व्याख्या : मुनिजी को रामजी के अभिषेक के लिए आज्ञा देने में हर्ष है । अथवा राजा की गुरुभक्ति पर हर्ष है । महाराज की आज्ञा पाते ही मन्त्री लोग मुनिराज वसिष्ठजी के पास गये । गुरुजी ने मृदु वाणी से आज्ञा देना आरम्भ किया । तीर्थ अनेक प्रकार के होते हैं । कोई तीर्थ देव सम्बन्धी हैं यथा : प्रयागादि । कोई ऋषि सम्बन्धी हैं यथा : नैमिषादि । कोई आसुर तीर्थ है यथा : गया आदि । अतः मुनिजी सुतीर्थ का जल लाने को कहते हैं । आसुर तीर्थ के जल का निषेध करते हैं । तीर्थ का जल बहुत दूर से मँगाना है । इसलिए पहिली आज्ञा उसी के लिए हुई ।

मङ्गल कार्य में द्रव्य की तालिका लिखने के समय हल्दी के पहिले लिखने की चाल है । अतः मुनिजी ने औषधि को ही पहिले गिनाया । राज्याभिषेक के लिए १०८ औषधियों और मूलों की आवश्यकता पड़ती है । अतः उनके नाम मुनिराज ने गिनाये । जिसमें कोई छूट न जाय और जिन-जिन फूल, फल और पत्तों की आवश्यकता पड़ती है उन्हें भी गिनाया । जिसमें अभिषेक सर्वाङ्ग सम्पन्न हो ।

चामर चरम बसन बहु भाँती । रोम पाट पट अगनित जाती ॥
मनिगन मंगल वस्तु अनेका । जो जग जोगु भूप अभिषेका ॥२॥

अर्थ : चँवर, चर्म, बहुत प्रकार के रोम, रेशम और सूत के असंख्य जाति के कपडे, मणि : जवाहिरात और अनेक मङ्गल वस्तु जो संसार मे राज्याभिषेक के योग्य हैं बतलाये ।

व्याख्या : मङ्गल वस्तु कहते है । चँवर जो राजाओ के ऊपर चलता है । चम से यहाँ व्याघ्रचर्म मृगचर्म ढाल आदि अभिप्रेत हैं । कपडो की असख्य जातियाँ है । फिर भी उनके तीन विभाग हैं । १ रूई के कपडे को ही साधारणत. कपडा कहते कहते हैं । २ दुशाला कम्बल आदि रोमपट है और ३ रेशम के कपडे को पाट पट कहते है । इनके भेद को मुनिजी नही गिनाते । इन्हे मन्त्री लोग भलीभाँति जानते है । अत केवल अगनित जाती कह दिया । मणिगणो से तो भण्डार भरा है । उन्हे कही बाहर से नही लाना है । अत उन्हे पीछे गिना रहे हैं । परिशिष्ट मे कहते है । और भी जो-जो वस्तुएँ ससार मे राज्याभिषेक के योग्य समझी जाती है उन्हे ले आओ ।

बेद बिहित कहि सकल बिधाना । कहेउ रचहु पुर बिबिध बिताना ॥
सफल रसाल पूगफल केरा । रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा ॥३॥

अर्थ : वेद मे कहे हुए सब विधानो को बताकर कहा कि नगर मे बहुत से मण्डप बनाओ । फलो समेत आम सुपारी और केले के पेड नगर की गलियो म चारो ओर लगाओ ।

व्याख्या सातो द्वीप सातो समुद्र पहाडो के चित्र से वह स्थान चित्रित किया जाता है । जहाँ पर सिंहासन रक्खा जाता है । उसपर व्याघ्रचर्म बिछाया जाता है । स्वर्णकलश तीर्थ के जलों से भरे जाते हैं । ये सब विधान जैसे ब्राह्मणोक्त इन्द्राभिषेक मे है किये जाँय । दीये जलाये जायँ । बाजे बजें । दर्पणादि मङ्गल वस्तु साजे जाँय । वेदपाठ के लिए ब्राह्मण बुलाये जाँय । इत्यादि वेदविधान है । इस भाँति मुनिजी की पहिली आज्ञा वेदविधान के विषय मे हुई । दूसरी आज्ञा पुर के साजने के लिए हुई कि पुर मे अनेक मण्डप साजे जायँ । तीसरी आज्ञा गलियो मे रास्ता मे वैसे ही सफल आम सुपारी और केले के पेडो के रोपने की हुई । जो देखने मे स्वाभाविक हो । पर मणिगण के बने हुए हो । यथा : हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल । नही तो सफल आम तथा सुपारी के पेड रोपे नही जा सकते ।

रचहु मंजु मनि चौकइ चारू । कहहु बनावन बेगि बजारू ॥
पूजहु गनपति गुर कुलदेवा । सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा ॥४॥

अर्थ मनोहर मणियो के सुन्दर चौके पुरवाओ और बाजार को जल्दी सजाने के लिए कहो । गणेशजी गुरु और कुलदेव की पूजा करो और सब विधि से ब्राह्मणो की सेवा करो ।

व्याख्या : चौथी आज्ञा हुई कि गजमुक्ताओं के चौके पुरवाओ। पाँचवी आज्ञा हुई कि शीघ्रता से बाजार साजो। समय बहुत कम है और कार्य सब विधानपूर्वक होना चाहिए। अतः मुनिराज की पृथक् आज्ञा हो रही है। छठी आज्ञा हुई कि गणेश जी, गुरु और कुलदेव की पूजा करो। गणेशजी सभी मङ्गल कार्य में प्रथम पूजे जाते हैं। स्वयं आप ही गुरु हैं। पर विधान में होने से गुरु की पूजा कहने में सङ्कोच नहीं करते। इष्टसिद्धि के लिए कुलदेव की पूजा के लिए आज्ञा देते हैं। भूमिसुर प्रत्यक्ष देवता हैं। अतः उनकी सेवा सब विधि से करने को कहते हैं। इनकी पूजा के लिए सातवीं आज्ञा हुई।

दो. ध्वज पताक तोरन कलस, सजहु तुरग रथ नाग।
सिर धरि मुनिवर बचन सबु, निज निज काजहि लाग ॥६॥

अर्थ : ध्वजा, पताका, वन्दनवार, कलश, घोड़े, रथ और हाथी सजाओ। मुनिराज की आज्ञा को सिर पर रखकर सब कोई अपने-अपने काम में लग गये।

व्याख्या : ध्वजा पताका और तोरण से सदा पुरी सुशोभित रहती है। पर अब ऐसा साजो कि धूप रुक जाय। घोड़े हाथी रथ सवारी निकलने के लिए साजे जाँय। यह मुनिजी की आठवी आज्ञा है। महाराज के आठ मन्त्री हैं। धृष्टिर्जयन्तो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्धनः। अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमोऽर्थवित्। आठों के लिए आठ आज्ञा हुई।

१. धृष्टि को वेदविधान तथा सामग्री इकट्ठा करने के लिए पहिली आज्ञा हुई।
२. जयन्त को वितान रचने की दूसरी आज्ञा हुई।
३. विजय को सफल रसाल पूगफल केरा को चारो ओर पुर से रोपने की तीसरी आज्ञा हुई।
४. सुराष्ट्र को गजमणि के चौकों की व्यवस्था के लिए चौथी आज्ञा हुई।
५. राष्ट्रवर्धन को बाजार सजाने की पाँचवी आज्ञा हुई।
६. अकोप को देवगुरु पूजन की छठी आज्ञा हुई।
७. धर्मपाल को सब विधि से भूमिसुर की सेवा करने की सातवी आज्ञा हुई। और :
८. सुमन्त्र को घोड़े हाथी के साजने की आठवी आज्ञा हुई।

सब मन्त्रियों ने मुनिराज की आज्ञा सिर पर धारण की और अपने अपने कार्य में लग गये।

जो मुनीस जेहि आयेसु दीन्हा। सो तेहि काजु प्रथम जनु कीन्हा ॥
बिप्र साधु सुर पूजत राजा। करत राम हित मंगल काजा ॥१॥

अर्थ : मुनिराज ने जिसको जिस काम के लिए आज्ञा दी थी वह काम मानो वह पहिले ही कर चुका था। राजा ब्राह्मण साधु और देवता का पूजन करते हैं और रामजी के लिए मङ्गलकार्य करते हैं।

व्याख्या कहेउ भूप मुनिराज कर जोइ जोइ आयसु होइ। रामराज अभिषेक हित बेगि करहु सोइ साइ। सो मन्त्रियों की शीघ्रता दिखलाते हैं। उन्होंने ऐसे लाघव से कार्य किया कि मानो वे कार्य पहिले से ही बने बनाये थे। अर्थात् बडी ही शीघ्रता से कार्य का सम्पादन किया।

पूजा का कार्य महाराज ने स्वय किया और मङ्गलकाय सम्पादन म भी हाथ बँटाया। पूजन म पहिले नाम विप्र का दिया गया। अर्थात् ब्राह्मण के पूजन पर अधिक ध्यान दिया गया। क्योंकि गुरुजी का आदेश था सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा। इस पूजन म एक लक्ष ब्राह्मणो को अशन दान देना था। अत सब व्यवस्था मन्त्रियो ने की। साधुपूजा और देवपूजा भी हुई। राजा स्वभाव से ही गुरु विप्रधेनु सुरसेवी थे। इस समय तो महामङ्गल उपस्थित था। अत बडी पूजा हुई।

सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा॥
राम सीय तन सगुन जनाए। फरकहिं मगल अग सुहाए॥२॥

अर्थ रामजी के अभिषेक की सुहावनी खबर सुनते ही अवध म बधाव के बाजा की धूम मच गयी। रामजी के और सीताजी के शरीर म शकुन प्रकट हुए। उनके सुन्दर अङ्ग फडकने लगे।

व्याख्या जब सब लोग अपने अपने कार्य सम्पादन म लगे और दौड धूप आरम्भ हुई तब नगरवासियो को पता चला कि रामजी का अभिषेक होने जा रहा है। सुनते ही अयोध्या म तमाम बधाइयाँ बजन लगी गहागह शब्द का प्रयाग जायसी ने भी आनन्द के अर्थ म किया है। पुरवासियो को बडा हर्ष हुआ। इस दिन के लिए महेश को मानत थे। यह बधाई महाराज के प्रसन्न करने के लिए नही बजी। बल्कि अपने अभिलाष की पूर्ति की खुशी म बजाई जान लगी।

शुभाशुभ सूचक शकुन भविष्यत् सूचक यन्त्रो की भाति अकस्मात् अनागत घटना की सूचना देते हैं। जिस भाति भूकम्प आने के पहिले ही चुम्बकाकर्षण शिथिल हो जाता है। चुम्बक सूई का आकर्षण नहीं करता। इस भाति शुभाशुभ घटना के होने क पहिले ही कुछ शास्त्रकथित लक्षण है जो अवश्य प्रकट होते हैं। उन्हीं का शकुन कहते है। सो सीताजी और रामजी के शरीर म शकुन प्रकट हुए। अर्थात् मङ्गल अङ्ग फडकने लगे। दक्षिण वाम नही लिखते। क्योंकि रामजी के दक्षिण अङ्ग का फडकना शुभ था और जानकीजी के वाम अङ्ग का फडकना मङ्गलसूचक था। सुहाए अङ्ग कहने का भाव यह कि नेत्र और बाहु फडके।

पुलकि सप्रेम परसपर कहही। भरत आगमनु सूचक अहही॥
भए बहुत दिन अतिअवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी॥३॥

अर्थ एक दूसर से पुलकायमान होकर कहते हैं कि ये शकुन भरत के

आगमन की सूचना दे रहे हैं। बहुत दिन हुए अत्यन्त चिन्ता है। शकुन से प्रिय के मिलन का विश्वास होता है।

व्याख्या : रामजानकी का स्वभाव एक है। रुचि एक है। दोनो को भरत प्रिय हैं। उनके स्मरण आने से पुलक होता है। अतः दम्पति ने यही निश्चय किया कि ये शकुन भरतजी के आने की सूचना दे रहे हैं।

कारण देते है कि भरतजी को ननिहाल गये बहुत दिन हुए। इसलिए अधिक चिन्ता है। इस शकुन से यह विश्वास होता है कि प्रिय की प्राप्ति . भेंट होगी। शुभ शकुन प्रिय के भेंट का सूचक है। यथा : सगुन बिचारि धरी उर धीरा। अब मिलिहहिं कृपालु रघुबीरा। तथा सो सबु कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभग अग सुनु भ्राता। भरत के मिलन की उत्कण्ठा हृदय मे हुई और उसी समय शकुन हुए। शकुन का प्रयोजन ही प्रियमिलन है। पुलकि से तन, सप्रेम से मन और परसपर कहही से वचन से भरतजी पर प्रेम कहा। अवसेए शब्द का प्रयोग चिन्ता करने याद आने के अर्थ मे मारवाडी आज भी करते हैं।

भरत सरिस प्रिय को जग माही। इहइ सगुन फलु दूसर नाही॥
रामहि बंधु सोचु दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती॥४॥

अर्थ : जगत् मे भरत के समान कौन प्यारा है। अत यही शकुन का फल है। दूसरा नही। रामजी को दिन रात भाई की चिन्ता है। जैसे दिन रात कछुए को अपने अण्डे की चिन्ता होती है।

व्याख्या : दम्पति की विचारधारा एक है। उन्हें भरत जी के समान ससार मे दूसरा कोई प्यारा नही है। यथा : जग जप राम राम जप जेही। अतः यह निश्चय किया कि इस शकुन का फल भरत से भेंट होना है। दूसरा नही कहने से दूसरे फल की व्यावृत्ति करते हैं। यद्यपि इस समय इस शकुन का होना अभिषेक सम्वाद सूचक कहा जा सकता है। परन्तु जिन्हे शकुन हो रहा है उन्हे तो भरत प्रिय हैं। अभिषेक प्रिय नहीं। अभिषेक का प्रस्ताव तो भरतजी के शीघ्र मिलन का कारण हुआ। अत जो फल निश्चय किया गया वही ठीक है।

कछुए अण्डे बालू मे देते हैं पर रहते है जल मे। रात मे सूनसान होते ही उन्हे सेने के लिए रेती मे चले जाते हैं। अत कछुए जल मे विचरते रहते है। पर उनकी चित्तवृत्ति अण्डे मे ही लगी रहती है। यह गति रामजी की है। ये अवध मे हैं और इस समय भरतजी कैकय देश मे है। पर मनोवृत्ति दिन रात भरतजी मे लगी है।

दो. एहि अवसर मंगलु परम, सुनि रहसेउ रनिवासु।
सोभत लखि बिधु बढत जनु, बारिधि बीचि बिलासु॥७॥

अर्थ : इस अवसर पर परम मङ्गल सुनकर रनिवास आनन्दित हो उठा। जिस भाँति चन्द्रमा की बढोतरी से समुद्र मे उत्तालतरङ्गों की शोभा होती है।

व्याख्या : रनिवास की उपमा समुद्र से दी गयी। क्योंकि महाराज का रनिवास बहुत बड़ा था। सात सौ रानियाँ थी। यथा : पालागन दुलहिनिन्ह सिखावत मुदित सासु सत साता। यहाँ चन्द्र की बढोतरी रामजी का अभिषेक है। समुद्र से ही चन्द्र की उत्पत्ति है। अतः रामजी की उपमा चन्द्र से दी गयी। इनके अभिषेक से रनिवास में आनन्द का उद्रेक हुआ। उसकी उपमा वीचि विलास से दी गयी। यथा : राकाससि रघुपतिपुरी सिंधु देखि हरषान। बढ़त कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान। यहाँ हरषेउ शब्द मे रकार और सकार उलट गये हैं। अतः हरषेउ का रहसेउ हो गया।

प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाए। भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए॥
प्रेम पुलकि तन मन अनुरागी। मंगल कलस सजन सब लागी॥१॥

अर्थ : जिन्होने पहिले जाकर यह शुभ सम्वाद सुनाया उन्होने बहुत से गहने कपडे पाये। प्रेम से शरीर मे पुलक हो गया। मन मे प्रेम छा गया। सब मङ्गल कलश साजने लगी।

व्याख्या : नगर मे समाचार फैलने के बाद रनिवास को समाचार मिला। शुभ समाचार देनेवाले को पुरस्कार मिलने की परिपाटी है। क्योकि शुभ समाचार देनेवाला प्रिय होता है। यथा : जो कहिहैं आये राम लखन घर करि मुनि मख रखवारी। सो तुलसी प्रिय मोहि लागिहैं ज्यों सुभाय सुत चारी। समाचार देनेवाले को रानियो ने भूषण उतार कर दे दिये। कपडे पीछे से मँगाये गये। इसलिए भूषण पहिले कहा। उसके बाद बसन कहा। पीछे से समाचार देनेवाले को भी पुरस्कार मिला। पर थोड़ा अधिक तो पहिले समाचार देनेवाले ने ही पाया।

शुभ समाचार सुनने से ऐसा आनन्द हुआ कि शरीर पुलक से और मन प्रेम से भर उठा। अतः अन्त पुर के द्वारपर मङ्गलसूचक कलश स्थापन के लिए सब रानियाँ मङ्गलघट साजने लगी। यथा : छुहे पुरट घट सहज सुहाए। मदन सकुचि जनु नीड़ बनाये।

चौकइँ चारु सुमित्रा पूरी। मनिमय बिबिध भाँति अतिरूरी॥
आनँद मगन राम महतारी। दिये दान बहु बिप्र हँकारी॥२॥

अर्थ : सुमित्राजी ने सुन्दर चौक पूर डाले। जो मणिमय अनेक प्रकार के और सुन्दर थे। रामजी की माता तो आनन्द में मग्न हो गयी। बहुत से ब्राह्मणो को बुलाकर बहुत दान दे डाला।

व्याख्या : सात सौ रानियो का हाल कहकर अब सुमित्राजी का वर्णन करते है। इन्हे अधिक आनन्द था और चौका पूरने मे भी बड़ी पटु थी। सबने मङ्गल घट साजे। इन्होने चौका भी पूरा। महारानी है : मणिगणो का चौक पूर रही है। अनेक प्रकार का चौका पूरना जानती है। वे चौके एक से एक सुन्दर हैं।

रामजी की माता कौसल्या देवी के आनन्द का कुछ ठिकाना नही। वे तो मग्न हैं। न कलश साजा। न चौका पूरा। सब भूल गयी। बहुत से ब्राह्मणो को बुलाया और उन्होने बहुत सा दान दिया। ये ब्राह्मणो के सन्तोष को ही परम मङ्गल मानती है। यथा : तुम्ह गुरु विप्र साधु सुर सेवी। तस पुनीत कौसल्या देवी।

पूजी ग्रामदेवि सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलि भागा ॥
जेहि बिधि होइ रामु कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू ॥३॥
गावहि मंगल कोकिल बयनी। बिधुबदनी मृगसावकनयनी ॥४॥

अर्थ . फिर ग्राम के देवी देवता और नागों डिहवारो की पूजा की और बलि भाग देने के लिए मनौती मानी। जिस विधि से रामजी का कल्याण हो कृपा करके वह वरदान दो। चन्द्रवदनी मृग के बच्चो सी आँखवाली कोकिलवयनी मङ्गल गाने लगी।

व्याख्या · यहाँ गुरुदेव को आज्ञा नही भेजनी पडी। स्वय अन्त करण का प्रेरणा से पूजन मे प्रवृत्त हुईं। पहिले पूजन करके ब्राह्मणो को दान दिया। तत्पश्चात् दवी देवताओ का पूजन प्रारम्भ हुआ। ग्रामदेवी और ग्रामदेव का पूजन किया। फिर से पूजन बलिदान के लिए मनौती मानी। यहाँ पर नाग से उन हाथियो का ग्रहण है। जो मिट्टी के बने होते हैं। ग्राम के बाहर रक्खे जाते है और मनोरथ सिद्धि होने पर मङ्गल उपस्थित होने पर उनकी पूजा होती है। वे डिहवार कहलाते हैं। राजा कुलदेव की पूजा कर रहे हैं। महारानी ग्रामदेव और देवियो के पूजन मे लगी हैं।

पूजनोपरान्त रामजी के कल्याण के लिए वरदान माँगती हैं। अभिषेक पर आग्रह नही है। जिस भाँति रामजी का कल्याण हो सो करा। चाहे अभिषेक से हो अथवा अन्य विधान से हो। जीव अल्पज्ञ नहो जान सकता कि वास्तविक कल्याण किस बात मे है। यह महारानी कौसल्या का अलौकिक विवेक है। यथा . मातु विवेक अलौकिक तोरे। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरे। प्रार्थना करती है कि दया करके वरदान दो। पूजा के बदले मे नही।

इधर महारानी पूजन मे लगी हैं। उधर अन्त पुर मे मङ्गलगान होने लगा। गान करनेवाली सुस्वर हो तभी श्रवणेन्द्रिय की तृप्ति होती है। अतः कोकिलवयनी कहते हैं और यदि वे सुन्दरी हो तो चक्षुरिन्द्रिय के तर्पण से आनन्द और भी बढ जाता है इसलिए विधुबदनी मृगसावकनयनी कहा।

दो. राम राज अभिषेकु सुनि, हिय हरषे नर नारि।
लगे सुमंगल सजन सब, बिधि अनुकूल बिचारि ॥८॥

अर्थ : रामजी का राज्याभिषेक सुनकर सब नर नारी हर्षित हुए और विधि को अनुकूल समझकर सब सुमङ्गल सजने लगे। सबके हृदय मे रामजी के

अभिषेक की अभिलाषा थी। अत अभिलाषा पूर्ति के समय हृदय मे हर्ष होना स्वाभाविक है।

व्याख्या : हर्ष होने पर सुमङ्गल साज सजना भी स्वाभाविक है। आनन्द के उद्रेक मे कुछ क्रियाएँ भी तद्रूप होनी ही चाहिए। अत घरो मे तोरण पताका लगाना बाजार के साजने मे हाथ बँटाना ये काम नर करने लगे। मङ्गलघट सजाना चौक पूरना और मङ्गलगान करना इन कामो मे नारियाँ लग गयी। सबने यही समझा कि विधि अनुकूल है। पर बात ऐसी नही थी विधि की वामगति थी।

तब नरनाह बसिष्ठु बोलाए। राम धाम सिख देन पठाए॥
गुर आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायेउ माथा॥१॥

अर्थ तब राजा ने वसिष्ठजी को बुलाया। रामजी के महल मे शिक्षा देने के लिए भेजा। गुरुजी का आगमन सुनते ही रामजी ने द्वार पर आकर चरणो मे सिर नवाया।

व्याख्या रामजी का राज्याभिषेक सर्वसम्मति से स्वीकृत हो गया। तदनुसार तैयारी भी आरम्भ हो गयी। पर यह समाचार रामजी को भी देना है। अत यही निश्चय हुआ कि स्वय गुरुजी जाकर यह समाचार दे और ऐसे अवसर पर जो जो बाते रामजी के लिए करणीय हो उन बातो की शिक्षा दे। गुरुजी पुरोहित भी है। अत पौरोहित्य का काम आ पडने पर बुलाये जाते है। यथा गुरु वसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा। भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी। सो गुरुजी को बुलाकर राजा ने शिक्षा के लिए रामजी के महल मे भेजा।

गुरुजी के आने का समाचार पाते ही रघुनाथजी बाहर निकल आये। तब से वसिष्ठजी द्वार तक आगये। रामजो ने चरणो पर सिर रखकर प्रणाम किया। गुरुजी का पधारना एक असाधारण घटना थी। अत उन्हे आते देखकर सेवको ने दौडकर रामजो को समाचार दिया। जिसमे उन्हे अगवानी का सुअवसर मिल सके।

सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने॥
गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले रामु कमल कर जोरी॥२॥

अर्थ . आदर के साथ अर्घ्य देकर घर लाये। षोडशोपचार से पूजन करके सम्मान किया। तत्पश्चात् सीताजी के सहित पाँव छूये और करकमल जोडकर बोले।

व्याख्या पहिली पूजा अर्घ्यदान है। सो द्वार पर ही अर्घ्य दिया। तत्पश्चात् महल मे ले आये। श्रद्धातिशय से षोडशोपचार से पूजन किया। नही तो ऐसे अवसर पर पञ्चोपचार से ही पूजन किया जाता है। तुलसी कहत पुकार के सुनो सकल दै कान। हेमदान गजदान ते बडो दान सनमान।

घर मे पूजन हो रहा है। इसलिए पूजन की समाप्ति के समय सीताजी के सहित वन्दना की। क्योकि स्त्री के सहित पूजन का विधान है। तत्पश्चात् रामजी दोनो हाथ जोडकर बोले। भाव यह कि गुरुजी के आगमन पर पहिला कार्य यह है कि उनकी पूजा की जाय। तब दूसरी बात हो।

सेवक सदन स्वामि आगमनू। मगल मूल अमगल दमनू ॥
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ असि नीती ॥३॥

अर्थ सेवक के घर स्वामी का आगमन तो सब मङ्गलो का मूल है और अमङ्गल का नाश करनेवाला है। तथापि उचित नीति यह है कि काम के लिए सेवक को बुला भेजना चाहिए।

व्याख्या रामजी ने कहा कि मैं सेवक हूँ। आप स्वामी है। सेवक का तो धर्म ही है कि स्वामी के घर उपस्थित रहे। यदि स्वामी सेवक के घर जाय तो उसका बडा भाग्य समझना चाहिए। स्वामी के चरण पडने से ही सेवक का मङ्गल होता है। और उसके अमङ्गल का नाश होता है। अत आपका पधारना मेरे लिए तो बडे सौभाग्य की बात है। परन्तु निष्कारण तो कोई कार्य होता ही नही। अत जिस कार्य के लिए आप ने आने का कष्ट उठाया उसके लिए मुझे ही बुला भेजना उचित था। नीति भी यही है कि काम पडने पर स्वामी सेवक को बुला भेजे। यदि सेवक को सम्मान देना ही हो तो प्रीति के साथ बुलवा ले। भावार्थ यह कि आपने आने का कष्ट क्यो उठाया। मुझे ही बुलवा भेजते। आपका आना मेरे लिए तो सौभाग्य का विषय है। पर आपको कष्ट हुआ।

प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु यहु गेहू ॥
आयसु होइ सो करउ गोसाई। सेवकु लहइ स्वामि सेवकाई ॥४॥

अर्थ प्रभु ने प्रभुता छोडकर मुझ पर स्नेह किया। आज यह घर पवित्र हुआ। जो आज्ञा हो सो मै करूँ। सेवक को स्वामी की सेवा का लाभ हो।

व्याख्या इस सामान्य नियम के अतिक्रमण मे अनीति की गन्ध नही है। केवल अपनी प्रभुता पर ध्यान न देकर सेवक पर स्नेह करना है। ब्याह हुए बारह वर्ष हुआ। इस बीच मे गुरुजी का घर पर आगमन नही हुआ। इसलिए कहते है कि आज यह घर पवित्र हुआ।

आज्ञा होने से पहिले ही पूछना सेवकाई के लिए उत्सुकता है। आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सेवक के लिए स्वामी की सेवा का अवसर मिलना बडे भाग्य का विषय है। तपस्वी लोग जल्दी किसी से सेवा नही लेते। उनके यहाँ स्वय दासास्तपस्विन प्रचलित है तपस्वी स्वय दास है। अपना काम स्वय कर लते है। दूसरे से काम नही लेते। यदि काम लें तो उसका सौभाग्य है। अत सेवकाई के लाभ के लिए रामजी की प्रार्थना गुरुचरणो मे है।

दो सुनि सनेह साने वचन, मुनि रघुवरहिं प्रसस ।
राम कस न तुम्ह कहहु अस, हस वस अवतस ॥९॥

अर्थ स्नेह से सने हुए वचनो को सुनकर मुनिजी ने रामजी की प्रशसा की कि राम तुम ऐसा क्यो न कहो । तुम सूर्यवंश के शिरोभूषण हो ।

व्याख्या श्रीरामजी के स्नेह सने हुए वचन सुनकर मुनिजी प्रसन्न हो गये और उनकी प्रशसा करते हुए कहने लगे कि तुम सूर्यकुल के शिरोभूषण हो । अत जो वचन तुमने कहे । वह तुम्हारे स्वरूप के अनुकूल हैं । सूर्यवश मे स्वभाव से ही गुरुभक्ति देखी जाती है । महाराज दशरथ कहते हैं मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजें । सबु पायउँ रज पावनि पूजें । भरतजी कहेगे दलि दुख सजइ सकल कल्याना । अस असीस राउरि जग जाना ।

बरनि राम गुन सीलु सुभाऊ । बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ ॥
भूप सजेउ अभिषेक समाजू । चाहत देन तुम्हहि जुवराजू ॥१॥

अर्थ रामजी के गुण शील और स्वभाव का वर्णन करके प्रेम से पुलकित होकर मुनिराज ने कहा कि महाराज ने अभिषेक की तैयारी कर ली है और तुम्हे युवराज पद देना चाहते हैं ।

व्याख्या रामजी के गुणो का वर्णन किया कि तुम सब विधि से सब लायक हो । शील स्वभाव का वर्णन किया कि तुम सबको प्राणप्रिय हो । सब विप्रमण्डलो तुम्हारे ऊपर छोह करती है । इस कुल में ऐसे ही युवराज की आवश्यकता है । इस भाँति प्रशसा करके मुख्य समाचार कहने के समय मुनिराज प्रेम से पुलकित हो उठे । कहने लगे राजा अब राज्यभार को वहन करना नही चाहते । अत राज्याभिषेक की सब तैयारी कर ली है और तुम्हे युवराज बनाना चाहते हैं । तुम्ही चारो भाइयो मे ज्येष्ठ हो । ज्येष्ठ गुणो से युक्त हो । अत राजा का तुम्हारे विषय म ऐसा ही निर्णय उपयुक्त है ।

राम करहु सब सजम आजू । जौ विधि कुसल निबाहइ काजू ॥
गुरु सिख देइ राय पहि गयेऊ । राम हृदयँ अस बिसमउ भयेऊ ॥२॥

अर्थ रामजी आज तुम सब सयम करो । यदि विधाता कुशल पूर्वक सब काम निबाह दे । गुरुजी तो रामजी को शिक्षा देकर चल गये । पर रामजी के हृदय म इस प्रकार से आश्चर्य हुआ ।

व्याख्या राज्याभिषेक के एक दिन पूर्व जिसका अभिषेक होता है । उसे सयम से रहने का विधान है । वह ब्रह्मचर्य से रहे शय्या का त्याग करे इत्यादि । गुरुजी ने उन सब सयमो के अनुष्ठान का रामजी को उपदेश दिया । आज सयम से रहो कहने का तात्पर्य ही यह है कि कल तुम्हारा अभिषेक होनेवाला है । परन्तु विधि की ओर से सकुशल कार्य के सम्पन्न होने मे सन्देह है । यह बात भी गुरुजी ने

स्पष्ट कह दी। देवताओ का रहस्य है। अत महाराज को केवल इङ्गित से जनाया। यथा सुदिनु सुमगलु तबहिं जब राम होहिं युवराज। पर रामजी से क्या परदा है। अत स्पष्ट कहते हैं। और भी जो बाते रक्षा सम्बन्धी ऐसे अवसर पर उपयुक्त होती हैं। उनकी भी शिक्षा देकर गुरुजी चले गये। पर रामजी को यह समाचार सुनकर आश्चर्य हुआ। उन्होने कभी इस बात की ओर ध्यान भी नही दिया था कि जेठे होने के कारण राज्य के वे ही अधिकारी हैं। लोकसीमा के उल्लघन करनेवाली वस्तु से जो चित्त म विकार उत्पन्न होता है उसे विस्मय कहते हैं। यथा विविधेषु पदार्थेषु लोकसीमातिवर्तिषु। विस्फारश्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृत ।

जनमे एक सग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई ॥
करनवेध उपवीत बिआहा। सग सग सब भये उछाहा ॥३॥

अर्थ सब भाई एक साथ ही पैदा हुए। एक साथ ही लडकपन से खाते सोते खेलते आये। कर्णवेध जनेव और व्याह का उत्सव सब एक ही साथ हुआ।

व्याख्या विस्मय का कारण कहते हैं कि सब भाइयो का जन्म भी साथ ही साथ हुआ। एक के जन्म से दूसरे के जन्म मे कुछ घण्टो का ही भेद पडा। भोजन भी सबका साथ होता रहा। यथा अनुज सखा सँग भोजन करही। सोते भी साथ ही साथ रहे। यथा आज्ञा पुनि पुनि भाइन्ह दीन्ही। निज निज सेज सयन तिन्ह कीन्ही। लडकपन मे खेल भी साथ ही साथ होता रहा। यथा जिन्ह बीथिन्ह बिहरैं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई। तत्पश्चात् जितने सस्कार और उत्सव हुए। यथा कर्णवेध उपवीत और विवाह सो सब साथ ही साथ हुए। सब कामो मे तो भाइयो का साथ रहा। अब क्या अभिषेक मे उनका साथ न होगा? अभिषेक केवल मेरा ही होगा? यही विस्मय है।

बिमल बस यहु अनुचित एकू। बधु बिहाइ बडेहि अभिषेकू ॥
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन कै कुटिलाई ॥४॥

अर्थ इस निर्मल वश मे यही एक अनुचित बात है कि भाइयो को छोडकर बडे का ही अभिषेक होता है। प्रभु का प्रेम के सहित सुन्दर पछतावा भक्त के मन की कुटिलता का हरण करे।

व्याख्या पिताजी की इच्छा है। गुरुजी आकर कह गये और रघुकुल की रीति भी यही है। अत स्वीकार करने के सिवा उपायान्तर नही है। अत प्रभु प्रेम के साथ पछता रहे हैं। इस ध्यान की श्रीआचार्यपाद फलश्रुति कहते है कि इस पछताने से भक्तो के मन की कुटिलता नष्ट हो। स्वार्थान्धता ही सर्व कुटिलताओ का कारण है। अपने इष्टदेव के स्वार्थ निरपेक्ष विचार मे स्थित होने के ध्यान से भक्त के हृदय म भी स्वार्थ निरपेक्ष विचार करने का सामर्थ्य उत्पन्न हो। इसलिए कवि प्रार्थना करते हैं कि हरउ भगत मन कै कुटिलाई। इस पछतावे से रामोपासको को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। प्रभु की सरलता का अनुगमन सेवक का धर्म है। प्रभ

के सभी उपासकों में भाई भाई का नाता है। अपना उत्कर्ष होने पर औरों के लिए दुःखी न होना भी भक्तों के लिए कुटिलता है। अतः कवि प्रार्थना करते हैं कि प्रभु के इस प्रकार का पछतावा भक्त के मन की कुटिलता हरण करे।

दो० तेहि अवसर आए लखन, मगन प्रेम आनद।
सनमाने प्रिय बचन कहि, रघुकुल कैरव चद ॥१०॥

अर्थ उसी अवसर पर लक्ष्मणजी प्रेमानन्द में मग्न हुए आये और रघुकुल-रूपी कुमुद के चन्द्रमा रामजी ने उनका सम्मान प्रिय वचन कहकर किया।

व्याख्या उसी पछताने के अवसर पर प्रेमानन्द में मग्न लक्ष्मणजी आये। आचार्यपाद दो के लिए मग्न शब्द का प्रयोग करते हैं एक लक्ष्मणजी के लिए और दूसरा कौसल्याजी के लिए। यथा आनद मगन राम महतारी। भाइयों के साथ अभिषेक न होने का रामजी को पछितावा है और उनका अभिषेक सुनकर भाई लक्ष्मण को आनन्द है। लक्ष्मणजी की ऐसी दशा देखकर रघुकुलकैरवचन्द ने उनका सम्मान प्रिय वचन द्वारा किया। यथा कर्त्ता भोक्ता त्वमेव हि। कि कर्त्ता भोक्ता तो लक्ष्मण! तुम ही होगे। अभिषेक भले हो मेरा हो ले। जिस राज्य के कर्तृत्व भोक्तृत्व की मेरी प्राप्ति पर तुम्हें इतनी प्रसन्नता है। वह कर्तृत्व भोक्तृत्व तुम्हारा ही हो।

बाजहि बाजन बिबिध बिधाना। पुर प्रमोदु नहि जाइ बखाना ॥
भरत आगमनु सकल मनावहि। आवहु बेगि नयन फलु पावहि ॥१॥

अर्थ अनेक प्रकार के बाजे बज रहे हैं। पुर का आनन्द बखाना नहीं जाता। सब भरतजी का आना मना रहे हैं कि जल्द आवें और नेत्रों का फल पावें।

व्याख्या राम राज अभिषेकु सुनि, हिय हरषे नर नारि। लगे सुमगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारि। यहाँ से प्रसग छूटा है। उसी का फिर से उठाते हैं कि अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। पहिले यमघण्टवाद्य राज्याभिषेकवाद्य आदि अनेक प्रकार के बाजे थे। जिनका नाम शास्त्रों में सुना जाता है। अब उनका चलन नहीं है। इष्टभोगजन्य हर्ष को प्रमोद कहते हैं। सो इस समय पुर में ऐसा प्रमोद है कि वर्णन नहीं किया जा सकता। भरतजी पर सभी प्रजा का प्रेम है। सबकी इच्छा है कि भरतजी इस उत्सव में अवश्य सम्मिलित हों। परन्तु वे कैकय देश में हैं। इतनी जल्दी बुलाये नहीं जा सकते। अतः उनके आने के लिए देवताओं से प्रार्थना करते हैं कि यदि वे आजाँय तो उन्हें भी नेत्रों के सफल करने का अवसर मिल जाय।

हाट बाट घर गली अथाई। कहहि परसपर लोग लोगाई ॥
कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा ॥२॥

अर्थ बाजार में, घरों में, गलियों में और बैठकों में नर और नारियाँ आपस

सुखारी। रामचंद मुखचदु निहारी। अत· पुर के लोग उस चन्द्र की वढोत्तरी चाहते हैं। राजतिलक उस बढोत्तरी की सीमा है। अत बधावा उसी वढोत्तरी की द्योतक चाँदनी है। वह सबको सुखद हो रही है। पर कुचाली देवताओ को नही सोहाती जिम भाँति चाँदनी सबको सोहाती है। पर चोर को नही सोहाती। यहाँ देवताओ की उपमा चोर से दी गयी है। चोर स्वय निर्धन है। लोगो के धन को हरण करके स्वय धनी होना चाहते हैं। इसी भाँति देवता राजतिलक मे विघ्न उपस्थित करके सबके आनन्द का अपहरण कर स्वय आनन्दित होना चाहते है। उनके यहाँ आनन्द का अभाव है। उन्हे रावण के भय से न भूख लगती न नीद आती है। यथा · जाके डर सुर असुर डराही। निसि न नीद दिन अन्न न खाही। दुखियो को स्वभाव से ही दूसरो का बधावा नही सोहाता। सो अवध के बधावा से देवताओ के नाको दम है। वहाँ नित्य नवमंगल मोद वधावा होता रहता है और इस समय तो · बाज गहागह अवध बधावा। भारी वधावा वज रहा है। यदि चन्द्र हटें तो चाँदनी जाय। यदि रामजी अयोध्या मे न रहे तो बधावा बन्द हो।

अत विघ्न की रचना की चिन्ता मे है। पर बुद्धि काम नही देती। अवध मे कोई ऐसा नही जिसे रामजी का तिलक न सोहाता हो। फिर विघ्न हो तो कैसे हो ? अत विघ्न के लिए सरस्वती का आवाहन करके अपने कार्य के लिए उनके चरणो पर गिर रहे है। पर वे राजी नही होती। अतः वार-वार चरणो पर गिरते हैं।

दो. विपति हमारि विलोकि वडि, मातु करिअ सोइ आजु।
रामु जाहिं वन राजु तजि, होइ सकल सुर काजु ॥११॥

अर्थ हमारी वडी भारी विपत्ति को देखकर माता! आप वही करिये। जिसमे रामजी राज्य छोडकर वन मे जाँय और सब देवताओ का कार्य सिद्ध हो।

व्याख्या देवता लोग सरस्वतीजी से कहते है कि आप हमारी माता हैं। आप अपने बच्चो की भारी विपत्ति को देखिये। १ हम लोग उजड गये। यथा वेद विरुद्ध महीसुर साधु ससोक कियो सुरलोक उजारयो। २ हम लोगो को भोजन का ठिकाना नही। यथा · द्विज भोजन मख होम सराधा। सबकै जाइ करहु तुम बाधा। छुधा छीन बलहीन सुर, सहजेहिं मिलिहहिं आइ। ३ दिन रात हम लोग सभीत रहते हैं। यथा सुरपुर नितहि परावन होई। ४ इज्जत लूटी जाती है। यथा : देव जच्छ गधर्व नर किन्नर नाग कुमारि। जीति बरी निज बाहुबल बहु सुन्दर वर नारि। ५ तिस पर हम लोगो को नित्य हाजिरी वजानी पडती है। यथा : कर जोरे सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता। ६ हम लोग बन्दर भालू बनकर वनो मे रामजी के आने की बाट जोह रहे हैं। यथा · गिरि तरु नख आयुध धर धीरा। हरि मारग चितवहिं मति धीरा। अब इससे बडी विपत्ति और क्या होगी। आप माता हैं। अपने बच्चो के लिए माता क्या नही करती ? सो आज ऐसा उपाय कीजिये कि रामजी राज्य छोडकर वन

चले जाँय। आज कहने का भाव यह कि कल तो काम ही विगड जायगा। जहाँ राज्य पर वैठे तहाँ राजकाज मे लग जावेंगे तो हमारा काम विछड जायगा। आपके सब बच्चो का कल्याण रामजी के वन जाने मे है।

सुनि सुर विनय ठाढि पछिताती। भइउँ सरोज विपिन हिम राती ॥
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी। मातु तोहि नहि थोरिउ खोरी ॥१॥

अर्थ देवताओ का विनय सुनकर खडी होकर पछताती हैं कि मैं कमल के वन के लिए पाल की रात्रि वन रही हूँ। देखकर देवता लोग फिर निहोरा करके कहते हैं कि माता! तुझे थोडा सा भी दोष नही है।

व्याख्या देवताओ का विनय सुना। वात गले उतर गयी। पर पछतावा है कि कमल वन की भाँति फूले हुए इस अवध नगर के सहार के लिए मैं पाले की रात कैसे वनूँ। भाव यह कि रामजी के विरुद्ध सुनते ही चली नही गयी। खडे होकर पछताने लगी कि मुझ वडा अपयश होगा। दोष लगेगा कि हरा भरा वाग सरस्वती ने उजाड दिया।

सरस्वती ब्रह्मलोक से देवताओ के आवाहन से देवलोक म आयी हैं। अभी वैठी भी नही। खडे ही खडे देवताओ का विनय सुनकर पछता रही हैं। इस प्रसङ्ग म दो का पछतावा कहा रामजी का और सरस्वतीजी का। रामजी के पछतावे से ही सरस्वतीजी तथा वृहस्पतिजी ने उनका रुख लख लिया। यथा तब कछु कीन्ह राम रुख जानी। फिर भी विघ्नाचरण मे पछतावा है। आज और कल के वीच मे रात्रि है। सरस्वती पछताती हैं कि मुझे हिमरात्रि वनना पडेगा। जिसमे कमलकुल का सहार हो जाय। अत कहती हैं भइउँ सरोज विपिन हिम राती।

सरस्वतीजी को असामञ्जस्य मे देखकर वृहस्पतिजी ने निहोरा करके कहा कि आप इस कार्य मे दोष देख रहा है। सो इसम आपका थोडा भी दोष नही है। कारण देते हैं

विसमय हरष रहित रघुराऊ। तुम्ह जानहु सब रामु प्रभाऊ ॥
जीव करम वस सुख दुख भागी। जाइअ अवध देव हित लागी ॥२॥

अर्थ रामजी तो विस्मय हर्ष से रहित हैं। आप तो उनके प्रभाव को जानती हैं। जीव कर्म के वश सुख दु ख भोगा करते हैं। अत देवताओ के भले के लिए आप अवध जाँय।

व्याख्या और लोग रामजी के प्रभाव को नही जानते। पर आप तो जानती हैं कि रामजी क्या हैं। परवस जीव स्ववस भगवता। रामजी स्वतन्त्र हैं। उन्हे कर्म शुभाशुभ की वाधा नही। सुख दु ख रूपी द्वन्द्व की उन तक पहुँच नही। दु ख सुख तो अभिमानी को होता है। अत रामजी के लिए चिन्ता का कोई कारण नही है। आप जो कुछ करेंगी वह देवताओ के हित के लिए करेंगी। यदि देवहित करने मे कुछ जीवो को दु ख हो तो वह नगण्य है। क्योकि उनके

प्रारब्ध मे जो सुख दुःख है उसकी मात्रा के घटाने बढाने मे कोई समर्थ नही है। उतना उन्हे मिलकर ही रहेगा। अत आपके दोष का तो यहाँ प्रसङ्ग ही नही है। आप देवताओ के कल्याण के लिए अवध पधारें यहाँ हर्ष के विरोध मे आने से विस्मय का अर्थ शोक करना पडेगा।

बार बार गहि चरन सँकोची। चली बिचारि बिबिध [1]मति पोची॥
ऊँच निवासु नीचि करतूती। देखि न सकहि पराइ बिभूती॥३॥

अर्थ · देवताओ ने बार बार चरण पकडकर सङ्कोच मे डाला। तब वह देवताओ की बुद्धि भली नही ऐसा विचार करके चली। इनका निवास तो ऊँचा है। पर करतूति इनकी नीच है। ये दूसरे का ऐश्वर्य नही देख सकते।

व्याख्या जो जो बातें देवताओ ने कही उनकी असमीचीनता को जानते हुए भी सरस्वती पुत्रो के सङ्कोच म आगयी। और भी स्वार्थ के विचार उसके मन मे आये। जिनका वर्णन आगे किया जायगा। अत देवताओ के कार्य के लिए चल पडी।

देवताओ का निवास ऊँचा है। स्वर्ग मे रहते हैं। यह लोक तो भूलोक है। इसके ऊपर अन्तरिक्षलोक है। उसके भी ऊपर स्वर्गलोक है। देवता लोग वहाँ रहते हैं। इसलिए ऊँच निवास कहती हैं। पर इनकी करणी नीच है। स्वार्थ से भरी होती है। यथा . आये देव सदा स्वारथी। जब रामावतार हो गया तो ईश्वर सत्य सङ्कल्प है। आज नही तो कल रावणवध करेंगे ही। कितने चतुर्युगियो से उसके अत्याचार को सह रहे है। थोडा और सह लेते। थोडा धैर्य रखते। जो अवतीर्ण जिस कार्य के लिए हुआ है उसको भी तो उस कार्य की चिन्ता है। वह देवताओ को उचित से अधिक कष्ट पाते कभी न देख सकेगा। अवधवासियो के रग मे भग डालने का कोई कारण नही है। कवि कहते है कि बात यह है कि अवधराज सुरराज सिहाही। दसरथ धन सुनि धनद लजाही। सो देवता लोग इस विभूति को न देख सके। उनके हृदय म अवध का आनन्द देखकर डाह पैदा हुआ कि हम तो स्वर्ग मे रहकर इतना दुःख पावें और ये मर्त्यलोक मे रहकर इतना आनन्द लें।

आगिल काजु बिचारि बहोरी। करिहहि चाह कुसल कबि मोरी॥
हरषि हृदय दसरथ पुर आई। जनु ग्रहदसा दुसह दुखदाई॥४॥

अर्थ फिर भविष्य के कार्य को विचारा कि कुशल कवि मेरी चाह करेंगे। हर्षित हृदय से दशरथपुर मे दुसह दुखदायी ग्रहदशा की भाँति आयी।

---

१ राजापुर की प्रति मे विविध पाठ है। ऐसा मानने से पोची विविध मत विचार चली। इस प्रकार अन्वय करना होगा। अर्थात् अपने स्वार्थ का भी विचार किया करिहहि चाह कुसल कवि मोरी अत पोची कहते हैं।

व्याख्या इस सरस्वती ने अपने भविष्य के स्वार्थ को विचारा कि रामचरित वर्णन करनेवाले कुशल कवि मेरी चाह करेंगे। रामचरित वर्णन के लिए मेरा स्मरण वन्दन करेंगे। यथा कपिसेन सग सहारि निसिचर राम सीतहिं आनि हैं। त्रैलोक पावन सुजस सुर मुनि नारदादि बखानि हैं। अत हर्षित हृदय से अवध मे आयी। उसका पछतावा नाम मात्र के लिए था। सरस्वती का आना मङ्गलकारक है। सो अवधवासियो के लिए तो इस समय दुखदायी ग्रहदशा साढे साती से भी बढी हुई बनकर आयी।

सब बिधि सब पुरलोग सुखारी। रामचद मुखचदु निहारी। अत प्रभु की ग्रहदशा ही सबकी ग्रहदशा है। सो बुध की महादशा म केतु के साथ शुक्र की अन्तर्दशा रूप से आयी। श्रीरामजी का जन्म वृहस्पति की महादशा मे हुआ। चारवर्ष तक वही दशा रही। तत्पश्चात् शनैश्चर की महादशा उनीस वर्ष के लिए आयी। चौबीसवें वर्ष मे बुध की महादशा लगी। सत्ताईसवें म शुक्र की अन्तर्दशा आगयी। शुक्र केतु के साथ थे। इसलिए यह दु खदायिनी दशा थी। इसने पदच्युत करके ही माना।

दो नामु मथरा मदमति, चेरी कैकै केरि।
अजस पेटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि ॥१२॥

अर्थ राजा कैकय की एक मन्दमति दासी मन्थरा नामी थी। उसी को अयश की पटारी बनाकर सरस्वती उसकी बुद्धि को उलटकर चली गईं।

व्याख्या यह अवध की नही थी। कैकय देश से आयी थी। अयोध्यावासियो पर सरस्वती की कला नही चली। यह स्वभाव से मन्दमति था। अत इसपर कला चल गयी। इसकी बुद्धि पलटा खा गयी। सरस्वती को कोई दोष न दे। इसलिए उसे अयश की पेटारी बनाया। वह बेचारी भी यह नही चाहती थी। अत उसकी बुद्धि का पलटना कह रहे हैं। वह मन्दमति से तीव्र बुद्धि हो गयी। पर साधु बुद्धि के स्थान पर दुष्ट बुद्धि हो गयी। उसकी बुद्धि पलटकर सरस्वती चली गयी। समझ लिया कि अब यह राजतिलक न होने देगी। सरस्वती बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी हैं। बुद्धि को फिरा देना इनका काम है। यथा सारद प्रेरि तासु मति फेरी। माँगेउ नीद मास पट केरी।

दीख मंथरा नगरु बनावा। मजुल मगल बाज बधावा ॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। राम तिलकु सुनि भा उर दाहू ॥१॥

अर्थ मन्थरा ने देखा कि नगर सजा हुआ है और सुन्दर मङ्गल के बधावे बज रहे हैं। लोगो से पूछा कि क्या उत्सव है। रामजी का तिलक सुनकर जी जल उठा।

व्याख्या सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा ॥

एहि अवसर मगलु परम सुनि रहसउ रनिवास।
सोभत लखि बिधु बढत जनु बारिधि बीचि बिलासु॥
प्रथम जाइ जिन बचन सुनाए। भूपन बसन भूरि तिन्ह पाए॥

उसी अवसर का यह प्रसङ्ग है। परन्तु वहाँ उल्लेख करने से दूसरी कथा प्रारम्भ हो जाती। वसिष्ठजी का रामजी को शिक्षा देने तथा देवताओं का सरस्वतीजी से विनय करने और सरस्वती के मन्थरा की वुद्धि पलटने का प्रसङ्ग छूट जाता। अत वहाँ उल्लेख नही किया। कैकेयीजी के महल मे पहिले पहल खबर सुनानेवाली का हाल लिखते है। बात यह हुई कि अति शीघ्रता के कारण महाराज को जाकर रनिवास मे इस शुभ समाचार के प्रकाश करने का अवसर ही नही मिला। रनिवास मे समाचार पहुँचने के पहिल ही नगर मे समाचार फैल गया। सभी महल की दासियो ने इस भाँति लोगो से पूछकर रामजी के तिलक का समाचार पाया था। पर उनको सुनकर हर्ष हुआ। दौडी हुई महारानियो के यहाँ शुभ समाचार देने गयी। इसी भाँति मन्थरा ने भी लोगो से नगर का साज समाज और बधावा बजते देखकर पूछा। पर रामजी का अभिषेक सुनकर इसे हर्ष न हुआ। इसका जी जल उठा। क्योकि इसकी वुद्धि को सरस्वतीजी ने फेर दिया था। इसे वह घटना याद आयी जब कि रामजी ने लडकपन मे इसकी टाँग पकडकर खैची थी। इस बात का उल्लेख अग्निपुराण म मिलता है। उसी वैर से इसने कैकेयी को उलटा समझाया।

करै बिचारु कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाजु कवन बिधि राती॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गँव तकै लेउँ केहि भाँती॥२॥

अर्थ वह कुबुद्धि और नीच जाति विचार करने लगी कि किस उपाय स आज रात को ही यह काम बिगड जाय। जैसे मधुकोप शहद का छत्ता देखकर कुटिल किराती यह मौका देखने लगता है कि इसी रात को यह शहद कैसे ले ले।

व्याख्या सरस्वती ने वुद्धि फेर दी है। इसलिए कुबुद्धि कहा। राजा कैकय की चेरी है कैकेयी के डाला के साथ आयी है। इसलिए कुजाति कहा। इस नीच वुद्धि और नीच जाति को अयोध्या का यह आनन्द देखकर जलन पैदा हुई। यह तरकीब सोचने लगी कि इस आनन्द का अपहरण मै आज ही रात को कैस कर लूँ। क्योकि कल तो यह आनन्द रामजी के हाथ लग ही जायगा। रात बीत जाने पर फिर मेरा किया कुछ नही हो सकता।

जिस भाँति मधु का छत्ता देखकर कुटिल किराती के मन मे यह बात उठती है कि आज रात को ही इस मधु के छत्ते को किस उपाय से अपहरण कर लूँ। क्याकि रात के समय मधुमक्षिकाआ को दिखाई नही पडता। व विश्राम करतो हैं। यही समय मधु लेने का है। सवेरा होते ही मक्षिकाआ को सूझने लगेगा। वे

जाग उठेगी मधुकोष का अपहरण करनेवाले के शरीर मे मक्षिकाएँ चिपट जाती हैं और उसका प्राण बचना कठिन व्यापार हो उठता है। अत वह रात को ही मधुकोष का अपहरण करती है। इस रूपक मे अवधवासियो की उपमा मधु मक्षिकाओ से है। उनके आनन्द की उपमा मधुकोष से और मन्थरा की उपमा कुटिल किराती से दी गयी है। कठिनता यह आपडी है कि उजेली रात है। यथा ' सोहत जन बिधु बढत लखि वारिधि बीचि विलासु। मक्षिकाएँ एकदम निद्रित नही हैं। यथा सकल कहहिं कब होइहि काली। अत मौका तजबीज रही है। मन मे विधि बैठा रही है कि मैं तो चेरी छोडकर रानी होने की नही हूँ। मेरा सम्पर्क कैयेयी से है। यह यदि मेरे कहने से भरत को राज्य और राम को वनवास माँगे तो राज्य मिलने पर भरत और कैकेयी दोनो कृतज्ञ होगे। मै उनकी आँख की पुतली बनकर रहूँगी। इस भाँति राज्य पर मेरी ही आज्ञा चलेगी। अब कैकेयी मेरा कहना कैसे माने ? इत्यादिक विचार मे लगना ही यहाँ गँव ताकना है।

सवेरा होते ही अभिषेकोत्सव प्रारम्भ हो जायगा। फिर कौन किसकी सुनता है। अत विधि कोई ऐसी होनी चाहिए जिससे रात मे ही काम बिगड जाय।

भरत मातु पहिं गइ बिलखानी। का अनमनि हसि कह हँसि रानी ॥
ऊतरु देइ न लेइ उसासू। नारि चरित करि ढारइ आँसू ॥३॥

अर्थ रोना चेहरा बनाकर भरतजी की माता के पास गयी। रानी ने हँसकर पूछा कि तू अनमनी क्यो हो रही है। उत्तर नही देती। लम्बी लम्बी साँस लेती है और स्त्रीचरित्र करके आँसू गिराती है।

व्याख्या विचार करके मनमे तरकीब बैठा ली। रोना चेहरा बना लिया। जिसमे रानी कारण पूछें और उसे कहने का अवसर मिले। बिना पूछे कहने से बात न बैठेगी। तब भरत की माता के पास गयी। कहने का भाव यह है कि भरतजी की माता हैं। कम से कम उनकी अनुपस्थिति मे पुत्र के हितकी रक्षा के लिए अवश्य तैयार हो जायगी। रानी उसका रोना चेहरा देखकर हँस पडी। मन्द बुद्धि से सभी हँसी करते हैं। अत उपाय ओछा पडा। अब बातको गहरो बनाने के लिए रानी के पूछने पर उत्तर नही देती। हृदय मे शोक न रहने पर भी पूरा शोक का रूपक खडा कर देना नारिचरित्र है। सो उसने स्त्रीचरित्र का आश्रयण किया। लम्बी लम्बी श्वास लने लगी। आँसू गिराने लगी। जिसमे रानी समझ कि कोई गम्भीर समस्या है।

हँसि कह रानि गालु बड तोरे। दीन्हि लखन सिख अस मन मोरे ॥
तबहुं न बोल चेरि बडि पापिनि। छाडइ स्वास कारि जनु सापिनि ॥४॥

अर्थ रानी ने हँसकर कहा कि तू बडी मुहजोर है। मेरे मन मे तो यह बात

आती है कि लक्ष्मण ने तुझे डाँटा है। फिर भी नही बोलती। बड़ी पापिनी चेरी है। काली सर्पिणी की भाँति श्वास लेने लगी।

व्याख्या : फिर भी बात न जमी। रानी ने यही समझा कि कोई अदनी सी बात है। यह मन्दमति तो है ही। मुँहजोर भी है। लक्ष्मण ने डांटा फटकारा होगा। रामजी डाँटेगे ही नही। दूसरे की किसकी ताकत है कि मेरी दासी को डाँट सके। पर मन्थरा साधारण पापिनी नही है। कपट को हृदय मे बिठाना जानती है। अतः महारानी की उत्सुकता बढाने के लिए फिर न बोली। उच्छ्वास और आँसू बहाने से काम चलते न देखकर काली सर्पिणी की फूत्कार की भाँति श्वास लेने लगी। इस मुद्रा ने काम कर दिया। रानी की बुद्धि मे क्षोभ हुआ। वह डर गयी कि कोई भारी विपत्ति आयी है इससे यह ऐसा श्वास ले रही है और वह विपत्ति मेरे पर आयी है। इसलिए यह कहने का साहस नही कर रही है।

दो. सभय रानि कह कहसि किन, कुसल रामु महिपालु।
लखनु भरतु रिपुदवनु सुनि, भा कुबरी उर सालु ॥१३॥

अर्थ भयभीत होकर रानी ने कहा कि कहती क्यो नही? रामजी, महाराज, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न कुशल तो हैं। यह सुनकर कुबरी के कलेजे मे साल पड गयी।

व्याख्या : पति पुत्र से बढकर स्त्री के लिए कोई नही है। अत उन पर आँच आना ही स्त्री के लिए सच्ची विपत्ति है। दो बार पूछने पर नही बोली। अत रानी कहती है कि तू बतलाती क्यो नही? कुशल पूछने मे जो सबसे प्रिय होता है। उसी का कुशल स्वभाव से ही मनुष्य पहिले पूछता है। सो रानी ने सबसे पहिले रामजी की कुशल पूछी। महाराज की कुशल उसके बाद पूछती हैं। लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न की कुशल तो उसके भी बाद पूछती हैं। यह सुनकर कुबरी के कलेजे मे मानो साल पड गया। जिसके कलेजे मे साल पड जाता है उससे साँस लेते नही बनता है और वह टेढा हो जाता है। उससे सीधे खडे होते नही बनता। कुबरी तो भरत की माँ जानकर आयी थी। पर रानी तो रामजी की माँ की भाँति बोली। उसने पहिले रामजी की कुशल पूछी। भरत की कुशल तो लक्ष्मण के भी बाद पूछती हैं। यह लक्षण तो काम बनने का नही है। मन्थरा कुबरी तो थी ही। यह कलेजे मे साल पडनेवाली वाणी सुनकर और भी टेढी हो गयी।

कत सिख देइ हमहि कोउ माई। गालु करबकेहि कर बलु पाई ॥
रामहि छाडि कुसल केहि आजू। जिन्हहि जनेसु देइ जुबराजू ॥१॥

अर्थ : माई! मुझे कोई क्या सीख देगा? मैं किसके बल पर मुहजोरी कर सकती हूँ? राम को छोडकर आज किसकी कुशल है। जिसे राजा युवराज पद दे रहे हैं।

व्याख्या : मैंने किसी का क्या बिगाडा है और मै किस गिनती मे हूँ कि

मुझे कोई सीख देगा। सीख का भय तो उसे रहता है। जो किसी गिनती में हो। भाव यह कि सीख का भय तुम्हे है। मुझे नही है। यह ' दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें का उत्तर है। अब गाल बड तोरे का उत्तर देती है कि जिस बल से मैं मुहजोरी करती रही वही बल आज जाता रहा। मुझे तो तुम्हारा बल था। सो तुम्हारा ही बल नही रह गया।

रामजी की कुशल पहिले पूछी थी। उसपर कहती हैं कि उन्हे छोडकर आज कुशल किसकी है। भाव यह कि भरत की कुशल नही है। क्योकि राजा तो युवराजपद रामजी को दे रहे है स्पष्ट कहने मे भय है। इसलिए लक्षणा व्यञ्जना से काम लेती है। जो युवराज हो उसी की कुशल है। महाराज जनेश हैं। जिसे चाहे उसे युवराज बनावें। उन्हे रोकनेवाला कौन है। सो रामको चाहते है भरत को नही।

भयेउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिन॥
देखहु कस न जाइ सब सोभा। जो अवलोकि मोर मनु छोभा॥२॥

अर्थ : विधाता कौसल्या के अत्यन्त अनुकूल हो गये हैं। जिनको देखकर हृदय से अभिमान दूर हो जाता है। आप जाकर सब शोभा देखिये। जिसे देखकर मेरा मन चञ्चल हो उठा है।

व्याख्या : विधाता तो पहिले से ही कौसल्या के दाहिने है। सब सौत : सपत्नियाँ उनकी सेवा करती है। अब तो अत्यन्त दाहिने हुए हैं। तुम्हे भी सेवा करनी पडेगी। राजमाता कौसल्या होगी। तुम्हारे भाग्य से राजमाता होने का सुख उठा चाहता है। आज कौसल्या के देखने से सपत्नियो को हृदय मे सोहाग का गर्व न रह जायगा।

मेरे मन मे क्षोभ नही होता। इससे उछल्ले लोग समझते हैं कि यह मलिमन्द है। सो आज की शोभा देखकर मेरे मन मे क्षोभ हो गया। तुम्हारी चेरी होने से मुझे क्षोभ हुआ कि स्वामिनी का अभिमान टूटा तो मेरा भी टूट गया। यह का अनमनी हँसि का उत्तर है।

पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारे। जानति हहु बस नाहु हमारे॥
नीद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई॥३॥

अर्थ : बेटा विदेश मे है। तुम्हे उसकी चिन्ता नही है। समझती हो कि पति मेरे वश मे हैं। तुम्हे तो नीद और तोशक तकिया बडा प्रिय है। राजा की कपटचतुरता तो तुम्हे सूझती नही।

व्याख्या : आज तुम्हारा बेटा घर होता तो अपने लिए कुछ करता। जिसका बेटा घर में है उसे तो अपने बेटे की चिन्ता है। तुम जानती हो कि महाराज तुम्हारे वश मे है। पर वे तुम्हारे वश मे नही है। तुम्हे अपने बेटे की चिन्ता होनी चाहिए थी जो परदेश मे है। पर हमे चिन्ता है। तुम्हे नही है। तुम तो निश्चिन्त

होकर सोना जानती हो। तुम्हे नीद प्रिय है और तोशक तकिया प्रिय है। तुम राजा की प्यारी हो। तुम्हारे बेटे के लिए यह सामान होना चाहता था। पर राजा को प्यारी तो कौसल्या है। तुम पर प्यार तो केवल दिखाने के लिए है। तुम उस कपटचतुराई को लख नही सकती।

सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी। झुकी[१] रानि अब रहु अरगानी॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढावौ तोरी॥४॥

अर्थ · प्रिय वचन सुनकर और उसे मलिन मन जानकर रानी बिगड उठी कि बस अब चुप रह। रे घरफोरी! अब यदि फिर तूने ऐसी बात कही तो पकडकर तेरी जिह्वा खिचवा लूँगी।

व्याख्या सारग्राहिणी बुद्धि भगवती कैकेयी की थी। तुरन्त समझ गयी कि यह रामजी के राजतिलक का प्रिय समाचार दे रही है। पर इसका मन मलिन है। अत ऐसी प्रिय घटना को इस दृष्टि से देख रही है। ईर्ष्या द्वेपयुक्त नीचबुद्धि तथा मनोमालिन्य पर क्रोध किया। ऐसे दुष्ट वचन को सुनना भी नही चाहती। अत आज्ञा देती हैं कि चुप रह। भविष्य के लिए सचेत किये देती हैं कि मेरे वचन कौसल्या के प्रति ईर्ष्या द्वेष उत्पन्न करनेवाले है। पति के प्रति दुर्भाव उत्पन्न करनेवाले है। इसलिए तू घरफोरी है। घर फाडनेवाली बाते बोलती है। इस बार मैं क्षमा करती हूँ। फिर यदि तूने ऐसे वचन मुख से निकाले तो घर फोडनेवाले के लिए यही दण्ड है कि उसकी जीभ खिचवा ली जाय ऐसे अधम मनुज खल कृत जुग त्रेता माँहि।

दो काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेपि पुनि चेरि कहि, भरत मातु मुसुकानि॥१४॥

अर्थ : यह जानकर कि काने लँगडे और कुबडे कुटिल और कुचाली होते हैं। तिस पर स्त्री और फिर दासी ऐसा कहकर भरत को माँ ने मुसकरा दिया।

व्याख्या घर फोडनेवाला वचन कहने का कारण यही है कि कुलक्षण तुझमे मौजूद है। काने लँगडे और कुबडे कुटिल और कुचाली होते है। यहाँ प्रसङ्ग कुबडे का है। स्त्री यदि कुबडी हुई तो अधिक अवगुण उसमे चमक उठते है। तिस पर चेरी मे दुष्कुलप्रसूता होने से उनका अत्यन्त उत्कर्ष हो जाता है। चेरी दुष्कुल प्रसूता के अर्थ मे आया है। यथा कुलवति निकारहिं नारि सती। गृह आनहि चेरि निबेरि गती। तुझमे ये कुलक्षण मौजूद है। अत तू ऐसी बात बोली। रामजी का अभिषेक सुनकर प्रसन्न थी। केवल मन्थरा की अनुचित उक्ति पर क्रोध दिखलाया। बात समाप्त होते ही प्रसन्नता झलक उठी।

---

१ झुकी अर्थात् क्रोध किया। यथा लखन सुजान झुकि झारै कौरवान।

प्रियबादिनि सिख दीन्हिउँ तोही । सपनेहु तो पर कोपु न मोही ॥
सुदिनु सुमंगल दायकु सोई । तोर कहा फुर जेहि दिन होई ॥१॥

अर्थ : हे प्रिय · वात कहनेवाली मैने तुझे सीख दी है। तुझ पर मुझे स्वप्न मे भी क्रोध नही है। सुमङ्गलदायक सुदिन वही है जिस दिन तेरा कहना सच होगा।

व्याख्या तूने प्रिय वचन रामजी के तिलक का समाचार सुनाया। तुझे पुरस्कार देना था। सो मैने तुझे डाँट वतलायी। तुझे शिक्षा देने के लिए इतना ही बहुत है। मै तुझपर अप्रसन्न नही हूँ · वह नैहर से साथ आयी है। इसलिए उसपर बड़ा प्रेम है उसे समझा रही हैं : तूने जो कहा कि : रामहि छाडि कुसल केहि आजू सा ठीक नही। राम के अभिपेक से ही सबका कुशल है। अत. उनके अभिपेक का दिन सबके लिए सुमङ्गलदायक सुदिन है। तूने जो समाचार सुनाया वह जिस दिन सच्चा होगा उसे मै मङ्गलमय मानूँगी। रामहि छाडि कुसल केहि आजू का उत्तर।

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई । येह दिनकर कुल रीति सुहाई ॥
राम तिलकु जौ साचेहुँ काली । देउँ मागु मन भावत आली ॥२॥

अर्थ · जेठा भाई स्वामी और छोटा भाई सेवक होता है। यह सूर्यकुल की सुन्दर रीति है। यदि सचमुच कल ही रामजी को राजतिलक होना है तो हे आली ! तू मनचाहो बात माँग ले। मै देती हूँ।

व्याख्या . जो तूने महाराज पर आक्षेप किया है जेहि जनेस देइ जुवराजू। सो उनका दोप कुछ भी नही है। इस कुल की यही रीति है। राम जेठे है। इसलिए उनका राजतिलक हो रहा है। यदि भरत जेठे होते तो उन्ही का होता। राज्य मे विभाग नही होता। वह जेठे भाई को मिलता है। छोटे सेवक हैं। गुजारा के हक्दार है। यही सुन्दर रीति है। यदि राज्य मे भाई भाग पावें तो राज्य छिन्न भिन्न हो जाय। श्रीरामजी के तिलक के लिए मैं कई बार महाराज से कह चुकी हूँ। यथा : भामिनि भयउ तोर मन भावा। घर घर नगर अनद वधावा। पर कल ही तिलक है। यह मै नही जानती। मुझे तो विश्वास कम पड़ता है। क्योकि मुझे इसका कुछ भी पता नही है। यदि सचमुच कल ही अभिपेक है तो तूने पहिले पहल शुभ समाचार सुनाया है। तू मनचाही हुई बात माँग ले मै दूँगी। अन्य रानियो ने पहिले पहल इस शुभ समाचार सुनानेवाले को भूपण वसन दिये। पर कैकेयी का स्वभाव महाराज के स्वभाव से मेल खाता है। यह उसी भाँति मनचाहा हुआ पदार्थ देने को प्रस्तुत हैं जिस भाँति चक्रवर्तीजी देते हैं। यथा : दिये वूझि रुचि रघुकुलनदन।

कौसल्या सम सब महतारी । रामहि सहज सुभाय पिआरी ॥
मो पर करहि सनेहु विसेपी । मै कर प्रीति परीछा देखी ॥३॥

अर्थ : रामजी को सब माताएँ कौसल्या के समान सहज स्वभाव से ही पियारी हैं। मुझ पर तो विशेष प्रीति करते हैं। मैने प्रीति की परीक्षा करके देख ली।

व्याख्या : भगवती कैकेयी कहती हैं कि जो तूने कहा भयउ कौसिलहिं बिधि अति दाहिन सो तेरी भूल है। रामजी मे विशेषता है। उन्हे सब माताएँ कौसल्या की भाँति प्यारी हैं। अत सब माताओ को विधि समान रूप से दाहिने हैं। कौसल्या को अति दाहिन नही मुझे अति दाहिन है। क्योकि रामजी की मुझ पर अधिक प्रीति है। मैने उनकी प्रीति की परीक्षा करके देख ली है माता वेटो की प्रीति की परीक्षा बडी छोटी छोटी बातो मे कर लेती है। इस परीक्षा के लिए किसी बडी भारी घटना की आवश्यकता नही होती।

जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू। होहुँ राम सिय पूत पुतोहू॥
प्रान ते अधिक रामु प्रिय मोरे। तिन्हके तिलक छोभु कस तोरे॥४॥

अर्थ यदि ब्रह्मदेव छोह करके जन्म दे तो राम जानकी बेटा पतोहू हो। रामजी मुझे प्राणो से अधिक प्रिय हैं। उनके तिलक मे तुझे क्षोभ क्यो हैं?

व्याख्या कुवरी ने जो यह कहा था पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें। इसपर कहती है कि क्या राम पर मुझे भरत से कम प्रीति है? राम का वर्ताव ऐसा है कि मैं विधि से मनाती हूँ कि यदि आप छोह करके जन्म दें तो राम जानकी वेटे पतोहू हो। अर्थात् मैं भरत माण्डवी से अधिक राम जानकी से सन्तुष्ट हूँ। मुझे रामजी प्राण से अधिक प्रिय है। जिस भाँति दशरथजी ने कहा था सब सुत प्रीय प्रान की नाईं। राम देत नहि बनै गोसाईं। उसी भाँति भगवती कैकेयी भी कहती हैं कि रामजी मुझे प्राण से भी अधिक प्यारे है। उनके राजतिलक का समय तो उत्साह का है। तुझे क्षोभ क्यो है? जो अवलोकि मोर मन छोभा का उत्तर है।

दो भरत सपथ तोहि सत्य कहु, परिहरि कपट दुराउ।
हरप समय बिसमउ करसि, कारन मोहि सुनाउ॥१५॥

अर्थ तुझे भरत की शपथ कपट के छिपाव को छोडकर सच कह। हर्ष के समय तू विपाद करती है। इसका कारण मुझे बतला।

व्याख्या भरत पर अत्यन्त प्रेम देखकर मन्थरा को भरत का ही शपथ देती है कि तू सच सच बतला दे। तेरी बातो से मुझे मालूम हो रहा है कि तू कपट से कुछ वातें छिपा रही है। इस हर्ष के समय मे तुझे विपाद कहाँ से हो आया? इसका कारण होना चाहिए। जो कारण तूने दिया उसम कोई तत्त्व नही है। इसलिए सच्ची बात मुझे बतला दे।

एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी॥
फोरै जोगु कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रौरेहि लागा॥१॥

अर्थ : एक ही वार मे सब आशा पूरी हो गयी। अब क्या दूसरी जीभ लेकर कुछ कहूँगी। मेरा अभागा कपाल फोड़ने लायक है। जो भला कहते हुए आपको बुरा लग गया।

व्याख्या : मन्थरा कहती है कि वात तो मुझे वही कहनी है। जो पहले कह चुकी हूँ और फिर वैसी वात कहने से आप जीभ खिचवा लेंगी। अब तो मै उसी दशा मे वैसी वात कह सकती हूँ जब कि मुझे दूसरी जीभ कही से मिल जाय। जिसमें आप के खिचवा लेने पर भी एक जीभ वची रहे। मै तो यह आशा करके चली थी कि भरत नही हैं तो उनकी माँ तो हैं। उन्हे चलकर सब वातें समझाऊँ। सो आप उलटे मुझपर अप्रसन्न हो गयी। अत. सारी आशा पर पानी फिर गया। आप जीभ खिचवाने लगी।

मेरा कपाल फोड़ने लायक है। जीभ खिचवाने लायक नही है। क्योकि जीभ तो ठीक वात कहती है। उसका अपराध नही है। फोड़ने लायक मेरा कपाल है, जिसमे लिखा है कि मै भले को वात कहूँ तो सुननेवाले को बुरा लगे। मै भला कहती हूँ और आपको बुरा लग रहा है। तो मेरी किसमत का ही दोप है : इस भाँति अपनी नेकनीयती दिखलाती है।

कहहिं झूठि फुरि वात वनाई। ते प्रिय तुम्हहिं करुइ मैं माई॥
हमहुँ कहवि अब ठकुरसोहाती। नाहि त मौन रहव दिनु राती॥२॥

अर्थ : माता! जो झूठी वातों को सच्ची वनाकर कहे वे ही तुम्हारे प्यारे हैं और मै कड़वी हूँ। अब मै भी ठकुरसोहाती कहा करूँगी। नही तो दिन रात मौन रहूँगी।

व्याख्या : मै सच्ची कहती हूँ तो घरफोरी समझी जाती हूँ। जो झूठी झूठी वातो को सच्ची वना वनाकर कहती है तुम्हारी हाँ में हाँ मिलाती हैं : राम वहुत अच्छे हैं। सीता वड़ी अच्छी हैं। महाराज तुम्हे ही मानते हैं। इत्यादि वातें कहें वे ही तुम्हे प्रिय हैं। मै सच्ची वातें कहती हूँ इसलिए मै अप्रिय हूँ।

अभी तक तो मै ठकुरसोहाती नही कहती थी। पर अब कहनी पड़ी। यदि खरा कहने का स्वभाव छोड़ते न वनेगा तो दिन रात मौन रहूँगी। अब समझ लिया कि इस दरवार मे सच्चे का गुजर नही है और ठिकाना मुझे दूसरा है नही। अतः सिवा इस भाँति आचरण किये अन्य उपाय नही है : कैकेयी के प्रिय : विप्र वधू कुल मान्य जठेरी : पर ठकुरसोहाती कहने का दोप लगाती है। जिससे उन लोगो की कही सुनी वातो से रानी का चित्त हटकर उसी की वातो पर विश्वास करें।

करि कुरूप विधि परवस कीन्हा। ववा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा॥
कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि अब होव कि रानी॥३॥

अर्थ : कुरूप वनाकर ब्रह्मा ने मुझे परतन्त्र कर दिया। जो वोया है वही

काटना है। जो दिया है वही मिलना है। कोई भी राजा हो मेरी क्या हानि है। मैं तो चेरी छोडकर अब क्या रानी होऊँगी।

व्याख्या काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि का उत्तर देती है कि ब्रह्मा ने कुरूप बना दिया। तभी न गुलामी करती हूँ। भाव यह कि यदि ब्रह्मा रूपवती बनाये होते तो मैं भी रानी हुई होती। दासी क्यो होती? करै जो कर्म पाव फल सोई। मैंने खोटे कर्म किये है। उन्ही का परिणाम भोग रही हूँ। जो जैसा बोता है उसे वैसा ही फल मिलता है। जो देता है वही पाता है। न जाने कौन पाप किया जो दासी हुई। अब ठकुरसोहती झूठी बातें कहकर अपना परलोक नही बिगाडूँगी। तिस पर मेरा कोई हानि लाभ नही है। चाहे कोई राजा हो। इस समय भी चेरी हूँ। दूसरा राजा होगा तब भी चेरी ही रहूँगी। मेरा कोई स्वार्थ नही है। अब कहने का भाव यह कि इस अवस्था मे मुझे तो रानी होना नही है. भाव यह कि हानि तो उसे है जो रानी से चेरी हुआ चाहती है। यह प्रान ते अधिक राम प्रिय मोरे का उत्तर है।

जारइ जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥
ता ते कछुक बात अनुसारी। छमिअ देवि बड़ चूक हमारी ॥४॥

अर्थ · मेरा स्वभाव जलाने लायक है। मुझसे तुम्हारा बुरा देखा नही जाता। इसी से थोडी सी बात चलायी थी। सो मेरी बडी भारी चूक को देवी! क्षमा करो।

व्याख्या जिसका भला चाहा उसे अपना भला पसन्द नही है। लोग बुद्धि से काम लेते है। मेरा स्वभाव पड गया है कि मै ऐसे अवसर पर बुद्धि से काम नही ले सकती। अत· मेरा स्वभाव जलाने लायक है। मुझसे तुम्हारा अनभल देखते नही बनता। इसीलिए रोती हूँ, बिलपती हूँ। नही तो मेरा क्या बिगडता है। जन्म से तुम्हारा भला देखती आयी हूँ। सो स्वभाव पड गया भाव यह कि तुम्हारी सखियाँ तुम्हारा अनभल देख सकती हैं। इसलिए तुम्हारी सी बातें बोलती है।

जो थोडा कहा सा कहा। अब विशेष कहने मे भय है। मैं कहने कहाँ पायी। थोडी सी बात कहने मे तो जीभ निकाली जाने लगी। जो कहा वही चूक हुई। अब क्षमा कर दो। ऐसी चूक फिर न होगी।

दो. गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि, तीय अधरबुधि रानि।
सुर माया बस बैरिनिहि, सुहृद जानि पतिआनि ॥१६॥

अर्थ : गूढ कपट भरे हुए मीठे वचन सुनकर स्त्रियो की बुद्धि तो होठो पर ही होती है। रानी देवमाया के वश हो रही थी। अत बैरिन को मित्र मानकर विश्वास कर गयी।

व्याख्या : गूढ़ वाणी यथा : कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि

अब होब कि रानी। कपट युक्त वाणी यथा : कछुक बात अनुसारी। छमिअ देवि बड चूक हमारी। प्रिय वाणी यथा . अनभल देखि न जाइ तुम्हारा। ऐसी वाणी सुनकर रानी अपने निश्चय से हट गयी। स्त्रियो की बातें तो बुद्धिमानो की होती हैं। परन्तु धोखा जल्दी खा जाती हैं। महाराज भी कपट चतुर हैं। मीठी बाते करके तुम्हे ठगा करते हैं। इत्यादि बातें विश्वास के योग्य नही थी। पर कैकेयी ने धोखा खाया। तिसपर रानी देवमाया से मोहित हो रही थी। राम विमुख करनेवाली वैरिन मन्थरा को हितेच्छु समझकर विश्वास कर गयी। मन्थरा की बुद्धि शारदा ने फेरी और कैकेयी की बुद्धि को ब्रह्मा ने फेरा। यथा विधि वाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी। इसलिए रानी को सुरमाया बस बतला रहे हैं।

सादर पुनि पुनि पूंछति ओही। सबरी गान मृगी जनु मोही॥
तसि मति फिरी अहई जसि भावी। रहसी चेरि घात जनु फाबी॥१॥

अर्थ · आदर के साथ बार बार उससे पूछती है। मानो शबरी के गाने पर मृगी मोहित हो गयी हो। जैसा होनहार है वैसी ही बुद्धि फिरी हुई है। चेरी · मन्थरा हर्षित हुई। मानो दाँव ठीक बैठ गया।

व्याख्या · पहिले भी पूछा था परन्तु अनादर से। यथा . का अनमनि हसि कह हँसि रानी। अब आदर के साथ पूछती है। बार बार पूछने का भाव यह कि मन्थरा उत्तर नही देती है : छमिअ देवि बड चूक हमारी कहकर चुप हो गयी। रानी ने पूछा : कारन मोहि सुनाउ। पर इस बात का उसने कुछ उत्तर नही दिया। अब रानी आदर के सहित बार बार पूछती है। वह फिर भी चुप है। कारण यह कि उसे तो घरफोड़नेवाली बात कहनी है। अति आग्रह से बिना पूछे ही कह देने से फिर बात उखड़ जायगी। इसलिए चुप है। रानी की समझ मे यह नही आरहा है कि रामजी के अभिषेक मे मेरा अनभल क्या है ? इसलिए बार बार पूछती है। मन्थरा ने कह दिया : रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू। पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें। फिर भी यह बात मन मे ठीक बैठती नही। अथवा वचन तो मृदु हैं। पर उसमे कपट छिपा हुआ है।

शबर एक जङ्गली जाति है। उस जाति की स्त्री ऐसा गाना जानती है कि सुनकर मृगी मोहित हो जाती है और उसके निकट चली आती है। यहाँ शबरी मन्थरा है। वह : जिमि गवँ तकै लेउँ केहि भाँती। इस भावना को . कोउ नृप होउ हमहि का हानी कहकर छिपाती है। और अनभल देखि न जाइ तुम्हारा कहकर हितैषिता प्रकट करती है। यही उसका गाना है। इस पर रानी मृगी की भाँति मोहित है। उसके कपट को नही समझ रही है। मृगी की भाँति उसके सन्निकट चली आरही है। उसकी माया मे फँसा चाहती है।

देवता बुद्धि बिगाड़ देते हैं। सो ब्रह्मदेव बुद्धि के अधिष्ठात्री देवता हैं। भवितव्यता के अनुसार उन्होंने रानी की बुद्धि को पलट दिया है। वैरिन को सुहृद समझकर विश्वास कर रही है और उसके चुप रहने पर बार बार पूछती है।

समझती है कि मेरे भय से नही बोल रही है। रानी की यह दशा देखकर मन्थरा प्रसन्न हो गयी कि मेरा घात तो बैठ गया। ऐसी ही परिस्थिति को वह उत्पन्न कर देना चाहती थी।

तुम्ह पूँछहु मैं कहत डेराऊँ। धरेहु मोर घरफोरी नाउँ॥
सजि प्रतीति बहुबिधि गढ़ि छोली। अवध साढ़साती तब बोली॥२॥

अर्थ - तुम तो पूछती हो। पर मुझे कहते डर लगता है। मेरा नाम तुमने घरफोरी रख छोडा है। विश्वास जमाकर और बहुत कुछ गढकर और छोलकर तब अयोध्या की साढेसाती दशा मानो बोली।

व्याख्या - भाव यह कि मै बात वही कहूँगी। उसी का स्पष्टीकरण करूँगी। जो पहिले कहा था। और तुम उस बात को घर का फोडना मानती हो। इसी से मै कहने मे डरती हूँ। चरचा छेडते ही तो मेरा नाम घरफोरी रख दिया। मैं किस हिम्मत से मनोगत भाव को स्पष्ट करूँ।

पहिले उसने कैकेयी के मन मे अपना विश्वास जमाया और तब बहुत प्रकार से गढा और छोला। अपनी चित्तवृत्ति के अनुकूल रानी की मनोवृत्ति को बनाना गढना है और उदार भावनाओ को उनके मन से दूर करना ही छोलना है। इन कार्यों को भली भाँति समाप्त करके तब वह मुख्य विषय पर आयी। कवि उसकी उपमा अयोध्या की साढेसाती शनैश्चरी दशा से देते है। यह दशा दु सह दु खदायिनी होती है। यथा समय साढसाती सरिस, नृपहि प्रजहि प्रतिकूल। रा प्र। पहिले सरस्वती को *'हरखि हृदय कोसल पुर आई। जनु ग्रहदसा दुसह दुखदाई'* कहा था। अब मन्दमति मन्थरा के बोलने की उपमा अवध की साढेसाती दशा के बोलने से दे रहे हैं। मन्थरा को त्रिभङ्गी मूर्ति है और साढेसाती भी तीन अढैया की होती है।

प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी। रामहि तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी॥
रहा प्रथम अब ते दिन बीते। समउ फिरे रिपु होहि पिरीते॥३॥

अर्थ रानी! तुमने पहिले कहा था कि सीता और राम तुम्हे प्रिय है और तुम राम को प्रिय हो। यह बात सच्ची है। परन्तु पहिल यह बात थी। अब वे दिन बदल गये। समय के पलटा खाने से अपने प्यारे भी शत्रु हो जाते हैं।

व्याख्या रानी की बडी आस्था है कि सीता और राम मुझे प्यारे है और मै उन्हे प्रिय हूँ। मैने परीक्षा करके देख लिया है। दूसरे के कहने से मैं इसके विपरीत नही मान सकती। इसलिए मन्थरा उस बात को अङ्गीकार करती है कि यह बात ठीक है। परन्तु यह तो भूतकाल की बात है। तब तुम्हारा समय जमाना था। अब तो तुम्हारे वे दिन नही रह गये। तुम्हारी तो जड उखडा चाहती है। शासनाधिकार महाराज के हाथ से निकलकर राम के हाथ मे जाना चाहती है। जिस राम को प्राणो से प्रिय मान रही हो वे ही तुम्हारे शत्रु हो जायँगे। जब तुम्हारा समय

था तब तुम्हारे प्रेमपात्र बनने म ही कुशल था। अत वे प्रिय बने हुए थे। पर अब तो उनकी आज्ञा चलगी। महाराज की न चलगी। तब वे तुम्हारी परवाह क्या करने लगे। तुम्हे अपनी आज्ञा म हस्तक्षेप करते देखकर तुम्हारे शत्रु हो जावगे। राम पर ही यह बात नही है। समय के पलटने पर अपने प्रिय ही शत्रु हो जाते हैं। यही ससार का नियम है। जबतक महाराज के हाथ मे शासन है तबतक तुम्हारा समय है। महाराज के हाथ से शासनाधिकार के निकलते ही तुम्हारा समय पलटा खा जायगा।

भानु कमल कुल पोपनि हारा। बिनु जर जारि करइ सोइ छारा॥
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। रुँधहु करि उपाय बर बारी॥४॥

अर्थ सूय कमलकुल को पोषण करनेवाला है। पर बिना जड का हो जाने से उसी को जलाकर छार कर देता है। तुम्हारी जड को तुम्हारी सौत उखाडना चाहती है। उसे उपाय के श्रेष्ठ बाड लगाकर रूँधो।

व्याख्या जड बनी रहन से ही सूर्य कमलकुल के पोषक है। जड उखडने पर वही शोषक हो जाते हैं। इसी भाति जबतक तुम्हारी जड बनी हुई है महाराज का शासन चल रहा है तबतक बराबर रामजी तुम्हारा प्रिय आचरण करते रहेंगे। जिस दिन महाराज का शासनकाल समाप्त हुआ तुम्हारी जड उखड जायगी। उसी दिन स वही रामजी शोषक हो जावेंगे। रामजी भी सूर्यकुल के हैं। क्या अपने कुल की परम्परा छोड देंगे?

रामजी का युवराज होना और तुम्हारा जड उखडना एक बात है। अपने बेटे के हाथ शासनाधिकार दिलाकर तुम्हारी सौत कौसल्या तुम्हारी जड उखाडा चाहती है। अत अपनी जड की रक्षा करो। उसे उपाय की बाड लगाकर रूँधो। ऐसा उपाय करो कि तुम्हारी जड तक सौत की पहुँच न हो। अब विचारणीय यह है कि कैसा उपाय किया जाय कि तुम्हारा अधिकार अक्षुण्ण बना रहे और तुम्हारी सौत का प्रयत्न निष्फल हो।

दो तुम्हहि न सोचु सोहाग बल, निज बस जानहु राउ।
मन मलीन मुहु मीठ नृपु, राउर सरल सुभाउ॥१७॥

अर्थ तुम्हे सोहाग के बल से सोच नही है। तुम जानती हो कि राजा मेरे वश म हैं। पर राजा मुँह के मीठे और मन के मलिन हैं और आपका स्वभाव सरल है।

व्याख्या तुम धोखे मे हो। तुम्हारे मन म सोहाग का बल है। इसीसे तुम्हे चिन्ता नही है सोहाग पति के प्रिय होने को कहते ह। तुम जानती हो कि महाराज मेरे वश म हैं। पर राजा किसी के मित्र नही होते राजा मित्र केन दृष्ट श्रुत वा। वे तुम्हारे वश म नही हैं। पर जिसे सोहागबल नही है उसे चिन्ता है। यदि कहा

कि महाराज का व्यवहार इतना मधुर है। उसपर कहती हैं कि महाराज मिठबोल्ले है। मीठीमीठी बातें करते हैं। पर मन उनका मलिन है। आप नही लख सकती। क्योकि आपका स्वभाव सरल है। आपमे गम्भीरता नही है पहिला काम मन्थरा ने यह किया कि राजा पर से कैकेयी की आस्था के हटाने का प्रयत्न किया। क्योकि यदि ऐसा न हुआ तो उसके सारे प्रयत्न ही विफल हो जावेंगे। सरल स्वभाव कह कर रानी की प्रशसा करती है जिसमे विश्वास कर जाय। नही तो राजा का मलिन मन नही मानेगी।

चतुर गँभीर राम महतारी। बीचु पाइ निज बात सँवारी ॥
पठये भरतु भूप ननिऔरे। राम मातु मत जानव रौरें ॥१॥

अर्थ रामजी की माता चतुर और गम्भीर हैं। मौका पाकर अपनी बात सँवार ली। राजा ने जो भरत का ननिहाल भेज दिया है उसे आप जान रखिये कि रामजी की माता की सलाह से भेजा है।

व्याख्या रामजी की माता चतुर और गम्भीर हैं। उनकी बातो का मर्म मिलना कठिन है। वे राम की महतारी है। जब उन्होने देखा कि महाराज की इच्छा है कि राज्यभार किसी पुत्र को सौप दे तो उन्होने अपना काम सँवार लिया। रामजी के राजतिलक की तैयारी होने लगी। तुम तो सरल हो। न तुम्हारे मे चतुराई है न गम्भीरता है। तुम्हे अपने बेटे की चिन्ता नही है। आज भरत होते तो यह कुछ भी क्या होने पाता। इस बात को महाराज समझते है। इसलिए भरत को ननिहाल भेज दिया। यह रामजी की माता का मन्त्र है कि भरत को ननिहाल भेज दो। तब रामजी के तिलक मे कोई कण्टक न रह जायेगा।

सेवहि सकल सवति मोहि नीकें। गरबित भरत मातुबल पी के ॥
सालु तुम्हार कौसिलहि माई। कपट चतुर नहि होइ जनाई ॥२॥

अर्थ सब सौत तो मेरी भलीभाँति सेवा करती है। पर भरत की माता पति के बल से अभिमान करती है। इस बात का तुम्हारी ओर से कौसल्या को बडा दुख है। पर कपट मे चतुर हैं। इसलिए प्रकट नही होने देती।

व्याख्या पट्टाभिषिक्ता महिषी होने के कारण सब सौते कौसल्याजी की सेवा टहल करती हैं। एक तुम हाजिरी नही बजाती। तुम्हे पति की प्यारी होने का बल है। इसलिए तुम उन्हे नही गिनती। इस बात का कौसल्या को साल है जिसे साल पड जाती है उसे ऐसा कष्ट होता है कि श्वास नही लिया जाता। यदि कहो कि उनका व्यवहार तो बडे प्रेम का है। इसपर कहती हैं कि कौसल्या कपट मे चतुर हैं। तुम्हारे समान सीधी बेवकूफ नही हैं। अपने साल को प्रकट नही होने देती। अत उनको तुमसे बुरा मानने के लिए यथेष्ट कारण है। उनका बेटा राजा हो तब यह साल मिटे।

राजहि तुम्ह पर प्रेमु बिसेखी । सवति सुभाउ सकइ नहि देखी ॥
रचि प्रपंचु .भूपहि अपनाई । राम तिलक हित लगन धराई ॥३॥

अर्थ : राजा का तुम पर अधिक प्रेम है। सौत का स्वभाव है। इसे वे देख नही सकती। अतः प्रपञ्च रचकर राजा को अपने हाथ में कर लिया और रामजी के तिलक के लिए लग्न निश्चय करा लिया।

व्याख्या : राजा का प्रेम तो सब पर है। केवल तुम्हारे पर ही नहीं है। हाँ तुम्हारे ऊपर अधिक प्रेम है। वह प्रेमाधिक्य सौत से देखा नही जाता। यह स्त्रीजाति का स्वभाव है। कौसल्या को मै दोष नही देती। कौसल्या स्त्री चरित्र मे पण्डित है। राजा उनके हाथ मे नही थे। पर माया रचकर राजा को हाथ मे कर लिया। अत. रामजी के राजतिलक के लिए लग्न निश्चय करा लिया। तुम्हे पता भी नही।

यहु कुल उचित राम कहुँ टीका । सबहि सुहाइ मोहि सुठि नीका ॥
आगिल बात समुझि डरु मोही । देउ दैउ फिरि सो फलु ओही ॥४॥

अर्थ · इस कुल मे रामजी को टीका होना उचित है। सबको अच्छा लग रहा है और मेरे लिए तो बहुत अच्छा है। अगली बात समझकर मुझे डर हो रहा है। पर दैव वह फल लौटकर उन्ही को दे।

व्याख्या : यदि कहो कि यह सब बात सही। पर जो हो रहा है वह तो उचित ही हो रहा है। जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सोहाई। और सबको प्रिय हैं। इसपर कहती है कि मुझे तो बहुत ही अच्छा है : जिसमे यह न समझें कि रामतिलक से इसे दु ख है। तुम्हारा जिसपर प्रेम है। उसी को राजतिलक मिल रहा है। इसलिए मेरे सर्वथा अनुकूल है। पर भविष्य देखकर मुझे डर हो रहा है। टीका होने के बाद तुम्हारी क्या दशा होगी। उसे मैं सोचती हूँ। भगवान् करे कि यह दशा उसी की हो जिसने यह माया रची है : ऐसा कहकर कैकेयी को उसके ऊपर बडी भारी विपत्ति आने का डर दिखा रही है।

दो. रचि पचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोधु ।
कहिसि कथा सत सवति कै, जेहि बिधि बाढ बिरोधु ॥१८॥

अर्थ : करोडों कुटिलताओं को रचकर और पच्चीकारी करके कपट का ज्ञान कराया और सौ सौतो की कथा कही। जिस भाँति विरोध बढे।

व्याख्या : बहुत सी नयी झूठी झूठी कुटिलता की बातें गढी। कुछ सच्ची बातो मे झूठ की पच्चीकारी की। उस कपट से अपरिचित रानी को कपट कराया। यथा ·

कहा उचित लै कीजिये जौ अपनो संहार।
बढत नहाए गगहू ज्वर को वेग अपार ॥१॥

परमारथ मुखन कहत हिय स्वारथ भरिपूर।
ऐसे के मुह दीजिये भरिभरि मूठी धूर ।।२।।
चहत राज निजपूत हित कहत ताहि कुल धर्म।
किमि समुझै तुमसे सुहृद कुटिल सौत को मर्म ।।३।।
पति करते निज सौत को जो होवै अपकार।
तौ याते वढि आन नहिं आनँद एहि ससार ।।४।।
कौशल्या सोई चहत करन आज खिलवार।
नृपके करते ही तुम्हे बोरन को मझधार ।।५।।
कपट चाल कोटिन चलत लखिन सकहु तुम एक।
निज आँखिन्ह तिनको लखो अजहूँ सकहु तुम छेक ।।६।।
मुख मीठी केतिक कहै, करैं वहिन सी प्रीति।
कठिन वैर हिय म धरै, सदा सौत की रीति ।।७।।
स्वार्थमुत्सृज्य यो दम्भी सत्य ब्रूते सुमन्दधी।
स स्वार्थाद् भ्रश्यते नून युधिष्ठिर इवापर ।।

जो दम्भी मतिमन्द स्वार्थ छोडकर सच बोलता है वह निश्चय स्वार्थ से हाथ धोता है। प त । तत्र सौ[1] सौता की कथा ऐसी विधि से कही जिसमे विरोध बढे। कोटि शब्द का अर्थ प्रकार भी होता है। अत यह अर्थ भी किया जा सकता है कि अनेक प्रकार के कुटिलपन की बातें गढी। ऐसा अर्थ करने से कोटिक शब्द मे अर्थवाद न मानना पडेगा।

भावी वस प्रतीति उर आई। पूँछ रानि पुनि सपथ देवाई ।।
का पूँछहु तुम्ह अवहु न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना ।।१।।

अर्थ होनहार के वश होने से मन म विश्वास हो गया। रानी शपथ दिलाकर फिर पूछने लगी। मन्थरा ने कहा क्या पूछती हो। तुमने अब भी नही समझा। अपना हित अनहित तो पशु भी पहचानते हैं।

व्याख्या बात मन म बैठने लायक नही थी। महाराज दशरथ को मलिन मन और रानी कौसल्या को कपट चतुर कौन मानेगा ? पर होनहार बुरा था। रानी के मन मे विश्वास हो गया। वह फिर शपथ देकर पूछने लगी कि वह आगिल काज कौन है। जिसे समझकर तुझे डर लग रहा है। मन्थरा बोली कि ऐसी बात पूछी जाती है जो समझ म न आती हो। यह बात तो अत्यन्त स्पष्ट है। अपना हित कौन है और अनहित कौन है। इतनी बात तो पशु भी प्रमाण द्वारा जान लेता

---

१ राजा चित्रकेतु को एक रानी से एक लडका हुआ। सौ रानियो म से और किसी को नही हुआ। सो शप रानियो ने सौतिया डाह के कारण उस लडके को विष देकर मार डाला। क्योकि समय पाकर वही राजा होता और उसी की माँ राजमाता होती। मन्थरा सौतिया डाह का पुराण स सिद्ध कर रही है।

है। हाथ मे हरी घास लिये हुए पुचकारते हुए सज्जन की ओर पशु दौडे आते है और दण्ड हाथ मे लिये डाँटते हुए क्रोधी को देखकर भाग खडे होते है। प्रमाण से ही बात जानी जाती है। यहाँ स्पष्ट वात है कि यदि उन लोगो को हृदय में कपट नही है और रामजी के तिलक से आपके अनिष्ट की भावना नही है। तो आप से अभिषेक की बात छिपायी क्यों गयी। छोटी छोटी वात महाराज आप से कह दिया करते है और इतनी बड़ी बात जिसमें राज्य शासन मे उलट फेर हो उसे आपसे नही कहा।

भयेउ पाख दिन सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू॥
खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारें। सत्य कहे नहिं दोपु हमारें॥२॥

अर्थ : पन्द्रह दिन समाज सजते हो गया और तुमने आज समाचार मुझसे पाया। तुम्हारे राज्य में खाती हूँ और पहनती हूँ। सत्य कहने से मुझे दोप नही है।

व्याख्या · समाज सजने मे इतनी तत्परता से काम लिया गया है कि देखने से यही मालूम होता है कि इतनी तैयारी के करने मे पन्द्रह दिन लगे होंगे। अत मन्थरा को कहने का मौका मिल गया कि पन्द्रह दिन से तैयारी हो रही है और तुम्हे पता नही है। महाराज ने तुमसे चरचा तक नही की। उचित तो यह था कि मै तुमसे सुनती कि रामजी को तिलक होनेवाला है। सो तुम चौदह दिन की तैयारी के वाद मुझसे रामजी के तिलक का समाचार आज सुन रही हो मन्थरा वस्तु स्थिति पर पर्दा डाल रही है। आज ही प्रस्ताव हुआ है। आज ही तैयारी हुई है। इस वात का परिज्ञान होने से महाराज दशरथ और रानी कौसल्या निर्दोप सिद्ध हो जावेगी। इसलिए उसने पन्द्रह दिन से तैयारी होने की वात गढ ली।

अब कहती है कि तुमसे जो किसी ने चरचा नही की इसका कारण है। राज्य की गुप्त वात के प्रकाश करने मे दोप है। किसी को क्या पड़ी है कि इस वात की तुम से चरचा करके महाराज तथा रानी कौसल्या का कोपभाजन वने। पर मै तो तुम्हारे राज मे खाती पहनती हूँ। मैं दूसरे को क्या जानूँ। अतः मुझे सच्ची वात कह देने मे दोप नही है।

जौं असत्य कछु कहब बनाई। तौ बिधि देइहि हमहि सजाई॥
रामहि तिलकु कालि जौं भयेऊ। तुम्ह कहुँ बिपति बीजु बिधि बयऊ॥३॥

अर्थ . जो मै कुछ झूठ बनाकर कहूँगी तो मुझे विधाता दण्ड देंगे। यदि काल रामजी को तिलक हुआ तो तुम्हारे लिए ब्रह्मा ने विपत्ति का बीज बो दिया।

व्याख्या : पन्द्रह दिन से समाज सजने की वात बिल्कुल झूठ है और उसी पर इसके : मन्थरा का सब मायाजाल की रचना खडी है। अतः उसे शपथ लेकर दृढ कर रही है। कहती है कि मुझे परलोक का भय है। यदि मै आपसे कुछ झूठ बनाकर कहूँगी तो मुझे परमात्मा के यहाँ से दण्ड मिलेगा। अतः मै सत्य कहती हूँ और लोग राजा का खाते पीते हैं वे कभी सच : सत्य न कहेंगे।

मन्थरा ने पहले से ही मन मे वह विधि ठीक कर रक्खी है। जिससे रात में ही बात बिगड जाये। अतः कहती है कि कल जो किसी भाँति रामजी को राजतिलक हो गया तो यह समझो कि ब्रह्मा ने तुम्हारे लिए विपत्ति का बीज बो दिया। ब्रह्मा का बोया बीज कभी निष्फल नही जा सकता। बीज जिस समय बोया जाता है उस समय तो वह मिट्टी से ढक जाता है पर काल पाकर वह फल देता है। इसी भाँति राजतिलक के समय तुम्हे विपत्ति का पता न लगेगा। फल तो उसके बाद होगा।

रेख खँचाइ कहउँ बलु भाखी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी॥
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई॥४॥

अर्थ : मैं रेखा खीचकर बलपूर्वक कहती हूँ कि सुन्दरि! तुम दूध की मक्खी हो गयी। यदि बेटे के साथ सेवकाई करोगी तो घर मे रहने पाओगी। नही तो दूसरा उपाय घर रहने का न रह जायगा।

व्याख्या : अपने कथन की सचाई के प्रभाव के लिए रेखा खीची जाती है। यथा : पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होहिं यह साँची। और फल के निश्चय के लिए बल का कथन किया जाता है। यथा : चला प्रभजन सुत बल भाखी। सो मन्थरा रेखा खीचकर और बल कथन पूर्वक कहती है कि तुम दूध की मक्खी हुआ चाहती हो। राजकाज मे हस्तक्षेप करने का तुम्हारा स्वभाव है। महाराज के शासनकाल मे तो तुम्हारा हस्तक्षेप चल जाता है। पर राम के राज सुखरूपी दूध मे जहाँ तुमने छेडछाड की तहाँ मक्खी की भाँति निकालकर बाहर फेंक दी जाओगी। तुम्हारी बात नही मानी जायगी। रानी होकर दासी की भाँति बेटे के सहित सेवा करनी होगी। न करोगी तो घर मे रहने न पाओगी।

दो० कद्रूँ बिनतहि दीन्ह दुखु, तुम्हहि कौसिलाँ देब।
भरतु बदि गृह सेइहहि, लखनु रामु के नेव[1]॥१९॥

अर्थ : कद्रू ने विनता को दुःख दिया। तुम्हे कौसल्या देंगी। भरत बन्दीगृह मे रक्खे जावेंगे और लक्ष्मण तो रामजी के हिस्से हैं।

व्याख्या : कद्रू : नाग की माता और विनता गरुड की माता ये दोनो सौत थी। विनता ने कहा कि सूर्य के घोडे की पूँछ श्वेत होती है। कद्रू ने कहा कि बाजी लगाओ। निश्चय पूँछ काली होती है। बाजी लगी कि जो हारे वह दासी होकर रहे। कद्रू ने अपने पुत्रो को आज्ञा दी कि जाकर सूर्य के घोडे की पूँछ मे लिपट जायँ। वही हुआ। पूँछ काली दिखाई पडी। विनता को कद्रू की दासी बनकर बहुत दिन रहना पडा। जब गरुड को देखकर सर्प भागे तब वे दासत्व मे विनिर्मुक्त हुई।

---

१. नेम का तद्भव रूप नेव है। प्राकृत के नियमानुसार 'म' का 'व' हो जाता है। नेम का अर्थ भाग : हिस्सा है। मोनुनासिको वोवा।

इतना बड़ा दु ख विनता को कद्रू ने केवल सौत होने के कारण से दिया। तुम्हें भी कौसल्या दासी बनाकर रक्खेगी। भरत बन्दीगृह मे बन्द होंगे। राजविद्रोह का सन्देह उनपर किया जायगा। लक्ष्मण तो राम के अग हिस्से मे ही ठहरे। यही होना है। इसी बात को मैं डरती हूँ। मोनुनामिको वोवा।

कैकय सुता सुनत कटु बानी। कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी ॥
तन पसेउ कदली जिमि काँपी। कुबरी दसन जीभ तब चाँपी ॥१॥

अर्थ · राजा केकय की वेटी कड़ुई वाणी सुनकर कुछ कह न सकी। डरकर सूख गयी। शरीर मे पसीना आगया। केले की भाँति काँपने लगी। तब कूबरी ने दाँतो तले जीभ दबायी।

व्याख्या रानी कैकेयी राजा की बेटी है। भरतजी का कारागार मे बन्द होना सुनकर सहम गयी। हार्दिक आतङ्क का सद्य फल होता है। भय से सूख सी गयी। कहि न सकइ कछु से वचन की दशा कही। सहमि सुखानी से मन की दशा कही। तन पसेउ कदली जिमि काँपी से तन की दशा कही। कैकेयी को काँपते देखकर समझी कि मूर्च्छित हुआ चाहती है। तब उसने दाँत तले जीभ दबायी। इस मुद्रा से निषेध करती है कि क्या कर रही हो? इससे तो सब बात बिगड जायगी। मन्थरा डरी कि यदि कही यह मूर्च्छित हुई तो सब भेद खुल जायगा और फिर तो मैं नही बच सकती।

कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरजु [१]धरेहु प्रबोधिसि रानी ॥
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। बकिहि सराहइ मानि मराली ॥२॥

अर्थ भाँति भाँति की कपट कहानियाँ कहकर उसने रानी को समझाया कि धीरज धरो। भाग्य ने पलटा खाया। कुचाल अच्छा लगा। बगली को हंसिनी मानकर सराहने लगी।

व्याख्या : मन्थरा जानती है कि रानी कैकेयी कपट करने पर शीघ्र राजी न होगी। काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि कहकर पहिले ही इसने मुझ पर कुटिल कुचाली होने की आशङ्का की थी। कुटिल कुचाल को यह बुरा समझती है। पर इसे इसी रास्ते पर उतारना है। अत समझाती है कि उपाय[१] से सब सधेगा · अभी उपाय नही कहा। एक एक भूमिका ठीक करके एक एक बात कहती है। कपट करने पर राजी हो तो उपाय कहे। नही तो मैं फाँसी पड जाऊँगी। जब यही जीभ खिचवाती थी तो दूसरे कौन सी दुर्दशा करेंगे क्या ठिकाना? अत धीरज

---

१ यथा विपति माँझ धीरज धरै, दृढ ह्वै करै उपाय।
पुरुषारथ ताको निरखि, दैवहु जाय डराय ॥१॥
उलटि परै परपञ्च सब, बिगरी हू बनि जाय।
धीरज धरि उर सजग ह्वै, जो कोउ करै उपाय ॥२॥

देती है। यहाँ पुराण का उदाहरण नही मिला तो कहानियाँ कहने लगी जिनमे कपट से काम सधा हो। ये कहानियाँ यदि इसके गले उतर जायें तो पता चल जायगा कि अब यह कपट करने पर राजी हो गयी। अत कपट की अनेकानेक कहानियाँ सुनायी।

कैकेयी भी कहानी सुनकर बकी को मराली मान गयी। ऐसी निष्कपट को कपट अच्छा लगा। भाग्य फिर गया। कपट से चिढनेवाली कपट पर रीझने लगी। बडे ध्यान से कहानी सुनने लगी। जब कपट अच्छा लगने लगे तो समझना चाहिए कि भाग्य फिरा है। कूबरी अति खल थी। सो उसे क्षीर नीर की विवेक करनेवाली हसी मान लिया। लगी कुबरी की प्रशसा करने।

सुनु मथरा बात फुरि तोरी। दहिन आँखि नित फरकइ मोरी॥
दिन प्रति देखहुँ राति कुसपने। कहउँ न तोहि मोह बस अपने॥३॥

अर्थ मन्थरा सुन! तेरी बात सच है। मेरी दाहिनी आँख नित्य फडक रही है। प्रतिदिन रात को मैं बुरे बुरे सपने देखती हूँ और अपनी बेवकूफी से तुझे नही बतलाती।

व्याख्या स्त्री का दाहिना अङ्ग फडकना अपशकुन है। सो उसके फल को कुबरी की मन्त्रणा के अनुकूल समझने लगी। राम जानकी ने अपने सगुन का ठीक अर्थ लगाया। यह अपने अपशकुन को ठीक नही पढ सकी। कहने लगी कि मन्थरा! तेरी बात ठीक है मेरी नही। सचमुच राम के तिलक से मुझ पर विपत्ति का पहाड टूट पडेगा।

होनहार खराब होने ही से मैं बुरे सपने देखती थी। तुझसे कहे होती तो तू तभी से कोई न कोई उपाय सोचती। मेरी मूर्खता कि मैने तुझसे नही कहा। तू मेरी ऐसा हित चाहनेवाली बुद्धिमती है मुझे तुझसे कहना चाहिए था। सो दूसरो से कहा तुझसे नही। बुरे सपने का फल अनिष्ट समाचार श्रवण है। यथा लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई।

काह करौ सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊ॥४॥

दो अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहु क कीन्ह।
केहि अघ एकहि बार मोहि, दैअँ दुसह दुखु दीन्ह॥२०॥

जरौ शील शुभ गति सुजस, जौ बिगरै निज काज।
राज सँभारेहि पै बनै, कीरति सुकृत समाज॥३॥
कियो घोर सग्राम मधु कैटभ जीति न जाय।
रिपुवध मान्यौ धर्म हरि, शील सकोच विहाय॥४॥
अगणित लागन की बनी, बिगरी किये उपाय।
यातें करहु उपाय तुम, सब विधि हृदय दृढाय॥५॥

अर्थ क्या कहूँ सखी। मेरा स्वभाव सीधा है। हित अनहित कुछ समझ में नही आता। अपने चलते तो आजतक मैंने किसी का बुरा नहीं किया। नहीं जानती कि किस पाप से दैव ने एक बारगी मुझे दुसह दुख दिया।

व्याख्या जो जो बात मन्थरा ने कही हैं। वे सब गले उतर गयीं। उसे अब सखी का पद मिला। उसने कहा था राउर सरल सुभाउ। हित अनहित पछी पसु जाना। उसे ठीक समझते हुए अपने को सूधी मान लिया। यह भी मान गयी कि मै हित अनहित नही पहिचानती। चेरी के कहने से संसार दूसरा दिखाई पडने लगा। जो मित्र थे वे शत्रु दिखाई देने लगे और परम शत्रु चेरी हितचिन्तक मालूम होने लगी।

रानी कहती है कि मुझे शत्रु मित्र की पहिचान नही थी। यह बात ठीक है। पर जहाँ तक मेरा बस चला मैंने किसी का बुरा नही किया। और अपकार करना ही बडा भारी पाप है। तब किस पाप से मै दासी हो रही हूँ और बेटा बन्दी हो रहा है। मैने सौत भाव नही रक्खा। निर्दोष को दण्ड मिल रहा है। पहिले से कभी कुछ दण्ड मिला होता तो सहने की शक्ति भी होती। एक बारगी इतना बडा दण्ड तो सर्वथा असह्य है।

नैहर जनमु भरब बरु जाई। जिअत न करबि सवति सेवकाई ॥
अरि बस दैउ जिआवत जाही। मरनु नीक तेहि जीवन चाही ॥१॥

अर्थ. नैहर मैके मे जाकर बल्कि जिन्दगी बिता दूँगी। परन्तु जीते जी सौत की गुलामी न करूँगी। जिसे दैव शत्रु के वश में रखकर जिलाता है उसके जीने से मरना अच्छा।

व्याख्या नैहर मे अपना कोई हक नही होता। इसलिए नैहर मे जीवन यापन करने को स्त्रियाँ बडे हेय दृष्टि से देखती है। रानी कहती है कि मुझे मैके जाकर जीवन यापन करना स्वीकार है। पर सौत की दासी बनकर यहाँ मै नही रह सकती। मन्थरा ने समझा दिया है कि जौ सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई। इसी पर रानी कह रही है कि मै घर न रहूँगी। नैहर चली जाऊँगी और वही जीवन का शेष काल व्यतीत कर दूँगी।

सौत शत्रु होती है। तुम्हारा कहना ठीक है। शत्रु के वश मे रहकर कौन जीना चाहेगा। पर दैव पर किसी का चारा नही है। यदि दैववश किसी को जीना पडे तो उससे मरना अच्छा। परवश होकर जीना अच्छा नही। पदे पदे अपमान सहना पडता है। फिर शत्रु के वश मे रहकर जीना कौन चाहेगा ?

दीन बचन कह बहुबिधि रानी। सुनि कुबरीं तिय माया ठानी ॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुखु सोहागु तुम्ह कहुँ दिन दूना ॥२॥

अर्थ: बहुत प्रकार से रानी दीन वचन कहने लगी। सुनकर कुबरी ने

त्रियाचरित्र फैलाया। बोली जी को छोटा करवे ऐसा क्या कह रही हो। तुम्हे सुख सोहाग नित्य दूना है।

व्याख्या : रानी होकर दीन वचन कह रही है। पति का भरोसा टूट गया। पुत्र का कुशल नही दिखायी पड रहा है। रानी अपार चिन्ता मे पडी है कि क्या करूँ। कहाँ जाऊँ। मेरा कोई नही है। सब लोग कौशल्या की ओर मिले हुए हैं। एक मन्थरा ही मेरी शुभचिन्तक है। उस बिचारी का किया क्या होगा ? मन्थरा ने समझ लिया कि अब यह दीन हो गयी। अब यह सब कुछ करेगी। पहिले उसने रानी को अथाह मे डाल दिया। अब सहारा देने के लिए त्रियाचरित्र फैलाया। कहने लगी कि ऐसी बातें न करो। अपने जो को छोटा क्यो करती हो ? तुम्हारा सुख और सोहाग नित्य दूना होता जायगा। अभी तो तुम्हारे पति राजा हैं। जब पुत्र युवराज होगा तब सुख सोहाग दूना हो जायगा।

अथाह मे पडा हुआ जीव तिनके का सहारा पकडता है और उसे छोडना नही चाहता। इसलिए अब वह रानी को सहारा पकडा रही है। नैहर जनम भरव बरु जाई का उत्तर देती है अस कस कहहु मानि मन ऊना। और जिअत न करबि सवति सेवकाई का उत्तर सुखु सोहाग तुम कहुँ दिन दूना कहकर देती है।

जेहिं राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि येहु फलु परिपाका ॥
जबते कुमत सुना मै स्वामिनि। भूख न बासर नीद न जामिनि ॥३॥

अर्थ जिसने आपका बुरा ताका है। उसी को यह पका हुआ फल मिलेगा। जब से मैंने हे स्वामिनि ! यह कुबुद्धि सुनी तब से मुझे न दिन को भूख लगती है और न रात को नीद लगती है।

व्याख्या अब अरि बस दैउ जिआवहिं जाही का उत्तर देती है कि तुम्हारे अनभल ताकनेवाल की ही उसके कर्मफल रूप मे यह दशा होगी। उसकी पेंच उलटी पड जायगी। मैं उस उद्योग म लगी हूँ। मुझे बडी चिन्ता है। जब से मैंने ये सब बातें सुनी तब से मारे चिन्ता के न दिन को भूख लगती है और न रात को नीद लगती है। ऐसा कहकर फिर उसी भावना को दृढ कर रही है पन्द्रह दिन तो समाज सजते हुआ। अयोध्या भर मे यह बात प्रख्यात है। कई दिन तो मुझे सुने हुआ। तुमसे बात छिपायी गयी। पर मेरे कान मे भनक पड गयी तभी से म सचेष्ट हूँ। लाचार होकर आज कहना ही पडा।

पूछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होंहि यहु साँची ॥
भामिनि करहु त कहउँ उपाऊ। हइ तुम्हरी सेवा बस राऊ ॥४॥

अर्थ मैंने गुनी सज्ञानियो से पूछा तो उन्होने रेखा खीच दी कि भरत राजा होगे। यह बात निश्चय है। हे भामिनि ! यदि तुम करो तो मैं उपाय बतलाऊँ। राजा तुम्हारी सेवा के वश मे है।

व्याख्या मैंने सुनकर यद्यपि उसी समय तुमसे नहीं कहा। पर हाथ पर हाथ रखकर बैठी नहीं रही। गुनी सज्ञानियो के यहाँ गयी। उन्होने विचार किया। तुम्हारा होनहार भला है। उन्होने रेखा खीचकर कहा कि भरत राजा होगे। यह बात सत्य है। अब उद्योग मात्र की देरी है। भरत के युवराज होने की ओर कैकेयी का ध्यान भी नहीं था। जब मन्थरा ने देख लिया कि अब कैकेयी को भरत का युवराज होना इष्ट है। तब कहती है तुम मेरी बात सुन लोगी पर करोगी नही। मुझसे व्यर्थ क्या पूछती हो? यदि मैंने कह भी दिया और तुमने न किया तो मेरी कुशल नहीं है। अतः वचन दो तो कहूँ। कारण यह कि मेरा वचन तुम्हारे सेवाधर्म के प्रतिकूल पड़ेगा। तुम सेवाधर्म में स्थित हो। पर राजा तुम्हारी सेवा के वश में हैं। तुम्हारे ही किये सब होगा।

दो० परउँ कूप तुअ बचन पर, सकौं पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुखु देखि बड़, कस न करब हित लागि ॥२१॥

अर्थ मैं तेरे कहने पर कूएँ में कूद सकती हूँ। पति पुत्र का त्याग कर सकती हूँ। तू मेरा बड़ा भारी दुःख देखकर कह रही है। मैं कल्याण के लिए क्यों न करूँगी?

व्याख्या भाव यह कि तुम्हारे कहने पर मैं लोक परलोक किसी का विचार न करूँगी। कूप में कूदने से परलोक का नाश कहा। पूत पति त्याग से इस लोक का नाश कहा। जो विपत्ति मेरे पर आया चाहती है उसके सामने लोक परलोक कुछ नहीं है। प्राण भी कुछ नहीं है। तू मेरी परमहित है। तेरा कहा अवश्य करूँगी। रानी कैकयी ने मन्थरा को वचन दे दिया। महाराज दशरथ की योग्या है। कभी वचन न छोड़ेगी।

कुबरी करि कबुली कैकई। कपट छुरी उर पाहन टेई ॥
लखइ न रानि निकट दुखु कैसे। चरइ हरित तिन बलिपसु जैसे ॥१॥

अर्थ कुबरी ने कैकेयी से कबूल कराके कपटरूपी छूरी को हृदयरूपी पत्थर पर घिसकर शान दिया। रानी अपने पास आये हुए दुःख को इस भाँति नहीं लख रही है। जैसे बलिदान का पशु हरी घास चरता है।

व्याख्या कुबरी को बड़ा भारी डर था कि मेरे कहने पर यदि यह नट गयी तो मेरी दुर्दशा का अन्त नहीं है। अतः उसने पहिले ही कैकेयी से कबूल करा लिया कि तेरे कहने पर कूएँ में कूद पड़ूँगी। पति पुत्र को भी छोड़ दूँगी। तब कपट की छूरी को अपने पत्थर जैसे कलेजे पर रगड़कर शान दिया। अर्थात् उसकी धार तीखी बनायी। जिसमें सूत्र काट कर सके। क्योंकि अब वार किया ही चाहती है। यदि पत्थर सा कलेजा न हो तो कपट की छूरी ठीक काट नहीं करती। अपने ऊपर विश्वास करनेवाले पर नहीं चल सकती।

उसने रानी को बलिदान का पशु बनाया। बलिदान के पशु के आगे हरी हरी घास रख देते हैं। वह प्रसन्न होकर चरता है। उसे पता नही कि उस पर प्राणघातक चोट होनेवाली है। वह घास रखनेवाले को हितैषी समझता है। उसके चोट करने की तैयारी छूरी के पत्थर पर रगडकर शान देने को नही देखता। इसी भाँति रानी कुबरी की दी हुई आशा पर भूली हुई है कि मेरा सुख सोहाग अब दूना हुआ चाहता है। यह नही समझती है कि कुबरी अपने स्वार्थ के लिए उसका सर्वनाश किया चाहती है। रानी के न लखने के लिए उसने आड खडा कर दिया है कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाडि अब होब कि रानी। रानी समझती है कि वस्तुत इसे लाभ हानि नही है। यह मेरे हित के लिए सब कर रही है। उसके सूक्ष्म स्वार्थ पर रानी की दृष्टि नही जा रही है।

सुनत बात मृदु अत कठोरी। देति मनहुँ मधु माहुर घोरी॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाही। स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाही॥२॥

अर्थ बात तो मुलायम कहती है पर परिणाम उसका कठोर है। जैसे शहद मे विष घोलकर दे रही हो। चेरी बोली कि तुम्हे याद हो या न हो तुमने मुझसे एक कथा कही थी।

व्याख्या अब दूसरी उपमा देते हैं। पहिली से काम नही चलता। छूरी के आघात से तो उसी समय घोर वेदना होती है। परन्तु कुबरी का आघात तो वैसा नही है। वह तो अच्छा मालूम होता है। अत कहते है वह शहद मे विष मिलाकर दे रही है। जो तत्काल तो मीठा मालूम होता है पर परिणाम मे प्राण घातक है। देखने मे तो यह मालूम हो रहा है कि इससे सुख सोहाग दूना होगा। पर वस्तुत इसी से दोनो जायगा। पति और पुत्र दोना का त्याग होगा और आप भी कुएँ मे गिरेगी। यथा अवनि जमहि जाचति कैकेई। महि न बीच बिधि माच न देई। कपट की छूरी खून नही बहाती। वह मधुमिश्रित माहुर की भाँति परिणाम मे प्राणघातक होती है।

चेरी कहती है कि तुम्हारा भूलना स्वभाव है। तुम्हे भले ही स्मरण न हो। पर मुझे याद है। तुमने मुझे एक बात सुनायी थी। दण्डकारण्य मे वैजयन्त नगर के राजा तिमिध्वज जहाँ रहते थे वहाँ शम्बरासुर और इन्द्र का युद्ध हुआ था। उस युद्ध मे महाराज के साथ तुम भी गयी थी। वहाँ तुमने महाराज के मूर्च्छित होने पर रथ की रक्षा करके महाराज के प्राण बचाये थे।

दुइ बरदान भूप सन थाती। मागहु आजु जुडावहु छाती॥
सुतहि राजु रामहि बनवासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू॥३॥

अर्थ तुम्हारे दो वरदान राजा के पास धरोहर रखे हुए हैं। आज उन्ही को माँगकर छाती ठण्ढी करो। बेटे का राज्य और राम का बनवास दो और सौत के सब आनन्द को तुम ले लो।

व्याख्या उस समय रथ की रक्षा और अपनी रक्षा के पलटे म राजा ने तुमसे दो वरदान माँगने के लिए कहा। पर तुमने उस समय नही माँगा। उसे थाती के रूप म राजा के पास ही छोड दिया। कहा कि जिस समय मुझे आवश्यकता होगी माँग लूँगी। वह थाती तुम्हारी राजा के पास रक्खी हुई है। तुम्ह कुछ करना नही है। अपनी थाती माँगनी है। आज उसी को माँगकर अपनी छाती ठण्ढी करो। एक वरदान मे बेटे के लिए राज्य मागो। दूसरे म राम के लिए वनवास माँगो। बस जिस आनन्द को तुम्हारी सौत चाहती है वह तुम्हारा हो जाय और तुम्हारी सौत सदा के लिए निरानन्द हो जाय। राम को वन्दी करने म सम्पूण प्रजा विगड जायगी और उनके यहाँ रहने से भरत का राज्य सुस्थिर न होगा। राम धर्मात्मा होने पर भी राज्य के लिए लड सकते हे। यथा—क्षत्रियाणामय धर्मो यत्प्रजापरिपालनम्। वधश्च धमयुद्धेन स्वराज्यपरिपन्थिनाम्। वि पु। क्षत्रिया का धम है कि प्रजा का पालन करें और धमयुद्ध से अपना राज्य छीनना चाहनेवाला का वध कर। इसलिए उनका वनवास माँगा। जो करना हो आज कर लो। कल कुछ न कर सकोगी।

भूपति राम सपथ जब करई। तब मागेहु जेहि बचन न टरई ॥
होइ अकाजु आजु निसि बीते। बचनु मोर प्रिय मानहु जी तें ॥४॥

अर्थ राजा जब राम की शपथ कर ले तब वरदान माँगना। जिससे वचन टल न सके। आज की रात बीत जाने से काम बिगड जायगा। मेरी बातो को हृदय से प्रिय समझना।

व्याख्या पहिले यह उपाय होना चाहिए कि देने का निश्चय कराने के लिए राजा रामजी की शपथ लें। तब माँगना। फिर राजा बात स न हटगे और न मन्त्री हटा सकेंग। नही तो तुम्हारे माँगने और राजा के दने को गिनती गुरुजी और मन्त्री नम म कर लेंगे। आज रात का काम बना ता बना। सवेरा हाते ही फिर कौन किसकी सुनता है। मेरी बाता को भीतर से प्रिय मानना। वडे वडे प्रलोभन और वडा वडा भय दिखाया जावेगा। पर मेरी बाता को ही प्रिय समझना। उन प्रलोभना म न आना होइ अकाज कौन बिधि राती की जो उस चिन्ता थी सो विधि उसन बेठा दी।

दो बड कुघातु करि पातकिनि, कहसि कोपगृह जाहु।
काजु सँवारेहु सजग सबु, सहसा जनि पतिआहु ॥२२॥

अर्थ उस पापिनी ने बडा कुघात विश्वासघात करके कहा कि अब कोपभवन म चलो जाओ। सब काम को सावधान होकर सँवारना। एकाएक किसी बात पर विश्वास न करना।

व्याख्या जो कपट की छूरी उसने पत्थर से हृदय पर तीखी की थी उससे वार कर दिया। कपट की छूरी का वार है इसलिए मधुमाहुर सा मीठा लगा।

जिस ताक मे वह थी सो पूरा हुआ। अब रानी को कोपगृह[1] जाने की सलाह दे रही है। जिसमे राजा को शीघ्र ही पता लग जाय और तुरन्त मनाने के लिए आवें और बात फूटे नही। नहीं तो राजा किस महल मे जायँगे इसका क्या ठीक है। फिर सावधान किये देती है कि बडी होशियारी से काम लेना। विश्वास मे ही पडकर बडे बडे मारे गये हैं। महाराज का भी विश्वास न करना। डरती है कि राजा का इसका जहाँ सामना पडा कि इसने विश्वास किया। अत न विश्वास करने के लिए सहेजती है। रानी का उसके ऊपर इतना बडा विश्वास है और यह उन्ही के साथ घात करती है। अत विश्वासघातिनी है। इसलिए कवि ने पापिनी कहा।

कुबरिहि रानि प्रान प्रिय जानी। बार बार बडि बुद्धि बखानी ॥
तोहि सम हितु न मोर ससारा। बहे जात कइ भइसि अधारा ॥१॥

अर्थ कुबरी का रानी ने प्राणप्रिय जानकर बार बार उसकी बुद्धि की बडी प्रशसा की। कहा कि ससार म तुझसा मेरा कोई हित नही है। बहे जाते हुए के लिए तू आधार हो गयी।

व्याख्या अब कुबरी रानी को प्राणप्रिय हो गयी। रानी उसकी बुद्धि पर लट्टू है। बार बार उसकी अतीव बुद्धिमत्ता की प्रशसा करती है। सब लोग नाहक इसे मतिमन्द कहते ह। ऐसी पैनी बुद्धि तो किसी का नही है। उससे कहती हैं कि पति पूत कोई तेरे सा मेरा हित नहीं है। मैं तो प्रवाह म बही जाती थी। जैसा लोग कहते और समझाते थे वैसा ही मैं भी समझती थी। राम का तिलक सुनकर मैं तो तुझ मनभावती वस्तु देने को प्रस्तुत थी। पर तूने उसका लालच नही की। मुझ बहती हुइ को तू ही आधार मिली। अब तुझे पाकर प्रवाह का विरोध करके बच सकती हूँ।

जौं बिधि पुरब मनोरथु काली। करौं तोहि चखपूतरि आली ॥
बहु बिधि चेरिहि आदरु देई। कोपभवन[1] गवनी कैकेई ॥२॥

अर्थ यदि ब्रह्मा मेरा मनोरथ पूरा कर द तो कल तुझ आँख की पुतली बनाऊँगी। बहुत प्रकार से चेरी को आदर देकर कैकयी कोपभवन मे गयी।

व्याख्या जो कुछ होना है आज रात को होगा। यदि मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ महाराज ने धरोहर की भाँति रक्खे हुए वरदानो को मुझ दिया। भरत युवराज हुए

---

१ राजाओ के यहाँ कोपगृह होता था। क्रोध आने पर उस गृह मे चले जाने का विधान था। जिसके हाथो म बडा अधिकार होता है उसके क्रुद्ध होने से बड अनर्थ की सम्भावना होती है। उसके एकान्त म रहने म ही कुशल है। वहाँ उसे अपने चित्त के समाधान करने का अवसर मिलता है और वे ही लोग उसके पास जाने का साहस करते हैं जो उस क्रोध का परिमार्जन कर सकें।

और राम वन गये तो तुझे आँख की पुतली बनाऊँगी। तेरे ही द्वारा देखूँगी। वस्तुतस्तु राज की बागडोर तेरे हाथ मे रहेगी : जैसा मन्थरा ने सोचा था वैसा ही हुआ। अब मधु मिलने की आशा दृढ हुई। देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गवँ तकै लेउँ केहि भाँती। चेरी को बहुत प्रकार से आदर दिया। अर्थात् आज से तू मेरी सखी है। मन्त्री है। ऐसा कहकर जिन वस्त्र आभरण के धारण करने का दासियो को अधिकार नही है। जिन वस्त्र भूषणो को सरदार या मन्त्री की स्त्रियाँ धारण कर सकती हैं। वे वस्त्र आभूषण मन्थरा को देकर उसे मन्त्री पद देकर तब कैकेयी कोपभवन गयी।

विपति बीजु बरषा रितु चेरी। भुँइ भइ कुमति कँकई केरी ॥
पाइ कपट जलु अकुर जामा। बर दोउ दल दुख फल परिनामा ॥३॥

अर्थ : विपत्ति बीज हुई। चेरी वर्षाऋतु हुई। कैकेयी की कुमति पृथ्वी हुई। कपट का जल पाकर अँखुआ निकला। दोनो वर पत्ते हुए और परिणाम मे दु:ख यही फल हुआ।

व्याख्या : तसि मति फिरी अहइ जसि भावी। वही भावी विपत्ति बीज हुई। जिस भाँति बीज पृथ्वी के भीतर पड़ा रहता है। उसे कोई नही जानता। जब वर्षाऋतु में पानी बरसता है तब बीजों के अँखुये निकलते है। उसी भाँति इस भावी विपत्ति का किसी को पता नही था। यथा : मिलेहि माँझ बिधि बात बिगारी। जहँ तँह देहिं कैकइहि गारी। जब चेरी ने वर्षाऋतु होकर कपट जल बरसाया तो वह बीज कैकयी की कुमति रूपी भूमि मे अङ्कुरित हुआ। अङ्कुरित होने पर दो पत्ते पहिले व्यक्त होते हैं। यहाँ दोनो वरदान ही दोनो पत्ते हैं। यही विपत्ति का वृक्ष दु:ख रूपी फल का देनेवाला है।

कोप समाजु साजि सब सोई। राजु करत निज कुमति बिगोई ॥
राउर नगर कोलाहलु होई। यहु कुचालि कछु जान न कोई ॥४॥

अर्थ : कोप का सब समाज सजकर सोई। राज्य करते हुए अपनी कुबुद्धि से मारी पड़ी। राजमहल और नगर में धूम मची हुई है। इस कुचाल का किसी को पता नही।

व्याख्या : जिस भाँति हर्ष का साज समाज होता है। उसी भाँति कोप का भी साज समाज होता है। राजाओं मे दोनो के व्यक्त करने का अधिक साधन होता है। उनके व्यक्त करने मे ही बहुत कुछ वेग कम हो जाता है। कोप और हर्ष दोनो मनोविकार हैं। अत: मन के स्वास्थ्यलाभ के लिए उनके पृथक् पृथक् साज-समाज होने ही चाहिए। कोप के साज समाज का वर्णन महाराज के आने पर कवि करेंगे। इसलिए यहाँ नही करते। इस समय कोप का साज समाज करके कोपभवन मे जाने का स्पष्ट अर्थ यह है कि मैं इस अभिषेकोत्सव से अप्रसन्न हूँ और इससे कोई सम्बन्ध नही रखना चाहती! कवि कहते है कि कुबुद्धि का प्रभाव देखो। कैकेयी

राज्य करती थी। दुःख का कोई कारण न था। सो उसकी कुबुद्धि हो उसे कष्ट मे डाल रही है।

राजकुल का तद्भवरूप राउर है। अन्तःपुर के लिए इसका प्रयोग होता है। भाव यह कि अन्तःपुर मे और उसके बाहर सम्पूर्ण नगर मे इस समय राजतिलक की धूम मची हुई है। इस समय इतना बडा कुचक्र चल रहा है : इस बात का किसी को पता नही है : कैकेयी महारानी का कोपभवन में प्रवेश साधारण बात नही थी। इस समय कोपभवन मे प्रवेश करना इस बात की घोषणा करना है कि मै इस राजतिलक से अत्यन्त रुष्ट हूँ।

दो० प्रमुदित पुर नर नारि सब, सजहिं सुमंगलचार।
एक प्रबिसहिं एक निर्गमहिं, भीर भूप दरबार ॥२३॥

अर्थ : आनन्द मे विभोर होकर नगर के नर नारी सुन्दर मङ्गलाचार सज रहे है और राजद्वार पर बडी भीडभाड है। कोई बाहर निकल रहा है और कोई भीतर जा रहा है।

व्याख्या : राम राज अभिषेकु सुनि हिय हरषे नर नारि। लगे सुमंगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारि। इस दोहा से जिस प्रकरण का उपक्रम किया था उसी का उपसहार दिखला रहे है। यहाँ यह भी दिखला दिया कि विधि की अनुकूलता नही है। विपत्ति के बीज मे अङ्कुर निकल पडा। दरबार शब्द का प्रयोग ग्रन्थकार ने द्वार के अर्थ मे किया है। यथा गयउ सभा दरबार तब सुमिरि रामपद कज। सिंघ ठवनि इत उत चितव धीर बीर बल पुज। तुरित निसाचर एक पठावा। समाचार रावनहिं जनावा। सो राजद्वार पर भीड है। कैकेयी के कुचाल का पता नगरवासियो को तो है ही नही। स्वय महाराज भी कुछ नही जानते।

बाल सखा सुनि हिय हरषाही। मिलि दस पाँच राम पहिं जाही॥
प्रभु आदरहिं प्रेमु पहिचानी। पूँछहिं कुसल खेम मृदु बानी ॥१॥

अर्थ : बचपन के साथी यह समाचार पाकर हृदय मे हर्षित होते हैं। दस पाँच मिलकर रामजी के यहाँ जाते हैं। प्रेम को पहिचान करके प्रभु आदर करते हैं और मृदुबानी से उनका कुशलक्षेम पूछते है।

व्याख्या : बचपन की मैत्री बडी दृढ होती है। भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा। वही बालसमाज अब बडा हुआ है। मृगया आदि खेल के समय अब भी उनकी बराबर बुलाहट होती है। यथा : बधु सखा सँग लेहिं बोलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई। वे सब भी आपस मे सखा है। अतः समाचार पाकर बडे प्रसन्न होते हैं। हमारा सखा राजा होगा। सो दस पाँच इकट्ठे होकर बधाई देने के लिए रामजी के पास जाते हैं। सखा का सम्बन्ध तो था ही अब राजा प्रजा का सम्बन्ध भी हुआ चाहता है।

प्रीति पहिचान यह रीति दरबार की। इसलिए कहते हैं कि प्रीति पहिचान कर प्रभु आदर दे रहे हैं। अर्थात् जिसकी जितनी प्रीति है उतना ही उसको आदर दिया जा रहा है। सखा की भाँति ही आदर है। प्रभुता पर कुछ ध्यान नहीं है। वक्ता, वाणी और वाच्य तीनों ही अच्छे हैं। वक्ता स्वय प्रभु, वाणी मृदु और वाच्य कुशलक्षेम। खेल का समय बीते बहुत दिन हुए। अब भेंट कुछ दिनों पर होती है। इसलिए कुशलक्षेम पूछा।

फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई। करत परसपर राम बड़ाई ॥
को रघुबीर सरिस संसारा। सीलु सनेहु निबाहनिहारा ॥२॥

अर्थ : प्रिय की आज्ञा पाकर घर लौटते हैं। आपस मे बडाई करते जाते है कि रघुवीर के समान शील और स्नेह का निबाहनेवाला संसार मे कौन है ?

व्याख्या : बहुत देर तक नही ठहरते। क्योंकि इन्हे बहुतो से मिलना है। कार्यभार अधिक है। फिर भी आज्ञा माँगकर और मिलने पर लौटते हैं। रामजी प्रिय हैं। उनके आज्ञा देने मे प्रेम झलकता है। सम्मान की प्राप्ति से प्रसन्न है। रास्ते मे प्रशसा करते हुए लौटते हैं। यही सच्ची प्रशसा है। सखा है : मुख पर प्रशसा नही करते। शील के निर्वाह का पता सम्मान से लगा और स्नेह का कुशलक्षेम पूछने से। राजा मित्र केन दृष्ट श्रुतं वा। परिस्थिति के परिवर्तन मे शील स्नेह का निर्वाह कठिन है। राजा द्रुपद ने अपने बालसखा द्रोणाचार्य का अनादर किया। अत कहते है : शील स्नेह के निर्वाह करनेवाले रघुवीर ही हैं।

जेहि जेहि जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं ॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यहु ओर निबाहू ॥३॥

अर्थ : कर्म के वश जिस जिस योनि मे हम भ्रमते फिरें वहाँ वहाँ ईश्वर हमे यह दे कि हम सेवक हो और सीतानाथ स्वामी हो। इस ओर नाता का निर्वाह हो।

व्याख्या : रामजी के सखा हैं। बडे उच्चकोटि के उपासक हैं। मोक्ष नही चाहते। अशुभ कर्म के फल से छुटकारा नहीं चाहते। बालि की भाँति इतना ही चाहते हैं जेहि जोनि जन्मौ कर्मबस, तहँ राम पद अनुरागऊँ। सेवक स्वामी के नाता का निर्वाह होता चला जाय। प्रत्येक जन्म में सखा हो। इस नाते पर आग्रह नहीं है। आग्रह सेवकसेव्यभाव के बने रहने पर है।

अस अभिलाषु नगर सब काहू। कैकयसुता हृदय अति दाहू ॥
को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मतें चतुराई ॥४॥

अर्थ : नगर मे सभी को ऐसा ही अभिलाष है। पर राजा कैकय की बेटी के हृदय मे बडी भारी जलन है। बुरी सगत पाकर कौन नहीं बिगडता। नीच की राय होने से चतुराई नही रह जाती।

व्याख्या सम्पूर्ण अयोध्यावासियो को श्रीरामजी के प्रति ऐसा अनुराग है कि भावी जन्म म भी सेवकसेव्यभाव बने रहने की ईश्वर से प्रार्थना करते है। परन्तु कैकय देश मे उत्पन्न यहाँ दो है। एक कैकय की चेरी और दूसरी कैकय की बेटी। सो चेरी का दाह वह आय है। यथा राम तिलकु सुनि भा उर दाहू। अब कैकय की बेटी के हृदय का अति दाह कहते है। इन दोनो व्यक्तियो की भावना अयोध्यावासियो स मेल नही खाती। अत कवि इनका परिचय कैकय देश से सम्बन्ध दिखलाकर दते है।

जिसके अभिषेक से सम्पूर्ण राष्ट्र को आनन्द हो उसके राजतिलक से दाह होना तो अत्यन्त पतन का चिह्न है। फिर जिसका जन्म राजघर म हो और व्याह राजघर मे हुआ हो उसका ऐसा सङ्कीर्ण हृदय कैसे हुआ ? इस पर कवि कहते है कि कुसङ्गति से बचना चाहिए। कुसङ्गति के कारण कैकेयी का ऐसा पतन हुआ। वह कपट पेटारी की सगति म पड गयी। अत उसकी उदार बुद्धि का नाश हुआ। या लोकद्वयसाधनी चतुरता सा चातुरी चातुरी जिससे दोनो लोक सुधरे वही चतुरता चतुराई है। नीच का साथ हो जाने से निश्चय चतुराई का नाश होता है। परलोक से ध्यान हटे विना नही रहता।

१० नृपवचन राजरसभङ्ग

दो साँझ समय सानद नृपु, गयेउ कैकई गेहू।
गवनु निठुरता निकट किय, जनु धरि देह सनेह ॥२४॥

अथ सन्ध्या के समय आनन्द से राजा कैकेयी के महल मे गये। मानो स्नेह शरीर धारण करके निष्ठुरता के पास गया।

व्याख्या महाराज को रानी कैकेयी अत्यन्त प्रिय है। अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं तो उस आनन्द की अभिवृद्धि के लिए कैकेयी के महल मे जाते है। आज महाराज बडे आनन्दित हैं। स्वय शुभ समाचार सुनाने के लिए कैकेयी के महल मे जा रहे हैं। इस आशा से कि इसको भरत से अधिक रामजी प्रिय है। वह अत्यन्त ही प्रसन्न होगी। पर बात उल्टी पडी। जिसे स्नेहमय समझते थे वह शरीरधारी निष्ठुरता मालूम पडी। किसी प्रकार से द्रवीभूत होनेवाली नही।

कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ। भय बस अगहुड परइ न पाऊ॥
सुरपति बसइ बाहुँबल जाके। नरपति सकल रहहि रुख ताके ॥१॥

अर्थ कोपभवन सुनकर राजा सङ्कुचित हो गये। डर के कारण उनका पर आगे की ओर नही पडता है। इन्द्र जिसके बाहुबल से बसते हैं और सब राजा लाग रुख देखते रहते है।

व्याख्या महाराज के आने पर रानी स्वागत के लिए आगे आती थी। सो न आयी। महाराज ने जब पूछा कि तुम्हारी स्वामिनी कहाँ हैं ? दासियो ने

कहा कोपभवन मे हैं। सुनते ही महाराज सङ्कुचित हो गये कि इस समय कोपभवन जाने का अर्थ बड़ा बेढङ्गा लगेगा। लोग समझेंगे कि राजा के घर मे फूट है। कैकेयी रामजी का अभिषेक नही चाहती। स्त्रीजित् की दशा कहते हैं कि महाराज कोपभवन मे मनाने जाना चाहते हैं। पर डर से आगे पैर नही उठ रहा है। ससार मे महाराज के बल और शौर्य की प्रशंसा है। इन्द्र के ऊपर आपत्ति आने पर महाराज दशरथ सहाय होते है। इसलिए कहते हैं कि देवताओं के राजा उनके भुजबल के आश्रित होकर बसते हैं और मनुष्यो के राजा तो रुख देखा करते है कि आज्ञा होने के पहिले ही महाराज के चाहे हुए कार्य का सम्पादन कर दें। यथा : नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे। लोकप करहिं प्रीति रुख राखे।

सो सुनि तिय रिस गयेउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई ॥
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे ॥२॥

अर्थ : वह स्त्री का क्रोध सुनकर सूख गये। देखो काम के प्रताप की महिमा। शूल, वज्र और खड्ग के जो सहनेवाले है उन्हे कामदेव ने फूल के बाणो से मारा।

व्याख्या : ऐसे शूरवीर स्त्री का क्रोध सुनकर सूख गये। इसमे स्त्री की कोई करामात नही है। यह तो काम के प्रताप की महिमा है। काम को स्त्री का बल रहता है। यथा : काम के केवल नारि। सो स्त्री का सामना भी न पड़ा। स्त्री के क्रोध का समाचार सुनकर सूख गये। प्रतापी स्वयं सब कार्य अपने हाथ से सम्पादन नही करता। उसके नाम से कार्य होता है। यहाँ न स्त्री को उपस्थिति है न काम की उपस्थिति है। केवल स्त्री के क्रोध के नाम से इतने बडे वीर सूखे जा रहे है। यह काम के प्रताप की महिमा है।

शूल छेदन करता है। असि भेदन करता है। वज्र चूर चूर कर देता है या झुलस देता है। सो इन अस्त्रो को महाराज दशरथ ढाल पर नहीं रोकते थे। छाती पर लते थे। वे ही आज कामदेव के फूल का बाण सहने मे असमर्थ हो रहे हैं। अथवा घोर सग्राम मे अनेक शस्त्रो के प्रहार से तो महाराज बचे पर काम के सुमन शर से नही बचेंगे। इसलिए सुमन सर मारे कहा।

सभय नरेसु प्रिया पहिं गयेऊ। देखि दसा दुखु दारुन भयऊ ॥
भूमि सयन पटु मोट पुराना। दिये डारि तन भूषन नाना ॥३॥

अर्थ : डरते हुए राजा प्रिया के पास गये। उसकी दशा देखकर दारुण दुःख हुआ। जमीन पर सोयी हुई है। मोटा कपड़ा पहन रखा है और शरीर के नाना प्रकार के गहनो को फेंक दिया है।

व्याख्या : यद्यपि नरेश है और प्रिया के पास जा रहे हैं। फिर भी डर रहे हैं। पहिले कह आये है कि डर से आगे पैर नही पड़ता। परन्तु बिना मनाये भी तो काम नही चलता। इस समय साहस खिसका है कि महारानी तक जाय। स्वय महाराज भयभीत हो रहे हैं। फिर भी डरते डरते गये। प्रिया की दशा देखकर तो

दारुण दुःख हुआ। भाव यह कि कोपभवन सुनने से ही दुःख हुआ था। अब जो कोप के साज मे जब प्रिया को देखा तो महाराज को असह्य दुःख हुआ।

अब कोप का समाज साज कहते हैं कि रानी पृथ्वी पर पड़ी हैं। मोटे पुराने कपड़े पहने हुए है। शरीर पर के आभूषणों को उतारकर फेंक दिया है। भाव यह कि मै अनाथा हूँ। दासी हूँ। मुझे अब सुख के साज से क्या मतलब ? जो तुम काल पाकर हमे बनाना चाहते हो वह मुझे आज ही स्वीकार है।

कुमतिहि कसि कुबेषता फाबी। अनअहिवातु सूच जनु भावी ॥
जाइ निकट नृपु कह मृदु बानी। प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी ॥४॥

अर्थ : इस कुबुद्धि को कुवेष धारण करना कैसे फब रहा है। मानो भावी विधवापन को सूचित कर रही है। निकट जाकर राजा कोमल बात बोले कि हे प्राणप्रिये ! तुम क्यों रूठ गयी हो ?

व्याख्या : कवि कहते हैं कि भवितव्य के अनुसार रुचि हो जाती है। कुबुद्धि कैकेयी को आज यह कुरूपता अच्छी लग रही है। सब सुख साज समाज सुलभ है। उसे छोड़कर इसने विधवा का सा स्वरूप बना रक्खा है। मानो भवितव्य वैधव्य की सूचना दे रहा है।

राजा निकट चले गये। प्रसन्न करने के लिए मृदुवाणी से प्रिये ! कहकर सम्बोधन किया और रूठने का कारण पूछा। भाव यह कि मुझे नही मालूम कि तू किसलिए रूठी हुई है। यदि मालूम होता तो तुम्हारा अभीष्ट पूरा करके तब आते। इसलिए अपने रूठने का कारण बतलाओ। मेरे जान मे कोई ऐसी बात नही हुई है जो तुम्हे अप्रिय हो। यदि अनजान मे कुछ हुआ हो तो मालूम होने पर तुरन्त दुरुस्त किया जा सकता है। किसी को भी तुम्हारे रूठने का कारण नही मालूम। अतः तुम्हारे बतलाने से ही काम चल सकता है।

छं. [1]केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारई।
मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि बिषम भाँति निहारई ॥
दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई।
तुलसी नृपति भवतब्यता बस काम कौतुक लेखई ॥

अर्थ : रानी किसलिए रूठी हो ? हाथ छूने से पति को रोक रही है। मानो क्रोध से भरी सर्प की स्त्री भयानक रीति से देख रही है। दोनों वासनाएँ दो जीभ हैं और वर दांत है : दंशन के लिए मर्म स्थान देख रही है। तुलसीदासजी कहते हैं कि राजा होनहार के वश इसे काम कौतुक मान रहे है।

महाराज कह रहे हैं कि रानी तुम्हारे रूठने का कारण क्या है ? उत्तर न पाकर पाणिस्पर्श करना चाहते हैं। परन्तु वह हाथ छूने नही देती और क्रोधभरी

१. इस काण्ड के सभी छन्द हरिगीतिका हैं।

क्रूर दृष्टि से राजा की ओर ऐसी देख रही है। मानो वह उनकी स्त्री ही नहीं है। साँप की स्त्री है। भाव यह कि मुझे न छूओ। तुम्हारा मन मलिन है। झूठा प्रेम दिखाकर ठगने आये हो। मुझ सरलहृदया के साथ तुम्हारा ऐसा कपट व्यवहार कि तुम मुझे कौसिल्या की दासी और मेरे बेटे को राम का बन्दी बनाना चाहते हो मन्थरा की दी हुई दृष्टि से देख रही है। यथा : मन मलीन मुहु मीठ नृपु राउर सरल सुभाउ। सर्पिणी को दो जीभ होती हैं। इसकी दो वासनाएँ दोनो जीभ हैं। १. भरत को राज्य २ रामजी को वनवास। और दशन करनेवाले दो दाँत होते हैं। यहाँ जो दो वरदान माँगनेवाली है वे ही दोनो दाँत हैं। सर्पिणी यदि मर्मस्थान मे दंशन कर ले तो काटा हुआ जी नहीं सकता। अत: रानी रूपी सर्पिणी मर्मस्थान देख रही है कि मर्मस्थान हाथ लगे तो दशन करूँ। यहाँ मर्मस्थान राजा द्वारा रामजी का शपथ ग्रहण है। यथा : भूपति राम सपथ जब करई। तब मागेउ जेहि बचन न टरई।

श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि राजा भवितव्यता के वश मे हैं। अत्यन्त स्पष्ट बात को नही लख रहे हैं। यह मान नहीं है। मान मे ऐसी क्रूरदृष्टि नही होती। रामजी के अभिषेक के समय कोपभवन प्रवेश का सिवा इसके दूसरा अर्थ ही नहीं होता कि रानी को रामजी के राजतिलक से अप्रसन्नता है। पर राजा भवितव्यता के वश होने से यह सब कुछ लख नहीं रहे हैं। इसे रानी की मानप्रियता समझ रहे हैं। यथा : तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहई। इतना बड़ा उलट फेर काम का खेल है जिसने इतने बडे चतुर राजा को अन्धा बना दिया : कामान्धो नैव पश्यति। यह नही देख रहे है कि सर्पिणी का लक्ष्य उन्ही पर है। उन्ही को सरोप विषम दृष्टि से देख रही है। यहाँ प्रेम का गन्ध भी नहीं है।

सो. बार बार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि।
कारन मोहि सुनाउ, गजगामिनि निज कोप कर ॥२५॥

अर्थ : बार बार महाराज कहते हैं कि हे सुमुखि ! हे सुलोचनि ! हे पिकबचनि ! हे गजगामिनि ! अपने क्रोध का कारण तो कहो।

व्याख्या : राजा मितभाषी होते हैं। उनके वचन का बडा मूल्य होता है। उनकी एकबार की दी हुई आज्ञा हटायी नही जा सकती। सो राजा एकबार के निवारण करने पर फिर स्पर्श का साहस नही कर रहे हैं। अपने प्रश्न का उत्तर न पाने पर भी बार बार वही पूछते जा रहे हैं : प्रान प्रिया केहि हेतु रिसानी ? केहि हेतु रानि रिसानि ? कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर, रानी को प्रसन्न करने के लिए कभी सुमुखि कहते हैं। कभी सुलोचनि कहते हैं। कभी पिकबचनि और कभी गजगामिनि सम्बोधन करके उसकी स्तुति करते हैं। सर्पिणी की भाँति फटाटोप करनेवाली को सुमुखि कहते हैं। विषम दृष्टि से क्रुद्ध होकर देखनेवाली को सुलोचनि कहते हैं। फूत्कार की भाँति हुँकार करके करस्पर्श को रोकनेवाली को पिकबचनि कहते हैं और सर्पिणी की भाँति पलटा खायी हुई को गजगामिनि कह रहे हैं : बात

यही ठीक है कि सौन्दर्य कोई वस्तु नही है। मनकी कल्पना मात्र है। रानी की ये सब कुचेष्टाएँ महाराज को प्रणय कोप मालूम हो रही हैं।

अनहित तोर प्रिया केइँ कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जमु चह लीन्हा ॥
कहु केहि रंकहि करउँ नरेसू। कहु केहि नृपहिं निकासउँ देसू ॥१॥

अर्थ प्रिये ! किसने तेरा अहित किया ? किसे दो सिर है ? किसे यम लेना चाहते हैं ? बतलाओ किस दरिद्र को राजा कर दूँ या किस राजा को उसके देश से निकाल बाहर करूँ।

व्याख्या जब बार बार पूछने पर भी क्रोध का कारण नही बतलाया तब राजा ने समझा कि मेरे ऊपर क्रुद्ध नही है। मालूम होता है किसी दूसरे ने इसका कुछ बिगाडा है। अत पूछते हैं कि तेरा अनहित किसने किया ? राजा के *अहित करने का किसी को साहस नही होता। तू तो मेरी प्रिया है।* तेरा अहित करने का किसे साहस हुआ ? उसे दण्ड देनेवाला मै हूँ। दण्ड दो प्रकार का होता है, १ शारीरिक और २ आर्थिक। सो यदि तुझे अपराधी को शारीरिक दण्ड दिलाना हो तो बतला मै उसका शिरच्छेदन कर दूँ। एक सिरवाला तो तेरा अपराध करके नही जी सकता। यदि किसी का दो सिर हो तो भले ही बच जाय। एक सिर उसका तो मै काट ही लूँगा। यदि किसी को आर्थिक दण्ड दिलाना हो तो वह यदि राजा भी हो तो मै उसका देश निकाला कर सकता हूँ। यदि किसी को कुछ देना चाहती हो तो मै उसे राजा बना सकता हूँ।

सकौ तोर अरि अमरउ मारी। काह कीट बपुरे नर नारी ॥
जानसि मोर सुभाउ बरोरू। मनु तव आनन चद चकोरू ॥२॥

अर्थ तेरा शत्रु यदि देवता भी हो तो उसे मार सकता हूँ। बेचारे नर नारी क्या है ? वे तो कीडे मकोडे हैं। हे सुन्दर ऊरुवाली ! तू तो मेरा स्वभाव जानती है कि मेरा मन तेरे मुखचन्द का चकोर है।

व्याख्या मै अमरो देवताओ का सहायक हूँ। पर यदि वे तुझसे शत्रुता करें तो उन्हे भी मै मार सकता हूँ। तेरा अनहित तो किसी मनुष्य ने ही किया होगा। वे क्या हैं ? कीडे मकोडे हैं। उनके मारने मे क्या रक्खा है ? भाव यह है कि जो मनोरथ हो उसे पूर्ण करने के लिए महाराज तैयार है। इतना बडा यशस्वी न्यायकारी राजा आज स्त्री का क्रीडामृग हो रहा है। स्त्री की प्रसन्नता के लिए सब कुछ करने को प्रस्तुत है।

कहते है कि इतने क्रोध की क्या आवश्यकता है ? मै तो तेरे वश मे हूँ। जो तू कहे वह मै करने को तैयार हूँ। तू मेरे स्वभाव से परिचित है कि मेरा मन तेरा मुख देखा करता है जैसे चकोर चन्द्र को देखता है। यहाँ मुखचन्द्र का घाटा नही है। पर मेरा मन तो तेरे ही मुखचन्द्र का चकोर है।

प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरें। परिजन प्रजा सकल बस तोरे॥
जौं कछु कहउँ कपटु करि तोही। भामिनि राम सपथ सत मोही॥३॥

अर्थ : प्रिये ! मेरे प्राण मेरे बेटे मेरा सर्वस्व मेरे कुटुम्बी मेरी प्रजा सब तेरे ही बश मे हैं। यदि मैं कुछ कपट करके तुझसे कहता होऊँ तो हे भामिनि ! मुझे रामजी की सौ शपथ है।

व्याख्या : मैं और मेरा जो कुछ है वह सब तेरे अधीन है। इसी भाव को दृष्टि मे रखकर कहा गया है : अमित दानि भर्ता बैदेही। मित ददाति च पिता मितं भ्राता मित सुत। अमितस्य च दातारं भर्तारं का नु सेवयेत्। मनु। अधम सो नारि जो सेव न तेही। महाराज के इतना कहने पर भी जब न पसीजी तब उन्होंने समझ लिया कि यह मेरे कहने पर विश्वास नहीं कर रही है और मेरी बातो मे इसे कपट का सन्देह हो रहा है। तब उसके विश्वास दिलाने के लिए महाराज ने रामजी की शपथ ली।

बिहसि मागु मनभावति बाता। भूषन सजहि मनोहर गाता॥
घरी कुघरी समुझि जियँ देखू। बेगि प्रिया परिहरहि कुबेषू॥४॥

अर्थ : मनचाही हुई बात हँसकर माँग लो और मनोहर शरीर पर आभूषण धारण कर लो। समय कुसमय को मनमे ख्याल करके देखो और हे प्रिये ! इस कुवेष का शीघ्र ही त्याग करो।

व्याख्या : महाराज कहते हैं कि लो ! अब हँस दो और जो जी चाहता हो उसे माँग लो। तुम्हारे अङ्ग मनोहर हैं। ये आभूषण के योग्य हैं। इनमे आभूषण साज लो। क्रोध का साज समाज एक न रहे। कहाँ कैसा मङ्गल का समय उपस्थित है कहाँ तुमने यह अमङ्गल वेष धारण कर रखा है। जो सुनेगा वह क्या कहेगा ? यह समय मङ्गलाचार का है। अत कुवेष के परित्याग मे देर न करो। जो तुम चाहोगी उसका मिलना ध्रुव है। पर माँगना पीछे और कुवेष परित्याग करो पहिले।

दो० यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि, बिहँसि उठी मतिमंद।
भूषन सजति बिलोकि मृगु, मनहु किरातिनि फंद॥२६॥

अर्थ : यह सुनकर और बड़ी शपथ मन मे गुनकर मतिमन्द हँस पड़ी और आभूषण सजने लगी। जैसे कि मृग को देखकर किरातिनी अपने फन्दे को सँवारने लगती है।

व्याख्या : रामजी के सौ शपथों को गुनकर और मन्थरा की बात : भूपति राम सपथ जब करई। तब मागेहु जेहि बचनु न टरई। मनमे गुनकर वह मतिमन्द कैकेयी हँस पड़ी। महाराज कहते हैं : बिहँसि मागु कैकेयी हँस पड़ी। महाराज कहते हैं : भूषन सजहि मनोहर गाता। कैकेयी भूषन सजने लगी। परन्तु वस्तुत

महाराज के कहने पर नहीं हँसती है। उनके शपथ लेने पर प्रसन्न होकर हँस रही है और महाराज को अपने फन्दे मे फँसाने के लिए आभूषण सज रही है। अत ग्रन्थकार उसकी उपमा किरातिनी के फन्दा सजने से दे रहे हैं। जिससे वह सम्मुखस्थ मृग को फँसाती है।

पुनि कह राउ सुहृद जिअ जानी। प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी॥
भामिनि भयउ तोर मनभावा। घर घर नगर अनद बधावा॥१॥

अर्थ फिर राजाजी उसे हितचिन्तक जानकर प्रेम से प्रफुल्लित होकर कोमल और सुन्दर वाणी बोले हे भामिनि! तेरी ही जी चाही बात हुई। नगर मे घर घर आनन्द का बधावा बज रहा है।

व्याख्या महाराज कैकेयी के भूषण सजने के अवसर पर उसे अधिक प्रसन्न करने के लिए शुभ समाचार सुना रहे हैं। उसे अब भी सुहृद समझते है। विचारते है कि मैने हँसने को कहा तो हँस पडी। गहना साजने को कहा तो साजने लगी। अत इसे अधिक प्रसन्न करने के लिए यह प्रिय समाचार इसी समय सुनाना चाहिए। सो सुनाने की इच्छामात्र से महाराज को आनन्द हो रहा है। मनम प्रेम है। तन मे पुलक है। वाणी मे मृदुता और मञ्जुलता है।

महाराज कहने लगे कि हे भामिनी! तू जो चाहती थी वही हो रहा है। बात यह है कि पहिले कैकेयी चाहती थी कि रामजी को राजतिलक हो। समाचार पाते ही मन्थरा को ईप्सित पुरस्कार दने को तैयार हो गयी थी। यथा रामतिलक जौ सो चेहुँ काली। देउँ मागु मन भावत आली। बात तो बिगडी है मन्थरा के बहकाने पर। पूर्वधारणा के अनुमार महाराज कह रहे है कि नगर मे घर घर बधावा बज रहा है और जिसका मनभावा हो रहा है उसका यह हाल!

रामहि देउँ कालि जुबराजू। सजहि सुलोचनि मगल साजू॥
दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू॥२॥

अर्थ : कल रामजी को युवराजपद दूँगा। हे सुलोचनि! तुम मङ्गलसाज साजो। सुनते ही तो उसका कठोर हृदय दलक उठा। जैसे बालतोड फोडा छू गया है।

व्याख्या : अब शुभ समाचार सुनाते है कि कल रामजी को युवराजपद दूँगा। अतः गहना सजने के बाद मङ्गल भी साजो। नगर मे तमाम मङ्गलसाज सजा जा रहा है और तुम्हारे यहाँ कुछ भी नही है। उलटे कोपभवन मे कोप का साज समाज बनाये पडी हो।

यद्यपि कैकेयी का हृदय कठोर हो गया था। फिर भी महाराज के मुख से इस वचन के सुनने पर उसके हृदय पर ऐसा आघात बैठा कि वह दलक उठा। बाल के टूटने से जो फोडा हो जाता है। उसके छूने से ऐसी पीडा होती है कि मनुष्य काँप उठता है। उसी भाँति कैकेयी का कलेजा काँप उठा। जहाँ व्यथा थी वही स्थान अकस्मात् स्पष्ट हो गया।

ऐसिउ पीर बिहँसि तेहिं गोई । चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई ॥
लखी न भूप कपट चतुराई । कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई ॥३॥

अर्थ : ऐसी पीडा को भी वह हँसकर छिपा ले गयी । जैसे व्यभिचारिणी स्त्री प्रकट होकर नही रोती । राजा कपट चतुराई को नही लख रहे हैं । क्योकि वह करोडों कुटिलों की मणिगुरु कूबरी की पढाई हुई है ।

व्याख्या : हुई तो उसे बडी भारी पीडा और सुख तथा दु ख दोनो चेहरे पर दर्पण के प्रतिबिम्ब की भाँति झलक उठने हैं । उस दु ख की झलक को कही महाराज न लख लें । इसलिए वह हँसकर उसे छिपा ले गयी । जैसे चोर नारी प्रत्यक्ष नही रोती । चोर नारी व्यभिचारिणी स्त्री को कहते हैं । आज भी राजा की रखेली को चोर महल कहा जाता है । जैसे व्यभिचारिणी स्त्री पति की चोरी से पर पुरुष के साथ प्रेम करती है । उसका अनिष्ट सुनकर मनसे तो रो देती है । बाहर से प्रीति छिपाने के लिए हँसती है । इसी भाँति रानी भी हँसकर अपनी पीडा को छिपा ले गयी । यही महाराज के साथ विश्वासघात का उपक्रम है ।

इस कपट चतुराई को महाराज नही लख रहे हैं । समझते हैं कि रामराज का समाचार सुनकर रानी आनन्द से हँस रही है । इतनी पण्डिताई कपट विद्या मे रानी को कहाँ से आगयी ? इसके उत्तर मे ग्रन्थकार कहते हैं कि करोडो कुटिलो की शिरोमणि कूबरी ने पढाकर पक्का कर रक्खा है । यथा . कहि कहि कोटिक कपट कहानी । धीरजु धरहु प्रबोधेसि रानी । तथा : काज सँवारेउँ सजगसबु सहसा जनि पतिआहु ।

जद्यपि नीति निपुन नरनाहू । नारि चरित जलनिधि अवगाहू ॥
कपट सनेह बढाइ बहोरी । बोली बिहँसि नयन मुहु मोरी ॥४॥

अर्थ : यद्यपि राजा नीति मे निपुण हैं । पर स्त्री चरित्र भी अथाह समुद्र है । फिर वह कपट का प्रेम बढाकर आँख और मुख को मोड़कर हँसती हुई बोली ।

व्याख्या : नीतिनिपुण सब चरित्रो का थाह लगा तो लेते हैं । पर त्रियाचरित्र उनके लिए भी अथाह समुद्र है । गुरु का पक्का चेला चोट नही खाता । मन्थरा कोटि कुटिलमनि गुरु है । उसकी कपट चतुराई को रानी नही लख सकी और रानी की कपट चतुराई को महाराज लखने में असमर्थ हैं । रानी का हृदय ऐसा दारुण हो गया है कि भीतर से पुत्र पति को त्यागने के लिए प्रस्तुत है । यथा : परउँ कूप तुअ बचन पर सकौं पूत पति त्यागि । और बाहर से नयन मुख मोड़कर स्नेह दिखाती हुई हँसकर बोली · यह विलविब्धित हाव है ।

दो. माँगु माँगु पै कहहु पिय, कबहुँ न देहु न लेहु ।
देन कहेहु बरदान दुइ, तेउ पावत संदेहु ॥२७॥

अर्थ हे प्रिय ! माँग माँग तो कहते हो पर कभी देना लेना कही कुछ भी नही। दो वरदान देने को कहा था। उनके मिलने मे भी सन्देह है।

व्याख्या . महाराज ने बार बार प्रिये कहकर सम्बोधन किया था। अत. रानी भी प्रिय कहकर सम्बोधन करती है और उपालम्भ करती हुई कहती है कि आप माँग माँग तो कह देते हैं पर उस वचन को कार्य मे परिणत नही करते। प्रमाण देती है कि पहिले भी इसी भाँति माँगु माँगु कहा था। परन्तु दिया क्या ? अब नया वरदान क्या दोगे ? जो दो वरदान देने के लिए कहा था वही दे दो तो मैंने बहुत पाया। मुझे तो सन्देह है कि उन्ही दो को न दे सकोगे। सन्देह प्रकाश करने म तात्पर्य यह कि महाराज उस सन्देह को दूर करने के लिए सत्य की सराहना करें। देहु न लेहु कहने का भाव यह कि ईप्सित देते भी नही और नही कहकर अपयश लेते भी नही। यथा देहु कि लेहु अयशकरि नाही।

जानेउ मरमु राउ हँसि कहई। तुमहि कोहाव परम प्रिय अहई ॥
थाती राखि न माँगिहु काऊ। बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ ॥१॥

अर्थ . राजा ने हँसकर कहा कि मैं मर्म जान गया। तुम्हे रूठना परम प्रिय है। तुमने धरोहर रखकर कभी नही माँगा। मेरा विस्मरणशील स्वभाव है। मै भूल गया।

व्याख्या महाराज ने तुरन्त समझ लिया कि असुर सग्राम मे दिये हुए दोनो वरदानो के विषय म कह रही है। सो तो इनका रक्खा ही है। इनके माँगने की देर है। इन्होने ही उस समय नही माँगा। कहा कि जब आवश्यकता होगी माँग लूँगी। सो वरदान मे देर होना अप्रसन्नता का कारण नही हो सकता। इनका मान करने का स्वभाव है। सो वरदान न देने का बहाना ढूँढकर मान किये हुए है। अत कहते है कि मुझे मर्म मालूम हो गया। तुम्हे रूठना बडा प्रिय है। उसी के लिए बहाना ढूँढ रक्खा है। तुम्हारी थाती रक्खी हुई है। नही माँगा इसमे दोष तुम्हारा है। यदि कहो कि धरोहर रखनेवाला यदि भूल भी जाय तो सच्चे महाजन को उचित है कि उसे याद दिलावे कि अपना धरोहर ले जाओ। इस पर महाराज कहते है कि मेरा विस्मरणशील स्वभाव है। मुझे भूल गया था कि तुम्हारा धरोहर रक्खा हुआ है। उसे बिना माँगे भी दे देना चाहिए।

झूठेहुँ हमहि दोषु जनि देहू। दुइ कै चारि माँगि मकु लेहू ॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहु बरु बचनु न जाई ॥२॥

अर्थ मुझे झूठमूठ दोष न दो। दो के बदले चार क्यो नही माँग लेती। सदा से रघुकुल की यह रीति चली आयी है कि प्राण चाहे चले जायँ। पर वचन न जाने पावे।

व्याख्या कुछ भी ससर्ग रहने से झूठा दोष लग जाता है। परन्तु यहाँ तो मेरा दोष से कोई ससर्ग ही नही है। धरोहर मे ब्याज नही लगता। सो मैं ब्याज

सहित देने को प्रस्तुत हूँ। ब्याज की पराकाष्ठा मूल को द्विगुणित कर देना है। सो तुम मुझसे दो के स्थान में चार वरदान माँग लो। कैकेयी ने कहा था देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत सदेहु। उसी का उत्तर देते हुए महाराज कहते हैं कि मेरे कुल की रीति है कि प्राण छोड देते हैं वचन नही छोडते। मैं उस कुल का अग्रणी होकर वचन कैसे छोडूँगा ? मैं अपना वचन छोड नही सकता।

नहि असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहि कि कोटिक गुंजा॥
सत्य मूल सब सुकृत सुहाए। वेद पुरान विदित मनु गाए॥३॥

अर्थ पातको के समूह इकट्ठे होकर भी झूठ के बराबर नहीं हो सकते। क्या करोडो घुंघुची पर्वत के समान हो सकती हैं ? जितने सुन्दर सुकृत हैं वे सब सत्यमूलक हैं। ऐसा ही वेद पुराण कहते हैं और मनु जी भी गान करते हैं।

व्याख्या और जितने पाप हैं वे सत्य के सामने वैसे ही हैं जैसे पहाड के सामने घुंघुची। अर्थात् सब पापो मे अति विशाल असत्य है। इसीलिए सबसे नीचे का नरक अवीची है। जिसमे झूठे डाले जाते है। भाव यह कि ऐसी कुलरीति होने का यथेष्ट कारण है। प्राण देना मेरे पूर्व पुरुषो को स्वीकार था पर इतना बडा पाप करना स्वीकार न था।

और भी एक बात है। जितने पुण्य हैं वे सत्य के आधार पर ही खडे हैं। सत्य के नष्ट होते ही पूर्व के सब पुण्य धराशायी हो जाते हैं। क्योंकि क्रिया के फल को आश्रय सत्य से ही मिलता है। यथा सत्यप्रतिष्ठायाम् क्रियाफलाश्रयत्वम् तथा समूल एव परिशुष्यति योऽनृत वदति। अज्ञातार्थज्ञापक होने से पाप पुण्य के निर्णायक वेद पुराण ही हैं। उनमे भी मनुस्मृति का पद बहुत ऊँचा है यन्मनुरवदत्तद्भेषजम्। मन्वर्थविपरीता या सा स्मृतिर्न प्रशस्यते। वेद कहता है कि जो मनु कहते हैं वही औषध है। जो मनु के कहने के विपरीत है वह स्मृति मान्य नही है। अत वचन को असत्य करके अपने पूर्वकृत पुण्यो का नाश और अवीची नरक को कौन स्वीकार करेगा ?

तेहि पर राम सपथ करि आई। सुकृत सनेह अवधि रघुराई॥
बात दृढाइ कुमति हँसि बोली। कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली॥४॥

अर्थ इस पर श्री रामजी की शपथ मुझसे हो पडी। रघुराई रामजी पुण्य और स्नेह की सीमा हैं। बात को पक्की करके कुमति हँसकर बोली। मानो दुष्ट आशय रूपी बाज का टोप खोल दिया।

व्याख्या रामजी सुकृत की अवधि हैं। यथा सब कोउ कहै राम सुठि साधू। रामजी स्नेह की अवधि हैं। यथा राम दस नहि बनै गोसाईं। भाव यह कि दोही का शपथ लिया जाता है। पुण्यात्मा का या अपने स्नेही का। सो रामजी दोनो की सीमा हैं। सो मैंने रामजी की शपथ ले ली। अब तो नही कहने के लिए अवसर ही नही रह गया।

महाराज के इतना कहने पर यह बात इतनी दृढ हो गयी कि नर्म कहकर किसी भाँति उडायी नही जा सकती। महाराज ने कहा था विहसि माँगु मन भावति बाता। सो हँसकर बोली। बाज के आँख पर पट्टी बाँधकर रक्खा जाता है जिसे टोप कहते है कि कही बेमौके झपट न पडे। कैकेयी के दुष्ट आशय की उपमा बाज से दी है। उसे वह कपट चतुराई रूपी टोप से छिपाये रही। अवसर पाकर टोप खोल दिया। अर्थात् हँसकर बोली। भाव यह कि आशय ही व्यक्त होकर वचन म परिणत हो जाता है।

दो० भूप मनोरथ सुभग बनु, सुख सुबिहग समाजु।
भिल्लिनि जिमि छाडन चहति, वचन भयकर बाजु ॥२८॥

अर्थ राजा का मनोरथ सुन्दर वन है और सुख ही सुन्दर चिडियो का समाज है। भीलनी मानो वचन रूपी भयङ्कर बाझ को छोडना चाहती है।

व्याख्या साँझ समय सानद नृपु गयउ कैकयी गेह। उसी आनन्द को यहाँ सुख कहा गया है। अथात् रामजी को राज्य देने का आनन्द। इस आनन्द के अन्तर्गत बहुत प्रकार के सुख है इसीलिए सुख सुबिहग समाज कहा। एक ही वचन के दो वरदान दो विभाग मात्र है। मानो वचनरूपी बाज के दोनो वरदान दो पञ्ज है। भयङ्कर वाज है एक एक पञ्ज म एक एक पक्षी के पकडने की ताकत रखता है। यहाँ कैकेयी की उपमा भिल्लिनी से दी। क्योकि भिल्लिनी चिडियो के शिकारके लिए बाज जिलाती है और चिडिया का समाज देखकर उसे छोड देती है। उस बाज द्वारा विहङ्ग समाज का सहार हो जाता है। यहाँ राजा के मनोरथ रूपी वन मे सुखरूपी चिडिया का समाज विहार करता था। सो कैकेयीरूपी भिल्लिनी के वचनरूपी बाज के चपेट से महाराज का मनोरथ वन सुख से शून्य हो जायगा।

सुनहुँ प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका ॥
मागौ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी ॥१॥

अर्थ हे प्राणप्रिय! मनोवाञ्छित सुनो। एक वर यह कि भरत को राजतिलक दो। दूसरा वरदान हाथ जोडकर माँगती हूँ। हे नाथ मेरे मनोरथ को पूरा करो।

व्याख्या प्राणप्रिय को छोडकर जी का चाहा हुआ कौन पूरा कर सकता है। अत कैकेयी प्राणप्रिय सम्बोधन दे रही है। बाज के पहिले पञ्जे की चोट है देहु एक बर भरतहि टीका। राजा चुप है। आकार से कुछ लक्षित नही होता। अत उसे स्वीकृत मान लिया।

पहिले वर के मिलने म कैकेयी को भी विशेष शङ्का नही थी। समझती थी कि यह वरदान मिल जायगा। दूसरे वर के मिलने म वडा सन्देह है। दूसरे वर को पहिले की भाति नही कह सकी। कहने म सिटपिटाती है। क्योकि स्वय

रामजी के तिलक की इच्छा प्रकट कर चुकी है। यथा : भामिनि भयउ तोर मन भावा। हाथ जोड़ रही है बोलने मे चूक हो रही है। मनोरथ शब्द का स्त्रीलिङ्ग मे प्रयोग कर रही है। कहती है कि आप नाथ हैं। आपके बिना मनोरथ कौन पूरा करेगा। अब बाज पहिले पञ्जे के शिकार को सँभालकर दूसरे पञ्जे से चोट किया चाहता है।

तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनबासी ॥
सुनि मृदु बचन भूप हियसोकू। ससिकर छुअत बिकल जिमि कोकू ॥२॥

अर्थ : तपस्वी का वेष धारण करके और विशेष रूप से उदासीन होकर चौदह वर्ष के लिए रामजी वनवासी हो। कोमल वचन को सुनकर राजा के हृदय मे शोक हुआ। जैसे चन्द्र के किरण के स्पर्श से चकवा विकल हो जाता है।

व्याख्या : पहिले चोट : वर का प्रभाव यह हुआ कि हृदय मे शोक हुआ। बाहर कुछ नही। मनोरथभङ्ग से दाह हुआ। यथा : सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरद चदनिसि जैसे। दूसरे पञ्जे की चोट। यह वरदान ऐसा माँगा जिससे अपनी निगाह से और दूसरो की निगाह से राजभाव जाता रहे। अत तापस वेष मे रामजी का रहना माँगती है। राज के मामलो से सम्बन्ध न रक्खें। मुनिव्रत वेष अहार से मनोवृत्ति बदल जाय। इसलिए उदासीन रहना माँगती है। कैकेयी के समक्ष मे उससे चौदह दिन बात छिपायी गयी। पन्द्रहवें दिन मन्थरा से पता चला। यथा : भयउ पाख दिनु सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू। अत एक एक दिन बात छिपाने के बदले मे एक एक वर्ष का वनवास माँगती है। फिर भी कैकेयी के हृदय मे छिपा प्रेम है। नही तो मन्थरा ने सदा के लिए वनवास कहा था। यथा : सुतहि राजु रामहि बनबासू। अथवा १४ वर्ष का समय भरत को अपने शासन को दृढ मूलक बना लेने के लिए यथेष्ट समझकर १४ वर्ष का वनवास माँगा। अथवा बुध की महादशा मे तीन वर्ष व्यतीत हो चुके थे। चौदह बाकी थे। इसलिए रानी के मन मे चौदह वर्ष के लिए वनवास माँगने का सङ्कल्प उठा। मृदु वचन यथा : सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का।

गयउ सहमि नहि कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा ॥
बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनउ मनसु तरु तालू ॥३॥

अर्थ : सहम गये। कुछ कहते न बना। मानो वन मे लवा के ऊपर बाज झपट पड़ा। राजा एक बारगी बेरग हो गये : रग फक हो गया। मानो ताड के पेट पर बिजली गिरी हो।

व्याख्या : दूसरी चोट से तो ऐसे सहमे कि कुछ कहते न बना। बोलना चाहा पर बोल न सके। पहिले मे केवल मन की दशा दिखलायी। जब मन की दशा अधिक बिगडती है तब वाणी और शरीर पर प्रभाव पड़ता है। यहाँ वाणी की दशा कही। अब बाज झपट का पता लगा। पहिले तब तो मातृप्रेम ही समझते

थे। परन्तु इस दूसरे वरदान के समय तो ऐसी गति हुई जैसे बाज वन मे लवा पर झपटता है। बाज के झपटने पर लवा चीं भी नहीं कर सकता। इस भाँति वाणी की दशा कहते हैं।

तालतरु तृणराज है। दूसरे पेड पर बिजली गिरने से कोई शाखा विशेष टूट जाती है। पर तृणराज तो एकदम झुलस जाते है। उनके डाल पत्ते सिरपर होत है वे एकदम नीचे आ पडते हैं।

माथे हाथ मूदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ॥
मोर मनोरथु सुरतरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला ॥४॥
अवध उजारि कीन्हि कैकेई। दीन्हिसि अचल विपति कै नेई ॥५॥

अर्थ माथे पर हाथ रखकर और दोनो आँखें बन्द करके इस भाँति सोचने लगे जैसे स्वय सोच शरीर धारण किये हो। मेरा मनोरथ रूपी कल्पवृक्ष फूल उठा था। फल लगते ही हथिनी ने उसे जड से उखाड फेका। कैकेयी ने अयोध्या को उजाड दिया और विपत्ति की अटल नीव डाल दी।

व्याख्या ऊपर की तीन अर्धालियो म क्रमश मन वचन और तन की दशा कही। आघात पडते ही जो विकलता होती है उसे कहकर उसके बाद की दशा कहते हैं। दोना हाथो पर इस भाँति माथा रखना जिसम आँखें मुद जायँ शोक की मुद्रा है। जिसे अपने सोच का आरपार नहीं दिखाई पडता वह स्वभाव से इसी मुद्रा मे हो जाता है। कवि उपमा देते हैं मानो सोच ही शरीर धारण करके सोच रहा है। भाव यह कि चक्रवर्तीजी को इस समय वाह्यज्ञान कुछ भी नहीं है। वे शोकमय हो रहे हैं।

कल्पवृक्ष के पृथ्वी पर आने से सभी अपना भाग्य मानते है और सब उसकी बढोत्तरी चाहते है। क्योंकि सब जानते हैं कि यह सबकी कामना को पूर्ण करने वाला है। अत बडे यत्न से कल्पतरु की सेवा होती है। हथिनी म बल बडा है। पर वह मूखा है। कल्पवृक्ष के गुणो से अपरिचित है। उसने आकर अपने बल मद से कल्पवृक्ष को ही उखाड फेका। उखाडा हुआ वृक्ष फिर नही लगता।

यहाँ चक्रवर्तीजी के मनोरथरूप रामजी स्वय कल्पवृक्ष हैं। उनका सब लायक होना फूलना है। यथा कहइ भुआलु सुनिअ मुनिनायक। भये रामु सब बिधि सब लायक। और उनका अभिषेक होना फलना है। यथा नाथ रामु करिअहि जुबराजू। कहिअ कृपा करि करिअ समाजू। सो सब समाज हो रहा था। वरदान के बल से दर्पित कैकेयी हथिनी हुई। और किसी म कल्पवृक्ष के उखाडने की सामर्थ्य नहीं। इस मूर्खा ने रामजी के दिव्य गुणो को न जाना। उन्हे अयोध्या के बाहर उखाड फेका। सबके हाथ से कल्पवृक्ष जाता रहा।

इतने दिन चक्रवर्तीजी को राज्य करते हुए किसी शत्रु का उजाडा अवध न उजड सका। कैकेयी ने उजाड दिया। भाव यह कि प्रजा रामजी मे इतनी अनुरक्त

है कि रामजी के छोडते ही कोई अयोध्या मे रहना न चाहेगा। यथा : जहाँ रामु तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहि काजू। चले साथ अस मनु दृढाई। सुर दुर्लभ सुख सदन विहाई। तथा मोहि लगि यहु कुठाटु तेहि ठाटा। घालेसि सब जग बारहँ बाटा। मिटइ कुजोगु राम फिरि आएँ। बसै अवध नहि आन उपाएँ। सो इसने अचल विपत्ति की नीव दे दी। रामजी को राज्य कहकर वन दिया जायगा। सो चौदह वर्ष के लिए। इतने दिनो मे तो अवध का पता भी न रह जायगा और चौदह वर्ष बीतने पर भी रामजी क्यो लौटेंगे। अत: इसने विपत्ति की अचल नीव डाल दी। अब मकान का बनना किसी के रोके नही रुकेगा। भाव यह कि चक्रवर्तीजी ने मन से वन दे दिया।

दो. कवनें अवसर का भयउ, गयउँ नारि बिस्वास।
जोग सिद्धि फल समय जिमि, जतिहि अविद्या नास ॥२९॥

अर्थ . अब किस मौके पर क्या होगा? मै तो स्त्री के विश्वास मे मारा गया। जैसे योगसिद्धि के फल के समय अविद्या सन्यासी का नाश कर देती है।

व्याख्या : कह्यो राज बन दियो नारि बस गरि गलानि गये राउ। अत: कहते हैं कि कहाँ तो मैं राज देने चला और कहाँ वन दे रहा हूँ। ऐसा होने का कारण कहते है कि राजनीति मे मैं चूक गया। विश्वासो नैव कर्त्तव्य स्त्रीषु राजकुलेषु च। मैंने क्यो स्त्री का विश्वास किया? इसी चूक से मेरा सर्वनाश उपस्थित है। साँझ समय सानद नृपु गयउ कैकयी गेह। महाराज कैकेयी को आनन्द का समाचार सुनाने गये। उन्हें विश्वास था कि कैकेयी सुनकर परम प्रसन्न होगी। क्योकि सदा कहा करती है कि भरत से भी मुझे रामजी प्यारे हैं। यथा : भरत न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु यह सब जग जाना। जब कैकेयी को रूठी हुई पाया तब उसे प्रसन्न करने के लिए रामजी के तिलक का निश्चय सुनाते हैं : रामहि देउँ कालि युवराजू। सजहि सुलोचनि मगल साजू। इसपर कैकेयी भी बाहर से हँस पडी। इस भाँति चक्रवर्ती जी के विश्वास को और भी दृढ कर दिया कि कैकेयी को रामजी का अभिषेक पहिले की भाँति परम इष्ट है।

उदाहरण देते है कि जैसे योगसिद्धि के फल के समय, अर्थात् जड चेतन की ग्रन्थि विमोक के समय अविद्या बल छल करके ज्ञान दीप को बुझा देती है। यथा : छोरत ग्रथि जानि खग राया। विघ्न अनेक करै तब माया। बल बल छल करि जाइ समीपा। अचल बात बुझावहि दीपा। ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा। बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी। एहि बिधि दीप को बार बहोरी। तब फिर जीव बिबिध बिधि पावै ससृति क्लेस। हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहँगेस।

सो जिस भाँति उक्त सन्यासी का नाश अविद्या ने किया उसी भाँति मेरा सर्वनाश स्त्री द्वारा हुआ।

एहि बिधि राउ मनहि मन झाँखा । देखि कुभाँति कुमति मनु माखा ॥
भरतु कि राउर पूत न होहीं । आनहु मोल बेसाहि कि मोही ॥१॥

अर्थ इस भाँति राजा मन ही मन झीख रहे थे । देखकर कुबुद्धि कैकेयी के मन मे बुरी तरह से क्रोध हुआ । बोली क्या भरत आपके पुत्र नही है । मुझे क्या मोल खरीद लाये हो ?

व्याख्या—इस विधि से अर्थात् आँख मूँदे माथे पर हाथ रक्खे राजा अपने मनोरथ के नाश और अयोध्या के उजडने का सोच कर रहे थे । कवि कहते है कि कैकेयी की सुमति चली गयी । अब वह कुमति के अधीन है । उसने देखा कि राजा का ढङ्ग तो अच्छा नही है । राजा की यह अवस्था देखकर सुमति को दया आती । पर कुमति के मनमे क्रोध उमडा ।

उसने कहा कि क्या भरत आपके बेटे नही है ? भाव यह कि जैसे राम बेटे हैं वैसे ही भरत हैं । भरत को राज्य माँगने से आपको दु ख क्यो है ? मै भी तो रानी हूँ । दासी की भाँति मुझे मोल खरीद करके नही लाये हो । भाव यह कि राजा का बेटा राजा नही होता रानी का बेटा राजा होता है । दासी से भी राजाओ को सन्तति होती हैं पर वे पुत्र नही माने जाते । क्योकि उनको जल पिण्ड का अधिकार नही होता । भरत के पिता आप राजा है और मै भी पाणिगृहीता भार्या रानी हूँ । हम दोनो का बेटा भरत कैसे राज्य का अधिकारी नही है ? उसके लिए यदि मैने राज्य माँगा तो आप को इतना दु ख क्या है ?

जो सुनि सरु अस लागु तुम्हारे । काहे न बोलहु बचनु सँभारे ॥
देहु उतरु अनुकरहु[1] कि नाही । सत्यसध तुम्ह रघुकुल माही ॥२॥

अथ जो सुनने से तुम्हे बाण सा लगा तो तुम पहिले ही सोच समझकर क्यो नही बोले ? जवाब दो । इनकार कर जाओ कि 'नही । तुम रघुकुल मे सत्यप्रतिज्ञ हो ।

व्याख्या कैकेयी कहती है कि मेरे वरदान के वचन तुम्हे बाण से लगे । यथा बिबरन भयउ निपट महिपालू । दामिनि हनेउ मनहुँ तरुतालू । परन्तु इस भाँति दु ख होने का कारण तो कोई है नही । तुमने कहा था—कहु केहि रकहि करउँ नरेसू । कहु केहि नृपहि निकासउँ देसू । सो मैने तो किसी रङ्क को नरेश करने के लिए भी नही कहा । मै तो एक राजकुमार को नरेश बनाने को कहती हूँ और न मैने किसी नरेश को देश निकालने के लिए कहा । मै तो केवल दूसरे राजकुमार के लिए १४ वर्ष का वनवास माँगती हूँ । तुम्हारे कहने से बहुत कम मैने माँगा है । मैने माँगने मे सँभाल रक्खा । तुमने सँभालकर वचन क्यो न कहा । इस भाँति कैकयी महाराज की नीतिज्ञता पर आक्षेप करती है ।

---

१ इनकार को ही ग्राम्यजन अनुकार कहते है ।

राजा को चुप देखकर फिर कहती है कि चुप न रहो। एक बात कह दो। इनकार ही कर जाओ कि नही दूँगा। रघुकुल की रीति है कि प्राण जाय तो जाय वचन न जाय और तुम तो उस कुल म सत्यसन्ध हो। ससार देख ल कि कितने बडे सत्यसन्ध हो स्त्रियाँ पति के स्वभाव को खूब जानती हैं। कैकेयी भी जानती है कि महाराज अपयश को डरते हैं। 'नही कभी न कहेगे।

देन कहेहु अब जनि बरु देहू। तजहु सत्य जग अपजसु लेहू ॥
सत्य सराहि[1] कहेहु बरु देना। जानेहु लेइहि माँगि चबेना ॥३॥

अथ वर दने को कहा था। अब मत दो। सत्य को त्याग दो और ससार मे अपयश लो। सत्य की सराहना करक वर देने को कहा तो क्या समझा था कि यह चबेना माँग लगी।

व्याख्या भाव यह कि पहिल तो कहा झूठेहुँ हमहि दोसु जनि दहू। दुइ कै चारि माँगि मकु लहू। रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचन न जाई। इस दृढता से वर देने को कहा। अब अपनी बात से हट जाओ मत दा। देना तो तुम्हारे हाथ म है। पर समझ लो कि सत्य को त्याग रहे हो और अपनी अपकीर्ति को अपना रहे हा।

यदि कहा कि मै नही समझता था कि यह भरत को राज्य और रामजी को वनवास मागेगी। मुझ धोखा हुआ। इसपर कहती है कि धोखे की बात नही। तुम कठिन से कठिन वर देने का जान बूझकर तैयार थे। प्रान जाहुँ बरु बचन न जाइ। नहिं असत्य सम पातक पुंजा। सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। इत्यादि वचनो को वर दते समय तुमने उच्चारण किया है। वरदान के समय सत्य की प्रशसा का तात्पर्य ही यही है कि जा चाहो सो माँगो, मैं घोर से घोर संकट सहूँगा पर बात से न हटूँगा। तुम राजा हा। समझ सकते हो कि वरदान मे चबैना ऐसी सुलभ वस्तु नही माँगी जाती।

सिबि दधीचि बलि जो कछु भाषा। तनु धनु तजेउ बचन पनु राखा ॥
अतिकटु बचन कहति कैकेई। मानहुँ[2] लोन जरे पर देई ॥४॥

अथ शिवि दधीचि और राजा बलि ने जा कुछ कहा था शरीर और धन का त्याग करके भी वचन और प्रण को रक्खा। कैकेयी अत्यन्त कडुए वचन कह रही है मानो जले पर नमक छिडक रही है।

व्याख्या शिवि दधीचि और बलि सत्यसन्ध थे। शिवि ने अपने शरीर का मांस काटकर कबूतर के बराबर तौल दिया। कबूतर भारी हो गया। राजा शिवि मांस काट काटकर तुला पर चढाते गये। अन्त मे जब सिर चढाने लगे तब इन्द्र

१ यह छेकोक्ति अलङ्कार है।
२ फलसिद्धास्पदा उत्प्रेक्षा।

और अग्नि ने प्रकट होकर उनकी सत्यप्रतिज्ञा की प्रशसा की और उनके शरीर को ठीक कर दिया। राजा की शरणागतवत्सलता की परीक्षा के लिए इन्द्र बाज और अग्नि कबूतर बने थे। कबूतर भागता हुआ राजा शिवि की गोद मे जा छिपा। बाज ने आकर कहा कि यह मेरा भक्ष्य है। इसे दे दीजिये। राजा ने कहा इसके बदले मे जो माँगो दूँगा। बाज ने कहा अपने शरीर का मास इसके बराबर तौल दो। शिवि कह सकते थे कि मुझे धोखा हुआ मै नही समझता था कि तुम मेरे शरीर का मास माँगोगे। परन्तु उन्होने ऐसा न कहा। काटकर अपना मास तौलने लगे। वे चबैना देनेवाले सत्यसन्ध नही थे।

दधीचि ऋषि देवताओ का धरोहर अस्त्र शस्त्र रक्खे हुए थे। राक्षसो से हैरान होकर वे उनको पान कर गये। जब देवता माँगने आये तो उन्होने कहा कि वे तो जठरानल म पककर मेरी अस्थि मे लीन हो गये है। मेरी हड्डी ले जाकर अपने अस्त्र शस्त्र बना लो। सो दधीचि जी इस भाँति रक्खी हुई थाती को लौटानेवाल सत्यसन्ध थे। चबैनावाले नही थे।

राजा बलि से वामन ने तीन हाथ पृथ्वी माँगी। दान पाने पर वामन ने अपना विराट् रूप कर लिया और उसके त्रैलोक्य का राज्य तथा उसकी शरीर भी नाप ली। राजा बलि ने यह न कहा कि मुझे धोखा हुआ मैं नही जानता था कि तुम इतनी बडी शरीर बना लोगे। क्योंकि वे सत्यसन्ध थे। चबैना देनेवाले नही थे।

इस भाँति शिवि दधीचि ने तन दिया। बलि ने तन धन दानो दिया। पर न शिवि अपने प्राण से हटे और न दधीचि और न बलि अपने वचन से हटे। तीनो के साथ कपट हुआ। पर वे धर्म से न हटे। वे सत्यसन्ध थे। चबैना देनेवाले नही थे। तुम्हे न तन देना है न धन देना है। मुफ्त म सत्यसन्ध कहलाना है। इन कटु वचनो से महाराज को अति पीडा हो रही है। जैसे जले पर कोई नमक छिडके और वह मनुष्य छटपटा उठे।

दो धरम धुरधर धीर धरि, नयन उघारे राय।
सिर धुनि लीन्ह उसास असि, मारेसि मोहि कुठाय ॥३०॥

अर्थ धर्म की धूरि धारण करनेवाले महाराज ने धीरज धरकर नेत्र खोले और सिर धुनकर लम्बी श्वास ली कि इसने बुरी जगह मुझे तलवार मारी।

व्याख्या महाराज के हृदय मे शोक था। सो धैर्य धारण किया। माथे हाथ रखकर आँख मीचे हुए थे। सो आँख खोली। जल पर नमक छिडकने के कारण सिर पीटा, अतिपीडा से लम्बी श्वास लकर मन मे कहा कि इसने मेरे मर्म पर तलवार मारी। इस चोट से मै बच नही सकता। कहने के लिए इसकी चोट राम पर है। वस्तुतस्तु यह मेरे प्राण पर आघात हुआ।

कैकेयी ने कहा कि अपने को सँभालकर कुछ बोलो तो। हाँ या ना कुछ उत्तर तो दो और राजा की विकलता पर अनेक आक्षेप किया। तब राजा ने अपने

को सँभाला। धैर्य धारण करके आँख खोली। पर सामने का दृश्य देखकर सिर पीटने लगे। कैकेयी को ऐसा क्रोध में भरा पाया कि उससे दया या स्नेह की कोई आशा ही नही रह गयी। जब मनुष्य से कुछ करते नही बनता तभी वह सिर पीटता है। लम्बी साँस लेता है। राजा सत्य के अनुरोध से ना कर नही सकते और रामजी प्राणों से अधिक प्रिय हैं। उन्हे आँख से ओट करना और प्राण छोड़ना एक बात है। अतः हाँ करना भी असम्भव है। अब यदि कैकेयी ही दया करे तो कोई रास्ता निकल सकता है। सो कैकेयी : आगे दीख जरत रिसि भारी। मनहु रोष तरवारि उघारी हो रही है। अतः सिर पीटते हैं और लम्बी साँस लेते है। सोचते हैं कि इसके क्रोध रूपी खड्ग का आघात रामजी पर नही है मुझपर है। राम पुनीत विषय रस रूखे हैं : देवताओं ने भी कहा था कि विस्मय हर्ष रहित रघुराऊ। अतः रामजी की भी कोई विशेष हानि नही है। इसमे मरण हमारा है जो रामजी के विना जी नही सकते। सबसे बड़ी बात तो यह है कि मैंने ही रामजी से कहलाया था कि कल तुम्हारा अभिषेक होगा और जब कल का दिन आवे तब मैं ही कहूँ कि मैं तुम्हे वनवास देता हूँ। यह तो प्राण रहते नही हो सकता। यथा : कह्यो राज वन दियो नारि वस गरि गलानि गयो राउ। अतः यह तलवार की चोट ऐसे मर्म पर की गयी है कि इसका परिणाम मृत्यु ही है। इसका कोई उपचार नही हो सकता। इसलिए कहते हैं कि यह तलवार मुझ पर चली है और इसने सद्य.प्राणहर मर्म को काट दिया।

आगे दीखि जरत रिस भारी। मनहु रोष तरवारि उघारी॥
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरी सान बनाई॥१॥

अर्थ : सामने क्रोध से जलती हुई : कैकेयी को देखा मानों खिची हुई क्रोध की तलवार है। कुबुद्धि मूठ है। निष्ठुरता धार है। जिसपर : कुबरी ने शान दे रखा है।

व्याख्या : आँख खोलते ही महाराज की दृष्टि कैकेयी पर पड़ी। देखते हैं कि वह अपने वश मे नही है। क्रोध के हाथ की शस्त्र हो गयी है। पहिले कोप मे तलवार थी। यथा : ऐसिउ पीर विहँसि तेहि गोई। चोरनारि जिमि प्रगटि न रोई। अब कोप के बाहर निकल आयी है। चोट कर रही है।

उस तलवार की मूठ कुबुद्धि है। उसे मजबूती से पकडे हुए है और निष्ठुरता ही धार है। उसे शान रखकर कूबरी ने खूब तीखी कर रक्खी है। यथा : काजु सँवारेउ सजग सबु सहसा जनि पतिआहु।

लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा॥
बोले राउ कठिन करि छाती। बानी सविनय तासु सोहाती॥२॥

अर्थ : चक्रवर्तीजी ने लखा कि कराल कठोर है। क्या सचमुच मेरा प्राण लेगी। राजा छाती कड़ी करके विनययुक्त वाणी जो उसे अच्छी लगे बोले।

व्याख्या राजा हैं। स्वरूप देखते ही लख लिया कि यह तलवार . कैकेयी तो भयानक कठोर है। कुठाँव तलवार लगाने पर भी राजा समझते थे कि यह मेरा प्राण न लेगी। इतनी कठोर नही हो सकती कि पति के प्राण की परवाह न करे। पर अब उसकी कराल कठोरता देखकर यह भी सम्भव मालूम होने लगा।

राजा ऐसे सहमे हुए थे कि उनके मुख से शब्द नही निकलते थे। यथा • गयेउ सहमि नहि कछु कहि आवा। सो आवश्यकता देखकर उन्होने छाती कडी की और बोले। क्रोधी से विनय करने और उसे अच्छी लगनेवाली वाणी बोलने से ही काम निकलता है। क्रोधी के ऊपर क्रोध करने से वात और बिगडती है। अत राजा विनययुक्त प्रिय लगनेवाली वाणी बोले।

प्रिया वचन कस कहसि कुभाँती। भीरु प्रतीति प्रीति करि हाँती॥
मोरें भरतु रामु दुइ आँखी। सत्य कहउँ करि संकरु साखी॥३॥

अर्थ हे प्रिये! हे भीरु! विश्वास और प्रीति का हनन करके ऐसी बुरी तरह से वचन क्या बोलती हो। मेरे तो भरत और राम दोनो आँखें हैं। शङ्कर को साक्षी देकर सत्य कहता हूँ।

व्याख्या तू मेरी प्रिया है। तेरे मुख से प्रीति और प्रतीतियुक्त वचन ही शोभा देते हैं। सो तू ऐसे वचन क्या बोल रही है जिससे प्रीति और प्रतीति का हनन हो। प्रीति का हनन यथा सत्य सराहि कहहु बर देना। जानहु लइहि माँगि चबेना। प्रतीति का हनन यथा देहु उतरु अनुकरहु कि नाही। सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माही। यह विनययुक्त वचन है।

कैकेयी ने कहा था भरतु कि राउर पूत न होही। आनेउ मोल बिसाहि कि मोही। उसी का उत्तर देते हुए कहते हैं कि भरत और राम ये ही दोनो मेरी आँखें हैं। भरत पहिले राम पीछे। जो मनकी बात जाने उसी को साक्षी दिया जाता है। चक्रवर्तीजी शङ्कर को साक्षी देकर कह रहे है। जिसमे इस वचन के सत्य होने म कैकेयी को सन्देह न हो।

अवसि दूतु मै पठइब प्राता। ऐहहि बेगि सुनत दोउ भ्राता॥
सुदिनु सोधि सबु साज सजाई। देउँ भरत कहुँ राजु बजाई॥४॥

अर्थ मै सबेरा होते ही दूत भेजूँगा। समाचार सुनते ही दोनो भाई शीघ्र आवेंगे। तब सुदिन दिखाकर और सब साज सजकर भरत को डका देकर राज दूँगा।

व्याख्या सबेरा होते ही पहिला काम यह होगा कि भरत को बुलाने दूत भेजे जायँगे। दूत के पहुँचने की देर है भरत शत्रुघ्न के आने में देर न लगेगी। भाव यह कि टालमटोल की बात नही है। जितनी शीघ्रता सम्भव है की जायगी। रामजी के अभिषेक की तो अब कोई बात नही है।

मुझे भरत को राज्य देने मे उतना ही उत्साह है जितना रामजी को

देने मे था। अत अच्छा मुहूर्त्त दिखवाकर धूमधाम के साथ डका की चोट देकर भरत को राज्य दूँगा। यह देहु उतरु अनुचरहु कि नाही का उत्तर है। यह तामु सोहाती वाणी है।

दो लोभु न रामहि राजु कर, बहुत भरत पर प्रीति।
मै बड छोट बिचारि जिय, करत रहेउ नृपनीति ॥३१॥

अर्थ रामजी को राज्य का लोभ नही है और भरत से बहुत प्रेम करते है। मैं ही छोटे बडे के विचार से राजनीति का बर्ताव करता था।

व्याख्या रामजी को चौदह वर्ष वनवास देने का कारण यही हो सकता है कि वे भरत के अभिषेक म बाधक होगे अथवा शासन मे विघ्न उपस्थित करेंगे। परन्तु ऐसा तो वही कर सकता है जिसे राज्य का लोभ हो या जिसे तिलक दिया जाता हो उससे विरोध हो। रामजी को राज्य का लोभ नही है और भरत पर उनकी बडी प्रीति है। अत उनसे कोई भय नहीं है। उन्हे तो मै राजनीति का ख्याल करके राज देता था। राज्य का विभाजन नीति सम्मत नही है। नीतिशास्त्र की आज्ञा बडे को ही राज्य देने की है अत मैंने रामजी को राज्य देना चाहा था। कोई दूसरा कारण इसमे नही है।

राम सपथ सत कहउँ सुभाऊ। राममातु कछु कहेउ न काऊ॥
मै सबु कीन्ह तोहि बिनु पूछे। तेहि तें परेउ मनोरथ छूछे ॥१॥

अर्थ मैं राम की सौ शपथ खाकर वस्तुस्थिति कहता हूँ कि रामजी की माता ने कभी कुछ नही कहा। मैंने सब बिना तुझसे पूछे किया। इससे मनोरथ खाली गया।

व्याख्या . मान लिया जाय कि रामजी को राज्य का लोभ नही है। तो कौसल्या की प्रेरणा से तो सब हो रहा है। इसपर चक्रवर्तीजी कहते हैं कि राम की माता ने कभी कुछ इस विषय मे नहीं कहा और विश्वास दिलाने के लिए रामजी की शपथ ले रहे हैं।

चक्रवर्तीजी कहते हैं कि इसमे यदि कोई अपराध है तो मेरा है। मुझे उचित था कि इतना बडा कार्य करने के पहिले तुमसे सम्मति ले लेता। सो मैंने नही किया। उसका फल मिल गया। आजतक मेरा कोई मनोरथ विफल नही गया था। सो आज हुआ। अब रामजी का अभिषेक नहीं होगा।

रिस परिहरु अब मगल साजू। कछु दिन गए भरत जुबराजू॥
एकहि बात मोहि दुख लागा। बर दूसर असमजस माँगा ॥२॥

अर्थ अब क्रोध छोडकर मङ्गल साज सजाओ। कुछ दिन के बाद भरत युवराज होंगे। एक ही बात मे मुझे दुःख हुआ। यह दूसरा वर तुमने बेतुका माँगा है।

व्याख्या : कैकेयी क्रोध से भरी हुई है। इसलिए कहते हैं कि क्रोध को छोड दो। क्रोध करने से विवेक नही रह जाता। तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हुआ। भूषण तो सज लिया है। अब मङ्गल भी साजो। कल तो नही हो सकता। भरत के आने पर उन्हे युवराज पद दूँगा। अत: पहिला वरदान मैं खुशी से देता हूँ।

दु ख तो मुझे दूसरे वरदान के देने मे है। क्योंकि उसका तुक : सामञ्जस्य किसी भाँति नही बैठता। पहिले का तुक तो बैठ जाता है। भरत तुम्हारे और सुपुत्र हैं। उनके लिए तुम राज्य माँगती हो ठीक है। मुझे भी प्रिय है। परन्तु दूसरे वरदान से तुम्हे कोई लाभ नही और मेरी पीड़ा का कोई अन्त नही। अत: यह वरदान बेतुका है।

अजहूँ हृदउ जरत तेहि आँचा। रिसि परिहास कि साँचेहु साँचा ॥
कहु तजि रोषु राम अपराधू। सबु कोउ कहइ रामु सुठि साधू ॥३॥

अर्थ · उस आँच से अब भी हृदय जल रहा है। यह क्रोध है। हँसी है कि सचमुच सच्चा है। क्रोध छोड़कर राम का अपराध बताओ। सारी जनता कहती है कि रामजी अत्यन्त भले हैं।

व्याख्या · कैकेयी ने कहा था जो सुनि सरु अस लाग तुम्हारे। इस पर चक्रवर्तीजी कहते है कि शर की भाँति नही वज्र की भाँति लगा। यथा · दामिनि हनउ मनहु तरु तालू। बिजली से तलवार सी चोट नही होती। उससे आग लग जाती है। सो इस दूसरे वर से मेरे शरीर मे आग लग गयी। अब भी उसकी आँच से हृदय जल रहा है। मुझे विश्वास नही हो रहा है कि जो तुम कह रही हो वही तुम्हारा अभिप्रेत है। ऐसी बात तो क्रोध के वेग मे कही जाती है। उसकी सचाई क्रोध के वेग मात्र मे ही रहती है या परिहास मे कही जाती है। जिसकी सचाई परिहास मात्र मे सीमित रहती है।

यदि यह बात सचमुच सच्ची है तो अवश्य रामजी से कोई ऐसा अपराध बन पड़ा है जिसका दण्ड तुम उन्हे इस भाँति दिया चाहती हो। तो उसे मै भी सुन लूँ। जिसमे वरदान देने मे मुझे सन्तोष हो कि जो मैं कर रहा हूँ सो ठीक कर रहा हूँ। सम्भव है कि बात समझने मे कुछ चूक हो रही हो। क्योंकि सारी जनता राम की साधुता की प्रशसा करती है। ऐसे साधु से इतना बडा अपराध नही हो सकता। जिसके लिए यह दण्ड दिया जाय और बडे अपराध पर ही ऐसा क्रोध होता है कि अपराध बिना प्रकट किये दण्ड देना ही उचित मालूम पडता है। अत क्रोध का परित्याग करके पहिले अपराध बतलाओ।

तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। अब सुनि मोहि भयउ संदेहू ॥
जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला ॥४॥

अर्थ . तू भी सराहना करती थी। प्रेम करती थी। अब सुनकर मुझे सन्देह

हुआ है। जिसका स्वभाव शत्रु के भी अनुकूल पड़ता है। वह माता के प्रतिकूल आचरण कैसे करेगा ?

व्याख्या : रामजी की सराहना जैसा ससार करता है जैसा प्रेम करता है वैसा ही तू करती थी और आज तू उन्हे वन दे रही है। अतः वन देना सुनकर मुझे सन्देह हुआ कि बात क्या है कि एकाएक तेरे भाव मे इतना बडा परिवर्तन हुआ। अवश्य रामजी से कोई बडा अपराध बन पडा।

पर यह भी नही हो सकता। रामजी का स्वभाव शत्रु के भी अनुकूल पडता है। यथा : वैरिहु राम बडाई करही। ऐसे राम माँ के प्रतिकूल आचरण करें यह हो नही सकता। कही समझने मे भूल हो रही है।

दो. प्रिया हास रिस परिहरहि, माँगु बिचारि बिबेकु।
जेहि देखौ अब नयन भरि, भरत राज अभिषेकु ॥३२॥

अर्थ : प्रिये ! हँसी या रिस : इनमे से जो हो . छोड दो और विवेक विचार कर मांगो। जिसमे अब मैं भरत का राज्याभिषेक तो देख लूँ।

व्याख्या : हास्य या क्रोध मे अतथ्य भी कहा जाता है। पर उसे कार्य मे परिणत नही किया जाता। वर माँग लेने पर तो उसे कार्य में परिणत किया जायगा। अत. वर माँगने के समय स्वस्थ चित्त होकर माँगना चाहिए। अत· तुम भी विवेक पूर्वक विचार करके वर माँगे। पहिला वर मैंने दे दिया। अतः राम का अभिषेक नही देख सकूँगा। यदि दूसरा वर भी तूने वहाँ रहने दिया तो भरत का अभिषेक तो होगा पर मै न देख सकूँगा। जब से भरत आवें और शुभ मुहूर्त आवे उसके पहिले ही मेरा शरीर छूट जायगा। अतः ऐसा वर माँगो कि भरत के अभिषेकोत्सव को आँख भर देख लूँ।

जिअइ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिकु जिअइ दुख दीना ॥
कहउँ सुभाउ न छलु मन माही। जीवन मोर राम बिनु नाही ॥१॥

अर्थ : चाहे मछली बिना जल के जीती रहे। बिना मणि के सर्प चाहे दुःख से दीन होकर जीये। मैं स्वभाव कहता हूँ मेरे मन मे छल नही है कि मै बिना राम के जी नही सकता।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी समझ रहे हैं कि इसे रामजी से द्वेष हो गया है। पर मेरे ऊपर तो ममता होगी ही। अत. कहते हैं कि मैं राम के बिना जी नही सकता। इस बात का ख्याल करके रामजी का वनवास मत माँगो। यह मत समझो कि अपने मरने का डर दिखाकर मैं तुम्हे दूसरे वरदान से विरत कर रहा हूँ। अत. मेरे मन मे छल है। मैं वस्तुस्थिति कहता हूँ। जिस भाँति मछली बिना जल के जी नही सकती। मणि के बिना सर्प छटपटाकर प्राण दे देता है। उसी भाँति बिना राम के मैं जी नही सकता : पूर्वजन्म मे जो वरदान माँगा था : मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुमहि अधीना। वही स्थिति इस जन्म मे हो गयी है।

विश्वामित्र के साथ जब रामजी गये थे तब महाराज की स्थिति मणि बिनु फणि की सी हो गयी थी। यथा सुत हिय लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक शरीर प्रान जनु भेंटे। अब जल बिनु मीनवाली स्थिति हो रही है। सच्चा स्नेह जल के साथ मीन का ही है। यथा मकर उरग दादुर कमठ जल जीवन जल गेह। तुलसी केवल मीन को है साचिलो सनेह। जो जिसके बिना प्राण धारण न कर सके वही स्नेह सच्चा है।

समुझि देखु जिय प्रिया प्रबीना। जीवनु राम दरस आधीना ॥
सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई। मनहु अनल आहुति घृत परई ॥२॥

अर्थ हे प्रवीण प्रिये! तू समझ कर देख कि मेरा जीवन रामजी के दर्शन के अधीन है। कामल वचनो को सुनकर कुबुद्धि कैकेयी और भी जल उठी। मानो आग मे घी की आहुति पड रही हो।

व्याख्या तू मेरी प्रियाओ मे प्रवीण है। तू विचार कर देख कि क्या मेरा प्रेम राम के प्रति इस प्रकार का है कि मैं उन्हे बिना देखे जी सकूँगा सभी जानते हैं कि महाराज बिना राम के नही जी सकते। यथा नृप कि जिअब बिनु राम। महाराज ने पूर्व जन्म मे जैसा वरदान माँगा था वैसी ही दशा का अनुभव कर रहे हैं।

ये अत्यन्त कोमल वचन थे। सुमति के द्रवीभूत करने के लिए यथेष्ट थे। पर कैकेयी भी तो कुमति का स्वरूप हो गयी थी। वह एक एक बात पर इस भाँति भभक उठती थी जैसे घी की आहुति से आग भभकती है। कोमल वचन क्रोधाग्नि मे घी की आहुति का काम कर रहे है। वह सोचती है कि

१ स्वय जो प्रीति प्रतीत की हानि की उसे नही विचारते और मुझे विचारने को कहते हैं।

२ अपनी इस करणी को नृपनीति बतलाते है।

३ कौसल्या को निर्दोष सिद्ध करने के लिए सब दोष अपने ऊपर ल रहे है।

४ राम पर इतना प्रम है और भरत विदेश मे है। इसकी चिन्ता ही नही है। यह जो कुछ कह रहे हैं वह सब राम को घर रखने का उपाय है। मै अपने सरल स्वभाव से बहुत ठगी गयी। कुबरी ने ठीक कहा था मन मलीन मुह मीठ नृपु।

कहइ करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउरि माया ॥
देहु कि लेहु अजसु करि नाही। मोहि न बहुत प्रपच सोहाही ॥३॥

अर्थ चाहे करोडो उपाय करो पर यहाँ आप की माया नही चलगी। या तो दो या नही कहकर अपयश लो। मुझे बहुत प्रपञ्च अच्छा नही लगता।

व्याख्या रानी कुबरी की एक एक बात को गाँठ बाँधे। है उसने कहा था काजु सँवारेहु सजग सत्रु सहसा जनि पतिआहु। सो सब वह अपने समझ म राजा

पर विश्वास न करके सजग होकर अपना काम सँवार रही है। कहती है कि अभी तो तुमने दो ही उपाय किया। एक तो राम के वनवास को वरदान से हटाकर जाँच पड़ताल का विषय बनाकर राजा की भाँति निर्णय करना चाहते हो। दूसरे वैधव्य का डर दिखाकर मुझे अपने निश्चय से हटाना चाहते हो। सो होने का नहीं। करोड उपाय से भी मैं अपने निश्चय से नहीं हट सकती। तुम अपनी माया के बोल से सत्यवादी बने हो। सब जगह तुम्हारी माया चल गयी पर यहाँ वह माया काम नहीं करेगी।

महाराज वाणी सविनय तासु सोहाती बोले थे। उसे वह प्रपञ्च बतला रही है। कहती है कि यह सब प्रपञ्च है। तुम्हें प्रपञ्च अच्छा लगता है। मुझे नहीं अच्छा लगता : भाव यह कि महराज ने कहा था कि कहौं सुभाउ न छल मनमाही। रानी ठीक उसके विपरीत समझ रही है कि यह सब छल है। मैंने पहिले ही कहा था कि माँगु माँगु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु। सो इस बार तो देना पडेगा। या दो या स्पष्ट नहीं कहकर अपयश लो।

रामु साधु तुम्ह साधु सयाने। राम मातु भलि सब पहिचाने॥
जस कौसिलाँ मोर भल ताका। तस फलु उन्हहि देउँ करि साका॥४॥

अर्थ : राम साधु हैं और तुम सयाने साधु हो और सबने पहचान लिया है कि राम की माता भली हैं। कौसल्या ने जैसा मेरा भला चाहा है वैसा ही फल उन्हे ऐसा दूँगी कि शाका चल जाय।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी का रामजी के विषय मे यह कहना : लोभ न रामहि राजकर और अपने प्रति यह कहना : कहउँ सुभाउ न छल मनमाही तथा कौसल्याजी के लिए यह कहना कि राम मातु कछु कहेउ न काऊ कैकेयी को बहुत ही बुरा लगा। वह व्यङ्ग लिये हुए कहती है कि राम को राज का लोभ नहीं है। राम साधु हैं और तुम उनके पिता हो। इसलिए सयाने साधु हो। अपना काम साधना खूब जानते हो और राम की माता भली हैं। वे कुछ कहती सुनती नहीं। यह सब बातें किसी से छिपी नहीं हैं। इस षड्यन्त्र का पता सबको है। डर से भले ही कोई कुछ न कहे। मेरी सिधाई का फायदा उठाकर सब मेरा नाश चाहते हैं। इस षड्यन्त्र की मूल कौसल्या हैं। अत उन्हे ऐसा फल दूँगी कि उसका शाका चल जाय। लोगों को यह घटना ऐसी चित्त पर खिच जाय कि उस समय से दूसरी घटनाओं का समय लोग निश्चय करने लगें। यथा : अमुक घटना राम वनवास के दो वर्ष बाद हुई या इतने दिन पहिले हुई इत्यादि।

दो. होत प्रातु मुनिबेष धरि, जौं न रामु बन जाहिं।
मोर मरनु राउर अजसु, नृप समुझिअ मन माहिं॥३३॥

अर्थ : सवेरा होते ही मुनिवेष धारण करके यदि राम वन न जायँगे तो राजन्! मैं प्राण दे दूँगी और आप का अयश होगा। इस बात को मन में विचारिये।

व्याख्या सवेरे आप दूत भेजेंगे। भरत आवेगे। सुदिन देखा जायगा। तब भरत को गद्दी होगी। यह तो दूर की बात है। सबेरा होते ही पहिले राम को वन भेजिये। दूत को पीछे भेजियेगा। वे मुनि का वेष धारण करके जायँ। ससार देख ले कि कपट से राज्य चाहनेवालो की ऐसी गति होती है। कौसल्या देख लें कि जिस पुत्र को उन्होने राज वेष में देखना चाहा था वह तपस्वी वेष म वनवास के लिए जा रहा है। आप कहते है कि राम वन जायँगे तो मै मर जाऊँगा। मै कह रही हूँ कि राम वन न जायँगे तो मैं प्राण दे दूँगी और आपकी मरने से कही अधिक दुर्गति होगी। यथा सभावित कहुँ अपजसु लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू। राजा हो मन मे विचार करो। मुझ कहते हो समुझि देखु जिय प्रिया प्रवीना। आप स्वय विचार क्यो नही करत। महाराज प्रिया प्रवीणा कहत हैं। कैकेयी प्राणपति अब नही कहती नृप कहती हैं।

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढी। मानहु रोष तरगिनि बाढी॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई॥१॥

अर्थ ऐसा कहकर कुटिल उठकर खडी हो गयी। मानो क्रोध की नदी मे बाढ आगयी हो। वह पाप के पहाड से निकली है। क्रोध जल से भरी हुई है। देखते नही बनता।

व्याख्या कुटिल है। समझती है कि बातचीत बढाने से अपनी जगह से हटना पडेगा। अत बात खतम करती है। क्रोध के वेग से खडी हो गयी। मानो नदी म बाढ आगयी। पहिले कहा था मनहु रोष तरवारि उघारी। अब क्रोध का वेग उमड चला। इससे कहते है तरगिनि बाढी। क्रोध मे मुख की आकृति विकृत हो जाती है। अत ऐसी भयानक मालूम होती है कि देखते नही बनता।

चित्तनदी उभयतोवाहिनी कल्याणवहा पापवहा च। चित्त नदी दोनो ओर बहती है कल्याणवहा और पापवहा। यथा त्रिविध ताप त्रासक त्रिमुहानी। राम सरूप सिधु समुहानी। पापवहा यथा मानहु रोष तरगिनि बाढ़ी।

नदी पहाड से प्रकट होती है। सो पुण्यपहाड से कल्याणवहा उद्गम स्थान है और पाप [1]पहाड पापवहा का उद्गम स्थान है। नदी म जल भरा रहता है। इस पापवहा नदी म क्रोधरूपी जल भरा है।

दोउ वर कूल कठिन हठ धारा। भँवर कूवरी वचन प्रचारा॥
ढाहत भूपरूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनुकूला॥२॥

अर्थ दोनो वर किनारे हैं। कठिन हठ धारा है। कूवरी के वचन का प्रचार भँवर है। राजारूपी वृक्ष के मूल को ढहाती हुई विपत्ति के समुद्र की ओर चली।

---

१ ऋषिकुमार का वध तथा उनके माता पिता का अग्निप्रवेश यही पाप पहाड है।

व्याख्या नदी सदा दो किनारो के बीच से बहती है। सो इस पापवहा नदी के दोनो वर भरत को राज्य और राम को वनवास दोनो किनारे है और हठधार दोनो कूलो का अवगाहन करता चलता है। उस हठधार मे जहाँ तहाँ कूबरी के वचन का चमत्कार दिखाई पडता है। वही मानो इस नदी का भँवर है। कूबरी कुटिल उसकी उक्ति कुटिल। अत उसके वचन का प्रभाव जो हठ की धारा म दृष्टिगोचर होता है उसकी उपमा भँवर से दी गयी।

जब नदी बढती है तो किनारे पर के पेड की जड को धो देती है और पेड जा पडता है। यह पापवहा नदी राजा रूपी पेड के जड को गिराती हुई विपत्ति के समुद्र की ओर को उन्मुख हुई। नदी को समुद्र छोडकर दूसरी गति नही। इसी भाँति पापवहा नदी को भी विपत्ति के समुद्र को छोडकर अन्यगति नही है। अर्थात् अब यह क्रोधतरगिणी विपत्ति के समुद्र मे बिना पहुँचे कही रुक नही सकती।

लखी नरेस बात फुरि साँची। तिय मिस मीचु सीस पर नाँची॥
गहि पद विनय कीन्ह बैठारी। जनि दिनकर कुल होसि कुठारी॥३॥

अर्थ राजा ने लखा कि बात तो सचमुच सच्ची है। स्त्री के व्याज से मौत सिरपर नाच रही है। तब राजा ने कैकेयी के चरण पकड लिये और बिठलाया कहा कि सूर्यकुल के लिए तू कुल्हाडी मत बन।

व्याख्या चक्रवर्तीजी ने लखा कि मृत्यु तो आगयी। रानी निमित्त मात्र है। क्योकि राम को वन माँगना रिमि परिहास मे सत्य नही है। सचमुच सत्य है। अब जो यह यहाँ से चली जाती है तो बात खतम हो जाती है। यदि ठहरे तो और भी प्रयत्न किया जाय और यह अब आज्ञा देने से नही रुकेगी। अत चरण पकड लिया। विनय किया कि बैठ जाओ। रानी इतने क्रोध मे भी पति के इस भाँति विनय की अवहेलना न कर सकी। बैठ गयी। तब कहा कि सूर्यकुलरूपी वन के विध्वस के लिए तू कुल्हाडी बनने का अपयश अपने ऊपर मत ले। रामचन्द्र के वन जाने से सूर्यकुल नष्ट हो जायगा। इस भाँति दूसरे वन मे सङ्कोच करने के लिए प्रार्थना करते हैं।

मांगु माथ अबही देउँ तोही। राम विरह जनि मारसि मोही॥
राखु राम कहुँ जेहि तेहि भाँति। नाहि त जरिहि जनम भरि छाती॥४॥

अर्थ : सिर माँग मै अभी उतारकर देता हूँ। पर रामजी के विरह मे मुझे मत मार। रामजी को जिस किसी भाँति रख ले। नहीं तो जन्म भर छाती जलेगी।

व्याख्या चक्रवर्तीजी कहते हैं कि मुझे मरने का भय नही है। जो तू कहती है - सिवि दधीचि बलि जो कुछ भाखा। तन धन तजेउ वचन पन राखा। सो मै भी कहता हूँ कि तू सिर माँग। देख मैं उतारकर देता हूँ कि नही। पर राम के विरह म घुल घुलकर मैं मरना नही चाहता। यहाँ राम के वन का प्रश्न नही है। मेरे मरने जीने का प्रश्न है। अत राम को वन न जाने दे। मेरे सामने तापस वेष

विशेष उदासी रूप मे ही रहो रहने दे। मुझसे अलग न होने दे। यदि न मानेगी तो तुझे भी जन्म भर पछताना पड़ेगा।

दो० देखी व्याधि असाधि नृपु, परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन, राम राम रघुनाथ ॥३४॥

अर्थ राजा ने देख लिया कि रोग असाध्य है। तब परम आरत वचन राम राम रघुनाथ कहते हुए सिर पीट पीटकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

व्याख्या: पहिले लखा था कि स्त्री के बहाने मौत आगयी और लोगो को रोग के बहाने मौत आती है। सम्भव है कि स्त्री रूपी रोग कष्टसाध्य हो। अत उसके उपशम का उपाय किया। चरण पकडकर बैठाया। ऊँचा नीचा समझाया। पर वह टस से मस नही हुई। सिर देने पर तैयार हुए। राजा शिवि के सिर देने पर तैयार होने पर बाज मान गया। पर यह नही मानती। तब राजा ने देख लिया कि रोग असाध्य है। यह घुला घुलाकर ही प्राण लेगा। अत अपने परम प्रिय को स्मरण करते हुए सिर पीटकर पृथ्वी पर गिर गये। अब चिकित्सा का प्रयत्न करेगे। परेउ धरनि से शरीर की गति कही। धुनि माथ से मन की गति कही। कहत परम आरत वचन से वाणी की गति कही।

ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहु निपाता ॥
कठु सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीनु दीनु बिनु पानी ॥१॥

अर्थ राजा व्याकुल है। अङ्ग सब ढीले पड गये। मानो हथिनी ने कल्पवृक्ष को जड से उखाड डाला। कण्ठ सूखने लगा। मुख से शब्द नही निकलते। जैसे पहिना मछली बिना जल के दीन हो जाय।

व्याख्या हथिनी क्या जाने कि कल्पवृक्ष मे क्या गुण है। उसने उसे उखाड कर फेक दिया। उसे यह भी ख्याल नही है कि इसके उखाडने से ससार की कितनी बडी हानि हुई। उखडने पर कल्पवृक्ष की क्या दशा है। इस पर उसे पश्चात्ताप भी नही। राजा का मनोरथ कल्पवृक्ष था। यथा मोर मनोरथु सुरतरु फूला। राजा उसकी जड थे। यथा ढाहत भूप रूप तरु मूला। सो कैकेयी रूपी हथिनी ने मनोरथ के सहित राजा को समूल वृक्ष की भाँति उखाड फेंका। अब चक्रवर्तीजी की दशा उखडे हुए वृक्ष की सी हो गयी।

अब राम राम रघुनाथ नही कहते हैं। क्योकि गला सूख गया। शब्द ही नही निकलता। जल बिनु मीन की दशा हो गयी। मणि बिनु फणि की दशा तो पहिले थी। अब तो चक्रवर्तीजी बिना जल के पहिना मछली की भाँति छटपटा रहे हैं।

पुनि कह कटु कठोर कैकेई। मनहुँ घाय महुँ माहुर देई ॥
जौ अतहु अस करतबु रहेऊ। माँगु माँगु तुम्ह केहि बल कहेऊ ॥२॥

अर्थ : फिर कैकेयी ने कठोर कटु कहा मानो घाव में विष दे रही है। यदि अन्त मे तुम्हे यही करना रहा तो माँग माँग किस बूते पर तुमने कहा ?

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : असि मारेसि मोहि कुठाँव । अब उसी तलवार के घाव मे विष दे रही है। रक्त से विष का सम्बन्ध हो जाने से विष तुरन्त प्राण लेता है। खाने से तो पाक होने पर मारक होता है। अत· कैकेयी की कठोर कटु उक्ति की उपमा घाव मे विष देने से दे रहे हैं। उसे राजा की इस दीन दशा पर दया नही आयी। बल्कि उसका क्रोध और बढा कि सौत के लडके पर इतना प्रेम है। मेरे लड़के की चिन्ता इन्हे नहीं है। अतः कहने लगी कि यदि अन्त मे तुम्हे पैर पकड़कर विनती ही करनी रही तो माँग माँग किस बूते पर कहा। तब तो ऐसा बोलते रहे जैसे आकाशवाणी हो : माँगु माँगु तव भै नभ वाणी। अब पैर पकडते विनती करते हो।

दुइ कि होहिं एक समय भुआला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला ॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि खेम कुसल रौताई ॥३॥

अर्थ : राजन्! क्या ठहाका मारकर हँसना और गाल फुलाना दोनो बातें एक ही समय मे हो सकती है ? दानी कहलाना चाहते हो और कृपणता भी करते हो। राजापन में कहीं कुशल क्षेम हो सकता है।

व्याख्या : शोक और हर्ष प्रसन्नता और अप्रसन्नता यह दोनो भाव एक दूसरे के अत्यन्त विरुद्ध है। हर्ष मे आदमी हँसता है और शोक मे रोता है। प्रसन्नता से अट्टहास करता है और अप्रसन्न होकर गाल फुलाता है। यह दानो बातें युगपत् हो नही सकती। कहाँ यह कहना : कहु केहि रंकहि करउँ नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासउँ देसू। कहाँ यह कहना कि राखु राम कहँ जेहि तेहि भाँति। यही ठठाकर हँसने के साथ गाल फुलाना है।

सकुच विहाइ माँगु नृप मोही। मोरे नहिं अदेय कछु तोही। ऐसी वाणी दानी के मुख से शोभा देती है और माँग कहकर माँगने पर सङ्कोच करने को कहना कृपिण का काम है। कृपणता करनेवाले को दानी कहलाने का इच्छा नही होनी चाहिए। राजापन में क्षेम कुशल कहाँ ? कुशल क्षेम तो वनियापन में होता है।

छाड़हु वचनु कि धीरजु धरहू। जनि अवला जिमि करना करहू ॥
तनु तिय तनय धामु धनु धरनी। सत्यसंध कहुँ तृन सम बरनी ॥४॥

अर्थ : या वचन छोड़ो या धीरज धरो। औरतो की तरह रोओ मत। शरीर, स्त्री, वेटे, धन, घर, जमीन ये सब सत्यसन्ध के लिए तिनके के बरावर कहे जाते हैं।

व्याख्या : रानी कैकेयी उपर्युक्त कठोर वचन कहकर अव कटुकठोर कहती है कि वचन छोड दो। इसमे कौन वात है। यदि वात का पास है तो धैर्य धरो। मर्द की तरह काम करो। रो गाकर काम निकालना तो स्त्रियो का काम है। सत्यसन्ध होना दिल्लगी नहीं है। सत्यसन्ध के लिए शरीर क्या है ? स्त्री क्या है ?

बेटे क्या हैं ? घर क्या चीज है ? और धन धरणी क्या है ? तुम्हें तो सबका सोच है । तन का सोच यथा : समुझि देखु जिय प्रिया प्रबीना । जीवनु राम दरस आधीना ।

तिय का सोच यथा : राम मातु कछु कहेउ न काऊ ।
तनय का सोच यथा : राखु राम कहुँ जेहि तेहि भाँती ।
धाम, धन, धरनी का सोच यथा : अवध उजार कीन्हि कैकेयी ।

दो. मरम बचन सुनि राउ कह, कहु कछु दोषु न तोर ।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि, कालु कहावत मोर ॥३५॥

अर्थ : मर्म वचन सुनकर राजा ने कहा कि तेरा दोष कही कुछ भी नही है । मेरी मृत्यु तुझे पिशाच की भाँति लगी हुई है । वही यह सब कहला रही है ।

व्याख्या : महाराज कैकेयी के स्वभाव से भली भाँति परिचित हैं । यह ऐसी थी नही । यह ऐसा कह सकती नही । ये सब बाते यह अपने होश मे नही कह रही है । मेरी मृत्यु इसे पिशाच की भाँति लग गयी है । वही इससे ये बाते कहला रही है । पिशाच लगने पर वह मनुष्य होश मे नही रहता । उसके मुख से पिशाच बोलता है । कैकेयी ने सदा महाराज को सेवा वश कर रक्खा था । ये अरुन्तुद बातें उसके स्वरूप के सर्वथा प्रतिकूल थी ।

चहत न भरत भूप[1] तहि भोरे । बिधि बस कुमति बसी जिय तोरे ॥
सो सबु मोर पाप परिनामू । भयउ कुठाहर जेहि बिधि बामू ॥१॥

अर्थ : भरत भूलकर भी राजा होना नही चाहते । विधिवश तेरे हृदय मे कुमति बस गयी है सो सब मेरे पाप का फल है जो बेमौके ब्रह्मा बाये हो गये ।

व्याख्या : ऊपर कह आये है 'कछुक दोष नहिं तोर । उसी को स्पष्ट करते है कि जिस भरत के लिए तू सब कर रही है वे भूलकर भी राज्य नही चाहते । होनहार बुरा है इसलिए तेरे हृदय मे कुबुद्धि आ बसी है । क्योकि पहिले तेरी बुद्धि ऐसी नही थी । तेरी ऐसी बुद्धि के एकाएक ऐसा हो जाने का कारण मेरा पाप है । ब्रह्मदेव तो शुभाशुभ कर्म के फल देनेवाले है । उसी पाप का फल देने के लिए कुअवसर मे बायें हो गये । यही बात रामजी को राज देने के लिए कहलाने के पहिल हुई होती तो दूसरी बात थी : कहेउ राज बन दियो नारि बस गरि गलानि गये राउ । इतना समय नही है कि भरत को बुलवा सकूँ । अतः यह मेरे पाप के कारण हो रहा है । तेरा दोष नही है । ब्रह्मदेव के बाये होने से मृत्यु होती है । सो यदि रणाङ्गन मे वीरगति हो तो वह ब्रह्मदेव का सुठाहर मे बायें होना कहा जायगा । प्रियतम के विरह मे प्राण त्याग और संसार मे स्त्रैण होने की अपकीर्ति का होना ब्रह्मदेव का कुठाहर मे बायें होना है ।

---

१. भूपतित्व शब्द मे प्रकृतिप्रत्ययसन्धिर्लोपविकारागमाश्च वर्णानाम् से ति का लोप हुआ और सर्वत्र लवगाम् इस सूत्र मे 'वकार' का लोप होकर 'भूपत' रूप हो गया ।

सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई । सब गुन धाम राम प्रभुताई ॥
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई । होइहि तिहुँ पुर रामु बड़ाई ॥२॥

अर्थ : सुन्दर अयोध्या फिर स्वच्छन्द होकर बसेगी । सब गुणों के धाम रामजी की प्रभुता होगी । सब भाई सेवकाई करेंगे । तीनों लोक मे रामजी की प्रशसा होगी ।

व्याख्या : अब चक्रवर्तीजी भविष्य कहते है । जो तू चाहती है वह तो होना नही है । होगा यह कि मैं तो रहूँगा नही । अयोध्या रामके वन जाने से एक बार अवश्य उजड जायगी । परन्तु फिर स्वच्छन्द होकर बसेगी । राम सबगुणधाम हैं । वे ही राजा होगे और भाई लोग उनकी सेवा करेंगे । रामजी का यश इतना बढेगा कि तीनों लोक मे फैल जायगा । क्योंकि सब विधि सब लायक हैं ।

तोर कलंकु मोर पछिताऊ । मुयहु न मिटिहि न जाइहि काऊ ॥
अब तोहि नीक लाग करु सोई । लोचन ओट बैठु मुहु गोई ॥३॥

अर्थ : तेरा कलङ्क और मेरा पश्चात्ताप मरने पर भी नही मिटेगा और सदा बना रहेगा । अब जो तुझे अच्छा लगे सो कर । मेरी आँख के ओट होकर मुँह छिपाकर बैठ ।

व्याख्या : तेरे कलङ्क और मेरे पश्चात्ताप का शाका अलबत्ता चलेगा । ससार कहेगा कि कैकेयी ने इतना बड़ा अनर्थ कर डाला और राजा उसी पश्चात्ताप मे मर गये । हम लोगों के मरने पर भी लोग स्मरण रक्खेंगे । यह इतिहास हो जायगा और यावच्चन्द्रदिवाकरौ लोग इसे न भूलेंगे । यही होना है अब जो तेरे जी मे आवे सो कर । मैं नही रोकता । जाना हो तो जा । रहना हो तो रह । पर मेरे सामने से हट जा । तू किसी के सामने मुँह दिखाने लायक नही रह गयी । अतः मुँह छिपाकर कही बैठ । जो महाराज कहते थे : मन तव आनन चद चकोरू । वही आज उसका मुँह देखना नही चाहते हैं ।

जब लगि जिअउँ कहउँ कर जोरी । तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी ॥
फिर पछितैहसि अत अभागी । मारसि गाइ नहारु लागी ॥४॥

अर्थ : हाथ जोड़कर कहता हूँ कि जब तक मै जीता हूँ तब तक फिर कुछ न बोलना । अरे अभागी ! अन्त मे फिर तू पछतायेगी । तू ताँत के लिए गोवध कर रही है ।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी कहते हैं कि मेरा अन्तकाल सन्निकट है । अतः जब तक जीता हूँ तब तक फिर कुछ न कहना । दण्ड देने का अवसर नही है । अतः हाथ जोडते हैं । तेरी वाणी अब मेरे कर्णगोचर न हो । तेरे शब्द भी सुनना नही चाहता ।

नहारु कहते हैं ताँत को । पुमे नहारु च सिरा धमन्यथ रसायसा : अभिधान-प्पदीपिकायाम् श्लोक २७९ । ताँत राग बजाने के काम आता है । यथा : बाज

सुराग कि गाँडर ताती। वृढी गाय या भैंस के ताँत से ही अच्छा राग वजता है। अत अच्छा राग वजाने के लिए जिसने परमपूज्य गोमाता का वध किया वह अभागा गोहत्या लगने पर पीछे पछताता है। कैकेयी की भी यही दशा है। भरत राजा होना नही चाहते। पर यह राजमाता कहलाने का आभिमानिक सुख चाहती है। इस मनोविनोद के लिए परमपूज्य पति का वध कर रही है। इसीलिए चक्रवर्तीजी उसे अभागिनी कहते हैं। जो अल्प के लिए वडा भारी दुख और अपयश मोल ले रही है।

दो परेउ राउ कहि कोटि विधि, काहे करसि निदानु।
कपट सयानि न कहति कछु, जागति मनहुँ मसानु ॥३६॥

अर्थ राजा करोडो भाँति से कहकर कि बात क्यो समाप्त करती हैं। गिर पडे। पर कपट करने मे चतुर कैकेयी कुछ बोलती ही नही। मानो मसान जगा रही है।

व्याख्या राजा घर का मामला निपटाना चाहते है। इसलिए कारण पूछते हैं। कैकेयी विचार करने कराने के लिए तैयार नही हैं। वह राजा से हाँ या नही कराना चाहती है। कपट सयानी है। समझती है कि यहाँ पर कुछ भी कहने से मुझे अन्त मे अपने निश्चय से हटना ही पडेगा। अत ऐसी चुप्पी साधे हुए है। जैस मसान जगाने वाले मौन साधकर वैठते है। उनके सामने चाहे जैसा दृश्य उपस्थित हो उसके ओर ध्यान न देकर धैर्य धारण किये हुए मौन होकर अपने साध्यपर ही दृष्टि लगाये रहते है।

यद्यपि निदान आदि कारण के अर्थ मे आता है। पर इस ग्रन्थ मे समाप्ति के अर्थ मे भी आता है। यथा देहि अगिन तन करहुँ निदानू। कार्य का कारण दशा को प्राप्त होना ही उसकी समाप्ति है।

राम राम रट विकल भुआलू। जनु विनु पख विहग वहालू॥
हृदयँ मनाव भोरु जनि होई। रामहि जाइ कहइ जनि कोई॥१॥

अर्थ राम राम रटते हुए राजा विकल हैं। जैसे विना पख के पक्षी विकल हो। मन मे मनाते हैं कि सवेरा न हो। रामजी से जाकर कोई कह न दे।

व्याख्या चक्रवर्तीजी को राम राम की रट लगी है। उन्हे अत्यन्त व्याकुलता मे सिवा रामजी के कुछ सूझता नही है। उन्ह वडी वेचैनी है जैसी पक्षहीन पक्षी को होती है। पक्षी का तो सर्वस्व पक्ष ही है। उसके न होने से वह नितान्त असमर्थ दीन हीन हो जाता है। उसे चारो ओर मृत्यु ही दिखाई पडती है। कुछ करते नही वनता। अत्यन्त विकल होकर चे चे किया करता है। यही गति राजा की हो रही है। अत्यन्त विकल है। राम राम की रट लगाये हैं।

अति अनिष्ट भावी को सन्निकट देखकर उपायहीन आर्तपुरुष असम्भव के लिए प्रार्थना करता है। मन ही मन मनाते हैं कि सवेरा न हो। क्योकि सवेरा

होते ही यह बात छिपी नही रह सकती। अयोध्या भर मे फैल जायगी। कोई जाकर रामजी से भी कह देगा। वे उत्तम पुत्र हैं। मेरे बिना कहे ही वन चले जायेंगे।

उदउ करहु जनि रवि रघुकुल गुर। अवध बिलोकि सूल होइहि उर॥
भूप प्रीति कैकइ कठिनाई। उभय अवधि बिधि रची बनाई॥२॥

अर्थ : हे रघुकुल गुरु ! सूर्य को उदय न करो। अयोध्या को देखकर कलेजे मे शूल होगा। राजा की प्रीति और कैकेयी की कठिनता दोनो ब्रह्मा ने ऐसी रचकर बनायी कि हद हो गया।

व्याख्या : ईश्वर की नियति तो रुक नही सकती। वह तो होकर ही रहेगी। सवेरा तो होगा ही। सूर्य का उदय होना कौन रोक सकता है। इस पर गुरुभक्त राजा को कुलगुरु याद आये। यही विधि गति सदा से छेंकते आये हैं। यथा : सो गोसाईं जेहि बिधि गति छेकी। अत उनसे प्रार्थना करते हैं : गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु: गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुः साक्षात्पर ब्रह्मतस्मै श्रीगुरवे नम:। आप सूर्य उदय न करें। क्योकि सजी हुई अयोध्या देखकर हृदय मे शूल उठेगा। कोई रघुकुलगुरु को रवि का विशेषण मानते है। पर यदि ऐसी बात होती तो उदित होउ जनि पाठ होता उदय करहु जनि न होता।

कवि कहते हैं कि राजा की सी प्रीति भी कही नही देखी गयी और न कैकेयी की सी कठिनाई कही देखी गयी। मालूम होता है कि इन्हे स्वयं ब्रह्मदेव ने रचकर बनाया कि ये दोनो ससार मे बेजोड़ हो। नही तो ऐसी प्रीति के सामने कठिनाई ठहर नही सकती। हृदय द्रवीभूत हुए बिना रह नही सकता। पर कैकेयी का हृदय न पसीजा।

बिलपत नृपहिं भयउ भिनुसारा। बीना बेनु संख धुनि द्वारा॥
पढहिं भाट गुन गावहिं गायक। सुनत नृपहि जनु लागहि सायक॥३॥

अर्थ : राजा को विलाप करते करते सवेरा हो गया। द्वार पर वीणा, वंशी और शङ्ख की ध्वनि हुई। भाट विरद बोलने लगे। गवैया गुणगान करने लगे। सुन सुनकर राजा के हृदय मे मानो बाण लग रहे हैं।

व्याख्या : इसी भाँति विलाप करते रात बीत चली। समय की गति रुकती नही। सवेरा हो ही गया। राजाओ के जगाने के लिए पहिले वीणा बजायी जाती है। तब उससे अधिक स्वरवाली वशी बजायी जाती है। अन्त मे शङ्खध्वनि होती है। जिससे निश्चय नीद टूट जाती है। उसके बाद स्फूर्ति उत्पन्न करने के लिए बन्दी विरद बोलते हैं। राजोचित गुणो की याद दिलाने के लिए गायक गुणगान करते हैं। यह सब राजाओ के यहाँ के प्रात काल के कृत्य हैं। ये सब इसलिए किये जाते है जिसमे महाराज सुखपूर्वक जागें और नित्यकृत्य मे लग जायें।

परन्तु आज तो इनसे उलटा काम हो रहा है। जे हित रहे करें सोइ पीरा वाला हाल हो रहा है। ये एक एक सुख के साधन शराघात की भाँति पीडा दे रहे हैं। वीणा वेणु शङ्ख ने पुकारकर कह दिया कि सवेरा हो गया। बन्दी बोले कि सत्यसन्ध महाराज की जय हो! गवैयो ने गुण गाये कि महाराज के यश से दिगन्त व्याप्त हो रहा है। आज ये सब बाते परिस्थिति के प्रतिकूल पड रही है। इसीलिए शराघात का काम कर रही है।

मगल सकल सोहाहिं न कैसे। सहगामिनिहि बिभूषन जैसे ॥
तेहि निसि नीद परी नहि काहू। राम दरस लालसा उछाहू ॥४॥

अर्थ ये सब मङ्गल कैसे अच्छ नही लग रहे है जैसे सती होनेवाली स्त्री के गहने। उस रात को किसी को नीद नही पडी। सबको रामजी के दर्शन की लालसा और उत्साह था।

व्याख्या जिसे पति की वियोगाग्नि ऐसी बढी हुई है कि लौकिकाग्नि शीतल मालूम होती है उसे भूषण का आभिमानिक सुख कैसे हो सकता है? इसी भाँति महाराज को ये मङ्गल अच्छे नही लग रहे हैं। अथवा जैसे सती के आभूषण से शृङ्गाररस की भावना नही होती प्रत्युत सती अपने शरीर को अग्नि के अर्पण करेगी ऐसी भावना जाग्रत् होती है। वह अपने पति का अनुगमन करेगी यह सोचकर निर्वेद उत्पन्न होता है। इसी भाँति सब मङ्गल सती का गहना हो गया। क्योकि अयोध्या अपने पति का अनुगमन करेगी। यथा अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवसु जहँ भानु प्रकासू।

सोया तो उस रात को कोई नही। महाराज विषाद के कारण नही सोये। कैकेयी क्रोध के मारे नही सोयी और लोग रामजी के दर्शन की लालसा तथा उत्साह के कारण नही सोये।

दो द्वार भीर सेवक सचिव, कहहि उदित रबि देखि।
जागेउ अजहुँ न अवधपति, कारनु कवनु बिसेखि ॥३७॥

अर्थ द्वार पर सेवक और मन्त्रियो की भीड इकट्ठी हो गयी। सूर्य को उदय हुआ देखकर कहते हैं कि जगत्पति अब भी नही जागे। ऐसा कौन विशेष कारण पड गया।

व्याख्या आज अभिषेक का दिन है। राज्यभर के कामदार तथा मन्त्री कैकेयी के महल द्वार पर एकत्रित हो गये। क्योकि महाराज उसी महल मे है। सूर्योदय के बहुत पहिले से लाग जुट गये। आज महाराज भी जल्द उठेंगे। क्या जाने किसको कब कौन सी आज्ञा हो। अत सभी उपस्थित हैं। पर सूर्य निकल आये। महाराज नही उठे। शङ्खध्वनि ने भी काम नही किया। अत सबको न उठने का विशेष कारण जानने की उत्कण्ठा हुई।

पछिलें पहर भूपु नित जागा। आजु हमहि बड अचरजु लागा ॥
जाहु सुमन्त्र जगावहु जाई। कीजिअ काजु रजायसु पाई ॥१॥

अर्थ पिछले पहर महाराज सदा जग जाते हैं। हमलोगो को बडा आश्चर्य हो रहा है। सुमन्त्रजी आप जाकर जगाइये और राजाज्ञा प्राप्त करके काम कीजिये।

व्याख्या दिन कार्य करने के लिए और रात्रि विश्राम के लिए है। पर रात्रि का नाम ही त्रियामा है। तीन पहर तक की रात मे गिनती है। बाद उसके दिन माना जाता है। सो एक पहर रात रहते ही महाराज नित्य जाग जाते थे। आज अभिषेक का दिन है। आज तो और भी सवेरे जगना चाहता था। महाराज नियम के बडे पक्के हैं। उनके नियम मे भङ्ग होना आश्चर्य है और विशेषत आज के दिन ऐसा होना तो और भी आश्चर्य की बात है।

क्या माजरा है। बात समझ मे नही आती। कोई दासी बाहर नही आ रही है। जिससे कुछ कहलाया जाय और कोई भीतर जा नही सकता। केवल सुमन्त्रजी को कही रोक नही है। ये मन्त्री होने के साथ ही साथ सारथि और सखा भी हैं। अत सब लोग सुमन्त्रजी से कहते हैं कि अब बिना राजा के जगाये काम नही चलता। जगाने के अन्य उपाय सब हो चुके। वीणा बजी। वशी बजी। शङ्ख बजा। वन्दियो ने विरुदावली कही। गायको ने गान किया। सूर्यनारायण भी उदय हो गये। अब तो यही शेष है कि आप राजमहल मे जाकर स्वय महाराज को जगावें। यदि भगवान् न करें महाराज अस्वस्थ हो तो काम तो नही रुकना चाहिए। आप राजाज्ञा पाकर काम करिये।

गये सुमन्त्रु तब [1]राउर माही। देखि भयावन जात डेराही ॥
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। मानहु बिपति विषाद बसेरा ॥२॥

अर्थ तब सुमन्त्र जी महल मे गये। सो ऐसा भयानक दिखाई पडा कि जाने म डर लगने लगा। मानो वह स्थान खाने दौडता है। देखते नही बनता। जैसे विपत्ति और विषाद का डेरा पडा हुआ है।

व्याख्या सबकी आज्ञा शिरोधार्य करके सुमन्त्रजी राजमहल मे गये। कहाँ तमाम नगर म उछाह और चहल पहल और कहाँ यहाँ का सन्नाटा उदासी देखकर सुमन्त्रजी को आगे बढने मे भय का सञ्चार होने लगा। परिस्थिति की विषमता का ऐसा प्रभाव पडा कि सुमन्त्रजी को मालूम होने लगा कि वह स्थान खाने दौड रहा है। देखते नही बनता। मानो राजलक्ष्मी ने इसे त्याग दिया और विपत्ति विषाद ने डेरा जमा लिया।

पूछे कोउ न ऊतरु देई। गये जेहि भवन भूप कैकेई ॥
कहि जयजीव बैठ सिर नाई। देखि भूप गति गयउ सुखाई ॥३॥

---

१ राजकुल शब्द से ज और क के लोप से राउर शब्द सिद्ध होता है।

अर्थ पूछने पर कोई उत्तर नही देता। तब उस घर म गये जहाँ महाराज और कैकेयी थी। जय जीव कहकर माथा नवाया और बैठे। राजा की दशा देखकर सूख गये।

व्याख्या सीधे शयनगृह मे गये तो वहाँ कोई नही। दासियो से पूछते हैं क्या बात है? महाराज कहाँ है? कोई कुछ बोलता ही नही। मानो सब गूँगे बहरे है। सब अत्यन्त भयभीत है कुछ भी बतलाने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लने का साहस नही कर रहे है। तब राजा को खोजते खोजते कोपभवन मे गये। जयजीव कहकर अभिवादन किया। सुमन्त्र महाराज के अभिन्नहृदय सखा हैं। अत्यन्त प्रम करते है। महाराज की दशा देखकर सूख गये। अब दशा कहते हैं।

सोच बिकल बिबरन महि परेऊ। मानहुँ कमल मूलु परिहरेऊ॥
सचिउ सभीत सकै नहि पूछी। बोली असुभ भरी सुभ छूछी॥४॥

अथ शोक से विकल है। रग बेरग है। पृथ्वी पर पडे हुए है। जैसे कमल की जड उखड गयी हो। मन्त्री डर के मारे कुछ पूछ नही सकते। तब अशुभ से भरी हुई शुभ से रोती कैकेयी बोली।

व्याख्या महाराज शोक से विकल हैं। यथा सुनि मृदु वचन भूप हिय सोकू। ससिकर छुअत बिकल जिमि कोकू। विवर्ण हो रहे है। यथा बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू जैसे कमल की जड उखड गयी हो और वह सूर्योदय पर भी अल्पप्राण और विवर्ण हो गया हो। उसके जीवित रहने की आशा न हो।

राजा की दशा देखकर मन्त्री सूख गये। यह पहिल ही कहा जा चुका है। अब पूछते भी डर लग रहा है। क्योंकि मन्त्री के आने पर भी महाराज कुछ कह नही रहे हैं। न जाने कैसे असामञ्जस्य म पडे हुए ह। फिर पूछें कैसे? सुमन्त्र का आशय समझकर कैकेयी बोली। उसी का विशेषण देते हैं असुभ भरी सुभ छूछी। भाव यह कि पहिल यह मङ्गलघट की भाँति शुभ से भरी थी। सो शुभ सब निकल गया है। उसके स्थान पर अशुभ भर गया है। उसे अब रामजी से आशा है कि वे जब यह बात सुनेंगे तो अवश्य वन चल जायँगे और किसी की न सुनेंगे। अत चाहती हैं कि रामजी किसी भाँति शीघ्र आजायँ तो उन्ही के सामने बात खुल। पहिले खुल जाने से अनेक प्रकार की बाधाओ का भय है। अत ऐसी बात बनावेंगी जिसम अपना कार्य सिद्ध हो।

दो परी न राजहि नीद निसि, हेतु जान जगदीसु।
रामु रामु रटि भोरु किय, कहइ न मरमु महीसु॥३८॥

अर्थ रात राजा का नीद नही आयी। भगवान् जाने क्या कारण है। राम राम रटते रटते इन्होने सवेरा किया है। अपना मर्म राजा बतलाते नही।

व्याख्या . कैकेयी बोली कि आज राजा को रात मे नीद नही आयी। मैं तो इतना ही जानती हूँ। नीद न आने का कारण होना चाहिए। कोई रोग तो है नही। कोई चिन्ता होगी। पूछने पर कारण नही बतलाते। मैं इतना और कह सकती हूँ कि रातभर राम राम की रट लगाये रहे। इससे अनुमित होता है कि ये उस मर्म को राम से ही कहेगे। जब तुमसे भी नही कहते और मुझसे भी नही कहते तो निश्चय यह अपनी पीडा राम से ही कहेगे।

आनहु रामहि बेगि बोलाई। समाचार तब पूँछहु आई ॥
चलेउ सुमन्त्रु राय रुख जानी। लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी ॥१॥

अर्थ . शीघ्र रामजी को बुला लाओ तब आकर समाचार पूछना। महाराज का रुख पाकर सुमन्त्र चले। लखा कि रानी ने कुछ कुचाल किया।

व्याख्या अत रामजी को बुलाने मे शीघ्रता करो। जितनी देर होगी उतनी ही पीडा अधिक होगी। रामजी का साथ लेकर लौटने पर समाचार पूछना। उसी समय राजा को जो कुछ कहना है कहेगे।

रानी की बातें सुनी पर केवल उनकी आज्ञा पर मन्त्री काम नही करना चाहता। राजा का रुख देख रहा है। मालूम हुआ कि महाराज की भी यही रुचि है। जो पहिले यह मानते थे कि सवेरा न हो। कोई रामजी से ये बातें न कह दे। वे ही राजा अब रामजी का आना उचित समझ रहे हैं। जिसमे रामजी उनकी दशा देख लें और समझें कि जो आज्ञा हो रही है उसे देने मे चक्रवर्तीजी को कितनी पीडा है। नितान्त बेबसी की हालत मे उन्हे ऐसा कहना पड रहा है। सम्भव है कि इस भाँति कहलाई हुई बात के मानने मे रामजी अपने को बाध्य न समझेंगे। अत सुमन्त्रजी चले। पर इतना तो लख ही लिया कि रानी ने कोई कुचाल किया है जिसका प्रभाव रामजी पर बहुत बुरा पडनेवाला है। नही तो कोपभवन मे आज क्यो है? रानी कोपभवन मे गयी और महाराज उसे मनाने गये। यही बात मालूम होती है।

सोच बिकल मग परइ न पाऊ। रामहि बोलि कहिहि का राऊ ॥
उर धरि धीरजु गयउ दुआरे। पूँछहि सकल देखि मनु मारें ॥२॥

अर्थ मन्त्री • शोक से विकल हो गये। उनका कदम आगे नही बढ रहा है। विचारते हैं रामजी को बुलाकर राजा क्या कहना चाहते हैं।

व्याख्या सुमन्त्रजी का भी प्रेम रामजी पर राजा सा ही है। उधर राजा सोच बिकल बिबरन महि परेऊ और इधर मन्त्री सोच बिकल महि परइ न पाऊ कदम आगे बढता ही नही। राजाज्ञा के कारण चलना ही पडा। मन मे सोचते हैं कि वह कौन सी अनिष्ट बात है जिसे रामजी के आने पर राजा कहेगे। बात अत्यन्त अनिष्ट न होती तो महाराज इतने विकल न होते। महल के बाहर आने के पहिले

सुमन्त्रजी ने प्रयत्नपूर्वक धैर्य धारण किया। फिर भी उदासी नही गयी। लोग पूछने लगे कि क्या बात है ?

समाधानु करि सो सब ही का। गयउ जहाँ दिनकर कुल टीका ॥
राम सुमन्त्रहि आवत देखा। आदरु कीन्ह पिता सम लेखा ॥३॥

अर्थ उन्होने सबका समाधान किया और जहाँ सूर्यकुल के टीका थे वहाँ गये। रामजी ने सुमन्त्र को आते देखा तो उनका आदर किया और पिता के समान माना।

व्याख्या सुमन्त्रजी ने सबका समाधान किया कि महाराज को रात मे नीद नही आयी। इससे देर हुई। अब रामजी का बुलाया है। लोगो का समाधान हो गया। क्योकि तेहि निसि नीद परी नहिं काहू। किसी को भी रात नीद नही लगी। राजा को तो न लगना ही प्राप्त था। रामजी को बुलाना भी ठीक ही है। तत्पश्चात् रामजी के पास गये।

निरखि बदनु कहि भूप रजाई। रघुकुल दीपहि चलेउ लेवाई ॥
रामु कुभाँति सचिव सँग जाही। देखि लोग जहँ तहँ बिलखाही ॥४॥

अर्थ मुख देखकर राजा की आज्ञा कह सुनायी और रघुकुलदीप को साथ लिवा चल। रामजी जिस रीति से मन्त्रीजी के साथ जा रहे हैं वह समयोचित नही है। यह देखकर लोग जहाँ के तहाँ विषाद करने लगे।

व्याख्या रामजी पर मन्त्री का बडा प्रम है। अत पहिल प्रियदर्शन रामजी का मुख देखा तब कहा कि महाराज आपको शीघ्र ही देखा चाहते हैं सुमन्त्रजी को रामजी के दर्शन की इच्छा थी। इसलिए रामजी को दिनकरकुलटीका कहा। अब साथ लकर चलते हैं। इसलिए रघुकुलदीपक कह रहे है। जहाँ दीप जाता है वही प्रकाश करता चलता है और जहाँ से हट जाता है वहाँ अन्धेरा हो जाता है। रामजी तुरन्त चल पडे।

आज राज्याभिषक का दिन है। बडे ठाटबाट से सवारी निकलनी चाहती थी। सो रामजी इस भाँति मन्त्री के साथ क्यो जा रहे हैं। अत अभिषक म निश्चय बाधा पडी। यह समझकर जो देखता है हताश हो जाता है। अत जहँ तहँ बिलखाही कहते हैं।

दो जाइ दीख रघुबसमनि, नरपति निपट कुसाजु।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि, मनहुँ बृद्ध गजराजु ॥३९॥

अर्थ जाकर रघुवशमणि ने राजा की अत्यन्त गिरी हुई स्थिति देखी। जैसे बूढा गजराज सिंहिनी को देखकर सहम कर भयभीत होकर गिर गया हो।

व्याख्या वहाँ जाकर रामजी ने देखा कि दृश्य म बडा भारी परिवर्तन हो गया। अति सौम्य सुशीला रानी कैकेयी आज सिंहिनी की भाँति घात लगाये बैठी

है और शूलकुलिश असि अगवनिहारे चक्रवर्तीजी वूढे गजराज की भाँति भयभीत से पृथ्वी पर पडे हुए हैं। यहाँ पर चक्रवर्तीजी की उपमा वृद्ध गजराज से और कैकेयी की उपमा सिंहिनी से देकर कवि ने सारा दृश्य ही आँख के सामने खीच दिया। वृद्ध गजराज सब प्रकार से असमर्थ सिंहिनी से बचने का कोई उपाय नही देख रहा है और सिंहिनी क्रोध मे भरी हुई उसका प्राण लेने पर तुली हुई है। उसम तनिक भी दया का लेश नही है।

सूखहिं अधर जरइ सब अगू। मनहु दीन मनि हीन भुअगू ॥
सरुष समीप दीख कैकेई। मानहु मीचु घरी गनि लेई ॥१॥

अर्थ होठ सूख रहा है। सब अग जल रहे हैं। मानो बिना मणि के सर्प दीन हो रहा है। क्रोध से भरी हुई कैकेयी पास मे ही दिखाई पडी। मानो साक्षात् मृत्यु बैठी हुई घडी गिन रही है।

व्याख्या चक्रवर्तीजी की मानसिक दशा कहकर अब शारीरिक दशा कहते हैं कि शोकाग्नि से सारा शरीर जल रहा है। होठ सूख रहे हैं। जैसे मणिधर सर्प की मणि छिन गयी हो। रामजी ही यहाँ मणि स्थानीय हैं। इसीलिए पूर्व के दोहे मे कवि भी उन्हे मणि कहते हैं। यथा जाइ दीख रघुबसमनि। सिंहिनी कहकर कैकेयी को मृत्यु रूप पहिले ही कह आये हैं। पर अब सीधे सीधे मृत्यु से उपमित कर रहे हैं। क्योकि वह पास बैठी है मारती नही है। मृत्यु मरण शील को तबतक नही मारती जबतक कि उसका समय नही आ जाता। सा यहाँ समय सन्निकट है। अत मृत्यु आ पहुँची है। अब वह केवल उस समय की प्रतीक्षा कर रही है। अत उसके लिए घडी का गिनना कहा।

करुनामय मृदु राम सुभाऊ। प्रथम दीख दुख सुना न काऊ ॥
तदपि धीर धरि समउ बिचारी। पूँछी मधुर बचन महतारी ॥२॥

अर्थ • रामजी का स्वभाव करुणामय और मृदु है। पहिले पहल दु ख देख रहे हैं। उन्होने दु ख • कान से भी नही सुना था। फिर समय का विचार करके धैर्य धारण किया और माँ से पूछा।

व्याख्या • रामजी ने पिता की दशा देखो कि बुलवाया तो पर कुछ कह नही सकते। ऐसे दु खी हैं। रामजी का स्वभाव करुणामय है। बडा कोमल है। इनका स्वभाव देखकर ही चक्रवर्तीजी ने ऐसी व्यवस्था कर रक्खी थी कि रामजी के कान तक किसी का दु ख पहुँचने न पावे। अत सबके दु ख का प्रतीकार पहिले ही कर दिया जाता था। उनके कान तक पहुँचने नही पाता था। अत दु ख उन्होने कभी सुना न था। देखने की कौन चलावे। सो आज पहिले पहल दु ख को देखा। अत धैर्य छूटना स्वाभाविक था। परन्तु रामजी ने विचार से काम लिया। धैर्य धारण करके मीठी वाणी म माँ से पूछा।

मोहि कहु मातु तात दुख कारनु। करिअ जतनु जेहि होइ निवारनु॥
सुनहु राम सबु कारनु एहू। राजहि तुम्ह पर बहुतु सनेहू॥३॥

अर्थ - रामजी बोले माँ ! मुझसे पिता के दुःख का कारण बतला। उसके निवारण का यत्न किया जाय। कैकेयी बोली रामजी सुनो सब कारण तो यह है कि राजा का तुम्हारे ऊपर बडा प्रेम है।

व्याख्या पिताजी से ऐसी अवस्था मे कुछ पूछना व्यर्थ समझकर माँ से पूछा कि माँ ! पिताजी को बडा दुःख है। कोई शारीरिक व्याधि तो है नही। मानसिक व्यथा है। उसका कारण तू जानती है और किसी से नही कहती तो मुझसे कह। जिसमें उसके हटाने का यत्न किया जाय।

रामजी की बात सुनकर रानी बोली कि इस दुःख का मूल कारण राजा का तुम्हारे ऊपर अत्यधिक स्नेह है। स्नेह सभी पुत्रो पर है। पर तुम्हारे ऊपर अति अधिक है। भाव यह कि वैसा स्नेह मुझे नही है। राजा का यह स्नेह ही इनके दुःख का कारण हुआ है नही तो यह दुःख आता ही नही। सब पुत्रो पर यदि समान स्नेह होता और तदनुकूल कार्य करते तो मै असन्तुष्ट न होती यहाँ पर सूक्ष्मरूप से अपने वरदान माँगने का कारण कहा।

देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना। माँगेउँ जो कछु मोहि सोहाना॥
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। छाडि न सकहिं तुम्हार सँकोचू॥४॥

अर्थ · मुझे दो वरदान देने को कहा था। सो मुझे जो अच्छा लगा माँगा। उसे सुनकर महाराज के मनमे सोच हुआ है। तुम्हारा सङ्कोच इनसे छोडा नही जाता।

व्याख्या इनका इस प्रकार का पुत्रो के साथ विषम व्यवहार मुझे अच्छा नही लगा। मुझसे पूर्वकाल मे इन्होने दो वरदान देने को कहा था। उन्ही को मैंने अवसर उपस्थित होने पर माँगा। वरदान का अर्थ यह है कि जो मनोवाञ्छित हो वह माँगे। मुझे जो अच्छा लगा वह मैंने माँगा। पर राजा को उससे बडा शोक हुआ। क्योकि उसके देने मे तुम्हारा सङ्कोच छोडना पडेगा और इनका किया यह होता नही है।

दो० सुत सनेहु इत बचनु उत, सकट परेउ नरेसु।
सकहु त आयसु धरहु सिर, मेटहु कठिन कलेसु॥८०॥

अर्थ इधर बेटे का स्नेह उधर वचन का पाश। इसी सकट मे राजा पडे हैं। यदि तुमसे हो सके तो आज्ञा शिरोधार्य करके कठिन क्लेश को काटो।

व्याख्या—जो वरदान मैंने माँगा है वह तुम्हारे प्रतिकूल है। उसके देने मे तुमसे प्रेम तोडना पडेगा। न देने से प्रतिज्ञाभङ्ग होती है। तुमसे प्रेम किसी हालत मे राजा तोडना नही चाहते। पर प्रतिज्ञाभङ्ग को भी डरते है। इसी सङ्कट मे ये

पडे हुए हैं। अब तुम्हारा काम है। यदि तुम स्वय प्रसन्नता पूर्वक उस आदेश को शिरोधार्य कर लो तो सब सकट कटा ही कटाया है।

निधरक बैठि कहै कटु बानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी॥
जीभ कमान बचन सर नाना। मनहु महिपु मृदु लच्छ समाना॥१॥

अर्थ : बेधडक बैठी हुई बातें कह रही है। सुनकर कठोरता अत्यन्त आकुल हो उठी। उसकी जिह्वा ही धनुष है और अनेक प्रकार के वचन ही बाण हैं और चक्रवर्तीजी कोमल निशाना हो रहे हैं।

व्याख्या : रानी होकर पति के लिए कठोर वचन कहने मे मन्त्री और पुत्र के सामने सङ्कुचित होना चाहिए। सो यह बेधडक बोलती चली जा रही है। चक्रवर्तीजी प्रार्थना कर चुके हैं। हाथ जोड चुके हैं कि जब तक मैं जीता हूँ तब तक फिर कुछ न बोलना। तू मेरे सामने से हट जा। पर इसका उसे कुछ ख्याल नही है। समझती है कि मेरे चुप रहने से या हट जाने से सम्भव है कि ये लोग आपस मे बात करके कोई रास्ता ढूँढ निकालें। सो मैं न होने दूँगी। उसकी कठिनता देखकर स्वय कठिनता अत्यन्त व्याकुल हो उठी। राजा के लिए कहना ही क्या है।

इस समय उसके मुख से वचन निकलते हैं वे मानो धनुष से छूटे हुए बाण हैं और सबका लक्ष्य एक मात्र चक्रवर्तीजी हैं। एक एक बाण उन्हे छेदे डालते हैं। उनमे इन आघातो के निष्फल करने योग्य कठिनता नही है। इसी से उनकी उपमा मृदु लक्ष्य से दी गयी।

जनु कठोरपनु धरे सरीरू। सिखइ धनुषविद्या बर बीरू॥
सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहु तनु धरि निठुराई॥२॥

अर्थ . मानो वीरवर कठोरपन शरीर धारण करके धनुषविद्या सीख रहा है। सब प्रसङ्ग रामजी को सुनाकर इस भाँति बैठी मानो निष्ठुरता ही शरीर धारण किये हुए है।

व्याख्या : बडे वीरो का काम ही युद्ध करना है। अत धनुषविद्या उनके बडे काम की चीज है। वे हाथ बैठाने लिए बार बार लक्ष्य वेध करते हैं। उनका प्रयोजन ही वेध करना है। लक्ष्य के छिन्न भिन्न होने की उन्हे परवाह नही। अत चक्रवर्तीजी को उन आघातो से कितनी पीडा पहुँच रही है इसका उसे कुछ ख्याल नहीं है। उसका काम चोट पहुँचाना हो गया है। कोई वार खाली न जाना चाहिए। इधर चक्रवर्ती जी का चित्त इतना कोमल है कि प्रत्येक वाक्यबाण गहरी चोट कर रहे हैं।

ऐसी निष्ठुर है कि अपने वरदान मिलने का प्रसङ्ग उसे थाती की भाँति महाराज के पास ही रहने देना तथा राज्याभिषेक का प्रसङ्ग आने पर भरत को राज्य तथा राम का वनवास माँगना राजा की भरत के राज्यविषयक स्वीकृति

रामजी के वनवास मे ही अमामञ्जस्य और अपना उसी पर हठ फलतः चक्रवर्तीजी की विकलता यह सब रामजी को सुना गयी। और तब चुपकी वैठो। भाव यह कि कहो अब क्या कहते हो। पिता के दुःख का कारण तो सुन लिया। अब निवारण करो। अत कवि कहते है कि मानो निष्ठुरता ही शरीर धारण किये वैठी है।

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। रामु सहज आनंद निधानू॥
वोले वचन विगत सब दूपन। मृदु मंजुल जनु वाग विभूपन॥३॥

अर्थ : सूर्यकुल के सूर्य रामजी सहज आनन्द के निधान है। वे मन ही मन मुसकरा रहे है। सब दोषो से रहित कोमल और सुन्दर ऐसा वचन वोले मानो वह वाणी का भूषण है।

व्याख्या : सरकार सूर्यकुल के सूर्य हैं। इनके सामने अन्धकार आ नही सकता तथा स्वभाव से ही आनन्द के निधान है। दुःख की छाया भी इन पर नही पड सकती। महाराज इनके ऊपर दुःख आया चाहता है इस भावना से दुःखी हैं। यहाँ दुःख का सम्पर्क ही नही। वन जाने मे अधिक प्रसन्नता है। अत मन ही मन मुसकराते है। प्रकट मुसकराने से माता को कष्ट होगा।

ऐसे दोषयुक्त कठोर अनुचित वचन के उत्तर मे पवित्र कोमल और वाणी के भूषणरूप वचन बोले : सुनत सीतापति सील सुभाउ। मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ।

सुनु जननी सोइ सुत वडभागी। जो पितु मातु वचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल ससारा॥४॥

अर्थ : हे माता! वही वेटा वडा भाग्यवान् है जिसे पिता माता के वचन में प्रेम हो। माँ! पिता माता को तुष्ट करनेवाला पुत्र सारे ससार मे दुर्लभ है।

व्याख्या : ऐसी कटुवादिनी विमाता को जननी कहकर सम्बोधन करते है। उसने कहा था : सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु। इसपर कहते है कि आज्ञा के शिरोधार्य करने या न करने का तो यहाँ प्रश्न ही नही है। यह तो मेरे लिए बडभागी होने का अवसर है। पुत्र का बडभागी होना तो पुत्रत्व के साफल्य मे है। धन विद्यादि साधनो मे नही। अतः जिस पुत्र को पिता के वचन मे अनुराग हो वही बड़भागी है।

माता पिता तो दिन रात पुत्र की तुष्टि के प्रयत्न मे ही रहते है। पर पुत्र ऐसा हो जो पिता माता को सन्तुष्ट रक्खे। यह बात संसार मे दुर्लभ है। भाव यह कि मैं उन दुर्लभ पुत्रो में हूँ। मुझे पिता माता के वचन मे अनुराग है। मै उसके पालन मे अति दुष्कर कर्म भी कर सकता हूँ। यहाँ तो ऐसा आदेश हो रहा है जिसमे सुख ही सुख है।

दो [1]मुनिगन मिलनु बिसेषि बन, सबहिं भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि, संमत जननी तोर ॥४१॥

अर्थ : वनमे विशेष करके मुनियो से समागम होगा। जिससे सब भाँति मेरा हित है। उसपर पिता की आज्ञा और माँ! तेरी सम्मति।

व्याख्या : सब कल्याण का मूल सत्सङ्ग है। सो जैसा वन मे होगा वैसा यहाँ नही होता। क्योकि मुनि लोग अधिकतर वही रहते हैं। पिता की आज्ञा और माँ की सम्मति से उसका महत्त्व और अधिक हो गया।

सुनु जननी सोइ सुत बडभागी इत्यादि वचन की कोमलता है। मुनिगन मिलनु बिसेखि बन सबहिं भाँति हित मोर। इत्यादि मे मञ्जुलता अधिक है। वाग्विभूषणता आगे की अर्धाली मे झलकेगी। अथवा सर्वत्र तीनो गुण हैं।

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू ॥
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ समाजा ॥१॥

अर्थ : भरत मेरे प्राणप्रिय है। वे राज्य पावे। मुझे तो आज विधाता सब प्रकार से अनुकूल है। यदि ऐसे काम के लिए भी मै वन न जाऊँ तो मूढो के समाज मे प्रथम गणना मेरी ही है।

व्याख्या इतना ही नही प्राणप्रिय भरत को राज्य मिल रहा है। अपने प्रिय के लिए ही लोग राज्य भोग और सुख की कामना करते है। यथा : येषामर्थे काक्षितं नो राज्य भोगा सुखानि च। अतः मेरी कामना भी पूरी हो रही है। आज विधाता मुझपर सर्वथा अनुकूल हैं। सत्सङ्ग की प्राप्ति धर्म की प्राप्ति सुख की प्राप्ति अनायासेन हो रही है।

कोई भी बुद्धिमान् अपने हित पर दृष्टि रखता हुआ इससे मुँह नही मोड सकता। विधि के सम्मुख होने पर उससे लाभ न उठाना मूढ का काम है और सब विधि सम्मुख होने पर लाभ न उठानेवाला मूढों का सरदार है। मै ऐसा अवसर चूक नही सकता।

सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमृत लेहिं बिषु मागी ॥
तेउ न पाइ अस समउ चुकाही। देखु बिचारि मातु मन माही ॥२॥

अर्थ जो कल्पवृक्ष का त्याग करके रेड · एरण्ड की सेवा करते है। अमृत का परित्याग करके याचना पूर्वक विष ग्रहण करते है वे भी ऐसा अवसर न चूकेंगे। माँ तू मनमे विचार करके देख ले।

व्याख्या : अब मूढ की परिभाषा कहते है। जिसे सेव्यासेव्य ग्राह्याग्राह्य का विचार न हो वही मूढ है। कल्पवृक्ष सेवन करने योग्य है जो सब कामनाओ को

---

१ यहाँ समुच्चय : द्वितीय अलङ्कार है।

पूरा करता है। निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते। जहाँ कोई पेड नही होता। वहाँ एरण्ड की पूछ होती है। अत कल्पतरु का त्याग करके एरण्ड की सेवा करनेवाला महामूर्ख है। प्राणदा अमृत का त्याग करके प्राणहर विष की याचना करनेवाला महाअज्ञानी है। पिता का आज्ञापालन कल्पवृक्ष है और राज्यपालन एरण्ड है एव सत्सङ्ग अमृत है। विषयोपभोग विष है। अत मूढ भी कल्पवृक्ष और अमृत ग्रहण के अवसर को नही चूकेगा। मै कैसे चूक सकता हूँ। राज्यपालन का एरण्ड होना तथा विषयोपभोग का विष होना मनमे विचार करने से सिद्ध होता है। अत माता को मनमे विचार करने के लिए कह रहे है।

अव एकु दुखु मोहि विसेखी। निपट बिकल नरनायकु देखी ॥
थोरिहि बात पितहि दुखु भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी ॥३॥

अर्थ माँ! मुझे एक विशेष दु ख है कि मैं महाराज को अत्यन्त विकल देख रहा हूँ। बात थोडी और पिताजी का दु ख वडा। इससे माँ मुझे विश्वास नही हो रहा है।

व्याख्या सरकार माता से कहते हैं कि जो जो तुम कह गयी वे सब तो सुख की बातें हैं। दु खी होने के लिए वहाँ स्थान ही नही है। विशेष दु ख तो यह देखकर हो रहा है कि महाराज इतने विकल क्यो है। इतने बडे लाभ के लिए मैं वन जा रहा हूँ। यह कोई वडे दु ख की बात नही है। इसके लिए इतनी वडी विकलता इतनी छटपटाहट इतना शोक तो समझ मे नही आता। मुझे तो विश्वास नही होता कि जो तुम कह रही हो वही कारण है।

राउ धीरु गुन उदधि अगाधू। भा मोहि ते कछु वड अपराधू ॥
जाते मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ ॥४॥

अर्थ महाराज धीर है। गुणो के अथाहसमुद्र हैं। मुझसे कोई बडा अपराध बन पडा है। जिससे महाराज मुझसे नही बोल रहे है। तुम्हे मेरी शपथ मुझसे साफ साफ बतला दो।

व्याख्या महाराज धीर है। थोडी सी बात मे विचलित हो नही सकते। गुणो के अथाह समुद्र है। जो बाते तुमने कहीं उनके गुणो को भली भाँति जानते है। समुद्र मे क्षोभ होने का कोई बडा कारण होना चाहिए। मैने जान बूझकर कोई अपराध नही किया है। पर अनजान मे भी बडा अपराध हो जाना सम्भव है। मालूम होता है कि मुझसे ऐसा ही कोई अपराध बन पडा है। जिससे महाराज मुझसे बोल नही रहे है। पर तुमसे तो कहा होगा। तुम क्यो छिपा रही हो। तुम्हे मेरी शपथ सच सच वतला दो। मैं सदा से तुम्हे प्यारा हूँ। अत अपनी शपथ दे रहा हूँ।

दो सहज सरल रघुवर वचन, कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोक जल वक्रगति, जद्यपि सलिलु समान ॥४२॥

अर्थ : रघुवर के स्वभाव से ही सरल वचन को उस दुर्बुद्धि ने टेढा ही समझा जैसे पानी के समान होने पर भी जोंक उसमे टेढी चाल से ही चलती है।

व्याख्या : रामजी ने तो स्वभाव से ही सीधी सीधी बातें कही पर कैकेयी की बुद्धि उल्टी हुई है। उसे उसमे कुटिलता की गन्ध मालूम हुई। उसने समझा कि यह भी वही बात कह रहे हैं जो महाराज कहते थे। यह भी अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए मुझसे कारण पूछते हैं। अपराध की चरचा चलाकर अपना निरपराध होना हमारी निष्ठुरता और अपना प्रेम द्योतित करते हैं। बिधि सब बिधि मोहि सम्मुख आजू कहकर यह दिखला रहे हैं कि तुमने तो अपने समझ में दण्ड दिया। पर उससे मुझे कष्ट नही है।

रहसी रानि राम रुख पाई। बोली कपट सनेहु जनाई ॥
सपथ तुम्हार भरत कै आना। हेतु न दूसर मै कछु जाना ॥१॥

अर्थ : रामजी का रुख पाकर रानी प्रसन्न हो गयी और कपट प्रेम जनाती हुई बोली। तुम्हारी शपथ तथा भरत की शपथ मैं दूसरा कारण नही जानती।

व्याख्या : वचन को कुटिल मानती हुई भी यह जानकर प्रसन्न हो गयी कि रामजी का रुख वन जाने का है। रामजी की ओर से सब कथा सुनने पर भी कोई बात ऐसी नही कही गयी जिससे प्रेम की कमी अनुमित हो। अत कैकेयी कपट पूर्वक अपना प्रेम जनाती है। रामजी ने मोर शपथ कहकर यह जनाया कि मै तुझे प्यारा हूँ। तो कैकेयी भी शपथ लेते समय भरत के पहिले रामजी के नाम का उल्लेख करके भरत न मोहि प्रिय राम समाना इस भाव का परिचय दे रही है। कहती है कि मैं तो यही जानती हूँ जो तुमसे कहा है। इसके अतिरिक्त यदि कोई बात हो तो मुझे पता नही है।

तुम्ह अपराध जोगु नहि ताता। जननी जनक बधु सुखदाता ॥
राम सत्य सबु जो कछु कहहू। तुम्ह पितु मातु बचन रत अहहू ॥२॥

अर्थ : बेटा! तुम अपराध के योग्य नही हो। तुम तो माँ बाप और भाई को सुख देनेवाले हो। रामजी! जो तुम कहते हो सो सत्य है। तुम माता पिता के वचन मे अनुरक्त हो।

व्याख्या : पर इससे अतिरिक्त दूसरी बात मा मोहि ते कछु बड अपराधू सम्भव नही है। क्योंकि तुम में अपराध करने का माद्दा योग्यता नही है। अपराध तो उससे होता है जिसमे दुःख देने की प्रवृत्ति होती है और तुम तो माँ बाप और भाई को सुख देनेवाले हो। अतः तुम्हारे अपराध का कोई प्रश्न ही नही उठता।

तुमने जो कहा कि वन जाने मे लाभ ही लाभ है। सो भी सत्य है और तुम माता पिता के तुष्ट करनेवाले हो यह भी सत्य है और तुम पितु मातु वचन अनुरागी भी हो। इस भांति वन जाने के लिए प्रोत्साहन देते हुए कहती है।

पितहि बुझाइ कहसु वलि सोई। चौथेपन जेहिं अजसु न होई ॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहिं दीन्हे। उचित न तासु निरादरु कीन्हे ॥३॥

अर्थ मैं वलि जाउँ यही बात अपने पिता को समझाकर कहो। जिसमे चौथेपन मे अपयश न हो। जिस पुण्य ने उन्हें तुम्हारे ऐसा पुत्र दिया उसका अनादर करना उचित नही।

व्याख्या अब यह सब बाते अपने पिता को समझाओ कि वन मे जाने से लाभ ही लाभ है। मैं तो इसे बड भाग्य की बात मानता हूँ। जिसमे इनका शोक दूर हो। ये नहीं मानते। मरती समय बुढाई मे अपयश लेने को तैयार है। वन तुम्हे जाना है। इसलिए तुम्हारे ही समझाये समझेगे।

बडे पुण्य से भगवान् ने तुम्हारे ऐसा वेटा दिया है। उसी पुण्य का शरण ग्रहण करना चाहिए। पुण्य का सञ्चय करना चाहिए। सो अपनी बात छोडकर इस अवस्था मे उस पुण्य का निरादर कर रहे है।

लागहि कुमुख बचन सुभ कैसे। मगह गयादिक तीरथ जैसे ॥
रामहि मातु बचन सब भाए। जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए ॥४॥

अर्थ बुरे मुँह से भले वचन ऐसे लगते है जैसे मगध देश मे गयादिक तीर्थ है। रामजी को माता के वचन सब अच्छे लगे। जैसे गङ्गा म जाने से पानी अच्छा हो जाता है।

व्याख्या रामजी के विमुख होने से कैकेयी का मुख कुमुख है। उसने चार वचन बहुत उत्तम कहे १ तुम्ह अपराध जोगु नहि ताता। २ राम सत्य सबु जो कछु कहहू। ३ पितहि बुझाइ कहसु बलि सोई और ४ तुम सम सुअन सुकृत जेहि दीन्हे। पर इतने से उसका कुमुखत्व गया नही। जैसे मगध मे चार तीर्थो के रहते हुए भी उसकी अशुद्धि नही गयी। जैसे ऊपर की चार बातें कैकेयीजी की पवित्र है। वैसे ही चार स्थल मगध मे भी पवित्र है। यथा मगधेपु गया पुण्या पुण्य राजगृह वनम्। च्यवनस्याश्रम पुण्यो नदी पुण्या पुन पुन। पाद्म। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं वसि कुसग चह सुजनता ताकी आस निरास। तीरथहू को नाम भो गया मगध के पास। गया तीर्थ होने पर भी आसुर तीर्थ है। इसलिए उसको शोभा नही।

सरकार समझते है माता प्रेम करती है। प्रशसा करती है। माता के भावोपहत वचन सरकार का पाकर भावपूर्ण हा गय। जैसे गन्दा पानी भी गङ्गा मे मिलकर पवित्र हो जाता है करमनास जल सुरसरि परई। तेहि को कहो सीस नहिं धरई।

दो गइ मुरुछा रामहि सुमिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह।
सचिव राम आगमन कहि, विनय समय सम कीन्ह ॥४३॥

अर्थ मूर्च्छा जाती रही। तब रामजी को स्मरण करके राजा ने करवट बदला। मन्त्री ने रामजी का आगमन कहकर समयानुकूल विनती की।

व्याख्या अभी आँख बन्द हैं। महाराज मूर्च्छित थे। उन्हें रामजी का आना मालूम नहीं। जब कैकेयी को हट जाने को कहा था और वह नहीं हटी तो स्वयं महाराज ने मुँह फेर लिया। सुमन्त्रजी रामजी को बुलाने गये। उसी समय मूर्च्छा हुई। अब चेत हुआ है तब करवट बदली। जब मन्त्री ने देखा कि महाराज होश में आये तब विनय किया। बड़ा नाजुक समय है। महामन्त्री भी उतना ही बोलता है जितने बिना काम न चले। अर्थात् महाराज! धैर्य धरें आँख खोलें। देखिये रामजी आगये इत्यादि

अवनिप अकनि रामु पगु धारे। धरि धीरजु तब नयन उघारे॥
सचिव सँभारि राउ बैठारे। चरन परत नृप रामु निहारे॥१॥

अर्थ चक्रवर्तीजी ने यह सुनकर कि रामजी पधारे हैं धैर्य धरकर आँख खोला। मन्त्री ने सँभाल कर महाराज को बिठाया। उन्होंने रामजी को चरणों पर गिरते देखा।

व्याख्या आकर्ण्य शब्द का प्राकृत रूप अकनि है। महाराज की हालत बड़ी नाजुक है। शरीर व्याकुलता से इतना शिथिल हो गया है कि आँख नहीं खुलती। जब मन्त्री की वाणी सुनी कि रामजी पधारे हैं तब आँख खोली। आँख खोलने में धैर्य धारण करना पड़ा।

आँख तो खुली पर उठकर बैठ न सके। मन्त्री ने देखा कि अब यह बैठना चाहते हैं। पर उठ नहीं सकते। तब उसने सँभालकर बैठाया कि कहीं गिर न जायँ। उसी समय रामजी चरणों में गिरे। राजा ने देखा।

लिये सनेह बिकल उर लाई। गइ मनि मनहु फनिक फिरि पाई॥
रामहि चितइ रहेउ नरनाहू। चला बिलोचन बारि प्रवाहू॥२॥

अर्थ स्नेह से विकल होकर हृदय से लगा लिया। जैसे खोई हुई मणि को सर्प ने फिर से पा लिया हो। नरेश रामजी को देखते रह गये। आँखों से अश्रुधारा बह चली।

व्याख्या चक्रवर्तीजी को सन्देह था कि पता लगते ही रामजी कहीं उधर के उधर ही वन न चल जायँ। अतः उस सर्प की उपमा देते हैं जिसकी गयी हुई मणि फिर से मिली हो। अर्थात् मणि के लिए बड़ी उत्सुकता थी। मिलने पर बड़ा सन्तोष हुआ।

मन से वन दे चुके हैं। अतः रामहीन अवध का दृश्य सामने है। रामजी के देखने से मानो शरीर में प्राण का सञ्चार हो रहा है। पर साथ ही साथ यह भी ध्यान है कि थोड़े ही काल में रामजी का दर्शन दुर्लभ हो जायगा। सो प्रेम

उमड आया। आँखो से आँसू की धारा वह चली। प्रवाह रुकता नही। न जाने इतना जल कहाँ से आगया।

सोक बिबस कछु कहइ न पारा। हृदय लगावत बारहिं बारा॥
बिधिहि मनाव राउ मन माही। जेहि रघुनाथु न कानन जाही॥३॥

अर्थ शोक के विवश हैं। कुछ कह नही सके। वार वार हृदय म लगा रहे है। मन ही मन विधाता से मना रह है कि रामजी वन न जायँ।

व्याख्या रामहि चितै रहे से कर्मणा शोक बिबस से मनसा तथा कछु कहै न पारा से वाचा शोक कहा। गयी हुई मणि मिली। कही फिर न चली जाय। अत वियोग के भय से वार बार हृदय मे लगाते हैं। पर तृप्ति नही होती।

मन ही मन विधाता से मनाते है कि रामजी वन न जायँ। भाव यह कि मैं तो कहूँ कि तुम वन जाओ। पर रामजी मेरे कहने पर भी न जायँ। बिधिहि मनाव कहने का कारण यह कि कोई ऐसी विधि बैठा दे कि मरी बात भी न जा सके और रामजी भी वन न जायँ।

सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी। बिनती सुनहु सदासिव मोरी॥
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी॥४॥

अर्थ फिर महादेवजी का निहोरा करके कहते है कि हे सदाशिव मरी विनती सुनो। तुम शीघ्र प्रसन्न होनेवाल हो और बेहिसाब देनेवाल हो। मैं दीन हूँ। ऐसा जानकर मेरी आर्त्तिहरण करो।

व्याख्या चक्रवर्तीजी फिर विचारते है कि ब्रह्मदेव तो शुभाशुभ कम के फल देनेवाल हैं। साधन निरपेक्ष ईप्सित फल देनेवाल तो महादेव ही है और शीघ्र ही प्रसन्न भी होते है। यथा औढरदानि द्रवत पुनि थोरे। सकत न देखि दीन करजोरे। अत आराधन के फल पर जोर न देकर निहोरा करते है कि मुझ दीन जानकर मेरी विनती सुनो और मेरी आर्ति हरण करो।

दो तुम्ह प्रेरक सबके हृदयँ, सो मति रामहि देहु।
वचनु मोर तजि रहहि घर, परिहरि सीलु सनेहु॥४४॥

अर्थ तुम सबक हृदय के प्रेरक हो। ऐसी बुद्धि रामजी को दो कि मेरे वचन को हटाकर शील सनेह को छोडकर घर रह जायँ।

व्याख्या ईश्वर सवभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सवभूतानि यन्त्रारूढानि मायया। ईश्वर सब प्राणियो क हृदय म बठा हुआ सबको कठपुतली की तरह नचाया करता है। अत उस महादेव से चक्रवर्तीजी प्रार्थना करते ह कि तुम सवके हृदय के प्रेरक हो। तुम्हारी प्ररणा से ही रामजी ऐसे आज्ञाकारी हैं। शील सनेह के समुद्र है। यह तुम्हारी बडी कृपा है। पर आज ये गुण तो मर प्राणग्राहक हो रहे हैं। मेरा सवनाश उपस्थित है। सा रामजी की बुद्धि फेरने म

तुम्ही समर्थ हो। उनकी बुद्धि फेर दो कि मैं सो कहूँ कि तुम वन जाओ। पर रामजी शील सनेह तोडकर कहे कि पहिले अपराध तो बतलाओ तो पीछे वन जाने को कहो। गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानत । उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते। रामजी धर्मशास्त्र लेकर उठ कि विषयलिप्त गुरु जिसे कार्याकार्य का ज्ञान न हो, सन्मार्गगामी न हो, उसका परित्याग करना चाहिए। अब यदि कहे कि तुम्हारा अशुभ कर्म उदय हुआ है, उसकी क्या गति होगी। तो कहते हैं

अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ। नरक परौ बरु सुरपुर जाऊ॥
सब दुख दुसह सहावउ मोही। लोचन ओट रामु जनि होही॥१॥

अर्थ संसार मे अपकीर्ति हो, कीर्ति का नाश हो, बल्कि स्वर्ग जाय मुझ नरक ही हो। मुझे सब दु सह दु ख सहाओ पर राम आँख के ओट न हो।

व्याख्या यदि मैं रामजी को वन नही देता तो कैकेयी प्राण दे देगी। उसने कह दिया है होत प्रात मुनिवेषधरि जौ न राम वन जाहिं। मोर मरन राउर अजस नृप समुझिअ मनमाहिं। तो भल ही कैकेयी प्राण दे दें, मेरी अपकीर्ति हो जाय। बडे परिश्रम और सावधानी से कमाये हुए सुयश का नाश हो जाय। लोग कहे कि राजा भ्रष्टप्रतिज्ञ हैं। इसकी करणी से ऊबकर रानी ने प्राण दिया और अपकीर्त से स्वर्ग म प्रवेश नही होता केवल दूर्वा पीसकर पीनेवाले मुनि पर लोगो को भ्रम हो गया कि यह ताडी पीते हैं। इस अपकीर्ति से उनका स्वर्ग मे प्रवेश न हुआ। सो मुझ भी न हो। भ्रष्टप्रतिज्ञ होने के पाप से भल ही नरक भोगना पडे। इसके अतिरिक्त और जो दु सह दुःख हैं। उन्हे भी उस अशुभ कर्म के फल रूप से मुझे सहना पडे। मुझे स्वीकार है। पर रामजी मेरी आँखो के ओट न हो। इस सुख से मैं वञ्चित न होऊँ।

अस मन गुनइँ राउ नहिं बोला। पीपर पात सरिस मनु डोला॥
रघुपति पितहि प्रेमबस जानी। पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी॥२॥

अर्थ मनमे ऐसा विचारते हुए चक्रवर्तीजी कुछ बोले नही। परन्तु पीपर के पत्ते की भाँति मन डोल उठा। रामजी ने समझ लिया कि पिताजी प्रेम के वश मे पड गये हैं और माँ फिर कुछ बोलना चाहती है। ऐसा अनुमान किया।

व्याख्या रामजी को बुलवाया है। वे आये हुए हैं। उनसे कुछ कहना चाहिए। पर चक्रवर्तीजी कुछ बोल नही। क्योंकि उपर्युक्त बातें सोच रहे थे। उनका मन ऐसा अस्थिर हो गया जैसे पीपर का पत्ता होता है। पीपर का नाम ही चलदल है। उसके पत्ते सदा चलायमान रहते हैं। कभी ठहरते ही नही। यही दशा राजा के मन की हो रही है। उन्हे उस बात पर भी स्थिरता नही जो अभी गुन रहे थे उसपर भी स्थिर हो जाते तो कुछ बिगडा नही था। पर हैं धर्मधुरन्धर उनमे धर्म भी छोडते नही बनता।

रामजी ने देखा कि पिताजी प्रेम के वश हो गये हैं। इसलिए बोलने मे

असमर्थ हैं और इधर कैकेयी समझे बैठी है कि ये वन न देंगे। इसलिए मुझे समझाने को कह रही है। इनके चुप रहने को वह सह न सकेगी। फिर कुछ बोला ही चाहती है। अनुमान किया कि इसने कह कहकर कष्ट बढाया है। पिताजी का मुझपर इतना प्रेम इसे असह्य हो रहा है।

देस काल अवसर अनुसारी। बोले बचन बिनीत बिचारी ॥
तात कहौं कछु करौं ढिठाई। अनुचितु छमब जानि लरिकाई ॥३॥

अर्थ : देशकाल और अवसर के अनुसार विनीत वचन विचार कर बोले। हे तात! मैं कुछ कहता हूँ ढिठाई करता हूँ। मेरे इस अनौचित्य को लडकपन समझकर क्षमा कीजिये।

व्याख्या : यद्यपि पुत्र का धर्म पिता की आज्ञा मानना है उसे शिक्षा देना नही है। इसलिए विचारकर विनीत वचन देशकाल और अवसर के अनुकूल बोले। वहाँ पिता पुत्र का सम्मिलन हो रहा है। दूसरा कौन बोले। अत रामजी का ही बोलना देश के अनुकूल था। वन जाने का समय भी माता ने सबेरे ही निश्चय किया है। अत जो कुछ कहना सुनना हो उसका यही समय है। अत: रामजी का कहना काल के भी अनुकूल था। यही अवसर माता के आज्ञापालन का है। यथा : पितहि बुझाइ कहसु बलि सोई। चौथेपन जेहि अजसु न होई। अत: रामजी का कहना अवसर अनुकूल था।

विना पूछे कहता हूँ यह मेरी ढिठाई है। विना कहे रहा नही जाता यह लडकपन है। ढिठाई और लडकपन दोनो अनुचित हैं। पर आप पिता है। आप बच्चो का अनौचित्य क्षमा करते आये हैं सो इस वार भी क्षमा करेंगे।

अति लघु बात लागि दुखु पावा। काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा ॥
देखि गोसाइँहि पूँछिउँ माता। पुनि प्रसगु भए सीतल गाता ॥४॥

अर्थ : अत्यन्त छोटी सी बात के लिए आपको बडा दु ख हुआ। मुझे इस बात का समाचार पहिले किसी ने नही दिया। आपको देखकर मैंने माँ से पूछा। सब प्रसङ्ग सुनकर शरीर शीतल हो गया।

व्याख्या : माता ने कहा छाडि न सकहि तुम्हार सकोचू। सो दु ख सङ्कोच का था कि मैं रामजी से कैसे कहूँ कि तुम वन जाओ। यथा कह्यो राज वन दियो नारिवस गरि गलानि गये राउ। सो यदि मुझे पहले समाचार मिल गया होता तो सङ्कोच की बात ही न थी मैं उधर से उधर ही वन चला जाता। यहाँ आने पर आपकी विकलता देखकर माता से पूछा। उसने सब प्रसङ्ग मुझसे कह सुनाया सुनकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई। आपकी दशा देखकर शरीर सन्तप्त हो उठा था। सो शीतल हो गया। क्योंकि यह दोनो बात मुझे मुहमाँगी मिल गयी। मेरा मन नवगजेन्द्र की भाँति वन मे ही आनन्द मानता है। राज्य उसे बन्धन मालूम होता है। भरत प्राणप्रिय हैं उन्हे राज्य मिलना ही मुझे इष्ट है। अपने प्रिय के लिए

ही लोग राज्य भोग और सुख चाहते हैं। सो प्राणप्रिय को मिला। इससे अधिक मङ्गल क्या होगा ?

दो. मंगल समय सनेह वस, सोचु परिहरिअ तात।
आयसु देइअ हरषि हिय, कहि पुलके प्रभु गात ॥४५॥

अर्थ : मङ्गल के समय स्नेहवश जो सोच करते है उसे छोड़ दीजिये। प्रसन्न मन से आज्ञा दीजिये। ऐसा कहते हुए प्रभु का शरीर पुलकित हो गया।

व्याख्या : वन के लिए प्रस्थान मेरे लिए मङ्गल है। सोच के लिए इसमें कोई स्थान ही नही है। बन्धन से छूटना और सब कल्याणों का मूल मुनिजन समागम से बढकर मङ्गल क्या हो सकता है। सो उपस्थित है। क्या सन्तसमागम से किसी का आज तक अकल्याण हुआ है। तब सोच किस बात का ? मेरे स्नेह के कारण आप सोच रहे है : लोचन ओट रामु जनि होही। इस सोच को छोड़िये और मेरे कल्याण की ओर दृष्टि देकर प्रसन्न होकर आज्ञा दीजिये। यह कहते हुए पुलक होने का कारण आनन्दातिरेक है। पिता के आज्ञा पालन से जन्म का साफल्य समझकर सरकार को अति हर्ष है।

धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू ॥
चारि पदारथ करतल ताकें। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें ॥१॥

अर्थ : संसार में उसी का जन्म धन्य है। जिसके चरित्र सुनने से पिता को आनन्द हो। उसके चारों पदार्थ हस्तगत हैं। जिसे माता पिता प्राण के समान प्यारे हों।

व्याख्या : पिता धर्मः पिता कर्म पितैव परमा गतिः। पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः। पिता ही धर्म है पिता हो कर्म है। पिता ही परमगति है। पिता के प्रसन्न होने से सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं। अतः गोस्वामीजो कहते हैं कि सबसे बड़ी सेवा पुत्र की यह है कि उसके चरित्र सुनने से पिता को आनन्द हो। कौसल्याजी कहती हैं : तात पितहि तुम्ह प्रान पियारे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे।

जिसका चरित ऐसा हो और जिसे माता पिता प्राण से प्यारे हो। उसे धर्म अर्थ काम और मोक्ष के लिए किसी साधन की अपेक्षा नही है। ये सब उसे आप से आप प्राप्त हो जाते हैं : रामजी के चरित्र से यह शिक्षा संसार को मिलती है।

आयसु पालि जनम फलु पाई। ऐहउँ बेगहिं होउ रजाई ॥
बिदा मातु सन आवौं मांगी। चलिहौं बनहि बहुरि पग लागी ॥२॥

अर्थ : आज्ञा पालन करके जन्म का फल पाकर के शीघ्र ही लौटूँगा। अब आज्ञा हो। माता से विदा मांग आऊँ। तब फिर चरणों मे प्रणाम करके वन जाऊँगा।

व्याख्या आयसु देइय हरषि हिय कहि पुलके प्रभुगात से प्रसग छोडा था। अब फिर वहीं से उठाते हैं। रामजी कहते है कि आप की आज्ञा के पालन मे ही मेरे जन्म का साफल्य है। मैं अपना जन्म सफल करने जाता हूँ। चौदह वर्ष के बाद लौटने म एक मिनट की देर न लगाऊँगा। यह कोई न समझे कि नाराज होकर न लौटेंगे। या मनाने के लिए किसी को जाना पडेगा। मैं स्वयं लौट आऊँगा। बात तय हो गयी। अब आज्ञा हो। मौन स्वीकारलक्षणम् मानकर कहते हैं कि जाने के पहिले माताजी से विदा माँगना भी परमावश्यक है। उनसे आज्ञा न माँगूगा। विदा माँगूगा और चलने से पहिले फिर चरणो की वन्दना के लिए आऊँगा।

सरकार समझ रहे हैं कि मा से छुट्टी पाना सहज बात नही है और जब तक उनसे छुट्टी न मिल जाय तब तक विदाई का प्रणाम पिताजी से कैसे करें।

११ प्रजा विरह विषाद प्रसङ्ग

अस कहि रामु गवनु तब कीन्हा। भूप सोक बस उतरु न दीन्हा॥
नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढी जनु सब तन बीछी॥३॥

अर्थ ऐसा कहकर रामजी तब चल गये। राजा ने शोक के वश होकर उत्तर न दिया। नगर मे यही तीखी बात व्याप्त हो गयी। जैसे छू जाने से सम्पूर्ण शरीर मे बीछी व्याप्त हो जाती है।

व्याख्या रामजी इस बात पर नही अडे कि पिताजी मुख से कह दें कि तुम वन जाओ। तब मै जाऊँगा। उन्होने पिता की विकलता देखकर समझ लिया कि ये वन दे चुके। मुख से कहने म इन्हें कष्ट होगा। अत वहाँ से माता के पास चल पडे।

अभी तक यह बात नगर म फैली ही नही थी। पर अब रुक न सकी। तीखी बात होने के कारण सारे नगर मे फैलते देर न लगी। जैसे बीछी छू जाने से सारे शरीर म व्याप्त हो जाती है। बीछी नाम का वृक्ष उत्तराखण्ड मे होता है। उसके छू जाते ही सारे शरीर म तीव्र वेदना के व्याप्त होते देर नही लगती। बीछू यदि डङ्क मारे तो भी ऐसा ही होता है। पर उसके छू जाने से कुछ नही होता।

सुनि भये बिकल सकल नरनारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी॥
जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई। बड बिषादु नहि धीरजु होई॥४॥

अर्थ सुनकर सब नरनारी विकल हो गये। जैसे दावाग्नि देखकर वृक्ष और लता विकल हो जाते हैं। जो जहा सुनता है सिर पीटने लगता है। विषाद बडा भारी है। धैर्य होता ही नही।

व्याख्या भगवान् मनु कहते है कि पेड अन्त सज्ञ होते है। उनके भीतर ज्ञान होता है। महाभारत म युक्तिप्रदर्शनपूर्वक कहा गया है तस्मात् पश्यन्ति

पादपा । तस्मात् श्रृण्वन्ति पादपा । पेड देखते हैं। पेड सुनते है। वन मे आग लगी हुई देखकर लता और वृक्ष विकल हो जाते हैं। उसी भाँति रामजी का वनवास सुनकर नरनारी विकल हो उठे। समाचार के फैलने की शीघ्रता मे बीछी की उपमा दी। पर बीछी मे शारीरिक वेदना प्रधान है। यहाँ तो सबको रामजी को वनवास होगा यह सुनकर मानसिक वेदना हुई। दावानल देखकर हम भी जलेंगे · इस भय से वेलि विटप को मानसिक वेदना होती है। अत यह दूसरी उपमा देनी पडी।

अब उस मानसिक वेदना का शरीर पर प्रभाव दिखलाते हैं कि जब बड़ा विषाद होता है . धैर्य नही बँधता तो आदमी अपना सिर पीटने लगता है। यहाँ अयोध्या मे सबकी यही दशा है। जो सुनता है सो रामविरहाग्नि से व्याकुल होकर सिर पीटने लगता है।

दो मुख सुखाहि लोचन स्रवहिं, सोकु न हृदय समाइ।
मनहुँ करुन रस कटकई, उतरी अवध बजाइ ॥४६॥

अर्थ मुख सूखता है। आँख से आँसू बहता है। शोक हृदय मे समाता नही। मानो करुणा रस की फौज डङ्का बजाकर अयोध्या मे उतर पडी है।

व्याख्या · जब शोकाग्नि हृदय मे जलती है तब मुख सूखता है। आँख से आँसुओ की धारा वह निकलती है। असह्य शोक मे ऐसा होता है। अयोध्या मे नरनारियो की यही दशा है। मालूम होता है कि ये करुणा रस की सेना के योद्धा लोग हैं। सम्पूर्ण अयोध्या मे फैले हुए अपना पराक्रम दिखलाकर कब्जा कर रहे हैं।

मिलेहि माँझ विधि वात बिगारी। जहँ तहँ देहिं कैंकइहि गारी ॥
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावकु धरेऊ ॥१॥

अर्थ मेल के बीच मे ही ब्रह्मा ने बात बिगाड दी। जहाँ तहाँ कैकेयी को गालियाँ दे रहे हैं। इस पापिनी को समझ क्या पडा। जो घर को छाकर उसके ऊपर आग रख दिया।

व्याख्या इस राजकुल मे ऐसा मेल था कि वात बिगडनेवाली थी ही नही। यह ब्रह्मा की ही करामात है कि जहाँ कभी फूट न हुई वहाँ एकाएक वात बिगड गयी। फिर भी निमित्त कैकेयी हुई है। अत. जहाँ तहाँ लोग नि शङ्क होकर कैकेयी को गालियाँ देते हैं।

कहते हैं कि यह पापिनी है। इसे इस काम मे कौन सा लाभ दिखाई पडा। यह तो घर की छानेवाली थी। पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढावौं तोरी। कबहुँ न कियउ सवति आरेसू। आदि से लेकर आजतक इसने घर को छाया। कुटुम्ब मे विरोध नही होने दिया। जब सब ठीक हो गया तो छाये हुए घर पर रामविरह रूपी अग्नि रख दी। यथा सहि न सके रघुवर बिरहागी। चले लोग सब व्याकुल भागी।

वारिधि अनुकूला। काल की भाँति यथा : लागेउ तोहि पिसाच जिमि काल कहावत मोर। इसीलिए साध्वी स्त्री स्वातन्त्र्य को अपना अभाग्य मानती हैं। स्थूलदर्शी इस बात को नही देख सकते। कवि सूक्ष्मदर्शी होते हैं। इसलिए लोग कवियों का प्रमाण देकर बोल रहे है।

का सुनाइ बिधि काह सुनावा। का देखाइ चह काह देखावा॥
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा। बरु बिचारि नहि कुमतिहि दीन्हा॥१॥

अर्थ : क्या सुनाकर ब्रह्मा ने क्या सुनाया। क्या दिखलाकर अब क्या दिखलाना चाहते हैं। एक कहते है कि राजा ने अच्छा नही किया जो इस कुबुद्धि को विचार करके वर नही दिया।

व्याख्या : यह ब्रह्माण्ड ब्रह्मदेव के सकल्प से ही उत्पन्न हुआ है और चल रहा है। अत: जो कुछ इसमे होता है सबके मूल मे ब्रह्मदेव का सङ्कल्प है। अतः वे ही मुख्य कर्ता हैं। जो कल्याण सुना गया अर्थात् रामजी का अभिषेक : वह भी विधाता के ही कारण से सुना गया और अब जो रामजी का वनवास सुन रहे हैं यह भी उन्ही की करतूत है। दिखलाया तो यह कि आज गहागह अवध बधावा और अब उसी अवध में आर्तनाद देखने की बारी आ रही है।

छ. प्रकार के विचार के लोग अवध में दृष्टिगोचर हो रहे हैं। वे लोग आपस मे अपना अपना विचार प्रकट कर रहे हैं। १ अर्थशास्त्री बोले कि राजा ने अच्छा नही किया। सुबुद्धि कुबुद्धि का विचार करके वर देना चाहिए। देखो कुबुद्धि ने कैसा बुरा वर माँगा।

जो हठि भयउ सकल दुख भाजनु। अबला बिबस ग्यानु गुनु गाजनु॥
एक धरम परमिति पहिचाने। नृपहि दोषु नहिं देहिं सयाने॥२॥

अर्थ : जो हठ पूर्वक सम्पूर्ण दुःख के पात्र हो गये। स्त्री के वश मे हो जाने से मानो राजा के सब ज्ञान और गुण ही चले गये। एक सयाने धर्म की मर्यादा के जाननेवाले राजा को दोष नही देते थे।

व्याख्या : राजा को दुःखी होने की कोई बात नही थी। अब इस कारण से व्यर्थ दुःख के भाजन बन रहे हैं। उन्हे अपने वचन पर हठ न करना चाहिए। ऐसा विवेकी और गुणी राजा : धर्म धुरधर नृपरिपि ज्ञानी। हृदय भगति मति सारँग पानी : सो स्त्री के वश मे पड़ा हुआ मानो अपने सब ज्ञान और गुणों को खो बैठा है। यह इससे कहते नही बन रहा है कि मैं राजा हूँ। अन्याय नही कर सकता। किस अपराध से राम को वन दें।

२. धर्म की मर्यादा के जाननेवाले धर्मशास्त्री सयाने लोग कहते हैं कि इसमें राजा का कोई दोष नही है। सग्राम मे सहायता के समय उन्होने दो वर माँगने को कहा था। वे ही वर थाती की भाँति राजा के पास पड़े थे। आज इस दुष्टा ने उन्ही

ररो से काम लिया। ये नर्म मे माँगे हुए वर नही हैं जिससे राजा को दोषी कहा जा सके।

सिवि दधीचि हरिचंद कहानी। एक एक सन कहहिं बखानी ॥
एक भरत कर समत कहहीं। एक उदास भाय सुनि रहहीं ॥३॥

अर्थ : शिवि दधीचि और हरिश्चन्द्र की कहानी एक एक से बखान कर कहते हैं। कोई भरत की सम्मति कहते हैं और कोई उदासीन होकर रह जाते हैं।

व्याख्या : उन धर्मशास्त्रियो का कहना है कि धर्म के निर्वाह मे तो दु:ख होता ही है। यहाँ तो दु ख की जितनी ही तीव्रातितीव्र मात्रा हो उतना ही धर्म का उत्कर्ष है। राजा शिवि शरणागत कपोत के लिए अपना मास काटकर तौलते गये और वह कपोत भारी होता ही गया पर राजा अपना मास काटने से विरत नही हुए। दधीचि ने अपनी हड्डियाँ दे डाली। हरिश्चन्द्र ने अपना राज्य दिया। स्त्री बच्चे को बेंच दिया। स्वय डोम के हाथ बिक गये। पर अपने धर्म से न हटे। यही महाराज के धर्म की परीक्षा का समय है। इसमे उनका दोष क्या है ?

३ तीसरे प्रकार के कुछ लोग कूटनीतिज्ञ ऐसे हैं कि इसमे भरत की चाल देखते हैं कि माँ को सिखा पढाकर आप ननिहाल बैठे हुए है। चौथे ज्ञानी महात्मा हैं जो उदासीन हैं कुछ भी नही कहते।

कान मूँदि कर रद गहि जीहा। एक कहहिं यह बात अलीहा ॥
सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे। रामु भरत कहुँ प्रानपियारे ॥४॥

अर्थ · कान मूँदकर और जीभ को दाँत से दाबकर कोई कहते है कि यह बात झूठ है। तुम्हारे ऐसा कहने से पुण्य का क्षय होगा। राम तो भरत को प्राण से प्यारे हैं।

व्याख्या · पाँचवे प्रकार के लोग भगवद् भक्त हैं। ये ऐसी बात सुनना नही चाहते। इसलिए कान मूँद लेते है और दूसरे को भी ऐसी बात कहने से निषेध करते हैं। इसलिए दाँत तले जीभ दबाते हैं और कहते हैं कि यह बात निर्मूल है। निर्दोष पर दोषारोपण करने से पुण्य का क्षय होता है। सो क्यो व्यर्थ अपने पुण्य का क्षय करते हो। ससार राज्य सुख तो अपने प्यारो के लिए ही चाहता है और भरत को राम प्राण से प्यारे हैं। उनके अभिषेक मे भरत बाधक क्यो होंगे ?

दो. चंदु चवइ बरु अनल कन, सुधा होइ विष तूल।
सपनेहुँ कबहुँ न करहिं किछु, भरतु राम प्रतिकूल ॥४८॥

अर्थ · चाहे चाँद मे से आग के कण गिरें चाहे अमृत विष हो जाय पर सपने मे भी भरत राम के प्रतिकूल कुछ भी नही कर सकते।

व्याख्या · चन्द्रमा हिमकर हैं · हिमकण का स्राव करते हैं। वे चाहे अग्निकण का स्राव करने लगें। उनके स्वरूप मे इतना बडा वैषम्य उपस्थित हो जाय और

अमृत विष तुल्य हो उसका स्वभाव ही पलट जाय, पर भरत के स्वरूप और स्वभाव मे अन्तर नही पड सकता। यथा भरत सुभाउ सुसीतलताई। सदा एकरस बरनि न जाई। सो भरतजी रामजी के प्रतिकूल सपने म भी नही हो सकते जाग्रत् की कौन चलावे।

एक विधातहि दूपनु देही। सुधा देखाइ दीन्ह बिपु जेही॥
खरभरु नगर सोचु सब काहू। दुसह दाहु उर मिटा उछाहू॥१॥

अर्थ कोई ब्रह्मा को दोष दते है जिसने अमृत दिखलाकर विष दिया। नगर मे खलबली मच गयी। सबको सोच हो गया। हृदय म नही सहने योग्य दाह पैदा हो गया। उछाह जाता रहा।

व्याख्या यह छठा प्रकार कमकाण्डियो का है। यह सीधे सीधे विधाता को दोष देते हैं। दिखाकर न देना दोष है और अमृत दिखाकर विष देना तो बडा ही कराल कर्म है। यथा सुनिअ सुधा देखिअ गरल सब करतूति कराल। रामराज्याभिषेकात्सवरूपी अमृत विधाता ने दिखलाया। दिखलाकर न देते। रामजी का अभिषेक न होता यही बहुत था। उनको वनवास रूपी विष दिया जा रहा है।

विष दिये जाने पर जो खलबली मचती है वह मची। सबको सोच है कि इस विष से रक्षा कठिन है। विष काम भी करने लगा। हृदय म जलन उत्पन्न हो गयी। सबके हृदय म उत्साह था। यथा सुनत राम अभिषेक सोहावा। बाज गहागह अवध बधावा। सो उछाह मिट गया।

विप्रबधू कुलमान्य जठेरी। जे प्रिय परम कैकेयी केरी॥
लगीं देन सिख सीलु सराही। बचन बानसम लागहि ताही॥२॥

अर्थ ब्राह्मणो की स्त्रियाँ कुल की मान्य बडी बूढी जो कैकेयी को परमप्रिय थी उसके शील की प्रशसा करती हुई समझाने लगी। पर वे वचन उस बाण जैसे लगते थे।

व्याख्या ब्राह्मणो की स्त्रियाँ जिन्हे अति पूज्य दृष्टि से रानी कैकयी सदा देखती थी कुल की मान्य ननद फूफी आदि जठेरी जेठानी चचियासास आदि जो कैकेयी की परमप्रिय थी जब उन लोगो ने यह समाचार सुना तो अपना जोर समझकर कैकयी के पास पहुँची और उसके शील की स्तुति करके समझाने लगी। पर समझना तो दूर रहा उनके वचन उसे बाण के समान लगने लगे। उसने समझा कि ये ठकुरसोहाती करनेवाली आगयी। ये सब शत्रु की ओर मिली हुई है। मेरे शील की सराहना इसलिए हो रही है कि मै इनकी बातो म आकर अपने ध्येय से हट जाऊँ। ये एक बात भी मेरे हित की नही कह रही हैं। जिसमे कौसल्या का भला हो वही कह रही हैं। अत वे वचन उसे बाण से लगते थे।

भरतु न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु येहु सबु जगु जाना ॥
करहु राम पर सहज सनेहू। केहि अपराध आजु बनु देहू ॥३॥

अर्थ : राम के समान मुझे भरत भी प्यारे नहीं सदा यह कहती आयी हो और संसार इस बात को जानता है। रामजी पर तुम स्वाभाविक स्नेह करती हो तो आज किस अपराध पर वन दे रही हो।

व्याख्या : अब समझाने का प्रकार कहते हैं। वे सब कहने लगी कि तुम तो सदा कहती रही कि राम के समान मुझे भरत भी प्यारे नहीं। तुम्हारा बर्ताव भी राम के साथ वैसा ही था। इसलिए संसार में यह बात प्रसिद्ध हो गयी कि महारानी कैकेयी बेटे से अधिक रामजी को मानती हैं। सो क्या वह कहना और वह बर्ताव मिथ्या था? तुम्हारा स्नेह रामजी पर बनावटी था। यह तो हम लोग मान नहीं सकती। सो स्वाभाविक स्नेह में हठात् इतना बड़ा परिवर्तन क्यों? बिना कारण कार्य नहीं होता। अपराध से ही स्नेह में कमी आती है। इतने दिनों तक तो सब ठीक चला। आज जो वन दे रही हो सो किस अपराध पर? हम लोग भी सुनें कि राम ने यह अपराध किया है। जगत् भी जाने: नहीं तो निरपराध को दण्ड देने का दोषी संसार तुम्हें समझेगा।

कबहुँ न कियहु सवतिआ रेसू। प्रीति प्रतीति जान सबु देसू ॥
कौसल्याँ अब काह बिगारा। तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा ॥४॥

अर्थ : तुमने कभी सौतियाडाह नहीं की। तुम्हारी प्रीति और विश्वास को सारा देश जानता है। कौसल्या ने अब क्या बिगाड़ा जिसके लिए तुम सारे नगर पर वज्र ढहा रही हो।

व्याख्या : कुछ उत्तर न मिलने पर उन लोगों ने सोचा कि रामजी से कोई अपराध नहीं हुआ। सौत का स्वभाव है दूसरी के पुत्र की बढ़ोतरी नहीं देख सकती। पर यहाँ तो यह बात कभी नहीं थी। अतः कहती है कि तुमने तो आज तक सौतियाडाह नहीं किया। तुम्हारे में और कौसल्या में जैसी प्रीति प्रतीति है वैसी सौतों में कहीं देखी नहीं जाती। यह बात संसार जानता है। रामजी को युवराजपद महाराज देते थे। उसमें कौसल्या का क्या दोष है? सो तो अब होगा नहीं। अब तो भरत युवराज होंगे। बात समाप्त हो गयी। अब जो राम को वन भेज रही हो यह तो कौसल्या को दण्ड देना है। तुम्हारे विवाह में कौसल्या बाधक नहीं हुई। हवि विभाग में बाधक नहीं हुई। तुम्हारे बढ़ते हुए अधिकार में बाधक नहीं हुई। जब बिगाड़ करने का समय था तब बिगाड़ नहीं किया। अब कौसल्या ने क्या बिगाड़ा जो कहती हो : जस कौसिलाँ मोर भल ताका। तस फलु तिन्हहि देउँ करि साका। तुम जो चली हो कौसल्या को दण्ड देने सो वह दण्ड कौसल्या पर ही सीमित न रहकर सम्पूर्ण प्रजामण्डल पर गिरेगा। सम्पूर्ण प्रजा पर वज्र क्यों गिरा रही हो?

दो० सीय कि पिय सँगु परिहरिहि, लखनु कि रहिहहिं धाम ।
राजु कि भूँजव भरत पुर, नृपु कि जिअहि बिनु राम ॥४९॥

अर्थ सीता क्या पति का सग परित्याग करेगी ? लक्ष्मण क्या घर रहेगे ? भरत क्या पुर का राज्य भोगेंगे ? राजा क्या बिना राम के जीवेंगे ?

व्याख्या सीता कुलवधू है वह निश्चय रामजी के साथ वन चली जायगी। क्या यह भी तुम्हे स्वीकार है ? लक्ष्मण का भी इतना प्रेम है कि वे भी घर नही रहेगे। क्या यह भी तुम्हे इष्ट है ? कह सकती हो कि भरत तो राजा होगे। भरत के राज्य के लिए मै सब करती हूँ। पर प्रश्न तो यह है कि क्या ऐसी अवस्था मे भरत राज्य स्वीकार करेंगे ? हम कहती है कि कभी नही करेंगे। रामजी रहते तो कदाचित् भरत स्वीकार भी करते। अत राम को वन भेजकर तुम अपने मुख्य इष्ट का नाश कर रही हो और सबसे बडा अनिष्ट तुम्हारे लिए यह होगा कि महाराज बिना राम के न जीवेगे। इतना बडा अनर्थ तुम्हारे हाथ से हुआ चाहता है।

अस बिचारि उर छाडहु कोहू। सोक कलक कोठि जनि होहू ॥
भरतहिं अवसि देहु जुबराजू। कानन काह राम कर काजू ॥१॥

अर्थ ऐसा विचारकर क्रोध छोड दो। शोक और कलक की कोठी न बनो। भरत को अवश्य युवराज पद दो। पर राम का वन मे क्या काम है ?

व्याख्या तुम्हारे क्रोध के भयानक दुष्परिणाम होगे। भरत के राज देने मे अर्थ कारण है। पर राम के वन देने म तो क्रोध कारण है। उसके वश होकर शोक और कलङ्क की निधान अपने को क्यो बनाती हो। राम के वन देने से तुम्हे असाधारण कलङ्क लगेगा और जब इस भाँति मिल हुए राज्य को भरत अस्वीकार कर देंगे महाराज बिना राम क प्राण त्याग करगे तब तुम शोक की कोठी होओगी। राम को वन भेजकर अव्यापारेषु व्यापार क्यो करती हो ?

नाहिन रामु राज के भूखे। धरम धुरीन बिषय रस रूखे ॥
गुरु गृह बसहु रामु तजि गेहू। नृप सन अस बरु दूसर लेहू ॥२॥

अर्थ रामजी राज के भूखे नही है। वे धर्म के धुरा के वहन करनेवाल है। विषय रस से रूखे है। रामजी घर छोडकर गुरुजी के घर रहे। तुम राजा से यह दूसरा वर लो।

व्याख्या यदि कहो कि भरत के राज्य मे रामजी बाधक होगे तो रामजी को सब जानते है। उन्हे राज की भूख नही है। राज्य की चाह उसे होती है जिसे विषय लिप्सा होती है जो राज धर्म के गौरव को नही जानता। रामजी तो सदा विषय रस से रूखे हैं वे धर्मधुरीण है। जानते हैं कि राजधर्म का निर्वाह कठिन है। उन्हे राज्य की भूख हो नही सकती।

पर तुम्हे भूख है। तुम्हारे मन मे शका हो सकती है। तो राजा से दूसरा

वर माँग लो कि राम घर मे न रहे। वे जाकर गुरुजी के घर रहे। गुरुजी की दृष्टि दिन रात उन पर रहेगी। फिर उनसे कोई भय का कारण न रह जायगा। लोग भी समझेंगे कि केवल भय से रानी ने रामजी को इस दृश्य से पृथक् कर रक्खा है। भरत के राज्य स्वीकार मे भी अधिक कठिनता न होगी। महाराज के प्राण भी बच जायँगे।

जौ नहि लगिहहु कहे हमारे। नहि लागिहि कछु हाथ तुम्हारे ॥
जौ परिहास कीन्हि कछु होई। तौ कहि प्रगट जनावहु सोई ॥३॥

अर्थ यदि तुम हम लोगो का कहना न मानोगी तो तुम्हारे हाथ कुछ न लगेगा। यदि तुमने हँसी की हो तो उसे प्रकट करके कह दो।

व्याख्या रुख देखकर सखी कहती है कि यदि तुमने हमारा कहना न माना अपनी बात पर ही अडी रह गयी कि रामजी वन जायँ तो तुम्हारे हाथ सिवा शोक कलङ्क के और कुछ न लगेगा। कभी भरत राज्य स्वीकार नही करेंगे। राजमाता का स्वप्न झूठा हो जायगा। सखी है बात सुधारने के लिए अवसर देती है कि यदि तुमने सचमुच हँसी की हो क्योकि हँसी मे ही ऐसी निष्कारण बात कही जाती है तो बात अब हँसी की सीमा को उल्लघन कर रही है। स्पष्ट कह दो कि यह तो हमने हँसी की थी।

राम सरिस सुत कानन जोगू। काह कहिहि सुनि तुम्ह कहुँ लोगू ॥
उठहु वेगि सोइ करहु उपाई। जेहि बिधि सोकु कलकु नसाई ॥४॥

अर्थ क्या राम ऐसा बेटा वन के योग्य है। लोग सुनकर तुम्हे क्या कहेगे। उठो जल्दी से वही उपाय करो जिस विधि से शोक कलङ्क नष्ट हो।

व्याख्या बेटा वन मे भेजने की वस्तु नही है। खोटे बेटे को भी कोई वनवास नही देता। फिर रामजी ऐसा बेटा वनवास के योग्य कैसे है? भला, जो सुनेगा वह तुम्हे क्या कहेगा?

जब सखियो ने देखा कि यह टस से मस नही होती तब कहती है बैठी क्या हो। उठो, बैठने से काम नही चलेगा। अब तुम्हे बिगडी बात के बनाने मे परिश्रम करना पडेगा। शोक और कलक तुम पर आ पडा। तुम बडे दुख मे पड गयी। तुम्हे सूझता नही है।

छ जेहि भाँति सोकु कलकु जाइ, उपाय करि कुल पालही।
हठि फेरु रामहि जात बन, जनि बात दूसरि चालही ॥
जिमि भानु बिनु दिनु प्रान बिनु तनु चदु बिनु जिमि जामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौ जिय भामिनी ॥

अर्थ जिस भाँति शोक और कलङ्क मिटे वैसा उपाय करके कुल की रक्षा

कर लो। राम को वन जाने से हठ करके लौटाओ। दूसरी बात मुख से न निकालो। जैसे विना सूर्य का दिन बिना चाँद की रात विना प्राण का देह तुलसीदास के प्रभु के बिना अवध भी वैसा ही है। हे भामिनि मन म विचारो।

व्याख्या सखी कहती है कि हम जा कहती हैं उतना ही नही। जिस उपाय से शोक कलङ्क मिटे साई उपाय करो। कुल का नाश होना चाहता है उसे वचा लो। कदाचित् राम न फिरें तो उन्हे हठ करके लौटाओ। रामजी चल पडे। उनका लौटना सरल नही है। चली जाओ कौसल्या के महल में दोनो माताएँ मिलकर रामजी को जाने से रोको।

अवधपुरी सोहावनी मङ्गलमय और पावनी है। सो भयावनी अमङ्गलमय और अपावनी हो जायगी। जैसे चाँद बिना रात भयावनी, सूर्य विना दिन अपावन, प्राण बिना तन अमङ्गलमय, वही दशा अवध की बिना राम के हो जायगी। भली भाँति मन मे समझ लो।

सो सखिन्ह सिखावनु दीन्ह, सुनत मधुर परिनाम हित।
तेंहि कछु कान न कीन्ह, कुटिल प्रबोधी कूवरी ॥५०॥

अर्थ सखियो ने ऐसी सीख दी जा सुनने मे मधुर और परिणाम मे हित हो। पर उसने एक न सुना। उसे कुटिल कूबरी ने सिखा पढाकर पक्का कर रक्खा था।

व्याख्या · कठोर शब्दो मे कहे गये हित शब्द का भी आदर किया जाता है। सखियो ने तो वहुत मधुर शब्दो मे कहा। नही सुनने का कोई कारण नही था। पर कैकेयी ने एक न सुना। क्योकि उसे कुटिल कूवरी ने समझा रक्खा था कर्हाहि झूठ फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि। कैकेयी ने समझ लिया कि आगयी प्रिय बनाकर झूठी बातें कहनेवाली। उसने कहा था काज सँवारेउ सजग सबु सहसा जनि पतिआहु। सो कैकेयी अपने समझ मे सजग होकर काम सँवार रही थी। उन्हे अब सखियो पर विश्वास नही रह गया।

उतरु न देइ दुसह रिसि रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी ॥
व्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चली कहत मतिमंद अभागी ॥१॥

अर्थ · दु सह क्रोध से रूखी हो गयी है। जवाब नही देती और इस भाँति देख रही है मानो भूखी बाघिन मृगी को देखती हो। असाध्य रोग जानकर उन्होने उसे छोड दिया और मतिमन्द अभागी कहती हुई चली गयी।

व्याख्या · है तो सदा की शीलवती। पर इस समय उसे इतना क्रोध है कि बेकाबू हो रही है। शील का वही नाम नही है। अति रूक्ष व्यवहार करती हैं। यह भी नही कि उनकी ओर देखती न हो। निर्निमेप नेत्र से देख रही है। पर चितवन मे क्रोध भरा हुआ है। ऐसा मालूम पड रहा है कि किस समय टूट

व्याधिग्रस्त पुरुष लम्बी सासें लेता है। यही गति प्रजा की हो रही है। वह कहती है कि राम के बिना जीवन की क्या आशा है। भाव यह कि इस विषमज्वर की दवा केवल राम है।

सब विधि सब पुरलोग सुखारी। रामचद मुखचद निहारी। अत रामजी का वियोग सब वियोगो से अधिक है। जैसे जलचर के लिए जल का वियोग तो सीधे सीधे प्राण का ही वियोग है। पानी सूखने लगा तब सम्पूर्ण जलचरो का व्याकुल हो उठना स्वभावसिद्ध है। जिस भाँति जलचर के लिए पानी है उसी भाँति प्रजा के लिए रामजी है। उनका वियोग जितना निकट आता जाता है। उतनी ही प्रजा की व्याकुलता बढ रही है।

अति बिषाद बस लोग लोगाई। गये मातु पहि रामु गोसाई॥
मुख प्रसन्नु चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखइ राऊ॥४॥

अर्थ · स्त्री पुरुष तो सब विषादवश हैं और रामजी माँ के पास गये। मुख प्रसन्न है। चित्त मे चौगुना आनन्द है। राजा रोक न लें यह सोच भी मिट गया।

व्याख्या · जिसके वनगमन के समाचार से स्त्री पुरुष इस भाँति विषाद वश हो रहे हैं। उन्हे वनगमन मे लाभ ही लाभ दिखाई दे रहा है। चार लाभ गिनाये हैं १ मुनिगन मिलनु विसेषबन सबहि भाँति हित मोर २ तेहिमहँ पितु आयसु ३ बहुरि समत जननी तोर और ४ भरत प्रान प्रिय पावहि राजू। इसलिए चित्त मे चौगुना आनन्द है। आनन्द मन मे होने से मुखपर प्रसन्नता के चिह्न आ ही जाते हैं। माता के कहने पर यह सोच रहा कि कही महाराज रख न ले। पर अस कहि रामु गवनु तब कीन्हा। भूप सोक बस उतरु न दीन्हा। राजा के शोकवश होकर उत्तर न देने का अर्थ ही यही है कि राजा ने मन से बन दे दिया। अत महाराज के रोक लेने का जो सोच रहा वह भी जाता रहा।

दो नव गयंदु रघुबीर मनु, राजु अलान समान।
छूट जानि बन गवनु सुनि, उर अनदु अधिकान॥५१॥

अर्थ रामजी का मन नये गजराज के समान है। राज्य बन्धन के समान है। छूटा हुआ जानकर वनगमन सुनने से हृदय मे आनन्द अधिक हो उठा।

व्याख्या · बूढा गजेन्द्र छूटने पर भी वन नही जाता। घूम फिरकर हाथीखाने मे ही आ जाता है। वह स्वातन्त्र्य के सुख को भूले हुए है। पर नये गजेन्द्र को स्वातन्त्र्य का सुख याद है। उसे मलीदा अच्छा नही लगता। वह बन्धन से लाचार होकर स्वातन्त्र्य सुख से वञ्चित है। इसी भाँति रामजी का मन है। वह नवगजेन्द्र की भाँति स्वच्छन्द विचरना चाहता है। राज्य उसे बन्धन मालूम हो रहा है। उससे वह सुखी नही है। यद्यपि नवगजेन्द्र बँधने पर भी मस्त ही रहता है। पर यदि बन्धन छूट जाय तो और भी आनन्दित हो उठता है। उसी भाँति आत्माराम पूर्ण

काम राम सहज आनन्द निधान हैं। पर गमन सुनने से उनका आनन्द बढ गया कि चलो इस राज बन्धन से छुट्टी मिली।

रघुकुल तिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु पद नायउ माथा ॥
दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे। भूषन बसन निछावरि कीन्हे ॥१॥

अर्थ : रघुकुलतिलक रामजी ने दोनो हाथ जोडे हुए प्रसन्न होकर माँ के चरणो मे सिर नवाया। माँ ने · आशीर्वाद दिया। हृदय से लगा लिया और गहना कपडा निछावर किया।

व्याख्या · सरकार स्वयं ही रघुकुल के तिलक रूप है। इन्हे तिलक की आवश्यकता नही। वनगमन के निश्चय से बडे प्रसन्न हैं। उसी प्रसन्नता मे दोनो हाथ जोडकर माँ के चरणो मे प्रणाम किया माँ ने समझा कि तिलक होने जा रहा है। अत प्रसन्न हैं। आशीर्वाद ग्रहण करने के लिए प्रणाम करने आये हैं। माता परम प्रसन्न हो उठी। प्रेम उमड आया। आशीर्वाद देती है। रामजी अतिप्रिय हैं इससे हृदय से लगाती हैं। अभिषिक्त होने जा रहे हैं इसलिए गहना कपडा निछावर करती हैं।

बार बार मुख चुंबति माता। नयन नेह जलु पुलकित गाता ॥
गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए। स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए ॥२॥

अर्थ माँ बार बार मुख चूम रही है। आँखो मे प्रेमाश्रु भरा हुआ है और शरीर मे पुलक हो रहा है। गोद मे बिठाकर हृदय से लगाया। सुन्दर स्तनो से प्रेमरस बहने लगा।

व्याख्या नृप रानी परिजन सुकृत मधुकर बारि बिहंग। राजा और रानी का पुण्य भ्रमर है उसे रामजी के मुख कमल के रसास्वादन का अधिकार है। यद्यपि रामजी की उम्र इस समय सत्ताइस वर्ष की है। फिर भी माता का प्रेम वैसा ही है जैसे छोटे बच्चो पर होता है। वह बार बार मुख चूमती है। सात्त्विक भाव का उदय हुआ है। आँखो मे आँसू भरे हुए हैं और देह मे पुलकावली छायी हुई है। गोद मे रामजी को बिठाती हैं और फिर से हृदय लगा रही हैं। सुन्दर स्तनो से प्रेम के मारे दूध बह चला। वात्सल्य भाव के अधिक बढ जाने से असमय मे भी माता के स्तनो मे दूध आ जाता है। इसीलिए गोस्वामीजी ने उसे प्रेमरस कहा।

प्रेमु प्रमोदु न कछु कहि जाई। रंकु धनद पदवी जनु पाई ॥
सादर सुंदर बदनु निहारी। बोली मधुर बचन महतारी ॥३॥

अर्थ : प्रेम और आनन्द का कुछ वर्णन नही हो सकता। मानो किसी दरिद्र को कुबेर की पदवी प्राप्त हो गयी हो। आदर के साथ सुन्दर मुख का अवलोकन करके माँ ने मीठे वचन कहे।

व्याख्या इष्टजन्य भोग को प्रमोद कहते हैं। उस समय जैसा प्रेम और प्रमोद

माँ को हुआ उसका क्या वर्णन किया जाय। मानो दरिद्र को कुबेर का पद मिल गया। धनविहीन को ही दरिद्र कहते हैं। उसे धन मिलना दुर्लभ है। ऐसे को कुबेर का पद यदि मिल जाय अर्थात् नवो निधियाँ उसे प्राप्त हो जायँ जिसे वह जितना चाहे उसे उतना धन दे सके तो उस समय उसे जो आनन्द होता है वह वर्णनातीत है। यही दशा कौसल्या माता की हुई। इन्हे सब कुछ रहते हुए भी पुत्र नही था। पुत्र मुख दर्शन दुर्लभ था। सो इन्हे राम सा पुत्र मिला। अब रामजी का राज्याभिषेक होने जा रहा है। यह प्रसन्नता रंक के धनदपद प्राप्ति के समान है।

कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद मगलकारी ॥
सुकृत सील सुख सीव सुहाई। जनम लाभ कइ अवधि अघाई ॥४॥

अर्थ बेटा! माता बलैया लती है। कहो कब वह आनन्द और मगल करने वाला लग्न है जो कि पुण्यशील के सुख की सीमा है और जन्म के लाभ की पूर्ण अवधि है।

व्याख्या शुभकार्य शुभ लग्न म ही होते ह। यहा लग्न का किसी को पता ही नही। लोग एक दूसरे से पूछते है कबहिं लगन मुद मगलकारी। यहाँ तक कि माता कौसल्या को भी पता नही। वे राम जी से पूछती है कि वह मुद मगलकारी लग्न कब है? बात यह हुई कि गुरुजी ने लग्न बताया नही कह दिया कि जब राम युवराज हो तभी शुभ लग्न है। वह लग्न इतनी प्रिय है कि माता उसे सुकृत सील के सुख की सीमा कहती है। जिस लग्न म रामजी का तिलक हो माता के लिए वही लग्न सुकृत शील के पुण्य की सीमा है और वही जन्मलाभ की पूरी अवधि है। यथा राम बाम दिसि सोहति रमारूप गुन खानि। देखि मातु सब हरखो जन्म सुफल निज जानि।

दो जेहि चाहत नर नारि सब, अति आरत एहि भाँति।
जिमि चातक चातकि तृपित, वृष्टि सरद रितु स्वाति ॥५२॥

अर्थ जिसे सभी स्त्री पुरुष अतिआर्त होकर इस तरह चाहते है जैसे प्यासे चातक और चातकी शरद ऋतु के स्वाती की वर्षा को चाहते हैं।

व्याख्या जैसे महाराज को सब नगर का वृत्तान्त दूतो द्वारा मालूम रहता है उसी भाँति महारानी कौसल्या का भी दूतियो द्वारा सब नगर का वृत्तान्त मालूम है। वे जानती हैं कि प्रजावर्ग भी रामजी के तिलक के लिए आर्त है। अत कहती है कि तुम्हारा तिलक मेरे लिए तो जन्मलाभ की अवधि है ही पर सारा प्रजा नरनारी सब पपीहा की तरह शरद ऋतु के स्वाती की वर्षा का बाट जोह रहे है। स्वाती के बूँद के लिए ही पपीहा तरसता है। बारह महीने से उसी के लिए रट लगाये रहता है। यहाँ तो बारह वर्ष से प्रजा उसी लग्न की प्रतीक्षा कर रही है जिसमे तिलक होनेवाला है।

तात जाउँ बलि बेगि नहाहू । जो मन भाव मधुर कछु खाहू ॥
पितु समीप तब जायेहु भैया । भइ बड़ि बार जाइ बलि मैया ॥१॥

अर्थ : बेटा ! मैं बलैया लेती हूँ । जल्दी स नहा डालो । जो मनमे भावे सो मिठाई थोडी सी खालो तब पिता के पास जाना । बहुत देर हो गयी है । माँ बलैया लेती है ।

व्याख्या : तुम्हे अभिषेक के लिए जाना है । कल से सयम मे हो इसलिए जल्दी से नहाकर कुछ मीठा खालो । अभिषेक में बहुत देर लगेगी कब तक भूखे रहोगे । यदि सयम मे हो तो अन्न न खाओ । मीठा खाने मे तो कोई दोप नही है । अत कलेवा करने के बाद पिता के पास जाना । दिन चढ आया । अभीतक तुमने कुछ खाया नही । इतना कहने पर भी अभिरुचि न देखकर कहती है कि मैं बलैया जाती हूँ । कुछ खा लो ।

मातु बचन सुनि अति अनुकूला । जनु सनेह सुरतरु के फूला ॥
सुख मकरद भरे श्रियमूला । निरखि राम मनु भँवरु न भूला ॥२॥

अर्थ : माता के अति अनुकूल वचन सुन करके जो कि स्नेहरूपी कल्पवृक्ष के फूल की भाँति सुख रूपी मकरन्द से भरे हुए और शोभा के मूल थे, रामजी का मन जो कि भ्रमर सा है देखते हुए भी नही भूला ।

व्याख्या . भौरा पुष्परस . मकरन्द का रसिक है । वह उसके सुगन्ध से आकृष्ट होकर उसके पास पहुँच जाता है और रस लेने मे मुग्ध हो जाता है । ऐसा ही रामजी का मन है । यह प्रेम का बडा रसिक है । जहाँ प्रेम देखता है वहाँ रस के आस्वादन के लिए पहुँच जाता है । यथा ' मुनि मानस पकज भृग भजे और उस रसास्वादन मे अपने को भूल जाता है । पर यहाँ तो माता के वचन ऐसे अनुकूल थे मानो वे स्नेहरूपी कल्पवृक्ष के फूल हैं । सुखरूपी मकरन्द से भरे हुए हैं और शोभा के मूल हैं । उसे देखते हुए भी वही मकरन्द रसिक रामजी का मन आज अपने को भूलता नही है । उसे कर्त्तव्य विस्मृति नही हो रही है ।

भावार्थ यह प्रभु भाव ग्राहक अति कृपाल सुप्रेम ते सुख मानही और माता का वचन दिव्य प्रेम से भरा हुआ है । उस प्रेम को देखते हुए भी आज उस ओर आकृष्ट नही हो रहे हैं । किसी भाँति कर्त्तव्य पथ से विचलित नहीं होना चाहते ।

धरम धुरीन धरम गति जानी । कहुउ मातु सन अति मृदु बानी ॥
पिता दीन्ह मोहि कानन राजू । जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ॥३॥

अर्थ : धर्मधुरन्धर रामजीने धर्म की गति को जानकर माता से अति कोमल वाणी मे कहा कि पिताजी ने मुझे वन का राज्य दिया है और वहाँ सभी तरह से मेरी बडी आवश्यकता है ।

व्याख्या : सरकार धर्मधुरन्धर हैं । धर्म का चक्र इन्ही के आधार पर फिरता

है । जानते है कि धर्मस्य सूक्ष्मा गति । पिता की आज्ञा मानना सब धर्मो मे श्रेष्ठ है। परन्तु माँ इस प्रकार के प्रेम के शब्द बोल रही है। इसके उत्तर मे वज्राघात जैसी बात कैसे कहूँ। अत उसी बात को जितने कोमल शब्दो मे कहा जा सकता था उतने कोमल शब्दो मे कहा।

पिताजी ने मुझे वन का राज्य दे दिया। वन की व्यवस्था बहुत बिगडी हुई है। वहाँ बिना मेरे गये काम बन नही सकता। इस भाँति पिता के सत्य की तथा सद्भावना की रक्षा की। यही कथन का पाण्डित्य है कि जो कुछ सरकार ने कहा वह सत्य, प्रिय और हित था।

आयसु देहि मुदित मन माता। जेहि मुद मगल कानन जाता ॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरे। आनँदु अब अनुग्रह तोरे ॥४॥

अर्थ माँ तू प्रसन्न मन से आज्ञा दे जिससे वन जाते हुए मुझे आनन्द मङ्गल हो। प्रेमवश होकर भूलकर भी मत भयभीत हो। क्योकि तेरे अनुग्रह से ही सब आनन्द होगा।

व्याख्या सरकार कहते हैं कि पिताजी की आज्ञा हो चुकी पर प्रसन्न मन से नही हुई। अत तू प्रसन्न होकर आज्ञा दे। यदि पिताजी की भाँति तू भी दुखी होकर आज्ञा देगी तो मुझे वन यात्रा मे आनन्दमङ्गल कैसे होगा?

वन के दुख को दृष्टि मे रखकर भय से तू आज्ञा देने मे विपण्ण मत हो। क्योकि आनन्द का निवास तो माता के अनुग्रह मे हैं। तेरा अनुग्रह यदि बना रहा तो रन मे वन मे मेरे लिए सर्वत्र ही आनन्द है।

दो बरष चारि दस बिपिन बसि, करि पितु बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहौ, मन जनि करसि मलान ॥५३॥

अर्थ चौदह वर्ष वन मे रहकर और पिता के वचन को प्रमाण करके लौटकर फिर चरणो का दर्शन करूँगा। तू मन को मलिन मत कर।

व्याख्या अब वनवास की अवधि कहते है। चौदह वर्ष सुनने मे बडा कठोर प्रतीत होगा। अत उसे खण्ड करके कहते है। उसमे चार पहिले कहकर पीछे दश कहते हैं। पिता का वचन अप्रमाण न हो इसलिए वन मे बसेगे। कुछ राज्य न मिलने से नाराज होकर नही। बस अवधि पूरी होते ही लौटकर चरणो का दर्शन करूँगा। माता के मुखपर म्लानता की रेखा देखकर कहते है तू मन को म्लान मत कर।

बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके ॥
सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी। जिमि जवास परे पावस पानी ॥१॥

अर्थ रघुवर के विनययुक्त और मीठे वचन माँ को बाण जैसे लगे। कलेजा

वेध दिया। शीतल वाणी सुनकर सहमकर सूख गयी। जैसे जवासे पर बरसात का पानी पड़ा हो।

व्याख्या : इतने मधुर शब्दों में और विनीत भाव से कही हुई बात : पिता दीन्ह मोहि कानन राजू ''बरष चारिदस विपिन बसि। माँ है : उसे वाण से लगे। कलेजा बिंध गया। जिसे वाण लगता है वह पृथ्वी पर गिर जाता है। माँ गिरी तो नहीं पर सहमकर सूख गयी। इसलिए कवि ने दूसरी उपमा दी। पावस का पानी बडा शीतल होता है। संसार का हरा भरा कर देता है। पर उसी शीतल जल से जवासा झुलस जाता है। उसके पत्ते गिर जाते हैं। वह बिल्कुल सूख जाता है। इसी भाँति कौसल्याम्बा भी रामजी की शीतल वाणी से सूख गयी : यहाँ विषमालङ्कार है।

कहि न जाइ कछु हृदय विषादू। मनहूँ मृगी सुनि केहरि नादू ॥
नयन सजल तन थर थर काँपी। माँजहि खाइ मीन जनु माँपी ॥२॥

अर्थ : हृदय में ऐसा विषाद हुआ जो कहा नहीं जा सकता। जैसे मृगी को सिंहनाद सुनने पर होता है। आँखों में जल भर आया। शरीर थर थर कांपने लगा। जैसे माँजा खाकर मछली विकल हो।

व्याख्या : माता का धैर्य एकदम छूट गया। जैसे सिंह का गर्जन सुनकर मृगी का धैर्य छूट जाता है। वह चौकड़ी भूल जाती है। हृदय में जो विषाद हुआ उसे कहा नहीं जा सकता। आँखों में जल आगया और थर थर कांपने लगी और ऐसी विकल हुई जैसे मछली ने माँजा खा लिया हो। पहिले पानी बरसने से जो गाज नदी में उत्पन्न होता है उसे खाकर मछली बड़ी विकल हो जाती हैं। इन तीन अर्धालियों से मनसा वाचा कर्मणा विषाद कहा।

धरि धीरजु सुत बदनु निहारी। गदगद वचन कहति महतारी ॥
तात पितहि तुम्ह प्रानपिआरे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे ॥३॥

अर्थ : धैर्य धरके बेटे का मुख देखकर गद्‌गद वाणी से माता कहने लगी : बेटा! तुम तो पिता को प्राण के समान प्यारे थे। वे नित्य तुम्हारे चरित्रों को देखकर प्रसन्न होते थे।

व्याख्या : थोड़ी देरतक यह विकलता रही। फिर माता ने धैर्य धारण किया और पुत्र का मुख देखा। माता ऐसी स्नेहमयी है कि पुत्र का मुख देखकर तब कुछ कहती है। आते ही ; सादर सुंदरबदनु निहारी। बोली मधुर वचन महतारी। अब फिर बोलना है तो फिर पुत्र मुखावलोकन करती है। पर इस बार मुख की सुन्दरता देखने का भाव नहीं है। इस बार देखती है कि इन पर पिता की आज्ञा का क्या प्रभाव पड़ा? इसलिए सादर नहीं कहते। गला रुँधा हुआ है फिर भी बोली।

बात क्या है? घर से वह बेटा निकाला जाता है जो अप्रिय हो। महादुश्चरित्र

है। जानते है कि धर्मस्य सूक्ष्मा गति । पिता की आज्ञा मानना सब धर्मों मे श्रेष्ठ है। परन्तु माँ इस प्रकार के प्रेम के शब्द बोल रही है। इसके उत्तर म वज्राघात जैसी बात कैसे कहूँ। अत उसी बात को जितने कोमल शब्दो मे कहा जा सकता था उतने कोमल शब्दो मे कहा।

पिताजी ने मुझे वन का राज्य दे दिया। वन की व्यवस्था बहुत बिगडी हुई है। वहाँ बिना मेरे गये काम बन नही सकता। इस भाँति पिता के सत्य की तथा सद्भावना की रक्षा की। यही कथन का पाण्डित्य है कि जो कुछ सरकार ने कहा वह सत्य, प्रिय और हित था।

आयसु देहि मुदित मन माता। जेहि मुद मगल कानन जाता॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरे। आनदु अब अनुग्रह तोरे॥४॥

अर्थ माँ तू प्रसन्न मन से आज्ञा दे जिससे वन जाते हुए मुझे आनन्द मङ्गल हो। प्रेमवश होकर भूलकर भी मत भयभीत हो। क्योकि तेरे अनुग्रह से ही सब आनन्द होगा।

व्याख्या सरकार कहते है कि पिताजी की आज्ञा हो चुकी पर प्रसन्न मन से नही हुई। अत तू प्रसन्न होकर आज्ञा दे। यदि पिताजी की भाँति तू भी दु खी होकर आज्ञा देगी तो मुझे वन यात्रा मे आनन्दमङ्गल कैसे होगा?

वन के दु ख को दृष्टि मे रखकर भय से तू आज्ञा देने मे विषण्ण मत हो। क्योकि आनन्द का निवास तो माता के अनुग्रह मे हैं। तेरा अनुग्रह यदि बना रहा तो रन मे वन मे मेरे लिए सर्वत्र ही आनन्द है।

दो बरष चारि दस बिपिन बसि, करि पितु बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहौ, मन जनि करसि मलान॥५३॥

अर्थ चौदह वर्ष वन मे रहकर और पिता के वचन को प्रमाण करके लौटकर फिर चरणो का दर्शन करूँगा। तू मन को मलिन मत कर।

व्याख्या अब वनवास की अवधि कहते है। चौदह वर्ष सुनने मे बडा कठोर प्रतीत होगा। अत उसे खण्ड करके कहते हैं। उसम चार पहिले कहकर पीछे दश कहते हैं। पिता का वचन अप्रमाण न हो इसलिए वन म बसेंगे। कुछ राज्य न मिलने से नाराज होकर नही। बस अवधि पूरी होते ही लौटकर चरणो का दर्शन करूँगा। माता के मुखपर म्लानता की रेखा देखकर कहते हैं तू मन को म्लान मत कर।

बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके॥
सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी। जिमि जवास परे पावस पानी॥१॥

अर्थ रघुबर के विनययुक्त और मीठे वचन माँ को बाण जैसे लगे। कलेजा

वेध दिया। शीतल वाणी सुनकर सहमकर सूख गयी। जैसे जवासे पर बरसात का पानी पडा हो।

व्याख्या · इतने मधुर शब्दो मे और विनीत भाव से कही हुई बात : पिता दीन्ह मोहि कानन राजू ``बरष चारिदस विपिन बसि। माँ है : उसे वाण से लगे। कलेजा बिंध गया। जिसे बाण लगता है वह पृथ्वी पर गिर जाता है। माँ गिरी तो नही पर सहमकर सूख गयी। इसलिए कवि ने दूसरी उपमा दी। पावस का पानी बडा शीतल होता है। ससार का हरा भरा कर देता है। पर उसी शीतल जल से जवासा झुलस जाता है। उसके पत्ते गिर जाते है। वह बिल्कुल सूख जाता है। इसी भाँति कौसल्याम्बा भी रामजी की शीतल वाणी से सूख गयी : यहाँ विषमालङ्कार है।

कहि न जाइ कछु हृदय विषादू। मनहूँ मृगी सुनि केहरि नादू॥
नयन सजल तन थर थर काँपी। माँजहि खाइ मीन जनु माँपी॥२॥

अर्थ : हृदय मे ऐसा विषाद हुआ जो कहा नही जा सकता। जैसे मृगी को सिंहनाद सुनने पर होता है। आँखो मे जल भर आया। शरीर थर थर काँपने लगा। जैसे माँजा खाकर मछली विकल हो।

व्याख्या : माता का धैर्य एकदम छूट गया। जैसे सिंह का गर्जन सुनकर मृगी का धैर्य छूट जाता है। वह चौकड़ी भूल जाती है। हृदय मे जो विषाद हुआ उसे कहा नही जा सकता। आँखो मे जल आगया और थर थर काँपने लगी और ऐसी विकल हुई जैसे मछली ने माँजा खा लिया हो। पहिले पानी बरसने से जो गाज नदी मे उत्पन्न होता है उसे खाकर मछली बडी विकल हो जाती हैं। इन तीन अर्धालियो से मनसा वाचा कर्मणा विषाद कहा।

धरि धीरजु सुत वदनु निहारी। गदगद वचन कहति महतारी॥
तात पितहि तुम्ह प्रानपिआरे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे॥३॥

अर्थ : धैर्य धरके बेटे का मुख देखकर गद्गद वाणी से माता कहने लगी : बेटा! तुम तो पिता को प्राण के समान प्यारे थे। वे नित्य तुम्हारे चरित्रो को देखकर प्रसन्न होते थे।

व्याख्या : थोडी देरतक यह विकलता रही। फिर माता ने धैर्य धारण किया और पुत्र का मुख देखा। माता ऐसी स्नेहमयी है कि पुत्र का मुख देखकर तब कुछ कहती है। आते ही, सादर सुदरवदनु निहारी। बाला मधुर वचन महतारी। अब फिर बोलना है तो फिर पुत्र मुखावलोकन करता है। पर इस बार मुख की सुन्दरता देखने का भाव नही है। इस बार देखती है कि इन पर पिता की आज्ञा का क्या प्रभाव पडा? इसलिए सादर नही कहते। गला रुँधा हुआ है फिर भी बोली।

बात क्या है? घर से वह बेटा निकाला जाता है जो अप्रिय हो। महादुश्चरित्र

हो। तुम तो पिता को प्राण समान प्यारे हो। यथा · सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाईं। राम देत नहि बनै गोसाईं। और तुम्हारे चरित्र देख देखकर वे सदा प्रसन्न होते थे। यथा : आयसु माँगि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरखै मन राजा। अत महान् आश्चर्य है। हुआ क्या ?

राजु देन कहुँ सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहि अपराधा ॥
तात सुनावहु मोहि निदानू। को दिनकर कुल भयउ कृसानू ॥४॥

अर्थ · राज्य देने के लिए शुभ दिन निश्चय किया। वन जाने को किस अपराध पर कहा ? वेटा ! मुझे इसका आदि कारण बतलाओ। सूर्यकुल के लिए आग कौन हुआ ?

व्याख्या तुम्हारे ऊपर कल तक इतने प्रसन्न थे कि तुम्हे राज्य देने के लिए शुभ दिन ठीक किया था। रातभर मे ही क्या हो गया कि आज वन जाने को कह रहे है। यह तो तभी सम्भव है जब तुमसे कोई भारी अपराध हुआ हो। छोटे अपराध मे भी इतना बडा दण्ड नही दिया जाता। अत बतलाओ कि वह कौन सा अपराध तुमसे हुआ ? पूछने को तो पूछा पर वह जानती है। पक्का विश्वास है कि रामजी से अपराध हो नही सकता। अत यह प्रश्न करती है कि सूर्यकुल के लिए आग कौन हुआ ? भाव यह कि महाराज अपना बस चलते तुम्हे वन दे नही सकते। कोई ऐसा ही असामञ्जस्य आ पडा है जिसमे उन्हे ऐसा करना पडा। जिसके कारण ऐसा करना पडा वह सूर्यवश के लिए आग हो गया। इस आघात से वश का वश नष्ट हो जायगा। माँ कौसल्या उसका नाम जानना चाहती हैं।

दो निरखि राम रुख सचिव सुत, कारनु कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि, दसा बरनि नहि जाइ ॥५४॥

अर्थ · रामजी का रुख देखकर मन्त्रीपुत्र ने सब कारण समझाकर कह दिया। प्रसग सुनकर कौसल्याजी गूँगे की भाँति चुप रह गयी। उनकी दशा वर्णन नही की जा सकती।

व्याख्या माँ की करतूत रामजी अपने मुख से नही कहना चाहते। मन्त्री के पुत्र साथ थे। उन्होने रामजी का रुख पाकर आद्योपान्त सब कारण समझाकर कह दिया :

देवासुर सग्राम म महाराज के सग।
गई कैकेयी रानिहू जहाँ मच्यो रन रग ॥१॥
रिपु के प्रबल प्रहार ते मूर्छि परयो जब राय।
तब रथ हाक्यो कैकेयी नृप को लिये बँचाय ॥२॥
ह्वै प्रसन्न माँगन कह्यो महाराज वर दोय।
कह्यो कैकेयी माँगिहौ जब मोहि अवसर होय ॥३॥

आज राति को कैकेयी माँग्यो सो वरदान।
भरत राज अरु राम वन चौदह वरिस प्रमान ॥४॥
धर्मपाश से बँध्यौ नृप नाहि कह सकत नाहि।
कहा कहौ भूपति विपति समुझहिं इतनहिं माँहि ॥५॥

यह सब सुनकर माँ कौसल्याजी ठक रह गयी। बोलने के लिए शब्द न मिले। जैसा गूँगा कहना चाहता हो पर कह नही सकता। आश्चर्य, असामञ्जस्य, शोक, धर्म सङ्कटादि अनेक भावो का जमघट हृदय मे उदय हो गया। अत कवि कहते हैं दसा बरनि नहिं जाय।

राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू ॥
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधि गति बाम सदा सब काहू ॥१॥

अर्थ : न रख सकती है न जाने को कह सकती है। क्योकि दोनो तरह से हृदय मे दारुण दाह है। चन्द्रमा लिखने चले और राहु लिख बैठे। ब्रह्मा की गति सदा सब के लिए टेढ़ी है।

व्याख्या महारानी कौसल्या माता होने के कारण रख सकती है। पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते। पिता से माता दसगुना बडी है। वह यदि आज्ञा दे कि तुम घर रहो बन न जाओ तो धर्मधुरन्धर रामचन्द्र को मानना ही पडेगा। पर महारानी कौसल्या ऐसा नही कर सकती। पति के धर्म की रक्षा करना ही पत्नी का कर्त्तव्य है। अत सामर्थ्य रहते भी रामजी को रख नही सकती और जाने को भी नही कह सकती। पुत्र के वियोग से जो दाह होगा वह सर्वथा असह्य है। धर्म त्याग में भी वैसा ही दाह है और दो ही रास्ते है। या जाने को कहे या घर रक्खें। कुछ सूझता नही कि क्या करें। अत मूक : गूँगे की भाँति चुप रह गयी।

नवग्रह पूजा मे राहु की मूर्ति सूर्पाकार बनाते हैं और चन्द्रमा की मूर्ति द्वितीया के चन्द्र के आकार की बनाते हैं। कोई चन्द्रमा बनाने चला स्याही अधिक टपक पडी तो द्वितीया के चन्द्र का पेटा भर गया। सूर्पाकार हो गया एवम् राहु लिख गया। वही दशा यहाँ हुई। देने चले राज्य सो बीच मे कैकेयी का वरदान टपक पडा राज्य का वन बन गया। ठीक उलटा हो गया। राहु चन्द्र का ग्रास करता है। सो वनगमनरूपी राहु ने अभिषेकरूपी चन्द्र का ग्रास कर लिया।

धरम सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छुछुंदरि केरी ॥
राखौ सुतहि करौ अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधू ॥२॥

अर्थ : धर्म और स्नेह दोनो ने बुद्धि को घेर लिया। साँप छछूँदर की सी गति हो गयी। यदि अनुरोध करके बेटे का रोक लूँ तो धर्म भी जाता है और बन्धु विरोध भी खडा होता है।

व्याख्या : न तो धर्म छोडते बनता है और न स्नेह ही छोडते बनता है।

सो यहाँ कौसल्याजी की साँप छछूँदर की गति हो गयी। भूखे साँप ने छछूँदर पकड़ा और उसे निगलने लगा। तब उसे छछूँदर की उत्कट दुर्गन्ध का बोध हुआ। केवडे के वन में रहनेवाले सर्प को छछूँदर की दुर्गन्धि असह्य हो गयी। वह उसे उगलना चाहता है। पर इधर भूख भी जोरो से लगी हुई है। इसलिए उगला भी नही जाता। इसी भाँति महारानी से न ता धर्म छाडते बनता है और न ग्रहण करने में ही समर्थ हो रही है।

कहौ जान वन तौ बडि हानी। सकट सोच विबस भइ रानी॥
बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी। रामु भरतु दोउ सुत सम जानी॥३॥

अर्थ यदि वन जाने को कहती हूँ तो भी बडी हानि है। इस भाँति सकट और सोच के विवश महारानीजी हो गयी। फिर सयानी स्त्री धर्म को समझकर तथा राम और भरत दोनो पुत्रो को समान जानकर।

व्याख्या वन जाने की आज्ञा देने में भी बडी हानि दिखाई पड रही है। महाराज का अगाध प्रेम रामजी पर है। उनके वन जाने मे स्वय महाराज के प्राण सकट में पड जायँगे। एक ओर धर्म सकट दूसरी ओर पुत्र का सोच और सौभाग्य का सोच।

परन्तु महारानी कौसल्या सयानी है। पलडा धर्म की ही ओर झुका है। उन्होने स्त्री धर्म का स्मरण किया। मेरे लिए राम और भरत बराबर हैं। क्योकि एक स्त्री के पुत्रवती होने से शेप सब सपत्नियाँ पुत्रवती हो जाती हैं।

सरल सुभाउ राम महतारी। बोली वचन धीर धरि भारी॥
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धरम क टीका॥४॥

अर्थ रामजी की माँ हैं। स्वभाव सरल है। भारी धीर धारण करके बोली। बेटा! मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ। तुमने अच्छा किया। पिता की आज्ञा सब धर्मो की टीका है।

व्याख्या रामजी सरल स्वभाव के हैं। यथा सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ। उनकी माँ का भी स्वभाव वैसा ही सरल है। पहिले धरि धीरजु सुत बदनु निहारी। गदगद बचन कहति महतारी। इस बार वन जाने की आज्ञा देनी है। अत भारी धैर्य धारण किया। न तो बेटे का मुख देखा और न कण्ठ ही गद्गद हुआ और बोली।

यह पिता की आज्ञा मानने लायक नही थी। तुम कह सकते थे कि आपने मुझको भी राज्य देने का वचन दिया है। सो न करके आज्ञा मान ली। यह अच्छा किया। पिता की आज्ञा धर्मो की टीका है। तुमने राज्य का टीका छोडकर धर्म का टीका स्वीकार किया। जीवितै वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरिभोजनात्। गयाया पिण्डदानैश्च त्रिभि पुत्रस्य पुत्रता।

दो. राजु देन कहि[1] दीन्ह बनु, मोहि न सो दुख लेसु ।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतहि, प्रजहि प्रचंड कलेसु ॥५५॥

अर्थ : राज्य देने को कहकर वन दे दिया इसका तो मुझे दुःख का लेश नहीं है । तुम्हारे बिना भरत को महाराज को और प्रजा को प्रचण्ड क्लेश होगा ।

व्याख्या : राज्य देने को कहकर वन जाने को कहना वन जाने के दुःख को तीव्रतम करना है । सो कैकेयी के कारण से कर रहे हैं । इस बात का दुःख मुझे होना चाहिए । पर मुझे इस दुःख का लेश भी नहीं है । क्योंकि मुझे सौतियाडाह नहीं है । मुझे दुःख इस बात का है कि तुम्हारा वियोग भरत का महाराज को तथा प्रजावर्ग को असह्य होगा । मुझे इनका दुःख स्मरण करके अपना दुःख कुछ जँचता नहीं ।

क्या हृदय है ! कैसा प्रचण्ड त्याग है ! माता का सन्देह भरत पर जाता ही नहीं । वे भरत को ठीक जानती हैं । इसीलिए पहिले उन्हीं का नाम लेता है ।

जौं केवल पितु आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ॥
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना । तौ कानन सत अवध समाना ॥१॥

अर्थ : बेटा ! यदि केवल पिता की ही आज्ञा हो तो माता को बड़ी जानकर मत जाओ । यदि माता पिता दोनों ने वन जाने को कहा हो तो वन सौ अयोध्या के समान है ।

व्याख्या : यहाँ तो धर्मशास्त्र से निर्णय हो रहा है । पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते । मातुर्दशगुणा मान्या विमाता धर्मभीरुणा ॥ धर्मशास्त्र माता का गौरव पिता से दशगुण अधिक बतलाता है । पर विमाता तो माता से भी दशगुण अधिक मान्य है । अत. कौसल्याम्बा कहती हैं कि यदि केवल पिता ने ही वन जाने की आज्ञा दी है तो मैं रोकती हूँ : वन मत जाओ और यदि माता पिता दोनों ने कह दिया हो तो धर्म का पलरा भारी वन जाने की ओर हो जाता है । धर्मो रक्षति रक्षित. । धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा । वन सौ अयोध्या के समान सुखदायी हो जायगा । यथा : राम लखन सीता सहित सोहत परन निकेत । जिमि बासव बस अमर पुर सची जयत समेत ।

पितु बनदेव मातु बनदेवी । खग मृग चरन सरोरुह सेवी ॥
अंतहुं उचित नृपहि बनबासू । बय बिलोकि हिय होइ हरासू ॥२॥

अर्थ : वन देव पिता है और वनदेवी माता है और पशु पक्षी चरण कमल के सेवक हैं । अन्त में भी तो राजा को वनवास ही उचित है । अवस्था देखकर जी दहलता है ।

---

1. आक्षेप : तृतीय अलङ्कार ।

व्याख्या धर्म पालन के प्रभाव से वन की अधिष्ठात्री देवी और देव माता पिता के समान तुम्हारी रक्षा करेंगे। कोई भय तुम्हारे ऊपर न आने पावेगा। वन के पशु पक्षी भी तुम्हारे चरणो की सेवा करंगे।

राजाओ के लिए वनवास कोई दुष्कर बात नही है। अन्त मे तो राजाओ के लिए वनवास विहित ही है। यथा चौथेपन जाइहिं नृप कानन। परन्तु तुम्हारी अवस्था वन जाने की नही है। शैशवेऽभ्यस्तविद्यानाम् यौवने विषयैषिणाम्। वार्धवये मुनिवृत्तीना योगेनान्ते तनुत्यजाम्। इस कुल का नियम है कि बचपन मे विद्या पढते हैं। यौवन मे विषय का सेवन करते है। वृद्धावस्था मे मुनिवृत्ति ग्रहण करते हैं और अन्त मे योग से शरीर छोडते हैं। सो तुम्हारी उम्र देखकर कि यही खेलने खाने का समय है जी दहलता है। यथा कैकयनदनि मदमति कठिन कुटिलपन कीन्ह। जेहि रघुनदन जानकिहि सुख अवसर दुख दीन्ह।

बडभागी बनु अवध अभागी। जो रघुबस तिलकु तुम्ह त्यागी ॥
जौ सुत कहौ सग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदय होइ सदेहू ॥३॥

अर्थ : बडभागी वन है। अवध अभागी है। हे रघुवशतिलक ! जिसे तुम त्याग रहे हो यदि मै कहूँ कि मुझे साथ ले लो तो बेटा ! तुम्हारे मन मे सन्देह होगा।

व्याख्या जब से तुम्हारा जन्म हुआ तब से अवध बडभागी हुआ। जा दिन तें हरि गर्भहि आए। सकल लोक सुख सपति छाए। अवधराजु सुरराज सिहाई इत्यादि अब तुम इसका परित्याग कर रहे हो। यदि तुम न त्यागना चाहो तो तुम्हे कौन हटा सकता है। तुम्हारे त्यागने से यह अभागी हो जायगा। यथा लागति अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अँधियारी। बडभाग और अभाग तो तुम्हारे ग्रहण और त्यागने म है।

इस दु सह दाह मिटने का एक रास्ता और भी है और वह यह है कि मै तुम्हारे साथ चलँ। पर यह मै कह भी नही सकती। मैं तुम्हारे स्वभाव को जानती हूँ। तुम्हे तुरन्त सन्देह होगा कि इनके मन म सवति आरेसु है तभी न इनको भरत का राज्य नही रुचा सग चलने को कहती है।

पूत परम प्रिय तुम्ह सबही के। प्रान प्रान के जीवन जी के ॥
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ। मै सुनि बचन बैठि पछताऊँ ॥४॥

अर्थ हे पुत्र ! तुम सभी को परम प्रिय हो। प्राण के प्राण हो। जीवन क जीवन हो। सो तुम कहते हो कि माँ ! मैं वन जाऊँ और मैं तुम्हारा वचन सुनकर बैठकर पछताऊँ।

व्याख्या तुम मेरे पुत्र हो। तुम पर मेरा प्यार होना स्वाभाविक है। पर तुम तो प्राणी मात्र को परम प्रिय हो। यथा अस को जीव जतु जग माही। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाही। तथा प्रान प्रान के जीव के जीव सुख के सुख राम। श्रोत्रस्य

श्रोत्र मनसो मनो यद् वाचो ह वाच स हि प्राणस्य प्राण । यह कौसल्याजी का अलौकिक विवेक है ।

सो तुमने कहा कि माँ मै वन जाऊँ और सुनकर माँ जीती रह गयी । इससे सिद्ध है कि मेरा स्नेह झूठा है । मेरा पछताना व्यर्थ है । तुम्हारे विरह मे मै नही मरूँगी ।

दो. एह विचारि नहिं करउँ हठ, झूठ सनेहु बढ़ाइ ।
मानि मातु कर नात बलि, सुरति बिसरि जनि जाइ ॥५६॥

अर्थ : यह सोचकर और झूठे स्नेह को बढाकर मैं हठ नही करती । मैं बलैया लेती हूँ । तुम माता का नाता मानकर मुझे भूल न जाना ।

व्याख्या : मैने विचार लिया कि जब वनगमन सुनकर मैं नही मरी तो मैं नही मरूँगी । मेरा स्नेह झूठा है । उस झूठे स्नेह को बढाकर साथ जाने का हठ मैं क्यों करूँ । स्नेह झूठा सही पर माता का नाता सच्चा है । उस पर तुम ख्याल रखना । मैं माता होने योग्य नही फिर भी नाता समझकर मुझे भूल न जाना ।

देव पितर सब तुमहि गोसाईं । राखहुँ पलक नयन की नाईं ॥
अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना । तुम्ह करुनाकर धरमधुरीना ॥१

अर्थ : सब देवता पितृगण तथा ईश्वर तुम्हारी रक्षा पलक नयन की भाँति करे । वनवास की अवधि जल है । प्रिय कुटुम्बी लोग मछली हैं । और तुम करुणाकर धर्मधुरन्धर हो ।

व्याख्या : गोसाईं शब्द ईश्वर . विष्णु भगवान् का वाचक है । यथा : समरथ के नहिं दोष गोसाईं । रवि पावक सुरसरि की नाईं । आज भी बोलते हैं कि गोसइयाँ की जैसी मर्जी । माँ आशीर्वाद देती है । देवगण पितृगण अदृश्य रूप से सबकी रक्षा करते हैं । अत: उनकी पूजा ससार मे प्रचलित है । यथा : इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविता: । और विष्णु भगवान् जगत् के पालक हैं । अत: सबसे माँ प्रार्थना करती है कि जैसे पलक नयनो की रक्षा करती है उसी भाँति आप लोग रामचन्द्र की रक्षा करना ।

ऐसा आशीर्वाद देकर तब रामजी से कहती है कि तुम्हारे वनवास की अवधि ही इस समय जल का काम करेगी । उसी के भरोसे मछली की भाँति प्रिय परिजन यथाकथञ्चित् प्राण धारण करेंगे । ज्यों ज्यों अवधि बीतती जायगी त्यों त्यों तुमसे मिलने के लिए इनकी आकुलता बढेगी । जल के समाप्त होते ही सब मछलियाँ प्राण त्याग करेंगी । अत: विषम समस्या उपस्थित है । अवधि के भीतर तुम आ नही सकते । यद्यपि तुम धर्मधुरीण हो । अवधि के भीतर आने के लिए तुमसे आशा रखना व्यर्थ है तथापि करुणाकर हो । अत:

अस बिचारि सोइ करहु उपाई । सबहि जियत जेहिं भेटहु आई ॥
जाहु सुखेन बनहिं बलि जाऊँ । करि अनाथ जन परिजन गाऊँ ॥२॥

अर्थ : ऐसा विचार करके वही उपाय करना जिसमे जीते जी तुम आकर मिल सको। मै बलैया लेती हूँ। तुम प्रिय कुटुम्बियो और गाँव को अनाथ करके सुख से वन जाओ।

व्याख्या : ऐसा उपाय करना जिसमें तुम्हारे आने तक सब जीते रहे : अतः सरकार ने वैसा ही उपाय किया। अवधि बीतने के एकदिन पहले ही अपने आगमन का समाचार हनुमानजी द्वारा अवध भेज दिया।

यहाँ तक माँ अपने को रोके रही। अब हृदय का उद्‌गार नही रुक सका। अतः आक्षेप के साथ आज्ञा दे रही हैं। तुम प्रसन्न मन से मेरे पास आये और मुझसे मुदित मन होकर आज्ञा देने को कहा सो मैं आज्ञा दे रही हूँ। प्रिय परिजन और गाँव को अनाथ करके तुम सुख से वन जाओ। भाव यह कि तुम्हारे जाने से प्रिय परिजन और राज्य सब अनाथ हो जायगा। कौन तुम्हारा विरह उतने दिनो तक सह सकेगा कौन नही सह सकेगा। ऐसे विषम सकटावस्था मे मैं मुदित मन से आज्ञा कैसे दे सकती हूँ। पर तुम कहते हो उसे टाल भी नही सकती। अत. कहे देती हूँ कि सुख पूर्वक वन जाओ।

सब कर आजु सुकृत फल बीता। भयउ करालु काल बिपरीता ॥
बहु बिधि बिलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहि जानी ॥३॥

अर्थ : आज सबके पुण्यो का फल बीत गया। कराल काल विपरीत हो गया। बहुत भाँति विलाप करके चरणो मे लिपट गयी। अपने को परम अभागिन माना।

व्याख्या : सरकार का दर्शन सब सुकृतो का फल है। यथा · सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसन पावा। सो दर्शन सबको दुर्लभ हुआ चाहता है। अतः कहती है कि *सबके पुण्यो का फल आज समाप्त हो गया। सब विधि सब* पुर लोग सुखारी। रामचद मुख चदु निहारी। सो सभी का सुख छिन गया। जो काल सबके अनुकूल था आज वह कराल होकर विपरीत हो गया। किसी का सामर्थ्य नहीं है कि उसका *अतिक्रमण कर सके। यथा अडकटाह अमित लयकारी।* काल सदा दुरतिक्रम भारी।

बहुत प्रकार से विलाप किया और अति आर्त होकर अपने को परम अभागिन मानकर चरणो में लिपट गयी। स्त्रियो को दो ही परम प्रिय हैं पति और पुत्र। सो पुत्र का वियोग तो हो ही रहा है और फलस्वरूप पति का भी प्राण संकट है। अतः परम भाग्यवती होने पर भी ससार का चक्र ऐसा है कि उन्होने अपने को परम अभागिन माना और पुत्र के चरणो मे लिपट गयी। मानो क्रिया से दिखला रही है कि मैं तुम्हे छोड़ना नही चाहती।

दारुन दुसहु दाहु उर ब्यापा। बरनि न जाहिं बिलाप कलापा ॥
राम उठाइ मातु उर लाई। कहि मृदु बचन बहुरि समुझाई ॥४॥

अर्थ कठिन दु सह दाह हृदय मे व्याप गया। विलाप के विस्तार का वर्णन नही किया जा सकता। रामजी ने उठाकर माँ को हृदय से लगा लिया और कोमल वचनो से फिर समझाया।

व्याख्या पहिले कहा था दुहु भाँति उर दारुन दाहू। सो एक रास्ते पर आ जाना पडा। जाने के लिए कह दिया। अब वियोग तथा उसके परिणाम पर ध्यान गया तो दारुण दु सह दाह हृदय मे व्याप गया। ऐसे समय मे माँ जा विलाप कर रही हैं उसे विस्तार से कौन कह सकता है।

माँ व्याकुलता से पृथ्वी पर गिर गयी थी। सो रामजी ने उठाकर सान्त्वना देते हुए मृदुवचन कहकर फिर समझाने लगे। यथा

अँब राउ अति ही दुखित तिनको करिय सँभार।
सब सनाथ नर नाथ ते तिनही पर सब भार॥
धरि धीरज सकट सहहु सत्य न नृप को जाय।
अवसि प्रथम दिन आइहौ चौदह वर्ष विताय॥
मेरो तो जीवन सफल बनहि गये ते होय।
मेरे हित तो भूलि कर सोच करै जनि कोय॥
तेरे मन काँचा किये मेरो धम नसाय।
धर्म सार ससार यह समुझि दखु जिय माय॥
पिता धर्म मम धर्म अरु अपनो धर्म विचारि।
आयसु दीजै हरखि हिय एहि कुलके अनुहारि॥

दो समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु पद कमल जुग, बदि बैठि सिरु नाइ॥५७॥

अर्थ उस समय यह समाचार पाकर सीताजी व्याकुल हो उठी। जाकर सास के दोना चरणो की वन्दना करके सिर नीचा किये हुए बैठ गयी।

व्याख्या सीताजी को पता लगा कि पिता ने सरकार को चौदह वर्ष के लिए वन दिया है। सो माता से विदा लने आये है। सुनते ही आकुल होकर उठ खडी हुई कि कही उधर से उधर ही वन न चल जायँ और वहा चली गयी जहाँ कौसल्याजी को रामजी समझा रहे थे। वहाँ चल जाने का अर्थ ही यही है कि मै भी साथ जाऊँगी। साथ ही मै भी विदा ल लँ। अत सास की वन्दना करके सिर झुकाकर बैठी। सिर झुकाकर बैठना यहा चिन्ता सूचक है।

दीन्हि असीस सासु मृदु बानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी॥
बैठि नमित मुख सोचति सीता। रूप रासि पति प्रेमु पुनीता॥१॥

अर्थ सास ने कोमल वाणी म आशीर्वाद दिया। अत्यन्त सुकुमारी देखकर आकुल हो उठी। रूप की राशि और पति के प्रेम से पवित्र सीताजी बैठी हुई सिर झुकाये सोच रही है।

व्याख्या सासु पद कमल जुग बदि बैठ गिर नाइ। अत मृदुबानी से सास ने आशीर्वाद दिया। स्त्रियो म चिरजीवनी होने के आशीर्वाद की प्रथा ही नही है। सौभाग्य का ही आशीर्वाद दिया जाता है। सास ने तुरन्त समझ लिया कि इस समय यहाँ चल आने का अर्थ ही यही है कि साथ जाने का तैयार है। सुकुमार तो रामजी भी हैं। पर यह तो अत्यन्त सुकुमारी है। इसका निवाह बन म कैसे होगा ? अपने धर्म पर खडी है। अत क्या कहकर रोकें ? ऐसा सोचकर सास व्याकुल हो उठी।

इधर सीताजी रूपराशि हैं परम विराधिनी सूपणखा कहेगी रूप रासि बिधि नारि सवारी। रति सतकोटि तासु बलिहारी। कदापि बन के योग्य नही। परन्तु पतिप्रेम से पुनीत है। स्त्रियो को पवित्र करनेवाला पतिप्रेम ही है। यथा एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रमा। यह पति का साथ छोडेगी नही। सोच से सिर झुकाये सोच रही है। चित्त सशय म पडा हुआ है।

चलनु चहत बन जीवननाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना॥२॥

अथ प्राणनाथ वन को जाना चाहते हैं। देखें किस पुण्यात्मा से इनका साथ होगा। शरीर और प्राण दोनो से साथ होगा कि केवल प्राण से ही होगा। विधाता को क्या करना है यह समझ म नही आता।

व्याख्या जीवननाथ शब्द के प्रयोग से वियोग का असह्य होना द्योतित किया। सो प्राणनाथ वन जाना चाहते हैं। इनका साथ होना सुकृत का फल है। यथा नाहि त हम कह सुनहु सखि इन्हकर दरसन दूरि। यह सघट तब होइ जब पुन्य पुराकृत भूरि। सो प्राण म पाप का वेध नही होता। अत इसके सुकृती होने म तो सन्देह नही है। पर शरीर साथ म जायगा कि नही इसी मे सशय है। विधाता ही कर्म शुभाशुभ के फल देनेवाल हैं। अत भोगायतन शरीर उनके अधीन है और वे क्या करेंगे यह कौन कह सकता है।

चारु चरन[1] नख लेखत धरनी। नूपुर मुखर मधुर कबि बरनी।
मनहुँ प्रम बस बिनती करही। हमहि सीयपद जनि परिहरही॥३॥

अथ सुन्दर चरण क नख स पृथ्वी पर लिख रही हैं। नूपुर को कवियो ने मधुर मुखर मीठा बकवादी कहकर वणन किया है। मानो प्रमवश विनती कर रह हैं कि हम सीताजी के चरण त्याग न करे।

व्याख्या सीताजी के सोचने के समय की शोभा कहते हैं। स्त्रियो का स्वभाव है कि सोचने के समय पादाङ्गुष्ठ नख से पृथ्वी पर रेखा बनाने लगती है। यथा महि नख लिखत लगी सब सोचन उसी क अनुसार सीताजी भी सुन्दर

---

१ हेतुसिद्धास्पदा उत्प्रेक्षा अलङ्कार।

चरण नख से पृथ्वी पर लिख रही हैं। नववधू हैं। नूपुर धारण किये हुए हैं। चरण के हिलाने से नूपुर से कुछ शब्द भी हो रहा है। इसलिए कवि उसे मधुर मुखर कह रहे हैं। नही तो चलने के समय तो उसमे से ध्वनि होती ही है। यथा : कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।

उसकी उत्प्रेक्षा करते हुए कवि कहते हैं कि मानो वे नूपुर पैर मे लग लगकर विनती कर रहे हैं कि हम लोगो का इन चरणो से बिछोह न हो। भगवती वन जाने को प्रस्तुत हैं। उस समय नूपुर परित्याग की भी सम्भावना है। अतः पहिले से ही विनती करते हैं कि हमे भी अपने साथ ले चलना। भाव यह कि सीताजी को कौन कहे उनके नूपुर भी वन जाने को प्रस्तुत हैं।

मंजु बिलोचन मोचति वारी। बोली देखि राम महतारी॥
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सास ससुर परिजनहि पियारी॥४॥

अर्थ : सुन्दर नेत्रो से आँसू बहाते हुए देखकर रामजी की माता बोली : बेटा! सुनो सीता अत्यन्त सुकुमारी हैं और सास ससुर तथा परिजनो की प्यारी हैं।

व्याख्या : उस समय आँसू बहाने का अर्थ यही है कि मुझसे साथ जाने की आज्ञा माँग रही हैं। मै नारीधर्म को जानती हुई इसे जाने से रोक नही सकती : ये पति है, ये अपने अधिकार से इसे रोक सकते हैं। अतः सीताजी से कुछ न कहकर रामजी से कहती है कि सीता अत्यन्त सुकुमारी है। कथमपि वन जाने योग्य नहीं है। सास ससुर परिजन की प्यारी है। तुम्हारा वियोग तो सबको ही होगा। इसके चले जाने से सबका दुःख अत्यन्त बढ जायगा।

दो. पिता जनक भूपाल मनि, ससुर भानुकुल भानु।
पति रविकुल कैरव बिपिन, बिधु गुन रूप निधानु॥५८॥

अर्थ : इसके पिता जनक राजाओ मे मणि है। ससुर सूर्यकुल के सूर्य है और पति सूर्यकुलरूपी कुमुद वन के लिए रूप निधान चन्द्र है।

व्याख्या : ऐसे घर की बेटी ऐसे घर आयी और ऐसा गुणवान् पति पाया। यह क्या जाने कि कष्ट सहन किसे कहते हैं। यह तो कथमपि वन जाने योग्य नही है। दूसरी बात यह कि इसके वन जाने से लोग क्या कहेगे? महाराज जनक की बेटी पैदल वन चली जा रही है। महाराज दशरथ की पुत्रवधू की यह दुर्दशा। रामचन्द्र की धर्मपत्नी होकर इस भाँति कष्ट उठा रही है एव इसके वनगमन मे तीनो का दुर्यश है।

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई॥
नयन पुतरि करि प्रीति बढाई। राखेउ प्रान जानकिहि लाई॥१॥

अर्थ : मैंने प्रिय पुत्रवधू पायी जो कि रूप की राशि है और सुन्दर गुण

शीलवाली है। आँखों की पुतली बनाकर प्रेम बढ़ाया और अपने प्राणों को जानकी में लगाकर रक्खा।

व्याख्या : सदा चिन्ता रही कि मेरा पुत्र ऐसा है इसके समानशीला वधू कहाँ मिलेगी। सो मिल गयी। पुत्रवधूचित सभी बातें इसमें है। रूप की तो राशि ही है और इसमे सुन्दर गुण और शील है। अतः मुझे प्रिय है। आँख की पुतली की भाँति इससे प्रीति बढ़ायी। महाराज की भी ऐसी ही आज्ञा थी। यथा : बधू लरिकिनी पर घर आई। राखेहु पलक नयन की नाई। सो मैने इसमे प्रान लगाकर रक्खा है।

कलपबेलि जिमि बहुबिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली॥
फूलत फलत भयउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा॥२॥

अर्थ : कल्पलता की भाँति इसका बहुत भाँति से दुलार किया है और स्नेह के जल से सीचकर इसका पालन किया है। फूलते फलते समय विधाता बायें हो गये। क्या परिणाम होगा जाना नही जाता।

व्याख्या : माँ कौसिल्याजी कहती हैं कि मैंने इसे : सीताजी को कल्पवेलि माना कि इससे मेरे सब मनोरथ सिद्ध होंगे। वंशवृद्धि होगी। पुत्र पौत्र होंगे। दूसरे स्थान से लाकर यहाँ लगायी गयी है। अतः सब भाँति से रक्षा करके स्नेह रूपी जल से बराबर सीचती रही कि कही सूख न जाय। इस भाँति मैंने इसका पालन किया। जब अयोध्या मे आयी बिल्कुल बाल्यावस्था थी। बच्चे प्रेम से ही पालन करने से जीते हैं। सो मैने उसमें त्रुटि नही आने दी। अब बड़ी हुई। फूलने फलने का समय आया। बाल बच्चे की आशा हुई तो विधाता बायें हो गये। वनवास का प्रकरण आपड़ा। क्या परिणाम होगा नहीं जाना जाता। यह यह मरेगी कि जीयेगी कौन कह सकता है।

पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सियँ न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥
जिअन मूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहि टारन कहऊँ॥३॥

अर्थ : पलङ्ग पीढ़ा गोद और हिंडोला छोड़कर सीता ने कठिन पृथ्वी पर कभी पाँव रक्खा नही। इसे सञ्जीवनी बूटी की भाँति सावधानी से रक्षा करती चली आयी। दीये की बत्ती को उसकाने : बढाने के लिए कभी नही कहा।

व्याख्या : सोते समय पलङ्ग पर भोजन के समय पीढ़े पर चलने के समय गोद में मन बहलाने के लिए पालना पर रहती थी। इसने कठोर भूमि पर आज तक पाँव न रक्खा। सञ्जीवनी बूटी की भाँति अत्यन्त दुर्लभ समझकर बड़ी सावधानी से इसका लालन पालन किया। अथवा बूटी की भाँति जिसमे प्राण बसता हो दिन रात चौकसी के साथ रक्षा की. रामजी की रक्षा महाराज जीवनतरु की भाँति करते थे और सीताजी की रक्षा कौसल्याजी जीवन मूलिका की भाँति करती थी। हलके से हलका काम इससे कभी नही लिया। दिये की बत्ती को आगे खिसकाने

के लिए भी कभी आज्ञा नही दी। अर्थात् दासी आदि की अनुपस्थिति म हलके से हलका काम मैं कर लेती थी। पर सीताजी को किसी काम के लिए कभी नही कहा।

सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा ॥
चंद किरिन रस रसिक चकोरी। रबि रुख नयन सकै किमि जोरी ॥४॥

अर्थ वही सीता अब साथ मे वन जाना चाहती है। हे रघुनाथ! इसके लिए क्या हुकुम देते हो। चन्द्रमा के किरणो के रस की रसिक चकोरी क्या कभी सूर्य की ओर आँख उठाकर देखने मे समर्थ हो सकती है।

व्याख्या ऐसी लाड प्यार से पाली हुई सीता तुम्हारे साथ वन जाने को प्रस्तुत है। अपने धर्म पर खडी है। सम्भव असम्भव कुछ नही देख रही है। एक तो वन जाने मे जो कष्ट होता है उसके सहने मे यह सर्वदा अनुपयुक्त है। तिसपर तुम्हारे साथ जाने मे तुम्हारी सेवा भी इसे करनी पडेगी। दास दासी होते तो फिर भी दूसरी बात थी। तुम रघुकुल के नाथ हो। बात समझ लो। अवसर ऐसा है कि मैं कुछ नही कह सकती। तुम्हारी आज्ञा मानना इसका परम धर्म है। अत तुम इसे उचित आज्ञा प्रदान करो। परन्तु यह ध्यान मे रखकर आज्ञा देना कि चकोरी सदा चन्द्रकिरण रसामृत का नेत्रो द्वारा पान किया करती है। उसमे इतना सामर्थ्य ही कहाँ कि सूर्य की ओर निर्निमेष नेत्र से देख भी सके भाव यह कि सीता आँख से वन को देख न सकेगी।

दो करि केहरि निसिचर चरहिं, दुष्ट जतु बन भूरि।
बिप बाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवन मूरि ॥५९॥

अर्थ वन मे बहुत से हाथी सिंह राक्षस आदि दुष्ट जन्तु घूमा करते हैं। बेटा! सुन्दर सञ्जीवनी बूटी की शोभा क्या विषवाटिका मे हो सकती है?

व्याख्या करि केहरि निसिचर ये सब हिंसक और दुष्ट जन्तु निष्कारण हिंसक अर्थात् छोटे से बडे जीव तक सबके सब दुखदायी हैं। इसलिए वन को विषवाटिका कहा। सीता सदा सुख म पली हुई सुन्दर सञ्जीवनी बूटी है। इसे विषवाटिका म आरोपण करने से ही यह सूख जायगी। अत इसे वन ले जाने मे किसी भाँति शोभा नही है।

बन हित कोल किरात किसोरी। रची बिरंचि बिषय सुख भोरी ॥
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहि कलेसु न कानन काऊ ॥१॥

अर्थ ब्रह्मदेव ने वन के लिए कोल किरात की लडकियो को बनाया है। वे विषय सुख जानती ही नही। पत्थर के कीडे के समान उनका स्वभाव होता है। उन्ह वन मे कोई कष्ट नही।

व्याख्या यदि कहिये कि वन म कोल किरात की बेटियाँ तथा तपस्वी की

स्त्रियाँ रहती हैं वैसे ही यह भी रहेगी सो यह बात भी ठीक नही। कोल और किरात की बेटियो को ब्रह्मा ने वन मे रहने के लिए ही पैदा किया है। वे वन मे पैदा हुई हैं। वन की कठिनाइयाँ उन्हे सात्म्य हो गयी है। उत्तम शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध से उनका परिचय ही नही है। वे पत्थर के कीडे की भाँति हो गयी हैं। पत्थर का कीट पत्थर मे रहता है। पत्थर मे ही उन्हे जीवनोपयोगी सामग्री मिल जाती है। उस सामग्री से वे ही काम चला सकते है। दूसरा कोई चाहने पर भी नही चला सकता। इसी भाँति कोल किरात की बेटियो का वन मे कोई कष्ट ही नही है।

कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू॥
सिय वन बसिहि तात केहि भाँती। चित्र लिखित कपि देखि डेराती॥२॥

अर्थ या तपस्वी की स्त्रियाँ वन के योग्य हैं। जिन्होने तप के लिए सब भोग छोड दिया है। हे बेटा! सीता वन मे कैसे रहेगी? यह तो चित्र मे लिखे हुए बन्दर का देखकर डर जाती है।

व्याख्या यदि कहिये कि वन मे तपस्वी की स्त्रियाँ तो रहती हैं उनके लिए यह बात नही कही जा सकती। वे पूर्व आश्रम मे सब सुखो से परिचित हैं। तपस्वी लोग प्राय स्त्री के सहित वन मे बसते हैं। पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वने गच्छेत् सहैव वा। शास्त्र की आज्ञा है कि भार्या का पुत्रो मे छोड दे या साथ वन ले जाय।

बात ठीक है। पर उन्होने तो स्वेच्छापूर्वक पुत्रोत्पादन के बाद दूसरा आश्रम ग्रहण किया है। वे तप के लिए सब भोगो का त्याग किये हुए हैं। यथा बिसरी देह तपहिं मन लागा। यहाँ तो पिता का वचन पालन के लिए वनगमन हो रहा है। दूसरे आश्रम ग्रहण का कोई प्रश्न ही नही है। सीता का उन तपस्विनियो से कोई समता नही है। यह तो चित्र मे विकटरूप देखकर डर जाती है। करि केहरि निशिचर को प्रत्यक्ष देखने से तो यह प्राण छोड देगी। यह वन मे कैसे रहेगी?

सुरसर सुभग बनज बन चारी। डाबर जोगु कि हसकुमारी॥
अस बिचारि जस आयसु होई। मै सिख देउँ जानकिहि सोई॥३॥

अर्थ मानससरोवर के सुन्दर कमल वन मे विचरनेवाली हस की बेटी क्या गडही के योग्य है? ऐसा विचार करके जो आदेश दो मैं तदनुसार जानकीजी को शिक्षा दूँ।

व्याख्या जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल। जिस भाँति ब्रह्मदेव के कोल किरात किशोरी को वन के लिए बनाया है उसी भाँति हस कुमारी को मानस सर के लिए बनाया। उसके कमल वन म विहार करने का जन्मसिद्ध अधिकार है। वह डाबर गडही के योग्य नही। उसके योग्य तो काक उलूक बक है। सीता राजा जनक की बेटी हसकुमारी राजभोग पर उसका जन्मसिद्ध अधिकार

है। वह वन के योग्य नहीं है। ऐसा विचार करके तुम जो आदेश दो क्योंकि धर्मपत्नी पर पूरा अधिकार पति का ही होता है। तदनुसार मैं जानकी को शिक्षा दूँ।

जौं सिय भवन रहइ कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा॥
सुनि रघुवीर मातु प्रिय बानी। सील सनेह सुधा जनु सानी॥४॥

अर्थ : माँ ने कहा कि यदि सीता घर रह जाय तो मुझे बहुत अवलंब रहेगा। रामजी ने माता की शील और प्रेमामृत से सनी प्रिय वाणी सुनकर।

व्याख्या : सीताजी के वनवास मे जो दोष थे उन्हे दिखलाकर अब उनके घर रहने के गुणो को दिखलाती है। कहती हैं कि यदि सीता घर रह जाय : भाव यह कि इसके रहने का रास्ता तो नही मालूम हो रहा है पर यदि रह जाय तो तुम्हारे जाने पर मैं निरावलम्ब न हो जाऊँगी। पति घर हैं ही पुत्रवधू भी है केवल पुत्र बाहर है। यही अवलम्बन की बहुतायत है।

रामजी ने माँ की प्रिय वाणी सुनी। शील और स्नेहयुक्त वाणी ही प्रिय होती है। सो माँ की वाणी मे शील और स्नेह दोनो का बहुत उत्कर्ष है। अत अमृत से उपमा दी। शील यथा—आयसु काह होइ रघुनाथा ''''अस विचारि जस आयसु होई। स्नेह यथा : मो कहँ होइ बहुत अवलंबा।

दो. कहि प्रिय वचन विवेकमय, कीन्ह मातु परितोषु।
लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगटि विपिन गुन दोषु॥६०॥

अर्थ. विवेकमय और प्रिय वचन कहकर माता का परितोष किया और जानकीजो को वन के गुण और दोषो को प्रकट करके समझाने लगे।

व्याख्या : सरकार ने कहा कि इनके जाने की कोई आवश्यकता नही है। आपका कहना ठीक है। मेरे न रहने की अवस्था मे आपकी सेवा का भार फिर किसपर रहेगा? मुझे मुनिव्रत वेष आहार की आज्ञा है। इसमे स्त्री का साथ ठीक भी नही। माँ से इतना कहकर सरकार जानकीजी को वन मे जाने के दोषो और न जाने के गुणो को समझाकर कहने लगे। माँ के कहने के समय ही सरकार का रुख साथ न ले जाने का था। पर अब तो स्पष्ट शब्दो मे कहना प्रारम्भ किया।

मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि मन माहीं॥
राजकुमारि सिखावनु सुनहू। आनि भाँति जिय जनि कछु गुनहू॥१॥

अर्थ : माँ के सामने बोलने मे सङ्कोच करते है। पर मनमे समय को समझकर बोले। हे राजकुमारी! शिक्षा सुनो और अपने मनमे कुछ और बात न समझो।

व्याख्या : बारह वर्ष ब्याह हुए हुआ। पर सरकार ऐसे सङ्कोची हैं कि माँ के सामने अभी तक कभी सीताजी से नही बोले। आज ऐसा समय आगया कि बिना बोले काम नही चलता। माँ चाहती है कि रामजी स्वयं सीताजी को समझावें।

अतः राजकुमारी कहकर सम्बोधन करके कहते हैं। भाव यह कि तुम राजकुमारी हो। सुशिक्षिता हो। हठ न करोगी। मैं जो बातें तुमसे कहूँगा उसका यह अर्थ न लगाना कि मेरा तुम्हारे प्रति प्रेम में कोई कमी है : प्रिया शब्द से सम्बोधन न करके रूखे शब्द राजकुमारी से सम्बोधन करता हूँ। इसे प्रेम में त्रुटि आने का लक्षण न समझना। मैं सिखावन देता हूँ तुम्हारी भलाई के लिए।

आपन मोर नीक जौं चहहू। वचनु हमार मानि गृह रहहू॥
आयसु मोर सासु सेवकाई। सब विधि भामिनि भवन भलाई॥२॥

अर्थ : अपना और मेरा यदि भला चाहती हो तो मेरा वचन मानकर घर रहो। मेरा आदेश सास के सेवकाई के लिए है। हे भामिनी! घर में रहने से ही सब प्रकार की भलाई है।

व्याख्या : तुम्हारा धर्म विपत्ति मे साथ न छोड़ने का है। सो तुम उसके लिए प्रस्तुत हो। तुम्हारी ओर से कोई त्रुटि नही है। परन्तु साथ चलने में न तुम्हारा कल्याण है और न मेरा। अत: हम दोनो की भलाई के लिए मेरा वचन मानकर घर रहो। जिस भाँति मै पिता का वचन मानकर वन जाता हूँ उसी भाँति तुम मेरा वचन मानकर घर रहो। यदि कहो कि घर रहने से आपकी सेवा से वञ्चित हो जाऊँगी तो : आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। मेरी आज्ञा मानो यही बड़ी भारी सेवा है। सो मै सास की सेवा के लिए तुम्हे आज्ञा देता हूँ। हे भामिनी! घर रहकर ही तुम हमारी सेवा करती रहोगी। मैं तुम्हारी ओर से निश्चिन्त रहूँगा। अतः घर रहने मे ही सब प्रकार की भलाई है। वन मे जाने से सब विधि से भलाई नही है।

एहि ते अधिकु धरमु नहि दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम बिकल मति भोरी॥३॥

अर्थ : आदर के साथ सास ससुर के चरणो की पूजा से बढ़कर दूसरा धर्म नही है। जब जब माता मेरी याद करेगी तब तब प्रेम के विवश होकर सुध बुध खो बैठेगी।

व्याख्या : नारिधर्म पतिदेव न दूजा यह ठीक है। पर सास ससुर तो पति के मान्य है। धर्म की दृष्टि से भी। श्रद्धा के साथ सास ससुर के चरणो की पूजा ही परम धर्म है। तुम्हें शिक्षा भी मिली है : सास ससुर गुर पूजा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनुसरहू। अतः मेरा आदेश मानो।

और दूसरी भी बात है कि जब जब माँ को मेरी सुध आवेगी और वह प्रेम के विवश होकर सुध बुध खो बैठेगी तब इसे सँभालनेवाला कौन है? दास दासी हैं। मान लिया कि वे सेवा करेंगी और विकलता के समय समझावेंगी भी पर उनके समझाने का प्रभाव क्या पड़ेगा?

तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी । सुंदरि समझायेहु मृदु बानी ॥
कहउँ सुभाय सपथ सत मोही । सुमुखि मातु हित राखउँ तोही ॥४॥

अर्थ : हे सुन्दरी ! तब तब तुम पुराणो की कथा कहकर मृदु वाणी से समझाना। मैं सौ शपथ लेकर कहता हूँ : हे सुमुखि ! मै माता के लिए तुम्हे घर रखता हूँ।

व्याख्या : तुमने इतिहास पुराण सुना है। तुम उन सब आख्यानों को जानती हो जिनमे सङ्कट के समय बडे लोगो ने धैर्य धारण करके उससे विमुक्ति पायी है। उन कथाओ के सुनने से शोक का वेग रुक जाता है। ढाढस बँधता है। माता की विकलता के समय तुम उन कथाओ को कोमल वाणी से कहकर माँ को समझाना। हे सुन्दरी ! तुम्हारे धैर्य का : तुम्हारे व्यक्तित्व का माँ पर प्रभाव पडेगा।

मैं स्वभाव कहता हूँ तुम्हारे आश्वासन के लिए ही नही कहता हूँ। मै तुम्हे स्वय साथ चलने के लिए कहता अथवा साथ ले जाता। पर मै सौ शपथ खाकर कहता हूँ कि तुम्हे घर पर छोड़ने का कारण एकमात्र माँ है। इन्हे मै किसके भरोसे छोड़ूँ ?

दो. गुर श्रुति संमत धरम फलु, पाइअ बिनहिं कलेस ।
हठ बस सब संकट सहे, गालव नहुष नरेस ॥६१॥

अर्थ : गुरु सम्मत और वेद सम्मत धर्म का फल विना आयास के तुम्हे मिलेगा। हठ के वश होकर गालव और राजा नहुष ने सब सङ्कट सहा।

व्याख्या वेद सम्मत होने पर भी शिष्टानुगृहीत होने की आवश्यकता है। अत सरकार कहते है कि गुरुश्रुति सम्मत जो धर्म है उसका फल तुम्हे अनायास प्राप्त हो रहा है। सास ससुर की सेवा करना कुलवधू का धर्म है और पत्तिरेको गुरुः स्त्रीणाम्। सो मैं भी आदेश दे रहा हूँ। अब इससे बढकर धर्म क्या होगा। सो वह फल तुम्हे घर बैठे मिल रहा है। उसे ग्रहण न करके यदि तुम हठ करोगी तो हठ का फल तो सङ्कट है। विश्वामित्रजी का शिष्य गालव था। गुरुजी उससे गुरुदक्षिणा नही लेना चाहते थे पर उसने हठ किया। तब गुरुजी ने ८०० श्यामवर्ण घोडे माँगे। उनके लिए उसे राजाओ के यहाँ दौड़ना पड़ा और अनेक प्रकार का सङ्कट उठाना पड़ा। गुरुजी ने तो वैसे ही गुरुदक्षिणा के ऋण से विनिर्मुक्त कर दिया था। पर गालव ने हठ करके सङ्कट मोल लिया।

इसी भाँति नहुष राजा अपने तेज से इन्द्र हो गये। सम्पूर्ण इन्द्रलोक पर उनका अधिकार हो गया। उन्होने उस अधिकार का दुरुपयोग इन्द्राणी पर भी करना चाहा। हठ पकड़ लिया। यहाँ तक कि चढेउ भूमिसुर यान। फल यह हुआ कि अगस्त्यजी के शाप से पृथ्वी पर आकर अजगर हो गये। फलत: हठ का फल सङ्कट झेलना है। अतः तुम हठ न करो। धर्मफल तुम्हे अनायास प्राप्त है।

मै पुनि करि प्रवान पितु बानी । वेगि फिरव सुनु सुमुखि सयानी ॥
दिवस जात नहि लागिहि वारा । सुदरि सिखवनु सुनहु हमारा ॥१॥

अर्थ और मै पिता के वचन को प्रमाण करके हे सुमुखि सयानी ! शीघ्र ही लौट आऊँगा । दिन जाते देर न लगेगी । हे सुन्दरी ! मेरी शिक्षा सुनो ।

व्याख्या यह नही कहते कि मैं तुम्हे साथ नही ले जाऊँगा या ले जा नही सकता । जो अपने धर्म पर खडा है उसे बलपूर्वक कैसे रोकें । समझाने बुझाने से वही मान जाय तो ठीक है । अत सरकार कहते है कि मै अपनी इच्छा से वन विहार करने नही जा रहा हूँ । जिसम यह शङ्का हो कि सम्भव है मन लग जाने से लौटने मे देर हो । तो मैं केवल पिता की वाणी को प्रमाण करने जा रहा हूँ । न जाऊँ तो पिता का वचन अप्रमाण हुआ जाता है । जहाँ चौदह वर्ष बीते कि मैं घर आया । सुमुखि सुन्दरी सम्बोधन देकर अपनी आसक्ति प्रकट करते हैं । सयानी सम्बोधन से अपना हृद्गत भाव प्रकट करते हैं कि तुम मेरे प्रेम को जानती हो । मुझे स्वय तुमसे मिलने की उत्कण्ठा रहेगी । मै देर क्या लगाऊंगा ?

जौ हठ करहु प्रेमबस बामा । तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा ॥
काननु कठिन भयकरु भारी । घोर घामु हिम बारि बयारी ॥२॥

अर्थ हे शोभने ! यदि तुम प्रेमवश हठ करोगी तो परिणाम मे तुम्हे दु ख होगा । वन भारी कठिन और भयङ्कर है । घोर घाम, पाला, जल और हवा है ।

व्याख्या तुम्हारा वन म निर्वाह होना दुस्तर है । तुम सुन्दर स्वभाववाली हो । हठीली नही हो । पर यदि प्रेमवश हठ करोगी तो परिणाम मे दु ख पाओगी सरकार के इस कथन मे सीताहरण और सीता परित्याग का सकेत है । अब वन के दु खो का वर्णन करते है । पहिले यह कि वन मे कही मृदुता का नाम नहीं । उसके देखने स बडा भय उत्पन्न होता है । उसम रहना तो दूर की बात है । जाडा गरमी बरसात तीनो काल म महा दु ख है । गरमी के दिनो मे असह्य घाम । जाडा के दिनो म असह्य पाला । बरसात म पानी और हवा असह्य होती है । अथवा वन की हवा और पानी भी अनुकूल नही पडता है । वन म शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध सभी भयानक है । कानन कठिन भयकर भारी स रूप की भयानकता कहा । घोर घामु हिम बारि बयारी से स्पर्श की भयानकता कहते हैं ।

कुस कटक मग काँकर नाना । चलब पयादेहि बिनु पद त्राना ॥
चरन कमल मृदु मजु तुम्हारे । मारग अगम भूमिधर भारे ॥३॥

अर्थ रास्ते म कुशा काँटे और अनेक प्रकार के ककड भरे पडे हैं । पैदल चलना जूता भी नही । तुम्हारे चरण कमल कोमल और सुन्दर हैं । रास्ता दुर्गम और भारी भारी पहाड ।

व्याख्या दूसरे यह कि रास्ते मे कुश उगे रहते है । जो बडे तीखे होते हैं ।

काँटे और कङ्कड ऐसे होते हैं कि जूते की दुर्गति हो जाती है। हमलोगो को मुनिव्रत पालन करना है। अत पैदल चलना होगा। जूता भी नही पहन सकते। तुम्हारे चरण कमल से कोमल और सुन्दर हैं। ये दुर्गम मार्ग और बडे बडे पहाडो का सामना नही कर सकते।

कदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहि निहारे ॥
भालु बाघ वृक केहरि नागा। करहि नाद सुनि धीरजु भागा ॥४॥

अर्थ कन्दरा, खोह, नदी, नद और नाले सभी दुर्गम और अथाह होते हैं। जिन्हे देखते नही बनता। बाघ, भालू, भेडिया और हाथी ऐसा चिग्घाड करते हैं कि सुनकर धैर्य छूट जाता है।

व्याख्या : उन बडे बडे पहाडो मे ऐसी ऐसी कन्दरा और ऐसे ऐसे खोह हैं। कितने भयानक नाले रास्ते मे पडते हैं। बहुत से नाले मिलकर एकनद हो जाता है और बहुत से नद मिलकर नदियाँ बन जाती है। ये सबके सब दुर्गम हैं। अथाह हैं। ऐसे भयानक हैं कि देखते नही बनता। तीसरे यह कि उन वनो मे हिंस्र जन्तु बाघ, भालू, भेडिया, सिंह और हाथी रहते है जिनका चिग्घाड सुनकर धैर्य छूट जाता है। इससे शब्द की भयानकता कहा।

दो. भूमि सयन बलकल वसन, असनु कद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहि, सबुइ समय अनुकूल ॥६२॥

अर्थ · पृथ्वी पर सोना, पेड की छाल पहनना, कन्द फल मूल खाना वह भी सदा नही मिलता। सभी अपने अपने समय पर मिलते हैं।

व्याख्या · तुमने कठोर पृथ्वी पर पैर नही रक्खा। सदा पलग पीठ, गोद और पालने पर रही। वन मे पृथ्वी पर सोना पडेगा। पेडो की छाल को कपडा की भाँति पहनना होगा। खाने के लिए केवल कन्द, फल और मूल मिलेंगे। वे भी सदा प्राप्य नही। सबके लिए ऋतु नियत है। स्थान नियत है। कोई किसी ऋतु मे होता है और कोई किसी ऋतु मे होता है। कोई कही पाया जाता है और कोई कही पाया जाता है। जीवनोपयोगी वस्तु भी दुर्लभ हैं। यहाँ रस और गन्ध के विषय मे कहा।

नर अहार रजनीचर चरही। कपट वेष बिधि कोटिक करही ॥
लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहि जाइ बखानी ॥१॥

अर्थ : मनुष्यो को खानेवाले राक्षस वहाँ घूमा करते हैं। करोडो प्रकार के कपट वेष धारण किया करते हैं। पहाडी पानी बडा विकार करता है। वन की विपत्ति का वर्णन नही हो सकता।

व्याख्या : चौथे यह कि राक्षसो के मनुष्य ही आहार है। मनुष्य ही खाकर वे आते है : खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। वे आहार के खोज म घूमा करते हैं। कपट से अनेक वेष बनाया करते हैं। जिससे कोई उन्हे जान न ले। कही मृग

बन जाते हैं। कही यति बन जाते है। इत्यादि। पहाड का पानी बडा विकार करता है। उसे पीकर लोग घर आने पर भी बीमार पडते हैं। मरणासन्न हो जाते है। वन मे एक विपत्ति नही है। वन की विपत्तियो का पारावार नही।

काल कराल बिहंग बन घोरा। निसिचर निकर नारि नर चोरा ॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आए। मृग लोचनि तुम्ह भीरु सुभाए ॥२॥

अर्थ : वन मे कराल सर्प होते है। भयावने पक्षी होते है। राक्षस लोग स्त्री और पुरुष को चुरा ले जाते है। धीर पुरुष भी वन की याद आने से डर उठते हैं। हे मृगलोचनि! तुम तो स्वभाव से ही डरपोक हो।

व्याख्या : सुरक्षित स्थान मे भी खतरा रहता है। वहाँ कराल सर्प होते हैं। जिनके काटने से कोई बच नही सकता। वहाँ के पक्षी भी घोर है। मनुष्य को तो अपना आहार समझते है। यथा : मोहि अहार दीन्ह जगदीसा। सुन्दर पुरुष पर राक्षसी आसक्त हो जाती हैं। सुन्दरी स्त्री पर राक्षस आसक्त हो जाते है। तब उन्हे खाते नही चुरा ले जाते हैं। जो खा जाने से बुरा है।

जिनकी धीरो मे गिनती है और कभी वन मे रहने का अवसर मिल चुका है वे वन की याद आ जाने से सिहर उठते हैं। हे मृगलोचनि! तुम तो स्वभाव से भीरु हो। माँ कहती है चित्र लिखित कपि देखि डराती। तुम वन मे कैसे बसोगी? वन मे मृग बसते हैं। मृगलोचनी नही बसती।

हंस गवनि तुम नहि बन जोगू। सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू ॥
मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली ॥३॥

अर्थ हे हंसगामिनि तुम वन योग्य नही हो। सुन करके लोग मुझे अपयश देंगे। मानससरोवर के अमृत सदृश जल मे पली हुई हंसिनी क्या क्षार समुद्र मे जी सकती है?

व्याख्या . पाँचवें यह कि तुममे वन की योग्यता नही है। जिसमे जिस बात की योग्यता न हो उसमे उस वस्तु का विनियोग नीति विरुद्ध है। तुम्हारी हंस की भाँति मन्द गति है। वन मे तीव्र गतिवाली कोल किरात किशोरियो का निर्वाह होता है। जो दौडधूप कर सकें। तुम तो जाना चाहती हो पर साथ ले जाने में मेरा कितना भारी अपयश है। लोग कहेगे कि भले ही सीता साथ जाने के लिए हठ करती रही हो पर रामचन्द्र कैसे थे जो ऐसी सुकुमारी को साथ वन ले गये। तुम वन मे जी नही सकती। जैसे मानसरोवर के अमृत सदृश जल से पली हुई हंसिनी लवण समुद्र मे नही जी सकती।

नव रसाल बन बिहरन सीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला ॥
रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चंद बदनि दुखु काननु भारी ॥४॥

अर्थ . नयी अमराई मे विहार करनेवाली कोकिल की शोभा क्या करील के

वन मे हो सकती है। ऐसा मनमे विचार करके घर रहो। हे चन्द्रवदनि ! वन मे बड़ा दु ख है।

व्याख्या : तुम्हारा वन जाना एक अशोभन कार्य है। कोकिल की शोभा नये आम के वन मे विहार करने मे है। आम्रवन मे स्पर्श रूप रस गन्ध की वहुतायत तो स्वभाव से ही है। नवतरु किसलय मे मृदु स्पर्श और सुन्दर रूप बौर मे सुन्दर गन्ध फल मे सुन्दर रस रहता है। केवल मनोहर शब्द का घाटा रहता है। उसे पूरा करके कोकिल आम्रवन को सर्वेन्द्रिय तर्पण बना देती है। अत वहाँ उसकी शोभा है। करील मे न तो पत्ते हैं, न सरस फल है, न सुगन्ध है। उसमे कोकिल जाती ही नही। करील के वन मे यदि कोकिल जाय तो उसकी शोभा नहीं।

आपन मोर नीक जौं चहहू। वचनु हमार मानि गृह रहहू से उपक्रम करके रहहु भवन अस हृदय बिचारी से उपसहार कर रहे हैं। साराश इतना ही है कि वन मे भारी दु ख है जो तुम झेल नही सकती।

दो. सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख, जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हित हानि ॥६३॥

अर्थ . स्वाभाविक हितचिन्तक गुरु और स्वामी की शिक्षा जो शिरोधार्य नही करता। वह मन मे पेट भर पछताता है। उसके हित की अवश्य हानि होती है।

व्याख्या स्वाभाविक हित चिन्तक माता पिता आदि गुरुजन ससुर सास आदि और स्वामी इनके वचन को अवश्य शिरोधार्य करना चाहिए। इसी मे कल्याण है। नहीं तो निश्चय ऐसा अकल्याण होता है कि नहीं माननेवाला मन मे पेट भर पछताता है चाहे मुख से न कहे। स्त्री का तो पति सहज सुहृद् भी है। यथा : मित ददाति च पिता मित भ्राता मित सुतः। अमितस्य च दातार भर्तार कानुसेवयेत्। अमितदानि भर्ता वैदेहीगुरु भी हैं। यथा : पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम् और स्वामी तो हैं ही। अत उनके वचन को तो अवश्य ही शिरोधार्य करना चाहिए। नही मानने से अवश्य हित की हानि होती है और मुख से चाहे न कहे पर मन मे उसे पेट भर पछताना पडता है। भाव यह कि यदि मेरा वचन न मानोगी तो निश्चय हित हानि होगी और तुम पेट भर पछताओगी।

सुनि मृदु वचन मनोहर पिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के ॥
सीतल[1] सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरद चंद निसि जैसे ॥१॥

अर्थ : प्रिय के मनहरण करनेवाले कोमल वचन सुनकर सीताजी के सुन्दर नेत्र जल से भर आये। शीतल शिक्षा ऐसी दाहक हुई जैसे चकई को शरद् चन्द्रमा-वाली रात दाहक होती है।

व्याख्या : एक तो प्रिय के [illegible]

---

१. विषम अलङ्कार तृतीय।

ऐसे कोमल और मनोहर थे कि मन उसी के ग्रहण मे तन्मय हो गया था। आँसू गिरना बन्द हो गया था। सो कथन समाप्त होते ही सीताजी के सुन्दर नेत्रो मे फिर जल भर गया।

बडी शीतल शिक्षा थी पर सीताजी को वह दाहक हो गयी। जैसे शरद् चन्द्रमावाली रात स्वभाव से ही शीतल और सुखद है। पर चकई को तो वह अधिक दाह उत्पन्न करती है। पति वियोग के कारण चकई के लिए सभी रात्रि दाहक है। पर शरद् चन्द्र से युक्त रात्रि अधिक दाहक होती है। भाव यह कि कौसल्याजी के वचन भी दाहक थे। पर रामचन्द्र के मुख से उसी आशयवाले वचन अधिक दाहक हो उठे। रामजी ने वही भाव शब्दान्तर मे कहे जो भाव कौसल्याजी ने व्यक्त किया था। पर प्रियतम के मुख से सुनने से वे अधिक वियोग-जन्यदाह के उत्पन्न करनेवाले हुए।

उतरु न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही॥
बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरजु उर अवनि कुमारी॥२॥

अर्थ. वैदेही विकल है उत्तर देते नही बनता। पवित्र और स्नेही स्वामी मुझे छोडना चाहते है। पृथ्वी की बेटी सीताजी ने धैर्य धारण किया और बलपूर्वक नेत्र के जल को रोका।

व्याख्या जो रामजी कह गये उसका उत्तर है। पर मन मे जो यह भावना उठी कि ऐसे पवित्र और स्नेही स्वामी मुझे छोडना चाहते है तो वैदेही विकल हो गयी। उत्तर मुख से निकलता ही नही। शुचि कहने का भाव यह कि सरकार विषय रस रूखे हैं। *यथा राम पुनीत विषय रस रूखे फिर भी स्नेही हैं।* यथा तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा। सो मन सदा रहत तोहि पाही। जानु प्रीति रस एतनहि माही भाव यह कि अलौकिक प्रेमी होने पर भी मुझे छोडना चाहते है।

इस दाह से धैर्य छूट चला था। पर ये तो सर्वसहा पृथ्वी की बेटी है। माँ के सब गुण विद्यमान है। धैर्य धारण किया और नेत्र के जल का बल पूर्वक रोका।

लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देबि बडि अबिनय मोरी॥
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई॥३॥
मै पुनि समुझि दीखि मन माही। पिय बियोग सम दुखु जग नाही॥४॥

अर्थ सास के पाँव पडकर और हाथ जोडकर बोली कि हे देवि! मेरी बडी भारी ढिठाई को क्षमा करना। मुझे प्राणपति ने वही शिक्षा दी जिससे मेरा परम कल्याण हो। मैंने भी उसे समझकर मन मे देख लिया कि पति के वियोग से बढकर कोई दु ख ससार मे नहीं है।

व्याख्या पहिले सास से ही प्रार्थना करना है। क्योकि सरकार ने कह दिया सुमुखि मातु हित राखहुँ तोही और माता का बहुत बल [illegible] पर है

कि सीता वन के दु खो को न मह सकेगी और उन्ही के प्रेरणा मे सरकार ने वैमी ही शिक्षा दी। जब सीताजी आयी थी तब वन्दना करके बैठी। अब कुछ कहना है अत फिर वन्दना करती है। भगवती ने आज तक सास की बातो का कभी उत्तर नही दिया। आज बिना दिये स्वीकृति ममझी जायगी। अत उत्तर देना पडा। इसे मीताजी बडी भारी ढिठाई मानती है। अत उसके लिए पहिले ही क्षमा प्रार्थी होती हैं।

आरम्भ से ही आर्यपुत्र न कहकर सङ्कोच छोडकर प्राणपति कहा। इसका अर्थ ही यही है कि इनके बिना मै जी नही सकती प्राणपति की शिक्षा मे कोई दोप नही है और वह शिक्षा मेरे बहुत भल के लिए है। मैंने उसे दत्तचित्त होकर सुना। समुझि कहकर उसका मनन करना कहती है और दीख मन माही से निदि-ध्यासन कहती है। अर्थात् ऊँचा नीचा अच्छी भाँति विचार लिया। सो यह निश्चय हुआ कि प्रिय वियोग के समान दु ख दूसरा जगत म है नही अधिक कहाँ से होगा। सास से मीताजी ने इतना ही कहना यथेष्ट समझा। क्योकि स्त्री है। स्त्रीहृदय को जानती हैं। स्त्रीधर्म को जानती है। इनके लिए इतना ही अल है। अत यह सहज सुहृद गुरस्वामि सिख जो न करै हित मानि आदि का उत्तर है।

दो प्राननाथ करुनायतन, सुदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु, सुरपुर नरक समान ॥६४॥

अर्थ हे प्राणनाथ, करुणायतन, सुन्दर, सुखद, सुजान, हे रघुकुल कुमुद चन्द्र। तुम्हारे बिना स्वर्ग भी नरक के तुल्य है।

व्याख्या अब सरकार से कहती है। प्राणनाथ सम्बोधन से वियोग मे प्राण त्याग कहा। करुणायतन कहकर करुणा की प्रार्थी है। सुन्दर कहकर द्योतित किया कि मैं नित्य दर्शन चाहती हूँ। सुखद कहकर वियोग दु ख न देने की प्रार्थना करती है। सुजान कहकर मनोगत का जानकार होना कहती है। रघुकुल कुमुद विधु कहकर अपना सहज प्रेम कह रही है। इतनी बात केवल सम्बोधन म ही कह गयी। अब कहती हैं कि तुम्हारे बिना मेरे लिए स्वर्ग भी नरक है। स्वर्ग मे लोकोत्तर सुख मिलता है और नरक म लोकोत्तर दु ख मिलता है। भाव यह कि प्रियतम के बिना सुख सब दु ख रूप है। यथा ज हित रहे करइँ ते पीरा। यह • रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चद बदनि दु ख कानन भारी का उत्तर है।

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई ॥
सासु ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुदर सुसील सुखदाई ॥१॥

अर्थ • माता, पिता, बहन, प्रिय भाई, प्रिय परिवार, सुहृद समूह, सास, ससुर, गुरु स्वजन, सहायक और सुन्दर सुशील सुखदायक पुत्र।

व्याख्या १ पहिला परिचय माता से २ फिर पिता स फिर ३ बहन और ४ प्रिय भाई से। य तो परम आत्मीय ठहरे। तत्पश्चात् ५ प्रिय परिवार

चाचा बाबा इत्यादि और ६ सुहृद्वर्ग। ये छ मैके के आत्मीय हैं। इस भाँति १ सास २ श्वसुर ३ गुरु ४ स्वजन ५ सहायक और ६ सुन्दर सुशील सुखदायक पुत्र ये छ आत्मीय सुसराल के। सब मिलाकर बारह हुए। इन्ही पर स्त्रियो को प्रीति होती है।

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहुँ ते ताते ॥
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू ॥२॥

अर्थ हे नाथ जहाँ तक स्नेह और नाता है पति के बिना स्त्री को सब सूर्य की भाँति तापप्रद हैं।

व्याख्या इन बारहो के भीतर ही सब स्नेह और सम्बन्ध का अन्तर्भाव है। इसीलिए स्नेही और सम्बन्धो न कहकर स्नेह और सम्बन्ध कहा। ये सब सुखदायी हैं। पर तभी तक जब तक कि स्त्री को पति का साथ है। पति का विछोह होने पर ये बारहो द्वादशादित्य की भाँति तापक हो जाते हैं। एक आदित्य का ताप सहन नही होता बारह आदित्य का ताप कौन सह सकता है। यह। नव रसाल बन बिरहन सीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला का उत्तर है।

चेतन की व्यवस्था कहकर अब जड वस्तुओ म जिनपर प्रेम होता है उन्हे गिनाती हैं। १ शरीर २ धन ३ धाम ४ धरणी ५ पुर और ६ राज्य यह सुख का समाज है। पर तभी तक जब तक पति का साथ है। पति के विछोह म ये शोक के समाज है। इस बात को पतिव्रता स्त्रियाँ ही समझ सकती हैं। सामान्य स्त्री भी इसे नही समझ सकती। तब पुरुषो से समझने की कौन आशा है। अत इन बातो को कौसल्या जी से कहकर सरकार से कहती हैं यह मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली का उत्तर है।

भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस ससारू ॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माही। मो कहुँ सुखद कतहु कछु नाही ॥३॥

अर्थ भोग रोग के समान हो जाता है। गहने बोझ मालूम होते है और ससार तो यमयातनामय हो जाता है। हे प्राणनाथ! तुम्हारे बिना इस ससार म मुझे तो सुखद कही कुछ भी नही है।

व्याख्या भोग की सामग्री रोग की भाँति दु खद हो जाती है। भूषण धारण करने योग्य प्रिय वस्तु है। वह बोझा हो जाता है। ससार मे जो व्यवहार चलता है यमयातना की भाँति महाकष्टप्रद प्रतीत होता है। यह हस गवनि तुम नहिं बन जोगू का उत्तर है। इस भाँति भगवतीजी ने पतिव्रता स्वभाव का वर्णन किया ऐसी स्त्री जा पति के साथ सती होती हैं उन्हे सती हो जाने मे ही सुख है। व सती हो जाने से इन महादु खो स त्राण पा जाती हैं। जो इन गुणो से अपरिचित हैं उन्हे सती होना घोर नृशंस क्रिया प्रतीत होती है। अन्त मे भगवती कहती हैं कि जो आपने कहा रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चद बदनि दुख कानन भारी। सो

पुरुष होने के नाते स्त्री स्वभाव से अपरिचित होने के कारण कहा। हे प्राणनाथ! तुम्हारे बिना संसार मे कही कुछ भी सुखद नही है।

जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें॥४॥

अर्थ : जैसे जीव के बिना देह बिना जल की नदी वैसे ही हे नाथ! पुरुष के बिना स्त्री हो जाती हैं। हे नाथ! तुम्हारे साथ मुझे सब सुख निर्मल शरत् चन्द्र के समान आपके मुख दर्शन मे है।

व्याख्या : जैसे जीव के बिना देह अमङ्गल रूप अपवित्र और व्यर्थ हो जाता है : जिस भाँति जल के बिना नदी भयानक और कष्टप्रद हो जाती है वही दशा स्त्री की हो जाती है। तो क्या मैं इस संसार मे अमङ्गल रूप अपवित्र व्यर्थ भयानक और कष्टप्रद होकर रहूँ? जो सरकार ने कहा : मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली। सो मेरे लिए घर ही लवण पयोधि है। मैं यहाँ नही जीऊँगी। सरकार के मुखचन्द्र के दर्शन में ही मुझे सब सुख है।

दो. खग मृग परिजन नगर बनु, बलकल बिमल दुकूल।
नाथ साथ सुर सदन सम, परनसाल सुख मूल॥६५॥

अर्थ : नाथ के साथ पशु पक्षी कुटुम्बी वन नगर और पेड़ो की छाल निर्मल वस्त्र तथा पत्ते की कुटिया स्वर्ग की भाँति सुखमूल हो जायगी।

व्याख्या : नाथ का साथ रहने से वन्यजन्तु मेरे कुटुम्बी हो जायँगे। वन ही नगर की भाँति सुखद होगा। पेड़ो की छाल ही निर्मल वस्त्र का काम देंगे और पत्ते की कुटी मे स्वर्ग का सुख होगा। प्रिय का साथ होने से सब दुखद पदार्थ सुखद हो जाते हैं। जङ्गल मे ही मङ्गल होगा। कोई दुखद न होगे यह बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी का उत्तर है।

बनदेवी बनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा॥
कुस किसलय साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई॥१॥

अर्थ : उदार वनदेव और वनदेवी सास ससुर की भाँति रक्षा करेंगे। सरकार के साथ कुशा और कोमल पत्तो का बिछौना सुन्दर कामदेव का तोशक हो जायगा।

व्याख्या . माता ने आशीर्वाद दिया है : पितु वनदेव मातु बनदेवी। अतः कहती है कि वनदेव और वनदेवी उदार हैं। बिना पूजा पाये वन्य जीवो की रक्षा करते है। सो वनदेवी मेरी सास की भाँति रक्षा करेंगी और वनदेव ससुर की भाँति रक्षा करेंगे। यह : नर अहार रजनीचर करही। कपट वेप बिधि कोटिक चरही : का उत्तर है।

सरकार ने कहा था कि भूमि पर सोना होगा। इस पर कहती हैं कि भूमि

पर क्यों सोऊँगी कुश किशलय का बिछौना बनाया जायगा और प्रभु के साथ सुन्दर कामदेव के तोशक की भाँति सुखद होगा।

कद मूल फल अमिअ अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू॥
छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहौ मुदित दिवस जिमि कोकी॥२॥

अर्थ कन्दमूल फल का आहार अमृत के आहार सा होगा। पहाड अवध के सौ महलो की भाँति हो जावेंगे। क्षण क्षण सरकार के चरण कमल का दर्शन करके ऐसी प्रसन्न रहूँगी जैसे दिन मे चकई प्रसन्न रहती है।

व्याख्या सरकार ने कहा असन कन्द फल मूल। सो कन्द फल और मूल का भोजन सरकार के साथ होने से अमृत के भोजन की भाँति स्वादिष्ट होगे और जिन पहाडो के लिए सरकार ने कहा है मारग अगम भूमिधर भारे। कदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे इत्यादि सो वे भूमिधर पहाड अयोध्या के सौ महल के समान सुखदायक होगे।

सरकार ने कहा कदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे। सो कन्दर खोह नदी नद नारे म सरकार आगे आगे रहेग। मै तो सरकार के चरणो को बराबर दर्शन करती हुई प्रसन्न रहूँगी जैसे दिन को चकई रहती है।

वन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥३॥

अर्थ सरकार ने वन के बहुत से दु ख भय विषाद और परितापो का वर्णन किया। पर वे सब मिलकर प्रभु के वियोग क लवलश के समान नही हैं।

व्याख्या सरकार ने वन के बहुत दु खो का वर्णन किया। उसम भय का वर्णन किया। यथा कानन कठिन भयकर भारी। विषाद का वर्णन किया। यथा घोरघाम हिम बारि बयारी। परिताप का वर्णन किया। यथा कुस कटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहि बिनु पद त्राना। चरन कमल मृदु मजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे। सो इन सब भय विषाद और परितापो को इकट्ठा किया जाय तो भी सरकार के वियोग के लवलश के समान सब मिलकर भी नही होगे।

अस जिय जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ सग मोहि छाँडिअ जनि॥
बिनती बहुत करौ का स्वामी। करुनामय उर अतरजामी॥४॥

अर्थ . हे सुजान शिरोमणि! ऐसा जानकर मुझे साथ ले लीजिये। छोड न दीजिये। हे स्वामिन्! मैं बहुत विनती क्या करूँ। आप करुणामय है और अन्तर्यामी हैं।

व्याख्या सरकार ने कहा जौ हठ करहु प्रम बस बामा। तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा। इसपर कहती हैं कि मैं हठ नही करती हूँ। वस्तुस्थिति कहती हूँ। आप सुजान शिरोमणि हैं। यथा यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ। जान सिरोमनि

कोमल राऊ। जो निष्करुण हो हृदय की बात न जानता हो उमसे अधिक विनती की जाती है। सरकार तो करुणामय है। अन्तर्यामी है। आप से अधिक विनती क्या करें।

दो. राखिअ अवध जो अवधि लगि, रहत जानिअहि प्रान।
दीनबंधु सुदर सुखद, सील सनेह निधान ॥६६॥

अर्थ : यदि आप समझें कि अवधि चौदह वर्ष तक मेरे प्राण रह सकेंगे तो अवध मे मुझे रखिये। आप दीनबन्धु हैं। सुन्दर है और शील तथा स्नेह के निधान हैं।

व्याख्या : सरकार ने कहा : दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुन्दरि सिखवन सुनहु हमारा। सो मैं शिक्षा शिरोधार्य करने को प्रस्तुत हूँ। पर प्राण मेरे वश मे नही है। ये नही रहेगे। यदि आप समझते हो कि ये चौदह वर्ष बिना आपके रह सकेंगे तो मुझे अवध मे ही रहने दीजिये। दीनबन्धु सम्बोधन से अपनी दीनता कहा। सुन्दर कहकर अपनी आसक्ति कही और सील सनेह निधान कहकर साथ ले जाने के लिए प्रार्थना की। रहत न जानि अहि : पाठ मानने से अर्थ होगा कि मैं नही जी सकूँगी।

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी॥
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौ। मारग जनित सकल श्रम हरिहौ॥१॥

अर्थ : मुझे रास्ता चलने मे थकावट नही मालूम होगी। क्योकि क्षण क्षण चरण कमलो का दर्शन होता रहेगा : सभी तरह से मैं प्रिय की सेवा करूँगी और रास्ते की थकावट दूर करूँगी।

व्याख्या : ऊपर के दोहों मे पाँच सम्बोधन दिया है १ दीनबन्धु २ सुन्दर ३ सुखद ४. शील निधान और ५ स्नेह निधान। अत: दीनबन्धु से अपनी दीनता कहती हैं। सरकार ने कहा था : चलब पयादेहि बिनु पद त्राना। इसका उत्तर भी साथ ही साथ है। कहती है कि मुझे तो रास्ते चलते थकावट होगी नही। क्योकि सरकार के प्रत्येक पादप्रक्षेप को मुझे ध्यान से देखना पडेगा। यथा : प्रभु पद रेख बीचबिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता। इस भाँति क्षण क्षण चरण कमल का दर्शन करती चलूँगी। उसी आनन्द मे मुझे पथश्रम का भान ही न होगा।

इतना ही नही सरकार के साथ कोई सेवक न होगा तो सेवा कौन करेगा। यहाँ तो सेवा का पूरा सौभाग्य प्राप्त नही था। अवसर ही नही मिलता था। प्रिय की सेवा करने में सुख मिलता है सो सब सेवा मैं करूँगी। एहि ते अधिक धरम नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा : का उत्तर दे रही है कि आपकी सेवा का अधिक सुअवसर प्राप्त होगा। एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पतिपद प्रेमा। भाव यह कि मैं बोझ होकर साथ नही रहूँगी। मैं तो थकूँगी ही नही और सरकार के थकावट को दूर करूँगी। यह सीताजी आर्त्त होकर कह रही हैं। नही तो : घर

ते निकरी रघुवीर वधू, धरि धीर धरी मग मे पग द्वै । झलकी भली भाल कनी जल की, रद सूख गये अधराधर द्वै । इत्यादि ।

पाय पखारि बैठि तरु छाही । करिहउँ बाउ मुदित मन माही ॥
श्रम कन सहित स्याम तनु देखें । कहँ दुख समउ प्रानपति पेखे ॥२॥

अर्थ : पैर धोकर पेड़ की छाया मे बैठकर प्रसन्न मन से हवा करूँगी । पसीने की बूदो के सहित स्याम शरीर के दर्शन से : प्राणनाथ के अवलोकन मे दु ख के लिए समय कहाँ है ।

व्याख्या : मै जानती हूँ कि थकावट कैसे दूर की जाती है । जब आप थककर विश्राम के लिए पेड तले बैठेंगे तो मै आपका पांव धोकर प्रसन्न मन से हवा करूँगी । आपकी थकावट दूर होगी ।

श्यामसुन्दर राम से अपनी आसक्ति कहती है कि जब थकावट मे आपके शरीर की शोभा पसीने के बूँदो से और भी बढ जाती है सो उसके देखने मे ही मन लग जायगा । दु:ख के लिए अवसर कहाँ है ? भाव यह कि अनवरत मन के आप मे लगे रहने से दु ख का भान हो नही सकता । सो दिन तो इस भाँति आनन्द से कटेगा ।

सम महि तृन तरु पल्लव डासी । पाय पलोटिहि सब निसि दासी ॥
बार बार मृदु मूरति जोही । लागिहि ताति बयारि न मोही ॥३॥

अर्थ : समतल भूमि पर तृण और तरुपल्लव बिछाकर यह दासी रात भर पैर दावेगी । बार बार इस कोमल मूर्ति को देखकर मुझे गरम हवा न लगेगी ।

व्याख्या : अब रात की व्यवस्था कहती हैं कि भूमि शयन क्यो होगा ? मैं समतल भूमि देखकर उस पर तृण और पेड के कोमल पल्लव की शय्या बिछाऊँगी । मै तो दासी हूँ । चरण सेवा मेरा धर्म है । सरकार थके रहेगे । मैं रात भर चरण सेवा करूँगी । सरकार सुखद है । सेवा मे भी सुख मिलता है । सरकार के नवनील नीरद सुन्दर मूर्ति का दर्शन करती रहूँगी । मुझे गरम हवा क्यो लगेगी । घोर घाम हिम बारि बयारी : का उत्तर ।

को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा । सिंध वधुहि जिमि ससक सिआरा ॥
मै सुकुमारि नाथ बन जोगू । तुम्हहि उचित तप मो कहुँ भोगू ॥४॥

अर्थ : सरकार के साथ मुझे आँख उठाकर देखनेवाला कौन है ? सिंह की वधू को खरहा : खरगोश और सियार के देखने की सामर्थ्य कहाँ ? मै सुकुमारी हूँ और सरकार वन के योग्य है । आपको तप उचित है और मुझे भोग उचित है ।

व्याख्या : निसिचर निकर नारि नर चोरा : का उत्तर : सिंहवधू मे ही ऐसी सामर्थ्य है कि शशक सिआर उसकी ओर आँख नही उठा सकते कि पुन. जब

वह सिंह के साथ हो। सरकार सिंह हैं। राक्षसादि आपके सामने शशक सिआर हैं। उनसे मुझे कौन डर है ?

सरकार शील सनेह निधान हैं। ऐसी बातें कैसे कहते हैं कि मैं वन में तप करूँगा और तुम घर में राजभोग भोगो। व्याह में प्रतिज्ञा कराया गया है कि धर्म अर्थ और काम मे इसके साथ वरतना। तो क्या तप में मेरा साथ न होगा। यदि मैं सुकुमारी हूँ तो आप तो और भी अधिक सुकुमार हैं। यथा • व्यचरदनुवन पद्मपद्भ्या प्रियाया । पाणिस्पर्शाक्षमाभ्याम्। यदि मैं वन के योग्य नही हूँ तो आप और भी अधिक नही हैं। वनवास की कौन कहे केवल पति के प्रवास मे स्त्री को तप विहित है। सो मुझ सरकार कन्दमूल अशन को डरा रहे हैं।

दो ऐसेउ[1] वचन कठोर सुनि, जौ न हृदउ बिलगान।
तौ प्रभु विषय वियोग दुखु, सहिहहिं पाँवर प्रान ॥६७॥

अर्थ ऐसा कठोर वचन सुनकर भी यदि कलेजा न फटा तो यह नीच प्राण सरकार के विरह के दुख को भी सह लेगा।

व्याख्या हौं रहौ भवन भाग लोलुप ह्वै पति कानन कियो मुनि को साजु। तुलसीदास ऐसे विरह वचन सुनि कठिन हियो विहर्‍यौ न आजु। पिय निठुर वचन कहे कारन कवन। जगदम्बा कहती हैं हसगवनि तुम नहिं बन जोगू। यह वचन निष्ठुर है। हृदय विदारक है। आत्मा हि दारा सर्वेषा दारसग्रहवर्तिनाम्। सो मुझ आप अपने से अलग समझ रहे हैं। अत यह वचन निष्ठुर है। मुझे सुख भोगने के लिए घर छोड रहे हैं। अत हृदयविदारक हैं। इस वचन से हृदय फट जाना चाहता था। सो नही फटा। ऐसा कठिन है। इससे तो यही अनुमान होता है कि यह नीच प्राण सरकार के वियोग का विषम दुख भी सह लेगा यहाँ अत्यन्त तिरस्कृत ध्वनि है।

अस कहि सीय बिकल भइ भारी। बचन बियोग न सकी सँभारी ॥
देखि दसा रघुपति जिय जाना। हठि राखे नहिं राखिहि प्राना ॥१॥

अर्थ ऐसा कहकर सीताजी अत्यन्त विकल हो गयी। वियोग के वचन को सँभाल न सकी। दशा देखकर रामजी ने मन में समझ लिया कि हठ पूर्वक छोड जाने मे यह प्राण छोड देगी।

व्याख्या समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ से उपक्रम करके अस कहि सीय विकल भइ भारी से उपसहार करते हैं। वियोग तो दूर की बात है वियोग वचन के ही सुनने मे असमर्थ हो गयी। भारी विकल हो गयी। अर्थात् मूर्च्छित हुई। यथा तुलसीदास प्रभु विरह वचन सुनि सहि न सकी मुर्छित भइ भामिनि। गी।

---

१ यहाँ व्याघात द्वितीय अलङ्कार है।

उनकी यह दशा देखकर रामजी ने मन मे समझ लिया कि ऐसी अवस्था मे इन्हे घर रहने के लिए जोर देना हठ करना है। हठ इनका नही है। हठ मेरी ओर से हो रहा है। क्योकि घर रखने से तो यह प्राण छोड़ देगी।

कहेउ कृपालु भानुकुल नाथा। परिहरि सोचु चलहु बन साथा॥
नहि बिषाद कर अवसरु आजू। बेगि करहु बन गवन समाजू॥३॥

अर्थ : कृपाल सूर्यकुल के नाथ ने कहा कि सोच न करो। साथ मे वन चलो। आज विषाद का अवसर नही है। जल्दी वन चलने की तैयारी करो।

व्याख्या : सरकार सूर्यकुल के नाथ है। सूर्यकुल की रक्षा अपना कर्तव्य समझते हैं। सीताजी की दशा देखकर भगवती भास्वती अनुकम्पादेवी का उदय हुआ। क्योकि सरकार स्वभाव से ही कृपाल है। कहने लगे कि अब सोच न करो। साथ मे तुम भी वन चलो। आज ब्रह्मदेव सब प्रकार से मुझ पर अनुकूल हैं। अत. आज आनन्द के अवसर पर विषाद न करो। उठो! अब वन चलने की तैयारी करो।

कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई। लगे मातु पद आसिष पाई॥
बेगि प्रजा दुख मेटव आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई॥४॥

अर्थ : प्रिय वचन कहकर प्रिया को समझाकर माता को प्रणाम किया और आशीर्वाद पाया। माता बोली : जल्द आकर प्रजा का दु ख मिटाना और अपनी निष्ठुर माता को भूल न जाना।

व्याख्या सरकार ने प्रिय वचन कहकर प्रिया को समझाया। यथा :

सहि न सकिहि वन दुख समुझि रह्यौ प्रीति उर गोय।
नतरु तिहारे सगते वन नदनवन होय॥
दोऊ कुल अनुरूप यह शुभ सकल्प तुम्हार।
दम्पति सम्पति मे यथा तथा धर्म सहचार॥
बेगि चलहु वनि धन रतन विप्रन्ह देहु बुलाय।
आभूषन गुरु तिय चरन अरपित करहु सुभाय॥

कठोर वचन से जो हृदय पर चोट हुआ था उसी के मिटाने के लिए प्रिय वचन कहकर सीताजी को समझाया। तत्पश्चात् विदा होने के लिए माता के चरणो मे प्रणाम किया और माता ने आशीर्वाद दिया। यह आशीर्वाद विदाई का है।

ऐसी दशा मे भी माता को प्रजा की चिन्ता है। अतः कहती है कि तुम्हारे विना प्रजावर्ग बडा दु खी होगा। यथा : राम दरस लगि लोग सब करत नेम उपवास। परिहरिभूषन भोग सुख जिअत अवधि की आस। सो लौटने मे जल्दी करना। चौदह वर्ष वियोग का दु.ख झेलना कठिन काम है। मै निष्ठुर हूँ। भूल जाने लायक हूँ। पर माता वा माता स्मरण करके तुम भूल न जाना।

फिरिहि दसा विधि बहुरि कि मोरी । देखिहो नयन मनोहर जोरी ॥
सुदिन सुघरी तात कब होइहि । जननी जिअत बदन बिधु जोइहि ॥४॥

अर्थ हे विधाता ! क्या मेरी दशा भी फिर फिरेगी । मैं इस मनोहर जोरी को आंख से देखूँगी वह शुभ दिन और शुभ घरी बेटा ! कब आयेगी जब कि माता तुम्हारा चाँद सा मुखड़ा जीते जी फिर देखेगी ।

व्याख्या : कैसी ग्रहदशा मेरे ऊपर आयी हुई है । क्या मेरे दिन फिर लौटेंगे । यह मनोहर जोडी आँख के ओझल चौदह वर्ष के लिए हुआ चाहती है । क्या मैं उस शुभ दिन और उस शुभ घडी तक जीती रहूँगी जब कि यह जोडी वन से लौटेगी और फिर मैं तुम्हारे मुखचन्द्र का दर्शन पाऊँगी । उस दिन के सुख को याद करके माता कहती है :

दो बहुरि बच्छ कहि लालु कहि, रघुपति रघुबर तात ।
कबहि बोलाइ लगाइ हियँ, हरखि निरखिहउँ गात ॥६८॥

अर्थ . फिर कब वत्स कहकर, लाल कहकर, रघुपति, रघुवर और तात कहकर बुलाऊँगी और हृदय से लगाकर हर्षित होकर तुम्हे देखूँगी ।

व्याख्या : कौसल्याम्बा इन्ही पाँच प्यार के शब्दो से रामजी को पुकारती थी । कभी वत्स, कभी लाल, कभी रघुपति, कभी रघुवर और कभी तात करके सम्बोधन करती थी । वह कहती हैं कि चौदह वर्ष ऐसा सम्बोधन के लिए अवसर न मिलेगा । किसे ऐसा सम्बोधन करके मैं बुलाऊँगी और हृदय मे लगाकर हर्षित होकर शरीर की सुन्दरता देखूँगी । अत मेरे सुख के दिन गये । अब देखें कब वे सुख के दिन लौटते हैं । मैं आशा लगाये उसी दिन की बाट जोहती रहूँगी ।

लखि सनेह कातरि महतारी । बचनु न आव बिकल भइ भारी ॥
राम प्रबोधु कीन्ह बिधि नाना । समउ सनेहु न जाइ बखाना ॥१॥

अर्थ . रामजी ने माता को स्नेह से ऐसा विह्वल देखकर कि मुख से वचन नही निकल रहा है और अत्यन्त विकल है नाना प्रकार से समझाया । उस समय का स्नेह वर्णन करते नही बनता ।

व्याख्या : कौसल्याजी बडी धैर्यवाली हैं । परन्तु माँ हैं । पुत्रवधू के विरह से अवलम्बनहीन सी होकर अत्यन्त विकल हो गयी हैं । सनेह कातरि : से मन की दशा कहा । बचनु न आव : से वाणी की दशा कहा । बिकल भई भारी : से तन की दशा कहा । रामजी ने देखा कि माँ अत्यन्त विकल है । साथ ले जाना धर्म नही है । महाराज का त्याग अनुचित है । अत. अनेक प्रकार से समझाया । यथा .

कवित्त

देखिबे में दुख जो अपार दिनरात मात, किये ते विचार तामे कछूहू न सार है ।
जाते होत मिलन विछोह पुनि ताते होत, योग औ वियोग को ही रूप ससार है ॥

याते सुख दुख को समान मानि धीर धरो, वर्ष दस चार बीतने मे नहि वार है।
तेरे ही असीस लौटि वन ते नवैहौं सीस, ईश की कृपा से पामे ढरत सुढार हैं॥

कवि कहते हैं कि उस समय जैसा प्रेम उमडा उसका बखान नही किया जा सकता।

तब जानकी सासु पग लागी। सुनिअ माय मै परम अभागी॥
सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा। मोर मनोरथु सफल न कीन्हा॥२॥

अर्थ तब जानकी सास के पाँव पडी और कहने लगी कि माँ सुनो। परम अभागिन तो मैं हूँ। मेरा सेवा करने का समय था। सो दैव ने वन दे दिया। मेरा मनोरथ पूरा नही किया।

व्याख्या विदा होने के लिए पहिले रामजी पाँव पडे। यथा लगे मातुपद आसिस पाई। इसके बाद जानकोजी के प्रणाम करने की बारी थी। पर माता ऐसी विकल हो गयी कि रामजी को बहुत भाँति समझाना पडा। जब कुछ शान्ति हुई तब जानकी पाँव पडी और बोली कि माँ परम अभागिनी तो मैं हूँ। आप अपने को अभागिनी क्यो मानती हैं। आपने तो अपना कर्तव्य भलीभाँति निबाहा। मुझे पालपोसकर बडी किया। अब मैं इतनी बडी हुई कि आपकी सेवा कर सकूँ। सो दैव दुर्विपाक से मै सेवा से वञ्चित हो रहा हूँ। मेरा इतना पुण्य नही कि आपकी सेवा कर सकूँ। मेरा मनोरथ मेरे मन मे ही रह गया। अत अभाग मेरा है। सेवा का छीना जाना बडा भारी अभाग्य है। सो मुझसे आपकी सेवा छिन गयी। आपको छोडकर वन जाना पडा।

तजब छोभु जनि छाँडिअ छोहू। करमु कठिन कछु दोसु न मोहू॥
सुनि सिय बचन सासु अकुलानी। दसा कवनि बिधि कहौ बखानी॥३॥

अर्थ आप दुख को छोड देना पर छोह न छोडना। कर्म बलवान् है। मेरा भी कोई दोष नही है। सीताजी का वचन सुनकर सास व्याकुल हो गयी। उस दशा का वर्णन कैसे करें।

व्याख्या मन की अस्थिरता को क्षोभ कहते हैं। सीताजी कहती हैं कि मेरे जाने से जो आपको क्षोभ हो रहा है सिय बन बसब तात केहि भाँती। सो क्षोभ को आप छोड दीजियेगा। यह क्षोभ आपको कष्ट देगा। पर छोह बनाये रखियेगा। क्योंकि आपके छोह से ही हमारा कल्याण है। मै जो इस समय आपको छोड रही हूँ सो दैववश होकर छोड रही हूँ। इच्छा पूर्वक नही छोड रही हूँ। ऐसा ही कर्म फलोन्मुख हुआ है जिससे आपको छोडना पड रहा है।

सीताजी के प्रेम और विवेकमय वचन सुनकर इनके गुणो को स्मरण करके फिर चित्त अशान्त हो उठा। व्याकुल हो गयी। उनकी दशा कहने की कोई विधि ही नही बैठती। तजब छोभ जनि छाडअ छोहू। इस वाक्य मे जो भाव भरे हुए है

उन्होने कौसल्याजी के हृदय मे सीताजी की कीमत और बढा दी। अत रामजी के समझाने से जो विकलता कुछ कम हुई थी वह और बढ गयी।

वारहिं बार लाइ उर लीन्ही। धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही ॥
अचल होउ अहिवातु तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जल धारा ॥४॥

अर्थ : बार बार कौसल्याजी ने सीताजी को हृदय से लगाया। धैर्य धारण करके शिक्षा दी और आशीर्वाद दिया कि जब तक गङ्गा और यमुना मे जल धारा है तब तक तुम्हारा सोहाग बना रहे।

व्याख्या : सीता जी को हृदय से लगा लिया। एक बार के लगाने से सन्तोप नही होता। अत: बार बार हृदय से लगाती है। फिर धैर्य धारण करके वन मे किस प्रकार से रहना चाहिए इस बात की शिक्षा दी और आशीर्वाद दिया।

स्त्रियो के लिए सोहाग से बढकर और कुछ नही है। उसके अचल होने का आशीर्वाद सास दे रही है। पर संसार मे अचल कुछ भी नही सभी ओर से चलाचली है। यहाँ नित्यता प्रवाह रूपेण ही सम्भव है। अत. गङ्गा और यमुना की उपमा दी। अन्तिम कलियुग मे गङ्गा का लोप कहा जाता है। अत यमुना को भी साथ मे कहा। अथवा सोहाग के बने रहने मे दोनो का बना रहना आवश्यक है। गङ्गा यमुना दोनो मिलकर बहनेवाली नदियो की उपमा दी।

दो सीतहि सासु असीस सिख, दीन्हि अनेक प्रकार।
चली नाइ पद पदुम सिरु, अति हित वारहिं बार ॥६९॥

अर्थ : सीताजी को सास ने अनेक प्रकार से आशीर्वाद दिया और शिक्षा दी। सीताजी अत्यन्त प्रेम से बार बार चरणो मे सिर झुकाकर चली।

व्याख्या : पहिले कहा था : मैं सिख देउँ जानकिहि सोई। सो इस समय वनवास के विषय मे शिक्षा दी और सौभाग्यवती भव, पुत्रवती भव आदि अनेक प्रकार से आशीर्वाद दिया। अब सीताजी विदा होती हैं। अत्यन्त प्रेम से बार बार चरण कमलो मे प्रणाम करती हैं। सास ने अत्यन्त प्रेम से बार बार हृदय से लगाया। वधू फिर भी अत्यन्त प्रेम से बार बार चरण कमलो मे नत होती है।

१२. राम लक्ष्मण संवाद

समाचार जब लछिमन पाये। व्याकुल बिलख बदन उठि धाये ॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा ॥१॥

अर्थ : जब लक्ष्मणजी ने समाचार पाया व्याकुल होकर म्लान मुख किये हुए उठकर दौड पडे। उनके शरीर मे कम्प था। आँखो मे आँसू भरा था। प्रेमाधिक्य से अधीर होकर चरण पकड लिया।

व्याख्या : समाचार ही ऐसा था कि जो सुनता था विकल हो जाता था।

यथा : जो जहँ सुनै धुनै सिर सोई। बड विषाद नहिं धीरज होई। कौसल्याजी के लिए कहा गया : सहमि सूखि सुनि सीतल बानी। जिमि जवास परे पावस पानी। कहि न जाइ कछु हृदय विषादू। मनहु मृगी सुनि केहरि नादू। नयन सजल तन थर थर काँपी। माजहि खाइ मीन जनु मापी। सीताजी 'समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ। यहाँ तो 'बारहिं ते निजहित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी। अतः लक्ष्मणजी को समाचार सुनते ही ऐसी व्याकुलता बढी कि विषाद की रेखा मुख पर स्पष्ट दिखलायी पड़ी और दौड पडे। घर मे न किसी से कुछ कहा न सुना। मानो किसी से कोई सम्बन्ध ही नही है। अति उत्सुकता साथ जाने की है। कौसल्याजी के महल के बाहर आते ही आते रामजी के चरणो को व्याकुल होकर जा पकडा। प्रेमाधिक्य के कारण धैर्य छूटा जा रहा है। शरीर मे काँप है। पुलक है। आँखो मे आँसू भरा है।

कहि न सकत कछु चितवत ठाढे। मीनु दीनु जनु जल तें काढे ॥
सोचु हृदय बिधि का होनिहारा। सबु सुखु सुकृतु सिरान हमारा ॥२॥

अर्थ : कुछ भी बोल न सके। खडे खडे देखने लगे। जैसे जल से निकाली हुई मछली दीन हो जाय। मनमे सोच रहे है कि हे विधाता! क्या होनेवाला है। मेरा तो सब सुख और पुण्य समाप्त हो गया।

व्याख्या : कौसल्याजी की भाँति इनके मुख से भी बोली नही निकल रही है। इनके जाकर चरण पकड़ लेने से सरकार खडे हो गये। अब लक्ष्मणजी को जो कुछ कहना है उसके लिए निवेदन करने का अवसर है। पर इनकी दशा जल से बाहर निकाली हुई मछली की सी हो रही है। अनिमेष नयन से खडे खडे देख रहे हैं। मछली को पलक होती नही। बोल सकती नही। जल के बिना दीन हो जाती है और उस दीनता के व्यक्त करने का भी कोई साधन नही। होनहार क्या है। कुछ सूझ नही पडता। बस इतनी बात समझ मे आ रही है कि मेरा सब पुण्य समाप्त हो गया। सुख समाप्त होने पर भी यदि पुण्य शेष रहे तो काल पाकर फिर सुख हो सकता है और यदि पुण्य भी समाप्त हो जाय तो फिर सुख की आशा ही नहीं। यथा : नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधु बदन निहारे।

मो कहुँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा ॥
राम बिलोकि बंधु कर जोरें। देह गेह सब सन तृनु तोरें ॥३॥

अर्थ : मुझे रघुनाथजी क्या कहेगे? घर मे रक्खेंगे कि साथ लेंगे। रामजी ने भाई को हाथ जोडे हुए देह घर सबकी उपेक्षा तृण के समान किये हुए देखा।

व्याख्या : रघुकुल के नाथ हैं। जो इनकी आज्ञा होगी सो हटाया नहीं जा सकता। करना ही पडेगा। सीताजी को साथ ले लिया। देखें मेरे लिए क्या आज्ञा होती है। यद्यपि वे अर्धाङ्गिनी हैं। पर मैंने भी बचपन से साथ नहीं छोडा है। परिस्थिति ऐसी है कि मुझे घर रहने के लिए छोड़ भी सकते हैं और सेवा के लिए

साथ भी ले सकते हैं। सीताजी के साथ होने से मेरी बडी आवश्यकता है। अत' लक्ष्मणजी संशय मे पडे हुए है।

इधर रामजी ने लक्ष्मण को देखा कि हाथ जोडे खडे हैं। कुछ कहते नही। इतना कहने से सब कुछ कह दिया। लक्ष्मण के देखने से मालूम होता है कि घर की उपेक्षा तृण की भाँति किये हुए तो ये आ ही रहे हैं देह की भी इन्हे अपेक्षा नही है। स्वय चक्रवर्तीजी की भाँति बिना जल के मछली की सी दशा हो रही है।

बोले बचनु राम नयनागर। सील सनेह सरल सुख सागर॥
तात प्रेम बस जनि कदराहू। समुझि हृदय परिनाम उछाहू॥४॥

अर्थ : नीति मे निपुण शील स्नेह सरलता और सुख के सागर कहने लगे कि हे तात! प्रेम के वश होकर धैर्य न छोड़ो। हृदय मे समझो कि इसका परिणाम उत्साहमय है।

व्याख्या · सरकार नीति मे निपुण हैं। ऐसे समय मे लक्ष्मणजी को अयोध्या से हटाना नही चाहते। शील और स्नेह के कारण घर रहने की आज्ञा देते भी नही बनता। सरल हैं। जो बात मनमे है वही कहेंगे और सुख के सागर है। उनके मनमे कोई विकार नही है। इस समय भी सुखी हैं। सागर चार हैं। इसलिए शील स्नेह सरलता और सुख चारो का समुद्र कहा।

सरकार ने कहा कि मनुष्य को सात्त्विक सुख के लिए यत्नशील होना चाहिए। जो आरम्भ मे विष की भाँति प्रतीत होता है और परिणाम मे अमृत सा मधुर है वही सात्त्विक सुख है। मेरे वन जाने का परिणाम बडा उत्साहमय होगा। बहुत बडे यश की प्राप्ति होगी। अत प्रेम के वश धैर्य त्याग न करो। धैर्य छोडने की कोई बात नही है।

दो. मातु पिता गुरु स्वामि सिख, सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनमकर, नतरु जनमु जग जायँ॥७०॥

अर्थ : जो स्वभाव से ही माता पिता गुरु और स्वामी की शिक्षा शिरोधार्य करते हैं उनका ही जन्म सुफल है। नही तो जगत् मे जन्म ही व्यर्थ है।

व्याख्या : जो शिक्षा भगवती को दी थी वही लक्ष्मणजी को दे रहे हैं। यथा : सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख जो न करै हित मानि। सो पछिताइ अघाइ उर अवस होइ हित हानि। भेद इतना ही है कि सीताजी का साथ चलना धर्मत प्राप्त है लक्ष्मणजी का वैसा नही है। सरकार अपने लिए कहते हैं कि मैं तो अपना जन्म सफल करने जाता हूँ। अत यहाँ दुःख की कोई चर्चा नही है। तुम भी माता पिता की सेवा करके जन्म सफल करो। तुम्हारा धर्म माता पिता की सेवा है। मेरे साथ चलना तुम्हारा धर्म नही है। यदि माता पिता की आज्ञा न माने तो मेरा जन्म होना ही निष्फल हो जायगा। तुम्हे आज्ञा है नही। तुम माता पिता की सेवा छोडकर जन्म को व्यर्थ क्यो करते हो।

अस जिय जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई ॥
भवन भरतु रिपुसूदनु नाही। राउ वृद्ध मम दुख मन माही ॥१॥

अर्थ हे भाई! ऐसा मन मे समझकर मेरी शिक्षा सुनो। माता पिता के चरणो की सेवा करो। भरत शत्रुघ्न नही हैं। महाराज वृद्ध हुए। तिस पर उनके मन मे मेरा दु ख है।

व्याख्या तुम भाई हो। स्त्री की दूसरी बात है। उसका धर्म मेरी सेवा है। उसने मेरी शिक्षा यदि नही सुनी चलने के लिए हठ किया तो उसके धर्मानुकूल था। तुम्हारा धर्म तो माता पिता की सेवा है। उनके सामने भाई की क्या गिनती है। तुम उनकी सेवा करो। यदि भरत शत्रुघ्न घर होते तो भी एक बात थी कि वे माता पिता की सेवा कर लेंगे और राज्य भी सँभाल लेंगे। सो वे भी घर नही है। यदि कहो कि महाराज तो हुई हैं उन्हे सेवको का क्या घाटा है ? तो यह बात भी नही। महाराज वृद्ध हुए। अब उनका किया कुछ हो नही सकता। तिस पर मेरे लिए वे दु खी है। उनसे कुछ करने धरने की आशा नही की जा सकती। इस दु ख की अवस्था मे सेवको से उनको सान्त्वना नही हो सकती। तुम्हारे पास रहने से ही उन्हे ढाँढस बँध सकता है।

मै वन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा। होइ सबहि विधि अवध अनाथा ॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहुँ परइ दुसह दुख भारू ॥२॥

अर्थ यदि मैं तुम्हे साथ लेकर वन चला जाऊँ तो सब प्रकार से अवध अनाथ हो जायगा। गुरु पिता माता और कुटुम्ब सभी पर न सहने योग्य दु ख का बोझा आ पडेगा।

व्याख्या सीताजी के साथ ल जाने से अवध अनाथ न होगा। इस समय मेरे ही जाने से अवध के लोग अपने को अनाथ समझेंगे। यदि तुम साथ चले तब तो अवधनाथ के रहते भी प्रजा अपने का सब विधि से अनाथ समझेगी। तुम्हारे रहने से सबको ढाढस बँधा रहेगा कि कम से कम लक्ष्मण तो हैं। सब सँभालेंगे। गुरु पिता और माता राज्यरक्षक और प्रजा तथा परिवार रक्ष्य हैं। सो सब पर नही सहने योग्य दु ख का बोझा आ पडेगा। मै तुम्हे दु ख का बोझा सँभालने के लिए यहाँ छोडता हूँ। जिसम इन लोगो को जिनके ऊपर दु ख का आना किसी प्रकार इष्ट नही है असह्य दु ख न आ पडे।

रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड दोषू ॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी ॥३॥

अर्थ तुम घर रहो। सबका परितोष करो। नही तो भाई तुम्ह बडा दोष लगेगा। जिसके राज्य मे प्रिय प्रजा दु खी हाती है वह राजा निश्चय नरक का पात्र हो जाता है।

व्याख्या : इसलिए तुम्हारा साथ चलना किसी प्रकार से उचित नही है। तुम घर रहो और सबका परितोप करो। यदि तुमने ऐसा न किया तो बड़ा भारी दोप होगा। सबके दुःख के कम करने का सामर्थ्य रहते हुए भी जो दूर नही करता केवल मोह के वश यथेच्छाचरण करता है वह निश्चय दोपी है। हे भाई! तुम व्यर्थ दोषी क्यों बनते हो? दूसरी सबसे बड़ी बात यह है कि जो नरक से पिता की रक्षा करे वही पुत्र है। जो ऐसा नही करता वह पुत्र कैसा? अरक्षित होकर प्रजा के दुःखी होने का पाप महाराज पर पड़ेगा। क्योंकि राजा वे ही है। उनका परलोक यदि हम लोगो के रहते बिगड़ा तो हम लोगों का पुत्र होना ही व्यर्थ हो जायगा। रञ्जनात् राजा। राजा शब्द का अर्थ ही यह है कि प्रजा को सुख देने-वाला। सो हम लोगो के रहते महाराज की गणना शोचनीयों मे नही होने पावे। यथा : सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना।

रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लखनु भये ब्याकुल भारी॥
सिअरे बचन सूखि गये कैसें। परसतु तुहिन तामरसु जैसे॥४॥

अर्थ : ऐसी नीति विचार करके तुम घर पर रह जाओ। सुनते ही लक्ष्मणजी भारी व्याकुल हुए। शीतल वाणी से ऐसे सूख गये जैसे पाला के छू जाने से कमल सूख जाता है।

व्याख्या : हे भाई! नीति का विरोध नही करना चाहिए। नीति विरोध सोहाय न मोही। अतः न चाहते हुए भी नीति का विचार करके घर रह जाओ। सुनते ही लक्ष्मणजी अत्यन्त व्याकुल हो उठे। पहिले ही : व्याकुल बिलखि बदन उठि धाये। अब तो भारी व्याकुल हुए। सरकार के शीतल वचन सुनकर वे तो सूख गये कि वही बात तो हुई जिसे मैं डरता था। श्रीगोस्वामीजी उपमा देते हैं कि जैसे शीतल पाला के स्पर्श से कमल सूख जाता है। भाव यह कि लक्ष्मणजी भी चक्रवर्तीजी की भाँति विवर्ण हो गये।

दो. उतरु न आवत प्रेम बस, गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मइँ स्वामि तुम्ह, तजहु त काह बसाइ॥७१॥

अर्थ : उत्तर रहते हुए भी प्रेम के वश हो जाने से देते नही बनता। आकुल होकर चरण पकड़ लिया : कहने लगे कि : नाथ! मै दास हूँ। आप स्वामी हैं। यदि त्याग दें तो मेरा वश क्या है।

व्याख्या : जितनी बातें सरकार ने कही लक्ष्मणजी के पास सबके उत्तर हैं। पर लक्ष्मणजी प्रेम के पराधीन हो गये हैं। देना चाहने पर भी देने में असमर्थ हैं। पहिले : गहे चरन अति प्रेम अधीरा। अब : गहे चरन अकुलाइ। विरह निश्चित मालूम होता है। अतः व्याकुल हैं। चुप रह जाने से स्वीकृति द्योतित होती है। अतः दो शब्दो में जो कुछ कहना था सब कह दिया। आप स्वामी है। मै दास हूँ। यदि त्याग करें तो क्या वस है। भाव यह कि आप बारबार भाई कहते हैं और

भाई को जैसी शिक्षा देनी चाहिए वैसी शिक्षा देते हैं। पर मै तो दास हूँ। बारहिं ते निज हित पति जानी। लछिमन रामचरन रति मानी। आप स्वामी है। स्वामी को दास के परित्याग का अधिकार है। यदि आप त्याग करते है तो मेरा कौन जोर है। ये सब कही हुई बातें मेरे चलने मे बाधक नही हैं। आपकी आज्ञा बाधक है।

जिस भाँति ज्ञान और उपासना : भक्ति की समस्या पर उत्तरकाण्ड मे विचार है उसी भाँति कर्म और भक्ति की समस्या पर यहाँ प्रकाश डाला गया है।

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं ॥
नर बर धीर धरम धुरधारी। निगम नीति कहुँ ते अधिकारी ॥१॥

अर्थ : गोसाईं ने तो मुझे अच्छी शिक्षा दी। पर अपनी कायरता से मुझे अगम जान पड़ती है। जो धीर धर्म की धुरा के धारण करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष हैं वे ही वैदिक नीति के अधिकारी हैं।

व्याख्या : अब लक्ष्मणजी प्रत्येक बातो के विषय मे कुछ कहेगे। क्योकि वे सब उन्हे स्वीकार नही हैं। लक्ष्मणजी कहते हैं कि सरकार की शिक्षा बड़ी पवित्र बडे उदार भाव की तथा सुगम है। पर मैं उसका अधिकारी नही। मुझसे ऐसा हो नही सकता। परिणाम मे उछाह होगा। इस भरोसे मुझसे यह दुःख नही सहा जायगा। मुझमे साहस की बडी कमी है। मै कायर हूँ। यह विनय : तात प्रेम बस जनि कदराहू के उत्तर में है।

इसके बाद : मातु गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहि सुभाय इत्यादि के उत्तर में कहते हैं कि सरकार ने वैदिकी नीति का वर्णन किया जिससे जन्म सफल होता है। मै उसका भी अधिकारी नही। धीर पुरुष जो धर्म की धुरा के धारण मे समर्थ हैं वे ही वैदिकी नीति के अधिकारी हैं।

मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला। मदरु मेरु कि लेहिं मराला ॥
गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू ॥२॥

अर्थ : मै तो बच्चा हूँ। सरकार के प्रेम से पला हूँ। क्या हंस मन्दर मेरु उठा सकता है। मैं गुरु पिता माता किसी को नही जानता। मै स्वभाव कहता हूँ नाथ विश्वास करें।

व्याख्या : सरकार जानते है कि मै भी शिशु ही हूँ। ससार के प्रपञ्च से अपरिचित हूँ। सरकार ने कहा भी है : सूध दूध मुख करिय न कोहू। कमल के पत्ते पर बैठनेवाले हंस मे इतना सामर्थ्य कहाँ कि मन्दर मेरु को उठा सके। मुझे तो सरकार ने स्नेह से पाला है। कभी कोई बोझा मेरे ऊपर आने ही नही दिया। मै मेरु मन्दर सदृश गुरु भारवाले निगम धर्म को कैसे उठा सकता हूँ? यह मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। मै अवध को सनाथ नही कर सकता।

अब गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहँ परइ दुसह दुख भारू आदि का उत्तर देते हुए लक्ष्मणजी कहते हैं कि मै गुरु पिता माता किसी को नही जानता। मैं अपने हृदय का भाव कहता हूँ। सरकार विश्वास करें। भाव यह कि सबकी ममता का तागा इकट्ठा करके लक्ष्मणजी डोरी बरकर सरकार के चरणो मे दृढता के साथ बाँध चुके है। अत कहते हैं

जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबधु उर अतरजामी॥३॥

अर्थ जगत् मे जितने नेह और नाते है और स्वय वेद ने जिस प्रीति और प्रतीति का गान किया है। हे स्वामी दीनबन्धु, उर प्रेरक ! मेरे तो सब कुछ आप ही है।

व्याख्या त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव। त्वमेव विद्या द्रविण त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव। यह भाव मुझे स्वभावसिद्ध है। अत मेरे सर्वस्व आप ही हैं। मै बिना आपके दीन हूँ। आप दीनबन्धु हैं। अपना साथ न छोडाइये। आप स्वामी हैं। नाथ हैं। मुझे अनाथ न कीजिये। आप अन्तर्यामी है। बिना आपकी प्रेरणा मेरी बुद्धि ऐसी हुई कैसे ?

धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥
मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिधु परिहरिअ कि सोई॥४॥

अर्थ धर्म नीति उसे उपदेश करना चाहिए। जिसे कीर्ति ऐश्वर्य और सद्गति प्रिय हो। मनसा वाचा कर्मणा जो चरण मे रत हो हे कृपासिन्धु ! क्या उसे छोडा जाता है ?

व्याख्या रहहु करहु सबकर परितोषू। नतरु तात होइहि बड दोषू इत्यादि का उत्तर देते हुए कहते हैं कि मुझे न कीर्ति चाहिए न ऐश्वर्य चाहिए और न शुभगति चाहिए। जिन्हे इन सब वस्तुओ की अपेक्षा हो उन्हे धर्म नीति का उपदेश उचित है। यहाँ तो सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न रामपद पकज भाऊ। जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहि राम प्रेम परधानू सिद्धान्त है। मै तो मनसा वाचा कर्मणा सरकार का दास हूँ। मेरे छोडने का तो प्रश्न ही नही उठाना चाहिए।

दो० करुनासिधु सुबधु के, सुनि मृदु बचन बिनीत।
समुझाए उर लाइ प्रभु, जानि सनेह सभीत॥७२॥

अर्थ . करुणासिन्धु रामजी ने सुबन्धु के कोमल और विनीत वचन सुनकर स्नेह से डरा हुआ जानकर हृदय मे लगाकर समझाया।

व्याख्या रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लखनु भये ब्याकुल भारी। लक्ष्मणजी की व्याकुलता देखकर करुणासिन्धु प्रभु ने जाना कि यह सुबन्धु है।

स्नेह से सभीत हो गया। अतः व्याकुलता मिटाने के लिए कलेजे से लगा लिया और समझाया। यथा :

सवैया : तुम्हरोइ भरोस हमेस हमें तुमही मम जीवन को रखवारे।
तजि देह सकौं न सकौ तजि तोहि तुही विजयानँद प्रान पियारे॥
मन मे न धरो कछु हानि गलानि करैं हम सोइ जोई निरधारे।
यह प्रेम को नेम न टारे टरै हम भक्तन के अरु भक्त हमारे॥
पांरा परोरुन को प्रिय ज्यौ फनि को मनिज्यौ करिको कर जैसे।
तू प्रिय मोहि तथा विजयानंद आनत क्यों उर ख्याल अनैसे॥
देखि दुखी परिवार कह्यो सो यथा रुचि तात करौ तुम तैसे।
वाम तजौ धन धाम तजौ वरु प्रान तजौ मैं तजौ तोहि कैसे॥

माँगहुँ बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥
मुदित भये सुनि रघुवर बानी। भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी॥१॥

अर्थ : हे भाई ! माताजी से विदा माँगो। जल्दी आओ और वन चलो। रामजी की वाणी सुनकर प्रसन्न हो गये। बड़ा भारी लाभ हुआ और बड़ी भारी हानि दूर हुई।

व्याख्या : रामजी के पास : मन क्रम वचन चरन रति होई। कृपा सिंधु परिहरिअ कि सोई का उत्तर नहीं था। अतः कहा कि मेरी ओर से अब रोक नहीं है। यदि माता आज्ञा दे दे। माता की आज्ञा सर्वोपरि है। वेद ने पहिले 'मातृदेवो भव कहा। पितृदेवो भव पीछे कहा। यति पिता से भी वन्द्य है पर उसे भी माता की वन्दना का विधान है। पर सुमित्रा माता आज्ञा दे देगी। तुम जाओ उनसे आज्ञा माँगो और वन चलने के लिए जल्दी करो। सरकार को वन जाने की बड़ी जल्दी है। माता ने कहा है होत प्रातु मुनि वेष धरि जौ न राम बन जाहिं इत्यादि। अतः सीताजी से भी कहा . बेगि करहु बन गवन समाजू।

वन गमन का समाचार सुनकर व्याकुल हो गये थे। सो सरकार की वाणी सुनकर प्रसन्न हो गये। क्योंकि बड़ा भारी लाभ हुआ और बड़ी भारी हानि गयी। सरकार की सेवा : भक्ति ही लाभ की पराकाष्ठा है और सेवा न करना ही बड़ी भारी हानि है। यथा : लाभ कि कछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना। हानि कि कछु एहि सम जग भाई। भजिअ न रामहिं नर तनु पाई। अतः लक्ष्मण जी प्रसन्न हो उठे।

हरषित हृदय मातु पहिं आए। मनहुँ अन्ध फिरि लोचन पाए॥
जाइ जननि पग नायेउ माथा। मनु रघुनंदनु जानकि साथा॥२॥

अर्थ : प्रसन्न मन से माता के पास आये। मानो अन्धे को फिर से आँख मिल गयी। जाकर माता के चरणों मे सिर नवाया। परन्तु मन तो रामजानकी के साथ था।

व्याख्या जन्मान्ध को अन्धेपन का दुःख नही होता जन्मान्ध को यदि आँख मिल जाय तो वह बडी विपत्ति मे पडता है। इतना बडा ससार उसके सामने आ जाता है। उसके समझ मे नही आता कि यह क्या है ? कई महीने की शिक्षा के बाद उसे बन्द दरवाजा और खुले दरवाजा का भेद मालूम होता है। रग पहिचानने मे महीनो लग जाते हैं। उसे आँख मिलने से आनन्द नही होता। आनन्द तो उसको होता है जो बीच मे अन्धा हो जाता है और फिर आँख हो जाती है। लक्ष्मणजी को राम जानकी दोनो आँखो की भाँति थे। उनके विरह मे अन्धे से हो गये थे। सूझ नही पडता था कि क्या होनेवाला है। जब सरकार ने साथ वन चलने को कहा तो मानो गयी हुई आँखें फिर मिल गयी। ऐसी प्रसन्नता हुई। उसी खुशी से माँ के पास आये।

जाकर माँ को प्रणाम किया। पर मन उडा हुआ था। वह तो राम जानकी के साथ था। मन दूसरी जगह है। प्रणाम दूसरी जगह हो रहा है। रसम की तामीली मात्र हो रही है।

पूछे मातु मलिन मनु देखी। लषन कही सब कथा बिसेखी ॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहु ओरा ॥३॥

अर्थ मलिन मन देखकर माता ने पूछा। तब लक्ष्मणजी ने सब विशेष कथा कह सुनायी। कठोर वचन सुनकर। माँ सहम गयी। जैसे चारो ओर वन मे आग लगी हुई देखकर मृगी घबडा जाय।

व्याख्या चित्त के मल से ही मन मलिन होता है ऐसी बात नही है। चित्त के विक्षेप से भी मन मलिन होता है। जैसे चञ्चल जल प्रतिबिम्ब के स्पष्ट ग्रहण मे असमर्थ होता है। यद्यपि लक्ष्मणजी प्रसन्न थे। पर माँ है उसने आभ्यन्तर चञ्चलता को देखा। जिसका कारण सरकार का वन जाना था। तब माता ने पूछा कि क्या बात है ? रामजी के अभिषेक की बात तो माँ जानती ही थी। रात म कैकेयी के वरदान माँगनेवाली ही कथा विशेष थी। उसे लक्ष्मण ने कह सुनाया।

उस कठोर वचन को सुनकर एक बार तो माता सुमित्रा की वही दशा हो गयी जो महाराज की हुई थी। यथा गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जिमि सचान बन झपटेउ लावा। माता सहम गयी। कुछ कहते सुनते न बना। उसे चारो ओर आग ही आग दिखायी पडी। १ पति वियोग २ पुत्र वियोग ३ राम सीता वियोग और ४ राज्य नाश। उसकी वही दशा हुई जो चारो ओर वन मे आग देखकर मृगी की हो जाती है। बिधि कैकयी किरातनि कीन्ही। जिन दव दुसह दसहु दिसि दीन्ही।

लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहि सनेह बस करब अकाजू ॥
मागत बिदा सभय सकुचाही। जाइ सग बिधि कहिहि कि नाही ॥४॥

अर्थ लक्ष्मणजी ने लखा कि आज अनर्थ हुआ। यह प्रेम के वश होकर काम

बिगाडेगी। विदा माँगने मे भय के साथ सङ्कोच होता था कि हे विधाता ! साथ जाने को कहेगी या नही।

व्याख्या : लक्ष्मणजी को साथ जाना है। इसलिए विदा माँगने आये हैं। पर माता की अवस्था देखकर विदा माँगने मे सङ्कोच हो रहा है। कैसे विदा माँगें ? इसकी दशा तो बहुत खराब हो गयी। विदा माँगने मे डर भी लगता है कि कहीं नही न कह बैठें। फिर रामजी साथ न ले जायँगे। विश्वामित्र यज्ञ रक्षा मे जब मै सरकार के साथ गया तब इसने नही रोका था। आज की बात कुछ दूसरी दिखायी पडती है। यह प्रेम के वश मुझे रोकना चाहती है और इसने यदि रोका तो अनर्थ हो गया। मेरा तो सब सुख सुकृत ही समाप्त हो जायगा।

दो. समुझि सुमित्रा राम सिय, रूपु सुसीलु सुभाउ।
नृप सनेह लखि धुनेउ सिरु, पापिनि दीन्हि कुदाउ ॥७३॥

अर्थ सुमित्राजी ने राम जानकी के रूप शील और स्वभाव को स्मरण करके और चक्रवर्तीजी के प्रेम को लख करके सिर पीटने लगी कि पापिनी ने भारी दगा दिया।

व्याख्या : सुमित्राजी ने राम जानकी के वनवास को सुनकर उनके रूप शील और स्वभाव का स्मरण किया कि ऐसे बेटे का वन भेजना क्या सामान्य बात है। फिर चक्रवर्तीजी के प्रेम पर दृष्टि डाला तो यही मालूम हुआ कि महाराज तो प्राण ही छोड देंगे। अत· अति व्याकुलता मे सिर पीटने लगी। बोल उठी कि कैकेयी पापिनी है। इसके हृदय मे बडा कपट था और सदा उसे छिपाये रही। मुँह से . भरत न मोहि प्रिय राम समाना कहती थी। सदा सबसे प्रेम से मिलती थी। *यथा : कबहुँ न कियेउ सवति आरेसू। प्रीति प्रतीति जान सब देसू।* इसीसे महाराज ने धोखा खाया। यथा : सिर धुनि लीन्ह उसास असि मारेसि मोहि कुठायँ।

धीरजु धरेउ कुअवसरु जानी। सहज सुहृद बोली मृदुबानी ॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही ॥१॥

अर्थ : कुअवसर जानकर धैर्य धारण किया। सुमित्राजी स्वभाव से ही सुहृद थी। अत मीठे वचन कहे। हे तात ! तुम्हारी तो माता जानकी है और सब भाँति स्नेह करनेवाले रामजी पिता हैं।

व्याख्या : आपत काल परिखिये चारी। धीरज धर्म मित्र अरु नारी। सो सुमित्राजी ने धैर्य धारण किया। सच्ची भलाई लक्ष्मणजी की देखी। लडका रामजी की सेवा से वञ्चित हो जायगा ऐसा समझकर मीठे शब्दो मे बोली। स्वभाव से सुहृद् थी। अत रामजी के सम्मुख होते देखकर सहायक हुई जरउ सो सपति सदन सुख सुहृद् मातु पितु भाइ। सनमुख होत जो राम पद करइ न सहस सहाइ।

लक्ष्मणजी विदा माँगने से सभीत और सङ्कुचित हो रहे हैं। इस बात को लख लिया। अत उनके बिना कुछ कहे ही कहती हैं कि तुम्हारी माता तो जानकी

और पिता रामजी हैं। तुमने सदा हो ऐसी भावना की है और वे भी तुम्हे प्राण समान प्यारा मानते हैं। यथा : पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहिं प्रान पियारे। तुम मुझसे आज्ञा माँगने क्यों आये ? उन्ही से आज्ञा माँग लेना था।

अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवसु जहँ भानु प्रकासू॥
जौ पै सीय राम वन जाही। अवध तुम्हार काजु कछु नाही॥२॥

अर्थ : जहाँ राम रहे वही अयोध्या है। जहाँ सूर्य का प्रकाश हो वहीं दिन है। यदि राम जानकी वन जाते हैं तो अयोध्या में तुम्हारा कोई काम नही है।

व्याख्या : कहती है कि जिस भाँति राम जानकी पिता माता हैं उसी प्रकार जहाँ वे रहे वही अयोध्या है। यदि वे वन मे रहे तो वन ही अयोध्या है। बिना राम के अयोध्या कैसी। यथा : लागति अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अँधियारी। उपमा देती हैं कि जहाँ सूर्य का प्रकाश हो वही दिन है। प्रकाश तो चन्द्र से भी होता है। अग्नि से भी होता है। पर दिन नही हो जाता। यथा : राका ससि षोड़श उवहिं तारागन समुदाइ। सकल गिरिन्ह दव लाइये बिनु रवि रात न जाइ। दिन तो सूर्य के प्रकाश से ही होता है। भाव यह कि रामजी के चले जाने से अवध का आनन्द चला जायगा और उनके बसने से जङ्गल मे मङ्गल होगा। यथा : राम बास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा इत्यादि।

यदि सीता राम वन जाते हैं तो तुम यहाँ रहकर क्या करोगे। अवध उजाड़ हो जायगा। तुम्हारे बसाये नही बसेगा। माँ जानती हैं कि बिना राम जानकी के यह जी नही सकता। लक्ष्मणजी के रख लेने पर मदुता बढ़ जाने की आशङ्का थी। अतः कहते हैं कि अवध तुम्हार काज कछु नाही। तुम्हारे रामजी के साथ रहने मे ही कुशल है।

गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं॥
रामु प्रान प्रिय जीवन जी के। स्वारथरहित सखा सबही के॥३॥

अर्थ : गुरु पिता माता बन्धु देवता और स्वामी इन सबकी सेवा प्राण के समान करनी चाहिए। राम तो प्राण से भी प्यारे हैं। प्राण के प्राण हैं और सबके स्वार्थ रहित सखा हैं।

व्याख्या : शरीर मे पाँच प्राण हैं। प्राण अपान व्यान समान और उदान उसी भाँति पाँच वहिश्चर प्राण हैं : गुरु पिता माता भाई और स्वामी। अतः इनकी सेवा भी प्राण की भाँति ही करनी चाहिए। परन्तु रामजी तो प्राण के भी प्राण हैं। अत. प्राण से भी प्यारे हैं और सभी के स्वार्थ रहित सखा हैं। ईश्वर का जीव से स्वार्थ रहित सख्य है। द्वासुपर्णा सयुजा सखाया इत्यादि श्रुति प्रमाण है। यथा : ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू। अतः इन वहिश्चर प्राणो की उपेक्षा करके भी राम जानकी की सेवा करनी चाहिए।

माता लक्ष्मणजी के सब प्रकार के भय और सङ्कोच का निराकरण करती

है। राम जानकी को माता पिता बतलाकर उनके निवास को अयोध्या बतलाकर भय दूर करती है और गुरु पिता माता भाई और देवता यद्यपि ये पाँचो वहिश्चर प्राण की भाँति हैं। पर इन्हे भी प्राण के प्राण स्वामी राम के लिए छोडा जा सकता है। यह कहकर सङ्कोच को दूर करती हैं।

पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहि राम के नाते ॥
अस जिय जानि सग वन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू ॥४॥

अर्थ जहाँ तक पूज्य और परम प्रिय है सबको राम के नाते से मानना चाहिए। ऐसा मनमें समझकर उनके सग वन जाओ और बेटा। ससार मे जीने का लाभ उठाओ।

व्याख्या यदि राम से नाता है तभी पूज्य पूज्य हैं और प्रिय प्रिय हैं। यदि राम से नाता नही तो वे पूज्य भी नही प्रिय भी नही। उनका त्याग ही हितकर है। यथा जाके प्रिय न राम वैदेही। तजिये ताहि कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही। ऐसा मनमे निश्चय करके निश्चिन्त होकर वन मे जाओ और अपने जीवन को सफल बनाओ। यथा जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि राम चरन मनु लावा।

दो भूरि भाग भाजनु भयेउ, मोहि समेत बलि जाउँ।
जौ तुम्हरे मनु छाँडि छलु, कीन्ह राम पद ठाउँ ॥७४॥

अर्थ यदि तुम्हारे मन ने छल छोडकर रामजी के चरणो का आश्रय किया तो मै तुम्हारी बलैया लेती हूँ। तुम तो हुए ही तुम्हारे साथ मै भी बडी भाग्यवती हो गयी।

व्याख्या जब तक राज्य की आशा थी तब तक रामजी के सेवन म स्वार्थ की भी सम्भावना थी। अब तो राज्य की कोई आशा नही। उलटा वन जाना पडा। इसी समय की सेवा सच्ची सेवा है। जिसमे स्वार्थ की गन्ध नही है ऐसे समय मे रामचरणा का आश्रय करना अहोभाग्य है। सो तुम महाभाग्यवान् हुए और मुझे भी महाभाग्यवती बनाया। आज तुम्हारे होने से मैं भी परम भाग्यवती हुई।

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई ॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी ॥१॥

अर्थ वही युवती पुत्रवाली होती है जिसका बेटा रघुपति का भक्त हो। नही तो वन्ध्या भली। राम विरोधी बेटे से भलाई समझकर उसने व्यर्थ पुत्र उत्पन्न किया।

व्याख्या पुत्रवती कहने का भाव यह कि अल्पवयस्का या वृद्धा मे प्रसव की योग्यता नही। युवती ही पुत्र उत्पन्न करती हैं और उनसे भलाई की आशा रखती हैं। ऐसी युवतियो से समार भरा पडा है। फिर भी वे सब पुत्रवती नही है। पुनाम नरक का है। उससे जो माँ बाप की रक्षा करे वही पुत्र है। अत पुत्रवाली युवतियाँ वे

ही हैं जिनके बेटे रामभक्त है। जो रामभक्त नही हैं तिनते खर सूकर स्वान भले जडता बसते न कहूँ कछु कै। तुलसी जेहि राम ते नेह नही सो सही पसु पूछ विषान न द्वै। जननी भरिभार मुई दस मास भई किन बाँझ गई किन च्वै। जरि जाउ सो जीवन जानकी नाथ जिये जग मे तुम्हरो बिनु ह्वै।

यद्यपि माता नही जानती कि पुत्र कैसा होगा और न उसके जानने का पुत्र जनन मे कोई उपयोग है। तथापि माता को बेटे से बहुत कुछ आशा होती है। सो अपने जनने को वह व्यर्थ नही मानती। पर वस्तुत उसने पशु उत्पन्न किया। इसलिए कवि वियानी शब्द का प्रयोग करते हैं। वह उसका मनुष्य सा रूप देखकर भूली हुई है। पर सब मनुष्याकारवालो मे मनुष्यता नही होती। आहार निद्रा भय मैथुन म मनुष्यता नही है। क्योकि यह तो पशु मे भी होता है। मनुष्यता तो धर्म मे है और धर्म का साफल्य भगवद् भजन मे है, अत धर्महीन मनुष्य पशु के समान है। इस भाँति माता सुमित्रा लक्ष्मणजी को भगवद्भक्त देखकर अपने को पुत्रवती मान रही है। इसीलिए कहा भूरिभाग भाजन भयेउ मोहि समेत बलिजाउँ इत्यादि।

तुम्हरेहि भाग रामु बन जाही। दूसर हेतु तात कछु नाही ॥
सकल सुकृत कर बड फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू ॥२॥

अर्थ . बेटा! तुम्हारे ही भाग्य से रामजी वन जा रहे हैं। दूसरा कोई कारण नही है। राम जानकी के चरणो मे स्नेह होना सब पुण्यो का बडा फल यही है।

व्याख्या यशोधन के कुटुम्ब मे यश से ही भाग्य का निर्णय होता है। रामजी का साथ देने से यश तुम्हारे हाथ लगेगा और सेवा का ऐसा सुअवसर भी तुम्हे कभी न मिलता। अत रामजी के वन जाने मे प्रधान कारण तुम्हारा है। दूसरे कारण गौण है। नही तो कैकेयी के मनोरथ की पूर्ति तो भरत के राज्य मिलने से ही हो जाती। जो रामजी को भी इष्ट ही था। भरत के राज्य से राम वनवास का कौन सम्बन्ध ? अत तुम्हारा भाग्य ही कारण है।

लौकिक सुख स्वर्ग और मोक्ष सुकृत के ही फल है जिसमे पूर्व पूर्व से उत्तरोत्तर बडे है। पर सब सुकृतो का बडा फल तो रामजानकी के चरणो मे स्वाभाविक स्नेह है। यथा जहँ लगि साधन वेद बखानी। सबकर फल हरि भगति भवानी। आगे भरत जी भी कहेगे अहह धन्य लछिमन बडभागी। राम पदारविंद अनुरागी। माता को रामजी के स्वरूप का यथार्थ बोध है। अत सेवा धर्म की दृढता के लिए उपदेश दे रही है।

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्हके बस होहू ॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥३॥

अर्थ राग द्वेष ईर्ष्या मद और मोह के वश मे सपने मे भी न होना। सब प्रकार के विकारो का त्याग करके मनसा वाचा कर्मणा सेवा करना।

व्याख्या : रागद्वेष दि छवो रिपु है। इनके वश मे पड़ने से उसी भाँति कल्याण की हानि होती है जिस भाँति शत्रु के वश मे पड जानेवाले को होती है। अथवा ये पाँच भक्ति के बाधक हैं इनसे बहुत बचना। गृह के प्रति राग, कैकेयी के प्रति रोष, भरत के प्रति ईर्ष्या, अपने गुणो के प्रति मद और रामजी के प्रति मोह को हृदय मे स्थान न देना अर्थात् स्वप्न मे भी इनके वश न होना।

मन मे विकारो को स्थान देने से रामभक्ति के लिए स्थान नही रह जाता। ये ही सब सेवा धर्म मे छल है और · भानु पीठ सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्व भाव छल त्यागी। अत· मनसा वाचा कर्मणा सेवा करना।

तुम्ह कहुँ वन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु सिय जासू ॥
जेहि न रामु वन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू ॥४॥

अर्थ · तुमको तो वन मे सब प्रकार का सुभीता है। जिसके साथ सीता और राम माँ बाप हैं। जैसे रामजी को वन मे क्लेश न हो वैसा ही करना। बेटा! मेरा यही उपदेश है।

व्याख्या · तुम्हारे सुभीते के लिए कुछ कहना नही है। तुम्हारे माता पिता राम जानकी तुम्हारे साथ जा रहे है। वे स्वय तुम्हारे सुभीते के लिए कुछ उठा न रक्खेंगे। यथा · जोगवहिं प्रभु सिय लखनहि कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे। अत· तुम अपनी चिन्ता न करना और न अपने कष्ट को कष्ट गिनना। तुम यह ध्यान रखना कि रामजी को वन मे कष्ट न हो। मेरा इतना ही उपदेश है।

छं. उपदेसु येहु जेहि तात तुम्हरें रामु सिय सुखु पावही।
पितु मातु प्रिय परिवारु पुर सुख सुरति वन बिसरावही ॥
तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिप दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई ॥

अर्थ : बेटा! यही उपदेश है कि तुम्हारे रामजानकी ऐसा सुख पावें कि उन्हे पिता माता प्रिय परिवार और नगर का सुख भूल जाय। तुलसीदासजी कहते है कि बेटे को शिक्षा दी। पश्चात् आज्ञा दी और आशीर्वाद दिया कि तुम्हे रामजी के चरणो मे दिनदिन अविरल और निर्मल प्रीति हो।

व्याख्या भक्ति के तीन दर्जे हैं : १ तस्यैवाहम् २ ममैवासौ और ३ स एवाहन् इति त्रिधा। प्रारम्भ मे भक्त तदीय होते हैं। उनकी भावना होती है कि मैं सरकार का हूँ। दृढता अधिक हाने से वही भावना ममैवासौ के रूप मे बदल जाती है तब भक्त की भावना हो जाती है कि सरकार हमारे है। स एवाहम् के सन्निकट मे भक्तिवाल नही जाते। माता जानती है कि लक्ष्मणजी की ममैवासौ भावना है। इसलिए कहती है · तुम्हारे रामसिय। माता उपदेश देती है कि ऐसी सेवा करना कि जिसमे रामजानकी को पिता माता प्रिय परिवार और नगर का

सुख याद न पड़े। ऐसा उपदेश देकर आज्ञा दी कि तुम भी साथ में वन जाओ। तत्पश्चात् प्रेमाभक्ति प्राप्ति के लिए आशीर्वाद दिया।

दो. मातु चरन सिरु नाइ, चले तुरत संकित हृदय।
बागुर विषम तोराइ, मनहु भाग मृगु भाग बस ॥७५॥

अर्थ : माता के चरण में सिर नवाकर डरते हुए निकल भागे। जैसे कठिन जाल को तोड़कर भाग्यवश मृगा भाग जाय।

व्याख्या : जब माता ने प्रसन्नता से वन में बरताव करने का उपदेश, जाने की आज्ञा, भक्ति का आशीर्वाद दिया तब शङ्कित हृदय से निकल भागने का अर्थ क्या? उत्तर यही है कि समाचार पाकर कहीं भगवती उर्मिला न आजायँ और सीताजी की भाँति वन जाने के लिए मचल न पड़ें। अतः भगवती उर्मिला के आ जाने की शङ्का से शङ्कित हैं। इसीलिए कठिन जाल में फँसे हुए मृग का दैवात् जाल तोड़कर निकल भागने से उपमा दिया। कठिन जाल माँ नहीं होतीं स्त्री होती है और इसीलिए सरकार ने अकेले लक्ष्मणजी को भेजा। आप विदा होने के साथ नहीं गये। पर भगवती उर्मिला चुप रह गयी। उनके चुप रह जाने में जितने भाव निकलते हैं कुछ भी कह देने से वह बात नहीं आती। यदि लक्ष्मणजी को वनवास मिला होता तो भगवती उर्मिला किसी के रोके न रुकती। पर वन तो मिला रामजी को। लक्ष्मणजी तो अपनी इच्छा से सेवा के लिए साथ जा रहे हैं। अतः उनके सेवा धर्म में विघ्नाचरण नहीं किया।

१३. वनगमन : केवट अनुराग प्रसङ्ग

गये लखनु जहँ जानकिनाथू। भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू॥
बंदि राम सिय चरन सुहाए। चले संग नृप मंदिर आए॥१॥

अर्थ : लक्ष्मणजी वहाँ गये जहाँ जानकीनाथ थे। प्रिय साथ पाकर प्रसन्न मन हुए। रामजानकी के सुन्दर चरणों की वन्दना करके साथ चल पड़े और महाराज के महल में आये।

व्याख्या : सरकार जानकीजी के साथ धीरे धीरे चले जा रहे हैं। जहाँ से लक्ष्मणजी को माता के पास भेजा था वहाँ से आगे बढ़ गये हैं। अतः कवि लिखते हैं कि जहाँ जानकीनाथ थे वहाँ गये। साथ मिल गया। प्रिय का साथ ही सब आनन्दों में अधिक है। माता के और स्त्री के छोड़ने में दुःख का लेश भी नहीं है। प्रिय के साथ हो जाने की प्रसन्नता है।

जाकर रामजानकी के सुन्दर चरणों की वन्दना की और साथ हो लिये। इतना ही इस सूचना के लिए पर्याप्त था कि आज्ञा मिल गयी। यहाँ नृपमन्दिर से अभिप्राय उस महल से है जिसमें महाराज उस समय विद्यमान थे। अर्थात् महारानी कैकेयी के महल में, नहीं तो सभी रानियों के महल नृपमन्दिर हैं।

कहहिं परसपर पुर नर नारी। भलि बनाइ बिधि बात बिगारी ॥
तन कृस मन दुखु बदन मलीने। बिकल मनहुँ माखी मधु छीने ॥२॥

अर्थ : पुर नरनारी आपस मे कहते है कि विधाता ने बात अच्छी बनाकर बिगाड दी। उनके शरीर कृश हो गये। मन म दु ख है। चेहरा उदास है। ऐसे विकल हैं जैसे शहद के छिन जाने से मक्खियाँ विकल हो जाती है।

व्याख्या जिस प्रसङ्ग को अति बिषाद बस लोग लोगाई कहकर छोडा था उसी को उठाते हैं। जब महाराज के महल से कौसल्याजी के महल की ओर चले थे उस समय प्रजावर्ग का विषाद कहा था। अब कौसल्याजी के महल से जानकी और लक्ष्मणजी के साथ कैकेयी के महल मे जा रहे हैं। उस समय के प्रजावर्ग के विषाद का वर्णन करते है। तीनो मूर्तियो को साथ देखकर नर नारी आपस मे कहते हैं कि विधाता ने जैसी अच्छी बात बना रक्खी थी कि वैसी बात कही देखने म नही आती। सो जैसी अच्छी बात बनी थी वैसी ही बिगड गयी। यह भी विधाता ने ही बिगाडा। एक को वन दिया गया। सो तीन चले।

विषाद अतिमात्रा मे है। उसका प्रभाव शरीर पर ऐसा पडा कि घण्टो और मिनटो मे शरीर दुबले पड गये। कारण कहते हैं कि सबके मन म दु ख है। सबका चेहरा उदास है। सब ऐसे विकल है जैसे किराती ने मधु के छत्ते मे से मधु निकाल लिया हो और मधु की मक्खियो ने देख न पाया हो कि किसने मधु छीन लिया। पहिले ही कह आये है देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गँव तकइ लेउँ केहि भाँती। सो उसने ले ही लिया। रामराज्याभिषेक रूपी मधु छिन गया। अब प्रजावर्ग मधुमक्खियो की भाँति विकल होकर इधर उधर भनभना रहा है।

कर मीजहिं सिरु धुनि पछिताही। जनु बिनु पख बिहग अकुलाही ॥
भइ बडि भीर भूप दरबारा। बरनि न जाइ बिषादु अपारा ॥३॥

अर्थ हाथ मीजते है। सिर पीटकर पछताते है। जैसे बिना पख का पक्षी व्याकुल होता है। राजा के द्वार पर बडी भीड हुई। अपार विषाद का वर्णन नही किया जा सकता।

व्याख्या सामान्य लोगो का हाल कहकर अब बडे बडो का हाल कहते है। छोटो की उपमा मक्खी से दी। अब बडो की उपमा पक्षियो से देते है। ये हाथ मीजते हैं। सामर्थ्य रहते हुए कुछ कर नही सकते। शोकावेग मे सिर पीटते है। बडा भारी अनिष्ट हुआ इसलिए पछताते हैं। बिना पख के पक्षी की भाँति अगतिक होकर आकुल हो रहे हैं कि अब जीवन यापन कैसे होगा ?

दरबार शब्द का प्रयोग मानस म राजद्वार के अर्थ मे देखा जाता है। यथा करि मज्जन सरयू जल गये भूप दरबार। तथा गयउ सभा दरबार तब सुमिरि रामपद कज इत्यादि। सब लोगो का महल के भीतर प्रवेश नही है। अत राजद्वार

पर सब लोग इकट्ठे हो गये। बडी भीड हुई। विषाद का पारावार नही है। विषाद के उत्कटता का वर्णन नही हो सकता। सब हाय हाय कर रहे हैं।

सचिव उठाइ राउ बैठारे। कहि प्रिय बचन रामु पगु धारे ॥
सिय समेत दोउ तनय निहारी। ब्याकुल भयउ भूमिपति भारी ॥४॥

अर्थ मन्त्री ने रामजी आये हुए है ऐसा प्रिय वचन कहकर उठाकर राजा को बिठाया। सीताजी के सहित दोनो बेटो को देखकर महाराज को भारी व्याकुलता हुई।

व्याख्या · महाराज को अचेत देखकर मन्त्री क्षणभर के लिए हटता नही। शोक से अशौच लग जाता है नित्यकृत्य का अधिकार नही रह जाता। राजा का यह हाल है ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कल्पतरु मनहु निपाता। आप से उठने मे भी असमर्थ है। कहाँ क्या हो रहा है इसका ज्ञान नही। मन्त्री सोचता है कि ये लोग विदा होने आये हैं। इन्हे बिठाना चाहिए। जो कहना हो कहे। इसलिए महाराज को उठाकर बिठलाता है। होश मे लाने के लिए रामजी पधारे हैं ऐसा प्रिय वचन सुनाता है। क्योकि यदि इस समय भी महाराज न बोले तो ये लोग प्रणाम करके चले जायँगे।

इस प्रिय वचन को सुनकर महाराज ने आँख खोल दिया तो देखा बेटे वन जाने को प्रस्तुत हैं और सीताजी भी साथ मे है। यह देखकर तो महाराज की व्याकुलता बहुत बढ गयी। दोनो बेटे प्राण के समान है। यथा मेरे प्रान नाथ सुत दोउ। सो दोनो चले और महाराज जनक ने यह कहकर जानकी को सुपुर्द किया है ये दारिका परिचारिका करि पालबी करुना नई। सो मैन यही करुणा किया कि वन भेज रहा हूँ।

दो सीय सहित सुत सुभग दोउ, देखि देखि अकुलाइ।
बारहिं बार सनेह बस, राउ लेइ उर लाइ ॥७६॥

अर्थ सीताजी के सहित दोनो बेटो को देखकर महाराज आकुल हो रहे हैं। और प्रेम के वश होकर बार बार छाती से लगा लेते है।

व्याख्या सीताजी पर महाराज का पुत्रो से कम प्रेम नही है। मन्त्री से महाराज कहेगे एहि बिधि करेउ उपाय कदबा। फिरइ त होइ प्रान अवलबा। सीताजी पर बेटा से भी अधिक प्रेम कहने मे अत्युक्ति नही है। दोनो भाइयो के वन चले जाने पर भी सीताजी के रह जाने से महाराज जी सकते थे। सो ये भी चली। अत बार बार इन तीनो मूर्तियो को महाराज देखते है और प्रेमवश होकर बार बार कलेजे से लगाते हैं।

सकइ न बोलि बिकल नरनाहू। सोक जनित उर दारुन दाहू ॥
नाइ सीसु पद अति अनुरागा। उठि रघुबीर बिदा तब माँगा ॥१॥

अर्थ : महाराज शोक से विकल थे। कुछ बोल नही सकते थे। शोक से उत्पन्न भयानक दाह हृदय मे हो रहा था। अत्यन्त प्रेम से चरणो मे सिर नवाकर रामजी ने उठकर विदा माँगी।

व्याख्या राम जानकी और लक्ष्मण को बार बार हृदय से लगा रहे है। कहना भी चाहते है पर मुख से शब्द नही निकलते। क्योकि शोक से कलेजा जल रहा था। दाह होने पर मनुष्य कराहता है पर दारुण दाह मे कराहते भी नही बनता। पहिले जब रामजी ने कहा था : विदा मातु सन आवहुँ माँगी। चलिहौं बनहि बहुरि पग लागी। तब भी शोक वश होने से महाराज बोल न सके। अब माता से विदा लेकर चलते समय केवल प्रणाम करने आये हैं। फिर भी महाराज बोलने मे असमर्थ हैं।

रामजी रघुकुल मे वीर है। उत्साहवर्धनो वीरः। पिता का अत्यन्त प्रेम देखकर समझ लिया कि यहाँ ठहरना वियोग के समय की यातना को और बढाना ही है। अत अत्यन्त प्रेम से चरणो को प्रणाम किया और उठ खडे हुए और तब विदा माँगी।

पितु असीस आयसु मोहि दीजै। हरष समय बिसमउ कत कीजै॥
तात किये प्रिय प्रेम प्रमादू। जसु जग जाई होइ अपवादू॥२॥

अर्थ पिताजी! मुझे आशीर्वाद दीजिये और आज्ञा दीजिये। यह तो हर्ष का समय है। इसमे शोक क्यो करते हैं। हे तात! प्रिय के प्रेमवश प्रमाद करने से ससार मे यश नष्ट हो जायगा और दुर्यश होगा।

व्याख्या भाव यह कि अब मै चल रहा हूँ। मुझे आशीर्वाद दीजिये। आप पिता हैं। मेरे देवता है। आपके आशीर्वाद से सब मङ्गल होगा और कह दीजिये कि जाओ इतना आपके कह देने से मुझे कोई विघ्नबाधा न करेगा। यथा गुरु पितु मातु स्वामि सिखपाले। चलेहुँ कुमग पग परहि न खाले। मै अपना जन्म सफल करने जा रहा हूँ। अत हर्ष का समय है। इसमे विषाद को स्थान नही देना चाहिए। *मुझे कष्ट होगा यह सोचकर ही आप शोक करते है। सो मुझे हर्ष है। क्योकि मेरा* जन्म सफल होने जा रहा है।

श्रीरामजी ने देखा कि वचन देने पर उसे कार्य मे परिणत होते देखकर इस भाँति शोक करना प्रमाद है। अत पिता से कहा कि जो शोक मनाया जा रहा है इसमे कोई तत्त्व नही है। यह केवल प्रिय प्रेम प्रमाद है। इससे लाभ कुछ नही और हानि बडी भारी। क्योंकि ससार मे जो आपका यश फैला हुआ है वह नष्ट हो जायगा और अयश होगा। सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।

सुनि सनेह बस उठि नरनाहाँ। बैठारे रघुपति गहि बाहाँ॥
सुनहु तात तुम्ह कहुँ मुनि कहहीं। रामु चराचर नायकु अहहीं॥३॥

अर्थ : सुनकर प्रेमवश चक्रवर्तीजी उठ खडे हुए और रामजी को बाँह

पकड़कर बैठाया और कहा कि हे तात ! तुमको मुनि कहते हैं कि राम चर अचर सबके मालिक हैं।

व्याख्या : यह तो जाया ही चाहते हैं यह समझकर चक्रवर्तीजी आवेश में आकर उठ खड़े हुए। रामजी की बाँह पकड़ ली कि मैं जाने न दूँगा और बिठलाया कि अभी कुछ बातें करना है। मेरा प्रश्न है उसका उत्तर दे लो तो जाओ। तुम मेरे शोक को प्रिय प्रेम प्रमाद कहते हो। मैं पूछता हूँ कि प्रमाद किसका है। हमारा या तुम्हारा ? यद्यपि मेरे मन मे बात नही बैठती पर मुनि की गिरा असत्य नही हो सकती। वे कहते हैं कि राम चराचर के नायक हैं।

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी ॥
करै जो करमु पाव फलु सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई ॥४॥

अर्थ : शुभ और अशुभ कर्म के अनुसार ईश्वर हृदय मे विचारकर फल देते हैं और जो कर्म करता है वही फल पता है। यही निगम की नीति है और सब लोग भी ऐसी ही कहते है।

व्याख्या : दण्ड और अनुग्रह का नियम अनादि काल से प्रवर्तित है। शुभकर्म का शुभफल और अशुभकर्म का अशुभफल होता है। यथा : तुलसी यह तनु खेत है मन वच करम किसान। पाप पुन्य द्वै बीज है बवै सो लवै निदान। ईश्वर फल दाता है। वह शुभाशुभ कर्म का फल मात्रा प्रकार तथा काल का विचार करके देता है।

जो कर्म करता है उसका फल उसी को मिलता है। यही निगम की नीति है और सब लोग भी यही कहते है। इसमे मतभेद नही। अतः यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है।

दो. औरु करै अपराधु कोउ, और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवंत गति, को जग जानइ जोगु ॥७७॥

अर्थ : अपराध कोई और ही करे और फल भोग किसी दूसरे को मिले। यह अति विचित्र गति भगवान् की है। इसे ससार मे कौन जान सकता है ?

व्याख्या : अपराध और फल भोग मे वैषम्य होना विचित्रता है। दूसरे का दण्ड दूसरे को मिलना अति विचित्रता है। अवश्य सामञ्जस्य होगा। पर संसारी के समझ मे नही आता। उसे ईश्वर का ही प्रमाद मालूम होता है।

अपराधिनी कैकेयी तुम से निरपराध को बन भेज रही है। कहु तजि रोष राम अपराधू पूछने पर उसके पास देने के लिए कोई उत्तर नहीं है। अन्त मे उसे भी यही कहना पड़ा : तुम अपराध जोग नहिं ताता। माँग्यौ जो कछु मोहि सोहाना और मुझसे विश्वासघात किया : तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। पहिले स्नेह करती थी सराहना करती थी। जब मैंने कहा : भामिनि भयउ तोर मन भावा तो कैकेयी ने हँसकर और गहने पहनकर मुझे धोखा दिया। मेरे साथ विश्वासघात हुआ। मेरा

क्या दोष है ? मुझे दण्ड क्यो मिल रहा है ? यदि ईश्वर हो तो मुझ तुम्हारा प्रमाद मालूम हो रहा है। उत्तर न पाने पर कहते हैं कि भगवान् की गति जानी नही जाती। अत्यन्त विचित्र है अभी तक चक्रवर्तीजी को तापस अन्ध शाप का स्मरण नही आ रहा है।

राय राम राखन हित लागी। वहुत उपाय किये छलु त्यागी ॥
लखी राम रुख रहत न जाने। धरम धुरधर धीर सयाने ॥१॥

अर्थ राजा ने रामजी के रखने के लिए छल छोडकर वहुत उपाय किये। रामजी का रुख लख लिया। समझ लिया कि ये नही रहेगे।

व्याख्या महाराज ने जो उपाय रामजी के रखने के लिए सोचा या किया उनमे छल था। वे चाहते थ कि मैं रामजी को रहने के लिए न कहूँ रामजी स्वय जाने के लिए तैयार न हो। यथा तुम प्रेरक सबके हृदय सो मति रामहि देहु। वचन मोर तजि रहहि गृह परिहरि सील सनेहु। अथवा उदय करहु जनि रबि रविकुलगुरु इत्यादि। परन्तु जब देख लिया कि ऐसे उपायो से काम न चलगा तब छल रहित उपाय करने लगे कि मैंने चाहे कैकेयी से जो कहा हो पर तुम्हे तो मैंने वन जाने की आज्ञा नही दी। आज्ञा वही मान्य है जो इच्छापूर्वक दी जाय। मेरी इच्छा नही है कि तुम वन जाओ इत्यादि।

रामजी चुप हैं। उत्तर नही देते। पहिल ही एक बात ऐसी कह दी कि उसके सामने कोई बात अडती नही। उन्होने कहा था कि यह सब प्रिय प्रेम प्रमाद है इनमे वास्तविकता नही। यदि वास्तविकता होती तो महाराज इतने विकल न होते। विकलता कह रही है कि राजा ने वन दे दिया। अयोध्या मे रुख देखकर काम होता है। ससार का नियम है कि प्रधान का रुख सभी देखते हैं। रामजी की प्रधानता इसी से सिद्ध है कि स्वय चक्रवर्तीजी रुख देखते हैं और की कौन कहे स्वय गुरुजी सबको रामजी के रुख रखने का उपदेश देते है। यथा राखे राम रजाइ रुख हम सबकर हित होइ इत्यादि। महाराज यह भी जानते है कि रामजी धमधुरन्धर हैं। ये धम से न हटेंगे। सयाने धीर हैं। धम के मर्म को समझते हैं।

तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही। अति हित वहुत भाँति सिख दीन्ही ॥
कहि वन के दुखु दुसह सुनाये। सासु ससुर पितु सुख समुझाये ॥२॥

अर्थ तब महाराज ने सीताजी का हृदय से लगा लिया और अत्यन्त प्रम से वहुत प्रकार से शिक्षा दी। वन के न सहने योग्य दु खो को कह सुनाया। सास ससुर और पिता के सुखो को समझाया।

व्याख्या चक्रवर्तीजी का प्रेम सीताजी पर ठीक वेटी की भाँति है। गोद म लेकर समझा रहे है। यथा

दो सासु ससुर जोगवत रहत तथा यथा पितु मात।
बेटी तू नहि सहि सकिहि विकट विपिन उतपात ॥१॥

सोई कारज कीजिये जामे होइ निवाह।
नहिं पिपीलिका को उचित लेन सिंधु की थाह ॥२॥
कानन कानन ते सुन्यौ कानन बडी बलाय।
जहँ वसिवे को को कहै आँखि देखि नहिं जाय ॥३॥
हिंसक जीवन ते भरो कुशकण्टक भरिपूरि।
ठाम नही विश्राम को विपिन विपत्ति अति भूरि ॥४॥
कटुकपाय फल असन वन, वसन छाल अरु पात।
विना त्रान अति, विषम हिमि आतप वर्षा वात ॥५॥
सव सुपास गृहवास रुख लखत रहत रनिवास।
सखी करत मनुहारि मुख जोहँत दासी दास ॥६॥
सव सुख अवध विदेहपुर रहहु जहाँ मनमान।
सीख मानि मम पुत्रि जनि कानन करहु पयान ॥७॥

सिय मनु राम चरन अनुरागा। घरु न सुगमु बनु बिषमु न लागा ॥
औरउ सवहि सीय समुझाई। कहि कहि विपिन विपति अधिकाई ॥३॥

अर्थ : सीताजी का मन रामजी के चरणो मे अनुरक्त था। उनको घर रहने मे सुभीता और वन मे असुभीता नही मालूम पडा और सबों ने भी वन की विपत्तियो का बढा बढाकर वर्णन करते हुए समझाया।

व्याख्या : रामचरन पकज रति जिनही। विषय भोग वस करहि कि तिनही। रमा विलास राम अनुरागी। तजत वमन जिमि नर बड़भागी। फिर जगदम्बा को घर सुगम और वन विषम कैसे मालूम हो ? सभी लोग एक मुख से वन के दु ख को बढा बढ़ाकर समझाने लगे। ऐसी नीति है कि कार्यसिद्धि के लिए रोचक भयानक बातें कही जाती है। यथा :

छप्पय : वन निर्जन झन झनत चलत सन सन समीर खर।
भूमि तपत ज्यौं भाड अगिनि वरसत दिनकर कर॥
जहँ तहँ बीछी व्याल फिरत गज भालु बाघ हरि।
दिनहि भूत वेताल नचत विकराल रूप धरि॥
जीवजतु जरि जरि मरें जब दावानल लगि परै।
याते तू बन जान को ध्यान वधू जनि उर धरै॥

लक्ष्मणजी को कोई नही समझाता क्योकि वे तो रामजी के बाटे : हिस्से पडे हुए हैं। यथा : लखन राम के नेव। दूसरी वात यह भी है कि यदि रामजी वन जायँ तो लक्ष्मणजी का साथ जाना सबको प्रिय है। ये वीर हैं। रामजी के साथ सब कष्ट सह लेंगे और रामजी भी अकेले न रहेंगे भाई का साथ रहेगा।

सचिव नारि गुरु नारि सयानी। सहित सनेह कहहिं मृदु बानी ॥
तुम्ह कहुँ तौ न दीन्ह बनवासू। करहु जो कहहिं ससुर गुर सासू ॥४॥

अर्थ : मन्त्री और गुरु की सयानी स्त्रियाँ स्नेह के साथ कोमल वाणी में कहने लगी कि तुमको तो वनवास नही दिया। इसलिए जैसा ससुर गुरु और सास कहे वैसा करो।

व्याख्या : भारी उत्पात सुनकर इस समय जो स्त्रियाँ महलो मे आती जाती हैं वे सभी आगयी हैं। मर्दों के समझाने का प्रभाव सीताजी पर पड़ते न देखकर मन्त्री की स्त्रियाँ और गुरुजनो की स्त्रियाँ सीताजी को समझाने लगी। स्नेह के साथ मृदु वाणी से समझाने का बडा प्रभाव पडता है। कि पुन ये तो बड़ी बूढ़ी है। स्त्री धर्म और स्त्री हृदय की जाननेवाली है। रामजी जो इस समय सुख दु ख को न गिनकर वन जाने को प्रस्तुत हैं तो उनके लिए कारण है। उन्हे वनवास मिला है। तुमको तो वनवास नही दिया है। तो जिसका वचन मानकर रामजी वन जाते हैं उसका वचन तुम भी शिरोधार्य करके घर रहो। पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम् यह ठीक है। पर ससुर गुरु और सास तो गुरुणा गुरु. है। वे जो कहे सो तुम्हे कर्त्तव्य है।

दो. सिख सीतलि हित मधुर मृदु, सुनि सीतहि न सोहानि।
सरद चद चदिनि लगत, जनु चकई अकुलानि ॥७८॥

अर्थ : शीतल हित मधुर और कोमल शिक्षा सीताजी ने सुनी। पर उन्हे अच्छी न लगी। जैसे शरच्चन्द्र की चाँदनी के लगने से चकई व्याकुल हो जाती है।

व्याख्या : चाँदनी रात सबको प्रिय होती है पर चकई को नही। क्योंकि उसमे पति का विछोह होता है। शरद की चाँदनी रात और भी दाहक होती है। सो सरकार ने जो शिक्षा दी वह शरद्चन्द निशि की भाँति दाहक हुई। यथा : सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरदचन्द निसि जैसे। पर सचिव नारि गुरु नारि सयानी की शिक्षा तो शरद्चन्द चाँदनी की भाँति अति अधिक दाहक हुई। भगवती व्याकुल हो उठी। शिक्षा का गुणाधिक्य दाहाधिक्य का कारण हो गया है। सरकार को शिक्षा शीतल थी। इसलिए उसे शरद्चन्द निशि कहा। सचिव नारि गुरु नारि सयानी की शिक्षा सीतल हित मृदु मधुर थी। इसलिए शरद्चन्द की चाँदनी से उपमित कर रहे हैं। स्नेह के सहित शिक्षा दे रही हैं। अतः शीतल है। तुम कहँ तौ न दीन्ह बनबासू। यह हित की बात है। करउ जो कहहिं ससुर गुरु सासू। यह मधुर शिक्षा है और मृदुवाणी मे कहती हैं। यह मृदुता है। शरद्चन्द चाँदनी मे शीतलता लाभ मधुरता और मृदुता होती है। अत इससे शिक्षा का उपमित किया।

सीय सकुच वस उतरु न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई॥
मुनि पट भूषन भाजन आनी। आगे धरि बोली मृदु बानी ॥१॥

अर्थ : सीताजी सङ्कोचवश उत्तर नही देती हैं। यह सुनकर कैकेयी तमक उठी। मुनियो का वसन भूषण और बरतन लाकर आगे रक्खा और मीठी वाणी बोली।

व्याख्या : जिस इन्द्रिय से जिस विषय का ग्रहण होता है उसी से उसके अभाव का भी ग्रहण होता है। इसी से उत्तर न देने का सुनना कहते हैं। उत्तर प्रत्येक बातो का है। पर कुलवधू सीताजी इतने बडे जनसमाज मे सङ्कोच से उत्तर नही देती। कैकेयी से यह सहन न हुआ। वह समझती है कि सीता भी यदि साथ चली जावे तो सम्भव है कि ये वन से न लौटें। ये सब इतना प्रयत्न इसलिए कर रही हैं जिसमे रामजी अवश्य वन से लौटें। ये सब हमारी शत्रु हैं। अत क्रोध के वेग मे आकर उठ खडी हुई।

राजदरबार है। मुनियो की विदाई के लिए मुनि पट भूषण भाजन आदि सभी वस्तुएँ प्रस्तुत रहती है। अत मुनि पट भूषण और भाजन उठा लायी। जिसमे वहाँ से ही वेष बदलकर वन मे जायँ। जो लोग आज छत्रचामर के साथ चलते देखने के लिए उत्सुक थे वे अपने प्रिय का मुनि वेष मे जाते देख लें और बात भी थी कि मुनि पट भूषण सामने रखते ही रामजी धारण कर लेंगे। तब समझाना बुझाना भी बन्द हो जायगा और व्यर्थ जो देर हो रही है वह न होगी। उन पट भूषण भाजनो को रामजी के सामने ला रक्खा और बोली .

नृपहि प्रान प्रिय तुम रघुबीरा। सील सनेह न छाँडिहि भीरा॥
सुकृतु सुजसु परलोकु नसाऊ। तुम्हहि जान बन कहिहि न काऊ॥२॥

अर्थ : रघुवीर! तुम महाराज को प्राणप्रिय हो। सो यह भीड शील सनेह न छोडेगी। चाहे पुण्य सुयश और पर परलोक भले ही नष्ट हो जाय पर तुम्हे वन जाने को कोई न कहेगा।

व्याख्या : रानी कैकेयी कहती है कि तुम रघुकुल के वीर हो। साहस का कार्य करने मे समर्थ हो। यहाँ इतना साहस किसी का नही है कि तुम्हें वन जाने को कहे। महाराज को तुम प्राणप्रिय हो। वे अपने मुँह से कहेगे नही और यह जो लोगो की भीड लगी हुई है यथा भइ बडि भीर भूप दरबारा उनमे किसका साहस है कि राजा के प्राणप्रिय को वन जाने की सम्मति दे। इन लोगो को इस बात से क्या मतलब कि महाराज का सुकृत सुयश और परलोक नष्ट हो रहा है। ये राजा की प्रसन्नता के लिए शील और स्नेह जनाते ही रहेगे।

अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननि सिख सुनि सुख पावा॥
भूपहि बचन बान सम लागे। करहिं न प्रान पयान अभागे॥३॥

अर्थ ऐसा विचार करके जो तुम्हे अच्छा लगे सो करो। रामजी ने माता की शिक्षा सुनकर सुख पाया। राजा का ये वचन वाण के समान लगे। कहने लगे कि अभागे प्राण निकलते भी नही।

व्याख्या कैकेयी कहती है कि अब बात तुम्हारे ऊपर है। चाहे इन वसन भूषण भाजनो को धारण करो और वन जाओ चाहे न जाओ। इस व्यर्थ के प्रपञ्च मे कुछ रक्खा नही है। माँ की शिक्षा सुनकर रामजी को तो सुख हुआ। बडे शील

सङ्कोच में पड़े हुए थे। उसको तोड़ना न पड़ा। माँ ने रास्ता साफ कर दिया। परन्तु ये वचन जिसमे महाराज पर भी आक्षेप था, हितचिन्तकों पर भी आक्षेप था, सीताजी के रोकने के प्रयत्न का मूलच्छेदन करनेवाला था महाराज को बाण की भाँति लगे। वे कह चुके थे : जब लगि जिअउँ कहउँ कर जोरी। तब लगि जनि कछु कहेसि बहोरी। जानते थे कि जो बात इसके मुख से निकलेगी वह मर्म को काटनेवाली ही होगी। पर कैकेयी ने न माना। बाण की भाँति चोट करनेवाली वाणी फिर बोली : जीभ कमान बचन सर नाना। मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना। जनु कठोरपन धरे सरीरू। सिखइ धनुष बिद्या बड़ बीरू। महाराज इस चोट को न सह सके। अभागे प्राण जाते भी नहीं ऐसा कहकर मूर्च्छित हो गये।

लोग बिकल मुरिछित नरनाहू। काह करिअ कछु सूझ न काहू ॥
रामु तुरत मुनि बेषु बनाई। चले जनक जननी सिरु नाई ॥४॥

अर्थ : लोग विकल हो उठे। राजा मूर्च्छित हो गये। किसी को नहीं सूझता कि क्या करें। इधर रामजी ने तुरन्त मुनि वेष बनाया और पिता माता को सिर नवाकर चले।

व्याख्या : मुनि पट भूषण भाजन को रामजी के सामने ला रखने से कुछ कहने सुनने का मार्ग ही अवरुद्ध हो गया। अब तो यही शेष है कि रामजी उसे धारण करें और वन चले जायँ। अत. सब लोग विकल हो उठे। महाराज को मूर्च्छा हो गयी। रामजी ने इस अवसर से लाभ उठाया। जानते थे कि मुनिवेष में देखकर महाराज तत्काल प्राणत्याग करेंगे। अत इन्होने मुनिवेष धारण मे जल्दी की जिसमे महाराज की मूर्च्छितावस्था मे ही बाहर निकल जायँ और महाराज दशरथ तथा रानी कैकेयी को सिर नवाकर चल पड़े।

दो. सजि बन साजु समाजु सब, बनिता बंधु समेत।
बंदि बिप्र गुरु चरन प्रभु, चले करि सबहि अचेत ॥७९॥

अर्थ : वन का साज समाज सजकर स्त्री और भाई के सहित ब्राह्मण और गुरु की वन्दना करके तथा सबको अचेत करके चले।

व्याख्या : मुनि पट भूषण का धारण करना साज सजना है। भाई और स्त्री को साथ लेना और उन्हे भी मुनि पट भूषणयुक्त करना समाज सजना है। सो साज समाज ठीक करके सीता जी और लक्ष्मण जी के साथ चले। मुनि पट भूषण भाजन के सामने रख देने से महाराज मूर्च्छित हो गये और उनके धारण करने पर सब अचेत हो गये। चलने के पहिले सरकार ने अभेद्य कवच धारण कर लिया अर्थात् ब्राह्मण और गुरु को प्रणाम कर लिया। यथा : कवच अभेद्य बिप्र गुरु पूजा।

निकसि बसिष्ठ द्वार भये ठाढे। देखे लोग बिरह दव दाढे ॥
कहि प्रिय बचन सकल समुझाए। बिप्र बृंद रघुबीर बुलाए ॥१॥

अर्थ : निकलकर वसिष्ठजी के दरवाजे पर खड़े हुए। देखा कि सब लोग विरह के दावानल से झुलसे हुए हैं। प्रिय वचन कहकर सबको समझाया। फिर रघुवीर ने ब्राह्मणो को बुलाया।

व्याख्या : अवसि फिरब गुरु आयसु मानी। अब सरकार को लौटानेवाला केवल गुरु का आदेश ही है। ऐसा न हो कि कुछ दूर जाने के बाद गुरु की आज्ञा लेकर कोई पहुँचे कि लौट चलो। अतः गुरुजी के घर से ही प्रस्थान उचित है। दूसरे गुरु या ब्राह्मण के घर से ही प्रस्थान शास्त्र सम्मत है। अतः गुरुजी के द्वार पर खड़े हो गये। सब लोग साथ साथ चल रहे हैं। उनकी दशा देखा कि विरह के दावानल से मानो झुलसे हुए हैं। बिधि कैकेयी किरातिनि कीन्ही। जेहि दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्ही। सरकार ने प्रिय वचन कहकर सबको समझाया यथा :

दोहा : हितकारी भारी सबै सब विधिते तुम मोर।
समय देखि धीरज धरहु करहु न निज मन थोर॥
वेगि लौटिहै अवध हम केवल अवधि बिताय।
जाते नृप धीरज धरै सब मिलि करहु उपाय॥
भरत सुजान सुशील शुचि मोहि प्रिय प्रान समान।
धर्म शील पालिहि प्रजहि सब गुन भवन अमान॥

इस भाँति सबको समझाने के बाद रघुवीर ने ब्राह्मण समाज को बुलाया। सरकार धर्मवीर हैं, दानवीर हैं, दयावीर हैं : यहाँ उन्ही गुणों से अधिक काम लिया गया है। अतः श्री गोस्वामीजी उनके लिए बार बार रघुवीर शब्द का प्रयोग करते हैं।

गुरु सन कहि बरषासन दीन्हे। आदर दान विनय बस कीन्हे॥
जाचक दान मान संतोषे। मीत पुनीत प्रेम परितोषे॥२॥

अर्थ : गुरुजी से कहकर वर्ष भर के लिए भोजन दिया और उन्हे आदर दान और विनय से वश कर लिया। तत्पश्चात् मंगनो को दान और सम्मान से सन्तुष्ट किया और मित्रों को पवित्र प्रेम से परितोष किया।

व्याख्या : एक वर्ष से अधिक अन्न रखने की आज्ञा ब्राह्मणों को शास्त्रतः नही है। अतः विप्रवृन्द को वर्षासन दिया। सरकार नित्य अन्न दान करते है। वन में दान के लिए अन्न नही मिलेगा। अतः प्रभूताम्न दान आज किया जा रहा है। अव अपने महल मे न जायँगे। अतः गुरुजी से कहा कि इन लोगो को अन्न दे दिया जाय। ब्राह्मणो के वश करने की विधि कहते हैं कि ये आदर दान और विनय से वश होते हैं। इन्हे वश करने की दूसरी विधि नही है। ब्राह्मणो के वश करने मे इनसे अतिरिक्त दूसरी विधि के प्रयोग से राजा भानुप्रताप मारे पड़े।

याचक को दान देनेवाले तो अनेक है। पर उनका सम्मान करनेवाला कौन है? और सम्मान ही सबसे बड़ा दान है। यथा : तुलसी कहत पुकारि कै सुनहु सकल

दै कान। भूमिदान गजदान ते बडो दान सम्मान। सो सरकार याचको को भी सम्मान पूर्वक दान दे रहे है। जो सरकार के मित्र हैं उन्हे किस बात की कमी है। ये तो केवल प्रेम के भूखे है। उन्हे पवित्र प्रेम से परितुष्ट किया अर्थात् अत्यन्तप्रेम से मिले।

दासी दास बोलाइ बहोरी। गुरहि सौपि बोले कर जोरी॥
सब कै सार सभार गोसाई। करबि जनक जननी की नाई॥३॥

अर्थ : फिर दासी दासो को बुलाया। उन्हे गुरुजी को सुपुर्द करके हाथ जोडकर बोले कि हे गोसाईं! इनकी देखभाल माँ बाप की भाँति कोजियेगा।

व्याख्या : सरकार को दास बडे प्रिय है। यथा : तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निजदासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। अत उन्हे गुरुजी को सौपते हैं और हाथ जोडकर विनय करते हैं कि इनकी देखभाल माँ बाप को भाँति कीजियेगा। भाव यह कि बाप माँ बच्चो के सब अपराध सहन करते हैं। मैंने भी इनके अपराधो को बाप माँ की भाँति सहन किया है और प्रतिपालन किया है। उसी भाँति आप भी इनके अपराधो को क्षमा करके इनका पालन करियेगा इससे यह पता चलता है कि सरकार ने अपनी निजी सम्पत्ति को गुरुजी के सुपुर्द किया।

बारहि बार जोरि जुग पानी। कहत रामु सब सन मृदु बानी॥
सोइ सब भाँति मोरि हितकारी। जेहि ते रहइ भुआल सुखारी॥४॥

अर्थ : बार बार हाथ जोडकर रामजी सबसे कोमल वाणी से कहते है कि वही मेरा सब प्रकार से हितकारी हैं जिससे महाराज सुखी रहे।

व्याख्या : रामजी कहते हैं कि आपलोग सभी मेरे हितकारी है। पर सब प्रकार से मेरा हितकारी वही है जो महाराज को सुख सम्पादन मे कृतकार्य हो। भाव यह कि रामजी महाराज को प्रजावर्ग के सुपुद कर रहे हैं। अत सबसे यही विनय हाथ जोड़कर बार बार कह रहे है।

दो. मातु सकल मोरे बिरह, जेहि न होहि दुख दीन।
सोइ उपाय तुम्ह करेहु सब, पुरजन परम प्रबीन॥८०॥

अर्थ : मेरी सब माताएँ मेरे विरह से जिसमे दुःख से दीन न हो हे परम प्रवोण पुरजन! वही उपाय आप लोग करियेगा।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि हे पुरजन! आप लोग परम प्रवीण है। मेरे विरह मे माताएँ सब दुःखी हैं। वे लोग जब सुनेंगी कि प्रजा रामजी के विरह से अत्यन्त दुःखी हैं तो उनके दुःख का पारावार न रहेगा। वे दुःख से दीन हो जायेंगी। अत: आप लोग मेरे चले जाने पर शोक न मनाइयेगा। यथा : कौसल्यादि सकल महतारी। तेउ प्रजा सुख होहि सुखारी। आप लोग आपस मे मिलकर सुख से रहने की चेष्टा कीजियेगा।

रामजी पिता माता को प्रजावर्ग के सुपुर्द कर रहे है। उन्हे भय है कि उनके चले जाने पर प्रजा महाराज की निन्दा करेगी। विरोध करेगी। भरत के राज्य का स्वागत नही करेगी। इससे माता पिता का कष्ट अधिक बढ जायगा। अत. उनको सुख पहुँचाने का भार रामजी प्रजा पर ही छोड रहे है।

एहि विधि राम सबहि समुझावा। गुरु पद पदुम हरषि सिरु नावा॥
गनपति गौरि गिरीसु मनाई। चले असीस पाइ रघुराई॥१॥

अर्थ. इस प्रकार रामजी ने सबको समझाया। गुरुजी के चरणकमल मे हर्षित होकर सिर नवाया और गणेश गौरी और महेश को मनाकर आशीर्वाद पाकर रघुराज चल पडे।

व्याख्या: कहि प्रिय वचन सकल समुझाये से उपक्रम करके विप्रमण्डली याचकगण, दासी, दास, प्रजावर्ग से यथोचित मिलना कहा। अब एहि विधि राम सबहि समुझाये कहकर इस प्रसङ्ग का उपसहार करते है। अब गुरुजी को प्रणाम करके प्रस्थान करना कहते है। प्रस्थान के समय हर्ष का होना मङ्गल सूचक है। छूट जानि बन गमन सुनि उर अनद अधिकान कहा था। सुनने से हर्ष हुआ था। अब तो वस्तुत छुट्टी हो गयी। अत सरकार हर्षित है। गणपति गौरी गिरीश प्रत्यक्ष नही हैं। अत उनकी मानसवन्दना कहते है। स्वय स्त्री और अनुज के साथ यात्रा कर रहे हैं। अत अपने इष्टदेव की वन्दना भी स्त्री पुत्र के साथ ही करते हैं। गणपति गौरी गिरीश का ध्यान परिपूर्ण ब्रह्म का ध्यान है। शिवजी निर्गुण ब्रह्म है। उनकी गोद मे मूलशक्ति गौरी है और उनके गोद मे सगुण ब्रह्म गजानन है। गुरुजी ने प्रत्यक्ष आशीर्वाद दिया और गणपति गौरी गिरीश ने अन्तर्हित होकर आशीर्वाद दिया।

रामु चलत अति भयेउ विषादू। सुनि न जाइ पुर आरत नादू॥
कुसगुन लक अवध अति सोकू। हरष विषाद विवस सुरलोकू॥२॥

अर्थ. रामजी के चलने के समय बडा विषाद हुआ। नगर का आर्त्तनाद सुना नही जाता था। लङ्का म अपशकुन होने लगे। अयोध्या मे अति शोक छा गया। देवता लोग हर्ष और विषाद के वश हो गये।

व्याख्या लोगो को अति विषाद तो उसी समय हुआ जब रामजी माता से विदा माँगने चले। यथा अति बिषाद बस लोग लोगाई। गये मातु पहँ राम गोसाँई। पर रामजी को वन जाते देखकर वह विषाद असह्य हो गया। लोग फूटकर रोने लगे। नगर भर मे ऐसा आर्तनाद होने लगा कि सुनते नही बनता था। सुननेवाले का कलेजा फटने लगता था।

सरकार की यह यात्रा वस्तुत लङ्काविजय यात्रा का पूर्व रूप था। अत लङ्का मे अपशकुन हुए। अयोध्या मे अति शोक छा गया। कवि ने यहाँ यात्रा की दोनो सीमाओ की व्यवस्था कही। अभिषेक मे विघ्नाचरण करनेवाले देवताओ

को तो प्रसन्नता होनी चाहती थी। पर इस आर्तनाद से उनके हर्ष मे भी शोक का अनुवेध हो गया।

गई मुरुछा तब भूपति जागे। बोलि सुमंत्रु कहन अस लागे॥
रामु चले वन प्रान न जाहीं। केहि सुख लागि रहत तन माहीं॥३॥

अर्थ : तब मूर्च्छा गयी। राजा जगे। सुमन्त्र को बुलाकर कहने लगे कि राम तो वन को चले पर प्राण नही जा रहे है। किस सुख के लिए अब शरीर मे टिके हुए हैं।

व्याख्या : पुर मे आर्तनाद जब होने लगा तब महाराज को मूर्च्छा गयी। जागकर सुमन्त को बुलाया। महाराज की बडी आस्था सुमन्त्र पर है। भूपति कहने का भाव यह कि प्रजा का आर्तनाद सुनकर जाग उठे। सुमन्त्र भी कही अचेत पड़े थे। बुलाने पर आये। राजा जब मूर्छा से जगे तो रामजी को नही पाया। नगर के आर्तनाद से जान लिया कि रामजी जा रहे हैं। सुमन्त्र से कहने लगे कि प्राणप्यारे राम तो जा रहे हैं। पर प्राण उनका साथ नही दे रहा है। एक ही तो अभिलाषा मेरे मन मे थी वह बुरी तरह से भङ्ग हो गयी। अब किस सुख की आशा से प्राण शरीर मे टिके हुए हैं।

एहि तें कवन ब्यथा बलवाना। जो दुखु पाइ तजहिं तनु प्राना॥
पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू। लै रथु संग सखा तुम्ह जाहू॥४॥

अर्थ . इससे कौन सी पीड़ा बलवती है। जिस दु ख के पाने से प्राण शरीर को छोड़ता है। फिर धैर्य धरकर राजा कहते हैं कि हे सखे! तुम रथ लेकर साथ जाओ।

व्याख्या : महाराज को शिरोच्छेदन से अधिक पीडा राम विरह मे है। यथा : माँगु माथ अबही देउँ तोही। रामबिरह जनि मारेसि मोही। अत मन्त्री से पूछते हैं कि क्या इस पीडा से भी अधिक कोई दु ख है जिसे पाकर प्राण शरीर छोडता है? मन्त्री से कोई उत्तर न पाकर धैर्य धारण करके राजा ने कहा कि मित्र! तुम रथ लेकर साथ जाओ। भाव यह कि तुम्हारा जाना मेरे जाने के बराबर है। रामजी के हृदय मे तुम्हारा बड़ा आदर है। यथा राम सुमन्त्रहिं आवत देखा। आदरु कीन्ह पिता सम लेखा। अत. तुम स्वयं रथ लेकर रामजी के साथ जाओ।

दो. सुठि सुकुमार कुमार दोउ, जनकसुता सुकुमारि।
रथ चढाइ देखराइ बनु, फिरेउ गये दिन चारि॥८१॥

अर्थ : दोनो कुमार अति सुकुमार हैं और जनकसुता सुकुमारी हैं। सो रथ चढाकर वन दिखलाकर चार दिनो म लौट आना।

व्याख्या : श्रीमद्भागवत मे जनकनन्दिनी से अधिक सुकुमार सरकार को माना है। यथा . प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्याम् मृदितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।

इसलिए दोनों राजकुमारों को सुठि सुकुमार और जनकसुता को केवल सुकुमारी कहते हैं। भाव यह कि ये लोग पैदल चलने में समर्थ नहीं। इन्हे रथ पर चढ़ाकर वन के साथ इनका चक्षु:संयोग मात्र करा दो और चार दिन मे लौटा लाओ। कह देना कि वनवास की अवधि में महाराज ने सङ्कोच करके केवल चार दिन का कर दिया। अत: अब घर लौट चलो।

जौ नहि फिरहि धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढ़ ब्रत रघुराई॥
तौ तुम्ह बिनय करेहु करजोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेसकिसोरी॥१॥

अर्थ : यदि दोनो भाई न फिरैं क्योकि धीर हैं, सत्यसन्ध है, दृढ़व्रत हैं, रघुराई हैं तो तुम हाथ जोड़कर विनय करना कहना कि प्रभो ! मिथिलेश की बेटी को लौटा दीजिये।

व्याख्या : चार कारण न फिरने के है। रघुराई है : रघुकुल की प्रतिष्ठा बिगड़ने न देंगे। धीर है : सङ्कट से मुँह न मोड़ेंगे। सत्यसन्ध हैं : कैकेयी से वचनबद्ध भी हो चुके है। मुनिव्रत ग्रहण कर लिया है। दृढव्रत होने के कारण उसे न छोड़ेंगे।

महाराज मिथिलेशकिशोरी के लिए अतिआर्त है। सुमन्त्र से कहते हैं कि पहिला प्रयत्न तो सबके लौटाने के लिए करना। असफल होने पर तुम हाथ जोड़कर विनय करना। तुम्हारी विनय रामचन्द्र न टालेंगे। कहना कि प्रभो आप समर्थ हैं। आप जानकी को लौटा सकते हैं। आपकी आज्ञा पतिदेवता सुतीयमणि कभी नही टालेंगी। मैने जानकी को तो समझाया। पर रामचन्द्र को जानकी के लिए आज्ञा देने की बात कहने का अवसर न मिला।

जब सिय कानन देखि डेराई। कहेउ मोर सिख अवसरु पाई॥
सासु ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि फिरिअ बन बहुत कलेसू॥२॥

अर्थ : जब सीता वन देखकर डरे तो अवसर पाकर मेरी शिक्षा कहना कि सास ससुर ने ऐसा कहा है कि बेटी ! लौट चलो वन मे बड़ा क्लेश है।

व्याख्या : अब रह गयी यह बात कि यदि वह किसी का कहना पातिव्रतधर्म को अग्रसर करके न माने तब तुम अवसर देखना। अवसर पर की कही हुई बात प्रभाव डाले बिना नही रहती। सीता नही जानती कि वन कैसा है। वह उसे एक बड़े बगीचे के रूप मे समझती है। वह स्वभाव से बड़ी भीरु है। चित्र मे लिखे हुए बन्दर को देखकर डरती है। वन देखकर अवश्य डरेगी। वही अवसर मेरी शिक्षा के कहने का है। साथ ही साथ कौसल्या की ओर से भी कहना। क्योकि ससुर से अधिक सास का प्रभाव वधू पर होता है। उससे दोनों की ओर से कहना कि बेटी ! फिर चलो अभी तो तुमने वन में प्रवेश किया है। वन में बड़ा कष्ट मिलता है। उत्तरोत्तर कष्ट बढता ही जायगा। तुम सहन के योग्य नहीं हो।

पितुगृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी। रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी॥
एहि बिधि करेहु उपाय कदंबा। फिरइ त होइ प्रान अवलंबा॥३॥

अर्थ चाहे बाप के घर चाहे ससुराल जहाँ तुम्हारी रुचि हो वहाँ रहना। इस भाँति बहुत से उपाय करना। यदि लौट आवे तो प्राण को [1]सहारा मिल जाय।

व्याख्या कुलवधू माता पिता और श्वसुर सास की सम्मति से कभी पितृगृह मे रहती है और कभी पतिगृह मे रहती है। महाराज ने कहलाया कि तुम्हारी जबतक रुचि हो तबतक अयोध्या मे रहना। जबतक रुचि हो तबतक जनकपुर रहना। मेरा यह आग्रह नही है कि तुम वन से लौटकर अयोध्या मे ही रहो। जहाँ रहने से जितने दिनो तक जी बहले तबतक अपनी रुचि के अनुसार रहना।

इस प्रकार से प्रलोभन देना और जो जो उपाय तुम्हे उपयुक्त प्रतीत हो सो सब करना। यदि सीता किसी प्रकार से लौट आवे तो मेरे प्राण को अवलम्ब मिल जाय। भाव यह कि महाराज को सीताजी भी उतनी ही प्रिय हैं जितने कि रामजी हैं। श्रुति कहती है कि स्त्री पुरुष का आधा शरीर है। अत सीताजी के रहने से मानो आधे शरीर से वे ही विद्यमान हैं। अत प्राणवियोग न होगा। कष्ट चाहे जितना हो।

नाहिं त मोर मरनु परिनामा। कछु न बसाइ भये बिधि बामा॥
अस कहि मुरुछि परा महि राऊ। राम लखनु सिय आनि देखाऊ॥४॥

अर्थ नही तो इसका परिणाम मेरी मृत्यु ही है। विधाता के बायें होने से कोई वश नही चलता। ऐसा कहके राजा मूर्च्छा खाकर गिर गये कि राम लक्ष्मण और सीता को लाकर दिखला दो।

व्याख्या सीता के लौट आने की आशा से ही मैं जी रहा हूँ। राम लक्ष्मण के लौटने की आशा तो बहुत कम है। यदि सीता भी नही लौटी तो इसका परिणाम यह होगा कि मै मर जाऊँगा। विधाता बायें होने पर कोई वश नही चलता। कहते कहते महाराज अधीर हो गये। बोल कि राम लक्ष्मण और सीता को लाकर दिखा दो और मूर्च्छित होकर गिर गये। पहिले भी मूर्च्छित थे और इतनी बात कहके फिर मूर्च्छित हो गये। महाराज की हालत ऐसी नाजुक हो रही है।

दो पाइ रजायसु नाइ सिरु, रथु अति बेग बनाइ।
गयउ जहाँ बाहेर नगर, सीय सहित दोउ भाइ॥८२॥

अर्थ राजाज्ञा पाकर सिर नवाया और अत्यन्त त्वरा के साथ रथ जोतकर नगर के बाहर जहाँ सीता के सहित दोनो भाई थे वही गये।

व्याख्या सुमन्त्र ने महाराज की मूर्च्छा की ओर ध्यान नही दिया। ध्यान देनेवाले बहुत लोग थे। रामजी के पास जल्दी पहुँचने की आवश्यकता थी। महाराज को सिर नवाया और फुरती से रथ जोतकर चल। तबतक रामजी नगर के बाहर

---

१ पूर्व जन्म में युगल मूर्ति वरद होकर प्रकट हुई थी। अत एक के रह जाने से प्राण को सहारा मिलने की बात कह रहे हैं।

पहुँच चुके थे। रामजी का एक पग पैदल चलना सुमन्त्रजी को असह्य था। राजाज्ञा मात्र की देर थी।

तब सुमंत्र नृप बचन सुनाए। करि बिनती रथ रामु चढाए ॥
चढि रथ सीय सहित दोउ भाई। चले हृदयँ अवधहि सिरु नाई ॥१॥

अर्थ : तब सुमन्त्र ने राजा का वचन सुनाया और प्रार्थना करके रामजी को रथपर चढाया। सीताजी के सहित दोनो भाई रथ पर चढ़कर अवध को प्रणाम करके चले।

व्याख्या : सुमन्त्र ने रथपर से ही कहा कि महाराज ने आपके लिए रथ भेजा है और कहा है कि आप लोग रथ पर चढकर जायँ पैदल न जायँ और अपनी ओर से भी प्रार्थना की। सरकार रथ पर चलना उचित नही समझते थे। सुमन्त्रजी ने विनती की कि आवश्यकता पड़ने पर मुनिजी रथ पर चढते ही है। मुनिव्रत मे रथ पर चढना निषिद्ध नही है। यथा : तेहि रथ रुचिर बसिष्ठ कहँ हरषि चढ़ाइ नरेस।

तब दोनो भाई सीताजी के सहित रथ पर सवार हुए और चले। अवध को प्रणाम किया। यहाँ अवध से अयोध्या नगर अभिप्रेत है अयोध्या प्रान्त नही। कर्मणा और वाचा प्रणाम करने से कही लोगो की यह धारणा न हो कि अब ये अयोध्या न लौटेंगे। अतः मनसे ही प्रणाम किया। नगर के बाहर पहुँचने पर रथ आया। अत. नगर को प्रणाम करते हैं। अयोध्या मोक्षपुरी है। जन्मभूमि है। महाप्रभावा है। अत प्रणाम किया।

चलत रामु लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा ॥
कृपासिधु बहुबिधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेम बस पुनि फिरि आवहि ॥२॥

अर्थ : राम को चलते अवध को अनाथ देखकर लोग विकल होकर साथ लग गये। कृपासिन्धु रामजी बहुत समझाते है। लोग फिर भी जाते हैं पर प्रेमवश फिर लौट आते हैं।

व्याख्या : रामजी को इस प्रकार जाते देखकर लोगो ने विचारा कि अवध तो अनाथ हो गया। यथा : मैं बन जाउँ तुम्हहि लै साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा। अतः लोग विकल होकर अनाथ नाथ के साथ लगे : अयोध्या खाली पड़ जाती है। लोग सरकार के साथ वनवास के लिए चले।

सरकार कृपासिन्धु हैं। लोगो के कष्ट का ध्यान करके उन्हे लौटने के लिए अनेक प्रकार से समझाते है। यथा :

सवैया : जिन पाल्यो सदा प्रिय प्रान समान प्रजातिनको तजिबो नहि नीको।
यदि सग चलौ हमरे नृपको तो परै अति उज्ज्वलहू जस फीको ॥
नहि धर्म न अर्थ न काम सधै सबही विधिते असमञ्जस जी को।
बिनती मन मानि फिरो घर को सबही प्रतिपालहु धर्म गृही को ॥

लागति अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अँधियारी ॥
घोर जंतु सम पुर नर नारी। डरपहि एकहि एक निहारी ॥३॥

अर्थ अयोध्या भारी भयावनी सी मालूम पडती है। मानो अँधेरी कालरात्रि है। पुर के नर नारी मानो हिंसक जन्तु हैं। एक दूसरे को देखकर डर रहे है।

व्याख्या : सरकार के समझाने से लोग समझ तो जाते है और नगर मे लौट भी आते हैं। पर अयोध्या जो सदैव सोहावनी तथा मङ्गलमय थी यथा यद्यपि अवध सदैव सोहावनि। रामपुरी मगलमय पावनि। सो आज भारी भयावनी मालूम पडती है। मानो वह कालरात्रि है। कालरात्रि स्वभाव से ही भयवानी है। तिसपर अँधेरी यदि हो तो भारी भयावनी हो जाती है। इसी भाँति अयोध्या कालरात्रि सी हो गयी और मानो घोर जन्तुओ से व्याप्त होने से और भारी भयावनी हो गयी।

जो वहाँ के वासी थे वे नररत्न थे। यथा मनिगन पुर नरनारि सु जाती। सुचि अमोल सुन्दर सब भाँती। सो आज व्याघ्र सिंहादि हिंसक जन्तुओ के समान हो गये। जो एक दूसरे को देखकर डरा करते हैं। व्याघ्र सिंहादि हिंसक जन्तुओ मे कभी मेल होता नही। ये गोल बाँधकर रहते नही देखे जाते। अत एक दूसरे से डरा करते है। यही गति अवध निवासियो की हो रही है एक दूसरे को देखकर डर रहे हैं।

घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता ॥
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाही। सरित सरोवर देखि न जाही ॥४॥

अर्थ घर मानो श्मशान है। कुटुम्बी लोग मानो भूत हैं और बेटे हित तथा मित्र मानो यमदूत हैं। बगीचों मे पेड और लता कुँभिला रही हैं। नदी और तालाब देखते नही बनते।

व्याख्या प्राणो के प्राण जीवो के जीव सुख के सुख राम के न होने से आज अयोध्या की यह दशा है कि लोगो को अपने अपने घर श्मशान की भाँति भयानक और अपवित्र मालूम हो रहे हैं। कुटुम्बी लोगो पर भूत की भावना हो रही है। बेटे सम्बन्धी और मित्र तो मानो साक्षात् प्राणहारक यमदूत से दिखायी पडते हैं। यह दशा चेतन प्राणियो की हो रही है। घर की यह दशा देखकर जी बहलाने के लिए बाग मे जाते है तो वहाँ नित्य सीचे जानेवाले वृक्ष और लताओ को कुम्हिलाया हुआ देखते है। पहिले नदी और तालाब देखते ही बनते थे। सो आज देखते नही बनते। भाव यह कि सरकार के चले जाने से नगर की प्रकृति मे भयानक परिवर्तन हो गया।

दो हय गय कोटिन्ह केलिमृग, पुरपसु चातक मोर।
पिक रथाग सुक सारिका, सारस हस चकोर ॥८३॥

अर्थ · हाथी घोड़े जिनकी सख्या करोडो की है और खेल के लिए जिलाये हुए पशु तथा ग्राम्य पशु, चातक, मोर, कोयल, चक्वे, तोता, मैना, सारस, हस और चकोर।

व्याख्या : महाराज की सेना मे करोडो हाथी घोडे है तथा नागरिको के यहाँ भी हाथी घोडे हैं। केलिमृग अजायबखाने तथा धनियो के बाग मे जिलाये हुए हैं। ग्राम्य पशु गाय, भैंस, कुत्ता आदि चातक, मोर, कुहू कुहू ध्वनि करनेवाली कोकिलाएँ जल के सन्निकट रहनेवाले चकवा चकई तथा मनुष्य की बोली के अनुकरण करनेवाले तोता मैना मकान के ऊपर शोभा देनेवाले सारस और हस तथा चन्द्र के प्रेमी चकोर इन सबो मे कोई भी स्थिर रहनेवाले नही हैं।

राम वियोग विकल सब ठाढे। जहँ तहँ मनहु चित्र लिखि काढे ॥
नगरु सफल बनु गहबर भारी। खग मृग बिपुल सकल नरनारी ॥१॥

अर्थ रामजी के वियोग से विकल सब जहाँ के तहाँ खडे हैं। मानो चित्र मे लिखे हुए हैं। नगर मानो फलवाला घना वन है और सब नर नारी मानो बहुत से पशु पक्षी हैं।

व्याख्या · ये पशुपक्षी भी रामजी के वियोग से विकल होकर जो जहाँ थे वही खडे हैं। कोई हिलते डोलते या बोलते नही। मालूम होता है कि ये सजीव नही हैं चित्र मे खीचे हुए हैं। ऐसा भयानक सन्नाटा छाया हुआ है। नगर मे चहल पहल सब कुछ रामजी के कारण था। जहाँ राम नही वहाँ आराम कहाँ ?

नगर को सफल वन कहा। क्योकि फल रहित वन मे पशु पक्षी नही रहते। सफल वन पशु पक्षी से भरा रहता है। पशु वृक्ष के नीचे रहते हैं और पक्षी ऊपर रहते हैं। नगर मे भी अनेक भूमिका मरातिव के मकान हैं। सब मे लोग रहते हैं। इसलिए पशुपक्षी से उपमित किया।

बिधि कैकेई किरातिनि कीन्ही। जेहि दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्ही ॥
सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब व्याकुल भागी ॥२॥

अर्थ · विधाता ने कैकेयी को किराती बना दी। जिसने दु सह दावानल : वन की आग दसो दिशा मे लगा दी। लोग रामजी की विरहाग्नि न सह सके। सो व्याकुल होकर भाग खडे हुए।

व्याख्या · आज भी किराती अपने बच्चो को रोग विनिर्मुक्त करने के लिए वन मे आग लगा देती है। उनको ऐसी धारणा है कि ऐसा करने से लडके का लाभ होगा। कैकेयी ऐसी भली और समझदार रानी को किराती सा बना देना विधाता की ही करामात थी। ये ही चलते फिरते हस को काग बना सकते हैं। यथा बिचरत हस काग किय जेही। पहिले कैकेयी की लगायी हुई आग चारो ओर थी। यथा · मृगी देखि दव जनु चहुँओरा। अब वही आग दसो दिशा मे फैल गयी। वन मे दसो दिशा मे आग देखकर जैसे पशु पक्षी अपना अपना बसेरा

छोडकर भाग चलते हैं इसी भाँति विरहाग्नि से सारे नगर को भस्मीभूत होते देखकर सब निवासी भाग खडे हुए। प्रयत्न किया कि इस विरहाग्नि को सह ले जायँ। पर सहने मे असमर्थ हो गये।

सबहिं बिचारु कीन्ह मन माही। राम लखनु सिय बिनु सुख नाही॥
जहाँ राम तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू॥३॥

अर्थ सबने मन मे विचार किया कि राम लक्ष्मण और सीता के बिना सुख नही। जहाँ राम होगे वही सब समाज रहेगा। बिना रघुवीर के अयोध्या मे कोई काम नही है।

व्याख्या . मेल किसी से नही है। यथा : डरपहिं एकहिं एक निहारी। अत इकट्ठे होकर सम्मति नही कर सकते। पर सबके मन मे एक ही विचार उदय हुआ कि राम लक्ष्मण और सीता के बिना सुख हो नही सकता। सब लोगो ने नगर का घर का और अपना हाल देख लिया। अत' इसी निर्णय पर पहुँचे कि सब सुख तो सीता राम लक्ष्मण के रहने ही मे था। सब सामग्री तो ज्यो की त्यो मौजूद है। पर दु ख ने डेरा जमा लिया और बिना सुख के कोई जी नही सकता।

अत जहाँ रामजी रहेगे वही सब समाज भी रहेगा। बिना रामजी के अयोध्या मे रहने का कोई प्रयोजन नही है। यहाँ रहकर भी हम किसी को सुख नही दे सकेंगे। क्योकि स्वय दु ख से विकल रहेगे।

चले साथ अस मन्त्रु दृढाई। सुर दुर्लभ सुखु सदन बिहाई॥
राम चरन पकज प्रिय जिन्हही। विषय भोग बस करहिं कि तिन्हही॥४॥

अर्थ : ऐसा मन्त्र दृढ करके सुर दुर्लभ सुखवाले घरो को छोडकर : रामजी के साथ चले। रामजी के चरण कमल जिन्हे प्रिय है उन्हे क्या विषयभोग वश कर सकता है ?

व्याख्या . घर जल्दी किसी से नही छूटता। अत्यन्त दु ख मिलने से ही आदमी घर को छोडता है। अयोध्या मे तो सबको सुरदुर्लभ सुख प्राप्त है। पर उन्हे वे सुख ही बिना रामजी के महादु खमय प्रतीत होते हैं। अत. सबने अपने मन मे यहा ठान ली कि रामजी के साथ ही वन चलना चाहिए। बात यह है कि जिन्हे रामजी के चरण मे रति है उन्हे विषयभोग वश कर नही सकते। उन्हे स्वत वशीकार सज्ञा वैराग्य की प्राप्ति हो जाती है। सारे ससार पर विषय भोग का अधिकार है केवल रामभक्त पर नही है।

दो. बालक वृद्ध बिहाइ गृह, लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवासु किय, प्रथम दिवसु रघुनाथ॥८४॥

अर्थ : बाल वृद्ध को घर छोडकर सब लोग साथ हो गये। पहिले दिन रामजी का निवास तमसा के किनारे हुआ।

व्याख्या : बालक वृद्ध को कोई साथ नहीं लेता है। क्योंकि उनके साथ लेने से रामजी का साथ ही न हो सकेगा। कितना भी धीरे रथ चले पर बालक वृद्ध तो उस तक नहीं पहुँच सकते। अयोध्या से चलकर पहिले दिन सरकार तमसा के किनारे ठहरे। अर्थात् चैत्र सुदी १० दसमी पुष्य नक्षत्र में सरकार ने वनयात्रा की। इसी दिन राज्याभिषेक होनेवाला था।

रघुपति प्रजा प्रेमवस देखी। सदय हृदय दुखु भयउ बिसेषी ॥
करुनामय रघुनाथ गोसाईं। बेगि पाइअहिं पीर पराई ॥१॥

अर्थ : रामजी ने प्रजा को प्रेमवश देखा। हृदय में दया है इसलिए विशेष दुःख हुआ। रघुनाथ गोसाईं करुणामय है। पराये दुःख को शीघ्र ही प्राप्त करते हैं।

व्याख्या : रामजी ने देखा कि प्रजा प्रेम के वश है। मुझे छोड़ना नहीं चाहती। बड़े बूढ़े छोटे बच्चे सुख सम्पत्ति को छोड़कर मेरे साथ रहना चाहते हैं। ऐसी अवस्था में दुःख होना स्वाभाविक है। पर सरकार के दयार्द्र हृदय में विशेष दुःख हुआ। सरकार पानी पीकर रह गये। प्रजावर्ग ने भी उन्हीं का अनुसरण किया। रघुकुल के नाथ हैं। हृषीकेश हैं। पराये दुःख से शीघ्र ही द्रवीभूत हो जाते हैं। रघुनाथ हैं। अतः प्रजा को दुःखी नहीं देख सकते। इन्द्रियों के स्वामी हैं। अतः पराये दुःख की अनुभूति में इन्हें देर नहीं लगती।

कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए। बहुबिधि राम लोग समुझाए ॥
किए धरम उपदेश घनेरे। लोग प्रेम बस फिरहिं न फेरें ॥२॥

अर्थ : प्रेम के साथ सुन्दर कोमल वचन कहकर बहुत विधान से रामजी ने लोगों को समझाया। बहुत सा धर्मोपदेश किया। परन्तु लोग प्रेम के वश थे। फेरने से फिरते नहीं थे।

व्याख्या : प्रेममय सुन्दर कोमल वचन द्वारा रामजी ने समझाया। धर्मोपदेश किया। यथा :

तुम सुजान जनि धर्म को मेटौ मिलि मर्याद।
बाल वृद्ध ह्वै हैं करत घर में अधिक विषाद ॥
धर्म पिता माता धरम धर्म साईं सुत भाय।
जाते निबहै धर्म सोइ सब मिलि करहु उपाय ॥
होइ अवमि वन गवन तें गृही धर्म को लोप।
जो तजि मैं वन जात पुनि होइ तासु आरोप ॥
राउ निरादर उचित नहिं धरहु प्रीति उर गोय।
हमहु प्रजा तुमहू प्रजा करहु जो आयसु होय ॥
कष्टित तुम सबको निरखि मोहि कष्ट अति होय।
तजि विचार वन गवन को भवन जाहु सब कोय ॥

परन्तु लोग प्रेम के वश थे। प्रभु के फेरने पर भी नहीं फिरे।

सीलु सनेहु छाँडि नहिं जाई। असमजस बस भे रघुराई ॥
लोग सोग श्रम बस गए सोई। कछुक देवमाया मति मोई[१] ॥३॥

अर्थ : शील सनेह छोडते नही बनता। रामजी बड़े असमञ्जस दुविधा मे पड गये। लोग शोक और परिश्रम के वश होकर सो गये। देवताओ की माया से भी कुछ मोहित हुए।

व्याख्या को रघुवीर सरिस ससारा। सील सनेह निबाहनि हारा। रामजी का स्वभाव है कि शील और स्नेह का निर्वाह करते हैं। इन लोगो के साथ चलने का अर्थ ही यही है कि घर लौटो। नही तो जहाँ तुम बसोगे वही हम लोग भी बसेंगे। इन सबका साथ ले जाना सम्भव नही और साथ ये छोडते नही। बिना शील स्नेह तोडे साथ ये छोड नही सकते। अत रामजी असमञ्जस मे पड गये।

इधर लोग सवेरे से ही शोक कर रहे हैं। यथा 'जो जहँ सुनै धुनै सिर सोई। बड बिषाद नहिं धीरज होई। तिस पर रथ के साथ साथ आये हैं। इसलिए थके हुए थे। सब के सब सो गये। उनकी नीद की बेखबरी को देवताओ की माया ने बढा दिया। क्योकि इन लोगो का साथ रहना रामजी के वन जाने मे विघ्नरूप था।

जबहिं जाम जुग जामिनि बीती। राम सचिव सन कहेउ सप्रीती ॥
खोजु मारि रथु हाँकहुँ ताता। आन उपाय बनिहि नहिं बाता ॥४॥

अर्थ जब दो पहर रात्रि बीत गयी तब रामजी ने मन्त्री से प्रेमपूर्वक कहा कि हे तात! इस भाँति रथ चलाओ कि पता न चले। दूसरे उपाय से बात नही बनेगी।

व्याख्या रामजी असमञ्जस मे थे। सोये नही। जब आधी रात बीती देखा कि तमाम सोता पडा हुआ है। कोई सगबगाता तक नही। तब प्रीति के साथ सुमन्त्र से कहा। सुमन्त्रजी पिता के सखा हैं। अत उन्हे आज्ञा नही देते। प्रीति के साथ कहते हैं कि इस समय यदि इस भाँति रथ आप हाँके कि लीक देखने पर किसी को पता न चल कि रथ किधर गया। तभी हमारा साथ इन लोगो से छूट सकता है। दूसरा उपाय कोई है नही। यह सारथि का पाण्डित्य है कि रथ को घुमाकर मार्ग मे पहिले की पडी हुई लीका से रथ की लीक को ऐसा मिला द कि ढूँढनेवाला यह निश्चय न कर सके कि रथ ने किस लीक का अनुसरण किया है।

दो राम लखनु सिय जान चढि, सभु चरन सिरु नाइ।
सचिव चलायेउ तुरत रथ, इत उत खोज दुराइ ॥८५॥

---

१. यहाँ हकार का लोप होकर मोही का मोई रूप हो गया। यथा प्रकृतिप्रत्यय-सन्धिलोपविकारागमाश्च वर्णानाम्।

अर्थ : राम लक्ष्मण और सीता ने रथ पर चढकर शिवजी के चरणो में सिर नवाया और मन्त्री ने इधर उधर के पता को छिपाकर तुरन्त रथ चला दिया।

व्याख्या : यह पता किसी को न था कि रामजी किस वन में और किस रास्ते से जावेंगे। सब लोग साथ हो गये थे कि चाहे जहाँ जायँ हम लोग साथ न छोड़ेंगे। जहाँ जाना था सो सुमन्त्रजी से कह दिया। वे उधर रथ ले गये। पर पहिले रथ को इधर उधर ऐसा घुमाया कि पता न चल सके कि रथ किधर गया। चोरी से जा रहे हैं। इसलिए तस्कराणां पति को नमस्कार करके चले।

जागे सकल लोग भये भोरू। गे रघुनाथ भयेउ अतिसोरू॥
रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं। राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिं॥१॥

अर्थ : सबेरा होने पर लोग जागे। बड़ा शोर मचा कि रामजी तो चले गये। रथ का पता कही से नही चलता है। लोग राम राम कहकर चारों ओर दौड़ते हैं।

व्याख्या : थके माँदे देव माया से मोहित लोग ऐसे सोये कि सवेरा होने पर ही जागे। देखा न तो रामजी हैं और न रथ है। जैसे रात को किसी का सर्वस्व चोरी हो जाय और जागने पर वह हाय हाय करे। वही गति अवधवासियों की हुई। बड़ा शोर मचा कि रामजी चले गये। किधर गये! कहाँ गये! किसी को मालूम नहीं। रथ का पता चले कि किधर से गया तो लीक का अनुसरण करके गन्तव्यस्थान तक पहुँचने का प्रयत्न किया जा सकता है। पर रथ का कुछ पता नहीं लगता कि किधर से गया। अतः लोग विकल हैं। उनके मुँह से कोई बात नही निकल रही है। केवल राम राम कहते हुए चारों ओर रथ के खोज में दौड़ रहे है।

मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू। भयउ विकल बड़ बनिक समाजू॥
एकहि एक देहिं उपदेसू। तजे राम हम जानि कलेसू॥२॥

अर्थ : मानों समुद्र में जहाज डूबता हो और व्यापारी का समाज अति विकल हो उठे। एक दूसरे को उपदेश दे रहे हैं कि रामजी ने क्लेश जानकर हमें छोड़ दिया।

व्याख्या : लोगों की विकलता जहाज के डूबने के समय वणिक् समाज की विकलता के समान हुई। यहाँ राम वियोग को अपार समुद्र से उपमित किया है। यथा : राम वियोग पयोधि अपारू। करन धार तुम अवध जहाजू इत्यादि। अवध जहाज पर तो सभी सवार हैं पर विकलता साथ जानेवाले वणिक् समाज को अधिक है। क्योंकि उन्हे प्राणों से अधिक प्रिय उनके सर्वस्व राम हैं। उन्हे वे गले बाँधे हुए हे साथ नही छोड़ते। प्राण जाने की उतनी चिन्ता नही जितनी चिन्ता प्राणधन के वियोग से है। रामजी ने हमारा परित्याग किया इस बात की बड़ी विकलता है।

अतः एक दूसरे को समझाते हैं कि रामजी ने हम लोगों को अप्रिय जानकर परित्याग नही किया है। हम लोग उनको प्रिय हैं। हमें क्लेश न हो इसलिए हम लोगों को छोड़कर चले गये।

निंदहि आपु सराहहि मीना। धिग जीवनु रघुबीर बिहीना ॥
जौं पै प्रिय बियोगु बिधि कीन्हा। तौ कस मरनु न मागे दीन्हा ॥३॥

अर्थ : अपनी निन्दा करते हैं और मछली की सराहना करते हैं। कहते हैं रघुबीर के बिना जीने को धिक्कार है। विधाता ने यदि प्रिय का वियोग किया ता माँगो मौत क्यो नही दिया।

व्याख्या . अपने प्रेम को कच्चा पाकर अपनी निन्दा करते है। प्रशसा मछली की करते हैं। क्योकि उसका प्रेम सच्चा है। प्रिय पानी के वियोग से प्राण दे देती है यथा : तुलसी केवल मीन को है साँचिलो सनेह। रघुबीर बिहीन जीवन अधम या जीवन है। अतः हमारे जोवन को धिक्कार हे।

विधाता का नाम विधि है। उन्हे अविधि कार्य न करना चाहिए। उचित तो यह था कि वे प्रिय का वियोग ही न देते। यदि दिया तो माँगने पर मौत भी देना था। पहिले तो अपनी निन्दा की। अब विधि की निन्दा करते हैं।

एहि बिधि करत प्रलाप कलापा। आए अवध भरे परितापा ॥
बिषम बियोगु न जाइ बखाना। अवधि आस सब राखहि प्राना ॥४॥

अर्थ . इस प्रकार रोते कलपते परिताप से भरे हुए अयोध्या आये। विषम-वियोग का वर्णन नही किया जा सकता। अवधि की आशा से सब प्राण धारण कर रहे हैं।

व्याख्या . जब रथ का खोज न मिला तो लाचार होकर रोते कलपते घर लौटे। पर लौटने मे महा दु ख उसी भूत यमदूत से व्याप्त श्मशान मे ही रहना पडा। राम वियोग की अग्नि के ताप से सब परितप्त हैं। ऐसा दारुण वियोग व्यथा है कि उसका वर्णन नही हो सकता जो वर्णन किया गया। वह बहुत ही अल्प है। अब चौदह वर्ष के बाद तो भेट होगी। इसी आशा पर सब जी रहे हैं। यदि यह आशा न होती तो निश्चय सब मर जाते। कौसल्याम्बा ने ठीक कहा था : अवधि अम्बु प्रिय परिजन मीना। तुम करुनाकर धर्म धुरीना। अस बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहि जियत जेहि भेटहु आई।

दो. राम दरस हित नेम ब्रत, लगे करन नर नारि।
मनहुँ कोक कोकी कमल, दीन बिहीन तमारि ॥८६॥

अर्थ . रामजी के दर्शन के लिए सब नर नारी नियम व्रत करने लगे। मानो ये कोक कोकी और कमल हैं बिना सूर्य के दीन हो रहे हैं।

व्याख्या ये सब पूर्वजन्म के तपस्वी हैं। अपने स्वरूप पर आगये। नियम व्रत रामजी के दर्शन के लिए करने लगे। यथा : पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग। करत रामहित नेमव्रत परिहरि भूषन भोग। जिस भाँति सूर्यनारायण के चार भक्त हैं १ कमल २ कोक ३ मधुकर और ४ खगनाना उसी

भाँति : राम भगत जग चारि प्रकारा। १. ज्ञानी २ जिज्ञासु ३. अर्थार्थी और ४. आर्त। सो अयोध्या में अर्थार्थी और आर्त नहीं है। केवल ज्ञानी और जिज्ञासु हैं। ज्ञानी की उपमा कमल से और जिज्ञासु की उपमा कोक कोकी से दी गयी। ये रामजी के विना वैसे ही दीन हो रहे हैं जैसे सूर्य के विना कमल और कोक कोकी दीन रहते हैं।

सीता सचिव सहित दोउ भाई। सृंगवेरपुर पहुँचे जाई॥
उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरपु विसेखी॥१॥

अर्थ : सीता और मन्त्री के सहित दोनों भाई जाकर शृङ्गवेरपुर पहुँच गये। देवनदी गङ्गाजी को देखकर रामजी ने रथ त्याग किया और विशेष हर्ष के साथ दण्डवत् किया।

व्याख्या : राम लखन सिय जान चढि संभु चरन सिर नाइ। सचिव चलाएउ तुरत रथ इत उत खोज दुराइ : से प्रसङ्ग छोड़ा था। बीच में पुरवासियों की कथा कहने लगे। अब फिर वहीं से कथा उठाते हैं कि चारों मूर्ति शृङ्गवेरपुर जाकर पहुँच गये। शृङ्ग है शरीर में जिसके उसे शृङ्गवेर कहते हैं अर्थात् शृङ्गीऋषि। उनका पुर शृङ्गवेरपुर। अथवा शृङ्गवेर अदरक को कहते हैं। सम्भव है कि वहाँ अदरक अधिक होता रहा हो इससे शृङ्गवेरपुर कहलाया हो। आजकल उसे सिंगरौर कहते हैं। यथा : सो जामिनि सिंगारौर गँवाई।

अब तीर्थ स्नान की विधि कहते है। गङ्गाजी के दर्शन से रामजी को विशेष हर्ष हुआ। क्योंकि गङ्गा जी के दर्शन मात्र से मुक्ति सुनी गयी है। यथा : गङ्गे ते दर्शनान्मुक्तिर्न जाने स्नानज फलम्। गङ्गाजी के दर्शन होते ही रथ से उतर पड़े। यह तीर्थ का आदर है और दण्डवत् प्रणाम किया। क्योंकि गङ्गाजी सर्वतीर्थमयी हैं।

लखन सचिव सिय किये प्रनामा। सबहि सहित सुख पाएउ रामा॥
गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला॥२॥

अर्थ : लक्ष्मण मन्त्री और सीताजी ने प्रणाम किया और सबके साथ रामजी ने सुख पाया। गङ्गा जी सभी मुद मङ्गल की मूल हैं। सब सुख करनेवाली और सब शूलो को हरनेवाली है।

व्याख्या : जिस समय रामजी ने दण्डवत् किया लक्ष्मण मन्त्री और सीताजी ने उसी समय प्रणाम किया। बड़े के दण्डवत् करने के समय सब लोग दण्डवत् न करे। केवल भक्तियुक्त प्रणाम कर दें यही विधि है। तीर्थ की प्राप्ति होने पर आनन्द होना चाहिए कि मुझे तीर्थ प्राप्ति हुई मेरा बड़ा भाग्य है। अतः कहते हैं सबके साथ रामजी को सुख हुआ।

सब अमङ्गलों का मूल सब दुःखों का करनेवाला सब शूलो की उत्पत्ति का कारण पाप है और गङ्गा के समान पापनाशक कोई तीर्थ नहीं है। शास्त्र कहता है : प्रायश्चित्त तु तत्रैव यत्र गङ्गा न विद्यते। अतः गङ्गा जी को मुदमङ्गलमूल

निराकार ब्रह्म अथवा ब्रह्मद्रवा कहा। यथा ब्रह्मद्रवेति विख्याता पापानि हर जाह्नवि।

कहि कहि कोटिक कथा प्रसगा। राम बिलोकहिं गग तरगा ॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। विबुध नदी महिमा अधिकाई ॥३॥

अर्थ करोडो कथा प्रसङ्ग कहकर रामजी गङ्गा का तरङ्ग देखते है। मन्त्री अनुज और प्रिया को देवनदी की महामहिमा कह सुनाया।

व्याख्या शत सहस्र लक्ष कोटि आदि शब्द बहुवचन वाची है। इनका अर्थ बहुत है। दर्शन प्रणाम विश्राम के बाद माहात्म्य कथन श्रवण भी होना चाहिए। इसलिए रामजी अनेक कथा प्रसङ्ग कहते जाते हैं और गङ्गाजी के तरङ्गो के दर्शन का आनन्द भी ले रहे है। इस भाँति देवनदी का महामहिमा कथन रामजी ने किया। भाव यह कि गङ्गा माहात्म्य के वक्ता स्वय रामजी हुए और श्रोता सीताजी लक्ष्मण जी और सुमन्त्रजी हुए।

मज्जनु कीन्ह पथ श्रम गयऊ। सुचि जलु पिअत मुदित मन भयऊ ॥
सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारू। तेहि श्रमु यह लौकिक ब्यवहारू ॥४॥

अर्थ स्नान किया। रास्ते की थकावट दूर हुई। पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया। जिसके स्मरण करने से श्रम का बोझ दूर हो जाता है उसे श्रम होना लौकिक व्यवहार है।

व्याख्या अदृष्टसुख कहकर अब दृष्टसुख कहते हैं। मज्जन पान से पाप हरण तो होता है यथा मज्जन पान पाप हर एका। लौकिक सुख भी होता है। मज्जन से रास्ते की थकावट दूर हो जाता है और जल पीने से मन प्रसन्न हो जाता है। ऐसा जल जगतीतल मे दूसरा है नही। अत रामजी के मज्जन पान पर भी वही फल कहा गया।

प्रश्न उठता है कि क्या रामजी मे ससारियो की भाँति श्रम का ससर्ग माना जायगा। इस पर कहते है कि सबसे भारी श्रम तो भवश्रम है। सो तो सरकार के स्मरण से मिट जाता है। जैसे भवश्रम सोषक तोषक तोषा। उस प्रभु का श्रम के साथ ससर्ग कहना लौकिक व्यवहार है।

दो सुद्ध सच्चिदानदमय, कद भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत, ससृति सागर सेतु ॥८७॥

अर्थ सूर्यकुल के पताका रामचन्द्र शुद्ध सच्चिदानन्द मय हैं। मनुष्य के अनुरूप चरित्र करते हैं जो ससार सागर के लिए पुल हैं।

व्याख्या सुद्ध सच्चिदानन्दमय कन्द से स्वरूप कहा। भानुकुल केतु से अवतार कहा चरित करत नर अनुहरत से लीला कहा। ससृति सागर सेतु से लोकोपकार कहा। अथवा सुद्ध सच्चिदानन्दमय कन्द से चिन्मय महाविष्णु कहा।

भानुकुल केतु कहकर रघुकुल में दशरथ के यहाँ जन्म होना जनाया। चरित करत नर अनुहरत कहने से राजते यो महीस्थितः का भाव दर्शाया और संसृति सागर सेतु से स्वस्वरूप प्रदातृत्व गुण का वर्णन किया। यथा : चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ। रघोः कुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः। रामतापनीये।

यह सुधि गुह निषाद जब पाई। मुदित लिये प्रिय बंधु बोलाई ॥
लिये फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा ॥१॥

अर्थ : यह खबर जब गुहनामी निषाद को लगी बड़ा प्रसन्न होकर प्रिय बन्धुओं को बुलवाया। वहँगी भर कर फल मूल भेंट के लिए और अपार आनन्द के साथ मिलने चला।

व्याख्या : गुहनाम भगवान् स्वामि कार्तिकेय का है। यथा : सेनानीरग्नि-भूर्गुहः। उस निषाद का भी यही नाम था। यह निषादों का अधिपति था। शृङ्गवेर पुर में रहता था। इसे जब खबर लगी कि सस्त्रीक सानुज रामजी मन्त्री के साथ पधारे हैं तो बड़ा प्रसन्न हुआ। भेंट के लिए फल मूल से बँहगी भर ली। अपने प्रिय भाई बन्धुओं को साथ ले लिया और मिलने चला। रामजी के आने का तो अर्थ ही यह है कि लक्ष्मण जी साथ हैं। पर भगवती सीताजी साथ हैं। यह सुनकर उसे अपार आनन्द हुआ कि युगलमूर्ति का दर्शन करूँगा। मालूम होता है कि गङ्गा स्नान के लिए आये हैं।

करि दंडवत भेंट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागे ॥
सहज सनेह बिबस रघुराई। पूँछी कुसल निकट बैठाई ॥२॥

अर्थ : भेंट सामने रखकर दण्डवत् प्रणाम किया और अत्यन्त प्रेम से सरकार का दर्शन करने लगा। रामजी ने स्वाभाविक स्नेह के वश उसे निकट बिठलाया और कुशल पूछी।

व्याख्या : राजा दण्डधर गुरु हैं। इसलिए दण्डवत् प्रणाम किया। रिक्तपाणि होकर : खाली हाथ राजदर्शन का निषेध है। इसलिए भेंट सामने रखा। जगदम्बा के दर्शन का अधिकार नहीं है। इसलिए प्रेम से टकटकी बाँधे सरकार का दर्शन कर रहा है।

हाथ बाँधे दूर खड़ा है। उसे सरकार के प्रति स्वाभाविक प्रेम है। किसी कारण से नहीं और सरकार सहज प्रेम के वश में रहनेवाले हैं। अतः उसे बुलाकर अपने निकट बिठलाया और कुशल पूछा। कुशल पूछने का अर्थ ही यह है कि पूछने-वाला कुशल चाहता है। जो अप्रसन्न होता है वह कुशल नहीं पूछता। यथा : दच्छ न कछु पूछी कुसलाता। सतिहि बिलोकि जरे सब गाता। निकट बैठना और कुशल पूछना आदर देना है : सम्मान करना है। हेमदान गजदान ते बड़ो दान सम्मान।

निराकार ब्रह्म अथवा ब्रह्मद्रवा कहा। यथा : ब्रह्मद्रवेति विख्याता पापानि हर जाह्नवि।

कहि कहि कोटिक कथा प्रसगा। राम बिलोकहिं गंग तरंगा॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। बिबुध नदी महिमा अधिकाई॥३॥

अर्थ · करोडो कथा प्रसङ्ग कहकर रामजी गङ्गा का तरङ्ग देखते है। मन्त्री अनुज और प्रिया को देवनदी की महामहिमा कह सुनाया।

व्याख्या · शत सहस्र लक्ष कोटि आदि शब्द बहुवचन वाची हैं। इनका अर्थ बहुत है। दर्शन प्रणाम विश्राम के बाद माहात्म्य कथन श्रवण भी होना चाहिए। इसलिए रामजी अनेक कथा प्रसङ्ग कहते जाते है और गङ्गाजी के तरङ्गो के दर्शन का आनन्द भी ले रहे है। इस भाति देवनदी का महामहिमा कथन रामजी ने किया। भाव यह कि गङ्गा माहात्म्य के वक्ता स्वय रामजी हुए और श्रोता सीताजी लक्ष्मण जी और सुमन्त्रजी हुए।

मज्जनु कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। सुचि जलु पिअत मुदित मन भयऊ॥
सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारू। तेहि श्रमु यह लौकिक ब्यवहारू॥४॥

अर्थ स्नान किया। रास्ते की थकावट दूर हुई। पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया। जिसके स्मरण करने से श्रम का बोझ दूर हो जाता है उसे श्रम होना लौकिक व्यवहार है।

व्याख्या . अदृष्टसुख कहकर अब दृष्टसुख कहते हैं। मज्जन पान से पाप हरण तो होता है यथा · मज्जन पान पाप हर एका। लौकिक सुख भी होता है। मज्जन से रास्ते की थकावट दूर हो जाती है और जल पीने से मन प्रसन्न हो जाता है। ऐसा जल जगतीतल मे दूसरा है नही। अत रामजी के मज्जन पान पर भी वही फल कहा गया।

प्रश्न उठता है कि क्या रामजी मे ससारियो की भाँति श्रम का ससर्ग माना जायगा। इस पर कहते हैं कि सबसे भारी श्रम तो भवश्रम है। सो तो सरकार के स्मरण से मिट जाता है। जैसे भवश्रम सोपक तोपक तोपा। उस प्रभु का श्रम के साथ ससर्ग कहना लौकिक व्यवहार है।

दो. सुद्ध सच्चिदानदमय, कद भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत, ससृति सागर सेतु॥८७॥

अर्थ · सूर्यकुल के पताका रामचन्द्र शुद्ध सच्चिदानन्द मेघ हैं। मनुष्य के अनुरूप चरित्र करते है जो ससार सागर के लिए पुल हैं।

व्याख्या सुद्ध सच्चिदानन्दमय कन्द से स्वरूप कहा। भानुकुल केतु से अवतार कहा चरित करत नर अनुहरत से लीला कहा। ससृति सागर सेतु से लोकोपकार कहा। अथवा सुद्ध सच्चिदानन्दमय कन्द से चिन्मय महाविष्णु कहा।

भानुकुल केतु कहकर रघुकुल मे दशरथ के यहाँ जन्म होना जनाया। चरित करत नर अनुहरत कहने से राजते यो महीस्थितः का भाव दर्शाया और संसृति सागर सेतु से स्वस्वरूप प्रदातृत्व गुण का वर्णन किया। यथा : चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ। रघोः कुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः। रामतापनीये।

यह सुधि गुह निषाद जब पाई। मुदित लिये प्रिय बंधु बोलाई ॥
लिये फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा ॥१॥

अर्थ : यह खबर जब गुहनामी निषाद को लगी बड़ा प्रसन्न होकर प्रिय बन्धुओं को बुलवाया। बहँगी भर कर फल मूल भेट के लिए और अपार आनन्द के साथ मिलने चला।

व्याख्या : गुहनाम भगवान् स्वामि कार्तिकेय का है। यथा . सेनानीरग्निभूर्गुहः। उस निषाद का भी यही नाम था। यह निषादों का अधिपति था। शृङ्गवेर पुर मे रहता था। इसे जब खबर लगी कि सस्त्रीक सानुज रामजी मन्त्री के साथ पधारे है तो बड़ा प्रसन्न हुआ। भेंट के लिए फल मूल से बँहगी भर ली। अपने प्रिय भाई बन्धुओं को साथ ले लिया और मिलने चला। रामजी के आने का तो अर्थ ही यह है कि लक्ष्मण जी साथ हैं। पर भगवती सीताजी साथ है। यह सुनकर उसे अपार आनन्द हुआ कि युगलमूर्ति का दर्शन करूँगा। मालूम होता है कि गङ्गा स्नान के लिए आये हैं।

करि दंडवत भेट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागे ॥
सहज सनेह बिबस रघुराई। पूँछी कुसल निकट बैठाई ॥२॥

अर्थ : भेंट सामने रखकर दण्डवत् प्रणाम किया और अत्यन्त प्रेम से सरकार का दर्शन करने लगा। रामजी ने स्वाभाविक स्नेह के वश उसे निकट बिठलाया और कुशल पूछी।

व्याख्या : राजा दण्डधर गुरु है। इसलिए दण्डवत् प्रणाम किया। रिक्तपाणि होकर : खाली हाथ राजदर्शन का निषेध है। इसलिए भेंट सामने रखखा। जगदम्बा के दर्शन का अधिकार नही है। इसलिए प्रेम से टकटकी बांधे सरकार का दर्शन कर रहा है।

हाथ बाँधे दूर खड़ा है। उसे सरकार के प्रति स्वाभाविक प्रेम है। किसी कारण से नही और सरकार सहज प्रेम के वश में रहनेवाले हैं। अतः उसे बुलाकर अपने निकट बिठलाया और कुशल पूछा। कुशल पूछने का अर्थ ही यह है कि पूछनेवाला कुशल चाहता है। जो अप्रसन्न होता है वह कुशल नही पूछता। यथा : दच्छ न कछु पूछी कुसलाता। सतिहि बिलोकि जरे सब गाता। निकट बैठना और कुशल पूछना आदर देना है : सम्मान करना है। हेमदान गजदान ते बड़ो दान सम्मान।

नाथ कुसल पद पकज देखें। भयेउँ भागभाजनु जन लेखे ॥
देव धरनि धनु धामु तुम्हारा। मै जनु नीच सहित परिवारा ॥३॥

अर्थ : हे नाथ ! आपके चरणो के दर्शन से सब कुशल है। मेरी तो गिनती भाग्यवानो मे हो गयी। हे देव ! धरणी धन धाम सब आपका है। मैं तो परिवार के सहित नीच सेवक हूँ।

व्याख्या . सेवक सदन स्वामि आगमनू। मगल मूल अमगल दमनू। सरकार के चरण आने से सब कुशल है। जगदम्बा भी साथ हैं। अत कहता है कि आज मेरी गणना भाग्यावानो मे हो गयी। यहाँ इस तरह रहना ठीक नही है। मेरा तो सब कुछ सरकार का ही है। धरणी आपकी, धन आपका, घर आपका, मै तो नीच सेवक परिवार के सहित हूँ। अतएव उनका परिवार सहित उपभोग करता हूँ। जब घर मौजूद है तब जगदम्बा सहित यहाँ ठहरना ठीक नही। यद्यपि वह जगदम्बा का नाम नही लेता है। पर उसके बरताव से यह झलक आती है।

कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ। थापिय जनु सब लोग सिहाऊ ॥
कहेहु सत्य सबु सखा सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयेसु आना ॥४॥

अर्थ कृपा करिये। पुर मे पधारिये। मेरी प्रतिष्ठा बढाइये। सब लोग मेरे भाग्य की प्रशसा करें। रामजी बोले सुजान सखा ! तुमने ठीक कहा। पर पिताजी ने मुझे दूसरे प्रकार की आज्ञा दी है।

व्याख्या पुर मे न उतर कर गङ्गातीर मे उतरे सो ठीक ही किया। पर अब तो स्नानादिक सब धर्मकृत्य हो चुके। अब मुझ पर कृपा कीजिये। पुर मे पधारिये। पुर मे पधारने से मेरी प्रतिष्ठा है। मै प्रतिष्ठा की हुई मूर्ति की भाँति पूज्य हो जाऊँगा। लोग मेरे भाग्य की सराहना करेंगे।

श्रीरामजी ने उसे सखा सुजान कहकर सम्बोधन किया और कहा कि तुम्हारा कहना ठीक है। सस्त्रीक होने से मेरा पुर मे उतरना उचित है। पर जैसा तुमने सुना होगा कि मेरा अभिषेक होनेवाला था सो नही हुआ। पिताजी की दूसरे प्रकार की आज्ञा हुई।

दो वरष चारि दस बासु बन, मुनि ब्रत बेषु अहारु।
ग्राम बासु नहि उचित सुनि, गुहहि भयउ दुख भारु ॥८८॥

अर्थ चौदह वर्ष वनवास करने की और मुनिव्रत वेष और आहार की आज्ञा हुई है। अत. ग्रामवास मुझे उचित नही है। यह सुनकर गुह को बडा भारी दु ख हुआ।

व्याख्या अभी वनवास का प्रारम्भ ही है। इसलिए चारिदस कहते हैं। रामजी ने कहा कि चौदह वर्ष के लिए मुझे वनवास की आज्ञा है और तबतक के लिए मुनियो का व्रत पालन करने मुनियो का सा वेष धारण करने और मुनियो का

सा आहार करने की आज्ञा है। इसलिए अयोध्या छोड़कर वन जा रहा हूँ। ग्रामवास मुझे उचित नही है। नही तो मैं अवश्य तुम्हारे पुर मे जाकर तुम्हारा आतिथ्य स्वीकार करता। मैं जबतक यहाँ ठहरूँगा पुर के बाहर ही रहूँगा।

राम लखन सिय रूप निहारी। कहहिं सप्रेम ग्राम नर नारी ॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये वन बालक ऐसे ॥१॥

अर्थ . राम लक्ष्मण और सीताजी का रूप देखकर गाँव के नर और नारियाँ कहती हैं कि सखि! वे पिता कैसे हैं जिन्होने ऐसे बालकों को वन में भेज दिया।

व्याख्या : गाँव मे समाचार फैलते क्या देर लगती है। बन्धुओ के सहित निषादराज को चलते देखकर गाँव के लोग जुट गये : देव देखि तब बालक दोऊ। अब न आँखि तर आवै कोऊ। तथा जग अस जुवति कहाँ कमनीया। ऐसा उन्मादकारक रूप देखकर ग्राम नर नारियो के हृदय मे बडा प्रेम उमगा। आपस मे कहने लगे कि जिसके रूप को देखकर हम लोगो को इतना प्रेम हो रहा है उनके माता पिता का कैसा हृदय है कि उन्होने ऐसे बालको को वन भेज दिया। वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने का समय नही आया है इसलिए बालक कहते हैं।

एक कहहिं भल भूपति कीन्हा। लोचन लाहु हमहि विधि दीन्हा ॥
तब निषादपति उर अनुमाना। तरु सिसुपा मनोहर जाना ॥२॥

अर्थ : कोई कहता है कि राजा ने अच्छा ही किया। विधाता ने हमको भी लोचन लाभ दे दिया। तब निषादपति ने मन में अनुमान किया तो अशोक का पेड़ मनोहर जँचा।

व्याख्या आँख होने का यथार्थ लाभ तो यही है कि सरकार के सुन्दर मुखकमल का दर्शन हो। यथा . करहु सुफल सबके नयन सुदर वदन देखाये। अत. किसी एक ने कहा कि भाई! राजा ने अच्छा किया जो इनको वन भेजा। विधाता ने ऐसा अवसर प्रदान कर दिया कि हमारे नयन भी इनके दर्शन से सफल हो गये।

इधर निषादपति ने मन में अनुमान किया कि ये मनोहर स्थान के रहनेवाले हैं। अत इन्हे ठहरने के लिए भी मनोहर स्थान चाहिए। अमुक स्थान मे अमुक त्रुटि है। ध्यान मे अशोक का वृक्ष आया। मन म ठीक ठहराया कि यही मनोहर है। यहाँ सभी सुभीता है।

लै रघुनाथहि ठाउँ देखावा। कहेउ राम सब भाँति सुहावा ॥
पुरजन करि जोहारु घर आये। रघुवर सध्या करन सिधाये ॥३॥

अर्थ : रामजी को ले जाकर उस स्थान को दिखलाया। रामजी ने कहा कि

१ यहाँ असङ्गति द्वितीय अलङ्कार है।

यह सब भाँति सुन्दर है। पुर के लोग जोहार करके घर आये और रामजी सन्ध्या करने गये।

व्याख्या : स्वयं तो पसन्द कर लिया पर सरकार को पसन्द हो तब ठीक। इसलिए सरकार को ले जाकर वह स्थान दिखलाया। सरकार को भी पसन्द आगया। कहने लगे कि यह तो सब प्रकार से सुन्दर है। अर्थात् सभी प्रकार का सुभीता भी है।

जिस भाँति आजकल एक हाथ से वन्दना करते हैं अर्थात् सलाम करते है। उसी भाँति दोनो हाथ से वन्दना को जोहार कहते हैं। एक हाथ से वन्दना करने का बहुत बड़ा निषेध धर्मशास्त्र मे है। सरकार के साथ पुरजन भी उस स्थान पर गये। पसन्द आने पर सरकार के वही ठहरने का निश्चय हुआ। तब पुरजन जोहार करके अपने अपने घर आये। तब तक सन्ध्या का समय हो गया। सरकार सन्ध्या के लिए गङ्गातट गये। अहरहः सन्ध्यामुपासीत। वेद को आज्ञा है कि प्रति दिन सन्ध्या करनी चाहिए। प्रातः सन्ध्या और सायं सन्ध्या दोनो ही के लिए विधि है। सरकार सायं सन्ध्या करने गये रामोपासक को सन्ध्या का परित्याग नही करना चाहिए।

गुह सवारि साँथरी डसाई। कुस किसलयमय मृदुल सुहाई॥
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि भरि राखेसि पानी॥४॥

अर्थ : गुह ने कुश और कोमल पत्तो की मुलायम और सुन्दर साथरी सँवार कर बिछाया और पवित्र फल और मूल जो उसके जाने हुए थे कि मीठे और कोमल होते हैं उन्हे लाकर तथा पानी को भी दोनो मे भरकर रक्खा।

व्याख्या : गुहराज दरबार से सम्बन्ध रखता है। उसे मालूम है कि कौन कौन से फल पवित्र है। उनमे जो मधुर और मृदु होते है उन्हे दोने मे भरकर रक्खा और पानी भी दोने मे भर भरकर रक्खा। जङ्गली लोग आज भी ऐसा दोना बनाते हैं जिसमे पानी रक्खा जा सकता है : जनश्रुति है कि उसी दिन से मल्लाहो का छुआ हुआ जल ग्राह्य हो गया। क्योंकि रामजी ने उसे ग्रहण कर लिया।

दो० सिय सुमन्त्र भ्राता सहित, कंद मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघुबंसमनि, पाय पलोटत भाइ॥८९॥

अर्थ : सीताजी सुमन्त्र और भाई सहित कन्द मूल फल खाकर रघुवंशमणि रामजी ने शयन किया और भाई पैर दबाने लगे।

व्याख्या : आज दूसरे दिन रात के समय सरकार ने सीताजी सुमन्त्र और लक्ष्मणजी के साथ गुह के लाये हुए फल और मूल का भोजन किया। तत्पश्चात् उसी साथरी पर सोये जिसे गुह ने बिछाकर रक्खा था। लक्ष्मणजी चरणसेवा मे लग गये।

उठे लखन प्रभु सोवत जानी । कहि सचिवहि सोवन मृदु बानी ॥
कछुक दूरि सजि बान सरासन । जागन लगे बैठि बीरासन ॥१॥

अर्थ : सरकार को सोते हुए जानकर लक्ष्मणजी उठे। मृदु वाणी से मन्त्री को सोने के लिए कहा। कुछ दूर पर धनुष वाण साजकर वीरासन से जागने लगे।

व्याख्या : सरकार को थकावट से नींद जल्द आगयी। निद्रित जानकर उठ गये। उस समय भी पैर दाबने से निद्राभङ्ग का भय था। तब लक्ष्मणजी ने मृदु वाणी से मन्त्री से कहा कि अब आप भी सोइये मैं जागूँगा। आपके जगने की आवश्यकता नहीं है। बिना मन्त्री के सोये और लक्ष्मणजी के हटे जगदम्बा न सोयेंगी।

तब लक्ष्मणजी वहाँ से कुछ दूर जाकर जहाँ से सरकार को देखते भी रहे और विस्पष्ट दिखायी भी न पड़ें वाण को ठीक किया। उसमे लगे हुए पर को ठीक किया। धनुष पर प्रत्यञ्चा चढाया और वीरासन लगाकर जागने लगे। वीरासन लगाने पर निद्रा नहीं आती : आज से जागना प्रारम्भ हुआ और जबतक सरकार वन में है रात्रि को जागकर सरकार की रखवारी करते रहेंगे। यथा : तेहि पाछे लछिमन बीरासन कटि निषंग कर बान सरासन।

गुह बोलाइ पाहरू प्रतीती । ठाँव ठाँव राखे अति प्रीती ॥
आपु लखन पहिं बैठेउ जाई । कटि भाथी सर चाप चढ़ाई ॥२॥

अर्थ : गुह ने विश्वासपात्र पहरेदारो को बुलाकर स्थान स्थान पर अतिप्रीति के कारण नियुक्त कर दिया और स्वयं कमर मे तरकस और हाथो मे वाण और चढा हुआ धनुष लेकर लक्ष्मणजी के पास जा बैठा।

व्याख्या : प्रेमी का हृदय पापशङ्की होता है। इसलिए निषादराज ने विश्वासपात्र पहरेदारो को जो शत्रु से मिल न जायँ। मौके मौके पर नियुक्त कर दिया। जिसके कारण वनवास हुआ है उसी के कारण वन मे भी चोट हो सकती है। अथवा राजाओ के अनेक गुप्त शत्रु मित्र होते हैं जिनसे सदा सावधान रहना चाहिए।

लक्ष्मणजी को सोने के लिए नही कहता स्वयं सुसज्जित होकर उनके पास जा बैठता है। इतनी बड़ी जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं लेना चाहता। केवल लक्ष्मणजी का सहायक बनता है। लक्ष्मणजी अकेले जागेंगे साथ रहने से बातचीत होती रहेगी। रात कट जायगी।

श्री लक्ष्मण गीता

सोवत प्रभुहि निहारि निषादू । भएउ प्रेम बस हृदय बिषादू ॥
तनु पुलकित जलु लोचन बहई । बचन सप्रेम लखन सन कहई ॥३॥

अर्थ : प्रभु को सोते हुए देखकर प्रेम के वश निषाद के हृदय मे विषाद हुआ। शरीर पुलकित हो उठा। नेत्रो से जल बहाने लगा। और प्रेम के साथ लक्ष्मणजी से कहने लगा।

व्याख्या : जब निषादराज लक्ष्मणजी के पास बैठे तो सरकार को निहारने का अवसर मिला। यह शयन की झाँकी है : नीदहु बदन सोह सुठि लोना। मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना। सरकार के शयनागर की शोभा देखे हुए है। अत शिंशिपा वृक्ष के नीचे सोये हुए देखकर प्रेमवश उसके हृदय मे विषाद हुआ।

विषाद से सात्त्विक भाव हुआ। शरीर के रोगटे खडे हो गये। आँसू बहने लगे प्रेम के साथ लक्ष्मणजी से कहने लगा। विषाद से मन की दशा कही। तन पुलकित लोचन जल बहई से तन की दशा कही और बचन सप्रेम लखन सन कहई से वचन की दशा कही।

भूपति भवनु सुभाय सुहावा। सुरपति सदनु न पटतर पावा॥
मनिमय रचित चारु चौबारे। जनु रतिपति निज हाथ सँवारे॥४॥

अर्थ · राजमहल स्वभाव से ही ऐसा सुन्दर है कि इन्द्रासन से उसकी उपमा नही हो सकती। मणियो से रचे हुए चौबारे ऐसे मनोहर हैं मानो कामदेव ने उन्हे अपने हाथों सँवारा हो।

व्याख्या : महाराज के महल मे सजावट की आवश्यकता नही। वे स्वभाव से ही परमसुन्दर बने हुए है। उसमे चार द्वारवाले घर · ऊपर के बँगले मणिगण से रचे हुए ऐसे मनोहर हैं कि मालूम होता है कि स्वय कामदेव ने ही इनकी रचना की है। लका और अयोध्या का जोड है। उधर : तेहि मय दानव बहुरि सँवारा। कनक रचित मनि भवन अपारा और इधर मनिमय रचित चारु चौबारे। जनु रति पति निज हाथ सँवारे।

दो. सुचि सुबिचित्र सुभोगमय, सुमन सुगंध सुबास।
पलँग मंजु मनि दीप जहँ, सब बिधि सकल सुपास॥९०॥

अर्थ : वे पवित्र बडे विचित्र सुन्दर भोगो से पूर्ण फूलो के सुगन्ध से सुवासित रहते हैं। वहाँ सुन्दर पलङ्ग हैं। मणि के दीप है। सब प्रकार से सभी सुभीते हैं।

व्याख्या सोने से ही मनुष्य अपवित्र हो जाता है। उठने पर स्नानादि का विधान है। सो वहाँ का शयनागार पवित्र है। पवित्रता होने पर भी सुन्दरता की कमी नही। अति विचित्र है। सब भोग की सामग्रियो से पूर्ण रहता है। सब प्रकार के पदार्थ स्रक् चन्दन वीणा आदि से सुसज्जित रहता है। फूलो के सुगन्ध से सुवासित रहता है। तीव्र गन्धवाले सुगन्ध की भी वहाँ गति नही है। सोने के लिए सुन्दर पलङ्ग ठण्ढी रोशनी के लिए मणिदीप कामशास्त्रानुमोदित सभी सामग्री और सभी प्रकार की जहाँ सुविधाएँ है।

विविध बसन उपधान तुराई। छीर फेन मृदु बसन सुहाई॥
तहँ सिय रामु सयन निसि करहीं। निज छबि रति मनोज मद हरहीं॥१॥

अर्थ : दूध के फेन की भाँति मुलायम सुन्दर अनेक प्रकार के कपड़े तकिये और गद्दियाँ थी। वहाँ राम जानकी सदा सोते थे और अपनी शोभा से रति और कामदेव के गर्व को हरण करते थे।

व्याख्या : प्रत्येक ऋतु के उपयोगी वस्त्र तथा तकिये और तोशकें वे भी अनेक प्रकार की। मृदुता की पराकाष्ठा है। वे दूध के फेन के समान उज्ज्वल और कोमल हैं। ये सिय राम जिनके लिए चक्रवर्तीजी ने सारे उपभोग एकत्रित कर रक्खे थे। ऐसे भोगमय महल के सोनेवाले हैं। भोग्य की सुन्दरता कहकर भोक्ता की सुन्दरता कहते हैं कि उनकी छवि देखकर रति और कामदेव का गर्व छूट जाता था।

ते सिय रामु साँथरी सोये। श्रमित बसन बिनु जाहि न जोये॥
मातु पिता परिजन पुरबासी। सखा सुसील दास अरु दासी॥२॥

अर्थ : वे सियराम साथरी पर सोये हुए हैं। थके हुए हैं। बिना कपड़े के देखते नही बनता। माता पिता कुटुम्बी पुरवासी सखा सुशील दासी और दास।

व्याख्या : ऐसे परम सुन्दर तथा सुरदुर्लभोपभोग में पले हुए सियराम साथरी पर सोये हुए हैं। प्रश्न उठता है कि ऐसे सुखों में पले हुए को ऐसी साथरी पर नींद कैसे आयी? इस पर कहना हैं कि थके हुए हैं। यथा : श्रमित भूप निद्रा अति आई। एक चादर शरीर ढकने के लिए नही है। कहाँ : रति मनोज छबि हरही और कहाँ : जाहि न जोये।

माता पिता सब प्रकार का सार सँभार करनेवाले यथा : सब कर सार सँभार गोसाइँ। करब जनक जननी की नाइँ। परिजन पुरवासी सब प्रेम करनेवाले यथा : पुरजन परिजन प्रजा गोसाइँ। सब सुचि सरस सनेह सगाइँ। सेवक सेव्यभाव रखनेवाले सखा यथा : सेवक हम स्वामी सिय नाहू। होउ नात एहिओर निबाहू और अनन्य गतिक दास और दासी।

जोगवहिं जिन्हहि प्रान की नाईं। महि सोवत तेइ रामु गोसाईं॥
पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ। ससुर सुरेस सखा रघुराऊ॥३॥

अर्थ : जिसकी प्राण की भाँति रक्षा करते थे। वे राम गोसाइँ पृथ्वी पर सो रहे हैं। जिसके जनक जैसे पिता हैं जिनका प्रभाव जगत मे विदित है। जिसके ससुर इन्द्र के मित्र रघुराज दशरथ हैं।

व्याख्या : ऐसे माता पिता ऐसे परिजन पुरवासी ऐसे सखा ऐसे दास दासी जिनकी रात दिन चारो ओर से प्राण की भांति रक्षा करते थे वे भगवान् रामचन्द्र पृथ्वी पर सो रहे हैं। इससे अधिक अनर्थ क्या होगा?

स्त्री के भाग्य का निर्णय पिता ससुर और पति के योग्य मिलने पर। निर्भर

है। सो जिनके पिता महाराज जनक : कौन है जो उनके प्रभाव को न जानता हो। जिनके ससुर महाराज दशरथ : आगे होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंहासन आसन देई। स्वयं देवराज इन्द्र के मित्र।

रामचंदु पति सो बैदेही। सोवति महि बिधि बाम न केही॥
सिय रघुबीर कि कानन जोगू। करमु प्रधान सत्य कह लोगू॥४॥

अर्थ : जिसके रामचन्द्र से पति हों वह वैदेही पृथ्वी पर सो रही है। विधाता किसके विपरीत नहीं हो जाते। राम जानकी क्या वन के योग्य हैं। लोग ठीक कहते हैं कि कर्म ही प्रधान है।

व्याख्या : जो बड़ होत सो राम बड़ाई। वे रामचन्द्र जिसके पति हों। भाव यह कि जिसको पिता ससुर और पति लोकोत्तर मिले वह भगवती सीता पृथ्वी पर सोवे। इनके भूमि पर सोने का कोई कारण ही नहीं। सिवा विधाता की करनी के और क्या कहा जा सकता है? विधि करतब पर कछु न बसाई।

वनहित कोल किरात किसोरी। रची विरंचि विषय सुख भोरी। कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू। कोल किरात विषय सुख जानते ही नही वे कानन योग्य है। तपस्वी लोग विषय सुख से अपरिचित नही है। पर तपस्या के लिए उसे छोड रक्खा है। वे भी कानन योग्य है। पर ऐसे सुख मे पले हुए नवीन अवस्थावाले राम जानकी क्या वन के योग्य है। वे आँखों में रखने योग्य है। यथा : ये रखिअहिं सखि आँखिन्ह माही। सो इन्हे वनवास मिल गया। अतः कर्म ही प्रधान है। निषाद शास्त्र नही पढे हैं। अत. कहता है : सत्य कह लोगू। यहाँ निषादराज को मोह हुआ। उसने नही समझा कि प्रभु के जन्म कर्म दिव्य हैं। वे ईश्वर हैं। अपनी इच्छा से शरीर धारण करते है और ऐसी लीला करते हैं जिसे सुनने समझनेवालों को परमपद की प्राप्ति होती है। जिस भाँति जीव कर्मवश दुःख सुख के भागी रहते हैं। उसी भाँति रघुनाथजी को समझकर उसे मोह हुआ। विषाद होने पर ही अर्जुन को गीता का उपदेश हुआ। उसी भाँति निषादराज को मोह होने पर साक्षात् भगवान् रामानुज गीता का उपदेश करते हैं।

दो. कैकय नंदिनि मंदमति, कठिन कुटिलपनु कीन्ह।
जेहि रघुनंदन जानकिहि, सुख अवसर दुखु दीन्ह॥९१॥

अर्थ : मन्दमति कैकय की बेटी ने घोर कुटिलपन किया। जिसने राम जानकी को सुख के अवसर में दुःख दिया।

व्याख्या : कैकयनन्दिनी तो रघुकुल कमल चन्दनी हैं। राजा कैकय भले ही नाती का राज्य सुनकर प्रसन्न हो पर रघुकुल का तो इसने नाश कर दिया। मन्दमति है। अवसर चूक गयी। सदा राम को प्राण के समान मानती रही। जब राम के अभिषेक का समय आया तब इसे उसी भाँति अनुमोदन करने मे आगे होना था। सो इसने वनवास माँगा। राम जानकी को जो जगत् के हित हैं

दुःख दिया। यह उसका कुटिलपन है और सुख के अवसर पर दुःख दिया। यह कठिन कुटिलपन है।

भइ दिनकर कुल विटप कुठारी। कुमति कीन्ह सबु बिस्व दुखारी ॥
भयउ बिषाद निषादहिं भारी। राम सीय महि सयन निहारी ॥१॥

अर्थ : यह सूर्यकुलरूपी वृक्ष के लिए कुल्हाड़ी रूप बन गयी। इस कुबुद्धि ने सारे विश्व को दुःखी कर दिया। राम सीय का पृथ्वी पर सोना देखकर निषाद को भारी विषाद हुआ।

व्याख्या : महाराज ने कहा था : जनि दिनकर कुल होसि कुठारी। आज वही बात निषादराज कह रहे हैं। कुल्हाड़ी लोहे की होती है। पर उसका बेंट काठ का ही होता है। बेंट से सम्बद्ध होकर ही वह वृक्ष काटने में समर्थ होती है। इसी भाँति कैकेयी कैकय देश की है। पर रघुवंश से सम्बद्ध होने के कारण आज वह दिनकर कुलरूपी विटप के काटने में समर्थ हो रही है। कुमति है : जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना। सो इस कुमति ने तो सारे विश्व को दुःखी कर दिया। यथा : राम गवन बन अनरथ मूला। जो सुनि सकल विस्व भइ सूला। इस भाँति निषादराज भगवती कैकेयी का दो अपराध बतलाते हैं। १. राम जानकी को सुख अवसर में दुःख देना और २. सम्पूर्ण विश्व को दुःखी करना।

राम जानकी का महीशयन देखकर सभी देखनेवाले को विषाद हुआ। पर निषाद को भारी विषाद हुआ : संसार से विषण्णा होने पर ही ज्ञानोपदेश की पात्रता होती है। अतः इसे लक्ष्मणजी उपदेश करेंगे। इस उपदेश को महात्माओं ने लक्ष्मणगीता के नाम से अभिहित किया।

बोले लखनु मधुर मृदुबानी। ग्यान बिराग भगति रस सानी ॥
काहु न कोउ सुखदुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता ॥२॥

अर्थ—ज्ञान विराग भक्ति रससानी मधुर मृदुवाणी लक्ष्मणजी बोले। कोई भी किसी को सुख दुःख का देनेवाला नहीं है। हे भाई! यह सब अपने किये हुए कर्म के भोग का फल है।

व्याख्या : भगवती कैकेयी पर निषादराज ने जो दोषारोपण किया है उसका निराकरण करना है तथा निषादराज ऐसे हितचिन्तक का मोहापनयन करना है अतः शिक्षा ग्रहण के लिए प्रार्थना न करने पर भी लक्ष्मणजी की प्रवृत्ति उसको उपदेश देने की ओर हुई। निषादराज की उक्ति: कैकयनंदिनि मंद मति कठिन कुटिलपन कीन्ह। जेहि रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुःख दीन्ह। तथा : कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी का खण्डन करना है। अतः मधुर मृदुवाणी बोले जिससे उसे अरुन्तुद प्रतीत न हो और उसके मोह को दूर करना है। इसलिए ज्ञान विराग भक्ति रससानी वाणी बोले।

कुमति कीन्ह सब विश्व दुखारी का उत्तर देते हैं। निषादराज ने पहिले कहा था कर्म प्रधान सत्य वह लोगू और फिर कैकेयीजी को दोष देने लग गया कि उन्होने रघुनन्दन जानकी को सुख के अवसर पर दुख दिया। ये दोनो बातें एक दूसरे के विरुद्ध हैं। मोह होने पर लोग इसी प्रकार से सोचा करते है। स्थिर नही कर सकते कि वस्तुस्थिति क्या है ? इस पर लक्ष्मणजी कहते है कि जो तुम भगवती कैकेयी को दुखदाता समझ रहे हो यह तुम्हारी भूल है। जीव तो कर्मवश दुख सुख का भागी होता है। जैसा कर्म करता है वही उसका फल भोगता है। यही वेद की नीति है और सभी इसे मानते है। कर्म जड है स्वय फल नही दे सकता। ईश्वर फलदाता है। वह शुभकर्म का शुभफल और अशुभ कर्म का अशुभ फल हृदय मे विचार कर देता है। अत कहा है सुखस्य दुखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा। कोई सुख दुख का देनेवाला नही। दूसरा कोई देता है यह कुबुद्धि है। कर्म किया कैकेयी ने और दुख पाया विश्व ने यह मानना अपसिद्धान्त है। विश्व के अशुभ कर्म के बिना उदय हुए विश्व को दुख नही मिल सकता।

जोग बियोग भोग भल मदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फदा ॥
जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू। सपति बिपति करम अरु कालू ॥३॥

अर्थ मिलना और बिछुडना बुरे और भले भोग शत्रु मित्र और मध्यस्थ ये भ्रम के फन्दे हैं। जन्म मरण जहाँ तक ससार का जाल है सम्पत्ति विपत्ति कर्म और काल।

व्याख्या श्रीलक्ष्मणजी कहते है कि दुख सुख का होना भी व्यावहारिक सत्य है पारमार्थिक सत्य नही है। क्योकि विषय और इन्द्रिय का संयोग ही शीत उष्ण सुख दुख के देनेवाले है। ये उत्पत्ति विनाशशील एव अनित्य है। यथा मात्रा स्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदु खदा । आगमापायिनोऽनित्यास्तास्तितिक्षस्व भारत गीतायाम्। असङ्ग आत्मा को योग वियोग कहाँ ? और जब योग वियोग नही तब दुख का सयोग कैसा और उसके देनेवाले हित अनहित मध्यस्थ कहाँ से आगये। इसीलिए कहा है शत्रु मित्र मध्यस्थ तीन ये मन कीन्हे बरिआई। त्यागब गहब उपेक्षणीय अहि हाटक तृन की नाई। अत योग वियोग भल मन्द भोग और शत्रु मित्र मध्यस्थ भाव ही भ्रम है। इसी से लोग बँधे हैं। आगे चलकर उस जाल का भी निरूपण करेंगे। जिसमे ये सात प्रकार के फन्दे लगे हुए है।

वह जाल जिसके फन्दे मे सभी ससारी जीव फँसे हैं यही जगत् है। वह जन्म से लेकर मरण तक फैला हुआ है। पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्। इसी जाल मे फँसा हुआ जीव जन्म मरण का अनुभव सदा किया करता है। इसमे परमार्थ कुछ भी नही। सब व्यावहारिक है। सम्पत्ति विपत्ति भी वास्तविक नही। सबके सब क्षणिक हैं।

धरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जँह लगि व्यवहारू ॥
देखिय सुनिय गुनिय मनमाही। मोह मल परमारथ नाही ॥४॥

अर्थ धरती, गृह, धन, पुर, परिवार, स्वर्ग, नरक आदि जहाँ तक व्यवहार है देखिये सुनिये मनमे विचार कीजिये तो सबका कारण मोह है। ये कोई परमार्थ नही है।

व्याख्या उनके कारण कर्म और काल की भी व्यावहारिक सत्ता है। निष्क्रिय आत्मा से कोई सम्बन्ध नही। अत ममता के आस्पद धरणी धाम पुर परिवार यहाँ तक कि स्वर्ग और नरक सब क्षयिष्णु हैं। इनमे भी कोई टिकाऊ नही। अत सब असत्य है। सत्य तो वही है जिसमे देशत कालत वस्तुत व्यभिचार न हो।

आँखो देखते हैं कि इस जगत् में कही किसी पदार्थ मे क्षणमात्र के लिए स्थिरता नही है। परिवर्तन ही जगत् का स्वरूप है। कहाँ गये पिता पितामह जिनके गोद मे स्वर्गीय आनन्द के भोग का अनुभव होता था। कहाँ गये वे मित्र जिनके साथ मे दु ख भूल जाते थे। कहाँ गये वे महाप्रतापी सम्राट् जिनके विषय में सुना जाता है कि अपने धनुष की कोटि से पर्वतो को हटा हटाकर पृथ्वी के जोतने बोने योग्य बनाया। नगर ग्राम बसाकर मनुष्य को समाज बाँधकर रहना सिखाया। मन मे विचारते है तो कही कोई सत्य हाथ नही आता। किसी वस्तु मे सुख दु ख स्थायी नही है। जो वस्तु गरमी में दु खद है वही जाडे मे सुखद हो जाती है। जो वस्तु एक देश मे जैसा प्रभाव दिखाती है दूसरे देश मे उसका दूसरा प्रभाव हो जाता है। स्वत न कोई वस्तु सुखद है न दु खद है न किसी मे स्थिरता है। अत कुछ भी पारमार्थिक सत्य नही है। अपना अज्ञान ही इन सबका मूल है। आत्म-स्वरूप के ज्ञान से इनका अभाव प्रत्यक्ष भासता है।

दो सपने होइ भिखारि नृपु, रक नाकपति होइ।
जागे लाभु न हानि कछु, तिमि प्रपच जिय जोइ ॥९२॥

अर्थ सपने मे राजा भिखारी हो जाता है और दरिद्र इन्द्र हो जाता है। जागने पर न कुछ हानि है न लाभ है। इसी प्रकार से इस ससार को भी जो से जानो।

व्याख्या सपना प्रातिभासित सत्य है। उस काल म वह सत्य ही प्रतीत होता है। किसी को यह प्रतीति नही होती कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ। जो देख रहा हूँ वह मिथ्या है। सभी उस समय उसको सत्य मानते है। सिहासन पर सोया हुआ राजा सपने मे अपने को अति दीन दरिद्रावस्था म पाता है। उसे उस समय अपना राजा होना नही भासता। सिहासन मे ही लेटा हुआ उसे अपनी दीनता दरिद्रता ही सच्ची मालूम पडती है। इसी भाँति महादरिद्र सपने म देखता है कि इन्द्र हो गया। सब देवता ऋद्धि सिद्धि हाथ बाँधे खडो हैं। उस समय भी वह दरिद्र ही है।

पर निद्रादोष के हटते ही वह भ्रम जाता रहता है। उससे न राजा की कोई हानि हुई और न उस दरिद्र का कोई लाभ हुआ।

लक्ष्मणजी कहते हैं कि यह प्रपञ्च व्यावहारिक सत्य भी सपना ही है। भेद इतना ही है कि यह सपना अधिक स्थायी है। वह सपना निद्रादोष से था। यह सपना मायादोष से है। जिस भाँति निद्रादोष की निवृत्ति से वह सपना नही रह जाता।

अस बिचारि नहि कीजिअ रोसू। काहुहि बादि न देइअ दोसू॥
मोह निसा सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥१॥

अर्थ ऐसा विचारकर न क्रोध करना चाहिए और न किसी को दोष देना चाहिए। सब मोह रात्रि मे सोनेवाले हैं। अनेक प्रकार के सपने देख रहे हैं।

व्याख्या जगत् को भी सपना रूप जानो। यथा उमा कहौं मै अनुभव अपना। सत हरि भजन जगत सब सपना। विचार तो करो सपने मे का शत्रु मित्र सपने मे का हानि लाभ तो अपने स्वरूप के अतिरिक्त कुछ भी नही है। सपने म तो कोई दूसरा रहता नही। आप ही अपना शत्रु बन जाता है और आप ही अपना मित्र बन जाता है फिर दोष किसे दें ? सपने मे जिसे शत्रु रूप देखा था क्योकि उसने हानि की थी। जागने पर तो कोई उसे न शत्रु मानता है और न उस हानि को हानि समझता है। जानता है कि वह मिथ्या प्रपञ्च था। अत न तो रोष करना चाहिए और न किसी को दोष देना चाहिए। भगवती कैकेयी को दोष देना सर्वथा असङ्गत है।

जिस भाँति सूर्य के न होने से रात होती है उसी भाँति ज्ञानसूर्य के अभाव स मोहरात्रि होती है। जिस भाँति रात को सब सोते है और अनेक प्रकार के स्वप्न देखते हैं उसी भाति मोहरात्रि मे सब सो रहे हैं और जागृतरूप अनेक प्रकार के स्वप्न देख रहे हैं। रात्रि के स्वप्न म जिस भाँति जाग्रत् का भान होता है। सभी स्वप्न देखनेवाले अपने को जागता हुआ ही मानते है। उसी भाँति मोहरात्रि मे सोनेवालो का यह जागना भी स्वप्न ही है। यह जागना सच्चा जागना नही है। क्योकि मोहनिशा के दूर होने पर इसका बाध देखा जाता है।

एहि जग जामिनि जागहि जोगी। परमारथी प्रपच बियोगी॥
जानिअ तबहि जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥२॥

अर्थ इस जगत्रूपी रात्रि म जोगी जागते है जो परमार्थी हैं और ससार से जिसका बिछोह है। इसम जीव को जागा हुआ तभी जानना चाहिए जब सभी विषय विलास स उसे वैराग्य हो।

व्याख्या यही ससाररूपी रात्रि है। इसमे सपना देखनेवाले अपने को मिथ्या ही जागता हुआ मानते है। इसमे सच्चे जागनेवाले जोगी है। क्योकि वे ही पारमार्थिक सत्य का साक्षात्कार करते है। इस स्वप्नरूपी प्रपञ्च का उनके लिए

सर्वथा बाध हो जाता है। वे व्यावहारिक सत्य को उसी भाँति मिथ्या अनुभव करते है जिस भाँति प्रातिभासिक सत्य उन्हे मिथ्या मालूम होता है। यथा जेहि निसि सकल जीव सूतैं तव कृपापात्र जन जागैं। भाव यह कि जिस ओर योगी लोग जाग रहे है उस ओर ससारी लोग सोये हुए है और जिस ओर ससारी लोग जाग रहे है उस ओर योगी लोग सो रहे हैं। जैसे जिस समय उल्लू को दिखायी पडता है उस समय कौवा को नही सूझता और जिस समय कौवा को सूझता है उस समय उल्लू को नही सूझता। यही मति ससारी लोगो और योगियो की है।

अब सच्चे जागे हुए का लक्षण कहते है। जब तक चित्त मे विषय विलास का राग है तबतक मोह निद्रा बनी हुई है। जब सब विषय विलास से विराग हो तब जानिये कि जीव जाग गया। अत रामानुरागी ही सच्चे जागनेवाले हैं। यथा रमा बिलास राम अनुरागी। तजत वमन जिमि जन बड भागी। भगवान् भी यही कहते हैं कि सभी योगियो में वे ही उत्तम है। जो मेरा भजन करते हैं। यथा योगिनामपि सर्वेषा मद्गतेनान्तरात्मना। श्रद्धावान् भजते यो मा स मे युक्ततमो मत । गीतायाम्।

होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥
सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम वचन राम पद नेहू॥३॥

अर्थ विवेक होता है मोह भ्रम भाग जाता है। तब रघुनाथ के चरणो मे अनुराग होता है। हे सखा! परम परमार्थ यही है कि मनसा वाचा कर्मणा रामपद मे अनुराग हो।

व्याख्या जब तक विषय विलास मे विराग नही होता तब तक विवेक नही होता। केवल शास्त्रीय ज्ञान से पूरा काम नही चलता। विवेकज ज्ञान से ही मोह का नाश होता है। पहिले अज्ञान होता है तब विपरीत ज्ञान होता है। विपरीत ज्ञान ही भ्रम है। विवेकज ज्ञान से भ्रम और उसके मूल मोह का नाश होता है। भ्रम और मोह के रहते रघुनाथजी के चरण म अनुराग नही होता। भगवान् गीता मे कहते हैं कि पापी मोह मे फँसे हुए जिनका ज्ञान माया से अपहरण हो गया है ऐसे अधम पुरुष मेरे शरण नही आते। अत मनसा वाचा कर्मणा रामजी के चरणो मे प्रेम होना ही परम पुरुषार्थ है। क्योकि मोक्ष सुख भी बिना हरिभक्ति के ठहर नही सकता और सगुणोपासक तो मोक्ष चाहते ही नही। यथा साधन सिद्धि रामपग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा॥
सकल विकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहि बेदा॥४॥

अर्थ राम ब्रह्म परमार्थ रूप है। अव्यक्त, अलक्ष्य, अनादि और अनूप है। सब विकारो से रहित और भेद रहित है। उन्ह न इति न इति कहकर वेद निरूपण करते है।

व्याख्या : कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी का उत्तर दकर . जेहि रघुनदन जानकिहि सुख अवसर दुख दीन्ह का उत्तर रामजी के स्वरूप का निरूपण करके देते हैं। रामजी जीव नहीं हैं। वे ब्रह्म हैं। देशत· कालतः और वस्तुत अपरिच्छिन्न हैं। इसलिए वे ही परमार्थं सत्य हैं। अरूप होने से अव्यक्त है। मन और वाणी से परे होने से अलख है। अथवा स्थूल दृष्टि से नहीं देखे जा सकने से अलख कहा। सबके आदि होने से अनादि कहा। अद्वितीय होने से अनूप कहा। यथा जग सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप शिरोमने। चिदानन्द मय होने से विकार रहित कहा। यथा · चिदानन्दमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी। सर्वगत होने से भेदरहित कहा। इदमित्थ रूप से नहीं कहे जा सकने के कारण वेद नेति नेति कहकर निरूपण करते है अथवा वेद नेति नेति कहकर अर्थात् यह भी नहीं यह भी नहीं अथवा स्थूल भी नहीं सूक्ष्म भी नहीं कहकर सब प्रकार के विशेषो का निषेध करते हैं। ऐसे प्रभु जिस भक्ति के अनुरोध से देह धारण करते है वह भक्ति महा प्रभावा है।

दो. भगत भूमि भूसुर सुरभि, सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु, सुनत मिटहि जग जाल ॥९३॥

अर्थ : वे कृपालु हैं। भक्त, भूमि, ब्राह्मण, गौ, देवता के लिए मनुष्य शरीर धारण करके लीला करते हैं। उसके सुनने से जग जाल मिट जाता है।

व्याख्या : अगुन अखड अनत अनादी। जेहि चितहि परमारथवादी। नेति नेति जेहि वेद निरूपा। निजानन्द निरुपाधि अनूपा। सभु बिरंचि बिस्नु भगवाना। उपजहि जासु अस ते नाना। ऐसउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई। यद्यपि प्रभु जगत् से विलक्षण हैं। पर जगत पर कृपा करके भक्त, भूमि ब्राह्मण, गौ और देवताओ के लिए अर्थात् साधु के दु ख निवारण के लिए वही रामजी मनुष्यरूप धारण करके लीला कर रहे है। जेहि कहत गावत सुनत समुझत परमपद नर पावई। उस चरित के सुनने से जग जाल मिट जाता है। अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन से रहित हो जाता है। यह चरित की अद्भुत महिमा है।

सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय रघुबीर चरन रत होहू ॥
कहत राम गुन भा भिनुसारा। जागे जग मगल सुखदारा ॥१॥

अर्थ हे सखा! ऐसा समझकर मोह को छोडो और सिय रघुवीर के चरणो मे प्रेम करो। इस भाँति रामजी के गुणो को कहते कहते सबेरा हो गया और सुखरूप स्त्रीवाले जगमङ्गल रामजी जागे।

व्याख्या · उपसहार करते हुए लक्ष्मणजी ने कहा कि हे सखा! रामजी ब्रह्म हैं। जगत् के मङ्गल के लिए अवतीर्ण होकर नर चरित कर रहे हैं। ऐसा समझकर मोह को छोड दो। जाग जाओ। इनको प्राकृत नर समझकर विषाद न करो। इनके स्वरूप को न पहचानकर इन्हें मनुष्य मानना ही मोह है। परमार्थ

रूप ब्रह्म ही सिय रघुवीर रूप से दो मूर्ति धारण किये हुए हैं। अत. इनके चरणों मे भक्ति करो। तुम्हे विषयो मे राग है इससे इन्हें दु खी समझ रहे हो।

इस प्रकार से रामगुण कहते कहते रात बीत गयी। समय का कुछ भान ही न रहा। एहि बिधि कहत रामगुन ग्रामा। पावा अनिर्वाच्य विश्रामा। सोने से जगत् को विश्राम मिलता है। यहाँ जागने से अनिर्वाच्य विश्राम मिला है। सवेरा होते ही सुखरूप दारा हैं जिसकी अर्थात् साक्षात् आह्लादिनी शक्तिरूपा जिनको स्त्री सीताजी हैं वे जगत् के मङ्गल करनेवाले रामजी जागे।

सकल सौच करि राम नहावा। सुचि सुजान बट छीर मँगावा ॥
अनुज सहित सिर जटा बनाये। देखि सुमंत्र नयन जल छाये ॥२॥

अर्थ : पवित्र और सुजान रामजी ने पहिले सब शौचविधि की फिर स्नान किया। तत्पश्चात् वटवृक्ष का दूध मँगाया। भाई के सहित जटा बनाया। जिसे देखकर सुमन्त्रजी की आँखो मे आँसू आगये।

व्याख्या : शौच दो प्रकार का होता है। ध्यानादि मानसिक शौच है और शरीर की शुद्धि शारीरिक शौच है। रामजी स्वभाव से ही पवित्र हैं। फिर भी शास्त्रानुमोदित रीति से दोनो प्रकार का शौच करके स्नान किया। जब से घर से चले हैं तभी से मुनिव्रत और आहार चल रहा है। वल्कल धारण कर ही लिया है। अब मुनिवेष की पूर्ति के लिए जटा बनाना शेष है। सुमन्त्रजी किसलिए साथ आये हैं इस बात को समझ रहे हैं। अतः अपना अभिप्राय उनको सुस्पष्ट कर देने के लिए तुरन्त वटक्षीर मँगाया और दोनो भाइयो ने जटा बना ली। देखते ही सुमन्त्र समझ गये कि ये दोनों भाई लौटनेवाले नही है। बडे सुजान हैं। जटा बनाकर ही जो कहना था कह दिया। अतः इस भाँति निराश होने से सुमन्त्रजी के नेत्रो मे जल आगया। दूसरी बात यह कि सुमन्त्रजी पुत्र की भाँति स्नेह करते हैं। इनको जटा धारण किये हुए देखकर प्रेम उमड़ पड़ा। अतः आँखो मे आँसू आगये।

हृदयँ दाहु अति बदन मलीना। कह कर जोरि वचन अति दीना ॥
नाथ कहेउ अस कोसलनाथा। लै रथु जाहु राम के साथा ॥३॥

अर्थ : कलेजे मे अत्यन्त दाह उत्पन्न हो गया। मुख मलिन हो गया। हाथ जोड़कर दीन वचन बोले कि हे नाथ! कोसलनाथ ने कहा कि तुम रथ लेकर रामजी के साथ जाओ।

व्याख्या : सुमन्त्रजी के हृदय मे दाह तो पहिले ही से था जटा धारण किये हुए देखकर वह दाह बहुत बढ गया। अतः उसका प्रभाव मुख पर पड़ा। मुख मलिन हो गया। समझा कि यही समय निवेदन का है। अतः हाथ जोड़कर अति दीन वचन बोले। हृदय दाह अति से मन की दशा कहा। बदन मलीना से तन की दशा कहा। वचन अति दीना कहकर वचन की दशा कह रहे हैं।

सुमन्त्रजी ने कहा कि आप भी मेरे नाथ है। पर कोसलनाथ सबसे बडे हैं। उनकी आज्ञा आप को भी शिरोधार्य है। वे नही चाहते कि आप पैदल चलें। इसीलिए रथ लेकर मुझे भेजा। आपके लिए मुनि व्रत बेष आहार की जो आज्ञा थी वह जटा बना लेने से पूरी हो गयी। अब आगे क्या करना चाहिए उसके लिए भा आज्ञा हुई है।

वन देखाइ सुरसरि अन्हवाई। आनेहु फेरि वेगि दोउ भाई ॥
लखनु राम सिय आनेहु फेरी। संसय सकल सँकोच निवेरी ॥४॥

अर्थ : वन दिखाकर गङ्गा स्नान कराकर दोनो भाइयो को जल्दी लौटा लाना। सब संशय और सङ्कोच को दूर करके लक्ष्मण राम और सीता को लौटा लाना।

व्याख्या : सो आपने वन भी देख लिया। गङ्गा के उस पार वन है और गङ्गा स्नान भी कर लिया। रथ साथ है। लौट चलिये यही आज्ञा है। वन से आपका चक्षुः सयोग हो गया। यह सशय न कीजिये कि पिता की आज्ञा तो चौदह वर्ष के लिए थी। अब दूसरी आज्ञा चार दिन के लिए हुई तो इनमे से मैं किसे मानूं। सो चौदह वर्ष की अवधि को ही सङ्कुचित करके चार दिन किया गया है। मै मन्त्री हूँ। महाराज के प्रतिनिधि के नाते कह रहा हूँ। यह भी सशय न कीजिये कि आज तो लौट चलें। कल फिर कैकेयी की सम्मति से न जाने कैसी आज्ञा हो। सो कुछ न होगा। अब कैकेयी का कुछ सुना न जायगा। यह सङ्कोच भी न कीजिये कि जब वन के लिए चल पडे तो लौटें क्या ? मै स्वय महाराज की आज्ञा से रथ लेकर लौटाने के लिए आया हूँ। इसमें आपके लिए सङ्कोच की कोई बात नही है।

दो. नृप अस कहेउ गोसाइँ जस, कहइ करौं बलि सोइ।
करि बिनती पायन्ह परेउ, दीन्ह बाल जिमि रोइ ॥९४॥

अर्थ : महाराज ने ऐसा कहा है। हे नाथ ! मैं बलैया लेता हूँ। अब जैसी आपकी मर्जी हो वैसा करूँ। इस प्रकार से प्रार्थना करके पैर पर गिर पडे और बालक की भाँति रो दिया।

व्याख्या : सुमन्त्रजी कहते है कि महाराज की तो ऐसी आज्ञा हुई है। पर: राम रजाइ मेट मन माही। देखा सुना कतहुँ क उ नाही। अत मै बलि जाऊँ। अब आप जो कहे सो मै करूँ। ऐसा कहकर सुमन्त्रजी पैर पर गिर पडे वे समझते थे कि दूसरी आज्ञा को प्रियप्रेमप्रमाद समझकर स्वीकार नही करेंगे। अत. उसके स्वीकार करने के लिए अनेक प्रकार से विनती की और बच्चो की भाँति फूट फूट कर रोने लगे।

तात कृपा करि कीजिअ सोई। जाते अवध अनाथ न होई ॥
मन्त्रिहि राम उठाइ प्रबोधा। तात धरम मतु तुम सब सोधा ॥१॥

अर्थ : हे तात ! कृपा करके वही कीजिये जिससे अयोध्या अनाथ न हो। मन्त्री को रामजी ने उठाकर समझाया कि आप तो धर्म के सब सिद्धान्त समझे बूझे है।

व्याख्या : मन्त्री के विनय का सार इतना ही था कि यद्यपि कोई नियम ऐसा नही है जिससे कि आप लौट चलने को विवश हो। पर कृपाभिक्षा दीजिये जिससे अयोध्या अनाथ न हो। आपके बिना अयोध्यानाथ के रहते हुए भी अयोध्या अनाथ हो जायगी। ऐसी विनती पैर पर पडे हुए सुमन्त्रजी कर रहे हैं।

सुमन्त्रजी पैर पर गिरे थे इसलिए रामजी ने उठाया। बच्चो की भाँति रो रहे थे इसलिए समझाया कि धर्मशास्त्र आपका भली भाँति जाना हुआ है। आप पिताजी को भी उपदेश देनेवाले हैं। आप ऐसा कैसे कहते हैं। धर्म के लिए कष्ट सहना ही तो धर्म पालन है। जो कष्ट को डरेगा वह धर्माचरण क्या करेगा? अतः कष्ट के लिए धर्म नही छोडा जा सकता।

सिबि दधीचि हरिचंद नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा ॥
रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरमु धरेउ सहि सकट नाना ॥२॥

अर्थ : शिवि दधीचि और राजा हरिश्चन्द्र ने धर्म के लिए करोडो कष्ट सहे। रन्तिदेव और सुजान बलि राजा ने नाना सकट सहकर भी धर्म को नहीं छोड़ा।

व्याख्या : श्रीरामचन्द्र महाजनो का उदाहरण देते हैं कि राजा शिवि अपने शरीर का माँस अपने हाथ से काट काटकर कपोत के साथ तौलते गये। शरणागत होने पर भी कपोत ने कपट किया। वह भारी होता गया। राजा अपने बात से न हटा। सारा शरीर काट डाला। दधीच ऋषिने देवताओ की याचना करने पर अपनी शरीर की हड्डी दे दी। राजा हरिश्चन्द्रने राज्य दिया। स्वय चाण्डाल के हाथ बिके। इन महाजनो ने धर्म के लिए नाना प्रकार के कष्ट सहे और महाजन जिस रास्ते से गये हो वही रास्ता है। रन्तिदेव ने अपना सर्वस्व दान कर दिया। बाल बच्चो के साथ अडतालीस दिन बिना अन्न के रह गये। अन्न मिलते ही अतिथि लोग पहुँच गये। महाराज रन्तिदेव ने प्रसन्नतापूर्वक सब अन्न उनको खिला दिया। अपने लिए पानी भी न रक्खा। राजा बलि दान देने मे ठगे गये। तीन पग के व्याज से तीनो लोक उनसे ले लिया गया। उस महात्मा ने यह भी नही कहा कि जिस रूप से दान लिया था उसी रूप से पृथ्वी नापो। अन्त मे उन्हे नागपाश से बाँधा गया। पाताल भेज दिये गये पर धर्म नही छोड़ा। इन महाजनो ने रास्ता दिखला दिया कि कष्ट के समय मे धर्मपालन ही सच्चा धर्मपालन है। कष्ट ही धर्मपरीक्षा का समय है। बड़े धर्मात्माओ को बड़ा कष्ट उनकी धर्मपरीक्षा के लिए आता है। अतः परीक्षा काल मे दृढता की आवश्यकता है।

धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना ॥
मैं सोइ धरमु सुलभ करि पावा। तजे तिहूँ पुर अपजसु छावा ॥३॥

सुमन्त्रजी ने कहा कि आप भी मेरे नाथ है। पर कोसलनाथ सबसे बडे उनकी आज्ञा आप को भी शिरोधार्य है। वे नही चाहते कि आप पैदल चर इसीलिए रथ लेकर मुझे भेजा। आपके लिए मुनि ब्रत वेष आहार की जो आ थी वह जटा बना लेने से पूरी हो गयी। अब आगे क्या करना चाहिए उ लिए भा आज्ञा हुई है।

वन देखाइ सुरसरि अन्हवाई। आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई ॥
लखनु राम सिय आनेहु फेरी। ससय सकल सँकोच निवेरी ॥४

अर्थ · वन दिखाकर गङ्गा स्नान कराकर दोनो भाइयो को जल्दी लौ लाना। सब सशय और सङ्कोच को दूर करके लक्ष्मण राम और सीता लौटा लाना।

व्याख्या . सो आपने वन भी देख लिया। गङ्गा के उस पार वन है अ गङ्गा स्नान भी कर लिया। रथ साथ है। लौट चलिये यही आज्ञा है। वन आपका चक्षु सयोग हो गया। यह सशय न कीजिये कि पिता की आज्ञा तो चौद वर्ष के लिए थी। अब दूसरी आज्ञा चार दिन के लिए हुई तो इनमे से मै कि मानूं। सो चौदह वर्ष की अवधि को ही सङ्कुचित करके चार दिन किया गया है मैं मन्त्री हूं। महाराज के प्रतिनिधि के नाते कह रहा हूँ। यह भी सशय न कीजि कि आज तो लौट चलें। कल फिर कैकेयी की सम्मति से न जाने कैसी आज्ञा हो। स कुछ न होगा। अब कैकेयी का कुछ सुना न जायगा। यह सङ्कोच भी न कीजि कि जब वन के लिए चल पडे तो लौटे क्या ? मैं स्वय महाराज की आज्ञा से र लेकर लौटाने के लिए आया हूँ। इसमे आपके लिए सङ्कोच की कोई बात नही है।

दो. नृप अस कहेउ गोसाइँ जस, कहइ करौ बलि सोइ।
करि विनती पायन्ह परेउ, दीन्ह बाल जिमि रोइ ॥९४॥

अर्थ महाराज ने ऐसा कहा है। हे नाथ! मैं बलैया लेता हूँ। अब जैस आपकी मर्जी हो वैसा करूँ। इस प्रकार से प्रार्थना करके पैर पर गिर पडे औ बालक की भाँति रो दिया।

व्याख्या सुमन्त्रजी कहते है कि महाराज की तो ऐसी आज्ञा हुई है। पर राम रजाइ भट मन माही। देखा सुना कतहुँ क उ नाही। अत मै बलि जाऊँ अब आप जो कहै सो मै करूँ। ऐसा कहकर सुमन्त्रजी पैर पर गिर पडे वे समझते थे कि दूसरी आज्ञा को प्रियप्रमप्रमाद समझकर स्वीकार नही करेगे। अत उसके स्वीकार करने के लिए अनेक प्रकार से विनती की और बच्चो की भाँति फूट फूट कर राने लगे।

तात कृपा करि कीजिअ सोई। जाते अवध अनाथ न होई ॥
मत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा। तात धरम मतु तुम सब सोधा ॥१॥

अर्थ : हे तात ! कृपा करके वही कीजिये जिससे अयोध्या अनाथ न हो। मन्त्री को रामजी ने उठाकर समझाया कि आप तो धर्म के सब सिद्धान्त समझे बूझे हैं।

व्याख्या : मन्त्री के विनय का सार इतना ही था कि यद्यपि कोई नियम ऐसा नही है जिससे कि आप लौट चलने को विवश हो। पर कृपाभिक्षा दीजिये जिससे अयोध्या अनाथ न हो। आपके विना अयोध्यानाथ के रहते हुए भी अयोध्या अनाथ हो जायगी। ऐसी विनती पैर पर पडे हुए सुमन्त्रजी कर रहे है।

सुमन्त्रजी पैर पर गिरे थे इसलिए रामजी ने उठाया। बच्चो की भाँति रो रहे थे इसलिए समझाया कि धर्मशास्त्र आपका भली भाँति जाना हुआ है। आप पिताजी को भी उपदेश देनेवाले हैं। आप ऐसा कैसे कहते हैं। धर्म के लिए कष्ट सहना ही तो धर्म पालन है। जो कष्ट को डरेगा वह धर्माचरण क्या करेगा ? अत. कष्ट के लिए धर्म नही छोडा जा सकता।

सिबि दधीचि हरिचंद नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा ॥
रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरमु धरेउ सहि सकट नाना ॥२॥

अर्थ : शिवि दधीचि और राजा हरिश्चन्द्र ने धर्म के लिए करोड़ो कष्ट सहे। रन्तिदेव और सुजान बलि राजा ने नाना सकट सहकर भी धर्म को नही छोड़ा।

व्याख्या : श्रीरामचन्द्र महाजनो का उदाहरण देते हैं कि राजा शिवि अपने शरीर का माँस अपने हाथ से काट काटकर कपोत के साथ तौलते गये। शरणागत होने पर भी कपोत ने कपट किया। वह भारी होता गया। राजा अपने बात से न हटा। सारा शरीर काट डाला। दधीच ऋषिने देवताओ की याचना करने पर अपनी शरीर की हड्डी दे दी। राजा हरिश्चन्दने राज्य दिया। स्वय चाण्डाल के हाथ बिके। इन महाजनो ने धर्म के लिए नाना प्रकार के कष्ट सहे और महाजन जिस रास्ते से गये हो वही रास्ता है। रन्तिदेव ने अपना सर्वस्व दान कर दिया। बाल बच्चो के साथ अडतालास दिन बिना अन्न के रह गये। अन्न मिलते ही अतिथि लोग पहुँच गये। महाराज रन्तिदेव ने प्रसन्नतापूर्वक सब अन्न उनको खिला दिया। अपने लिए पानी भी न रक्खा। राजा बलि दान देने मे ठगे गये। तीन पग के व्याज से तीनो लोक उनसे ले लिया गया। उस महात्मा ने यह भी नही कहा कि जिस रूप से दान लिया था उसी रूप से पृथ्वी नापो। अन्त मे उन्हे नागपाश से बाँधा गया। पाताल भेज दिये गये पर धर्म नही छोड़ा। इन महाजनो ने रास्ता दिखला दिया कि कष्ट के समय मे धर्मपालन ही सच्चा धर्मपालन है। कष्ट ही धर्मपरीक्षा का समय है। बडे धर्मात्माओ को बडा कष्ट उनकी धर्मपरीक्षा के लिए आता है। अतः परीक्षा काल मे दृढता की आवश्यकता है।

धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना ॥
मै सोइ धरमु सुलभ करि पावा। तजे तिहूँ पुर अपजसु छावा ॥३॥

अर्थ शास्त्रो वेदो और पुराणो मे कहा गया है कि सत्य के समान दूसरा धर्म नही है। मैने उसी धर्म को सुलभ करके पाया है। छोडने से तीनो लोक मे अपकीर्ति होगी।

व्याख्या वेद कहता है। सत्य वद धर्मशास्त्र कहता है सत्यान्नास्ति परो धर्मः। इतिहास पुराण कहते हैं धर्मो जयति नाधर्मः सत्य जयति नानृतम्। न स धर्मो यत्र न सत्यमस्ति। अत सत्य सब धर्मो से वडा होने मे सब शास्त्रो का ऐकमत्य है। वही सत्य मुझे सुलभ रीति से प्राप्त हुआ है। मुझे धर्मपरीक्षा म उत्तीण होने म वडी कठिनाई का सामना नही करना पड रहा है। केवल चौदह वर्ष वनवास करने से ही मै धर्मपरीक्षा म उत्तीर्ण हो जाऊँगा। यदि इस समय मैने कच्चाई की तो वडा भारी अपयश होगा कि रामचन्द्र धर्म के लिए चौदह वर्ष वन जाने को भी तैयार न हुए।

सभावित कहु अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू॥
तुम्ह सन तात वहुत का कहऊँ। दिये उतरु फिर पातकु लहऊँ॥४॥

अर्थ प्रतिष्ठित पुरुष को अपयश होने से करोडो मरण के समान घोर दाह होता है। हे तात! आपसे वहुत क्या कहे उलटकर जवाब दने से पाप होगा।

व्याख्या वन जाने से धर्म का लाभ है और न जाने से प्रत्यवाय है। सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते। प्रतिष्ठित पुरुष की अकीर्ति मरणदाह से कही अधिक दाहक हाती है। भाव यह कि आप लोग मुझे दु खी मानकर इतने दु खी हैं। पर मेरा भला इस समय वन जाने मे ही है। वन न जाने मे मरणान्त वेदना हागी। अत मेरे ऊपर दया करके मेरे लिए दु खी न होइये।

आप स्वय बडे जानकार है। स्वय इन बातो को खूब समझते है। आप पूज्य हैं। आपकी बात काटकर उत्तर देने से पाप होता है। अत अधिक कहना सुनना व्यर्थ है।

दो पितु पद गहि कहि कोटि नति, विनय करव कर जोरि।
चिंता कवनिहुँ वात कै, तात करिअ जनि मोरि॥९५॥

अर्थ पिताजी का चरण पकडकर करोडो नमस्कार करके मेरी ओर से हाथ जोडकर विनय कीजियेगा कि आप मेरे लिए किसी वात की चिन्ता न करे।

व्याख्या सुमन्त्रजी ने कहा था नृप अस कहेउ गोसाईं जस कहउँ करउँ बलि सोइ। इसी के उत्तर म कहते है कि आप जाकर मेरी ओर से चरण पकडकर पिताजी से करोडा प्रणाम कहियगा और हाथ जाडकर विनती कीजियेगा कि मेरे लिए किसी बात की चिन्ता न कर। धर्म क लिए इस थोडे से कष्ट को मै सुख के साथ सहन करूँगा और धर्मो रक्षति रक्षित रक्षा किया हुआ धम आचरण करनेवाल की रक्षा करता है।

तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरे। बिनती करौ तात करजोरे ॥
सब विधि सोइ करतब्य तुम्हारे। दुखु न पाव पितु सोच हमारें ॥१॥

अर्थ आप पिता के समान मेरे अत्यन्त हित हैं। हे तात ! हाथ जोडकर विनती करता हूँ। सब विधि से आपका वही कर्तव्य है जिसमे हमारे सोच से पिताजी को दु ख न हो।

व्याख्या रामजी सुमन्त्रजी से कहते हैं कि आप पिताजी के सखा हैं। पिता के समान ही मेरा कल्याण चाहनेवाले हैं। अब आपसे मैं हाथ जोडकर विनती करता हूँ। मुझे इस बात की बडी चिन्ता है कि पिताजी को मेरे लिए बडा शोक होगा। मेरी विनती पर भी सम्भव है कि न मिटे। अब यहाँ आपका सब प्रकार से यह कर्तव्य होना चाहिए कि पिताजी मेरे शोक से दु खी न हो। क्योकि आप मन्त्री हैं। सखा हैं। परम विश्वासपात्र है। आपकी सम्मति का पिताजी आदर करते हैं। आपके समझाने बुझाने का प्रभाव पडेगा।

सुनि रघुनाथ सचिव सवादू। भयेउ सपरिजन विकल निषादू ॥
पुनि कछु लखन कही कटु बानी। प्रभु बरजे बड अनुचित जानी ॥२॥

अर्थ रामजी और मन्त्री का सम्वाद सुनकर कुटुम्बियो के सहित निपाद विकल हो गया। फिर लक्ष्मणजी ने कुछ कडवी बात कही। प्रभु ने बडा अनुचित जानकर मना कर दिया।

व्याख्या निपादराज कुटुम्ब के सहित रामजी के चरणो के प्रेमी हैं। रामजी और मन्त्री का सवाद ऐसा करुणापूर्ण हुआ कि सबके सब विपाद से विकल हो गये। उनके मन मे निश्चय हो गया कि रामजी नही लौटेंगे। लक्ष्मणजी ने जो कहा उसे कवि ने दोहराना पसन्द नही किया। जिस बात के लिखने स कोई लाभ नही कोई उपदेश नही उसे न लिखना ही उचित है। इतना ही कहना यथेष्ट है कि प्रभु ने उसे बडा अनुचित समझा और लक्ष्मणजी को अधिक कहने से रोक दिया। नि सन्देह वह पिताजी के प्रति अनादर सूचक बात थी। जैसा कि लोग ऐसे अवसर पर क्रोध से बाल देते हैं। सरकार ने रोक दिया कि क्या कहते हो।

सकुचि राम निज सपथ देवाई। लखन सँदेसु कहिअ जनि जाई ॥
कह सुमन्नु पुनि भूप सँदेसू। सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेसू ॥३॥

अर्थ रामजी सङ्कुचित हो गये। अपनी शपथ दिलायी कि लक्ष्मण का सन्देश जाकर मत कहियेगा। तब सुमन्त्र ने महाराज का सन्देशा कहा कि सीताजी वन का कष्ट सह न सकेगी।

व्याख्या लक्ष्मणजी के कटु कहने पर रामजी सङ्कुचित हो गय। क्योकि दोनो भाइयो का हृदय इतना अभिन्न समझा जाता है कि लक्ष्मणजी की उक्ति को रामजी के आन्तरिक भाव के रूप मे ग्रहण किया जा सकता है। यहाँ पर यह बात

भी खुल गयी कि लक्ष्मणजी ने जो कटु कहा था वह सन्देश रूप मे था। अतः रामजी ने सुमन्त्रजी को अपना शपथ दिलाया कि पिताजी से लक्ष्मण का सन्देश न कहे। केवल मेरा सन्देश कहे।

सबके लौट जानेवाली आज्ञा के अस्वीकार करने पर सुमन्त्रजी ने राजा का सन्देश सुनाया कि तुम लोग पुरुष हो, वीर हो वन के क्लेश को सह जाओगे। पर सीताजी तो न सह सकेंगी। महाराज ने सुमन्त्र से कहा था ' जौ नहिं फिरै धीर दोउ भाई। सत्यसध दृढव्रत रघुराई। तौ तुम्ह विनय करेहु कर जोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेस किसोरी। उसी आज्ञा का पालन सुमन्त्रजी कर रहे हैं।

जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया। सोइ रघुबरहि तुम्हहि करनीया ॥
नतरु निपट अवलंब बिहीना। मै न जिअब जिमि जल बिनु मीना ॥४॥

अर्थ : जिस भाँति सीताजी अवध मे फिर आवै वही तुम्हे और रामजी को कहना चाहिए। नही तो एकदम निराधार हो जाने से मैं बिना जल की मछली की भाँति नही जीऊँगा।

व्याख्या : महाराज का सन्देश कहते हुए सुमन्त्रजी कहते हैं कि सीता किस विधि से अवध लौट चलेंगी इसका निश्चय महाराज ने मेरे और आपके ऊपर छोड़ दिया है और स्वय कह दिया है कि सीता वन के क्लेश को न सह सकेगी केवल इतनी ही बात नही है। वह यदि नही लौटी तो मैं जी नही सकता। मैं बिना पानी की मछली की भाँति निरालम्ब हो जाऊँगा। गिरा अर्थ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न। रामजी जल हैं। सीताजी लहर है। सो मछली यदि जल मे न भी हो पर जल के लहर से सम्पर्क बना रहे तो भी मछली जी सकती है। यदि वह भी न रहे तो मरण ही परिणाम है।

दो. मइके ससुरें सकल सुख, जबहि जहाँ मनु मान।
तहँ तब रहिहि सुखेन सिय, जब लगि बिपति बिहान ॥९६॥

अर्थ . पितृगृह मे और ससुराल मे सभी सुख है। जहाँ जी चाहे वहाँ सीता जब तक विपत्ति की रात न बीते सुख से रहे।

व्याख्या : रामजी का वन गमन सूर्यास्त है। उनका विरह रात्रि है। सो जब तक यह रात्रि न बीते रामजी लौट न आवे तब तक सीता का जहाँ जी चाहे रहे। मैके और ससुराल मे सभी सुख है। कोई घाटा नही। जब तक जी चाहे अवध मे रहे जी बहलाने के लिए जनकपुर मे भी रहे, मेरा कोई अनुरोध नही है। पर वन मे न रहे।

बिनती भूप कीन्ह जेहि भाँती। आरति प्रीति न सो कहि जाती ॥
पितु संदेसु सुनि कृपानिधाना। सियहि दीन्ह सिख कोटि बिधाना ॥१॥

अर्थ महाराज ने जिस भाँति विनती की है वह आर्ति और विनय कहते

नहीं बनता। पिता का सन्देशा सुनकर कृपानिधान रामजी ने सीताजी को करोड़ों तरह से सीख दी।

व्याख्या : महाराज ने सीताजी के लौटाने के लिए विनती की। क्योंकि विपत्ति के समय पति से स्त्री को हटाने का कोई हक किसी को नहीं। विपत्ति के समय स्त्री की परीक्षा है। आपत काल परिखअहि चारी। धीरज धरमु मित्र अरु नारी। महाराज अपने को सापराध मान रहे हैं और स्नेहाधिक्य से आर्त हो रहे हैं। इसलिए विनती करते हैं कि तुम्हारा अनुरोध सीता को मानना ही पडेगा।

सरकार एक तो कृपानिधान हैं। आर्त पर कृपा करने का स्वभाव है। तिस पर पिता का सन्देश आर्ति और प्रीति से युक्त सुनकर सीताजी को कोटि प्रकार की शिक्षा दी। माता के कहने पर अनेक विधान से शिक्षा दी थी। अब कोटि विधान से देते हैं। ध्यान देने की बात है कि इतना होने पर भी शिक्षा ही देते हैं। आज्ञा नहीं देते कि तुम चली जाओ। क्योंकि जो अपने धर्म पर अग्रसर है उसे क्रिया की दुष्करता दिखलाकर सावधान किया जा सकता है। हठात् रोका नही जा सकता। दूसरे यह कि बोल चुके है : परिहरि सोच चलहु बन साथा और राम दो बार नही बोलते : रामो द्विर्नाभिभाषते।

सासु ससुर गुरु प्रिय परिवारू। फिरहु त सब कर मिटै खँभारू॥
सुनि पति बचन कहति बैदेही। सुनहु प्रानपति परम सनेही॥२॥

अर्थ : तुम लौट जाओ तो सास, ससुर, गुरु, प्रिय और परिवार सबका दु.ख मिट जाय। पति का वचन सुनकर वैदेही बोली कि हे प्राणपति! हे परम सनेही सुनो।

व्याख्या : रामजी के कोटि भाँति समझाने का निर्गलितार्थ यह कि जब तुम्हारे लौट जाने से सास, ससुर, गुरु, प्रिय, परिवार का दु.ख मिटता है तब तुम अपने ऊपर दु.ख को अङ्गीकार करके लौट जाओ। इन गुरुजनो का जिस कार्य से सन्तोष होता हो उससे बड़ा धर्म कौन है? रह गयो मेरी बात तो मेरी इस विषय मे पूरी सम्मति है। मैं कह रहा हूँ और मेरे भी गुरुजन सास ससुर गुरु भी कह रहे हैं। वही करना पथ्य है। जिस धर्म की प्राप्ति मैं वन जाकर करना चाहता हूँ उसी धर्म की प्राप्ति अनायासेन घर लौटने से तुम्हे होगी इत्यादि।

पति का वचन पतिव्रता के लिए परम श्रद्धेय है। उसे सुनकर वैदेही ने कहा कि आप प्राणपति हैं। परम सनेही हैं। आप न सुनेंगे तो मेरी कौन सुनेगा।

प्रभु करुनामय परम विवेकी। तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी॥
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चंद्रिका चदु तजि जाई॥३॥

अर्थ : प्रभु तो करुणामय हैं। परम विवेकी हैं। कहिये तो शरीर को छोड़कर क्या छाँह रोके रुक सकती है? सूर्य को छोडकर प्रभा कहाँ जाय और चाँद को छोड़कर चाँदनी को कहाँ ठिकाना है?

व्याख्या सरकार प्रभु है। समर्थ है। सब कुछ कर सकते हैं। परन्तु करुणामय हैं। यथा करुणामय रघुनाथ गोसाईं। वेगि पाइहैं पीर पराई। मेरी पीडा का भी ध्यान करिये और आप परम विवेकी हैं। विचार करके देखिये। सरकार शरीर है तो मैं छाया स्थानीया हूँ। सरकार सूर्य है तो मैं प्रभा हूँ। सरकार चन्द्र हैं तो मैं चन्द्रिका हूँ। क्या छाया को सामर्थ्य है कि वह शरीर को छोडकर पृथक् स्थिति अपनी रख सके। क्या प्रभा सूर्य को और चन्द्रिका चन्द्र को छोडकर कही जा सकती है। यहाँ समझाने का कोई उपयोग नही है। मैं समझती सब हूँ पर पृथक् रहना मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। यदि समझाने से छाया शरीर को छोडकर पृथक् रह सके। प्रभा सूर्य को छोडकर अलग हो सके। चन्द्रिका को चन्द्र के सिवा कोई दूसरा ठिकाना हो तो मुझपर भी समझाने का प्रभाव पड सकता है। जिसे छाया को प्रभा को या चन्द्रिका को रोकना हो। वह शरीर को रोके। सूर्य को रोके। चन्द्र का रोकें। छाया प्रभा और चन्द्रिका रुकी ही रुकायी है। शरीर का वन भेजे और छाया को घर लौटाने के लिए कहे यह कौन सा विवेक है।

पतिहि प्रेममय बिनय सुनाई। कहत सचिव सन गिरा सुहाई॥
तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी। उतरु देउँ फिर अनुचित भारी॥४॥

अर्थ पति को प्रेममय विनती सुनाकर मन्त्री से सुन्दर वाणी बोली। आप पिता तथा ससुर के सदृश हित करनेवाले हो। मै उलटकर उत्तर देती हूँ। यह भारी अनुचित है।

व्याख्या पति से जो विनय किया वह प्रेममय था। प्रेम विकल्प को नही सहन कर सकता। यद्यपि सुमन्त्र ने सीताजी से कुछ नही कहा था। जो कुछ उन्होने कहा सो रामजी से कहा और रामजी ने सीताजी को समझाया। पर सीताजी उत्तर के रूप मे प्रेममय विनय करके सुमन्त्रजी को उत्तर देने लगी। जिसमे रामजी को यह कहना न पडे कि देखिये यह नही मानती।

सुमन्त्र से सीताजी ने कहा कि मैं आपको पिता के समान मानती हूँ। पतिदेव भी आपको पिता के समान मानते हैं। अत मै आपको पिता और ससुर दोनो के समान हितकारी मानती हूँ। जिसके लिए पतिदेव ने कहा दिये उतरु फिर पातकु लहऊँ। उस मेरा उत्तर देना तो भारी अनुचित है।

दो आरति बस सनमुख भइउँ, बिलगु न मानब तात।
आरजसुत पद कमल बिनु, बादि जहाँ लगि नात॥९७॥

अर्थ मै आर्ति के वश होकर सम्मुख हुई हूँ। इससे आप अप्रसन्न न हूजियेगा। आर्यपुत्र के चरण कमलो के बिना जहाँ तक नाते है सब व्यर्थ हैं।

व्याख्या मैं आर्त हो रही हूँ। अत आपके सम्मुख हूँ। अर्थात् उत्तर दे रही हूँ। आपके अप्रसन्न होने के लिए यथेष्ट कारण है। उत्तर भी भेद उत्पन्न

करनेवाला होगा। फिर भी आपसे प्रार्थना है कि आप अप्रसन्न न हों आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ गुआरिहि आपन दाऊँ। तथा : अति आरत अतिस्वारथी अति दीन दुखारी। इनको बिलगु न मानिये बोलहिं न विचारी। मेरा उत्तर यही है : सब मानिये राम के नाते। आर्यपुत्र के चरण कमल बिना सब नाते व्यर्थ हैं। आगे की चौपाइयों में इसी बात को स्पष्ट किया है।

पितु बैभव बिलासु मैं डीठा। नृप मनि मुकुट मिलिति पद पीठा ॥
सुख निधान अस पितु गृह मोरें। पिय बिहीन मन भाव न भोरें ॥१॥

अर्थ : पिताजी के ऐश्वर्य का विलास मेरा देखा हुआ है। जिनके चरण पीठ को राजाओं के मणिमुकुट स्पर्श करते हैं। मेरा पितृगृह : मायका ऐसा सुखनिधान है। पर पति के बिना मुझे भूलकर भी अच्छा नहीं लगता।

व्याख्या : जहँ लगि नात को स्पष्ट करते हुए पहिले पिता के ही विषय में कहती हैं कि पिताजी के चरणों पर राजा लोग मस्तक नहीं रख सकते। दूर से ही प्रणाम करते हैं। केवल उनके मणि मुकुट का ही स्पर्श उनके चरणपीठों से होता है। ऐसा सुखद मेरा पितृगृह है। पर वह भी तभी सुखद है जब तक कि सरकार साथ रहें। उनके बिना वह पितृगृह भी मुझे पसन्द नहीं। कहा गया था : मइके ससुर सकल सुख जबहिं जहाँ मन मान। तब तहँ रहिहि सुखेन सिय जब लगि बिपति बिहान। सो मइके के विषय में तो कह चुकी। अब ससुराल के विषय में सुनिये।

ससुर चक्कवइ कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥
आगें होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंघासन आसन देई ॥२॥

अर्थ : ससुर तो कोसलपति चक्रवर्ती हैं। चौदहों भुवन में उनका प्रभाव प्रकट है। जिसे स्वयं देवराज आगे आकर स्वागत करते हैं और आधे सिंहासन पर बैठने के लिए स्थान देते हैं।

व्याख्या : अब कहती हैं कि ससुर का प्रभाव उनसे भी बढकर है। कोसल के राजा होते हुए भी चक्रवर्ती हैं। यथा : नृप सब रहहिं कृपा अभिलाखे। उनका प्रभाव चौदह भुवन में प्रकट है। भुवन चारि दस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरखहिं सुख बारी। रिधि सिधि संपति नदी सोहाई। उमगि अवध अंबुधि कहँ धाई।

जब कभी अपने सखा इन्द्र से मिलने जाते हैं तो देवराज स्वयं स्वागत के लिए आगे से आकर लिवा जाते हैं और अपने साथ सिंहासन पर बिठाते हैं यथा : लोकप करहिं प्रीति रुचि राखे।

ससुरु एतादृस अवध निवासू। प्रिय परिवारु मातु सम सासू ॥
बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा ॥३॥

व्याख्या सरकार प्रभु है। समर्थ हैं। सब कुछ कर सकते हैं। परन्तु करुणामय हैं। यथा करुणामय रघुनाथ गोसाईं। बेगि पाइहैं पीर पराई। मेरी पीडा का भी ध्यान करिये और आप परम विवेकी हैं। विचार करके देखिये। सरकार शरीर हैं तो मैं छाया स्थानीया हूँ। सरकार सूर्य है तो मै प्रभा हूँ। सरकार चन्द्र हैं तो मैं चन्द्रिका हूँ। क्या छाया को सामर्थ्य है कि वह शरीर को छोडकर पृथक् स्थिति अपनी रख सके। क्या प्रभा सूर्य का और चन्द्रिका चन्द्र को छोडकर कही जा सकती है। यहाँ समझाने का कोई उपयोग नही है। मैं समझती सब हूँ पर पृथक् रहना मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। यदि समझाने से छाया शरीर को छोडकर पृथक् रह सके। प्रभा सूर्य को छोडकर अलग हो सके। चन्द्रिका को चन्द्र के सिवा कोई दूसरा ठिकाना हो तो मुझपर भी समझाने का प्रभाव पड सकता है। जिसे छाया को प्रभा को या चन्द्रिका को रोकना हो। वह शरीर को रोके। सूर्य को रोके। चन्द्र को रोकें। छाया प्रभा और चन्द्रिका रुकी ही रुकायी है। शरीर को वन भेजे और छाया को घर लौटाने के लिए कहे यह कौन सा विवेक है।

पतिहि प्रेममय बिनय सुनाई। कहत सचिव सन गिरा सुहाई ॥
तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी। उतरु देउँ फिर अनुचित भारी ॥४॥

अर्थ पति को प्रेममय विनती सुनाकर मन्त्री से सुन्दर वाणी बोली। आप पिता तथा ससुर के सदृश हित करनेवाले हो। मै उलटकर उत्तर देती हूँ। यह भारी अनुचित है।

व्याख्या पति से जो विनय किया वह प्रेममय था। प्रेम विकल्प को नही सहन कर सकता। यद्यपि सुमन्त्र ने सीताजी से कुछ नही कहा था। जो कुछ उन्होने कहा सो रामजी से कहा और रामजी ने सीताजी को समझाया। पर सीताजी उत्तर के रूप मे प्रेममय विनय करके सुमन्त्रजी को उत्तर देने लगी। जिसमे रामजी को यह कहना न पडे कि देखिये यह नही मानती।

सुमन्त्र से सीताजी ने कहा कि मैं आपको पिता के समान मानती हूँ। पतिदेव भी आपको पिता के समान मानते हैं। अत मैं आपको पिता और ससुर दोनो के समान हितकारी मानती हूँ। जिसके लिए पतिदेव ने कहा दिये उतरु फिर पातकु लहऊँ। उस मेरा उत्तर देना तो भारी अनुचित है।

दो आरति बस सनमुख भइउँ, बिलगु न मानब तात।
आरजसुत पद कमल बिनु, बादि जहाँ लगि नात ॥९७॥

अर्थ मैं आर्ति के वश होकर सम्मुख हुई हूँ। इससे आप अप्रसन्न न हूजियेगा। आर्यपुत्र के चरण कमलो के बिना जहाँ तक नाते है सब व्यर्थ है।

व्याख्या मै आर्त हो रही हूँ। अत आपके सम्मुख हूँ। अर्थात् उत्तर दे रही हूँ। आपके अप्रसन्न होने के लिए यथेष्ट कारण है। उत्तर भी भेद उत्पन्न

करनेवाला होगा। फिर भी आपसे प्रार्थना है कि आप अप्रसन्न न हो आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ गुआरिहि आपन दाऊँ। तथा · अति आरत अतिस्वारथी अति दीन दुखारी। इनको बिलगु न मानिये बोलहिं न विचारी। मेरा उत्तर यही है : मव मानिये राम के नाते। आर्यपुत्र के चरण कमल बिना सब नाते व्यर्थ हैं। आगे की चौपाइयो मे इसी बात को स्पष्ट किया है।

पितु बैभव बिलासु मैं डीठा। नृप मनि मुकुट मिलित पद पीठा ॥
सुख निधान अस पितु गृह मोरें। पिय बिहीन मन भाव न भोरें ॥१॥

अर्थ : पिताजी के ऐश्वर्य का विलास मेरा देखा हुआ है। जिनके चरण पीठ को राजाओ के मणिमुकुट स्पर्श करते है। मेरा पितृगृह · मायका ऐसा सुखनिधान है। पर पति के बिना मुझे भूलकर भी अच्छा नही लगता।

व्याख्या · जहँ लगि नात को स्पष्ट करते हुए पहिले पिता के ही विषय मे कहती हैं कि पिताजी के चरणो पर राजा लोग मस्तक नही रख सकते। दूर से ही प्रणाम करते हैं। केवल उनके मणि मुकुट का ही स्पर्श उनके चरणपीठो से होता है। ऐसा सुखद मेरा पितृगृह है। पर वह भी तभी सुखद है जब तक कि सरकार साथ रहे। उनके बिना वह पितृगृह भी मुझे पसन्द नही। कहा गया था : मइके ससुर सकल सुख जबहिं जहाँ मन मान। तब तहँ रहिहि सुखेन सिय जब लगि बिपति बिहान। सो मइके के विषय मे तो कह चुकी। अब ससुराल के विषय मे सुनिये।

ससुरु चक्कवइ कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥
आगें होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंघासन आसन देई ॥२॥

अर्थ . ससुर तो कोसलपति चक्रवर्ती हैं। चौदहो भुवन मे उनका प्रभाव प्रकट है। जिसे स्वय देवराज आगे आकर स्वागत करते हैं और आधे सिंहासन पर बैठने के लिए स्थान देते हैं।

व्याख्या · अब कहती हैं कि ससुर का प्रभाव उनसे भी बढकर है। कोसल के राजा होते हुए भी चक्रवर्ती हैं। यथा : नृप सब रहहिं कृपा अभिलाखे। उनका प्रभाव चौदह भुवन मे प्रगट है। भुवन चारि दस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरखहि सुख बारी। रिधि सिधि संपति नदी सोहाई। उमगि अवध अंबुधि कहँ धाई।

जब कभी अपने सखा इन्द्र से मिलने जाते हैं तो देवराज स्वय स्वागत के लिए आगे से आकर लिवा जाते हैं और अपने साथ सिंहासन पर बिठाते हैं यथा : लोकप करहिं प्रीति रुचि राखे।

ससुरु एतादृस अवध निवासू। प्रिय परिवारु मातु सम सासू ॥
बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा ॥३॥

अर्थ : ऐसे ससुर और अयोध्या का निवास प्रेम करनेवाले कुटुम्बी और माता के समान सास। पर रघुपति के चरण कमल की धूलि के बिना मुझे सपने में भी कोई सुखद नहीं मालूम हुआ।

व्याख्या : ससुर इन्द्र के तुल्य। अवधराज सुरराज से अधिक यथा : अवधराजु सुरराजु सिहाई। दसरथ धन सुनि धनद लजाई। परिवार के लोग सब प्रेम करनेवाले। सास तो माता के ऐसी यथा : कलप बेलि जिमि बहुबिधि लाली। सींचि सनेह सुधा प्रतिपाली। अतः मन न लगने का कोई कारण नही। पर मुझे बिना रघुपति पद पंकज पराग के कोई सुखद सपने में भी नही मालूम हुआ। यथा : राम चरन पंकज प्रिय जिनही। विषय भोग बस करहिं कि तिनही।

अगम पंथ वनभूमि पहारा। करि केहरि सर सरित अपारा॥
कोल किरात कुरंग विहंगा। मोहि सब सुखद प्रानपति संगा॥४॥

अर्थ : दुर्गम रास्ते, वन, भूमि, पहाड़, हाथी, सिंह, ताल और अपार नदियाँ, कोल, किरात, हिरने और चिड़ियाएँ मुझे सभी प्राणपति के साथ होने से सुखद हैं।

व्याख्या : मइके ससुरे सकल सुख का उत्तर देकर अब . सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेसू का उत्तर दे रही हैं। वन मे जो दु.खद वस्तुएँ हैं जिनका वर्णन करके लोगो ने सीताजी को वन जाने के लिए समझाया था और जिसका उत्तर सङ्कोचवश सीताजी उस जन समुदाय मे न दे सकी। यथा : सीय सकुच वस उतरु न देई। इस समय उन सबो का नाम गिनाकर उत्तर दे रही हैं। वन का रास्ता दु.खद है। वन की भूमि वन के पहाड़ दु.खद है। वन में हाथी सिंहादि हिंस्र जन्तु भरे हैं। वन के ताल वन की नदियाँ वन के रहनेवाले कोल किरात अन्य पशु पक्षी दु.खद है। पर प्राणपति के साथ होने से मेरे लिए वे सब सुखद है।

दो. सास ससुर सन मोर हुँति, बिनय करवि परि पायँ।
मोर सोचु जनि करिअ कछु, मै बन सुखी सुभायँ॥९८॥

अर्थ : सास ससुर के पाँव पड़कर मेरी ओर से विनय कीजियेगा कि मेरा कुछ भी सोच न करे। मै स्वभाव से ही वन मे सुखी हूँ।

व्याख्या : सास ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि फिरिअ वन बहुत कलेसू। इस बात का उत्तर देते हुए कहती हैं कि मै वन छोड़कर घर जा नही सकती। अतः आप मेरी ओर से उनके पाँव पड़कर विनय कर दीजियेगा कि मेरे लिए वो कुछ भी सोच न करें। मै स्वभाव से ही वन मे सुखी हूँ। अर्थात् मुझे स्वभाव से ही वन प्रिय है। महल प्रिय नही है। रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत वमन जिमि जन बड़ भागी।

प्राननाथ प्रिय देवर साथा। बीर धुरीन धरे धनु भाथा॥
नहिं मग श्रमु भ्रमु दुख मन मोरे। मोहि लगि सोच करिअ जनि भोरे॥१॥

अर्थ मेरे साथ मे प्राणनाथ है। प्रिय देवर है। जो कि वीरा मे धुरीण हैं और धनु तरकस धारण किये हुए हैं। मुझे रास्ते चलने क थकावट का भ्रम भी मेरे मन मे नहीं है। मेरे लिए तो भूल करके भी सोच न कीजियेगा।

व्याख्या सोच तो अनाथ का किया जाता है। मैं तो सनाथा हूँ। मेरे प्राणनाथ मेरे साथ हैं। मेरे प्रिय देवर भी साथ हैं। दोनो महापुरुष वीरो म धुरन्धर हैं। तिस पर उनके पास धनुप और तरकस है। कोई विघ्न बाधा मेरे सन्निकट आ नही सकती। मेरे मन म वन चलने का उत्साह है। मुझ पैदल चलने म थकावट नहीं होगी। मुझे थकावट के दु ख का भ्रम भी नहीं है। अत मेरे लिए तो भूल करके सोच न कीजियेगा। लोगो को भ्रम है कि मुझे दु ख होगा। कहते थे वन देखकर डर जाओगी। सो मुझे वन देखकर वडा आनन्द हुआ। कन्द मूल फल भी मैंने खाया। पतिदेव को जटा धारण किये भी देखा। पर मुझे दु ख न हुआ। अब तो मुझे दु ख का भ्रम भी नही है।

सुनि सुमनु सिय सीतल वानी। भयेउ विकल जनु फनि मनि हानी॥
नयन सूझ नहि सुनइ न काना। कहि न सकै कछु अति अकुलाना॥२॥

अर्थ सुमन्त्र सीताजी की शीतल वाणी सुनकर ऐसे विकल हो गये जैसे मणि के चल जाने से सर्प विकल होता है। आँख से न सूझता है। न कान से सुनायी पडता है। अत्यन्त आकुल हो गये। कुछ कह नही सकते।

व्याख्या सीताजी की वाणी तो शीतल थी पर उसम बडी दृढता थी। सुमन्त्रजी ने समझ लिया कि ये नही लौटेगी। जो मैके और ससुराल के इतने बडे ऐश्वर्य सुख को दु खरूप देख रही है। जिस पतिदेवता शिरोमणि पति के साथ होने पर सम्पूर्ण दु खो को सुख स्वरूप देख रही है। वह पति को वन मे छोडकर घर लौट सकती नही। अत यह अन्तिम आशा भी निराशा मे परिणत हो गयी। अत उनकी दशा उस सर्प सी हो गयी जिसकी मणि छिन गयी हो। वधुओ की रक्षा वडे प्यार के साथ महाराज के महल मे की जाती थी। यथा सुदरि बधुन्ह सासु लइसोई। फनिकन्ह जनु सिर मनि उर गोई।

इन्द्रियाँ भारी विकल हो गयी। अपने अपने विपयो के ग्रहण मे असमर्थं हो गयी। न आँख से दिखायी पडता है। न कान से सुनायी पडता है। न मुख से शब्द निकलते हैं।

राम प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। तदपि होत नहिं सीतलि छाती॥
जतन अनेक साथ हित कीन्हे। उचित उतरु रघुनदन दीन्हे॥३॥

अर्थ रामजी ने बहुत प्रकार से समझाया। फिर भी छाती ठण्ढी नही होती। साथ चलने के लिए अनेक यत्न किया पर रामजी ने उचित उत्तर दिया।

व्याख्या सुमन्त्रजी की व्याकुलता देखकर रामजी समझाने लगे। यथा

कवित्त तात के प्रधान गुण ज्ञान के निधान
धर्मनीति मे प्रमान आप सरिस जनैया कौन।
काको मुख ताको एहि सकट विकट माहि
धरि उर धीर लाजपति को सँभारो जौन॥
पितहि बुझाइ समुझाइ सब मातुन को
कीजिये रजाय वेगि भरत बुलावो भौन।
सुकृत न जाय जग जस सरसाय ताप
तिमिर नसाय आप करिय उपाय तौन॥

इस भाँति बहुत समझाया पर सुमन्त्र के हृदय का दाह नही जाता। वह साथ चलने को उद्यत हो गये कि यदि आप लोग कोई नही लौटते, तो मुझे भी साथ ले चलिये। मै अकेला लौटकर अयोध्या मे क्या मुख दिखलाऊँगा। पर रामजी ने उचित उत्तर दिया। हम चारो भाइयो मे से कोई भी इस समय अयोध्या मे नही है। महाराज की यह दशा है। आप मन्त्री है। ऐसे समय मे महाराज को छोडकर वन जाना आपका धर्म नही है।

मेटि जाइ नहि राम रजाई। कठिन करम गति कछु न बसाई॥
राम लखन सिय पद सिरु नाई। फिरेउ बनिकु जिमि मूर गँवाई॥४॥

अर्थ रामजी की आज्ञा मिटायी नही जा सकती। कर्म की गति कठिन है। उस पर कोई वश नही चलता। राम लक्ष्मण तथा सीताजी के चरणो मे सिर नवाकर लौटे। जैसे मूल पूँजी खोकर व्यापारी लौटता है।

व्याख्या राम रजाइ सीस सबही के। उतपति थिति लय विषहु अमीके। राम रजाइ मेटि मन माँही। देखा सुना कतहुँ कोउ नाँही। अत रामजी की आज्ञा मेटी नही जा सकती। नही तो सुमन्त्र किसी भाँति न लौटते। उनके लिए बिना राम के लौटना मरण से बढकर कष्टप्रद था। लौटकर महाराज से सन्देशा कहने के बाद फिर सुमन्त्रजी ने मुँह न दिखाया। महाराज का स्वर्गवास हुआ। क्रिया हुई। भरत सभा हुई। भरतजी चित्रकूट गये, लौटे पर सुमन्त्रजी का पता नही। रामजी क वन से लौटने पर ही सुमन्त्रजी घर के बाहर निकले। ऐसी चिरस्थायिनी पीडा सुमन्त्रजी को लौटने मे थी। परन्तु कर्मगति कठिन है। उस पीडा को सहना ही पडा। कोई वश न चला।

राम लक्ष्मण और सीताजी के चरणो मे सिर नवाकर इस भाँति चल जैसे कोई व्यापारी व्यापार के लिए गया हो। उसके मन मे बडी आशा थी कि बहुत लाभ होगा। घरवाले आशा लगाये बैठे थे कि खूब मुनाफा करके घर आवेंगे। पर दैव दुर्विपाक से कोई ऐसी घटना हुई कि मुनाफा को कौन कहे मूलधन भी नष्ट हो गया। जिस तरह से दु खी होकर वह व्यापारी घर लौटता है उसी भाँति सुमन्त्रजी भी लौट चले।

सुमन्त्रजी रथ लेकर चले थे कि मैं राम लक्ष्मण जानकी को लौटा लाऊँगा और बड़ा भारी यश भी हाथ लगेगा कि राम लक्ष्मण जानकी किसी के भी समझाने पर भी घर न रहे उन्हे सुमन्त्रजी लौटा लाये। यहाँ मूलधन राम लक्ष्मण जानकी और मुनाफा लौटा लाने का यश था। सो रामजी के न लौटने पर बात ही दूसरी हो गयी। अब तो सुमन्त्रजी सीधे सीधे रामजी को वन पहुँचाने-वाले हो गये। अतः मूल भी हाथ से गया और दुर्यश के भागी हुए। सारी अयोध्या कहेगी कि इसी ने हम लोगो के सो जाने पर चोरी से रामजी को वन पहुँचाया।

दो. रथु हाँकेउ हय राम तन, हेरि हेरि हिहिनाहिं।
देखि निषाद बिषादबस, धुनहिं सीस पछिताहिं ॥९९॥

अर्थ : रथ हाँका तो घोडे रामजी की ओर देखकर हिहिनाते हैं। यह देखकर निषाद लोग सिर धुन धुनकर पछताने लगे।

व्याख्या : सुमन्त्रजी ने रथ हाँका अयोध्या जाने के लिए। पर घोडो को रामजी का वियोग सह्य नही। राम रहित होकर वे जाना नही चाहते। रामजी को देखकर हिनहिनाते हैं। यही इनका करुण क्रन्दन हैं। इनको रामजी का बडा विरह हुआ। गीतावली मे कौसल्याजी के मुख से इसका विस्तार से वर्णन है। सचिव और रामजी का सवाद सुनकर निषाद परिजन के सहित विषाद से विकल हो गये थे। घोडों का हाल देखकर तो वे सिर पीट पीटकर पछताने लगे।

जासु बियोग बिकल पसु ऐसे। प्रजा मातु पितु जिइहहिं कैसे ॥
बरबस राम सुमंत्रु पठाये। सुरसरि तीर आपु तब आये ॥१॥

अर्थ : जिसके वियोग से पशु इतने विकल हैं उसके प्रजा माता पिता कैसे जीयेंगे? रामजी ने सुमन्त्र को जबरदस्ती लौटाया और तब स्वय गगाजी के किनारे गये।

व्याख्या : पशु आसन्नचेतन होते हैं। उन्हे कल : अनागत का ज्ञान नहीं होता। वे भी जब रामजी के वियोग से इतने विकल हैं तो जो बुद्धिजीवी अति निकट सम्बन्धवाले हैं यथा : प्रजा माता और पिता वे कैसे जीयेंगे ? यही सोचकर निषादगण सिर धुनकर पछता रहे हैं।

प्रश्न यह उठता है कि फिर सुमन्त्र कैसे गये ? इस पर कहते हैं कि राजी खुशी से नही गये रामजी ने जबरदस्ती उन्हे भेजा। वे रामजी की आज्ञा टार न सके। सुमन्त्र के रवाना होने के बाद रामजी गंगा के किनारे गये। स्नान के समय देख लिया था कि नाव घाट पर रहती है। इसलिए निपादराज को उसकी व्यवस्था के लिए नही कहा। सुमन्त्र के रहते गङ्गा तीर नही गये। जिसमे उन्हें साथ चलने का अवसर न मिले।

माँगी नाव न केवट आना। कहइ तुम्हार मरमु मै जाना ॥
चरन कमल रज कहुँ सबु कहई। मानुप करनि मूरि कछु अहई ॥२॥

अर्थ नाव मांगी तो केवट नही लाया। कहने लगा कि तुम्हारा मर्म मेरा जाना हुआ है। सभी लोग कहते हैं कि चरण कमल की धूलि मनुष्य बना देनेवाली कोई जडी है।

व्याख्या वहाँ जाकर देखा कि नाव किनारे पर नही। केवट उसे कुछ दूर छलका ले गया है। तब सरकार ने कहा कि नाव ले आवो। केवट कहता है कि यदि मैं आपका मर्म न जानता होता तो नाव को घाट पर ही रहने देता। मैं तो मर्म जानता हूँ। मैं नाव को कैसे ले आऊँ। यह बात तो किसी से छिपी नही है कि आपके चरणो की रज मनुष्य बनानेवाली जडी है केवट ने देखा कि सुमन्त्र की विदाई से सरकार कुछ खिन्न से हो गये है। अत उनके हँसाने का उपाय कर रहा है। शृङ्गवेरपुर शृङ्गीऋषि का आश्रम है। उन्ही से भगवती शान्ता व्याही हैं। उसी नाते से वहाँ के मुनिपुत्रो ने सरकार से हँसी की थी। यथा

बिंधि के वासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा मैं सुनि मुनिवृन्द सुखारे।
ह्वै है शिला सब चद्रमुखी परसे पद मजुल कजु तुम्हारे।
कीन्ही कृपा रघुनायक जू करुना करके इतको पग धारे।

यहाँ के बच्चे बच्चे इस बात को जानते हैं। केवट उसी नाते को काम मे लाना चाहता है।

छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन ते न काठ कठिनाई ॥
तरनिउ[1] मुनि घरनी होई जाई। बाट परै मोरि नाव उडाई ॥३॥

अर्थ छूते ही शिला मुनि की स्त्री हो गयी। पत्थर से काठ कठिन नही होता। नाव भी मुनि की स्त्री हो जायगी। रास्ते मे पडने से मेरी नाव ही उड जायगी।

व्याख्या परसि जासु पदपकज धूरो। तरी अहल्या कृत अघ भूरी। जब शिला रज के स्पर्श मात्र से सुन्दर स्त्री हो गयी यथा गौतम गये गृह गौनो सो लवाइके। तो इस काठ की नाव को मुनि की स्त्री हो जाने मे क्या देर लगेगी। पत्थर से तो काठ कोमल होता है। यथा पाहन ते वन वाहन काठ को कोमल है जल खाइ रहा है यह प्रसङ्ग कवित्त रामायण म देखने लायक है। यह नाव भी किसी मुनि की स्त्री हो जायगी। यह भी नही कि मेरी हो कर रहे। रास्ते म पडने से मेरी नाव उड जायगी। इसी भय से तो मै किनारे से दूर हटा लाया हूँ।

एहि प्रतिपालउँ सबु परिवारू। नहि जानउँ कछु और कबारू ॥
जौ प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू ॥४॥

---

१ व्याज स्तुति अलकार है।

अर्थ : इसी से मैं सब परिवार का प्रतिपालन करता हूँ। दूसरा कोई काम धन्धा मैं जानता नही। अवश्य ही यदि पार जाना चाहते हैं तो मुझे चरण कमल के धोने की आज्ञा दीजिये।

व्याख्या : पात भरी सहरी सकल सुत बारे बारे
केवट की जाति कछु वेद ना पढाइहौं।
सब परिवार मेरो यहि लागि राजा जू
दीन वित्त हीन कैसे दूसरी गढाइहौं।
गौतम की घरनी ज्यौं तरनी तरैगी मेरी
प्रभु सो निषाद ह्वै के बाद ना बढाइहौं।
तुलसी के ईश राम रावरे सो साँची कहौं
बिना पग धोए नाथ नाव ना चढाइहौं।

मैं तो यही जानता हूँ कि सरकार को पार जाना नही हैं। किसी मुनि को सुन्दर स्त्री भेंट करना है। इस मर्म को मैं समझ रहा हूँ। यदि कहिये कि नही मुझे पार जाना आवश्यक है तो आज्ञा दीजिये मैं पैर धो लूँ जिसमे कोई रज का लेश न रह जाय।

छ. पद कमल धोइ चढाइ नाव न नाथ उतराई चहौ।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साँची कहौ॥
बरु तीर मारहु लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौ।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पारु उतारिहौ॥

अर्थ : चरण कमल धोकर नाव पर चढाकर हे नाथ! मैं उतराई नही चाहता। मुझे आपकी शपथ दशरथ की सौगन्ध मैं सच्ची कहता हूँ। चाहे लक्ष्मणजी तीर मार दें। पर जब तक पैर न धो लूँगा तब तक हे कृपाल तुलसीदास के नाथ! मैं पार न उतारूँगा।

व्याख्या : सरकारी आज्ञा पालन मे मुझे रत्ती भर आगा पीछा नही है। चरणो को धोकर नाव की रक्षा चाहता हूँ। फिर आपको नाव पर चढाऊँगा। नही तो फिर चरणो मे रज लग जायगा। सरकार के चढ जाने पर पार उतारने का तो कोई प्रश्न ही नही। मैं उतराई भी नही लूँगा। उतराई ली जाती है बटोहियो से। सरकार तो नाथ हैं। नाथ से उतराई कैसी? यदि कहिये कि नही तू बातें बनाता है तो इस पर कहता है कि मैं सच्ची बात कहता हूँ। सरकार नाथ हैं। सो आपकी शपथ लेता हूँ। महाराज दशरथ जगतीपति हैं उनकी शपथ लेता हूँ। पार उतारने में मुझे कोई उज्र नही है।

लखन बान धनु धरे बनाई। लक्ष्मणजी पार जाने की तैयारी करते है। धनुष बाण को सुधार रहे हैं। तो उन्हे भी हँसाने के लिए उन पर मारने की धमकी का

आरोप करता है। कहता है कि चाहे लक्ष्मणजी तीर मार दें पर बिना पैर धोये तो मैं पार उतारता नहीं।

दो० सुनि केवट के बयन, प्रेम लपेटे अटपटे।
विहँसे करुना अयन, चितइ जानकी लखन तन ॥१००॥

अर्थ . केवट के प्रेम लपेटे अटपटे वचन सुनकर करुणाअयन रामजी जानकी और लक्ष्मण की ओर देखकर जोर से हँस पडे।

व्याख्या अटपटी बात अटपटी चेष्टा हास्यरस का उद्बोधक है। किं पुन यदि प्रेम से पगी हुई हो। सो इसका मुख्य तात्पर्य तो पैर धोने मे है। उसके लिए इतने बखेडेबाजी की बात पर सरकार हँस पडे। हास्यरस का आनन्द प्रेमिया क साथ ही लिया जा सकता है अकेले नहीं। अत उस रसोपभोग मे सम्मिलित करने के लिए लक्ष्मण और सीताजी की ओर देखा। प्रसङ्ग प्राप्त अर्थ तो यही है हास्य रस के विभाव की पुष्टि के लिए सखा और सखी की ओर देखना आवश्यक था। नहीं तो अकेले तो पागल हँसा करते हैं। जानकी लक्ष्मण की ओर देखने का और भी अर्थ लगाया जा सकता है। जानकीजी के हृदय मे यही भाव उठा था। यथा गौतम तिय गति सुमिरि करि नहि परसत पद पानि। मन विहसे रघुवसमनि प्रीति अलौकिक जानि। वहाँ मन मे विहँसे थे। यहाँ प्रत्यक्ष विहँस रहे है। सखियो के कहने पर भी सीताजी के चरण स्पर्श न करने के साक्षी इस समय लक्ष्मणजी है। अत उस समय का स्मरण करके प्रभु लक्ष्मण और जानकी की ओर देखकर हँस रहे है। कुछ लोग यहाँ पर हँसने के आशय को स्पष्ट करने के लिए किसी पूर्वजन्म की कथा की कल्पना करते हैं। पर ऐसी कल्पनाएँ यहाँ अप्रासङ्गिक हैं।

कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहि तव नाव न जाई॥
वेगि आनु जलु पाय पखारू। होत विलवु उतारहि पारू॥१॥

अर्थ कृपासिन्धु मुसकुरा कर बोले कि अच्छा वही करो जिसमे तुम्हारी नाव बची रहे। शीघ्रता से जल लाकर पैर धो लो। देर हो रही है। पार उतार दो।

व्याख्या कृपासिन्धु है। उसकी सब बखेडेबाजी को माने लेते है। कहते है कि जैसे तुम्हारी नाव बची रहे वही करो। मुझ इसे स्त्री बनाकर किसी मुनि को नहीं देनी है। मुझे पार जाने की जल्दी है। सो जल लाकर पैर धोने मे जल्दी करो। इन सब बातो के कहने मे सरकार के चेहरे पर मुसकुराहट है हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकासा। सूचत किरिन मनोहर हाँसा।

जासु नामु सुमिरत एक बारा। उतरहि नर भवसिंधु अपारा॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहि जगु किये तिहुँ पगहुँ ते थोरा॥२॥

अर्थ जिसके नाम के एक बार स्मरण कर लेने से मनुष्य अपार भवसागर के

पार उतर जाता है। वही नामी कृपाल प्रभु केवट का निहोरा कर रहे हैं। जिन्होंने संसार को तीन पग से भी छोटा कर दिया था।

व्याख्या : आभीर जवन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे। कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते। जिसके नाम में ऐसी तारिणी शक्ति है कि एक बार उच्चारण करने से महापापी भी पावन होकर भवसागर पार होता है वही कृपाल गङ्गा पार जाने के लिए केवट से नाव माँगते हैं। वह नही लाता बखेड़ेबाजी करता है। तब आप उसका निहोरा करते हैं : सोई करु जेहि तव नाव न जाई''होत बिलबु उतारिहि पारू। यहाँ पर कवि प्रभु के वामनावतार का स्मरण दिलाते हैं कि राजा बलि से सङ्कल्प लेकर जो नापने चले तो तीनो लोक नाप डाले। तीन पग पूरा न हुआ। उसे आज गङ्गा पार करना असम्भव हो रहा है। यह उनकी लीला है।

पद नख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु बचन मोह मति करषी ॥
केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लै आवा ॥३॥

अर्थ : चरण के नख को देखकर गङ्गाजी प्रसन्न हुई। पर उनके वचन सुनकर मोह की ओर बुद्धि खिंच गयी। केवट ने रामजी की आज्ञा पा ली सो कठौता भर के पानी लाया।

व्याख्या : गङ्गाजी को अपनी जन्मभूमि देखकर हर्ष हुआ। यथा : नख निर्गता मुनि वंदिता त्रैलोक्य पावन सुरसरी। क्योंकि सरकार के पद नख से उनकी उत्पत्ति है। पर निहोरावाला वचन सुनकर मोह की ओर बुद्धि खिचने लगी कि क्या ये वही सरकार नही हैं। भाव यह कि सरकार का मनुष्यभाव का अभिनय ऐसा मार्मिक होता है कि ऐसे जानकार को भी भ्रम हो जाय' और भ्रम नही है तो केवट को। यह सरकार की लीला है। उसे आज्ञा की देर थी। जल से भरकर कठौता ले आया कि इसमें पदरज धोयेंगे। उड़ जायगा तो कोई भारी हानि नही है।

अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा ॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाही। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाही ॥४॥

अर्थ : अत्यन्त आनन्द से प्रेम के उमङ्ग मे आकर चरण कमल धोने लगा। फूलो की वर्षा करके देवता लोग ईर्ष्यापूर्वक कहने लगे कि इसके समान पुण्यात्मा कोई नही है।

व्याख्या : प्रभु रुख पाइकै बोलाइ बाल घरनी को बंदि कै चरन चहुँदिसि बैठे घेरि घेरि। छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गङ्गाजी को धोइ पाय पियत पुनीत बारि फेरि फेरि। इसीलिए कवि कहते हैं पखारन लागा। क्या शोभा हुई। बीच में सरकार है। केवट बाल बच्चो के सहित घेरे हुए बैठा है। सरकार के चरण कमल को धोकर उस जल को फेर फेर कर पी रहा है। जिसमे रज नीचे न बैठ जाने पावे। ऊपर से देवता लोग पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। ईर्ष्या कर रहे हैं कि हमारा

भाग्य ऐसा नही। इन चरणो को जनकजी ने धोया था। यथा बहुरि रामपद पकज धोये। जे हर हृदय कमल मँह गोये। उन चरणो को यह केवट होकर धो रहा है। अत इस सा पुण्यवान् कोई नही।

दो पद[1] पखारि जलु पान करि, आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि, मुदित गयेउ लइ पार ॥१०१॥

अर्थ पैर धोकर स्वय परिवार सहित जलपान किया और पितरो को पार करके प्रभु को हर्षित होकर पार ले गया।

व्याख्या कोशलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ जानकीकरसरोज-लालितौ। प्रभु के चरण शिव अज से वन्दित है। जानकीजी के कर कमलो से लालित है। जेहि पद परसि तरी रिपि नारी। दडक कानन पावन कारी। हर उर सर सरोज पद जोई। उस पद को अपने हाथो से प्रक्षालन करके उस चरणामृत को परिवार के साथ केवट ने पान किया। इससे उसके पितृकुल श्वशुरकुल तथा बन्धुओ के सभी कुल तर गये। इस भाँति उसने पहिल पितरो को भवसागर पार कर लिया तब प्रसन्न होकर प्रभु को गङ्गापार ले गया।

१४ सुरसरि उतरि प्रयाग निवास

उतरि ठाढ भए सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखन समेता॥
केवट उतरि दडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा ॥१॥

अर्थ सीता और रामजी गुह और लक्ष्मण के सहित उतरकर गङ्गाजी के रेत मे खडे हो गये। केवट ने उतरकर दण्डवत् किया। प्रभु को सङ्कोच हुआ कि इसे कुछ दिया नही गया।

व्याख्या गङ्गापार पहुँचकर सीता और रामजी निषादराज और लक्ष्मण के साथ नाव पर से उतरकर रेत म खडे हो गये। क्योकि यहाँ नित्यकृत्य करना है। तब केवट ने उतरकर दण्डवत् किया। यहाँ पर यह बात अभ्रान्त रूप से स्पष्ट हो जाती है कि केवट और निषादराज गुह दो व्यक्ति थे। राजाओ के यहाँ नट आदि जब अपनी करामात दिखा चुकते है तो पीछे इनाम के लिए दण्डवत् करते है। सो केवल को दण्डवत् करते देखकर प्रभु को सङ्कोच हुआ कि इसे कुछ दिया नही गया। यद्यपि इसने कहा कि मुझ उतराई नही चाहिए। पर इससे परिवार का प्रतिपालन उतराई से ही होता है। अत इसे कुछ देना चाहिए था। पैर धोने की गिनती उतराई मे नही हो सकती।

पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुँदरी मन मुदित उतारी॥
कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई ॥२॥

———

१ यहाँ अत्यन्तातिशयोक्ति अलङ्कार है।

अर्थ पिय के हिय की जाननेवाली सीताजी थी। उन्होंने प्रसन्न मन से मणि की अगूँठी उतार दी। कृपालु ने कहा कि उतराई लो। केवट ने आकुल होकर चरण पकड लिया।

व्याख्या प्रभु के सङ्कोच को सीताजी ने लखा। वे इनके मन को जाननेवाली हैं। क्योंकि इनका मन सदा उनके पास रहता है। यथा सो मन सदा रहत तोहि पाँही। उतराई बडी छोटी चीज है। मणिमुदरी बडी अमूल्य वस्तु है। उतराई देने के लिए ऐसे अमूल्य आभूषण को उतारना स्त्रियों के लिए बडे कष्ट की बात है। पर सीताजी को सरकार के सङ्कोच के सामने मणिमुदरी क्या है। अत प्रसन्न मन से उतार दिया। सरकार देखते रहे। दोनो पर बडी कृपा है। उस मुदरी को उतराई के रूप मे देने लगे।

उतराई का नाम सुनते ही केवट विकल हो गया। उतराई कैसी ? क्या मैंने इन्हे उतराई के लिए पार उतारा है। इतना ही तो मुझसे सेवा यावज्जीवन मे बन पडी। उसका भी विनिमय दे रहे हैं। मेरी सेवा स्वीकार नही। लोग मुझे क्या कहेंगे कि उतराई के लिए स्त्री का गहना उतरवा लिया।

नाथ आजु मै काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा॥
बहुत काल मै कीन्हि मजूरी। आज दीन्हि विधि बनि भलि भूरी॥३॥

अर्थ हे नाथ! आज मैंने क्या नही पाया। दोष दुख और दरिद्र की दावाग्नि शान्त हो गयी। मैंने बहुत दिनो से मजदूरी की है। पर विधाता ने आज मुझे अच्छी और पूरी मजदूरी दी है।

व्याख्या भाव यह कि मैं पूर्णकाम हो गया। हृदय मे दोष दुख और दरिद्रता का दावानल जला करता था सो आज शान्त हो गया। मिटे दोष दुख भव रजनीके। सो दोष दुख से परलोक के दुख का नाश कहा और दारिद कहने से ऐहिक दुख का नाश कहा।

केवट कहता है कि कभी ऐसी मजदूरी मिली ही नहीं थी। यदि कहिये कि मैंने तो दी ही नही मिल कैसे गयी। इस पर कहता है कि विधाता ने दी। मनुष्य ऐसी मजदूरी दे नही सकता। मैंने आप से मजदूरी न लेने का प्रण किया था इसलिए विधि ने दी।

अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीनदयाल अनुग्रह तोरें॥
फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा॥४॥

अर्थ हे नाथ! हे दीनदयाल! तुम्हारे अनुग्रह से अब मुझे कुछ न चाहिए। लौटती बार जो देंगे वह प्रसाद मैं सिर धर कर लूँगा।

व्याख्या मैं कृतकृत्य हो गया। आपके अनुग्रह से मुझे कोई घाटा नहीं रह गया। प्रभु दीनदयाल हैं। दया ने ही सब घाटा पूरा कर दिया। यदि कहिये घाटा नहीं सही। पर जो मिलता है उसके स्वीकार करने मे क्या आपत्ति। इस पर कहता

है कि लौटती बार जो मिलेगा उसे शिरोधार्य करूँगा। क्योंकि उस समय मैं अयोध्या लौटने मे सहायक होऊँगा। इस समय तो मैं प्रभु के वन जाने का मार्ग निरर्गल कर रहा हूँ। प्रभु की आज्ञा न टाल सका। इसलिए पार उतार दिया नही तो मैं कदापि पार न ले आता।

दो. बहुत कीन्ह प्रभु लखन सिय, नहि कछु केवटु[1] लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन, भगति बिमल बरु देइ ॥१०२॥

अर्थ : सीता लक्ष्मण और रामजी ने बहुत प्रयत्न किया। पर केवट कुछ नही लेता। तब करुनायतन ने निर्मल भक्ति देकर विदा किया।

व्याख्या : जब जानकीजी के हाथ से लेना केवट ने किसी भाँति नही चाहा तो लक्ष्मणजी देने लगे। उनसे भी जब नही लिया तो स्वयं सरकार देने लगे। पर उसने किसी तरह से लेना स्वीकार नही किया। महात्माओ का कथन है कि उस अँगूठी का मूल्य तीनो लोक था। जब उसने नही लिया तो सरकार ने सब प्रकार से उसे नि स्पृह समझकर निर्मल भक्ति का वर दिया। देव को चौदह वर्ष तक नही रोका जा सकता। दूसरी बात यह है कि प्रभु का सङ्कल्प अमोघ है। अत उसे बिना माँगे अनुपमसुखमूल भक्ति दी। *बिना माँगे अविरल भक्ति केवट ने हो पायी।*

तब मज्जनु करि रघुकुल नाथा। पूजि पारथिव नायेउ माथा॥
सिय सुरसरिहि कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी॥१॥

अर्थ तब रघुकुलनाथ रामजी ने पार्थिव पूजन करके प्रणाम किया। सीताजी ने हाथ जोड़कर गङ्गाजी से प्रार्थना की कि माँ। मेरे मनोरथ को पूरा करना।

व्याख्या · गृहस्थ के लिए मध्याह्नकृत्य मे ही विस्तार का विधान है। प्रात.-कृत्य तो सन्ध्या मात्र है। पूजनादि का विधान मध्याह्न मे ही है। श्रीरामजी रघुकुलनाथ हैं। नित्य पार्थिवपूजन करते है। शिवजी के सावयव मूर्ति पूजने से लिङ्गपूजन अधिक विजयप्रद है। अश्वत्थामा ने व्यासजी से पूछा कि क्यो कृष्णार्जुन की ही विजय होती है मेरी क्यो नही होती। व्यासजी ने कहा कि तुम तीनो जन्म जन्मान्तर के शिवभक्त हो। कृष्णार्जुन ने महालिङ्ग पूजन किया और तुमने सावयव मूर्ति का पूजन किया है। अत कृष्णार्जुन के सामने तुम विजयी नही हो सकते और लिङ्गपूजन मे भी पार्थिव पूजन का बडा माहात्म्य है। अतः मध्याह्न स्नान करके रामजी ने पार्थिव · मिट्टी का शिवलिङ्ग बनाकर पूजन किया और अन्त मे प्रणाम करके विसर्जन किया।

---

१. केवट मे गुणमाहात्म्यासक्ति थी। यह ग्यारह प्रकार की भक्तियो मे प्रथम है। यथा : गुणमाहात्म्यासक्तिरूपासक्तिपूजासक्तिस्मरणासक्तिदास्यासक्तिसख्यासक्तिकान्तासक्ति-वात्सल्यासक्तिआत्मनिवेदनासक्तितन्मयासक्तिपरमविरहासक्तिरूपा एकधाप्येकादशधा भवति। ना. भ. सू. ८२।

रामजी ने शिवजी की आराधना की और जानकीजी ने गङ्गाजी से मनौती मानी। उमा और गङ्गा दोनो शिवजी की शक्तियाँ है। सीताजी ने उमा : गौरी के पूजन के समय माँ सम्बोधन किया। यथा : पति देवता सुतीय महँमातु प्रथम तव रेख और यहाँ गङ्गा के पूजन मे भी मातु सम्बोधन दे रही हैं। आज भी स्त्रियाँ सौभाग्य के लिए गौरीपूजन और मनोरथ पूर्ति के लिए गङ्गापूजन करती हैं।

पति देवर सँग कुसल वहोरी। आइ करउँ जेहि पूजा तोरी ॥
सुनि सिय विनय प्रेमरस सानी। भइ तब विमल वारि वर वानी ॥२॥

अर्थ : जिससे पति और देवर के साथ कुशलपूर्वक लौटकर फिर तुम्हारी पूजा करें। प्रेमरस से ओत प्रोत सीताजी विनती सुनकर निर्मल जल से श्रेष्ठ शब्द निकले।

व्याख्या : यहाँ वहोरी पद से पता चलता है कि जिस समय रामजी पार्थिव पूजन कर रहे थे उस समय सीताजी गङ्गापूजन कर रही थी। पूजनोपरान्त हाथ जोडकर मनौती मानती है। गङ्गाजी तक कोसलराज की सीमा है। वन मे प्रवेश तो इसी के बाद होगा। अत प्रार्थना करती हैं कि पति देवर के साथ मैं चौदह वर्ष के लिए वन जा रही हूँ। अव यदि आपकी कृपा से सब कुशल रहे तो चौदह वर्ष के बाद ही फिर दर्शन का सयोग हो सकता है। अत आप ऐसी कृपा करें कि पति और देवर के साथ लौटकर फिर मैं आपकी पूजा कर सकूँ।

व्याख्या : सीताजी का विनय और प्रेम ऐसा सच्चा है कि उसने उमा को वश कर लिया था। यथा : विनय प्रेमवश भई भवानी। यहाँ उन्होने गङ्गाजी को विनय और प्रेम के वश मे कर लिया। वहाँ मूर्ति वोल उठी। यथा वोली गौरि हरप उर भरेऊ। यहाँ विमल जल से श्रेष्ठ वाणी निकल रही है। मूर्ति पूजन का यही रहस्य है कि विनय और प्रेम से जड मूर्तियो मे देवत्व का आविर्भाव हो उठे।

सुनु रघुवीर प्रिया वैदेही। तव प्रभाव जग विदित न केही ॥
लोकप होहिं विलोकत तोरे। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे ॥३॥

अर्थ : हे रघुवीर की प्रिया वैदेही! सुनो तुम्हारी प्रभुता ससार मे कौन नही जानता। जिसे तुम देख दो वह लोकपाल हो जाय। तुम्हारी सेवा सब सिद्धियाँ हाथ जोडे किया करती हैं।

व्याख्या : वहाँ भगवती गौरी ने कहा : सुनु सिय सत्य असीस हमारी। यहाँ गङ्गा कह रही हैं : सुनु रघुवीर प्रिया वैदेही। विवाह के बाद पति के नाम के साथ सम्बोधन करने की चाल है। पति के नाम के साथ स्त्री के नाम के लय हो जाने से सर्वथा ऐक्य हो जाता है। अथवा रघुवीर प्रिया और वैदेही दोनों सम्बोधन देने से पतिकुल और पितृकुल दोनो की उत्तमता कहा। तुम उद्भवस्थितिसहारकारिणी क्लेशहारिणी तथा सर्वश्रेयस्करी हो। तुम्हारा प्रभाव कौन नही जानता। जिसकी ओर दृष्टि फिर जाय वह लोकपाल हो जाता है। यथा : जाकी कृपा कटाक्ष सुर

चाहत चितव न सोइ। सिद्धियाँ सब हाथ जोडे तुम्हारी सेवा किया करती हैं। यथा सिधि सब सिय आयेसु अकनि गई जहाँ जनवास। लिये सपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास।

तुम्ह जो हमहि बडि बिनय सुनाई। कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बडाई॥
तदपि देवि मै देवि असीसा। सफल होन हित निज बागीसा॥४॥

अर्थ तुमने जो हम बडी विनय सुनायी सो तुमने बडी कृपा की। मुझे बडाई दी। फिर भी हे देवि! मैं अपनी वाणी को सफल करने के लिए तुम्हे आशीर्वाद दूँगी।

व्याख्या तुम्हारा इतना कहना हो बडा भारी विनय है। तुम जो चाहोगी वह होकर ही रहेगा। फिर भी जो तुम विनय करती हो यह तुम्हारी कृपा है। मुझ बडाई दे रही हो। प्रभु बडाई दे चुके। यथा सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। बिबुध नदी महिमा अधिकाई। सो तुम उसी को पुष्ट कर रही हो।

यद्यपि तुम सर्व समर्थ हो। फिर भी तुम्हारा विनय मोघ न हो इसलिए मै आशीर्वाद दूँगी। अथवा भागीरथी हाने से मै नाते मे तुमसे बडी हूँ। अत आशीवाद देने का मेरा हक भी है और आशोर्वाद देने मे मेरी वाणी का साफल्य है। क्योकि ऐसा होने ही वाला है। अब आशीर्वाद देती हैं।

दो० प्राननाथ देवर सहित, कुसल कोसला आइ।
पूजिहि सब मन कामना, सुजसु रहहि जग छाइ॥१०३॥

अर्थ तुम प्राणनाथ और देवर के सहित कुशलपूर्वक अयोध्या लौटोगी। तुम्हारी सब मन की कामनाएँ पूरी होगी और तुम्हारी कीर्ति ससार मे छा जायेगी।

व्याख्या प्राणनाथ और प्रिय दवर के साथ जिस भाँति वन जा रही हो उसी भाति कुशल पूर्वक अयोध्या म चौदह वर्ष बाद लौटोगी। तुम्हारे मन म सासो की सेवा करने की कामना है। यथा सेवा समय देव बन दीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा। सो मनोरथ सफल होगा और भी जितने मनोरथ हैं सभी पूर्ण होगे और तुम्हारी कीर्ति ससार भर मे व्याप्त हो जायगी। यथा जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवन कीन्ह बिधि अड करोरी। वहाँ भगवती गौरी ने भी ऐसा ही आशीर्वाद दिया था। यथा सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजिहि मन कामना तुम्हारी।

गग बचन सुनि मगल मूला। मुदित सीय सुरसरि अनुकूला॥
तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू। सुनत सूख मुखु भा उर दाहू॥१॥

अथ गङ्गाजी के मङ्गल मूल वचन का सुनकर सीताजी प्रसन्न हुई कि गङ्गाजी मेरे अनुकूल हैं। तब प्रभु ने गुह से कहा कि घर जाओ सुनते हो उसका मुख सूख गया और हृदय म दाह उत्पन्न हुआ।

व्याख्या : गङ्ग सकल मुद मङ्गल मूला। अत: उनके वचन भी मङ्गलमूल हैं। वहाँ : जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरख न जाइ कहि। यहाँ : मुदित सीय सुरसरि अनुकूला। जितना माँगा था उससे अधिक के लिए आशीर्वाद पाकर जाना कि गङ्गाजी अनुकूल हैं। अत. सीताजी मुदित हैं।

गङ्गाजी के आशीर्वाद के बाद सरकार आगे चलने को तैयार हुए। इसलिए निषादराज को आज्ञा दी कि घर जाओ। हमें तो वन जाना है। निषादराज घर से तैयार होकर चले थे कि सरकार जहाँ रहेंगे उसे देखकर लौटेंगे। मैं तो जङ्गली हूँ। मेरे साथ रहने में क्या रोक है। पहिले भी आखेट में मैं साथ रहता ही था। पर सरकार की आज्ञा सुनते ही उसके हृदय में दाह उत्पन्न हुआ। अतः मुख सूख गया।

दीन बचन गुह कह कर जोरी। बिनय सुनहु रघुकुलमनि मोरी॥
नाथ साथ रहि पंथु देखाई। करि दिन चारि चरन सेवकाई॥२॥

अर्थ : गुह हाथ जोड़कर दीन वचन बोला कि हे रघुकुलमणि! मेरी विनती सुनिये। मैं सरकार के साथ रहकर रास्ता दिखाऊँगा। चार दिन चरणों की सेवा करूँगा।

व्याख्या : आर्त होकर निषादराज दीन वचन बोले। भा उर दाहू से मन की दीन वचन कहकर वाणी की और करजोरी कहकर तन की दीनता दिखायी। रघुकुलमणि सम्बोधन से भाव यह कि इस कुल से अर्थी के मनोरथ की सदा से पूर्ति होती आयी है। सरकार तो उसमें मणि हैं। मेरी प्रार्थना स्वीकार हो।

सरकार हमारे नाथ हैं। मैं इस भाँति वन मे कैसे जाने दूँ। वन का रास्ता मेरा देखा है। मै साथ रहकर रास्ता बतलाऊँगा। वन्य फल मूल का पता हम लोगों को ही रहता है। शयन के लिए साथरी आदि बनाने का काम मै करूँगा। इस भाँति चार दिन के लिए सेवा का सौभाग्य मुझको प्राप्त होगा।

जेहि बन जाइ रहब रघुराई। परन कुटी मै करबि सुहाई॥
तब मोहि कहँ जसि देब रजाई। सोइ करिहौं रघुबीर दोहाई॥३॥

अर्थ : हे रघुराई! जिस वन मे जाकर आप रहेंगे उसमें सुन्दर पत्ते की कुटी मैं बना दूँगा। तब मुझे जो आज्ञा होगी सरकार की दोहाई मैं वह करूँगा।

व्याख्या : निषादराज रहने का पूरा पता जान लेना चाहता है। कहता है कि जिस वन में आप रहेंगे वहाँ पर्णकुटी कौन बनावेगा? यदि कहिये कि हम लोग बना लेंगे। तो इस पर कहता है कि वह ठीक न बनेगी। पत्ते की कुटी सुन्दर बनाना तो हम लोग जानते हैं। जब मैं कुटी बना लूँगा तब मेरे जाने या रहने पर विचार कीजियेगा। यदि आज्ञा होगी कि तुम चले जाओ तो सरकार की दोहाई मैं चला जाऊँगा। रहने के लिए हठ न करूँगा।

सहज सनेह राम लखि तासू। संग लीन्ह गुह हृदय हुलासू॥
पुनि गुह ग्याति बोलि सब लीन्हे। करि परितोषु बिदा तब कीन्हे॥४॥

अर्थ : उसका सनेह देखकर रामजी ने गुह को साथ ले लिया। उसके हृद मे उल्लास हुआ। तत्पश्चात् गुह ने जातिवालो को बुला लिया और उनक सन्तोष करके विदा किया।

व्याख्या : सरकार सहज स्नेह के वश हैं। यथा : सहज सनेह विवस रघुराई अतः गुह को विनती स्वीकृत हुई। उसे साथ ले लिया। उसके हृदय में हर्ष है। सा जाने को खुशी है।

गुह निषादराज है। अतः जातिवाले उसके साथ आये हैं। उनको बुलाक गुह ने समझा दिया कि तुम लोग लौट जाओ। मेरा ही साथ जाना कठिन हो रह है। तुम लोग साथ रहोगे तो मैं भी न जाने पाऊँगा। इनके रहने की व्यवस्था कर लौट आऊँगा। आगे भयङ्कर वन है। सम्भव है कि जानकीजी डरें। तो मुः उन्हे लौटा ले जाने की आज्ञा मिलनी भी सम्भव है। ऐसी बातें कहकर उनक परितोष करके उन्हे विदा दिया।

दो. तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु, नाइ सुरसरिहि माथ।
सखा अनुज सिय सहित बन, गवनु कीन्ह रघुनाथ ॥१०४॥

अर्थ : तब गणपति और शिवजी का स्मरण करके और गङ्गाजी को सिर नवाकर सखा अनुज और सीताजी के साथ सरकार वन को चले।

व्याख्या : अपना नाम अपने रखने से रहता है। अतः जिनकी प्रथम पूज नाम के प्रभाव से होती है उन्हे पहिले स्मरण किया। तत्पश्चात् अपने सर्वार्थकारी शिवजी का स्मरण किया। यथा : सेवक स्वामि सखा सिय पीके। प्रत्यक्ष नही है। इसलिए स्मरण मात्र किया और गङ्गाजी घर की बडी बूढी हैं और सामने हैं। अतः उन्हे सिर नवाया। आरम्भ मे चले थे तब गणपति तथा शिवजी के साथ गौरीजी को मनाया था। यहाँ गङ्गाजी को प्रमाण किया। दोनो शक्तियाँ शिवजी की हैं। सो दोनो का मान रक्खा। तब सखा निषादराज, लक्ष्मण और सीता के साथ रघुनाथजी ने वनगमन किया।

तेहि दिन भयउ बिटप तर बासू। लखन सखा सब कीन्ह सुपासू॥
प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराजु दीख प्रभु जाई॥१॥

अर्थ : उस दिन पेड़ के नीचे निवास किया। लक्ष्मणजी और सखा निषाद-राज ने सब प्रबन्ध किया। सवेरे नित्यकृत्य करके प्रभु ने जाकर तीर्थराज का दर्शन किया।

व्याख्या : गङ्गा पार होने के बाद वहाँ से सीधा रास्ता चित्रकूट का है। पर सरकार प्रयागराज को बायाँ देना नही चाहते। अतः पूर्व की ओर मुडे। रास्ते मे ही सन्ध्या हो गयी। अतः वृक्ष के नीचे ठहर गये। भोजन शयनादि का प्रबन्ध लक्ष्मण और निषादराज ने किया।

सरकार जहाँ सोते हैं उठने पर प्रात काल का कृत्य वही करते हैं। जिसमे काल का लोप न हो। प्रयागराज निकट हैं। अत मध्यान्ह कृत्य वही होगा। तीर्थों के राजा हैं। इसलिए प्रयागराज कहलाते हैं। सरकार चल। तीर्थराज का दर्शन हुआ।

सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीतु हितकारी ॥
चारि पदारथ भरा भडारू। पुन्य प्रदेस देस अति चारू ॥२॥

अर्थ सत्य मन्त्री हैं। श्रद्धा प्रिय स्त्री है। माधव जैसे हितकारी मित्र हैं। चारो पदार्थ से भण्डार भरा हुआ है। पुण्य प्रदेश ही अति सुन्दर राज्य है।

व्याख्या तीर्थराज हैं। सब राजसी ठाट बाट है। राजा के छ अङ्ग होते हैं मन्त्री, मित्र, राज्य, कोप दुर्ग और सेना। राजा का मुख्य अङ्ग मन्त्री है राज्य से भ्रष्ट राजा भी मन्त्री क होने से फिर राज्य प्राप्त कर सकता है। सो यहाँ सत्य ही मन्त्री हैं। बिना इनकी कृपा राजा से भेंट नही हो सकती। बिना सत्य के आश्रयण क तीर्थ फल की प्राप्ति नही हो सकती। पट्टाभिषिक्ता महिषी श्रद्धा तीर्थ-राज को बडी प्रिय है। इनके बिना धम की उत्पत्ति ही नही होती। दूसरे अङ्ग मित्र रूप से माधव है। सब प्रकार से तीर्थराज के सहायक हैं। तीसरा अङ्ग कोष है। उसमे चारो पदार्थ धम अर्थ काम और मोक्ष भरा हुआ है और अन्तर्वेदा गङ्गा यमुना के बीच का पुण्य प्रदेश ही राज्य है।

छेत्रु अगमु गढु गाढ सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा ॥
सेन सकल तीरथ बर बीरा। कलुष अनीक दलन रन धीरा ॥३॥

अर्थ प्रयाग क्षेत्र ही दुर्गम दृढ दुर्ग किला शोभायमान हैं। जिसे पाने का स्वप्न भी शत्रु नही देख सकते। सब तीर्थ ही वीरो की सेना हैं। जो पाप की सेना के नाश म बडे रणधीर हैं।

व्याख्या प्रयागराज का जो क्षेत्र है वही किला स्थानीय है। जिसमे न तो शत्रु का प्रवेश हो सकता है न उनका तोडा टूट सकता है। शत्रुओ ने कितने तीर्थ नष्ट कर डाल। पर प्रयागराज पर उनका वल न कभी चला और न चल सकने का वे स्वप्न ही देख सकते हैं। बौद्धो क काल म जब अयोध्यादि तीर्थ लुप्त हो गये थे केवल तीथराज बने रहे उन पर बौद्धो का जोर न चला। महाराज विक्रमादित्य ने प्रयाग की दूरी पुराणो से देख देखकर तीर्थों की स्थिति का पता लगाया और फिर स स्थापन किया। जितने बडे बडे तीर्थ ससार म हैं जो दिन रात पापो का नाश किया करते हैं वे सब तीथराज के ही सैनिक हैं।

सगमु सिघासनु सुठि साहा। छत्रु अछयवटु मुनि मनु मोहा ॥
चंवर जमुन अरु गग तरगा। देखि होहिं दुख दारिद भगा ॥४॥

अर्थ गङ्गा यमुना का सङ्गम ही श्रेष्ठ सुन्दर सिहासन है। मुनियो के मन

अर्थ : उसका सनेह देखकर रामजी ने गुह को साथ ले लिया। उसके हृदय मे उल्लास हुआ। तत्पश्चात् गुह ने जातिवालो को बुला लिया और उनका सन्तोष करके विदा किया।

व्याख्या : सरकार सहज स्नेह के वश हैं। यथा : सहज सनेह विबस रघुराई। अतः गुह को विनती स्वीकृत हुई। उसे साथ ले लिया। उसके हृदय में हर्ष है। साथ जाने को खुशी है।

गुह निषादराज है। अतः जातिवाले उसके साथ आये हैं। उनको बुलाकर गुह ने समझा दिया कि तुम लोग लौट जाओ। मेरा ही साथ जाना कठिन हो रहा है। तुम लोग साथ रहोगे तो मै भी न जाने पाऊँगा। इनके रहने की व्यवस्था करके लौट आऊँगा। आगे भयङ्कर वन है। सम्भव है कि जानकीजी डरें। तो मुझे उन्हे लौटा ले जाने की आज्ञा मिलनी भी सम्भव है। ऐसी बातें कहकर उनका परितोष करके उन्हे विदा दिया।

दो. तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु, नाइ सुरसरिहि माथ।
सखा अनुज सिय सहित बन, गवनु कीन्ह रघुनाथ ॥१०४॥

अर्थ : तब गणपति और शिवजी का स्मरण करके और गङ्गाजी को सिर नवाकर सखा अनुज और सीताजी के साथ सरकार वन को चले।

व्याख्या : अपना नाम अपने रखने से रहता है। अतः जिनकी प्रथम पूजा नाम के प्रभाव से होती है उन्हे पहिले स्मरण किया। तत्पश्चात् अपने सर्वार्थकारी शिवजी का स्मरण किया। यथा : सेवक स्वामि सखा सिय पीके। प्रत्यक्ष नही है। इसलिए स्मरण मात्र किया और गङ्गाजी घर की बडी बूढी हे और सामने हैं। अतः उन्हे सिर नवाया। आरम्भ मे चले थे तब गणपति तथा शिवजी के साथ गौरीजी को मनाया था। यहाँ गङ्गाजी को प्रमाण किया। दोनो शक्तियाँ शिवजी की है। सो दोनो का मान रक्खा। तब सखा निषादराज, लक्ष्मण और सीता के साथ रघुनाथजी ने वनगमन किया।

तेहि दिन भयउ बिटप तर बासू। लखन सखा सब कीन्ह सुपासू ॥
प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराजु दीख प्रभु जाई ॥१॥

अर्थ : उस दिन पेड़ के नीचे निवास किया। लक्ष्मणजी और सखा निषादराज ने सब प्रबन्ध किया। सवेरे नित्यकृत्य करके प्रभु ने जाकर तीर्थराज का दर्शन किया।

व्याख्या . गङ्गा पार होने के बाद वहाँ से सीधा रास्ता चित्रकूट का है। पर सरकार प्रयागराज को बायाँ देना नही चाहते। अतः पूर्व की ओर मुडे। रास्ते मे ही सन्ध्या हो गयी। अतः वृक्ष के नीचे ठहर गये। भोजन शयनादि का प्रबन्ध लक्ष्मण और निषादराज ने किया।

प्रयागराज मित्र हैं। यथा माधव सरिस मीत हितकारी। अत मित्र के समागम का सुख हुआ।

कहि सिय लखनहि सखहि सुनाई। श्रीमुख तीरथराज बडाई ॥
करि प्रनामु देखत बन बागा। कहत महातम अति अनुरागा ॥२॥

अर्थ श्रीमुख से सीता, लक्ष्मण और सखा को सुनाकर तीर्थराज की महिमा कह सुनायी। प्रणाम करके वन और बागो को देख रहे हैं और अति अनुराग से माहात्म्य कह रहे है।

व्याख्या वेद पुराण द्वारा प्रयागराज की महिमा वर्णित है। फिर भी आज श्रीमुख से महिमा कह रहे हैं। अत उसके प्रामाणिक होने मे क्या सन्देह है। तीर्थ मे जाने पर तीर्थ की महिमा का वर्णन होना चाहिए। माहात्म्यश्रवण बिना पूरा फल नही होता। इसलिए सीताजी लक्ष्मणजी को सुना रहे हैं। क्षेत्र की सीमा पर बाग वन है। उनके दर्शन का भी पुण्य है। अत प्रमाण करके अति अनुरागो से माहात्म्य वर्णन किया।

एहि बिधि आइ बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल सुमगल देनी ॥
मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा। पूजि जथाबिधि तीरथ देवा ॥३॥

अर्थ इस विधि से आकर त्रिवेणी का दर्शन किया। जो स्मरण करने से सब सुमङ्गल को देनेवाली हैं। प्रसन्न होकर स्नान किया और तीर्थ देवताओ की यथाविधि पूजा करके शिवजी की सेवा की।

व्याख्या तीर्थयात्रा की यही विधि है। तदनुसार चलकर त्रिवेणी का दर्शन किया। जिसका स्मरण सभी सुमङ्गल का देनेवाला है। फिर दर्शन का क्या माहात्म्य कहा जाय। तीर्थराज मे आज स्नान कर रहे है। इस बात की बडी खुशी है। तत्पश्चात् तीर्थ देवताओ की पूजा भी यथाविधि से की।

त्रिवेणी माधवं सोम भारद्वाजञ्च वासुकिम्। वन्देऽक्षयवट शेष प्रयाग तीर्थनायकम्। त्रिवेणी माधव सोमनाथ वासुकी अक्षयवट और शेषनागादि वहाँ के देवता हैं। तत्पश्चात् शिवजी की सेवा की। पूजन कार्य समाप्त हुआ।

तब प्रभु भरद्वाज पहिं आये। करत दडवत मुनि उर लाये ॥
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानद रासि जनु पाई ॥४॥

अर्थ तब सरकार भरद्वाजजी के यहाँ गये। दण्डवत् करते हुए उनको मुनिजी ने हृदय से लगा लिया। मुनिजी को ऐसा आनन्द है कि उनसे कुछ कहते नहीं बनता। मानो ब्रह्मानन्द की राशि की ही प्राप्ति हो गयी।

व्याख्या भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिनहि रामपद अति अनुरागा। तापस सम दम दया निधाना। परमारथ पथ परम सुजाना। ये महात्मा जङ्गम तीर्थराज हैं। अत सरकार ने दण्डवत् प्रणाम किया। भरद्वाजजी इनको दण्डवत्

करते देख न सके। बीच मे ही उठाकर हृदय से लगा लिया। मुनिजी को बडा आनन्द हुआ। कहना चाहते हैं पर कुछ भी कहते नही बनता। उन्हे मानो ब्रह्मानन्द की राशि हाथ लग गयी। सरकार का शरीर पाञ्चभौतिक नही है। घनीभूत ब्रह्मानन्द ही है। यथा चिदानिदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी।

दो दीन्हि असीस मुनीस उर, अति अनदु अस जानि।
लोचन गोचर सुकृत फल, मनहुँ किए बिधि आनि ॥१०६॥

अर्थ मुनिजी ने हृदय से ही आशीर्वाद दिया। उनके मन मे ऐसा जानकर अत्यन्त आनन्द है कि विधाता ने लाकर मेरे पुण्य के फल को मेरे दृष्टिगोचर कर दिया।

व्याख्या आशीर्वाद देना चाहते थे। पर बोल न सके। अत मन से ही आशीर्वाद दिया। उन्हे ऐसा आनन्द है मानो सब साधनो के फल को ब्रह्मदेव ने लाकर दिखला दिया। सोचते है कि मैं खोजने भी न गया। ब्रह्मदेव ने लाकर दिखला दिया। तीन ही श्रेय के उपाय है। कर्मयोग भक्तियोग और ज्ञानयोग मैंने तीनो का अनुष्ठान किया। सो तीनो के फल मानो राम जानकी और लक्ष्मण के रूप म मुझे प्राप्त हो गये। यथा सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसन पावा।

कुसल प्रश्न करि आसन दीन्हे। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे॥
कद मूल फल अकुर नीके। दिये आनि मुनि मनहु अमी के ॥१॥

अर्थ कुशल पूछकर आसन दिया। पूजा करके प्रेम से परिपूर्ण किया। कन्द मूल फल और अच्छे अङ्कुर अमृत से सुस्वादु लाकर मुनिजी ने दिये।

व्याख्या कुशल प्रश्न शिष्टाचार है। जो अपने यहाँ आवे उससे कुशल पूछना आसन देना जलपान कराना धर्मशास्त्र की विधि है। यथा तृणानि भूमिरुदक वाक् चतुर्थी तु सूनृता। एतान्यपि सता गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन। पूजन का प्राण श्रद्धा और भक्ति है। उसी से पूजा पूर्ण होती है। त्रुटियो का मार्जन होता है। अत मुनिजी ने पूजा को प्रेम से परिपूर्ण कर दिया।

नैवेद्य मे कन्द मूल और अङ्कुर का भोग लगाया। मुनियो का यही आहार है। भरद्वाजजी कुलपति है। एक आवाज पर पचासो शिष्य दौड आते हैं। प्रयागराज मे मुनियो का आना जाना लगा ही रहता है। अत कन्द मूलादि संग्रह अधिक रहता है। उसमे से देखने मे सुन्दर और खाने मे अमृत स स्वादिष्ट फल मूलादि का नैवेद्य सामने रक्खा।

सीय लखन जन सहित सुहाये। अति रुचि राम मूल फल खाये॥
भये बिगत श्रम रामु सुखारे। भरद्वाज मृदु बचन उचारे ॥२॥

अर्थ : सीता लक्ष्मण और निषादराज के साथ रामजी ने सुन्दर मूल फल को बड़े चाव से खाया। थकावट दूर हुई। रामजी सुखी हुए। तब भरद्वाजजी कोमल वचन बोले।

व्याख्या : चारों मूर्तियों को एक साथ परोसा। कन्द मूल फल अङ्कुर बड़े स्वादु थे और बड़े प्रेम से दिये गये थे। अतएव बड़े चाव से रामजी ने भोजन किया। पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः। पत्र पुष्प फल जो कोई मुझे प्रेम से देता है सो मै उस प्रेम से दिये हुए पदार्थ को बड़े चाव से खाता हूँ : भगवद्गीतायाम्।

आज की यात्रा बड़ी लम्बी थी। अतः लौकिक व्यवहारानुसार सरकार थक गये थे। प्रेम परिपूर्ण पूजन से थकावट दूर हुई। पूजनोपरान्त स्तुति होनी चाहिए। अतः भरद्वाजजी मृदु वचन बोले।

आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू। आजु सुफल जप जोग बिरागू॥
सुफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुम्हहि अवलोकत आजू॥३॥

अर्थ : हे रामजी ! आपके दर्शन से आज तप तीर्थ त्याग सफल हुआ। जप योग विराग सफल हुआ। शुभ साधनों के सब साज सुफल हुए।

व्याख्या : भरद्वाज तपस्वी थे। तीर्थराज में निवास करते थे। उदासीन थे। जप योग किया करते थे। वैराग्यवान् थे। अर्थात् परलोक के जो साधन हैं उनमें तत्पर थे। बहुत दिनों से यह क्रम चल रहा था। सो सबके सब आज अकस्मात् सफल हो गये। क्योंकि सब साधनों का फल रामजी का दर्शन है। यथा : मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा। सरकार के दर्शन से मुनिजी को सहज स्वरूप की प्राप्ति हुई। इसलिए कहते है कि आज सब सफल हो गये।

लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरें दरस आस सब पूजी॥
अब करि कृपा देहु बरु एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू॥४॥

अर्थ : न तो लाभ की दूसरी अवधि है न सुख की दूसरी अवधि है। तुम्हारे दर्शन से सब आशा पूर्ण हो गयी। अब कृपा करके यह वर दो कि आपके चरण कमलों में मेरी स्वाभाविक भक्ति हो।

व्याख्या : यं लब्ध्वा नापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः। सो मुनिजी अनुभव कर रहे हैं कि इससे बढकर दूसरा लाभ हो नही सकता और ब्रह्मानन्द राशि की प्राप्ति के सुख से बढ़कर दूसरा सुख हो नही सकता। यही सुख की पराकाष्ठा है। क्योंकि सभी आनन्द ब्रह्मानन्द के उपजीवी हैं। यथा : एषोऽस्य परमानन्दो योऽखण्डैकरसात्मकः। अन्यानि भूतान्येतस्य मात्रामेवोपभुञ्जते। सो मुनिजी ने ब्रह्मानन्द की राशि ही मानो पा ली। परम अनूप फल सहज स्वरूप की प्राप्ति से पूर्णकाम हो गये। इसलिए कहते हैं कि आस सब पूजी।

महात्माओं में साध्य से अधिक आदर साधन का होता है। भगवान् से भी

अधिक आदर भक्ति का है। अतः चरण कमलों में सहज स्नेह प्राप्ति का वर माँगते हैं। बिना प्रयत्न के ही प्रेम बना रहे। यह अविरल भक्ति कृपासाध्य है। अतः पूजोपरान्त यही प्रार्थना है।

दो. करम बचन मन छाड़ि छलु, जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुख सपनेहुँ नहिं, कियें कोटि उपचार ॥१०७॥

अर्थ : मनसा वाचा कर्मणा छल छोड़कर जब तक कोई तुम्हारा भक्त न होगा तब तक चाहे करोड़ों उपाय करे उसे सपने में सुख नहीं मिल सकता।

व्याख्या : कर्म वचन मन छल छोड़कर भक्त हो जाना यही सहज स्नेह है। बिना सहज स्नेह सुख नही। क्योंकि भक्ति ही सब सुखखानि है। यथा : सब सुखखानि भक्ति तैं माँगी। अन्य उपचार की निःसारता कहा। यथा : नाहि न आवत आन भरोसो। एहि कलिकाल सकल साधन तरु है श्रम फलनि फरो सो। सुख सपनेहु न जोग साधन फल रोग वियोग धरोसो।

यह सातवी स्तुति पुनर्वसु नक्षत्र है। इसमे चार तारे चमकते हैं : फल आशा स्नेह और सुख। फल की प्राप्ति आशा की पूर्ति स्नेह का वरदान सुख प्राप्ति का उपाय ये ही चार बातें इस स्तुति में हैं। यहाँ तप तीर्थ त्याग सब सकाम दिखायी पड़ रहे हैं। लाभ सुख आशा सभी गृहधर्म दिखायी दे रहे हैं। अतः स्तुति की आकृति गृह सी है। पुनर्वसु की आकृति गृह सी ज्योतिषशास्त्र बतलाता है। फल-श्रुति है। बीज सकल व्रत धरम नेम के। यहाँ सब व्रत धर्म नियम का सफल होना कहा है और फल में ही बीज रहता है।

सुनि मुनि बचन रामु सकुचाने। भाव भगति आनद अघाने॥
तब रघुबर मुनि सुजसु सुहावा। कोटि भाँति कहि सबहिं सुनावा ॥१॥

अर्थ : मुनिजी का वचन सुनकर रामजी सङ्कुचित हो गये और भावभक्ति के आनन्द से तृप्त हुए। तब रामजी ने मुनि के सुन्दर सुयश को करोड़ो भांति कहकर लोगों को सुनाया।

व्याख्या : सहज सरूप कथा मुनि बरनत रहत सकुचि सिर नाई। केवट मीत कहे सुख मानत बानर बंधु बड़ाई। सो मुनिजी सहज स्वरूप को लक्ष्य करके वरदान माँग रहे है। अत: रामजी सङ्कुचित हो गये। एवमस्तु भी नही कहा। परन्तु मुनिजी के कृतकृत्यता के भाव तथा भक्ति के आनन्द से तृप्त हो गये। भक्ति के आनन्द कहने का भाव यह कि भक्ति : राजसी और तामसी तो असुरो मे पायी जाती है। ईर्ष्या पूर्वक द्वेष होना राजसी भक्ति : और भय पूर्वक द्वेष होना तामसी भक्ति है। पर इन भक्तियो मे आनन्द नही। यथा : बैर भाव सुमिरत मोहिं निसिचर। पर परलोक उनका अवश्य बन जाता है। आनन्द तो सात्त्विकी भक्ति मे है। मुनिजी की सात्त्विकी भक्ति है। अतः भक्ति का आनन्द कहा। जहाँ बड़े का नाता मान लेते हैं वहाँ वर माँगने पर एवमस्तु नही कहते मनोरथ पूर्ण कर देते हैं। यहाँ

मुनिजी की बडाई के ब्याज से उनकी प्रार्थना की स्वीकृति द्योतित की। लोगो से मुनिजी के सुयश का वर्णन करने लगे कि ये साक्षात् जङ्गम प्रयागराज हैं। इतना बडा श्रोत्रिय कौन है। प्रणव की प्राप्ति इन्होंने इन्द्र से की है। ससार को रोग से आर्त देखकर इन्ही महात्मा ने वैद्यशास्त्र का प्रचार सुश्रुत सहिता रचकर किया है करोड लक्ष सहस्र शत शब्द बहुवचन वाची हैं इत्यादि।

सो बड सो सब गुन गन गेहू। जेहि मुनीस तुम आदर देहू॥
मुनि रघुबीर[1] परसपर नवही। बचन अगोचर सुखु अनुभवही॥२॥

अर्थ हे मुनीश्वर! जिसे तुम आदर दो वही बडा है और वही गुणगण का घर है। मुनिजी तथा रामजी परस्पर विनीत हो रहे हैं और ऐसे सुख का अनुभव कर रहे हैं जो वाणी का विषय नही।

व्याख्या अपने सहज स्वरूप को छिपाना है और मुनिजी के वचन को अप्रमाण कैसे कहे? अत कहते हैं कि आप सत्यसङ्कल्प हैं। सत्यकाम है! आप जिस किसी को जैसा कह दें वही वैसा हो सकता है। आपने जो मेरी स्तुति की है वह कृपा करके मुझे बडाई दी है। आपके आदर प्रदान से मैं बडा भी हुआ। गुण गेह भी हुआ।

भक्त और भगवान् का परस्पर विनय दिखलाते हुए अनिर्वचनीय आनन्द का आविर्भाव दिखलाया। विनय से ही प्रीति की वृद्धि होती है और जहाँ आनन्द है वही प्रीति है।

यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी॥
भरद्वाज आश्रम सब आये। देखन दसरथ सुअन सुहाये॥३॥

अर्थ यह समाचार पाकर प्रयाग के रहनेवाले ब्रह्मचारी तपस्वी मुनि और उदासीन दशरथ के सुन्दर बेटो को देखने आये।

व्याख्या जहाँ सरकार जाते हैं सब लोग उनके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाते हैं। चारो ओर सौन्दर्य की ख्याति फैल जाती है। अत यह समाचार सब लोगो मे फैल गया कि राजा दशरथ के बेटे प्रयाग स्नान के लिए आये है। उनके रूप की सम्पत्ति अलौकिक है। इस समय वे भरद्वाज के आश्रम मे हैं। अत ब्रह्मचारी वानप्रस्थ सन्यासी सिद्ध और विरतिरत गृही सभी देखने आये।

राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित भये लहि लोयन लाहू॥
देहिं असीस परम सुखु पाई। फिरे सराहत सुंदरताई॥४॥

अर्थ रामजी ने सभी को प्रणाम किया। सब नेत्रो का लाभ पाकर प्रसन्न हुए। परम सुख पाकर सब आशीर्वाद देते हैं और सुन्दरता की प्रशसा करते हुए घर लौटते हैं।

---

१ यहाँ अन्योयालङ्कार है।

व्याख्या : बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी । सभी प्रणम्य ठहरे । अतः मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् ने सबको प्रणाम किया । नयनवन्त रघुपतिहि बिलोकी । पाइ जनम फल होहिं बिसोकी । सो ये लोग भी नयनफल पाकर विशोक हुए । सरकार के दर्शन से परम सुख हुआ । यथा : मम दर्शन फल परम अनूपा । जीव पाव निज सहज सरूपा । परम सुख पाकर सबने आशीर्वाद दिया और सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए लौट आये ।

दो. राम कीन्ह बिश्राम निसि, प्रात प्रयाग नहाइ ।
चले सहित सिय लखन जन, मुदित मुनिहि सिरु नाइ ॥१०८॥

अर्थ : रामजी ने रात्रि को विश्राम किया । प्रात काल प्रयाग स्नान करके सीता लक्ष्मण और भक्त निषाद के साथ मुनिजी को सिर नवाकर प्रसन्न मन चले ।

व्याख्या . रामजी ने रात को भरद्वाजजी के आश्रम मे ही विश्राम किया । एक रात्रि तीर्थ में बिताया । प्रात' स्नान प्रयागराज अर्थात् त्रिवेणी मे हुआ । अब और आगे चले । वाल्मीकि मुनिजी के दर्शन के लिए उत्साह है । अत प्रसन्न मन से चलना कहा । रामजी सीता लक्ष्मण और गुह निषाद के साथ मुनि : भरद्वाजजी को प्रणाम किया और चल पडे ।

राम सप्रेम कहेउ मुनि पाही । नाथ कहिअ हम केहि मग जाही ॥
मुनि मन बिहँसि राम सन कहही । सुगम सकल मग तुम्ह कहुँ अहही ॥१॥

अर्थ : रामजी ने प्रेम के साथ मुनिजी से कहा कि हे नाथ ! बतलाइये कि हम लोग किस रास्ते से जायँ । मुनिजी मन ही मन हँसकर रामजी से कहते हैं कि सभी रास्ते तुम्हारे लिए सुगम है ।

व्याख्या : भरद्वाजजी वाल्मीकिजी के शिष्य हैं । यद्यपि रामजी रास्ता पूछते है । पर किसी स्थान का नाम नही लेते . जहाँ जाना है । भाव यह कि मुनिजी रास्ता भी बतलायें और गन्तव्य स्थान का भी निश्चय कर दें । मुनिजी से स्वामी सेवक भाव रखते हुए नाथ सम्बोधन देते है और प्रेम से पूछते है ।

ऐश्वर्य छिपाते देखकर मुनिजी मन ही मन हँसे कि ये हमसे रास्ता पूछते है । अतः उत्तर देते हैं कि सभी रास्ते तुम्हारे लिए सुगम है । जिसने जग को तीन पग से भी थोड़ा कर डाला उसके लिए दुर्गम क्या है । मुनिजी ने गुरुजी के पास पहुँचाने का रास्ता ठीक कर दिया और गन्तव्य स्थान का निर्णय उन्ही पर छोडा ।

साथ लागि मुनि सिष्य बोलाये । सुनि मन मुदित पचासक आये ॥
सबहि राम पर प्रेम अपारा । सकल कहहिं मगु दीख हमारा ॥२॥

अर्थ : साथ के लिए मुनिजी ने शिष्यो को बुलाया । सुनते ही प्रसन्न मन से लगभग पचास के आगये । सभी का रामजी पर अपार प्रेम है । सभी कहते है कि रास्ता हमारा देखा है ।

व्याख्या : रास्ता ऐसा नही था कि केवल बतला देने से काम चले। अर्थात् कोई पगडण्डी ऐसी नही थी जिसे पकड़ा देने से काम चल जाय। रास्ता दिखाने के लिए साथ जाने की आवश्यकता थी। अतः साथ भेजने के लिए मुनिजी ने शिष्यों को आवाज दिया। सुनते ही लगभग पचास के आगये। मुनिजी ने पूछा कि गुरुजी के यहाँ जाने का रास्ता किसका देखा है। सभी कहने लगे कि हमारा देखा है। हमारा देखा है। सभी का रामजी पर अपार प्रेम था। सभी की इच्छा थी कि रामजी के साथ जायँ।

मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे। जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्हे ॥
करि प्रनामु रिषि आयसु पाई। प्रमुदित हृदय चले रघुराई ॥३॥

अर्थ : मुनिजी ने चार ब्रह्मचारियो को साथ कर दिया। जिन्होने बहुत जन्मो तक सब पुण्य किया था। प्रणाम करके ऋषिजी की आज्ञा पाकर रामजी प्रसन्न होकर चल पडे।

व्याख्या : एक के भी साथ देने से रास्ता दिखाने का काम चल सकता था। फिर भी मुनिजी ने चार शिष्य साथ कर दिये। क्योकि जङ्गल की बात थी। उन्हे रामजी को पहुँचाकर लौटना भी था और मार्ग चलने मे चार का विधान भी हैं। मुनिजी शिष्य सभी रामजी के प्रेमी थे। सभी पुण्यात्मा थे। अतः मुनिजी को उनके पूर्व जन्म के सुकृत के अनुसार निर्णय करना पडा।

रामजी विदाई के लिए प्रणाम करते हैं। अथवा आज्ञा प्राप्त करने के लिए प्रणाम करते हैं। आज्ञा पाकर प्रमुदित होकर चले। मुदित होकर सिर नवाया था। अब प्रमुदित होकर चले।

पंथ कथा प्रसङ्ग

ग्राम निकट जब निकसहिं जाई। देखहिं दरसु नारि नर धाई ॥
होंहि सनाथ जनम फलु पाई। फिरहिं दुखित मनु संग पठाई ॥४॥

अर्थ : जब किसी गाँव के निकट होकर निकलते थे तो स्त्री पुरुष दौड़कर दर्शन करते थे। जन्म फल पाकर सनाथ होते थे और मन को साथ भेजकर दु:खी लौटते थे।

व्याख्या : वन के छोर पर कही कही ग्राम है। उनके निकट जब वन मे से निकलते हैं तो दर्शन के लिए ग्रामवासी नर नारी दौड पडते हैं। सरकार की शोभा देखते है। अपने को सनाथ मानते हैं। ससार मे जन्म लेने का फल उन्हे प्राप्त हो गया। उनका मन सरकार के साथ हो गया और फिर न लौटा। लौटने मे उन्हे बड़ा कष्ट हुआ।

दो. विदा किये बटु विनय करि, फिरे पाइ मन काम।
उतरि नहाये जमुन जल, जो[१] सरीर सम स्याम ॥१०९॥

अर्थ : विनय करके ब्रह्मचारियों को विदा किया और वे मन चाहा फल पाकर लौटे। यमुना पार होकर स्नान यमुना जल मे किया। जो उनके शरीर की भाँति श्याम था।

व्याख्या : ब्रह्मचारी अधिक दूर तक साथ जाने को उत्सुक थे। लौटना नही चाहते थे। सो उन्हे विनय करके लौटाया। वे भी खाली हाथ नही लौटे। उनकी कामनाएँ पूर्ण हुईं। यमुना पार होकर मध्याह्न कृत्य किया। पार होने की व्यवस्था निषादपति ने की। यमुना जल को शोभा कहते है कि वह सरकार के शरीर सा श्याम था : सम्भवत: जो अब गुलौरीघाट कहलाता है वहाँ पहुँच गये।

सुनत तीर बासी नर नारी। धाए निज निज काज बिसारी॥
लखन राम सिय सुंदरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई॥१॥

अर्थ : सुनते ही तीर के रहनेवाले नर नारी अपना अपना काम भूलकर दौडे। लक्ष्मण राम और सीता की सुन्दरता देखकर अपने भाग्य की बड़ाई करते हैं।

व्याख्या : इस समाचार को सुनकर अति उत्कण्ठावश यमुना तीर के रहनेवाले अपना अपना काम अधूरा छोडकर दौड़े कि उनके पहुँचने के पहिले ही कही चले न जायँ। जैसे मुरली की ध्वनि सुनकर व्रजगोपिकाएँ दौड़ी थीं। किसी ने एक ही आँख मे अञ्जन लगा पाया था। किसी ने दूध को उफनता हुआ आग पर ही छोड़ा। वे श्रीकृष्ण के दर्शन की उत्सुकता मे सब काम भूल गयी। वही दशा आज यमुनातीरवासी नर नारियों की हुई।

आकर जब लक्ष्मण राम और सीता की सुन्दरता को देखा तो उन्हे ऐसा अलौकिक सुख हुआ कि अपने भाग्य की बड़ाई करने लगी। अचिन्तित सुख या दु:ख की प्राप्ति मे भाग्य ही कारण माना जाता है।

अति लालसा बसहिं मन माहीं। नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं॥
जे तिन्ह महुँ बय बिरिध सयाने। तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने॥२॥

अर्थ : उन लोगों के मन में बड़ी लालसा हो रही थी। फिर भी नाम ग्राम पूछने मे सङ्कोच होता था। उनमे जो सयाने चतुर रहे उन्होने युक्ति लगाकर रामजी को पहिचान लिया।

व्याख्या : जिसके देखने से मन को इतना सुख मिल रहा है उनके नाम और पता जानने की इच्छा होना स्वाभाविक है। पर पूछने मे सङ्कोच होता है।

---

१. यहाँ प्रतीपालङ्कार है।

महामहिम पुरुष से सामान्य पुरुष को ऐसा प्रश्न करने में सङ्कोच होता ही है। पर जानने की अभिलाषा प्रबल है। उनमें जो ज्ञानवृद्ध थे उन्होंने युक्ति से पहिचाना।

चतुर हैं। उनका संसार देखा हुआ है। पर ऐसे बटोही तो नहीं देखे। निश्चय राजकुमार है। पर मुनिवेष बनाये हुए हैं। राजा दशरथ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को वन दिया है। वही राम ये हैं। ऐसा युक्ति से निश्चय किया।

सकल कथा तिन्ह सबहि सुनाई। बनहि चले पितु आयसु पाई॥
सुनि सविषाद सकल पछिताहीं। रानी राय कीन्ह भल नाहीं॥३॥

अर्थ : उन्होंने सब कथा सब लोगों को सुनायी कि पिता की आज्ञा से ये वन को जा रहे हैं। सुनकर सब लोग विषाद के साथ पछताने लगे कि राजा रानी ने अच्छा नहीं किया।

व्याख्या : उन सयाने लोगों को रामजी के अभिषेक की तैयारी कैकेयी का वरदान मांगने तथा रामजी का पिता की आज्ञा शिरोधार्य करने की कथा मालूम थी। अत: रामजी के पहिचानने में कठिनाई न हुई और अब उन्होंने सबको वह कथा कह सुनायी कि वे ही रामजी पिता की आज्ञा से वन जा रहे हैं। तब यह सुनकर सबको विषाद हुआ। सब पछताने लगे और राजा रानी को दोष लगाने लगे कि उन लोगों ने अच्छा नहीं किया। यहाँ तक नर का पछताना कहा।

तेहि अवसरु एक तापसु आवा। तेज पुंज लघु बयस सुहावा॥
कवि अलखित गति बेषु बिरागी। मन क्रम बचन राम अनुरागी॥४॥

अर्थ : उसी समय में एक तपस्वी आया। जो तेजस्वी सुन्दर और अल्पवयस्क था। वह गूढ़गति कवि था। उसका विरागी सा वेष था और मनसा वाचा कर्मणा रामानुरागी था।

व्याख्या : जिस समय लोग सविषाद पछता रहे थे उसी समय एक तपस्वी भी आगया। यमुना तीर के आनेवाले नर नारियों में उसकी विशेषता थी। अत: उसकी कथा अलग लिखते हैं।

सरकार अभी यमुना पार उतरे हैं। यही गुरौली घाट है। जहाँ पर सरकार का उतरना कहा जाता है। राजापुर श्रीगोस्वामीजी का जन्म स्थान यहाँ से बहुत निकट है। यहाँ इष्टदेव का आगमन वर्णन करने में भावावेश से कवि के लिए भूतकाल वर्तमान में परिणत हो गया और आप स्वयं आगये। तेज पुञ्ज से भौतिकता का अभाव कहा। दिव्य मानसिक शरीर से आये : बालपने सूधोमन राम सनमुख भयो। इसी से लघुबयस सुहावा कहा। कवि अलखित गति कहकर गोस्वामी जी स्पष्ट ही अलक्ष्यगति से अपना आना कहते हैं। श्रीगोस्वामीजी का विरागी वेष था ही। यथा : वेष विराग को राग भरो तनु। मन क्रम वचन श्रीरामजी में अनुराग होना प्रसिद्ध ही है।

दो. सजल नयन तन पुलकि निज, इष्ट देउ पहिचानि ।
परेउ दंड जिमि धरनि तल, दसा न जाइ बखानि ॥११०॥

अर्थ : अपने इष्टदेव को पहिचाकर उसकी आँखो मे जल भर आया। रोगटे खडे हो गये। दण्ड के समान पृथ्वी तल पर गिर पडा। उसकी दशा वर्णन नही की जा सकती।

व्याख्या : इन महात्मा को सरकार के पहिचान करने मे युक्ति का सहारा नही लेना पडा। इन्होने सीधे सीधे पहिचाना कि जिन तीन मूर्तियो का नित्य ध्यान करता हूँ वे यही तो है। यथा : राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर। ध्यान सकल कल्यान मय सुरतरु तुलसी तोर। अत कहते है : निज इष्टदेव पहिचानि सात्त्विक भाव हुआ। प्रेम मे विभोर होकर दण्ड की भाँति पृथ्वी पर गिरे। शरीर का अध्यास नही रह गया। इसलिए कहते है दसा न जाइ बखानि।

राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रकु जनु पारसु पावा ॥
मनहुँ प्रेम परमारथु दोऊ। मिलत धरे तनु कह सबु कोऊ ॥१॥

अर्थ : रामजी ने प्रेम के साथ पुलकित होकर इस भाँति हृदय से लगाया जैसे परम दरिद्र को पारस मिल गया हो। सब लोग कहने लगे कि मानो प्रेम और परमार्थ शरीर धारण करके मिल रहे हो।

व्याख्या . भक्त सजल नयन पुलकित तन होकर दण्ड के समान पृथ्वी पर गिरा। भगवान् ने सप्रेम पुलकित तन होकर हृदय से लगा लिया। भक्त की दशा बखानी नही जाती। भगवान् की भी ऐसी ही दशा है। महादरिद्र को पारस मिलने से जैसा आनन्द होता है वैसा आनन्द हो रहा है। ये यथा मा प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम्।

परमार्थ को प्राप्त करानेवाला प्रेम है और प्रेम का चाहनेवाला परमार्थ है। अत देखनेवालो ने इस मिलन को देखकर कह दिया कि मानों प्रेम और परमार्थ शरीरधारी होकर मिल रहे हैं। राम ब्रह्म तो परमार्थ रूप हैं ही। इधर भक्त भी प्रेममय हो रहा है। अत ऐसी उपमा दी गयी।

बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा। लीन्ह उठाइ उमँगि अनुरागा ॥
पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा। जननि जानि सिसु दीन्ह असीसा ॥२॥

अर्थ · तत्पश्चात् वह लक्ष्मणजी के पाँव पडा। उन्होने प्रेम से उमँगकर उठा लिया। तत्पश्चात् सीताजी के चरणो की धूलि सिर पर रक्खा। माँ ने बच्चा जानकर आशीर्वाद दिया।

व्याख्या लक्ष्मणजी के चरण शीतल सुभग भक्त सुखदाया है। अतः उन चरणो को प्रणाम किया। उन्होने भी अनुराग से उठा लिया। उठा लेने का अर्थ हो मिलना है।

फिर उसने अधिकारानुसार सीताजी के चरणो की धूलि को सिर पर धारण किया। जगदम्बा ने उसका शिशु भाव देखकर आशीर्वाद दिया। इस भाँति वह कृतकृत्य हो गया। यथा : अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तौ अमोघ विख्याता।

कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मेलेउ मुदित लखि राम सनेही ॥
पिअत नयन पुट रूप पियूखा। मुदित सुअसन पाइ जिमि भूखा ॥३॥

अर्थ : निषाद ने उसे दण्डवत् किया। उसने रामजी का स्नेही जानकर गले लगाया। वह नेत्ररूपी चपक से सौन्दर्यामृत का पान करने लगा और ऐसा प्रसन्न था जैसे सुन्दर भोजन पाकर भूखा प्रसन्न होता है।

व्याख्या : निषादराज ने उसे दण्डवत् किया। उन्होने गले लगा लिया। निषादराज से पहिले पहल ये ही मिले। इन्होने राम प्रेम के सामने जाति के अपकर्ष को कुछ न गिना। यथा तुलसी भगत स्वपच भलो भजै रैन दिन राम। ऊँचो कुल केहि काम को जहाँ न हरि को नाम। अति ऊँचे भूधरन पै भुजगन्ह के अस्थान। तुलसी नीचे होत हैं ईख अन्न अरु पान।

अब वह तपस्वी आँखो को पान पात्र बनाकर सौन्दर्यरूपी अमृत का पान करने लगा और ऐसा प्रसन्न था जैसे भूखा स्वादिष्ट अन्न पाकर प्रसन्न होता है। सरकार के रूप सुधा के पान करने से भक्तिरूपी सुस्वादु अन्न भी करतलगत होता है। यहाँ पर पीने और खाने की द्विविध तृप्ति का वर्णन किया। ये महात्मा तो इस प्रकार आनन्द लूटते रहे। अब नारी समाज का हाल सुनिये।

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये बन बालक ऐसे ॥
राम लखन सिय रूपु निहारी। होहिं सनेह बिकल नर नारी ॥४॥

अर्थ : हे सखि! वे माता पिता कैसे हैं जिन्होने ऐसे बालको को वन भेजा है। राम लक्ष्मण और जानकी के रूप को देखकर नर और नारी स्नेह से विकल हो रहे थे।

व्याख्या : आँखिन में सखि राखिबे जोग इन्हे किमि कै वनवास दयो है। जैसे निषादपति के यहाँ की नर नारियो ने कहा था वैसे ही ये भी कह रही हैं। यह अर्धाली मानस में दो बार आयी है। इन्हे माता पिता के निर्दयता पर आश्चर्य है।

पहिले तो राम लक्ष्मण और सीताजी के रूप को देखकर सब अपने भाग्य को बड़ाई करते थे। परन्तु जब सब कथा जान लिया तब उनके रूप को देखकर स्नेह से विकल होने लगे।

दो. तब रघुबीर अनेक बिधि, सखहिं सिखावनु दीन्ह।
राम रजायसु सीस धरि, भवन गवनु तेइँ कीन्ह ॥१११॥

अर्थ : तब रामजी ने अनेक विधि से सखा को शिक्षा दी। रामजी की आज्ञा शिरोधार्य करके वह घर गया।

व्याख्या : जब तक सरकार वहाँ थे यमुनातीरवासियों की ऐसी ही दशा थी। सरकार को सङ्ग मे किसी का रखना पसन्द नही। अतः सखा निषादराज को अनेक प्रकार से शिक्षा दी। मेरा भजन जैसा वियोग मे होता है वैसा संयोगावस्था मे नही होता। अथवा वाल्मीकिजी के आश्रम जाने में कोई बाधक नदी भी नही है। हम लोग चले जायँगे। तुम्हारे साथ रहने मे राज सम्बन्ध लगा रहेगा। मेरे उदासीन व्रत मे बाधा रहेगी इत्यादि। फिर भी निषाराज को लौटने की इच्छा नही। पर रामजी की आज्ञा माननी ही पडी और वह घर लौट चला।

पुनि सिय राम लखन कर जोरी। जमुनहि कीन्ह प्रनामु बहोरी॥
चले ससीय मुदित दोउ भाई। रबितनुजा कइ करत बड़ाई॥१॥

अर्थ : फिर सीता राम और लक्ष्मण ने फिर यमुनाजी को प्रणाम किया। सीताजी के सहित प्रसन्न होकर दोनो भाई सूर्य की बेटी यमुनाजी की महिमा कहते चले।

व्याख्या : आने के समय प्रणाम नही कहा था। इसलिए जाते समय बहोरी पद देकर जनाया कि आने के समय भी प्रणाम किया था। बड़ी श्रद्धा से तीनो प्राणियो ने प्रणाम किया। मुख्य तो नदी की अधिष्ठात्री देवता हैं। जिनके जलमय शरीर को नदी कहा जाता है। आगे कहे हुए रबितनुजा शब्द से यही अर्थ स्पष्ट है।

यमुना स्नान करके सीता राम और लक्ष्मण सभी प्रसन्न हैं। रास्ते चलते यमुनाजी की महिमा कहते चले। दर्शन करने के समय महिमा कहने का अवसर नही मिला था। बहु : गी प्रे। यमुना की महिमा यथा : यमुना ज्यौं ज्यौं लागी बाढन। त्यौ त्यौ सुकृत सुभट कलि भूपहि निदरि लगे बहु काढन। ज्यौं ज्यौ जलमलीन त्यौं त्यौ जमगन मुख मलीन लहैं आढन। तुलसीदास जगदघ जवास ज्यौं अनघ मेघ लागे डाढन : वि प.।

पथिक अनेक मिलहिं मग जाता। कहहि सप्रेम देखि दोउ भ्राता॥
राज लखन सब अंग तुम्हारें। देखि सोचु अति हृदय हमारें॥२॥

अर्थ : रास्ते मे जाते हुए अनेक बटोही : राहचलतू मिलते है। दोनो भाइयो को प्रेम के सहित देखकर कहते हैं। तुम्हे तो सब राजलक्षण पड़े है। देखकर हमारे हृदय मे बडा सोच है।

व्याख्या : रास्ते से जा रहे हैं। अत वन की ओर से आनेवाले पथिको से भेंट होती है। दोनो भाइयो के दर्शन मात्र से उनके हृदय मे प्रेम उमड आता है। उनमे सामुद्रिक के पण्डित भी हैं। देखते है तो दोनो भाइयो को राजलक्षण पडे हुए हैं। कोई लक्षण ऐसे नही है जिससे इस दशा मे पैदल चलें। उनसे बिना कहे नही

रहा जाता। वे कहते हैं कि तुम्हें देखकर हमें बड़ा सोच हो रहा है कि लक्षण तुम्हें तो सब राजा के से पड़े हैं।

मारग चलहु पयादेहि पाएँ। ज्योतिषु झूठ हमारेहि भाएँ ॥
अगमु पंथु गिरि कानन भारी। तेहि महँ साथ नारी सुकुमारी ॥३॥

अर्थ : पैदल रास्ता चल रहे हो। हमारी समझ में तो ज्योतिष शास्त्र झूठ मालूम पड़ता है। रास्ता दुर्गम है। भारी पर्वत और वन है। तिस पर साथ मे सुकुमारी स्त्री है।

व्याख्या : ऐसे लक्षण युक्त पुरुष टहलने भले ही पैदल चले। तीर्थ में पैदल चलें। पर रास्ता पैदल नही चलते। हम ज्योतिषी ठहरे। हमारे फलकथन से ज्योतिष शास्त्र सच्चा समझा जाता है। सो जहाँ कुछ लक्षण अच्छे हैं कुछ बुरे हैं वहाँ फल न घटने पर मानना पड़ता है कि दोषगुण के तारतम्य के न समझने से चूक हुई। पर यहाँ तो जितने राजलक्षण हैं सब तुम्हारे में मौजूद है और तुम पैदल मञ्जिल तय कर रहे हो। अतः मेरा हृदय तो अब ज्योतिष को सच्चा मानने के लिए तैयार नही है।

मार्ग भी दुर्गम है। बड़े बड़े पहाड़ हैं। भारी जङ्गल हैं। बीच में कोई विश्राम स्थान नही। साथ में कोई सहायक नही। उलटे सुकुमारी स्त्री साथ में है। तुमलोग इसकी रक्षा करोगे कि अपना प्राण बचाओगे।

करि केहरि बन जाइ न जोई। हम सँग चलहिं जो आयसु होई ॥
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई। फिरब बहोरि तुमहि सिरु नाई ॥४॥

अर्थ : हाथी और सिंहों का वन देखते नही बनता। यदि आज्ञा हो तो हम साथ चलें। आप लोग जहाँ तक जायँगे वहाँ तक पहुँचाकर फिर हम तुम्हे प्रणाम करके लौट आवेंगे।

व्याख्या : फिर वन भी कैसा है कि इसमें हाथी भी हैं। सिंह भी है। अतः बड़ा भयानक है। देखते नही बनता। हम उसी में से होते आ रहे हैं। रक्षा के लिए आपके सङ्ग चलने को तैयार हैं। परन्तु बिना आज्ञा सङ्ग चलना भी अनुचित है।

यदि कहिये कि कहाँ तक साथ चलोगे। इसपर कहते हैं कि जहाँ तक आप जायँ वहाँ तक साथ चलेंगे। आपको गन्तव्य स्थान तक पहुँचाकर तब लौटेंगे। तुमहि सिरु नाई भाव यह कि इसका एहसान : निहोरा आप पर न होगा। हम अपने को कृतकृत्य मानेंगे।

दो. एहि बिधि पूछहिं प्रेम बस, पुलक गात जलु नैन।
कृपासिंधु फेरहि तिन्हहि, कहि बिनीत मृदु बैन ॥११२॥

अर्थ इस भाँति प्रमवश पूछते है। उनको पुलक हो जाता है। आँखो मे जल आ जाता है। पर कृपासिन्धु सबको विनीत कोमल वचन कहकर लौटा देते है।

व्याख्या जो ज्योतिषी है। लक्षण देखकर पहिचानते हैं और जो नही लक्षण जानते वे भी रूप देखकर मुग्ध हो जाते हैं। प्रेम मे उन्हे पुलकावली हो जाती है। आंखो मे जल आ जाता है। सभी साथ जाने को तैयार हो जाते है। पर सरकार किसी को साथ नही लेते। विनीत और कोमल वचन कहकर लौटा देते है। क्योकि कृपा के समुद्र हैं। समुद्र मे जो कुछ डालिये उसे वह स्वीकार नही करता। गर्जन पूर्वक बाहर फेंक देता है पर सरकार कृपासिन्धु हैं। अत विनीत मृदु वचन कहकर प्रार्थना अस्वीकार कर देते हैं।

जे पुर गाँव बसहिं मग माही। तिन्हहि नाग सुर नगर सिहाही ॥
केहि सुकृती केहि घरी बसाये। धन्य पुन्यमय परम सुहाये ॥१॥

अर्थ रास्ते मे जो पुर और ग्राम पडते थे उनसे ईर्ष्या नागलोक और देवलोक करते थे कि किस पुण्यवान ने किस शुभ घडी मे ये धन्य और पुण्यमय तथा वडे सोहावने गाँव बसाये हैं।

व्याख्या यहाँ नागसुरनगर से उनके अधिष्ठात्री देवता अभिप्रत है। जहाँ सरकार जाते हैं वहाँ परमानन्द की बाढ आ जाती है। नागसुरनगर मे तो केवल विषयानन्द का प्रचार है। अत वे ईर्ष्या करते है कि ऐसा आनन्द हमारे यहाँ कभी नही हुआ।

पुर और ग्राम की विभूति उसके बसानेवाल के पुण्य और बसाने के मुहूर्त पर निर्भर है। क्योकि वे ग्राम और पुर बसानेवाल के पुत्र स्थानीय है। उनके यश को बनाये रहते है। उनने पुण्यानुसार ही उन पुर और ग्रामा की उन्नति होती है। बसाने का मुहूर्त ही उन पुर और ग्रामो का जन्म मुहूर्त है। सो ये ऐसे पुण्यमय हैं कि सरकार का चरण इनकी प्रान्तभूमि मे आगया। अत उन बसानेवाल सुकृतियो और उन पुण्यमुहूर्तों की प्रशसा करते हैं।

जहँ जहँ राम चरन चलि जाही। तिन्ह समान अमरावति नाही ॥
पुन्यपुज मग निकट निवासी। तिन्हहिं सराहहि सुरपुरवासी ॥२॥

अर्थ जहाँ जहाँ रामजी के चरण चल जाते हैं उनके समान अमरावती भी नही है। रास्ते के निकट के रहनेवाल तो पुण्य के समूह ही है। उनकी प्रशसा सुरपुरवासी करते हैं।

व्याख्या गाँव जा रास्ते मे पडत हैं उनकी महिमा कहकर जिस स्थल मे प्रभु के चरण पडे उसकी महिमा कहते हैं। जिस भरत ने विधिविस्मयदायक विभव को आँख उठाकर नही देखा। वे ही रज सिर धरि हिय नयनन्हि लावहिं। तब उसकी महिमा क्या कही जाय। इतना भाग्य इन्द्रपुर का कहाँ ?

स्वर्गवासियो का तो कमाया हुआ पुण्य क्षण क्षण क्षीण होता जाता है। जब सब पुण्य क्षीण हो जाता है तो स्वर्ग से गिरा दिये जाते हैं। मग निकट निवासियो ने तो अपना मन ही सरकार को अर्पण कर दिया। यथा : फिरहिं दुखित मन संग पठाई। उनका पुण्य नित्य बढ़ता जा रहा है। वे पुण्यपुञ्ज हैं। अतः उनकी प्रशसा स्वर्ग-निवासी कर रहे हैं।

जे भरि नयन बिलोकहिं रामहि। सीता लखन सहित घनस्यामहिं॥
जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहिं देव सर सरित सराहहिं॥३॥

अर्थ : जो घनश्याम राम को सीता लक्ष्मण सहित आँख भरकर देख रहे हैं। जिस सरोवर और नदी मे रामजी स्नान करते हैं उन्हें देवता के सर और सरित प्रशंसा करते हैं।

व्याख्या : सुरपुरवासियो के प्रशसा करने का कारण कहते हैं कि इतना भाग्य उनका नही है कि आँख भर सीता लक्ष्मण सहित रामजी का दर्शन पा सकें। नित्य-स्नान में सदा नदी नही मिलती है। तब सरोवर मे स्नान होता है। सरकार सदा अवगाहस्नान करते है। कूप स्नान नही करते। देवसरि और देवसर मानसरोवर आदि हैं। इनका इतना भाग्य इस समय नही है कि सरकार के सर्वाङ्ग प्रक्षालन का सौभाग्य प्राप्त हो। अतः ये सब उन सरित सरोवर की प्रशंसा करते हैं जिनमे सरकार स्नान कर लेते हैं।

जेहि तरु तर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कलपतरु तासु बड़ाई॥
परसि राम पद पदुम परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा॥४॥

अर्थ : जिस पेड़ के तले सरकार जाकर बैठते हैं। उसकी बडाई कल्पवृक्ष करता है। रामजी के चरण की धूलि का स्पर्श करके पृथ्वी अपना बडा भाग्य मानती है।

व्याख्या : सूर्यमण्डल के मध्य में चन्द्रमण्डल और उसके मध्य मे अग्निमण्डल है और उसके भी मध्य मे कल्पवृक्ष के नीचे दिव्य सिंहासन पर सरकार के ध्यान की विधि है। सो आज वही सरकार उस कल्पवृक्ष का अनादर करके साधारण वृक्ष के नीचे श्रमापनोदन के लिए जा बैठे है। अतः उस वृक्ष की बडाई कल्पवृक्ष करता है। जिसे कभी सरकार के श्रमापनोदन का सौभाग्य नही प्राप्त हुआ।

सौभाग्य की हजारों मुहर तो पृथ्वी पर ही लग रही है। ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे। इन चिह्नों से पृथ्वी अङ्कित हो रही है। जो चरण अज शंकर से वन्दित है उनके स्पर्श का सौभाग्य दिन रात हो रहा है। अतः भूमि का अपना भूरि भाग्य मानना प्राप्त ही है।

दो. छाँह करहि घन बिबुधगन, बरषहिं सुमन सिहाहि।
देखत गिरि बन बिहँग मृग, रामु चले मगु जाहि॥११३॥

अर्थ : मेघ छाया करते और देवता फूल बरसाते और बडाई करते हैं। पर्वत वन पक्षी और मृगो को देखते हुए रामजी रास्ते मे चले जा रहे हैं।

व्याख्या : अद्भुत शोभा है। पृथ्वी मङ्गलमयी हो रही है। आकाश से मेघ छाया करते चले जाते हैं। देवता लोग पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। सरकार पर्वत वन पक्षी मृगो को देखते हुए चल रहे हैं। वन यात्रा वन विहार हो रहा है। देवता लोग इस आनन्द को देखकर स्वर्ग सुख को तुच्छ मान रहे हैं। देवलोक मे दो बडे दोष हैं। एक ईर्ष्या और दूसरा गर्व। ये लोग दूसरे के सुखोत्कर्ष देखकर ईर्ष्या करते हैं और अल्पसुख देखकर गर्व करते हैं। उसी स्वभावानुसार इन्हे पृथ्वी पर के आनन्द को देखकर ईर्ष्या हो रही है।

सीता लखन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई ॥
सुनि सब बाल वृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृहकाज बिसारी ॥१॥

अर्थ : जब सीता और लक्ष्मण सहित रामजी किसी गाँव के निकट निकलते थे तो सुनते ही सब बालक वृद्ध नर और नारी घर का कार्य भूलकर तुरन्त चल पडते थे।

व्याख्या : ग्राम के मध्य से नही जाते। वन मे से जब मैदान मे निकल आते थे तो खेतिहरो की दृष्टि पडी। यह अलौकिक शोभा देखकर उन्होने दौडकर गाँव मे खबर दिया : अवस देखिये देखन जोगू।

बालक वृद्ध गृह कार्य से विनिर्मुक्त हैं। अत: पहिले बालक चले। पीछे से बूढे चले। नरनारी अर्थात् युवक युवती गृहकार्य मे लगे है। उन्होने भी कार्य छोडा। समाचार देनेवाले के शब्द मे ऐसी शक्ति आगयी है कि सुननेवाला घर का काम छोड देता है।

राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयनफलु होहिं सुखारी ॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भये मगन देखि दोउ बीरा ॥२॥

अर्थ : राम लक्ष्मण और सीताजी को देखकर नेत्र होने के फल को पाकर सुखी होते थे। उनके नेत्रो मे जल आगया। शरीर पुलकित हो उठा। सब दोनो वीरो को देखकर मग्न हो गये।

व्याख्या : राम लक्ष्मण पर दूर से ही दृष्टि पडी और सीताजी पर निकट आने पर। स्त्री पर विशेष रूप से दृष्टि न देना भारत की प्राचीन सभ्यता है। राम लक्ष्मण को दूर से ही देखते चले आते है। निकट आने पर सीताजी पर दृष्टि पडी। इसलिए राम लखन को पहिले कहा। दर्शन पाते ही शोकरहित हो गये। आँख होने का फल मिल गया। विशोक होना ही जन्म का फल है। अत वे सुखी हो गये।

दोनो भाइयो का दर्शन चित्त देकर कर रहे हैं। अत उसी आनन्द मे मग्न हो गये। सात्त्विक भाव हो गया। आँखो मे आँसू डबडबा आया और शरीर पुलकित हो उठा।

बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्हि सुरमनि ढेरी ॥
एकन्ह एक बोलि सिख देही। लोचन लाहु लेहु छन एही ॥३॥

अर्थ : उनकी दशा वर्णन करते नही बनता। जैसे कङ्गालो को चिन्तामणि का ढेर हाथ लग जाय। एक दूसरे को पुकारकर शिक्षा देते है कि इस क्षण नेत्रो का लाभ ले लो।

व्याख्या : उनकी दशा कहने योग्य नही सब होश के बाहर हो रहे है। कङ्गाल को रोटी दुर्लभ उन्हे मानो चिन्तामणि का ढेर हाथ लग जाय ऐसी दशा सबकी हो रही है। एक दूसरे को पुकारकर शिक्षा देते है। अवलोकहु भरि नयन विकल जनि होहु करहु सुविचार। धैर्य धारण करके इस क्षण दर्शन करके नेत्र होने के फल को प्राप्त करो। ये बहुत शीघ्र आँख के ओट हो जायँगे तब पछतावा रह जायगा कि आँख भर देख न पाये।

रामहि देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहि संग लागे ॥
एक नयन मग छवि उर आनी। होहि सिथिल तन मन बरबानी ॥४॥

अर्थ : रामजी को देखकर किसी को ऐसा प्रेम हुआ कि देखते हुए साथ लगा चला जा रहा है। कोई नेत्र के मार्ग से छवि को हृदय मे लाकर मनसा वाचा कर्मणा शिथिल हो गया।

व्याख्या : पहिले ही कह आये है : सुनि सब बाल वृद्ध नरनारी। चलहिं तुरत गृह काज बिसारी। अतः पहिले बालको की दशा कहते हैं कि उन्हे रामजी को देखकर बडा प्रेम हुआ। अतः उन्हे देखते रहने के लिए बाल्यावस्थानुसार उन्हे देखते हुए साथ चले जा रहे हैं। तत्पश्चात् वृद्धा की दशा कहते है कि वे सरकार की मनोमयी मूर्ति हृदय मे लाकर शिथिल हो गये। उनका तन मन वाणी कोई काम नही करती है।

दो. एक देखि बट छाँह भलि, डासि मृदुल तृन पात।
कहहि गँवाइअ छिनुकु श्रमु, गवनब अबहि कि प्रात ॥११४॥

अर्थ : कोई वट की अच्छी छाया देखकर कोमल तृण और पत्ते बिछाकर कहता है कि क्षण भर यहाँ आराम कर लीजिये अभी जाइयेगा या कल प्रात काल।

व्याख्या : अब नर युवा का हाल कहते हैं कि उसने देख लिया कि वन मे से आ रहे है। उसमे विश्राम का स्थान नही है। अतः दौडकर पहिले ही रास्ते मे के बरगद के पेड को देखा कि यहाँ शीतल छाया है। उनके विश्राम योग्य है। सो थोडे से कोमल तृण और पत्ते आसन के लिए बिछा दिये। जब रामजी वट के सन्निकट गये तब कहा कि यहाँ क्षण भर आराम कर लीजिये। आपको जल्दी जाना है कि प्रात काल तक ठहरियेगा ? उसकी हार्दिक इच्छा है कि रात भर ठहर जायँ।

एक कलस भरि आनहिं पानी । अँचइअ नाथ कहहि मृदु बानी ॥
सुनि प्रिय वचन प्रीति अति देखी । राम कृपालु सुसील बिसेखी ॥१

अर्थ कोई घडा भरकर पानी लाता है और मीठी वाणी से कहता है । नाथ ! जल पी लीजिये । प्रिय वचन सुनकर और अत्यन्त प्रीति देखकर कृपा रामजी जो विशेष सुशील है ।

व्याख्या अब नारी की व्यवस्था कहते है कि घडे मे जल लेकर पहुँच ग और मीठी वाणी से कहने लगी कि नाथ ! थोडा जल पी लिया जाय । सरकार प्रिय वचन सुना और उनका प्रेम देखा कि विश्राम के लिए स्थान भी ठीक क रखखा है । आसन के लिए कोमल तृण और पत्ते भी बिछे है । जल भी प्रस्तुत है मीठी वाणी से स्वीकार करने के लिए प्रार्थना भी करते है । निदान आतिथ्य क देशकालानुसार पूरी तैयारी है । रामजी स्वभाव से ही कृपालु है और विशेष सुशी है । इनसे शील छोडते नही बनता ।

जानी श्रमित सीय मन माही । घरिक बिलंबु कीन्ह बट छाही ॥
मुदित नारि नर देखहि सोभा । रूप अनूप नयन मनु लोभा ॥२॥

अर्थ मन मे सीताजी को थकी हुई जानकर वट की छाया मे लगभग एव घडी के विश्राम किया । प्रसन्न होकर नर नारी शोभा देखने लगे । अनूपरूप ने उनवे मन को लुभा लिया ।

व्याख्या चौथी बात यह कि यद्यपि सीताजी ने कुछ न कहा । पर सरकार ने मन मे जान लिया कि ये थकी हुई है । इसलिए बरगद की छाया मे ठहर गये ग्रीष्मकाल मे वट की छाया शीतल होती है । लगभग एक घडी के वहाँ विश्राम किया

लोगो को स्थिर होकर शोभा देखने का अवसर मिल गया । अत बडे प्रसन्न होकर देखने लगे । ऐसा अनुपम रूप कभी देखा नही था । इसलिए नेत्र और मन लुब्ध हो गये । वहाँ से हटाये नहीं हटते । किसी भाँति तृप्ति नही होती ।

एकटक सब सोहहि चहुँ ओरा । रामचन्द्र मुख चंद चकोरा ॥
तरुन तमाल बरन तनु सोहा । देखत कोटि मदन मनु मोहा ॥३॥

अर्थ सब एकटक चारो ओर शोभित हुए । रामचन्द्र के मुखचन्द के लिए उनकी आँखें चकोर हो गयी । नये तमाल के रग की सी शरीर की शोभा थी । जिसके देखते हुए करोडो कामदेवो का मन मोहित हो जाता था ।

व्याख्या नयन और मन का लोभ दिखलाते हैं कि सबो ने चारो ओर से घेर लिया और पलक पडना बन्द करके देख रहे हैं । रामजी की शोभा से वे भी शोभित हो रहे हैं । चारो ओर से चन्द्रमा को घेरकर देखने म चकोरो की भी शोभा हो जाती है । यथा मुनि समूह महं बैठे सनमुख सबकी ओर । सरद इंदु तन चितवत मानहु निकर चकोर ।

नये तमाल वृक्ष से श्यामता की उपमा दी गयी है। रामजी का वर्ण श्याम है इससे तरुण तमाल से उपमित किया। परन्तु लावण्य इतना है कि कोटि काम का मन मोह जाय। बिचारे ग्रामवासियों का मोहित होना कौन सी बडी बात है।

दामिनि बरन लखन सुठि नीके। नख सिख सुभग भावते जीके ॥
मुनि पट कटिन्ह कसे तूनीरा। सोहहि कर कमलनि धनु तीरा ॥३॥

अर्थ • बिजली ऐसे वर्णवाले लक्ष्मणजी अत्यन्त भले लगते थे। नख से लेकर शिख तक उनकी सुन्दरता मन को बडी प्यारी लगती थी। वल्कल वसन से कमर मे तरकस कसा हुआ था और हाथो मे धनुष बाण शोभायमान थे।

व्याख्या • गौरवर्ण और दीप्तिमान होने से लक्ष्मणजी की उपमा बिजली से देते हैं। नख से शिख तक अवयव सगठन ऐसा है कि मन को बडा प्यारा लगता है। दोनों मूर्तियो का रूप पृथक् पृथक् वर्णन करके अब वेष का एक साथ ही वर्णन करते हैं कि यद्यपि वल्कल वसन पहने हैं। पर कमर मे तरकस कसा हुआ है। हाथो मे धनुष और बाण है। वन म से आ रहे हैं। अत एक बाण तरकस से निकालकर हाथ मे लिये हुए है खतरा का सामना करने के लिए।

दो जटा मुकुट सीसन्हि सुभग, उर भुज नयन बिसाल।
सरद परब बिधु बदन बर, लसत स्वेद कन जाल ॥११५॥

अर्थ मस्तको पर सुन्दर जटा के मुकुट विशाल वक्ष स्थल भुजा और नेत्र शरदपुनो के चन्द्रमा से श्रेष्ठ मुखो पर पसीने के बूंदो का जाल शोभायमान था।

व्याख्या जटा के जूट उनके सिरो पर मुकुट की भाँति शोभा दे रहे हैं एव वेष तो मुनियो सा है। पर उर भुज नयन का विशाल होना वीरता द्योतित कर रहा है। और शरदपूनो के चाँद से मुखडो पर पसीने की बूदो का जाल शृङ्गार को स्थान दे रहा है। यथा श्रमकन सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें। इस भाँति शान्त वीर और शृङ्गार रस तीनो का मेल इस झाँकी मे दृष्टिगोचर हो रहा है।

बरनि न जाय मनोहर जोरी। सोभा बहुत थोरि मति मोरी ॥
राम लखन सिय सुदरताई। सब चितवहि चित मन मति लाई ॥१॥

अर्थ मनोहर जोडो का वर्णन नही किया जा सकता। शोभा बहुत है। मेरी बुद्धि थोडी है। राम लक्ष्मण और सीता की सुन्दरता को सब चित्त मन और बुद्धि लगाकर देख रहे हैं।

व्याख्या यहाँ सीताजी की शोभा का वर्णन कवि ने अनधिकार के कारण नही किया। कहते हैं कि राम लक्ष्मण की जोडी का वर्णन करने मे मैं असमर्थ हूँ। क्योकि मेरी बुद्धि थोडी है। उसमे यह अपार शोभा समाती नही। जो वस्तु बुद्धि मे नही समाती उसका वर्णन कैसे किया जा सकता है ?

जो लोग उस शोभा को देख रहे है। उनकी अवस्था वर्णन से शोभा की महत्ता को समझिये। वे लोग राम लक्ष्मण और सीता की सुन्दरता को मन बुद्धि चित्त लगाकर देख रहे हैं। यहाँ चार अन्त करणो मे केवल तीन का उल्लेख है। अहङ्कार का उल्लेख नही है। क्योकि उसका पता ही नही। सब अपनपौ को भूले हुए है।

थके नारि नर प्रेम पियासे। मनहुँ मृगी मृग देखि दिआ से॥
सीय समीप ग्रामतिय जाही। पूछत अति सनेह सकुचाही॥२॥

अर्थ : प्रेम की प्यास से स्त्री पुरुष ऐसे थके जैसे मृगी मृग दीपक को देखकर थकित हो जाते है। सीताजी के पास गाँव की स्त्रियाँ जाती है और अति स्नेह से पूछने मे सकुचाती हैं।

व्याख्या : प्रेम की प्यास मिटती ही नही बढती ही जाती है। सरकार को देख रहे हैं। पर ऐसी इच्छा है कि यो ही देखते ही रहे। मृग और मृगी को दीपक देखने का अवसर नही मिलता। यदि मिल जाय तो वे निश्चल होकर देखा ही करें। उनके दीपक प्रेम की प्यास नही बुझती।

ग्राम की स्त्रियाँ प्रेम से सीताजी के पास पहुँच गयी। प्रेमवश सबका परिचय पूछना चाहती हैं। प्रयोजन कुछ बतला नही सकती। पर जानने की अभिलाषा है। अत पूछने मे सङ्कोच है।

बार बार सब लागहि पाए। कहहि बचन मृदु सरल सुभाए॥
राजकुमारि बिनय हम करही। तिय सुभाय कछु पूछत डरही॥३॥

अर्थ बार बार सब पाँव पडती है और कोमल वचन सुन्दर भाव से पूछती हैं। हे राजकुमारी! मैं विनती करती हूँ। पर स्त्री स्वभाव के कारण पूछते डरती हूँ।

व्याख्या अविनय के क्षमापन के लिए बार बार पाँव पडती हैं। पूछत अति सनेह सकुचाही से मनसा प्रेम कहते हैं। बार बार सब लागहिं पाएँ से कर्मणा प्रेम कहते है। कहहिं वचन मृदु सरल सुभाए से वचसा प्रेम कहते हैं। सुन्दर भाव से मृदु सरल वचन कहती है। स्वरूप देखकर ही समझ गयी कि ये राजघराने की हैं। अत: राजकुमारी कहकर सम्बोधन करती है। कहती हैं कि मेरी विनती यही है कि मैं कुछ पूछना चाहती हूँ। स्त्री स्वभाव से पूछने मे डर लगता है। कही आप अप्रसन्न न हो जायँ कि तुम्हे इन बातो से क्या प्रयोजन?

स्वामिनि अविनय छमबि हमारी। बिलगु न मानबि जानि गँवारी॥
राजकुअर दोउ सहज सलोने। इन्ह तें लहि[1] दुति मरकत सोने॥४॥

---

१ यहाँ निदर्शना द्वितीय अलङ्कार है।

अर्थ : हे स्वामिनि ! मेरी ढिठाई क्षमा करना। गँवारी जानकर नाराज न होना। ये दोनो राजकुमार स्वभाव से लावण्यधाम हैं। नीलम और सोने ने इन्ही से चमक पायी है।

व्याख्या : राजकुमारी होने से स्वामिनि सम्बोधन करती हैं। यह मेरा अविनय है जो मैं नाता सम्बन्ध पूछती हूँ। मेरा क्या अधिकार है जो पूछूँ। पर मैं गँवारी हूँ। मैं नही जानती कि क्या और कैसे पूछा जाता है। मेरे गँवारपन के पूछने से अप्रसन्न न होना।

भगवती दोनो भाइयो से कुछ हटकर बैठी हैं। अत उनसे पूछती हैं कि राजकुँवर दोउ बडे ही सुन्दर हैं। नीलम की और सोने की द्युति इनके तेज के आगे फीकी है। इनके विषय मे मुझे बडी उत्सुकता है।

दो. स्यामल गौर किसोर वर, सुदर सुखमा अयन।
सरद सर्बरीनाथ मुखु, सरद सरोरुह नयन ॥११६॥

अर्थ : ये श्यामल गौर किशोर अत्यन्त सुन्दर और परम शोभा के निवास-स्थान हैं। शरद्चन्द्र ऐसा इनका मुख है और शरत् कमल ऐसी आँखें हैं।

व्याख्या : श्यामल गौर से वर्ण कहा। किशोर वर से अवस्था कही। सुन्दर सुखमा अयन से शोभा कही। शोभा की मर्यादा मुख और नेत्र ही हैं। सो शरद्चन्द्र से तो मुख हैं और शरत् के कमलो सी आँखे हैं। यद्यपि श्यामल गौर कहने से ही काम चल जाता। परन्तु वह शोभा पर इतनी लुब्ध है कि जैसा उससे हो सकता है पूरा वर्णन कर रही है।

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी ॥१॥

अर्थ : हे सुमुखि ! ये करोडो कामदेव के लजानेवाले तुम्हारे कौन हैं। प्रेम से पूर्ण सुन्दर वाणी सुनकर सीताजी सङ्कुचित हुईं और मन मे मुसकुरायी।

व्याख्या : सुमुखि सम्बोधन का भाव यह कि श्यामल गौर किशोर ही सुन्दर नही है। तुम भी सुन्दरी हो। अत. कहती हैं कि मुझे सम्बन्ध जानने की उत्कण्ठा हुई है। काम मे ही सौन्दर्य की पराकाष्ठा मानी गयी है। सो ये तो करोडो कामदेव के लजानेवाले हैं। ये तुम्हारे कौन हैं? यही मैं जानना चाहती हूँ। भाव यह है कि बिना सम्बन्ध के तो स्त्री अकेली साथ जा नही सकती। अत ग्रामवधूटियाँ कुछ सम्बन्ध का अन्दाज कर रही हैं। वह अन्दाज ठीक है कि नही इसीलिए पूछती हैं। राम जानकी की शोभा ही ऐसी है कि इसमे दाम्पत्य भाव का होना देखनेवाले को इष्ट हो जाता है। यथा - जेहिं बिरचि रचि सीय सँवारी। तेहिं स्यामल बर रचेउ बिचारी। जौं बिधिबस अस बनै सँजोगू। तौ कृतकृत्य होहिं सब लोगू।

स्पष्ट शब्दो मे यह कहने मे कि ये मेरे पति हैं स्त्रियो को सङ्कोच होता

ही है। फिर जानकीजी से आज तक ऐसा प्रश्न किसी ने किया ही नही था। अतः सङ्कुचित हुईं और मनमे मुसकुरायी कि इस स्नेहमय सुन्दर वाणी की उपेक्षा नही की जा सकती। अतः कहना ही पडा।

तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी॥
सकुचि सप्रेम बाल मृग नयनी। बोली मधुर वचन पिक बयनी॥२॥

अर्थ उन्हे देखकर पृथ्वी की ओर देखने लगी। सुन्दर वर्णवाली सीताजी दोनो सङ्कोचो से सङ्कुचित हुईं। मृग के बच्चे सी आँखें हैं जिसकी और कोयल सी जिसकी वाणी है। ऐसी जानकीजी मधुर वचन बोली।

व्याख्या : सङ्कोच के समय वर्ण मे दीप्ति अधिक हो जाती है। अत बरबरनी विशेषण दिया। उनकी ओर देखकर फिर पृथ्वी की ओर देखने लगना सङ्कोच की मुद्रा है। पति के सामने उनके साथ सम्बन्ध का परिचय देने मे भी सङ्कोच है और ऐसे प्रेम से पूछी हुई बात का उत्तर न देने मे भी सङ्कोच है। अत सीताजी दोनो सङ्कोचो से सङ्कुचित हो रही हैं।

नेत्र चञ्चल हो रहे हैं। इसलिए बालमृगनयनी विशेषण दिया। स्वभाव से ही बडा मधुर स्वर है। अत पिकबयनी विशेषण दिया। ऐसी जानकीजी सङ्कोच और प्रेम से मधुर वचन बोली।

सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदनु बिधु अचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौह करि बाँकी॥३॥

अर्थ . स्वभाव से ही सुन्दर भाव वाले और गौर शरीरवाले का नाम लक्ष्मण है। ये मेरे छोटे देवर हैं। फिर मुखचन्द्र को अञ्चल से ढककर और भौहे को टेढी करके प्रिय की ओर देखकर।

व्याख्या भगवती सीताजी कहती हैं कि स्वभाव से भी सुन्दर शरीर से भी सुन्दर गौरवर्णवाले मेरे छोटे देवर है। अर्थात् इनसे बडे भी एक देवर हैं। इनका नाम तो लक्ष्मण है। अप्रसक्त होने से भरतजी का नाम नही लिया। अब रामजी को अपना पति कहना है और कहने मे सङ्कोच है। स्त्रियाँ पति का नाम नही लेती। सो पहिले देवर का परिचय नाम लेकर देने से और बाद उनके नाम न लेने से ही बहुत कुछ कह दिया। नाम लेने के स्थान पर पति की ओर देखा। परिचय देने मे सङ्कोच द्योतित करने के लिए मुखचन्द्र को अञ्चल से ढँककर देखा।

खंजन मजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि॥
भईं मुदित सब ग्रामबधूटी। रकन्ह राय रासि जिमि लूटी॥४॥

अर्थ खञ्जन सी आँखो को तिरछा करके सीताजी ने उन्हे इशारे से बतला

दिया कि ये हमारे पति हैं। गाँव की सब स्त्रियाँ ऐसी प्रसन्न हुईं मानो उन्होंने सर्वोत्तम राशि लूट ली।

व्याख्या एक तो भगवती की आँखे स्वभाव से ही खञ्जन सी सुन्दर हैं। तिस पर भौंह टेढी करके तिरछी निगाह से रामजी की ओर देखा। भाव यह है कि कुलवधू के टेढी भौह और तिरछी निगाह के पात्र उनके पति ही होते हैं। अत इस इङ्गित से उन्हे अपना पति बतला दिया। मनचाही बात मालूम पडने से सब ग्राम की स्त्रियाँ बडी प्रसन्न हुईं। मानो लूट मे सर्वोत्तम राशि ढेर उन्ही के हाथ लग गयी।

दो अति सप्रम सिय पाय परि, बहुविधि देंहि असीस।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह, जब लगि महि अहि सीस ॥११७॥

अर्थ अत्यन्त प्रेम से सीताजी के पाँव पकडकर बहुत भाँति से आशीर्वाद देती हैं कि जब तक पृथ्वी शेष के सिर पर हैं तब तक तुम सदा सुहागिनी बनी रहो।

व्याख्या ग्राम की स्त्रियो को बडा आनन्द हुआ। अत अति प्रेम से सीताजी के पाँव पडती हैं। नीच जाति की हैं। अत पाँव भी पडती हैं और आशीर्वाद भी देती हैं। स्त्रियो के लिए भारत मे सौभाग्य का ही आशीर्वाद सबसे बडा माना जाता है। अहि महि सीस कहकर युगलजोडी के चिरञ्जीवी रहने की कामना द्योतित की।

पारबती मम पति प्रिय होहू। देवि न हम पर छाडब छोहू॥
पुनि पुनि विनय करिअ कर जोरी। जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी ॥१॥

अर्थ पार्वती के समान पति को प्रिय होओ। हे देवि! हम पर से छोह न हटाना। बार बार हाथ जोडकर विनती करती हूँ कि यदि आपका इसी रास्ते से लौटना हो।

व्याख्या पति का प्रेम होना भी सोहाग है। यथा मानौ मुख देखरावनी दुलहिन करि अनुराग। सास सदन मन ललन हू सौतिन्ह दीन्ह सोहाग। अत दूसरे प्रकार के सोहाग का भी आशीर्वाद देती हैं कि पार्वती के समान पति को प्यारी हो शिवजी ने पार्वतीजी को अपने आधे शरीर में मिला लिया। इसीलिए सती से उपमा नही दिया। वे अन्त म प्रिय न रह सकी। आशीर्वाद दकर विनती भी करती हैं। जान गयी थी, कि सीताजी का हम पर छोह है। अत उस छोह का बनाये रखने के लिए विनय है।

बार बार विनय करती हैं। हाथ जोडकर कहती हैं कि यदि आपका लौटना इसी मार्ग से हो जिस मार्ग से आप जा रही हैं।

दरसनु देव जानि निज दासी। लखी सीय सब प्रेम पियासी॥
मधुर वचन कहि कहि परितोषी। जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषी ॥२॥

अर्थ तो अपनी दासी जानकर दर्शन देना। सीताजी ने लखा कि इन सबो को प्रेम की प्यास है। सो उन्हे मधुर वचन कहकर ऐसा सन्तुष्ट किया जैसे चांदनी कुमुदिनी को पुष्ट करती है।

व्याख्या पहिले ही स्वामिनि सम्बोधन करके उन सबो ने सेव्य सेवक भाव का नाता जोड रक्खा है। अत कहती हैं कि जैसे हम लोग आपको स्वामिनी जानती है वैसे ही आप हम लोगो को दासी जानकर लौटते समय दर्शन दीजियगा। हम लोगो के लिए अपनी सुविधा छोडकर आप इधर स ही लौटें यह हम नही चाहती क्योकि ऐसी प्रार्थना सेवक धर्म के विरुद्ध है।

भगवती चन्द हैं। उनकी मधुर वाणी चाँदनी है। सो जैसे चांदनी कुमुदिनी का परितोप करती है कुमुदिनी खिल उठती है उसी प्रकार से सीताजी के मधुर वचन से उनकी प्रेम की प्यास शान्त हुई। वे सन्तुष्ट हो गयी।

तबहि लखन रघुवर रुख जानी। पूछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी॥
सुनत नारि नर भये दु खारी। पुलकित गात बिलोचन बारी॥३॥

अर्थ तब लक्ष्मणजी ने रामजी का रुख जानकर लोगो से कोमल वाणी द्वारा रास्ता पूछा। सुनते ही स्त्री पुरुष सब दु खी हो गये। उनको रोमाञ्च हो गया। नेत्रो मे जल भर आया।

व्याख्या लक्ष्मणजी ने रामजी के रुख से लख लिया कि सरकार की अब चलने की इच्छा है। सीताजी और ग्रामवधूटियो का सम्वाद भी समाप्त हो चुका था। अत मृदु वाणी से वाल्मीकिजी के आश्रम का रास्ता लोगो से पूछा। सुनते ही स्त्री पुरुषो ने समझ लिया कि अब जाना चाहते हैं। पुलकित होना और सजलनयन होना सात्त्विक भाव है। यह दु ख मे भी होता है। सुख मे भी होता है। यहाँ पर दु ख से पुलक हुआ। इसलिए दु खारी शब्द भी लिख दिया।

मिटा मोदु मन भये मलीने। बिधि निधि दीन्हि लेत जनु छीने॥
समुझि करम गति धीरजु कीन्हा। सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा॥४॥

अर्थ हर्ष मिट गया। मन मलिन हो गया। मानो विधाता निधि देकर अब छीने लेते है। कर्मगति समझकर धैर्य धारण किया और उन लोगो न विचार करके सुगम रास्ता बतला दिया।

व्याख्या सरकार के दर्शन से वे लोग लहि जनु रकन्हि सुरमनि ढरी। ऐसे प्रसन्न थे जैसे दरिद्रो को चिन्तामणि का ढेर मिल जाय। सो रामजी का चला जाना सोचकर ऐसे दु खी हुए मानो विधाता ने जो निधि दी थी उसे छीने लते हैं।

अत धैर्य छूट गया था। पर समझा कि कमगति दुर्लभ्य है। इतना ही सुख भाग्य मे था। धैर्य धारण करके विचार किया और सुगम रास्ता वतला दिया।

दो. लखन जानकी सहित तब, गवनु कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि, लिये लाइ मन साथ ॥११८॥

अर्थ तब लक्ष्मण और जानकी के सहित रामजी चले। सबको प्रिय वचन कहकर लौटाया। पर उनका मन साथ ले लिया।

व्याख्या · रघुनाथ हैं। अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ हैं। एक वन से दूसरे मे घुसते ही चले जाते हैं। ग्रामवासी भी साथ चल। प्रिय वचन कह के उनको लौटा दिया। पर उनके मन को साथ ले लिया। इस बार चित्त की चोरी नही की। पहिले की थी। यथा लिये चोरि चित राम बटोही। वे सब साथ चलने को तैयार नही थे। इसलिए चोरी करनी पडी। ये तो साथ चलने को तैयार थे। अत केवल उनके मन को साथ लिया। उन्हे लौटा दिया।

फिरत नारि नर अति पछताही। दैअहि दोषु देहिं मन माही॥
सहित बिषाद परसपर कहही। बिधि करतब उलटे सब अहही ॥१॥

अर्थ · लौटते हुए स्त्री पुरुष अत्यन्त पछताते थे। मन ही मन दैव को दोष देते थे। विषाद के साथ एक दूसरे से कहने लगे कि विधाता के करतब सब उलटे ही हैं।

व्याख्या · रामजी के कहने पर सब लौट पडे। पर उन्हे पश्चात्ताप हो रहा है कि हम क्यो लौट रहे हैं। यह निधि दर्शन हम लोगो को विधाता ने दी थी। उसे छोडकर हम घर लौट रहे हैं। यह भी विधि की प्रेरणा ही है। अत मन ही मन कह रहे हैं कि इसमे भी विधाता का दोष है। लौटना न लौटना उनकी इच्छा की बात थी। इसमे भी विधाता को दोष देने पर लोग क्या कहेगे। अत इस मानसिक भाव को प्रकट नही करते पर मन मे विधाता से अप्रसन्न हैं।

अत उस अप्रसन्नता को विधाता के सभी कार्य उलटे होते हैं ऐसा कहकर प्रकट कर रहे हैं। रामजी के वन जाने से दु खी हैं। अत एक दूसरे से कह रहे हैं।

निपट निरकुस निठुर निसकू। जेहि ससि कीन्ह सरुज सकलकू॥
रूखु कलप तरु सागरु खारा। तेहि पठए बन राजकुमारा ॥२॥

अर्थ · वह बिल्कुल निरकुश निर्दय और निडर है। जिसने चन्द्रमा को रोगी और कलङ्की कर दिया। कल्पवृक्ष को पेड और समुद्र को खारा कर दिया। उसी ने राजकुमारो को वन भेजा।

व्याख्या : सब दु खी होकर ब्रह्मदेव को ही बुरा भला कह रहे हैं। कहते हैं : १ निपट निरकुश २ निठुर और ३ नि शङ्क हैं। यदि किसी का अङ्कुश उस पर होता तो जगत के आह्लाददायक तथा तापहारक चन्द्रमा को क्षयी : रोगयुक्त तथा कलङ्कयुक्त न करता। यदि कुछ भी दया उसे होती तो कल्पवृक्ष ऐसे उदार को जड न बनाता। यदि कुछ भी डर उसे होता तो समुद्र को खारा न बनाता। जब कि छोटी छोटी तलैया कूप आदि मीठे हैं। छोटे जलाशय के जल को बिगाडनेवाला

अपराधी माना जाता है। जल के इतने बडे भण्डार को खारा कर देनेवाला कैसे दण्डनीय नही है। पर उसे किसी का डर नही है। उसी विधाता ने राजकुमारो को वन भेजा है। रामजी को वन देने से निरकुशता सीताजी को वन भेजने से निष्ठुरता और लक्ष्मणजी को वन भेजने से नि शङ्कता द्योतित होती है।

जौ पै इन्हहि दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू॥
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना॥३॥

अर्थ यदि विधाता ने इन्हे वनवास दिया तो भोग विलास का निर्माण व्यर्थ ही किया। यदि ये रास्ते मे नगे पाँव चल रहे है तो विधाता ने अनेक प्रकार के वाहन व्यर्थ ही बनाये।

व्याख्या सब वस्तुआ के लिए अधिकार अपेक्षित है। भोग विलास का इनसे बढकर अधिकारी कौन है। इन्हे भोग विलास करते हुए देखकर ससार को सुख होगा। क्योकि ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी और इनको वन जाते देखकर लोग दु खी होगे। यथा जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला। अत एसे अधिकारी को वन दिया तो विधाता का भोग विलास निर्माण ही व्यर्थ है।

ये वाहन पर निकलते तो देखकर ससार सुखो होता। इन्हे नङ्गे पाँव चलते देखकर किसका कलेजा नही फटेगा। यथा राम लखन सिय बिनु पग पनही। करि मुनि बेपु फिरहिं बन बनही। एहि दु खदाह दहइ दिन छाती। भूख न बासर नीद न राती। अत विधाता का नाना प्रकार के वाहन की रचना ही व्यर्थ है।

ए महि परहि डासि कुस पाता। सुभग सेज कत सृजत बिधाता॥
तरुतर बास इन्हहिं बिधि दीन्हा। धवल धामु रचि रचि श्रमु कीन्हा॥४॥

अर्थ जब ये कुश और पत्ते बिछाकर पृथ्वी पर ही पड जाते हैं तो सुन्दर सेज विधाता ने क्यो बनाये है। जब विधाता ने इनके लिए पेड तले रहना नियत किया तो उज्ज्वल प्रासाद महल रच रचकर केवल परिश्रम के भागी हुए।

व्याख्या इन्हे कुश पत्ते बिछाकर जमीन पर सोते देखकर किसे दु ख न होगा। यथा भयउ बिषाद निषादहि भारी। राम सीय महि सयन निहारी। सुन्दर सेज की शोभा तो इन्ही के सोने से हो सकती है। यथा जहँ सिय राम सयन नित करही। निज छबि रति मनोज मन हरही। अत ब्रह्मा द्वारा सुन्दर सेजो का बनाया जाना ही व्यर्थ हो गया।

उज्ज्वल प्रासादो मे ही इनका निवास उचित था। जब विधाता ने इन्हे तरुतर वास दिया तब धवल धाम की आवश्यकता न रह गयी। उनके बनाने म विधाता को श्रम ही हाथ लगा। फल कुछ न हुआ।

दो जौ ये मुनि पट धर जटिल, सुन्दर सुठि सुकुमार।
बिबिध भाँति भूषन बसन, बादि किये करतार॥११९॥

अर्थ . यदि ये अत्यन्त सुन्दर सुकुमार वल्कल पहिने और जटा रखाये हैं तो अनेक प्रकार के भूषण वसन विधाता ने व्यर्थ ही बनाये।

व्याख्या : सुन्दर सुकुमारो के लिए मुनिपट और जटा नही है। मुनिपट और जटा तो उनके लिए है जो तप के लिए सब भोग त्यागे हुए हैं। इनके लिए अनेक प्रकार के भूषण वसन चाहिए जिससे उन भूषन वसनो की शोभा हो। इनके जटा वल्कल धारण करने पर विधाता का भूषण वसन की रचना ही निष्प्रयोजन है।

जो ए कंद मूल फल खाही। बादि सुधादि असन जग माही॥
एक कहहिं ए सहज सुहाये। आपु प्रगट भए बिधि न बनाये॥१॥

अर्थ : यदि ये कन्द मूल खा रहे हैं तो ससार मे अमृत आदि भोजन व्यर्थ ही है। एक ने कहा कि ये स्वभाव से ही सुन्दर है। ये आप ही प्रकट हुए हैं। इन्हे ब्रह्मा ने नही बनाया है।

व्याख्या . ये अमृत आदि भोजन करने योग्य है। इन्हे यदि कन्दमूल फल खिलाना रहा तो अमृतादि भोजन किसके लिए बनाये ? भावार्थ यह कि जितने छ प्रकार के दु ख ऊपर गिना आये हैं वे सब वनवास के ही दु ख के अन्तगत हैं। ऐसे पुरुष को वनवास देने से विधाता को कौन सी फलसिद्धि हुई ?

इस पर एक ने कहा कि ये स्वभाव से ही सुन्दर हैं। स्वयम्भू हैं। स्वय प्रकट हो गये। ये ब्रह्मदेव के बनाये नही हैं।

जहँ लगि बेद कही बिधि करनी। श्रवन नयन मन गोचर बरनी॥
देखहु खोजि भुवन दस चारी। कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी॥२॥

अर्थ जहाँ तक वेदो ने ब्रह्मदेव की करणी बतलायी है जो श्रवण नयन और मन का विषय है उसे खोजो। चौदहो भुवन खोज डालो। कहाँ ऐसे पुरुष है और कहाँ ऐसी नारी है।

व्याख्या : यह पण्डितो का गाँव मालूम होता है। यहाँ वेद के जानकार मौजूद हैं। कहते हैं कि श्रवण नयन मनगोचर जो कुछ विधि की करणी है सब मे दोप का अनुवेध है। यथा : विधि प्रपच गुण अवगुण साना। ये निर्दोप उसमे कहाँ से आगये ? चौदहो भुवन खोजकर देखो। न वही ऐसे पुरुष हैं न ऐसी नारियाँ ही कही हैं। ऐसे लोगो को वन क्यो दिया ?

इन्हहि देखि बिधि मनु अनुरागा। पटतर जोगु बनावइ लागा॥
कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आए। तेहि इरिषा बन आनि[1] दुराए॥३॥

अर्थ : इन्हे देखकर विधाता के मन मे बडा प्रेम हुआ तो इनके ऐसा दूसरा

---

१. यहाँ हेतु असिद्धास्पदा उत्प्रेक्षा है।

बनाने लगे। परिश्रम बहुत किया। पर कोई अन्दाज ही नही लगा। उसी ईर्ष्या से इन्हे वन मे लेकर छिपा दिया।

व्याख्या : कलाकार जब कोई अच्छी चीज देखता है और उसे पसन्द आ जाती है तब वह वैसी ही दूसरी बनाने का प्रयत्न करता है। मालूम होता है कि उसी भांति ब्रह्मदेव ने भी चाहा कि इनके ही ऐसा दूसरा बनावें। सो ब्रह्मदेव ने बहुत उद्योग किया। पर कुछ करते धरते नही बन पडा। तब उन्हे ईर्ष्या हुई कि लोग कहेगे कि इन्हें बनाने नही आता। बनाने आता तो दूसरा भी ऐसा बनाते। इसलिए इन्हे लाकर वन मे छिपा दिया। जिससे लोग इन्हे देख ही न पावे और उनकी रचना शक्ति का आदर बना रहे।

एक कर्हाह हम बहुत न जार्नाह। आपुहि परम धन्य करि मार्नाह॥
ते पुनि पुन्य पुज हम लेखे। जे देर्खाह देखिर्हाह जिन्ह देखे॥४॥

अर्थ एक ने कहा कि हम बहुत नही जानते। हम तो अपने को परम धन्य मान रहे है। हमारे लेखे तो वे भी पुण्यपुञ्ज है जो इन्हे देखते हैं देखेंगे और जिन्होने देखा है।

व्याख्या तीसरे ने कहा कि भाई! तुम्हारी कल्पनाशक्ति बडी बलवती है। तुम बहुत जानते हो। अच्छा कारण ढूँढ निकाला। पर मै कार्य कारण के पीछे नही पडता। मैंने इनका दर्शन पाया। इसी से अपने को धन्य मानता हूँ।

मै ही नही पहिले जिन्होंने इनका दर्शन किया आज जो कर रहे हैं और भविष्य मे जो करेंगे वे भी पुण्यपुञ्ज है। मेरा तो यही मत है।

दो एहि बिधि कहि कहि बचन प्रिय, लेहि नयन भरि नीर।
किमि चलिर्हाह मारग अगम, सुठि सुकुमार सरीर॥१२०॥

अर्थ इस भाँति प्रिय वचन कह कहकर आँखो म आँसू भर लाते हैं कि अत्यन्त ही सुकुमार शरीरवाले ये दुर्गम रास्ते को कैसे पार करेगे।

व्याख्या फिरत नारि नर अति पछिताही से उपक्रम करके लेहि नयन भरि नीर से उपसहार करते है। यहाँ पर तीन प्रकार से लोग बोले है। पहिले के कहने मे तमोगुण की झलक आती है। दूसरे मे रजोगुण स्पष्ट है। तीसरे मे सत्त्वगुण का प्रकाश है। इस भाँति यह सोचकर कि ऐसे सुकुमार शरीर इस दुर्गम रास्ते म कैसे निबहेगे। उन लोगो की आँखा मे आँसू आ जाता है।

नारि सनेह बिमल बस होही। चकई साँझ समय जनु सोही॥
मृदु पद कमल कठिन मगु जानी। गहबरि हृदय कहँहि बर बानी॥१॥

अर्थ : स्त्रियाँ स्नेह से विकलता के वश हो जाती है। जैस सायकाल के समय चकई की शोभा हो जाती है। चरण कमल को कोमल और रास्त को कठिन जानकर भर हृदय से अच्छी वाणी बोलती हैं।

व्याख्या विछोह के समय प्रेमपात्र पर अधिक प्रीति बढ जाती है। इसलिए विकलता के वश होना कहा। पुरुषो की दशा ऊपर कह आये कि उन्हे भी विषाद है। अब स्त्रियो की दशा कहते है कि वे तो विकलता के वश हो गयी हैं। उनकी अवस्था की उपमा सन्ध्या के समय चकई की अवस्था से दी गयी जब कि वह प्रिय के विरह से विकल होती है। प्रेमी की शोभा प्रेमपात्र के विछोह मे विकल होने मे है। इसलिए सोही शब्द का प्रयोग किया। स्त्रियाँ सरकार के रूप पर मोहित हैं। अत चकई से उपमित किया। यथा कहहु सखी अस को तनु धारी। जो न मोह यह रूप निहारी।

स्त्रियो के हृदय मे भी वही विचार उठा जो पुरुषो के हृदय मे उठा था कि कोमल सुन्दर चरण कठिन रास्ते मे अत्यन्त पीडित होगे। उस पीडा को सोचकर हृदय भर आया। अत वर वाणी कहती हैं। प्रेमयुक्त वाणी ही वर वाणी है।

परसत मृदुल चरन अरुनारे। सकुचति महि जिमि हृदय हमारे ॥
जौं जगदीस इन्हहि बनु दीन्हा। कस न सुमनमय मारगु कीन्हा ॥२॥

अर्थ कोमल और लाल चरणो को छूने मे पृथ्वी उसी भाँति सङ्कुचित होती है जिस तरह हमारा हृदय सङ्कुचित होता है। यदि जगदीश ने इन्हे वन दिया तो रास्ते को पुष्पमय क्या नहीं बनाया ?

व्याख्या इस अरुण मृदुल चरण को हृदय मे लाने से मेरा हृदय सकुचता है कि इन चरणो के स्पर्श योग्य हमारे दूषित हृदय नही हैं। इसी भाँति पृथ्वी को सङ्कोच हो रहा है कि इन कोमल चरणो के धारण योग्य मेरा वक्षस्थल नही है।

कमल का पुष्पो के ऊपर रहना ही उचित है। अत इनके चरण कमल के लिए पुष्पमय मार्ग ही उपयुक्त है। जब विधि ने इतना उलटा पलटा किया कि इन्हे वन दे दिया तो मार्ग मे भी उलटा पलटा करना चाहता था। उसे कठोर से पुष्पमय बना देते।

जौं माँगा पाइअ बिधि पाही। ए रखिअहिं सखि आँखिन्ह माही ॥
जे नर नारि न अवसर आए। तिन्ह सिय रामु न देखन पाए ॥३॥

अर्थ यदि ब्रह्मदेव से मुँह माँगा मिले तो हे सखि! इन्हे आँखो मे रखना चाहिए। जो नरनारि उस समय नही आये वे रामजी को नही देख पाये।

व्याख्या विधि है। अपनो विधि बैठाया करते है। मुह माँगा नही देते। यदि देते तो इन्हे आँखो मे रखती। कही जाने ही न देती। आँख बडी कोमल होती हैं। पुष्प का भी स्पर्श सहन नही कर सकती। आँखिन मे सखि राखिबे जोग इन्हैं किमि कै बनवास दयो है। आँख निर्लेप है। उनके रहने योग्य है। हृदय तो कलुषित है। वहाँ उन्हे रहने को कैसे कहे।

कुछ लोग गाँव मे नही थे। पीछे से आये। सबने देखा। वे देख ही नही पाये। पता लगा कि ऐसी अलौकिक सुन्दर तीन मूर्तियाँ इधर से ही वन गयी है।

वटतर कुछ देर तक विश्राम भी किया था। लोगों ने चाहा भी था कि रात को यही ठहरें पर वे ठहरे नही।

सुनि सरूप बूझहि अकुलाई। अब लगि गये कहाँ लगि भाई॥
समरथ धाइ बिलोकहि जाई। प्रमुदित फिरहि जनम फलु पाई॥४॥

अर्थ स्वरूप की प्रशसा सुनकर आकुल होकर पूछते हैं कि भाई! ये लोग कहाँ तक गये होगे। समर्थ लोग दौडकर जाते थे और दर्शन करके जन्मफल पा जाते थे और प्रसन्न होकर लौटते थे।

व्याख्या अलौकिक स्वरूप का वर्णन सुनकर दर्शन के लिए आकुल होकर पूछते थे कि अब तक वे कितनी दूर आगे बढ गये होगे। उनके मन मे बडी उत्कण्ठा दर्शन की है। सभी ने दर्शन पाया। हम ही रह गये। अत पहुँच के भीतर हो तो जाकर दर्शन करना चाहिए।

लोगो ने दूरी बतला दी। तब जो दौडने मे समर्थ थे दौडे पडे। जाकर दर्शन किया। मनुष्य जन्म का फल ही सरकार का दर्शन है। यथा राम चरन बारिज जब देखौ। तब निज जन्म सफल करि लेखौ। सो दर्शन प्राप्ति से कृतकृत्य हुए। जन्मफल पाकर आनन्द से लौटे।

दो अबला बालक वृद्ध जन, कर मीजहि पछिताहि।
होहि प्रेम बस लोग इमि, रामु जहाँ जहँ जाहि॥१२१॥

अर्थ स्त्री बच्चे और बूढे हाथ मल मलकर पछताते हैं। इस भाँति जहाँ जहाँ रामजी गये वहाँ वे लोग सब प्रेम के वश हो गये।

व्याख्या अब असमर्थो की बात कहते हैं कि स्त्री बालक और वृद्ध हाथ मलते हैं। पछताते हैं कि हमारे भाग्य मे दर्शन बदा नही था। स्त्रियाँ दौड नही सकती थी। वृद्ध महाअसमर्थ थे। बच्चे भी दूरतक नही दौड सकते थे। अत इन्हे पछताना ही हाथ लगा। समर्थ को दौडकर जाते देखकर ये जी ममोसकर रह जाते हैं। इस भाँति जहाँ रामजी जाते हैं वहाँ प्रेम का समुद्र उमड पडता है। ऐसी मूर्त्ति है कि जिन्होने देखा वे भी पछताते हैं कि मै सग क्यो नही गया और जिन्होने दर्शन नही पाया वे भी पछताते हैं कि मेरे भाग्य मे दर्शन नही रहा।

गाँव गाँव अस होई अनदू। देखि भानुकुल कैरव चदू॥
जे कछु समाचार सुनि पावहि। ते नृप रानिहि दोसु लगावहि॥१॥

अर्थ सूर्यकुल के कुमुद के चन्द्रमा रूप रामजी को देखकर गाँव गाँव मे ऐसा आनन्द हो रहा है। जो कोई समाचार पाते हैं वे राजा रानी को दोष लगाते हैं।

व्याख्या सरकार का सौन्दर्य ही ऐसा है कि उसे देखकर स्त्रियाँ चन्द्रोदय पर कुमुदिनी की भाँति खिल उठती हैं। यथा नारि कुमुदिनी अवध सर रघुपति बिरह दिनेस। अस्त भय बिगसित भईं निरखि राम राकेस। वैसी ही गति पुरुषो

की भी है। अत कहते है कि इसी गाँव की यह दशा नही जितने गाँव रास्ते मे पडते हैं वही आनन्द की लहर आ जाती है।

उन देखनेवालो मे से किसी किसी को कुछ टूटा फूटा पता चल जाता है। वे राजा रानी को दोष देने लगते हैं। यथा ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन पठए बन बालक ऐसे।

कहहिं एक अति भल नरनाहू। दीन्ह हमहिं जेइ लोचन लाहू॥
कहहिं परसपर लोग लोगाई। बाते सरल सनेह सुहाई॥२॥

अर्थ किसी ने कहा कि राजा वहुत अच्छा है। जिसने हमको नेत्र होने का फल दिया। स्त्री पुरुष आपस म स्नेह से सरल और सोहाई बाते कहते हैं।

व्याख्या अधिक लोग तो दोष लगानेवाले ही हैं। पर कोई ऐसे भी हैं जो कहते हैं कि राजा बहुत ही अच्छा है। उसने हम लोगो के कल्याण के लिए इतने वडे स्वार्थ का त्याग किया। यदि इन्हे वन न भेजता तो हम लोगो के नेत्र सफल कैसे होते। यथा करहु सफल सबके नयन सुन्दर बदन देखाइ।

घर के भीतर बात हो रही है। अत लोग लोगाई का परस्पर कहना कहते हैं। स्नेह भरा चित्त होने से सरल बातें ही मुख से निकलती है और वे सोहाई भी होती है।

ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाये। धन्य सो नगरु जहाँ ते आये॥
धन्य सो देसु सैलु बनु गाऊँ। जहँ जह जाहि धन्य सो ठाऊँ॥३॥

अर्थ वे माता पिता धन्य हैं जिन्होने इन्हे जन्म दिया। वह नगर धन्य है जहाँ से आये हैं। वह देश पर्वत गाँव धन्य है। वह स्थान धन्य है जहाँ जहाँ ये जा रहे हैं।

व्याख्या कहहु तात केहि भाँति कोउ करै बडाई तासु। राम लखन तुम सत्रुहन सरिस तनय सुचि जासु। अत माता पिता धन्य है धन्य अवध जो राम वखानी। अत जहाँ से आये वह नगर धन्य है और परसि राम पद पदुम परागा। मानत भूमि भूरि निज भागा। अत वह देश वह पर्वत वह वन वह गाँव धन्य है जहाँ जहाँ ये जावेंगे। यथा बड भागी बनु अवध अभागी। जो रघुबस तिलकु तुम त्यागी।

सुखु पायेउ बिरंचि रचि तेही। ए जेहि के सब भाँति सनेही॥
राम लखन पथि कथा सुहाई। रही सकल मग कानन छाई॥४॥

अर्थ ब्रह्मदेव ने उसी को रचकर सुख पाया। जिसके ये सब भाँति से स्नेही हैं। राम लक्ष्मण के रास्ते की सोहाई कथा तमाम रास्ते और वन मे छा गयी।

व्याख्या माता पिता धन्य हैं। जन्मस्थान धन्य है। जहाँ जाते हैं वह स्थान धन्य है। पर इनके स्नेही भक्त ऐसे धन्य हैं कि उनको रचकर ब्रह्मदेव अपने को सुखी मानकर धन्य हुए। यथा सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।

श्रीरघुनाथ परायन जहँ नर उपज विनीत। भक्त के उत्पन्न होने से कुल धन्य होता है। सभी कुल ब्रह्मदेव निर्मित है। अत वे भी धन्य हुए। अथवा ब्रह्मदेव के निर्माण कला की पराकाष्ठा मनुष्य की रचना म है। पर मनुष्यता की पूर्णता तो हरिभक्ति से होती है। नही तो तुलसी जेहि राम ते नेहु नही सो सही पशु पूँछ विषाण न द्वै। अत हरिभक्त के निर्माण से अपनी कला की पूर्णता देखकर ब्रह्मदेव सुखी होते है।

जिधर से सरकार जाते हैं उधर आनन्द की लहर आ जाती है। उसकी कथा चल पडती है और वह कथा सोहाई होती है। मनभावनी होती है। उसे कहते सुनते लोग सुख पाते हैं। यथा भव मग अगम अनदु बिनु श्रम रहेउ सिराइ।

दो एहि बिधि रघुकुल कमल रबि, मग लोगन्ह सुख देत।
जाँहि चले देखत बिपिन, सिय सौमित्रि समेत ॥१२२॥

अर्थ इस भाँति रघुकुल कमल के सूर्य रास्ते के लोगो को सुख देते हुए सीता और लक्ष्मण सहित वन को देखते हुए चल जाते हैं।

व्याख्या छाँह करहिं घन बिबुध गन बरखहिं सुमन सिहाहिं। देखत गिरिबन बिहँग मृग रामचल वन जाहिं से उपक्रम करके एहि बिधि रघुकुल कमल रबि मग लोगन सुख देत इत्यादि से उपसहार करते ह। नौ दोहो मे कैसे रास्ते के लोगो को सुख दते हुए रामजी वन देखते चल जा रहे हैं। इस बात का वर्णन किया।

आगे राम लखन बन पाछे। तापस बेष बिराजत काछे ॥
उभय बीच सिय सोहति कैसे। ब्रह्म जीव बिच माया जैसे ॥१॥

अर्थ आगे आगे रामजी पीछ पीछ लक्ष्मणजो तपस्वियो का वेष बनाये हुए शोभायमान हैं। दोनो के बीच सीताजी कैसी सोहती हैं। जैसे ब्रह्म और जीव के बीच मे माया हो।

व्याख्या अब वन मे जाते हुए तीनो मूर्तियो की कैसी शोभा है। इसे वर्णन करते हुए कहते है कि सम्बन्धानुसार तथा रक्षा के विचार से भी रामजी आगे आगे चलते हैं और लक्ष्मणजी पीछ पीछ चलते हैं। तपस्वियो के वेष मे कसे कसाये शोभायामान है। यथा अनुज सहित सिर जटा बनाये। दोना के बीच म सीताजी हैं। इनका वेष अभी तपस्विनियो सा नही है। अत कवि राम लक्ष्मण की उपमा तो ब्रह्मजीव से देते हैं और सीताजी की माया से। ब्रह्म माया को नही देखता। सवथा स्वतन्त्र है। परन्तु माया उसी के आश्रित है। उसी के पीछ चलती है। जीव यद्यपि ब्रह्म का ही अश है। पर माया का अनुसरण करता है। ब्रह्म और जीव सजातीय पुरुष हैं। माया विजातीय स्त्री है। अत वेष म भेद है। ब्रह्मजीव म भेद मायाकृत है। अत माया को ब्रह्म जीव के बीच मे कहा। इन्ही सब बाता पर विचार करके कवि ने राम जानकी और लक्ष्मण की उपमा ब्रह्म माया और जीव

से दिया। देखनेवाला जहाँ खडा है वहाँ से आते हुए तीनो मूर्तियो मे पहिले रामजी को देखता है। पीछे सीताजी को तत्पश्चात् लक्ष्मणजी को। यहाँ देखनेवाला कवि है। इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि वर्णन करने के समय कवि अपने को किस स्थान पर मान रहा है। अभी तीनो मूर्तियाँ दूर हैं। बहुत स्पष्ट दिखलायी नही पड रही है। अत ब्रह्म माया और जीव से उपमित किया।

बहुरि कहहुँ छबि जसि मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लसई ॥
उपमा बहुरि कहौ जिय जोही। जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही ॥२॥

अर्थ : फिर जैसी छवि मन मे बसी है वैसी कहता हूँ। मानो मधु और कामदेव के बीच मे रति शोभित हो। फिर अपने जी मे सोचकर उपमा कहता हूँ। जैसे बुध और चन्द्रमा के बीच रोहिणी शोभायमान हो।

व्याख्या : यहाँ मधु चैत्र मास वसन्त का उपलक्षण है। मदन और रति दम्पती हैं। वसन्त मदन का सखा है। चलते चलते ठीक सामने आजाने पर कवि शोभा को स्पष्ट देख रहा है। अत' मधु मदन और रति की उपमा देता है। आगे बढने के बाद उपमा देने के समय सबसे पीछे होने के कारण लक्ष्मणजी को कवि पहिले देखता है तत्पश्चात् सीताजी को और उसके बाद रामजी को। अत मधु को पहिले कहकर तब मदन रति का उल्लेख करता है। कवि शोभा देखने मे मग्न है।

जब मूर्तियाँ बहुत दूर निकल गयी, अब दृष्टि के ओझल हुआ चाहती हैं तब फिर उपमा देते है कि बुध और चन्द्रमा के बीच मे जैसे रोहिणी हो। चन्द्रमा और रोहिणी दम्पती है। बुद्ध चन्द्रमा का पुत्र है। तीनो बहुत दूर हैं। दूर चले जाने पर उसी भाँति कवि पहले लक्ष्मणजी तत्पश्चात् सीता और रामजी को देखता है और उसी क्रम से वर्णन करता है। दूर की उपमा ब्रह्म, माया और जीव से दे आये हैं। और फिर दूर की ही उपमा देनी है। अतः कवि को सोचना पडा कि अब कौन सी उपमा दें। तो तीन तेजोमय वस्तु चन्द्र, रोहिणी और बुध से जो दूर स्थित है दे डाला। पर हृदय मे बीचवाली छवि बसती है। अत. मधु, मदन, रति की उपमा दी। क्योकि सबके मन मे काम का निवास है और गोस्वामीजी के मन मे उसके स्थान पर राम बसते हैं।

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता ॥
सीय राम पद अक बराएँ। लखनु चलहि मग दाहिन लाएँ ॥३॥

अर्थ : प्रभु के चरणो की रेखाओ के बीच बीच मे सीताजी अपना पाँव धरती और डरती हुई रास्ता चलती हैं। सीता और रामचन्द्र के चरणो के चिह्नो को बचा बचाकर लक्ष्मणजी दाहिनी ओर से रास्ता चलते थे।

व्याख्या · सीताजी ठीक रामजी का अनुसरण करती हैं और अनुसरण करने-वाले का पैर अग्रगामी के चरण चिह्नो पर पडेगा ही। अत सीताजी रामचन्द्र के चरण चिह्नो मे बीच बीच मे पैर रखती हैं और डरती हुई रास्ता चलतीहैं कि

कहीं सरकार के चरण चिह्नों पर मेरा पैर न पड जाय। सीताजी की ऐसी पूज्य वुद्धि सरकार पर है।

वैसी ही पूज्य बुद्धि लक्ष्मणजी की दोनो सरकारो पर है। उन्हे दोनो मूर्तियो के चरण चिह्नो को बँचाना ठहरा। अतः वे दाहिनी ओर हटकर चल रहे हैं।

राम लखन सिय प्रीति सुहाई। बचन अगोचर किमि कहि जाई॥
खग मृग मगन देखि छवि होही। लिये चोरि चित राम बटोही॥४॥

अर्थ · लक्ष्मण राम और सीताजी की प्रीति वचन का विषय ही नही है। अत कैसे कही जा सकती है। उनकी छवि देखकर पशु पक्षी मगन हो जाते थे। क्योकि पथिक राम ने उनके चित्त चुरा लिये।

व्याख्या : राम लक्ष्मण और सीताजी की प्रीति ऐसी पवित्र और सुन्दर है कि मन मे तो बडी अच्छी लगती है पर कहते नही बनती। यथा : इनकै प्रीति परसपर पावनि। कहि न जाइ मन भाव सुहावनि। सुनहु नाथ कह मुदित विदेहू। ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू।

शोभा कैसी अद्भुत है कि पशु पक्षी देखकर मोहित हो जाते हैं। अपनी जाति की ही शोभा पर जीव रीझते है। खग की शोभा खग ही समझते हैं। मृग की शोभा मृग ही समझते हैं। ये मनुष्य की शोभा नही समझ सकते। पर यहाँ महाशोभा की ऐसी अतिशयता है कि वे भी मगन हो जाते हैं। कवि कहते है कि इसमे खग मृग की कोई बात नही है। राम बटोही ही मन के चोर हैं।

दो. जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय, सिय समेत दोउ भाइ।
भव मगु अगमु अनदु तेइ, बिनु श्रमु रहे सिराइ॥१२३॥

अर्थ : जिसने जिसने सीता सहित दोनो भाई प्रिय पथिको को देखा उनको ससार के अगम मार्ग मे सुख हुआ और वह बिना परिश्रम के ही कट गया। समाप्त हो गया।

व्याख्या . अब प्रिय पथिको के दर्शन का माहात्म्य सुनिये। ससार का रास्ता अगम है। दु खमय है। पता नही कहाँ जा रहा है। पर जिसने इन तीनो मूर्तियो को रास्ता चलते देखा उसे भवमग आनन्दमय हो गया और बिना परिश्रम ही उसका अन्त मिल गया। अर्थात् वे अनायास ही भवसागर के पार हो गये।

[1]अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ। बसहुँ लखन सिय राम बटाऊ॥
रामधाम पथ पाइहि सोई। जो पथु पाव कबहुँ मुनि कोई॥१॥

अर्थ · अब भी जिसके हृदय मे कभी सपने मे भी लक्ष्मण सीता और राम

१. यहाँ भाविक अलङ्कार है।

तीनो पथिक बसते हैं। वह राम धाम के मार्ग को पायेगा। जिसको कोई मुनि कभी कभी पाते हैं।

व्याख्या ऊपर कह आये हैं कि जिन्होने रास्ते जाते हुए तीनो मूर्तियो को देखा उनका कैसा कल्याण हुआ। अब उक्त घटना से आजकल के लोगो का कैसे कल्याण होगा। सो बतलाते हैं। जैसा मनुष्य दिन को सोचता है वैसा ही रात को स्वप्न देखता है। अत स्वप्न मे देखना तभी सम्भव है जब जाग्रत मे मनोयोग पूर्वक ध्यान करे। इस भाँति यदि सपने मे भी पथिक रूप से राम लक्ष्मण सीता मन मे आजयँ तो उसे रामधाम का पथ मिल जाता है। रामधाम का पथ मिलना अतीव दुर्लभ है। किसी मुनि को किसी समय मिल जाता है।

तब रघुवीर श्रमित सिय जानी। देखि निकट बटु सीतल पानी ॥
तहँ बसि कद मूल फल खाई। प्रात नहाइ चले रघुराई ॥२॥

अर्थ तब रामजी सीताजी को थकी हुई जानकर और पास ही बरगद का पेड और ठण्डा पानी देखकर वहाँ बसे। कन्द मूल फल खाया और सवेरा होते ही स्नान करके चल पडे।

व्याख्या दोपहर को भी सीताजी को थकी देखकर बरगद के पेड तले ठहरे थे। यथा जानी श्रमित सीय मन माँही। घरिक बिलव कीन्ह बट छाँही। अब फिर सीताजी थक गयी तो फिर बरगद के तले ही ठहरे। वहाँ शीतल जलाशय भी था। रात्रि उसी पेड के तले बितायी। कन्द मूल फल भोजन किया। इससे यह भी पता चलता है कि केवल एक बार भोजन का नियम ल रक्खा है।

१५ वाल्मीकि मिलन प्रसङ्ग

देखत बन सर सैल सुहाये। बाल्मीकि आश्रम प्रभु आये ॥
रामु दीख मुनि बास सुहावन। सुन्दर गिरि काननु जलु पावन ॥३॥

अर्थ . सुन्दर वन तालाब पर्वत को देखते हुए प्रभु बाल्मीकिजी के आश्रम मे आये। रामजी ने मुनि के सुहावने निवास स्थान को देखा कि सुन्दर वन है। पर्वत भी सुन्दर है और पवित्र जल है।

व्याख्या ग्रामवासियो ने विचार करके सुगम रास्ता बतलाया था। सो उसकी सुगमता कहते हैं कि सुन्दर वन जलाशय और पर्वत देखते देखते प्रभु बाल्मीकिजी के आश्रम पर पहुँच गये। रामजी ने मुनिजी के सुन्दर आश्रम को देखा। आदि कवि हैं। रम्य स्थान पर अपना आश्रम बनाया था। जहाँ सुन्दर पर्वत हैं, सुन्दर वन हैं और पवित्र जल है।

सरनि सरोज बिटप बन फूले। गुजत मजु मधुप रस भूले ॥
खग मृग बिपुल कोलाहल करही। बिरहित बैर मुदित मन चरही ॥४॥

अर्थ तालाबो मे कमल और वनो मे वृक्ष फल रहे थे और सुन्दर भौरे रस मे मस्त हुए गुञ्जार कर रहे थे। बहुत से पशु पक्षी कोलाहल कर रहे थे और वैर छोडे हुए आनन्द से विचर रहे थे।

व्याख्या आदि कवि के निवास योग्य रमणीय स्थल था। जलाशयो की शोभा कमलो के फूलने से हो रही थी और वन की शोभा वृक्षो के फूलने से हो रही थी और वे फूल ऐसे सरस थे कि चारो ओर वन मे भौरे गुञ्जार कर रहे थे। चिडियाँ चहचहा रही थी। वन्य पशु भी अनेक प्रकार के शब्द कर रहे थे। किसी मे स्वाभाविक वैर का नाम नही। सब प्रसन्न मन से विचर रहे थे।

सरनि सरोज बिटप बन फूले से गन्ध कहा। गुजत मजु मधुप रस भूले से रस कहा। खग मृग विपुल कोलाहल करही से शब्द कहा। सुन्दर गिरि कानन जल पावन से रूप कहा। इस भाँति उस वन को सर्वेन्द्रिय तर्पण बतलाया। मुनिजी मे ऐसी अहिसा की प्रतिष्ठा थी कि उनके सन्निधान से पशुपक्षी स्वाभाविक वैर छोडकर उस वन मे निर्भय आनन्द से विचर रहे थे।

दो सुचि सुदर आश्रमु निरखि, हरखे राजिव नेन।
सुनि रघुवर आगमनु मुनि, आगे आयेउ लेन ॥१२४॥

अर्थ राजीव लोचन राम पवित्र और सुन्दर आश्रम देखकर प्रसन्न हुए और मुनिजी रामजी के आगमन का समाचार सुनकर उनके लेने के लिए आगे आये।

व्याख्या : जैसा कवि के लिए आश्रम चाहिए वैसा आश्रम है। पवित्र भी है। सुन्दर भी है। उसे देखकर राजीवलोचन रामजी भी प्रसन्न हो गये। चितइ कृपा करि राजिव नयना। रामजी के रास्ते की कथा सम्पूर्ण वन मे फैल गयी थी। शिष्यो ने समाचार दिया। पहाड पर आश्रम है। अत उन लोगो ने दूर से ही सरकार को आते देखा। समाचार सुनकर मुनिजी ने आगे से आकर स्वागत किया।

मुनि कहुँ राम दडवत कीन्हा। आसिरबादु विप्रबर दीन्हा ॥
देखि राम छबि नयन जुडाने। करि सनमानु आश्रमहि आने ॥१॥

अर्थ मुनिजी का रामजी ने दण्डवत् किया। विप्रवर ने आशीर्वाद दिया। रामजी की छवि देखकर आँखे शीतल हो गयी। सम्मान करके आश्रम मे ले आये।

व्याख्या वाल्मीकिजी वडे तपस्वी और मुनियो मे श्रेष्ठ है। अत आते हुए देखकर रामजी ने दण्डवत् प्रणाम किया। जिस भाव से रामजी ने दण्डवत् किया। उसी भाव के अनुकूल ब्राह्मणो मे श्रेष्ठ वाल्मीकिजी ने आशीर्वाद दिया।

मुनिजी की आँखें दर्शन की प्यासी थी। अत सन्तप्त हो रही थी। जिसके नाम को इतने दिन से जप रहे थे, जिसके नाम के प्रताप स शुद्ध होकर ऋषिराज हुए आज वही नामी मिलने क लिए आश्रम मे पधार रहे है। अत आँखें उनकी छवि देखकर शीतल हुई। स्वागत के लिए बहुत आगे चल आये थे। अत बडे सम्मान के साथ आश्रम मे लिवा ले गये।

य पाये। कद मूल फल मधुर मँगाये ॥
ऽ खाये। तब मुनि आसन दिये सुहाये ॥२॥

गप्रिय अतिथि पाया। मीठे मीठे कद मूल और फल
तथा रामजी ने फल खाया। तब मुनिजी ने सुन्दर

म मुनिजी ने यह किया कि भोजन की व्यवस्था पहिले
ह सरकार चले है। रास्ता चलकर आये है। भूख
ऽ मीठे कन्द मूल फल मँगाये। मुनिजी महाराज जनक
उपासक हैं। रामजी इन्हे प्राण से प्यारे हैं। सो इस
। अत तुरन्त भोजन की व्यवस्था की सीताजी लक्ष्मणजी
चुके तब मुनिजी ने सुन्दर आसन दिये। भाव यह कि
र वे सोहाये न थे। भोजन के समय पीढा का ही विधान
र्थात् कोमल आसन दिये।

हु भारी। मगल मूरति नयन निहारी ॥
रघुराई। बोले बचन श्रवन सुखदाई ॥३॥

ो आँखो से देखकर वाल्मीकिजी को बडा आनन्द हुआ
ानो को सुख देनेवाले वचन बोले।

ङ्गल विदु। ब्रह्म ही मङ्गलमूर्ति है। वह नयन का विषय
आश्रम मे पधारा है। अत उन्हे आँखो से देखकर
न्द हुआ। यथा नयन विषय मो कहुँ भयेउ सो समस्त
जीव कहँ भये ईस अनुकूल।

ना सा भाव देखकर सरकार करकमल जोडकर श्रवण
ऽया कि वाल्मीकिजी ने भरद्वाज की भाँति कुशल नही
ान गये। कष्टकर बात की चर्चा चलाना नही चाहते।
लेकर निवास करना ठहरा। अत मै स्वय सब कथा
ः स्थल पूछूँ। अत श्रवण सुखद वचन बोले।

मुनिनाथा। बिस्व बदरि जिमि तुम्हरे हाथा ॥
था बखानी। जेहि जेहि भाँति दीन्ह बनु रानी ॥४॥

। आप त्रिकालदर्शी है। ससार आपके हाथ मे बेर के
कहकर सरकार ने जिस जिस भाँति रानी ने वन दिया
।

ने कहा कि आप मुनियो के नाथ है। परम ज्ञानी है तथा
कुछ छिपा नही है। यह ससार आपके करगत बेर के

फल के समान है। अर्थात् समार मे जो कुछ हो रहा है वह सब आपको प्रत्यक्ष है। बदरी फल कहने का भाव यह कि आप ससार को रूपथ्य जानते हैं। यथा • धात्रीफल सदा पथ्यमपथ्य बदरीफलम्। आप ममझ सकते हैं कि राज्य महानन्धन है। इसके छूटने से मुझे हर्ष है।

ऐसा कहकर सरकार ने वाल्मीकिजी मे सब कथा कही। जिम भाँति रानी ने वन दिया। भाव यह कि महाराज ने वन नही दिया। रानी ने दिया। सब कथा कहने का भाव यह कि जिससे सम्मति लेना हो उसे अपनी परिस्थिति मे परिचित कर देना परम आवश्यक है। वाल्मीकि से निवासस्थल के लिए सम्मति लेनी थी। इसलिए सब कथा कह सुनायी। मुनिजी पूछते ही कि तुम राजकुमार होकर वन मे क्यो वसना चाहते हो। अत उनसे सब कहना प्राप्त था।

दो तात वचन पुनि मातु हित, भाइ भरत अस राउ।
मो कहुँ दरस तुम्हार प्रभु, सबु मम पुन्य प्रभाउ ॥१२५॥

अर्थ पिता का वचन तिस पर माता का हित और भरत जैसे भाई का राजा होना और हे प्रभु! मुझे आपका दर्शन मिलना यह सब मेरे पुण्य का प्रभाव है।

व्याख्या • जो बात सरकार ने महारानी कैकेयी से कहा था वही यहाँ भी कहते हैं। यथा मुनिगन मिलन विशेष बन सबहि भाँति हित मोर। तेहि महँ पितु आयसु बहुरि समति जननी तोर। भरत प्रानप्रिय पावहि राजू। बिधि सब बिधि मोहि समुख आजू। भाव यह कि पहिले भी विधि सम्मुख थे। पर आज तो सब विधि से सम्मुख हो गये हैं कि एक कार्य करने म चार चार कार्य सध रहे हैं। वन मे आने से पिता का भला माता का भला भाई का भला और स्वय अपना भला।

देखि पाय मुनिराय तुम्हारे। भए सुकृत सब सुफल हमारे ॥
अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदवेगु न पावै कोई ॥१॥

अर्थ हे मुनिराज! आपके चरणो को देखकर मेरे सब पुण्य सुफल हो गय। अब जहाँ आपकी आज्ञा हा और जहाँ रहने से कोई मुनि उद्वेग न पावे।

व्याख्या सुकृत का फल सुयश है। यथा पावन जस कि पुन्य बिनु होई। सो सरकार के सुयश का प्रचार वाल्मीकिजी द्वारा ही होनेवाला है। अत कहते हैं कि मेरे सब सुकृत तो आपके दर्शन से सुफल हुए। निश्चित आसन्न भविष्य को भूतकाल म वर्णन किया जाता है। यथा रगभूमि आये दोउ भाई।

भरद्वाजजी वाल्मीकिजी के शिष्य हैं। सो शिष्य से रास्ता पूछा था। अब गुरुजी से निवास स्थान पूछते हैं कि हम क्षत्रिय हैं। आखेट आदि करेंगे। इसमे मुनिलोगो के उद्वेग का भय है। अत मुझे ऐसा स्थान चाहिए जहाँ रहने से किसी मुनि को उद्वेग न हो। क्योंकि उद्वेग उत्पन्न करना भी हिंसा है। यथा उद्वेगजनन हिंसा सन्तापकरण तथा।

मुनि तापस जिन्ह तें दुखु लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं॥
मंगल मूल बिप्र परितोषू। दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू॥२॥

अर्थ : मुनि तपस्वी जिनसे दुःख पाते हैं वे राजा विना आग के जल जाते हैं। ब्राह्मण का परितोष सब मङ्गलों का मूल है और ब्राह्मण का क्रोध करोड़ों कुल को भस्म करता है।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि मैं अपने कल्याण के लिए पूछता हूँ। क्योंकि सब मङ्गलों का मूल ब्राह्मणों का परितोष है। क्योंकि इससे भगवान् प्रसन्न होते हैं। यथा : हरितोषणव्रत द्विज सेवकाई और ब्राह्मण के रोष से कोटि कुल भस्म हो जाता है। यथा : इंद्र कुलिस मम सूल बिसाला। कालदंड हरि चक्र कराला। जो इनकर मारा नहिं मरई। बिप्र रोष पावक सो जरई। इसलिए कहते हैं कि वह राजा बिना आग के जल जाता है।

अस जिअ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ॥
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बासु करौं कछु काल कृपाला॥३॥

अर्थ : ऐसा मन मे समझकर वह स्थान बतलाइये जहाँ सीता और लक्ष्मण के साथ मैं जाऊँ। वहाँ सुन्दर पत्ते और तृणों की कुटी बनाकर हे कृपालु ! मैं कुछ दिनो तक वहाँ निवास करूँ।

व्याख्या : स्थान पूछने के साथ ही साथ छुट्टी भी माँगते हैं कि हमलोग वहीं जाकर रहें। गृहस्थी के साथ रहना है। अतः वहाँ जलाशय आदि सभी बातों का सुपास चाहिए।

रास्ते में तो वृक्ष तले भी रह जाते थे। परन्तु वहाँ तो कुछ काल तक रहना होगा। अतः पर्णतृणशाला बनानी पडेगी। वनवास चौदह वर्ष के लिए है। अतः साल छः महीने तो कम से कम रहना है।

सहज सरल सुनि रघुबर बानी। साधु साधु बोले मुनि ग्यानी॥
कस न[1] कहहु अस रघुकुल केतू। तुम्ह पालक संतत श्रुति सेतू॥४॥

अर्थ : रामजी की स्वभाव से ही सरल वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि ने साधु साधु : वाह वाह कहा। हे रघुकुल के ध्वज ! आप ऐसा क्यों न कहे। आप सदा वेद के पुल के रक्षक हो।

व्याख्या : मुनिजी कहते हैं कि वेदमार्ग का पालन तो रघुवंशियों का सहज स्वभाव है। यथा : रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथु पगु धरहिं न काऊ। और आप तो रघुवंश के ध्वज रूप हो। आप ऐसी बात क्यों न कहें। आप श्रुति सेतु का पालन सदा सर्वदा करते हैं। ब्राह्मणत्व की ही रक्षा से वैदिक धर्म रक्षित

१ यहाँ सम : द्वितीय अलङ्कार है।

होता है। अतः ब्राह्मणत्व का रक्षा विधायक वाक्य जिस सरलता से आप ने कहा है वह आपके लिए स्वाभाविक है। सिवा आपके ऐसा वाक्य कौन कहे।

छं. श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह, जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जग पालति हरति, रुख पाइ कृपानिधान की॥
जो सहस सीसु अहीसु महिधरु, लखनु सचराचर धनी।
सुर काज धरि नरराज तनु, चले दलन खल निसिचर अनी॥

अर्थ : हे रामजी। आप वेद के पुल के रक्षा करनेवाले जगदीश हैं। जानकी माया हैं। जो कृपानिधान का रुख पाकर ससार को रचना पालन तथा सहार किया करती है। जो सहस्र सिरवाले सर्पराज पृथ्वी के धारण करनेवाले हैं वे ही चराचर के स्वामी लक्ष्मण जी हैं। देवताओं के कार्य के लिए नृप शरीर धारण करके खल निशाचरों की सेना के सहार के लिए चले हैं।

व्याख्या : यही आधिदैविक रामायण की कुञ्जी है। वाल्मीकिजी कहते हैं कि आप श्रुतिसेतु पालक हो। सो आवश्यकता पडते ही आगये। सन्तत पालक कहा था उसी को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि आप जगदीश हैं और यह जानकी आपकी माया हैं। यथा : आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया। सो आपलोग वेष बदले हुए ऐसा सुन्दर नाट्य कर रहे हैं। ये लक्ष्मणजी सहस्रशीर्षापुरुषः जाग्रत के विभु हैं। जाग्रत के आधार हैं। अत चराचर के स्वामी हैं। ये भी मनुष्य बने हुए आपके साथ हैं। इस समय देवलोक और मनुष्यलोक से जो व्यापार चलता रहा . देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः। परस्पर भावयन्त· श्रेयः परमवाप्स्यथ। ब्रह्मदेव ने यज्ञ के साथ प्रजा की सृष्टि की और कहा कि इसी से तुम लोग देवताओ को बढाओ और वे पूजित होकर तुम्हे बढावे। इसी भाँति परस्पर भावना करते हुए परम कल्याण को प्राप्त हो। सो बन्द सा हो गया है। सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई। द्विज भोजन मख होम सराधा। सबकै जाइ करहु तुम बाधा। इत्यादि। सो इस समय सुरकाज नरराज तन से ही हो सकता है। अतः आप लोग नरराज तन धारण करके खल निशाचरो का नाश करने चले हैं : गोस्वामीजी इस काण्ड के छन्दो मे से केवल इसी मे अपना नाम नही देते।

सो. राम सरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धि पर।
अबिगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह॥१२६[1]॥

अर्थ : हे रामजी। आपका स्वरूप वाणी का अविषय और बुद्धि के बाहर की

१. गोस्वामीजी का यह भी नियम है कि कोई क्रम नहीं निबहने देते। अयोध्याकाण्ड भर मे पचीस के सोरठा के साथ छन्द देते हैं। पर यहाँ छब्बीसवें सोरठा के साथ दिया।

धात है। अव्यक्त है। अकथ है। अपार है। इसे नेति नेति कहकर वेद वर्णन करते है।

व्याख्या : लीला विग्रह कहकर परम स्वरूप कहते है। न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितदधि।

वेद कहता है कि न तो वहाँ दृष्टि जाती है न वाणी जाती है न मन जाता है। उसे न सामान्य रूप से जानते हैं न विशेपरूप से जानते हैं। कैसे कहे। वह जानने और न जानने दोनो से परे ही अतद्व्यावृत्ति से ही उसके विपय मे कुछ कहा जा सकता है। अत यह भी नही यह भी नही। स्थूल भी नही सूक्ष्म भी नही। इस प्रकार से वेद तुम्हारा निरूपण करता है।

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। विधि हरि संभु नचावनिहारे ॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा ॥१॥

अर्थ : ससार तमाशा है और तुम देखनेवाले हो और ब्रह्मा विष्णु और शिव नचानेवाले है। वे भी तुम्हारा मर्म नही जानते और तुम्हे जाननेवाला कौन है।

व्याख्या : ससार दृश्य होने से जड है। तुम द्रष्टा होने से चिद्रूप हो। विधि हरि शम्भु संसार की सृष्टि पालन और संहार करनेवाले तुम से ही बल पाकर अपने अपने कार्य मे समर्थ हैं। यथा : जाके बल बिरचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा। वे भी तुम्हारे मर्म को नही जानते। यथा : पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मर्म न जानइ कोई। मया ततमिद सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना। मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाह तेष्ववस्थित । न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्। भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः। भगवद्गीता मे भगवान् कहते है कि मुझसे यह जगत् परिपूर्ण है। सब भूत मेरे मे स्थित है। मै उनमे स्थित नही हूँ और वे सब भूत मेरे मे स्थित नही हैं। मेरे ऐश्वर योग को देख। भूतो को उत्पन्न करनेवाली मेरी आत्मा भूतो मे स्थित नही है। मर्म का जानना ही वस्तुतः जानना है। अतः कहना होगा कि कोई तुम्हे नही जानता। यथा : न मे विदु सुरगणा। प्रभव न महर्षयः। गीतायाम्।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ॥
तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनदन। जानहिं भगत भगत उर चदन ॥२॥

अर्थ : जिसे तुम जना देते हो वही तुम्हे जानता है और तुमको जानते हो तुम्ही हो जाता है। हे रघुनन्दन! तुम्हारी कृपा से हे भक्त उर चन्दन! तुम्हे भक्त जानते हैं।

व्याख्या : भगवद्गीता मे भगवान् कहते हैं। भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वत.। भक्ति से मुझे जानता है कि तत्त्वत. मै क्या हूँ और कितना हूँ और. ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति। ब्रह्म को जाननेवाला ब्रह्म ही हो जाता है। यमेप वृणुते

तेन लभ्य । जिसे वह वरण करता है। उसी से वह प्राप्य है। अर्थात् तुम्हे जानना कृपा साध्य है। क्रिया साध्य नही है। भजन करनेवाले पर भगवान् कृपा करते हैं। निर्गलितार्थ यह है कि भजन करने से भगवान् प्रसन्न होते हैं और भक्त को अपना ज्ञान करा देते हैं और ज्ञान हो जाने पर भक्त भगवन्त में भेद नही रह जाता। यथा भक्ति भक्त भगवत गुरु चतुर नाम वपु एक।

चिदानदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी ॥
नर तनु धरेहु सत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा ॥३॥

अर्थ तुम्हारी देह चित् आनन्दमय है। विकार से रहित है। इसे अधिकारी लोग जानते हैं। सन्त और देवताओ के लिए मनुष्य शरीर धारण कर रक्खा है। सासारिक राजाओ की भाँति कहते हो और करते हो।

व्याख्या सबके देह मे और तुम्हारे देह मे बडा अन्तर है। तुम मे देह देही भेद नही है। चिदान्दमय लीलाविग्रह है। यथा आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादि। मायागुणाननुगतो हि तथा विभाति। माया के गुणा का अनुसरण करता हुआ वैसा ही मालूम होता है। वस्तुतस्तु अविकारी है। इसीलिए गोता म कहा है कि जन्म कर्म च मे दिव्यम्। मेरा जन्म कर्म दिव्य है।

कर्मवश होकर तुमने देह धारण नही किया है। भक्त भूमि भूसुर सुरभि सुरहित लागि कृपाल। करत चरित धरि मनुज तन सुनत मिटहिं जग जाल।

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड मोहहिं बुध होहिं सुखारे ॥
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साचा। जस काछिअ तस चाहिअ नाचा ॥४॥

अर्थ हे रामजी! तुम्हारे चरित्र को देख सुनकर मूर्खों को मोह होता है और पडित सुखी होते हैं। तुम जो कहते हो और करते हो सो सब सत्य है। क्योकि जैसा काछ काछे वैसा ही नाच नाचना चाहिए।

व्याख्या अवजानन्ति मा मूढा मानुषीतनुमाश्रितम्। पर भावमजानन्तो मम लोकमहेश्वरम्। भगद्गीता मे भगवान् ने कहा है कि मूढ लोग मुझ मनुष्य शरीर धारण करनेवाले की अवज्ञा करते हैं। मेरे परम भाव को नही जानते कि मै लोक का महेश्वर हूँ। मनुष्य की भाँति चरित देखकर और सुनकर मूढो को विपरीत ज्ञान होता है कि ये भी मनुष्य हैं। प्रभु के परम भाव को तो पण्डित जानते हैं कि लोक महेश्वर होकर कैसी मनुष्य लीला करते हैं। अत वे सुखी होत है। यथा उमा राम गुन गूढ पडति मुनि पावहिं बिरति। पावहिं मोह बिमूढ जे हरि बिमुख न धर्म रति।

यथा अनेक बेष धरि नृत्य करै नट कोइ। सोइ सोइ भाव देखावै आपुन होइ न सोइ। नाटय मे जो कुछ कहा या किया जाता है वह वस्तु स्थित न होने पर भी रगमञ्च के लिए सच्चा है। क्योकि जैसा वेष धारण करे वैसा ही अभिनय करने का नियम है।

दो. पूछेहु मोहि कि रहौं कहँ, मै पूछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुम्हहिं देखावउँ ठाँउ ॥१२७॥

अर्थ : मुझसे पूछते हो कि कहाँ रहूँ और मैं पूछते हुए सङ्कोच करता हूँ कि जहाँ तुम न हो वह स्थान मुझे बतला दो तो वही स्थान मै तुम्हें दिखा दूँ।

व्याख्या : अब जहँ राउर आयसु होई का उत्तर देते है कि तुमने तो सङ्कोच नही किया। वेषानुसार ठीक ठीक अभिनय कर दिया। पर मुझे सङ्कोच लगता है। मैं भी वैसा ही तुम्हें कैसे मान लूँ मैं तो जानता हूँ कि तुम सर्वव्यापक हो। अतः तुम्हारे प्रश्न का ठीक उत्तर तो यही है कि पहले यह बतलाओ कि तुम कहाँ नही हो। तब मैं कह दूँ कि वही रहो।

यह स्तुति पुष्य नक्षत्र है। तीन तारे यहाँ राम लक्ष्मण जानकीजी हैं। इन्ही की चमक दिखायी पड़ती है। यहाँ ब्रह्म : राम लक्ष्य का वेध हुआ। अतः शर की आकृति माना। इसकी फलश्रुति है : समन पाप सताप सोक के। सो : जानत तुमहि तुमहि होइ जाई से सन्ताप शोक का शमन कहा।

सुनि मुनि बचन प्रेम रस साने। सकुचि राम मन महुँ मुसुकाने ॥
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमिअ रस बोरी ॥१॥

अर्थ : मुनिजी के वचन सुनकर रामजी सकुचे और मन ही मन मुसकुराये। वाल्मीकिजी फिर हँसकर मीठी वाणी अमृत रस से भिगोयी हुई बोले।

व्याख्या : सरकार मे शील की पराकाष्ठा है। जब मुनि लोग सहज स्वरूप कथा का वर्णन करने लगते हैं तो सरकार को सङ्कोच होता है। मुनिजी की इस उक्ति पर : जहँ न होउ तहँ देउ कहि तुमहि देखावउँ ठाँउ : सरकार मुसकुराये। मुनिजी के गौरव से प्रकट नही मुसकराये। अतः कहते हैं : मन मह मुसुकाने।

सरकार ने माधुर्य में प्रश्न किया। वाल्मीकिजी ऐश्वर्य में उत्तर देते हैं। उसी बात को और भी बढ़ाते हुए बहुत कुछ कहेंगे। इसलिए हँस रहे हैं। भक्ति से पूर्ण वाणी है। इसलिए मधुर और अमिअ रस बोरी कहा। मिठास तो भक्ति मे ही है।

सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता ॥
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥२॥

अर्थ : रामजी सुनो! अब मैं घर बतलाता हूँ। जहाँ तुम सीता और लक्ष्मण के साथ बसो। जिनके कान समुद्र के समान हैं और तुम्हारी कथाएँ सुन्दर नदियाँ हैं।

व्याख्या : आपने कहा : अस जिय जानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्र सहित जहँ जाऊँ। तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बास करौं कछु काल कृपाला। सो पर्णशाला में क्यों रहोगे। मैं तुम्हें घर बतलाता हूँ और ऐसा विस्तृत घर जहाँ तीन मूर्ति रह सको। यहाँ भगवान् वाल्मीकि ने घर के व्याज से पूरी रामायण कही।

रामायण का अर्थ ही यह है : रामस्य अयनम् रामायणम् । रामजी का घर ही रामायण है । ग्रन्थ का नाम रामायण इसलिए है कि इसमे रामजी ही प्रतिपाद्य हैं । यथा जेहि मह आदि मध्य अवसाना । प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ।

वस्तुतस्तु भगवान् की कथा और भागवत की कथा मे भेद नही है । भागवत की कथा मे सिवा भगवत् कथा के और कुछ होता ही नही । इसी भाँति भगवान् की कथा मे भक्त की कथा रहती है । भगवान् वाल्मीकि ने यहाँ भक्त की कथा कहते हुए भगवान् की कथा अर्थात् पूरी रामायण कही है । अब बालकाण्ड के पूर्वार्ध के भक्तो के लिए कहते हैं । इसमे उमा और भरद्वाज मुख्य श्रोता हैं । इनकी कथा पूर्वार्ध मे है । ऐसे ही भक्तो को लक्ष्य करके कहा गया है कि जिनके कान समुद्र के समान हैं । समुद्र मे स्वय अपार जल भरा है । फिर भी १८०० नदियाँ इसमे अनवरत जल उडेला करती हैं और समुद्र सब को ग्रहण करता है । इसी भाँति श्रोता का हृदय राम कथा से पूर्ण है । फिर भी उसे कथा श्रवण से तृप्ति नही ।

भरहि निरतर होहि न पूरे । तिन्हके हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे ॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे । रहहि दरस जलधर अभिलाखे ॥३॥

अर्थ · दिन रात उन्हे भरती है किन्तु पूरे नही होते । उनके हृदय मे तुम्हारे लिए सुन्दर घर है । जिन्होने अपनी आँखो को पपीहा बनाकर रक्खा है और मेघरूपी आपके दर्शन के लिए लालायित रहते हैं ।

व्याख्या इतने जल के ग्रहण से भी समुद्र भर नही उठता । इसी भाँति जो श्रोता कथा श्रवण से ऊबता नही सुनता ही जाता है उसके हृदय मे तुम्हारे लिए सुन्दर घर है । उमा ने कहा नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर । श्रवन पुटन्ह मन पान करि नहि अघात मतिधीर । इसी भाँति भरद्वाज भी नही अघाते । यथा सभु चरित सुनि सरस सुहावा । भरद्वाज मुनि अति सुख पावा । बहु लालसा कथा पर बाढी । नयनन्हि नीर रोमावलि ठाढी ।

बालकाण्ड के उत्तरार्ध के भक्त रूप के प्रेमी हैं । अत उन्हे चातक कहा । चातक का नेम अटल है । वह मेघ से ही माँगता है । मेघ का दर्शन चाहता है । बूँद पान करता है । ससार मे समुद्र भरा है । नदी तालाब जल से भरे हैं । पर चातक के लिए कुछ नही । इस प्रकार के भक्त मनु सतरूपा हैं । यथा उर अभिलाष निरतर होई । देखिय नयन परम प्रभु सोई । जो भुसुडि मनमानस हसा । सगुन अगुन जेहि निगम प्रससा । इत्यादि ।

निदरहि सरित सिधु सर भारी । रूप बिंदु जल होहि सुखारी ॥
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक । बसहु बधु सिय सह रघुनायक ॥४॥

अर्थ · नदी समुद्र और तालाब के जल का निरादर करते हैं । रूप बिन्दु जल से ही सुखी होते हैं । उनका हृदय सुखदायक घर है । उसमे भाई और सीताजी के सहित हे रघुनायक ! तुम रहो ।

व्याख्या : ऊपर मनु सतरूपा का चातक की भाँति राम श्यामघन के दर्शन की लालसा कहा। यहाँ 'निदरहिं सरित सिन्धु सर बारी का मिलान कहते हैं। पानी का खजाना तो सरित सिन्धु और सर ही हैं। इसी भाँति सबके ध्येय ज्ञेय और आराध्य विधि हरिहर है। सो : विधि हरिहर तप देखि अपारा। मनु समीप आये बहु बारा। माँगहु बर बहु भाँति लोभाये। परम धीर नहिं चलहिं चलाये। अन्त मे प्रभु के रूप बिन्दु को पाकर ही कृतकृत्य हुए। ये ही दशरथ कौसल्या हुए। जनकजी की भी वही गति है। कहते हैं : इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा। जानकीजी भी रूप बिन्दु से ही आनन्दित हैं। यथा : जनु चातकी पाइ जल स्वाती। जनक दूत : देव देखि तब बालक दोऊ। अब न आँखि तर आवत कोऊ। माता लोग : जे दिन गये तुमहिं बिनु देखे। ते बिरचि नहिं पारहिं लेखे। चक्रवर्तीजी यथा : सुत हिअ लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेटे। इस भाँति उत्तरार्ध ऐसे भक्तो से ही भरा पड़ा है।

ऐसे भक्तो का हृदय आपके लिए सुखदायक घर है। यहाँ आवभगत बराबर होती रहेगी। यहाँ भाई और सीताजी के साथ रहो। राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर। ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरु तुलसी तोर।

दो. जस तुम्हार मानस बिमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुकुताहल गुन गन चुनइ, राम बसहु हिय तासु ॥१२८॥

अर्थ : तुम्हारे यश रूपी निर्मल मानससरोवर मे जिसकी जीभ हंसिनी रूपा है तुम्हारे गुणगण रूपी मुक्ताफल को चुना करती है। हे रामजी! उसके हृदय मे बसो।

व्याख्या : अयोध्याकाण्ड के पूर्वार्ध के भक्त हैं अवध निवासी। ये दिन रात रामजी का गुणगान करते हैं। महाराज दशरथ को सब समाचार दूतो द्वारा लगा करता है। यथा : रामरूप गुन सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ। सबकें उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु। आपु अछत युबराज पदु रामहि देउ नरेसु। को रघुबीर सरिस ससारा। सील सनेह निबाह निहारा। इन्ही लोगो की जिह्वा हँसी है जो रामयश मानस में विचरती हुई गुणगण रूपी मुक्ताफल चुना करती है। यथा : जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परसपर इहै सिखावहिं। भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि इत्यादि। वाल्मीकिजी कहते हैं कि ये आपका ही गुणगान करते हैं। अत इनके हृदय मे बसने मे आपकी ही प्रधानता है।

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा॥
तुम्हहि निवेदित भोजनु करहीं। प्रभु प्रसाद पटु भूषन धरहीं॥१॥

अर्थ : जिसकी नाक प्रभु के सुन्दर पवित्र प्रसाद के सुगन्ध को आदर के साथ लेती है और जो तुमको अर्पण करके भोजन करते हैं और प्रभु का प्रसाद वस्त्र और भूषण धारण करते हैं।

अर्थ : जिनके हृदय मे १ न काम है २ न क्रोध है ३ न भेद है ४ न मान है ५ न मोह है ६ न लोभ है ७ न क्षोभ है ८ न राग है ९ न द्वेष है १०. न कपट है ११ न दम्भ है १२ न माया है हे रघुराज ! तुम उनके हृदय मे बसो।

व्याख्या : काम क्रोधादि सभी मानस रोग हैं। जिनका वर्णन उत्तरकाण्ड के अन्त मे किया गया है। ये सदा जीव को पीडा पहुँचाया करते है। अत. उसे समाधि की प्राप्ति नही होती। जब मन इनसे रहित हो तब नैर्मल्य को प्राप्त होकर स्वस्थ होता है। उसी के लिए कहा गया है निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।

इस प्रकार के भक्त आरण्यकाण्ड के उत्तरार्धं मे नारदजी है।

१ कामाभाव	यथा : कामकला कछु मुनिहि न व्यापी।
२ क्रोधाभाव	यथा भयउ न नारद मन कछु रोषा।
३४ मद मानाभाव	यथा : मोर सापकरि अगीकारा।
	सहत राम नाना दुख भारा।
	ऐसे प्रभुहि बिलोकउँ जाई।
५ मोह मायाभाव	यथा : साँचहुँ इनके मोह न माया।
६ लोभाभाव	यथा रामसकल नामन ते अधिका।
	होहु नाथ अघ खग गन बधिका।
७ क्षोभाभाव	यथा मुनिगति देखि सुरेस डेराना।
८९ रागद्वेषाभाव	यथा : उदासीन धन धाम न जाया।
१० कपटाभाव	यथा तव बिबाह मै चाहौ कीन्हा।
	प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा।
११ दम्भाभाव	यथा : निरखि सैल सरि विपिन बिभागा।
	भयउ रमापति पद अनुरागा।
१२ मायाराहित्य	यथा : सहज बिकल मन लागि समाधी।

सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रससा गारी॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन विचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥२॥

अर्थ जो सबको प्रिय है। सबके हित करनेवाले हैं। दुख सुख प्रशसा और गाली जिन्हे समान है। सत्य और प्रिय वचन विचार पूर्वक बोलते हैं। जो जागते और सोते तुम्हारे शरण हैं।

व्याख्या . सबके प्रिय होने का कारण सबका हितकारी होना है। हितकारी ही प्रिय होता है। दुख और सुख को समान मानना धीर का लक्षण है। यथा : सुख हरषहिं जड दुख विलखाही। दोउ सम धीर धरहिं मन माही। जिनको सरकार के चरणो मे ममता होती है वे ही प्रशसा गाली के समान मानने मे समर्थ होते हैं। यथा : स्तुति निंदा उभय सम ममता मम पदकज। विचार पूर्वक सत्य

प्रिय वचन बोलने की शास्त्राज्ञा है। यथा सत्य ब्रूयात् प्रिय ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्। प्रियञ्च नानृत ब्रूयादेपधर्मं सनातन। जीव का भगवत् शरण जाना ही सबसे बडा पुरुषार्थ है। गीता मे स्वय भगवान् ने कहा है सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज। जाग्रत मे ऐसी भावना दृढ हो गयी है कि स्वप्न मे भी शरणागत ही रहते हैं।

ऐसे भक्त किष्किन्धाकाण्ड के पूर्वार्ध मे सुग्रीवजी हैं। इनका सर्वप्रिय होना इसी से सिद्ध है कि इनको लोगो ने इनके न चाहने पर भी राजा बनाया। यथा दीन्हेउ मोहि राज बरिआई। ये सबके हितकारी थे। वालि का भी इन्होने हित ही चाहा। यथा : वालि परम हित जासु प्रसादा। मिलेहु राम तुम समन बिपादा। इन्हे दु ख सुख प्रशसा गाली भी समान ही थी। यथा . सत्रु मित्र सुख दु ख जग माँही। मायाकृत परमारथ नाँही। ये सत्य और प्रिय वचन विचार पूर्वक बोलते थे। यथा : विपयवस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पावँर पसु कपि अतिकामी। शरणागत तो ये सदा से ही थे। हनुमानजी कहते हैं . सो सुग्रीव दास तव अहई।

तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाही। राम बसहु तिन्ह के मन माही॥
जननी सम जानहि पर नारी। धनु पराव विप तें विप भारी॥३॥

अर्थ . जिन्हे तुम्हें छोडकर दूसरी गति नही है। हे रामजी! तुम उनके मन मे बसो जो परायी स्त्री को माँ के समान जानते हैं। पराये धन को विप से भी भारी विप मानते हैं।

व्याख्या . सरकार को छोडकर सुग्रीवजी को दूसरी गति नही थी। यथा सुनि सुग्रीव परम भय माना। ऐसे भक्तो के हृदय मे रामजी तुम बसो। भाव यह कि जो एकाकी तुम्हे भजता है उसके हृदय में एकाकी बसो और जिसकी भावना सस्त्रीक सानुज मे हो उसके हृदय मे सस्त्रीक सानुज बसो।

मातृवत् परदारेपु परद्रव्येपु लोष्टवत्। आत्मवत्सर्वभूतेपु य पश्यति स पश्यति। अनुवाद मे उत्कर्प और भी बढ गया। पर द्रव्य को लोष्ट · ढेला नही विप से भी अधिक विप बतलाया गया। यह पच नही सकता। प्राण हरण करेगा। पुत्र पौत्र को भी अनिष्टकर होगा।

जे [1]हरषहि पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपत बिसेखी॥
जिन्हहि राम तुम्ह प्रान पिआरे। जिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे॥४॥

अर्थ : जो दूसरे की सम्पत्ति देखकर प्रसन्न होते हैं और दूसरे की विपत्ति देखकर दु खी होते हैं। जिनको रामजी तुम प्राण के समान प्यारे हो। उनके मन तुम्हारे लिए मङ्गलमय घर हैं।

व्याख्या . पर सम्पत्ति से हर्प, पर विपत्ति से विशेप दु ख, अपने सुख दु ख मे

१ यहाँ उल्लास अलङ्कार है।

उतना हर्ष विषाद नही। यहाँ अनुवाद मूल से अधिक जोरदार उत्कर्पयुक्त हो गया। इनका हर्ष और दु ख भी अलौकिक हो गया। अपना सुख दु ख वैसा कार्य नही करता।

पुत्र कलत्र प्राण प्यारे नही। तुम जिसे प्राण प्यारे हो अथवा अन्य देव भी मान्य हैं पर प्राण प्यारे तो तुम्ही हो। अत उनका मन तुम्हारे शुभ सदन है।

ये किष्किन्धाकाण्ड के उत्तरार्ध के भक्त वानरवीर है जो सीताजी की खोज के लिए दक्षिण दक्षिण भेजे गये थे। *जननी सम जानहि पर नारी।* यथा मदिर एक रुचिर तहँ बैठि नारि तप पुज। दूरि ते ताहि सबन्हि सिर नावा। धन पराव विप ते विप भारी। भूख प्यास से मर रहे थे। पर बिना मालिक की आज्ञा के पानी तक न ग्रहण किया। यथा तेहि तब कहा करहु जलपाना। खाहु सुरस सुदर फल नाना। पर सम्पत्ति से हर्प यथा धन्य जटायू सम कोउ नाँही। पर दु ख से दु खी यथा अस कहि लवन सिधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई। राम तुम प्रानपियारे यथा राम काज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह।

दो स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मदिर तिन्ह के बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ॥१३०॥

अर्थ हे तात! जिनके तुम स्वामी सखा माता और गुरु सब कुछ तुम ही हो उसके मन मन्दिर मे सीता सहित दोनो भाई बसो।

व्याख्या जननी जनक बधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा। सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बर डारी। सब भाव से जो सरकार की ही उपासना करता है। सब नाता उन्ही से जोडे हुए हैं। अत वर्तमान सभी सम्बन्धी स्त्री और भाई सहित उसके मन मन्दिर म वास करो।

ऐसे भक्त सुन्दरकाण्ड के प्रारम्भ म हनुमानजी हैं। सरकार को ही स्वामी और पितु मातु मानते है। यथा *सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनै प्रभु पोसे।* सरकार इन्हे सखा मानते है। यथा ये सब सखा सुनहु मुनि मोरे। भये समर सागर कहँ बेरे। शिष्य होकर स्वय हनुमानजी ने सरकार से प्रश्न किया था। यथा तापर मैं रघुबीर दोहाई। जानहुँ नहि कछु भजन उपाई।

अवगुन तजि सबके गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित सकट सहहीं॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका ॥१॥

अर्थ १ जो अवगुणो को छोडकर सबके गुणो को ग्रहण करते है। २ ब्राह्मण और गायो के लिए सकट सहते हैं। ३ नीति निपुण हाने की ससार मे जिनकी थाप है। उनका सुन्दर मन तुम्हारा घर है।

व्याख्या जिनका स्वभाव हस सा है। अवगुणरूपी जल का त्याग करके गुणरूपी दुग्ध का ग्रहण करते हैं। यथा सत हस गुण गहहि पय परिहरि बारि बिकार। विप्र धेनु यज्ञ के साधक हैं। विप्र म मन्त्र और गाय मे हवि प्रतिष्ठित है।

इनकी रक्षा होनी ही चाहिए। अतः इनके लिए जो संकट सहते हैं। जो नीति में निपुण है। जिन्हे अनीति अच्छी नही लगती। ऐसे उत्तम हृदयवाले मनुष्य का हृदय तुम्हारा घर है। सरकार को नीति विरोध अच्छा नही लगता। यथा : नीति बिरोध सोहाइ न मोही। अतः मुनिजी नीति निपुण के हृदय में उन्हें बसने के लिए कहते हैं।

ऐसे भक्त सुन्दरकाण्ड के उत्तरार्ध मे विभीषणजी है। १. अवगुन तजि सबके गुन गहही। यथा : सुनहु पवन सुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महँ जीभ बिचारी २. विप्र धेनु हित यथा : बिप्र रूप धरि बचन सुनाये। सुनत बिभीपनु उठि तहँ आये इत्यादि। ३. नीति निपुन यथा : मै जानौ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती।

गुन तुम्हार समुझाइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही ॥२॥

अर्थ : १. जो गुण तो तुम्हारा और दोष अपना समझता है। २. जिसे सब भाँति से तुम्हारा भरोसा है। जिसको रामजी के भक्त प्यारे लगते है। उसके हृदय में वैदेही सहित वास करो।

व्याख्या : संसार मे उलटी बात है। जो बन जाय सो तो मैंने बनाया। बिगड़ जाय तो राम ने बिगाड़ा। यहाँ : गुन तुम्हार समुझै निज दोसा। संसार में धन जन परिजन गुण चतुराई का भरोसा रहता है। पर यहाँ तो सब भाँति राम का भरोसा है। राम का प्रिय लगना नही कहते पर भक्त प्रिय लगें। अर्थात् भक्ति पर विशेष श्रद्धा है। यथा : पुनि रघुबीरहिं भगति पियारी। अतः वैदेही सहित बसने को वाल्मीकिजी ने कहा।

इस प्रकार के भक्त लङ्काकाण्ड के पूर्वार्ध में समुद्रजी हैं। १. गुन तुम्हार समुझै निज दोषा। यथा : छमहु देव सब अवगुन मोरे। प्रभु भल कीन्हि मोहि सिख दीन्ही। २. जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा। यथा : प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई। ३. रामभक्त प्रिय। यथा : जल निधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रम हारी।

जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदनु सुखदाई ॥
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदय रहहु रघुराई ॥३॥

अर्थ : जाति, पाँति, धन, धर्म, बड़ाई प्रिय परिवार सुखदाई घर सब छोड़कर जो तुम्हारे मे लौ लगाये रहता है हे रघुराई ! तुम उसके हृदय मे रहो।

व्याख्या : जाति पांति धन धर्म बड़ाई ये पाँच स्थान प्रतिष्ठा के हैं और परिवार तथा घर दो सुख के हैं। सो सबों को छोड़कर मन की वृत्तियो को तुम्हारे मे लगावे उसके हृदय में रहो। वह अकेला है और अकेले तुम्ही मे लौ भी लगाये है। अतः अकेले आप भी रहो।

ऐसे भक्त लङ्काकाण्ड के उत्तरार्ध में वानर सैनिक हैं। यथा : जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा। हरखे देव बिलंब न कीन्हा। बनचर देह धरी छिति माँही। अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं। गिरि तरु नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मति धीरा। तथा : सुनु सुरपति कपि भालु हमारे। परे भूमि निसिचरन्ह जे मारे। मम हित लागि तजे इन्ह प्राना। सकल जियाउ सुरेस सुजाना।

सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना॥
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा॥४॥

अर्थ : जिसे स्वर्ग नरक और मोक्ष समान है। सर्वत्र ही धनुर्बाणधारी को देखता है। मनसा वाचा कर्मणा आप का दास है। उसके हृदय में डेरा लगाओ।

व्याख्या : १. जो सर्वत्र धनुर्बाणधारी सरकार को देखता है। उसके लिए स्वर्ग नरक दोनों समान है।

२ मनसा वाचा कर्मणा सेवा में रत है। जिसे दूसरे का भरोसा नहीं। ऐसे भक्त उत्तरकाण्ड के पूर्वार्ध मे सनकादिक है। ये सभी जगह सरकार को देखते हैं। अभेददर्शी हैं। यथा : रूप धरें जनु चारिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा। ३ सरकार मे रति। यथा : आसा बसन ब्यसन यह तिनही। रघुपति चरित होहिं तहँ सुनहीं। ये असङ्ग विचरनेवाले हैं। गृही नहीं हैं। अतः इनके हृदय मे आप भी संग रहित होकर डेरा कीजिये।

दो. जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेहु॥१३१॥

अर्थ : जिसे कभी कुछ भी नहीं चाहिए और तुमसे जिसका स्वाभाविक प्रेम है उसके हृदय में निरन्तर वास करो। यही आपका अपना घर है।

व्याख्या : किसी काल मे किसी वस्तु की इच्छा नहीं। ऐसे भक्त भुसुण्डिजी हैं। यथा : मन ते सकल बासना भागी। केवल रामचरन लय लागी। ऐसे का हृदय खास घर है। अतः इसमे निरन्तर रहो। ये ही चौदह भक्तिसूत्र वाल्मीकिजी से गोस्वामीजी को मिले हैं और इन्हीं के भाष्यरूप मे सम्पूर्ण ग्रन्थ लिखा गया है।

एहि बिधि मुनिबर भवन देखाये। बचन सप्रेम राम मन भाये॥
कह मुनि सुनहु भानु कुल नायक। आश्रमु कहउँ समय सुखदायक॥१॥

अर्थ : इस प्रकार मुनिजी ने घर दिखाये। उनके प्रेमयुक्त वचन रामजी को अच्छे लगे। मुनिजी ने कहा कि हे सूर्यकुल के नायक ! सुनिये। अब इस समय सुख देनेवाला आश्रम बतलाता हूँ।

व्याख्या : मुनिजी विधि के साथ बालकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड तक के भक्तो के मन को रहने के लिए दिखलाते गये। समझा कि अवध के महल मे रहनेवाले हैं। जहाँ क्रोध के लिए भी पृथक् भवन बना हुआ है। कहीं सीताजी के

ाथ रहते हैं। कही एकान्त में एकाकी रहते हैं। कही लक्ष्मणजी भी आजाते है। ्नका एक भवन से काम नही चल सकता। इसलिए चौदह भवन दिखलाया और ानेक प्रकार से रहना कहा। वानी मधुर अमिअ रस बोरी से उपक्रम और वचन ाप्रेम से उपसंहार किया। अतः राम मन भाये कहकर प्रभु की स्वीकृति दिखलाया। ाुनिजी के गौरव से स्पष्ट एवमस्तु न कहा।

भानुकुलनायक से लीलाविग्रह सूचित करते हैं। समय सुखदायक से भाव यह के अन्तर्यामी रूप योग्य गृह। इस समय के लीला विग्रह के अनुकूल नही है। अतः इस समय के लिए सुखदायक स्थान बतलाते हैं।

चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू॥
सैलु सुहावन कानन चारू। करि केहरि मृग बिहग बिहारू॥२॥

अर्थ : चित्रकूट पर्वत पर निवास करो। वहाँ तुम्हारे लिए सब प्रकार की सुविधा है। सुहावना पर्वत है। सुन्दर वन है। हाथी सिंह मृग और पक्षी विहार किया करते हैं।

व्याख्या : रामजी ने पूछा था : अब जहँ राउर आयसु होई : बास करहु कछु काल कृपाला। उसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि चित्रकूट पर्वत पर निवास करो। यहाँ आपके लिए सब प्रकार की सुविधा है। बड़ा सुहावना पर्वत है। राजधानी बनाने लायक है। वन भी बड़ा सुन्दर है। वन की सम्पत्ति से सम्पन्न है। उसीको इस समय राज्य बनाइये : इसका विस्तार भरतजी के आगमन के प्रसङ्ग मे कहा गया है।

नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रि प्रिया निज तपबल आनी॥
सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि॥३॥

अर्थ : पवित्र नदी है। जिसकी प्रशंसा पुराणो में है। इसे अत्रिजी की स्त्री अपने तपबल से लायी है। यह गङ्गाजी की धारा है। इसका नाम मन्दाकिनी है। पापरूपी बच्चों के लिए डाकिनीरूप है।

व्याख्या : जलाशय का सान्निध्य कहते हैं। मन्दाकिनी नदी वहाँ बहती है। बड़ी पवित्र है। गङ्गा की धारा है। भगीरथ तपबल से भागीरथी को लाये हैं और इसे अत्रिप्रिया अपने तपबल से लायी हैं। बड़े बडे महापातक इसके आहार हैं। जैसे डाइन बच्चों को खा जाती है उसी भाँति यह महापातकों को खा जाती है।

अत्रि आदि मुनिवर बहु बसही। करहिं जोग जप तप तन कसही॥
चलहु सफल श्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरिबरहू॥४॥

अर्थ : अत्रि आदि बहुत से श्रेष्ठ मुनि वहाँ निवास करते हैं। योग और जप करते हैं तथा तप से शरीर को कसते हैं। रामजी ! चलो सबके परिश्रम को सफल करो और पर्वत श्रेष्ठ को बड़ाई दो।

व्याख्या मुनियो के सत्सङ्ग की तुम्हे बडी चाह रहती है। यथा मुनिगन मिलन विसेष बन सबहि भाँति हित मोर। सो अत्रि आदि बडे बडे मुनीश्वर वहाँ बसते है। जो मनसा वाचा कर्मणा परलोक जय मे लगे हुए हैं। योग से मनोनिग्रह जप से वाणी का सदुपयोग तथा तप से शरीर का कसना कहा। यथा भरत भवन बसि तप तन कसही। दह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटइ तेजुबलु मुख छबि सोई।

तुम्हारे वहाँ चलने से सबका श्रम सफल होगा। क्योकि योग जप तप सब तुम्हारी प्राप्ति के लिए ही लोग करते है और तुम्हारे निवास से चित्रकूट की महिमा बढेगी। अत पर्वत श्रेष्ठ को बडाई दो। वह मेरुसे विमुक्त होकर विन्ध्य का शृङ्ग हो रहा है।

१६ चित्रकूट निवास प्रसङ्ग

दो चित्रकूट महिमा अमित, कही महामुनि गाइ।
आइ नहाये सरित वर, सिय समेत दोउ भाइ ॥१३२॥

अर्थ महामुनि ने चित्रकूट की अपार महिमा का वर्णन किया। तब सीता सहित दोनो भाइयो ने आकर उस श्रेष्ठ नदी म स्नान किया।

व्याख्या वाल्मीकिजी महामुनि हैं। इनका वर्णन अमोघ है। इन्होने चित्रकूट की अपार महिमा कही। चित्रकूट वस्तुत पर्वता म जा परमेश्वर की विभूति मेरु पर्वत है उसका शिखर है। एकबार मेरु के गव से क्रुद्ध होकर वायुदेव ने उसे उडा देने की ठान ली। भगवान् ने उसकी महायता के लिए गरुडजी को भेजा। उन्होने मेरु को अपने डैनो से आच्छादित कर लिया। अत वायु के प्रचण्ड वेग से भी मेरु की कोई हानि न हुई। मेरु ने कहा कि गरुडजी! मुझ तो कुछ पता नही चल रहा है। वायु कुछ बल दिखा रहे हैं कि नही। गरुडजी ने कहा कि बोलो मत। दबके पडे रहो। बडी आपत्ति है। मरु ने कहा कि तनिक सा मुझ भी सामना करने का अवसर दा। गरुडजी ने थोडा सा डैना खिसका दिया तो दो शृङ्ग उड गये। एक वृन्दावन मे गिरा जिसका गोवर्धन नाम है। दूसरा विन्ध्य शृङ्खला म जा गिरा जिसे चित्रकूट कहते हैं। ये दोनो महामहिम शृङ्ग दवताआ के विहार स्थल मेरु के हो है। अत पर्वतो मे इनकी महिमा है।

मालूम होता है कि मुनिजी भी सरकार के साथ चित्रकूट आये। अत विदाइ नही लिखी। आकर दोनो भाइयो ने सीताजी के सहित वियदगङ्गा मन्दाकिनी म स्नान किया। यहाँ आकर कहने का भाव है कि कवि अपने को चित्रकूट म मान रहे हैं।

रघुबर कहेउ लखन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू॥
लखन दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा ॥१॥

अथ रामजा ने कहा कि ह लक्ष्मण! घाट अच्छा है। अब कहो ठहरने का

ठिकाना करो। लक्ष्मणजी ने पयस्विनी नदी के उत्तर का करार देखा। जिसके चारो ओर धनुष की भाँति नाला फिरा हुआ था।

व्याख्या नहाने के बाद घाट की प्रशसा की और लक्ष्मणजी से कहा कि यही कही ठहरने की व्यवस्था करनी चाहिए। लक्ष्मणजी ने पयस्विना नदी के उत्तर के किनारे को पसन्द किया। क्योकि उसके चारो ओर स्वभाव से ही रक्षा की व्यवस्था है। तीन तरफ तो एक नाला धनुष की भाँति घूमा हुआ है और दोनो ओर से पयस्विनी नदी मे जा मिला। इस भाँति चारो ओर स्वभाव से खाईं बनी हुई है।

नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना ॥
चित्रकूट जनु अचलु अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी ॥२॥

अर्थ नदी मानो प्रत्यञ्चा है। शम दम दान बाण है। कलियुग के सब पाप शिकार हैं। चित्रकूट पर्वत ही मानो शिकारी है। मुठभेड के युद्ध मे उसकी चोट खाली नही जाती।

व्याख्या नदी मानो प्रत्यञ्चा है। बराबर धनुष पर मानो प्रत्यञ्चा चढा ही रहता है। शम दम और दान ये तीन प्रकार के बाण हैं। नदी का आश्रयण करके इनका अनुष्ठान करने से कलियुग के सम्पूर्ण पाप मारे पडते हैं। वे ही मानो शिकार हैं।

अहेरी बडे चञ्चल होते हैं। लेट बैठकर दौडकर चोट करते है। पर चित्रकूट रूपी अहेरी अचल है। पर घात कभी नही चूकता। सामने जाते ही मारता है। शिकारी को शिकार पर बडा चोप होता है। इसी भाँति चित्रकूट को कलिकलुष विध्वसन का बडा चोप है। पाप को मन्दाकिनी खा जाती है और कलिकलुष को चित्रकूट नष्ट करता है।

अस कहि लखन ठाउँ देखरावा। थलु बिलोकि रघुबर सुखु पावा ॥
रमेउ राम मनु देवन्ह जाना। चले सहित सुर थपति प्रधाना ॥३॥

"अर्थ : ऐसा कहकर लक्ष्मणजी ने स्थान दिखाया। स्थल के देखने से रामजी को सुख हुआ। देवताओ ने जाना कि रामजी का मन रम गया। सो देवताओ के थवइयो मे : स्थपति प्रधान विश्वकर्मा के साथ चले।

व्याख्या · रामजी ने कहा : करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू। सो लक्ष्मणजी ने जगह तजवीज करके रामजी को दिखलाया। भाव यह कि मुझे तो पसन्द है। यदि सरकार को भी पसन्द हो। सरकार को बहुत पसन्द आया। इसलिए दर्शन मात्र से सुख पाना लिखते हैं. चित्रकूट भी अहेरी है। सरकार भी अहेरी हैं।

इधर देवताओ ने जान लिया कि यह स्थल सरकार को पसन्द है। यही ठहरेगे। अत विश्वकर्मा को साथ लेकर कुटी बनाने चले। सरकार को सुन्दर पर्णशाला की रुचि है। मुनिजी से कहा है · तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बास करहुँ कछु काल कृपाला। इसलिए देवताओ ने विश्वकर्मा को साथ लिया सोचा कि

हम लोगों के कारण अयोध्या का राजप्रसाद छोड़ा है। कुटी बनाकर रहना चाहते हैं। अतः पर्णशाला इनके रहने योग्य बननी चाहिए।

कोल किरात वेष सब आये। रचे परन तृन सदन सुहाये ॥
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला। एक ललित लघु एक बिसाला ॥४॥

अर्थ : सब कोल किरात के वेष मे आये और पत्ते तथा तृणो के घर बनाये। दो घर ऐसे सुन्दर बनाये कि जिनका वर्णन नही हो सकता। उसमे एक सुन्दर छोटा सा है और एक बड़ा।

व्याख्या : यदि देवता लोग अपने वेष से आते तो सरकार सेवा न लेते। इसलिए कोलकिरात का वेष धारण करके आये और पत्ते तथा तृणशाला बनाने लगे। विश्वकर्मा बनाने मे लगे है। अतः पर्ण तृणशालाएँ ऐसी बनी कि उनका वर्णन नही हो सकता। लक्ष्मणजी के रहने के लिए एक छोटी सुन्दर सी शाला बनायी और सरकार के लिए बड़ी शाला बनायी। क्योंकि जगदम्बा साथ मे थी।

दो. लखन जानकी सहित प्रभु, राजत रुचिर निकेत।
सोह मदनु मुनि वेष जनु, रति रितु राज समेत ॥१३३॥

अर्थ : लक्ष्मण और जानकी सहित प्रभु उस पर्णशाला में ऐसे विराजमान हुए मानो कामदेव रति और वसन्त के साथ मुनि का वेष धारण किये हुए हैं।

व्याख्या : जो सुन्दर है वह सभी अवस्था मे सुन्दर है। सरकार लक्ष्मण और जानकीजी के साथ मुनिवेष से पत्तं की कुटिया में ठहरे है। पर वहाँ भी उनकी शोभा है। मानो स्वय काम ने अपनी प्रिया रति तथा सखा वसन्त ऋतु के साथ मुनिवेष धारण कर रक्खा है।

अमर नाग किन्नर दिसिपाला। चित्रकूट आए तेहिं काला ॥
रामु प्रनामु कीन्ह सब काहू। मुदित देव लहि लोचन लाहू ॥१॥

अर्थ : देवता, नाग, किन्नर और दिक्पाल उस समय चित्रकूट आये। रामजी ने सबको प्रणाम किया। देवता लोग नेत्र का फल पाकर प्रसन्न हुए।

व्याख्या : अमर नाग किन्नर दिक्पाल कहने का भाव कि सभी श्रेणी के देवता उस समय चित्रकूट आये। जिस भाँति नारदजी को सोच हुआ था : बिरहवत भगवतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेखी। मोर श्राप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा। उसी प्रकार का भाव देवताओ के भी हृदय मे उदय हुआ कि हम लोगो के कारण रामजी आज अयोध्या का राजप्रासाद छोडकर पर्णकुटी मे निवास कर रहे हैं। अत इस समय दर्शन के लिए उपस्थित होना चाहिए। इस प्रकार से प्रत्यक्ष रूप से देवता लोग कभी नही आये थे।

मर्यादापुरुषोत्तम रामजी ने सबको प्रणाम किया। देवता लोग सरकार का

दर्शन पाकर प्रसन्न हो गये। इन लोगों ने भी रामजी के दर्शन से अपने नेत्रों का साफल्य माना।

बरषि सुमन कह देव समाजू। नाथ सनाथ भये हम आजू॥
करि बिनती दुख दुसह सुनाये। हरषित निज निज सदन सिधाये॥२॥

अर्थ : देव समाज ने पुष्पवर्षा कर दी और कहने लगे कि हे नाथ! आज हम लोग सनाथ हो गये। विनती करके अपना दु:सह दु:ख सुनाया और प्रसन्न होकर अपने अपने घर गये।

व्याख्या : इन्ही लोगो ने कुमन्त्रणा करके सरस्वती द्वारा मन्थरा तथा कैकेयी की बुद्धि को पलटवाया। फलतः रामजी को वनवास मिला। अत. अपने को सापराध मान रहे हैं। सबने पुष्पाञ्जलि दी। अतः फूलो की वर्षा हो गयी। बोले कि हम लाग अनाथ हो रहे थे। जब सरकार ने इतना कष्ट उठाया कि हम लोगो के लिए आज पर्णशाला मे निवास स्वीकार किया तो हम लोग सनाथ हो गये। इस भाँति अनेक विनती करके अपना अपना दुसह दु.ख सुनाया कि रावण के मारे हम लोगो के लोक उजाड़ हो गये। रावण के दरबार मे हाथ जोड़कर खडा रहना पड़ता है। तिस पर भी इज्जत नही बचती। देव जच्छ गधर्व मुनि किन्नर नाग कुमारि। जीति बरी निज बाहु बल बहु सुन्दर बर नारि। इत्यादि। अपनी रक्षा के लिए सन्नद्ध मालिक से अपना सब दु.ख सुना देने से सन्तुष्ट है। उन्हे अनुकूल देखकर प्रसन्न हो घर लौट गये।

चित्रकूट रघुनंदनु छाये। समाचार सुनि सुनि मुनि आये॥
आवत देखि मुदित मुनि बृंदा। कीन्ह दंडवत रघुकुल चंदा॥३॥

अर्थ : श्रीरामजी चित्रकूट मे आ बसे हैं। यह समाचार सुन सुनकर मुनि लोग आये। मुनिवृन्द को आनन्दित हुए आते देखकर रघुकुल के चन्द्रमा रामचन्द्र ने दण्डवत् प्रणाम किया।

व्याख्या : देवताओ को सब पता था। इसलिए कोल किरात वेष से आकर पर्णशाला बना गये। फिर अपने रूप से आकर अपना दुःख निवेदन कर गये। पर मुनि लोगो को सरकार के निवास करने के बाद पता चला। अत. पीछे से मुनि लोग आये। सरकार ने देखा कि मुनि लोग बडे प्रसन्न चले आ रहे हैं। देवताओ से भी अधिक आदर सरकार के हृदय मे मुनियो का है। अत साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। रघुकुल के चन्द हैं। सभी चकोरो को एक साथ प्रणाम करने मे समर्थ हैं। अथवा रघुकुल मे मुनियो का बड़ा आदर है और ये तो उस कुल के चन्द्रमा हैं। ये क्यो न इतना आदर करें।

मुनि रघुबरहि लाइ उर लेही। सुफल होन हित आसिष देही॥
सिय सौमित्रि राम छबि देखहि। साधन सकल सफल करि लेखहि॥४॥

अर्थ मुनि लोग रामजी को कलेजे से लगा लेते हैं और वाणी की सफलता के लिए उन्हे आशीर्वाद देते है। सीता लक्ष्मण और रामजी की छवि देखते हैं और अपने सब साधनो को सफल मान रहे हैं।

व्याख्या सरकार के उन्मादकारी सौन्दर्य पर मुनिगण मोहित हैं। कलजे से लगाते हैं। सरकार की महिमा जानते है। फिर भी आशीर्वाद अपनी वाणी की सफलता के लिए देते है। भाव यह कि इनके कल्याण मे सन्देह क्या ? अत जो आशीर्वाद इन्हे देंगे सभी सफल होगे। ये ही मुनि लोग कृष्णावतार म गोपिका हुए। तीनो मूर्तियो की छवि के दर्शन से अपने साधन की सफलता मानते हैं। यथा आज सफल तप तीरथ त्यागू। आज सफल जप जोग बिरागू। सफल सकल सब साधन साजू। राम तुमहि अवलोकत आजू। वाल्मीकिजी ने जो कहा था चलहु सफल श्रम सबकर करहू सो सब का श्रम सफल हुआ।

दो जथाजोग सनमानि प्रभु, बिदा किये मुनि बृद।
करहिं जोग जप जाग तप, निज आश्रमन्हि सुछद ॥१३४॥

अर्थ प्रभु ने जो जिस योग्य था उसका वैसा सम्मान करके विदा किया। व लोग अपने अपने आश्रमो म स्वतन्त्र होकर याग यज्ञ जप तप करने लगे।

व्याख्या साष्टाङ्ग दण्डवत् तो प्रभु ने सबको समान रूप से ही किया। पर सम्मान मे योग्यता के तारतम्य पर ध्यान रक्खा। मिलने के बाद सबको विदा किया। अब ये लोग अपने अपने आश्रमो म योग यज्ञ जप स्वच्छन्द होकर करते हैं। पहिले राक्षसो को डरते थे। अत स्वच्छन्दता नही रही। वाल्मीकिजी ने यज्ञ का नाम नही लिया। इतना ही कहा करहि योग जप तप तन कसही। योग जप तप तो छिपकर भी हो सकता है। पर यज्ञ तो छिपकर नही हो सकता और देखत जग्य निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं। सो मुनि लोग यज्ञ नही कर सकते थे। अब किसी का डर नही। स्वच्छन्द होकर यज्ञ भी करते हैं।

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नव निधि घर आई ॥
कद मूल फल भरि भरि दोना। चले रक जनु लूटन सोना ॥१॥

अर्थ यह समाचार कोल किरातो को मिला। व ऐसे प्रसन्न हुए माना नवोनिधि घर म आगयी। वे कन्द मूल फल दोना भर भर क ऐसे चल जैसे दरिद्र सोना लूटने चले हो।

व्याख्या मुनिवृन्द को जाते और लौटते देखकर जिज्ञासा हुई कि क्या बात है। तब पता लगा। केवल पता लगने का यह माहात्म्य है कि उन्हे ऐसा आनन्द हुआ कि नवोनिधियाँ घर म आगयी। महापद्मश्च पद्मश्च शखो मकरकच्छपौ। मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव। निधि का अर्थ खजाना भी है पर खजाने का आना नही बनता। इसलिए नवनिधि को अधिष्ठात्री देवी अर्थ किया गया।

देवता और ऋषियो को भेंट मिला करती है। इसलिए वे लोग भेट लेकर नही आये। ये भेंट लेकर भी चले। जो जिसके पास होता है वही भेंट भी देता है। इनके पास कन्द मूल फल छोडकर और क्या है। इसलिए कन्द मूल फल को दोनो मे भर भरकर ऐसे आह्लाद से चले जैसे दरिद्र जिसे अन्न भी मिलना कठिन हो सुने कि सोने की लूट हो रही है और दौड पडे। उसी भाँति ये भी चले।

तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता। अपर तिन्हहि पूछहि मगु जाता॥
कहत सुनत रघुबीर निकाई। आइ सबन्हि देखे रघुराई॥२॥

अर्थ उनमे से जिन्होंने दोनो भाइयो को देखा था दूसरे रास्ते म जाते हुए उनसे पूछते हैं। इस भाँति रामजी की सुन्दरता कहते सुनते आकर सबो ने रघुराई को देखा।

व्याख्या कुछ देखकर लौट रहे थे। उनसे सरकार के विषय मे प्रश्न करते हैं कि तुम देख आये। बतलाओ तो कैसे सुन्दर है ? कैसा स्वभाव है ? वे भी वर्णन करते हुए साथ हो लिये। इस भाँति सौन्दर्य और स्वभाव का वर्णन करते हुए और सुनते हुए सबो ने आकर सरकार को देखा।

करहि जोहारु भेट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकहि अति अनुरागे॥
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढे। पुलक सरीर नयन जल बाढे॥३॥

अर्थ भेट सामने रखकर जोहार करते हैं और बडे प्रेम से प्रभु का दर्शन करते है। जैसे चित्र मे लिखे हो वैसे ही जो जहाँ था वह वही खडा रह गया। उनके शरीर पुलकित हो गये और नेत्रो मे जल भर आया।

व्याख्या कन्द मूल फल जो दोना म भरकर लाये थे उन्हे पहिले भेंट के रूप म सामने रक्खा तब जोहार किया। आजकल जैस हाथ म लोग सलाम करते हैं उसी भाँति दोना हाथो से जोहार किया जाता है। तत्पश्चात् सरकार के रूप माधुर्य का दर्शन करते हुए प्रेम मे मग्न होकर एकदम स्तब्ध हो जाते है। उनका कोई अङ्ग हिलता नही। मानो चित्र मे लिखे है। सात्त्विक भाव हो जाने से शरीर मे पुलक हो गया है और नेत्रो म जल है।

राम सनेह मगन सब जाने। कहि प्रिय बचन सकल सनमाने॥
प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी। बचन बिनीत कहहि कर जोरी॥४॥

अर्थ रामजी ने जान लिया कि सब स्नेह म मग्न है। अत प्रिय वचन बोलकर सबका सम्मान किया। बार बार जोहार करते हैं और विनययुक्त वचन हाथ जोडकर कहते हैं।

व्याख्या देखा कि सब प्रेम मे डूबाडूब हैं। कोई कुछ बोलता नही तो स्वय सरकार ही प्रिय वचन बोले। तुम लोग राजी तो हो। बाल बच्चे तो राजी हैं। बन

मे फल मूल तो यथेष्ट रूप से प्राप्त होता है। तुम लोगो को कोई कष्ट तो नही है इत्यादि।

सरकार की वाणी सुनकर और भी प्रेम बढा। अत बार बार जोहार करते है और विनीत वचन हाथ जोडकर बोलते है।

दो. अब हम नाथ सनाथ सब, भये देखि प्रभु पाय।
भाग हमारे आगमन, राउर कोसलराय ॥१३५॥

अर्थ : अब हम प्रभु के चरणो के दर्शन से सनाथ हो गये। हे कोशलराय! हमारे भाग्य से आपका यहाँ आगमन हुआ है।

व्याख्या : मालिक के चरण दर्शन से दास सनाथ हो जाते हैं। नाथ के चरण दर्शन न होने से जीव अनाथ रहते हैं। कोसलराय के वन मे आकर बसने का प्रयोजन क्या ? यह मेरा भाग्य हो है जो आप यहाँ आ बसे हैं। देवताओ से प्रेमाधिक्य मुनियो ने दिखाया। अब उनसे भी अधिक प्रेम कोल किरातो मे दिखलाते है। पिता दीन्ह मोहि कानन राजू का साफल्य स्पष्ट दिखायो पड रहा है।

धन्य भूमि बन पंथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाउ तुम्ह धारा॥
धन्य बिहँग मृग कानन चारी। सफल जनम भए तुम्हहि निहारी॥१॥

अर्थ · हे नाथ! जहाँ जहाँ तुमने पाँव रक्खे वह भूमि वन रास्ता और पहाड धन्य हैं। ये वनचारी पशु पक्षी धन्य हैं जिनके जन्म तुम्हारे दर्शन से सफल हो गये।

व्याख्या घर से चलने मे भूमिखण्ड वन मार्ग और पहाड अवश्य ही मिले होगे। क्योंकि इस घोर वन मे बिना वन पहाड आदि उल्लघन किये कोई आ नही सकता। वे सब आपके चरण स्पर्श से धन्य हो गये प्रेम के आवेश मे कोल किरातो के मुख से ऐसी बातें निकल रही है जो शास्त्र सम्मत है।

नगर के विहँग मृग तो तुम्हारा दर्शन पाते ही थे। पर अब तो जङ्गल के विहँग मृग धन्य हो रहे हैं। दर्शन पा रहे हैं। उनका जन्म सफल हो गया। यथा : राम चरन वारिज जब देखौ। तब निज जन्म सफल करि लेखौ।

हम सब धन्य सहित परिवारा। दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा॥
कीन्ह बासु भल ठाउ बिचारी। इहाँ सकल रितु रहब सुखारी॥२॥

अर्थ . हम सब तो सकुटुम्ब धन्य हो गये। क्योकि तुमको आँख भरकर देख रहे हैं। तुमने बहुत अच्छी जगह तजबीज करके निवास किया है यहाँ पर सभी ऋतुओ मे सुखी रहोगे।

व्याख्या भूमि वन पथ पहाड जड है वे देख नही सकते। अत चरण स्पर्श से धन्य हुए। वनचारी विहँग मृग उनकी अपेक्षा चेतन हैं। देख सकते है। वे चलते फिरते दृष्टि पड जाने से धन्य हुए। पर हम लोग तो बालबच्चो के साथ

धन्य हुए। क्योंकि आँख भरकर देख रहे है · जे हर हिय नयनन्हि कबहुँ निरखे नही अघाय।

उन कोल किरातो ने इस बात पर भी विचार किया कि यहाँ पर सरकार ठहरे है तो किसी प्रकार का कष्ट तो नही होगा। तो इसी निश्चय पर पहुँचे कि यह स्थल सभी ऋतुओ मे सुखदायक है। अत सरकार के पसन्द का अनुमोदन करते हैं कि निवास स्थान सरकार ने ठीक तजबीज किया।

हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई ॥
बन बेहड़ गिरि कदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा ॥३॥

अर्थ : हम लोग हाथी सिंह सर्प और व्याघ्र को इधर आने ही न देगे। सब प्रकार से सेवा करेगे। वन अगम्य पर्वतो को अगम्य कन्दराएँ और खोह सबके सब हमारे रत्ती रत्ती देखे हुए हैं।

व्याख्या हम लोग सरकार की सब भाँति से सेवा करेंगे। ईंधन पत्ता कन्द मूल फल आदि से तो सेवा करेहीगे। खतरे मे भी बँचावेंगे। करि केहरि को इधर न आने देना कौन सी बडी बात है। हम साँप को भा इधर से न आने देंगे।

बीहड वन मे करि केहरि कन्दर मे सर्प और खोह मे व्याघ्र रहते हैं। सो सब हमारे रत्ती रत्ती देखे हुए हैं। करि केहरि अहि व्याघ्र के निवास स्थान जानते हैं। उनकी सख्या जानते है। उन्हे बहकाकर दूसरे रास्ते मे कर देना जानते हैं।

तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब। सर निरझर जल ठाँउ देखाउब ॥
हम सेवक परिवार समेता। नाथ न सकुचब आयसु देता ॥४॥

अर्थ : हम आपको जहाँ तहाँ शिकार खेलावेंगे। तालाब झरने और रमणीय स्थल दिखलावेंगे। हम परिवार सहित सरकार के सेवक हैं। नाथ! आज्ञा देने मे सङ्कोच न करियेगा।

व्याख्या · आज भी जङ्गली ही शिकार खेलाते हैं। इसलिए कहते हैं कि तालाब झरना जहाँ जहाँ जानवर पानी पीने जाते हैं और रम्यस्थल जहाँ वे रहते हैं सब तुमको दिखायेंगे। हँकवा करके आपके सामने ला देंगे। वे सब समझ रहे हैं कि बडे शिकारी हैं। शिकार के लिए यहाँ ठहरे हुए हैं।

दो० बेद बचन मुनि मन अगम, ते प्रभु करुना अयन।
बचन किरातन्ह के सुनत, जिमि पितु बालक बयन ॥१३६॥

अर्थ जो वेद के लिए वचन से अगम्य हैं। मुनि के लिए मन से अगम्य हैं। वे करुणायतन किरातो की बातें इस भाँति सुन रहे हैं जैसे बाप बच्चो की बातो को सुनता है।

व्याख्या नेति नेति जेहि वेद निरूपा। अत वेद वचन से अगम और जितिपवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुक पावही। अत मुनि मन अगम है।

प्रभु ऐसे करुणायतन हैं कि किरातो की बातें मन लगाकर बड़े चाव से सुन रहे हैं। जैसे पिता बालक की बातें सुनता है। यथा जौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता।

रामहिं केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा ॥
राम सकल बनचर तब तोषे। कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे ॥१॥

अर्थ रामजी को केवल प्रेम ही प्यारा है। जो जाननेवाला हो जान ले। रामजी ने सब जङ्गलियो को प्रेम से परिपुष्ट कोमल वचन कहकर तुष्ट किया।

व्याख्या जप योग नियमव्रत रहित प्रेम केवल प्रेम है। सो रामजी को केवल प्रेम प्यारा है। यथा जो जप जाग जोग व्रत वर्जित केवल प्रेम न चहते। तौ कत सुर मुनिबर विहाय ब्रज गोपगेह बसि रहते। केवल प्रम पर सरकार रीझ जाते हैं। यथा रीझत राम सनेह निसोते। ग्रन्थकार कहत हैं कि इस प्रसङ्ग से जो जिज्ञासु है वे जान लें।

प्रेम की प्यास को सरकार ने प्रिय वचन से शान्त किया। मृदु वचन से ही प्रेम परिपुष्ट होता है। यह सरकार की बडाई है कि बनचर को भी तुष्ट करते हैं।

बिदा किए सिरु नाइ सिधाए। प्रभु गुन कहत सुनत घर आए ॥
एहि बिधि सिय समेत दोउ भाई। बसहिं बिपिन सुर मुनि सुखदाई ॥२॥

अर्थ बिदा किया तो प्रणाम करके चल। सरकार के गुणा को कहते सुनते घर आये। इस भाँति सुरमुनिसुखदायी दानो भाई सीता सहित वन म वसने लगे।

व्याख्या आश्वासन देकर देवताओ को विदा किया। सम्मान करके मुनियो को विदा किया। अब प्रम से परितुष्ट करके कोल किरातो को विदा किया। सरकार की निकाई कहते सुनत आये थे। अब प्रभु का गुण कहत सुनते घर लौटते हैं।

दरबार लगा रहता है। कभी देवता लोग आये। कभी मुनिगण पधारे। कभी कोल किरात हाजिर हुए। इस भाँति प्रभु वन मे सुखी होकर बसते है। सुर मुनि के सुख के लिए ही वनवास अङ्गीकार किया है।

जब तें आइ रहे रघुनायकु। तब तें भयउ बनु मगल दायकु ॥
फूलहि फलहिं बिटप बिधि नाना। मजु बलित बर बेलि बिताना ॥३॥

अर्थ जब से रघुनायक आकर बसे तब स वन मङ्गलदायक हो गया। नाना प्रकार के पेड फूल और फल से भरे हुए हैं। सुन्दर लताओ ने लिपटकर मण्डप बना रक्खा है।

व्याख्या जब से प्रभु आकर ठहरे तब से प्रकृति मे परिवर्तन हो गया। वन मे अनेक प्रकार के पेड हैं। उनके फूलने और फलने का समय अलग अलग है। पर प्रभु के पदार्पण का यह प्रभाव है कि सब वे सब फूल फल रहे है। इस भाँति भयानक

वन भी मङ्गलदायक हो गया। इस प्रकार का प्रकृति में परिवर्तन प्रभु के पूर्णावतार का द्योतक है। इनके सयोग से चराचर सुखी तथा वियोग में दुःखी हो जाते हैं।

सुरतरु सरिस सुभाय सुहाये। मनहुँ बिबुध बन परिहरि आये ॥
गुंज मंजुतर मधुकर श्रेनी। त्रिबिध बयारि बहइ सुख देनी ॥४॥

अर्थ : कल्पवृक्ष के समान वे स्वभाव से ही सुन्दर हैं। मानो अनेकों उपवनों को छोड़कर आये हैं। भँवरों की श्रेणियाँ अधिक सुन्दर गुञ्जार कर रही हैं और सुख देनेवाली शीतल मन्द सुगन्ध हवा बह रही है।

व्याख्या : जिन पेड़ो का ऊपर उल्लेख हुआ है अब उनकी शोभा कहते हैं कि ऐसे सुन्दर पेड़ कही दिखायी नही देते। मालूम होता है कि ये इस लोक के वृक्ष ही नही हैं। ये देवलोक के वृक्ष हैं। सरकार का आना सुनकर ये भी नन्दनादि वनों का परित्याग करके यहाँ चले आये हैं। उनके फल फूल के देखने से मालूम होता था कि ऐसे ही कल्पवृक्ष होते होगे।

भौंरों का गुञ्जार मञ्जु होता ही है। पर यहाँ के भौरें का गुञ्जार भी अधिक मञ्जु है। वन में घोर घाम हिम वात चलता है। सो यहाँ शीतल मन्द सुगन्धयुक्त वायु चल रही है।

दो. नीलकंठ कलकंठ सुक, चातक चक्क चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं बिहँग, श्रवन सुखद चित चोर ॥१३७॥

अर्थ : नीलकण्ठ कोयल तोता पपीहा चकवा और चकोर अनेक प्रकार की बोलियाँ बोल रहे हैं। जो कानों को सुख देनेवाली तथा चित्त को चुरानेवाली हैं।

व्याख्या : जिस भाँति सब ऋतु के फूल और फल लग रहे हैं। उसी भाँति सब ऋतुओं की चिड़िया बोल रही हैं और ऐसा मधुर बोल रही हैं कि सुनने से कान को ऐसा सुख होता है कि मन उधर ही लग जाय। नीलकण्ठ ग्रीष्म मे : बोलते हैं। कलकण्ठ वसन्त में शुक शिशिर में चातक वर्षा मे चकवा हिमऋतु में रात्त के बड़ी होने से। चकोर शरद में : चन्द्रमा के निर्मल होने से। सो यहाँ सभी ऋतुओं में बोल रहे हैं। इस भाँति वन को सर्वेन्द्रिय तर्पण कहा।

करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगत बैर बिचरहिं सब संगा ॥
फिरत अहेर राम छबि देखी। होहि मुदित मृगबृंद बिसेखी ॥१॥

अर्थ : हाथी सिंह बन्दर वाराह और मृग वैर छोड़कर एक सङ्ग विचर रहे हैं। शिकार के लिए घूमते हुए रामजी की छवि देखकर मृग लोग अधिक आनन्दित होते थे।

व्याख्या : पक्षियो का वर्णन करने के बाद वन्य पशुओ का वर्णन करते हैं। करि केहरि कपि कोल कुरंगा में वर्ण मैत्री दिखाकर इनमे मैत्री द्योतित करते हैं। इनमें भक्ष्यभक्षक सम्बन्ध है प्रीति हो नही सकती। पर सरकार के पादार्पण से यह

असम्भव् भी सम्भव हो गया। सब जीवो ने सहज वैर परित्याग किया। उस स्थल म आकर परस्पर मे अनुराग करने लगते थे।

राघव भावत मोहि विपिन की वीथिन्ह धावनि।
सुन्दर स्यामल अग वसन पीत सुरग कटि निपग परिकर मेरवनि।
तैसइ श्रमसीकर रुचिर राजत मुख तैसिये ललित भ्रुकुटिन्ह की नवनि।
देखत खग निकर मृगरवनिन्ह जुत थकित विसारि जहाँ तहाँ की भवनि।
हरिदरसन फल पायो है ग्यान विमल जाचत भगति मुनि चाहत जवनि।
श्रवन सुख करनि भवसरिता तरनि गावत तुलसीदास कीरत पवनि।

विबुध विपिन जहँ लगि जग माही। देखि रामवनु सकल सिहाही॥
सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या। मेकलसुता गोदावरि धन्या॥२॥
सब सर सिंधु नदी नद नाना। मदाकिनि कर करहि बखाना॥

अर्थ ससार म जितने देवताओ के वन हैं वे सब रामवन को देखकर सिहाते हैं। गङ्गा सरस्वती यमुना नर्मदा और गोदावरी आदि पुण्य नदियाँ सभी सरोवर नाना नदी और नद सब ग्न्दाकिनी की सराहना करते है।

व्याख्या जिस भाँति सब देवताओ के पृथक् लोक हैं वैसे ही उनके पृथक् पृथक् उपवन हैं जहाँ वे विहार करते हैं। वे वन आज रामवन की सम्पत्ति और भाग्य देखकर ईर्ष्या करते हैं कि हमारा भाग्य ऐसा नही हुआ कि सिय रघुवीर विहार स्थल हो सकें।

ससार मे गङ्गादिक जितनी पुण्य नदियाँ हैं वे मन्दाकिनी की प्रशसा करती है कि मन्दाकिनी धन्य है। जिसमे तानो काल सरकार लक्ष्मण और जानकीजी के सहित अवगाहन करते हैं।

उदय अगस्त गिरि अरु कैलासू। मदर मेरु सकल सुरबासू॥३॥
सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट जसु गावहिं तेते॥
बिंधि मुदित मन सुखु न समाई। श्रम बिनु बिपुल बडाई पाई॥४॥

अर्थ उदयाचल अस्ताचल कैलास और मन्दर मेरु आदि जितने देवताओ के निवास स्थान हैं और हिमालय आदिक जितने पर्वत है सब चित्रकूट का यशोगान करते है। विन्ध्याचल तो ऐसे प्रसन्न है कि उनके मन मे आनन्द समा नही रहा है। उन्हे बिना परिश्रम ही बडी भारी बडाई मिल गयी।

व्याख्या उदयाचल और अस्ताचल सूर्य नारायण से सम्बद्ध है। कैलास जहाँ सदाशिव उमा का निवास रहता है। मन्दर और मेरु पर तो सब देवताओ का निवास है। हिमालय पर्वतो के राजा ही ठहरे और अन्य जो महेन्द्राचलादि पुण्य पर्वत बडे बडे विशाल है वे सब छोटे से चित्रकूट पर्वत का यशोगान कर रहे

। क्योकि वह आज सरकार का निवासस्थान हो रहा है। उसकी महिमा बहुत बढी हुई है।

विन्ध्याचल के आनन्द का तो कुछ ठिकाना ही नही। क्योकि उन्हे बिना परिश्रम ही इतनी बडी बडाई मिली। चित्रकूट विन्ध्यश्रेणी मे ही है। विन्ध्य को बडाई पाने की बडी इच्छा थी। इसलिए वे बढे भी थे। पर अगस्त्यजी ने उनका बढना रोक दिया। उनका सब श्रम ही व्यर्थ हो गया था। सो इस समय बिना परिश्रम ही इतनी बडी बडाई पा गये।

दो चित्रकूट के बिहँग मृग, बेलि बिटप तृन जाति।
पुन्य पुंज सब धन्य अस, कहहिं देव दिन राति ॥१३८॥

अर्थ : चित्रकूट के पक्षी पशु लता वृक्ष और तृण की जातियाँ पुण्यपुञ्ज है और धन्य हैं ऐसा देवता दिन रात कहते हैं।

व्याख्या इन सबो को सरकार का सानिध्य प्राप्त है। अत. सामीप्यसुख का अनुभव कर रहे हैं। देवताओ को तो केवल वैषयिक सुख प्राप्त है। अत देवता लोग चित्रकूट के पशु पक्षी लता वृक्ष और घास फूस के पुण्य की प्रशसा करते हैं। देवलोक मे रात दिन इनके पुण्य का कथनोपकथन चल रहा है।

नयनवत रघुबरहि बिलोकी। पाइ जनम फल होहिं बिसोकी॥
परसि चरन रज अचर सुखारी। भये परम पद के अधिकारी॥१॥

अर्थ · आँखवाले रामजी को देखकर जन्म होने का फल पाकर शोक रहित पद को प्राप्त होते हैं और अचर चरणरज को स्पर्श करके सुखी होते हैं। उन्हे मोक्ष का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

व्याख्या देवताओ द्वारा दिन रात चित्रकूट के चर अचर के गुणगान का कारण कहते हैं कि जिन्हे आँखें हैं वे तो रामजी को देखकर आँख होने का फल पा जाते हैं। आँख होने का फल तो यह है कि रामजी के चरणकमलो का दर्शन करके जन्म सफल हो। यथा : राम चरन बारिज जब देखौ। तब निज जनम सफल करि लेखौं। सो यहाँ चित्रकूट के विहँग मृग दर्शन करके शोक रहित पद को प्राप्त हो रहे है। जिन्हे आँखें नहीं हैं ऐसे अचर स्थावर योनिवाले चरण की धूलि के स्पर्श से सुखी हो रहे है। उन्हे परमपद का अधिकार प्राप्त हो रहा है जो देवताओ को प्राप्त नही है। यावदधिकार देवताओ को मुक्ति नही मिलती।

सो बनु सैलु सुभाय सुहावन। मगलमय अतिपावन पावन॥
महिमा कहिअ कवन बिधि तासू। सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू॥२॥

अर्थ . वह वन और पर्वत तो स्वभाव से ही सुहावना है। मङ्गलमय है। अति पवित्र को भी पवित्र करनेवाला है। उसकी महिमा किस भाँति कही जाय। सुख के समुद्र ने स्वयं जहाँ निवास किया हो।

व्याख्या अब रामवन और रामशैल का वृत्तान्त कहते हैं कि वह स्वभाव से ही सोहावना है। सरकार का निवास होगा इसलिए वे सुन्दर पैदा ही हुए। मङ्गलमय है। वहाँ निवास करने से यात्रा करने से मङ्गल होता है। जो अति पावन हैं उन्हे भी पावनता वहाँ से मिलती है। क्योंकि सुखसागर रामजी ने वहाँ निवास किया है। उसकी महिमा अकथनीय है कही नही जा सकती।

पय पयोधि तजि अवध बिहाई। जहँ सिय लखनु रामु रहे आई ॥
कहि न सकहि सुखमा जसि कानन। जौ सत सहस होंहि सहसानन ॥३॥

अर्थ क्षीर सागर और अवध छोडकर जहाँ आकर राम जानकी ने निवास किया है। यदि एक लाख शेप भी हो तो भी वन की शोभा वे नही कह सकते।

व्याख्या सरकार का विशप रूप से प्राकट्य क्षीरसागर और वैकुण्ठ म माना जाता है। यथा पुर बैकुण्ठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई। वैकुण्ठ से भी अधिक अवध माना गया है। यथा अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यहाँ अवध का उल्लेख है इसलिए वैकुण्ठ का नाम नही दिया। भावार्थ यह कि दोनो प्रिय निवास स्थान छोडकर राम जानकी और लक्ष्मण यहाँ आ बसे हैं। उस वन की शोभा को लाखो शेप भी नही कह सकते। यथा जो सुख सुधा सिंधु सीकरते सिव बिरचि प्रभुताई। सो सुख सिंधु उमगि चल्यौ दस दिसि कवन जतन कहौं गाई।

सो मैं बरनि कहौ बिधि केही। डाबर कमठ कि मदर लेही ॥
सेवहि लखनु करम मन बानी। जाइ न सीलु सनेहु बखानी ॥४॥

अथ उसे मै किस भाँति वर्णन कर सकता हूँ। कछुवा का बच्चा क्या मन्दर धारण कर सकता है। लक्ष्मणजी कर्म मन वाणी से सेवा करते है। उनके स्नेह शील की प्रशसा नही की जा सकती।

व्याख्या उस परम शोभा का वर्णन गोस्वामीजी कहत हैं कि मैं कैसे करूँ। मन्दर पर्वत को सब सुरासुर मिलकर धारण न कर सके तब कच्छपरूप से भगवान् ने पीठ पर धारण किया। उसे क्या कच्छप का बच्चा धारण कर सकता है? वह शोभा मन्दर की भाँति महान् है और मैं कच्छप के बच्चे की भाँति तुच्छ जीव हूँ। उसका वर्णन मुझसे सर्वथा अशक्य है। डाबर शब्द का प्रयोग पुत्र के अर्थ मे गोस्वामीजी ने कवित्त रामायण म भी किया है। यथा सोई बाँह गही जो गह्यौ समीर डाबरो।

॥ बिना शील और स्नेह के सेवा मे सरसता नही आती। मनसा वाचा कर्मणा सेवा लक्ष्मणजी वर्णनातीत स्नेह के साथ कर रहे हैं। जेहि न राम बन लहहि कलसू। सुत सोइ करेहु इहै उपदेसू का साफल्य दिखाया।

दो० छिनु छिनु लखि सिय राम पद, जानि आपु पर नेहु।
करत न सपनेहुँ लखन चितु, बधु मातु पितु गेहु ॥१३९॥

अथ क्षण क्षण सीता रामजी के चरणो का दर्शन करके और अपने ऊपर उनका प्रेम देखकर सपने मे भी लक्ष्मणजी भाई माँ बाप तथा घर का ध्यान नही करते।

व्याख्या लक्ष्मणजी का प्रेम इतना बढा चढा है कि प्रत्येक क्षण राम जानकी के चरणो के दर्शन का आनन्द लूट रहे है तथा उनका प्रेम अपने ऊपर देख रहे है। जिस पर अपना प्रेम हो वह भी अपने से प्रेम करे तभी प्रेम का आनन्द पूरा होता है। सो लक्ष्मणजी को पूर्णानन्द प्राप्त है। अत उसी मे मग्न होकर लक्ष्मणजी भाई माँ बाप और घर को याद भी नही करते। यहाँ घर शब्द से गेहिनी अभिप्रेत है।

राम सग सिय रहति सुखारी। पुर परिजन गृह सुरति बिसारी॥
छिनु छिनु पिय बिधु बदनु निहारी। प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी॥१॥

अर्थ पुर परिजन और घर की सुधि भूलकर रामजी के साथ सीताजी सुखी रहती हैं। प्रतिक्षण प्रिय के चन्द्रवदन को देखकर चकोर कुमारी की भाँति प्रसन्न रहती हैं।

व्याख्या बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा। का साफल्य दिखलाते हैं। स्वभाव से ही स्त्रियो को पुर परिजन और घर पर अधिक ध्यान रहता है। सो सीताजी ऐसी सुखी हैं कि उनको पुर परिजनादि स्मरण भी नही आते। नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधु बदन निहारे तथा छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहौ मुदित दिवस जिमि कोकी। का साफल्य दिखाते हुए कहते हैं कि सीताजी प्रतिक्षण प्रिय रामजी का मुखचन्द्र देखा करती है और चकोर कुमारी की भाँति प्रसन्न रहती है। चकोर कुमारी का चन्द्र से नवीन प्रेम है। बूढी चकोरी में उतना प्रेम नही रह जाता। इसलिए चकोर कुमारी से उपमित किया।

नाह नेह नित बढत बिलोकी। हरषित रहति दिवस जिमि कोकी॥
सिय मनु राम चरन अनुरागा। अवध सहस सम बनु प्रिय लागा॥२॥

अर्थ अपने नाथ के प्रेम को नित्य बढता हुआ देखकर ऐसा हर्षित रहती हैं जैसे दिन मे कोकी चकई प्रसन्न रहती है। सीताजी का रामजी के चरणो मे ऐसा अनुराग है कि सहस्र अयोध्या की भाँति वन प्रिय लग रहा है।

व्याख्या रामजी का अपने ऊपर प्रेम नित्य बढता हुआ देखकर चकई की भाँति सीताजी हर्षित रहने लगी। रात्रि की प्रसन्नता द्योतित करने के लिए चकोरी से उपमा दी। अब दिन की प्रसन्नता कोकी से उपमा देकर दिखलाते हैं। भाव यह कि रात दिन प्रसन्न हैं। दु ख का लेश नही। अब औध सौध सत सरिस पहार का साफल्य दिखाते हैं कि जब वन का पहाड अवध के सौ महलो के बराबर है

परनकुटी प्रिय प्रियतम सगा । प्रिय परिवारु कुरंग विहंगा ॥
सासु ससुर सम मुनितिय मुनिवर । असनु अमिअ सम कंद मूल फर ॥३॥

अर्थ : अत्यन्त प्यारे के साथ पत्ते की कुटी भी प्यारी है। पशु पक्षी प्रिय परिवार हो रहे हैं। मुनि की स्त्रियाँ और मुनि लोग सास ससुर हैं। कन्द मूल फल का भोजन अमृत के समान जान पडता है।

व्याख्या : नाथ साथ सुर सदन सम परनसाल सुख मूल का साफल्य दिखलाते हैं कि पत्ते की कुटी प्रियतम के सङ्ग मे प्रिय हो रही है। अर्थात् जो जो बातें सीताजी ने अयोध्या मे कही थी वे सब सफल हो रही हैं। वहाँ कहा था 'खग मृग परिजन। उसका साफल्य यह कहकर दिखलाते हैं कि कुरङ्ग विहङ्ग प्रिय परिवार हो रहे हैं। वहाँ कहा था बनदेवी बनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा। सो सास के कथन के बल पर कहा था। यथा पितु बन देव मातु बनदेवी। सो बनदेव और बनदेवी तो अदृश्य हैं। प्रत्यक्ष तो मुनियो की स्त्रियाँ और मुनि लोगो का व्यवहार सास ससुर सा है। कन्द मूल फल अमिअ अहारू का साफल्य : असनु अमिअ सम कन्द मूल फर कहकर दिखलाया।

नाथ साथ साँथरी सुहाई । मयन सयन सय सम सुखदाई ॥
लोकप होहिं बिलोकत जासू । तेहि कि मोहि सक बिषय बिलासू ॥४॥

अर्थ नाथ के साथ सुन्दर साँथरी पत्तों की चटाई कामदेव के सैकडो बिछौने के समान सुखदायक हो रहा है। जिसके देखने से लोकपाल पद प्राप्त होता है, उसे क्या विषयविलास मोहित कर सकता है ?

व्याख्या : नाथ साथ साथरी सुहाई। पिय संग मजु मनोज तुराई का साफल्य दिखा रहे हैं। अयोध्या मे जो कुछ सीताजी ने कहा था उससे कुछ भी बढाकर नही कहा था। हृदय का केवल शुद्ध भाव व्यक्त किया था। अत ठीक वैसा ही अनुभव हो रहा है। जो बात गङ्गाजी ने कहा था। यथा . लोकप होहिं बिलोकत तोरे। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे।' उसी का उद्धरण करते हुए कवि का कथन है कि उसे क्या विषय विलास मोहित कर सकता है. राम चरन पकज मन जिनही। बिषय भोग बस करहि कि तिनही।

दो सुमिरत रामहि तजहि जन, तृन सम बिषय बिलासु ।
राम प्रिया जग जननि सिय, कछु न आचरजु तासु ॥१४०॥

अर्थ : रामजी को सुमिरते हुए भक्त लोग विषय विलास का, तृण के समान परित्याग करते है। सीताजी तो रामजी की प्रिया हैं। जगदम्बा हैं। उनके लिए यह कौन सी आश्चर्य की बात है।

व्याख्या रमा बिलास राम अनुरागी। तजहि वमन जिमि नर बडभागी। रामजी के अनुरागी मनुष्य लक्ष्मी के विलास को तो वमन की भाँति त्याग करते हैं।

पर विषय विलास को भी वे तृण के समान त्याग देते है। उनकी दृष्टि मे विषय विलास उपेक्षा का विषय है और लक्ष्मी के विलास को तो वे सहन नही कर सकते। वमन की भाँति त्याग करके सुखी होते हैं। उत्तम पदार्थों का सेवन विषय विलास है और लक्ष्मी विलास यथा झूमत द्वार मतग अनेक जजोर जडे पद अबु चुचाते। तीखे तुरग मनो गति चचल पौन के गौनहु ते बढि जाते। भीतर चदमुखी अवलोकति बाहर भूप खडे न समाते। एते भए तो कहा तुलसी जो पै जानकी नाथ के रग न राते।

सीय लखन जेहि बिधि सुखु लहही। सोइ रघुनाथ करहि सोइ कहही॥
कहहि पुरातन कथा कहानी। सुनहि लखन सिय अति सुखु मानी॥१॥

अर्थ सीताजी और लक्ष्मण को जिस भाँति सुख मिले वही रामजी करते थे और कहते थे। पुरानी कथा और कहानियाँ कहते थे। लक्ष्मण और सीताजी अत्यन्त सुख मानकर सुनते थे।

व्याख्या सरकार ने अपनी इच्छा को सीता और लक्ष्मण की इच्छा म तन्मय कर दिया। यहाँ तक कि सीताजी और लक्ष्मणजी को जैसे सुख मिल वही काम करत है। यद्यपि रघुनाथ हैं। फिर भी अपने को भक्त पराधीन कर रक्खा है।

सीताजी और लक्ष्मणजी प्रभु के मुख की वाणी सुनना चाहते है। यथा सुनी चहैं प्रभु मुख की बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी। अत सरकार पुरानी कथा कहानी कहते है। कहानी के द्वारा भी प्राचीन काल मे शास्त्रोपदेश की प्रथा थी। पञ्चतन्त्र तथा हितोपदेश से सभी परिचित है। बालपन से ही सरकार को वेद पुराण के कहने सुनने का व्यसन भी है। यथा वेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहि अनुजन्ह समुझाई।

जब जब राम अवध सुधि करही। तब तब बारि बिलोचन भरही॥
सुमिरि मातु पितु पुरजन भाई। भरत सनेहु सीलु सेवकाई॥२॥

अर्थ जब जब रामजी अवध की याद करते है तब तब माता पिता पुरजन भाई और भरतजी के स्नेह और सेवकाई को स्मरण करके आँखों म आँसू भर लाते हैं।

व्याख्या सीताजी और लक्ष्मणजी अवध की सुधि नही करते। क्योकि जिस प्रमी के लिए अवध छोडा है वह साथ है। रामजी अवध की सुधि करते है। क्योकि उन्होने किसी के लिए अवध नही छोडा है। दूसरी बात यह कि अवध सरकार को वैकुण्ठ से भी अधिक प्रिय है। अत आँख म आँसू आ जाता है। कहते कुछ नही हैं। स्नेहमयी जननी, प्रेमनिधि पिता, शीलनिधि भाई शत्रुघ्न और भरतजी का स्नेह, शील और सेवा का स्मरण करके आँख म आँसू आ जाना स्वाभाविक है।

कृपासिधु प्रभु होहिं दुखारी। धीरजु धरहि कुसमउ बिचारी॥
लखि सिय लखन बिकल होइ जाही। जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाही॥३॥

अर्थ कृपासिन्धु प्रभु दु खी हो जाते है। पर कुसमय जानकर धैर्य धारण करते हैं। इस बात को लखकर सीताजी और लक्ष्मणजी विकल हो जाते हैं। जैसे परछाही पुरुष का अनुसरण करती है।

व्याख्या : यद्यपि विस्मय हर्षरहित है। पर भगवान् कृपासिन्धु है। भक्त के दु ख से दु खी हो जाते हैं। जानते है कि उनके विना वे लोग कैसे दु खी होगे। कुसमय मे शोक का परित्याग करके धैर्य धारण करने का विधान है। इसलिए धैर्य धारण करते है। कुछ कहते नही। फिर भी प्रतिक्षण सरकार के मुख देखनेवाली सीताजी और लक्ष्मणजी लखकर विकल हो जाते हैं। इन्हे सरकार का दु ख सह्य नही है। इन्हे प्रतिविम्ब की भाँति अपना सुख दु ख कुछ नही है। रामजी के दु ख से दु खी और रामजी के सुख से सुखी होते है। जैसे प्रतिविम्ब विम्ब के सुख दु ख से सुखी दु खी हुआ करता है।

प्रिया बधु गति लखि रघुनदनु। धीर कृपाल भगत उर चन्दनु ॥
लगे कहन कछु कथा पुनीता। सुनि सुखु लहहि लखनु अरु सीता ॥४॥

अर्थ रघुनन्दन धीर कृपाल और भक्त के हृदय के लिए चन्दन हैं। प्रिया और भाई की दशा देखकर कुछ पवित्र कथा कहने लगे। सुनकर लक्ष्मणजी और सीताजी ने सुख पाया।

व्याख्या कृपाल रघुनन्दन है। दु खी नही रहने देंगे। धैर्य से अपने को भी सँभाला और अब सीता और लक्ष्मणजी को सँभालने के लिए कुछ पवित्र कथा कहने लगे। भक्त के हृदय को शीतलता पहुँचाने के लिए चन्दन रूप हैं। अत कथा कहकर शोकापहरण किया। सीता और लक्ष्मणजी ने सुनकर सुख पाया।

दो. रामु लखन सीता सहित, सोहत परन निकेत।
जिमि बासव बस अमरपुर, सची जयत समेत ॥१४१॥

अर्थ लक्ष्मण और सीताजी के सहित रामजी पर्णकुटी मे ऐसे शोभित है जैसे इन्द इन्द्रपुर मे इन्द्राणी और जयन्त के साथ बसते है।

व्याख्या पर्णकुटी मे निवास है। पर तीनो मूर्तियो मे परस्पर ऐसा प्रेम है कि पर्णकुटी इन्द्रासन हो गयी और उसमे सरकार इन्द्र की भाँति, शची रूप सीताजी और जयन्त रूप लक्ष्मण के साथ निवास करते है। दरबार लगा है। कभी देवता लोग और कभी मुनि लोग हाजिरी बजाते है।

जोगवहि प्रभु सिय लखनहि कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे ॥
सेवहि लखनु सीय रघुबीरहि। जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहि ॥१॥

अर्थ प्रभु और सीताजी लक्ष्मणजी की कैसा सँभाल रखते हैं जैसे पलक नेत्र के गोलक का सँभाल रखता है और लक्ष्मणजी सीता और रामजी की कैसी सेवा करते हैं जैसी अविवेकी पुरुष शरीर की सेवा करता है।

व्याख्या रामजी का सीता और लक्ष्मण के साथ कैसा वर्ताव था और सीता तथा लक्ष्मण का रामजी के साथ कैसा वर्ताव था। इस बात को कहकर अब राम जानकी का लक्ष्मण के साथ कैसा वर्ताव था तथा लक्ष्मणजी का राम जानकी के साथ कैसा बर्ताव था सो कहते हैं।

पलक दोनो नेत्र के गोलक की जिस भाँति रात दिन रक्षा करती है। कोई सदमा यदि गोलक पर आवे तो उसे अपने ऊपर लेती है। उसी भाँति रामजानकी दोनो लक्ष्मणजी की ऐसी रक्षा करते हैं कि कोई सदमा लक्ष्मणजी पर न आने पावे। आता हो तो उसे अपने ऊपर ले लेते हैं और लक्ष्मणजी श्री सीतारामजी की ऐसी सेवा करते हैं जैसे देह को ही आत्मा माननेवाला अविवेकी पुरुष शरीर की सेवा करता है। वह धर्माधर्म कुछ नहीं जानता। जिसमे शरीर को सुख मिले वही करता है। इसी भाँति लक्ष्मणजी सेवाधर्म के आगे किसी धर्म को नही गिनते। जिससे श्री सीतारामको सुख हो वही करते हैं। यथा सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ।

एहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी। खग मृग सुर तापस हितकारी ॥
कहेउँ राम बन गवन सुहावा। सुनहुँ सुमंत्र अवध जिमि आवा ॥२॥

१७ सचिवागमन प्रसङ्ग

अर्थ : इस विधि से खग मृग सुर और तपस्वी के हितकारी प्रभु वन मे सुखी बसते हैं। रामजी का सुन्दर वन गमन तो कहा। अब सुमन्त्र अवध जिस भाँति आये उसे सुनिये।

व्याख्या प्रभु का वन गमन भी सुन्दर है। अवध के लोगो का दुःखी होना और खग मृग सुर तापस का सुखी होना भी वनगमन की सुन्दरता का पोषक है। प्रभु तो सुख रूप हो ठहरे। वन मे भी सुखी हैं। वन मे भी सुखी रहने की विधि भी गोस्वामीजी ने यहाँ बतला दिया कि कुटुम्ब के लोगो मे यदि परस्पर प्रेम हो और कुटुम्बियो के सुख के आगे अपने सुख को न गिने। परस्पर एक दूसरे के सदमा को अपने ऊपर लेने को तैयार हो तो वन मे भी सुखी रह सकते हैं। इसके विपरीत होने से घर भी नरक हो जाता है। यहाँ तक रामचरित है। अब सुमन्त्र के अवध लौटने का प्रसङ्ग आरम्भ होता है।

फिरेउ निषाद प्रभुहि पहुँचाई। सचिव सहित रथ देखेसि आई ॥
मंत्री बिकल बिलोकि निषादू। कहि न जाइ जस भयउ बिषादू ॥३॥

अर्थ : निषाद प्रभु को पहुँचाकर लौटा तो मन्त्री सहित रथ को देखा। मन्त्री निषाद को देखकर विकल हो गये। ऐसा विषाद हुआ जो कहा नही जा सकता।

व्याख्या चैत्र शुक्ल दशमी को वनवास हुआ। एकादशी को शृङ्गवेरपुर

ठहरे। द्वादशी को सुमन्त्र को विदा किया। त्रयोदशी को भरद्वाज के आश्रम मे ठहरे। चतुर्दशी को निषादराज लौटे। देखा तो सुमन्त्रजी रथ के साथ अभी वही है।

मन्त्रीजी निषादराज को देखकर विकल हो गये। रही सही आशा भी टूट गयी। सम्भावना थी कि घोर वन देखकर सीताजी डरेंगी तब रामजी उन्हे लौटा देंगे। वह भी नही हुआ। निषादराज भी दुखी होकर लौटे थे। एक दूसरे को देखकर दोनो रो पडे। विषाद का वर्णन नही हो सकता।

राम राम सिय लखनु पुकारी। परेउ धरनि तल व्याकुल भारी॥
देखि दखिन दिसि हय हिहिनाही। जनु बिनु पख बिहँग अकुलाही॥४॥

अर्थ राम राम लक्ष्मण और सीता ऐसा पुकारते हुए पृथ्वी पर भारी व्याकुल होकर गिरे। दक्षिण की ओर देखकर घोडे हिनहिना रहे हैं जैसे बिना डैना का पक्षी व्याकुल हो।

व्याख्या मन्त्री रथ से नीचे गिर पडे। हाय मारकर रोने लगे। मानो राम लक्ष्मण और सीताजी उतने ही दूर है जहाँतक उनकी आवाज पहुँच सकती है। इस भाति तीनो मूर्तियो को नाम लेकर पुकारा। इधर घोडे अनाथ होकर दक्षिण की ओर देखकर अलग रो रहे हैं। उनका हिनहिनाना ही रोना है। ऐसे दीन हो रहे हैं जैसे बिना पंख के पक्षी हो।

दो नहि तृन चरहिं न पियहिं जल, मोचहिं लोचन बारि।
ब्याकुल भयेउ निषाद सब, रघुबर बाजि निहारि॥१४२॥

अर्थ न तृण चरते है न जल पीते हैं। आँखो से आँसू बहाते है। निषाद लोग रामजी के घोडो को देखकर व्याकुल हो गये।

व्याख्या सरकार से बिछोह हुए तीसरा दिन है। तब से घोडो ने न घास खाया है न पानी पीया है। उनके आँख से आँसू बह रहा है। जिस ओर रामजी गये है उधर देख देखकर हिनहिनाना ऊपर कह आये हैं। घोडो की यह दशा देख कर निषादगण व्याकुल हो गये कि रामजी के विरह मे जो न हो जाय सो थोडा है। जब पशुओ की यह दशा है तो सगे सम्बन्धियो की क्या दशा होगी। एक घोडे की यह दशा होती तो समझा जाता कि बीमार है।

धरि धीरज तब कहइ निषादू। अब सुमत्र परिहरउ बिषादू॥
तुम पडित परमारथ ग्याता। धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता॥१॥

अर्थ धैर्य धारण करके निषादराज कहने लगा कि सुमन्त्रजी! अब विषाद को छोडो। तुम पण्डित हो। परमार्थ के जाननेवाले हो। विधाता को प्रतिकूल जानकर धैर्य धारण करो।

व्याख्या विषाद मे धैय छूट जाता है। सो सुमन्त्रजी तो धैर्य नही धारण कर सके। पर निषाद ने धैर्य धारण करके कहा कि मन्त्रीजी! जो होना था सो

हो चुका। विषाद छोड़ने से ही छूटता है। अशोच्य को सोचना पण्डित का काम नहीं। सत्रु मित्र सुख दुख जग माँही। मोह मूल परमारथ नाहीं। आप परमार्थ के जाननेवाले हैं। आपको दुखी नहीं होना चाहिए। जब ब्रह्मा प्रतिकूल हो जाते हैं तब कोई उपाय काम नहीं करता। धैर्य की परीक्षा का यही समय है। अतः आप धैर्य धारण कीजिये।

बिबिध कथा कहि कहि मृदु बानी। रथ बैठारेउ बरबस आनी॥
सोक सिथिल रथु सकै न हाँकी। रघुबर बिरह पीर उर बाँकी॥२॥

अर्थ कोमल वाणी से अनेक प्रकार की कथाएँ कहकर जबरदस्ती लाकर सुमन्त्र को रथ पर बिठाया। वह शोक से ऐसे शिथिल थे कि रथ हाँक नहीं सकते थे। उनके हृदय में रामजी के विरह की तीखी पीड़ा थी।

व्याख्या सुमन्त्र किसी तरह बिना रामजी के अयोध्या लौटना नहीं चाहते। निषादराज ने कोमल वाणी से अनेक प्रकार की कथाएँ कहीं। जिनसे धैर्य बँध सके और जबरदस्ती रथ पर ला बिठाया। रामजी के विरह की पीड़ा ऐसी तीव्र थी कि समझाने बुझाने का कोई फल नहीं हुआ। हार्दिक व्यथा से अङ्ग शिथिल थे। रथ हाँकने की शक्ति नहीं।

चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बन मृग मनहु आनि रथ जोरे॥
अढुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछे। राम बियोग बिकल दुख तीछे॥३॥

अर्थ घोड़े तड़फड़ाते थे। रास्ता नहीं चलते थे मानो जङ्गली जानवरों को लाकर रथ में जोड़ दिया है। ठोकर खाते हैं। घूम घूमकर पीछे देखते हैं। रामजी के तीखे दुख से विकल हैं।

व्याख्या सारथि की यह दशा है कि रथ हाँक नहीं सकता। घोड़ों की यह दशा है कि वे आगे बढ़ना नहीं चाहते। रामजी के वियोग की पीड़ा उन्हें भी ऐसी कड़ी है कि वे रथ में जुते हुए तड़फड़ा रहे हैं। अन्य पशुओं की भाँति अशिक्षित से मालूम हो रहे हैं। बार बार ठोकर खाते हैं। आगे बढ़ाइये तो घूमकर पीछे देखते हैं।

जो कहु रामु लखनु बैदेही। हिकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही॥
बाजि बिरह गति कहि किमि जाती। बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती॥४॥

अर्थ जो कोई राम लक्ष्मण और सीताजी का नाम ले लेता है हिनहिनाकर उसकी ओर प्यार की दृष्टि से देखते हैं। घोड़ों की दशा कैसे कही जाय। वे मणि विहीन सर्प की भाँति विकल हैं।

व्याख्या सरकार सबकी आत्मा हैं। आत्मा किसे प्यारी नहीं है। घोड़ों की विकलता तो सारथि से कम नहीं। वे कुछ कह नहीं सकते। पर समझते सब

कुछ है। अत व्याकुल है। मणि विहीन सर्पों की सी उनकी दशा हो रही है। माँ कौसल्या ने कहा है

राघव एकबार फिरि आवा।
ये बरबाजि विलोकि आपने बहुरो बनहि सिधावो।
जे पय प्याइ पोखि करपकज बार बार चुचुकारे।
क्यो जीवें मेरे राम लाडिल ते अब निपट बिसारे।
भरत सौगुनीसार करत हूँ अतिप्रिय जानि तुम्हारे।
तदपि दिनहि दिन होत झँवरे मनहु कमल हिम मारे।
सुनहु पथिक जो राम मिलहिं वन कहियो मातु सदसो।
तुलसी मोहि और सबहिन ते इनको अधिक अदेसो।

दो भयउ निषादु विषादुबस, देखत सचिव तुरग।
बोलि सुसेवक चारि तब, दिये सारथी सग ॥१४३॥

अर्थ मन्त्री और घोडो को देखकर निषाद विषादवश हो गया। चार सुसेवको को बुलाकर सारथि के साथ कर दिया।

व्याख्या निषादराज धैर्य धारण किये था। पर मन्त्री और घोडा की दशा देखकर उसका धैर्य जाता रहा। चारो घोडो के सँभालने के लिए चार सेवक साथ कर दिये। जो घोडो को भी सँभाल तथा सारथि पर भी ध्यान रक्ख। इसीलिए सुसेवक कहा। अथवा देख चुका है कि मुनिजी भरद्वाजजी ने पहुँचाने के लिए चार बटु साथ कर दिये थे। यथा मुनि बटु चार सग तब दीन्ह। इसलिए इसने भी चार सुसेवक साथ दिये। रास्ता चलने म चार का साथ चाहिए।

गुह सारथिहि फिरेउ पहुचाई। बिरह बिषादु बरनि नहि जाई॥
चले अवध लेइ रथहि निषादा। होहि छनहि छन मगन बिषादा॥१॥

अथ गुह निषादराज सारथि को पहुँचाकर लौट आये। विरह से जो विषाद उन्हे है उसका वर्णन नही हो सकता। निषाद लोग रथ लेकर अयोध्या चले। वे भी क्षण क्षण विषाद म मग्न होते जाते हैं।

व्याख्या कुछ दूर तक निषादराज पहुँचाने गये। अपनी आँखो देख लिया कि सुसेवक घोडो को सँभाल लिये जाते है। तब लौटे। जब मन्त्री का सामना हुआ तब भी कहा कहि न जाइ जस भयउ बिषादू। अब घर लौटने पर कहते हैं बिरह बिषाद बरनि नहिं जाई। बाल बच्चे सब रो रहे है।

अब मन्त्री की अवध यात्रा कहते हैं। घोडे एकदम बेकार है। निषाद लोग रथ लिये चल जा रहे है। पर व भी क्षण क्षण विषाद मे मग्न हो जाते हैं। बार बार अपने को सँभालते है। पर सरकार का विरह ही ऐसा है कि उसे हटा नही सकते। बार बार मग्न हो जाते हैं।

सोच सुमंत्र बिकल दुख दीना। धिग जीवन रघुबीर बिहीना ॥
रहिहि न अंतहुँ अधम सरीरू। जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू ॥२॥

अर्थ : सुमन्त्रजी व्याकुल और दुःख से दीन होकर सोचते थे कि रघुवीर के बिना जीवन को धिक्कार है। अन्त में यह अधम शरीर रहने का नहीं। फिर रघुवीर के बिछुरते समय इसने यश क्यों न लिया।

व्याख्या : विकल पुरुष कैसा सोचता है सो कवि दिखलाते हैं। रघुबर बिरह पीर उर बाँकी हैं। उसे न सहकर मन्त्री दीन हो गया है। ऐसी पीड़ा के सहित जीवन को धिक्कारता है। रघुवीर विहीन होने की पीड़ा है। रामजी ने पिता सम माना। यथा : आदर कीन्ह पिता सम लेखा। सो मन्त्री ने भी पुत्र सम माना। जौ पै प्रिय बियोग बिधि कीन्हा। तौ कस मरन न माँगे दीन्हा। छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम सरीरा। सो भी अन्त में जाने ही वाला है। अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिना ध्रुवः। चाहे आज मरें चाहे सौ वर्ष बाद मरें। मरना तो ध्रुव ही है। इस समय मौका था। बड़ा यश मिलता। यथा : जिअन मरन फल दसरथ पावा। अंड कटाह अमित जस छावा। जिअत राम बिधु बदन निहारा। राम बिरह करि मरन सँवारा। सो यही मौका शरीर छोड़ने का था। सो नही छूटा।

भए अजस अघ भाजन प्राना। कवन हेतु नहि करत पयाना ॥
अहह मंद मनु अवसर चूका। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका ॥३॥

अर्थ : मेरे प्राण अपयश और पाप के पात्र हो गये। किस कारण से ये नही निकलते। अहो ! यह मन्दमन मौका चूक गया। अब भी हृदय दो टुकड़ा नहीं हो जाता।

व्याख्या : परम पावन प्राण आज अयश तथा अघ के भाजन हुए। जगत् में दुर्यश हुआ कि मन्त्री होकर कुँअर को वन पहुँचा आया। यह मन्त्री होने योग्य न था। बिना पाप के पीड़ा होती नही और तीखी पीड़ा हृदय में हो रही है। अतः अघभाजन भी हुए। प्राण प्रयाण के दोनों हेतु यहाँ उपस्थित हैं। अत्यन्त पीड़ा और दुर्यश। फिर भी प्राण नहीं निकल रहा है। मन्त्री मन को धिक्कारता है कि यह अवसर चूक गया। रामजी के वियोग होते ही हृदय को फट जाना चाहता था। सो अब भी नहीं फटता।

मीजि हाथ सिरु धुनि पछिताई। मनहुँ कृपन धन रासि गवाँई ॥
बिरिद बाँधि बर बीरु कहाई। चलेउ समर जनु सुभट पराइ ॥४॥

अर्थ : हाथ मलकर सिर पीटकर पछता रहा है। मानो कृपण ने धन की राशि गवाँ दी। वीरता का बाना बाँधकर और श्रेष्ठ वीर कहलाकर रणाङ्गन से जैसे सुभट भाग चला हो।

व्याख्या : धनराशि के गँवा देने पर हाथ मलना सिर पीटना ये सब लक्षण कृपणों में प्रकट होते हैं। उनके पश्चात्ताप की कोई सीमा नहीं रहती। सुमन्त्र ने राम लक्ष्मण और जानकी तीनों धनराशि खोया। अब लोभी कृपण की भाँति पछता रहे हैं कि मैं रामजी के वन पहुँचाने का साधन बन गया। मेरे करतब से रामजी वन गये। मैंने ही पता न लगे इस भाँति रथ पर चढ़ाकर वन पहुँचा दिया। यथा : सचिव चलायेउ तुरत रथ इत उत खोज दुराइ।

सुमन्त्रजी इस हौसले से चले थे कि मैं लौटा लाऊँगा। लोग भी कहते थे कि मन्त्री है। महाराज का सखा है। निष्फल नहीं लौट सकता। कम से कम सीताजी को लौटा ही लावेगा। पर सरकार के सामने कोई युक्ति चली नहीं। लौटाने के लिए थे सो पहुँचाकर लौट रहे हैं। वीर लब्धप्रतिष्ठ जिस भाँति संग्राम से भागकर मुख दिखाना नहीं चाहता। उसी भाँति सुमन्त्रजी भी मुँह दिखाना नहीं चाहते। यश प्यारा नहीं हुआ। प्राण प्यारा हुआ।

दो. बिप्र बिबेकी बेदबिद, संमत साधु सुजाति।
जिमि धोखे मद पान कर, सचिव सोंच तेहि भाँति ॥१४४॥

अर्थ : जैसे विवेकी वेद का जाननेवाला, साधु सम्मत, कुलीन ब्राह्मण धोखे से मद्य पी ले। उसी भाँति मन्त्री को सोच हुआ।

व्याख्या : विद्या विनय सम्पन्न ब्राह्मण यदि धोखे से मद्य पी ले तो उसका ब्राह्मणत्व ही चला जाता है। ब्राह्मण के लिए मद्य पीने पर जितने प्रायश्चित्त हैं सब मरणान्त हैं। अतः उसके शोक का ठिकाना नहीं। यही हाल सुमन्त्र का हुआ। यह धोखा खा गये। समझा था कि मैं अवश्य कम से कम सीताजी को लौटा लाऊँगा। पर नहीं लौटा सके। परम्परया महाराज के मृत्यु के कारण हो गये। यदि धोखा न होता तो उसी रथ पर महाराज को बिठला ले जाते।

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पतिदेवता करम बन बानी ॥
रहै करम बस परिहरि नाहू। सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू ॥१॥

अर्थ : जिस भाँति किसी कुलीन, साध्वी, सयानी, मनसा वाचा कर्मणा पतिव्रता स्त्री को कर्मवश पति को छोड़कर रहना पड़े। वैसा ही दारुण दाह मन्त्री के हृदय में था।

व्याख्या : कुलीन से जाति कहा। साधु से स्वभाव कहा। पतिदेवता कर्म मन वाणी से धर्म निष्ठा कहा। सभी साधन सौभाग्य के हैं। परन्तु कर्मवश विधि के प्रतिकूल होने से उसे पति का वियोग हो गया। ऐसी स्त्री को दारुण दाह होता है। यथा : बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे। प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना।

लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनइ न श्रवन बिकल मति भोरी ॥
सूखहिं अधर लागि मुह लाटी। जिव न जाइ उर अवधि कपाटी ॥२॥

अर्थ नत्रो म जल आ जाने स दृष्टि थोडी हो गयी। कानो स सुनायी नही पडता था। विकलता के कारण बुद्धि भोरी हो गयी। होठ सूख गये। तालू सूख गया। परन्तु अवधिरूपी किवाड के कारण प्राण नही निकल सकते थे।

व्याख्या ज्ञानेन्द्रियाँ शिथिल हो गयी। बुद्धि भारी हो गयी। कुछ समझ म नही आ रहा है। मुख मे शोष हो रहा है। मरण की दशा उत्पन्न हो गयी। फिर भी मौत नही आती। आशा लगी हुई है कि चौदह वर्ष बाद सरकार फिर लौटेंगे। मानो अवधिरूपी किवाड लगे हुए हैं। प्राण को निकलने नही देते।

बिबरन भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुँ पिता महतारी ॥
हानि गलानि बिपुल मन ब्यापी। जमपुर पथ सोच जिमि पापी ॥३॥

अर्थ शरीर का रङ्ग ऐसा विकृत हो गया कि देखते नही बनता। मानो मातृ-हत्या पितृहत्या लगी हुई है। बडी हानि और ग्लानि मन मे व्याप रही है। जैसे पापी यमपुर पथ म सोच करता हो।

व्याख्या शोक का वेग बढता ही जा रहा है। पहिले कृपण वैश्य का पछतावा कहा। उससे अधिक दु ख वीर क्षत्रिय का दु ख कहा। उससे भी अधिक विवेकी ब्राह्मण का सोच कहा। तीनो से तीव्र दाह पतिव्रता का कहा। इस भाँति उदाहरण देकर मन्त्री के शोक की बढोत्तरी दिखायी। परन्तु ये सब उदाहरण दैव वश दु ख प्राप्ति के थे। अब शोक का वेग और बढा तो सोचने लगा कि मैं महाराज के मृत्यु का कारण हो रहा हूँ। अत उनके चेहरे का रङ्ग बिगड गया। अब जितना अवध निकट आ रहा है उतनी ही विकलता बढती जा रही है। जो हानि होनेवाली है उसका ध्यान बँधा और उससे मन मे ग्लानि उत्पन्न हुई। अयोध्या यमपुर मालूम होने लगा। जैसे पापी यमपुर के रास्ते मे महा दु ख पाता हुआ सोचता है कि जब रास्ते मे यह दशा हो रही है तो यमपुर पहुँचने पर क्या दशा होगी। इसी भाँति मन्त्री भी, अयोध्या पहुँचने पर जिस दु ख का सामना करना पडेगा उसे सोच रहा है।

यहाँ सुमन्त्रजी सोच रहे हैं कि अवध जाने पर उन्हे सात प्रकार की परिस्थितियो का सामना करना पडेगा और इस भाँति सात प्रकार की तीव्रतम मानसिक व्यथाओ को झलना पडेगा। उन्ह स्मरण करके सुमन्त्रजी का हृदय ऐसा कातर हो रहा है मानो उन्ह उन व्यथाओ का इसी समय अनुभव करना पड रहा हो।

परिस्थिति	व्यथा
१ बचन न आव हृदय पछिताई। अवध काह मैं देखब जाई।	१ अहह मंद मन अवसर चूका। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका।
२ राम रहित रथ देखिहि जोई। सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई।	२ मीजि हाथ सिर धुनि पछिताई। मनहु कृपन धन रासि गँवाई।

परिस्थिति	व्यथा
३ धाइ पूछिहहिं मोहि जब विकल नगर नर नारि। उतरु देव मैं सबहिं तब हृदय बज्रु बैठारि।	३ बिरुद बाँधि बर बीर कहाई। चलेउ समर जिमि सुभट बराई।
४ पुछिहहिं दीन दुखित सब माता। कहब काह मैं तिन्हहि बिधाता।	४ बिप्र बिबेकी बेदबिद समत साधु सुजाति। जिमि धोखे मद पान कर सचिव सोच तेहि भाँति।
५ पुछिहहिं जबहिं लखन महतारी। कहिहौं कवन सँदेस सुखारी।	५ जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पति देवता करम मन बानी। रहै करम बस परिहरि नाहू। सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू।
६ राम जननि जब आइहि धाइ। सुमिरि बच्छ जनु धेनु लवाई। पूँछत उतरु देव मैं तेही। गे बन रामु लखनु बैदेही।	६ लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनइ न श्रवन बिकल मति भोरी। सूखहि अधर लागि मुँह लाटी। जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी। बिबरन भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुँ पिता महतारी।
७ पूछिहि जबहिं राउ दुख दीना। जिवनु जासु रघुनाथ अधीना। देहौं उतरु कवनु मुँह लाई। आयेउ कुसल कुअँर पहुँचाई। सुनत लखन सिय राम सँदेसू। तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू।	७ हानि गलानि बिपुल मन ब्यापी। जमपुर पथ सोच जनु पापी।

बचन न आव हृदय पछिताई। अवध काह मैं देखब जाई॥
राम रहित रथ देखिहि जोई। सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई॥४॥

अर्थ उसके मुख से बात नहीं निकलती। मन मे पछतावा हो रहा है कि अयोध्या जाकर मैं क्या देखूँगा। राम से रहित जो रथ देखेगा वह मुझे देखने मे सङ्कोच करेगा।

व्याख्या बिबरन भयउ से तन की दशा कहा। गलानि बिपुल मन ब्यापी से मन की दशा कहा। अब बचन न आव स वचन की दशा कहते हैं। मन मे पछता रहे हैं कि अभी अवध म जाकर न जाने क्या देखना है। यहाँ सीता राम लक्ष्मण वन गमन देखा। अवध म मरण देखना शेष है।

गर्हित कर्म करनेवाले को चाहे मुँह दिखाने मे सङ्कोच न हो पर शिष्ट पुरुष को उसका सामना करने म सङ्कोच होता है। मन्त्रीजी सोच रहे हैं कि उसी

भाँति अयोध्या मे लोग मुझे देखने मे सङ्कोच करेंगे कि यह रामजी को वन पहुँचाकर जीता लौट रहा हूँ।

दो. धाइ पूछिहहि मोहि जब, बिकल नगर नर नारि।
उतरु देब मै सबहि तब, हृदय बज्रु बैठारि ॥१४५॥

अर्थ : जब नगर के नर नारी व्याकुलता से दौड़कर मुझसे पूछेंगे तब कलेजे पर वज्र रखकर मुझे जवाब देना होगा।

व्याख्या : नगर के नर नारी विकल है। मेरे लौटने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मेरा आना सुनकर सब दौडे हुए मेरे पास आवेंगे। तब उनको उत्तर देने के लिए मुझे वज्र सा कलेजा करना पडेगा। सुमन्त्रजी राष्ट्र के महामन्त्री हैं। अवध मे बडी प्रतिष्ठा है। सबको भरोसा है कि रामजी वन गये। फिर भी महामन्त्री साथ हैं। बिना कुछ किये न लौटेगा। अतः मैं कुछ न कर सका। रामजी वन चले ही गये यह कहने मे उसे मृत्युतुल्य कष्ट है।

पुछिहहि दीन दुखित सब माता। कहब काह मै तिन्हहि बिधाता ॥
पुछिहहि जबहि लखन महतारी। कहिहौ कवन सँदेस सुखारी ॥१॥

अर्थ : जब दीन दुःखी माताएँ पूछेंगी हे विधाता! तब मैं उनसे क्या कहूँगा। जब लक्ष्मण की माँ पूछेगी तब मैं सुखी होकर कौन सा सन्देश कहूँगा।

व्याख्या : यम पुर पथ सोच जनु पापी : पहिले कह आये हैं। उसी को स्पष्ट करके दिखला रहे हैं कि पुरजन को उत्तर देने मे महाकष्ट। फिर माताओं के उत्तर देने मे जो स्वय दुःखी दीन हो रही हैं और भी अधिक कष्ट होगा। फिर लक्ष्मण की माँ पूछेंगी जिनके बेटे को मैं वन पहुँचाकर आ रहा हूँ। उनको उत्तर देने मे कितने बड़े कष्ट का सामना है। यहाँ दुःखी होकर सुमन्त्रजी अपने को सुखारी कह रहे हैं।

राम जननि जब आइहि धाई। सुमिरि बच्छु जिमि धेनु लवाई ॥
पूँछत उतरु देब मै तेही। गे बनु राम लखनु बैदेही ॥२॥

अर्थ : जैसे नयी ब्याई हुई गाय बछडे का याद करके दौडती है। उसी भाँति जब दौडी हुई रामजी की माँ आवेंगी तब मैं उन्हे उत्तर दूँगा कि राम लक्ष्मण जानकी वन चले गये।

व्याख्या : नयी ब्याई हुई गाय को बछडे का प्यार होता है। उसके स्मरण से उसके थन से दूध टपक पडता है। इस भाँति कौसल्याजी को रामजी पर बडी प्रीति है। मेरे आने का समाचार सुनकर वे स्वयं दौड़ी हुई आकर समाचार पूछेंगी। उनसे यह उत्तर देना कि राम लक्ष्मण जानकी वन चले गये कष्ट की पराकाष्ठा है।

जोइ पूछिहि तेहि ऊतरु देबा । आइ अवध अब यहु सुखु लेबा ॥
पूँछिहि जबहि राउ दुख दीना । जिवनु जासु रघुनाथ अधीना ॥३॥

अर्थ : जो पूछेगा उसे जवाब देना । यही सुख मुझे अब अवध में जाकर लेना है । जब दुःख से दीन महाराज पूछेंगे जिनका जीवन ही रामजी के आधीन है ।

व्याख्या : अब पूछने के प्रसङ्ग का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि अयोध्या जाकर मुझे जिस बडे भारी दुःख का सामना करना है वह यही है कि जो पूछेगा उसे उत्तर देना पड़ेगा । यदि सरकार को मैं लौटाने में समर्थ होता तो किसी को मुझसे पूछने की आवश्यकता ही क्या थी ? महा दुःखद सन्देश सबसे कहना मेरे लिए यही कार्य अयोध्या में है । यहाँ सुख से दुःख ध्वनित है । जैसे : कहिही कवन सँदेश सुखारी ।

यद्यपि महाराज है । पर इस समय दु.ख से दीन हो रहे हैं । क्योकि उनका जीवन ही राम दर्शन के आधीन है । यथा : समुझि देखु जिय प्रिया प्रबीना । जीवन राम दरस आधीना ।

देहौ उतरु कौन मुहु लाई । आएउँ कुसल कुँअर पहुँचाई ॥
सुनत लखन सिय राम सँदेसू । तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू ॥४॥

अर्थ : कौन मुँह लगाकर जवाब दूँगा कि कुँअर को पहुँचाकर मैं कुशल से लौट आया । लक्ष्मण सीता और रामजी का सन्देश सुनकर राजा तृण के समान शरीर छोड देंगे ।

व्याख्या : सुमन्त्रजी विचार करते है कि मै मन्त्री होकर उनसे कौन मुँह लेकर उत्तर दूँगा । उन्होने कह दिया था : नाहि त मोर मरनु परिनामा । कछु न बसाइ भयेउ बिधि बामा । ऐसे अवसर पर रामजी के न लौटने पर मुझे जीते जी लौटना किसी तरह से शोभा नही देता और लक्ष्मण सीता और रामजी का सन्देश सुनने की देर है । राजा के शरीर छोड़ने में देर न लगेगी । वे तृण के समान शरीर छोड देंगे ।

दो. हृदउ न बिदरेउ पंक जिमि, बिछुरत प्रीतमु नीरु ।
जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि, यहु जातना सरीरु ॥१४६॥

अर्थ : प्रियतम जल के बिछुडते ही हृदय कीचड की भाँति फट नही गया । मालूम होता है कि ब्रह्मदेव ने मुझे यह यातना शरीर दे दिया है ।

व्याख्या : कीचड़ का प्रियतम जल है । क्योकि वही उसके अस्तित्व का कारण है । उससे विछोह होते ही कीचड सूखकर फट जाता है । उसी भाँति प्रियतम रामजी के बिछुड़ते ही मेरे हृदय को फट जाना चाहता था परन्तु नही फटा । इससे अनुमान होता है कि ब्रह्मदेव ने मुझे यातना शरीर दे रक्खा है । यातना शरीर नारकी लोगो को मिलता है । जो पीड़ा का तो ठीक ठीक अनुभव करता है

र फटने छेदने पीटने आदि दण्ड पाने से छूटता नही। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका से उपक्रम करके हृदय न बिदरेउ से उपसहार करते हैं।

एहि बिधि करत पथ पछितावा। तमसा तीर तुरत रथु आवा ॥
बिदा किए करि बिनय निषादा। फिरे पाय परि बिकल बिषादा ॥१॥

अर्थ इस विधि से रास्ते मे पछतावा करते करते रथ तुरन्त तमसा के तटपर पहुँच गया। विनय करके निषादो को विदा किया। वे भी चरणो पर गिरकर विषाद से विकल लौट गये।

व्याख्या पछतावा तो बहुत हुआ। कहाँ तक लिखें। वचन न आव हृदय पछिताई से लेकर यहाँ तक पछताने की विधि दिखाने के लिए प्रादेश मात्र कथन किया। सुमन्त्रजी अयोध्या पहुँचने के भय से इतने डरे हुए हैं कि वहाँ पहुँचने मे जितनी देर हो उतना ही अच्छा समझते हैं। सई और गोमती नदी पार किया तब तमसा तीर पहुँचे। पर उन्हे मालूम हो रहा है कि तुरन्त पहुँच गये।

तमसा नदी अयोध्या नगर से बहुत निकट है। नगर की सीमा उसके बाद पडती है। यथा गयउ जहाँ बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाइ। सुमन्त्रजी ने वही रथ रोका और निषादो को लौटाने लगे। वे सुसेवक थे। राजभवन तक बिना पहुँचाये लौटना नही चाहते थे। पर सुमन्त्र ने विनय करके उन्हे लौटा दिया। वे भी नमस्कार करके विषाद से विकल होकर ही लौटे।

पैठत नगर सचिव सकुचाई। जिमि मारेसि गुरु बाँभन गाई ॥
बैठि बिटप तर दिवस गँवावा। साँझ समय तब अवसरु पावा ॥२॥

अर्थ नगर म प्रवेश करते हुए मन्त्री को ऐसा सङ्कोच होता था मानो उन्होने गुरु ब्राह्मण और गाय की हत्या की है। पेड के तले बैठकर दिन बिताया जब सन्ध्या हुई तब मौका मिला।

व्याख्या गुरुहत्या ब्रह्महत्या और गोहत्या ऐसे निन्दित कर्म हैं कि इनमे से एक का भी करनेवाला समाज से बहिष्कृत हो जाता है। उससे कोई सम्पर्क रखना नही चाहता। उसे समाज मे मुख दिखाते नही बनता और जिसने तीनो किया हो उसके लिए कहना ही क्या है। मन्त्रीजी राम लक्ष्मण और जानकीजी को वन क्या पहुँचा आये मानो इन्ह तीनो हत्याएँ लग गयी। अत इन्हे नगर प्रवेश करने मे परम सङ्कोच है। तमसा तीर निकट होने पर भी नगर से इतनी दूर है कि नागरिको का जाना वहाँ तक कम होता है। अत पेड के तले बैठकर दिन का शेष भाग व्यतीत किया जब सन्ध्या हुई तब प्रवेश का अवसर मिला।

अवध प्रबेसु कीन्ह अँधियारे। पैठ भवन रथु राखि दुआरे ॥
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाए। भूप द्वार रथु देखन आए ॥३॥

अर्थ अँधेरे मे नगर म प्रवेश किया। रथ को दरवाजे पर छोडकर राजभवन

मे घुस गये। जिन जिन लोगो ने समाचार सुना वे राजद्वार पर रथ देखने आये।

व्याख्या यहाँ नगर का क्या हाल है कि तमाम अँधेरा पडा है। नगर मे दीया नही जल रहा है। सन्ध्या समय सुमन्त्रजी तमसा तीर से चले। अँधेरा होते होते नगर मे प्रविष्ट हो गये। रथ को द्वार पर छोडकर तुरन्त राजभवन मे घुस गये। जिसमे किसी से सामना न हो। फिर भी कुछ लोगो को समाचार लग गया कि सुमन्त्रजी लौट आये। रथ द्वार पर खडा है। सो लोग बात को पक्की करने के लिए रथ देखने आये। इतनी अधिक उत्सुकता लोगा को है।

रथु पहिचानि विकल लखि घोरे। गरहिं गात जिमि आतप ओरे ॥
नगर नारि नर व्याकुल कैसें। निघटत नीर मीनगन जैसे ॥४॥

अर्थ रथ को पहिचान करके और घोडो को विकल देख करके उनके शरीर की दशा धूप म गलते हुए ओले की सी हो गयी। नगर के नर नारी ऐसे व्याकुल हुए जैसे पानी के घटने से मछलियाँ व्याकुल होती है।

व्याख्या • रथ को पहिचाना कि वही रथ है जिस पर सरकार सवार होकर गये थे। घोडो को देखा कि विकल है। समझ गये कि सरकार नही लौटे तो पसीना छूटने लगा। जैसे धूप मे ओल की दशा हो रही है। नगर के लोग ऐसे व्याकुल हुए जैसे जल के घटने के समय मछलियाँ व्याकुल होती हैं। यथा अवध अबु प्रिय परिजन मीना।

दो सचिव आगमनु सुनत सबु, विकल भयउ रनिवासु।
भवनु भयकरु लाग तेहिं, मानहुँ प्रेत निवासु ॥१४७॥

अर्थ मन्त्री का आगमन सुनकर मारा रनिवास विकल हो गया। उसे घर ऐसा भयकर लगा मानो वह प्रेत का निवास है।

व्याख्या • मन्त्री आगये यह सुनकर रनिवास विकल हो उठा। क्योंकि इस समाचार का तो अर्थ ही यही है कि रामजी नही आये। रामजी आये होते तो समाचार मिलता कि रामजी आये। इधर सुमन्त्रजी को राजमहल ऐसा भयंकर प्रतीत हुआ कि मानो यहाँ प्रेत का निवास है। यहाँ मनुष्य नही रहते। जिस घर मे प्रेत का निवास होता है वह स्थान देखने से भयकर दिखायी पडता है। भले ही उसमे मनुष्य भी रहते हा। अथवा प्रेतनिवास का अर्थ यमपुर किया जा सकता है. क्योकि यमराज परेतराट् कहलाते हैं। उनका निवास प्रेतनिवास है। पहिले कह आये हैं जमपुर पथ सोच जिमि पापी। सो मानो पापी यमपुर पहुँच गया। अब उसकी भयकरता देखता है। यथा यमद्वारे महाघोरे घोरा वैतरणी नदी।

अति आरति सब पूँछहिं रानी। उतरु न आव विकल भई बानी ॥
सुन इन श्रवन नयन नहिं सूझा। कहहु कहाँ नृप जेहि तेहि बूझा ॥१॥

अर्थ : अत्यन्त आर्त होकर सब रानियाँ पूछ रही हैं। उत्तर नही दे सकते। वाणी विकल हो गयी। न तो आँख से सूझता है न कान से सुनायी पड़ता है। जिस तिस से पूछ रहे हैं कि राजा कहाँ हैं ?

व्याख्या : मन्त्रीजी किसी तरकीब से नर नारियो के पूछने से तो बचे। पर रनिवास मे हैं और रानियाँ अत्यन्त आर्त हैं। अत. सबकी सब पूछ रही हैं। पहिले यही उनके समझ मे नही आता था कि उनको क्या उत्तर देंगे। यथा ' पुछिहहिं दीन दुखित सब माता। कहब काह मैं तिन्हहि बिधाता। सो वही हुआ वाणी विकल हो गयी। कुछ कहते नही बनता। विकलता और बढी। ज्ञानेन्द्रियाँ ठीक काम नही कर रही हैं। न तो आँख से सूझ पडता है कि कौन मुझसे पूछ रहा है न कान से सुनायी पडता है कि क्या पूछ रहा है। यही सबसे पूछ रहे हैं कि महाराज कहाँ हैं ? एक धुन सवार है कि महाराज ने भेजा था। उन्ही से सब कहना है।

दासिन्ह दीख सचिव बिकलाई। कौसल्या गृह गईं लेवाई ॥
जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। अमिअ रहित जनु चंदु बिराजा ॥२॥

अर्थ : दासियो ने मन्त्री की विकलता देखी तो कौसल्याजी के महल मे लिवा ले गयी। जाकर सुमन्त्र ने राजा को देखा। जैसे अमृत विहीन चन्द्रमा विराजमान हो।

व्याख्या : रानियो ने भी मन्त्री की विकलता देखी कि वे तो सुन ही नही रहे हैं उत्तर किसे दें। दासियो ने मन्त्री की विकलता देखी कि यहाँ मुख से कहने से काम न चलेगा। इन्हे महाराज तक पहुँचाना होगा। तब उन्हे कौसल्याजी के महल मे लिवा ले गयी। सुमन्त्रजी को महाराज ने कैकेयी के महल से भेजा था और वही मूर्च्छित हो गये थे। मूर्च्छा से जागने पर कौसल्याजी के महल में चले गये। कैकेयी का परित्याग किया। वहाँ जाने पर मन्त्री ने महाराज को देखा। स्वरूप मे बड़ा भारी अन्तर पाया। एक बारगी हतप्रभ हो गये हैं जैसे अमृतहीन चन्द्रमा पर राम विरह मे हतप्रभ होने की ही शोभा है। अत. विराजमान होना कहते हैं।

आसन सयन बिभूषन हीना। परेउ भूमितल निपट मलीना ॥
लेइ उसासु सोच एहि भाँती। सुरपुर ते जनु खसेउ जजाती ॥३॥

अर्थ : न तो आसन है। न शय्या है। न गहने हैं। अत्यन्त मलिन होकर पृथ्वी तल पर पडे हैं। लम्बी लम्बी श्वास ले रहे हैं और इस भाँति सोच रहे हैं जैसे स्वर्ग से ययाति राजा गिरे हो।

व्याख्या : राजा रत्नभुक् होता है। ससार मे जितनी उत्तम वस्तु हैं उसका पात्र राजा है। उसे अपने गौरव की रक्षा के लिए सर्वोत्तम आसन, सर्वोत्तम शय्या, सर्वोत्तम वस्त्राभूषण रखना पड़ता है। पर दु खी को सुख की सामग्री और भी दाहक होती है। अतः महाराज आसन शयन विभूषण हीन होकर भूमि पर पडे हुए हैं। उनकी उपमा ययाति राजा से दी जा सकती है। जो इन्द्र से ठगे गये। अपने मुख से अपने

पुण्य का बखान करके क्षीणपुण्य होने से स्वर्ग से गिरा दिये गये। इस अश मे तो यह उपमा ठीक है कि दूसरे से ठगे गये निरपराध राजा स्वर्ग से गिराये गये। पर वे पृथ्वी पर नही आने पाये। उनके नातियो ने अपनी अपनी तपस्या का कुछ भाग देकर उन्हे फिर स्वर्ग भेज दिया। इतने अश मे उपमा मेल नही खाती। अतः सम्पाती की उपमा देते है।

लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती ॥
राम राम कह राम सनेही। पुनि कह राम लखन बैदेही ॥४॥

अर्थ : क्षण क्षण मे सोच से छाती भर लेते हैं। जैसे दग्धपक्ष सम्पाती गिरा हुआ है। राम राम प्यारे राम कहते है। फिर राम लक्ष्मण विदेहपुत्री ऐसा कहते हैं।

व्याख्या . चक्रवर्तीजी पृथ्वी पर पडे हुए है। अतः दग्धपक्ष सम्पाती से उपमा दी गयी। यथा : जरेउ पख अति तेज अपारा। परेउ धरनि करि घोरचिकारा। बिना पङ्ख का विहँग दीन हो जाता है। उसके सोच का पारावार नही रहता। वही गति महाराज की हो रही है। प्रेमपात्र राम का स्मरण करते है। फिर राम लक्ष्मण वैदेही का स्मरण करते है। कोई दूसरी भावना ही मन मे नही है।

दो. देखि सचिव जय जीव कहि, कीन्हेउ दंड प्रनामु।
सुनत उठेउ व्याकुल नृपति, कहु सुमन्त्र कहँ रामु ॥१४८॥

अर्थ : देखकर मन्त्री ने जयजीव कहकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। सुनते ही व्याकुल होकर राजा उठ बैठे और कहा कि सुमन्त्र कहो राम कहाँ है ?

व्याख्या : राजा को ऐसी दशा मे देखकर मन्त्री ने जयजीव कहकर दण्डवत् की। महाराज का सामना होते ही मन्त्री सावधान हो गये। सुनने भी लगे और देखने भी लगे। जिसका हृदय मे अधिक गौरव होता है उसका सामना होते ही एक बार पागल को भी सावधान होते देखा गया है। जयजीव : का शब्द सुनते ही महाराज ने जान लिया कि सुमन्त्र आगये। उत्सुकता से उठ बैठे और पूछा कि राम कहाँ है ?

भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाइ। बूड़त कछु अधार जनु पाई ॥
सहित सनेह निकट बैठारी। पूछत राउ नयन भरि बारी ॥१॥

अर्थ : चक्रवर्तीजी ने सुमन्त्र को हृदय से लगा लिया। डूबते हुए को जैसे कुछ सहारा मिल जाय। प्रेम के सहित निकट बैठाकर आँखो मे आँसू भरे हुए राजा ने पूछा।

व्याख्या : राजा का परम बल मन्त्री होता है। तिस पर सुमन्त्रजी सखा भी हैं। अति सङ्कट के समय ऐसे व्यक्ति के मिलने से कुछ आधार सा मिल जाता है। डूबते हुए को तिनका का सहारा भी सहारा मालूम होता है। राजा ने मन्त्री को

हृदय से लगा लिया और प्रेम से निकट बिठा लिया और आँख में आँसू भरकर महाराज ने पूछा। आते ही प्रश्न किया था कि राम कहाँ हैं ? कुछ उत्तर न पाकर परिस्थिति का आभास मिल गया। अत नेत्रो मे आँसू भरकर पूछते है।

राम कुसल कहु सखा सनेही। कहँ रघुनाथ लखनु बैदेही ॥
आने फेरि कि बनहिं सिधाए। सुनत सचिव लोचन जल छाए ॥२॥

अर्थ हे सनेही सखा! रामजी का कुशल कहो। राम लक्ष्मण और वैदेही कहाँ हैं ? लौटा लाये कि वन को ही चले गये। सुनत ही मन्त्री की आँखे डवडवा आयीं।

व्याख्या चक्रवर्ती जी मन्त्री से कहते है कि तुम मेरे सखा हो। प्रेम के पात्र हो। तभी तुम्हे रामजी के साथ लौटाने को भेजा था। सो सबसे पहिल तो रामजी का कुशल कहो। वे स्वस्थ तो हैं। तुम अकेले मेरे पास आये। राम लक्ष्मण सीता को कहाँ छोडा। वे लौट आये और तुम शुभ समाचार देने आये हो कि वन को ही चले गये ? सुनते ही मन्त्री की भी आँखें आँसू से भर गयी।

सोक बिकल पुनि पूँछ नरेसू। कह सिय राम लखन सँदेसू ॥
राम रूप गुन सील सुभाऊ। सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ ॥३॥

अर्थ शोक से विकल है। इसलिए फिर महाराज पूछते हैं कि सीता राम और लक्ष्मण का सन्देश कहो। रामजी के रूप गुण शील और स्वभाव को स्मरण करके मन मे राजा सोच रहे हैं।

व्याख्या शोक से विकल हैं इसलिए दोबारा पूछते हैं। नही तो राजा हैं पहिले ही उत्तर न पाकर उन्हे समझ लेना चाहिए। फिर भी उत्तर न मिला। तब कहते हैं कि यदि नही लौटे तो कुछ कहा तो होगा। वह सन्देश ही सुना दो। ऐसा पूछते हैं और मन मे रामजी का रूप गुण शील और स्वभाव नाच रहा है। मन ही मन सोचते हैं कि

राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भयउ न हरषु हराँसू ॥
सो सुत बिछुरत गए न प्राना। को पापी बड मोहि समाना ॥४॥

अर्थ राज सुनाकर मैंने वनवास दे दिया। सुनकर जिसके मन मे न हर्ष हुआ न शोक हुआ ऐसे बेटे से, विछोह होते प्राण न गया। ससार मे मेरे सा पापी कौन है ?

व्याख्या मैंने वसिष्ठजी द्वारा राज देने का सन्देशा भेजा। सो देना तो दूर• रहा मैंने वनवास दे दिया। ऐसा आज्ञाकारी बेटा कि उसने सुख दु ख को न गिना। मेरी आज्ञा के शिराधार्य करने मे ही अपनी मनस्तुष्टि मानी। ऐसे पुत्र के बिछुडते ही मुझे मर जाना चाहता था। सो मैं नही मरा। न जाने कैसा पाप मैंने किया है कि मुझे यह दु ख भोगना पड रहा है। इससे तो मर जाना कितना अच्छा था। ससार

मे कोई भी ऐसा दु ख पडने पर मर जाता। पर मै नही मरा क्योकि मुझे अपने किये हुए पाप का दु ख भोगना है। अत मेरे समान पापी ससार मे कोई नही है।

दो सखा रामु सिय लखनु जहँ, तहाँ मोहि पहुँचाउ।
नाहिं त चाहत चलन अब, प्रान कहउँ सतिभाउ ॥१४९॥

अर्थ हे सखे! जहाँ राम जानकी लक्ष्मण है वहाँ मुझे पहुँचा दो नही तो मैं सत्य भाव से कहता हूँ कि प्राण मेरे चला चाहते है।

व्याख्या मन्त्री स्वय नही जानते कि राम जानकी सीता कहाँ है? इसीलिए रामजी ने मन्त्री को शृङ्गवेरपुर से ही विदा किया। निपादराज साथ चला उसे भी यमुना पार से लौटा दिया। मन्त्री कहना नही चाहता कि मै नही जानता कि राम लक्ष्मण सीता कहाँ हैं? इधर महाराज कह रहे हैं कि मुझे जल्दी से राम जानकी लक्ष्मण के पास पहुँचाओ। नही तो मै मरा चाहता हूँ।

पुनि पुनि पूजत मन्त्रिहि राऊ। प्रियतम सुअन सँदेस सुनाऊ॥
करहि सखा सोइ वेगि उपाऊ। रामु लखनु सिय नयन देखाऊ॥१॥

अर्थ बार बार मन्त्री से महाराज पूछते हैं कि मुझे परम प्रिय बेटे का सन्देश सुनाओ। हे सखे! तुरन्त ऐसा उपाय करो कि मैं राम सीता और लक्ष्मण को आँख से देखूँ।

व्याख्या मन्त्री का धैर्य छूटा हुआ है। वह बोलने मे असमर्थ हो रहा है। इधर महाराज बार बार पूछ रहे हैं कि मुझे परम प्रिय बेटे राम का सन्देश सुनाओ। साथ ही साथ यह भी कहते हैं कि जल्दी उन्हे लाकर मुझे दिखा देने का उपाय करो। विकलता म चित्त स्थिर न होने पर लोग ऐसा ही बोलते हैं। कैसे कोई राम जानकी लक्ष्मण को जल्दी से लाकर दिखा दे।

सचिउ धीर धरि कह मृदु बानी। महाराज तुम्ह पडित ज्ञानी॥
बीर सुधीर धुरधर देवा। साधु समाजु सदा तुम्ह सेवा॥२॥

अर्थ मन्त्री ने धैर्य धारण करके कोमल वाणी कहा कि महाराज! आप पण्डित ज्ञानी हैं। आप वीर है। सुन्दर धीरा मे धुरन्धर है। आपने सदा साधु समाज का सेवन किया है।

व्याख्या मन्त्री ने देखा कि महाराज का ज्ञान शोक से अपहृत हो गया है। अत इन्हे अपने स्वरूप का स्मरण दिलाना चाहिए। अत कहता है कि महाराज आप तो पण्डित हैं। पण्डित सोच नही करते। गतासूनगतासूश्च नानुशोचन्ति पण्डिता। आप ज्ञानी है। सर्वज्ञ समदर्शी है। आप के लिए पुत्र क्या और कलत्र क्या? यथा ज्ञान मान जहँ एकौ नाँही। देखइ ब्रह्म समाज सब माँही। आप वीर है। शूराणा मरण तृणम् आपको मृत्यु से भय कैसा? आप वीर धुरन्धर हैं। दु ख से विचलित क्यो होते हैं? साधु समाज की सदा सेवा की है।

समधी वनकर बारात ले चलने के समय भी आपने साधुओं का साथ नही छोड़ा। यथा : साधु समाज संग महिदेवा। जनु तनु धरे करहिं सुख सेवा। आपको यह मोह कहाँ से आया ?

जनम मरन सब दुख सुख भोगा। हानि लाभु प्रिय मिलन वियोगा ॥
काल करम वस होहिं गोसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं ॥३॥

अर्थ : जन्म, मरण, सब दुःख सुख के भोग, हानि, लाभ, प्रिय मिलन तथा उनका वियोग कालकर्म के वश है। जबरदस्ती रात और दिन की नाईं हुआ करते हैं।

व्याख्या : जन्म के बाद मरण फिर उसके बाद जन्म। दुःख के बाद सुख फिर उसके बाद दुःख, हानि के बाद लाभ उसके बाद फिर हानि प्रिय मिलन के बाद वियोग उसके बाद फिर मिलन। ये सब कर्म के फल के विपाक से होते हैं। नही चाहने से ये हटते नही। रात दिन की भाँति बलपूर्वक होते हैं। किसी के रोके नही रुकते। सुखस्यानन्तरे दुःख दुःखस्यानन्तरे सुखम्। इस ईश्वर की नियति को कोई अन्यथा नही कर सकता।

सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाही। दोउ सम धीर धरहिं मनमाही ॥
धीरजु धरहु बिबेकु बिचारी। छाड़िअ सोचु सकलु हितकारी ॥४॥

अर्थ : सुख से हर्षित होना और दुःख आजाने पर विलखने लगना तो अज्ञानी का काम है। पण्डित तो दोनों को समान ही देखते हैं। आप विवेक से विचार करके धैर्य धारण कोजिये। हे सकल हितकारी। सोच को छोड़िये।

व्याख्या : सुख दुःख आगमापायी हैं। अनित्य है। इनके लिए सहन करने का विधान है। यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुष पुरुषर्षभ। समदुःखसुखं धीर सोऽमृतत्वाय कल्पते। जिसे दुःख सुख पीडा नही देते ऐसा धीर पुरुष अमृतत्व के योग्य होता है। आप सबके हित करनेवाले हैं। आप सोच को छोड़िये। आपके सोच करने से सबके हित मे बाधा पडेगी।

दो. प्रथम बासु तमसा भयउ, दूसर सुरसरि तीर।
न्हाइ रहे जलपानु करि, सिय समेत दोउ बीर ॥१५०॥

अर्थ : पहिला निवास तमसा तट पर हुआ। दूसरा गङ्गा के तट पर दोनो वीर सीताजी के सहित नहाने के बाद पानी पीकर रह गये।

व्याख्या : शोक शान्ति की भूमिका बाँधकर पूरी कथा कहनी प्रारम्भ कर दी। जिसमे महाराज को पूरी परिस्थिति से परिचय हो जाय। कहा कि पहिले दिन तो तमसा तीर पर निवास हुआ। दूसरे दिन गङ्गातट पर निवास हुआ। दोनो भाई वीर हैं। सीता राम की योग्या हैं। तीनो मूर्तियो ने स्नान करके केवल पानी पी लिया। भाव यह कि वनवास मे तीनो समर्थ हैं। यह व्यवस्था तब तक की है

जब तक निषादराज से भेंट नही हुई। वीर कहने का तात्पर्य ही यह है कि भोजन न करने से कोई म्लानता न हुई।

केवट कीन्ह बहुत सेवकाई। सो जामिनि सिंगरौर गँवाई ॥
होत प्रात वट छीर मँगावा। जटामुकुट निज सीस बनावा ॥१॥

अर्थ केवट ने बडी सेवा की। वह रात सिंगरौर शृङ्गवेरपुर मे बीती। तब सबेरा होते ही बरगद का दूध मँगाया और अपने सिर पर जटा मुकुट बनाया।

व्याख्या दिन भर पानी पीकर ही रह गये। केवट ने बडी सेवा की। उसने सोने की भी व्यवस्था की। भोजन की भी व्यवस्था की। रात को वही रहे। प्रात काल होते ही बरगद का दूध मँगाया और उससे जटा बनायी और सिर पर जूट जूडा बाँधने से उसकी मुकुट सी शोभा हुई। भाव यह कि एकदम वन जाने पर तुल हुए देखकर कुछ कहने का साहस नहीं हुआ।

राम सखा तब नाव मगाई। प्रिया चढाइ चढे रघुराई ॥
लखनु बान धनु धरे बनाई। आपु चढे प्रभु आयसु पाई ॥२॥

अर्थ राम सखा ने तब नाव मँगायी। प्रिया सीताजी को सवार कराकर तब सरकार सवार हुए। लक्ष्मणजी ने धनुष बाण सँवारकर रख दिया। फिर प्रभु की आज्ञा पाकर स्वयं भी सवार हो गये।

व्याख्या पहिल कह आये है बरबस राम सुमन्त्र पठाये। सुरसरि तीर आपु तब आये और सुमन्त्र रथ पर जाने के लिए सवार हो गये और यहाँ रामजी के नाव पर सवार होने के समय सुमन्त्रजी की उपस्थिति कह रहे हैं। सो यह दोनो बातें कैसे बनती हैं ? बात यह हुई कि सुमन्त्रजी से रहा न गया। रथ से उतरकर सरकार के सवार होने के समय फिर वहाँ पहुँचे। रामजी और केवट के सवाद से जो रस पाठको के हृदय म उत्पन्न होता है उसे कुछ समय तक बने रहने देने के लिए उस समय कवि ने सुमन्त्र के लौटने का उल्लेख नही किया। अत सुमन्त्र के विदाई के पहले और उनके लौटने के बाद जो जो बातें हुईं उनका सार सुमन्त्र के मुख से कहला रहे है।

बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा। बोले मधुर बचन धरि धीरा ॥
तात प्रनामु तात सन कहेहू। बार बार पद पकज गहेहू ॥३॥

अर्थ रघुवीर रामजी मुझे विकल देखकर धैर्य धारण करके मीठी बात बोले कि हे तात! पिताजी से प्रणाम कहना और बार बार चरण कमल मेरी ओर से पकडना।

व्याख्या भाव यह कि सुमन्त्र की विकलता देखकर रामजी का जी भर आया। अत बोलने मे धैर्य धारण करना पडा और बोले कि पिताजी से मेरा प्रणाम कहना और अनेक बार मेरी ओर से चरण पकडकर तब मेरा सन्देशा कहना।

यथा : पितु पद गहि करि कोटि नति बिनय करब कर जोरि। चिन्ता कवनि बात की तात करब जनि मोरि।

करबि पाय परि बिनय बहोरी। तात करिअ जनि चिंता मोरी॥
बन मग मंगल कुसल हमारे। कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारे॥४॥

अर्थ : फिर चरणों पर गिरकर विनय कीजियेगा कि मेरे लिए चिन्ता न करें। वन के रास्ते में हम लोगों का कुशल मङ्गल आपकी कृपा अनुग्रह और पुण्य से होगा।

व्याख्या : भाव यह कि मन्त्री को रथ सहित भेजना जिसमें मुझे रास्ता चलने का कष्ट न हो अथवा चार दिन में वन का दर्शन करके चले आना आदि सन्देश का तात्पर्य यही है कि आपको मेरी चिन्ता है। सो चिन्ता न कीजियेगा। आपका पुण्य ऐसा है जिसके प्रभाव से वन के मार्ग में भी हम लोगो का कुशल मङ्गल रहेगा।

छं. तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सब सुखु पाइहौं।
प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहौं॥
जननी सकल परितोषि परि परि पाय करि बिनती घनी।
तुलसी करेहु सोइ जतनु जेहि कुसली रहहिं कोसल धनी॥

अर्थ : हे पिता ! आपके अनुग्रह से वन जाते हुए सब सुख पाऊँगा। आज्ञा पालन करके कुशल के साथ चरणो के दर्शन के लिए फिर लौट आऊँगा। सब माताओं का सन्तोष करके, उनके चरणों पर पड़कर विनय कीजियेगा। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा यत्न कीजियेगा जिसमे अवधपति कुशली रहे।

व्याख्या : यद्यपि वन में दुःख ही दुःख होता है। पर आपके अनुग्रह से मुझे सब सुख होगा। कानन नन्दन वन हो जायगा। यथा : जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत। यह न समझियेगा कि सब सुख मिलने से कही वही न रह जायँ। इसलिए कहते हैं कि इतने दिनों तक आपके चरणों के दर्शन की उत्कण्ठा रहने से, अवधि पूरी होते न होते मैं सेवा मे उपस्थित हो जाऊँगा। श्रीरामजी ने यह सन्देश पिता को देकर अब माताओं के लिए कहते हैं कि उनके पैरो पर गिरकर मेरी ओर से बड़ी विनती कीजियेगा। विनती वही है जो पिता से की गयी। इसलिए दोहराते नही हैं और मुझसे भी विनय किया कि आप ऐसा यत्न कीजियेगा जिससे महाराज कुशल रहे। रामजी पिता के प्रेम को जानते हैं। अतः उनकी ओर से इन्हें चिन्ता है। बार बार उनके कुशल के लिए कह रहे हैं।

दो. गुर सन कहब संदेसु, बार बार पद पदुम गहि।
करब सोइ उपदेसु, जेहि न सोच मोहि अवधपति॥१५१॥

अर्थ : बार बार गुरुजी के चरण कमलो को पकड़कर सन्देश कहना कि वही उपदेश करें जिससे मुझको कोसलपति न सोचें।

व्याख्या : विश्वामित्रजी के साथ भी महाराज मुझे नही जाने देते थे। गुरुजी के उपदेश से ही जाने दिया था। यथा : तब वसिष्ठ बहुविधि समझावा। नृप सन्देह नास कहँ पावा। रामजी कहते हैं कि आज भी उसी उपदेश की आवश्यकता है। जिसमे अवधपति मेरा सोच न करें। मेरे सोच करने से उन्हे खतरा है और सम्पूर्ण अवध की रक्षा का भार उन्ही पर है। उन्ही के कुशल से सब का कुशल है।

पुरजन परिजन सकल निहोरी। तात सुनाएउ विनती मोरी॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जा ते रह नरनाहु सुखारी॥१॥

अर्थ पुरवासी कुटुम्बी आदि सबका निहारा करके हे तात! मेरी विनती सुना देना कि वही मेरा सब प्रकार से हितकारी है जिससे महाराज सुखी रहे।

व्याख्या सरकार पुरजन का प्रेम देखते आये हैं कि उनके लिए सब लोग घर द्वार पुत्र कलत्र सबको छोडकर वनवास के लिए साथ चल पडे। अत. उनसे निहोरा करके विनती करते है कि आप लोग नि.सन्देह मेरा हित चाहते हैं। पर मेरे साथ वन मे आकर बसने मे मेरा सब प्रकार से हित नही है। सब प्रकार से हित तो महाराज के सुखी रखने मे है।

कहब संदेसु भरत के आए। नीति न तजिअ राजपदु पाएँ॥
पालेहु प्रजहि करम मन बानी। सेयेहु मातु सकल सम जानी॥२॥

अर्थ भरतजी के आने पर सन्देश कहना कि राजपद पाने पर नीति न छोडना। मनसा वाचा कर्मणा प्रजा का पालन करना। सब माताओ को समान जानकर सेवा करना।

व्याख्या यद्यपि रामजी भलीभाँति जानते है कि भरतजी मे वे सब बातें है जिनका कि वे उपदेश देना चाहते है। फिर भी छोटो को शिक्षा देना बडो का धर्म है। दूसरी बात यह है कि भरत को भी सन्देश देना है। न देने से नाराजगी मालूम होगी। अत उपदेश के ब्याज से उन्हे राज्य करने की आज्ञा देते है। कहते है कि राज्याभिषेक होने पर नीति नही छोडना। भाव यह कि तुम सदा नीति पर चलनेवाले हो। उसी रास्ते पर बने रहना। प्रजा के पालन मे प्रमाद न करना। माताओ मे भेद न रखकर सबकी सेवा करना अर्थात् कैकेयी पर रुष्ट न होना।

ओर निबाहेहु भायप भाई। करि पितु मातु सुजन सेवकाई॥
तात भाँति तेहि राखब राऊ। सोच मोर जेहि करइ न काऊ॥३॥

अर्थ : पिता माता और स्वजन की सेवा करके भाईपन की सीमा तक निर्वाह करना। महाराज को इस भाँति रखना जिससे वे कभी मेरा सोच न करें।

व्याख्या : मेरे मत से यहाँ 'और' पाठ होना चाहिए। ओर निबाहने का तो

अर्थ ही यह है राज्य स्वीकार न करना। ऐसा रामजी नही कह सकते। मैं तो यही अर्थ करूँगा कि माताओ को समान जानकर सेवा करना और माता पिता और स्वजन की सेवा करके भाईपन निबाहना। अर्थात् तुम्हारा भाईपन निबाहना मैं इसी बात मे मानूंगा कि माता और स्वजन की सेवा करो। यथा सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जाते रह नरनाह सुखारी। और पिताजी को तो इस भाँति रक्खो कि उन्हे मुझे स्मरण करने का अवसर न मिले कि रामजी यदि यहाँ होते तो मुझ यह कष्ट न होता या अमुक प्रकार से सुख देते। मेरे वन देने के कारण किसी भाँति अपमान न करना।

लखन कहे कछु वचन कठोरा। बरजि राम पुनि मोहि निहोरा ॥
बार बार निज सपथ देवाई। कहबि न तात लखन लरिकाई ॥४॥

अर्थ · लक्ष्मणजी ने कुछ कठोर वचन कहे। उन्हे रोककर रामजी ने मेरा निहोरा किया और बार बार शपथ दिलायी कि लक्ष्मण के लडकपन को पिताजी से न कहना।

व्याख्या रामजी के सन्देश के बाद लक्ष्मणजी के सन्देश की बारी आई। इस पर कहते है कि लक्ष्मणजी ने कुछ कठोर वचन कहे। रामजी ने उन्हे ऐसा कहने से रोका। वे वचन रामजी को बडे अनुचित मालूम पडे। मै आप से उसे नही कह रहा हूँ। क्योकि रामजी ने बार बार मुझे शपथ दिलाया है कि लक्ष्मण का सन्देशा पिताजी से नही कहना और मेरा निहोरा किया है।

दो कहि प्रनाम कछु कहन लिय, सिय भइ सिथिल सनेह।
थकित बचन लोचन सजल, पुलक पल्लवित देह ॥१५२॥

अर्थ प्रणाम कहके कुछ कहना चाहा पर सीताजी स्नेह से शिथिल हो गयी। वाणी रुक गयी। नेत्र मे जल आगये और देह मे पुलकावली हो आयी।

व्याख्या महाराज ने तीनो मूर्तियो का सन्देश पूछा था। अत सुमन्त्रजी अन्त मे सीताजी का हाल कहते हैं कि उन्होने प्रणाम कहकर कुछ सन्देश भी कहना चाहा पर कह न सकी। स्नेह से शिथिल हो गयी। यहाँ यह शङ्का उचित नही है कि सीताजी ने जो जवाब सुमन्त्रजी को दिया। उसे सुमन्त्रजी नहीं क्यो कह रहे हैं ? महाराज ने राम लक्ष्मण और सीताजी का सन्देश पूछा था। सुमन्त्रजी तीनो का सन्देश कह रहे हैं। उनसे जो जो बातें रामजी से या सीताजी से हुई। उसके कहने की कोई आवश्यकता वन जाने के पश्चात् नही रह गयी।

तेहि अवसर रघुबर रुख पाई। केवट पारहि नाव चलाई ॥
रघुकुल तिलक चले एहि भाँती। देखेउँ ठाढ कुलिस धरि छाती ॥१॥

अर्थ उसी अवसर रामजी का रुख पाकर केवट ने पार के लिए नाव चला

दी। रघुकुलतिलक इस प्रकार चले गये और मैं खड़ा हुआ छाती पर वज्र रखे देखता रहा।

व्याख्या जिस समय सीताजी सन्देश कहने को थी और स्नेहवश कह न सकी। उसी अवसर पर सरकार का रुख हुआ कि नाव आगे बढाओ रुकने मे कष्ट ही बढेगा। अत केवट ने पार की ओर नाव चला दिया। मैं कलेजे को वज्र किये हुए देखता रह गया और रघुकुल के तिलक रामजी चले गये।

मैं आपन किमि कहहुँ कलेसू। जिअत फिरेउ लेइ राम सँदेसू ॥
अस कहि सचिव बचन रहि गयऊ। हानि गलानि सोचवस भयऊ ॥२॥

अर्थ मैं अपना क्लेश कैसे कहूँ। जो मैं राम का सन्देश लेकर जीता लौटा। ऐसा कहकर मन्त्री की वाणी रुक गयी और वह हानि ग्लानि और सोच के वश हो गये।

व्याख्या मन्त्री जी कहते हैं कि मुझे इसी बात का बडा भारी क्लेश है कि मै रामजी को न लौटाकर उनका सन्देश लेकर लौटा। मै मर क्यो नही गया? इससे आगे मन्त्रीजी कुछ न कह सके। हानि ग्लानि और शोक के वश हो गये। रामजी का वन चला जाना यह मूलधन की हानि है। मैं मर क्यो नही गया। इस बात की ग्लानि है अब क्या होनहार है। इस बात का सोच है।

सूत बचन सुनतहिं नरनाहू। परेउ धरनि उर दारुन दाहू ॥
तलफत बिषम मोह मन मापा। माँजा मनहु मीन कहुँ ब्यापा ॥३॥

अर्थ सारथि का वचन सुनते ही महाराज पृथ्वी पर गिर पडे। उनके हृदय मे दारुण दाह हुआ। तडपने लगे। विषम मोह से विकल हो गये। मानो मछली को माजा व्याप्त हो गया।

व्याख्या सारथि के वचन से पूर्ण निराशा हुई और महाराज जो थोडी बहुत आशा के सञ्चार से उठकर बैठ गये थे पृथ्वी पर गिर पडे। विरह की ज्वाला हृदय मे भभक उठी। तडपने लगे। विषम मोह मे ऐसे विकल हो गये जैसे माजा खाकर मछली विकल होती है। बरसात का पहला पानी पडने से जो फेन नदियो मे उत्पन्न होता है उसे माजा मझा कहते है। उसे मछलिया खाकर अत्यन्त विकल होकर पानी के ऊपर आ जाती हैं।

करि बिलाप सब रोवहि रानी। महा बिपति किमि जाइ बखानी ॥
सुनि बिलाप दुखहू दुखु लागा। धीरजहू कर धीरजु भागा ॥४॥

अर्थ विलाप करके सब रानियाँ रोने लगी। महाविपत्ति का वर्णन कैसे किया जाय। उस विलाप को सुनकर दु ख भी दु खी हो गया। धैर्य का भी धैर्य जाता रहा।

व्याख्या पुत्र और पुत्रवधू के लौटाने की आशा नही रही और पति को

यह दशा देखकर रानियाँ विलाप करके रोने लगी। अर्थात् हार्दिक दुःख को व्यक्त करती हुई रोने लगी। महाविपत्ति आ पड़ी। उसका बखान किया नही जा सकता।

उस विलाप को जिसने सुना वही दुःखी हो गया। उसका धैर्य छूट गया। अर्थात् वह भी रोने लगा। इसी बात को आलङ्कारिक भाषा मे कवि कहते हैं कि दुःख भी दुःखी हो गया। धैर्य का भी धैर्य जाता रहा।

१८. नृपमरणप्रसङ्ग

दो. भयउ कोलाहलु अवध अति, सुनि नृप राउर सोरु।
विपुल विहग वन परेउ निसि, मानहु कुलिस कठोरु ॥१५३॥

अर्थ : महाराज के खास महल में शोर सुनकर अवध में बड़ा भारी हाहाकार मचा। जैसे बहुत से पक्षीवाले वन मे कठोर वज्रपात हुआ हो।

व्याख्या : महाराज का खास महल महारानी कौसल्या का महल है। प्रजा भी जान रही है कि महाराज उसी महल मे हैं और उनकी अवस्था चिन्ताजनक है। सुमन्त्र असफल होकर लौटे हैं। ऐसे अवसर पर उस महल मे भारी रुदन शब्द का होना अत्यन्त अनिष्ट का सूचक है। अतः सम्पूर्ण अयोध्या मे हाहाकार मच गया। उपमा देते हुए कवि कहते हैं कि जैसे पक्षियों से भरे वन मे रात को वज्रपात हो और सम्पूर्ण वन के पक्षी चीं चीं करने लगे। महाराज के महल का शोर वज्रपात से उपमित है और नगर का कोलाहल पक्षियो के शब्द से उपमित है। तुम जेहि लागि बज्र पुर पारा का साफल्य दिखाया।

प्रान कंठगत भयउ भुआलू। मनि विहीन जनु ब्याकुल ब्यालू ॥
इन्द्री सकल विकल भइँ भारी। जनु सर सरसिज बनु बिनु बारी ॥१॥

अर्थ : राजा का प्राण कण्ठ में आगया। ऐसे व्याकुल हुए जैसे मणिविहीन सर्प। सब इन्द्रियाँ अत्यन्त विकल हो गयी। जैसे तालाब का कमलवन बिना जल के हो जाता है।

व्याख्या : समाचार सुनते ही राजा की मरणासन्न दशा हो गयी। प्राण कण्ठ मे आगये। निकलने मे देर नही है। जैसे मणि के बिना सर्प व्याकुल हो जाता है। प्राणो के उखड़ने से इन्द्रियाँ भारी विकल हुईं। जैसे कमलवन के तालाब का पानी सूख गया हो। कमल सब मौजूद हैं पर नीरस होकर सूख चले हैं। इसी भाँति इन्द्रियाँ हैं। पर नीरस होकर विकल हो रही हैं। यहाँ शरीर की उपमा तालाब से है। इन्द्रियों की कमलवन से और रामजी की जल से।

कौसल्या नृपु दीख मलाना। रविकुल रवि अँथयउ जिय जाना ॥
उर धरि धीर राम महतारी। बोली वचन समय अनुसारी ॥२॥

अर्थ : कौसल्या ने राजा को कुँभलाया हुआ देखा। समझ लिया कि सूर्यकुल के सूर्य अस्त हुआ चाहते हैं। हृदय में धीरज धारण करके रामजी माता समयानुकूल वचन बोली।

व्याख्या : राजा की दशा देखकर कौसल्या ने समझा कि इनका शरीर अब नही रहा चाहता। मानसिक पोड़ा ही इस दशा का कारण है। अतः उस पीड़ा को कम करना चाहिए। मै रामकी माता हूँ। मैं यदि आश्वासन दूँ तो सम्भव है कि ये सँभल जायँ। अतः स्वय अधीर होती हुई भी उन्होंने धैर्य धारण किया और ऐसे अवसर पर जैसा उचित है वैसा बोली।

नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू॥
करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू॥३॥

अर्थ : नाथ! मन मे समझ कर विचार कीजिये। राम का वियोग अपार समुद्र है। इस अवध जहाज के आप ही कर्णधार : मांझी है। सब प्रिय लोगों का समाज ही इस पर सवार है।

व्याख्या : भाव यह कि शोक छोड़कर आप विचार में स्थित हो जाइये। बड़े असमञ्जस का समय उपस्थित है। राम वियोग रूपी समुद्र का सामना पड़ गया। जिसका पार करना सबके सामर्थ के बाहर की बात है। अयोध्या रूपी जहाज इस समुद्र में आ फँसा है। इस पर सभी स्वजन बान्धव सवार हैं। आप ही इसके कर्णधार हो। कर्णधार से ही आशा की जाती है कि वह जहाज पार लगा देगा और पार लगना ही चाहिए। क्योंकि सब बन्धु बान्धव इस पर हैं।

धीरजु धरिअ त पाइअ पारू। नाहि त बूड़िहि सबु परिवारू॥
जौ जियँ धरिअ बिनय पिय मोरी। रामु लखनु सिय मिलहि बहोरी॥४॥

अर्थ : धैर्य धारण कोजिये तो पार पाया जा सकता है। नही तो सब परिवार ही डूब मरेगा। यदि हे प्रिय! आप मेरे विनय को हृदय मे स्थान दें तो फिर राम लक्ष्मण सीता से भेंट होगी।

व्याख्या : यदि कर्णधार धैर्य धारण किये रहे तो बेड़ापार हो नही तो सारा परिवार डूब मरेगा। अतः इस सङ्कट के समय में भले ही सबका धैर्य छूट जाय पर आपका धैर्य बना रहना चाहिए। आप यदि मेरे विनय को हृदय मे स्थान दें तो राम लक्ष्मण सीता से फिर भेंट होगी।

दो. प्रिया बचन मृदु सुनत नृपु, चितयउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु, सीचत सीतल बारि॥१५४॥

अर्थ : प्रिया का कोमल वचन सुनकर राजा ने आँख खोलकर देखा। जैसे तड़पती हुई मलिन मछली शीतल जल से सीची गयी।

व्याख्या : महाराज प्राणकण्ठगत थे। इन्द्रियाँ विकल थी। आखें बन्द थी।

तडपते थे। पर अपनी प्रिया कौसल्याजी का वचन सुनकर आँख खोल दिया। कुछ आश्वासन मिला। जैसे बिना जल के तडपती हुई मछली को कोई ठण्ढे पानी से सिञ्चन करे और उसकी वेदना म तात्कालिक कमी हो जाय।

धरि धीरजु उठि बैठ भुआलू। कहु सुमन्त्र कहँ राम कृपालू ॥
कहाँ लखनु कहँ रामु सनेही। कहँ प्रिय पुत्रबधू बैदेही ॥१॥

अर्थ धैर्य धरकर महाराज उठ बैठे और बोले। सुमन्त्र! बतलाओ कि कृपाल राम कहाँ हैं? लक्ष्मण कहाँ है? स्नेही राम कहाँ हैं? प्रिय पुत्रवधू वैदेही कहाँ है?

व्याख्या महाराज राम लखन और सीता के फिर मिलने की बात सुनकर धैर्य धारण करके उठ बैठे। पर उन्हे शोक से उन्माद सा हो गया। वे सुमन्त्र से पूछने लगे कि राम लक्ष्मण जानकी हैं कहाँ? सुन चुके हैं कि शृङ्गवेरपुर म गङ्गा पार जाते हुए सुमन्त्र ने देखा। उसके बाद का हाल उस कुछ मालूम नही। फिर भी पूछते हैं कि वे लोग कहाँ हैं।

बिलपत राउ बिकल बहु भाँती। भइ जुग सरिस सिराति न राती ॥
तापस अध साप सुधि आई। कौसल्यहि सब कथा सुनाई ॥२॥

अर्थ राजा विकल होकर अनेक प्रकार से विलाप करने लगे। रात युग के समान हो गयी। समाप्त ही नही होती। अन्धे तपस्वी के शाप की बात याद आगयी। सब कथा कौसल्याजी को सुनाया।

व्याख्या राजा अनेक प्रकार से विलाप करने लगे। रात बीतना कठिन हो गया। दु ख की रात है। इसलिए युग के बराबर मालूम होने लगी। रात बीते तो राम लक्ष्मण जानकी कहाँ गये इसका पता लगाया जाय। उनसे भेंट करने का उपाय किया जाय। महाराज ने वन जाते समय रामजी से प्रश्न किया था और करै अपराध कोउ और पाव फल भोग। उसका उत्तर उस समय रामजी ने नही दिया। राजा को भी याद न रहा कि युवावस्था मे मैंने हाथी के धोखे मे रात के समय अन्धतापस के पुत्र को शब्दवेधी बाण मारा था। पुत्रशोक से दु खी होकर तपस्वी ने शाप दिया था कि मेरी भाँति पुत्रशोक म मरोगे। यही उस प्रश्न का उत्तर था। रामजी की प्ररणा स इस समय वह घटना याद आगयी तो सब कथा कौसल्याजी को सुनाया।

भयउ बिकल बरनत इतिहासा। राम रहित धिग जीवन आसा ॥
सो तनु राखि करबि मै काहा। जेहि न प्रेम पनु मोर निबाहा ॥३॥

अर्थ उस इसिहास को वर्णन करते हुए विकल हो गये कहने लगे कि राम रहित जीवन की आशा को धिक्कार है। उस शरीर को रखकर मै क्या करूँगा जिसने कि मेरे प्रेमप्रण का निर्वाह न किया।

व्याख्या : अन्ध तपस्वी का इतिहास वर्णन करने में उसका पुत्रशोक स्मरण करके भारी ताप हुआ। अतः और भी विकल हुए। कहने लगे कि राम के न होने पर जीने की आशा को धिक्कार है ! रामजी जहाँ हों वहाँ जाकर भेंट कर आवें तो जी जायँगे। ऐसा जीवन मैं नही चाहता। यदि राम के बिना शरीर रह गया तो मेरा प्रेम झूठा हो जायगा। अतः जो मेरे प्रेमप्रण का निर्वाह न करे ऐसे शरीर को रखकर मैं क्या करूँगा और प्रेमप्रण का निर्वाह शरीर छूटने से ही होगा। अतः हर हालत में शरीर छूटना ही ठीक है।

हा रघुनंदन प्रान पिरीते । तुम बिनु जिअत बहुत दिन बीते ॥
हा जानकी लखन हा रघुबर । हा पितु हित चित चातक जलधर ॥४॥

अर्थ : हा प्राणप्यारे रघुनन्दन ! तुम्हारे बिना जीते बहुत दिन बीत गये। हा जानकी ! हा लक्ष्मण ! हा रघुवर ! हा पिता के चित्तचातक के हित करनेवाले जलधर !

व्याख्या . महाराज विलाप करते हुए कहते है कि हा प्यारे रघुनन्दन ! तुम्हारे बिछोह होते ही मुझे मर जाना चाहता था। सो तुम्हारे बिना जीते हुए मुझे बहुत दिन बीत गये। दशमी को रामजी वन गये। छठे दिन सुमन्त्र लौटे। सो छ दिन महाराज को बहुत दिन मालूम हो रहा है। रामजी को स्मरण करके लक्ष्मणजी को स्मरण करके तथा वैदेहीजी को स्मरण करके हाय हाय कर रहे हैं और अन्त मे फिर रामजी के लिए हाय करते हैं और कहते हैं कि पिता के चित्तचातक के लिए बादलरूप तो तुम्ही हो।

दो. राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरह, राउ गयउ सुरधाम ॥१५५॥

अर्थ : राम राम कहकर, राम कहकर और फिर राम राम कहकर राम कहा और शरीर छोडकर रामजी के विरह मे राजा सुरलोक को पधारे।

व्याख्या : असाध्य व्याधि को देखकर तीन बार नाम लिया। यथा : देखी व्याधि असाधि नृप परेउ धरनि धुनि माथ। कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ। और मृत्यु को सामने देखकर छः बार स्मरण किया। यथा : राम राम राम राम राम राम जपत। मगल मुद उदित होत कलिमल छल छपत। सो मङ्गल मुद के उदय तथा घरेलू झगडे की शान्ति के लिए यही छः नामवाला मन्त्रोच्चारण ठीक समझा। इसी भाँति अनेक प्रकार से नाम लेने की अलग अलग फलश्रुतियाँ हैं। विनय-पत्रिका द्रष्टव्य है। अथवा[1] षटचक्र बेधे जौन। हरि रूप देखे तौन। अत. एक

---

१. १ मूलाधार २. स्वाधिष्ठान ३. मणिपुर ४ अनाहत ५. विशुद्ध ६. आज्ञाचक्र। ये छः चक्र शरीर मे हैं। इनके वेधन मे सहस्रार मे गति होती है जहाँ ब्रह्म साक्षात्कार होता है।

एक नाम स्मरण से एक एक चक्र का वेध किया। अथवा छ दिन तक सरकार का वियोग रहा। इसलिए छ वार लिया।

जिअन मरनु फलु दसरथ पावा। अड अनेक अमल जसु छावा ॥
जिअत राम बिधु बदनु निहारा। राम बिरह करि मरन सँवारा ॥१॥

अर्थ : जीने मरने का फल राजा दशरथ ने पाया। अनेक ब्रह्माण्डो मे उनका निर्मल यश छा गया। जीते जी रामजी का चन्द्र वदन देखते रहे और राम के विरह मे प्राण त्याग करके अपने मरणको सँवार लिया।

व्याख्या : एक बार जो रामजी का दर्शन पाता है उसका जीवन सफल हो जाता है और ये महाराज तो रामजी का दर्शन बराबर सत्ताईस वर्ष तक करते रहे। इनके ऐसा जीवन का फल पानेवाला कौन है जाकर नाम मरत मुख आवा। अघमै मुकुत होइ श्रुति गावा। और इनका मरण तो रामजी के विरह मे राम राम स्मरण करते हुए ही हुआ। अत. मरण का फल भी इनके समान किसी को नही मिला। यथा ' बदौं अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद। बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृण इव परिहरेउ।

जीना मरना उसी का फल है जिसका संसार मे यश हो। महाराज दसरथ का निर्मल यश तो अनेक ब्रह्माण्डो मे व्याप्त हो गया। यथा तुलसी जान्यौ दसरथहि धरमु न सत्य समान। राम तजेउ जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान।

सोक बिकल सब रोवहि रानी। रूपु सीलु बलु तेज बखानी ॥
करहि बिलाप अनेक प्रकारा। परहि भूमितल बारहि बारा ॥२॥

अर्थ · शोक से विकल होकर सब रानियाँ रो रही हैं। रूप शील बल और तेज का बखान करके अनेक प्रकार से विलाप करती हैं और पृथ्वीतल पर बार बार गिर रही हैं।

व्याख्या : महाराज चक्रवर्ती थे। इन्द्र के सखा थे। चौदहो भुवन मे इनका प्रभाव था। इनके रूप शील बल और तेज के लिए कहना ही क्या है। ऐसे महाराज की रानियाँ आज रो रही हैं। उनके गुणो का बखान करके विलाप करती हैं। पृथ्वी पर पछाड खाकर गिर रही है। ऐसी ही जगत् की गति है। यह जगत् का नाटक ही दु खान्त है।

बिलपहि बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदन करहि पुरबासी ॥
अथएउ आजु भानुकुल भानू। धरम अवधि गुन रूप निधानू ॥३॥

अर्थ दास और दासी विकल होकर विलाप कर रही है। घर घर पुरवासी रो रहे हैं। आज सूयकुल के सूर्य अस्त हो गये। जो धर्म के अवधि और गुण रूप के निधान थे।

व्याख्या ऐसे स्वामी के वियोग मे दास दासी भी विकल होकर रो रहे हैं।

घर घर रोना गाना मचा हुआ है। महाराज ऐसे प्रजावत्सल थे कि इनके आनन्द मे प्रजा आनन्दित होती थी और इनके वियोग मे रो रही है। गोस्वामीजी ने शोक मे भी तारतम्य दिखलाया है। पुरवासी उनकी धर्मनिष्ठा और गुण रूप की प्रशसा कर रहे हैं। कहते है कि आज सूर्यकुल का सूर्य अस्त हो गया।

गारी सकल कैकइहि देही। नयन बिहीन कीन्ह जग जेही॥
एहि बिधि बिलपत रैनि बिहानी। आए सकल महामुनि ग्यानी॥४॥

अर्थ · सब कैकेयी को गालियाँ देती हैं। जिसने ससार भर को नेत्ररहित कर दिया। इस प्रकार से विलपते हुए रात बीती और सब महामुनि ज्ञानी लोग आये।

व्याख्या : क्या रानियाँ, क्या दास दासी, क्या पुरवासी सब कैकेयी को गालियाँ देते है। सूर्य ही जगत् के चक्षु हैं। उनके अस्त होने से ससार नेत्रहीन हो जाता है। सो यह सूर्यास्त तो कैकेयी के कारण से हुआ। ससार मे जो आया है सो जायगा। पर उस आने जाने का प्राकृत नियम है। तदनुसार कार्य होने से दु ख कम होता है। यथा : जौ बिनु अवसर अथव दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू।

इस भाँति विलाप कलाप मे रात बीती। सवेरा होते ही महामुनि ज्ञानी आये। जिन पर शोक का प्रभाव नही पडता और दूसरो के शोकनिवारण मे भी जो समर्थ हैं।

दो तब बसिष्ठ मुनि समय सम, कहि अनेक इतिहास।
सोक निवारेउ सबहि कर, निज बिग्यान प्रकास॥१५६॥[1]

अर्थ · तब वसिष्ठ मुनि ने समयानुकूल अनेक इतिहास कहकर सबके शोक की निवृत्ति अपने विज्ञान के प्रकाश से किया।

व्याख्या : वसिष्ठजी बडे ज्ञानी हैं। कुलगुरु हैं। जानते है कि शोकनिवारण कैसे किया जाता है। उन्होने ऐसे ऐसे इतिहास सुनाये जिनसे शोकनिवारण हो। ऐसे समयानुकूल इतिहास वर्णन तथा अपने विज्ञान के प्रकाश से ससार की असारता का प्रतिपादन करके सबके शोक का निवारण किया।

तेल नाव भरि नृप तनु राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा॥
धावहु बेगि भरत पहि जाहू। नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू॥१॥

अर्थ नाव मे तेल भरकर राजा के शव को उनमे रख दिया। फिर दूतो को बुलाकर कहा कि जल्दी दौडो। भरतजी के पास जाओ। राजा का हाल कही भी किसी से न कहना।

व्याख्या पहिला काम गुरुजी ने यह किया कि राजा के शव को तेल भरी

१ १५६ दोहो में रामचरित कहकर अब १४ दोहो में दशरथ का और्ध्वदैहिक क्रिया-प्रसङ्ग कहेंगे।

नाव मे रखा। जिसम सस्कार के समय तक बिगड न जाय। तत्पश्चात् दूत को बुलाकर भरतजी के पास भेजा जो कि दूर कैकय देश मे थे। निकट ही चित्रकूट मे राम लक्ष्मण थे उनके पास दूत नही भेजा। रामजी के स्वभाव को जानते थे कि पिता ने मेरे वियोग म प्राण त्याग किया। यह सुनकर रामजी की क्या दशा होगी। इसलिए यह समाचार रामजी को मेरी अनुपस्थिति मे न लगे और उन्ह समाचार देना भी व्यर्थ है। वे नगर मे आ नही सकते। भरतजी को ही महाराज अभिषेक करने के लिए वचनबद्ध हो चुके हैं। अत भरतजी को ही बुलाना उचित समझा। इसलिए वही दूत भेजा और राजा का समाचार कही किसी से कहने के लिए मना कर दिया। समय ऐसा था कि उस समय महाराज के चारो बेटो म से कोई भी न था। ऐसे ही अवसर पर शत्रु चढ दबाते हैं। इसलिए राजा के मृत्यु का समाचार छिपाया गया।

एतनइ कहेउ भरत सन जाई। गुर बोलाइ पठयेउ दोउ भाई॥
सुनि मुनि आयसु धावन धाए। चले बेग बर बाजि लजाए।२॥

अर्थ भरत से इतना ही कहना कि गुरुजी ने दोनो भाइयो को बुला भेजा है। मुनिजी की आज्ञा सुनकर दूत दौड चले। अपने वेग से उत्तम घोडो को लज्जित करते थे।

व्याख्या यह समाचार भरतजी से भी न कहना। उनसे इतना ही कहना कि गुरजी ने दोनो भाइया को बुलाया है। मेरा नाम सुनते ही दोनो भाई तुरन्त चल पड़ेंगे। वसिष्ठजी की यह बात सुनकर दूत दौड चले। अश्वारोही भी नही भेजा। जिसमे किसी का ध्यान आकर्षित न हो। परन्तु वे दूत ऐसे थे कि उनके वेग को देखकर उत्तम घोडे लज्जित हो जायँ। अत अश्वारोहियो को भेजना उचित नही था।

अनरथु अवध अरभेउ जब तें। कुसगुन होहि भरत कहुँ तब तें॥
देखहि राति भयानक सपना। जागि करहि कटु कोटि कलपना॥३॥

अर्थ जब से अयोध्या मे अनर्थ आरम्भ हुआ तब से भरतजी को अपशकुन होने लगे। रात को भयानक स्वप्न देखते हैं और जागने पर करोडो बुरी कल्पनाएँ करते हैं।

व्याख्या बाह्य जगत् और आन्तर जगत् म घना सम्बन्ध है। ईश्वर के घर से खतरे की घण्टी बजती है। उसी को अपशकुन कहते हैं। अवध मे जब से अनर्थ आरम्भ हुआ अर्थात् जब से देवताओ की प्रार्थना से सरस्वती का आगमन विघ्नाचरण के लिए अवध मे हुआ। यथा हरषि हृदय कोसलपुर आई। जिमि ग्रहदसा दुसह दुखदाई। तभी से भरतजी को अपशकुन होने लगा। उसी का विवरण देते हैं। रात को भयानक सपना देखते हैं। जागने पर अनेक बुरी बुरी कल्पनाएँ

करते हैं। भयानक स्वप्न का फल बुरा होता है। भरतजी कैकेयदेश ननिहाल मे हैं। घर पर क्या होता है इसका पता नही।

विप्र जेंवाइ देहि दिन दाना। सिव अभिषेक करहिं विधि नाना॥
माँगहि हृदय महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई॥४॥

अर्थ : नित्य ब्राह्मणो को भोजन कराके दान देते थे। अनेक विधि से रुद्राभिषेक करते थे। महादेव को मनाकर मन मे माता पिता कुटुम्बी और भाइयो की कुशल चाहते थे।

व्याख्या : स्वप्नदोष की शान्ति के लिए ब्राह्मण-भोजन दान तथा रुद्राभिषेक का विधान है। अभिषेक भी जल दुग्धादि से अनेक प्रकार से किया जाता है। शिवलिङ्ग पर गोदोहन सद्य प्रत्यय कारक है। भरतजी ब्राह्मण भोजन कराते हैं। दक्षिणा देते है। तत्पश्चात् स्वय अनेक विधि से रुद्राभिषेक करते हैं।

अभिषेक के बाद माता पिता परिजन और भाई के कुशल की प्रार्थना करते है। क्योकि : भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी। अपने प्रेमियो के प्रति मन सदा पापाशङ्की होता है। सोचते है। सबेरे सपना देखा और वह ऐसा भयानक था कि मैं जाग उठा। इसका फल निश्चय अशुभ है।

१९. भरतागमन प्रसङ्ग

दो. एहि बिधि सोचत भरत मन, धावन पहुचे आइ।
गुरु अनुसासन श्रवन सुनि, चले गनेसु मनाइ॥१५७॥

अर्थ : इस भाँति भरतजी सोच ही रहे थे कि दूत आ पहुँचे। गुरुजी की आज्ञा सुनकर गणेशजी को मना कर चले।

व्याख्या : भरतजी इस भाँति अशुभ की आशङ्का करके सोच रहे थे। तब से अयोध्या से दूत आगये। उन्होंने गुरुजी का अनुशासन सुनते ही गणेश को मनाकर प्रस्थान कर दिया। यहाँ गुरु अनुशासन शब्द ही कह रहा है कि इसमे विचार को स्थान नही है। अनिष्ट के अनुमान से भयभीत हो गये। गुरुजी की इच्छा मालूम होती है कि पहुँचने के पहिले मुझे कोई समाचार न मिले। ऐसा सोचकर भरतजी ने दूतो से अधिक पूछताछ न की और न यात्रा मुहूर्त दिखलाया। गुरु की आज्ञा को ही सब कुछ मानकर जय गणेश कहकर चल पडे।

चले समीर बेग हय हाँके। नाघत सरित सैल बन बाँके॥
हृदय सोचु बड कछु न सोहाई। अस जानहिं जिअँ जाउँ उड़ाई॥१॥

अर्थ : उन्होने हवा के वेगवाले घोड़ो को हाँका। नदी पहाड़ तथा बाँके जङ्गलो को पार करते हुए चले। हृदय मे बडा भारी सोच था। इसलिए कुछ

अच्छा मालूम नही होता था। जी मे ऐसा मालूम होता था कि उडकर जल्दी से पहुँच जायँ।

व्याख्या : बडी शीघ्रता है। अत वायुगतिवाले घोडो को रथ मे जोडा। उन्हे भी जल्दी के लिए हाँक रहे हैं। बाँके शैल वन और नदियो को लाँघते चले जा रहे हैं। किसी की ओर दृष्टिपात नही करते। यद्यपि कैकय देश कश्मीर प्रान्त मे है। वहाँ का प्राकृतिक दृश्य बडा सुहावना है। पर भरतजी के हृदय मे बडा भारी सोच है। उन्हे कुछ अच्छा नही लग रहा है। रथ के इतने वेग से भी वे सन्तुष्ट नही हैं। चाहते हैं कि मै उडकर पहुँच जाऊँ। वे सोच रहे है गुरुजी ने बुलाया है। इतना ही कहकर दूत चुप है और कुछ नही कहता। बात रोकी गयी है। जो हमारे पहुँचने पर खोली जायगी। पिताजी ने क्यो नही बुलाया ? जिस बात का कहना उसे मना किया गया है। उसे जानने के लिए दूत पर दबाव डालना भी उचित नही। इधर भयानक सपना भी देखा। बात क्या हुई ?

एक निमेष बरष सम जाई। एहि बिधि भरत नगरु निअराई ॥
असगुन होहि नगर पैठारा। रटहि कुभाँति कुखेत करारा ॥२॥

अर्थ . एक निमेष वर्ष के समान बीतता था। इस भाँति नगर के सन्निकट भरतजी पहुँचे। नगर मे अब प्रवेश के समय अपशकुन होने लगे। कराल काग : कुखेत मे बुरी तरह से शब्द करने लगे।

व्याख्या · सोच की मात्रा इतनी बढी हुई है कि निमेष वर्ष के समान बीतने लगा। ऐसे समय मे सरित शैल वन की शोभा देखने का अवकाश या रुचि किसे हो सकती है। नगर पहुँचने की विधि कहकर प्रवेश कहते हैं।

प्रवेश के समय दाहिने सुखेत मे काग का होना शुभ है। सो वहाँ बायें कुखेत मे काग कठोर शब्द कर रहे हैं। काग की बोली अनेक प्रकार की होती है। कोई बडी ही भयङ्कर होती है।

खर सियार बोलहि प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरत मन सूला ॥
श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगरु बिसेषि भयावनु लागा ॥३॥

अर्थ गधे और सियार प्रतिकूल बोलने लगे। सुन सुनकर भरत के हृदय मे शूल उठता था। तालाब नदी वन बाग सब शोभारहित हो रहे थे और नगर तो विशेषरूप से भयावन मालूम हुआ।

व्याख्या : गधे रेंकते हैं। सियारिन फेकरती है। ये सब महा असगुन हैं। सुन सुनकर भरतजी के हृदय मे शूल होता था कि कोई भारी अनर्थ हुआ है। जिसे वहाँ सुनाना मुझे अच्छा नही समझा गया।

बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाही। सरित सरोवर देखि न जाही। लागति अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अँधियारी। यह अवस्था रामजी के वन गमन

के समय हुई थी। अब तो महाराज भी नही हैं। स्थानो मे मनुष्य के चेहरे की भाँति उदासी छा जाती है।

खग मृग हय गय जाँहि न जोए। राम बिरोग कुरोग बिगोए ॥
नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहु सबन्हि सब सपति हारी ॥४॥

अर्थ . रामजी के वियोगरूपी कुरोग से सताये हुऐ पक्षी मृग घोडे, और हाथियो को देखते नही बनता था। नगर के स्त्री पुरुष एकदम दु खी हो गये थे। मानो सबने अपनी सम्पति हार दी हो।

व्याख्या : हय गय कोटिन्ह केलि मृग पुरपसु चातक मोर। सुक रथाग पिक सारिका सारस हस चकोर। राम वियोग बिकल सब ठाढे। जहँ तहँ मनहु चित्र लिखि काढे। ये इतने दु खी हैं कि इनको देखते नही बनता। रोगी होने से कैसा भी सुन्दर पुरुष दर्शनीय नही रह जाता। सो ये सब राम वियोगरूपी रोग से ग्रस्त है। अत. हतप्रभ हैं।

नगर के भीतर जाने पर नर नारियो को देखा। उनकी दशा सुनिये। सब सम्पति हार जाने पर जैसे कोई दु खो होता है। उसे कुछ सूझता नही। वैसी दशा सबकी हो रही है। रामजी ही सबके सर्वस्व थे। उन्ही से सब बिधि सब पुर लोग सुखारी थे। उन्ही का मुखचन्द्र अयोध्या के लिए चन्द्र था। सो वन गये। इधर सूर्यास्त भी हो गया। यथा अथएउ आज भानुकुल भानू। अत अवध वासियो के दु ख का पारावार नही।

दो. पुरजन मिलहि न कहहि कछु, गँवहि जोहारहि जाँहि।
भरत कुसल पूछि न सकहि, भय बिपाद मन माँही ॥१५८॥

अर्थ • पुरजन मिलते हैं तो कुछ बोलते नही। चुपचाप जोहार करके अपना रास्ता पकडते हैं और भरतजी के मन मे भय भी था विपाद भी था। इसलिए कुशल नही पूछ सकते थे।

व्याख्या : रास्ते मे जो मिले उनका हाल सुनिये। उन्हे भरतजी के देखने पर किसी प्रकार का हर्ष नही है। उदासीनता इतनी बढी हुई है कि कुशल तक नही पूछते। राजा के नाते जोहार कर देते हैं और चुपके से अपना रास्ता पकडते हैं। जिसमे बातचीत का अवसर न आने पाये। उन्होने कुशल न पूछा तो भला भरतजी ही पूछते। सो ये पूछ नही सकते थे। उनके मन मे भय था कि पूछने पर कोई बडी ही अनिष्टकारी घटना का समाचार मिलेगा। जिससे परिचित करना मुझे उचित नही समझा गया। अत अत्यन्त विपण्ण थे।

हाट बाट नहिं जाइ निहारी। जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी ॥
आवत सुत सुनि कैकयनदिनी। हरषी रबिकुल जलरुह चदिनी ॥१॥

अर्थ बाजार और रास्ता देखते नही बनता था। मानो नगर के दसो

दिशाओ म आग लगी हो । बेटे का आगमन सुनकर सूर्यकुल कमल के लिए चाँदनी रूपी कैकयनन्दिनी कैकेयी बडी प्रसन्न हुई ।

व्याख्या जिस नगर के दशो दिशाओ मे आग लगी हो वहाँ के हाट बाट की दुर्दशा के लिए क्या कहना है । यह आग कैकेयी रूपी किरातिनी ने अपने बेटे के कल्याण के लिए लगाया है गोडवाने मे आज भी बीमार बच्चो के कल्याणार्थ वन मे आग लगाने की मनौती मानी जाती है। इसीलिए उसे रविकुल जलरुह चन्दिनि कहा । भल ही वह कैकयानन्द वर्धनी क्यो न हो ।

सजि आरती मुदित उठि धाई । द्वारेहिं भेटि भवन लेइ आई ॥
भरत दुखित परिवारु निहारा । मानहु तुहिन बनज बनु मारा ॥२॥

अर्थ आरती सजाकर बडे हर्ष से उठकर दौडी । द्वार पर ही मिलकर घर लिवा ले गयी । भरत ने परिवार को दु खी देखा । जैसे कमलवन पर पाला पडा हो ।

व्याख्या बेटा राजा होने आ रहा है । अत आरती साजी जा रही है । बडी प्रसन्न है । आप ही आरती करने दौडी । दूसरा कोई साथ नही है । द्वार पर पहुँच कर वही आरती की और मिल भेंटकर अपने घर लिवा ल गयी कि कही दूसरे किसी महल म प्रणाम करने न चल जायँ । कोई ऐसी पट्टी न पढा दे कि सब करा धरा व्यर्थ पड जाय ।

भरतजी गुरुजी के यहाँ न जाकर सीधे घर आये । जानत है कि पूर्णकाम गुरुजी को कोई निज का काम हो नही सकता । कोई बात घर म बिगडी है । माता पिता पुरजन और भाई के विषय मे आशङ्का है। स्वप्न म भी भारी अशुभ माता के विषय मे ही देखा है । दरवाजे पर लोग जुट गये है । पर दु खी हैं । कुछ पूछते पर माँ आगयी । आरती करके मिल भेटकर अपने महल मे लिवा ल गयी । सब भेद कहना है । क्योकि भरतजी कुछ जानते नही । शत्रुओ से सावधान करना है । मित्र रूप मे शत्रु बहुत हैं । क्योकि इसी ने रघुकुल कमल विपिन पर चाँदनी रात बनकर पाला गिराया है ।

कैकेई हरषित एहि भाँती । मनहुँ मुदित दव लाइ किराती ॥
सुतहि ससोच देखि मनु मारे । पूँछति नैहर कुसल हमारे ॥३॥

अर्थ कैकेयी इस प्रकार प्रसन्न है जैसे किराती वन मे आग लगाकर प्रसन्न होती है । बेटे को शोकयुक्त तथा मन मारे देखकर पूछती है कि हमारे मायके म सब कुशल तो है ।

व्याख्या किराती जङ्गल म आग लगाकर प्रसन्न हो जाती है कि अब मेरा बेटा चङ्गा हो जायगा । इसी भाँति इतना बडा अनर्थ करके कैकेयी प्रसन्न है कि अब मेरा बेटा राजा हो जायगा । जैसे किराती जङ्गल म आग लगाकर हर्षित होती है कि अब मेरा बेटा चङ्गा हो जायगा । किरातो म अब भी ऐसा विश्वास है कि

जङ्गल मे आग लगा देने से बीमार अच्छा हो जाता है। अत आज भी वे बीमार बच्चो के स्वास्थ्य लाभ के लिए वन मे आग लगा देती है।

लोगो को दु खी देखकर भरत उदास हैं। इस बात का ख्याल ही नही है। रहै न नीच मते चतुराई। भय उत्पन्न हुआ कि मेरे मायके मे तो सब कुशल है न। मायके का बडा भरोसा है। यथा नैहर जन्म भरब बरु जाई इत्यादि। भरतजी को सशोक मन मारे देखकर नैहर के कुशल के प्रति आशङ्का हुई।

सकल कुसल कहि भरत सुनाई। पूंछी निज कुल कुसल भलाई ॥
कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता ॥४॥

अर्थ भरतजी ने सब कुशल कह सुनाया। तब अपने कुल का कुशल मङ्गल पूछा। बतला कि पिताजी कहाँ हैं, सब मातायें कहाँ है? सीताजी रामजी और प्रिय भाई लक्ष्मण कहाँ है?

व्याख्या परिजनो को देख ही लिया। अब जिन्हे नही देखा उन्हे पूछते हैं। महाराज कैकेयी को अधिक मानते थे। प्रायेण उसी के महल मे रहते थे। इसी से सब का आना जाना लगा रहता था। सो कोई नही दिखायी पड रहा है। भरत का आना सुनकर भी कोई नही आया। इसलिए एक एक को पूछ रहे हैं।

दो सुनि सुत बचन सनेहमय, कपट नीर भरि नयन।
भरत श्रवन मन सूल सम, पापिनि बोली बयन ॥१५९॥

अर्थ पुत्र के स्नेहमय वचन को सुनकर वह पापिनी आँखो मे कपट के आँसू भरकर भरत के मन और कानो के लिए शूल के समान वचन बोली।

व्याख्या पति विषयक स्नेहमय जिज्ञासा के वचन सुनकर विधवा माता की पीडा का पारावार नही रहता। सो कैकेयी को कोई पीडा नही हुई। उसे सात्त्विक भाव नाट्य करने के लिए आँखो मे कपट के आँसू भरने पडे। मन मे दु ख नही है। दिखाना चाहती है कि मैं दु खी हूँ। पति म प्रेम न देखकर पुत्र को माता के प्रति अश्रद्धा होती है। अत यह नाट्य हो रहा है। इसी से कवि पापिनी कह रहे है। इसी के करतब से पति मरे। रामजी को वनवास हुआ। यह सब भरत के लिए किया। सो भरत को भी उसके वचन शूल की भाँति चोट पहुँचावगे।

तात बात मै सकल सँवारी। भइ मथरा सहाय बिचारी ॥
कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ। भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ ॥१॥

अर्थ बेटा! मैंने सारी बातें बना ली थी। बिचारी मन्थरा सहायक हुई। बीच म विधाता ने कुछ काम बिगाड दिया। महाराज इन्द्रपुर को पधार गये।

व्याख्या कहती है कि आदमी का बिगाडा हुआ तो सब मैंने सँवार लिया। अर्थात् राम को राज्य सब मिलकर दिलवा ही चुके थे। इतना बडा रघुवश है। किसी ने मेरी सहायता न की। बिचारी मन्थरा ने वचन सहाय किया। वही एक

मायके की है। जो करणी किया है उसी के प्रकट करने की भूमिका बाँध रही हैं। पहिले ही वार्ता विशेष न कहकर ऐसी बातें करना जिसमें पीछे विवक्षित बात जम जाय यही भूमिका है। जो बात ब्रह्मा बिगाडते हैं वह मनुष्य का सुधारा नही सुधारता। राजा का देहान्त हो गया। सँवारा सो हमने, बिगाड़ा सो ब्रह्मा ने : यही तामसी बुद्धि है। बात को सँभालकर कहती है। जिसमे भरतजी को कम पीड़ा हो। मरना न कहकर इन्द्रपुर पधारना कह रही है।

सुनत भरतु भए बिबस बिषादा। जनु सहमेउ करि केहरि नादा॥
तात तात हा तात पुकारी। परे भूमि तल ब्याकुल भारी॥२॥

अर्थ : सुनते ही भरतजी विषाद के वश हो गये। जैसे सिंह का नाद सुनकर हाथी सहम उठा हो। तात! तात! हा तात! ऐसा पुकार करके अत्यन्त व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

व्याख्या : हाथी के लिए सिंह का नाद श्रवण मन के लिए शूल के समान है। केहरि का गन्ध हाथी नही सह सकते। कोसों दूर भागते हैं। नाद सुनने पर तो कुछ करते धरते नही बनता। महाराज का अस्वस्थ होना भरतजी नही सह सकते थे। अतः मरण सुनने पर भारी विकलता हुई। अपने को सँभाल न सके। धैर्य छूट गया। चिल्लाकर रो उठे और पृथ्वी पर गिर गये।

चलत न देखन पायउँ तोही। तात न रामहि सौंपेहु मोही॥
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी। कहु पितु मरन हेतु महतारी॥३॥

अर्थ : अन्त समय मे मैं आपको देख न सका। हे तात! आपने मुझे रामजी को सौंपा भी नही। फिर धैर्य धारण करके सँभलकर उठे। बोले माँ! पिता के मरण का कारण बताओ।

व्याख्या : सुरपुर गवन सुनावा। अत. कहते हैं : चलत न देखन पायउँ तोही। भरतजी ने समझा कि सरकार ने दाह क्रिया किया होगा। सो मरती समय मैं मुख भी न देख सका। अन्तिम दर्शन मेरे भाग्य मे नही था। एक आवश्यक बात मेरे लिए नही कर सके। रामजी को मुझे नही सौंपा कि मेरे बाद तुम्ही इसके पिता हो।

कैकेयी कुछ नही कहती कि शोक का वेग निकल जाने दो। तब खुशी की बात सुनावेंगे। बेटे को ख्याल है कि राजा तो रामजी हो गये अब मेरा भरण पोषण रामजी के हाथ है। यदि सौंप देते तो बड़ी जागीर मिलने की आशा थी। नही तो थोड़ी ही मिलेगी और कौन कह सकता है कि न भी मिले। यह इसे नही मालूम है कि अब मैं ही राजा हूँ। अब इसे खुशखबरी सुनानी चाहिए। तब से भरतजी अपने को सँभालकर उठ बैठे। उठने मे अपने को सँमालते हैं। हाथ पैर ठीक काम नही करते। अब पूछते हैं कि महाराज को कौन सा रोग हो गया था?

सुनि सुत वचन कहति कैकेई । मरमु पाछि जनु माहुर देई ॥
आदिहु तें सब आपनि करनी । कुटिल कठोर मुदित मन बरनी ॥४॥

अर्थ बेटे का वचन सुनकर कैकेयी कहती है। मानो मर्म पर घाव करके विष दे रही है। वह कुटिल कठोर कैकेयी। आरम्भ से अपनी करणी बड़े प्रसन्न मन से सुना गयी वर्णन कर गयी।

व्याख्या भरतजी का वचन सुनकर जो कैकेयी ने कहा उसे आगे कहा जायगा। पहले प्रभाव कहते है। मानो मर्म पर घाव करके उस पर विष की पट्टी दी जा रही है। पहला वरदान भरत को राज्य माँगना मर्म पर घाव करना है और दूसरा वरदान रामजी को वनवास देना उस पर जहर की पट्टी बाँधना है। विष खिलाने से भी अधिक सद्य परिणाम घाव पर विष देने से होता है। क्योंकि खाने के बाद पाक होने मे कुछ समय लगता है और घाव पर विष रखने से उसका ससर्ग रक्त से सद्य हो जाता है। अत उसका तुरन्त प्रभाव होता है। शूल से वचन ने मर्म पर घाव किया। यथा भरत श्रवन मन सूल सम पापिनि बोली बयन। दूसरे वचन ने उस पर विष प्रयोग सा प्रभाव डाला।

कैकेयी ऐसी कठोर है कि अपनी कुटिलता भरी करणी लगी प्रसन्न होकर वर्णन करने। कहने लगी कि मन्थरा द्वारा पता लगने पर कि राम का राज्याभिषेक होनेवाला है। मुझे बडी चिन्ता हुई कि उनके अभिषेक होने पर तुम्हे उनका गुलाम होकर रहना पडेगा। उधर अभिषेक की सब तैयारी हो चुकी थी। फिर मन्थरा ने जैसे जैसे समझाया जैसे जैसे वरदान माँगा गया, जैसे रामजी वन गये, जिस भाति महाराज का देहावसान हुआ, सब कह गयी।

दो भरतहि बिसरेउ पितु मरन, सुनत राम बन गौनु ।
हेतु अपनपउ जानि जिअँ, थकित रहे धरि मौनु ॥१६०॥

अर्थ भरतजी को रामजी का वन जाना सुनकर पिता का मरण भूल गया। अपने को ही कारण समझकर चुप होकर ठक हो गये।

व्याख्या राम वनगमन का चोट पितु मरण से भी बडा हुआ। मर्म पर घाव करने से विष की पट्टी अधिक दु खदायक हुई। बडा भारी दु ख आजाने से छोटा दु ख भूल जाता है। पिता का मरण सुनने पर तो रोये चिल्लाये। पर राम वनगमन सुनकर मौन होकर स्तब्ध हो गये। क्योंकि मन मे समझा कि सब अनर्थ का कारण तो मैं हुआ पहिल वरदान का ही दूसरा वरदान पोषक है।

बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति । मनहुँ जरे पर लोनु लगावति ॥
तात राउ नहि सोचइ जोगू । बिढइ सुकृत जसु कीन्हेउ भोगू ॥१॥

अर्थ विकल देखकर बेटे को समझाती है। मानो जले पर नमक छिडकती

है। वेटा ! महाराज सोचने योग्य नही है। उन्होने पुण्य और यश उपार्जन करके ससार मे सुख किया है।

व्याख्या समझती है कि बाप के मरने के शोक मे लडके को राज्य प्राप्ति की खुशी दब गयी। मर्म पर चोट करके विष देना सहा जाता है। जले पर नमक छिडकना नही सहा जाता। भरतजी का कलेजा जल रहा है। तिस पर इसका समझाना नमक का काम कर रहा है। सहा नहीं जाता। कैकेयी कहती है कि पाप कर्म करके सुख नही भोगा। पुण्य भी कमाया। यश भी कमाया और सासारिक सुख भी भोगा। पापी के लिए सोचा जाता है कि इसकी क्या गति होगी या दुखिया के लिए सोचा जाता है कि बिचारा मर गया। कुछ सुख भोगने को न मिला। राजा को तो दोना लोक म सुख ही सुख हुआ। उनके लिए क्यो सोचते हो ?

जीवत सकल जनम फल पाए। अत अमरपति सदन सिधाए ॥
अस अनुमानि, सोच परिहरहू। सहित समाज राजु पुर करहू ॥२॥

अर्थ जीते जी जन्म पाने का सभी फल पाया। अन्त मे इन्द्रासन पर चल गय। ऐसा अनुमान करके शोक को छोडो और समाज सहित नगर का राज्य करो।

व्याख्या इन्द्रपुर जाना अनुमान से सिद्ध है। महाराज अश्वमेधान्त याजी थे। उनके इन्द्रपुर जाने मे सन्देह क्या ? तिस पर इन्द्र के मित्र थे। यथा ससुर सुरेस सखा रघुराऊ। अत इन्द्र ने बुलाकर अपने पास रक्खा होगा। इस अनुमान के बल पर सोच छोडो। राजा गये। पर अपना समाज छोड गये हैं। उस समाज के साथ राज्य करो। क्यो व्यथ दु ख करत हो।

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू। पाके छत जनु लाग अगारू ॥
धीरजु धरि भरि लेहिं उसासा। पापिनि सबहि भाँति कुल नासा ॥३॥

अर्थ सुनकर राजकुमार भरतजी एकदम सहम गये। मानो पके घाव पर अङ्गार छू गया। वे धैर्य धारण करके लम्बी साँस ली और बोल कि रे पापिनी ! तैने सभी तरह से कुल का नाश किया।

व्याख्या एक एक बात रानी साहिबा की दूसरे से बढकर हो रही है। अत कवि उपमा भी वैसी ही देते जाते हैं। पहिली बात मर्म पाछि जनु माहुर देई। दूसरी बात मानहु लोन जरे पर देई। अब तीसरी बात की उपमा देते हैं कि मानो पके हुए फोडे पर कोई अङ्गार रख दे। राम का वनवास कहना मानो घाव पक गया है। उस पर राजपुर करऊ कहने ने तो मानो उस पर अङ्गार रखने का काम किया।

धैर्य करके तब उच्छ्वास लिया। नही तो स्तब्ध खडे थे। इस बार बोल ही बैठे। पापिनि बोली बैन। अत कहते है पापिनि सबहि भाँति कुल नासा। दिन कर कुल जलरुह चन्दिनि है। राजा का मारा। परिजन को मरणान्त कष्ट दिया। बेटे को वन दिया। कुल नाश मे कोइ कसर न छोडा।

जौं पैं कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहे न मारे मोही ॥
पेड़ काटि तैं पालउ सीचा। मीन जिअन निति बारि उलीचा ॥४॥

अर्थ : यदि तुझे अत्यन्त ही कुरुचि थी तो जन्म लेते ही मुझे क्यों नही मार दिया ? पेड़ काटकर तूने पल्लव सीचा। मछली के जीने के लिए तूने पानी ही उलीच डाला।

व्याख्या : रघुकुल की रीति के विरुद्ध रुचि होना कुरुचि है और मुनिवेष धारण कराके रामजी को वन भेजना अत्यन्त कुरुचि है। इस कुरुचि द्वारा तैने मेरे यशोमय शरीर का वध किया। तब मुझे जनमते ही क्यो नही मारा ? उस समय मर गये होते तो हम अपयश भाजन, प्रियजन द्रोही तो न होते।

यहाँ सीचा और उलीचा दोनो क्रियाओ से दोनो वरदान अर्थात् १. भरत को राज्य २ राम का वन माँगना द्योतित किया। रामजी को राज्य मिलना आमूल वृक्ष रूप था। उसके सिञ्चन से हम लोग पल्लव रूप आप से आप सिंच जाते। सो उसे तैंसे काटा। वृक्ष की जड़ ही कट गयी। पल्लव के सीचने से पल्लव की रक्षा नही हो सकती।

मुझे राज्य देकर ही तू सन्तुष्ट नही हुई। तूने समझा कि राम के रहने से मैं राज्य न कर सकूँगा। सम्भव है कि मैं मारा जाऊँ। तूने यह न जाना कि जैसे मछली का जीवनाधार जल है उसी भाँति मेरे जीवनाधार राम हैं। जैसे कोई महामूर्ख यह समझकर कि जल मे मछली डूब मरेंगी। पानी उलीच दे उसी भाँति तूने मेरी रक्षा के लिए रामजी को वनवास दिया। पहिले उदाहरण से राम के सुख से अपना सुख कहा। दूसरे से उन्हे जीवनाधार बताया। भाव यह कि मेरा हित चाहती हुई तूने मेरा सर्वनाश कर दिया।

दो. हंसबस दसरथु जनकु, राम लखन से भाइ।
जननी तूं जननी भई, बिधि सन कछु न बसाइ ॥१६१॥

अर्थ : सूर्यवंश ऐसा कुल, दशरथ, ऐसे पिता, राम लक्ष्मण ऐसे भाई हुए और माता ! तुम माता हुई। विधाता से कोई वश नही चलता।

व्याख्या : जब ब्रह्मदेव ने सूर्यवंश ऐसे उज्ज्वल कुल मे जन्म दिया, जिसके समान दूसरा नही ऐसा पिता दिया। यथा : दसरथ गुन गन बरनि न जाही। अधिक कहा जेहि सम जग नाही। राम लक्ष्मण सा भाई दिया : जिन्हके जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे और माँ तुम्हे बना दिया। जिसके पापी हृदय ने मेरा हित चाहते हुए सर्वनाश कर दिया। यहाँ दूसरे जननी शब्द मे काकु है। भिन्नकण्ठध्वनिर्धीरैः काकुरित्यभिधीयते।

जबतैं कुमति कुमत जिअ ठयेऊ। खंड खंड ह्वै हृदय न गयेऊ ॥
बर माँगत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा ॥१॥

अर्थ : रे कुमति ! जब यह दुर्बुद्धि तेरे हृदय में आयी तेरा हृदय टुकड़े टुकड़े क्यों न हो गया ! वर माँगने में तेरे मन में पीड़ा क्यों न हुई ! तेरी जीभ गली नहीं ! मुख में कीड़े न पड़े !

व्याख्या : जिस हृदय में सदा सुमति रही। जो सदा राम प्रेम से सरस रहा, उसमें जब दुर्बुद्धि का प्रवेश हुआ, उससे राम प्रेम जाता रहा। तब वह टुकड़े टुकड़े क्यों न हो गया। क्योंकि सरस वस्तु रस के वियोग से फट जाता है। इसलिए हृदय को फट जाना चाहता था।

यदि फटा नहीं तो कम से कम वर माँगते समय उसमें पीड़ा तो होनी ही चाहती थी। पर तुझे पीड़ा तक न हुई। यथा : मागउँ दूसर बर करजोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी। जिस जीभ से जिस मुख से तैंने ऐसा वरदान माँगकर इतना बड़ा घोर पाप किया उस जीभ को सद्यः गल जाना चाहता था और उस मुख में कीड़े पड़ जाने चाहते थे। यथा : ते नर नरकरूप जीवत जग भवभंजन पद बिमुख अभागी। भला तुझसे बिगड़ा तो बिगड़ा महाराज कैसे भूल गये ?

भूप प्रतीति तोरि किमि कीन्ही। मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही॥
बिधिहुँ न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी॥२॥

अर्थ : राजा ने तेरा विश्वास कैसे किया। मरती समय विधाता ने उनकी बुद्धि हरण कर ली। ब्रह्मदेव भी स्त्री के हृदय की गति नहीं जान पाते जो सब प्रकार के कपट पाप और अवगुण की खानि होती है।

व्याख्या : महाराज तो नीतिकुशल थे। उन्हे समझना चाहिए था कि रामजी का अभिषेक है। आज यह कोपभवन मे आयी है। खुशी नही मनाती। वरदान माँगती है। अवश्य इसे रामजी से भय है। रामजी के विरुद्ध ही कुछ माँगेगी। ऐसे अवसर पर विशेषतः तेरा विश्वास तो करना ही नहीं चाहता था। क्योंकि कोपभवन में जाने से ही तेरा भव व्यक्त हो गया था। सो : कालदण्ड गहि काहु न मारा। हरै धर्म बल बुद्धि बिचारा।

यदि कहिये कि राजा को इस बात का भरोसा था कि इसके हृदयगति को मैं जानता हूँ। यथा : जानेउ मरम राउ हँसि कहई। तुमहि कोहाब परम प्रिय अहई। तो मायारूप होने से ब्रह्मा भी नहीं जान सकते कि किस स्त्री को किस समय कैसी गति हो जायगी। माया के परिवार काम क्रोध से शिव चतुरानन के डरने की बात सुनी जाती है और नारि तो उनमे सबसे अधिक दारुण दुःखद है। यथा : काम क्रोध लोभादि पद प्रबल मोह कै धारि। तिन मह अति दारुन दुःखद मायारूपी नारि। जो जिसकी गति नहीं जानता उससे वह डरता है। अतः कहा जा सकता है कि विधाता को भी नारी के हृदय की गति नहीं मालूम। जितने कपट है, पाप हैं और अवगुण हैं। ये सब स्त्रियों के हृदय से ही उत्पन्न हुए हैं। जिस भाँति जितने धातु हैं। वे सब खानि से ही उत्पन्न होते हैं। कुछ पण्डितों का मत है कि विष देना

4365

पहिले पहल स्त्रियों ने ही निकाला। नहीं तो जिसके पिता को वेदाधिकार हो, पति को हो, पुत्र को हो पर उसे न हो। यह बात निष्कारण नहीं हैं।

सरल सुसील धरमरत राऊ। सो किमि जानइ तीय सुभाऊ॥
अस को जीव जंतु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नांही॥३॥

अर्थ : महाराज सरल सुशील धर्मात्मा थे। वे स्त्री स्वभाव को क्या जानें। ऐसे जीव जन्तु ससार में कौन है जिसे रघुनाथ प्राणप्रिय न हो।

व्याख्या : सत्य कहहिं कवि नारि सुभाऊ। सब विधि अगह अगाध दुराऊ। महाराज सरल, स्त्री कपटखानि : महाराज सुशील और स्त्री अघखानि : महाराज धर्मरत और स्त्री अवगुणखानि। कपटखानि होने से अगह, अघखानि होने से अगाध और अवगुणखानि होने से दुराऊ। अतः महाराज तो जान ही नहीं सकते थे।

जिनहि निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहि विषम बिष तामस तीछी। क्योंकि अपनी आत्मा किसे प्रिय नहीं है। राम सो परमातमा भवानी। राम परमात्मा होने से सबकी आत्मा है। अतः वे सबको प्रिय हैं।

भे अति अहित रामु तेउ तोही। को तू अहसि सत्य कहु मोही॥
जो हँसि सो हसि मुँह मसि लाई। आँखि ओट उठि बठहि जाई॥४॥

अर्थ : वे राम तुझे अत्यन्त अहित हो गये। तू है कौन मुझे ठीक ठीक बतला। चाहे तू जो हो मुख मे कालिख लगाकर उठ और मेरी आँखो के आड मे जाकर कही बैठ।

व्याख्या : अरिहु क अनभल कीन्ह न रामा। बैरिहु राम बड़ाई करही। वे राम तुझे अत्यन्त अहित हो गये। अब तू है कौन ? मुझसे सत्य बतला दे। मेरी वह माँ तो तू नही है। उसे तो रामजी प्राण से भी प्यारे थे। तब मेरे माँ के रूप मे तू कौन है ? कोई राक्षसी है या पिशाची है। जो मेरी माँ का रूप धारण किये हुए है।

अच्छा चाहे तू वही हो चाहे दूसरी हो। दुष्ट बुद्धि का मुख मसि योग्य होता ही है। यथा : असि बुधि तौ बिधि मुँह मसि लोई। लोचन ओट बैठु मुँह गोई कहकर पति ने त्याग किया था : आँखि ओट उठि बैठहि जाई कहकर पुत्र ने भी त्याग किया। यथा : तजेउ पिता प्रह्लाद विभीषन बंधु भरत महतारी।

दो. राम बिरोधी हृदय तें, प्रकट किन्ह बिधि मोहिं।
मो समान को पातकी, बादि कहौं कछु तोहि॥१६२॥

अर्थ : ब्रह्मदेव ने मुझे राम विरोधी के हृदय से प्रकट किया है अतः मेरे समान पापी कौन है। तुझे मैं व्यर्थ ही कुछ कह रहा हूँ।

व्याख्या : त्याग के बाद अब उस ओर से क्रोध हटा तब आत्मग्लानि हुई कि मै विरोधी के हृदय से पैदा हुआ। ऐसी ही ग्लानि सती को हुई थी। यथा : दच्छ सुक्र सम्भव यह देही। पापी मैं हूँ तुम्हे व्यर्थ पापिनी कहता हूँ। कर्म सुभासुभ

देइ विधाता। विधाता ने मेरा पाप देखकर ही तेरे उदर से मेरा जन्म दिया है। तू तो राम विरोधी के उदर से नही उत्पन्न हुई। मैं तो पूर्वजन्म का पापी हूँ। तू तो केवल इस जन्म की पापिनी है अत मेरा तुझसे कहना व्यर्थ है।

सुनि सत्रुघुन मातु कुटिलाई। जरहिं गात रिस कछु न बसाई ॥
तेहि अवसर कुबरी तहँ आई। बसन बिभूषन बिबिध बनाई ॥१॥

अर्थ शत्रुघ्न का शरीर माता की कुटिलता सुनकर क्रोध से जल रहा था। कोई वश नही चलता था। उस अवसर पर कुबरी वहाँ आगयी। उसने अनेक प्रकार के कपडे और गहने से अपने को सजा रक्खा था।

व्याख्या अभी तक शत्रुघ्नजी बोल ही नही। यह रघुकुल का विनय है। बडो के सामने छोटे बोलते ही नही। शत्रुघ्नजी सबसे छोटे हैं। रामायण भर मे ये बोले ही नही। यही हाल लक्ष्मणजी का भरतजी के सामने रहता है। शत्रुघ्नजी भरतजी के साथ हैं। माता की कुटिलता सुन सुनकर देह मे आग लगी हुई है। आज दूसरे से यह बात हुई होती तो क्या न कर बैठते। माँ हैं। इसलिए कुछ कर नही सकते। भरतजी ने तो खरी खोटी भी कही। पर ये चुप ही रहे।

जिस समय भरतजी ने माता का त्याग किया उसी अवसर पर कुबरी वहाँ चली आयी। वहाँ कोई आ नही सकता था। एकान्त म बात हो रही थी। कुबरी का साहस बढा हुआ है। वाहवाही लेने आयी है। समझ लिया कि मेरी हितचिन्तकता अब तक रानी साहिबा कह चुकी होगी। सो वस्त्राभूषण जो कैकेयी से मिले हैं उससे सज धजकर चखपूतरी बनी हुई आयी मुबारकबादी देने।

लखि रिसि भरेउ लखन लघु भाई। बरत अनल घृत आहुति पाई ॥
हुमगि लात तकि कूबर मारा। परि मुह भरि महि करत पुकारा ॥२॥

अर्थ लखकर लक्ष्मणजी के छोटे भाई क्रोध से भर गये। मानो जलती हुई आग मे घी की आहुति पडी। कूबर ताककर हुमक कस कर लात मारा। मुँह के बल जमीन पर पुकार करती हुई गिरी।

व्याख्या - यद्यपि भरतजी के साथ है। पर लक्ष्मणजी के छोटे भाई हैं। तेजस्वी स्वभाव है। उसके सजधजकर आने का आशय लखा। क्रोध से भर गये कि इसी की लगायी सब आग है। उसके आने से जलती हुई आग मे घी का काम किया। क्रोध भभक उठा न बोले न चाले।

कूबर ताककर लात मारा कि सब दोष की गठरी यही है। वीर के लात का आघात कूबरी क्या सहती। मुँह के बल पृथ्वी पर गिरी। चिल्लाने लगी कि क्या यही नेकी का बदला है? होम करते हाथ जल रहा है।

कूबर टूटेउ फूट कपारू। दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू ॥
आह दइअ मै काह नसावा। करत नीक फलु अनइस पावा ॥३॥

अर्थं कूबर टूटा। सिर फूटा। दाँत टूट गये। मुँह से रक्त बह चला कहने लगी हाय दैव! मैने क्या बिगाडा? मैने भला किया उसके बदले मे फल बुरा मिला?

। व्याख्या कूबर पर लात लगा। इसलिए कूबर टूट गया। मुँह के बल गिरी। इससे कपाल मे भी चोट आयी। दाँत भी टूट गये। भीतर से भी रक्त और बाहर से भी रक्त बह चला। फोरें जोग कपार हमारा का साफल्य है। कहने लगी अरे दैया रे मैंने क्या बिगाडा। बिगाडा तो कौसल्या ने जिन्होने रचि प्रपञ्च भूपति अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई। मैंने तो भला किया। रानी को खबर दे दिया। नही तो आज रामचन्द्र राजा हो गये होते।

सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोटी॥
भरत दयानिधि दीन्ह छडाई। कौसल्या पहिं गे दोउ भाई॥४॥

अर्थ सुनकर शत्रुघ्नजी उसे नख से चोटी तक खोटी जानकर उसको झोटा केश पकड पकडकर घसीटने लगे। दयासागर भरतजी ने उसे छोडा दिया। दोनो भाई कौसल्याजी के पास गये।

व्याख्या उसकी वात सुनकर शत्रुघ्नजी ने लखा कि इसके कूबर मे ही दोष नही है। इसके सर्वाङ्ग मे दोष भरा है। उसका केश पकडकर एक ओर घसीटकर फेंका और फिर घसीटकर दूसरी ओर फेंक दिया।

भरतजी दयानिधान हैं। उस पर भी दया किया कि यह चेरी है। इसकी इतनी ही बुद्धि थी। जब रानी की यह गति है तो चेरी का क्या दोष है। उठकर छोडाया। कहने से काम नही चला। अत दुखिनी रामजी की माता कौसल्याजो के पास दोनो भाई गये। महाराज का शव वही था।

प्रेमवर्णन प्रसङ्ग

दो मलिन वसन बिबरन बिकल, कृस सरीर दुख भारु।
कनक कलप बर बेलि बन, मानहुँ हनी तुसारु॥१६३॥

अर्थ देखा कि कपडे मैले, बेरङ्ग, विकल, शरीर दुबली, दुख के बोझ से दबी ऐसी मालूम होती थी। जैसे सुनहली लहलहाती हुई कल्पलता को वन में पाला मार गया हो।

व्याख्या आज महाराज दशरथ की पट्टाभिषिक्ता महिषी की यह दशा है कि कपडे मैले हो गय हैं। शरीर का रङ्ग काला पड गया है। शोक से विकल हैं। दुबली पड गयी हैं। बडा भारी दुख है। क्या थी क्या हो गयी? जैसे पाला मार देने से कल्पलता झुलस गयी हो। कैकेयी मे ऐसे लक्षण एक भी न थे। उसके कपडे भी साफ थे। रङ्ग भी फीका नही था। पहले की सी ज्यों की त्यों थी। वल्कि अधिक प्रसन्न दिखायी पडी थी।

भरतहि देखि मातु उठि धाई। मुरुछित अवनि परी झइआई ॥
देखत भरतु बिकल भये भारी। परे चरन तनु दसा बिसारी ॥१॥

अर्थ भरत को देखकर माता कौसल्या उठकर दौडी पर चक्कर खाकर पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पडी। देखते ही भरतजी बडे विकल हुए। चरणो पर गिर पडे। शरीर की सुध बुध न रही।

व्याख्या कैकेयी और कौसल्या मे अन्तर दिखला रहे। दुख के समय बेटे को आते देखकर जैसी माँ की गति होती है वही कौसल्याजी की है। जैसा वात्सल्य रामजी पर वैसा ही भरत पर। आते देखकर मिलने के लिए उठ दौडी। दुर्बलता से चक्कर आगया। मूर्च्छित हो गयी। इधर भरतजी की यह दशा हुई कि देखकर भारी व्याकुल हुए। कौसल्याजी के चरणो पर शरीर की सुध बुध खोकर जा गिरे। कौसल्याजी की दशा देखकर विकल हुए थे। मूर्च्छित देखकर भारी विकल हुए।

मातु तात कहँ देहि देखाई। कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई ॥
कैकइ कत जनमी जग माँझा। जौ जनमि त भइ काहे न बाँझा ॥२॥

अर्थ माता! पिताजी को दिखा दो। सीताजी और दोनो भाई राम लक्ष्मण कहाँ हैं। कैकेयी संसार म क्यो पैदा हुई। यदि हुई तो वन्ध्या क्यो न हुई?

व्याख्या मातु सम्बोधन से भाव यह कि कैकेयी माता नही। माता तो तू है। जो पिता को दिखावे वही माता है मरती समय पिता को नही देखा। अत शव का ही दर्शन चाहते हैं। सीताजी और राम लक्ष्मण दोनो भाई कहाँ हैं? इन दोनो प्रश्नो से पिता के प्रति तथा भाइयो के प्रति अपना प्रेम द्योतित किया। अथवा इतना ही मालूम है कि वन गये। पर कहाँ है यह नही जानते। भाव के शुद्ध होने से अर्थ युक्त बातें आप से आप मुख से निकलती हैं। भरतजी के प्रश्न स्वाभाविक है। पर कैसा शोकोद्‌गार उससे प्रकट होता है।

माता नही कहते कैकेयी कहते हैं। उसी ने सब बिगाडा। इसलिए कहते हैं कि वह जनमी क्यो? जगत् के हित के लिए जगत् मे जन्म होता है। उससे घोर अहित हुआ। यदि जनमी तो उसे वन्ध्या होना चाहिए था। न बेटा होता न उसके लिए यह इतना बडा अनर्थ करती।

कुल कलंकु जेहि जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रियजन द्रोही ॥
को तिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी ॥३॥

अर्थ जिसने मुझ कुलकलङ्क को जन्म दिया है। मैं अपयश का पात्र और प्रियजन का द्रोही हुआ। मेरे समान तीनो भुवन म कौन अभागा है। जिसके कारण माँ! यह तेरी दशा हुई।

व्याख्या जिसके पुत्रवती होने से रघुकुल मे कलङ्क लगा। मैं कलङ्की पैदा

अर्थ : कूबर टूटा। सिर फूटा। दाँत टूट गये। मुँह से रक्त बह चला : कहने लगी हाय दैव! मैंने क्या बिगाड़ा? मैंने भला किया : उसके बदले मे फल बुरा मिला?

व्याख्या : कूबर पर लात लगा। इसलिए कूबर टूट गया। मुँह के बल गिरी। इससे कपाल मे भी चोट आयी। दाँत भी टूट गये। भीतर से भी रक्त और बाहर से भी रक्त बह चला। फोरें जोग कपार हमारा का साफल्य है। कहने लगी अरे दैया रे मैंने क्या बिगाड़ा। बिगाड़ा तो कौसल्या ने जिन्होंने : रचि प्रपञ्च भूपति अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई। मैंने तो भला किया। रानी को खबर दे दिया। नही तो आज रामचन्द्र राजा हो गये होते।

सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी॥
भरत दयानिधि दीन्हि छडाई। कौसल्या पहिं गे दोउ भाई॥४॥

अर्थ : सुनकर शत्रुघ्नजी उसे नख से चोटी तक खोटी जानकर उसको झोटा : केश पकड़ पकडकर घसीटने लगे। दयासागर भरतजी ने उसे छोड़ा दिया। दोनो भाई कौसल्याजी के पास गये।

व्याख्या : उसकी बात सुनकर शत्रुघ्नजी ने लखा कि इसके कूबर मे ही दोष नही हैं। इसके सर्वाङ्ग मे दोष भरा है। उसका केश पकड़कर एक ओर घसीटकर फेंका और फिर घसीटकर दूसरी ओर फेंक दिया।

भरतजी दयानिधान हैं। उस पर भी दया किया कि यह चेरी है। इसकी इतनी ही बुद्धि थी। जब रानी की यह गति है तो चेरी का क्या दोष है। उठकर छोड़ाया। कहने से काम नही चला। अत. दुखिनी रामजी की माता कौसल्याजी के पास दोनो भाई गये। महाराज का शव वही था।

प्रेमवर्णन प्रसङ्ग

दो. मलिन बसन बिबरन बिकल, कृस सरीर दुख भारु।
कनक कलप बर बेलि बन, मानहुँ हनी तुसारु॥१६३॥

अर्थ : देखा कि : कपडे मैले, बेरङ्ग, विकल, शरीर दुबली, दु.ख के बोझ से दबी : ऐसी मालूम होती थी। जैसे सुनहली लहलहाती हुई कल्पलता को वन में पाला मार गया हो।

व्याख्या : आज महाराज दशरथ की पट्टाभिषिक्ता महिषी की यह दशा है कि कपडे मैले हो गय हैं। शरीर का रङ्ग काला पड गया है। शोक से विकल हैं। दुबली पड गयी है। बडा भारी दु ख है। क्या थी क्या हो गयी? जैसे पाला मार देने से कल्पलता झुलस गयी हो। कैकेयी मे ऐसे लक्षण एक भी न थे। उसके कपडे भी साफ थे। रङ्ग भी फीका नही था। पहले की सी ज्यों की त्यों थी। बल्कि अधिक प्रसन्न दिखायी पडी थी।

भरतहि देखि मातु उठि धाई । मुरुछित अवनि परी झइआई ॥
देखत भरतु बिकल भये भारी । परे चरन तनु दसा बिसारी ॥१॥

अर्थ : भरत को देखकर माता : कौसल्या उठकर दौड़ी पर चक्कर खाकर पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। देखते ही भरतजी बड़े विकल हुए। चरणों पर गिर पड़े। शरीर की सुध वुध न रही।

व्याख्या : कैकेयी और कौसल्या मे अन्तर दिखला रहे। दुःख के समय बेटे को आते देखकर जैसी माँ की गति होती है वही कौसल्याजी की है। जैसा वात्सल्य रामजी पर वैसा ही भरत पर। आते देखकर मिलने के लिए उठ दौड़ी। दुर्बलता से चक्कर आगया। मूर्च्छित हो गयी। इधर भरतजी की यह दशा हुई कि देखकर भारी व्याकुल हुए। कौसल्याजी के चरणों पर शरीर की सुध वुध खोकर जा गिरे। कौसल्याजी की दशा देखकर विकल हुए थे। मूर्च्छित देखकर भारी विकल हुए।

मातु तात कहँ देहि देखाई । कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई ॥
कैकइ कत जनमी जग माँझा । जौ जनमि त भइ काहे न बाँझा ॥२॥

अर्थ : माता ! पिताजी को दिखा दो। सीताजी और दोनों भाई राम लक्ष्मण कहाँ हैं। कैकेयी ससार मे क्यों पैदा हुई। यदि हुई तो वन्ध्या क्यो न हुई ?

व्याख्या : मातु सम्बोधन से भाव यह कि कैकेयी माता नही। माता तो तू है। जो पिता को दिखावे वही माता है : मरती समय पिता को नही देखा। अत· शव का ही दर्शन चाहते हैं। सीताजी और राम लक्ष्मण दोनो भाई कहाँ हैं ? इन दोनो प्रश्नो से पिता के प्रति तथा भाइयों के प्रति अपना प्रेम द्योतित किया। अथवा इतना ही मालूम है कि वन गये। पर कहाँ हैं यह नही जानते। भाव के शुद्ध होने से अर्थ युक्त बातें आप से आप मुख से निकलती हैं। भरतजी के प्रश्न स्वाभाविक हैं। पर कैसा शोकोद्‌गार उससे प्रकट होता है।

माता नही कहते कैकेयी कहते है। उसी ने सब बिगाड़ा। इसलिए कहते है कि वह जनमी क्यों ? जगत् के हित के लिए जगत् मे जन्म होता है। उससे घोर अहित हुआ। यदि जनमी तो उसे वन्ध्या होना चाहिए था। न बेटा होता न उसके लिए यह इतना बड़ा अनर्थ करती।

कुल कलंकु जेहि जनमेउ मोही । अपजस भाजन प्रियजन द्रोही ॥
को तिभुवन मोहि सरिस अभागी । गति असि तोरि मातु जेहि लागी ॥३॥

अर्थ : जिसने मुझ कुलकलङ्क को जन्म दिया है। मैं अपयश का पात्र और प्रियजन का द्रोही हुआ। मेरे समान तीनो भुवन मे कौन अभागा है। जिसके कारण माँ ! यह तेरी दशा हुई।

व्याख्या : जिसके पुत्रवती होने से रघुकुल में कलङ्क लगा। मैं कलङ्की पैदा

हुआ। जगत कहेगा कि भरत के कारण उसके पिता मरे। रामजी को वन हुआ। महाराज के मरण और रामजी के वन से बढकर प्रियजन द्रोह क्या होगा ?

जिस बेटे के कारण माता को विधवा होना पडे, पुत्र शोक भी सहन करना पडे, मूर्च्छित होना पडे और उस बेटे ने कुछ किया न हो तो उस बेटे से बडा अभागा तीनो लोक मे कौन होगा ?

पितु सुरपुर बन रघुबर केतू। मै केवल सब अनरथ हेतू ॥
धिग मोहि भयेउँ बेनु बन आगी। दुसह दाह दुख दूखन भागी ॥४॥

अर्थ पिताजी स्वर्ग गये। रघुकुल केतु वन गये। मैं इन सब अनर्थो का कारण हुआ। मुझे धिक्कार है। मै बाँस के वन मे आग होकर कठिन, दाह दुख और दूषण का भागी हुआ।

व्याख्या अपना अभाग कहते हैं पातीति पिता। रक्षा करनेवाले पिता तो स्वर्ग सिधारे और रघुकुल केतु श्रुतिसेतुरक्षक वन को गये। दोनो को असाधारण पीडा हुई। ये सब बडे बडे अनर्थ मेरे कारण हुए। दुसह दाह भागी यथा मरन कोटि सम दारुन दाहू। दुख के भागी यथा सकर साखि रहेऊ ये घाये। दूषण के भागी यथा एक भरत कर सम्मत करही। यह सब दुख मुझे हुआ। विलाप मे ही भरतजी जो कुछ उन्हे कहना था कह गये। अपने जन्म को धिक्कारते हैं। रघुबर केतू पाठ मानने से चारो भाइयो मे श्रेष्ठ अर्थ करना पडेगा।

दो मातु भरत के बचन मृदु, सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिए उठाइ लगाइ उर, लोचन मोचति बारि ॥१६४॥

अर्थ माता भरत के वचन सुनकर फिर से संभलकर उठी। उठाकर छाती से लगाया। आँखो से आँसू चल रहा था।

व्याख्या अभी तक माँ भी पृथ्वी पर पडी है। भरतजी भी पडे है। भरत का विलाप पृथ्वी पर पडे ही पडे हो रहा है। भरत के मृदु वचन ने सिञ्चन का काम किया। माँ सँभलकर उठ बैठी। भरतजी को उठाकर छाती से लगाया और हृदय मे लगाये हुए रो रही है। माँ हैं बेटे का विलाप नही सुन सकी।

सरल सुभाय माय हिय लाए। अति हित मनहुँ राम फिरि आए ॥
भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई। सोकु सनेहु न हृदयँ समाई ॥१॥

अर्थ सरल स्वभाव से माँ ने हृदय मे लगाया। अत्यन्त प्रेम के साथ मानो रामजी लौट आये। फिर लक्ष्मणजी के छोटे भाई से मिली। शोक और स्नेह हृदय मे समाता नही है।

व्याख्या कौसल्याजी महाराज दशरथ की योग्या हैं। यथा तुम गुरु विप्र

धेनु सुर देवी। तस पुनीत कौसल्या देवी। जैसे महाराज सरल थे वैसी ही यह भी सरल हैं। भरतजी के मिलने पर ऐसा प्रेम है मानो रामजी लौटकर आये हैं।

भरत को राम समान जानकर मिली और शत्रुघ्न को लक्ष्मण के समान जानकर मिली। शोक भी हृदय मे समाने लायक नही। न प्रेम ही समाने लायक है। स्नेह से कलेजे से लगाती हैं। शोक से रो रही हैं। यहाँ पर स्पष्ट है कि शत्रुघ्नजी लक्ष्मणजी सहोदर भाई थे।

देखि सुभाउ कहत सबु कोई। राम मातु अस काहे न होई॥
माता भरतु गोद बैठारे। आँसु पोछि मृदु वचन उचारे॥२॥

अर्थ : स्वभाव को देखकर सब कोई कहता था कि रामजी की माँ ऐसी क्यो न हो। माता ने भरतजी को गोद मे बिठा लिया और आँसू पोछकर कोमल वचन कहा।

व्याख्या : घर के लोग प्रिय परिजन जिन्हे वहाँ जाने का अधिकार था सब लोग वहाँ पहुँच गये। बडे मारके का समय है। यही भविष्य का निर्णय है। कौसल्याजी के स्वभाव को सरलता देखकर सबके मुँह से वाह निकल गया। कहने लगे कि यह राम की माँ हैं। न रामजी के हृदय मे भेद न इनके हृदय मे भेद। दूसरी माँ ऐसे समय मे कठोर बोलती।

कौसल्याजी का भरतजी पर बिल्कुल और सपुत्र सा भाव है। गोद मे बिठाती हैं। आँसू पोछती हैं। रुख से समझ गयी कि कैकेयी का अनादर करके आ रहे हैं। कष्ट को कम करने के लिए इस प्रकार का बर्ताव कर रही हैं।

अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥
जनि मानहु हियँ हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी॥३॥

अर्थ : वत्स! मैं बलि जाऊँ। अब भी धैर्य धरो। बुरा समय जानकर धैर्य धरो। मन मे हानि ग्लानि न मानो। इस बात को जान लो कि काल और कर्म की गति बनायी हुई नही है।

व्याख्या : धैर्य न धारण करने से बहुत काम बिगड चुका। धैर्य न धारण करने से ही महाराज का देहावसान हुआ। बहुत हो चुका। अब धैर्य धारण करो। समय घोर उपस्थित है। यह जानकर शोक छोडो। बडी बडो आपत्ति का सामना करना है : महाराज की और्ध्वदैहिक क्रिया की ओर इङ्गित है। जो बिगड़ा सो बिगडा। अधिक न बिगडे·

पितु सुर पुर वन रघुकुल केतू। यह हानि है। धिग मोहि भयउ बेनुबन आगी इत्यादि ग्लानि है। माँ समझाती हैं कि हानि ग्लानि न मानो। काल और कर्म गति किसी की की हुई नही है। अर्थात् किसी के करने से काल की और कर्म की गति नही बनती।

काहुहि दोसु देहु जनि ताता । भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता ॥
जो एतेहुँ दुख मोहि जिआवा । अजहुँ को जानइ का तेहि भावा ॥४॥

अर्थ बेटा ! किसी को दोष मत दो । विधाता सब प्रकार से मेरे प्रतिकूल हो गये हैं । यदि इतने दु ख पर भी मुझे जिलाया तो कौन जाने उसे क्या मञ्जूर है ।

व्याख्या वही बात जो लक्ष्मणजी ने निषादराज से कही था काहु न कोउ सुख दु ख कर दाता । निज कृत कर्म भोग सब भ्राता कौसल्याजी कह रही हैं । ये रामजी की माता हैं । इन्हे कैकेयी को दोष देना अखरता है । रामजी को भी इसी भाँति अच्छा नही मालूम हुआ कहा दोष देइ जननिहि जड तेई । जिन्ह गुरु साधु सभा नहिं सेई । कहती हैं कि उनकी बुद्धि का पलटा खाना मेरे प्रति विधाता के वाम होने का फल है । न कैकेयी को दोष दो न अपने को ।

दो पितु आयसु भूषन बसन, तात तजे रघुवीर ।
बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु, पहिरे बलकल चीर ॥१६५॥

अर्थ बेटा ! पिता की आज्ञा से रघुवीर ने गहने और कपडे उतार दिये । हृदय मे न हर्ष हुआ न विस्मय हुआ । वल्कल छाल धारण कर लिया ।

व्याख्या यही चोट राजा दशरथ को हुई राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू । सुनि मन भयउ न हरष हरासू । सो सुत बिछुरत गये न प्राना । को पापी बड मोहि समाना । कौसल्याजी के हृदय मे सरकार का बिना हर्ष विषाद के मुनिवेष धारण करना चुभा हुआ है । उसी कष्ट को भरतजी के सामने व्यक्त कर रही हैं ।

मुख प्रसन्न मन रग न रोषू । सब कर सब बिधि करि परितोषू ॥
चले बिपिन सुनि सिय सँग लागी । रहइ न राम चरन अनुरागी ॥१॥

अर्थ प्रसन्न मुख न राग, न रोष । सबका सब विधि से परितोष करके वन को चल । सुनिके सीता सङ्ग लगी । राम चरण से अनुराग करनेवाली रुकी नही ।

व्याख्या · भूषण वसन परित्याग और वल्कल धारण मे भी मुखश्री वैसी ही प्रसन्न थी जैसी सदा रहा करती थी । क्योकि उनके मन मे न किसी के प्रति राग था न रोष था । राग और रोष दोनो म से किसी के वेग से आकृति मे विकार हो जाता है । उन्हे वन जाने का विषाद भी नही हुआ । राजिव लोचन राम चल तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं । जाने के पहिले सबका सब विधि से परितोष किया । यथा कहि प्रिय वचन सकल समुझाये । बिप्रबृद रघुबीर बोलाये । जाचक दान मान परितोषे । कहि प्रिय बचन प्रेम परितोषे इत्यादि ।

विकलता से क्रम का ध्यान नही है । इसलिए कहती है कि उन्होने किसी को साथ नही लिया । उनका जाना सुनकर सीता साथ लग गयी । उनको मैंने समझाया । स्वय रामजी ने समझाया । उसके श्वसुर ने समझाया । और भी लोगो ने

समझाया। पर उसका अनुराग ऐसा दृढ था कि कोई उसको अपने निश्चय से हटा न सका।

सुनतहिं लखनु चले उठि साथा। रहहिं न जतन किए रघुनाथा ॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई। चले संग सिय अरु लघु भाई ॥२॥

अर्थ : सुनते ही लक्ष्मणजी उठकर साथ चले। रामजी के यत्न करने पर भी न रुके। तब रामजी सब ही को सिर नवाकर सीता और छोटे भाई को साथ लेकर चले।

व्याख्या : सुनते ही लक्ष्मण ने सोचने विचारने को स्थान ही नहीं दिया। उनके रोकने के लिए केवल रामजी ने ही यत्न किया। सुमित्राजी ने आज्ञा ही दे दी। उर्मिला बोली ही नहीं। महाराज ने अकेले उनका रोकना अनुचित समझा। अत उन्हे केवल रामजी ने रोका था पर नही रुके। तब रामजी सबको प्रणाम करके सीता और लक्ष्मण के साथ चले।

रामु लखनु सिय बनहि सिधाए। गइउँ न संग न प्रान पठाए ॥
एहु सब भा इन्ह आँखिन्ह आगे। तउ न तजा तनु जीव अभागे ॥३॥

अर्थ : राम लक्ष्मण और सीता वन को चले गये। मैं न साथ गयी और न प्राणों को ही साथ भेज सकी। यह सब इन्ही आँखो के सामने हुआ। फिर भी अभागे जीव ने शरीर न छोडा।

व्याख्या : लक्ष्मण और सीता के वन जाने पर दो ही रास्ता था। या तो मैं साथ चली जाती या प्राणो को साथ भेज देती। जैसा कि सीता ने सोचा था : चलन चहत वन जीवन नाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू। की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना।

सुनने मे और आँखो से देखने मे बडा भेद है। आँखो देखने मे जैसा प्रभाव हृदय पर पडता है वैसा सुनने मे नही पडता। यथा : अब सब आँखिन्ह देखेंउ आई। जिअत जीव जड सबइ सहाई। सो मैने तो सब आँखों से देखा। परन्तु मेरा जीव सुकृती नही है। सुकृती होता तो शरीर छोड देता। यह अभागा है। इसलिए नही छोड सका। न जाने इसे क्या क्या देखना है।

मोहि न लाज निज नेहु निहारी। राम सरिस सुत मै महतारी ॥
जिअइ मरइ भल भूपति जाना। मोर हृदय सत कुलिस समाना ॥४॥

अर्थ : अपने स्नेह का विचार करने पर मुझे लज्जा नही है। राम जैसा बेटा और मैं माँ हूँ। जीना मरना ठीक महाराज ने जाना। मेरा हृदय तो सौ वज्र के समान है।

व्याख्या : राम ऐसा बेटा जिसने माँ बाप की आज्ञा से प्रसन्नता पूर्वक क्षण भर मे सर्वस्व त्यागकर वन का रास्ता लिया। मैं उसकी माँ हूँ। उसके विरह

होने पर जीते रहने मे मुझे लज्जा होनी चाहिए। सो मुझे लज्जा नही है। जिसे लज्जा थी उसने शरीर छोड दिया। लज्जा महाराज को थी। यथा 'कहेउ राज बन दियेउ नारि बस गरि गलानि गए राउ। उन्होने ही जाना कि कैसे जीना चाहिए और कैसे मरना चाहिए। जिअत राम बिधु बदन निहारा। राम बिरह करि मरन सँवारा। मेरा हृदय सो सो वज्र का सा कठोर है। जो ऐसे ऐसे आघात : पुत्र वनवास और पति के स्वर्गवास पर भी खण्ड खण्ड नही हुआ।

दो. कौसल्या के बचन सुनि, भरत सहित रनिवासु।
ब्याकुल बिलपत राजगृह, मानहुँ सोक निवासु ॥१६६॥

अर्थ कौसल्याजी के वचनो को सुनकर भरतजी के सहित सारा रनिवास व्याकुल होकर विलाप करने लगा। राजगृह मानो शोकगृह हो गया।

व्याख्या : यहाँ मातु बचन न कहकर कौसल्या के वचन कहते हैं। क्योकि भरतजी का आना सुनकर सभी रानियाँ वहाँ चली आयी थी और सबने कौसल्याजी का वचन सुना। सबका धैर्य छूट गया। सब की सब विलाप कर रही हैं। वहाँ रोनेवाले सब हैं। समझानेवाला कोई नही। इसलिए कहते हैं कि राजगृह सीधे सीधे शोक का निवास स्थान हो गया।

बिलपहि बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्या लिये हृदयँ लगाई॥
भाँति अनेक भरतु समुझाए। कहि बिबेकमय बचन सुहाए ॥१॥

अर्थ : दोनो भाई विकल होकर विलाप करने लगे। तब कौसल्या ने हृदय से लगा लिया और विवेकमय अनेक बातें कहकर भरतजी को समझाया।

व्याख्या : भरतजी के साथ शत्रुघ्नजी भी विलाप करने लगे। शत्रुघ्नजी अब तक धैर्य धारण किये रहे। कौसल्याजी मूर्च्छित होकर गिरी। भरतजी व्याकुल होकर गिरे। विलाप करने लगे। पर शत्रुघ्नजी ने धैर्य न छोडा। पर कौसल्याजी के वचन सुनने पर उनका भी धैर्य छूट गया।

कौसल्याजी का अलौकिक विवेक है। भरतजी के प्रेम को जानती हैं। आगे कहेगी भी गूढ सनेह भरत मन माँही। रहे नीक मोहि लागत नाँही। सो दोनो भाइयो को विकल देखकर अपने हृदय के साथ बडी जबरदस्ती करती हैं। दोनो भाइयो को अधिक विकल देखकर हृदय से लगा लेती है। सुन्दर विवेकमय वचन कहकर अनेक भाँति से समझाती हैं। यथा

दो पुत्रजन्म पितु मातु गति हेतु होत जग जान।
याते सुत पितु हेतु जनि सोक करहु मति मान॥
यथा दारुद्वै सरित बिच बहत कबहुँ मिली जात।
तथा मिलन जग जीव को नहिं अचरज बिलगात॥
चौदह बर्ष बिताइ पुनि ऐहै रघुकलकेतु।
भावी प्रबल न सकइ मिटी जनि सोचउ तेहि हेतु॥

दुख सुख फल निज कर्म के टारि सकै नहिं कोय।
याते धरि धीरज सहिय जो कछु होनी होय॥

भरतहुँ मातु सकल समुझाईं। कहि पुरान श्रुति कथा सुहाई॥
छल विहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुग पानी॥२॥

अर्थ ' भरतजी ने भी सब माताओ को पुराण और वेद की सुन्दर कथायें कहकर समझाया। भरतजी दोनो हाथ जोडकर छलरहित पवित्र और सरल वाणी बोले।

व्याख्या : जब भरतजी शान्त हुए। तब सब माताओ को समझाने लगे। वेद के अधिकारी हैं। अत वेद पुराण की कथा कहकर समझाने लगे। यथा

दो बडे बडे सकट सहत सहि न सकत सो छोट।
कांच सहै नहिं सहि सकै हीरक घन को चोट॥
पतिदुख सुतदुख राजदुख निजदुख शैव्यारानि।
सह्यो कह्यो काहुहि न कछु धर्म मर्म पहिचानि॥
यहि असार ससार मे पग पग कठिन कलेस।
ईस भजन बिनु अम्ब सुनु कतहुँ नही सुख लेस॥
जहँ सयोग वियोग तहँ कोउ सकै नहि टारि।
सब प्रकार ममता तजै बुध अस हिय निरधारि॥
सपनो सो अपनो न कछु झूठो जग व्यवहार।
भजिय राम सब काम तजि अम्ब इहै जगसार॥

जब कुछ शान्ति हुई तब भरतजी अपनी सफाई देते है। स्थिति ऐसी बेढङ्ग है कि कोई मान नही सकता और न सफाई हो दी जा सकती है। अत शपथ लेते हैं। छलविहीन वाणी है। इसलिए शुचि है फिर भी सरल है। जिसके अर्थ समझने मे कोई कठिनता न हो। मृदु मधुर विनययुक्त वाणी ही सुवाणी है। माताओ के सामने बोल रहे हैं। अत दोनो हाथ जोडकर बोलते हैं कि कृपा करके सुन लिया जाय।'

जे अघ मातु पिता सुत मारे। गाइ गोठ महि सुरपुर जारे॥
जे अघ तिय बालक बध कीन्हे। मीत महीपति माहुर दीन्हे॥३॥
जे पातक उपपातक अहही। करम वचन मन भव कवि कहही॥
ते पातक मोहि होहु बिधाता। जौ एहु होइ मोर मत माता॥४॥

अर्थ जो पाप माता पिता और पुत्र के मारने से होता है और जो पाप गोशाला और ब्रह्मपुरी जलाने से होता है। जो पाप स्त्री और बालक के मार डालने से होता है और जो पाप मित्र और राजा को विष देने से होता है और जो जो पातक उपपातक मन वाणी और शरीर से किये हुए कवियो द्वारा कहे गये हैं। हे विधाता! वे सब पाप मुझे हो। यदि इसमे माता! मेरी सम्मति हो।

व्याख्या : वेद की आज्ञा है : मातृदेवो भव पितृदेवो भव। माता पिता परमेश्वर के रूप हैं। वे ही उत्पन्न करनेवाले और पालन करनेवाले हैं। सन्तति अपनी आत्मा है। उन्हे जिसने मारा उसके पाप का क्या ठिकाना ? गाय लोक की माता है जिसके रोम रोम मे देवताओ का निवास है। जिसके पञ्चगव्य से त्वगस्थिगत पाप दूर होता है। जिसके गोबर के लेप से स्थान पवित्र होकर धर्म कर्म करने योग्य होता है। उनके रहने के लिए जो शाला बनी है उसमें जिसने आग लगाया, न जाने कितनी गाय उसमे बँधी है, ऐसे आग लगानेवाले के पाप का अन्त क्या है ? वर्णमात्र के जो गुरु हैं, जिनके धर्म की रक्षा से वैदिक धर्म की रक्षा है, उनकी पुरी मे जिसने आग लगाया उसने कौन सा महा पाप नही किया। इन लोगो का पाप घोरातिघोर है। इनके अतिरिक्त और भी महा पाप हैं। जैसे स्वर्णस्तेय सुरापान आदि तथा उपपातक हैं। यथा महायन्त्र निर्माण, बडे बडे इजिन बनाना। जिनसे हजारो लाखो की जीविका मारी पडे। भरतजी ब्रह्मदेव को साक्षी देकर कहते हैं कि ये सब पातक मुझे हो। अर्थात् अकृत्यकरणवाले सब पाप मुझे हो। यदि इस अनर्थ मे मेरी सम्मति हो।

दो० जे परिहरि हरि हर चरन, भजहिं भूतगन घोर।
तेहि कइ गति मोहि देउ बिधि, जौ जननी मत मोर ॥१६७॥

अर्थ : हे माता ! जो हरिहर के चरणो को छोडकर घोर भूतगण का भजन करते हैं, ब्रह्मदेव मुझे उनकी गति दें। यदि इस अनर्थ मे मेरी सम्मति रही हो।

व्याख्या : कर्म सम्बन्धी पाप के विषय मे कहकर अब उपासना सम्बन्धी पाप के विषय में कहते हैं। परिहरि का भाव यह कि पहिले हरिहर का भजन करते थे। पर तुच्छ सिद्धियो के लोभ म पडकर घोर भूत प्रेतादि के पूजन मे लग गये। ऐसे कर्णपिशाची आदि देखे गये हैं। जो अतीत घटना सब ठीक ठीक कह देते हैं। उनको सदा अशुद्ध रहना पडता है। देव पितृकर्म से उन्हे वञ्चित रहना पडता है। फलत मरने पर उन्हे भूत ही होना पडता है आजकल परलोक विद्या के नाम से भूत भजन का प्रचार बढ चला है। भरतजी कहते है कि मुझे उनकी गति मिले। यदि इस अनर्थ मे मेरा मत हो।

बात यह है कि इतनी बात तो सभी जानते है कि भरतजी ने किया कुछ नही है। अधिक से अधिक जो उनके विरुद्ध कहा जा सकता है वह इतना ही है कि उनके सम्मति से सब कुछ हुआ। यथा एक भरत कर सम्मत कहही। इसलिए भरतजी अपनी सम्मति न होने का शपथ ले रहे है।

बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेही। पिसुन पराय पाप कहि देही ॥
कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी। बेद बिदूपक बिस्व बिरोधी ॥१॥
लोभी लपट लोलुप चारा। जे ताकहि पर धनु पर दारा ॥
पावउँ मै तिन्ह कै गति घोरा। जौ जननी एहु समत मोरा ॥२॥

अर्थ : जो वेद को बेंचते हैं। धर्म को दूह लेते है। चुगुलखोर हैं। जो दूसरे का पाप मुँह से बोल देते है। कपटी कुटिल झगडालू क्रोधी वेद की दिल्लगी उडानेवाले और विश्व के विरोधी है। लोभी है। लम्पट है। लालच के दास हैं। जो पराये धन और पराई स्त्री पर निगाह लगाये रहते है। मै उनकी घोर गति को प्राप्त होऊँ। यदि माँ ! अनर्थ मे मेरी सम्मति हो।

व्याख्या : अब ज्ञान सम्बन्धी पाप के विषय से कहते हैं। मोल भाव का करना ही वेचना है। वेद का दान होता है विक्रय नही। गुरुदक्षिणा का ग्रहण होता है मूल्य का नही। वेद की कीमत आँकना महापाप है। धर्म को भावोपहत करना पाप है। जैसे विवाद के लिए विद्या पढना, मद के लिए धन कमाना, दूसरे को पीडा देने के लिए शक्ति सञ्चय करना, दूसरे का पाप कहना · उसका पाप भक्षण करना है। कपटी छली को कहते हैं। जिसके मन को वक्रगति हो उसे कुटिल कहते हैं। वेद साक्षात् परमेश्वर की वाणी है। उसका मजाक उड़ानेवाला वेद विदूषक है। ससार से द्रोह करनेवाला विश्व विरोधी है। अथवा वेदविक्रयी आदि आठो विश्व-विरोधी हैं। पैसे पैसे का लोभी वेहया। यथा : लोलुप भ्रम गृहपशु ज्यौं जहँ तहँ सिर पद त्रान बजे। तदपि अधम विचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजै। ऐसे को ही लोलुपचार कहते हैं और जो साकाक्ष दृष्टि से परधन और पराई स्त्री को देखते हैं, उसके हरण का अवसर देखा करते हैं, ऐसे लोगो की बडी घोर गति होती है। भरतजी कहते है कि मैं इनकी घोर गति को प्राप्त होऊँ। यदि मेरी इस अनर्थ मे सम्मति रही हो।

जे नहिं साधु सग अनुरागे। परमारथ पथ बिमुख अभागे॥
जे न भजहिं हरि नर तनु पाई। जिन्हहि न हरि हर सुजसु सुहाई॥३॥
तजि श्रुतिपंथु बाम पथ चलही। बंचक बिरचि बेष जगु छलही॥
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ। जननी जौ एहु जानउँ भेऊ॥४॥

अर्थ : जिन्होने साधु सङ्ग मे प्रेम नही किया। जो अभागे परमार्थ पथ से विमुख है। जिन्होने नर शरीर पाकर भगवान् को नही भजा। जिन्हे हरि हर सुयश अच्छा नही लगता। जो वेदमार्ग छोडकर वाममार्ग मे चलते हैं। ठग हैं। वेष बनाकर ससार को ठगते हैं। मुझे शङ्कर उनकी गति दे यदि माता ! मुझे यह भेद मालूम हो।

व्याख्या : अब कृत्याकरण के लिए शपथ ग्रहण करते हैं। मान लिया कि भरत की सम्मति नही थी। पर उन्हे यह भेद मालूम था। उन्होंने प्रकाश नही किया चुप रह गये। यही कृत्याकरण है। इसके लिए कहते हैं।

मति कीरति गति भूति भलाई। जो जेहि जतन जहाँ जब पाई। सो जानब सतसग प्रभाऊ। लोकहुँ वेद न आन उपाऊ। जिसका ऐसे सत्सङ्ग मे अनुराग नही वह तो परमार्थ पथ विमुख होगा ही। अत वह अभागा है। नरतन भव-

बारिधि कहँ बेरो। जो न तरइ भवसागर नर समाज अस पाइ। सो कृत निंदक मन्दमति आतम हन गति जाइ। जिसे हरि हर सुयश नही सोहाता वह खल है। यथा : हरि हर जस राकेस राहु से। पहिले जो वैदिक थे वामाचार को श्रेष्ठ समझकर दक्षिणमार्ग परित्याग किया। सिद्धि के लालच से पञ्चमकार मे रत हुए। सिद्धि कही कुछ नही। लाल कपडा पहन लिया। लाल तिलक हड्डी की माला धारण करके सिद्ध बने हुए ससार को ठगते हैं। ऐसे घोर कर्मियो की गति भरतजी कहते हैं कि मुझे शङ्कर दे यदि मुझे यह भेद भी मालूम हो।

गोस्वामीजी ने दो प्रकार का भेद माना : १ अकृत्यकरण और २ कृत्याकरण। अकृत्यकरण के तीन भेद माने १. कर्म सम्बन्धी २ उपासना सम्बन्धी ३ ज्ञान सम्बन्धी। कर्म सम्बन्धी के तीन भेद माने १ शरीरजन्य २ वाक्जन्य और मनोजन्य। सो उपर्युक्त शपथो मे सभी को गिनाया है।

दो. मातु भरत के बचन सुनि, साचे सरल सुभायँ।
कहति राम प्रिय तात तुम्ह, सदा बचन मन कायँ ॥१६८॥

अर्थ माता भरत के सरल स्वभाव के सच्चे वचन सुनकर कहने लगी कि बेटा ! तुम मनसा वाचा कर्मणा सदा रामजी को प्रिय हो।

व्याख्या : सरल स्वभाव से कहे हुए सच्चे वचन बिना प्रभाव डाले नही रहते। ऐसे वचन सुनकर माँ कौसल्या ने कहा कि मेरी जानी बात है। तुमको राम मनसा वाचा कर्मणा प्रिय है और राम को तुम मनसा वाचा कर्मणा प्रिय हो। राम प्रिय शब्द से दोनो अर्थ निकलते हैं और यहाँ दोनो अभिप्रेत हैं।

राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे। तुम रघुपतिहि प्रानहु ते प्यारे ॥
बिधु बिष चवइ स्रवइ हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी ॥१॥
भये ज्ञान बरु मिटइ न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू ॥

अर्थ : तुम्हे राम प्राणो से भी प्यारे है और तुम रामचन्द्र को प्राणो से प्यारे हो। चन्द्रमा से विष टपके और हिम पाले से आग निकले। जलचर जल से विरक्त हो जाय। ज्ञान होने पर चाहे मोह न मिटे पर तुम रामचन्द्र के प्रतिकूल नही हो सकते।

व्याख्या : प्राण का प्राण ही प्राण से प्यारा हो सकता है। सो प्राण का प्राण आत्मा है। तो तुम राम की आत्मा हो और राम तुम्हारी आत्मा हैं। इससे वनवास मे तुम्हारी सम्मति हो नही सकती। चन्द्रमा सुधाकर है। उनके किरणो मे अमृत स्राव हुआ करता है। सो चाहे वे अपना स्वभाव छोडकर विष गिराने लग जायँ और आग का स्वभाव गरम है। पाला उसके निकट नही फटक सकता। यथा : तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाय नहिं काऊ। सो चाहे हिम से आग निकलने लगे। जलचरो को जल ही शरण है। सो चाहे जलचर जल से विरक्त हो जाय। मोह का नाश ही ज्ञान है। यदि मोह न मिटा तो ज्ञान कैसा ? इस पर

कहते हैं कि यदि ज्ञान होने पर भी मोह न मिटे। अर्थात् यदि ये चारा महा असम्भव सम्भव हो जायँ। पर तुम राम के प्रतिकूल हो नही सकते।

भरतजी ने चार बार शपथ लिया। माता यहाँ चार दृष्टान्त देकर उन्ही चारों का अनुमोदन करती हैं।

मत तुम्हार एहु जो जग कहही। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहही ॥२॥
अस कहि मातु भरतु हिय लाए। थन पय स्रवहि नयन जल छाए ॥
करत बिलाप बहुत एहि भाती। बैठेहि बीत गई सब राती ॥३॥

अर्थ संसार मे जो कोई इसमे तुम्हारी सम्मति कहेगा। उसे सपने मे भी सुख और सुमति की प्राप्ति नही होगी। ऐसा कहकर माता ने भरतजी को कलेजे से लगा लिया। छाती से दूध बहने लगा और आँखो मे आँसू भर आया। इस भाँति बहुत विलाप करते बैठे ही बैठे सारी रात बीत गयी।

व्याख्या माता कौसल्याजी कहती हैं कि तुम्हारे ऐसे साधु को जो मिथ्या दोष लगावेगा उसे सुख और गति सपने से भी नही मिलेगी। अर्थात् उसका लोक परलोक दोनो नष्ट हो जायगा। पुरवासियो मे से जब किसी ने कहा कि इसमे भरतजो सम्मत है तो तुरन्त दूसरे ने कहा कि सुकृत जाय अस कहे तुम्हारे। राम भरत कहँ प्रान पियारे। महारानी कौसल्या इस व्याज से स्वय शपथ ले रही हैं कि मुझे तुम पर सन्देह नही हो सकता।

ऐसा कहकर भरत को हृदय से लगा लिया। वात्सल्य भाव के उमड आने से छाती मे दूध आगया और आँख मे आँसू आगया। इतने दिनो बाद छाती मे दूध का आना अति वात्सल्य का द्योतक है।

कवि कहते हैं कि उस समय की करुणा का मैंने प्रादेशमात्र वर्णन किया। इसी भाँति बहुत विलाप करते बैठे ही बैठे सारी रात बीत गयी। करुणा भी एक प्रधान रस है। रोने से शोक का वेग निकल जाता है। इस भाँति कुछ सुख मिल जाता है। जो अति दु ख मे नही रोता उसके मरने की सम्भावना रहती है।

२० नृपक्रिया प्रसङ्ग

बामदेउ बसिष्ठ तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए ॥
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे। कहि परमारथ बचन सुदेसे ॥४॥

अर्थ तब वामदेव और वसिष्ठजी आये। मन्त्री तथा महाजन लोगो को बुलवाया। बहुत भाँति से मुनिजो ने अवसरानुकूल परमार्थ के वचन कहकर भरतजी को बहुत भाँति से समझाया।

व्याख्या वामदेव और वसिष्ठ दोनो महाज्ञानी और रघुकुल के हितचिन्तक हैं। भरतजी के आने का समाचार पाकर प्रात काल होते ही आये। महाराज का शव अन्त पुर म ही पडा है। अब भरतजी आगये। उनके हाथ सत्कार कराना है।

अतः मन्त्रियो और नगर के प्रतिष्ठितो को बुलवाया। तब भरतजी को बहुत भाँति से उपदेश दिया। क्योकि भरतजी पर अनेक प्रकार का शोक आ पड़ा है। परमार्थ के वचन ही शोक के दूर करने मे समर्थ हैं।

दो. तात हृदय धीरजु धरहु, करहु जो अवसर आजु।
उठे भरत गुरु बचन सुनि, करन कहेउ सबु साजु ॥१६९॥

अर्थ : बेटा ! धैर्य धरो और जैसा अवसर आ पड़ा है वैसा आज करो। भरतजी गुरुजी के वचन सुनकर उठे और सब साज करने की आज्ञा दी।

व्याख्या : वसिष्ठजी ने उपदेश के अन्त मे कहा कि हृदय मे धैर्य धारण करो और जो अवसर आज उपस्थित है उसे करो। भाव यह कि भरतजी की अनुपस्थिति मे सबका कार्य वसिष्ठजी की आज्ञा से होता रहा। भरतजी के आते ही सब कार्य गुरुजी उनके सुपुर्द करते है कि अब तुम्हारी आज्ञा से कार्य होगा। अत भरतजी उठे और सब साज करने के लिए आज्ञा दी।

नृप तनु बेद बिहित अन्हवावा। परम बिचित्र बिमानु बनावा ॥
गहि पग भरत मातु सब राखी। रही रानि दरसन अभिलाषी ॥१॥

अर्थ · महाराज के शरीर को वेदोक्त विधि से स्नान कराया। परम विचित्र विमान बनाया। चरणो को पकड पकडकर माताओ को सती होने से रोका। वे भी रामजी के दर्शन की अभिलाषा से रुक गयी।

व्याख्या कार्य विवरण कहते हैं। भरतजी के न रहने से मरणोपरान्त का सब कार्य रुका हुआ था। और्ध्वदैहिक कृत्य प्रारम्भ हुआ। स्नान मे वेद मन्त्र पढे गये। शव के स्नान कराने की विधि है। शव के वहन के लिए परम विचित्र विमान बनाया गया। उत्साह से क्रिया हो रही है।

माताएँ वीरप्रसू होने पर भी सती होने के लिए उठी। वीरप्रसू को सती होने का अधिकार नही। यथा नान्वगात् वीरसू कृपी। परन्तु अन्य रानियो को अधिकार था। पर भरतजी ने सबको चरण पकडकर रोका। एक को पुत्र होने से सब माताएँ पुत्रवती हो जाती हैं। आप लोगो को चार चार पुत्र है। आप क्यो सती होती हैं ? फिर जिसे अन्य वासना नही होती वे ही सती होती हैं तो क्या आप लोगो को रामजी के दर्शन की कामना नही है ? यह दूसरी युक्ति काम कर गयी और सब रानियाँ रुक गयी।

चदन अगर भार बहु आए। अमित अनेक सुगध सुहाए ॥
सरजु तीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर सोपान सुहाई ॥२॥

अर्थ : चन्दन और अगर के बहुत से बोझे आये और बेपरमान बहुत से सुगन्धित पदार्थ आये। सरयू के किनारे रचकर चिता बनायी गयी। मानो स्वर्ग की सुन्दर सीढी हो।

व्याख्या : जहाँ नदी हो वहाँ नदीतटपर ही दाह का विधान है। यहाँ पुण्यतोया सरयू बहती हैं। अत: सरयू के किनारे चन्दन अगर आदि सुगन्धित पवित्र द्रव्यो से रचकर बडी ऊँची चिता बनायी गयी। देखने से मालूम होता था कि यही स्वर्ग जाने की सुन्दर सीढी है। सुन्दरता का बड़ा ध्यान सब कार्यो मे है। यहाँ तक कि चिता बनाने मे भी इसका ध्यान रक्खा गया।

एहि बिधि दाह क्रिया सब कीन्ही। बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही ॥
सोधि सुमृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात्र बिधाना ॥३॥

अर्थ : इस विधि से सब दाह क्रिया की और विधि के साथ स्नान करके तिलाञ्जलि दी। फिर स्मृति वेद और पुराणो को देख सुनकर भरतजी ने दशगात्र का विधान किया।

व्याख्या : उपर्युक्त सब विधि दाह क्रिया के अन्तर्गत हैं। दाह के बाद स्वय स्नान करके दाहजनित तृपोपशान्त्यर्थं तिलाञ्जलि दिया। प्राण निकल जाने पर भी यावत् देह पूर्णरूपेण नष्ट नही हो जाता। जब तक जीवात्मा का मृत शरीर से सम्बन्ध बना रहता है। यहाँ तक कि शरीर के जलने से जीव को ताप होता है।

दाह क्रिया के बाद दश दिनो तक दशगात्र विधान होता है। जिससे वह पुरुष सम्पूर्ण शरीरवाला होकर स्वर्ग मे आनन्द करता है। यथा : यद् वो अग्निरजहा- देकमङ्ग पितृलोक गमयज्जातवेदः। तद्‌एतन्पुनराप्यायामि साङ्गास्स्वर्गे पितरो मादयध्वम् : अथर्ववेद। अर्थ : हे पितरो। पितृलोक जाते समय जो आपके जिस अङ्ग को अग्नि ने जलाया है उस अङ्ग को फिर पुष्ट करता हूँ। जिसमे सम्पूर्ण अङ्गवाले होकर आप स्वर्गलोक मे आनन्द करें। दशगात्र विधान मे त्रुटि होने से वह पुरुष विकलाङ्ग होकर स्वर्ग मे पूर्ण सुख का भागी नही हो सकता। अत दशगात्र विधान के सुसम्पन्न करने मे भरतजी ने बडी सावधानी से काम लिया। श्रुति स्मृति पुराण के समन्वय से दशगात्र विधान किया।

जहँ जस मुनिबर आयसु दीन्हा। तहँ तस सहस भाँति सबु कीन्हा ॥
भये बिसुद्ध दिये सब दाना। धेनु बाजि गज बाहन नाना ॥४॥

अर्थ : जहाँ मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी ने जैसी आज्ञा दी वहाँ सब वैसा ही हजारो तरह से किया। शुद्ध हो जाने पर गाय घोडे हाथी और नाना प्रकार की सवारियाँ दान मे दी।

व्याख्या : अब एकादशाह का कृत्य कहते हैं। मुनिजी की आज्ञा का पालन हजार विधि से किया गया। दशगात्र के बाद जो कृत्य होता है उसे एकादशाह का कृत्य कहते हैं। शुद्ध होने पर वह कृत्य किया जाता है। उसके बाद विशुद्ध हो गये तो पिता के प्रीत्यर्थ सब प्रकार का दान किया। यथा : गोदान वाजिदान गजदान शिविकादि दान दिये।

दो. सिघासन भूपन बसन, अन्न धरनि धन धाम।
दिये भरतु लहि भूमिसुर, भे परिपूरन काम ॥१७०॥

अर्थ : सिंहासन गहने कपडे अन्न पृथ्वी धन प्रासादादि भरतजी ने दिये। पाकर ब्राह्मण लोगो की कामना पूर्ण हो गयी।

व्याख्या : अब एकादशाह का दान कहते है। धेनु घोडे हाथी तथा अनेक प्रकार के वाहन पहिले कह आये है और सात अब गिनाते है। इस भाँति ग्यारह की गिनती से एकादशाह का कृत्य कहते है। दान देने मे देश काल पात्र का विचार होना चाहिए। अत गोस्वामीजी तीनो दिखला रहे हैं। देश अयोध्यापुरी, काल एकादशाह, पात्र पृथ्वी के देवता, विद्या विनय सम्पन्न ब्राह्मण। अब दान का परिमाण कहते हैं कि प्रतिगृहीता पूर्णकाम हो गये। उन्हे अब किसी वस्तु की इच्छा न रह गयी। महाराज चक्रवर्तीजी के तृप्त्यर्थं दान हो रहा है। अतः शय्या का नाम न लेकर सिंहासन कहते हैं। भाव यह कि राजोपयोगी सम्पूर्ण वस्तुओ का दान किया।

राज्याभिषेक प्रस्ताव

पितु हित भरत कीन्हि जसि करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी ॥
सुदिनु सोधि मुनिवर तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए ॥१॥

अर्थ पिता के निमित्त भरतजी ने जो करणी की उसे मुख से वर्णन नही किया जा सकता। सुदिन सोधकर वसिष्ठजी आये और सब महाजनो यथा मन्त्रियो को बुलाया।

व्याख्या त्रिभुवन तीन काल मे महाराज दशरथ ऐसा राजा हुआ नही। अत जैसे पिता थे उन्ही के अनुरूप करणी भरतजी ने की। इस भाँति एकादशाह का दान कहा। महाराज को यह सब अनन्तगुणित होकर प्राप्त होगा। ऐसा भाव मन मे रखकर भरतजी ने दान दिये। इस लोक और पर लोक का सुदृढ सम्बन्ध है। ब्रह्मदेव ने प्रजा की सृष्टि के साथ ही साथ यज्ञ की भी सृष्टि की और कहा कि इसी से तुम लोग बढो और यही तुम लोगो के लिए कामधेनु हो। इससे तुम लोग देवताओ की भावना करो और बदले मे देवता तुम्हारी भावना करें। इस प्रकार परस्पर की भावना करते हुए परमश्रेय को प्राप्त हो। तदनुसार यज्ञ द्वारा इस लोक और पर लोक मे व्यापार चलता है। उसी व्यापारानुसार योग्य पात्र मे उत्तम देशकाल मे दी हुई वस्तु जिसके निमित्त दी जाती है उसे अनन्त गुणित होकर प्राप्त होती है। भरतजी की करणी ही ऐसी होती है। जिसका वर्णन नही हो सकता। कि पुन पिता के लिए जो करणी की उसका वर्णन तो हो ही नही सकता। इसलिए सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी कहा।

जब तक किसी का राज्याभिषेक न हो जाय तब तक मुनिजी पर राज्य का विशेष भार था। अत. स्वय मुहूर्त देखकर वसिष्ठजी आये। पहिले से किसी को

सूचना न दी। रामजी के अभिषेक का समाचार एक रात पहिले फैल जाने से इतनी बडी बाधा उपस्थित हो गयी। अत गुरुजी ने किसी को सूचना न देना ही उचित समझा। सभा से आ जाने पर मन्त्रियो को बुलाया। तब सब नगर के महाजनो को बुलाया। महाजनो येन गत स पन्था। महाजन का अर्थ यह है जिसे लोग मानते हो, अनुसरण करते हो। देश के सच्चे प्रतिनिधि ऐसे महाजन हैं। उनके चुनने की आवश्यकता नही होती। स्वभावत उनकी ख्याति होती है। इस भाँति मन्त्र को गुप्त रखकर कार्य करने मे गुरुजी की नीतिमत्ता द्योतित होती है। गुरुजी सबकी सम्मति से आज ही भरत को गद्दी दिया चाहते हैं।

बैठे राजसभा सब जाई। पठए बोलि भरत दोउ भाई॥
भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे। नीति धरममय बचन उचारे॥२॥

अर्थ वे सब राजसभा म आकर बैठे। तब भरत शत्रुघ्न दोनो भाइयों को बुलवाया। भरतजी को वसिष्ठजी ने निकट बैठाया और धर्म नीतिमय वचन बोले।

व्याख्या राजसभा मे आकर गुरुजी ने सबको बुलवाया। अत सब वही आये दरबार लग गया। इस समय कवि भरतजी के साथ हैं। अत लिखते हैं कि बैठे राजसभा सब जाई। दरबार लग जाने पर दोनो भाई भरत की बुलाहट हुई। चक्रवर्तीजी के पुत्रो मे इस समय ये ही दो भाई हैं। गुरुजी ने भरतजी से कहा था तात हृदय धीरज धरहु करहु जो अवसर आज। तदनुसार भरतजी ने धैर्य तो धारण किया। परन्तु पिता की क्रिया करने के बाद फिर सोच मे पड गये।

अत गुरुजी उन्हे बुलाकर आदर के लिए निकट बैठाया। भाव यह कि भरतजी पहिले से ही सिंहासन से दूर बैठ रहे है। तत्पश्चात् गुरुजी ने ऐसा वचन कहा जो धर्म और नीति दोनो दृष्टि से ठीक हो। यहाँ अर्थ का प्रश्न उपस्थित है। अर्थ का मूल्य राज्य है। जो अर्थ धर्म विरोधी होता है उसे अनर्थ कहते हैं और नीति विरुद्ध राज्य स्थायी नही होता। अत गुरुजी के वचन धर्मनीतिमय हैं।

प्रथम कथा सब मुनिबर बरनी। कइकइ कुटिल कीन्हि जसि करनी॥
भूप धरमब्रतु सत्य सहारा। जेहि तनु परिहरि प्रेमु निबाहा॥३॥

अर्थ पहिले मुनिवर ने जिस भाँति कुटिल कैकेयी ने करणी की थी वह सब यह सुनायी। फिर राजा के धर्मव्रत और सत्य की प्रशसा की जिसने शरीर त्यागकर प्रेम का निर्वाह किया।

व्याख्या : जो बातें राजमहल मे हुई उनका सुना सुनाया ज्ञान लोगो को था। भरतजी थे नही। अत उन्हें भी सुनी सुनायी जानकारी है। गुरुजी निष्पक्ष पुरुष हैं। अत सबकी जानकारी क लिए उपक्रम के रूप से कैकेयी की कुटिल करणी का वर्णन किया कि रामजी का अभिषेक आप लोगो की सम्मति से होनेवाला था। यह सुनकर कैकेयी जाकर कोपभवन मे सोई। चक्रवर्तीजी मनाने गये। पूछा क्या

चाहती हो। कहने लगी दिया हुआ जब नही मिलता तो नयी बात क्या मांगे। राजा ने रामजी की शपथ ली। तब उसने वरदान मांगे।

राजा धर्मव्रत थे। अधर्म उन्होने कभी किया नही। अत सत्य को धर्म का मूल समझकर उसे नही छोडा। तुलसी जान्यौ दसरथहि धरमु न सत्य समान। राम तज्यौ जेहि लागि बिनु राम परिहर्यौ प्रान। सो राजा धर्म और सत्य से न हटे। पर धर्म और सत्य के त्याग न करने से प्रेम का त्याग होता था। अत राजा ने शरीर परित्याग करके इस असामञ्जस्य को भी दूर किया। अर्थात् प्रेम का निर्वाह भी भली भांति किया।

कहत राम गुन सील सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ॥
बहुरि लखन सिय प्रीति बखानी। सोक सनेह मगन मुनि ग्यानी॥४॥

अर्थ मुनिराज रामजी के गुण और स्वभाव को वर्णन करते हुए सजल नयन तथा पुलकित हो गये। फिर लक्ष्मणजी और सीताजी की प्रीति की प्रशसा करने म ज्ञानी मुनि शोक और स्नेह मे मग्न हो गये।

व्याख्या आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकी भक्ति-मित्थम्भूतगुणो हरि। श्रीरामजी के गुण शील और स्वभाव ही ऐसे हैं कि मुनि लोगो के भी चित्त जो हरण करते हैं। अस सुभाउ कहुँ सुनें न देखौं। केहि खगेस रघुपति सम लेखौं। को रघुबीर सरिस ससारा। सील सनेह निबाहनिहारा। इस अवसरपर उनके गुण शील और स्वभाव का ऐसा चमत्कृत प्रकाश हुआ कि उसके कहने मे मुनिराज को भी पुलक हो गया और आँखें डबडबा आयी।

प्रीति क बखान म लक्ष्मणजी की प्रशसा पहिले सीताजी की पीछे। सीताजी तो साथ जाने के लिए धर्मत भी बद्ध थी। पर लक्ष्मणजी को तो इस प्रकार का कोई बन्धन नहीं था। इनकी प्रीति का प्रभाव मुनिजी पर ऐसा पडा था कि वर्णन करने मे ज्ञानीमुनि होने पर भी शोक और स्नेह मे मग्न हो गये। रामजी की प्रीति न बखानी। क्योंकि वे किसी को सङ्ग नही लिया चाहते थे। यहाँ पर रामजी के प्रीति प्रदर्शन न करने से ही शोभा है।

दो सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवन मरनु, जसु अपजसु बिधि हाथ॥१७१॥

अर्थ मुनिनाथ ने बिलखकर कहा कि भरतजी सुनो। यह प्रबल भावी है। हानि लाभ जीना मरना यश अपयश यह सब ब्रह्मदेव के हाथ म है।

व्याख्या भरतजी की अनुपस्थिति मे जो कुछ हुआ उसे कहते है। राम वनवास कहने मे मुनिजी बिलख उठे। कारण यह कि प्रबल भावी के सामने किसी का बल नही चलता। त्रिपुरारि भावी मेट सकते है। पर हरिइच्छा रूपी भावी के सामने उनका भी बल नही चलता। सो इन घटनाओ म हरिइच्छा रूपी प्रबल भावी काम करती थी। इसी से प्रतीकार न हो सका। हानि लाभ जीवन मरण यश अपयश

मनुष्य के हाथो मे नही है। [1]लाभ जीवन और यश कौन नही चाहता। पर सबको प्राप्त नही होता। हानि मरण और अपयश कोई नही चाहता। पर इससे कोई बचता नही। अतः यह सब ब्रह्मदेव के हाथ मे है। यथा : कर्म सुभासुभ देइ बिधाता। सो यहाँ तो बात बिगाडने स्वय सरस्वती आयी थी। मुनिजी ने रामजी का वनवास नही कहा। बिलखने से वनवास सूचित हुआ।

अस बिचारि केहि देइअ दोसू। ब्यर्थ काहि पर कीजिअ रोसू॥
तात बिचारु करहु मन माही। सोच जोगु दसरथु नृपु नाही॥१॥

अर्थ : ऐसा विचार करके किसको दोष दिया जाय और व्यर्थ किस पर क्रोध किया जाय। हे तात! मन मे विचार तो करो। राजा दशरथ शोचनीय नही हैं।

व्याख्या : गुरुजी भरतजी को दु खी देखकर समझाते हैं कि हानि लाभ जीवन मरण यश अपयश विधि के हाथ में है। मनुष्य के हाथ मे नही है। क्योकि काहु न कोउ दु ख सुखकर दाता। निजकृत कर्म भोग फल भ्राता। कोई किसी को दु ख सुख नही दे सकता। सब अपने ही किये का फल भोगते हैं। विधि भी शुभ और अशुभ कर्म के फल दाता हैं। अत. विचार करने से कोई दोषी नही ठहरता। राम गवन बन अनरथ मूला : यह हानि है। भूपति सुरपति पुर पगु धारे : यह मरण है और हेतु अपनपौ जानि जिय थकित भये धरि मौन : यह अपयश है। इसमे कैकेयी का भी दोष नही। यथा : सो भावी बस रानि अयानी। करि कुचाल अतहु पछितानी। अत : पापिनि सबहि भाँति कुल नासा। इस भाँति दोष देना अथवा जोहसि मोहसि मुह मसिलाई। लोचन ओट बैठु तैं जाई। इस भाँति क्रोध करना उचित नही है।

यदि कहिये कि मैं दोष नही देता हूँ। परन्तु पिता के मरण का सोच है। इस पर गुरुजी कहते हैं कि सोच तो असद्वृत्ति पुरुषो का किया जाता है। महाराज दशरथ तो परम सद्वृत्ति थे। जिसकी प्रजा सोच योग्य नही है। वह राजा सोच योग्य कैसे हो सकता है?

सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धरमु बिषय लयलीना॥
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥२॥

अर्थ : वह ब्राह्मण शोचनीय है जो वेदविहीन है और अपने धर्म को त्याग करके विषय मे दत्तचित्त रहता है। वह राजा शोचनीय है जो नीति नही जानता और जिसको प्रजा प्राण के समान प्रिय नही है।

---

१ सर्वं एव महाभाग महत्त्वं प्रति सोद्यमाः। तथापि पुंसा भाग्यानि नोद्यमा भोगहेतव। वि. पु.। अर्थ : हे महाभाग! सभी महत्त्व के लिए प्रयत्न करते हैं। परन्तु पुरुष का भाग्य भोग्य के कारण है। उद्यम कारण नहीं है।

व्याख्या केवल गायत्री जाननेवाला ब्राह्मण यदि वह धर्मात्मा है विषय-लीन नहीं है तो वह तीनो वेद जाननेवाले सदाचारहीन ब्राह्मण से अच्छा है। ऐसा मनु भगवान् का मत है। अत यहाँ वेद विहीन से सन्ध्या गायत्री के भी न जाननेवाले से अभिप्राय है। अत जिस ब्राह्मण को सन्ध्या गायत्री तक का ज्ञान नहीं है और अपने धर्म शम दम तप शौचादि से रहित है वह स्पर्श रूप रसादि के सुखो मे भूला हुआ है। वह सोचने योग्य है कि इसकी क्या गति होगी ? क्योकि तप श्रुति और योनि ये तीन ही ब्राह्मण कारक हैं। सो योनि तो उसे ईश्वर की कृपा से मिल गयी। पर उसने न तप किया न वद विद्या पढ़ी। ऐसा पतित ब्राह्मण सर्वथा शोचनीय है।

राजन्यवर्ग के लिए नीति का जानना और प्रजा पालन ये ही प्रधान धर्म है। क्योकि विना नीति जाने राज्य नहीं रह सकता। राज कि रहइ नीति बिनु जाने। और राजा की सृष्टि ही प्रजापालन के लिए हुई। प्रजा के लिए प्राणोत्सर्ग करना राजा का धर्म है। अत जिस राजा ने नीति न जाना और प्राण के समान प्रजा का पालन नहीं किया उसके लिए सोचना चाहिए। क्याकि उसका दोनो लोक बिगड गया। नीति न जानने से राज्य नहीं रहेगा। सो यह लोक बिगड गया और ठीक प्रजा पालन न करने से नरक का भागी होगा। यथा जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी। परलोक भी बिगडा। अत शोचनीय है।

सोचिअ बयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू ॥
सोचिअ सूद्र बिप्र अवमानी। मुखरु मानप्रिय ग्यान गुमानी ॥३॥

अर्थ धनी कृपण वैश्य का सोचना चाहिए जो अतिथि और शिवभक्त तथा सुजान नहीं है। ब्राह्मण की निन्दा करनेवाल शूद्र को सोचना चाहिए जो कि बकवादी प्रतिष्ठा चाहनेवाला और अपने को ज्ञानी मानता हो।

व्याख्या वैश्य यदि निर्धन है तो कृपण होना दोषावह नहीं है। धनवान होने पर उसे कृपिण न होना चाहिए। मनुजी का कथन है कि ब्राह्मणो मे वही श्रेष्ठ है जिसे ज्ञान अधिक है। क्षत्रियो मे अधिक बलवाला श्रेष्ठ है और वैश्यो म धनी श्रेष्ठ है। ईप्सित फल की प्राप्ति बिना शिवजी की आराधना के नहीं होती। अत वैश्य धनधान्य की समृद्धि के लिए अवश्य शिवभक्ति करे और अपने धन का विनियोग आतिथ्य सत्कार मे करे। क्योकि जितने म पेट भरे उतना ही धनियो का धन ह। उससे अधिक को जो अपना धन मानता है उसे शास्त्र चोर बतलाता है। उसे दण्ड होना चाहिए। वैश्य को सुजान अर्थात् गुणग्राहक होना चाहिए। धनी यदि गुणग्राहक न होगा तो गुणो की पूजा का लोप हो जायगा। अत श्रेष्ठ वैश्य यदि कृपण है, शिवभक्त नहीं है, अतिथिभक्त नहीं है गुणग्राहक नहीं है तो वह निरयगामी होगा। वह सोचने योग्य है।

शूद्र शोचनीय होता है ब्राह्मणनिन्दक होने से। सति प्राप्तौ निषेध । राज्य

की कामना धन की कामना ब्राह्मणो ने नही की। अत राजन्य और वैश्य के निन्दित होने के लिए स्थान नही है। शूद्रो की सेवावृत्ति विधान करने से अज्ञानी मानप्रिय शूद्रो द्वारा निन्दा की सम्भावना है। वे यह नही सोचेंगे कि जाति आयु और भोग पूर्वजन्म के कर्म का फल है। उन्हे नही मालूम ब्रह्माद्या ऋषिपर्यन्ता स्मारका न तु कारका। ब्रह्मदेव से लेकर ऋषि पर्यन्त सब स्मरण करनेवाले हैं। बनानेवाले कोई नही। वे धर्मशास्त्रो मे अपना निम्न अधिकार देखकर ब्राह्मणो को दोषी ठहरावेंगे। उनकी निन्दा करेंगे। इस भाँति अपने लिए नरकका मार्ग निरर्गल करेंगे। शूद्र का धर्म है कि ब्राह्मण की सेवा करे। विनीत हो। ज्ञानी होने मे रोक नही है ज्ञानमानी न हो। युधिष्ठिर के यज्ञ मे ज्ञानी चाण्डाल के भोजन कराने की कथा है। बिना उसके भोजन कराये यज्ञ की पूर्ति नही होती थी। सो उसे बहुमान पुरःसर पाण्डव अपने यज्ञ मे लाना चाहते थे। पर उस ब्रह्मज्ञानी चाण्डाल ने सम्मान स्वीकार नही किया। केवल अन्न ग्रहण करके उनका यज्ञ पूर्ण कर दिया। अत ब्राह्मणनिन्दक मुखर मानप्रिय और पण्डितम्मन्य शूद्र शोचनीय हो जाता है। क्योकि उसकी असद्गति ध्रुव है।

सोचिअ पुनि पति बंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी॥
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई। जो नहिं गुर आयसु अनुसरई॥४॥

अर्थ उस स्त्री को सोचना चाहिए जो पति को ठगती हो। कुटिल हो। लडाकी हो और स्वतन्त्र हो। उस ब्रह्मचारी को सोचना चाहिए जिसने अपना व्रत त्याग किया और गुरु की आज्ञा के बाहर हो गया।

व्याख्या चारो वर्णो के धर्मो का वर्णन करके स्त्रियो का धर्म कहते हैं। जो पति को ठगती है अर्थात् परपति मे रत है ऐसी स्त्री निरयगामिनी होती है। क्योकि स्त्रियो के लिए एक ही धर्म व्रत और नियम शास्त्र मे कहा है कि वे मनसा वाचा कर्मणा पति के चरणो मे प्रेम करे और जो पति को धोखा देकर जार को भजती है वह सौ कल्प तक रौरव नरक मे पडती है। यथा एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पतिपद प्रेमा। पति बचक पर पति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई। ऐसी पतिवचक नारी सरल तो हो ही नही सकती। कुटिल अवश्य होगी। कटुवादिनी के लिए सद्य त्याग का विधान है। स्त्री मे स्वातन्त्र्य की योग्यता नही है। उसका अवयव सङ्गठन इस प्रकार का होना है कि उसे सदा दूसरे की रक्षा की आवश्यकता रहती है। इसीलिए कहा है पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रास्तु स्थविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति। जो इच्छाचारी स्त्री पिता पति और पुत्र से स्वतन्त्र होकर विचरेगी उसका पतन ध्रुव है। अत ऐसी स्त्री को शोचनीय कहा है।

अब आश्रम का वर्णन करते हुए पहिले ब्रह्मचर्याश्रम के ही विषय मे कहते हैं कि वह बटु ब्रह्मचारी सोचने योग्य है जो अपना व्रत परित्याग कर देता है। उसे अवकीर्णी कहते हैं। यथा अवकीर्णी भवेद् गत्वा ब्रह्मचारी तु योषितम्। गर्दभं

पशुमालभ्य नैऋत स विशुध्यति । ब्रह्मचर्यावस्था मे ब्रह्मचर्य ही प्रधान है । तीनो प्रकार के स्नातको के लिए व्रतपालन आवश्यक है । जिसने पूर्ण विद्या नही भी पढी वह भी व्रतस्नात होकर आश्रम के फल को प्राप्त होता है । इसी भाँति महाभारत मे अनेक उदाहरण आये है कि गुरु की आज्ञा पालनमात्र से वे सिद्धि को प्राप्त हुए । भाव यह कि व्रतपालन और गुरु आज्ञापालन ये ही दोनो ब्रह्मचर्याश्रम के सार हैं । इनके अनादर से बटु निरयगामी होता है । अत शोचनीय है ।

दो. सोचिअ गृही जो मोह बस, करइ करम पथ त्याग ।
सोचिअ जती प्रपंच रत, बिगत बिबेक बिराग ॥१७२॥

अर्थ उस गृहस्थ को सोचना चाहिए जो मोहवश होकर कर्मपथ का त्याग करता है और उस सन्यासी को सोचना चाहिए जो प्रपञ्च मे लगा हुआ है और उसे वैराग्य और विवेक नही है ।

व्याख्या : जो ब्रह्मचर्य अवस्था से सन्यास ग्रहण मे असमर्थ होता है वह गृहस्थाश्रम स्वीकार करता है उसका अधिकार केवल कर्म मे है । यथा · कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समा । एव त्वयिनान्यथेतोस्ति न कर्म लिप्यते नरे । ईश० । केवल कर्म करता हुआ ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करे । इसके अतिरिक्त हे नराभिमानी ! तेरे लिए दूसरा रास्ता नही है । फल की इच्छा न करने से तुझे कर्म का लेप न होता । अत गृहस्थ को नित्य नैमित्तिक कर्म सदा करते रहने की विधि है । उसके त्याग से उसे प्रायश्चित होता है । ज्ञान होने पर वह सन्यास ग्रहण करके कर्मपथ का त्याग कर सकता है । पर मोहवश त्याग[1] करने से वह त्याग बन्धन का कारण है । इस भाँति मोहवश होकर कर्मपथ के त्याग से अधोगति होती है । अत ऐसा गृहस्थ शोचनीय है । बन्धायैव भवत्येषा ह्यविद्याप्यक्रमोज्झिता । क्रम से छोडी हुई अविद्या बन्धन का ही कारण होती है । वि पु ।

लोकत्रय त्याग पूर्वक सन्यास ग्रहण किया जाता है । उसे यह सब ससार ब्रह्ममय प्रतीत होना चाहिए और त्याग पूर्वक जीवन यापन करना चाहिए । किसी के धन की इच्छा नही करनी चाहिए । यथा ईशावास्यमिद सर्वं यत्किञ्चिज्जगत्या जगत् । तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृध कस्यस्विद् धनम् । ईश० । सन्यास लेने पर जो प्रपञ्च मे पड जाता है, ज्ञान वैराग्य खो बैठता है, उसे वान्ताशी कुत्ता कहते है । क्योकि उसने जिस वस्तु का त्याग किया था उसे फिर ग्रहण कर लिया । अत प्रपञ्ची सन्यासी शोचनीय हो जाता है ।

बैखानस सोइ सोचइ जोगू । तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू ॥
सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी । जननि जनक गुर बंधु बिरोधी ॥१॥

---

१ मोहवश कर्मपथ त्याग की इच्छा वाले अर्जुन का । भगवान् ने गीता का उपदेश करके कर्मपथारूढ किया ।

अथ वह वानप्रस्थ सोचने योग्य है जिसे तपस्या छोडकर भोग अच्छा लगे। चुगुलखार निष्कारण क्रोध करनेवाले तथा माँ वाप गुरु और भाई से विरोध करनेवाल को सोचना चाहिए।

व्याख्या तीसरा आश्रम वानप्रस्थ तप प्रधान है। ब्राह्मणो को चारा आश्रम का अधिकार है। क्षत्रिय को सन्यास का अधिकार नही है। वह विरक्त होकर वानप्रस्थ हो सकता है। यथा सत कहहिं यह नीति दसानन। चौथेपन जाइय नृप कानन। असहु नृपहिं उचित बनवासू। वानप्रस्थ म ऐसी तपस्या करनी चाहिए कि देह भूल जाय और तपस्या म ही मन लग जाय। यथा बिसरी देह तपहिं मन लागा। सो जिस वानप्रस्थी को भोग प्रिय है, तपस्या म मन नही लगता, वह स्वधर्म विरुद्धाचरण के कारण पापी है। उसे निरय निश्चय है।

वर्णाश्रमानुकूल सद्वृत्ति कहकर अब सर्व सामान्य असद्वृत्ति कहते है। चुगुलखोरी से बटकर कोई पाप नही है। यथा अघ कि पिसुनता सम किछु आना। अकारण क्रोधी ही पिशुन होते हैं। अकारण क्रोधी का कुशल होता नही। यथा जिमि चह कुसल अकारन क्रोधी। वही माँ वाप गुरु और बन्धु का भी विरोधी होता है। माँ वाप गुरु ता साक्षात् देवता है। भाई की सहायता करना परम कर्तव्य है। पर पिशुन इन लोगो का भी विरोध करता है। अत उसका दोनो लोक विगडता है। वह निश्चय शोचनीय है।

सब बिधि सोचिय पर अपकारी। निज तनु पोपक निर्दय भारी॥
सोचनीय सबही बिधि सोई। जो न छाडि छल हरि जन होई॥२॥

अर्थ दूसरे के अपकार करनेवाल को सब भाँति सोचना चाहिए। क्योकि वह अपने शरीर का पोषण करनेवाला बडा भारी निर्दय है और सब प्रकार स तो वह सोचनीय है जो छल छोडकर हरिजन नही हो जाता।

व्याख्या उपर्युक्त शोच्य तो वर्ण धर्म की दृष्टि से अथवा आश्रम धर्म की दृष्टि से अथवा कुशल की दृष्टि स शोच्य हैं। परन्तु सब विधि शोच्य तो परापकारी हैं। क्योकि उनसा अधम कोई नही है। यथा परपीडा सम नहि अधमाई। उन्ही का लक्षण कहते हं कि वह अपने शरीर का पोषण करनेवाला है। महा अविवेकी है। यह नही समझता सबके देह परम प्रिय स्वामो। वह भारी निर्दय होता है। क्याकि ठण्ढी तबीयत से दूसरे को पीडा पहुँचाता है। निदय तो क्रोधो भी हाता है। पर उसकी निर्दयता तभो तक है जब तक कि उसे क्रोध है। शान्तावस्था मे क्राधी बडी दया भी करते हैं। इसलिए परापकारी को भारी निर्दय कहते हैं। ये हो सच्चे खल हैं। परहित हानि लाभ जिन केरे। उजरे हर्ष विषाद बसेरे। हिंसा पर अति प्रीति तिनके पापहि कवन मिति। अत य सब विधि शाचनीय हैं।

जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ। सा कृत निदक मद मति आतमहन गतिजाइ। जा एसा नरजन्म पाकर भव सन्तरण नही करता वह आत्मघाती

है और भव सन्तरण विना भगवद् भजन के हो नही सक्ता। यथा साधक सिद्ध विमुक्त उदासी। कवि कोविद कृतज्ञ सन्यासी। जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पडित विज्ञानी। तरहिं न विनु सेए मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी। अत भजन न करनेवाला आत्मघाती है। अन्य दोषो के न रहते हुए भी जिसने छल छोडकर हरिभक्ति न ग्रहण की वह सब प्रकार से शोचनीय है। हरिजन का अथ हरिभक्त है। समय ऐसा आगया है कि हरिजन शब्द का अर्थ लिखना पडा। इस काल मे शब्दो के सनातन स परिगृहीत अर्थ बदल रहे है। देखते देखते हरिजन शब्द का अर्थ अछूत हो गया। कोई ऐसा अर्थ न समझ ल इसलिए लिखना पडा।

सोचनीय नहिं कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
भयउ न अहइ अब होनिहारा। भूपु भरत जस पिता तुम्हारा ॥३॥
बिधि हरि हर सुरपति दिसिनाथा। बरनहिं सब दसरथ गुन गाथा ॥४॥

अर्थ कोसलनाथ सोचने योग्य नही हैं। उनका प्रभाव तो चौदहो लोको मे प्रक्ट है। हे भरत! तुम्हारे पिता जैसे राजा थे वैसा न कभी कोई हुआ न इस समय है और न भविष्य मे होनेवाला है।

व्याख्या कोसलनाथ महाराज दशरथ धर्म धुरन्धर राजर्षि ज्ञानी और परम भक्त थे। प्रजा का पालन उन्होने और स पुत्र की भाँति किया। वे शोचनीय कैसे हो सकते हैं? उनकी सद्गति ध्रुव है। त्रिभुवन तीन काल जग माँही। भूरिभाग दसरथ सम नाँही। यह बेजोड राजा था। पहिल भी बडे बडे राजा हुए पर दशरथ ऐसा कोई न हुआ। इस समय भी कोई नही है और न भविष्य म कोई होगा। रामचन्द्र भी दशरथ की बराबरी न कर सकेंगे। क्योकि राम सा पुत्र होना तो दशरथ के ही भाग्य मे था।

सभु बिरचि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अस ते नाना। जिस रामजी के अश से त्रिदेवो की उत्पत्ति है वे राम उनके पुत्र है। अत त्रिदेव दशरथजी के गुण ग्राम वर्णन करते है। यथा जासु सनेह सकोच बस राम प्रकट भए आइ। जे हरि हिय नयननि कबहुँ निरखे नही अघाइ। सुरपति बसहिं बाहु बल जाके। इसलिए सुरपति उनके गुण गाथ वर्णन करते हैं। लोकप करहिं प्रीति रुख राखे। अत दिक्पाल भी उनके गुणा का गान करते हैं।

दो कहहु तात केहि भाँति कोउ, करहि बडाई तासु।
राम लखन तुम्ह सत्रुहन, सरिस सुअन सुचि जासु ॥१७३॥

अथ हे तात! कहो काई उनकी बडाई कैसे कर सकता है जिनके राम, लक्ष्मण से तुम से और शत्रुघ्न से बेटे हैं।

व्याख्या अब गुरुजी बडाई का मुख्य कारण कहते है। पुत्रेणाय लोको जय्य। पुत्र से ही यह लोक जीता जाता है। अत यदि किसी को तुम लागो के ऐसा पुत्र हो तो उसकी गणना व रें। एसा भाग्यवान् कौन है? पिता के पुण्य की इयत्ता तो पुत्र

की महिमा से ही की जाती है। तुम चारो भाइयो सा शुद्धान्त करण पवित्र कौन है? यथा ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुतवधूँ देवसरि बारी। अत जिसके पुण्य से तुम चारो भाइयो का उनके घर जन्म हुआ उसकी बडाई कोई करना चाहे तो कैसे करे। इस व्याज से गुरुजी ने चारो भाइयो की बडी प्रशसा की।

सब प्रकार भूपति बडभागी। बादि बिषादु करिअ तेहि लागी ॥
यहु सुनि समुझि सोचु परिहरहू। सिर धरि राज रजायसु करहू ॥१॥

अर्थ . चक्रवर्तीजी सब प्रकार से भाग्यवान् थे। उनके लिए शोक करना व्यर्थ है। इसको सुनकर और समझकर शोक करना छोड दो और सिर पर धारण करके राजाज्ञा का पालन करो।

व्याख्या · चार प्रकार से ही लोग बडभागी होते हैं। यशस्वी होने से, राजा होने से, गुणी होने से तथा सत् सन्तान के होने से। भुवन चारि दस प्रकट प्रभाऊ से लेकर सरिस सुअन सुचि जासु तक कहकर गुरुजी ने चक्रवर्तीजी के चारो प्रकार का अत्यन्त उत्कर्ष कहा। अत चक्रवर्तीजी सब प्रकार से ही अशोच्य हैं। उन सा बडभागी कौन होगा। सोचे जाते हैं अभागी, जिनका न यह लोक बना न परलोक बना।

तात बिचार करहु मन माँही से शोक न करने का उपक्रम करके यह सुनि समुझि सोचु परिहरहू। से उपसहार करते हैं और उपदेश देते हैं कि राज्य को सिर पर चढाकर अर्थात् स्वीकार करके राजाज्ञा का पालन करो। सुख के ध्यान से नही राजाज्ञा के ध्यान से करो। राजा दण्डधरो गुरु । सबको राजाज्ञा मानना चाहिए। विशेषत तुम तो उनके पुत्र हो।

राय राजपदु तुम कहुँ दीन्हा। पिता बचनु फुर चाहिअ कीन्हा ॥
तजे रामु जेहिं बचनहि लागी। तनु परिहरेउ राम बिरहागी ॥२॥

अर्थ · चक्रवर्तीजी ने राजगद्दी तुम्हे दी। पिता के वचन को सत्य करना चाहिए। जिस वचन के लिए उन्होने रामजी को त्यागा और रामजी की विरहाग्नि मे शरीर त्याग दिया।

व्याख्या · भरतजी को चुप देखकर गुरुजी फिर कहते हैं कि तुम्हारे मन मे यदि यह हो कि बडे भाई के रहते मेरा गद्दी स्वीकार करना उचित नही है तो ऐसी बात नही है। महाराज सर्वथा राज्य के स्वामी थे। वे राज्य दान कर सकते थे। उनका राज्य पर पूरा अधिकार था। उन्होंने तुम्हे राज्यपद दिया। तुमको तो उनके वचन को सत्य करना ठहरा। यहाँ राज्य सुख का प्रश्न नही है। पिता के वचन के सत्य करने का प्रश्न है।

यदि कहो कि पिता को तो राम का राज्य प्रिय था तो यह बात भी नही है। उन्हें सबसे प्रिय अपना वचन था। अपने वचन के लिए ही उन्होंने रामजी का परित्याग किया और रामजी उनको प्यारे [illegible]

है और भव सन्तरण बिना भगवद् भजन के हो नही सकता। यथा साधक सिद्ध विमुक्त उदासी। कबि कोबिद कृतज्ञ सन्यासी। जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पडित बिज्ञानी। तरहिं न बिनु सेए मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी। अत भजन न करनेवाला आत्मघाती है। अन्य दोषो के न रहते हुए भी जिसने छल छोडकर हरिभक्ति न ग्रहण की वह सब प्रकार से शोचनीय है। हरिजन का अर्थ हरिभक्त है। समय ऐसा आगया है कि हरिजन शब्द का अर्थ लिखना पडा। इस काल म शब्दो के सनातन से परिगृहीत अर्थ बदल रहे है। देखते देखते हरिजन शब्द का अर्थ अछूत हो गया। कोई ऐसा अर्थ न समझ ल इसलिए लिखना पडा।

सोचनीय नहि कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
भयउ न अहइ अब होनिहारा। भूपु भरत जस पिता तुम्हारा॥३॥
बिधि हरि हर सुरपति दिसिनाथा। बरनहि सब दसरथ गुन गाथा॥४॥

अर्थ कोसलनाथ सोचने योग्य नही है। उनका प्रभाव तो चौदहो लोको मे प्रकट है। हे भरत! तुम्हारे पिता जैसे राजा थे वैसा न कभी कोई हुआ न इस समय है और न भविष्य मे होनेवाला है।

व्याख्या कोसलनाथ महाराज दशरथ धर्म धुरन्धर राजर्षि ज्ञानी और परम भक्त थे। प्रजा का पालन उन्होने और स पुत्र की भाँति किया। वे शोचनीय कैसे हो सकते हैं? उनकी सद्गति ध्रुव है। त्रिभुवन तीन काल जग माँही। भूरिभाग दसरथ सम नाँही। यह बेजोड राजा था। पहिले भी बडे बडे राजा हुए पर दशरथ ऐसा कोई न हुआ। इस समय भी कोई नही है और न भविष्य मे कोई होगा। रामचन्द्र भी दशरथ की बराबरी न कर सकेंगे। क्योकि राम सा पुत्र होना तो दशरथ के ही भाग्य मे था।

संभु बिरंचि बिष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना। जिस रामजी के अंश से त्रिदेवो की उत्पत्ति है, व राम उनके पुत्र है। अत त्रिदेव दशरथजी के गुण ग्राम वर्णन करते है। यथा जासु सनेह सकोच बस राम प्रकट भए आइ। जे हरि हिय नयननि कबहुँ निरखे नही अघाइ। सुरपति बसहिं बाहु बल जाके। इसलिए सुरपति उनके गुण गाथ वर्णन करते हैं। लोकप करहिं प्रीति रुख राखे। अत दिक्पाल भी उनके गुणा का गान करते हैं।

दो कहहु तात केहि भाँति कोउ, करहि बडाई तासु।
राम लखन तुम्ह सत्रुहन, सरिस सुअन सुचि जासु॥१७३॥

अर्थ हे तात! कहो कोई उनकी बडाई कैसे कर सकता है जिनके राम, लक्ष्मण से, तुम से और शत्रुघ्न से बेटे है।

व्याख्या अब गुरजी बडाई का मुख्य कारण कहते हैं। पुत्रेणाय लोको जय्य। पुत्र स ही यह लाक जीता जाता है। अत यदि किसी को तुम लागो के ऐसा पुत्र हो तो उसकी गणना करें। ऐसा भाग्यवान् कौन है? पिता के पुण्य की इयत्ता तो पुत्र

की महिमा से ही की जाती है। तुम चारो भाइयो सा शुद्धान्त करण पवित्र कौन है ? यथा : ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुतबधू देवसरि बारी। अत जिसके पुण्य से तुम चारो भाइयो का उनके घर जन्म हुआ उसकी बडाई कोई करना चाहे तो कैसे करे। इस व्याज से गुरुजी ने चारो भाइयो की बडी प्रशसा की।

सब प्रकार भूपति बड़भागी। बादि बिषादु करिअ तेहि लागी ॥
यहु सुनि समुझि सोचु परिहरहू। सिर धरि राज रजायसु करहू ॥१॥

अर्थ . चक्रवर्तीजी सब प्रकार से भाग्यवान् थे। उनके लिए शोक करना व्यर्थ है। इसको सुनकर और समझकर शोक करना छोड दो और सिर पर धारण करके राजाज्ञा का पालन करो।

व्याख्या : चार प्रकार से ही लोग बड़भागी होते है। यशस्वी होने से, राजा होने से, गुणी होने से तथा सत् सन्तान के होने से। भुवन चारि दस प्रकट प्रभाऊ से लेकर . सरिस सुअन सुचि जासु तक कहकर गुरुजी ने चक्रवर्तीजी के चारो प्रकार का अत्यन्त उत्कर्ष कहा। अत चक्रवर्तीजी सब प्रकार से ही अशोच्य हैं। उन सा बडभागी कौन होगा। सोचे जाते हैं अभागी, जिनका न यह लोक बना न परलोक बना।

तात विचार करहु मन माँही से शोक न करने का उपक्रम करके यह सुनि समुझि सोचु परिहरहू। से उपसहार करते है और उपदेश देते हैं कि राज्य को सिर पर चढाकर अर्थात् स्वीकार करके राजाज्ञा का पालन करो। सुख के ध्यान से नही राजाज्ञा के ध्यान से करो। राजा दण्डधरो गुरु.। सबको राजाज्ञा मानना चाहिए। विशेषत तुम तो उनके पुत्र हो।

राय राजपदु तुम कहुँ दीन्हा। पिता बचनु फुर चाहिअ कीन्हा ॥
तजे रामु जेहिं बचनहि लागी। तनु परिहरेउ राम बिरहागी ॥२॥

अर्थ . चक्रवर्तीजी ने राजगद्दी तुम्हे दी। पिता के वचन को सत्य करना चाहिए। जिस वचन के लिए उन्होंने रामजी को त्यागा और रामजी की विरहाग्नि मे शरीर त्याग दिया।

व्याख्या : भरतजी को चुप देखकर गुरुजी फिर कहते हैं कि तुम्हारे मन मे यदि यह हो कि बडे भाई के रहते मेरा गद्दी स्वीकार करना उचित नही है तो ऐसी बात नही है। महाराज सर्वथा राज्य के स्वामी थे। वे राज्य दान कर सकते थे। उनका राज्य पर पूरा अधिकार था। उन्होने तुम्हे राज्यपद दिया। तुमको तो उनके वचन को सत्य करना ठहरा। यहाँ राज्य सुख का प्रश्न नही है। पिता के वचन के सत्य करने का प्रश्न है।

यदि कहो कि पिता को तो राम का राज्य प्रिय था तो यह बात भी नही है। उन्हे सबसे प्रिय अपना वचन था। अपने वचन के लिए ही उन्होंने रामजी का परित्याग किया और रामजी उनको अपने देह से भी अधिक प्यारे थे। अत उनके

विरहाग्नि मे शरीर का भी परित्याग किया। अर्थात् देह से प्रिय राम और राम से भी अधिक प्रिय वचन। यथा : तुलसी जान्यौ दसरथहि धरमु न सत्य समान। रामु तज्यौ जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान।

नृपहिं बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना। करहु तात पितु बचन प्रवाना॥
करहु सीस धरि भूप रजाई। हइ तुम कहँ सब भाँति भलाई॥३॥

अर्थ : राजा को वचन प्यारा था। प्राण प्यारा नही था। हे तात! पिता के वचन को प्रमाण करो। राजाज्ञा को सिर चढाकर पालन करो। इसी मे तुम्हारी सब प्रकार की भलाई है।

व्याख्या : राजा का वचन ही सब कुछ होता है। अत राजा को वचन प्रिय था। प्राण प्रिय नही था। उस वचन को प्रमाण करना ही चाहिए। तुम पुत्र होकर उनके वचन को प्रमाण न करोगे तो कौन करेगा। जिस वचन के लिए उन्होने प्राण दिया वही अप्रमाण हो जायगा।

यदि कहो कि महाराज के बाद हक बडे भाई का होता है। बड़ा भाई भी पिता के समान होता है। ज्येष्ठो भ्राता पितु सम। अत. राज्य स्वीकार करने मे मेरी भलाई नही है तो यह बात भी नही है। राजाज्ञा को शिरोधार्य करने मे ही तुम्हारी सब प्रकार की भलाई है। तुम तो अपनी इच्छा से राज्य नही ले रहे हो। तुम पुत्रधर्मपुर सर पिता की आज्ञा मान रहे हो। उस आज्ञा मे यदि कोई दोष है तो उसके जिम्मेदार तुम नही हो। उसका प्रातिभाव्य आज्ञा देनेवाले पर है। प्रतिज्ञा और हेतु देकर अब उदाहरण देते है।

परसुराम पितु आग्या राखी। मारी मातु लोग सब साखी॥
तनय जजातिहि जौबनु दयऊ। पितु आग्याँ अघ अजसु न भयऊ॥४॥

अर्थ : परशुरामजी ने पिता की आज्ञा पालन की और माता को मार डाला। इसको ससार जानता है। ययाति राजा को बेटे ने जवानी दे दी। परन्तु पिता की आज्ञा के कारण उन लोगो को न पाप हुआ और न अपयश हुआ।

व्याख्या : परशुरामजी ने पिता की आज्ञा से मातृवध किया। उन्हे मातृवध इष्ट नही था। मातृवध से बड़ा कोई पाप नही। तुमने भी पहिले उसी को गिनाया। यथा : जे अघ मातु पिता सुत मारे। इतने बडे पाप को परशुरामजी ने पिता की आज्ञा के सामने कुछ न गिना और पितृ आज्ञा पालन के प्रताप से पाप उनका स्पर्श भी न कर सका और न उनकी इस कारण अपकीर्ति हुई। ससार इस कथा को जानता है कि एकबार जमदग्निजी ने अपनी पत्नी रेणुकादेवी पर रुष्ट होकर अपने पुत्रो को आज्ञा दे दी कि इसे मार डालो। पर कोई राजा नही हुआ। तब अपने छोटे पुत्र परशुरामजी को आज्ञा दी कि इसे मार डालो और मेरी आज्ञा न माननेवाले अपने भाइयो को भी मार डालो। परशुरामजी ने वैसा ही किया। जमदग्नि ऋषि प्रसन्न हो गये। परशुरामजी से कहा वर माँग। उन्होने

वर माँगा कि मेरी माँ और भाई जी उठें और उन्हे यह याद न रहे कि मैंने उन्हे मारा था। पिता ने तथास्तु कह के जिला दिया। जो हो मातृवध तो उनके हाथ हुआ। बतलाओ कौन उन्हे पूज्य नही मानता ?

ययाति राजा भगवान् भार्गव के शाप से बूढे हो गये। कामवासना से उनका मन तृप्त नही हुआ था। बडी विनती करने पर ऋषिजी ने शापानुग्रह किया कि यदि कोई तुम्हारी बुढाई लेकर अपनी जवानी दे दे तो मेरे प्रसाद से यह सम्भव होगा। अपने लडको से उन्होने जवानी माँगी पर किसीने न दिया। छोटे लडके ने अपनी जवानी दी और बाप की बुढाई लेकर बूढा हो गया। यदि विचारा जाय तो कितना बडा अनर्थ हुआ। बेटा अपनी जवानी बाप को दे इससे बडा अनर्थ क्या होगा! क्योकि पुत्र के यौवन से उसकी माता को ही भोगेगा। इस पाप और दुर्यश का क्या ठिकाना ? परन्तु उसे यौवन देने की इच्छा न थी। बाप की आज्ञा से दे दिया। अत न पाप हुआ न दुर्यश हुआ।

दो अनुचित उचित विचारु तजि, जे पालहि पितु बयन।
ते भाजन सुख सुजसु के, बसहि अमरपति अयन ॥१७४॥

अर्थ · जो उचित अनुचित का विचार छोडकर पिता के वचन का पालन करते हैं वे सुयश के पात्र होकर इन्द्रलोक को प्राप्त करते है।

व्याख्या पिता के वचन मे उचित अनुचित के विचार को स्थान ही नही हैं। जो पिता ने आज्ञा दे दी वही पालनीय है। औचित्यानौचित्य का भार पिता पर है। पुत्र तो आज्ञा पालक ठहरा। उसे पिता के वचन पालन का पुण्य होता है। पाप से उसका स्पर्श नही होता। ऐसा वचन यदि दुख का कारण दुर्यश का कारण तथा निरय का कारण भी जान पडे तो भी पुत्र पर इनका कोई प्रभाव न पडेगा। पिता की आज्ञा पालनेवाला दुख न पाकर सुख पावेगा। उसकी अपकीर्ति न होकर कीर्ति होगी। वह नरकगामी न होकर इन्द्रलोक मे निवास पायेगा।

अवसि नरेस बचन फुर करहू। पालहु प्रजा सोकु परिहरहू ॥
सुरपुर नृपु पाइहि परितोषू। तुम्ह कहुँ सुकृत सुजसु नहिं दोषू ॥१॥

अर्थ . तुम राजा के वचन को अवश्य सत्य करो। प्रजा का पालन करो और शोक का त्याग करो। राजा को स्वर्ग मे सन्तोष होगा और तुमको पुण्य और सुन्दर यश होगा। दोष नही होगा।

व्याख्या · पहिले गुरुजी ने राजाज्ञा पालन करने को कहा। फिर पिता के वचन को सत्य करने को कहा। तीसरी बार पिता के प्रिय होने से वचन को प्रमाण करने के लिए कहा। चौथी बार राजाज्ञा पालन मे भरतजी की भलाई दिखलाया। अब पाँचवी बार भलाई का उदाहरण देकर उसी बात पर जोर देते हुए कहते है कि अवश्य राजा के वचन को सत्य करो। प्रधान राजधर्म प्रजा पालन है। वह इस समय सिवा तुम्हारे करता कौन है ? इसलिए शोक छोडकर राजधर्म संभालो।

यदि कहो कि राजा ने सन्तुष्ट होकर नहीं कहा है, वचनबद्ध होने से लाचार होकर कहा है। इसपर कहते हैं कि सुरपुर मे राजा को सन्तोष होगा। तुम्हारे वचन पालन से जब सुरपुर मे राजा का सम्मान बढेगा तो उन्हे सन्तोष होगा। गुरु की हैसियत से कह रहे हैं कि तुम्हे पुण्य होगा, सुयश होगा। डरो मत कि मुझे पाप होगा या दुर्यश होगा। कारण देते है

वेद बिदित समत सबहीका। जेहि पितु देइ सो पावइ टीका ॥
करहु राजु परिहरहु गलानी। मानहु मोर बचनु हित जानी ॥२॥

अर्थ वेद म भी ऐसा ही कहा है और लोक भी ऐसा ही मानता है कि जिसे पिता दे वही राजतिलक पावे। ग्लानि छोडकर राज्य करो और मेरे वचन को हित जानकर मानो।

व्याख्या सर्वोपरि प्रमाण वेद है। वह भी यही कहता है कि जिसे पिता दे वह राज्य पावे। वेद की आज्ञा ही धर्म है। चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म। लोकविद्विष्ट-धर्म को न करने का भी विधान है। पर इस विषय म लोक भी ऐसा ही मानता है कि जिसे पिता दे वह राज्य पावे। कुलरीति पिता के विशेष आज्ञा के अभाव मे मान्य है।

इतना कहने पर भी भरतजी चुप हैं। अत कहते हैं कि तुम ग्लानि को छोडकर राज्य करो। मैं जो कहता हूँ उसे हित समझकर मानो। फिर भी भरतजी चुप हैं। गुरुजी की आज्ञा पर भी राज्य स्वीकार नहीं है। मम यह है कि स्वार्थ-सिद्धि की आज्ञा मे विचार को अवसर मिलता है। स्वार्थ विरोध की आज्ञा मे विचार को अवसर नहीं है। यही कारण है कि रामजी ने रुख देखकर आज्ञा मान ली और भरतजी कहने पर भी नहीं मान रहे हैं। गुरुजी इस बात को भलीभाँति समझते हैं कि इन्हे राम जानकी की अप्रसन्नता का भय है। कौसल्या आदि माताओ के दु खी होने का ख्याल है। रामजी के लौटने पर उनके सामने सिंहासन पर कैसे बैठेंगे। इस बात का क्षोभ है। अत फिर गुरुजी बोले।

सुनि सुख लहब राम बैदेही। अनुचित कहब न पडित केही ॥
कौसल्यादि सकल महतारी। तेउ प्रजा सुख होहिं सुखारी ॥३॥

अर्थ इस बात को सुनकर राम जानकी को सुख होगा और कोई पण्डित इसे अनुचित नहीं कहेगा। कौसल्या आदिक माता लोग भी प्रजा के सुख से सुखी होगी।

व्याख्या राम जानकी यह सुनकर कि तुमने भी पिता की आज्ञा को शिरो धार्य किया सुखी होगे। यह न सोचो कि वे अप्रसन्न होगे। मैं उनके स्वभाव से भली भाँति परिचित हूँ। राम पुनीत विषय रस रूखे। लोलुप भूमि भोग के भूखे। मूर्खो की कोई गणना नहीं। उनका कोई चला नहीं सकता। गणना तो पण्डित के कहने की है। उसका जिम्मा मैं लेता हूँ कि कोई पण्डित अनुचित नहीं कह सकता।

मूर्खों के विषय मे कहा गया है : भलो कहे बिनु जानही बिनु जाने अपवाद । ते नर गादुर जानि जिअ करिअ न हरख विषाद ।

माताएँ भी महाराज दशरथ की योग्या हैं । उनको सबसे अधिक ख्याल प्रजा का रहता है । रामजी के वन-चलते समय माता कौसल्याजी ने कहा : वेगि प्रजा दुख मेटव आई । इस समय प्रजा के अनाथ होने से वे सब दु खी हैं । तुम्हारे राजा होने से प्रजा सुखी होगी तो वे लोग भी सुखी हो जावेंगी ।

मरम तुम्हार राम कर जानिहि । सो सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि ॥
सौंपेहु राजु राम के आएँ । सेवा करेहु सनेह सुहाएँ ॥४॥

अर्थ : जो तुम्हारे और रामजी के मर्म को जानेंगे वे सब प्रकार से तुमसे भला मानेंगे । रामजी के आने पर उन्हे राज सौंप देना और सुन्दर प्रेम के साथ उनकी सेवा करना ।

व्याख्या : अब प्रजा के विषय मे कहते हैं कि वे तो इस समय भी तुमसे भला मानते हैं । वे ही क्यो जो तुम्हारे और रामजी के मार्मिक प्रेम को जानेगा वह सब तुमसे भला मानेगा । यथा : देवि परन्तु भरत रघुवर की । प्रीति प्रतीति जाइ नही तरकी । विधु विष चवइ स्रवइ हिमु आगी । होइ वारिचर बारि बिरागी । भए ग्यान बरु मिटइ न मोहू । तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू ।

तुम्हारा सेवाधर्म भी नही बिगडेगा । तुम केवल रामजी की अनुपस्थिति मे राज्य करो । उनके आने पर राज्य सौंप देना और आनन्द से उनकी सेवा करना । यह राज्य करना भी उनकी सेवा करना ही है । इतना कहकर गुरुजी मौन हो गये । वस्तुत जो निष्कर्ष गुरुजी ने निकला वह किसी का किया अन्यथा नहीं हो सका । फिर भी भरतजी का रुख अनुकूल न देखकर मन्त्री लोग बोले । राज्यकार्य मे गुरुजी के बाद इन्ही का नम्बर है ।

दो. कीजिअ गुर आयसु अवसि, कहहिं सचिव कर जोरि ।
रघुपति आये उचित जस, तस तब करब बहोरि ॥१७५॥

अर्थ · मन्त्री हाथ जोडकर कहते है कि अवश्य गुरुजी की आज्ञा का पालन कीजिए । रामजी के लौट आने पर जैसा उचित होगा वैसा कीजियेगा ।

व्याख्या : गुरुजी के प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए मन्त्री लोग बोले कि पहिली चार बातें जिनमे राज करने को कहा गया है स्वीकार न हो तो गुरुजी की आज्ञा तो अवश्य कीजिये । यह बात मन्त्री लोग हाथ जोड़कर विनय कर रहे हैं । अर्थात् प्रजापालन अवश्य कीजिये । सरकार को लौटने पर उचित विचार का अवसर है । इस समय तो प्रजापालन कर्तव्य है । आप नही पालन करेंगे तो कौन करेगा ? पिता की आज्ञा का पालन भी हो गया और आपका सेवा धर्म भी बना रह गया । तब तस करब बहोरि : भाव यह कि इस समय दूसरा कुछ करने का अवसर नही है ।

कौसल्या धरि धीरजु कहई। पूत पथ्य गुर आयेसु अहई॥
सो आदरिअ करिअ हित मानी। तजिअ बिषादु काल गति जानी॥१॥

अर्थ कौसल्याजी धैर्य धारणकर बोली : बेटा! गुरुजी की आज्ञा पथ्य है। उसका आदर करो और हित मान करके आचरण करो। कालगति मानकर विषाद छोडो।

व्याख्या : इस अवसर पर कौसल्याजी का बोलना अत्यन्त आवश्यक था। सब रानियों मे प्रधान हैं। इन्ही के पुत्र को वनवास दिया गया। इनके बिना कहे भरतजी का राज्य स्वीकार करना उचित भी नही था। भरतजी का प्रेम देखकर धैर्य छूट जाता था। अभिषेक की चर्चा से राम वनवास आँख के सामने आगया। इसलिए धैर्य छूट रहा था। उसे धारण किया। तीसरे यह कि आज महाराज के न होने से यह गति हो रही है नही तो अभिषेक के लिए कितना बडा उत्सव होता इत्यादि। धैर्य छूटने के अनेक कारण वर्तमान होने पर भी धैर्य धारणकर माँ बोली। पूत सम्बोधन मे ही वात्सल्य उमडा पडता है। कहती है कि गुरुजी की आज्ञा पथ्य है। रोगी के लिए हितकर है। इस समय रामवियोगरूपी कुरोग से सब दु खी है। यथा राम वियोग कुरोग बिगोये। इसी से रोग का उपशमन सम्भव है। रोगी हो, अपने मन का न करो। सद्गुरु के वचन का विश्वास करो : कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी। सद्गुरु बैद्य बचन विश्वासा यहाँ विश्वास करना ही आदर करना है और आचरण करना ही पथ्य सेवन है।

गुरुजी ने कहा था मानहु मोर बचन हित जानी। कौसल्याजी की गुरुचरणो मे महाराज की सी भक्ति है। यथा तुम पुनीत कौसल्या देवी। मेरे विशेषि गति रावरी तुलसी प्रसाद जाके सकल अमगल भागे अत गुरुजी के वचन के लिए कहती हैं सो आदरिअ करिअ हित मानी और विषाद छोडने को कहती है। क्योकि काल की गति हटाई नही जा सकती। यथा काल करम गति अघटित जानी। अत विषाद व्यर्थ है। भरतजी रो रहे है। इस पर कहती है।

बन रघुपति सुरपति नरनाहू। तुम एहि भाँति तात कदराहू॥
परिजन प्रजा सचिव सब अबा। तुमही सुत सब कह अवलबा॥२॥

अर्थ रघुपति रामजी वन मे हैं। महाराज इन्द्र के यहाँ है। और तुम इस भाँति कादर हो रहे हो। कुटुम्बीजन प्रजा मन्त्री तथा माताओ को बेटा! केवल तुम अवलम्ब हो।

व्याख्या माता कहती हैं कि उपाय भी तो दूसरा कोई नही है। रघुपति पालन मे समर्थ थे सो तो वन मे है यहाँ हैं नही महाराज भी नही है। वे अपने सखा इन्द्र के यहाँ चले गये। पहिले रामजी का नाम लिया। क्योकि उन्ही का अभिषेक सर्वसम्मति से होनेवाला था। महाराज वृद्ध हो गये थे। राज्य के भार से हलका होना चाहते थे। अत उनका नाम पीछे से लिया। वे भी होते तो लाचार

होकर पालन करते हो। जब दोनो नही है तो तुम्हारे अतिरिक्त पालन कौन करता है ? सो तुम वीर होकर इस भाँति कादर हो रहे हो कि रोते हो।

प्रिय परिजन पुरजन, तुम्हारे पिता के सामने के मन्त्री, माताएँ सब इस समय निराधार हो रहे हैं। केवल तुम्हारा सहारा है। तुम्हारे साहस छोडने से ये सब मारे पडेंगे। इन पर दु सह दु ख का भार आ पडेगा।

लखि बिधि बाम काल कठिनाई। धीरजु धरहु मातु बलि जाई॥
सिर धरि गुर आयसु अनुसरहू। प्रजा पालि पुरजन दुखु हरहू॥३॥

अर्थ विधाता की प्रतिकूलता और काल की कठिनता को लखकर धैर्य धारण करो। माता तुम्हारी बलैया लती है। गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य करो और तदनुसार आचरण करो। प्रजा का पालन करके नागरिको के दु ख का हरण करो।

व्याख्या धीरजु धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परखिअहिं चारी। सो यह आपत्काल उपस्थित है, विधाता प्रतिकूल है जिसने कैकेयी को पागल बना दिया। यथा बिधि बाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी और काल भी कठिन उपस्थित है जिसके आगे किसी का बल नही चलता। यथा सब कर आज सुकृत फल बीता। भयउ कराल काल बिपरीता यही समय धर्म की परीक्षा का है। अत मैं माँ हूँ तुम्हारी बलैया लती हूँ तुम धैर्य धरो।

पूत पथ्य गुरु आयसु अहई से उपक्रम करके सिर धरि गुरु आयसु अनुसरहू स उपसहार करती हुई कहती हैं कि प्रजापालन कौन करेगा ? इसलिए प्रजापालन करके पुरजन का दु ख हरण करो। क्योकि इस समय बिना राजा के प्रजा अनाथ हो रही है।

गुरु के बचन सचिव अभिनदनु। सुने भरत हिय हित जनु चदनु॥
सुनि बहोरि मातु मृदु बानी। सील सनेह सरल रस सानी॥४॥

अर्थ गुरुजी के वचन और मन्त्रियो का अभिनन्दन भरतजी ने सुना। जो हृदय के लिए चन्दन सा हितकर था। फिर शील स्नेह और सरलता के रस से सनी हुई माता की वाणी सुनी।

व्याख्या गुरु के बचन प्रतीत न जेही। सपनेहु सुलभ न सुखसिधि तेही। जिसके लिए स्वय भरतजी कहते हैं अवसि फिरव गुरु आयसु मानी। सो गुरु को वाणी किसी प्रकार हटाने योग्य नही जिसके विषय म धर्म विरुद्ध होने की शङ्का भी नही की जा सकती। फिर मन्त्रियो ने उसका अनुमोदन किया। अत नीति विषयक सन्देह भी उस पर नही किया जा सकता। वह वाणी शीतल और हित कारक थी। जिस भाँति चन्दन हृदय के लिए और स्पर्श म शीतल है।

फिर माता की मृदु वाणी सुनी। जो शील, स्नेह और सरल रस से सनी हुई थी। शील यथा पूत पथ्य गुर आयसु अहई। सनेह यथा तुमही सुत सब कहँ

अवलम्बा। सरल यथा · धीरज धरहु मातु वलि जाई। तथापि भरतजी का कष्ट घटने के स्थान मे बढा। उन्हे आशा थी कि कम से कम माता कहेगी कि यदि भरतजी राज्य नही लेते तो रामजी को लौटाओ पर ये ऐसो सरल थी कि जो सबने कहा उसी को इन्होने भी मान लिया।

छ. सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरत व्याकुल भये।
लोचन सरोरुह स्रवत सीचत विरह उर अकुर नये॥
सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सीव सहज सनेह की॥

अर्थ सरलता के रस से सनी हुई वाणी को सुनकर भरतजी व्याकुल हो गये। उनके कमल रूपी नेत्रो से आँसू बहकर हृदय के नये विरहाङ्कुरो को सीचने लगे। उस दशा को देखकर सबको अपने देह की सुधि न रह गयी। तुलसीदासजी कहते है कि उस सहज सनेह की सीमा को सब लोग आदर के साथ सराहने लगे।

व्याख्या माता को ऐसी सरल वाणी सुनने से भरतजी व्याकुल हो गये। ऐसे सरल के ऊपर इतना बडा आघात हुआ और फिर भी इनकी सरलता ज्यो की त्यो है। भरतजी के नेत्रो से आँसू की धारा चली जिससे हृदय भीग उठा। मानो जो नये विरह के अकुर उगे हैं उन्हे यह अश्रुधारा सिञ्चन कर रही है। विरह के नये अङ्कुर उगने का भाव यह है कि भरतजी देखते हैं कि सभी ने रामजी का चौदह वर्ष वनवास मान लिया। उनके लौटाने के लिए यत्न करने की भावना भी किसी मे नही है। अत नये विरह के अङ्कुर उगे।

भरतजी के प्रेम की वह दशा देखने से सभी लोग प्रेम मे मग्न हो गये। किसी को अपने देह की सुधबुध न रही। कुछ समय तक तो यह दृश्य था। मन के सँभलने पर सभी लोग आदर के साथ सहज प्रेम की सीमा की सराहना करते लगे। भाव यह कि सभा को सरकार के चरणो मे प्रेम था। पर परम प्रेम की सीमा तो भरत मे थी। प्रेमियो मे प्रेम की गुण ग्राहकता होती है। अत· सादर सराहना करते हैं।

सो. भरतु कमल कर जोरि, धीर धुरन्धर धीर धरि।
बचन अमिअ जनु बोरि, देत उचित उत्तर सबहि॥१७६॥

अर्थ धैर्य को धुरा के धारण करनेवाले भरतजी धैर्य धारण करके अपने कमल सदृश हाथो को जोडकर मानो अमृत मे डुबाए हुए वचनो से सबको उचित उत्तर देने लगे।

व्याख्या : भरतजी को किसीकी सम्मति स्वीकार नही है। पर सब लोग धैर्य धारण करने को कहते हैं। इसलिए धैर्य धारण किया अथवा बिना धैर्य धारण किए उत्तर दिया नही जा सकता और यदि उत्तर नही देते तो मौन स्वीकारलक्षणम्

हुआ जाता है। जिनको उत्तर देना है वे सब बडे है। इसलिए हाथ जोडकर उत्तर देते हैं। उत्तर देने मे कसर न रक्खेंगे इसलिए कहते है ' देत उचित उत्तर सबहिं। जिसको जैसा उत्तर देना चाहिए वैसा उत्तर देंगे। परन्तु उत्तर वस्तु ही ऐसी है जो किसी को प्रिय नही लगती। सभी चाहते है कि मेरी बात का कोई उत्तर न दे। क्योकि उत्तर सुनने मे रस बिगडता है। परन्तु भरतजी ऐसे शब्दो मे उत्तर देते हैं जिससे सुननेवाले को परम सुख हो। उत्तर मीठा लगे और उससे सन्तोष हो। भरतजी की पण्डिताई है कि भरतजी उत्तर तो देते हैं पर प्रजा को, पञ्च परमेश्वर को उत्तर देते है। धर्मतन्त्र के मूल सिद्धान्त को पकडे हुए उत्तर दे रहे हैं। उत्तर देने के लिए उपक्रम का ही यह अर्थ है कि कही हुई बात स्वीकार नही है और न स्वीकार करने का यथेष्ट कारण है।

मोहि उपदेसु दीन्ह गुर नीका। प्रजा सचिव समत सबहीका॥
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहौ कीन्हा॥१॥

अर्थ मुझे गुरुजी ने अच्छा उपदेश दिया। प्रजा मन्त्री सभी की यह राय है। माँ ने भी उचित की धारणा से आज्ञा दी है। मैं शिरोधार्य करके अवश्य करना चाहता हूँ।

व्याख्या ' पहिले पहल गुरुजी ही बोले थे। कहा था : मानहु मोर बचन हित जानी। इसलिए कहते है कि उपदेश मे कोई त्रुटि नही है। वह अच्छा है। गुरुजी ने मानने के लिए कारण दिया। अत भरतजी उसे आज्ञा न मानकर उपदेश मानते हैं। बात पर जोर देने के लिए मन्त्री कहते है कीजिअ गुरु आयसु अवसि। माँ कहती हैं पूत पथ्य गुरु आयसु अहई। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि वह आज्ञा नही है उपदेश है। वह उपदेश मन्त्रियो की सम्मति के अनुकूल है। परन्तु प्रजा ने तो कुछ नही कहा फिर भा भरतजी प्रजा की सम्मति कहते हैं। क्योकि प्रजा की ओर से विरोध नही हुआ। धर्मशास्त्र कहता है कि सभा मे प्रवेश न करे और करे तो स्पष्ट बोले। क्योकि अनुचित कहनेवाला और चुप रहनेवाला समान पापी है। आजकल लोग उस नियम को भूल गये। इसलिए हाथ उठवाना पडता है। जब प्रजा चुप रह गयी तो निश्चय हो गया कि उसकी भी यही राय है।

माता ने नि सन्देह आदेश दिया। पर उन्होने भी उचित की धारणा से आदेश दिया। उसे पथ्य समझकर करने को कहा। भरतजी कहते हैं कि मै भी चाहता हूँ कि तदनुसार कार्य करूँ। पर करने मे असमर्थ हूँ। आप लोग कहते है कि शिरोधार्य करो। मैं शिरोधार्य करता हूँ। परन्तु चाहने पर भी करते नही बनता।

गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी॥
उचित कि अनुचित किये बिचारू। धरमु जाइ सिर पातक भारू॥२॥

अर्थ गुरु पिता माता स्वामी और हित की वाणी सुनकर उसे प्रसन्न मन

से अच्छा समझकर करे। उसम उचित अनुचित का विचार करने से धर्म जाता रहता है और सिर पर पाप का भार होता है।

व्याख्या गुरु पिता माता स्वामी और हित इनमे से एक का भी वचन उल्लघनीय नही है। यहाँ तो पाँचो का ऐकमत्य है। यथा

गुरुवाणी करहु राजु परिहरहु गलानी।
पितुवाणी कछु दिन गये भरत जुबराजू।
मातुवाणी प्रजा पालि पुरजन दुख हरहू।
स्वामिवाणी कहब सँदेसु भरत के आये। नीति न तजिअ राजपदु पाये।
हितवाणी कीजिय गुरु आयसु अवसि।

अत इसकी उपादेयता मे तो कोई प्रश्न ही नही है। सहज सुहृद गुरुस्वामि सिख जो न करई हित मानि। सो पछिनाय अघाय उर अवसि होय हितहानि। इनकी वाणी मे उचित अनुचित विचार करने से धर्म का लोप होता है और पाप का बाझ सिर पर आ जाता है। अत इसम औचित्यानौचित्य के विचार को अवकाश नही है। अत इस पर मैं भी विचार नही करता।

तुम्ह तउ देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई ॥
जद्यपि यह समुझत हौ नीके। तदपि होत परितोष न जीके ॥३॥

अर्थ तुम लोग तो वही शिक्षा मुझे देते हो जिसके आचरण से मेरा भला हो। यद्यपि मैं इस बात को भली भाँति समझ रहा हूँ। फिर भी जी को परितोष नही होता।

व्याख्या उपदेश भी भावोपहृत नही है सरल है। उसके समझने मे भी कठिनता नही है। तुम लोग मेरा भला देख रहे हो। इस बात को अच्छी तरह से मैं समझ रहा हूँ। परन्तु अपने ही भले से मुझे सन्तोष नही होता। भाव यह कि तुम लोग सरकारके कष्ट की ओर दृष्टिपात नही कर रहे हो। क्या उनके कष्ट विनिर्मुक्ति का कोई उपाय नही है ? जब तक वे दु ख सहते वन मे फिरते हैं तब तक मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है कि सोच छोडकर प्रजापालन मे दत्तचित्त हो जाऊँ। मेरे चित्त मे परितोष नही हो रहा है। मै आप लोगो की आज्ञा नहीं टाल सकता। परन्तु अपना हार्दिक भाव तो प्रकट कर सकता हूँ।

अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू। मोहि अनुहरत सिखावनु देहू ॥
ऊतरु देउँ छमब अपराधू। दुखित दोष गुन गनहि न साधू ॥४॥

अथ अब तुम मेरी विनय सुन लो और मेरी योग्यतानुसार सिखावन दो। मैं उत्तर देता हूँ मेरे अपराध को क्षमा करो। सज्जन लोग दु खी आदमी के दोष गुण को नही गिनते।

व्याख्या अन्तिम आदेश के पहिले विनय सुनना उचित है। अत मेरी विनती सुनिये और तब ऐसी शिक्षा दीजिये जो मुझसे हो सके। जो बात मेरी की

हुई नही हो सकती उसे मैं चाहता हुआ भी नही कर सकता। आप लोगों ने जो शिक्षा मुझे दी वह है बड़ी अच्छी पर मैं उसका अधिकारी नही। तदनुसार आचरण करना मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है।

आप लोग बडे हैं। आपका उत्तर देना अपराध है और मै उत्तर देता हूँ। इसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। उत्तर देने का कारण यह है कि मैं दु खी हूँ। आप लोग साधु हैं। साधु लोग न तो दु खी के दोप को ही गिनते हैं और न गुण को ही गिनते हैं। यहाँ उत्तर देने का प्रकरण है। इसलिए दोप पहिले कहा। गुण पीछे कहते हैं। दु.खी गाढे मे पडकर कटु बोलता है। यथा : कटु कहिये गाढे परे सुनि समुझि सुसाँई। परन्तु स्वामी उसके दोप को नही गिनता। दु.खी वैराग्ययुक्त वाणी बोलता है। पर उसके राग या विराग की वाणी पर साधु कुछ ख्याल नही करते। यथा : सुनि विराग संजुत कपि बानी।

दो. पितु सुरपुर सिय रामु बन, करन कहहु मोहि राजु।
एहि तें जानहु मोर हित, कै आपन बड़ काजु ॥१७७॥

अर्थ : पिताजी स्वर्ग चले गये। सीता राम वन मे हैं। मुझे राज करने को कहते हो। इसमे मेरी भलाई समझते हो या अपना कोई बडा काम समझ रहे हो।

व्याख्या : पहिले यह विचार लो कि किस परिस्थिति मे किससे क्या कह रहे हो। पिता मर गये। श्रीसीतारामजी वन गये और मेरे कारण से ये दुर्घटनाएँ हुईं। सो मुझ ही को राज करने को कहते हो। यह नही समझ रहे हो कि मेरे राज्य स्वीकार का अर्थ ही यही है कि इन दुर्घटनाओ मे मेरी सम्मति थी। अतः समझ लो कि राज्य स्वीकार करना मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। दूसरी बात यह है कि जो कोई किसी काम के करने के लिए किसी से कहता है तो दो बातो मे एक बात अवश्य रहती है। उससे या तो करनेवाले का भला ईप्सित होता है या अपना भला ईप्सित होता है। भरतजी पूछते हैं कि यह तो बतलाओ कि तुम लोगो ने किसका भला सोचकर मुझे शिक्षा दी है। इससे तुम लोगो का भला होगा या मेरा ?

हित हमार सियपति सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई ॥
मैं अनुमानि दीखि मन माँही। आन उपाय मोर हित नाँही ॥१॥

अर्थ : मेरी भलाई तो सीतापति की सेवा मे है। उसे माता की कुटिलता ने हरण कर लिया। मैंने मन मे अनुमान करके देख लिया कि किसी दूसरे उपाय से मेरा हित सम्भव नही है।

व्याख्या : यदि पहिला पक्ष लो कि मेरा हित राज्य स्वीकार मे है तो ठीक नही। क्योंकि : सिव विरञ्चि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई। वह सेवकाई मुझे प्राप्त थी। उस सेवकाई को माता की कुटिलता ने हरण कर लिया।

मेरे हाथ से सेवकाई निकल गयी। अहह धन्य लछिमन बड़ भागी। राम पदारविंद अनुरागी : सियपति कहकर महामाया पति कहा। यथा : उद्भवस्थितिसंहारकारिणी क्लेशहारिणी सर्वश्रेयस्करी सीता नतोऽहं रामवल्लभां। माता और पुत्र का सम्बन्ध ऐसा है कि माता की कुटिलता का आरोप पुत्र पर होता ही है। विशेषतः उस समय जब कि उसका कुटिलाचरण पुत्र के स्वार्थ के लिए हो। अतः अब मेरी गणना सेवकों मे नही रह गयी। माता पुत्र को हित करती है। सो माता ने मेरा हित ही हरण कर लिया। आप लोग यदि हित चाहते हो तो सेवा का अवसर दो। माँ ने उन्हें वन मे भेजकर हित से वञ्चित किया है। यदि लौटें तो हित हो : स्वारथ साँच जीव कर एहा। मन क्रम वचन रामपद नेहा।

अनुमान द्वारा ही मन से देखा जाता है। पर्वतो वह्निमान् कहनेवाले ने बिना आँख से देखे मन द्वारा देख लिया। अन्वयव्यतिरेक से यही सिद्ध होता है कि मेरा हित दूसरे उपाय से होनेवाला नही। यथा : तुम बिनु दुखी सुखी तुमते ही। मेरा हित कहने का भाव यह कि दूसरे का हित भले ही दूसरे उपाय से हो : एक अंग जो सनेहता निसिदिन चातक नेह। तुलसी जा सो हित लगै वहि अहार वहि देंह। जीव चराचर जहँ लगे है सबको हित मेह। तुलसी चातक मन बस्यो घन सो सहज सनेह।

सोक समाजु राजु केहि लेखें। लखन राम सिय बिनु पद देखें॥
[1]बादि बसन बिनु भूषन भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू॥२॥

अर्थ : लक्ष्मण राम और सीता के चरणों को बिना देखे यह राज्य किस गिनती में है। यह शोक समाज है। कपड़े के बिना गहने का बोझ व्यर्थ है और वैराग्य के बिना ब्रह्मविचार व्यर्थ है।

व्याख्या : यह राज्य नही है शोक समाज है। प्रिय के विरह मे सुखद वस्तु भी दुखद हो जाती है। यथा : जे हित रहे करै ते पीरा। अत यह राज समाज शोक समाज मालूम पड़ता है। इसका भला सुख मे क्या गिनती है। लक्ष्मण राम सीता के चरणो का दर्शन हो तो सभी मे सुख है। सुख उन चरणो मे है बाह्य उपकरणो मे नही। यथा : नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधु बदन निहारे। अब शङ्का यहाँ उठ सकती है कि लक्ष्मणजी तो छोटे हैं। उनके चरण दर्शन के लिए भरतजी क्यो कहते हैं। सीधा सा उत्तर यही है कि सीता और रामजी के साथ हैं। इसलिए : छत्रिणो गच्छन्ति की भाँति लक्ष्मणजी के साथ भी चरण शब्द का व्यवहार कर दिया। यथा : अनुज समेत गहेउ प्रभु चरना। दूसरी बात यह भी है कि यन्त्रराज के मुख्य त्रिकोण मे ये ही तीन मूर्तियाँ है और इसी त्रिकोण रूप के शरण मे देवता लोग गये। यथा :

---

१. विनोक्ति प्रथम अलङ्कार है।

हेमाभया द्विभुजया सर्वालङ्कारया[1] चिता।
श्लिष्टः कमलधारिण्या पुष्ट कोसलात्मजः ॥९॥
दक्षिणे लक्ष्मणेनाथ सधनुष्पाणिना पुनः।
हेमाभेनानुजेनैव तदा कोणत्रयं भवेत् ॥१०॥
एव त्रिकोणरूपं स्यात् तं देवा ये समाययु.। रा० ता० ४ ११

स्वर्ण वर्णवाली दो भुजाओंवाली सब अलंकार धारण किये हुए हाथ मे कमल लिये हुए सीता देवी से युक्त श्रीरामजी हैं। उनके दाहिनी ओर धनुष हाथ मे लिये हुए लक्ष्मणजी हैं जिनका रङ्ग सोने सा है। इस भाँति त्रिकोण होता है। उसी त्रिकोण के शरण मे देवता लोग गये।

शत्रुघ्न भरत और हनुमान् दूसरे त्रिकोण मे हैं। यथा :

उदग्दक्षिणयोः स्वस्य शत्रुघ्नभरतौ धृतः।
हनूमन्तं च श्रोतारमग्रत. स्यात् त्रिकोणकम् ॥ ४ ३२।

अतः मुख्य त्रिकोण रूप मे भक्ति द्योतित करते हैं।

गहना शोभा का कारण है पर यदि वस्त्र हो तो और यदि वस्त्र ही नही तो भूषण से शोभा नही। वह व्यर्थ होकर भाररूप हो जाता है। इसी भाँति रामजी हो तो राज्य सुखद है। उनके न होने पर राज्य में सुख कहाँ ? वह तो भाररूप हो जायगा। बिधुवदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी। इसी भाँति वैराग्य हो तो ब्रह्मविचार मे आनन्द है। यदि वैराग्य ही नही तो ब्रह्मविचार मे आनन्द कहाँ ? उल्टा ब्रह्मविचार बड़ा भारी बोझा हो जाता है। उसका स्मरण रखना कठिन हो जाता है।

सरुज सरीर वादि वहु भोगा। बिनु हरिभगति जायँ जप जोगा ॥
जाँय जीव बिनु देह सुहाई। वादि मोर सबु बिनु रघुराई ॥३॥

अर्थ : रोगी शरीर हो तो वहुत से भोग व्यर्थ हैं। विना हरिभक्ति के जप योग व्यर्थ है। जीव के विना सुन्दर देह व्यर्थ है। रघुराई के विना मेरा सब कुछ व्यर्थ है।

व्याख्या : भोग सुख देनेवाला है। पर यदि शरीर मे कोई रोग हो तो भोग शक्ति भी घट जाती है और भोग से उस रोग की वृद्धि भी होती है। या यों कहिये कि रोगी के लिए भोग विष है। यथा : कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनउ मुनि जोगी। अतः सब भोग उसके लिए व्यर्थ हैं। इसी भाँति राम वियोग रूपी कुरोग से जो दुःखी हैं उनके लिए राज्य अपथ्य है।

जप योगादि अनुष्ठान हरिभक्ति के लिए ही किया जाता है। यथा : जहँ लगि साधन वेद बखानी। सब कर फल हरिभगति भवानी। यदि हरिभक्ति ही न हुई तो

---

१. पाठभेद : सर्वालङ्कृतया।

सब साधन व्यर्थ गये। यथा : सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न रामपद प भाऊ। जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जह नहिं राम प्रेम परधानू।

सुन्दर देह हो पर उसमे जीव न हो तो वह देह व्यर्थ है। अमङ्गल रूप ; जीव रहने से वही देह मङ्गल रूप थी। यथा : जिय बिनु देह नदी बिनु वारि तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी। परन्तु रामजी के बिना मेरा तो सब कुछ व्यर्थ ; अर्थात् रामजी से ही मेरी शोभा है। रामजी से ही आनन्द है। रामजी से ही हि है। रामजी से ही सफलता है और रामजी से ही मङ्गल है अर्थात् बिना रामजी न शोभा है, न आनन्द है, न हित है, न सफलता है, न मङ्गल है।

जाउँ राम पहि आयसु देहू। एकहि आँख मोर हित एहू ॥
मोहि नृपु करि भल आपन चहहू। सोउ सनेह जड़ता बस कहहू ॥४॥

अर्थ : मुझे आज्ञा दीजिये। मैं भी रामजी के पास जाऊँ। इसी एक बात मेरा हित है। मुझे राजा बनाकर जो अपना भला चाहते हो सो स्नेह की जडत के वश होने से कहते हो।

व्याख्या : भरतजी सभा से कह रहे हैं कि मैं आज्ञा से बाहर नही हूँ। अत आज्ञा माँगते हैं कि मुझे रामजी के पास जाने की आप लोग आज्ञा दें। क्योकि मेर भला उनके यहाँ जाने मे ही है और आप लोग मेरा हित चाहनेवाले हैं। अत अवश्य ही दीजिये।

यदि कहो कि हम लोग अपने लाभ के लिए तुम्हे राजा बनाना चाहते हैं। तब तो मैं यही कहूँगा कि मेरे ऊपर आप लोगो का इतना स्नेह है कि आप लोगो की बुद्धि मे जडता आगयी है। आप लोगो की दोषो की ओर दृष्टि ही नही जा रही है। दोषज्ञ पण्डित का नाम है। जो दोष का विवेचन न कर सके वह कैसा पण्डित ? मेरे राज्य से सुख हो नही सकता। कारण कहते हैं।

दो. कैकइ सुअन कुटिलमति, राम बिमुख गतलाज।
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस, मोहि से अधम के राज ॥१७८॥

अर्थ : कैकेयी का बेटा, कुटिल बुद्धि, राम विमुख और निर्लज्ज ऐसे अधम के राज्य मे तुम सुख चाहते हो।

व्याख्या : मैं कैकेयी का बेटा हूँ। कैकेयी की बुद्धि की कुटिलता को सब जानते हैं। माँ का प्रभाव कहाँ तक बेटे पर न पडेगा। मेरी बुद्धि कुटिल है। रामजी के वन भेजने का कारण होने पर भी अपने को निर्दोष मानता हूँ। रामजी के विमुख हूँ। उनके सम्मुख होने की कोई चेष्टा न करने से निर्लज्ज हूँ। इतना बडा अपयश सहन करके जीवित हूँ। अधम कहते किसको है ? जिसका जन्म बुद्धि कर्म और शील प्रशस्त न हो वही अधम है। मुझमे ये चारो नही है अत. मैं बहुत बडा अधम हूँ। अधम को राजा बनाना नही चाहिए। क्योकि उसके कारण प्रजा का आदर्श बिगड़ जाता है। यथा राजा तथा प्रजा। केवल दण्ड विधान करना ही राजा

का कार्य नही है। उसका चरित्र प्रजा के लिए आदर्शरूप होना चाहिए। अधम के राजा बनने से प्रजा अधम हो जायगी। फिर सुख का लेश कहाँ ? अतः अधम को राजा बनाकर सुख चाहना जड़ता है।

कहौं साँचु सब सुनि पतियाहू। चाहिअ धरमसील नरनाहू ॥
मोहि राजु हठि देइहहु जबही। रसा रसातल जाइहि तबही ॥१॥

अर्थ : मैं सच कहता हूँ। सुनकर विश्वास करो। राजा धर्मात्मा होना चाहिए। मुझे हठपूर्वक राज्य जिस समय दोगे उसी समय पृथ्वी रसातल को चली जायगी।

व्याख्या : मैं विनय प्रदर्शन के लिए नही कह रहा हूँ। अथवा जब मैं अपने को अधम स्वीकार कर चुका हूँ तो यह न समझ लो कि इस समय मैं झूठ कह रहा हूँ। मैं सच कहता हूँ। आप लोग विश्वास करिये। मैं वस्तुतः कुटिल हूँ। आप लोगो का सरलभाव से कहना मेरे हृदय में नही बैठ रहा है। मैं समझ रहा हूँ कि आप लोग मुझे वस्तुतः राज्यलिप्सु समझ रहे हैं। मुझे माँ की राय मे समझ रहे हैं। यथा : तुम्ह तउ देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई। मैं राम विमुख हूँ। मेरे कारण रामजी सब प्रकार का कष्ट झेल रहे हैं। मुझे लज्जा नही है। जिसे लज्जा थी उसने शरीर त्याग दिया। मैं आप लोगो के सामने मुख दिखला रहा हूँ। अतः मैं राज्य के योग्य नही। कुटिल रामविरोधी और बेहया राजा नही होना चाहिए। राजा धर्मशील होना चाहिए। जिसमे प्रजा उसका अनुसरण करके धर्मात्मा हो।

अतः मैं राज लेना नही चाहता। आज्ञा के बल से मुझे दोगे तो मुझे लेना पड़ेगा। पर इसका फल बड़ा भयानक होगा। प्रजा मेरा अनुसरण करने लगेगी। पितृवध बन्धुविरोध धन-सम्पत्ति के लिए होने लगेगी। यथा राजा तथा प्रजा। प्रजा पतित हो जायगी। ऐसा पाप पृथ्वी पर बढेगा कि वह सह न सकेगी। रसातल को चली जायगी। मेरे सिंहासन पर बैठने की देर है। तुम्हारा भला कुछ न होगा। उलटा बड़ा भारी विनाश उपस्थित हो जायगा।

मोहि समान को पाप निवासू। जेहि लगि सीय राम बनवासू ॥
रायँ राम कहु काननु दीन्हा। बिछुरत गमनु अमर पुर कीन्हा ॥२॥

अर्थ : भला मेरे बराबर पाप का निवास स्थान कौन होगा ? जिसके लिए सीता और राम को वनवास हुआ। राजा ने रामजी को वन तो दिया पर उनके बिछुड़ने पर आप सुरपुर भी चले गये।

व्याख्या : रसातल जाने का कारण कहते हैं कि मेरा पाप ही ऐसा है। क्योंकि मैं सीताजी और रामजी जैसे महापुण्यवानो के वनवास का कारण हूँ। वनवास बड़ा भारी दण्ड है। यथा : डरपहि धीर गहन सुधि आये। महा निकम्मो को ननवास बड़ा भारी दण्ड है। यथा : डरपहि धीर गहन सुधि आये। महा निकम्मो को वनवास दिया जाता है। यथा : अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिता बनबास।

मेरे कारण इतने बडे पुण्यवान् को ऐसा घोर दण्ड दिया गया। मेरे पाप का क्या ठिकाना ?

यदि कहिये कि तुम तो केवल वनवास दिये जाने के कारण हुए। प्रयोजक कर्त्ता हुए। मुख्यकर्त्ता अर्थात् वनवास देनेवाले तो महाराज थे। तो इसपर यह कहना है कि उन्होने अपना प्राण देकर संसार के सामने अपनी सफाई भी दे दी। ससार जान गया कि राजा ने खुशी से वनवास नही दिया। वनवास जबरदस्ती राजा से दिलवाया गया जिसका उन्हे इतना दु.ख हुआ कि उन्होने प्राण दे दिया।

मै सठ सब अनरथ कर हेतू। बैठ बात सब सुनहुँ सचेतू ॥
बिनु रघुबीर बिलोकि अबासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू ॥३॥

अर्थ : मैं शठ हूँ। सब अनर्थ की जड़ हूँ। बैठा हुआ सब बातें सुन रहा हूँ। बिना रघुबीर के घर को देखकर भी ये प्राण जगत् की हँसी सहकर भी बने है।

व्याख्या : मैं शठ हूँ। मीठी बातें शठ कहे करिके महा बिगार। महाराज साधु थे। मैं अनर्थ का मूल होकर नही मरा। जीते जागते होश हवाह मे बैठा सब बातें सुनता हूँ। एक भरत कर समत कहही। एक उदास भाव सुनि रहही : आदि। यदि कहिये कि तुम तो थे ही नही जब यह काण्ड हुआ। तो इसका उत्तर यह है कि जब घर लौटे और बिना सीता रामजी का घर पाया उस समय तो मुझ मर जाना था। पर नही मरा। मुझे कलङ्क से कौन बचा सकता है ? ससार मुज पर हँसता है कि इसी के कारण रामजी को वन हुआ और मैं जीता हूँ। अतः मेरे निर्लज्ज होने मे त्रुटि क्या है ?

राम पुनीत विषय रस रूखे। लोलुप भूमि भोग के भूखे ॥
कहँ लगि कहौ हृदय कठिनाई। निदरि कुलिसु जेहिं लही बड़ाई ॥४॥

अर्थ : पवित्र राम विषय रस से रूखे हैं। लालची लोग पृथ्वी के भोग के भूखे होते हैं। मैं अपने हृदय की कठिनता को कहाँ तक कहूँ। इसने वज्र का भी निरादर करके बड़ाई पाया है।

व्याख्या : राज्य करने में अपनी अयोग्यता कहकर रामजी की योग्यता कहते हैं। चाहिअ धर्मसील नरनाहू। तो रामजी पुनीत हैं। धर्मशील हैं। उन्हे राज्य की भूख नही। वे विषय रस के रसिक नही। यथा : नवगयंद रघुबीर मनु राज अलान समान। छूट जान वनगवन सुनि उर अनन्द अधिकान। उन्हे राज्य छोड़ने और वन जाने की आज्ञा हुई। तुरन्त छोड़कर चले गये। परम त्याग का उदाहरण प्रजा के सामने उपस्थित कर दिया। आज कोई लालची भोग का भूखा होता तो क्या इस भाँति छोड़ देता। रामजी का वचन है :

वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्यमापातमात्रमधुरा विषयोपभोगाः।
प्राणास्तृणाग्रजलबिन्दुसमा नराणां धर्मः सदा सुहृदहो न विरोधनीयः ॥

हवा के बवण्डर की भाँति यह पृथ्वी का स्वामित्व है और विषयोपभोग भी

तत्काल के लिए ही मधुर है और तिनके के सिरे पर लटकते हुए जलबिन्दु की भाँति प्राणों की स्थिति है। अतः हे मित्रो ! कभी भी धर्म का विरोध नही करना चाहिए।

ऐसे पुनीत रामजी के वनवास पर भी हृदय नही फटा तो यही कहना है कि इसने अपनी कठिनता से वज्र को भी मात कर दिया। अब मेरे हृदय की कठिनता की प्रशंसा है। कोमल हृदय महाराज का था जिन्होने : बिछुरत गवन अमरपुर कीन्हा।

दो. कारन ते कारजु कठिन, होइ दोष नहि मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल तें, लोह कराल कठोर ॥१७९॥

अर्थ : कारण से कार्य कठिन होता है। इसमें मेरा दोष नही है। हड्डी से वज्र और पत्थर से लोहा कराल कठोर होता है।

व्याख्या : मेरा हृदय ऐसा कठोर हो गया कि रामजी से सूना घर देखकर नही फटा और संसार मे उपहासास्पद होने पर भी नही सरका। इसमें मेरा दोष नही है। क्योकि कार्य से कारण कठोर अधिक होता ही है। वज्र दधीच ऋषि की अस्थि से बना है। पर वह अस्थि से कही अधिक कराल है। पत्थर मे ही लोहा पाया जाता है। सभी धातु पहाड़ से ही निकलते हैं। परन्तु पत्थर से भी अधिक कठोर लोहा होता है। भाव यह कि कैकेयी से मेरा जन्म हुआ है। अतः उनसे भी अधिक कठोर होने में मेरा दोष नही है।

कैकेयी ने मेरे लिए सब कुछ किया। पर वह इस समय अचेत है। पगली सी हो रही है और मैं सचेत होकर सब बात सुन रहा हूँ। अतः मैं अधिक कठोर हूँ।

कैकई भव तनु अनुरागे। पावन प्रान अघाइ अभागे॥
जौ प्रिय विरह प्रान प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे ॥१॥

अर्थ : कैकेयी से उत्पन्न देह से प्रेम करनेवाले ये पावन प्राण बडे अभागे है। यदि प्यारे के विरह मे प्राण प्रिय लगा तो आगे बहुत कुछ देखना और सुनना है।

व्याख्या : प्राणो मे पाप का वेध नही होता। वह सदा पावन है। परन्तु बड़ा ही अभागा है। क्योकि मेरे इष्ट रामजी से विरोध करनेवाली कैकेयी से उत्पन्न शरीर पर इसने प्रेम कर रक्खा है। उसे छोड़ना नही चाहता। इष्ट विरोधी से उत्पन्न तन पर सती ने अनुराग नही किया। यथा : पिता मंद मति निंदत ओही। दक्ष सुक्र संभव यह देही। तजिहौं तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद मौलि वृषकेतू। नही छोड़ने का फल यह हुआ कि भवभञ्जन पद विमुख होना पड़ा। यही अभाग है। यथा : भवभंजन पद विमुख अभागी। प्राण ही जीवात्मा बुद्धि और मन का सम्बन्ध शरीर से बनाये रखता है। यह यदि सम्बन्ध शरीर से तोड़ दे तो टूट जाता है। इसे यदि यह तन प्रिय न होता तो यह छोड़ देता। यह बडा भारी अभागा है कि ऐसे शरीर से सम्बन्ध बनाये हुए है।

प्राण सबको प्यारा होता है। परन्तु ऐसे प्रेमी होते हैं जिन पर प्राण से

अधिक प्रेम होता है। उनके विरह मे प्राण प्रिय नही मालूम होता है। उसे छोड दिया जाता है। क्योंकि वह महा दु खदायी हो जाता है। उसके रहने से प्रिय के प्रतिकूल वहुत सी बातें देखने और सुनने मे आती हैं। परन्तु मुझे तो प्राण प्रिय मालूम होते हैं। चाहता तो था कि यदि प्राण शरीर से सम्बन्ध नही छोडते तो मैं ही प्राणो से सम्बन्ध छोड देता। जिस भाँति चक्रवर्तीजी ने छोड दिया और वेदना से मुक्त हो गये। पर मै न छोड सका। इससे *अनुमान* होता है कि *अभी न* जाने क्या क्या मुझे देखना और सुनना बाकी है। भोग शेष है। इसलिए जीवात्मा प्राण और शरीर एक दूसरे से वँधे हुए हैं। भाव यह कि जिस परिस्थिति मे भरतजी हैं उसम उन्हे राज्य के लिए कथन मात्र से दु सह वेदना हो रही है और जितना ही उनको स्वीकार के लिए वल दिया जाता है उतनी ही वेदना बढ रही है।

लखन राम सिय कहुँ बनु दीन्हा। पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा॥
लीन्ह बिधवपन अपजसु आपू। दीन्हेउ प्रजहि सोकु सतापू॥२॥

अर्थ लक्ष्मण राम और सीता को वन दिया। स्वर्ग भेजकर पति का हित किया और स्वय विधवापन और अपयश लिया। प्रजा को शोक और सन्ताप दिया।

व्याख्या भरतजी कहते हैं कि जिस कैकेयी से मेरा शरीर उत्पन्न हुआ है और उसकी करणी कैसी है कि राम जानकी को वन देकर अपयश लिया। पति को स्वर्ग भेजकर विधवापन लिया। मातृधर्म पत्नीधर्म तथा आत्मधर्म का खूब निर्वाह करके रानीपन भी खूब निबाहा। प्रजाओ को शोक सन्ताप दिया। यथा मुख सुखाहि लोचन स्रवहि सोक न हृदय समाइ। मनहु करुन रस कटकई उतरी अवध बजाइ। बिलपहि बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदन करहि पुरवासी। यहाँ व्यङ्ग से भरतजी माता की भर्त्सना कर रहे है।

मोहि [1]दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकई सब कर काजू॥
एहि ते मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम टीका॥३॥

अर्थ मुझे सुख सुयश और सुन्दर राज्य दिया। कैकेयी ने सबका काम बना दिया। इससे अच्छा मेरा क्या होगा। तिस पर तुम लोग मुझे टीका देने को कह रहे हो।

व्याख्या मै खास बेटा था। इसलिए मुझे तीन बातें दी १ सुख २ सुयश और ३ सुराज और लोगो को दो दो ही दी थी।

सुख। यथा भरतहि बिसरयो पितु मरन सुनत रामबन गौन।
सुयश। यथा हेतु अपनपौ जानि जिय थकित परे धरि मौन।
सुराज। यथा सोक समाज राज केहि लेखे।

---

१ यहाँ लेश अलङ्कार है।

इस भाँति कैकेयी ने पुत्रो का पति का अपना प्रजा का और सबका काम पूरा कर दिया। अर्थात् सर्वनाश कर दिया।

खास मेरी माँ के हाथ से यह सब अनर्थ हुआ मेरे सुख, सुयश और सुराज के लिए। तिस पर तुम लोग यह चाहते हो कि मैं टीका भी कढवा लूँ। कही मुख दिखाने लायक भी मुझे रक्खोगे ? यह तो मेरे सिर कलङ्क का टीका लगा देना है। मेरी माँ ने मेरे लिए इतना किया इतना ही अपयश कौन कम है। टीका देकर उसी बात की पुष्टि किया चाहते हो।

कैकें जठर जनमि जग माँही। यह मोहि कहँ कछु अनुचित नाँही ॥
मोरि बात सब बिधिहि बनाई। प्रजा पाँच कत करहु सहाई ॥४॥

अर्थ : जगत् में कैकेयी के पेट से जन्म लेने पर यह बात मेरे लिए अनुचित नही है। मेरी बातें तो सब ब्रह्मा ने ही बना दी है। अब प्रजा और पञ्च इसमे क्यो सहायता दे रहे हो।

व्याख्या : ऐसी स्थिति मे टीका लेना ससार मे किसी के लिए उचित न होता। पर मेरे लिए अनुचित नही है। क्योकि मैं कैकेयी के पेट से पैदा हूँ। उसने इतना इतना काम कर डाला। मैं इतना भी न करूँ कि टीका ले लूँ। मुझे तो अनुचित नही है। पर तुम्हे भी उचित नही है कि मेरे कलङ्क को और भी दृढ बनाओ।

मेरी बात तो सब ब्रह्मदेव ने ही बिगाड दी। यथा : हस बस दसरथ जनक राम लखन से भाइ। जननी तूँ जननी भई बिधिसन कछु न बसाइ। अब बिगडे हुए को और क्या बिगाडते हो। तुम प्रजा हो। तुम्हे ऐसा न करना चाहिए। पञ्च परमेश्वर है। इस नाते भी ऐसा न करना चाहिए।

दो ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस, तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पिआइअ बारुनी, कहहु काह उपचार ॥१८०॥

अर्थ · जो ग्रह से ग्रसित हो, बाई चढी हो, बीछी भी मारे हो उसे मद्य पिला रहे हो कहो तो यह कैसी चिकित्सा है।

व्याख्या ऊपर कह आये हैं १ लखन राम सिय कहुँ बन दीन्हा २ पठइ अमर पुर पति हित कीन्हा ३ दीन्हेउ प्रजहिं सोक सन्तापू ४ मोहि दीन्ह सुख सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकयी सब कर काजू। इसी प्रसङ्ग के उपसहार मे यह दोहा कहा गया है। इसमे भी चार बातें हैं १ ग्रह ग्रहीत २ बातबस ३ तेहि पुनि बीछी मार ४ ताहि पिआइय बारुनी कहहु काह उपचार। इससे स्पष्ट है कि पहिले के कही हुई चार बातो के दोषो को दिखलाते हुए पिछली चार बातें उदाहरण के रूप मे कही गयी है। लखन राम सिय का वन जाना ही ग्रह ग्रहीत होना है। यथा : हरखि हृदय कोसलपुर आई। जनु ग्रहदसा दुसह दुखदाई। पति को अमरपुर भेजना और विधवापन लेना एक ही बात है। इसका प्रभाव भरतजी पर सन्निपात

सा पडा। भरतजी ऐसे घोर ने माता को दुर्वाद कहा। सन्निपात जल्पसि दुर्वादा ३ प्रजा को बीछी मारे जाने सा कष्ट है। अत भरतजी को वैसी ही पीडा हो रही है। ४ राज मिलने को वारुणी के समान समझ रहे हैं। यथा सबते कठिन राज मद भाई। सबका निर्गलितार्थ यह है कि भरत जी कह रहे हैं कि मैं तो इतना दुःखी हूँ और आप लोग उस दुःख को मिटाने के लिए मुझे राजरूपी वारुणी पिला रहे हैं। जिससे उसके नशे मे सब दुःख भूल जाऊँ। नही समझ रहे हैं कि ऐसे रोगी को वारुणी घातक है। इसके लोक परलोक दोनो को नष्ट करेगी। ऐसी दयनीय दशा मे जो पडा हो उसके लिए सर्व शोकहरा सुरा देकर रोग शान्त करने का प्रयत्न करना कौन सी चिकित्सा है। ऐसे पुरुष के लिए तो सुरा विष है। भाव यह कि राज्य देना सुरा है। यथा सबसे कठिन राजमद भाई। जो अँचवत मातहिं नृप तेई। मेरे रोग की चिकित्सा करो। राज दे दो। सब भूल जाँयगे। इस विचार से अनर्थ परम्परा बढेगी, घटेगी नही।

कैकइ सुअन जोगु जग जोई। चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई॥
दसरथ तनय राम लघु भाई। दीन्हि मोहि बिधि बादि बडाई॥१॥

अर्थ कैकेयी के पुत्र के लिए जगत् मे जो योग्य था चतुर विधाता ने मुझे वही दिया। परन्तु दशरथ का बेटा होना और रामजी का छोटा भाई होना यह बडाई विधि ने मुझे व्यर्थ ही दी।

व्याख्या योग्य माता को योग्य बेटा दिया। विरञ्चि बडे चतुर हैं। माँ बेटे का अच्छा जोड जुटा दिया। अथवा कैकेयी के बेटे का क्या क्या मिलना चाहिए सो सब ब्रह्माजी ने मुझे दिया। अर्थात् दुःख दुर्यश निर्लज्जता कठोरता करालता आदि।

पर दो बडाई मुझे व्यर्थ दिया। अर्थात् महाराज दशरथ का बेटा और रामजी का छोटा भाई बनाया। जब इस बडाई को ओर देखता हूँ तब पिता का प्राण देना और बडे भाई का वन जाना देखते हुए ऐसे पिता का पुत्र और ऐसे भाई का भाई होकर राज्य कैसे ग्रहण करूँ। ब्रह्मदेव यदि ये व्यर्थ की दो बडाइयाँ न दिये होते तो मैं राज्य स्वीकार कर लिये होता। अत

तुम्ह सब कहहु कढावन टीका। राय रजायसु सब कहँ नीका॥
उतरु देउँ केहि बिधि केहि केही। कहहु सुखेन जथा रुचि जेही॥२॥

अर्थ तुम सब लोग मुझे राजतिलक चढाने को कहते हो। क्योंकि राजा की आज्ञा है और सबको अच्छा लगता है। मैं किसे किसे और किस विधि से उत्तर दूँ। जिसकी जैसे रुचि हो सुखपूर्वक कहते जाओ।

व्याख्या मेरे टीका के लिए राजा की आज्ञा भी है और सब लोग अच्छा समझते हो। मुझे तो न यह राजाज्ञा मालूम होती है और न सबके लिए उपकारक मालूम होती है। किसे किसे जवाब दें और किस विधि से दें। कहनेवालो म

गुरुजी हैं और पिताजी के मन्त्री भी सम्मिलित हैं। कोई उत्तर देने योग्य नही और न मुझे कोई विधि मालूम पड़ती है जिस विधि से उत्तर दिया जा सके। सभी लोग समझते हैं कि इस कुचक्र मे मेरी सम्मति है। इसकी सफाई मै दे नही सकता। अत. जिसे जैसी रुचि हो वह वैसा कहे। क्योकि टीका के लिए कहना और इस कुचक्र मे मेरी सम्मति मान लेना एक बात है। बात भी ऐसी ही है। राज्य उसी को दिया जाता है जिसने भलाई की हो। सो :

मोहि कुमातु समेत बिहाई। कहहु कहिहि के कीन्ह भलाई ॥
मो बिनु को सचराचर माही। जेहि सिय रामु प्रान प्रिय नाही ॥३॥

अर्थ : कुमाता के समेत मुझे छोडकर और कौन कहेगा कि मैंने भलाई की है। ससार मे मेरे बिना कौन है जिसे रामजानकी प्राणप्रिय न हो।

व्याख्या : टीका मुझे होना चाहिये। क्योकि राज्य के भलाई करनेवाले दो ही ठहरे : मेरी माँ या मैं। रामजी की माँ या रामजी ने तो राज की कोई भलाई की ही नही है। उन्हे टीका देने को आप लोग क्यो कहेगे ! इतना दवाव मुझ पर डाला जाता है अपयश के लिए। क्योकि यह मानी हुई बात है कि जगत् के प्राणसम राम मुझे प्रिय नही हैं। यदि सब लोग इतना दबाव रामजी पर दें गुरुजी भी, मन्त्री भी, माताएँ भी और प्रजा भी तो रामजी को राज्य स्वीकार करना पड़े।

जिसे राम प्राणप्रिय न हो वही टीका स्वीकार कर सकता है। नही तो प्राण-प्रिय से छीने हुए टीके को कौन स्वीकार कर सकता है ? इसीलिए आप लोग मुझे स्वीकार करने को कहते हैं।

परम हानि सबु कहँ बड़ लाहू। अदिन मोर नहि दूपन काहू ॥
संसय सील प्रेम बस अहहू। सबुइ उचित सबु जो कछु कहहू ॥४॥

अर्थ : जो परम हानि है उसी मे सबको बड़ा लाभ दिखाई पड़ता है। यह मेरा बुरा दिन है। किसी का दोष नही है। तुम सब लोग सन्देहशील और प्रेम के वश हो। इसलिए सब लोग जो कुछ कहो वह उचित ही है।

व्याख्या : जिसमे मेरी यशोहानि, धर्महानि, प्रेमहानि अर्थात् परम हानि है उसी मे सबको लाभ दिखाई पडना विपरीत बुद्धि है। मेरे बुरे दिन के कारण सबकी बुद्धि विपरीत हो गयी। मैं किसी को दोष नही देता।

भीतर से सशय है कि भरत की रुचि देखकर ही माँ ने राज माँगा होगा। आँखो मे शील है। इससे कैसे कहे कि तेरा राज मुझे स्वीकार नही। रामजी को बुलाओ। मेरे ऊपर प्रेम भी है। अजो इसी को राजा होने दो। ऐसी परिस्थिति मे जो कुछ कहते हो उचित ही है। यथा : सो सनेह जडता बस कहहू।

दो. राम मातु सुठि सरल चित, मो पर प्रेम बिसेखि।
कहइ सुभाय सनेह बस, मोरि दीनता देखि ॥१८१॥

अर्थ : रामजी की माता अत्यन्त सीधे स्वभाववाली है और मुझपर उनका प्रेम भी अधिक है। वे स्वभाव और स्नेह के वश होकर मेरी दीनता देखकर कह रही हैं।

व्याख्या : रामजी की माता का कहना कोई कहना नही है। वे बडी सरल हैं। जो सब लोगों ने कह दिया उन्होने तुरन्त मान लिया और मुझ पर प्रेम भी अधिक करती हैं। मुझे आर्त्त देखकर वे भी वही बात कहती हैं। वे इस पेच के बात को नहीं पकड़ सकती कि मेरे राज्य स्वीकार करने से मेरी और मेरी माँ की एक सम्मत्ति प्रमाणित हुई जाती है। कौसल्याजी के प्रति संशय का आक्षेप नही है। अतः उनके विषय में अलग कह रहे हैं। उनके सामने शपथ भी ले चुके हैं। वे कह चुकी हैं कि : मत तुम्हार यह जो जग कहही। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं।

गुर विवेक सागर जगु जाना। जिन्हहि बिस्व कर बदर समाना॥
मो कहँ तिलक साज सज सोऊ। भय विधि बिमुख बिमुख सबु कोऊ॥१॥

अर्थ : संसार जानता है कि गुरुजी विवेक के समुद्र हैं। जिन्हे सारा संसार हाथ मे आये हुए बेर के समान है। वे भी मेरे लिए तिलक का साज सजा रहे हैं। *ब्रह्मा के विमुख होने पर सभी विमुख हो जाते हैं।*

व्याख्या : दूसरा व्यक्ति जिस पर सशय का आरोप नही हो सकता गुरुजी हैं और वे विवेक के समुद्र हैं। जिसने योगवासिष्ठ देखा है उसे मानना पडेगा कि वसिष्ठजी विवेक के समुद्र हैं। इतना ही नही सर्वज्ञ हैं। ससार मे कोई बात इनसे छिपी नही है। इनके हाथ मे ससार बदरी फल की भाँति है। सो और लोगो ने तो केवल मुख से कहा। पर गुरुजी तो साइत देखकर आये हैं तिलक देने के लिए। ये तो जानते हैं कि मेरा मत नही था। न मैं चाहता हूँ। न उचित है। फिर ये राज्य देने की तैयारी क्यो करते हैं? अतः कहना पड़ेगा कि ब्रह्मा के विमुख होने से सब विमुख हो गये। ब्रह्मा हिरण्यगर्भ हैं। प्राण और मन की समष्टि हैं। जब समष्टि ही विमुख हो गया तो व्यष्टि प्रतीपाचरण कैसे कर सकता है! जब सभी विमुख हो गये तो यह भी हो गये। अथवा गुरुजी ब्रह्मदेव के पुत्र हैं। पिता के नाराज हो जाने से ये भी अप्रसन्न हो गये हैं। पिता के प्रतिकूलाचरण धर्मतः भी नही कर सकते।

परिहरि रामु सीय जग माँही। कोउ न कहिहि मोर मत नाँही॥
सो मैं सुनब सहब सुख मानी। अंतहु कीच तहाँ जहँ पानी॥२॥

अर्थ : रामजी और सीताजी को छोडकर जगत् मे और कोई नही है। जो

यह कहे कि इसमे मेरी सम्मति नही है। सो मैं सब सुनूँगा और सुख मानकर सहूँगा। क्योकि जहाँ पानी होता है वहाँ कीचड होता ही है।

व्याख्या जो लोग मुझे राज्य लेने को कहते हैं वे दूसरे शब्दो मे यह कहते हैं कि भरत का मत रहा है। अत अब सब किसी ने मुझे माता के राय म कह दिया। परन्तु एक ठिकाना मुझे है जो कहेगा कि इसमे भरत का मत नही है और वह राम सीता हैं। भरतजी का जैसा विश्वास रामजी पर है वैसा ही सीताजी पर है। जानते है कि दोनो मूर्त्तियो मे वास्तविक अभेद है। कोउ नहि कहहि का भाव यह कि जानता भी है कि मेरा मत नही है वह भी न कहेगा। नीति ही ऐसी है। असम्भाव्य न वक्तव्य साक्षात् दृष्टमपि क्वचित्। शिला तरति पानीयं गीत गायति वानर। इसी से कोई भी नही कहता।

जो बात लोग कह रहे हैं वह न सुनने लायक है न सहने लायक है। पर मै सुनूँगा और सुख मानकर सहूँगा। क्योकि . गगन चढे रज पवन प्रसगा। कीचहिं मिलै नीच जल सगा। सो मेरा जल रूप कैकेयी का सग है। अत मेरा कीच होना प्राप्त है।

डरु न मोहि जग कहहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिन सोचू॥
एकइ उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सिय राम दुखारी॥३॥

अर्थ मुझे ससार बुरा कहे इसका मुझे डर नही है। परलोक का भी मुझे सोच नही है। मेरे हृदय मे एक ही दु सह दावानल दहक रहा है कि मेरे लिए श्रीराम जानकी दु खी हुए।

व्याख्या · दुर्यश का भय सब ही प्रतिष्ठित पुरुषो को रहता है। यथा : सभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू। परन्तु मुझे उसका भी डर नही है। जिसका अपयश होता है उसको स्वर्ग मे गति नही होती। उसका परलोक विगड जाता है। इस पर कहते हैं कि मुझे परलोक का भी सोच नही है। भाव यह कि इनको भी लक्ष्मणजी की भाँति कीर्ति भूति सुगति प्रिय नही है। यथा धरम नीति उपदेसिय ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही।

भरत जी कहते हैं कि मुझे एक ही सोच है जो मेरे हृदय में दावानल की भाँति दहक रहा है। यथा · जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी। इस समय अनेक प्रकार की दावाग्नि लगी हुई है। मेरे लिए उनमे से एक असह्य है और उसी ने हृदय मे डेरा डाल रक्खा है और वह यह है कि मेरे लिए राम जानकी दु खी हुए। अपने प्रेमी को कष्ट हो और अपने द्वारा हो इससे बढकर और कष्ट क्या होगा ?

जीवन लाहु लखन भल पावा। सबु तजि राम चरन मनु लावा॥
मोर जनम रघुबर बन लागी। झूठ काह पछिताउँ अभागी॥४॥

अर्थ लक्ष्मण जी ने जीने का अच्छा फल पाया। सब कुछ छोडकर रामजी

मैंने तो एक यही बात निश्चय की है। भाव यह कि मैं भी इसी चिन्त हूँ कि क्या करना चाहिए और आप लोग भी इसी चिन्ता मे हैं। आप लो मुझे राज्य देने का निश्चय किया है उसे कह सुनाया। अत मैं भी कहे देता मेरा निश्चय तो सवेरे सरकार के पास जाने का है।

जद्यपि मै अनभल अपराधी। भै मोहि कारन सकल उपाधी ॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिसेखी ॥

अर्थ : यद्यपि मैं बुरा हूँ। अपराधी हूँ। मेरे ही कारण से सब उपद्रव हुअ तथापि मुझे शरण मे आया हुआ देखकर सब क्षमा करके विशेष कृपा करेंगे।

व्याख्या : यदि कहिये कि तुम बुरे हो। क्योकि अपराधी हो। अपराध कि सम्पूर्ण उपाधि की जड तुम ही हो। मै इस बात से इनकार नही करत ऐसा ही अपराधी हूँ कि मुझे क्षमादान दिया नही जा सकता है। अपराध कैकेयी है। फिर भी वह अपराध का कारण नही है उसने अपराध मेरे लिये कि तो सबकी जड तो मैं ही ठहरा।

यदि कहिये कि शरण जाने पर तो वे क्षमा अवश्य करेंगे। अपने प्रण निर्वाह करेंगे। पर शरण जाना ही कौन आसान काम है। शरण जाने मे मद कपट छल सब छोड़कर शरण जाने का विधान है। तो क्या तुमने मद मोह छोड दिया जो शरण जाते हो। इस पर कहते है कि भले ही मुझमे शरणागत गुण नही हैं फिर भी जाने से शरण सम्मुख जो होऊँगा। शरण को मेरी तो रहेगी। उनके क्षमा दान के लिए इतना ही यथेष्ट है। इतने से ही न केवल अपराध क्षमा होगा बल्कि विशेष कृपा भी करेंगे।

सीलु सकुचि सुठि सरल सुभाऊ। कृपा सनेह सदन रघुराऊ।
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। मै सिसु सेवक जद्यपि बामा।

अर्थ : रघुराज सुशील अत्यन्त सरल तथा सङ्कोची स्वभाववाले हैं। वे और प्रेम के घर हैं। राम ने कभी शत्रु का भी बुरा नही किया और प्रतिकूल होने पर भी बालक और सेवक हूँ।

व्याख्या : सरकार शीलनिधान हैं। प्रभु तरुतर कपि डार पर ते किय समान। तुलसी कहूँ न राम ते साहिब सीलनिधान। शीलनिधान बुरे को बुरा व तिरस्कार नही कर सकता। इन सा सङ्कोची तो तीन काल मे कही कोई हु नही। यथा : प्रेम कनौड़ी राम सो प्रभु त्रिभुवन तिहुँकाल न भाई। तरोरिनी हौ कपि सो ऐसी मानिहि करे सेवकाई। अपराधी पर भी क्रोध नही करते। ऐ ही सरल हैं। यथा : रामहिं मातु बचन सब भाए। जिमि सुरसरिगत सलिल सो माता के वन मांगने को हो उन्होंने प्रतीपाचरण नही माना। अत तीनो स के अङ्ग मेरे अनुकूल पडते हैं। चौथी बात यह कि कृपा और स्नेह के तो घर ह

अतः मेरे अपराध को क्षमा करके विशेप कृपा करना उनके लिए कोई बड़ी बात नही है।

उनका नाम राम है। उन्होने शत्रु का भी कभी बुरा नही किया। 'बैरिउ राम बडाई करही। वैर वैर को सदा प्रेम से जीतना चाहते हैं। शत्रु का आदर शत्रु से भी विनय शत्रु पर प्रेम करने में वे ही समर्थ हैं। मैं प्रतिकूल तो हूँ पर शिशु, सेवक हूँ। अतः मेरे अपराध को क्षमा करते उन्हे कितनी देर लगेगी।

तुम्ह पै पाँच मोर भल जानी। आयसु आसिष देहु सुबानी॥
जेहि सुनि विनय मोहि जनु जानी। आवहि बहुरि रामु रजधानी॥४॥

अर्थ : तुम पञ्चलोग भी इसमें मेरा कल्याण मानकर आज्ञा दो और सुन्दर वाणी से आशीर्वाद दो। जिससे मेरी प्रार्थना सुनकर मुझे अपना सेवक जानकर रामजी राजधानी को लौट आवें।

व्याख्या : तुम पञ्च हो। परमेश्वर हो। यदि अपना कल्याण न समझो तो मेरा कल्याण समझकर मुझे आज्ञा दो। आशीर्वाद दो। अर्थात् जाने के लिए आज्ञा दो और सफल मनोरथ होने के लिए आशीर्वाद दो। अयोध्या का नियम है कि पञ्च की सम्मति से सब काम होता है। यथा : जो पाँचइ मत लागै नीका। करहु हरषि हिय रामहि टीका। आयसु आसिप देहु सुबानी। यहाँ सुबानी के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि आप लोग ऐसी वाणी कहिये कि तुम्हारी विनय सुनकर तुम्हे सेवक जानकर रामजी लौट आवें। मेरे कारण सकल उपाधि हुई। वही मैं लौटने के लिए विनय करने जाता हूँ। जब वनवास का कारण ही हट गया तब वनवास का प्रयोजन ही नही रह गया।

दो. जद्यपि जनम कुमातु तें, मै सठु सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहहिं, मोहि रघुबीर भरोस॥१८३॥

अर्थ : यद्यपि मेरा जन्म कुमाता से हुआ है और मै शठ सदा दोष युक्त हूँ। पर अपना समझकर नही त्यागेंगे। मुझे तो रघुवीर का ऐसा ही भरोसा है।

व्याख्या : कुमाता से जन्म। यथा : साँइ द्रोह मोहि कीन्ह कुमाता। मैं शठ काम विगाडकर मीठी बातें करता हूँ। सदा सदोप हूँ। मेरे दोष की सफाई नही दी जा सकती। मेरी ओर से तो सब बिगड़ा बिगड़ाया हुआ ही है। पर : मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई। हौ तो साईं द्रोही पै सेवक हित साईं। अतः मुझे भरोसा है। अपना जानकर त्याग नही करेंगे। यथा : ससि कलंक हरि भृगुलता बड़वानलहिं समुद्र। ग्रहण किये त्यागत नही महाघोर विपरुद्र।

भरत वचन सब कहुँ प्रिय लागे। राम सनेह सुधा जनु पागे॥
लोग वियोग बिपय बिस दागे। मंत्र सबीज सुनत जनु जागे[1]॥१॥

१. ये दोनो पद राजापुर की प्रति मे नही है और न उनकी आवश्यकता ही मालूम पड़ती है।

अर्थ : भरत के वचन सबको अच्छे लगे : मानो वे रामजी के स्नेहरूपी अमृत से पगे हुए थे। लोग वियोगरूपी विषम विष से जल रहे थे। वे मानो बीज सहित मन्त्र सुनते ही जाग उठे हो।

व्याख्या : गुरुजी बोले, माता बोली, मन्त्री लोग बोले, पर प्रजा की ओर से उपेक्षा बुद्धि ही थी। पर भरत के वचन सबको प्रिय लगे। यहाँ राज्य के लिए प्रस्ताव हो रहा था। पर प्रजा मानो सो रही थी। कोउ नृप होउ हमहि का हानी वाली बात चरितार्थ हो रही थी। प्रजा रामजी के दर्शन के लिए आर्त थी। यथा : राम दरस हित नेम व्रत लगें करन नर नारि। मनहुँ कोक कोकी कमल दीन विहीन तमारि। सासारिक सुख दु ख की ओर से उपेक्षा थी। अत राज्य कौन करेगा ? इस प्रश्न पर ध्यान नही देते थे। राज्य के देवता तो प्रजा वर्ग हैं। उनके पुजारी राजा हैं। रञ्जनात् राजा। प्रजा के हित के लिए ही राजा है। प्रजा अपना हित रामदर्शन मे मानती थी। वह राम विरह की अग्नि से जल रही थी। गुरुजी माता तथा सचिव सभी का मन्त्र तो अच्छा था। परन्तु उन मन्त्रो मे बीज नही था। इससे देवता जाग्रत होकर अभिमुख नही होते थे। भरतजी के मन्त्र मे बीज था : प्रातकाल चलिहौ प्रभु पाही। जेहि सुनि बिनय मोहि जन जानी। आवहि बहुरि राम रजधानी। इसलिए कहते है कि लोग सबीज मन्त्र सुनते ही मानो जाग पड़े। अमृत मे बोरी हुई बात थी। इसलिए सबको प्रिय भी लगी।

मातु सचिव गुर पुर नर नारी। सकल सनेह बिकल भये भारी ॥
भरतहि कहहि सराहि सराही। राम प्रेम मूरति तनु आही ॥२॥

अर्थ : माताएँ मन्त्री गुरु और नगर के स्त्री पुरुष स्नेह से विकल हो गये। सब लोग भरतजी की प्रशंसा करके कहने लगे कि यह शरीर तो राम के प्रेम की मूर्ति ही है।

व्याख्या : माता, मन्त्री, गुरुजी तथा प्रजा सब अपना अपना प्रेम दबाये बैठे थे। महाराज के वरदान के सच्चा करने के लिए तथा भरतजी के सङ्कोच से राज्य के प्रस्ताव मे सहमत थे। उद्बोधक कारण के पाते ही दबा हुआ प्रेम उमड उठा। जिसके लिए सब कुछ हुआ वही राज्य अस्वीकार करके रामजी के पास चलने को कहता है। इससे बडा उद्बोधक कारण और क्या हो सकता है। सब उमडे हुए प्रेम के वेग के सँभालने मे असमर्थ हैं। इसलिए बिकल भये भारी कहते हैं।

भक्तो का सिद्धान्त है : सब मानिअहि राम के नातें। भरत पर भी अधिक प्रेम राम के ही नाते था। यथा : भरत आगमनु सकल मनावहि। आवहुँ वेगि नयन फल पावहि। इतनी भक्ति से भरतजी ने पिता की क्रिया की : पितु हित भरत कीन्ह जस करनी। सो मुख लाख जाइ नहि बरनी। पर भरतजी की प्रशसा प्रजा ने नही की। अब भरतजी की बार बार सराहना होती है कि भरतजी तो मानो रामजी के प्रेम की मूर्ति है। मानो राम प्रेम ने नराकार धारण कर रक्खा है। ये भी रामजी की भाँति विषयरस रूखे हैं।

तात भरत अस काहे न कहहू । प्रान समान राम प्रिय अहहू ॥
जो पाँवरु अपनी जड़ताईं । तुम्हहि सुगाइ मातु कुटिलाई ॥३॥

अर्थ : तात भरत ! तुम ऐसा क्यों न कहोगे । तुम रामजी को प्राण के समान प्यारे हो । जो नीच अपनी जडता से माता की कुटिलता का तुम पर आरोप करता है ।

व्याख्या : प्रजा कहती है कि भैया भरत ! ऐसी बात तुम्ही बोल सकते हो । क्योंकि रामजी को प्राणसे प्यारे हो । यथा · रामहि वधु सोचु दिन राती । अडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँति । भरत प्रान प्रिय पावहि राजू । भरत सरिस प्रिय को जग माँही । जिसको जितना भरोसा रामजी पर होता है वह रामजी को उतना ही प्रिय होता है । भरतजी को रामजी का वडा भारी भरोसा है । अत रामजी को प्राण समान प्रिय है । कहते भी हैं . जद्यपि जनम कुमातु ते मैं सठ सदा सदोस । आपन जानि न त्यागिहैं मोह रघुवीर भरोस ।

भरतजी ने कहा है · परिहरि राम सीय जगमाही । कोउ नहिं कहिह मोर मत नाही । ससय सील प्रेम वस अहहू । इस बात का उत्तर सब लोग दे रहे हैं । शपथ लेते हुए कहते है कि हम लोगो को तुम पर सन्देह नही है । जिसे तुम पर सन्देह हो वह नीच है । उसे जडता हो गयी है । अपनी जडता से माता की कुटिलता का आरोप तुम पर करता होगा ।

सो सठु कोटिक पुरुष समेता । बसहि कलप सत नरक निकेता ॥
अहि अघ अवगुन नहि मनि गहई । हरइ गरल दुख दारिद दहई ॥४॥

अर्थ · वह शठ करोडो पुरुषो के साथ सौ कल्प तक नरक मे रहेगा । साँप के अवगुण और पाप का मणि नही ग्रहण करती । वह साँप के विप का हरण करती है और दु ख और दरिद्र को जला देती है ।

व्याख्या : ऐसा अनर्थकारी आरोप करनेवाला नरक मे निवास करेगा । यह अपराध इतना भारी है कि इसके करने से उसके कोटि कोटि पूर्वजो को भी नरक होगा और सौ कल्प के लिए होगा । इस व्याज से प्रजा वर्ग स्वय शपथ लेतो है कि हम लोगो को तुम पर सन्देह नही है । पहिल कहा · सुकृत जाइ अस कहत तुम्हारे । राम भरत कहँ प्रान पियारे । भरत के शपथ लेने पर माता कौसल्या ने कहा : मत तुम्हार यह जो जग कहही । सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहही । अव सवाज मन्त्र सुनकर जगी हुई प्रजा कह रही है कि ऐसा कहनेवाला कोटि पुरुषो के साथ अनन्त काल तक नरक निवास करेगा ।

यद्यपि जन्म कुमातु ते : का प्रजा उत्तर देती है कि कैकेयी सर्प है इसमे सन्देह नही । यथा : मानहु सरोप भुअग भामिनि विषय भाँति निहारई । पर सर्प से ही मणि उत्पन्न होती है और मणि उसे वहुत प्यारी भी है । दिन रात का साथ है । पर उसका गुण सर्प से सर्वथा विपरीत है । उसमे पुण्य गुण है । जो सर्प कृत दोपो

को हरण करता है सो भरतजी आप मणि है। अवसि चलिअ बन राम पहँ। यह निश्चय आप का विषहरण करनेवाला है और आवहिं बहुरि राम रजधानी। यह निश्चय आप का दु ख दरिद्र का दाह करनेवाला है।

दो अवसि चलिअ वन रामु जहँ, भरत मन्नु भल कीन्ह।
सोक सिधु बूडत सबहि, तुम्ह अवलम्बनु दीन्ह ॥१८४॥

अर्थ भरत ने बडी अच्छी सम्मति स्थिर की है। जहाँ वन मे रामजी है वहाँ अवश्य चलना चाहिए। शोकरूपी समुद्र मे डूबते हुए को तुमने सहारा दिया।

व्याख्या मन्त्र सबीज सुनत जनु जागे। अत कहते हैं भरत मन्त्र भल कीन्ह। जब रामजी प्रजा को तमसा तट पर सोते छोडकर चले गये तब कहा था मनहु वारिनिधि डूब जहाजू। भये बिकल सब बनिक समाजू। अत इस समय कह रहे हैं सोक सिधु बूडत सबहि तुम अवलम्बन दीन्ह। यहाँ बूडत कहकर यह दिखलाया कि डूबता हुआ पुरुष इस बात पर ध्यान नही दे सकता कि गद्दी पर कौन बैठे। लोग कहते हैं कि भरतजो! हम लोग तुम्हारे सहारे बच गये। समुद्र के बाहर तो सरकार के निकाले निकलेंगे। कौसल्याजी ने यही बात महाराज से कही थी नाथ समुझि मन करिअ विचारा। राम वियोग पयोधि अपारा। कनंधार तुम अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू। इत्यादि। सब को आशा थी कि महाराज जीते रहगे। तो कोई उपाय रामजी को लौटाने का होगा। सो महाराज ने धैर्य छोड दिया। बिना कर्णधार के जहाज डूब रहा था कि भरतजी ने पतवार हाथ म लिया। रामजी के पास दूसरे दिन चलने का दृढ निश्चय किया।

भा सब के मन मोदु न थोरा। जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा॥
चलत प्रात लखि निरनउ नीके। भरतु प्रान प्रिय भे सबही के ॥१॥

अर्थ सबके मन में थोडा आनन्द न हुआ। जैसे मेघ का गर्जन सुनकर चातक और मोर को होता है। सवेरे चलने का अभ्रान्त निर्णय समझकर भरतजी सभी को प्राणप्रिय हो गये।

व्याख्या चातक को बडी प्यास होती है। यथा चातक रटत तृषा अति ओही। उसे घन के गर्जन से बडा आनन्द होता है। मोर को घन के आगमन से ऐसा आनन्द होता है कि नाचने लगता है। अयोध्या म दो प्रकार के भक्त हैं। ज्ञानी और जिज्ञासु। यथा मनहु कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि। इन्ही दोनो प्रकार क भक्तो की यहाँ चातक और मोर से उपमा दी हुई है।

जब भरतजी ने रामजी के पास जाने क लिए सब से आज्ञा और आशीर्वाद माँगा तब सब लोग भरतजी की बडाई करने लगे और स्वय चलने को तैयार हो गये। अत रामजी के पास वन चलने का स्पष्ट निर्णय हो गया। जब रामजी वन को चलने लगे तो अवध को अनाथ जानकर लोग विकल होकर

साथ लगे थे। रामजी तमसा तीर सबको सोता हुआ छोडकर चले गये। उस समय ऐसी गति हुई मनहु बारिनिधि बूड जहाजू। भयउ बिकल बड बनिक समाजू। सो रामजी के पास जाने का सुअवसर भरतजी के द्वारा मिल रहा है। अत भरतजी सबको प्राण से प्यारे हो गये।

मुनिहि बदि भरतहि सिरु नाई। चले सकल घर बिदा कराई ॥
धन्य भरत जीवनु जग माही। सील सनेह सराहत जाही ॥२॥

अर्थ मुनिजी की वन्दना करके भरतजी को सिर झुकाया और सब बिदा माँगकर घर चले। जाते हुए भरतजी के शील और स्नेह की प्रशसा करते जाते हैं कि ससार मे भरतजी का जीवन धन्य है।

व्याख्या काम पूरा हो गया। बात निर्णीत हो गयी। सबके मन म भरतजी के साथ ही प्रस्थान करने का विचार है। यात्रा के लिए साज सामान करने की जल्दी है। इसलिए मुनिजी द्वारा सभा समाप्ति की घोपणा का इन्तजार बिना किये सब लोग जाने के लिए छुट्टी माँग रहे हैं। इतनी जल्दी है कि छुट्टी माँगने के पहिले ही बिदाई का प्रणाम होने लगा। मुनिजी ने बुलवाया था भरतजी के लिए। अत दोनो व्यक्तियो से बिदाई लेना प्राप्त था।

भरतजी की सराहना सभा मे सब लोगो ने किया था। पर इतने से सन्तोष नही है। घर जाते समय रास्ते मे भरतजी के शील और स्नेह की प्रशसा करते जाते हैं। शील यथा तुम पै पांच मोर भल मानी। आयसु आसिप देहु सुबानी। इत्यादि। स्नेह यथा देखे बिनु रघुनाथपद जियकै जरनि न जाइ। इत्यादि।

२१ पुरवासी सहित चित्रकूट प्रस्थान प्रसङ्ग

कहहिं परसपर भा बड काजू। सकल चलइ कर साजहि साजू ॥
जेहि राखहि रहु घर रखवारी। सो जानइ जनु गरदनि मारी ॥३॥
कोउ कह रहन कहिअ नहिं काहू। कौन चहइ जग जीवन लाहू ॥४॥

अर्थ एक दूसरे से कहने लगे कि हुआ तो बडा भारी काम और अब चलने का साज सामान बनाने लगे। जिसे घर की रखवारी के लिए आज्ञा देते है वह समझता है कि मेरा सिर काट लिया गया। कोई कोई यह समझने लगे कि किसी को रहने के लिए न कहो। कौन ससार मे जीने का लाभ नही चाहता।

व्याख्या लोग कहते हैं कि बडा काम हुआ। तपस्या बहुत शीघ्र सफल हुई। रामजी के दर्शन के लिए सब लोग नियम व्रत कर रहे थे। सो उसका योग जुट गया। भरत के साथ मे हम लोग भी चलेंगे। उनसे किसी ने न कहा कि तुम भी चलो और न वह किसी से पूछते है। सीधे सीधे चलने का सामान ठीक कर रहे हैं। ये लोग कोक कोकी हैं। अर्थात् गृहस्थ है। घर की भी चिन्ता है। अरक्षित घर को छोड जाना ठीक न समझा। अत किसी को घर की रखवारी के लिए चलने

से रोकते हैं। उसे घर मे रहने के ख्याल से प्राणदण्ड पाने सा कष्ट हो रहा है। जिस मसान को भूत भी छोड़ रहे हैं उस सूने श्मशान मे कैसे रहे। यथा : घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहु जमदूता।

उनका दुःख देखकर कोई कमल स्थानीय कहने लगे कि किसी को घर रहने के लिए न कहो। अपने ही भाँति दूसरे को भी समझो। आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति। जिस भाँति तुम जीवन लाभ चाहते हो उसी भाँति दूसरा भी चाहता है। जीवन लाभ तो सब छोड़कर रामजी के चरणों में चित्त लगाने मे है। यथा : जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि रामचरन मन लावा।

दो. जरउ सो संपति सदन सुख, सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो रामपद, करइ न सहस सहाइ ॥१८५॥

अर्थ : वह सम्पत्ति वह गृहसुख और वे माता पिता भाई जल जायँ जो रामजी के चरणो के सम्मुख होने मे सहस्रो सहायता न करें।

व्याख्या : सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई। ये सब रामभगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक। अतः सम्पत्ति गृहसुख मित्र माता पिता और भाई यदि रामजी के सम्मुख होने मे सहायक हों तो रहे नही तो जल जायँ। भाव यह कि सम्पत्ति सदन सुख जले। जिसकी रक्षा के लिए मै श्रीरामजी के दर्शन से वञ्चित किया जाता हूँ और सुहृद माता पिता भाई जले जो इनकी रखवारी के लिए मुझे रामदर्शन से वञ्चित कर रहे हैं। इनका तो कर्तव्य था कि रामजी के सम्मुख होने से सहस्र प्रकार से सहायता करते। क्योंकि ये तो हितचिन्तक हैं। इन्हे मेरा सच्चा स्वार्थ देखना चाहिए था। यथा : स्वारथ साँच जीव कहँ एहा। मन क्रम वचन रामपद नेहा। ये सच्चा स्वार्थ नही देखते। कच्चे हितचिन्तक हैं। अत. इनसे कोई सम्बन्ध नही।

घर घर साजहिं बाहन नाना। हरषु हृदय परभात पयाना ॥
भरत जाइ घर कीन्ह बिचारू। नगरु बाजि गज भवन भँडारू ॥१॥

अर्थ : घर घर अनेक प्रकार के वाहन लोग साज रहे हैं। सबके हृदय मे आनन्द है कि सवेरे चलना है। भरतजी ने घर जाकर विचार किया कि नगर घोड़े हाथी घर और कोष।

व्याख्या : अयोध्या नगर बड़ा सम्पत्तिशाली है। घर घर वाहन हैं। लोगो की उत्सुकता देखिये। प्रयाण तो प्रभात समय होगा और वाहन इसी समय साजे जा रहे हैं। अति मोद मे ऐसा ही होता है। लोग सोचते हैं कि कौन जाने भरतजी उसी वेग से चित्रकूट चलें जिस वेग से कैकय देश से अयोध्या आये हैं। यथा : चले समीर बेग हय हाँके। नाघत सरित सैल बन बाँके। अथवा वही अभिषेक के लिए चतुरङ्गिणी सेना लेकर चलें। तब तो हम लोगों को भी तैयारी के साथ सङ्ग चलना चाहिए। अतः सब प्रकार की तैयारी चाहिए। प्रस्थान करने में केवल रात्रि

मात्र का व्यवधान है। इसलिए हर्षित हैं। भरतजी विचार करते हैं कि राजा इस समय कोई है नहीं। मन्त्री लोगों का साथ चलना आवश्यक है। नगर बाजि गज भवन और भण्डार कोष अरक्षित हो जायगा। नगर भी एक प्रकार से सूना हो जायगा। सभी चलने की तैयारी कर रहे हैं। नगर की रक्षा से ही सब की रक्षा है।

संपति सब रघुपति कै आही। जौं बिनु जतन चलौं तजि ताही॥
तौ परिनाम न मोरि भलाई। पाप सिरोमनि साँइ दोहाई॥२॥

अर्थ : यह सब सम्पत्ति रघुपति की है। जो बिना रक्षा किये छोड़कर चल दूँ तो अन्त मे मेरे लिए अच्छा न होगा। स्वामि दोहाई में पाप शिरोमणि हो जाऊँगा।

व्याख्या : उपर्युक्त सब सम्पत्ति सरकारी है। अपनी होती तो मैं भी कह देता कि जरौ सो सम्पत्ति सदन सुख। इन्तजाम इस समय मेरे हाथ मे है। मैं सम्पत्ति को अरक्षित कैसे छोड जाऊँ। जो भवितव्य है वही होगा : यह ठीक है पर भवितव्य के भरोसे पुरुषार्थ त्याग तो नीति नही है। यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः। अतः दोष के बचाने लिए यत्न करना प्राप्त है।

यदि अरक्षित छोडकर चलूँ तो परिणाम मे दूसरे की भलाई चाहे हो भी पर मेरी भलाई तो नही ही होगी। मैं प्रभु और पिता के वचन को मोहवश हटाकर साज समाज के साथ वन जा रहा हूँ। इतनी ही धृष्टता कौन कम है। इतने से ही मैं पाप से बच न सकूँगा और इस पर यदि रक्षा में भी असावधानता रही तो राम दोहाई मेरे पाप शिरोमणि होने मे कोई कसर न रह जायगी। अत. रक्षा करके ही चलना चाहिए।

करइ स्वामि हित सेवकु सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई॥
अस बिचारि सुचि सेवकु बोले। जे सपनेहुँ निजधर्म न डोले॥३॥

अर्थ : सेवक वही है जो स्वामी का हित करे। भले ही लोग उसे करोडो दूषण क्यो न लगावें। ऐसा विचार करके पवित्र सेवको को बुलाया। जो स्वप्न मे भी अपने धर्म से विचलित नही हुए थे।

व्याख्या : पर यहाँ रक्खें किसे ? जिनहि कहहि रहु घर रखवारी। सो जानै जनु गर्दन मारी। सब चलने को तैयार हैं। जिसे रहने को कहूँगा वही दूषण देगा। अथवा ससार कहेगा कि झूठ ही भरत राज्य से इनकार करते हैं, इन्हे तो राज्य की बडी ममता है। जैसा हम लोगो को घर वैसा ही इनको राज्य। हमे तो अपने घर की परवाह नही और ये राज्यरक्षा के लिए हमे छोड़ रहे है। भरतजी सोचते है कि इस प्रकार का दूषण लोग मुझे लगा सकते है। पर मुझे इन दूषणो की परवाह नही करनी चाहिए। मुझे सेवक धर्म सँभालना है। मैं स्वामी का हित करूँगा। भले ही लोग मुझे दोष लगावें।

यहाँ पर शुचि सेवक की परिभाषा स्वय ग्रन्थकार दे देते है कि जो सेवक

अपने धर्म से स्वप्न मे भी चलायमान नही हुए। अर्थात् मालिक के न रहने पर शुचिसेवक ही प्राण की बाजी लगाकर स्वामी के हित की रक्षा कर सकता है।

कहि सब मरमु धरमु सब भाखा। जो जेहि लायक सो तेहिं राखा ॥
करि सबु जतनु राखि रखवारे। राम मातु पहिं भरतु सिधारे ॥४॥

अर्थ : सब मर्म कहकर धर्म का उपदेश दिया और जो जिस योग्य था उसे उस कार्य पर नियुक्त किया। सब प्रबन्ध करके रक्षको को नियुक्त किया। तब रामजी की माता के पास भरतजी गये।

व्याख्या : राज्य के ऐसे मर्म होते हैं जो केवल राजा ही जानते है। प्रजा को उसका पता भी नही रहता। उसे तो यह भी नही मालूम होना चाहिए कि राजा किस भाँति शोषण कर रहा है। यथा ' हरखत बरखत सब लखै करषत लखै न कोय। तुलसी पुहुमी भाग से भूप भानु सम होय। उसके मर्म को थोडा बहुत कामदार जानते हैं। मन्त्री को बडी जानकारी होती है पर पूरी जानकारी राजा को ही होती है। अत शुचि सेवको को बुलाकर आवश्यक सब मर्म बतलाया। जिसमे भरतजी की अनुपस्थिति मे यथोचित कार्य करने मे समर्थ हों। कैसी अवस्था आ पडने पर क्या करना धर्म होगा। ये सब बातें भी बतलायी। परिस्थिति मे परिवर्तन होने से राजधर्म मे परिवर्तन करना होता है। अब भरतजी की पण्डिताई कहते हैं कि जो जिस योग्य था उसे वैसा ही कार्य भार दिया ' अयोग्य पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः।

यह सब व्यवस्था करके तत्पश्चात् भरतजी ने यथास्थान रक्षको की नियुक्ति की। नगर के रक्षक अलग, बाजि गज के अलग, कोष के अलग रक्षक योद्धा नियुक्त किये। तब कौसल्याजी के पास गये महल की व्यवस्था के लिए।

दो आरत जननी जानि सबु, भरत सनेह सुजान।
कहेउ बनावन पालकी, सजन सुखासन जान ॥१८६॥

अर्थ ' स्नेह के पारखी भरतजी ने सब माताओ को आर्त जानकर उनके लिए पालकी सजने तथा सुखपाल आदि सवारी तैयार करने के लिए कहा।

व्याख्या : भरतजी ने जान लिया कि सब माताएँ दर्शन के लिए आर्त हैं। कैकेयी भी आर्त हैं। माताओ के लिए पालकी साजने तथा उनके सभी सहेलियो के लिए सुखासन, दासियो के लिए यान तैयार करने के लिए कहा। भरतजी प्रेम के बडे पारखी हैं। यद्यपि माताएँ अपने चलने के लिए अनुरोध नही कर रही हैं। फिर भी उनको आर्त देखकर उनके चलने के लिए सवारी की आज्ञा देकर उनकी आर्ति को तत्काल दूर करना चाहते हैं। माताएँ स्त्री धर्म को आगे किये हुए अपने को पुत्र के अधीन मानती हैं। पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने। पुत्रास्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।

चक्र चक्कि जिमि पुर नर नारी। चलत प्रात उर आरत भारी ॥
जागत सब निसि भयउ बिहाना। भरत बोलाए सचिव सुजाना ॥१॥

अर्थ चकवा चकई की भाँति पुर नर नारी सवेरे गमन के लिए आर्त हो रहे थे। पूरी रात जागते ही सवेरा हुआ। भरतजी ने सुजान मन्त्रियो को बुलाया।

व्याख्या चक्रवाक और चक्रवाकी मे रात्रि को विछोह रहता है। एक नदी के इस पार तो दूसरा नदी के उस पार रहता है। इस भाँति उनकी रात्रि विरहव्यथा मे कटती है। वे चाहते हैं कि कब रात्रि बीते और हम प्रियतम के पास चलें। इसी भाँति पुर नर नारी को भी रामजी के पास चलने मे रात्रि व्यवधानरूप है। अत उसके बीतने के लिए बडे आर्त हो रहे हैं। किसी समय अभिषेक के लिए ऐसी ही उत्सुकता थी। यथा सकल कहहिं कब होइहि काली।

लालसा और उछाह के कारण उस रात मे किसी को नीद नही आयी। यथा 'तेहि निसि नीद परी नहिं काहू। राम दरस लालसा उछाहू। चित्त के चञ्चल होने से निद्रा नही आती। सवेरा होते ही भरतजी ने सुजान मन्त्रियो को बुलाया जिनके लिए इशारा काफी था। सुमन्त्रजी ने एकान्त वास ले रक्खा है। रामजी को वन पहुँचाने के बाद से उनका उल्लेख नही मिलता। रामजी जब वन से लौटे है तब सुमन्त्रजी भी दिखायी पडते है। अत अन्य सुजान मन्त्रियो को बुलाया।

कहेउ लेहु सब तिलक समाजू। बनहि देव मुनि रामहि राजू ॥
बेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे। तुरत तुरग रथ नाग सँवारे ॥२॥

अर्थ · कहा कि तिलक का सामान सब ले चलो। वन मे ही मुनिजी रामजी को राज्य देंगे। जल्दी चलो ऐसा सुनकर मन्त्रियो ने जोहार किया और तुरन्त घोडे रथ और हाथी सजाये।

व्याख्या भरतजी ने आज्ञा दी कि तिलक का सामान जो सरकार के लिए पिताजी का एकत्रित किया हुआ है उसे साथ ले चलने की व्यवस्था करो। यथा · आनहु सकल सुतीरथ पानी। औषध मूल फूल फल पाना। कहे नाम गनि मगल नाना। चामर चमर बसन बहु भाँती। रोम पाट पट अगनित भाँती। मनिगन मगल वस्तु अनेका। जो जग जोग भूप अभिषेका। कारण भी कह देते है कि पिता जी का सकल्प सत्य हो। इसी सामान से मुनिजी वन मे ही रामजी को राज्य दे। रामजी ने माता से कहा था · पिता दीन्ह मोहि कानन राजू सो गुरुजी वन में ही राज्य देंगे।

उन सब चीजो को लेकर जल्द चलो। यहाँ जोहार से भाव यह कि आज्ञा शिरोधार्य है। पहिला काम यह कि चतुरङ्गिनी सेना सजायी। मुनिजी ने अभिषेक के समय यह भी कहा था कि सजहु तुरग रथ नाग और सामान तो सब सजा सजाया ही रक्खा था। उठाने मात्र की देर थी। तुरङ्ग रथ नाग की अभिषेक योग्य तैयारी करनी थी। अत पहिले यही किया।

अरुंधती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ ॥
बिप्र बृंद चढ़ि बाहन नाना। चले सकल तप तेज निधाना ॥३॥

अर्थ : पहिले वसिष्ठजी भगवती अरुन्धती और अग्निहोत्र के सब सामान सहित रथ पर चढकर चले। फिर तपस्या और तेज के निधान ब्राह्मण लोग अनेक प्रकार के वाहनो पर चढकर चले।

व्याख्या : गुरुजी ने पत्नी के सहित अग्निहोत्र का सामान सब साथ मे लिया : अभिषेकाङ्गभूत हवनादि प्रक्रिया की सिद्धि के लिए। इस यात्रा मे अधिक दिन लगेंगे। अत. पूरी तैयारी से चले। पहिला रथ वसिष्ठजी का चला : मुनिजी को रामजी के लौटने मे पूरा सन्देह है। राज्य भरतजी का हो गया। वे चाहे रामजी को दे सकते हैं। परन्तु चौदह वर्ष की अवधि के परिवर्तन मे स्वयं चक्रवर्तीजी का अधिकार रघुनाथजी ने नहीं माना। चक्रवर्तीजी ने तो कह दिया : रथ चढाइ देखराइ वन फिर्यौ गये दिन चारि। परन्तु रामजी ने इस आज्ञा को प्रियप्रेम प्रमाद ही समझा।

गुरुजी के पीछे ब्राह्मणो का समूह चला। ये लोग कोई रथ पर कोई घोडे पर कोई हाथी पर चढकर चले। सिविका सुभग सुखासन याना। आदि महारानियो की सवारी मे नियुक्त है। ये ब्राह्मण लोग बडे तेजस्वी थे। तप तेज के निधान थे। यथा : बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। भावार्थ यह कि पूरे ब्राह्मण[1] थे तपः स्वाध्याय निरत थे।

नगर लोग सब सजि सजि जाना। चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना ॥
सिबिका सुभग न जाहिं बखानी। चढि चढ़ि चलत भईं सब रानी ॥४॥

अर्थ : नगर के सवारियो को सजकर चित्रकूट को चल पडे। सुन्दर पालकियो मे जिनका वर्णन नही किया जा सकता सब रानियाँ चढकर चली।

व्याख्या : इसके बाद नगर के लोग चले। स्त्री पुरुष दोनो हैं। इसलिए : सब सजि सजि जाना कहा। नगर खाली पड गया। चित्रकूट की ओर चले। यद्यपि यह स्थिर नही है कि सरकार कहाँ हैं। पर इतना निषादराज से सुमन्त्रजी को पता चल गया है कि भरद्वाजजी के आश्रम से वाल्मीकिजी के आश्रम की ओर गये। वाल्मीकिजी का आश्रम चित्रकूट से अति सन्निकट है और चित्रकूट प्रख्यातस्थल है। अतः चित्रकूट की ओर प्रयाण करना कहते है।

भरतजी की आज्ञा से शिविका साजी गयी है। अत. कहते हैं : न जाहिं बखानी। माताएँ बेटे को राज्य देने चल रही हैं। अत. मङ्गल उपस्थित है। इसलिए

---

१. तप श्रुतञ्च योनिश्च ह्येतद् ब्राह्मणकारकम्। तप श्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव स.। तप श्रुति और जन्म ये तीन ब्राह्मण कारक हैं। जो तप और श्रुति से हीन है। वह केवल जन्म से ब्राह्मण है।

सरकार देर मे चले थे। बीच बीच मे लोगो के समझाने बुझाने मे भी देर हुई। अतः पहिला निवास तमसा तीर हुआ। भरतजी बडे सबेरे चले। परन्तु सेना साथ थी। अतः तमसा तीर रुक गये। बहुत लोग साथ हैं। अतः नदी तीर पर डेरा देते हैं। सरकार दूसरे दिन गङ्गा तीर पहुँचे। पर भरतजी चौथे दिन पहुँचे। इन्हे बीच मे गोमती तीर पर भी विश्राम करना पड़ा।

दो. पय अहार फल असन एक, निसि भोजन एक लोग।
करत राम हित नेम ब्रत, परिहरि भूषन भोग ॥१८८॥

अर्थ : कोई दूध ही पीते है। कोई फलाहार ही करते है। कोई रात्रि मे ही भोजन करते हैं। सब लोग रामचन्द्र के लिए भूषण और भोग छोड़कर नियम और व्रत करते थे।

व्याख्या : राम दरस हित नेम ब्रत लगे करन नर नारि। इसी का स्पष्टीकरण करते हैं। पय अहार और फलअशन व्रत हैं और निशि भोजन नियम है। यह नियम व्रत रामजी के दर्शन के लिए हो रहा है। लोगो ने शृङ्गार और भोग दोनो को त्याग दिया है . भोग रोग सम भूषण भारू। पय अहार फल अशन ज्ञानी भक्त कर रहे हैं। निशि भोजन करनेवाले जिज्ञासु भक्त गृहस्थ लोग है। गृहस्थो के लिए रात्रि का उपवास वैद्यक शास्त्र मे मना है। राम के वियोग का विधायक जो पाप है उसके नाश के लिए अवधवासियो ने यह नियम और व्रत ले रखा है।

सई तीर बसि चले बिहाने। शृगबेरपुर सब निअराने ॥
समाचार सब सुने निषादा। हृदयँ बिचार करै सबिषादा ॥१॥

अर्थ : सई के किनारे बसकर सबेरे ही चले। शृगवेरपुर के पास पहुँचे। निषाद ने जब सब समाचार पाया तो विषाद के साथ मन मे विचार करने लगा।

व्याख्या . तीसरे दिन सई नदी के किनारे बसे। सबेरे ही चल पडे। जो रास्ता सरकार ने एक दिन मे तय किया था उसे तय करने मे सेना साथ रहने से भरतजी को तीन दिन से अधिक लगे। शृङ्गवेरपुर को ही सिंगरौर कहते है। यथा . सो जामिनि सिंगरौर गँवाई। सब लोग सिंगरौर के निकट पहुँच गये। अभी सबेरा ही है।

जब सिंगरौर से कुछ दूर रहे तभी निषादराज को पता लग गया कि भरतजी चित्रकूट जा रहे हैं और बडी भारी चतुरङ्गिनी सेना साथ लिये हैं। जिस बात की विधि नही बैठती उसमे विचार होता ही है। अनिष्ट की शङ्का मे सविषाद विचार होता है और इष्ट प्राप्ति की आशा मे सानन्द विचार होता है। सेना के साथ भरतजी का आगमन सुनने से उसे अनिष्ट की आशङ्का हुई। इसलिए सविषाद विचार करने लगा।

कारन कवन भरतु बन जाँही । है कछु कपट भाव मन माँही ॥
जौ पै जियँ न होति कुटिलाई । तौ कत लीन्ह सग कटकाई ॥२॥

अर्थ क्या कारण है कि भरतजी वन जा रहे हैं। कुछ कपट भाव मन मे है। यदि कुटिलाई मन मे न होती तो साथ मे सेना क्यो लिया ?

व्याख्या रामजी के वन जाने का कारण था। वे पिता के वचन से गये। भरत को तो राज्य मिला है। महाराज की क्रिया से छुट्टी पाते ही इन्हे राज्य सँभालना था। ये वन क्यो जा रहे हैं ? यद्यपि ऐसे अवसर पर भाई से मिलकर उनका सन्तोष करके ही राज्य करना शिष्टता है। पर यह बात ऊपरी है। देखौआ है। इनके मन मे दूसरी बात है।

यदि इनके मन में कपट न होता तो साधारण रीति से चले जाते। पर सेन सग चतुरग न थोरी की क्या आवश्यकता पडी। निष्कारण कार्य होता नही। सेना का साथ लना ही कुटिलता का प्रमाण है। ठीक ऐसा ही लक्ष्मणजी ने सोचा। यथा जौ जिय होति न कपट कुचाली। केहि सोहात रथबाजि गजाली। यह निपादराज लक्ष्मणजी का शिष्य है। उन्ही की भाँति इसने भी सोचा। भरत के हृद्गत भाव तक गति नही हुई। यह न सोच सका कि भरत वन मे ही राज्य देने जा रहे है।

जानहि सानुज रामहि मारी । करौ अकटक राजु सुखारी ॥
भरत न राजनीति उर आनी । तव कलकु अब जीवन हानी ॥३॥

अर्थ समझते हैं कि भाई के सहित रामजी को मारकर सुखी होकर निष्कण्टक राज्य भोगेंगे। भरत ने राजनीति को चित्त मे स्थान नही दिया। तब तो कलङ्क ही था। अब प्राणो की हानि होगी।

व्याख्या चौदह वर्ष के वनवास से इनका पेट न भरा। समझा कि चौदह वर्ष के बाद ही सही पर रामचन्द्र भारी कण्टक हैं। अभी तो पिता के वचन से बँधे हुए हैं। नाभिषेका न सस्कार सिंहस्य क्रियते मृगै। विक्रमार्जितराज्यस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता। विक्रम करके भी तुम राज्य न लेना। ऐसा वचन तो पिता का है नही। अत कण्टकोद्धार के लिए चौदह वर्ष बाद का खटका न बना रहे राम लक्ष्मण को मारकर सुखी होकर राज्य करना चाहते हैं। लक्ष्मण और राम का अभिन्न हृदय है। अत लक्ष्मण का भी वध चाहते हैं।

दण्डनीति अन्तिम उपाय है। पहिल तो राजा को साम, दान, और भेद से काम लेना चाहिए। यथा साम दान अरु दड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह वेदा। नीति धर्म के चरन सोहाये। सो पहिल दण्डनीति से ही काम लते जान पडते हैं। यह राजनीति नहीं है। राज करने मे तो यशोहानि थी। पर अब अकण्टक राज करने के उद्योग म जीवन हानि होगी।

सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा । रामहिं समर न जीतनिहारा ॥
का आचरजु भरत अस करही । नहिं बिष बेलि अमिअ फल फरही ॥४॥

अर्थ जितने योद्धा देवता और असुर हैं वे सब जुट जांय। फिर भी रामजी को नही जीत सकते। भरतजी के ऐसा करने मे कौन आश्चर्य है ? विपकी लता मे अमृत फल नही फलता।

व्याख्या कारण यह है कि रामजी अजेय हैं। यथा जीति को सकै अजय रघुराई। सुरासुर मे सभी योद्धा नही होते। सो यदि सुरासरो मे से छांटकर सब योद्धा इक‌ट्ठे हो जांय फिर भी समर मे अकेले रामजी को नही जीत सकते। फिर यह मानुपी सेना उनका क्या कर सकती है। उसके लिए अकेले रामजी ही यथेष्ट हैं कि पुन लक्ष्मणजी भी साथ है। इनके जीतने की इच्छा करना ही मृत्यु सूचक है।

भरतजी यदि रामजी से सग्राम के लिए प्रस्तुत हो तो इसमे क्या आश्चर्य है। निपादराज कहते है कि जब माता ने १४ वर्ष के लिए वन दिया तब बेटा यदि प्राण लेना चाहे तो क्या आश्चर्य है। कैकेयी रूपी विपवेलि के ही फल तो भरतजी हैं। ये अमृतफल कैसे हो जावेंगे ? विचार करके निपादराज इस निर्णय पर आगये।

दो अस बिचारि गुह ग्याति सन, कहेउ सजग सब होहु ।
हथवासहु बोरहु तरनि, कीजिअ घाटारोहु ॥१८९॥

अर्थ ऐसा विचारकर गुह ने अपने जाति बिरादरी से कहा कि सब लोग सावधान हो जाओ। हाथ लगाओ और नावो को डुबा दो और घाट को रोक लो।

व्याख्या हृदय विचार करै से उपक्रम और अस बिचरि से उपसहार है। निषादराज का नाम गुह था। इन्हे सेना नही थी। इनके जाति भाई ही इनकी सेना थे। उनसे कहा कि तुम लोग होशियार हो जाओ। भरत से खतरा है। सब नावो को उठा उठाकर नदी मे डुबा दो। जिसमे हम लोगो का अनादर करके गङ्गा पार न होने पावें। तब घाट रोककर डँट जाओ। हम लोगो के मारे जाने पर भी हमारी नावो से काम न ल सके।

होइ सँजोइल रोकहु घाटा । ठाटहु सकल मरै के ठाटा ॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊ । जिअत न सुरसरि उतरन देऊं ॥१॥

अर्थ तैयार होकर घाट को रोक लो और सब लोग मरने का साज साजो। सनमुख भरत से लोहा मै लूँगा और जीते जी गङ्गा न उतरने दूँगा।

व्याख्या भरतजी का सामना करना है। अत सब लोग तैयार हो जाओ। पार उतरने की जो जगह है वही रोको। यदि कहो कि इतनी बडी सेना को कैसे

रोकेंगे ? इसपर निपादराज कहते हैं कि रोक न सकेंगे तो मर तो सकेंगे। इसलिए मरने का सामान साजो। ठाटहु कहने का भाव है कि वीरगति प्राप्ति के लिए उत्साह चाहिए। गङ्गा तुलसी मुख मे लेकर तैयार हो जाओ तुम लोग सेना को रोको।

भरतजी के सम्मुख लोहा मै लूंगा। युद्धसिद्धिर्हि चञ्चला · अत यह निश्चय नही कि मैं ही हारूँगा। पर सम्भावना ऐसी ही है। अतः यह निश्चय है कि जीते जी गङ्गा उतरने न दूँगा। मुझे मारकर तब पार उतरें। यहां आकर सेना ठहर जावेगी। नाव सब डूबी रहेगी। अत· पार उतरने की व्यवस्था उन्हे करनी होगी। उसी समय सग्राम का अवसर प्राप्त होगा। जो व्यवस्था करें उसे बिगाडो। उतरते समय उन पर प्रहार करो।

समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा। राम काजु छनभंगु सरीरा ॥
भरत भाइ नृप मै जन नीचू। बडे भाग असि पाइअ मीचू ॥२॥

अर्थ : युद्ध मे वीरगति तिस पर गङ्गा का किनारा तिस पर भी रामजी के कार्य के लिए और यह शरीर क्षण मे नष्ट हो जानेवाला है। भरत उनके भाई हैं, राजा हैं, मैं नीच सेवक हूँ, बडे भाग्य से ऐसी मौत मिलती है।

व्याख्या . यदि कहिये कि मर जाने से लाभ क्या ? तो इस पर निपादराज कहते हैं कि यदि शरीर चिरस्थायी होता तो यह प्रश्न बन सकता था। यह शरीर तो क्षणभङ्गुर है। कब छूट जायगा इसका क्या ठिकाना। पर छूटना निश्चित है। परन्तु ऐसा अवसर शरीर छोडने का क्या फिर मिल सकेगा ? द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ। परिव्राट् योगयुक्तस्तु रणे चाभिमुखे हत। समर मरण से उत्तम काल कहा। सुरसरि तीर से उत्तम देश कहा। यथा : रेवातीरे तप· कुर्यात् मरण जान्हवीतटे। भाव यह कि अनित्य वस्तु को नित्य की प्राप्ति के लिए त्यागना बडा भारी लाभ है। यह ऐसे ही किसी को बडे भाग्य से मिलता है। यथा : मरे बहुत मरिहैं बहुत आज कालि के बीच। तुलसी काहू नहि लही गीधराज की मीच : राजा का सग्राम साधारण पुरुषो से नही होता। पर यहां ऐसा ही सुयोग आ पड़ा है। उत्तम के हाथ से मरना प्रशस्त है। भरतजी रामजी के भाई और नराणा च नराधिप हैं। इनसे उत्तम कौन होगा ?

स्वामि काज करिहउँ रन रारी। जस धवलिहौं भुवन दस चारी ॥
तजौं प्रान रघुनाथ निहोरे। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे ॥३॥

अर्थ · मैं स्वामी के कार्य के लिए रण मे युद्ध करूँगा और चौदहो भुवन को अपने यश से सफेद कर दूँगा। रघुनाथ के लिए प्राण त्याग करूँगा। मेरे दोनो हाथ मे आनन्द के लड्डू हैं।

व्याख्या : मेरे स्वामी तो रामजी हैं। सब कुछ उनको अर्पण हो चुका है। यथा : देव धरनि धन धाम तुम्हारा। मैं सेवक समेत परिवारा। अत भरतजी भले साम्राज्य के स्वामी हो पर मेरे स्वामी तो रघुनाथजी ही हैं। उनके लिए

सग्राम मे भरतजी के हाथ से शस्त्रपूत होकर गङ्गाजी के तीर वीरगति को प्राप्त हूँगा। मेरे यश से चौदह भुवन भर उठेगा। यश का कवियो ने श्वेत रङ्ग माना है। इसलिए निषादराज कहते है कि चौदहो भुवन मेरे यश से सफेद हो जायँगे।

निषादराज मरण का निश्चय किये हुए युद्ध को प्रस्तुत हैं। उनका इतना ही मात्र प्रयोजन है कि जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ। भरत को समर मे जीतने को तो आशा भी नही की जा सकती। अपने लाभ के लिए लडने को तैयार हैं। लाभ यह है कि दोनो हाथ मे आनन्द के मोदक है। लोक परलोक दोनो बन जायगा। जस धवलिहौ भुवन दसचारी से लोक बनेगा और रघुनाथ निहोरे प्राण त्याग से परलोक बन जायगा। आज भी यह चाल है कि सौभाग्यवती स्त्री के मरने मे उसके दोनो हाथ मे लड्डू रखकर ही श्मशान ले जाते हैं। दोनो हाथ के लड्डू लोक परलोक दोनो के बन जाने के प्रतीक है।

साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महुँ जासु न रेखा॥
जाय जिअत जग सो महि भारू। जननी जौवन बिटप कुठारू॥४॥

अर्थ साधु समाज म जिसकी गिनती न हो और रामजी के भक्तो मे जिसकी रेखा न हो वह ससार मे व्यर्थ जीता है। वह पृथ्वी का बोझ है। माता के यौवन रूपी वृक्ष के छेदन के लिए वह कुठार रूप हुआ।

व्याख्या परहित लागि तजहिं जे देही। सतत सत प्रससहि तेही। अत परहित के लिए शरीर त्याग से सत समाज मे गणना होगी और रघुनाथजी के निहोरे वीरगति प्राप्त होने से रामभक्तो मे मेरी रेखा होगी। रेखा से भाव यह कि मेरे भक्त होने का निश्चय हो जायगा। यथा रेख खँचाइ कहौ बल भाखी। सब भक्तो को रामजी के निहोरे प्राण त्याग करने का अवसर नही मिलता। यथा धन्य जटायू सम कोउ नाही। राम काज कारन तन त्यागी। हरिपुर गयउ परम बड भागी।

दो बिगत बिषाद निषादपति, सबहि बढाइ उछाहु।
सुमिरि राम मांगेउ तुरत, तरकस धनुष सनाहु॥१९०॥

अर्थ विषाद से रहित होकर निषादपति ने सबका उत्साह बढाकर रामजी का स्मरण करके तुरन्त तरकस धनुष और कवच माँगा।

व्याख्या जब तक विचार करता था तब तक सविषाद था। अब निश्चय पर पहुँच गया। अत कहते हैं कि निषादपति विषाद से रहित हुए। इतना ही नही अपने जाति भाइयो का उत्साह भी अपने मरण को मङ्गलमय वर्णन करके बढाया और उस उत्साह को कार्य मे परिणत करने के लिए पहिले स्वय युद्ध के लिए तैयार होने लगा। इष्टदेव रामजी का स्मरण करके तरकस धनुष और कवच को जल्दी से लाने के लिए आज्ञा दी। जल्दी इसलिए है कि भरतजी की सेना आगे बढती चली आती है।

बेगहु भाइहु सजहु संजोऊ। सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ॥
भलेहि नाथ सब कहहिं सहरषा। एकहिं एक बढ़ावइ करषा॥१॥

अर्थ : भाइयो ! जल्दी करो सब तैयारी कर लो। मेरी आज्ञा को सुनकर कोई साहस न छोड़ो। सब हर्ष के साथ कहने लगे कि : नाथ ! बहुत अच्छा और वे आपस में एक दूसरे से चढा ऊपरी करने लगे।

व्याख्या : निषादराज बोले कि मै तैयार हो रहा हूँ। तुम लोग जल्दी से तैयार हो जाओ। तुम लोग भाई हो। होहिं कुठाहर बधु सहाए। तैयारी में कसर न रहे। इसलिए सजहु कह रहे हैं। मैंने मरने का ठाट ठटने की आज्ञा दे दी है। कादर मरने से डरते हैं। वे ऐसी आज्ञा सुनकर साहस छोड़ देते है। तुम लोग वीर हो। तुम में से कोई भी कादर की भाँति आचरण न करे।

निषादराज ने सबका उछाह बढ़ाया था। इसलिए सभी हर्ष के साथ आज्ञा को शिरोधार्य कर रहे हैं। सब गुह को राजा मानते हैं। अतः नाथ सम्बोधन दे रहे हैं। एक दूसरे से अमर्ष बढ़ाते है। जिसमे युद्ध करने में कसर न लगावें। आपस में चढ़ा ऊपरी है कि देखें कौन कैसा पुरुषार्थ करता है।

चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रूचै रारी॥
सुमिरि राम पद पंकज पनही। भाथी बाँधि चढ़ाइन्हि धनही॥२॥

अर्थ : निषाद जोहारकर करके चले। सब शूर है। युद्धप्रिय हैं। रामजी की जूतियों का स्मरण करके तरकस बाँधा और धनुहियो को चढाया।

व्याख्या : रजायसु हुई : बेगहु भाइहु। अत: जोहारि जोहारि चले। क्योकि सबके सब शूर हैं। रन रूचे रारी। भावार्थ यह कि सग्राम में झगड़ा रुचता है। घर में नहीं। निषाद की जाति की जाति ही वीर थी।

यहाँ पर कवि ग्राम्य शब्दों का प्रयोग कर रहे है। ये सब सरकारी जूतियो के उपासक हैं। अतः इष्ट स्मरणपूर्वक भाथी बाँधा। भाथी तरकस को कहते हैं। मालिक रामजी का स्मरण करता है। उसके सेवक रामजी के जूते का स्मरण करते हैं। दासानुदास हैं। तत्पश्चात् धनुही को चढाया। धनुही छोटे धनुप को कहते हैं।

अँगरी पहिरी कूँड सिर धरही। फरसा बाँस सेल सम करही॥
एक कुसल अति ओड़न खाँड़े। कूदहिं गगन मनहु छिति छाँड़े॥३॥

अर्थ : कवच पहनकर सिर पर कटोरा बाँधते हैं और परशु बाँस तथा बरछियों को सुधारते है। कोई कोई तलवार ढाल के बडे पण्डित हैं। वे मानो पृथ्वी छोड़कर आकाश मे कूद रहे हैं।

व्याख्या : अँगरी लोहे की अँगरखी अङ्गरक्षा के लिए पहन रहे हैं। सिर पर टोप के स्थान पर कटोरा आदि बरतन बाँध रहे हैं। भाथी और धनुष बाँधा था।

दूर से लड़ाई के लिए फरसा, बाँस और बरछा निकट से लड़ने के लिए सीधा कर रहे हैं। ये दूसरे प्रकार के वीर हैं।

तीसरे प्रकार के तलवार बहादुर वीर हैं। बड़े पैंतरेबाज है। ओड़न ढाल स्थानीय वस्तु को कहते हैं। उनका पैतरा अभी से आरम्भ हो गया। ऐसे उछल रहे हैं मानो धरती पर उनका पैर ही नही पड़ रहा है।

निज निज साजु समाजु बनाई। गुह राउतहिं जोहारे जाई ॥
देखि सुभट सब लायक जानें। लै लै नाम सकल सनमाने ॥४॥

अर्थ : अपना अपना साज समाज तैयार करके उन्होने अपने स्वामी गुह को जाकर प्रणाम किया। देखकर सुभटो को सब योग्य जाना और नाम ले लेकर सबका सम्मान किया।

व्याख्या : तीनो प्रकार के वीरो ने अपना अपना साज समाज तैयार करके अपने मालिक गुह को जाकर प्रणाम किया। यही से सब तैयारी के लिए चले थे। यथा : चले निषाद जोहारि जोहारी। और तैयार होकर यही लौटे और निषादराज का फिर से जोहार किया कि हम लोग तैयार होकर आगये।

गुह राउत ने जब सुभटो को देखा तो बड़ा भरोसा हुआ कि ये सब लायक हैं। भली प्रकार सामना करने मे समर्थ हैं। गुह राउत सबका नाम जानते हैं। कोई सेना तो है नही जो सबका नाम याद न रहे। यह तो टोली है। अपने ही भाई बन्धु सब हैं। अत एक एक का नाम लेकर सम्मान कर रहे हैं। किसी से कहते है कि तुम्हारा बड़ा भरोसा मुझे है। किसी से कहते हैं कि तुम मेरी भुजा हो।

दो. भाइहु लावहु धोख जनि, आजु काज बड़ मोहि।
सुनि सरोष बोले सुभट, वीरु अधीरु न होहि ॥१९१॥

अर्थ : भाइयो ! कुछ भी कसर न उठा रखना। आज मेरा बड़ा भारी काम आ पड़ा है। सुनकर सब सुभट सरोष होकर बोले कि वीर धैर्य नही छोड़ते।

व्याख्या : निषादराज कहते हैं कि तुम सब भाई हो। नौकर नही हो। अत लड़ने मे कोई कसर न पड़ने पावे। बड़ा काम मेरा तो आज ही पड़ा है। स्वामी का कार्य होने से मेरा बड़ा भारी काम है। दूसरी बात यह कि आज बड़ा भारी लाभ मेरे सामने है जो कि तुम्हारी सहायता से ही सिद्ध हो सकता है और वह यह है . जस धवलिहौं भुवन दस चारी। मेरे यश से चौदह भुवन प्रकाशित होनेवाला है और कीर्तिर्यस्य स जीवति। इतना सुनते ही वीरो को जोश आगया। कहने लगे कि वह वीर ही नही जो समय पर अधीर हो जाय। यह बात धनुर्धरो ने कही।

राम प्रताप नाथ बल तोरें। करहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरें ॥
जीवत पाउ न पाछे धरहीं। रुंड मुंडमय मेदिनि करहीं ॥१॥

अर्थ : हे नाथ ! रामजी के प्रताप से और आपके बल से सेना को बिना वीर और बिना घोड़े का कर देंगे। जीते जी पीछे पैर न रक्खेंगे। पृथ्वी को रुण्ड मुण्ड से पाट देंगे।

व्याख्या : तब फरसा बाँस सेल सम करनेवाले बोले कि प्रताप रामजी का और बल आपका है, मेरा कुछ नहीं। सो उस प्रताप और बल की सहायता से सेना को बिना भट का और बिना घोडे का कर दूँगा। भाव यह कि ऐसा चोट करूँगा यदि सवार बचे तो घोड़ा न बचेगा और यदि घोड़ा बचे तो सवार न बचेगा। मेरी चोट खाली जानेवाली नहीं है। भरत की सेना मे यह विशेषता है कि उसमें सवार हैं। हमलोगों के पास घोड़े नहीं हैं। इसलिए हम लोग ऐसा युद्ध करेंगे कि घोड़ा बचे तो सवार नहीं और सवार बचा तो घोड़ा नहीं।

तब ओडन खाँडे मे कुशल तलवार बहादुर बोले कि हमलोग मरने पर चाहे जिस बल गिरें पर जीते जी पैर पीछे न रक्खेंगे। जिसमें कदराई का प्रश्न ही न उठने पावे और यों ही न मर जायेंगे। जिसे एक हाथ मारेंगे वे दो टुकड़े हो जायेंगे। इस भाँति पृथ्वी को रुण्ड मुण्डमय बना देंगे। मुण्ड सिर को और रुण्ड धड़ को कहते हैं।

दीख निषादनाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू ॥
एतना कहत छीक भइ बाएँ। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाएँ ॥२॥

अर्थ : निषादनाथ ने देखा कि टोली तो अच्छी है। बोले कि जुझाऊ ढोल बजने दो इतना कहते ही बायी ओर छीक हुई। शकुन विचार करनेवालो ने कहा कि रणक्षेत्र सुन्दर होगा अपने पक्ष की जीत होगी।

व्याख्या : लोगों की बातें सुनकर निषादनाथ ने सुभटो की ओर देखा और मन मे कहा कि टोली तो अच्छी है। वीरों के उत्साह वर्धन के लिए कहा कि जुझाऊ ढोल बजने दो। जुझाऊ बाजा तो है नहीं कि मारूराग बज सके। अतः जुझाऊ ढोल बजाने की आज्ञा दी। इससे भरतजी की सेना को भी सूचना देना है कि निषाद लोग युद्ध के लिए प्रस्तुत हैं। निषादराज के पास छोटे परिमाण में सब कुछ था।

निषादराज के आज्ञा देते ही बायें ओर छीक हुई। प्राचीन काल में सेना के साथ सगुन विचारनेवाले भी रहते थे। उन्होने कहा विजय होगी पर ये सब नौजवान बिना विचारे ही बोल दिया कि जिसमे टोली का जी न टूटे। यात्रा में छीक अच्छी नहीं मानी जाती। अथवा उन सबों ने यह अर्थ लगाया कि जो हम लोगों के बाएँ हैं, उन्हे विघ्न होगा।

बूढ़ एक कह सगुन बिचारी। भरतहि मिलिअ न होइहि रारी ॥
रामहि भरतु मनावन जाँही। सगुन कहै अस बिग्रहु नाँही ॥३॥

अर्थ : एक बूढ़े ने सगुन विचारकर कहा कि भरतजी से मिलिये झगड़े को

बात नहीं है। भरत रामजी को मनाने जाते हैं। सगुन कह रहा है कि झगड़ा नही है।

व्याख्या : नौजवान सगुनियों ने विचार नही किया। यथा : कह्यौ सगुनिअन्ह खेत सोहाए। अवसरोपयुक्त बात बोल उठे। पर उनमें एक बूढा था उसने सगुन पर विचार किया कि जुझाऊ ढोल बजने की आज्ञा देते ही छीक हुई तो इसका तात्पर्य यह कि जुझाऊ ढोल बजने की आज्ञा न दो। अतएव कहता है कि सगुन कह रहा है कि झगड़े की बात नहीं है आप भरतजी से मिल लीजिये।

जब सगुन कहता है कि झगड़ा नहीं है तब निश्चय है कि भरत लड़ने नही जा रहे हैं। क्योकि सगुन जुझाऊ बाजा बन्द करने को कह रहा है। यदि लड़ने नही जा रहे हैं तो सिवा मनाने के लिए जाने के दूसरी बात हो क्या सकती है ? सेना मन्त्री सब अगवानी के लिए जा रहे हैं।

सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा। सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा ॥
भरत सुभाउ सीलु बिनु बूझे। बड़ि हित हानि जानि बिनु जूझे ॥४॥

अर्थ : यह बात सुनकर निषादराज गुह ने कहा कि बुड्ढा अच्छी बात कह रहा है। बिना विचारे काम करके विमूढ पछताते हैं। भरत का स्वभाव और शील बिना समझे अनजान में लड़ाई कर बैठने में बहुत बड़े कल्याण की हानि होगी।

व्याख्या : इस समय बड़ा भारी अनर्थ हो चुका था। सगुन के सावधान कर देने से बड़ा भारी अकल्याण रुक गया। सगुन पर ध्यान न देना अभिमान सूचक है। यथा : अति गर्व गनै न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ ते। निषादराज विचार शील थे। बूढे की राय पर विचार किया कि मैने तो जूझने मे ही कल्याण देखा था पर यदि भरत सचमुच मनाने जा रहे हों तो उनके साथ जूझना रामजी का सद्य विरोध हुआ। रामजी के लिए जूझने मे जितना लाभ था उतनी ही हानि राम विरोधी होकर जूझने में है। लोक परलोक दोनो बिगडेगा। संसार मे अपकीर्ति होगी कि बड़ा बेवकूफ था। बिना समझे ही लड़ गया। इससे यह लोक बिगड़ेगा और परलोक भागवत के विरोध से नष्ट हो जायगा।

दो. गहहु घाट भट समिटि सब, लेउँ मरम मिलि जाइ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति, तस तब करिहउँ आइ ॥१९२॥

अर्थ : सब वीर लोग इकट्ठे होकर घाट पर कब्जा किये रहो। मैं मिलकर भेद लेने जाता हूँ। शत्रु मित्र और उदासीन भाव का पता लगाकर फिर जैसा उचित होगा वैसा करूँगा।

व्याख्या : निषादराज अपने वीरों को आज्ञा दे रहे हैं कि सब लोग सिमिटकर घाट पर कब्जा जमाये रहो बाजा बजते क्या देर लगेगी। मैं जाकर भरतजी से मिलकर पता लगाये लेता हूँ कि उनका भाव क्या है ? रामजी का विरोध इनके

हृदय मे है कि मित्र भाव है कि उपेक्षा है। यदि मित्र होगे तो सेवा करूँगा। विरोधी होगे तो युद्ध करूँगा। यदि उनकी उपेक्षा दृष्टि होगी तो मैं भी उदासीन रहूँगा।

लखब सनेहु सुभाय सुहाएँ। बैरु प्रीति नहिं दुरइ दुराएँ॥
अस कहि भेंट सजोवन लागे। कंद मूल फल खग मृग माँगे॥१॥

अर्थ : सुन्दर स्वभाव से प्रेम पहिचाना जायगा। वैर और प्रीति छिपाने से नही छिपती। इतना कहकर भेंट की तैयारी करने लगे। कन्द मूल फल पक्षी और मृग मँगाये।

व्याख्या : मित्र अरि और मध्यगति के समझने मे कोई कठिनता नही है। सुन्दर स्वभाव से ही प्रेम की परख हो जाती है। प्रेमी का ही सुन्दर स्वभाव सम्भव है। फिर वैर और प्रीति ऐसे प्रबल भाव हैं जो यत्नपूर्वक छिपाने से भी नही छिपते। जो स्वभाव और चेष्टा से मनोगत भाव नही लख सकता वह भेंट के पसन्द से क्या लखेगा? रिक्तपाणिर्न पश्येत राजान भिषज गुरुम्। अतः भेंट की व्यवस्था करने लगे।

ईंधन पात किरात मिताई के अनुसार भेंट की तैयारी होने लगी। यद्यपि मङ्गल कार्य मे जलभाजन मे रखकर ही मछलियाँ लायी जाती हैं और केलि मृग पक्षी भी भेंट मे जाते हैं पर यहाँ ऐसा नही मालूम होता। सेना मे सब प्रकार के लोग होते हैं। राजसिक और तामसिक वृत्ति का तो यह आहार ही है। अत॰ उनके लिए भी शास्त्र मे देव पितृ अर्चन पूर्वक ही खाने का विधान है। निषादराज सात्त्विको के सत्कार के लिए कन्द मूल फल, राजसिक के लिए खग मृग इकट्ठा कर रहे हैं।

मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने॥
मिलन साजु सजि मिलन सिधाए। मंगल मूल सगुन सुभ पाए॥२॥

अर्थ : कहाँर लोग पुरानी मोटी मोटी पहिना मछलियो के भार भरकर लाये। मिलने का सामान सजकर मिलने चले तो मङ्गल मूल शुभ शकुन मिले।

व्याख्या॰ शास्त्रो मे मछली खाने की बडी निन्दा है। मत्स्याद सर्वमांसादः। जिसने मछली खायी वह सब मास खा चुका। अतः मछली घोर तामसिको का आहार है। अत॰ उनके लिए मछलियाँ आयी। यद्यपि कहाँर निषाद की अपेक्षा उच्च जाति के हैं पर बहँगी ढोना उन्ही का काम है। यथा : कोटिन्ह काँवर चले कँहारा।

निषादराज ने मिलने का साज सजा अर्थात् तर्कस धनुष और सन्नाह कवच उतार दिया। और स्वजात्यनुकूल वस्त्र भूषादि से सुसज्जित होकर तथा उपहारादि लेकर मिलने गया। लडने की तैयारी के समय छीक बायें हुई। पर मिलने चले तो मङ्गल मूल शुभ शकुन हुए। दधि दुर्वा रोचन फल फूला। नव तुलसी दल मंगल मूला। ये ही मङ्गलमूल शकुन हैं। इन्ही का मिलना मङ्गलमूल शुभ शकुनो का मिलना है।

देखि दूरि ते कहि निज नामू । कीन्ह मुनीसहि दंड प्रनामू ॥
जानि रामप्रिय दीन्हि असीसा । भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा ॥३॥

अर्थ : दूर से ही मुनिराज को देखकर अपना नाम कहकर दण्डवत् किया । राम का प्यारा जानकर आशीर्वाद दिया और मुनिराज ने भरत को समझाकर कहा ।

व्याख्या : पहिले ही मुनिराज के दर्शन हुए । यथा : अरुंधती अरु अगिनि समाजू । रथ चढ़ि चलत भये मुनिराजू । सो निषादराज ने उनसे दूर से ही साष्टाङ्ग प्रणाम किया । जिसमे छाया न छू जाय । यथा : जासु छाह छुइ लेइय सींचा । अपना नाम परिचय के लिए कहा । अर्थात् नामग्रहण पूर्वक प्रणाम किया ।

गुरुजी ने नाम सुना था कि निषादराज रामजी का प्रेमी है और सरकार भी उस पर प्रेम करते है । अत मुनिराज ने आशीर्वाद दिया । मुनिराज के रथ के बाद ही भरतजी का रथ है । माताजी की आज्ञा से जब रथ पर सवार हुए तो रथ अन्य रथियो के पीछे नही रह सकता । सो गुरुजी ने कहा :

यह निषाद पति सुहृद अति, रघुपति सखा सुजान ।
निरखि सेन सचित सजग, कीजिय याको मान ॥

राम सखा सुनि स्यंदनु त्यागा । चले उतरि उमगत अनुरागा ॥
गाउँ जाति गुह नाम सुनाई । कीन्ह जोहारु माथ महि लाई ॥४॥

अर्थ : यह सुनते ही कि यह रामजी का सखा है । भरतजी रथ से उतर पडे और अनुराग से उमगते हुए उसकी ओर चले । गुह ने गाँव जाति और नाम सुनाकर पृथ्वी पर सिर रखकर जोहार किया ।

व्याख्या : राम सखा से भाव यह कि सरकार की बराबरी का दर्जा है । अत: भरतजी ने उसके आदर के लिए रथ का त्याग किया और पैदल चल पडे । क्योकि निषादराज दूर पर थे । यथा : देखि दूरि ते कहि निज नामू । कीन्ह मुनीसहि दंड प्रनामू । चलते समय हृदय मे अनुराग उमगा पडता था ।

अपनी ओर भरतजी को बढते देखकर निषादराज ने पहिले ही अपने निवासस्थान का परिचय दिया । जिसमे समझ जाँय कि यह निषादो के गाँव का रहनेवाला निषाद है । अस्पृश्य है । फिर भी भरतजी नही रुके । तब स्पष्ट रूप से जाति की घोषणा की । तत्पश्चात् नाम भी सुना दिया । उसे भ्रम हुआ कि मुनीशजी से जो मैने कहा है उसे शायद भरतजी नही सुन सके । इसलिए उसने इस बार जोर से कह सुनाया । पर भरतजी आगे बढते ही गये । तब पृथ्वी पर सिर रखकर जोहार करता है । जिसमे स्पष्ट हो जाय कि यह अछूत है । मुनिजी को दण्डवत् किया । भरतजी को जोहार करता है । राजा लोगो को दोनो हाथ उठाकर प्रणाम किया जाता है । जिसे जोहार कहते हैं ।

दो करत दडवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उर लाइ ॥
मनहु लषन सन भेंट भइ, प्रेम न हृदय समाइ ॥१९३॥

अर्थ उसे दण्डवत् करते देखकर भरतजी ने छाती से लगा लिया। मानो लक्ष्मणजी से भेंट हुई है। हृदय मे प्रेम नही समाता था।

व्याख्या प्रेम के उमङ्ग का अवसान तो हृदय लगाने पर ही होता है। भरतजी ने निषादराज को हृदय से लगा लिया और इतने अनुराग से गाढालिङ्गन किया मानो लक्ष्मणजी से भेंट हुई हो। फिर भी हृदय मे प्रेम नही समाता पुलक के मिससे प्रकट हो रहा है। लक्ष्मणजी पर भरतजी का साधारण प्रेम नही है। यथा सोक समाजु राजु केहि लेखे। लखन रामसियपद बिनु दखे। लक्ष्मणजी सा प्रेम होने का कारण यह कि इसका भी त्याग श्रीरामप्रीत्यर्थं वैसा ही है जैसा लक्ष्मणजी का है। यथा देव घरनि धनु धामु तुम्हारा। मैं जन नीच सहित परिवारा।

भेटत भरत ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती ॥
धन्य धन्य धुनि मगल मूला। सुर सराहि तेहि बरसहिं फूला ॥१॥

अर्थ भरतजी उसे बडे प्रेम से भेंटे। लोग ईर्ष्या करने लगे। यह प्रेम की रीति है। देवता लोग मङ्गलका मूल धन्य धन्य ध्वनि करके उसकी बडाई करते हैं और फूलो की वर्षा करते हैं।

व्याख्या प्रेम वस्तु ही ऐसी है जिसमे नीच ऊँच का विचार रह नही सकता। प्रेम के प्रवाह म भेद बह जाता है। निषादराज ने सरकार से कहा था कि थापिअ जनु सब लोग सिहाऊ। सो भरतलाल ने उसे स्थापन कर दिया और लोग भी इस प्रेम की रीति का डाह करने लगे कि वाह रे ! निषादराज का भाग्य।

नीचे लोग सिहाते हैं। ऊपर देवता सराहते हैं। बार बार उसे धन्य कहते हैं। देवताओ की धन्य धन्य ध्वनि मङ्गल मूल है। निषादराज साधारण धन्य नही हुए। देवपूजित हो गये। देवताओ ने उन पर पुष्पवर्षा की। ऐसी स्थापना हुई कि देवताओ ने फूल चढाया।

लोक वेद सब भाँतिहि नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सीचा ॥
तेहि भरि अक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता ॥२॥

अर्थ जो लोक म और वेद मे सब भाँति नीच था। जिसकी छाया छू जाने से मार्जन का विधान है उसी से रामजी के छोटे भाई पुलकित होकर छाती से लगाकर मिल रहे हैं।

व्याख्या लोक मे नीच। यथा हम जड जीव जीवगन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती। पाप करत निसि बासर जाही। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाही। यह हमारि अति बडि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चोराई। इस भाँति लोक म नीच हुआ। य इह कपूयाचरणा अभ्याशो हयत्ते कपूया योनिमापद्येरन्

श्वयोनिं सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा। इस भाँति निषाद होने से वेद में भी कपूय नीच योनि कहा गया। उसकी छाया के स्पर्श से मार्जन का विधान है। उसे स्पर्श करने की कौन चलावे ?

सो रामजी के छोटे भाई उसे अङ्क भरके हृदय लगा रहे है और प्रेम से ऐसे परिपूर्ण है कि सर्वाङ्ग मे रोमाञ्च हो रहा है। रामजी के छोटे भाई कहने का भाव यह है कि जिसके विषय मे स्वयं वसिष्ठजी कहते है कि समुझव कहव करव तुम्ह जोई। धर्मसारु जग होइहि सोई।

राम राम कहि जे जमुहाही। तिन्हहि न पाप पुंज समुहाही॥
यह तौ राम लाइ उर लीन्हा। कुल समेत जग पावन कीन्हा॥३॥

अर्थ : जो राम राम कहकर जँभाई लेते हैं पापो के समूह उनका सामना नही करते। इसे तो रामजी ने हृदय से लगा लिया और कुल के सहित जगत मे पवित्र कर दिया।

व्याख्या : जो राम कहकर जँभाई लेते हैं : भाव यह कि जो आलस्य से भी रामनामोच्चारण करते हैं उनका सामना करने का सामर्थ्य पापपुञ्ज को भी नही। क्योकि उनका सामना पड़ते ही नष्ट हो जाते है। नाम्नोऽस्ति यावती शक्ति· पापनिर्दहने हरेः। तावत् कर्तुं न शक्नोति पातक पातकीजन । आलस्य से जपना। यथा : भाव कुभाव अनख आलसहूँ। राम जपत मगल दिसि दसहूँ।

भरतजी के हृदय लगाने से ही रामजी का हृदय लगाना हो गया। यथा : तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ। भरतहि मोहि कछु अतर काऊ। पहिले ही यदि रामजी हृदय लगाये होते तो भरतजी के हृदय लगाने पर देवताओं की पुष्प वर्षा इस समय न होकर उस समय होती सो वहाँ मिलना भी नही कहते। यथा : लिए फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हिय हरखु अपारा। करि दडवत भेट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागे। देवता लोग कहते हैं कि अब यह कुल समेत ससार मे पवित्र हो गया। भरतजी ने जब इसे हृदय से लगा लिया तो रामजी लगा चुके। लोक मे यह जनश्रुति है कि रामजी के जल ग्रहण कर लेने से मल्लाहो की गिनती सत्शूद्रो मे हो गयी। इनका पानी चलने लगा।

करमनास जलु सुरसरि परई। तेहि को कहहु सीस नहिं धरई॥
उलटा नामु जपत जग जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥४॥

अर्थ : कर्मनाशा का जल गङ्गाजी मे गिरता है। तो उसे कौन सिर पर नही चढाता। ससार जानता है कि उलटा नाम जपते-जपते वाल्मीकि जी ब्रह्म के तुल्य हो गये।

व्याख्या : जनश्रुति है कि कर्मनाशा का जल स्पर्श करने से कर्म का नाश हो जाता है। इसलिए कर्मनाशा का जल कोई छूता नही। परन्तु कर्मनाशा जाकर गङ्गाजी मे मिल गयी है। उसके जल के अनवरत गङ्गा मे गिरते रहने पर भी

गङ्गाजल में अशुचिता नही आती। उसे सभी पापनाश के लिए सिर पर धारण करता है। अर्थात् जिसे सरकार ने अपना लिया वही पूज्य हो जाता है। उसके जाति आदि का विचार नही किया जाता। पर यह निश्चय हो जाना चाहिए कि रामजी ने अपना लिया। यथा :

जाको हरि दृढ करि अग करयौ।
सोई सुसील पुनीत वेद विद विद्या गुननि भरयौ॥
उतपति पांडु सुतन की करनी सुनि सत पथ डरयौ।
ते त्रैलोक्य पूज्य पावन जस सुनि सुनि लोक तरयौ॥
जो निज धर्म वेद बोधित सो करत न कछु विसरयौ।
बिनु अवगुन कृकलास कूप मज्जित कर गहि उघरयौ॥
ब्रह्म विसिख ब्रह्माण्ड दहन क्षम गर्भ न नृपति जरयौ।
अजर अमर कुलिसहु नाहिन बध सो पुनि फेन मरयौ॥
विप्र अजामिल अरु सुरपति ते कहा जो नहिं बिगरयौ।
उनको कियो सहाय बहुत उर को सताप हरयौ॥

वाल्मीकिजी का उलटा नाम जप करना जगत् प्रसिद्ध है। उलटा जप का फल भी उलटा होना चाहिए। नाम के संसर्ग से उलटा जप भी महा फलदायक हुआ। वाल्मीकिजी ब्रह्म के समान हुए और उनकी वाणी वेद के समान हुई। यथा : वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षात्रामायणात्मना।

दो. स्वपच सबर खस जवन जड़, पाँवर कोल किरात।
रामु कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात॥१९४॥

अर्थ : चाण्डाल खश मूर्ख यवन नीच कोल किरात आदि सभी राम नाम के कहने से पवित्र होकर संसार में विख्यात हो जाते हैं।

व्याख्या : वाल्मीकिजी उदाहरण मात्र हैं। नियम यही है कि नीच भी राम कहने से परम पवित्र और भुवन विख्यात हो जाते हैं। स्वपच यवन आदि कहने से वेदबाह्यलोग अभिप्रेत हैं। अर्थात् जो जन्म से अपावन हैं वे भी पावन हो जाते हैं और उनकी ससार मे ख्याति हो जाती है। कोई उनकी जाति का परवाह नही करता। इस प्रकार शास्त्र और लोक दोनों से शुद्धि कही।

नहि अचरज जुग जुग चलि आई। केहि न दीन्ह रघुबीर बड़ाई॥
राम नाम महिमा सुर कहही। सुनि सुनि अवध लोग सुखु लहही॥१॥

अर्थ : आश्चर्य की बात नही है। यह प्रथा तो युग युग से चली आती है। रामजी ने किसे बड़ाई नही दी ? राम नाम की महिमा देवता लोग कहते थे और सुन सुनकर अवधवासी सुखी होते थे।

व्याख्या : अनहोनी बात का हो पड़ना आश्चर्य है। पहिले बड़ा संशय हुआ कि लोक वेद सब भाँति से जो नीच है उससे इस भाँति भरतजी मिलते हैं। यह

क्या बात है ? फिर उस सशय का निरसन भी स्वय ही करते हैं कि जो बात सदा से होती चली आयी हो उसके होने मे आश्चर्य नही है। यथा संतत दासन्ह देहु बडाई। जो बड होत सो राम बडाई। सदा से ही भगवान् दासो को बडाई देते हैं। यह भी सरकार का अनन्य दास है। अत उस नाते से इसे बडाई मिल रही है। जो जाति मे बडे कहलाते हैं उन्हे ही बडाई कहाँ से मिली ? जिसने उन्हे बडाई दी थी वही निषादराज को भी बडाई दे रहा है।

राम की और नाम की महिमा देवगण आकाश मे वर्णन कर रहे हैं। सुर सराहि तेहि बरषहि फूला से उपक्रम और राम नाम महिमा सुर कहही से उपसहार। देवता कह रहे है और अवधवासी श्रवण कर रहे हैं। इससे उन्हे सुख हो रहा है। यथा हम सम पुण्य पुज जग थोरे। जिन्हहि राम जानत करि मोरे। देवताओ का सङ्कल्प है कि अवधवासी सुनें। अत सुन रहे हैं, नही तो आकाश मे कही हुई बात पृथ्वी पर क्यो सुनाई देने लगी ?

राम सखहि मिलि भरतु सप्रेमा। पूछी कुसल सुमगल पेमा॥
देखि भरत कर सीलु सनेहू। भा निषाद देहि समय बिदेहू॥२॥

अर्थ रामजी के सखा के साथ सप्रेम मिलकर भरतजी ने कुशल मङ्गल और क्षेम पूछा। भरतजी का शील और स्नेह देखकर निषादराज उस समय देह की सुधि भूल गये।

व्याख्या मिलन प्रसङ्ग पूरा करके फिर कथा प्रसङ्ग प्रारम्भ करते हैं। सप्रेम शब्द देहली दीपक न्याय से दोनों ओर लगेगा। अर्थात् सप्रेम मिलकर कुशलादि सप्रेम पूछा। कुशल शब्द से विघ्नराहित्य अभिप्रेत है। यथा बूझब राउर सादर साईं। कुसल हेतु सो भयउ गोसाईं। मङ्गल से इष्ट प्राप्ति और पेम से इष्ट सरक्षण के विषय मे प्रश्न किया। अर्थात् योगक्षेम पूछा।

निषादराज भरतजी के शील स्नेह का पता लगाने चले थे। सो उनका शील स्नेह देखकर स्तब्ध हो गये। उन्ह अपने देह की सुधि न रह गयी। शील देखा कि राम सखा सुनि स्यन्दनु त्यागा और स्नेह देखा भरत लीन्ह उर लाइ। मनहु लखन सन भेंट भइ। प्रेम न हृदय समाइ। मन मे भी यह बात न आयी थी कि भरतजी मे इतना शील स्नेह होगा। अत आश्चर्य और प्रेम मे डूबाडूब होकर शरीर की सुधि भूल गया।

सकुच सनेहु मोद मन बाढा। भरतहि चितवत एकटक ठाढा॥
धरि धीरज पद बदि बहोरी। बिनय सप्रेम करत कर जोरी॥३॥

अर्थ मन मे सङ्कोच प्रेम और आनन्द बढ गया और खडा खडा एकटक भरतजी को देखने लगा। धैर्य धारण करके फिर चरणो मे प्रणाम किया और प्रेम के साथ हाथ जोडकर विनय करने लगा।

व्याख्या निषादराज को अपने पूर्वकृत सन्देह पर सङ्कोच हुआ। शील

देखकर भरतजी पर स्नेह बढ़ा और स्वभाव देखकर मन मे मोद हुआ। भरतजी कुशल पूछते हैं। उसका उत्तर देना चाहिए। परन्तु निषादराज भरतजी के गुणो को देखकर स्तब्ध हैं और प्रेम के उल्लास से भरतजी को एकटक देख रहे हैं। उत्तर देते नही बनता।

अतः धैर्य धारण किया। पहिले प्रेम से धैर्य छूट गया था। सो मनसा : धरि धीरज, कर्मणा : पद वदि और वचसा : वचन सप्रेम कहत कर जोरी। सप्रेम प्रेम हुआ था। यथा : सप्रेमा, पूछी कुसल सुमंगल पेमा। अतः विनय सप्रेम करत कर जोरी। यह दूसरी वन्दना उत्तर देने के समय की है।

कुसल मूल पद पंकज पेखी। मै तिहुँ काल कुसल निज लेखी ॥
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरे। सहित कोटि कुल मंगल मोरें ॥४॥

अर्थ : श्रीचरण ही कुशल के मूल हैं। उनका दर्शन करके मैंने तीनों काल ः अपना कुशल निश्चय कर लिया। प्रभो ! अब आपकी कृपा से कोटि कुल के सहित मेरा मङ्गल है।

व्याख्या : कुशल पूछने का उत्तर निषादराज देते हैं कि अब तो मै कुशल के मूल : जड़ तक पहुँच गया। नही तो : तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन विश्राम। जब लगि भजत न राम कहु सोक धाम तजि काम। पूर्व काल मे कुशल था। इसलिए चरणों का दर्शन हुआ। इस समय भी कुशल है। दर्शन कर रहा हूँ और भविष्य मे भी इन्ही चरणों के प्रताप से कुशल होगा।

मङ्गल पूछने का उत्तर निषादराज देते हैं कि दर्शन के बाद जो अनुग्रह हुआ उससे करोड़ों कुल के साथ मेरा मङ्गल हुआ। मेरी पूरी जाति पावन हो गयी। यथा : कुल समेत जग पावन कीन्हा। यथा : नभ सराहि सुर वरषहिं फूला।

दो. समुझि मोरि करतूति कुल, प्रभु महिमा जिअ जोइ।
जो न भजइ रघुबीर पद, जग बिधि बंचित सोइ ॥१९५॥

अर्थ : मेरे कूल और करतूति को समझकर और प्रभु की महिमा देखकर जो रघुवीर के चरण को न भजे वह संसार मे विधाता द्वारा ठगा गया।

व्याख्या : अब क्षेम का उत्तर देते है। कुल और करतूति दोनो मलिन हैं। यथा : जासु छाँह छुइ लेइय सीचा। हम जड़ जीव जीवगन घाती। कपटी कायर कुमति कुजाती और सरकार की महिमा का पारावार नही। यथा : भरत महा महिमा जल रासी। मुनि मति तीर ठाढ़ि अवलासी। इन दोनो बातों को जो देखेगा वह सब रघुवीर के पद को भजेगा। मैं भी भजूँगा। जो न भजे वह नृपशु है। मनुष्य शरीर देकर ब्रह्मदेव ने उसे ठग लिया। वह मनुष्य शरीर मे पशु ही है। आहार निद्रा भय मैथुन मे लगा है। उसे कुछ भी विवेक नहीं है। रघुवीर पद भजने से ही क्षेम होता है। यथा : राम विमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई।

कपटी कायरु कुमति कुजाती । लोक वेद बाहेर सब भाँती ॥
राम कीन्ह आपन जबही ते । भयेउँ भुवन भूपन तबही ते ॥१॥

अर्थ कपटी कादर कुबुद्धि और कुजाति हूँ। सब भाँति लोक वेद से बाहर हूँ। पर जब से रामजी ने मुझे अपना कर लिया तभी से मैं ससार का भूषण हो गया।

व्याख्या निपादराज कहते हैं न मेरा स्वभाव अच्छा, न हृदय अच्छा, न बुद्धि अच्छी और न जाति अच्छी, स्वभाव से कपटी, हृदय से कादर, बुद्धि तामसी और जाति से निपाद। मेरे स्वभाव में कपट है। उसका आरोप भरतजी ऐसे महासाधु पर किया। यथा कारन कवन भरत बन जाँही। है कछु कपटभाव मन माँही। हृदय मेरा कादर है। युद्ध के लिए तैयार भी हुआ तो जाति भाइयों के भरोसे। फिर भी अधीर हो उठा। जाति भाइयो ने कहा बीर अधीर न होहि। मैंने अधर्म का धर्म माना। भरतजी ऐसे महा भागवत से युद्ध करने का सकल्प किया। इससे मेरी बुद्धि तामसी। अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता। सर्वार्थान् विपरी ताश्च बुद्धि सा पार्थ तामसी। मेरी जाति पापमय है। राजा वेणु की जघा के मन्थन से जो पाप पुरुप उत्पन्न हुआ वही हमारा मूल पुरुप है। उसी से निपाद जाति हुई। कहा भी है कि अधम को वेनु समान।

मुझे न लौकिक कर्म समाज प्रवेश का अधिकार और न वैदिक कर्म यज्ञादि *साधनो का अधिकार। अत हम लोक और वेद दोनो से बहिष्कृत हैं। कोई मुझसे* सम्पर्क रखना नही चाहता। परन्तु जब से रामजी ने मुझे अपना लिया मेरे देव धरनि धन धाम तुम्हारा। मैं जन नीच परिवारा। कहकर आत्मनिवेदन करने पर सरकार ने कहेउ सत्य सबु सखा सुजाना। कहकर स्वीकार कर लिया। इतना ही नही आतिथ्य भी स्वीकार किया। तब से तो मैं भुवन का भूपण हो गया। सब लोग मेरी ऐसी चाह करने लगे जैसी आभूपण की चाह करते हैं। अर्थात् अब मेरे साथ से लोग अपने को कृतकृत्य मानने लगे।

देखि प्रीति सुनि बिनय सुहाई। मिलेउ बहोरि भरत लघु भाई॥
कहि निषाद निज नामु सुबानी। सादर सकल जोहारी रानी ॥२॥

अर्थ प्रीति देखकर और सुन्दर विनय सुनकर फिर भरतजी के छोटे भाई मिले। मीठी वाणी से अपना नाम ले लेकर उसने सब रानियों का आदर से जोहार किया।

व्याख्या भरतजी के छोटे भाई शत्रुघ्नजी तत्पश्चात् मिले। यहाँ बहोरि शब्द तत्पश्चात् के अर्थ मे आया है। भरतजी के मिलने के बाद इन्हे कुछ देखने सुनने की आवश्यकता नही थी। *पर भरतजी तो साक्षात् गुरु आज्ञा से मिले।* शत्रुघ्नजी को कोई ऐसी आज्ञा नही थी। अत शत्रुघ्नजी को देखने सुनने की आवश्यकता पडी। उन्होने निपादराज की प्रीति आँखो देखा। यथा सकुच सनेह

मोद मन बाढ़ा। भरतहि चितवत एकटक ठाढ़ा। और सुन्दर विनय जो ऊपर लिखी गयी हैं कानों से सुना। अतः उसे आदर का पात्र जानकर उससे मिले।

तत्पश्चात् जिस भाँति मुनिजी को दण्डवत् दूर से अपना नाम सुनाकर किया था उसी भाँति सुन्दर वाणी से अपना नाम सुना सुनाकर सब रानियों का आदर से जोहार किया। जोहार : कर्मणा। सादर : मनसा। निज नाम सुबानी : वचसा।

जानि लखन सम देहिं असीसा। जिअहु सुखी सय लाख बरीसा॥
निरखि निषाद नगर नर नारी। भए सुखी जनु लखनु निहारी॥३॥

अर्थ : लक्ष्मण के समान जानकर रानियाँ आशीर्वाद दे रही हैं कि तुम सौ लाख बरस तक जीओ और सुखी रहो। निषादराज को देखकर नगर नर नारी ऐसे सुखी हुए मानो लक्ष्मण को देख पाया हो।

व्याख्या : संसार रानियों को जोहार करता है। पर रानियाँ सबको आशीर्वाद इस भाँति देती नहीं फिरती। अपने अति प्यारे पुत्रादि को ही आशीर्वाद देती है। पर निषादराज को सब ओर से आशीर्वाद इस भाँति दे रही हैं जैसे लक्ष्मणजी के प्रणाम करने पर माताएँ जिन शब्दों मे आशीर्वाद देती थी। सुखी होने का आशीर्वाद देती थी और दीर्घायु का आशीर्वाद देती थी। सौ लाख वर्ष यहाँ चिरकाल का बोधक है अथवा कीर्तियुक्त जीवन व्यतीत करने का आशीर्वाद देती थी। यथा : कीर्तिर्यस्य स जीवति।

नगर नर नारी ने भी वैसा ही मान लिया। क्योंकि भरतजी ने उसी भाव से उसका सत्कार किया था। लक्ष्मणजी पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे थे। अत प्रिय के दर्शन से जैसे सुखी होते थे वैसे हुए। इसका आदर भरतजी माताओं और प्रजावर्ग की ओर से लक्ष्मणजी का सा हो रहा है। क्योंकि इसकी भक्ति उसी प्रकार की है। यह भी लक्ष्मणजी के समान रामजी के लिए प्राण निछावर करने को प्रस्तुत हैं।

कहहिं लहेउ एहिं जीवन लाहू। भेटेउ रामभाइ भरि बाहू॥
सुनि निषादु निज भाग बड़ाई। प्रमुदित मन लै चलेउ लेवाई॥४॥

अर्थ : कहने लगे कि जीने का लाभ इसने पाया। रामजी के भाई ने इसे भुजा भरकर भेटा। निषादराज अपने भाग्य की बड़ाई सुनकर प्रसन्नचित्त होकर सबको लिवा ले चला।

व्याख्या : सब कहने लगे कि इसने जीने का लाभ प्राप्त कर लिया। क्योंकि रामजी के भाई इससे भुजा पसारकर मिले। यदि रामभद्र पाठ माना जाय तो अर्थ करना होगा कि रामजी ने इसको परिष्वङ्ग दिया। रामभद्र का प्रयोग रामजी के लिए कवि ने कहीं किया नहीं। लक्ष्मणजी ने जीवन लाभ पाया है। यथा : जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि राम चरन मन लावा। भरतजी लक्ष्मण के समान

मानकर मिले। अत सत्र इसे लक्ष्मण के समान मान रहे हैं। इस प्रकार का मतैक्य अयोध्या मे चलता है।

अयोध्यावासियो के मुख से अपनी बडाई सुनकर निपादराज प्रमुदित हैं। क्योकि अयोध्यावासी सरकार को अति प्रिय हैं। यथा अति प्रिय मोहि इहाँ के वासी। जब रामजी के प्रिय किसी के भाग्य की बडाई करें तभी उसे भाग्यवान् समझना चाहिए। सर्व साधारण की बडाई का कोई मूल्य नही है। भलो कहै बिनु जाने ही बिनु जाने अपवाद। सो नर गादुर जानि जिअ करिअ न हरख बिपाद।

दो सनकारे सेवक सकल, चले स्वामि रुख पाइ।
घर तरु तर सर बाग बन, बास बनाएन्हि जाइ ॥१९६॥

अर्थ सब सेवको को इशारा किया। वे स्वामी का रुख पाकर चले। उन्होने घरो मे वृक्षो के नीचे तालाबो पर बगीचो और जगलो मे सबके ठहरने के लिए डेरे सँवारे।

व्याख्या निपादराज ने कहा था - देखि मित्र अरि मध्यगति तब तस करिहौं आइ। सो सबको लिवाकर निपादराज आगे आगे आ रहे हैं। इससे मित्र होना स्पष्ट हो गया और यह भी स्पष्ट हो गया कि निपादराज इनका आतिथ्य सत्कार करेंगे। अब इशारा पाकर उनके रुख से समझ गये कि टिकाने का बन्दोबस्त होना चाहिए। अत घाट को छोडा और टिकाने की व्यवस्था मे लग गये। सेना बडी है। सबके टिकाने का काम साधारण नही है। अत प्रधान लोगो के लिए घर मे दूसरो को गाँव मे औरो को पेड तले सैनिको का ग्राम के बाहर सर बाग वन मे डेरे सँवारे।

सृ गबेरपुर भरत दीख जब। भे सनेह बस अग सिथिल तब ॥
सोहत दिए निपादहि लागू। जनु धनु धरे बिनय अनुरागू ॥१॥

अर्थ जब भरतजी ने शृङ्गवेरपुर को देखा तब प्रेमवश अङ्ग ढीले पड गये। निपादराज को टेके हुए ऐसे शोभित हैं मानो विनय और अनुराग ने धनुष धारण कर रक्खा हो।

व्याख्या सरकार ने जब से अयोध्या से प्रस्थान किया तब से शृङ्गवेरपुर मे ही फल मूल भोजन किया। यही सोये। यही जटा बनायी। यही से वन चले। यथा सो जामिनि सिंगरौर गँवाई। अत शृङ्गवेरपुर के देखने से सरकार की स्मृति अति अधिक रूप मे हुई। स्नेह के वश हो गये। अपने वश मे नही रह गय। अत अङ्ग ढीले पड गये।

ऐसी शिथिलता हुई कि सहारा लेने की आवश्यकता हुई तो निपादराज का सहारा लिया। उसके हाथ मे हाथ दिये चले जा रहे हैं। भरतजी मानो अनुराग की मूर्ति है और निपादराज इस समय विनय की मूर्ति हो गये। हाथ से हाथ मिलने की उपमा आकृति साम्य से धनुष के साथ दिया। विनय अनुराग का धनुष धारण

करना उनके उस समय प्रबल होने का द्योतक है। यहाँ भरतजी की उपमा अनुराग से और निषाद की उपमा विनय से दिया। तनु धरे पाठ मानने से यह अर्थ करना पडेगा कि मानो विनय और अनुराग ने शरीर धारण कर लिया है।

एहि विधि भरत सेनु सबु सगा। दीख जाइ जग पावनि गगा॥
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मनु मगनु मिले जनु रामू॥२॥

अर्थ इस विधि से भरत ने सेना के साथ जाकर जगत् को पवित्र करनेवाली गङ्गाजी का दर्शन किया। रामघाट को प्रणाम किया। मन ऐसा मग्न हुआ मानो रामजी मिल गये।

व्याख्या भरतजी निषादराज से मिलने के बाद फिर रथ पर सवार नही हुए और भरतजी के पैदल चलने से सारा समाज पैदल चला। तीर्थ के निकट सवारी पर चलना निषिद्ध है। यथा गिरिवर दीख जनक नृप जबही। करि प्रनाम रथ त्यागेउ तबही। अत सब पैदल चले। पहिल शृङ्गवेरपुर दिखायी पडा और उसके बाद ही गङ्गाजी दिखायी पडी। जगपावनि कहने से सर्वतीर्थमयी गङ्गा कहा। यथा समृद्ध सौभाग्य सकलवसुधाया।

अब जहाँ सरकार ने स्नान किया था उसका नाम रामघाट पड गया था। यथा उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दडवत हरष बिसेखी। वह स्थल रामजी से अधिक पवित्र हो गया। विरह दशा म प्रेमास्पद के अङ्ग से लगी हुई वस्तु भी उसी की भाँति प्रिय मालूम होती है। अत भरतजी का मन मगन हो गया। मानो राम ही मिल गये। पहिल सवारी से उतरना कहा। तत्पश्चात् दर्शन कहा अब सप्रेम प्रणाम कहते हैं।

करहिं प्रनाम नगर नर नारी। मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी॥
करि मज्जनु मांगहि कर जोरी। रामचद्र पद प्रीति न थोरी॥३॥

अर्थ नगर के नर नारी ब्रह्ममय वारि का दर्शन करके हर्षित होकर प्रणाम करते हैं। स्नान करके हाथ जोडकर माँगते हैं कि रामचन्द्र के चरणो मे अधिक प्रेम हो।

व्याख्या भरतजी का प्रणाम कहकर अब पुरवासियो का प्रणाम कहते हैं कि नगर के नर और नारी सभी प्रणाम कर रहे हैं। भावना यह है कि गङ्गा जल जल नहीं है। स्वय ब्रह्म ही द्रवीभूत होकर जल रूप से विद्यमान है। अत गङ्गा का दर्शन ब्रह्मसाक्षात्कार है और स्पर्श ब्रह्मस्पर्श है। गोलोक मे भगवान् वासुदेव स्वयं द्रवीभूत होकर गङ्गारूप म वह चले। ऐसी कथा गर्ग संहिता मे है। इसीलिए गङ्गाजी की उपासना नीराकार ब्रह्म की उपासना है।

दर्शन और प्रणाम के बाद मज्जन का विधान है। अत सब स्नान करने लगे। स्नान के बाद गङ्गाजी से प्रार्थना करते हैं। गङ्गाजी मनोरथ पूर्ण करती हैं। ऐसा विश्वास सभी गङ्गातटवासियो को है। सभी मङ्गलकार्य सम्पन्न होने पर गङ्गा

पुजैया होती है। अवधवासियों को एक मात्र यही मनोरथ है कि रामचन्द्र के चरणों मे अनुराग बढे। जितना अनुराग है उतने को वे थोडा मानते है।

भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू। सकल सुखद सेवक सुरधेनू॥
जोरि पानि वर माँगउ एहू। सीय राम पद सहज सनेहू॥४॥

अर्थ : भरतजी ने कहा हे सुरसरि ! तुम्हारी रेणु सब कामनाओं को देनेवाली कामधेनु है। हाथ जोडकर यही वर माँगता हूँ कि सीता राम के पद मे सहज स्नेह हो।

व्याख्या : सबने वारि की प्रशंसा की और गङ्गाजी से वरदान माँगा। भरतजी रेणु की प्रशंसा करते हैं। जो दिन रात जल से सम्बद्ध है। कहते हैं कि गङ्गाजी की रेणु सब सुख देनेवाली है और सेवक के लिए तो कामधेनु ही है। जो चाहे वह ले लो। अतः भरतजी कहते हैं कि तब आपकी क्या प्रशंसा की जाय। मै हाथ जोड़कर यह वर माँगता हूँ कि सीताराम के चरणों मे सहज अनुराग हो। जो किसी प्रकार भङ्ग न हो। इसी का विस्तार प्रयागराज से वर माँगने के प्रसङ्ग में है। यथा : जलद जनम भर सुरति विसारउ। जाचत जल पवि पाहन डारउ। चातक रटनि घटे घटि जाई। बढे प्रेम सब भाँति भलाई। यही सहज प्रेम है।

दो. एहि विधि मज्जनु भरत करि, गुरु अनुसासन पाइ।
मातु नहानी जानि सब, डेरा चले लवाइ॥१९७॥

अर्थ : इस विधि से गुरुजी को आज्ञा पाकर स्नान करके और यह जानकर कि सब माताएँ स्नान कर चुकी सबको डेरा पर लिवा ले चले।

व्याख्या : भरतजी ने गुरुजी की आज्ञा लेकर तब स्नान किया। क्योकि पुण्यकार्य की शोभा बिना गुरुपूजन के होती नही। यथा : सुकृत संभुतन विमल बिभूती। भरतजी का स्नान सबके पीछे है। देख लिया कि माता लोग भी स्नान कर चुकी। तब सबको डेरे पर लिवा ले चलें।

जह तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा। भरत सोधु सबही कर लीन्हा॥
सुर सेवा करि आयसु पाई। राम मातु पहि गे दोउ भाई॥१॥

अर्थ : लोगों ने जहाँ तहाँ डेरा डाल दिया। भरतजी ने सबकी खोज खबर ली। तत्पश्चात् देवार्चन किया। तब आज्ञा पाकर माँ के पास गये।

व्याख्या : निषादराज के सेवको ने तब तक घर तरुतर सर बाग और वन में डेरा के योग्य स्थान बना दिया। निषादराज की सम्मति के अनुसार सब लोगो ने डेरा डाल दिया। अब भरतजी की सावधानी कहते हैं कि सबकी खोज खबर ली। कौन कहाँ ठहरा हुआ है ? किसे क्या चाहिए ? यही खोज खबर लेना है। पहिला काम प्रजा संरक्षण है। सुर सेवा उसके बाद का काम है।

राजा के लिए प्रजा का रञ्जन ही सबसे बड़ी ईश्वर पूजा है। उससे समय

बचे तो देवार्चन भी करें। अत. भरतजी ने प्रजा की व्यवस्था करके सब देवार्चन किया। राजाओं मे आज भी माँ के पास जाने में आज्ञा की आवश्यकता रहती है। अतः दासियों द्वारा आज्ञा पाकर तब कौसल्या के पास दोनों भाई गये।

चरन चाँपि कहि कहि मृदु बानी। जननीं सकल भरतु सनमानी ॥
भाइहि सौंपि मातु सेवकाई। आपु निषादहि लीन्ह बोलाई ॥२॥

अर्थ : भरतजी ने सब माताओं के पैर दबाकर और मृदु वाणी कहकर उनका सम्मान किया। माता कैकेयी की सेवा भाई को सौंपकर स्वयं निषादराज को बुला लिया।

व्याख्या : आज माताएँ पैदल चली हैं। अत भरतजी सबके पैर दबाते हैं और मृदु वाणी कहते हैं। माँ! आज आपको बड़ा कष्ट हुआ। पर तीर्थाटन में पैदल चलने का ही माहात्म्य है। इत्यादि बातें भरतजी ने कहीं।

कैकेयी का त्याग किया है। यथा : तज्यो पिता प्रहलाद बिभीषन बंधु भरत महतारी। अतः उसके पास स्वयं सेवा के लिए नहीं गये। पर यह नहीं कि सेवा में त्रुटि होने पावे। इसलिए भाई शत्रुघ्न को उनकी सेवा का भार सौंपा। इस भाँति सब व्यवस्था करके तब अपने दु ख सुख की ओर दत्तचित्त हुए। अपनी जलन को कम करने के लिए निषादराज को बुला लिया।

चले सखा कर सों करजोरे। सिथिल सरीरु सनेहु न थोरे ॥
पूँछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ। नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ ॥३॥

अर्थ : सखा के हाथ से हाथ मिलाये हुए चले। शरीर शिथिल हो रहा था। क्योंकि स्नेह थोड़ा न था। सखा से पूछते हैं कि वह स्थान बतलाओ। मैं अपने नेत्र और मन की जलन को कुछ शीतल कर सकूँ।

व्याख्या : सरकार ने निषादराज से सखा का नाता मान रक्खा है। अतः भरतजी भी सखा मान रहे हैं। उनके हाथ से हाथ मिलाये चले। जहाँ चले वहाँ का स्मरण आते ही फिर पहिले की भाँति शरीर शिथिल हो चला। अतः उसी भाँति सखा का सहारा लिए हुए चले। यथा : राम सखा कर दीन्हे लागू।

वह स्थल देखना चाहते हैं जिसका वर्णन आगे करेंगे। अतः सखा से पूछते हैं। क्योंकि उसी ने सरकार का आतिथ्य सत्कार किया है। प्रयोजन यह है कि नयन और मन विरहानल से सन्तप्त हो रहे हैं। यथा : देखे बिनु रघुबीर पद जिय की जरनि न जाय। सो जलन तो सरकार के दर्शन से ही मिटेगी। पर जिस स्थान से सरकार का सम्बन्ध वनगमन के समय हुआ है उसके दर्शन से भी कुछ शान्ति होगी।

जहँ सिय रामु लखनु निसि सोए। कहत भरे जल लोचन कोए ॥
भरत बचन सुनि भयउ बिषादू। तुरत तहाँ लइ गयेउ निषादू ॥४॥

अर्थ : जहाँ सीता राम और लक्ष्मण रात को सोये थे। इतना कहते ही

नयन गोलक मे जल भर आया। भरतजी के वचन सुनकर निषाद को बडा दु ख हुआ। तुरन्त उन्हे वहाँ ले गया।

व्याख्या : अब भरतजी निषादराज से कहते हैं कि जहाँ श्री सीता रामजी तथा लखनलाल रात को सोये थे उस विश्राम स्थल का मै दर्शन करना चाहता हूँ। पृथ्वी पर ही सोये होंगे। यह बात चित्त पर चढते ही आँखो मे आँसू डबडबा आये। सरकार को सोते देखकर परिजन के साथ निषाद विकल हो गया था। यथा : सोवत प्रभुहि निहारि निषादू। भयउ सपरिजन बिकल बिषादू। अत भरतजी को उसका ध्यान बँधते ही विषण्ण होना प्राप्त ही था।

जब सरकार को सोते देखकर निषाद विकल हुआ तो लखनलाल ने उसे समझाया। लक्ष्मण गीता का उपदेश किया। उसका विषाद जाता रहा। दूसरो को विषादत्याग का उपदेश देने लगा था। यथा : अब सुमत परिहरहुँ बिषादू। सो भरतजी का वचन सुनकर उसे फिर विषाद हो गया। वह तुरन्त भरतजी को वहाँ ले गया। जिसमे जितनी जल्दी इनका ताप कम हो उतना ही अच्छा है।

दो जहँ सिसुपा पुनीत तरु, रघुबर किय बिश्रामु।
अति सनेह सादर भरत, कीन्हेउ दड प्रनामु ॥१९८॥

अर्थ : जिस अशोकवृक्ष के नीचे रामजी ने विश्राम किया था वहाँ भरतजी ने अत्यन्त आदर और स्नेह के साथ दण्डवत् प्रणाम किया।

व्याख्या : वह स्थल तीर्थपूत हो गया था। यथा : जेहि तरु तर प्रभु बैठहि जाई। करहि कल्पतरु तासु बडाई। और उस वृक्ष के नीचे तो सरकार सोये थे। उसके तीर्थ होने मे सन्देह ही क्या ? जिसकी कृपा से मनुष्य विश्राम का पात्र होता है। यथा : जाकी कृपा लवलेस ते मतिमद तुलसीदास हूँ। पायेउ परम विश्राम राम समान प्रभु नाही कहूँ। उस महाप्रभु ने जिस स्थल मे विश्राम पाया उसकी क्या महिमा कही जाय। इसलिए भरतजी ने उस स्थल को अत्यन्त स्नेह और आदर के साथ दण्डवत् प्रणाम किया।

कुस साँथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनाम प्रदच्छिन जाई॥
चरन रेख रज आँखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई ॥१॥

अर्थ : कुश की सुन्दर चटाई को देखकर जाकर के प्रणाम किया और प्रदक्षिणा की। चरण की रेखाओ के रज को आँखो मे लगाया। प्रीति की अधिकता कहते नही बनती।

व्याख्या : सरकार के शृंगवेरपुर आने के समय कह चुके हैं : गुह सँवारि साँथरी डसाई। कुस किसलयमय मृदुल सोहाई। सो वह साथरी आज तक जैसी की तैसी पडी है। जनसबाधवर्जित देश मे वस्तु ज्यो की त्यो पडी रह जाती है। अतः भरतजी ने उस सुन्दर साथरी का दर्शन किया। देखते ही भरतजी समझ गये कि

यही सरकार की शय्या रही है। अत सन्निकट जाकर प्रणामपूर्वक प्रदक्षिणा की जिस भाँति देवताओ की प्रदक्षिणा की जाती है।

उसी साथरी के निकट चरण चिह्न थे। ध्वज कुलिश अङ्कुश कञ्ज के स्पष्ट चिह्न को देखकर भरतजी पहिचान गये कि ये सरकार के चरण चिह्न हैं। चिह्न गम्भीर रेखा के है। अत अब तक स्पष्ट बने हैं। भरतजी सरकार के चरण चिह्न पहिचानते है। जगदम्बा जानकीजी के चरण चिह्न नही पहचानते। क्योकि पलग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पद अवनि कठोरा। पूज्य चरणो के चिह्न भी पूज्य है और प्रिय हैं। अत उनकी धूलियो को आँखो म लगाते है आँखो की जलन कम करने के लिए। यथा नेकु नयन मन जरनि जुडाऊ। उसके स्पर्श से प्रीति ऐसी बढी कि कवि वर्णन करने मे अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं।

कनक बिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीय सम लेखे ॥
सजल बिलोचन हृदय गलानी। कहत सखा सन बचन सुबानी ॥२॥

अर्थ दो चार सोने के घुँघुरू अथवा सलमा सितारा देखे। सीताजी के समान समझकर सिर पर रख लिया। आँखो मे आँसू और हृदय मे ग्लानि आयी। सखा से सुन्दर वाणी बोल।

व्याख्या रामजी और लक्ष्मणजी तो मुनि वेष म थे। परन्तु भगवती वसिष्ठजी की आज्ञा से राजवेष मे ही थी। उनके साथरी के निकट दो चार सोने के घुँघुरू गिरे हुए थे। अत भरतजी ने तुरन्त जान लिया कि ये भगवती के हैं। अत उन्हे सीताजी के समान जानकर उन्हे सिर पर रख लिया। उनका पृथ्वी पर पडा रहना सहन न कर सके। भरतजी को शृङ्गवेरपुर मे लक्ष्मण राम और जानकीजी तीनो व्यक्तियो से मिलने का सुख हुआ। रामजी से मिलने का सुख यथा राम-घाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भे मनु मगनु मिले जनु रामू। लक्ष्मणजी से मिलने का सुख यथा करत दडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ। मनहु लखन सन भेंट भइ प्रीति न हृदय समाइ। सीताजी से मिलने का सुख यथा राखे सीस सीय सम लखे।

अब भरतजी की दशा कहते हैं। तन की दशा सजल बिलोचन। मन की दशा हृदय गलानी। वचन की दशा कहत सखा सन बचन सुबानी। घुँघुरुओ ने सीताजी के भी साथरी की याद दिला दी। सरकार क साथरी शयन के दु ख से भी अधिक दु ख सीताजी के साथरी शयन से भरतजी को हुआ। अत सखा से बोले।

श्रीहत सीय बिरह दुतिहीना। जथा अवध नर नारि बिलीना ॥
पिता जनक देउँ पटतर केही। करतल भोग जोग जग जेही ॥३॥

अर्थ ये घुँघुरू भी सीताजी के विरह स ऐसे कान्ति हीन हो गये हैं जिस भाँति रामजी के विरह से अवधवासी निस्तेज हो गये है। इनके पिता महाराज जनक की उपमा किससे दूँ। ससार म योग और भोग दोनो जिनकी मुट्ठी मे हैं

व्याख्या उन कनकबिन्दु के उठाने के समय भरतजी कहते हैं कि ये श्रीहत हो गये हैं। इनकी श्री तो तब थी जब कि ये जगदम्बा के शरीर के साथ थे। मानो इन्हे भी सीताजी के विरह का दुःख है। पहिल ये विनती भी कर चुके हैं। यथा नूपुर मधुर मुखर कवि बरनी। मनहु प्रेमबस बिनती करही। हमहि सीय पद जनि परिहरही। अब उदाहरण देते हैं कि जैसे रामजी के विरह से अवधवासी श्रीहीन हो गये है। भाव यह कि रामविरह से अवधवासी श्रीहीन और सीताजी के विरह से कनकबिन्दु श्रीहीन हैं। यहाँ बिलीन और दुतिहीन शब्द समानार्थक है।

स्त्रियो की महिमा चार प्रकार से होती है १ पिता के प्रभाव से २ श्वसुर की महिमा से ३ पति के उत्कर्ष से और ४ अपने गुणो से। अत पहिल पिता का वर्णन भरतजी करते हैं। महाराज तो अनेक हैं। पर जनकजी का जोडी कोई नही। जहाँ योग है वहाँ भोग नही। जहाँ भोग है वहाँ योग नही है। योग भाग की युग पत् स्थिति ईश्वरकोटि म ही देखी जाती है। जीवकोटि मे केवल जनकजी ही ऐसे हैं जहाँ दोनो दिखायी पडते हैं।

ससुर भानुकुल भानु भूआलू। जेहि सिहात अमरावतिपालू ॥
प्राननाथु रघुनाथ गोसाई। जे बड होत सो राम बडाई ॥४॥

अर्थ जिसके श्वसुर सूर्यकुल के सूर्य हैं जिससे अमरावती के राजा इन्द्र भी ईर्ष्या करते है। जिनके प्राणनाथ स्वामी रामजी हैं। जो कोई बडा होता है वह उन्ही की बडाई से होता है।

व्याख्या पिता का वर्णन करके श्वसुर का वर्णन करते हैं कि एक तो सूर्य कुल बडा। उनम भी वे सूर्य। तिस पर राजा। तेज और ऐश्वर्य दोनो से सम्पन्न। यथा अवधराजु सुरराजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनद लजाई। भाव यह कि जो सुख इन्द्र को अमरावती मे नही वह सुख महाराज दशरथ अवध मे कर रहे हैं। इसलिए इन्द्र लज्जित हैं। सासारिक सुख की पराकाष्ठा इन्द्र सुख ही है। सो भी महाराज दशरथ के भोग के जोड का नही। अवधवासियो को सुरदुर्लभ सुख है। यथा सुरदुर्लभ सुख सदन बिहाई। ऐसे महाराज दशरथ की पुत्रवधू सीताजी हैं।

श्वसुर का वर्णन करके पति का वर्णन करते है कि वे तो रघुकुल के नाथ हैं। तिस पर गोसाईं है। अर्थात् हृषीकेश हैं हृषीकेस सुनि नाउँ जाउँ बलि अति भरोस जिअँ मोरे। तुलसिदास यह जीव सृखला छुटिहि तुम्हारेहि छोरे। अर्थात् रामजी स्वय बन्ध मोक्षप्रद सर्व पर माया प्ररक सीव हैं। मुख्य बडाई उन्ही मे है। दूसरे तो उनकी बडाई पाकर बडे होते हैं। बिधिहि बिधिता हरिहि हरिता हरहि हरता जिन दई। सो जानकी पति मधुर मूरति मोद मय मगल मई।

दो पति देवता सुतीय मनि, सीय साँथरी देखि।
बिहरत हृदय न हहरि हर, पबि तें कठिन बिसेखि ॥१९९॥

अर्थ पतिव्रता भली स्त्रियों में मणि सीताजी की कुशशय्या देखकर मेरा हृदय हे हर ! फट नहीं जाता। यह वज्र से भी अधिक कठोर है।

व्याख्या अब स्वयं भगवती के गुण कहते हैं कि ये तो साक्षात् पार्वती सी पतिव्रता हैं। यथा पति देवता सुतीय मनि मातु प्रथम तव रेख। यहाँ पति देवता सुतीय मणि कहकर वही बात कही। उक्त विशेषण से पतिप्रिया भी कहा। यथा : पारवती सम पतिप्रिय होहूँ। जिनमें ऐसे अलौकिक गुण हैं उन्हें साथरी पर सोना पड़ा और यह दुःख उन्हें मेरे कारण हुआ। भरतजी शङ्कर को स्मरण करके कहते हैं कि मेरे हृदय को तो फट जाना चाहता था। शङ्कर के स्मरण का भाव यह है कि ये दूसरे के दुःख दूर करने के लिए विषपान करनेवाले हैं। मेरा हृदय वज्र से भी कठिन है जो अब भी नहीं फटता। भावार्थ यह कि हर इस दुःख को हरण करें।

लालन जोगु लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने ॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहिं प्रानपिआरे ॥१॥

अर्थ छोटे लोने लखनलाल लाड़ प्यार के योग्य हैं। ऐसे भाई न हुए, न हैं, न होनेवाले हैं। पुरवासियों को प्रिय माता पिता के दुलारे और रामजानकी को तो प्राण से प्यारे हैं।

व्याख्या लक्ष्मणजी की साथरी नहीं देखी। इससे भरतजी समझ गये कि लक्ष्मणजी नहीं सोये। सरकार का पहरा देते थे। अतः कहते हैं कि लक्ष्मणजी पहरा देने योग्य नहीं हैं। लाड़ प्यार के योग्य हैं। छोटे भाई हैं। पुत्र के समान हैं। सुन्दर सलोने हैं। पहरा इन्हें शोभा भी नहीं देता। इतिहास पुराण में भी ऐसे भाई सुनने को नहीं मिले जो राज्य छोड़कर भाई के साथ वन चला जाय। इस समय भी लक्ष्मण से भाई कहाँ हैं और भविष्य में भी सम्भावना नहीं। क्योंकि द्वापर में में तो सत्त्वगुण स्वल्प होता है। कलियुग में तो नाम मात्र शेष रह जाता है। उनमें ऐसे भाइयों के होने की कौन सी आशा है ?

लक्ष्मणजी में गुण ही ऐसे हैं कि सब कोई इनका सम्मान करता है। भाईपन जो इनका है वह तो आँख के सामने है। प्रजापालक भी ये ऐसे हैं कि पुरजन को प्रिय है। मातृ पितृ भक्ति ऐसी है कि पितु मातु दुलारे हैं। अर्थात् सभी लखनलाल का मुँह जोहते हैं। रामजानकी के तो परम प्रिय हैं। भाव यह कि जन्म से इनकी लालना सब ओर से होती आयी है। इन्हें कभी कष्ट का सामना ही नहीं पड़ा।

मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। तात बाउ तन लाग न काऊ ॥
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। निदरे कोटि कुलिस एहि छाती ॥२॥

अर्थ : मूर्ति कोमल है। स्वभाव सुकुमार है। गरम हवा कभी शरीर में लगी नहीं। वे वन में सब भाँति विपत्ति सहते हैं। इस मेरी छाती ने कोटि वज्रों का निरादर किया।

व्याख्या जैसे शरीर सुकुमार होने से शीतोष्ण सहने म असमर्थ हैं उसी भाँति सुकुमार स्वभाव होने से किसी की बात सह नही सकते। जन्म से ऐसे दुलार मे पल हैं कि गरम हवा शरीर मे कभी लगी नही। इस गरमी म क्या वह अयोध्या मे घर के बाहर निकलने पाते।

आज वे वन म जहाँ गरमी से बचने के लिए कोई त्राण नही है और भयानक लू बहा करती है वहाँ सब प्रकार की विपत्ति सहन कर रहे हं और कहाँ तक कहे साते भी नही। रात दिन पहरा दे रहे हैं इससे स्पष्ट है कि यह ज्येष्ठ का समय है और यह सब मेरे कारण हो रहा है। अत मेरी छाती फट जानी चाहिए। पर वह नही फटती। उसके सामने कोटिवज्र भी कुछ नही है।

राम जनमि जगु कीन्ह उजागर। रूप सील सुख सब गुन सागर॥
पुरजन परिजन गुर पितु माता। राम सुभाउ सबहि सुखदाता॥३॥

अर्थ रामजी ने जन्म लेकर सारे जगत् को उज्ज्वल कर दिया। वे रूप शील सुख सब गुणो की खानि है। पुरवासी कुटुम्बी गुरु पिता और माता सभी को राम का स्वभाव सुख देनेवाला है।

व्याख्या पुण्य का फल सुख और पाप का फल दु ख है। सो रामजी सा पुण्य किसका हो सकता है जिसक जन्म स ही ससार म उजेला फैल गया। यथा भुवन कोटि कल्यान कद जायो पूत कौसिल्या रानी। चारो भाई रूप शील और गुण के धाम है। उनमे भी रामजी अधिक सुख सागर हैं। यथा चारिउ रूप सील गुन धामा। तदपि अधिक सुख सागर रामा। यहाँ सुख सागर के गुणाधिक्य का वर्णन करते हुए भरतजी कहते है रामजी का स्वभाव ही ऐसा पुण्यमय है कि उससे प्रजा कुटुम्बी गुरु पिता और माता का सुख उपजता है। यथा अस सुभाउ कहुँ सुनौ न देखौ। केहि खगेस रघुपति सम लखौं।

बैरिउ राम बडाई करही। बोलनि मिलनि बिनय मन हरही॥
सारद कोटि कोटि सत सेखा। करि न सकहि प्रभु गुन गन लेखा॥४॥

अर्थ शत्रु भी रामजी की बडाई करते है। उनका बोलना मिलना और विनय मन का हरण कर लता है। कोटि कोटि शत शेष आदर के साथ प्रभु के गुणगान की लखा नही कर सकते।

व्याख्या स्वभाव का सौष्ठव कहाँ तक कहा जाय। इतने से ही समझ लना चाहिए कि वैरी भी रामजी की बडाई करते है। क्याकि रामजी का स्वभाव उनक भी प्रतिकूल नही पडता। यथा जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। रामजी के बालने मिलन और विनय से उनका भी मन हरण हो जाता हैं। यहाँ वैरी से कुल वैरी अभिप्रेत है। महाराज चक्रवर्तीजी कहते हैं सेवक सचिव सकल पुरबासी। जे हमरे अरि मित्र उदासी। सबहि राम प्रिय जेहि बिधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि साही। नियम यही है कि वैरी सदा निन्दा ही करते हैं।

क्योंकि वे गुण को नहीं देख सकते। यथा : बैर अन्ध · प्रेमहि न प्रबोधू। पर सरकार के गुण ऐसे हैं कि अन्ध भी बिना अनुभव किये नहीं रह सकता।

यद्यपि प्राचीन पाठ सादर सेष है। परन्तु ठीक पाठ सारद सेष है। लेखक के प्रमाद से सारद के स्थान पर सादर लिख गया। शारदा वाग्देवता हैं। जितना वाग्व्यवहार है सो उन्हीं की कृपा से चालू है। अत उनसे बढ़कर लेखा करनेवाला स्वर्गादि लोकों में कौन है और अति बुद्धिमान् शेषजी को सहस्र शीष हैं और प्रत्येक मुख में दो दो जिह्वा हैं। अत. वर्णन को इससे अधिक सामग्री किसी के पास हो नहीं सकती। ये पाताल के वक्ता हैं। सो दोनों लोकों के प्रधानवक्ता कोटि सख्या में प्रभु के गुणों को लेखा करना चाहें तो कर नहीं सकते। क्योंकि सरकार के गुणों का अन्त ही नहीं। जलसीकर महि रज गनि जाहीं। रघुपति गुन नहिं बरनि सिराहीं।

दो. सुख सरूप रघुबंस मनि, मंगल मोद निधान।
ते सोवत कुस डारि महि, बिधि गति अति बलवान ॥२००॥

अर्थ : रघुकुलमणि रामजी सुखस्वरूप ही हैं। मङ्गल और आनन्द के निधान हैं। वे पृथ्वी पर कुश बिछाकर सोते हैं। तो विधाता की गति अति बलवती है।

व्याख्या : श्रीरामजी तो सुख के स्वरूप ही हैं। मङ्गल और मोद के निधान हैं। यथा : जो आनद सिंधु सुख रासी। सीकरते त्रैलोक्य सुपासी। मगल भवन अमगल हारी। द्रवहु सो दसरथ अजिर बिहारी। अर्थात् आनन्दमङ्गल के स्रोत हैं। भूपति भवनु सुभाय सुहावा। सुरपति सदन न पटतर आवा। मनिमय रचित चारु चौबारे। जनु रतिपति निज हाथ सँवारे। सुभग सुरभि पयफेन समाना। कोमल कलित सुपेती नाना। पलग मजु मनि दीप जहँ सब बिधि सकल सुपास। ऐसे सुख सामग्री के साथ शयन करनेवाले वे कुशा बिछाकर पृथ्वी पर सोते हैं। तो यहाँ यही कहना पड़ता है कि विधि की गति ही बड़ी बलवती है। जो अचिन्त्य कार्य बिना कारण के कर डालती है।

राम सुना दुखु कान न काऊ। जीवन तरु जिमि जोगवइ राऊ ॥
पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती। जोगवहिं जननि सकल दिन राती ॥१॥

अर्थ : रामजी ने कभी कान से भी दु ख नहीं सुना। चक्रवर्तीजी जीवनवृक्ष की भाँति रक्षा करते थे। जैसे पलक आँखों की और सर्प मणि की रक्षा करता है। उसी भाँति माताएँ रक्षा करती थीं।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी को आज्ञा थी कि कुमार रामभद्र बड़ा करुणाकर तथा वैराग्यवान् हैं। उसके पास कोई दु ख का समाचार न पहुँचने पावे। दु ख के दृश्य देखने की बात तो दूर है। इसलिए रामजी ने कभी कान से भी दु ख नहीं सुना। ऐसी जनश्रुति है कि किसी किसी का प्राण किसी वृक्ष में बसता है। उसके हरे रहने से वह स्वस्थ रहता है। मुरझाने से रुग्ण होता है और सूखने से मर जाता

है। एतद्विषयिणी अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। अतः प्राणपन से उस जीवन तरु की लोग रक्षा करते थे। क्योंकि उनका जीवनाधार वह वृक्ष था। महाराज चक्रवर्ती के जीवनवृक्ष रामजी थे। उसी भाँति वे उनकी रक्षा करते थे। यथा : सब सुत मोहि प्रिय प्रान की नाईं। राम देत नहिं बनै गोसाईं।

केवल कौसल्याजी ही नही बल्कि सब माताएँ दिन रात बडी सावधानी और प्रेम से रक्षा करती थी। जैसे पलक गोलक की रक्षा दिन रात करता है। कोई आघात आ जाने पर अपने ऊपर उसे ले लेता है। इतने से काम न चला। इसलिए फणिमणि से उपमा दी। क्योंकि फणि : सर्प मणि के पास किसी गैर को आने नही देता और बलप्रदर्शन करनेवाले को यमलोक पहुँचा देता है। इसी भाँति जननी भी रामजी की रक्षा करती थी। अथवा जागृतावस्था की उपमा पलक नयन से है और सुषुप्तावस्था की उपमा फणिमनि से है। अथवा रामजी की रक्षा की उपमा पलक नयन से है और जानकीजी की रक्षा की उपमा फणिमणि से है। यथा सुदर बधुन्ह सास लै सोई। फनिकन्ह जिमि निज मनि उर गोई।

ते अब फिरत बिपिन पदचारी। कद मूल फल फूल अहारी॥
धिग कैकेई अमंगल मूला। भइसि प्रान प्रियतम प्रतिकूला॥२॥

अर्थ · वे अब पैदल जङ्गल मे घूमते है और कन्द मूल फल और फूल खाते हैं। अमङ्गल की मूल कैकेयी को धिक्कार है जो अपने प्राणप्रियतम के प्रतिकूल हो गयी।

व्याख्या : राजमहल के बाहर आँख के ओट जाने देने मे जिसके इतना कडा पहरा रहता था। सवारी की इतनी बडी व्यवस्था थी। दुःख का दृश्य जिसके सामने आने नही पाता था और न दुःख के समाचार सुनने पाते थे। वे रामजी अब जङ्गल मे घूमते है। उरपहिं धीर गहन सुधिआएँ। और वहाँ भी पैदल घूमते हैं। यथा बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ। सकर साखि रहेहुँ एहि घाएँ। अन्न का अधिकार नही। नही तो जङ्गल को ही मङ्गल बना दिया जाता। सब कुछ यही प्रस्तुत कर दिया जाता। जिस भाँति राजा लोग मृगया के लिए जगल मे जाते हैं उसी भाँति वनवास मङ्गलमय हो जाता। आज सब कुछ रहते किसी को सुख देने का सामर्थ्य नही।

उस सामर्थ्य की हरण करनेवाली कैकेयी को धिक्कार है। यही अमङ्गल की मूल है। मेरे घर मे अमङ्गल इसी के कारण हुआ। स्त्रियो के लिए पति ही सब कुछ है। यथा : मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। सुत सुदर सुसील सुखदाई। जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते। तनु धनु धाम धरनि पुर राजू। पति विहीन सब सोक समाजू। भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस ससारू। सो यह अपने प्राणप्रियतम महाराज चक्रवर्ती के प्रतिकूल हो गयी। अथवा जीव जन्तु असको जग माँही। जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाँही। मे अति

अहित रामु तेउ तोही। को तू अहसि सत्य कहु मोही। सबको रामजी प्राणप्रियतम हैं। उनसे भी प्रतिकूल हो गयी।

मैं धिग धिग अघ उदधि अभागी। सबु उतपातु भयउ जेहि लागी ॥
कुल कलंकु करि सृजेउ बिधाता। साँइ दोह मोहि कीन्ह कुमाता ॥३॥

अर्थ : मुझ पापसिंधु भाग्य रहित को धिक्कार है। जिसके लिए ये सब उत्पात हुए। विधाता ने मुझे कुलकलङ्क पैदा किया और कुमाता ने मुझे स्वामि-द्रोही कर दिया।

व्याख्या : कैकेयी भी प्राणप्रियतम के प्रतिकूल पुत्र स्नेह के कारण हुई। अत: भरतजी अपने को धिक्कार देते हैं। मै पापसिन्धु हूँ। क्योंकि दुर्यश बिना पाप के नही होता। मैं ऐसा अपयश भाजन पैदा हुआ। अत: अघउदधि हूँ और अभागी हूँ। भाग्यदोष से यह सब उत्पात मेरे लिए हुआ। अथवा सब उत्पात का मूल कारण होने से मैं अभागी हूँ। भवभञ्जन श्रीरामजी के विमुख होने की परिस्थिति आ पड़ी। काई कुमति कैकयी केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी। चक्रवर्तीजी का स्वर्गवास और राम वनवास संक्षेपतः ये ही दोनों विपत्तियाँ हैं। भरतजी राज्य मिलने पर अपने को अघउदधि और रामजी के वनवास से अपने को अभागी मानते हैं। अथवा माताओं के विधवापन का कारण मानते हुए अपने को अभागी कहते हैं। यथा : को त्रिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी। मोर जनम रघुवर बन लागी। व्यर्थ काह पछिताउँ अभागी।

भरतजी कहते हैं कि ब्रह्मा ने ही मुझे कुल का कलङ्क बनाकर सिरजा। क्योंकि मैं अपयश भाजन हुआ और प्रियजन द्रोही हुआ और स्वामिद्रोह तो मुझे कुमाता के प्रसाद से प्राप्त हुआ। कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति। जो अपने पुत्र को भगवद् द्रोही बनावे अपयश का भाजन बनावे वही कुमाता है।

सुनि सप्रेम समुझाव निपादू। नाथ करिअ कत बादि बिषादू ॥
राम तुम्हहि प्रिय तुम्ह प्रिय रामहि। यह निरजोसु दोसु बिधि बामहि ॥४॥

अर्थ : सुन करके प्रेम के साथ निषादराज समझाते हैं कि हे नाथ! आप व्यर्थ विषाद क्यों करते हैं। रामजी तुम्हें प्रिय है और रामजी को तुम प्रिय हो। इसमें वाम विधि का ही सच्चा : निखालिस दोष है।

व्याख्या : जब स्वामी को सेवक प्रिय है और सेवक स्वामी प्रिय है तब स्वामी द्रोही की बात कहाँ से आयी? यहाँ पर तो निरकेवल दोष वाम विधि का है और स्थलों पर तो कुछ करणी कुछ कर्म गति मिलकर ही कार्य होता है। यहाँ तो करणी कुछ भी नही केवल कर्मगति काम कर रही है।

प्रेमी को प्रेम से ही सब समझाया जाता है तब वह समझता है नही तो नहीं समझता। अत: भरतजी को निपादराज प्रेम से समझा रहे हैं। प्रेम का पंथ ही

ऐसा है। निषादराज भरतजी से कहते हैं कि आप का विषाद व्यर्थ है। न उसके लिए कोई कारण है और न फल ही है।

छं. विधि वाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी।
तेहि राति पुनि पुनि करहि प्रभु सादर सरहना रावरी॥
तुलसी न तुम सों राम प्रीतम कहत हौ सौहै किये।
परिनाम मंगल जानि अपने आनिये धीरजु हियें॥

अर्थ : विधि वाम की करणी बडी कठिन है जिसने माता को पागल बना दिया। उस रात मे प्रभु बार बार तुम्हारी सराहना करते थे। तुलसीदासजी कहते हैं कि रामजी को तुमसे अधिक प्रियतम कोई नही है। मै इस बात की शपथ लेकर कहता हूँ। परिणाम मे मङ्गल जानकर अपने हृदय मे धैर्य धारण कीजिये।

व्याख्या : वाम विधि की करणी बडी कठिन होती है। वह स्वभाव ही पलट देती है। यथा : भयउ बाम विधि फिरेउ सुभाऊ। माता ऐसी थी नही और न अब ऐसी है। बीच मे ही अकस्मात् उसके स्वभाव मे घोर परिवर्तन हो गया। जैसे कोई पागल हो जाता है। आप विचार कर देखिये।

कैकयी करी धौ चतुराई कौन।
राम लखन सिय बनहि पठाए पति पठए सुरभौन॥१॥
कहा भलो धौं भयो भरत को लगे तरुनतन दौन।
पुरबासिन्ह के नयन नीर बिनु कबहुँ तो देखति हौन॥२॥
कौसल्या दिनरात बिसूरति बैठि मनही मन मौन।
तुलसी उचित न होइ रोइबो प्रान गए सँग जौन॥३॥

सुमति कुमति मे परिवर्तित हो गयी। हिताहित परिज्ञान शून्य हो गयी : चरइ हरित तृन बलि पसु जैसे। अपने होश मे कैकेयी ने कुछ नही किया। अत: मै उनका कुछ दोष नही मानता। प्रभु के हृदय मे भी कुछ नही है। वे आप पर सन्देह नही करते। जिस रात को यहाँ ठहरे थे। बार बार आपकी प्रशसा करते थे। निषादराज भरतजी के आश्वासन के लिए शपथ लेते है कि रामजी को तुमसे अधिक प्रियतम कोई नही है। क्योकि जब पहिले पहल साथरी पर सोये तो वह समय कटु कहने का था सो आप की प्रशसा कर रहे थे। सरकार जहाँ जाते थे भरतलाल की भूरि भूरि प्रशसा करते थे। जिसमे उनकी कीर्ति को कलङ्कपङ्क स्पर्श न कर सके।

इस समय तो अमङ्गल हो ही गया। पर परिणाम में मङ्गल होगा। यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्। तत्सुख सात्त्विक प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्। जो सुख प्रारम्भ मे विष की भाँति होता है। पर परिणाम उसका अमृत के समान होता है। वही सात्त्विक सुख है। वह आत्मबुद्धि के प्रसाद से प्राप्त होता है। अत: परिणाम मे सात्त्विक सुख की प्राप्ति होगी। इस बात को मन मे लाकर अधीर न होइये। हृदय मे धैर्य को स्थान दीजिये।

दो अंतरजामी रामु, सकुच सप्रेम कृपायतन ।
चलिअ करिअ बिश्रामु, एह बिचार दृढ आनि मन ॥२०१॥

अर्थ रामजी अन्तर्यामी है। सङ्कोच प्रेम और कृपा के आयतन हैं। ऐसा विचार मन मे दृढ करके चलिये। विश्राम कीजिये।

व्याख्या निषादराज कहते हैं कि रामजी अन्तर्यामी है। उनसे कुछ छिपा नही है। यथा *तुमते कछु न छिपी करुनानिधि तुम हो अंतरयामी। भीतर की बात* सब जानते हैं। तब निर्दोष को भय क्या ? तिस पर सङ्कोची स्वभाव है। यथा कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची। रामजी कभी शील नही तोडेंगे। बात बनी बनायी समझिये। प्रेमी हैं। आप के सामना की देर है। प्रेम रोके न रुकेगा। कृपायतन हैं। आपको दुखी देखकर कृपा करेंगे। इस भाँति चार कारण धैर्य धरने का देकर निषादराज कहते हैं कि बहुत देर हो गयी। आप चलकर विश्राम करिये। जो कारण मैंने दिये हैं। उन्हे आप भी जानते हैं। पर उन्हे दृढ रूप से मन में स्थान नही देते हैं इसलिए व्यर्थ विषाद कर रहे हैं।

सखा बचन सुनि उर धरि धीरा। बास चले सुमिरत रघुबीरा ॥
एह सुधि पाइ नगर नर नारी। चले बिलोकन आरत भारी ॥१॥

अर्थ सखा का वचन सुनकर हृदय मे धैय धारण किया और रामजी को स्मरण करते डेरे पर चले। यह खबर पाकर अवध के नर नारी अत्यन्त आर्त होकर देखने चले।

व्याख्या सखा का वचन सुनकर धैर्य धारण किया। समझते हैं कि यह अन्यथा नही कहेगा। सुत की प्रीति प्रतीत मीत की। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि प्रीति तो बेटे पर होती है। परन्तु विश्वास तो मित्र का ही होता है। सखा ने कहा चलिअ करिअ बिश्राम। अत रघुवीर का स्मरण करते डेरे पर चले। भाव यह कि रघुवीर हैं। सब सङ्कटो के सामना करने म समर्थ हैं। सखा के वचनानुसार विचार को दृढ करने के लिए रघुवीर का स्मरण करते हैं।

जैसा श्रेष्ठ पुरुष आचरण करता है वैसा ही दूसरे भी आचरण करते हैं। वह जो प्रमाण करता है ससार उसी का अनुसरण करता है। खबर फैल गयी कि भरतजी शयनस्थान के दर्शन के लिए गये हैं। अब सब अयोध्यावासी शयनस्थान के दर्शन के लिए आर्त हो उठे कि भरतजी चल गये हम लोगों को नही ले गये। अथवा उनके भी नयन मन म जरनि है। उस शीतल करने के लिए चले।

परदछिना करि करहिं प्रनामा। देहिं कैकइहि खोरि निकामा ॥
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं। बाम बिधातहि दूषन देहीं ॥२॥

अर्थ प्रदक्षिणा करके प्रणाम करते हैं और कैकेयी को अत्यन्त दोष देते है। आँखो म आँसू बार बार आ जाता है और वाम विधि को दोष देते हैं।

व्याख्या : जिस भाँति भरतजी ने जाकर कुश साथरी की प्रदक्षिणा की थी और प्रणाम किया था उसी भाँति सारे अयोध्यावासी प्रदक्षिणा करके प्रणाम करते हैं। उन्हे भी साथरी देखकर विषाद होता है। अतः वे सब कैकेयी की निन्दा करते हैं कि यह सब अनर्थ केवल इसी के दोष से हुआ।

अत्यन्त दुःख से आँखो मे जल भर आता है। सोचते हैं कि क्या घाटा रहा। जङ्गल मे ही सब भोग की सामग्री जुट जाती। सब कुछ रहते कुछ करते नही बन रहा है। अतः वाम विधाता को दोष देते हैं। जिसके कारण कैकेयी के स्वभाव ने पलटा खाया। नही तो कैकेयी बड़ी शीलवती थी।

एक सराहहिं भरत सनेहू। कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू ॥
निंदहि आपु सराहि निषादहिं। को कहि सकइ बिमोह बिषादहि ॥३॥

अर्थ : कोई भरतजी की प्रशसा करते है। कोई कहते है कि स्नेह का निर्वाह तो चक्रवर्तीजी ने किया। अपनी निन्दा और निषाद की सराहना करते हैं। विमोह के विषाद को कौन कह सकता है।

व्याख्या : कोई भरतजी के स्नेह की प्रशसा करता है कि इन्ही के प्रेम से रामजी के दर्शन की आशा है। अथवा इसलिए प्रशसा करते हैं कि उनके कारण से साथरी का दर्शन हुआ। हम लोग तो सोच भी नही सकते थे। भरतजी का ऐसा प्रेम है कि सरकार के इस चिह्न को खोजकर निकाला। कोई चक्रवर्ती जी के स्नेह के निर्वाह की प्रशसा करते हैं कि सत्य के पास में बँधकर यद्यपि रामजी को वन दिया पर शरीर का परित्याग करके स्नेह का भी भलीभाँति निर्वाह किया। यथा : नेह निबाहि देह तजि दसरथ कीरति अचल चलाई। वे लोग कहते है कि प्रेम का पन्थ ही ऐसा कठिन है कि निवह जाय तब जान पडे कि प्रेमी हैं। सो राजा की निबह गयी और किसी से प्रेम निबाहते न बना। भरतजी भी धर्म से बँधे हैं। देखें यह कैसे नेह का निर्वाह करते हैं।

अयोध्यावासी अपनी निन्दा करते हैं कि हम लोग सम्पत्ति के साथी हैं। निषादराज की प्रशसा करते हैं कि यह विपत्ति का साथी है। जन्म से हमारा साथ था। सो हम मे उतना प्रेम नही जितना निषादराज मे है। बात फैल गयी कि कुटुम्ब के साथ मरने को तैयार था। हम लोग मरने को तैयार नही हुए। माधुर्य मे विषाद बढा। अतः विमोह कहते हैं। साथरी देखने से अवधवासियो को करुणा उमड़ आयी। शोक और मोह ये ही दो ससारवृक्ष के बीज है। परन्तु ये ही भगवत्सम्बन्धी होने से कल्याण के हेतु हो गये।

एहि बिधि राति लोगु सबु जागा। भा भिनुसार गुदारा लागा ॥
गुरहि सुनाव चढ़ाइ सोहाई। नई नाव सब मातु चढ़ाई ॥४॥
दंड चारि महँ भा सबु पारा। उतरि भरत तब सबहिं सँभारा ॥५॥

अर्थ . इस भाँति रात भर सब लोग जागते रहे। सवेरा होते ही गुदारे की

नाव लग गयी। पहिले अच्छी और सुन्दर नाव पर गुरुजी को चढाया। नयी नावो पर माताओ को चढाया। चार घडी में सब पार हो गये। तब भरतजी उतरकर सबको सँभालने लगे।

व्याख्या इस भाँति रोते गाते रात बीती। करुणा से किसी को नीद न आयी। केवल कैकेयी भरत चक्रवर्तीजी और निषादराज की ही चर्चा होती रही। उधर निषादराज का इन्तजाम है। सवेरा होते ही नावें आकर घाट पर लग गयी। सुन्दर और मजबूत नाव पर पहिले गुरुजी का चढाया। सभी मङ्गलयात्रा में गुरुजी की ही सवारी पहिले निकलती है अरुधती अर अगिन समाजू। रथ चढि चलत भये मुनिराजू। इसलिए एक नाव केवल गुरुजी के लिए है। माताओ को नयी नावो पर चढाया जिसमे भीतर जल आने का भय न रहे। भरतजी सबके पीछे उतरे। सेना बडी थी इसलिए कई खेवा करना पडा। चार घडी म सब पार हो गये। टिकने के समय भी • भरत साध सबही कर लीन्हा और उतरने पर भी उतरि भरत तब सबहि सँभारा।

दो. प्रात क्रिया करि मातु पद, बदि गुरहि सिरु नाइ।
आगे किये निषाद गन, दीन्हेउ कटकु चलाइ ॥२०२॥

अर्थ • प्रात काल की क्रिया करके माता के चरणो की वन्दना करके गुरुजी को सिर नवाया और निषादगण को आगे करके सेना का कूच बोल दिया।

व्याख्या • उस पार उतरकर प्रात काल का कृत्य किया। तब माता की वन्दना पश्चात् गुरु की वन्दना की। आगे का रास्ता निषादगण का देखा है। अत उन्ही को आगे कर दिया और सेना चल पडी। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। ऐसा वेद की आज्ञा है। अत माता का चरण वन्दन करके तब गुरुजी की वन्दना की।

कियेउ निषादनाथु अगुआई। मातु पालकी सकल चलाई॥
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा। विप्रन्ह सहित गवन गुर कीन्हा ॥१॥

अर्थ • निषादराज ने अगुआई किया . अर्थात् आगे आगे चले। माताओं की पालकियाँ उसके बाद चलायी गयी। छोटे भाई को बुलाकर साथ में दिया। ब्राह्मणो के साथ गुरुजी चले।

व्याख्या अपने राज्य की सीमा से बाहर वन मे चल रहे हैं इसलिए इन्तजाम बदल गया। सबसे पहिले गुरुजी की सवारी चलती थी। सो सुरक्षा की दृष्टि से सबके पीछे चली। सबके आगे सेना चल रही है। उसके भी आगे रास्ता दिखलाने के लिए निषादगण चल रहे हैं। उसके बाद माताओ की पालकियाँ चली। उन पालकियों के आगे आगे स्वय निषादराज चल रहे हैं। माताओ की रक्षा भरतजी ने निषादराज के जिम्मे अपना प्रतिनिधि बनाकर किया और शत्रुसूदनजी को निषादराज के साथ कर दिया। उसके बाद ब्राह्मणो के समाज के साथ गुरुजी

चले। इन्तजाम करनेवाले से कोई कारण नही पूछता। वह जैसा उचित है वैसी व्यवस्था करता है : एक नायक की आज्ञा चलनी चाहिए। क्योंकि बिना नायक के नाश होता है और अनेक नायक के होने से भी नाश होता है। अनायका विनश्यन्ति बहुनायका ।

आपु सुरसरिहि कीन्ह प्रनामू। सुमिरे लखन सहित सिय रामू॥
गवने भरत पयादेहि पाएं। कोतल संग जाहिं डोरिआएं॥२॥

अर्थ · भरतजी ने स्वय गङ्गाजी को प्रणाम किया। लक्ष्मणजी के सहित सीताराम का स्मरण किया। भरतजी पाँव पैदल चले। कोतल बिना सवार के घोडे बागडोर से बँधे चले जा रहे थे।

व्याख्या · आने के समय भी गङ्गाजी को प्रणाम किया। अब जाने के समय भी प्रणाम कर रहे हैं। भेद इतना ही था कि आने के समय रामघाट कहँ कीन्ह प्रणामू। अब उस पार चले गये हैं। उधर जगल होने से घाट नही है। अत सुरसरिहि कीन्ह प्रनामू लिखा। लक्ष्मणजी के सहित सीतारामजी का स्मरण करते हैं। क्योंकि वे ही यात्रा के लक्ष्य है। यथा सोक समाज राज केहि लेखे। लखन राम सिय पद बिनु देखे।

यहाँ से ही रामजानकी तथा लक्ष्मणजी ने पाँव पैदल यात्रा की थी। अत यहाँ से भरतजी ने पैदल यात्रा आरम्भ की। अयोध्या से ही पैदल चले थे पर माताजी ने रोक दिया। कहा तुम्हारे चलत चलिहि सब लोगू। सकल सोक कृस नहिं मग जोगू। फिर भी वही बात होगी। इसलिए इस बार भरतजी ने सबको आगे चला दिया। आप पीछे रह गये। जिसमे उन्हे पैदल देखकर लोग सवारी से उतर कर पैदल न चलने लगें। सेवको ने सब समाज को चले जाते देखकर भरतजी की सवारी के लिए घोडे रख लिये। समझा कि कुछ दूर पैदल चलने की इच्छा है। फिर सवारी का काम पडेगा ही। शत्रुघ्नजी भी साथ नही है। अत रथ पर चलने की इच्छा नही मालूम होती है। इसलिए उन सबो ने भरतजी के सवारी के घोडे रोक रखे। वे बिना सवार को बागडोर से बँधे चल रहे है।

कहहिं सुसेवक बारहिं बारा। होइअ नाथ अस्व असवारा॥
रामु पयादेहिं पाय सिधाये। हम कहँ रथ गज बाजि बनाये॥३॥

अर्थ सुसेवक लोग बार बार कह रहे है कि सरकार घोडे पर सवार हो जायँ। रामजी पाँव पैदल ही गये है और मेरे लिए रथ हाथी घोडे बनाये गये है।

व्याख्या जब देख लिया कि मन बहलाने के लिए जितनी दूर पैदल चला जाता है उस सीमा का अतिक्रमण हो गया। तब सुसेवको ने कहा कि सरकार घोडे पर सवार हो जायँ। वे सुसेवक है। स्वामी का उचित से अधिक पैदल चलना सहन नही कर सकते। सेवक समय न ढीठ ढिठाई। अत बोल बैठे। भरतजी ने उस कहने की उपेक्षा की। आगे बढते ही चले गये। सुसेवको से नही रहा गया।

फिर कहा फिर कहा। तब भरतजी बोले कि सरकार रामजी तो पैदल गये। रथ हाथी घोडे सब उनके लिए हैं। मेरे लिए नही है। यथा सपति सब रघुपति कै आही। मैं सेवक हूँ। जहाँ उनका पैर पडा है वहाँ मेरा सिर लगना चाहिए। वहाँ मैं सवारी पर कैसे चलूँ।

सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब ते सेवक धरमु कठोरा॥
देखि भरत गति सुनि मृदु बानी। सब सेवक गन गरहिं गलानी॥४॥

अर्थ : मेरे लिए उचित तो यह था कि सिर के बल जाता। क्योकि सब धर्मो से कठिन सेवक धर्म है। भरतजी की अवस्था देखकर और कोमल वाणी सुनकर सेवकगण ग्लानि से गले जा रहे थे।

व्याख्या . कहहु तो कहाँ चरन कहँ माथा। जहाँ मालिक का चरण वहाँ सेवक का मस्तक। अत उचित तो था कि जहाँ रामजी पाँव के बल चले वहाँ मैं सिर के बल चलूँ। परन्तु यह सम्भव नही है। इससे कम से कम मैं पैदल तो चलूँ। सेवक का ठीक धर्म पालन मे मैं असमर्थ हो रहा हूँ।

भरतजी की प्रेम परवश दशा देखकर और मृदु वाणी सुनकर सेवक लोग ग्लानि से गल जा रहे थे। अर्थात् उन्हे ग्लानि हुई कि हम सुसेवक कहलाकर भी सेवाधर्म से अनभिज्ञ ठहरे और भरतजी स्वामी होकर सेवाधर्म मे ऐसे पटु हैं। भरतजी ने मृदु वाणी कहा। धिक्कारा नही पर बात लग गयी। ऐसे उच्चकोटि के सेवक हैं कि उन्हे अविवक्षित ध्वनि से ग्लानि हुई।

दो भरत तीसरे पहर कहँ, कीन्ह प्रवेसु प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय, उमगि उमगि अनुराग॥२०३॥

अर्थ भरतजी ने तीसरे पहर मे प्रवेश किया। सीताराम सीताराम अनुराग के उमङ्ग मे कहते जा रहे थे।

व्याख्या सब लोग बहुत पहिले प्रयाग पहुँच गये। पर भरतजी तीसरे पहर मे प्रयाग पहुँचे। ये पैदल पाँव बिना जूते के चल रहे थे। रेत धूप से जल रही थी। अत चलने मे अधिक कठिनता पडी। चित्रकूट जाने की इतनी त्वरा होने पर भी तीर्थ को बाँया नही दिया। प्रयागराज चले गये। मनसा वाचा कर्मणा धर्म प्रवृत्ति। यथा . कर्मणा कीन्ह प्रवेस प्रयाग। वचसा कहत रामसिय रामसिय। मनसा : उमगि उमगि अनुराग।

झलका झलकत पायन्ह कैसें। पंकज कोस ओस कन जैसे॥
भरत पयादेहि आए आजू। भयउ दुखित सुनि सकल समाजू॥१॥

अर्थ चरणो मे झलका (छाले) कैसे चमक रहे हैं जैसे कमल के कोष मे ओस के कण चमकते है। भरतजी आज पैदल ही आये। यह समाचार सुनकर सब समाज दुःखी हो उठा।

व्याख्या जलती हुई धूलि मे विना जूते के चलने से सम्पूर्ण चरणो मे छोटे छोटे छाले पड गये। परन्तु चरणो की शोभा और भी बढ गयी। कमल के कोप पर ओस के कणो के पड जाने पर जैसी कमल की शोभा होती है वैसी ही चरणो की शोभा हुई। डेरे पर आने पर जब धूलि धूसरित चरण धोये गये तब यह शोभा दिखायी पडी।

समाचार सब समाज मे फैल गया। सब चिन्तित थे कि भरतजी के आने मे देर क्यो हो रही है। जब मालूम हुआ कि आज भरतजो पैदल ही आये। तो यह सुनकर सब समाज दु खी हो गया। सब लोग समझ गये कि जहां से जहां तक रामजी पैदल गये हैं भरतजी सवारी पर नही चलेंगे। अब भरतजी की यात्रा पैदल होगी। कोमल चरण हैं। जेठ की धूप से पृथ्वी तप रही है। पहिले दिन के चलने मे ही पैर मे छाले पड गये। यह पूरा रास्ता कैसे कटेगा ? भरतजी का निश्चय है यह टल भी नही सकता। अत सब समाज दु खी हो गया। माता लोग भी उनके सेवा धर्म मे बाधक नही होना चाहती।

खबरि लीन्ह सब लोग नहाये। कीन्ह प्रनामु त्रिबेनिहि आये ॥
सविधि सितासित नीर नहाने। दिये दान महिसुर सनमाने ॥२॥

अर्थ पता लगा लिया कि सब लोग नहा चुके। तब त्रिवेणी मे आकर प्रणाम किया। विधि के साथ श्याम और श्वेतजल के सङ्गम मे स्नान किया। ब्राह्मणो का सम्मान किया और दान दिया।

व्याख्या आते ही भरतजी सबका सँभाल करते हैं। पता लगा कि सब लोग स्नान कर चुके। क्योकि पहिले ही पहुँच चुके थे। तब आप स्नान के लिए सङ्गम पर गये और भगवती त्रिवेणी का प्रणाम किया।

सितासित शब्द से प्रयागराज का वेद प्रतिपाद्य होना द्योतित किया। यथा सितासिते सरिते यत्र सगते। श्रुति । प्रयागराज मे त्रिवेणी स्नान की जो विधि है। उस विधि से स्नान किया। सगम सिंहासन सुठि सोहा। चँवर जमुन अरु गग तरगा। देखि होहिं दु ख दारिद भगा। स्नान के उपरान्त दान की विधि है। अत ब्राह्मणो को दान दिया और सम्मान किया। क्योकि सम्मान सबसे बडा दान है। यथा तुलसी कहत पुकार के सुनहु सकल दै कान। हेम दान गज दान ते बडो दान सम्मान। सरकार के स्नान के समय कहा मुदित नहाइ कीन्ह सिव सेवा। पूजि यथाबिधि तीरथ दवा। दान देना नही कहा। क्योकि वे उदासीन थे। भरतजी के साथ धन है। अत दान सम्मान दानो लिखा। बिना सम्मान का दान व्यर्थ है और बिना दान का सम्मान केवल दम्भ है। अत दान सम्मान दोनो होना चाहिए।

देखत स्यामल धवल हलोरे। पुलकि सरीर भरत कर जोरे ॥
सकल काम प्रद तीरथ राऊ। वेद विदित जग प्रगट प्रभाऊ ॥३॥

अर्थ काली और सुफेद लहरो को देखकर भरतजी ने पुलकित होकर हाथ

जोड़ा। हे तीर्थराज ! आप सब कामनाओ के देनेवाले हैं। आपका प्रभाव ससार मे प्रकट है और वेद मे भी विदित है।

व्याख्या : स्यामल धवल हिलोरे के देखने से भरतजी को रामजानकी का स्मरण हो उठा। अतः शरीर में पुलक हो गया। यथा : उतरि नहाये जमुन जल जो सरीर सम स्याम। तीर्थराज को प्रणाम करना चाहिए और मनोरथ प्राप्ति के लिए वरदान माँगना चाहिए। क्योकि तीर्थराज का भण्डार चारो फल से भरा पूरा है। यथा : चारि पदारथ भरा भंडारु। सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मन काम। वदी वेद पुरान गन कहहिं विमल गुनग्राम। इस दोहे के पहिले पद से जग प्रगट प्रभाऊ और दूसरे पद से वेद विदित पद की व्याख्या की।

मागउँ भीख त्यागि निज धरमू। आरत काह न करइ कुकरमू॥
अस जिय जानि सुजान सुदानी। सफल करहिं जग जाचक बानी॥४॥

अर्थ : मैं अपना धर्म छोड़कर भीख माँगता हूँ। क्योकि आर्त कौन सा कुकर्म नही करते। ऐसा मन मे समझकर जो सुजान सुदानी हैं वे संसार में याचक की वाणी को सफल करते हैं।

व्याख्या : भिक्षा माँगना क्षत्रिय के लिए निषिद्ध है। परन्तु आर्त पुरुष को विधि निषेध का ख्याल नही रहता। अत· आर्त होकर क्षत्रिय भी भिक्षा माँगते हैं। भरतजी कहते हैं कि हे तीर्थराज ! आप प्रख्यात दानी हैं और मै अत्यन्त आर्त हूँ। प्रमाण यह है कि क्षत्रिय होकर आप से भिक्षा माँगता हूँ। इतना आर्त हूँ कि अपने धर्म का भी परित्याग कर रहा हूँ। अतः मैं आर्त अधिकारी हूँ।

सुजान सुदानी जाचक के पात्रापात्र का विचार यदि वह आर्त हो तो नही करते। अपात्र भी आर्त होने से पात्र ही है। अतः उसकी वाणी को सफल करते हैं। आप भी पात्रापात्र का विचार न करके मेरी वाणी सफल कीजिये।

दो. अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहौ निरवान।
जनम जनम रति राम पद, यह वरदानु न आन॥२०४॥

अर्थ : मुझे धर्मार्थ काम की रुचि नही है और निर्वाण गति भी नही चाहता हूँ। मैं यही वरदान चाहता हूँ कि जन्म जन्मान्तर मे मेरी भक्ति श्रीरामजी के चरणो मे हो। दूसरी कोई बात मैं नही चाहता।

व्याख्या : इतने आर्त होने का कारण कहते हैं कि आपका भण्डार धर्मार्थ काम और मोक्ष से भरपूर है और यही याचकों को मिला करता है। पर इनमे मेरी रुचि नही। मैं तो जन्म जन्म में रामजी के चरणो मे रति प्राप्ति का वरदान चाहता हूँ। जो भण्डार मे नही है वह चाहता हूँ। आप याचक की वाणी पूरा करनेवाले सुजान दानी है। आप जैसे हो सके मुझे भक्ति भिक्षा दीजिये। अर्थ धर्म काम तथा मोक्ष मुझे नहीं चाहिए। यथा : सगुन उपासक मोक्ष न लेहीं।

जानहु रामु कुटिल करि मोही। लोगु कहउ गुर साहिब द्रोही॥
सीताराम चरन रति मोरे। अनुदिन बढउ अनुग्रह तोरे॥१॥

अर्थ : रामजी भले ही मुझे कुटिल समझे और भले ही लोग मुझे गुरुद्रोही और स्वामिद्रोही कहे। सीताराम के चरणो मे मेरी प्रीति आपके अनुग्रह से नित्य बढती रहे।

व्याख्या : वरदान मे भरतजी एकाङ्गी प्रीति माँगते हैं। रामजी चाहे प्रेम करें चाहे प्रेम न करें। भले ही मुझे कुटिल मानकर घृणा करें मुझे स्वीकार है। उन पर आप कोई प्रभाव न डालें। उन्हे स्वच्छन्द रहने दें। पर रामजी के कुटिल जानने से दुर्यश होगा। लोग कहेगे कि भरत गुरुद्रोही और स्वामिद्रोही हैं और रघुकुल यशोधन हैं। यशोहानि कैसे सही जायगी ? इस पर भरतजी कहते हैं कि यशोहानि मुझे स्वीकार है। पर सरकार की स्वच्छन्दता मे भेद न पडने पावे। भरतजी कहते हैं कि वरदान का प्रभाव मुझ पर पडे। श्रीसीतारामजी के चरणो मे मेरी प्रीति नित्य बढती रहे। अर्थात् सिद्धा भक्ति के लिए भरतजी की प्रार्थना है।

जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ। जाचत जलु पबि पाहन डारउ॥
चातकु रटनि घटे घटि जाई। बढे प्रेम सब भाँति भलाई॥२॥

अर्थ : मेघ चाहे जन्म भर पपीहे को याद न करे। जल माँगने पर पत्थर और वज्र गिरावे। पपीहे की रटन घटने से वह घट जावेगा। प्रेम बढने म ही उसकी सब भाँति से भलाई है।

व्याख्या : चातक हंस सराहियत टेक विवेक विभूति। हंस विवेकी है और चातक प्रेमी है। अत हंस मे विवेक की विभूति है और चातक मे टेक की विभूति है। यदि चातक की रटनि घट जावे तो उसके टेक की विभूति ही जाती रही। उसकी भलाई तो प्रेम के बढने मे ही है। चाहे मेघ उसे कितना भी कष्ट दे। इसी बात को गोस्वामीजी ने दोहावली मे बडे मार्मिक शब्दो मे वर्णन किया है। यथा

मान राखिवो माँगिवो पिय सो नित नव नेहु।
तुलसी तीनिउ तव फवैं जौ चातक मत लेहु॥
तीनलोक तिहुकाल जस चातक ही के हाथ।
तुलसी जासु न दीनता सुनी दूसरे नाथ॥
जौ घन बरसै समयसिर जौं भरि जनम उदास।
तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस॥
रटत रटत रसना लटी तृषा सूखिगे अंग।
तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रंग॥
चढत न चातक चित कबहुँ प्रियपयोद के दोष।
तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख॥

परखि - परुप पाहन पयद पंख करौ टुक टूक।
तुलसी परी न चाहिये चतुर चातकहि चूक॥
उपल वरपि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि कवहुँ दूसरी ओर॥

पवि पाहन दामिनि गरज झरि झँकोरि खरि खीझि।
रोष न प्रीतम दोष लखि तुलसी रागहिं रीझि॥
प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि।
जाचक जगत कनाउडो कियो कनौडो दानि॥

साधन सांसति सब सहत सबहि सुखद फल लाहु।
तुलसी चातक जलद की रीझि बूझि बुध काहु॥
चातक जीवन दायकहि जीवन समय सुरीति।
तुलसी अलख न लखि परै चातक प्रीति प्रतीति॥

जीव चराचर जहँ लगे है सबको हित मेह।
तुलसी चातक मन बस्यौ घन सों सहज सनेह॥
प्रेम न परखिय परुपपन पयद सिखावन एहु।
जग कह चातक पातकी ऊसर बरपै मेह॥

चरण चंगु गत चातकहि नेम प्रेम को पीर।
तुलसी परवस हाड़ पर परिहैं पुहमी नीर॥
बध्यौ बधिक परयौ पुन्यजल उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम पट मरतहुँ लगी न खोंच॥
तुलसी चातक देत सिख सुतहिं बारही बार।
तात न तर्पन कीजिये बिना वारिधर धार॥

सो. जियत न नाई नार चातक घन तजि दूसरहिं।
सुर सरिहू को वारि मरत न मांगेउ अरध जल॥
सुन रे तुलसीदास प्यास पपीअहि प्रेम की।
परिहरि चारिउ मास जो अँचवै जल स्वातिको॥
जाचै बारह मास पियै पपीहा स्वाति जल।
जान्यौ तुलसीदास जोगवत नेही नेह मन॥

दो. उष्णकाल अरु देह खिन मग पंथी तन ऊख।
चातक बतियाँ ना रुची अनजल सीचे ऊख॥

जलद चातक का प्रेम पात्र है। चातक उसी का जल पीता है। दूसरे को उसे आशा नहीं। जलद जो उसे भूल जाय उस पर अत्याचार करे फिर भी चातक का प्रेम बढता ही जाता है। इसी भांति भरतजी भी श्रीरामजी के चरणों में प्रेम चाहते हैं। यही वरदान है।

कनकहि बान चढइ जिमि दाहे । तिमि प्रियतम पद नेम निबाहे ॥
भरत वचन सुनि माँझ त्रिवेनी । भइ मृदु बानि सुमंगल देनी ॥३॥

अर्थ : जिस भाँति सोने को तपाने से उस पर रङ्ग चढ जाता है वैसा ही रङ्ग प्रियतम के चरणो मे प्रीति निर्वाह करने मे चढे। भरतजी का वचन सुनकर मध्य त्रिवेणी मे शुभ मङ्गल देनेवाली कोमल वाणी हुई।

व्याख्या : चैतन की उपमा देकर अब जड की उपमा देते हैं। प्रेम जड की अवस्था अभीष्ट है। चेतन का दु खी होना सम्भव है। इसलिए जड़ को उपमा देते हैं। उसमे भी सोना तपाने के समय दमक उठता है। प्रेमास्पद के जलाने से और भी प्रेम मे चमक बढे। जानते हैं कि सरकार विरहानल मे तप्त करके प्रेम की परीक्षा ले रहे हैं। यथा प्रेम अमिअ मन्दर बिरह भरत पयोधि गँभीर। मथि प्रगटेउ सुरसाधु हित कृपासिंधु रघुबीर।

भरतजी के ये वचन सुनकर मध्य त्रिवेणी अर्थात् सङ्गमरूपी सिंहासन से वचन सुनायी पडा। स्वय त्रिवेणीजी बोल रही हैं।

तात भरत तुम्ह सब विधि साधू । राम चरन अनुराग अगाधू ॥
बादि गलानि करहु मन माँही । तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाँही ॥४॥

अर्थ तात भरत! तुम सब प्रकार से साधु हो। रामचरण मे तुम्हे अथाह प्रेम है। मन मे व्यर्थ ग्लानि कर रहे हो। तुम्हारे समान रामजी को कोई प्रिय ही नही है।

व्याख्या जानहु राम कुटिलकरि मोही। लोग कहउ गुरुसाहिब द्रोही। का उत्तर तीर्थराज देते है : तुम्ह सब बिधि साधू। पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया। तुम मे स्वार्थ कहाँ? साधु समाज मे तुम्हारी रेखा और रामभक्तो मे तुम्हारी लेखा है। तुम्हे स्वय अगाध अनुराग है। मै क्या दूँ? केवल तुम्हारे सन्देह मिटाने के लिए निषादराज की भाँति निषादराज के ही शब्द दोहराये देता हूँ। यथा नाथ करिअ कत बादि बिषादू। राम तुमहि प्रिय तुम प्रिय रामहि। तुलसी न तुम सम राम प्रीतम कहत हौ सौहे किये। इत्यादि।

दो. तनु पुलकेउ हिय हरषु सुनि, बेनि बचन अनुकूल ।
भरत धन्य कहि धन्य सुर, हरषित बरषहिं फूल ॥२०५॥

अर्थ : वेणी के अनुकूल वचन सुनकर भरतजी का शरीर पुलकित हो गया और हृदय मे हर्ष हुआ। भरतजी धन्य हैं धन्य है ऐसा कहकर देवता फूलो की वर्षा करते हैं।

व्याख्या · भई मृदु बानि सुमगल मूला से उपक्रम करके · बेनि वचन अनुकूल से उपसहार करते हैं। गङ्गा यमुना सरस्वती के सङ्गम तीर्थराज का सिंहासन है। अत. त्रिवेणी की वाणी ही प्रयागराज की वाणी है। भरतजी ने धिग धिग मोहि

अघ उदधि अभागी कहा था। अतः उसी का सम्मार्जन करते हुए देवता लोग भरतजी को धन्य धन्य कह रहे हैं और पुष्पवर्षा करके पूजन कर रहे हैं।

प्रमुदित तीरथराज निवासी। बैखानस बटु गृही उदासी॥
कहहिं परसपर मिलि दस पाँचा। भरत सनेहु सीलु सुचि साँचा॥१॥

अर्थ : प्रयागराज के रहनेवाले वानप्रस्थ गृहस्थ उदासी सब प्रसन्न हुए और दस पाँच आपस में मिलकर कहते हैं कि भरतजी का प्रेम और शील पवित्र और सच्चा है।

व्याख्या : भरतजी के साथ सेना आयी है। बडी भीडभाड़ है। अत. सबको भरतजी के आने की खबर है। वैखानस वानप्रस्थ आश्रमी को कहते हैं। गृहस्थाश्रमी को गृही कहते हैं। बटु ब्रह्मचारी को कहते है और उदासी से यहाँ सन्यासी से तात्पर्य है। तीर्थराज हैं। अतः यहाँ सभी आश्रम के लोग बसते हैं। अत भरतजी को देखने के लिए पहिले से ही तैयार हैं। रामजी जब आये थे तो उनके साथ भीड़ नही थी। अत उनके आने का पता देर से लगा और वे सुन्दरता देखने की भावना से आये थे। यथा : यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी। बटु तापसमुनि सिद्ध उदासी। भरद्वाज आश्रम सब आये। देखन दसरथ तनय सुहाये।

जहाँ तहाँ गोष्ठी में बातचीत हो रही है। त्रिवेणी के मध्य से जो वाणी का प्रादुर्भाव हुआ उसी का अनुवाद कर रहे हैं। यथा : रामचरन अनुराग अगाधू। भरत सनेह सील सुठि साँचा। यथा : तात भरत तुम सब विधि साधू।

सुनत राम गुन ग्राम सुहाए। भरद्वाज मुनिवर पहिं आए॥
दंड प्रनामु करत मुनि देखे। मूरतिमंत भाग्य निज लेखे॥२॥

अर्थ : रामजी के गुणगणो को सुनते हुए भरद्वाज मुनिवर के पास आये। मुनिजी ने भरतजी को साष्टाङ्ग प्रणाम करते देखा तो उन्हे मूर्तिमान् अपना भाग्य माना।

व्याख्या : भरतजी के स्नेह और शील वर्णन के बाद प्रसङ्ग प्राप्त रामजी का गुणग्राम वर्णन करने लगे। रामजी का रूप और स्वभाव देख चुके हैं। यथा : राम प्रणाम कीन्ह सब काहू। मुदित भये लहि लोचन लाहू। देहिं असीस परम सुख पाई। फिरे सराहत सुदरताई। रामजी के दर्शन से मुदित थे। आज भरतजी के दर्शन से मुदित हैं। भरतजी उधर से ही जा रहे हैं। तमाम रास्ते यही चर्चा है। अतः राम गुणग्राम सुनते हुए भरद्वाज के आश्रम पर आये। प्रयाग में भरद्वाजजी का दर्शन प्रधान है। क्योंकि ये जङ्गम तीर्थराज हैं। प्रयागराज के देवताओं की भाँति ये भी अङ्गभूत है। यथा : प्रयागं माधवं सोमं भारद्वाजं च वासुकिम्। वन्देऽक्षयवटं शेषं प्रयाग तीर्थनायकम्।

न तो सरकार के ही आने का पता मुनिजी को था जो आगे लेने आते और न भरतजी के ही आने का पता लगा। भावार्थ यह कि तीर्थराज में रहने से इनके

यहाँ लोगो का आना जाना सदा लगा रहता था। घोर वन मे रहनेवाले मुनियो के यहाँ जिस भाँति किसी विशेष व्यक्ति का आना एक विशेष घटना समझी जाती थी और उसका समाचार बटु लोग पहिले से ही दे देते थे। वैसी कोई बात यहाँ न थी। अत शिष्यो ने पहिले से खबर नही दी। इसलिए भरतजी को दण्डवत् प्रणाम करते मुनिजी ने देखा तो अपना बडा भाग्योदय माना। पूर्वजन्मकृत कर्मं तद्दैवमिति कथ्यते। अत भरतजी को मूर्तिमान पूर्वं जन्मकृत पुण्य माना। सरकार को वर्तमान जन्म का किया हुआ पुण्य माना था। यथा लोचन गोचर सुकृत फल मनहु किये विधि आनि।

धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे। दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हे॥
आसनु दीन्ह नाइ सिरु बैठे। चहत सकुच गृह जनु भजि पैठे॥३॥

अर्थ दौडे और उठाकर छाती से लगा लिया। आशीर्वाद देकर कृतार्थ किया आसन दिया तो सिर झुकाकर बैठे मानो सङ्कोच रूपी घर मे भागकर घुस जाना चाहते हैं।

व्याख्या भरतजी ने दूर से प्रणाम किया था। अत दौड पडे। इतने बडे भागवत का दण्ड की भाँति भूमि मे पडा रहना सह न सके तथा उन्हे हृदय लगा लेने की बडी चाह है। सत्कार करने का बडा उत्साह है। आशीर्वाद देने के लिए हृदय उमगा आ रहा है। अत चार क्रियाओ का एक साथ ही प्रयोग है। भरतजी इस सत्कार से कृतार्थ हुए अथवा भक्तिरस्तु ऐसा आशीर्वाद दिया। इससे भरतजी ने अपने को कृतार्थ माना। सिर झुकाकर बैठना सङ्कोच तथा सोच की मुद्रा है। सरकार से मुनिजी ने कुशल प्रश्न करके तब आसन दिया। भरतजी से कुशल प्रश्न नही किया। आसन द दिया। मुनिजी समझते हैं कि जब जानता हूँ कि कुशल नही है तब उसका प्रश्न करना और भी छेडकर दु ख देना है। भरतजी को देखा कि ये इतने सङ्कुचित है मानो सङ्कोचरूपी घर मे पैठ जाना चाहते हैं। सम्मुख होकर बात करने मे कष्ट है।

मुनि पूछब कछु येह बड सोचू। बोले रिषि लखि सीलु सकोचू॥
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। बिधि करतब पर किछु न बसाई॥४॥

अर्थ यह बडा सोच था कि मुनिजी कुछ पूछेगे। ऋषिजी भरतजी का शील सङ्कोच देखकर बोले भरतजी! सुनो मुझे सब पता लग गया है। विधाता के किये हुए को कौन मिटा सकता है। किसी का कुछ वश्य नही है।

व्याख्या सङ्कोच को स्पष्ट करते है। मुनिजी ने कुशल तो नही पूछा। फिर भी कुछ तो पूछेंगे ही और यह पूछना चाहे किसी विषय म हो। माता की चर्चा बिना चले नही रह सकती। माता के निन्दनीय कर्म से सन्तान को सङ्कोच होता ही है और विशेषत जब उसी के पुत्र को किसी के पूछने पर कहना पडे। ये मुनि ठहरे। इनसे सब कहना पडेगा। इस सङ्कोच को लखकर मुनिजी बोल उठे कि भरतजी!

़ कहना नही है। मुझे सब पता लग गया है। जो कुछ हुआ है उसमें ़रणी नही है। वह सब विधि की करणी है। मानुपी करणी होती तो उस लग सकता था। जो विधि लिखा लिलार। देव दनुज नर नाग मुनि कोउ हार। अतः किसी का कोई वश्य नही है।

ो. तुम्ह गलानि जिय जनि करहु, समुझि मातु करतूति।
तात, कैकइहि दोसु नहिं, गई गिरा मति धूति ॥२०६॥

अर्थ : तुम माता की करतूत समझकर अपने मन मे ग्लानि न करो। हे ़समें कैकेयी का दोष नही है। सरस्वती उनकी बुद्धि को ठग ले गयी।

व्याख्या : मुनिजी को देवताओं के रहस्य का पता हैं। अतः स्पष्ट कहे देते ़रस्वती ने आकर मन्थरा द्वारा कैकेयी की बुद्धि हरण कर ली। कैकेयी का ़ भी नही है। ब्रह्मदेव का रुख पाकर ही सरस्वती ने देवताओं के विनय को : किया। अतः यह सब विधि की करणी है। तुम व्यर्थ ग्लानि न करो।

कहत भल कहहि न कोऊ। लोकु वेदु बुध सम्मत दोऊ॥
ुम्हार बिमल जस गाई। पाइहि लोकउ वेदु वड़ाई ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहने को कोई अच्छा नही कहेगा। क्योंकि पण्डितों को लोक ़द दोनो मान्य है। हे तात! तुम्हारे निर्मल यश को गाकर लोक और ़ो वड़ाई पायेंगे।

व्याख्या : बात तो मैंने ठीक कही। पर इसे अच्छा कोई न कहेगा। क्योंकि कहने मे पण्डिताई नही है और पण्डितों को लोक और वेद मान्य है। लोक ़ेद पीछे। क्योंकि वेद कौन है ? इस प्रश्न का निपटारा तो लोक से ही होगा। ़द भी लोक प्रमाण पर ही ठहरा है। माता के निर्दोष होने से तुम निर्दोष हो ़ना तुम्हारा अपमान करना है। वात तो यह है कि कैकेयी के करतब से ही ़ इतना निर्मल यश हुआ।

क्योंकि तुम्हारा यश वड़ा पवित्र है। तुम्हारे ऐसा आचरण करना महा दुर्लभ ़के वर्णन से लोक और वेद की वड़ाई होगी। जो लोग तुम्हारा यश गावेंगे वड़ाई होगी। वेद की भी तुम्हारे यशोगान से प्रशसा होगी। ऐसे महायशस्वी ़ कोई कहे कि निर्दोष है तो कहनेवाले को ससार कहेगा कि इनसे कहते ़।

बेद सम्मत सबु कहई। जेहि पितु देइ राजु सो लहई॥
सत्य ब्रत तुम्हहि बोलाई। देत राजु सुखु धरमु वड़ाई ॥२॥

अर्थ : सब लोग ऐसा ही कहते हैं। यह वात लोक और वेद सम्मत है कि पिता दे वह राज्य पावे। सत्यव्रत राजा तुम्हे वुलाकर राज्य सुख धर्म और दे देते।

व्याख्या लोक और वेद के बडाई पाने का कारण कहते हैं कि तुम्हारी करणी लोक और वेद दोनो से ऊँची निकली। क्योकि इस बात म सबका ऐकमत्य है कि जिसे पिता दे वही राज्य पावे। यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है।

राजा सत्यव्रत थे। अत विशेष नियम से काम ले सकते थे। वरदान दे दिया था उसे मिथ्या नही कर सकते थे। अत रामजी को न देकर तुम्ह दे देते और उसके साथ सुख धर्म और बडाई भी देते। सुख यथा हरखे सकल पाइ जनु राजू। धर्म यथा प्रजा पालि परिजन दुख हरहू। बडाई यथा राजा दण्डधरो गुरु।

राम गवनु बन अनरथ मूला। जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला॥
सो भावी बस रानि अयानी। करि कुचालि अतहु पछितानी॥३॥

अर्थ रामजी का वन जाना अनर्थ का मूल हो गया। जिसे सुनकर ससार को शूल हुआ। सो भी होनहार के वश बेसमझ रानी कुचाल करके अन्त मे पछतायी।

व्याख्या पर दूसरा वर बडा अनर्थकारी माँगा। राम वनगमन से अयोध्या उजाड हुई। महाराज मरे। जिनका घनिष्ठ सम्बन्ध था उनकी गति कौन कहे। ससार भर मे जिसने सुना उसे शूल हो गया। ससार से अभिप्राय उन लोगो से है जिनमे वस्तुत मनुष्यता है। मनुष्यरूप से जो पशु विचरते हैं उनकी गणना मनुष्यो मे नही है।

भावीवश हो जाने से बडे बडे बुद्धिमानो की बुद्धि बिगड जाती है। ज्ञानी महाराज भानुप्रताप की बुद्धि बिगड गयी। जिसने जन्मभर वासुदेवार्पण कर्म किया। यथा करै जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी। उसने वर माँगा देहाध्यासियो की भाँति। यथा जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ। एकछत्र रिपुहीन महि राज कल्पसत होउ। महारानी तो सूधी थी। यथा काह कहौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानेहुँ काऊ। यह यदि भावीवश होकर विकृत मस्तिष्क हो गयी तो इसम आश्चर्य ही क्या है? भावीवश इसकी बुद्धि मारी गयी। यथा भावी बस प्रतीति उर आई। फिर जब प्रकृतिस्थ हुई तो पछतायी। पहिल भी रामजी मे प्रम था। आज भी प्रम है। तो बीच म हो क्या गया? यही भावी है।

तहउँ तुम्हार अलप अपराधू। कहइ सो अधमु अयान असाधू॥
करतेहु राजु त तुम्हहि न दोषू। रामहि होत सुनत सतोषू॥४॥

अर्थ वहाँ भी यदि कोई तुम्हारा स्वल्प भी अपराध कहे तो वह अधम है। अज्ञानी है और साधु नही है। यदि तुम राज्य भी करते तो तुम्हारा कोई दोष न होता। रामजी को सुनकर सन्तोष होता।

व्याख्या कुचाल म बडा अपराध प्रयोजक कर्ता का हुआ करता है और स्वल्प अपराध उपेक्षा करनेवाल का होता है। सो तुम्हे प्रयोजक कर्ता तो कोई कह नही सकता। यदि कोइ स्वल्पापराध भी कहे तो वह अधम है। अर्थात् लोक वेद

से विमुख है। बुद्धिहीन है और उसका हृदय दूषित है। ऐसे पुरुष ही अपने बुद्धि दोष से दूसरों में दोष देखते है।

अधम यथा : कहहि सुनहि अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।

अयान यथा : मरम तुम्हार रामकर जानिहि।

ते सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि।

असाधु। यथा : मत तुम्हार यहु जो जग कहही।

ते सपनेहुँ सुख सुगति न लहही।

जो वसिष्ठजी ने कहा था वही भरद्वाजजी भी कहते हैं। यथा : सुनि सुख लहब राम वैदेही। अनुचित कहब न पंडित केही। राय राजपद तुम कहँ दीन्हा। पिता वचन फुर चाहिअ कीन्हा।

दो. अब अति कीन्हेउ भरत भल, तुमहिं उचित मत एहु।

सकल सुमंगल मूल जग, रघुबर चरन सनेहु ॥२०७॥

अर्थ : भरतजी ! अब तुमने बहुत अच्छा किया। तुम्हारे लिए यही उचित राय थी। रामजी के चरणो मे प्रेम होना इस ससार मे सब सुमङ्गलो का मूल है।

व्याख्या : भरतजी ! यदि तुम राज्य करते तो वह भी भली बात थी : धर्माविरुद्ध [1]प्रेय को कौन नही चाहता ? तुमने नही किया। यह अत्यन्त भली बात हुई। राज्य करते तो धर्मानुकूल होता। इसलिए उसे भला कहा। परन्तु तुमने श्रीरामचरणानुराग को आगे करके राज्य का त्याग करके श्रेय का ग्रहण किया। अतः यह बहुत ही भला हुआ। तुम्हारे ऐसे साधु पुरुष के योग्य कार्य हुआ।

सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न रामपद पंकज भाऊ। जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहि राम प्रेम परधानू। अतः रामजी के चरणो मे स्नेह ही सब मङ्गलो का मूल है। क्योकि रामजी स्वय मङ्गल मूल है। यथा : मगल मूल राम सुत जासू। अतः मङ्गल मूल से स्नेह करना स्वयं मङ्गल मूल है।

सो तुम्हार धनु जीवनु प्राना। भूरिभाग को तुम्हहि समाना ॥

यह तुम्हार आचरजु न ताता। दसरथ सुअन राम प्रिय भ्राता ॥१॥

अर्थ : और वह तुम्हारा धन जीवन और प्राण है। तुम्हारे ऐसा महाभाग्यवान् कौन है ? हे तात ! यह तुम्हारे लिए आश्चर्य की बात नही है। तुम दशरथ के पुत्र और रामजी के प्रिय भाई ठहरे।

---

१. अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः। तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति। हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते। काठके। श्रेय दूसरी वस्तु है और प्रेम दूसरी वस्तु है। वे दोनो पृथक् पृथक् विषय मे मनुष्यो को बांधते हैं। उनमे से श्रेय के ग्रहण करनेवाले का कल्याण होता है और वह अर्थ से गिर जाता है जो प्रेय को स्वीकार करता है।

व्याख्या : वह रघुवर चरण स्नेह तुम्हारा धन है। यथा : माँगहु भीख त्यागि निज धर्मू से : अनुदिन बढहु अनुग्रह तोरे तक अथवा : सोक समाज राज केहि लेखे। लखन राम सिय पद बिनु देखे। तुम्हारा जीवन है। यथा : बादि जीव बिनु देह सोहाई। बादि मोर सब बिनु रघुराई। और वही तुम्हारा प्राण है। यथा : अस को जीव जन्तु जग माँही। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाहीं। अतः तुम्हारे ऐसा महाभाग्यवान् कोई नहीं।

जिस कुल में जो न हो आयी हो उस काम को कर बैठना आश्चर्य की बात है। तुम्हारे कुल मे तो ऐसा होता आया है। अतः तुम्हारे लिए आश्चर्य की बात नहीं है। पहिले की बात न कहकर वर्तमान की बात कहता हूँ। तुम्हारे पिता महाराज दशरथ प्रेम के समुद्र थे। यथा : बदौं अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद। बिछुरत दीन दयाल प्रिय तन तृन इव परिहरेउ। तुम्हारे बड़े भाई कैसे भ्रातृवत्सल हैं। यथा : भरत प्रान प्रिय पावहि राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू। रामहि बधु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती। अतः तुम में इतना राम स्नेह होना आश्चर्य की बात नहीं है।

सुनहु भरत रघुपति मन माँही। प्रेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाँही॥
लखन राम सीतहि अति प्रीती। निसि सब तुम्हहि सराहत बीती॥२॥

अर्थ : भरतजी ! सुनो। रामजी के मन मे तुम्हारे समान प्रेमपात्र कोई दूसरा नहीं है। लक्ष्मण राम और सीताजी की सारी रात तुम्हारी प्रशंसा करने मे ही बीती।

व्याख्या : भरद्वाजजी भरतजी को आश्वासन देते हुए कहते हैं कि रामजी तुमको प्रिय हैं; इतना ही नहीं है रामजी को तुम्हारे समान प्रिय कोई नहीं है। यथा : भरत सरिस प्रिय को जग माँही। इहै सगुन फल दूसर नाँही।

भरतजी की उस समय यह गति थी कि रात को भयानक सपने देखते थे। यथा : देखहिं रात भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना। भक्त भयानक स्वप्न देखता है। जागकर अनेक चिन्ता करता है। अतः सरकार नहीं सो रहे हैं। भक्त का स्मरण कर रहे हैं। इसी बात को निषादराज कह रहे है। यथा : तेहि रात पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सरहना रावरो। और यही बात भरद्वाजजी कह रहे हैं कि जिस दिन मेरे यहाँ ठहरे तीनो प्राणी रात भर तुम्हारी ही सराहना करते रह गये।

जाना मरमु नहात प्रयागा। मगन होहिं तुम्हरे अनुरागा॥
तुम्ह पर अस सनेहु रघुबर कें। सुख जीवन जग जस जड़ नर कें॥३॥

अर्थ : मैंने प्रयाग मे स्नान करते उनके मर्म को जाना। वे तुम्हारे प्रेम मे मग्न हो रहे थे। तुम पर ऐसा स्नेह रामजी का है जैसे जड़ पुरुष को संसार के सुखमय जीवन पर होता।

व्याख्या : भरद्वाजजी कहते हैं कि यद्यपि सब रात तुम्हारी प्रशंसा होती रही। पर तुम्हारे और रामजी के प्रेम का मर्म मैंने उनके प्रयाग स्नान करते समय जाना कि शरीर तो सितासित नीर में मग्न हो रहा है। पर मन तुम्हारे अनुराग में मग्न था। श्यामवर्ण वारि को देखकर तुम्हारे स्मरण से शरीर में पुलक हो गया : इसी भाँति भरतजी भी श्याम वर्ण जल को देखकर रामजी के स्मरण हो आने से विरह समुद्र में मग्न हुए थे। यथा : रघुवर बरन बिलोकि वर वारि समेत समाज। होत मगन वारिधि बिरह चढ़े विवेक जहाज।

भरद्वाजजी कहते हैं कि तीर्थराज में स्नान के समय में भी तुम्हारे अनुराग में मग्न रहना श्रीरामजी के अतीव प्रेम का द्योतक है। ऐसा प्रेम जो जड़ मनुष्य को सुख जीवन पर होता है वह सुख जीवन के लिए क्या नहीं करता धर्म अर्थ काम और मोक्ष सबसे हाथ धो बैठता है। इसी का साफल्य दिखाते हुए कहेंगे : मुख प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सोइ आजु।

यह न अधिक रघुबीर बड़ाई। प्रनत कुटुंब पाल रघुराई॥
तुम्ह तउ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु राम सनेहू॥४॥

अर्थ : यह रामजी के लिए अधिक बड़ाई की बात नहीं है। वे प्रणत : प्रणाम करनेवाले के कुटुम्ब के पालन करनेवाले हैं। हे भरतजी ! मेरा मत तो यह है कि तुम शरीरधारी रामप्रेम हो हो।

व्याख्या : तुम्हारे ऊपर रामजी का इतना प्रेम होना रामजी के लिए कोई बड़ाई की बात नहीं है। क्योंकि वे तो एक बार के प्रणाम करनेवाले को अपना बना लेते हैं। उसके कुटुम्ब को अपना मान लेते हैं। अतः उसके पालन की बात कौन कहे। उसके कुटुम्ब का पालन करते हैं और तुम तो मेरे मत से शरीरधारी रामप्रेम ही हो। अतः तुम्हारे ऊपर उनका इतना प्रेम होना प्राप्त ही है।

दो. तुम्ह कहँ भरत कलंक यह, हम सब कहँ उपदेसु।
राम भगति रस सिद्धि हित, भा यह समउ गनेसु॥२०८॥

अर्थ : तुम्हारे लिए तो भरत यह कलङ्क है। पर हम तपस्वियों के लिए तो यह उपदेश : हो गया। रामभक्ति रस सिद्धि के लिए यह समय : जब कि रामजी तापस वेष से वन में हैं और तुम उन्हें लौटाने जा रहे हो गणेश रूप हो गया।

व्याख्या : मुनिजी कहते हैं : अवधराज सुरराज सिहाई। दसरथ धन मुनि धनद लजाई। ऐसा राज्य पिता ने तुमको दिया। उसकी स्वीकृति तुम : गृहस्थ को कलङ्क मालूम हो रही है। यह बात हम वनवासी तपस्वियों के लिए उपदेश रूप है। रामभक्ति के लिए तुम ऐसे समृद्ध राज्य का त्याग कर रहे हो जिसका अर्थ यही है कि भक्तिसुख के सामने स्वर्ग सुख भी तुच्छ है। यथा : सूख हाड़ लै भाग सठ स्वान निरखि मृगराज। छीन लेइ जनि जानि जड़ तिमि सुरपतिहि न लाज।

तथा : सब सुख खानि भगति तैं माँगी। नहिं जग कोउ तोहि सम बड भागी। लाभ कि कछु हरिभगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना।

यह समय तो सिद्धिदाता गणेश हो गया। इसके स्मरण करने से भक्तिरस की सिद्धि होगी। यथा : जेहि सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन। विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावो से व्यञ्जना वृत्ति द्वारा जो स्थायी भाव अभिव्यक्त होता है उसी को रस कहते हैं। यथा : प्रीति की उत्पादिका ललना आदि आलम्बन है। प्रीति के पोषक चन्द्रोदय आदि उद्दीपन हैं। इन्ही आलम्बन और उद्दीपनो को विभाव कहते हैं। इसके बाद अश्रु और पुलक आदि जो अनुभव मे लाने योग्य विकृति होती है। उसे अनुभाव कहते हैं। विशेष रूप से हृदय मे स्थायी भाव सञ्चार करानेवाले जो हर्षादि भाव है उन्हे व्यभिचारी भाव कहते हैं और अविच्छिन्न प्रवाहवाला भाव स्थायीभाव कहलाता है।

जैसे सियमुख ससि भये नयन चकोरा। यहाँ सीताजी आलम्बन हैं। कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि उद्दीपन है। भये विलोचन चारु अचचल यह अनुभाव है। मानहु मदन दुदुभी दीन्ही। मनसा बिस्वबिजय कहँ कीन्ही। यह व्यभिचारी भाव है और यहां सीता विषयक जो प्रेमरूपा चित्तवृत्ति है यही रति स्थायी भाव है। यथा देखि सीय सोभा सुख पावा। हृदय सराहत बचन न आवा। यही स्थायी भाव उपर्युक्त आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव और विभाव से पुष्ट होकर रसरूप हो गया और शृङ्गार कहलाया।

इसी भाँति जहाँ सर्वेश्वर रामचन्द्र आलम्बन हैं। रामचरित्र का पाठ या श्रवण उद्दीपन है। पुलक और अश्रु अनुभाव है। हर्षादि व्यभिचारी भाव है। ये रामचरणरति स्थायी भाव को पुष्ट करके रसरूप मे परिणत कर देते हैं। यही भक्तिरस है।

परन्तु काव्य शास्त्र के पारङ्गत कहते हैं : रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्चित। स्त्री पुरुष की एक दूसरे के विषय मे प्रेम नामक जो चित्तवृत्ति होती है उसे रति स्थायी भाव कहते हैं। वही प्रेम यदि देवता गुरु तथा पुत्रादि के विषय मे हो तो भाव कहलाता है। इसके लिए वे कई सूक्ष्म कारण भी देते हैं। परन्तु वह केवल बाल की खाल निकालना है। उन कारणो पर विचार करने पर यद्यपि वे इस बात को स्पष्ट नही कहते। तात्पर्य इतना ही निकलता है कि कान्ता विषयक प्रेम जितना गाढा होता है उतना देवतादि विषयक प्रेम नहीं होता।

और बात भी ऐसी ही है। ससार मे ऐसा ही देखा जाता है। वेद भगवान् भी साक्षी देते हैं कि उस प्रेम मे न बाहर का ज्ञान रहता है न भीतर का ज्ञान रहता है। जब देवादि के विषय मे वैसा प्रेम नही होता तो उसे रस कैसे कहे ? स्वय गोस्वामीजी नौ रस मानते हैं। यथा : नवरस जप तप जोग बिरागा। भक्ति को रस मानने से तो दस हो जायँगे।

इस पर भरद्वाजजी कहते है कि यह ठीक है। पहिले ऐसा ही था। पर भरतजी

तुम्हारे प्रेम ने भक्तिभाव का रस होना सिद्ध कर दिया। यथा : परम प्रेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई : रामजी और भरत लाल के मिलन में दोनों भाइयों का प्रेम ऐसा है कि बाहर भीतर का ज्ञान जाता रहा। इसका प्रभाव भी दर्शकों पर ऐसा पड़ता है कि भरत मिलाप जैसा मेला दूसरा काशी में कोई होता नही। अत: अब से भक्तिरस की सिद्धि हुई।

नव बिधु बिमल तात जसु तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा ॥
उदित सदा अथइहि कबहू ना। घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना ॥१॥

अर्थ : हे तात ! तुम्हारा यश निर्मल नया चन्द्रमा है और रामजी के भक्त लोग उसके लिए कुमुद और चकोर हैं। यह सदा उदित रहेगा। कभी अस्त न होगा और संसाररूपी आकाश में यह घटेगा नही। दिन दिन दूना होता चला जावेगा।

व्याख्या : रामभक्ति रस साक्षात् अमृत है। उसकी स्थिति भरत यश रूपी चन्द्र में सदा रहेगी। इसी के दिखलाने के लिए कवि भरतयश को नव बिधु से उपमित करते हुए रूपक बाँधते हैं। भरद्वाजजी कहते हैं कि हे तात ! तुम्हारा यश, निर्मल नवीन चन्द्र है। निर्मल शब्द से कलङ्क रहित होना कहा और नवीन शब्द से उसे बढ़नेवाला कहा। नवीन : दुइज का चन्द्र नित्य वर्धनशील होता है और पुराना पूर्णिमा का चन्द्र ह्रासशील होता है। रामजी के दो प्रकार के भक्त पकज और कोक स्थानीय भरतयश चन्द्र के लिए क्रमश: कुमुद और चकोर स्थानीय हो जाते हैं। रामचन्द्र का यश सूर्य है और भरत का यश चन्द्र है। रामोपासक ही भरतयश के प्रेमी होते हैं। अत: जो रामयश के लिए पङ्कज हैं वे भरतयश के लिए कुमुद हो जाते हैं और जो रामयश के लिए कोक हैं वे भरतयश के लिए चकोर हो जाते है।

भरतयश चन्द्र की इस चन्द्र से बहुत विशेषता है। यह चन्द्र कभी उदय होता है और कभी अस्त हो जाता है। शुक्लपक्ष मे बढ़ता है और कृष्णपक्ष में घटता है। पर भरतयश चन्द्र अस्त होना जानता ही नही और न घटना जानता है। दिन दिन बढता ही जाता है। इस चन्द्र का प्रचार तो आकाश में है। पर भरतयश चन्द्र का प्रसार सम्पूर्ण संसार मे होगा। निर्गलितार्थ यह कि चन्द्रमा में बहुत दोष है। यथा : अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही। परन्तु भरतयश चन्द्र निर्दोष है और गुणाधिक्य भी इसमे है।

कोक तिलोक प्रीति अति करिही। प्रभु प्रतापु रबि छबिहि न हरिही ॥
निसि दिन सुखद सदा सब काहू। ग्रसिहि न कैकइ करतब राहू ॥२॥

अर्थ : त्रैलोक्यरूपी कोक इस पर अत्यन्त प्रीति करेगा। प्रभु रामजी के प्रताप का सूर्य इसकी छवि का हरण न करेगा। यह रात दिन सदा सबको सुख देनेवाला होगा और इसे कैकेयी का करतबरूपी राहु न ग्रस सकेगा।

व्याख्या : चन्द्र तो कोक को शोक देता है। परन्तु भरतयश चन्द्र के प्रति त्रिलोकरूपी कोक का अत्यन्त प्रेम है। चकोररूपी रामभक्त तो प्रेम करते ही हैं और

चन्द्र से न प्रेम करनेवाले कोक भी भरतयश चन्द्र से अत्यन्त प्रेम करते हैं। अर्थात् विरही को भी भरतयश चन्द्र शान्तिप्रद है।*

इस चन्द्र की छवि को सूर्य का प्रताप छीन लेता है। पर भरतयश चन्द्र की छवि को प्रभु प्रताप रवि नही छीनता। चन्द्रमा निसिदिन सबको सुखद नही होता। दिन के समय किसी को सुखद नही होता और रात्रि के समय विरहियो के लिए महा दुःखद है और भरतयश चन्द्र सदा सबको सुखद है।

राहु सूर्य और चन्द्र दोनो के तेज पर चोट करता है। इसी भाँति कैकेयी के करतबरूपी राहु ने राम और भरत दोनो के ऊपर अपना प्रभाव डाला। राम के प्रति यथा : तापस बेष बिसेष उदासी। चौदह् वर्ष राम बनबासी। भरत के प्रति यथा : देहु एक बर भरतहि टीका। सो रामरूपी सूर्य पर तो कैकेयी के करतब का प्रभाव पड गया। अर्थात् रामजी को वनवास हो गया। पर भरतजी पर प्रभाव न पड़ा। भरतजी ने टीका स्वीकार नही किया।

पूरन राम सुपेम पियूषा। गुर अवमान दोष नहिं दूषा॥
राम भगत अब अमिअ अघाहू। कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहू॥३॥

अर्थ : रामजी के प्रेमामृत से परिपूर्ण है और गुरुअपमान रूपी दोष से दूषित नही है। रामजी के भक्त लोग अब इस अमृत से परितृप्त हो। क्योकि तुमने इस अमृत को वसुधा मे भी सुलभ कर दिया।

व्याख्या : चन्द्र मे अमृत का निवास माना गया है। पर भरतयश चन्द्र तो राम सुप्रेमामृत से पूर्ण है। चन्द्र गुरुअपमान से दूषित हैं। यथा : ससि गुरुतियगामी नहुष चढेउ भूमि सुर यान। पर भरतयश चन्द्र गुरुअपमान दोष से दूषित नही हैं। गुरुअपमान का प्रसङ्ग आ पडा। महाराज दशरथ ने रामजी को युवराज पद देना कहकर स्त्रीवश हो भरत को राज्य दिया। यदि भरतजी स्वीकार कर लेते तो बडे भाई के अपमान से दूषित हो जाते। पर भरतजी ने वह राज्य अङ्गीकार नही किया। अथवा भरतजी ने पिता की आज्ञा भङ्ग किया। फिर भी गुरु अपमान दोष से दूषित नही हुए।

चन्द्रमा मे अमृत बसता है। पर वह किसी को पान करने के लिए नही मिलता। ससार मे उसका मिलना दुर्लभ है। अब इस अमृत के रसिक रामभक्त लोग इस अमृत को जो भरकर पीकर परितृप्त हो जायँ। भरतजी के द्वारा श्रीराम सुप्रेमामृत जगत् को सुलभ हो गया।

भूप भगीरथ सुरसरि आनी। सुमिरत सकल सुमंगल खानी॥
दसरथ गुन गन बरनि न जाही। अधिकु कहा जेहि सम जग नाही॥४॥

अर्थ राजा भगीरथ गङ्गा लाये जो स्मरण करने से सुमङ्गल की खानि है। राजा दशरथ के गुणगण का वर्णन नही हो सकता। अधिक के लिए क्या कहा जाय जिसके समान कोई भी नही है।

व्याख्या : भानु वंस भये भूप घनेरे। अधिक एक ते एक बड़ेरे। इनमे राजा भगीरथ ने तो लाकर गङ्गाजी को पृथ्वी पर बहा दिया। जिस गङ्गा को स्मरण करने से सब सुमङ्गल सिद्ध होते हैं। गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोक स गच्छति। गङ्गा गङ्गा ऐसा स्मरण करने से सब पाप कट जाते हैं। विष्णुलोक मे गति हो जाती है। इतना बड़ा कल्याण ससार का किया।

इसी वंश में राजा दशरथ हुए। इनके गुणो का वर्णन नही हो सकता। उनसे बड़ा कोई क्या होगा ? उनके बराबरी का ही ससार मे कोई नही हुआ। इसी बात को अगले दोहे मे स्पष्ट करते हैं।

दो. जासु सनेह सकोच बस, राम प्रगट भए आइ।
जे हर हिय नयननि कबहुँ, निरखे नही अघाइ ॥२०९॥

अर्थ : जिसके स्नेह और सङ्कोच के वश मे पड़कर रामजी आकर प्रकट हुए। जिन्हे महादेवजी हृदय की आँखो से जीभरकर कभी न देख सके।

व्याख्या : राजा भगीरथ विष्णुपदी गङ्गा लाये। राजा दशरथ स्वयं उस प्रभु को लाये जिनके चरणकमल से गङ्गाजी की उत्पत्ति है। राजा दशरथ ने स्वायम्भू मनु के रूप से बड़ा भारी तप करके रामजी का दर्शन पाया। संसार को भी यह दर्शन हो इसलिए पुत्ररूप मे उन्हें माँगा। उनके प्रेम और सङ्कोच से रामजी इस पृथ्वी पर आकर प्रकट हुए। नही तो रामजी का यथेष्ट दर्शन शिवजी को भी ध्यान मे दुर्लभ है। उस रामजी को जगत् के सब लोगो ने भौतिक नेत्रो से पेट भर देखा। अत: महाराज दशरथ राजा भगीरथ से भी बढ गये।

कीरति बिधु तुम कीन्ह अनूपा। जहँ बस राम प्रेम मृगरूपा ॥
तात गलानि करहु जिय जाएँ। डरहु दरिद्रहि पारस पाएँ ॥१॥

अर्थ : तुमने बडा अनोखा कीर्तिरूपी चन्द्रमा बनाया जहाँ राम का प्रेम मृग रूप होकर बसता है। हे तात ! तुम व्यर्थ ही जी मे ग्लानि करते हो। पारस पाने पर भी तुम दरिद्र को डरते हो।

व्याख्या : राजा भगीरथ को भरद्वाजजी ने गङ्गाजी के लाने के कारण महा यशस्वी कहा। महाराज दशरथ का यश उनसे अधिक हुआ। उन्होंने स्वयं राम को लाकर सबके लिए उनका दर्शन सुलभ कर दिया। परन्तु हे भरतजी जिस यशचन्द्र को तुमने बनाया उसकी उपमा नही है। इस चन्द्र में तो राम का प्रेम भक्त के प्रति मृग रूप से बसता है। यथा : जग जप राम राम जप जेही। राम सम्बन्धी प्रेम तो अमृतरूप से इस चन्द्र मे पूर्ण तो है ही। यथा : पूरण राम सुप्रेम पियूषा। राम प्रेम भक्त के प्रति इसमें मृगरूप से बसता है। यह रामप्रेम मृगरूप हैं। वही स्थिर नही रहता। यथा : बोले बिहँसि महेस तब ग्यानी मूढ न कोइ। जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ। पर तुम्हारे यशचन्द्र मे यह मृग स्थिर होकर बस गया

है। इसे छोडकर कही जाता ही नही। यथा सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपच महँ सुना न दीसा। अत तुम्हारी महिमा सबसे बडी है।

तुम तो व्यर्थ ही मन मे ग्लानि करते हो। तुम रामोपासक परहितनिरत हो। तुम्हे दु ख कहाँ ? यथा कबहुँक दु ख सबकर हित ताके। तेहि कि दरिद्र परस मनि जाके। ग्लानि का कारण तुम्हारे सन्निकट आ नही सकता। अत व्यर्थ दु ख मत मानो।

सुनहु भरत हम झूठ न कहही। उदासीन तापस बन रहही ॥
सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसनु पावा ॥२॥

अर्थ भरतजी सुनो ! हम झूठ नही कहते क्योकि उदासीन हैं। तपस्वी हैं और वन मे रहते हैं। सब साधनो की सुन्दर सफलता लक्ष्मण राम और सीताजी का दर्शन पाना है।

व्याख्या भरद्वाजजी कहते हैं कि जो बात मैं कहूँगा वह हठात् मनमे न बैठेगी। अत यह कहना आवश्यक पड गया कि मैं झूठ नही कहता। अत मेरी बात को अर्थवाद न मान लेना। क्योकि झूठ तो रागद्वेषवाले पुरुष विषय लोलुप तथा जनसमाज मे रहनेवाले बोलते हैं। मै उदासीन हूँ। तपस्वी हूँ और वन मे रहता हूँ। मुझे किसी से रागद्वेष नही। मैं झूठ क्यो बोलूँगा। सत्य से कर्मफल को आश्रय मिलता है। मैं यदि झूठ बोलूँ तो तपस्या ही नष्ट हो जाय। मै वन मे रहता हूँ। किसी से कोई प्रयोजन नही। असत्य तो किसी प्रयोजन से बोला जाता है।

इतनी भूमिका के पश्चात् भरद्वाजजी ने निम्नलिखित बात कही। लक्ष्मणजी रामजी तथा सीताजी का दर्शन पाना सब साधनो की सुन्दर सफलता है। यथा आजु सफल तपु तीरथ त्यागू। आजु सफल जप जोग बिरागू। सफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुम्हहि अवलोकत आजू। लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरे दरस आस सब पूजी।

तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा ॥
भरत धन्य तुम्ह जस जग जयेऊ। कहि अस पेम मगन मुनि भयेऊ ॥३॥

अर्थ उस फल का फल तुम्हारा दर्शन है। प्रयागराज के सहित हमारा अहोभाग्य है। भरतजी ! धन्य हो। तुमने यश से जगत् को जीत लिया। ऐसा कहकर मुनि जी प्रेम मे मग्न हो गये।

व्याख्या लखन रामजानकी का दर्शन तो दिव्य फल है। उस फल मे भी फल लगता है। यथा मनु सतरूपा ने तप करके राम जी का दर्शन पाया। वह दर्शन उनके तप का फल था। पर उस फल मे भी फल लगा। सरकार बोले माँगहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि। सो मैंने जो कुछ साधन किया था उसके फल रूप मे रामजानकी तथा लक्ष्मणजी का दर्शन लाभ किया और उस फल का फल है कि

तुम्हारा दर्शन पाया। इस दर्शन से मै भी कृतार्थ हुआ और प्रयागराज भी कृतार्थ हुए। क्योकि महात्मा लोग ही तीर्थ को तीर्थ बनाते हैं।

भरद्वाजजी कहते हैं कि भरतजी तुम धन्य हो। तुमने यश से ससार को जीत लिया। शस्त्रबल अस्त्रबल सैन्यबल से ससार के जीतनेवाले धन्य नही हैं। ऐसा कहकर मुनिजी प्रेममग्न हो गये। आगे कुछ नही कह सके। भरतजी चुपचाप सुन रहे हैं। मुनिजी चार दोहे तक बोलते ही गये। प्रेम उनका बढता ही गया। यहाँ तक कि प्रेम मे मग्न होकर चुप हो गये।

सुनि मुनि बचन सभासद हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥
धन्य धन्य धुनि गगन प्रयागा। सुनि सुनि भरतु मगन अनुरागा॥४॥

अर्थ . मुनिजीका वचन सुनकर सभासद हर्षित हुए और साधु साधु ऐसी प्रशसा करके देवताओं ने फूल बरसाये। आकाश मे और प्रयागराज मे धन्य धन्य की ध्वनि गूँज उठी। उसे सुन सुनकर भरतजी प्रेम मे मग्न हो रहे थे।

व्याख्या : जिस समय भरतजी वहाँ गये थे मुनियो की सभा लगी थी। यथा · तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा। जाहि जे मज्जन तीरथ राजा। सो सभा की सभा ने मुनिजी के वचन का अनुमोदन हर्षित होकर किया। भरद्वाजजी के वचन ऐसे प्रभावपूर्ण थे कि आकाश से देवताओ ने उनकी प्रशसा करके पुष्पवृष्टि की।

आकाश मे देवताओ की धन्य धन्य ध्वनि और प्रयागराज मे मुनियो की धन्य धन्य ध्वनि हुई। भगवती सत्योक्ति की पूजा दोनो लोको मे हुई। कहनेवाले मग्न और सुननेवाल भरतजी प्रेम मे मग्न हो रहे थे।

दो पुलक गात हियँ रामु सिय, सजल सरोरुह नयन।
करि प्रनामु मुनि मंडलिहि, बोले गदगद बयन॥२१०॥

अर्थ : शरीर मे पुलक और हृदय मे राम जानकी और नेत्रकमल अश्रु से पूर्ण थे। इस भाँति भरतजी मुनि मण्डली को प्रणाम करके गद्‌गद वचन बोले।

व्याख्या : पुलकगात और सजल सरोरुह नयन से भरतजी के तन की दशा कही। गद्‌गद बयन कहकर वाणी की दशा कही · हिय राम सिय से मन की दशा कही। इस भाँति प्रेम से पूर्ण भरतजी मुनिमण्डली को प्रणामकर बोले। भाव यह कि मुनिजी ने जो कुछ कहा है भरतजी का दु ख उससे व्यतिरिक्त है। यदि वही दु ख होता तो बोलने के लिए अवकाश नही था।

मुनि समाजु अरु तीरथ राजू। साँचिहु सपथ अघाइ अकाजू॥
एहि थल जौ किछु कहिअ बनाई। एहि सम अधिक न अघ अधमाई॥१॥

अर्थ : मुनियो का समाज और तीर्थों के राजा प्रयागराज यहाँ सच्चा शपथ लेने से भी हानि की पराकाष्ठा है। यहाँ पर यदि कुछ बनाकर कहा जाय तो इसके बराबर या अधिक पाप और नीचता नही है।

व्याख्या : सच्ची शपथ लेना भी धर्मशास्त्र से गर्हित है। फिर झूठी शपथ के लिए क्या कहा जाय। उससे तो बड़ा भारी पाप होता है। कोई अधम ही ऐसे पाप करने का दु साहस करेगा। उसमे भी तीर्थं पुण्य पाप के लिए उर्वरा भूमि है। इसमे किया हुआ पाप शतगुण सहस्रगुण अधिक हो जाता है। यह तो तीर्थराज प्रयाग है। तिस पर जङ्गम तीर्थराज साधु समाज के बीच मे बैठा हुआ हूँ। मुनिजी ने कहा था : सुनहु भरत हम झूठ न कहही। यहाँ पर भरतजी कहते हैं कि मैं झूठ नही कहता हूँ। मुनिजी यति हैं। अत झूठ न कहने का कारण अपनी विरक्तता बतलाते हैं। भरतजी गृहस्थ है। अत झूठ न कहने का कारणरूप से स्थल की महत्ता कहते हैं। भाव यह कि अपनी अपनी बातो पर सन्देह दोनो महापुरुषो को है कि श्रोता झूठ समझेंगे।

अत' मुनि समाज अरु तीरथ राजू कहकर भरतजी शपथ ग्रहण कर रहे हैं। कहते है कि इस स्थल मे सच्ची बात मे भी यदि अलङ्कारादि रचना से कुछ बनावट की जाय तो इसके समान पाप नही है। नहि असत्य सम पातक पुजा। गिरि सम होहि कि कोटिक गुजा। उस असत्य का पुट भी यदि इस स्थल मे आ जाय तो उसके समान पाप कोई नही और ऐसे पाप करनेवाले सा अधम कोई नही। इससे अधिक पाप और अधमाई क्या होगी। भाव यह कि जो कुछ मै कहूँगा वह निवारण सत्य होगा। अर्थवाद को भी स्थान नही है।

तुम्ह सर्बग्य कहउँ सतिभाऊ। उर अतरजामी रघुराऊ॥
मोहि न मातु करतब कर सोचू। नहि दुखु जियँ जगु जानिहि पोचू॥२॥

अर्थ . आप सर्वज्ञ है। मै सच्चे भाव से कहता हूँ। रामजी हृदय की बात जाननेवाले है। मुझे माता की करतूति का सोच नही है और न इस बात का दु ख है कि ससार मुझे नीच समझेगा।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि तिस पर यह बात है कि आप सर्वज्ञ हैं। आपके सामने बनावट नही चल सकती और न जिसके विषय मे कुछ कहना है उसी के सामने कोई बनावट चल सकेगी। क्योकि रघुराज रामजी उर अन्तर्यामी हैं। आपने कहा : तुम गलानि जिय जनि करहु समुझि मातु करतूति। अत मुझे माता की करतूति का सोच नही है। आपने कहा . तात गलानि करहु जिय जायें। अतः मुझे ससार के यह समझने का कि भरत नीच हैं : कोई दु ख नही है। क्योकि श्री मुख से उसका निराकरण हो चुका।

नाहिन डरु बिगरिहि परलोकू। पितहु मरन कर मोहि न सोकू॥
सुकृत सुजस भरि भुवन सुहाए। लछिमन राम सरिस सुत पाए॥३॥

अर्थ : परलोक बिगड़ने का भी मुझे डर नही है। पिताजी के मरने का भी मुझे सोच नही है। उनका सुन्दर पुण्य और कीर्ति ससार मे भर उठी है और लक्ष्मण तथा राम ऐसे उन्हे पुत्र मिले हैं।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं : आपने कहा कि करतेहु राज त तुम्हहि न दोषू। रामहि होत सुनत संतोषू। सो मुझे इस बात का डर नहीं है कि राज्य ग्रहण से परलोक बिगड़ेगा। अथवा जो मैं पिता का वचन न मानकर जा रहा हूँ इससे परलोक बिगड़ेगा। इस बात का डर मुझे नहीं है। भले ही मेरा परलोक बिगड़े। पर रामजानकी और लक्ष्मण को सुख हो।

और क्या कहें पिताजी के मरने का भी मुझे सोच नहीं है। यथा : भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौन। अब गुरु मुख से सुने हुए अशोच्य प्रतिपादक प्रसङ्ग के अनुकूल पिता का अशोच्य होना कहते हैं। यथा :

सोचनीय नहि कोसल राऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
भयउ न अहइ न अब होनिहारा। भूप भरत जसपिता तुम्हारा॥
बिधि हरिहर सुरपति दिसिनाथा। बरनहि सब दसरथ गुनगाथा॥
दो. कहहु तात केहि भाँति कोउ करहि बड़ाई तासु।
रामलखन तुम शत्रुहन सरिस सुअन सुचिजासु॥
सब प्रकार भूपति बड़ भागी। बादि बिषादु करिअ तेहि लागी॥

राम बिरह तजि तनु छनभंगू। भूप सोच कर कवनु प्रसंगू॥
राम लखन सिय बिनु पग पनही। करि मुनि बेषु फिरहि बन बनही॥४॥

अर्थ : रामजी के विरह में क्षणभङ्गुर शरीर का परित्याग किया। इसलिए महाराज के शोक का तो कोई प्रसङ्ग नहीं है। परन्तु राम लक्ष्मण और सीताजी पावों में बिना जूता पहिने मुनिवेष धारण किये हुए वन वन में फिर रहे हैं।

व्याख्या : गुरुजी ने जो : सब प्रकार भूपति बड़ भागी कहा था उसी को स्पष्ट करते हुए भरतजी कहते हैं कि उनके मरण की विधि में भी उनके बड़े भाग्य ने उनका साथ दिया। यथा : राम बिरह दसरथ मरन मुनि मन अगम सुमीचु। राम विरह मे प्राण त्यागना यह इतने बड़े भाग्य की बात है कि मुनि लोग मन से भी इसके पाने की आशा नहीं रखते। इसलिए भरतजी कहते हैं कि चक्रवर्तीजी के सोच करने के लिए तो कोई प्रसङ्ग ही नहीं है।

उपर्युक्त ये चार बातें ही ऐसी थी जिसके लिए दु:ख होना चाहता था। सो उनका मुझे दु:ख नहीं है। अब जिस बात का दु:ख है उसे कहते हैं। राम लखन जिनके बारे में निषादराज कहता है :

मातु पिता परिजन पुरबासी। सखा सुसील दास अरु दासी॥
जोगवहि जिन्हहि प्रान की नाईं। महि सोवत तेइ रामु गोसाईं॥
पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ। ससुर सुरेस सखा रघुराऊ॥
रामचंदु पति सो बैदेही। सोवत महि बिधि बाम न केही॥

लक्ष्मणजी के विषय मे स्वय भरतजी कह चुके हैं। यथा :

लालन जोगु लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहिं प्रान पियारे॥
मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। तात बाउ तन लाग न काऊ॥
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती।

इन तीनो मूर्तियो के पैरो मे कुशकण्टकादि से रक्षा के लिए जूते नही हैं। शीत ऊष्ण निवारण के लिए कपडे नही हैं। मुनि का वेष बनाये हुए हैं। त्राण के लिए कोई स्थान नही है। वन वन मे घूम रहे है। राजा का रङ्क की भाँति रहना अति कष्ट कारक है।

दो. अजिन बसन फल असन महि, सयन डासि कुस पात।
बसि तरु तर नित सहत हिम, आतप बरषा बात॥२११॥

अर्थ मृगछाला पहनना, फलो का भोजन, कुश और पत्ते बिछाकर पृथ्वी पर सोना और पेडो के नीचे रहकर नित्य धूप वर्षा और वात का सहन करना।

व्याख्या . जीवन के जितने आवश्यक साधन हैं उन सब में ही तीनो मूर्तियो को अत्यन्त कष्ट हो रहा है। बहुमूल्य सुखप्रद वस्त्र धारण करनेवालो को मृगचर्म पहनना पड रहा है। अमृतवत् सुस्वादु भोजन करनेवालो को अन्न दुर्लभ है। वन्य फलो पर गुजारा करना पड रहा है। क्षीर फेन सम मृदु बिछावन युक्त मञ्च : पलङ्ग पर सोनेवालो को कुश पल्लव बिछाकर पृथ्वी पर सोना पड रहा है। महल मे रहनेवाले पेड तले धूप पाला और झझावात सह रहे हैं। सुख के सब साधन सुलभ हैं। पर उनके उपभोग से वे बिना अपराध के वञ्चित किये गये है। भरतजी कहते हैं कि इन चार बातो का मुझे दु ख है।

एहि दुख दाह दहइ दिन छाती। भूख न बासर नीद न राती॥
एहि कुरोग कर औषधु नाँही। सोधेउँ सकल बिस्व मन माँही॥१॥

अर्थ : इस दु ख की जलन से सदा छाती जला करती है। न दिन को भूख लगती है और न रात को नीद लगती है। इस कुरोग की कोई दवा नही है। मैंने मन ही मन सारा विश्व ढूँढ डाला।

व्याख्या चिन्ता ज्वाल सरीर वन दावा लगि लगि जाय। प्रगट धुआँ नहिं देखिये उर अतर धुँधुवाय। उर अतर धुँधुवाय जरै जिमि काँच की भट्टी। जरिगे लोहू मास रह गयी हाड की ठट्टी। कह गिरिधर कवि राय सुनोरे मेरे मीता। सो नर कैसे जियै जासु उर व्यापै चीता।

सो भरतजी को रामजी की चिन्ता रूपी ज्वाला हृदय को जला रही है। क्षण भर भी शान्त नही होती। भूख और नीद जाती रही। कही विश्राम नही। यथा : निसि न नीद दिन भूख नहिं भरत विकल सुठि सोच। नीच कीच विच मगन जस मीनहि सलिल सकोच।

यह कुरोग है। इसने नित्यरोग क्षुधा निद्रा को भी दबा लिया है। यथा :

कहा भलो धौं भयो भरत को लगे तरुन तन दौन। अथवा इसकी दवा नहीं है इसलिए कुरोग है। यह मानसिक रोग है। इसके शान्ति के उपाय ढूँढने मे भरतजी कहते हैं कि मैंने मन से सम्पूर्ण विश्व ढूँढ डाला। सद्गुरु वैद्य का भी वचन सुन चुका। कोई औषध हाथ न लगा।

मातु कुमत बढई अघ मूला। तेहि हमार हित कीन्ह बसूला ॥
कलि कुकाठ करि कीन्ह कुजन्त्रू। गाडि अवध पढि कठिन कुमन्त्रू ॥२॥

अर्थ माता का बुरा विचार ही पापो का मूल बढई हुआ। उसने हमारे हित को बँसूला बनाया। उसने कलि के कुकाठ का कुयन्त्र बनाया और कठिन कुमन्त्र को पढकर अवध मे गाड दिया।

व्याख्या भरतजी का कहना है कि इस दु ख से मै ही दु खी नही हूँ। सम्पूर्ण प्रजा मण्डल का यही हाल है। अचल विपत्ति की नीव पड गयी। सम्पूर्ण अयोध्या उजाड हुआ चाहती है। इसी बात को यन्त्र के रूपक मे कहते हैं। देश के उजाडने के लिए बढई बँसूला द्वारा बहेडे के काठ का यन्त्र बनाता है। कलि शब्द का अर्थ बहेडे का वृक्ष है और विरोध अर्थ भी है। उस यन्त्र को कुमन्त्र पढकर गाडा जाता है। इससे वह देश उजाड हो जाता है। सिवा उस यन्त्र को उखाड फेंकने के देश के बसने का कोई उपाय नहीं। यहाँ कैकेयी का कुविचार ही बढई हुआ। उसने भरतजी के हित को बँसूला बनाकर विरोध रूपी काठ से वह यन्त्र तैयार किया और तापस वेष बिसेष उदासी। चौदह बरिस राम बनबासी। इस मन्त्र को पढकर अयोध्या मे गाड दिया अर्थात् वरदान माँग लिया। अघमूला। यथा काई कुमति कैकेई केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी। अवधि पाठ मानने से भी अर्थ वही रहेगा। पर गाडने के स्थान का निश्चय नही हो सकेगा।

मोहि लगि यहु कुठाटु तेहि ठाटा। घालेसि सबु जगु बारहँबाटा ॥
मिटइ कुजोगु राम फिरि आएँ। बसै अवध नहिं आन उपाएँ ॥३॥

अर्थ उसने यह कुठाट मेरे लिए रचा और सारे लोगो को बारह बाट करके नष्ट कर दिया। रामजी के लौटने से यह कुयोग मिट सकता है। अयोध्या के बसने का उपाय यही है। दूसरा नहो है।

व्याख्या भरतजी कहते हैं कि यह कुसाज मेरे हित के लिए साजा गया। इससे साजनेवाले की महामूर्खता द्योतित किया। यन्त्र बनानेवाले ने यह न समझा कि इससे भरत का हित नही हो सकता उलटा देश उजड जायगा। जिस भाँति रामचरण मे लीन रहने से अन्त करण म स्वाराज्य रहता है। परन्तु बहिर्मुख होने से दश इन्द्रियाँ और मन बुद्धि का मार्ग पकडकर बारह बाट हो जीव दीन हो जाता है। उसी भाँति रामजी के रहने से सब सुख रहेगा और उनके वन जाने से सम्पूर्ण राज्य नष्ट हो जायगा। रामजी का लौटना ही उस यन्त्र का उखाडना है। वे यदि फिर आवें तो अयोध्या बसती है। नही तो दूसरा उपाय नहीं है।

भरत बचन सुनि मुनि सुखु पाई । सबहि कीन्ह बहु भाँति बडाई ॥
तात करहु जनि सोचु बिसेखी । सब दुख मिटिहि राम पग देखी ॥४॥

अर्थ : भरत के वचन को सुनकर मुनि ने सुख पाया और सबने बहुत प्रकार से प्रशसा की और बोले हे तात ! विशेष सोच न करो। रामजी के चरण दर्शन से सब दु ख मिट जायगा।

व्याख्या : भरतजी का वचन सुनकर मुनि भरद्वाज को सुख हुआ। भरतजी का श्रीराम चरणो मे प्रीति सूचक वचन सुनने से परमार्थपद परम सुजान को सुख होना स्वाभाविक है। सबने बहुत भाँति से भरतजी की प्रशसा की अर्थात् भरतजी के भायप, भगति, भरोस, भलाई की बडाई की।

मुनिजी सोच करने को नही रोकते। क्योकि यह सोच भी कल्याणदायक है। विशेष सोच न करने की सलाह देते हैं। क्योकि दूसरी दवा है और वह यह सब दुख मिटिहि रामपद देखी। भरतजी पहिले कह भी चुके है देखे बिन रघुबीर पद जिय की जरनि न जाय।

इस भाँति सोच को कम करने का आदेश देकर भोजन शयन के लिए आग्रह करते है।

दो. करि प्रबोधु मुनिवर कहेउ, अतिथि प्रेमप्रिय होहु।
कंद मूल फल फूल हम, देंहि लेहु करि छोहु ॥२१२॥

अर्थ : समझाने के बाद मुनिराज ने कहा कि अब तुम प्रेमप्रिय अतिथि होओ और कन्द मूल फल फूल जो कुछ हम दें कृपा करके उसे स्वीकार करो।

व्याख्या : आतिथ्य सत्कार की स्वीकृति के लिए पहिले प्रबोध किया। चित्त का कष्ट मिटाया। उचित आतिथ्य की योग्यता अपने मे न समझकर प्रेम प्रिय होहु कहते है। अर्थात् मेरे प्रेम को स्वीकार करो। तुम्हे किसी वस्तु की आवश्यकता नही। कृपा करके मेरा दिया हुआ फल फूल स्वीकार करो। मुझ पर छोह करो। मुनिजी भरतजी की महामहिमा जानते हैं। यथा : जयति बिबुधेश धनदादि दुर्लभ महाराज सम्राज सुखप्रद बिरागी।

सुनि मुनि बचन भरत हियँ सोचू । भयेउ कुअवसर कठिन सँकोचू ॥
जानि गरुइ गुरु गिरा बहोरी । चरन बंदि बोले कर जोरी ॥१॥

अर्थ : मुनिजी का वचन सुनकर भरतजी के मन मे सोच हुआ कि कुअवसर मे कठिन सङ्कोच आ पड़ा। फिर गुरु की वाणी का गौरव समझकर चरणो की वन्दना करते हुए हाथ जोडकर बोले।

व्याख्या : भरतजी समझ गये कि भरद्वाजजी हम लोगो को विश्राम देना चाहते हैं। परन्तु यह अवसर सुखोपभोग का नही है। मै सेवा धर्म मे हूँ। जब तक स्वामी सुखोपभोग स्वीकार न करें तब तक सेवक सुखोपभोग कैसे करे ! अथवा

भरतजी ने यह सोचा कि मैं तीर्थ मे आया हूँ। यहाँ दान करना प्राप्त है। ब्राह्मण का आतिथ्य कैसे स्वीकार करूँ। परन्तु भरद्वाजजी के वचन का उल्लघन भी नही किया जा सकता। वर्णानां ब्राह्मणो गुरु। तिस पर भरद्वाजजी तापस शम दम दया निधान और परमार्थ पथ मे परम सुजान हैं। ये तो नितरा गुरु हैं।

ऐसे अवसर पर गुरुगिरा ही प्रमाण है। जहाँ धर्म दूसरा हो और गुरु आज्ञा कुछ भिन्न हो तो गुरु आज्ञा ही बडी मानी जाती है। गुरु की आज्ञा पालन मे उचित अनुचित विचार को स्थान नही है। यथा कह सिव जदपि उचित अस नाँहीं। नाथ वचन पुनि मेटि न जाँही।

सिर धरि आयेसु करिअ तुम्हारा। पर धरम येहु नाथ हमारा॥
भरत वचन मुनिवर मन भाए। सुचि सेवक सिष निकट बोलाए॥२॥

अर्थ : आप की आज्ञा को शिरोधार्य करके पालन करूँ। यही हे नाथ! मेरा परम धर्म है। भरत के वचन मुनिराज को अच्छे लगे। उन्होंने पवित्र सेवको और शिष्यों को निकट बुलाया।

व्याख्या : सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धर्म यह नाथ हमारा। यही अर्धाली ज्यों की त्यों उस प्रकरण मे आयी है। जिसमे रामजी उमा के स्वीकार करने के लिए शङ्करजी से अनुरोध करते हैं। वहाँ शङ्करजी की प्रतिज्ञा थी कि एहि तन सतिहि भेट मोहि नाँही और रामजी का अनुरोध इसके विपरीत था। यथा : जाइ विवाहहु सैलजहि यह मोहि माँगे देहु। यहाँ शिवजी को भी कुअवसर कठिन सङ्कोच पडा था। सामान्य धर्म का परम धर्म से बाध होता है। गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करना परम धर्म है। अत भरतजी ने अपने सामान्य धर्म के प्रतिकूल शिवजी की भाँति गुरु आज्ञा को परम धर्म मानते हुए आतिथ्य का स्वीकार कर लिया।

भरतजी की स्वीकृति से मुनिजी को प्रसन्नता हुई। अत: मन भाए लिखते हैं। भरतजी से छोह करने के लिए मुनिजी ने कहा था। सो भरतजी ने छोह कर दिया। अत आतिथ्य सत्कार की तैयारी करनी चाहिए। भरतजी के आतिथ्य का अर्थ है सम्पूर्ण सेना तथा अयोध्यावासियो का आतिथ्य। इसलिए जितने व्यक्ति मुनिजी की सेवा मे थे क्या शिष्य क्या भृत्य जो सपने में भी अपने धर्म से विचलित नही हुए थे उन्हें निकट बुलाया। भरतजी के आतिथ्य मे केवल पुण्यात्मा लोगों से ही काम लिया जायगा। रामजी को मार्ग प्रदर्शन के लिए भी भरद्वाजजी ने इस बात का ध्यान रक्खा। यथा : मुनि बटु चारि सग तब दीन्हे। जिन बहु जन्म सुकृत सब कीन्हे।

चाहिअ कीन्ह भरत पहुनाई। कंद मूल फल आनहु जाई॥
भलेहि नाथ कहि तिन्ह सिर नाए। प्रमुदित निज निज काज सिधाए॥३॥

अर्थ : उनसे कहा कि भरत की पहुनाई करनी चाहिए। इसलिए कन्द मूल

फल जाकर ले आवो। उन्होने कहा हे नाथ! बहुत अच्छा। सिर नवाया और प्रसन्न होकर अपने अपने काम पर चले गये।

व्याख्या : भरत की पहुनाई करनी चाहिए। इतने मे ही जो कुछ कहना था मुनिजी ने कह दिया। जगत् के भरण पोषण करनेवाले भरत की पहुनाई करनी है। अत. इनके अनुरूप कन्द मूल फल ले आवो। मुनिजी के शिष्य सेवक बडे पटु हैं। मुनिजी के पास अत्युत्तम फल मूलकन्द तैयार भी रहता है। रामजी के सत्कार के समय कहा गया है : कन्द मूल फल अकुर नीके। दिये आनि पुनि मनहु अमीके।

वे सेवक और शिष्य बडे शुचि थे। आज्ञा पाकर बडे प्रमुदित हुए। खोज खोजकर अधिक मात्रा मे जल्दी से लाना है। अतः तुरन्त चल दिये और छितरा कर चले फल लाने को कोई फलवाले वृक्षो की ओर चले। कन्द लाने कोई उस ओर चले जिधर उसकी बहुतायत थी। सब ने काम बाँट लिये। इसलिए निज निज काज सिधाये कहा : ऋषियो के सत्कार के लिए तो कन्द मूल ही जायगा।

मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता। तसि पूजा चाहिअ जस देवता॥
सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आई। आयसु होइ सो करहि गोसाईं॥४॥

अर्थ : मुनिजी को सोच हुआ कि मैंने पाहुन · मेहमान तो बड़ा नेवत दिया है। अब जैसा देवता हो वैसी पूजा भी चाहिए। यह सुनकर ऋद्धि और अणिमादि सिद्धि आयी। बोली हे स्वामिन् जो आज्ञा हो सो हम करें।

व्याख्या : नेवता देना तो सहल है। पर आतिथ्य सत्कार कठिन कार्य है। देवता के स्वरूपानुकूल पूजा होनी चाहिए। बिश्व भरण पोषण कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई। अतः भरत की महामहिमा है। ये बड़े पाहुन हैं। इनके स्वरूपानुकूल आतिथ्य कैसे हो मुनिजी इस सोच मे पडे। रामजी के आने पर सोच नही हुआ। क्योकि उनका मुनिव्रत वेप अहार था। कन्द मूल फल से काम चल गया। पर भरत के लिए तो यह बात नही है और राज समाज के साथ हैं। अतः इनका आतिथ्य तो बडे ठाट वाट से होना चाहिए।

परन्तु भरद्वाजजी की तपस्या और त्याग ऐसा है कि ऋद्धि सिद्धि शिष्यों से पूछती रहती हैं कि हम लोगो की सेवा का समय आ पडे तो बतलाना। ऋषिजी से जाकर पूछने का उनका साहस नही पड़ता। ऋषिजी को उनकी आवश्यकता नही। आज शिष्यो मे दौड़ धूप देखकर पूछा। अपना अवसर जानकर स्वय मुनिजी की सेवा मे उपस्थित हो गयी और आज्ञा माँगने लगी कि हमलोगो को भी कुछ सेवा के लिए हुकुम हो।

दो. राम बिरह ब्याकुल भरतु, सानुज सहित समाज।
पहुनाई करि हरहु स्रमु, कहा मुदित मुनिराज॥२१३॥

अर्थ : मुनिराज ने प्रसन्न होकर कहा कि रामजी के विरह मे भरतजी अपने

छोटे भाई और समाज के साथ विकल हैं। सो तुमलोग उनका आतिथ्य सत्कार करके थकावट दूर करो।

व्याख्या : ऋद्धि सिद्धि के इस समय आ जाने से मुनिराज प्रसन्न हो उठे। बोले भरतजी शत्रुघ्नजी और उनका सारा समाज रामविरह से व्याकुल है। मनसे पीड़ित शरीर से श्रमित है। यथा : भरत पयादेहि आये आजू। भयउ दुखित सुनि सकल समाजू। झलका झलकत पायन्ह कैसे। पंकज कोस ओस कन जैसे। सो इन लोगो की ऐसी पहुनाई हो कि इन लोगो का चित्त पहुनाई के सुख की ओर खिंच आवे और कुछ समय के लिए विरह भूल जांय और श्रम जाता रहे।

रिधि सिधि सिर धरि मुनिवर बानी। बड़भागिनी आपुहि अनुमानी॥
कहहिं परसपर सिधि समुदाई। अतुलित अतिथि राम लघु भाई॥१॥

अर्थ : ऋद्धि सिद्धि ने श्रेष्ठ मुनिजी की वाणी को शिरोधार्य करके अनुमान किया कि हम लोग बडी भाग्यवान् है। आपस मे सिद्धि लोग कहती हैं कि रामजी के छोटे भाई ऐसे अतिथि हैं जिनकी तुलना नही।

व्याख्या : ऋद्धि साक्षात् कुबेरजी की धर्मपत्नी हैं। सिद्धियाँ आठ हैं। यथा : १. अणिमा २ लघिमा ३ प्राप्ति ४ प्राकाम्य ५ महिमा तथा ६ ईशित्व ७ वशित्व च ८ तथा गरिमा। ऋद्धि और सिद्धियों ने भरद्वाजजी की आज्ञा शिरोधार्य किया। आज तक मुनिजी ने कभी कोई काम नही लिया था। अतः उन लोगो ने अनुमान किया कि हम लोगो का बडा भाग्य जगा है। तभी मुनिजी ने सेवा स्वीकार की है। सानुज सहित समाज भरतजी के पहुनाई करने का अवसर मिला और इस समय हमारी की हुई पहुनाई मुनिजी की मानी जायगी। अतः भरतजी को स्वीकार करना पडेगा। इससे भी अपने को बड़भागिनी माना। यथा : सीतापति सेवकाई। कामधेनु सत सरिस सोहाई। तथा ' मानत सुख सेवक सेवकाई।

सिद्धि लोग आपस मे बात करने लगी कि तस पूजा चाहिअ जस देवता और भरतजी तो रामजी के छोटे भाई हैं। अत बेजोड अतिथि हैं। इनके स्वरूपानुकूल पूजा कैसे बनेगी ? भरतजी के बेजोड़ होने के प्रमाण मे स्वय कवि कहते हैं : निरवधि गुन निरुपम पुरुष भरत भरत सम जानि। कहिअ सुमेरु कि सेर सम कविकुल मति सकुचानि।

मुनि पद बंदि करिअ सोइ आजू। होइ सुखी सब राज समाजू॥
अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना॥२॥

अर्थ : मुनिजी के चरणवन्दन करके आज ऐसा ही काम करना चाहिए जिसमे सारा राजसमाज सुखी हो। ऐसा कहकर उन लोगों ने ऐसे सुन्दर सुन्दर घर बनाये। जिन्हे देखकर विमान विलख उठें।

व्याख्या : भरद्वाजजी कुबेरजी के नाना हैं। ऋद्धि सिद्धि ने सलाह की कि उनके चरणो की वन्दना करके ऐसा तो कर ही डालना चाहिए। जिसमें यदि

भरतजी को सुखी न कर सकें तो उनका समाज तो सुखी हो जावे। ऋद्धि सिद्धि को आशा नही है कि वे भरतजी को सुखी करने मे समर्थ होगी। तब उन्होने सोचा कि यदि उनके समाज को हम लोग सुखी बना सकी तो यह भी भरतजी के सुखी होने का कारण होगा।

ऐसा विचार करके उन लोगो ने अपनी दिव्य शक्ति से क्षणभर मे ऐसे घर बनाये जिनके सामने विमान भी कुछ न ठहरें। घर ही सुख के समान का आश्रय है। अत यही सम्पूर्ण भोग का उपलक्षण है। इसलिए पहिल गृह रचे। विमान की उपमा देकर उन्हे दैवी भोगो से परिपूर्ण कहा तथा अत्यन्त ऊँचा कहा अथवा उन्हे मङ्गम गृह कहा। समाज का टिकाना है। इसलिए नाना प्रकार के गृह बनाये।

भोग बिभूति भूरि भरि राखे। देखत जिनहि अमर अभिलाखे ॥
दासी दास साजु सब लीन्हे। जोगवत रहहिं मनहि मनु दीन्हे ॥३॥

अर्थ उन घरो मे बहुत सा भोग और ऐश्वर्य भर रक्खा। जिन्हे देखकर देवताओ का जी ललच जाय। दासी दास सब प्रकार क सामान लिये हुए मन मे मन मिलाकर उसकी सँभाल करते हैं।

व्याख्या उन घरो मे सब प्रकार के भोग तथा उनके साधन विभूति ऐश्वर्य को खूब भरा। मकान तो ऐसे बने जिनके टक्कर के विमान नही और उनमे सामान ऐसे भरे गये जिन्हे देखकर देवताओ को भी अभिलाषा हो उठे। क्योकि अवधवासी उनम ठहरनेवाले है। जो ऋद्धि सिद्धि से तथा सुरदुर्लभ सुख से अपरिचित नही हैं। यथा रिधि सिधि सपति नदी सुहाई। उमगि अवध अबुधि कहुँ धाई। तथा सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई।

यदि अनुकूल सेवक न हो तो सम्पत्ति का आनन्द नही मिलता। अत घरो मे दासी दास सुख का साज लिए प्रस्तुत हैं। मालिक से मन मिलाकर सेवा करना जानते हैं। चाहते ही ईप्सित पदार्थ प्रस्तुत कर देते हैं। आज्ञा को आवश्यकता नही। यथा मधुपर्क मगल द्रव्य जो जेहि समय मुनिमन महुँ चहैं। भरे कनक कोपर कलस सो सब लिये परिचारक रहैं।

सब समाजु सजि सिधि पल माँही। जे सुख सुरपुर सपनेहु नाँही ॥
प्रथमहि बास दिये सब केही। सुदर सुखद यथा रुचि जेही ॥४॥

अर्थ सिद्धियो ने वहाँ पलभर म सब समाज सजा दिये। जो सुख स्वर्ग मे भी सपने मे न मिले। पहिल तो सबको उनकी रुचि के अनुसार सुन्दर सुखदायी निवास स्थान दिये।

व्याख्या इतने बडे समाज को सजने म ऋद्धि सिद्धि को कुछ भी विलम्ब न हुआ। सिद्धियो के लिए यह क्षणभर का काम था। जितना जल्दी पहुनाई आरम्भ हो जाय उतना ही अच्छा। अत पहिले उन घरो म सब लोगो को टिकाया। इस टिकाने म यथायोग्य से काम नही लिया गया। बल्कि यथारुचि से काम लिया

गया। योग्यता पर ध्यान देने से यथेप्सित सुख न मिलता। ये घर देखने मे सुन्दर और रहने मे सुखद थे।

दो. बहुरि सपरिजन भरत कहुँ, रिषि अस आयेसु दीन्ह।
बिधि बिसमय दायकु बिभव, मुनिवर तपबल कीन्ह ॥२१४॥

अर्थ : फिर कुटुम्ब सहित भरत को निवास दिया। क्योंकि ऋषिजी ने ऐसी ही आज्ञा दी और उन्होने अपने तप बल से ऐसा वैभव रच दिया जिसे देखकर ब्रह्मदेव को भी आश्चर्य हो।

व्याख्या : सपरिजन भरत के रहने के लिए ऋषिजी ने ऋद्धि सिद्धि को यह आज्ञा दी कि सबके टिका देने के पीछे इन्हे टिकाना और अपने तपबल से विधि विस्मय दायक विभव उत्पन्न किया। यथा : तप से अगम न कछु ससारा। विधि विस्मय दायक विभव से त्रिपाद् विभूति का विभव कहा। मुनिजी ने ऐसी व्यवस्था की कि मुनियो का सत्कार तो शिष्य सेवको के सुपुर्द किया। राज समाज का सत्कार ऋद्धि सिद्धि के सुपुर्द किया और भरतजी का सपरिजन सत्कार तपबल से स्वय करने लगे।

मुनि प्रभाउ जब भरत बिलोका। सब लघु लगे लोकपति लोका ॥
सुख समाजु नहिं जाइ बखानी। देखत बिरति बिसारहिं ग्यानी ॥१॥

अर्थ · मुनिजी के प्रभाव को जब भरतजी ने देखा तो उन्हे सभी लोकपतियों के लोक छोटे जँचने लगे। सुख समाज की प्रशसा नही हो सकती। जिसके देखते ही ज्ञानी का वैराग्य भूल जाय।

व्याख्या : भरतजी का स्वभाव है कि सबकी खोज लेते हैं। अतः ऋद्धि सिद्धि का भी प्रभाव देखा : राजा जनक की ओर से सीताजी की आज्ञा से ऋद्धि सिद्धि आयी थी। यथा : सिधि सब सिय आयसु अकिन गयी जहाँ जनवास। लिये संपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास। निज निज वास बिलोकि बराती। सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती। बिभव भेद कछु कोउ न जाना। सकल जनक कर करहिं बखाना। सबका खोज खबर लेकर जब अपने डेरे की ओर देखा तो वहाँ की समृद्धि के सामने इन्द्रादि लोकपाल के लोक हलके मालूम पडे।

वहाँ कैसा सुख समाज था ? इसका वर्णन नही हो सकता। क्योंकि वह तो विस्मय दायक विभव था। विधि के सृष्टि के जीव उसका क्या वर्णन कर सकें। उसे देखकर ज्ञानी का वैराग्य भूल जाय। ज्ञानी मे वैराग्य की पराकाष्ठा होती है। यह समाज महामाया की कृपा से हुआ। ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा। बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति। पर भरतजी परम भक्त हैं। इनकी विरति बनी रही। यथा : भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरिहर पद पाय।

आसन सयन सुबसन बिताना । बन बाटिका बिहग मृग नाना ॥
सुरभि फूल फल अमिअ समाना । बिमल जलासय बिबि बिधाना ॥२॥

अर्थ : आसन, शय्या, वस्त्र, चँदवा, उपवन, फुलवारी और नाना प्रकार के पक्षी और मृग सुगन्धित फूल और अमृत के समान स्वादिष्ट फल और अनेक प्रकार के निर्मल जलाशय।

व्याख्या · आसन बैठने के लिए, शय्या सोने के लिए, सुवसन शीत उष्ण निवारण के लिए, वितान क्षुद्र जन्तुओ से रक्षा के लिए। वन वाटिका विहार के लिए, नाना प्रकार के पक्षी चहचहाने के लिए और मृग कुलेल करने के लिए। अब उन उपवन तथा वाटिका के फल फूल का वर्णन करते हैं। फूल सुगन्धित है और फल अमृत के समान स्वादु हैं।

असन[1] पान सुचि अमिअ अमी से । देखि लोग सकुचात जमी से ॥
सुर सुरभी सुरतरु सबही के । लखि अभिलाषु सुरेस सची के ॥३॥

अर्थ खान पान और पवित्र अमृत सा जल जिन्हे देखकर लोग यमी की भाँति सङ्कोच करते हैं। सभी के पास कामधेनु और कल्पवृक्ष थे। जिन्हे देखकर इन्द्र और इन्द्राणी को अभिलाष उत्पन्न हो।

व्याख्या अहिंसा सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा। १ अहिंसा २ सत्य ३ चोरी न करना ४ ब्रह्मचर्य ५ सग्रह न करना। ये पाँच यम हैं। जिन्होंने इनका व्रत ले रक्खा है वे यमी हैं। इन्हे भोग्य पदार्थ के सग्रह मे सङ्कोच होता है। पर यहाँ के भोग्य पदार्थ इतने ऊँचे दर्जे के हैं कि लोगो को उन्हे देखकर यमियो की भाँति सङ्कोच होता है। उनका चित्त कहे देता है कि इनके उपभोग की मेरे मे योग्यता नही। अमिअ का अर्थ जल भी है। यथा पय कीलालममृत जीवन भुवन वनम्। यहाँ प्रथम अमिअ का अर्थ जल है।

इतने पर भी कोई घाटा न रह जाय। इसलिए सबके पास कामधेनु और कल्पवृक्ष हैं। जिन्हे देखकर इन्द्र इन्द्राणी को अभिलाष हो कि मेरे नन्दन वन मे भी ऐसी कामधेनु और ऐसे कल्पतरु होते। राजसमाज के सुख को देखकर अमर अभिलाखे पर मुनिवर के तपबल से अर्जित सम्पत्ति ऐसी थी कि उसे देखकर इन्द्र इन्द्राणी को अभिलाष हो जावे।

रितु बसत बह त्रिबिध बयारी । सब कहँ सुलभ पदारथ चारी ॥
स्रक चंदन बनितादिक भोगा । देखि हरख बिस्मय बस लोगा ॥४॥

अर्थ वसन्त ऋतु हो गयी। शीतल मन्द सुगन्ध वायु बहने लगी। सबको धर्मार्थ काम मोक्ष सुलभ हो गया। माला चन्दन तथा स्त्री आदि मे है जिनके : ऐसे भोगो को देखकर लोग हर्ष और आश्चर्य के वश मे हो गये।

---

१ यहाँ अभेद रूपक सम है।

व्याख्या : समय का परिवर्तन हो गया। ग्रीष्म ऋतु वसन्त हो गयी। अतः त्रिविध समीर बहने लगा। धमार्थ काम की कौन चलावे मोक्ष भी उस समय सुलभ हो गया। माला और चन्दन का गृही को अधिकार है। क्योंकि ये कामोपभोग की सामग्री हैं और स्त्री शरीर को सासारिक सुखो का सर्वश्रेष्ठ साधन माना गया है। इसीलिए वनितादिक भोग कहते हैं। जब स्वर्ग के सभी सुख हैं, कामधेनु हैं, कल्प-वृक्ष हैं तो अप्सराएँ क्यों न हो ? यह सब देखकर लोगों को हर्ष भी हुआ और आश्चर्य भी हुआ कि ऐसा भोग मोक्ष का एकत्रकरण कही देखा नहीं गया था और न सुना ही गया था।

दो. संपति चकई भरतु चक, मुनि आयसु खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पिंजरा, राखे भा भिनुसार ॥२१५॥

अर्थ : सम्पत्ति चकई हुई, भरतजी चकवा हुए और मुनिजी की आज्ञा मानो खेलवाड़ हो गया। उस रात को आश्रम रूपी पिंजडे मे दोनो को रखते ही रखते सवेरा हो गया। चकवा चकई का समागम न हुआ।

व्याख्या : चकवा चकई मे भोक्तृभोग्य सम्बन्ध है। परन्तु उनका मिलन सूर्य साक्षिक ही होता है रात्रि मे वियोग रहता है। यह जानकर मानो किसी खेलवाड़ी ने उन दोनो को रात के समय एक पिंजड़े मे बन्द कर दिया। यह देखने के लिए इतने सन्निकट होने पर भी दोनो का वियोग कैसे स्थिर रह सकता है। पर उन दोनो के एकत्रित होने पर वियोग बना रहा। दोनो ने एक दूसरे की ओर आँख उठाकर भी नही देखा। यहाँ तक कि सवेरा हो गया। वैसी ही दशा यहाँ हुई। यहाँ चकवा स्थानीय भरतजी और चकई स्थानीय सम्पत्ति हुई। भानुकुल भानु के न होने से वह समय रात्रि स्थानीय हुआ। उस विशेष रात्रि में मानो भरतजी सम्पत्ति के साथ एक स्थान मे मुनिजी की आज्ञा से एकत्रित हो गये। अन्यथा भरतजी सम्पत्ति से दूर रहते थे। यथा : नंदि गाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवास धरम धुर धीरा। पर उस एकत्रित होने से भरतजी के नियम मे भङ्ग न हुआ। सम्पत्ति का कोई प्रभाव भरतजी पर नहीं पड़ा। भरतजी की वियोग व्यथा ज्यो की त्यो बनी रह गयी और रात्रि व्यतीत हो गयी। यथा : मनहुँ कोक कोकी कमल दीन विहीन तमारि।

कीन्ह निमज्जनु तीरथ राजा। नाइ मुनिहि सिरु सहित समाजा॥
रिषि आयसु असीस सिर राखी। करि दंडवत बिनय बहु भाषी ॥१॥

अर्थ : तीर्थराज मे स्नान किया। समाज के सहित मुनिजी की वन्दना की। ऋषिजी की आज्ञा और आशीर्वाद को शिरोधार्य करके दण्डवत् की और बहुत विनय किया।

व्याख्या : तीर्थराज मे प्रवेश होने के समय भी स्नान और जाते समय भी स्नान की विधि है। सरकार ने भी ऐसा ही किया था। यथा : राम कीन्ह बिश्राम

निसि प्रात प्रयाग नहाइ। चले सहित सिय लखन जन मुदित मुनिहि सिर नाइ। सहित समाज पहुनाई हुई थी। अत सहित समाज सिर नवाया। विदाई माँगा। यहाँ प्रयाग न कहकर तीर्थराज कहा। भाव यह कि यह भी सहित समाज विराजमान है।

ऋषिजी की आज्ञा से पहुनाई स्वीकार किया था। अत जाने के लिए भी आज्ञा माँगी। सो आज्ञा मिली। वन्दना किया था। इसलिए आशीर्वाद मिला कि मनोवाञ्छित सिद्ध हो। अत आज्ञा और आशीर्वाद दोनो को शिरोधार्य करके दण्डवत् किया। आने के समय भी दण्डवत् किया था। मुनिजी ने सत्कार करने मे कुछ उठा नही रक्खा। इसलिए बहुत विनती भी की।

पथ गति कुसल साथ सब लीन्हे। चले चित्रकूटहिं चितु दीन्हे॥
राम सखा कर दीन्हे लागू। चलत देहु धरि जनु अनुरागू॥२॥

अर्थ रास्ते के जानने मे चतुर लोगो को साथ लिया और चित्रकूट मे चित्त दिये हुए चले। राम सखा के हाथ का सहारा पकडे चल जा रहे हैं। मानो देह धारण किये हुए साक्षात् अनुराग ही है।

व्याख्या सरकार के चलने के समय जब रास्ता दिखाने के लिए शिष्यो को बुलाया तो पचासो आगये और सब कहने लगे कि हमारा सब रास्ता देखा है। पर चार व्यक्तियो को रास्ता दिखाने के लिए पचास तो भेजे नही जा सकते। अधिक से अधिक चार जा सकते हैं। अत मुनिजी ने ऐसे चार को चुना जिन्होने अनेको जन्म मे बहुत से पुण्य किये थे। शेष शिष्यो का अभिलाष मन म ही रह गया। आज भरतजी को रास्ता दिखाना और इनके साथ पूरा समाज है। अत आज पचासो की नियुक्ति रास्ता दिखाने के लिए कर दी गयी। अथवा सरकार को रास्ता दिखाने के लिए चारो वेद शिष्य वेष मे गये थे और सारे समाज को रास्ता दिखाने के लिए साङ्गोपाङ्ग वेद सरहस्य सोपनिषद सेतिहास पुराण रास्ता दिखाने चले। पहिले तो चित्तवृत्ति प्रयाग की ओर थी। तीर्थराज को बायाँ देकर जाना नही चाहते थे। पर अब तो मन सीधे चित्रकूट मे लगा हुआ है।

अत्यन्त प्रेम से शरीर शिथिल है। अत निषादराज का सहारा लिये चल रहे हैं। *मानो शरीरधारी अनुराग हैं।* इस समय सखा मे वह विनय नही है जो प्रथम मिलन के समय था। यथा राम सखा कर दीन्हे लागू। जनु धनु धरे बिनय अनुरागू। घनिष्ठता अधिक हो जाने से विनय की मात्रा कम हो गयी।

नहि पद त्रान सीस नहिं छाया। पेमु नेमु ब्रतु धरमु अमाया॥
लखन राम सिय पथ कहानी। पूछत सखहि कहत मृदु बानी॥३॥

अर्थ न पावो मे जूते हैं, न सिर पर छाया है और प्रेम नेम व्रत और धर्म सब मायारहित है। लक्ष्मण और रामजानकी की पन्थ कथा पूछते चलते है और सखा मृदुवाणी से कहता चला जा रहा है।

व्याख्या : राजा लोग जूता तो पहनते हैं पर छाता नहीं लगाते। छाता दूसरे खोले रहते हैं उसी की छाया में चलते हैं। यहाँ न जूता पैर में है न सिर पर छाया है। प्रेम ऐसा है : चलत देह धरि जनु अनुरागू। नेम ऐसा है : गवने भरत पयादेहि पाएँ। कोतल संग जाहि डोरिआएँ। व्रत ऐसा है : नहिं पद त्रान सीस नहिं छाया और धर्म ऐसा : लखन रामसिय पंथ कहानी। पूछत सखहि कहत मृदु बानी। इन सब में छल का स्पर्श नहीं। अतः अमाया कहते हैं।

पन्थ कहानी मे पहिले लक्ष्मण विषयक प्रश्न किया। क्योंकि वे सर्वार्थकारी थे। तत्पश्चात् प्रभु विषयक प्रश्न है। सीता विषयक प्रश्न सबके पीछे है। क्योंकि वे तो रक्ष्य रहीं। सखा शृङ्गवेरपुर से यमुनातीर तक साथ रहा है। अतः उस कथा को मृदुवाणी से कह रहा है और भरतजी सुनते जा रहे हैं।

राम बास थल बिटप बिलोके। उर अनुराग रहत नहिं रोके॥
देखि दसा सुर बरसहिं फूला। भइ मृदु महि मग मंगलु मूला॥४॥

अर्थ : रामजी के निवासस्थल के वृक्ष को देखने से हृदय में अनुराग रोके नहीं रुकता। यह दशा देखकर देवगण पुष्पवृष्टि करते हैं। पृथ्वी कोमल हो गयी। रास्ता मङ्गलमूल हो गया।

व्याख्या : पन्थ कथा सुनते भरतजी अपने अनुराग को रोके चले जा रहे हैं। तब से वह वटवृक्ष आगया जिसके तले भगवान् ने विश्राम किया था। उसे देखने से अनुराग रोकने पर भी नहीं रुकता। सच्चे अनुरागी अपने अनुराग को छिपाया चाहते हैं पर वह छिपता नहीं। अति सनेह सादर भरत कीन्हेउ दंड प्रनाम। यह भरतजी की यात्रा विधि है।

अब प्रेम की दशा का फल कहते हैं। भक्ति की दशा में पूजन का सौभाग्य मिलना कठिन है। अतः देवताओं ने फूल की वर्षा ऊपर से की। पृथ्वी ने अपनी सहज कठोरता परित्याग किया। कुश कण्टकादि को दूर करके रास्ते को मङ्गलमूल कर दिया। क्योंकि भरतजी के पाँव में जूते नहीं हैं।

दो. किये जाहिं छाया जलद, सुखद बहइ बर बात।
तस मगु भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहि जात॥२१६॥

अर्थ : बादल छाया करते जा रहे हैं। सुख देनेवाली हवा बह रही है। वैसा रास्ता रामजी को भी नहीं हुआ जैसा भरत को जाने के समय में हुआ।

व्याख्या : भरतजी को छाता नहीं लगा था। अतः बादल छाया करते जा रहे हैं। बादल की छाया के सामने छाता की छाया क्या वस्तु है। ज्येष्ठ का महीना है। सो लू नहीं चल रही है। शीतल मन्द सुगन्ध वायु बह रही है। यद्यपि ऐसी ही बात रामजी के चलने के समय हुई थी। यथा : परसि रामपद पदुम परागा। मानत भूमि भूरि निज भागा। छाँह करहि घन बिबुध गन बरषहिं सुमन सिहाहीं। इत्यादि। पर भरत की यात्रा के समय में अधिकता से हुई। राम ते अधिक रामकर दासा।

जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे ॥
ते सब भये परम पद जोगू। भरत दरस मेटा भव रोगू ॥१॥

अर्थ : रास्ते में जड़ चेतन जीव भरे पड़े थे। उनमें जिन्होंने प्रभु को देखा या जिनको प्रभु ने देखा वे सब परमपद के अधिकारी हो गये। भरत के दर्शन से उनका संसाररूपी रोग छूट गया।

व्याख्या : सरकार के दर्शन के विषय में कह चुके हैं: जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय सिय समेत दोउ भाइ। भवमग अगमु अनंदु तेइ बिनु श्रम रहे सिराइ। अब भरतजी की विशेषता कहते हैं कि रास्ते के जीवमात्र को परमपद की योग्यता प्राप्त हो गयी। जो चेतन जीव थे उन्होंने प्रभु भरतजी को देखा और जो जड़जीव थे देखने में असमर्थ थे उन्हे प्रभु भरत ने देखा। दोनों कृतार्थ हो गये। जिन्होने प्रभु को देखा उनकी अन्तःकरणवृत्ति भरताकार में परिणत हुई और ऐसा होते ही उनके सम्पूर्ण कल्मष दूर हो गये। उन्हे परमपद प्राप्ति की योग्यता हो गयी और जिनको भरतजी ने देखा। उनके आकार से भरतजी की अन्तःकरण की वृत्ति आकारित हो गयी। जिसके आकार से परम पुनीत भरतजी की वृत्ति आकारित हो जाय उसके सद्‌गति में सन्देह ही क्या है ? यहाँ प्रभु शब्द भरतजी के लिए आया है। क्योकि यहाँ भरतजी की प्रभुता कह रहे है। मेघनाद वध प्रकरण में देवताओ ने प्रभु कहकर ही लक्ष्मणजी की स्तुति की है। यथा . तुम प्रभु सब देवन्ह निस्तारा। भव रोग को नष्ट होने से अभिप्राय आवागमन से रहित होने का है।

यह बड़ि बात भरत कइ नाँही। सुमिरत जिनहि रामु मन माँही ॥
बारक नाम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ ॥२॥

अर्थ : भरतजी के लिए यह कोई बड़ी बात नही है। जिन्हे स्वयं रामजी मन में स्मरण किया करते हैं। संसार मे यदि कोई एक बार भी नाम स्मरण करता है वह स्वयं तरता है और दूसरो को तारता है।

व्याख्या : यदि कोई कहे कि यह तो बड़ी भारी बात है। रामजी के दर्शन से तो नेत्रवाले ही तरे। नेत्रविहीनो का कोई उपकार नही कहते और भरतजी के कारण चराचर का उपकार हुआ। इस पर कवि कहते हैं कि भरतजी के लिए बड़ी बात नही है। जिसके नाम का जप स्वयं रामजी किया करते हैं। यथा : जग जप राम राम जप जेही। उनकी महिमा स्पष्ट ही रामजी से बड़ी है। अब मार्ग के मङ्गलदातृत्व का कारण,कहते हैं।

एक बार भी जिसके नाम को लेकर मनुष्य स्वयं भी तर जाता है और दूसरों को भी तारता है। सँभालकर रामजी का नाम लिया जाता है। यथा : बार बार रघुबीर संभारी। तरकेउ पवन तनय बल भारी। संभारि श्रीरघुवीर धरि प्रचारि कपि रावन हन्यो। महात्मा किनारामजी ने कहा है : सो प्रभु सब में रमि रह्यो सर्व रूप सब ओर। ताते राम सँभारि गहु सब नामन को मोर। इसीलिए

कहते हैं। जनम जनम मुनि जतन कराही। अत राम कहि आवत नाही। जिसके नाम की इतनी प्रभुता है।

भरतु राम प्रिय पुनि लघु भ्राता। कस न होइ मगु मगलदाता॥
सिद्ध साधु मुनिवर अस कहही। भरतहि निरखि हरषु हिय लहही॥३॥

अर्थ : भरतजी तो रामजी को प्रिय हैं और उनके छोटे भाई हैं। अत रास्ता मङ्गलदाता क्यो न हो। यह बात सिद्ध साधु और श्रेष्ठ मुनि गण कहते हैं। और भरतजी का दर्शन करके हृदय से हर्षित हो रहे हैं।

व्याख्या : अपने सत्कार से मनुष्य उतना प्रसन्न नही होता जितना कि अपने प्रिय के सत्कार से तथा अपने पुत्र के सत्कार से प्रसन्न होता है। भरतजी तो रामजी को अत्यन्त प्यारे हैं। यथा : भरत सरिस प्रिय को जगमाँही। और छोटे भाई होने से पुत्र स्थानीय हैं। अतः रास्ता भरत के लिए रामजी से भी अधिक सुखकारक हुआ। कवि कहते हैं कि ऐसा न होने का कोई कारण नही।

ऐसी बातें सिद्ध साधक और स्थितधी महात्मा आपस में कहने लगे और भरतजी का दर्शन करके कृतकृत्य हो गये। सिद्ध लोग चाहने से सिद्धि द्वारा प्रकृति के किसी नियम मे परिवर्तन कर सकते हैं। यहाँ आप से आप हो रहा है। साधु लोगो का मनसा वाचा परोपकार करने का स्वभाव है। सो देख रहे है कि भरतजी के मार्ग मे चलने से चराचर का आप से आप उपकार हो रहा है। मुनि लोग स्थितप्रज्ञ हैं। इन्हे जीवो की परम प्राप्ति योग्यता से हर्ष है। अथवा बिना साधन के ही अपने कल्याण की प्राप्ति से हर्षित हैं।

देखि प्रभाउ सुरेसहि सोचू। जगु भल भलेहि पोच कहुँ पोचू॥
गुरु सन कहेउ करिअ प्रभु सोई। रामहि भरतहि भेंट न होई॥४॥

अर्थ : यह प्रभाव देखकर इन्द्र को चिन्ता हुई। संसार भले को भला और बुरे को बुरा है। गुरुजी से कहा कि हे प्रभो! अब ऐसा कीजिये कि राम से और भरत से भेंट न हो।

व्याख्या : प्रकृति मे परिवर्तन द्वारा भरत की महामहिमा देखकर उपर्युक्त महानुभावो को तो सुख हुआ। परन्तु इन्द्र को सोच हुआ कि यहाँ तो जड़ पिघल रहे है। राम तो करुणासिन्धु हैं। उन्हे पिघलते कितनी देर लगेगी। ससार विचित्र वस्तु है। बुरे को यहाँ भला खोजने से नही मिलता। उसी भाँति भले को बुरा नही मिलता। यहाँ एक ही वस्तु एक को विष है और दूसरे को अमृत है। निर्णायक कुछ भी नही। अतः यही कहना होगा कि अपने भावनानुसार ससार की प्रतीति होती है।

इन्द्र गुरुजी को आज्ञा देते हैं। उनसे उपाय पूछना चाहिए। सो उन्हे ही उपाय बतलाते हैं। यह उनकी आसुरी सम्पत्ति है। कहते हैं कि आप प्रभु हैं। आप मे सामर्थ्य है। आप चाहे तो रामजी से भरतजी की भेंट न हो और इसी मे हम लोगो का कल्याण है और आप गुरु हैं। हमारा कल्याण साधन कीजिये।

दो. राम सँकोची प्रेम बस, भरत सपेम पयोधि।
बनी बात बिगरन चहति, करिअ जतनु छलु सोधि ॥२१७॥

अर्थ : रामजी सङ्कोची और प्रेम के वश हैं और भरतजी सुन्दर प्रेम के समुद्र हैं। बनी बात बिगड़ना चाहती है। अतः माया करके कोई उपाय करना चाहिए।

व्याख्या : इन्द्रजी कहते हैं कि रामजी स्वभाव से सङ्कोची हैं। आगे कहेंगे : तेहि ते अधिक तुम्हार सँकोचू और प्रेमवश हैं। यथा : रामहि केवल प्रेम पियारा। जानिलेहु जो जाननि हारा। ये सङ्कोच प्रेमवश होकर सब कुछ कर सकते हैं और भरत प्रेम के समुद्र हैं। इन दोनो महात्माओ के मिलने की देर है। भरत निश्चय रामजी को लौटा ले जावेंगे। हम लोगो की बात बन गयी है। रामजी राज्य छोड़कर वन आगये हैं। सो सब करा धरा मिट्टी हुआ चाहता है। अतः इनके न मिलने में ही हम लोगो की कुशल है और न मिलने देने का कोई प्रशस्त यत्न नहीं है। माया से ही ऐसा उपाय सम्भव है। क्योंकि वही अघटित घटना पटीयसी है। सो ऐसी माया हम लोगो से साध्य नहीं है। आप गुरु हैं। समर्थ हैं। आप ही कोई ऐसी माया कीजिये जिससे राम और भरत से भेंट न हो।

वचन सुनत सुरगुरु मुसकानें। सहसनयन बिनु लोचन जानें ॥
मायापति सेवक सन माया। करियत उलटि परइ सुरराया ॥१॥

अर्थ : वचन सुनकर बृहस्पतिजी मुसकुराये और हजार आँखवाले को बिना आँख का समझा। बोले हे देवराज ! मायापति के सेवक से यदि माया की जाय तो उलटकर अपने गले पड़ती है।

व्याख्या : देवराज ने तो कहा : करिय जतन छल सोधि। पर गुरुजी मुसकुरा पडे। सोचा कि इनकी तो यह दशा है : लोचन सहस न सूझ सुमेरू। इन्द्र को हजार आँखें हैं पर क्या एक से भी नहीं सूझता। ये अन्धे ही हैं। यथा : तुलसी स्वारथ सामुहे परमारथ तन पीठि। अंध कहे दुख पाइहैं दिठियारो केहि डीठि। ये केवल अपना ही स्वार्थ देख रहे हैं। परमार्थ की ओर से मुँह फेर लिया है। अतः ये अन्धे हैं। इन्हे आँखवाला किस हिसाब से कहा जाय।

देवराज से कहा कि रामजी मायापति हैं। इनकी माया सबसे प्रबल है। यथा : सुन खग प्रबल राम की माया। माया सब सिय माया माहू। वह रामजी की माया उनके सेवक पर बडी कृपा करती है। उसे नहीं व्यापती। यथा : नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहि न ब्यापै माया। यदि उनके सेवक से कोई माया करता है तो वह माया उलटकर उस माया करनेवाले के गले पड़ जाती है। यथा : हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते। पीडा देनेवाला अपने पाप से ही मारा पड़ता है और साधु समदर्शिता द्वारा भय से छूट जाता है।

तके नीच जो मीच साधुकी सो पामर तेहि मीच मरै।
वेद बिदित प्रहलाद [illegible] न भगति पथ पाँव धरै ॥

।ब किछु कीन्ह राम रुख जानी । अब कुचालि करि होइहि हानि ॥
ुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ । निज अपराध रिसाहिं न काऊ ॥२॥

अर्थ : उस समय तो रामचन्द्र का रुख जानकर कुछ किया था। अब कुचाल करने से हानि होगी। हे देवराज ! रघुनाथजी का स्वभाव सुनो। अपने अपराध से कभी अप्रसन्न नहीं होते।

व्याख्या : यदि कहो कि पहिले आप ऐसा कर चुके हैं। सरस्वती को प्रेरणा किया था। यथा : बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु। राम जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुर काजु। यद्यपि उस प्रसङ्ग मे स्पष्ट बृहस्पतिजी का उल्लेख नहीं आया है। पर मालूम होता है कि देवताओं की ओर से प्रवक्ता गुरुजी ही थे। गुरुजी ने उस समय रामजी का रुख देख लिया था। यथा : जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई। कर्नबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भयउ उछाहा। बिमल बंस यह अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू। तथा : नवगयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान। छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान। रुख देखकर माया के लिए सरस्वती को प्रेरणा की। राम रुख पाकर कुचाल में भी हानि नहीं। यथा : चलेहुँ कुमग पग परहिं न खाले। इस समय रामजी का रुख भरत से मिलने का है। दिन रात सोचते हैं। यथा : रामहि बंधु सोच दिन राती। इस समय कुचाल करने से रक्षा नहीं है।

देवता स्वार्थी होते हैं। देवराज होने से इनका महास्वार्थी होना द्योतित किया। यहाँ सुरेश शब्द में यही व्यङ्ग्य है। अब रामजी का स्वभाव देवराज को बतलाते हैं। जिससे व्यवहार करना हो उसके स्वभाव को समझ लेना बड़ा आवश्यक है। उनका स्वभाव है कि अपने अपराध से अप्रसन्न नहीं होते। रामजी को बन हुआ यह उनके प्रति अपराध था। इसलिए सरकार अप्रसन्न न हुए।

जो अपराधु भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई ॥
लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा। येह महिमा जानहिं दुरबासा ॥३॥

अर्थ : जो भक्त का अपराध करता है वह रामजी के क्रोधाग्नि में भस्म होता है। इसका इतिहास लोक और वेद में भी विदित है। इस महिमा को दुर्वासाजी जानते हैं।

व्याख्या : भगवान् भक्त के प्रति किये हुए अपराध को नहीं सहते। क्रोध करते हैं और उनके क्रोध करने पर अपराधी फिर नहीं बचता। यथा : बेद बिरुद्ध मही सुर साधु ससोक कियो सुरलोक उजारयो। और कहा कहौं तीय हरी तबहूँ करुनाकर कोप न धारयो। सेवक छोह ते छाड़ी छमा तुलसी कहे राम सुभाउ तुम्हारो। तौलो न दाप दल्यौ दसकंधर जौ लौ बिभीषन लात न मारयो।

दो बड़े भारी प्रमाण हैं : लोक और वेद। सो दोनों में यह बात प्रसिद्ध है। तुम्हें नहीं मालूम यह बड़े आश्चर्य की बात है। भक्त की महिमा दुर्वासा ऋषि

जानते हैं। जिन्होने भक्त अम्बरीष पर क्रोध करके कृत्या उत्पन्न की। तुरन्त भगवान् का सुदर्शनचक्र चला। उसने कृत्या को भस्म करके दुर्वासा को अपना लक्ष्य बनाया। दुर्वासाजी साल भर भागते फिरे। ब्रह्मधाम शिवलोकादि मे रक्षा के लिए गये। पर रक्षा न हुई। सुदर्शन से पीछा नही छूटा। तब स्वय भगवान् के शरण गये। उन्होने कहा कि तुम्हे क्षमा प्रदान तो अम्बरीष ही कर सकता है। अन्तत भक्त अम्बरीष के शरण जाने पर ही रक्षा मिली।

भग्त सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही ॥४॥

अर्थ भरत के ऐसा राम का स्नेही कौन है ? ससार तो राम को जपता है और रामजी भरत को जपा करते हैं।

व्याख्या राजा अम्बरीष भी बडे स्नेही रामजी के थे। परन्तु भरत ऐसा तो कोई भी नहीं है। यथा सुनहु भरत रघुबर मन माही। प्रेमपात्र तुम सम कोउ नाही। और कहाँ तक कहा जाय सम्पूर्ण ससार राम को जपता है। सो राम भरतजी के स्नेह के ऐसे वशीभूत हैं कि वे सदा भरत भरत भरत जपा करते हैं। सो भरत के अपराधी को कहाँ त्राण मिलेगा। राम भरत के भेंट मे बाधक होना भगवत् अपराध और भागवत अपराध दोनो ही है।

दो मनहु न आनिअ अमरपति, रघुबर भगत अकाजु।
अजसु लोक परलोक दुख, दिन दिन सोक समाजु ॥२१८॥

अर्थ हे अमरपति ! रघुवर भक्त के काम बिगाडने की बात मन भी न आने दो। इससे लोक मे दुर्यश और परलोक मे दु ख होगा और दिन दिन शोक समाज बढेगा।

व्याख्या भगवत् का अपराध तथा भागवत अपराध मन मे भी स्थान देने योग्य नही है। इन्हे मन मे स्थान देने से लोक परलोक दोनो बिगडता है और सुख तो भाग ही जाता है। निरन्तर शोक की शृङ्खला बढती है। लोग दुयश तथा परलोक का दु ख ऐहिक सुख के लिए अङ्गीकार करते हैं। पर भागवतापराध से ऐहिक सुख भी नष्ट हो जाता है और उसे विपत्ति पर विपत्ति आती ही जाती है। दुर्यश तथा परलोक का नष्ट होना ऊपर से होता है। इस बात को दूसरे शब्द म कहा करै तो उलटि पडै सुरराया। मन मे स्थान देना ही कार्यारम्भ है। जिसने मन मे स्थान दिया वह एक दिन कर बैठेगा।

सुनु सुरेस उपदेसु हमारा। रामहि सेवक परम पियारा ॥
मानत सुख सेवक सेवकाई। सेवक बैर बैरु अधिकाई ॥१॥

अर्थ हे देवराज ! मेरा उपदेश सुनो। रामजी को सेवक अत्यन्त प्रिय हैं। वे सेवक की सेवा करने से सुख मानते हैं। सेवक से वैर करने से अधिक वैर मानते हैं।

व्याख्या : इन्द्र ने गुरुजी से कहा था : करिअ प्रभु सोई। रामहिं भरतहिं भेंट न होई। उसी का उत्तर गुरुजी देते हैं कि मेरा उपदेश सुनो ! आज्ञा मत दो। सचिव वैद्य गुरु तीन जौं प्रिय बोलहिं भय आस। राज धर्म तन तीनि कर होइ वेगि ही नास। मैं तुम्हारे भले की बात कहता हूँ। रामजी को सेवक के समान कोई प्यारा नहीं। यथा : पुनि पुनि सत्य कहौं तोहि पाहीं। मोहि सेवक सम कोउ प्रिय नाहीं। सो उनका स्वभाव है कि उनके सेवक की यदि कोई सेवा करे तो बड़े सुखी होते हैं। यथा : सीतापति सेवक सेवकाई। कामधेनु सय सरिस सुहाई।

और यदि कोई उनके सेवक से वैर करे तो उसके प्रति अधिक वैर मानते हैं। उन्हे देवता प्यारे हैं। इसमे सन्देह नहीं। पर सेवक के इतने नहीं : सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा। हरहरि किये प्रकट प्रहलादा। देवता लोग तो हिरण्यकश्यप द्वारा बहुत सताये गये। पर अवतार न हुआ। पर जब वह भक्त प्रह्लाद को सताने लगा तो खम्भ फाड़कर प्रकट हुए।

यद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पापु पूँनु गुन दोषू॥
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा॥२॥

अर्थ : यद्यपि सम हैं। न उन्हे राग है न क्रोध है। किसी के पाप पुण्य का ग्रहण नहीं करते। विश्व मे कर्म को प्रधान कर रक्खा है। जो जैसा करता है वैसा फल पाता है।

व्याख्या : यद्यपि रामजी समता की सीमा हैं। उनमे रागरोषरूपी विषमता नहीं है। यथा : विस्मय हरष रहित रघुराऊ। तुम जानहु सब राम प्रभाऊ। पर विश्व के कार्य सञ्चालन के लिए कर्म को प्रधान बना रक्खा है। यथा : करै जो कर्म पाव फल सोई। निगम नीति अस कह सब कोई। अर्थात् कर्म की प्रधानता मे किसी को सन्देह नहीं है। यथा : तुलसी यह तन खेत है मन बच कर्म किसान। पाप पुन्य द्वै बीज है बवै सो लवै निदान।

तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा॥
अगुन अलेख अमान एकरस। रामु सगुन भये भगत प्रेम बस॥३॥

अर्थ : फिर भी भक्त और अभक्त के हृदयानुसार वे सम और विषम विहार करते हैं। निर्गुण निर्लेप अमान और एकरस होते हुए भी रामजी भक्त के प्रेमवश सगुन हो गये।

व्याख्या : यद्यपि रामजी समता की सीमा है। विषमता से रहित है। न उन्हे राग द्वेष है न उन्हे किसी के पुण्य से कोई प्रयोजन है। ससार कर्मानुसार सुख दु:ख भोगा करता है। फिर भी उनका विहार कभी सम और कभी विषम होता है। जिस भाँति दर्पण सबके लिए समान है। उसे किसी से रागद्वेष नहीं। पर उसमे यदि क्रोधपूर्वक देखें तो दर्पण मे क्रोधमयी मूर्ति का और यदि प्रसन्न होकर देखें तो हँसमुख मूर्ति का दर्शन होता है। उनमे भक्त और अभक्त के हृदयो का

भाव प्रतिफलित होता है। ऐसा होने से न तो दर्पण मे विषमता आती है और न रामजी मे ही विषमता आती है। पर व्यवहार विषम होता है।

रामजी स्वभाव से निर्गुण है। निर्लेप हैं। उनमे भेद को स्थान नही है। इसलिए अमान हैं और उनमे विकार नही होता। इसलिए एकरस है। अत उन्हे अज कहा है। उनका जन्म नही होता। परन्तु परम भक्त स्वायम्भू को अभिलाषा हुई कि मै उनका दर्शन इस चर्म चक्षु से करूँ तो भगवान् को शरीर धारण करना पडा। वे निर्गुण से सगुण हो गये। यथा उर अभिलाष निरतर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई। अगुन अखड अनत अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथवादी। नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानद निरुपाधि अनूपा। सभु बिरचि बिष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अस ते नाना। ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई।

राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी॥
अस जिय जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत पद प्रीति सुहाई॥४॥

अर्थ रामजी ने सदा सेवक की रुचि रक्खी है। वेद पुराण देवता और सन्त इसके साक्षी हैं। ऐसा मन म समझकर कुटिलता छोडो और भरतजी के चरणो मे सुन्दर प्रीति करो।

व्याख्या सेवक सेवा धर्म म स्थिर है। कुछ माँगता नही। तब सरकार को उसकी रुचि देखकर कार्य करना पडता है। वेद पुराण सन्त और देवता रामकथा के जाननेवाले है। सो सब जानते हैं कि रामकथा वस्तुत सेवको की रुचि रखने की कथा है। सन्तो की रुचि रखने के लिए रामावतार हुआ। यथा तुम सारिखे सत प्रिय मोरे। धरौ देह नहिं आन निहोरे। बाल लीला कुमार लीला आदि सेवको की रुचि रखने के लिए हुआ। राज्य त्यागकर वनगमन भी सेवको की रुचि रखने के लिए ही हुआ। यथा अत्रि आदि मुनिबर बहु बसही। करहिं जोग जप तप तन कसही। चलहु सफल श्रम सबकर करहू। राम देहु गौरव गिरिवरहू। अत रामजी अपने सेवक भरत की रुचि अवश्य रक्खेंगे। इसमे सन्देह नही है।

तुम जो कहते हो करहु जतन छल सोधि यही कुटिलाई। सो कुटिलाई छोडकर भरत के चरणा म प्रीति करो। भरत तुम्हारा काम नही बिगडने देंगे।

दो राम भगत परहित निरत, पर दुख दुखी दयाल।
भगत सिरोमनि भरत ते, जनि डरपहु सुरपाल॥२१९॥

अर्थ हे सुरपति। भरतजी रामभक्त हैं। परहित म तत्पर रहते हैं। दूसरे के दुख से दुखी होनेवाल दयालु हैं। भक्त शिरोमणि हैं। उनसे डरो मत।

व्याख्या रामभक्त से भी काम नही बिगडता। यथा साधु ते होइ न कारज हानी। क्योकि रामभक्त परहित निरत होते हैं। दूसरे के दुख से दुखी होते हैं। उनका स्वभाव दयालु होता है। यथा सत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन्न

पर कहै न जाना। निज परिताप द्रवै नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता। यहां तो भरतजी भक्त शिरोमणि हैं। इनसे डरने की कौन बात है। सो तुम क्यों डरते हो। तुम तो सुरपाल हो। असुरपाल डरें तो एक बात भी है।

सत्यसंध प्रभु सुर हितकारी। भरत राम आयसु अनुसारी ॥
स्वारथ बिबस बिकल तुम्ह होहू। भरत दोसु नहि राउर मोहू ॥१॥

अर्थ : प्रभु सत्यसन्ध हैं। देवताओं के हितकारी है और भरतजी रामजी के आज्ञा पालक हैं। स्वार्थ विवश हो। इसलिए तुम विकल होते हो। भरत का दोष नहीं है। तुम्हारा ही अज्ञान है।

व्याख्या : न डरने का कारण कहते हैं। रामजी समर्थ हैं। सत्यसन्ध हैं। जो प्रतिज्ञा की है उसे पूरा करेंगे। यथा : जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा''हरिहौं सकल भूमि गरु आई। निर्भय होहु देव समुदाई : देवताओं के सदा से हित करनेवाले हैं। यथा : जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो। नाना तनु धरि तुमहि नसायो। जब मालिक ऐसा है और भरतजी सेवक हैं आज्ञाकारी हैं तब डरने की तो कोई बात नही है। अत्यन्त स्वार्थ के कारण तुम इस पर ध्यान न देकर विकल हो रहे हो। इसमे भरतजी का कोई दोष है ही नही। केवल अपने अज्ञान से आप व्यर्थ दुःखी हो रहे हैं।

सुनि सुरबर सुरगुर बर बानी। भा प्रमोदु मन मिटी गलानी ॥
बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ। लगे सराहन भरत सुभाऊ ॥२॥

अर्थ : सुरगुरु की श्रेष्ठ वाणी सुनकर देवराज के मन की ग्लानि मिट गयी और प्रसन्नता हुई। देवराज ने हर्षित होकर फूल बरसाया और भरत के स्वभाव की प्रशंसा करने लगे।

व्याख्या : इन्द्र भगवान् देवताओं में श्रेष्ठ हैं। गुरु के वाक्य पर विश्वास है। उनकी संशयोच्छेदिनी वाणी सुनकर ग्लानि मिट गयी। यथा : बंदौं गुरुपद कंज कृपासिंधु नररूप हर। महा मोह तम पुंज जासु बचन रबिकर निकर। देवराज प्रसन्न हो गये। देखि दसा सुर वर्षहि फूला। सो देवराज के सोच से पुष्प वर्षा बन्द हो गयी थी। अब फिर प्रारम्भ हुई। देवराज ने स्वयं हर्षित होकर बरसाया और भरत के स्वभाव की प्रशंसा करने लगे। देवता लोग पहिले से ही भरत के स्वभाव पर मुग्ध हैं। उन्हे भ्रम हो गया था कि यह स्वभाव उनके प्रतिकूल पड़ेगा। जब गुरुजी के वचन से प्रतिकूलता की शङ्का जाती रही तब प्रशसा करने लगे।

एहि बिधि भरतु चले मग जाही। दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाही ॥
जबहि रामु कहि लेहि उसासा। उमगत प्रेमु मनहुँ चहुँ पासा ॥३॥

अर्थ : इस भाँति भरतजी रास्ते से चले जाते थे। उनकी दशा देखकर मुनि

और सिद्ध सिहाने लगे। जब राम कहकर लम्बी श्वास लेते थे तो मानो चारो ओर प्रेम उमडा पडता था।

व्याख्या : राम सखा के हाथ का सहारा लिये हुए नगे पैर बिना छाता लगाये लक्ष्मण राम और जानकीजी के रास्ते की कहानी सखा द्वारा सुनते प्रम मे मग्न चले जा रहे हैं। यह भरतजी के रास्ता चलने की विधि है। उनकी दशा प्रेम मे ऐसी हो रही है जिसे देखकर स्थितप्रज्ञ मुनिगण और जीवन्मुक्त सिद्ध को भी ईर्ष्या होती है कि यह दशा मेरी कभी नही हुई। सिद्ध सिहाते हैं कि बिना सिद्धि के लिए प्रयत्न किये ही भरत को ऐसी सिद्धि प्राप्त है : किये जाहि छाया जलद सुखद बहइ बरवात। भई मृदु महि मग मगल मूला। इत्यादि।

भरतजी प्रेम के पयोधि हैं। पयोधि जब उच्छ्वास लेता है तब जल फैल जाता है ज्वार भाटा आजाता है। इसी भाँति जब भरतजी राम कहकर उच्छ्वास लेते हैं तो चारो ओर प्रेम उमगने लगता है। उनके नामोच्चारण मे ऐसा दर्द है कि सुननेवाले का हृदय पिघल उठता है। इस दशा को मुनि लोग सिहाते हैं।

द्रवहि बचन सुनि कुलिस पखाना। पुरजन पेमु न जाइ बखाना॥
बीचबास कर जमुनहि आए। निरखि नीरु लोचन जल छाए॥४॥

अर्थ · वचन सुनकर वज्र और पाषाण पिघले जा रहे है। पुरजन के प्रेम का तो वर्णन नही हो सकता। बीच मे मुकाम करके यमुना तीर पहुँचे। जल देखकर आँखो मे जल आगया।

व्याख्या : उनके नामोच्चारण मे ऐसा दर्द है कि उसका प्रभाव जड पदार्थो पर पड रहा है। वज्र और पाषाण पिघल रहे हैं। तेन शृण्वन्ति पादपा। इस महाभरत के वचन से पता लगता है कि पेड भी सुनते हैं। गोस्वामीजी कहते हैं कि पत्थर और पाषाण भी सुनते है और द्रवीभूत भी होते हैं। पर वचन मे वैसा ही दर्द होना चाहिए। भरतजी के साथ पुरजन है। उनके कान मे जब पाषाण को द्रवीभूत करनेवाली वाणी पडती है तो उनकी कैसी दशा हुई जाती थी। इसका तो वर्णन नही हो सकता।

एक रात्रि रास्ते मे निवास हुआ। दूसरे दिन यमुना तीर पहुँच गये। यहाँ यमुना से तीर मे लक्षणा है। यमुना जल की श्यामता की उपमा सरकार की शरीर की श्यामता से दी जाती है। यथा : उतरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम। उसी का साफल्य दिखाते हुए कहते हैं कि उस जल के देखने से सरकार की श्याम मूर्ति हृदय पटल पर हो आयी। अत. नेत्रो मे जल डबडबा आया।

दो. रघुबर बरन बिलोकि बर, बारि समेत समाज।
होत मगन बारिधि बिरह, चढे बिबेक जहाज॥२२०॥

अर्थ : श्रीरघुनाथजी के रङ्ग का सुन्दर जल देखकर समाज सहित भरतजी राम विरह समुद्र मे डूबते डूबते विवेकरूपी जहाज पर चढ़ गये।

व्याख्या : जितना आगे बढते जाते हैं विरह की उत्कण्ठा बढती जाती है। रामवास थल विटप बिलोके। उर अनुराग रहत नहिं रोके। अब तो प्रभु सरीर सम स्याम यमुना जल देख लिया। बस विरह समुद्र मे मग्न होने लगे। मग्न होने का भाव यह कि अपने को ही भूलने लगे। समुद्र म डूबनेवाला यदि जहाज पर चढ़ जाय तो बच जाता है। भरतजी भी समाज सहित विवेक जहाज का आश्रयण करके ही डूबने से बँचे। अपने को सँभालना ही विवेक है। यथा प्रेम मगन मन जानि नृप करि बिबेक धरि धीर। इस भाँति भरतजी ने समाज सहित अपने . स्वरूप को संभालकर धैर्य धारण किया।

जमुन तीर तेहि दिन करि बासू। भयेउ समय सम सबहि सुपासू॥
रातहि घाट घाट की तरनी। आईं अगनित जाइ न बरनी॥१॥

अर्थ : यमुनाजी के किनारे उस दिन निवास किया। समयानुसार सबको सुभीता मिला। रात ही रात घाट की नौकाएँ अनगिनती आगयी। उनका वर्णन नहीं हो सकता।

व्याख्या : पहिले जो बात लक्षणा से कहा था उसे अभिधा से कह रहे हैं पहिले कहा था : बीच बास करि जमुनहि आए। सो यमुना मे कोई नही आता। सो यमुना शब्द ने अपना मुख्य अर्थ छोड़ा और पवित्र शीतल गुणयुक्त तट का ग्रहण किया। भरतजी समाज सहित यमुना तट आये। परन्तु पार नही गये। वहीं डेरा डाल दिया। सबके खाने पीने की व्यवस्था करली थी। सो ऐसी परिस्थिति मे जैसा सुभीता सम्भव है वैसा किया गया। इधर पार होने की भी व्यवस्था होने लगी। नियम यही है कि घाटो पर नाव लगी रहती हैं। जिसे आवश्यकता होती है वही से लेते हैं। सो रात ही रात सब घाटो से नावो को मँगाकर वहाँ बाँध दिया जिसमे सवेरे पार जाने में सुभीता हो। सेना को नदी के किनारे ठहराने मे सुभीता होता है। नही तो जल की व्यवस्था मे कठिनाई होती है।

प्रात पार भये एकहि खेवा। तोषे रामसखा की सेवा॥
चले नहाइ नदिहि सिर नाई। साथ निषादनाथु दोउ भाई॥२॥

अर्थ : सबेरे एक ही खेवा मे पार हो गये। अत राम सखा की सेवा से तुष्ट हुए। दोनों भाई साथ मे निषादनाथ स्नान करके और नदी को प्रणाम करके चले।

व्याख्या : यहाँ चले क्रिया का कर्त्ता दोउ भाई है। शब्द स्पष्ट है। इससे यह कल्पना करना कि निषादनाथ दो भाई थे। केवल श्रोता के मनोरञ्जन के लिए है। क्योंकि ऐसा अर्थ करने से चले क्रिया का कर्त्ता ही लापता हो जाता है।

नाव को एक पार से दूसरे पार ले जाने को खेवा कहते हैं। सो रात ही रात नावों को जुटा लेने का यह फल हुआ कि सारा समाज एक खेवा मे ही पार हो गया। यह व्यवस्था रामसखा निषादनाथ ने की। अत उनकी इस सेवा पर

लोग सन्तुष्ट हुए। बड़ी हैरानी बची नहीं तो गङ्गा पार होने में चार दण्ड लगा था। यथा दण्ड चार महँ भे सब पारा। उतरि भरत पुनि सबहि सँभारा।

उस पार जाकर स्नान किया। प्रातः कृत्य का उस पार ही किया जाना अनुमित है। चलने के समय नदी को प्रणाम किया। आने के समय प्रणाम नहीं कहा। नदी का दर्शन होते ही तो विरह सागर में मग्न होने लगे, प्रणाम की सुधि ही न रही। अतः चलते समय प्रणाम कहते हैं। निषादराज के अधिकृत वन प्रदेश में आगये। अतः शत्रुघ्नजी गुरु के साथ न रहकर भरतजी के साथ हैं। इन्तजाम बदल गया।

आगे मुनिवर बाहन आछे। राज समाजु जाइ सबु पाछे ॥
तेहि पाछे दोउ बंधु पयादे। भूषन बसन बेष सुठि सादे ॥३॥

अर्थ : आगे मुनिजी की श्रेष्ठ सवारी थी। पीछे सब राज समाज चल रहा था। उसके पीछे दोनो भाई अत्यन्त सादे भूषण वसन और वेप में पैदल जा रहे थे।

व्याख्या : कोई भय नहीं है। इसलिए मुनिजी की सवारी आगे आगे है। मुनिवर के साथ सारा समाज है। मुनिवर बाहन आछे कहने से सबका सवारी पर होना कहा।

सबके पीछे दोनो भाई पैदल जा रहे हैं इससे भी और लोगो का सवारी पर जाना ही सिद्ध होता है। तापस वेष नहीं है। तथापि अत्यन्त सादा शृङ्गार है। महाराज कुमार के भूषण वसन वेष का सादा होना उदासी का लक्षण है। यहाँ दोउ भाई शब्द का तात्पर्य बहुत स्पष्ट हो गया। साथ निषादनाथ दोउ भाई पद मे जो दोउ भाई शब्द आया है उसी को यहाँ दोउ बधु पयादे शब्द से कह रहे हैं।

सेवक सुहृद सचिवसुत साथा। सुमिरत लखनु सीय रघुनाथा ॥
जहँ जहँ राम बास बिश्रामा। तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा ॥४॥

अर्थ : सेवक मित्र और मन्त्री के पुत्र उनके साथ थे। लक्ष्मण और राम जानकी का स्मरण करते जाते थे। जहाँ जहाँ रामजी का निवास या विश्राम हुआ था वहाँ वहाँ प्रेम के साथ प्रणाम करते थे।

व्याख्या : भरत पयादेहि आये आजू। भयउ दुखित सुनि सकल समाजू। अतः आज भरतजी का समाज भरतजी के साथ है। सेवक तो साथ हैं ही सुहृद् अर्थात् बालसखा तथा निषादराज साथ है। मन्त्री के पुत्र भी साथ में हैं। राजकुमारो के साथ मन्त्री पुत्र रहते है। यथा : निरखि राम रुख सचिव सुत कारन कहेउ बुझाइ।

बीच में रामजी के निवासस्थल भी मिले। विश्रामस्थल भी मिले। श्रद्धातिशय से सभी जगह प्रणाम करते हैं। रामजी के क्षणिक संसर्ग से वे तीर्थ हो गये।

दो. मगबासी नर नारि सुनि, धाम काम तजि धाइ।
देखि सरूप सनेह सब, मुदित जनम फलु पाइ ॥२२१॥

अर्थ : रास्ते मे रहनेवाले स्त्री पुरुष सुनकर घर के कामकाज छोडकर दौड पडते थे और सब लोग उनके रूप और स्नेह को देखकर जन्म लेने का फल पाकर प्रसन्न हो जाते थे।

व्याख्या · रास्ते मे के रहनेवाले प्रभु के आगमन का समाचार पाकर अपना काम छोडकर दौड़े थे। यथा : सुनत ग्रामबासी नर नारी। धाये निज निज काज बिसारी। राम लखन सिय सुंदरताई। देखि करहिं निज भाग्य बडाई। वे ही भरतजी का आगमन सुनते हैं। अत. उन लोगो ने अति आतुरता से धाम भी छोड़ा काम भी छोडा। दौड़ पडे।

स्वरूप और स्नेह को देखकर प्रसन्न हैं। स्वरूप से सौन्दर्य और स्नेह से स्वभाव अभिप्रेत है। दर्शन करके लोग कृतार्थ होते हैं। जिन्होने रामजी को नही देखा था शोभा सुनकर पछताते थे। वे भी दौडे। धाम को भी अरक्षित छोडा।

कहहिं सप्रेम एक एक पाँही। रामु[1] लखनु सखि होहि कि नाँही ॥
वयवपु बरन रूपु सोइ आली। सीलु सनेहु सरिस सम चाली ॥१॥

अर्थ : एक दूसरे से प्रेम के साथ कहती हैं कि हे सखी! ये राम लक्ष्मण हैं कि नही हैं। हे आली! आयु शरीर रङ्ग और रूप तो वही है। शील और स्नेह भी सदृश है तथा चाल भी वैसी ही है।

व्याख्या : स्त्रियो का हाल कहते हैं कि उन सबो ने रामजी का दर्शन किया है। तीनो मूर्तियो के नाम से भी परिचित हैं। यथा : सकल कथा तिन सबहिं सुनाई। बनहि चले पितु आयसु पाई। भरतजी रामजी के ही सदृश हैं। एकाएक कोई लख नही सकता और लक्ष्मण शत्रुसूदन एक रूप हैं। अत भरत और शत्रुसूदन दोनो भाइयो को देखकर राम लक्ष्मण का भ्रम हुआ जनकपुर मे भरत शत्रुघ्न को देखकर एक सखी की उक्ति है : सखि जस राम लखन कर जोटा। तैसइ भूप सग दुइ ढोटा। स्याम गौर सब अग सोहाए। परन्तु कुछ सन्देह भी हो रहा है अत. आपस मे एक दूसरे से पूछती हैं कि कदाचित् किसी को अधिक जानकारी हो।

अब सशय का कारण कहती हैं कि उम्र भी इन लोगो की उतनी ही है। शरीर भी वैसा ही है। रग भी वही है। आकृति भी वैसी हो है। इस भाँति शरीर का मिलान करके स्वभाव का मिलान करती है कि शील और स्नेह भी वैसा ही है : जिस भाँति प्रत्येक पुरुष की आकृति और स्वर मे भेद होता है उसी भाँति उनकी गति भी भिन्न प्रकार की होती है। इनकी गति भी वैसी ही है। मत्त मजु कुँजर बर गामी है।

---

१. यहाँ सामान्य अलङ्कार है।

बेषु न सो सखि[1] सीय न संगा। आगे अनी चली चतुरंगा ॥
नहिं प्रसन्न मुख मानस खेदा। सखि संदेहु होइ एहि भेदा ॥२॥

अर्थ : हे सखि ! परन्तु वैसा वेष नहीं है और सीताजी भी साथ नहीं हैं। इनके आगे आगे चतुरंगिनी सेना चल रही है। मुख प्रसन्न नहीं है। इनके मन में खेद है इस भेद से सन्देह हो रहा है।

व्याख्या : जिस भाँति समता के तीन कारण हैं उसी भाँति भिन्नता के तीन कारण हैं। एक तो इनका तापस वेष नहीं है : राजसी वेष है। यथा : भूषन वसन बेष सुठि सादे। इनके साथ सीताजी भी नहीं हैं और तीसरा भेद यह बतलाती हैं कि उनके साथ तो कोई भी नहीं था। इनके साथ चतुरङ्गिणी सेना है। फिर भी ये तीनों भेद बहिरङ्ग हैं। अन्तरङ्ग नहीं हैं। इसलिए अन्तरङ्ग लक्षण कहती है कि इन्हें मानस खेद मालूम होता है। वे लोग तो प्रसन्न थे। यथा : आनद उमग मन, यौवन उमंग तन शोभा को उमग उमगत अंग अंग है।

तासु तरक तियगन मन मानी। कहहिं सकल तेहि सम न सयानी ॥
तेहि सराहि बानी फुरि पूजी। बोली मधुर बचन तिय दूजी ॥३॥

अर्थ : उसका तर्क स्त्रियों को ठीक जँचा। सब कहने लगी कि तेरे समान कोई चतुर नहीं है। उसकी प्रशंसा करके और उसकी सत्योक्ति का सम्मान करके दूसरी स्त्री मधुर वाणी बोली।

व्याख्या : उपर्युक्त सखी की युक्ति बड़ी परिष्कृत थी। समता और भेद को उसने गिनकर अलग दिखला दिया। अतः सबके मन में उसकी बात बैठ गयी। सबकी सब उसको सराहने लगी कि तेरे ऐसी सयानी कोई नहीं है। तूने एक एक बात को निगरा दिया।

तत्पश्चात् दूसरी सखी जिसे कथाप्रसङ्ग का परिचय था उसकी प्रशंसा करके उसकी सत्योक्ति की पूजा की अर्थात् कहा कि यह एकदम ठीक कह रही है। यहाँ सम्मान पूर्वक अनुमोदन ही पूजा है और तब सबकी जानकारी के लिए मधुर शब्दों में कहने लगी।

कहि सप्रेम सब कथा प्रसंगू। जेहि बिधि राम राज रस भंगू ॥
भरतहि बहुरि सराहन लागी। सील सनेह सुभाय सुभागी ॥४॥

अर्थ : उसने प्रेम के सहित सब कथाप्रसङ्ग कहा कि इस इस भाँति रामजी के राज्याभिषेक में विघ्न हुआ। तत्पश्चात् वह सुभागी भरतजी और उनके शील सनेह की प्रशंसा करने लगी।

व्याख्या : यह आख्यान उसको प्रिय था। इसलिए उसने प्रेम से रामजी के

---

१. यहाँ विशेष अलङ्कार है।

राज्याभिषेक का प्रस्ताव तथा रानी कैकेयी का चक्रवर्तीजी से दो वरदान माँगना तदनुसार रामजी का वन गमन तथा सीता और लक्ष्मणजी का प्रेम से उनका अनुगमन करना वर्णन किया।

तत्पश्चात् भरतजी की प्रशसा करने लगी कि जिसके लिए सब कुछ हुआ उसने इस अनर्थ का अनुमोदन नही किया और गुरु मन्त्री आदि के अनुरोध पर भी राज्य स्वीकार नही किया और भाई प्रेम से दु:खी होकर उनके पास जा रहे हैं। भाव यह कि ये दोनो भी उन्ही राम लक्ष्मण के भाई हैं। इसीलिए वैसा ही रूप स्वभाव और चाल है। ये राम लक्ष्मण नही हैं।

दो. चलत पयादें खात फल, पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुवरहि, भरत सरिस को आजु ॥२२२॥

अथ : पैदल चलते हैं। फल खाते हैं। पिता ने राज्य दिया उसे छोड़कर रामजी को मनाने जाते हैं। आज कौन भरत के समान है ?

व्याख्या : शील का वर्णन करती है : चलत पयादे खात फल। स्नेह का वर्णन करती है : पिता दीन्ह तजि राज। जात मनावन रघुपतिहि। राज छोड़ने का प्रमाण यह है : चलत पयादे खात फल। तब राज्य कौन करेगा ? इसके उत्तर मे कहती है · जात मनावन रघुपतिहि। अर्थात् रामजी लौट आवें और राज्य करें। इसलिए उन्हे मनाने जाते हैं। दूसरे के मनाने से उनके मानने की आशा नही है। पिता के दिये हुए राज्य को ठोकर मारनेवाला इस समय कौन है ? भाव यह कि चाहे पहिले कोई हुआ हो तो हम नही जानती। पर इस समय ऐसा कौन है : अर्थात् कोई नही है।

भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख दूपन हरनू ॥
जो किछु कहब थोर सखि सोई। राम बंधु अस काहे न होई ॥१॥

अर्थ · भरत का भाईपन भक्ति और आचरण कहते और सुनते दु:ख और दूषण का नाश होता है। हे सखि! जो कुछ कहा जाय सो थोडा है। रामजी के भाई ऐसे क्यो न हो!

व्याख्या : पहिले जो शील सनेह सुभाय कह आये हैं उसी को दूसरे शब्दो मे भायप भगति और आचरण शब्द से कह रहे हैं। भायप शील के अन्तर्गत भक्ति स्नेह के अन्तर्गत है और आचरण स्वभाव के अन्तर्गत है। चलत पयादे खात फल : यह भरतजी की भक्ति है। पिता दीन्ह तजि राज : यह भाई पन है और जात मनावन रघुपतिहि : यह आचरण है। इन बातो के कहने सुनने से दु ख और उसका कारण दूपण दूर हो जाता है। अर्थात् भरतजी सबसे बडे पुण्यश्लोक हैं। यथा : पुण्यसिलोक तात तर तोरे। अत इनके ऐसा आज कोई नही है।

इनके विषय मे जो कुछ कहा जायगा वही थोडा पडेगा। क्योंकि इनके गुण वैखरी के विषय नही हैं। इतना ही कहना यथेष्ट है कि ये रामजी के भाई हैं।

रामजी के गुण इनमे वर्तमान हैं। रामजी मे कैसा भायप है? कहते हैं : भरत प्रान प्रिय पार्वाहि राजू। विधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू। कैसा स्नेह है कि रामहि बंधु सोच दिन राती। अडन्हि कमठ हृदउ जेहि भांती। और कैसा आचरण है कि : राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाँई।

हम सब सानुज भरतहि देखे। भइन्ह धन्य जुवती जन लेखे ॥
सुनि गुन देखि दसा पछिताँही। कैकइ जननि जोग सुत नाँही ॥२॥

अर्थ : हम लोग भाई के साथ भरतजी का दर्शन करके पुण्यवान् स्त्रियो की गिनती मे आगयी। भरतजी के गुण सुनकर और दशा देखकर सब पछताती हैं कि यह बेटा तो कैकेयी माता के योग्य नही है।

व्याख्या : भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दु ख दूषन हरनू। और हम लोगो ने तो इनका दर्शन पाया है। अतः हम लोगो का भी लेखा पुण्यवान् स्त्रियो मे हो गया। यहँ हम लोक बेद विधि हीनी। लघु तिय कुल करतूति मलीनी। पुण्यवान् स्त्रियाँ कह सकती हैं कि हमने अमुक पुण्य किया है। हम लोग अपना कौन पुण्य बतला सकती थी। पर अब हम भी कह सकती हैं कि हमने भरत शत्रुघ्न का दर्शन किया है। अत. *हम लोग भी धन्य युवतियो के लेखे मे आगयी।*

भरतजी का गुण सुना : पिता दीन्ह तजि राज। जात मनावन रघुपतिहि। और दशा दखी . चलत देह धरि जनु अनुरागू। तो सब पछताने लगी कि रामजी को वन नाहक हो गया। जब भरतजी राज्य चाहते ही नही तो उनके लिए राज्य और रामजी के लिए वन क्यो मांगा? अतः कैकेयी बडी कठोर हृदय है। भरत ऐसा कोमल हृदय बेटे को ऐसा माता का मिलना योग्य कार्य न हुआ। अथवा भरत रामजी के भाई होने योग्य तो है कैकेयी के बेटे होने योग्य नही हैं।

कोउ कह दूषन रानिहि नाहिन। *बिधि सबु कीन्ह हमहि जो दाहिन* ॥
कहँ हम लोक बेद बिधि हीनी। लघु तिय कुल करतूति मलीनी ॥३॥

अर्थ . किसी ने कहा है कि इसमे रानी का दोष नही है। यह सब ब्रह्मा ने किया जो कि हमारे दाहिने • अनुकूल है। कहाँ हम लोग लोक और वेद विधि से हीन स्त्रियो मे लघु है। कुल की करतूत भी मलिन है।

व्याख्या • एक कहती है हम लोगो को विधाता अनुकूल हो गये थे। घर मे बैठे इनका दर्शन दिलाना चाहते थे। अतः उन्होने इस प्रकार उलट फेर कर दिया। शुद्ध हृदय से जो बात निकलती है वह बिना जाने लक्ष्य वेध कर देती है। जो बात भरद्वाज मुनि कहते है : विधि करतब पर किछु न बसाई। वही बात ये स्त्रियाँ बिना जाने कह रही है।

ब्रह्मदेव के अनुकूल होने का कारण देती हैं कि यह अघटित घटना कैसे हुई? हम लोग तो लोक वेद दोनो मे हीन हैं। यथा : लोक बेद सब भाँतिहि नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सीचा। स्त्रियो मे भी हम अधम हैं। यथा : उत्तम मध्यम नीच लघु।

चार प्रकार कहा गया है। लघु शब्द अधम के अर्थ मे प्रयुक्त है। कुल करतूति मलीनो। यथा : पाप करत निसि बासर जाही। नहिं कटि पट नहिं पेट अघाही।

बसहिं कुदेस कुगाँव कुबामा। कहँ यह दरसु पुन्य परिनामा ॥
अस अनंदु अचरजु प्रतिग्रामा। जनु मरुभूमि कलपतरु जामा ॥४॥

अर्थ : हम कुदेश और कुगाँव मे बसती है और बुरी स्त्री हैं और कहाँ दर्शन पुण्यों का फल है। गाँव गाँव में ऐसा आश्चय और आनन्द हो रहा है जैसे मरुदेश मे कल्पवृक्ष उग आया हो।

व्याख्या : यहाँ कुदेश से अभिप्राय वन्य देश से है और कुगाँव से भीलों के ग्राम से तात्पर्य है और हम लोग स्वय बुरी स्त्री हैं। भाव यह कि पथभ्रष्ट, कुलभ्रष्ट, करणीभ्रष्ट, देशभ्रष्ट और धर्मभ्रष्ट। अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अधारी। हमे यह दर्शन महादुर्लभ है। यह घटना तो ब्रह्मदेव के हमारे दाहिने होने से हुई है।

अनहोनी बात होने से आश्चर्य और परम मङ्गलदायक होने से आनन्द। गोस्वामीजो उदाहरण देते है कि जैसे मरुभूमि में कल्पवृक्ष उग जावे। मरुभूमि में कोई वृक्ष नही होता। जहाँ तहाँ आक : मदार के पेड दिखायी पड़ते हैं। वहाँ आम का होना आश्चर्य और आनन्द की बात है कल्पवृक्ष के लिए कहना ही क्या है। यहाँ अच्छे लोग दिखायी ही नही पड़ते। भरतजी ऐसे महापुरुषो के आने की कौन आशा थी ?

दो. भरत दरसु देखत खुलेउ, मगु लोगन कर भागु।
जनु सिंघलबासिन्ह भयेउ, बिधि बस सुलभ प्रयागु ॥२२३॥

अर्थ : भरत दर्शन से रास्ते के लोगो का तो भाग्य खुल गया। जैसे सिंहलदेश : सीलोन के रहनेवालो को भाग्यवश प्रयागराज सुलभ हो गया हो। भारत वर्ष से सिंहल द्वीप जहाज पर जाना होता है।

व्याख्या : सिंहलद्वीप के निवासी लङ्का के पड़ोसी हैं। उनसे प्रयागराज से क्या मतलब ? यदि ऐसी घटना घट जाय कि विधिवश प्रयागराज को ही वहाँ जाना पड़े तो उनके आश्चर्य और आनन्द का क्या ठिकाना है। श्रीगोस्वामीजी ने सत्सङ्ग को जङ्गम प्रयागराज माना है। उसका भी लङ्का के पड़ोस मे जाना दुर्घट है। अतः कवि का कथन है कि मगवासी लोगो का भाग्य खुल गया। जिस भरतजी के दर्शन को भरद्वाजजी : तेहि फल कर फल दरस तुम्हारा। सहित प्रयाग सुभाग हमारा : कहते हैं। वह दर्शन रास्ते के निवासियों को अनायास सुलभ हो गया। अतः उनका अहोभाग्य है।

निज गुन सहित राम गुन गाथा। सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा ॥
तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा। निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा ॥१॥

अर्थ अपने गुणो के सहित रामजी के गुणग्राम सुनते और रघुनाथजी को स्मरण करते भरतजी चले जा रहे है। तीर्थ मुनि आश्रम और देव मन्दिर देखकर स्नान करते हैं और प्रणाम करते हैं।

व्याख्या इस समय लोगो म भरतजी की चरचा चल रही है। परन्तु भरत चरित्र का आश्रम रामचरित है। रामचरित से पृथक् करके भरत चरित नही वर्णन किया जा सकता। अत भरतजी रास्ते जाते हुए लोगो के मुख से अपने गुणग्राम के साथ ही साथ रामगुणग्राम सुनते चले जा रहे है। भरतजी रामगुणग्राम के सुनने के रसिक हैं। अत सुनत जाँहि क्रिया का कर्म रामगुणगाथा को रक्खा।

रास्ते मे तीर्थ मिलते है। उन्ही को पकडकर मुनि के आश्रम हैं और उन आश्रमो मे देव मन्दिर है। यह देखकर भरतजी तीर्थ मे स्नान करते हैं। आश्रम और मन्दिरो को प्रणाम करते हैं। यथा कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। तीर्थ प्रायेण पुण्य जलाशय को ही कहते हैं।

मन ही मन माँगहि बर एहू। सीय राम पद पदुम सनेहू ॥
मिलहिं किरात कोल बनबासी। बैखानस बटु जती उदासी ॥२॥

अर्थ मन ही मन यह वरदान माँगते हैं कि राम जानकी के चरणो मे भक्ति हो। कोल किरात वन के रहनेवाले वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, सन्यासी और उदासी मिलते हैं।

व्याख्या भरतजी तीर्थ आश्रम और देव मन्दिर को जड पदार्थ नही मानते। इनके भी अधिष्ठात्री देवता होते हैं। उनकी प्रतिष्ठा होती है। अत उनको प्रणाम करके मन ही मन वरदान माँगते है। तीर्थराज से स्पष्ट शब्दो मे वरदान माँगा था। सो स्पष्ट शब्दो मे उत्तर मिला। अत दिखावा बचाने के लिए मन ही मन वरदान माँगा। वरदान भी वही है जो तीर्थराज से माँगा था। यथा सीता राम चरन रति मोरे। अनुदिन बढउ अनुग्रह तोरे।

वन मे जा रहे हैं। अत रास्ते मे किरात कोल वन के रहनेवाल मिलते हैं। वानप्रस्थ मिलते हैं। ब्रह्मचारी तथा सन्यासी मिलते हैं। उदासीन गृहस्थ भी मिलते हैं। भरतजी सबको प्रणाम करते हैं। भक्त आश्वचाण्डालगोखरम्। कुत्ता, चाण्डाल, गौ, गधा सबमे परमेश्वर को देखते हुए सबको प्रणाम करते हैं।

करि प्रनामु पूछहिं जेहि तेही। केहि बन लखनु रामु बैदेही ॥
ते प्रभु समाचार सब कहही। भरतहि देखि जनम फलु लहही ॥३॥

अर्थ प्रणाम करके जिस किसी से पूछते हैं कि लक्ष्मण और राम जानकी किस वन मे रहते हैं। वे लोग सरकार का सब समाचार कहते हैं और भरतजी को देखकर जन्म का फल प्राप्त करते हैं।

व्याख्या जिस ज्ञान का आश्रय करके गोस्वामीजी ने जड चेतन जितने जीव हैं सबको प्रणाम किया। उसी ज्ञान का आश्रय करके भरतजी सबको प्रणाम

करते हैं। जी मे खटका लगा है : राम लखन सिय सुनि मम नाँऊ। उठि जनि अनत जाहि तजि ठाऊँ। अत. सबसे वन का नाम पूछते हैं। जिसमे लक्ष्मण राम जानकी निवास करते हैं। जैसे मुहल्ले और नगरो के नाम होते हैं उसी भाँति वनो के नाम भी होते हैं।

तब वे लोग प्रभु का समाचार बतलाते हैं। भरतजी तो केवल वन का नाम पूछते है। पर वे भरतजी को आर्त देखकर सब समाचार जो उन्हे मालूम हैं बतलाते हैं और भरतजी के दर्शन से उनका जन्म सुफल हो जाता है। भरद्वाजजी ने कहा ही है . तेहि फल कर फल दरस तुम्हारा। सहित प्रयाग सुभाग हमारा।

जे जन कहहि कुसल हम देखे। ते प्रिय राम लखन सम लेखे ॥
एहि विधि बूझत सबहि सुबानी। सुनत राम वनवास कहानी ॥४॥

अर्थ : जो लोग कहते है कि हमने देखा है वे कुशल से हैं। उन्हे राम लक्ष्मण के समान प्रिय माना। इस प्रकार सबसे सुन्दर वाणी द्वारा पूछते और रामजी के वनवास की कहानी सुनते चले जाते है।

व्याख्या : प्रिय का कुशल कहनेवाला भी परम प्रिय होता है। यथा : जे कहिहैं आए राम लखन घर करि मुनि मख रखवारी। ते तुलसी प्रिय मोहि लागि है ज्यौं सुभाय सुतचारी। शुभ समाचार देनेवाला प्रिय माना जाता है। उसे पुरस्कार दिया जाता है। अतः कुशल कहनेवाले ऐसे प्रिय लगे जैसे राम लक्ष्मण प्रिय थे।

सबसे पूछने का अभिप्राय यही कि यदि सब लोग एक ही वन का नाम लें तो निश्चय हो जाय कि मेरा नाम सुनकर वन छोडकर अन्यत्र नही गये। दूसरी बात यह है कि भरतजी रामचरित के रसिक हैं। सबसे पूछने से कुछ न कुछ नयी वात मालूम ही होती है।

दो. तेहि वासर बसि प्रातही, चले सुमिरि रघुनाथ।
राम दरस की लालसा, भरत सरिस सब साथ ॥२२४॥

अर्थ : उस दिन रहकर सवेरे ही रघुनाथजी को स्मरण करके चले। भरतजी ही के समान सब साथ मे रहनेवालो को रामजी के दर्शन की लालसा है।

व्याख्या : वन मे ही डेरा डाला। सवेरा होते ही चल पडे। पता चल गया कि सरकार का निवासस्थान सन्निकट है। इसलिए रामजी के दर्शन की लालसा बढी हुई है। जैसी भरत को लालसा है वैसी ही सब साथवालो को है। अतः सबको बडी जल्दी है। कवि ने भी शीघ्रता की है। कथा सक्षेप मे कह रहे हैं। दो शब्द मे उस रात का ठहरना कहा। स्मरण मे भी सक्षेप कर रहे हैं। पहिले लिखते थे : सुमिरत लखन सीय रघुनाथा। यहाँ कहते हैं : सुमिरि रघुनाथ।

जहाँ नदी किनारे नही ठहरते वहाँ स्नानादिक का वर्णन नही करते। क्योंकि अवगाह स्नान ही वस्तुतः स्नान है। यथा : बीच वास करि जमुनहि आये और

यहाँ से चलते समय कहते हैं . चले नहाइ नदिहि सिर नाई। लक्ष्मण सीत रघुनाथजी का स्मरण करके प्रस्थान करते थे। आज शीघ्रता मे रघुनाथ स्मरण कहा।

मंगल सगुन होहिं सब काहू। फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू
भरतहि सहित समाज उछाहू। मिलिहहिं रामु मिटहि दुख दाहू

अर्थ · मङ्गल शकुन सब किसी को हो रहा है। सुख देनेवाले नेत्र और फडकने लगी। भरतजी को समाज के सहित उत्साह है कि रामजी मिलें दु ख का दाह मिटेगा।

व्याख्या शुभाशुभ सूचक कुछ चिह्न हैं जिन्हे भगवती प्रकृति शु घटनाओ के पहिले प्रकट कर देती हैं। इसके लिए शकुन शास्त्र ही पृथक् बन है जिसमे उन चिह्न विशेष के फल दिये हुए हैं। यह बराबर घटत श्री गोस्वामीजी इनका बार बार उल्लेख करते हैं। यहाँ पर कहते हैं कि सूचक शकुन सबको हो रहा है। सबकी आँखें और भुजाएँ फडक रही हैं। के वाम अङ्ग का फडकना शुभ है और पुरुषो के दक्षिण अङ्ग का फडकन है। यथा भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहि बार। जानि सगुन हरष अति लागे करन बिचार। तथा जब अति भयेउ बिरह उरदाहू। फ बाम नयन अरु बाहू। यहाँ नर नारि दानो हैं। अत दक्षिण वाम न कहकर बिलोचन बाहू कहा।

शकुन विचार करके भरतजी को समाज सहित उत्साह है। क्योंकि मिलन ही शुभ शकुन का फल है। यथा सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी। अत र के मिलन का निश्चय हो रहा है। फलत वियोगजन्य दु खदाह के मिटाने क दृढ आशा है। सो सबके हृदय मे उत्साह है। मुनिजी ने कहा भी है सब मिटिहि रामपद पेखी।

करत मनोरथ जस जिय जाकें। जाहिं सनेह सुरा सब छाके॥
सिथिल अग पग मग डगि डोलहिं। बिह्वल बचन प्रेम बस बोलहि॥

अर्थ जिसके मन मे जैसा मनोरथ है वैसा ही मनोराज करते हुए प्रेम मदिरा मे उन्मत्त हुए सब चले जा रहे हैं। सब अङ्ग शिथिल हैं। पैर भी शि है। रास्ते मे डगमगाते हुए चल रहे है और प्रेमवश विह्वल वचन बोल रहे हैं।

व्याख्या यहाँ पर सबके प्रेम का वर्णन करते हुए कवि उनकी मद्य उपमा दे रहे हैं। जब मनुष्य सुरापान करके मदोन्मत्त हो जाता है तब अपने की बात जोर जोर से कहने लगता है। उसके अङ्ग शिथिल हो जाते हैं। रास ठीक ठीक पैर नही पडते। वही दशा यहाँ हो रही है। सबके सब प्रेममयी म से उन्मत्त हो रहे हैं। अत रामजी के दर्शन पाने पर क्या क्या करेंगे। वे सब मन मे ही न रखकर मुख से प्रगट बोलते जा रहे है। प्रिय के मिलने का नि

होने पर मनोरथ उठते हैं। पर उसे व्यक्त कोई नहीं करता। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ। यहाँ मुख से बोलने लगे। शरीर और वाणी की भी वही दशा हो गयी जो शराबियो की होती है। पैर ओखा पडता है। हकला हकलाकर बोलते हैं।

राम सखा तेहि समय देखावा। सैल सिरोमनि सहज सुहावा॥
जासु समीप सरित पय तीरा। सीय समेत बसहिं दोउ बीरा॥३॥

अर्थ उस समय रामसखा ने उस स्वभावत सुन्दर पर्वत शिरोमणि को दिखलाया। जिसके समीप पयस्विनी नदी के तीर पर सीताजी के सहित दोनो वीर बसते थे।

व्याख्या प्रयागराज से ही सब लोग चित्रकूट की ओर चित्त लगाये चले जा रहे थे। यथा चले चित्रकूटहि चित दीन्हे। सो चित्रकूट कामदगिरि दिखायी पडने लगा। रामसखा पहिचानता था और उसे पता लग गया था कि सरकार का चित्रकूट के समीप पयस्विनी नदी के तट पर डेरा है। अत उसने दिखलाया कि वही चित्रकूट दिखला रहा है। चित्रकूट मेरु का शिखर है। वायु देवने मेरु से पृथक् करके यहाँ डाल दिया है। इसलिए सहज सुहावन है और सरकार के निवास से शैलशिरामणि हो गया। यथा सैलहिमालय आदिक जेते। चित्रकूट जस गावहिं तेते।

देखि करहिं सब दड प्रनामा। कहि जय जानकि जीवन रामा॥
प्रेम मगन अस राजसमाजू। जिमि फिरि अवध चले रघुराजू॥४॥

अर्थ देखकर सब लोग जानकीजीवन रामचन्द्र की जय कहकर दण्डवत् प्रणाम करने लगे। राजसमाज ऐसा प्रेम मे मग्न हुआ मानो रामजी अयोध्या लौटकर चल रहे हो।

व्याख्या चित्रकूट का महा माहात्म्य है। शैल शृङ्ग भवभग हेतु लखु दलन कपट पाखड दभ दलु। जहँ जनमे जग जनक जगपति बिधि हरिहरि प्रपच छलु। त्रिदेव मे से किसी से सम्बद्ध होने से ही वह भूमि महातीर्थ हो जाती है और चित्रकूट तो तीनो देव की जन्मभूमि है। यहाँ रुद्र भगवान् दुर्वासा होकर, विष्णु भगवान् दत्तात्रेय होकर, ब्रह्मदेव चन्द्रमा होकर अवतीर्ण हुए हैं और तीनो ब्रह्मज्ञानी ऋषि हुए। उत्पत्ति स्थिति सहार के प्रपञ्च से सम्बन्ध न रक्खा अत त्रिदेव की जन्मभूमि होने से इस महातीर्थ का दर्शन करके जनकजी ने रथ परित्याग किया। यथा गिरिवर दीख जनक नृप जबही। करि प्रनाम रथ त्यागेउ तबही। अत सब लोग दण्ड प्रणाम कर रहे हैं। इस समय जानकीजीवन राम का निवास स्थान हो रहा है। अत जानकीजीवन रामजी की जय कहकर दण्डवत् करते हैं।

दो भरत प्रेमु तेहि समय जस, तस कहि सकहिं न सेषु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुख, अह मम मलिन जनेषु॥२२५॥

अर्थ : उस समय भरत का जैसा प्रेम था वैसा शेषजी भी नही कह सकते। कवि को उसका कहना वैसा ही अगम है जैसा अहङ्कार और ममता से मलिन पुरुष को ब्रह्मसुख अगम होता है।

व्याख्या : सारे समाज की दशा कहकर तब भरतजी की दशा कहते हैं कि उनकी दशा तो शेष भी नहीं कह सकते। शेष बड़े प्रेमी है, सरकार का साथ नही छोड़ते, बडे वाग्मी हैं, दो सहस्र जिह्वा है। उन्हें अगम नही है। पर कह नहीं सकते। गोस्वामीजी कहते है कि मुझे अगम है। क्योंकि मुझे अनुभव नही है। जैसे ब्रह्मसुख का अनुभव अहन्ता ममता से मलिन हृदय पुरुष को नही हो सकता। यथा : मैं तैं मोर मूढता त्यागू। महामोह निसि सोवत जागू। तथा : मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। राम रूप देखहिं किमि दीना। अतः मैं कैसे कह सकता हूँ। जब न द्वैत भासे और न निद्रा हो। उस सुख को ब्रह्मानन्द कहते हैं। अहन्ता ममता से मलिन पुरुष को या तो द्वैत भासेगा या निद्रा होगी। अतः उस ब्रह्मसुख का अनुभव हो ही नही सकता।

सकल सनेह सिथिल रघुबर कें। गए कोस दुइ दिनकर ढरकें ॥
जलु थलु देखि बसे निसि बीते। कीन्ह गवनु रघुनाथ पिरीते ॥१॥

अर्थ : सब लोग रामजी के स्नेह में शिथिल हो गये। दो कोस चले। सूर्य अस्ताचल की ओर अभिमुख हुए। जलाशय देखकर डेरा डाल दिया। सवेरा होते ही रामजी के प्रेमी चल पडे।

व्याख्या : सब लोग ऐसे स्नेह सुरा से छके थे कि रास्ता चलना असाध्य व्यापार हो पड़ा। शरीर शिथिल है। चलने मे डगमगाते हैं परन्तु दर्शन की लालसा से चलना बन्द भी नही करते। दिन भर चलते रहे। पर दो ही कोस चल पाये। तब तक सूर्यनारायण अस्ताचल के सन्निकट पहुँच गये।

तब होश आया कि कही ठहरना चाहिए। सो जलाशय देखकर ठहर गये। पर रात बीतना कठिन हो गया। रात तीन पहर मे ही खतम हो जाती है। चौथे पहर की दिन मे गिनती है। सो एक पहर रात रहते ही चल पड़े। ये सबके सब रामजी के प्रेमी हैं। कब भेंट होगी : इस लालसा के कारण बडी शीघ्रता है।

लक्ष्मण क्रोध प्रसङ्ग

उहाँ रामु रजनी अवसेखा। जागे सीय सपन अस देखा ॥
सहित समाज भरत जनु आए। नाथ बियोग ताप तन ताए ॥२॥

अर्थ : वहाँ रामजी रात के अन्तिम भाग मे जागे। सीताजी ने स्वप्न देखा कि मानो सरकार के वियोग से सन्तप्त भरतजी समाज सहित आये हैं।

व्याख्या : कवि सदा भगवान् के साथ रहते हैं। अतः रामजी के यहाँ का जो कुछ हाल कहना है उस प्रकरण मे इहाँ शब्द का प्रयोग करते हैं और दूसरे स्थान

के लिए वहाँ कहते हैं। परन्तु भक्त का प्रसङ्ग आने पर कवि रामजी का साथ छोड़कर भक्त के पास चले जाते हैं। तब उस स्थान को इहाँ और रामजी के पास को उहाँ कहते हैं। इस नियम का निर्वाह सारे ग्रन्थ मे कवि ने किया है। अत इस समय कवि भरतजी के साथ हैं। रामजी के यहाँ की कथा लिखने मे उहाँ का प्रयोग करते हैं।

वहाँ अवधवासियों के प्रयाण करने के पहिले ही सरकार जाग गये। उसी समय अर्थात् रात्रि अवशेप मे सीताजी ने स्वप्न देखा। जिस स्वप्न का घटना से सम्बन्ध होता है कवि उस स्वप्न का भी उल्लेख करते हैं। सीताजी ने वह सपना रामजी को सुनाया। वे समझती हैं कि यह स्वप्न निरर्थक नहीं है। क्योकि जागते समय इसे देखा है। सपना देखने के बाद नींद लग जाने से स्वप्न निरर्थक हो जाता है।

और रामजी से कहने लगीं इतने शब्दो का अध्याहार करना होगा। सपना का हाल कह रही हैं। अत कहती है कि सहित समाज मानो भरतजी आये। अपना प्रातिभासिक सत्य है। व्यावहारिक सत्य की अपेक्षा मिथ्या होता है। अत मानो शब्द का प्रयोग किया और कहती हैं कि भरतजी समाज के सहित सरकार के वियोग से सन्तप्त हैं। नाथ शब्द का भाव यह कि भरतजी ने राज्य नही स्वीकार किया नाथ आप ही को माना। ताप तन तायें का भाव यह कि वियोगाग्नि सहन न हो सकी। मनाने आये हैं।

सबल मलिन मन दीन दुखारी। देखी सासु आन अनुहारी ॥
सुनि सिय सपन भरे जल लोचन। भए सोचबस सोच बिमोचन ॥२॥

अर्थ : सब मन मलिन हैं। दीन और दुखी हो रहे हैं और देखा कि सास लोग जैसी थी वैसी नहीं हैं।

व्याख्या . अब समाज की दशा कहती हैं सब उदास हैं। किसी मे प्रसन्नता नही बल्कि ऐसे दुखी हैं कि दीन हो रहे हैं। भाव यह कि मानसिक दुख से दुखी हैं। मन की म्लानता से दुख और दुख की अधिकता से दीनता है। सास वही हैं पर उनका स्वरूप दूसरा हो रहा है। स्वप्न का कुछ भाग सत्य और कुछ का फल असत्य होता है। यथा : त्रिजटा का स्वप्न : बानर लका जारी। जातुधान सेना सब मारी। इतना भाग सत्य हुआ : खर आरूढ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा। इत्यादि का फल असत्य हुआ। इसी भाँति यहाँ भी भरतजी का समाज सहित दुखी होकर आना सत्य हुआ और : सास आन अनुहारी का फल असत्य हुआ।

सीताजी के स्वप्न के फल का विचार करके आँखो में आँसू भर आया। सरकार सोच विमोचन हैं। फिर भी सोचवश हो गये · ऐसा कहने से सरकार की लीला कही। यथा : जथा अनेक वेप धरि नृत्य करै नट कोइ। सोइ सोइ

भाव देखावै आपुन होइ न सोइ। असि रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी।

लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई ॥
अस कहि बंधु समेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने ॥४॥

अर्थ लक्ष्मण! यह स्वप्न अच्छा नही है। कोई बहुत बुरा समाचार सुनावेगा। ऐसा कहकर भाई के साथ स्नान किया और शङ्कर की पूजा करके साधुओ का सत्कार किया।

व्याख्या जिस समय भगवती ने स्वप्न कहा उस समय लक्ष्मणजी भी पाद वन्दना के लिए आगये थे। अत सीताजी से कुछ न कहकर लक्ष्मणजी से कहते हैं कि इस स्वप्न का फल अच्छा नही है। कोई बडा अनिष्ट समाचार सुनावेगा। क्योकि भरतजी के आने की तो सम्भावना नही है। कोई समाचार ही लेकर आवेगा और वह समाचार ऐसा होगा जिसके कारण भरत भी दु खी हैं। समाज भी दु खी है और माताओ के स्वरूप मे भी अन्तर पडा है।

कुछ सपने ऐसे होते हैं जिनका फल होते देखा जाता है। स्वप्नाध्यायी मे इसका विस्तार है कि कौन कौन सपने सत्य होते है और कौन निष्फल होते है तथा किस सपने का फल कितने विलम्ब से होता है। सीताजी का सपना ऐसा था जिसका फल सद्य होनेवाला था ऐसा ही सपना त्रिजटा का था।

स्वप्न दोष निवारण के लिए प्रात स्नान, शिव पूजन, दानादि का विधान है। अत मर्यादा पुरुषोत्तम ने भाई के साथ स्नान किया। शिव पूजन किया तथा मुनियो का सम्मान किया।

छ सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भये।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे सकल प्रभु आश्रम गये ॥
तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे ॥

अर्थ देवता तथा ऋषियो का सम्मान करके बैठे तो उत्तर की ओर देखने लगे। आकाश मे धूलि है और चिड़ियाएँ तथा मृग भागे हुए प्रभु के आश्रम मे पहुँचे। तुलसीदास कहते हैं कि यह देखकर उठे कि क्या कारण है और चकित रह गये। उस समय कोल किरातो ने आकर सब समाचार सुनाया।

व्याख्या सरकार स्वप्न की यथासाध्य शान्ति करके बैठे। उत्तर की ओर विशेषता दिखायी पडी। अत उस ओर देखने लगे। सेना के आगमन का चिह्न दृष्टिगोचर होने लगा। धूरि पूरि नभ मण्डल रहा। उत्तर से दक्षिण की ओर सेना आ रही है। अत खग मृग भागकर आश्रम की ओर चले आ रहे हैं। अयोध्या वहाँ से उत्तर ही पडती है। विशेष दृष्टि प्रसार के लिए उठे। चकित होकर देखते हैं कि धूलि

उठने और खग मृग क भागने का कारण क्या है। किरात कोलो ने कहा था हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई। सो सेना का आगमन देखकर उन सबो ने पता लगाया कि किसकी सेना है और आकर पहिले ही सरकार को समाचार दिया।

दो सुनत सुमगल बैन, मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरद सरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह जल ॥२२६॥

अर्थ सुन्दर मङ्गल के वचन सुनते ही मन मे आनन्द हुआ। शरीर मे पुलक हुआ। शरत्काल के कमल से आँखो मे तुलसीदास कहते हैं कि प्रेम का जल भर आया।

व्याख्या भरतजी के आगमन का समाचार सुमङ्गल है। तत्सूचक वचन भी सुमङ्गल है। भरतजी पर सरकार का इतना प्रेम है कि उनके आगमन के समाचार सुनते ही मन मे हर्ष हो उठा। शरीर म पुलक हो गया। पुलक होना और नेत्रो मे जल भर आना ये अनुभाव है। जो शोक और हर्ष दोनो मे होते हैं। यथा सकल सखो गिरिजा गिरि मैना। पुलक सरीर भरे जल नैना। नारदहूँ यह भेद न जाना। दस एक समुझव बिलगाना। सरकार ने कुछ कहा नही। अत यह पता न लग सका कि यह सजल नयन और पुलक तन किस बिभाव का अनुभाव है।

बहुरि सोच बस भे सियरवनू। कारन कवन भरत आगवनू ॥
एक आइ अस कहा बहोरी। सेन सग चतुरग न थोरी ॥१॥

अर्थ फिर जानकी नाथ सोच मे पड गये कि भरत के आने का कारण क्या है ? फिर एक ने आकर कहा कि उनके साथ थोडी चतुरङ्गिनी सेना नही है।

व्याख्या पहिले सीताजी का सपना सुनकर सोचवश हुए थे। यथा भये सोचवश सोच विमोचन। अब भरतजी का आगमन सुनकर रामजी फिर सोचवश हुए। सोच यह कि भरत के आने का कारण नही मालूम होता। पिताजी ने राज्य के लिए कह ही दिया था। मैंने भी उसका बार बार अनुमोदन किया। यथा भरत प्रान प्रिय पावहि राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू। और हमारे तथा कहब सदेस भरत के आए। नोति न तजिअ राजपद पाये। फिर पिताजी के आदेश के प्रतिकूल यहाँ आने का कारण क्या ?

पहिले किरात ने आकर केवल भरतजी के आगमन का समाचार दिया। जैसा सुना था वैसा ही उसने खबर दिया। जब उन सबो ने आँखो देखा कि बडी भारी सेना है। यह तो अङ्गरक्षक सेना नही है। आक्रमणोपयागी सेना है। तब दूसरी खबर भेजने की आवश्यक्ता हुई। क्योकि सेना का चलना युद्ध की सूचना देता है और यहाँ रामजी के सिवा दूसरा है कौन ? अत दूसरे ने यह खबर भी दे डाली।

सो सुनि रामहि भा अति सोचू। इत पितु बच इत बंधु सकोचू ॥
भरत सुभाउ समुझि मन माँही। प्रभु चित हित थिति पावत नाँही ॥२॥

अर्थ : यह सुनकर रामजी को अत्यन्त सोच हुआ। इधर तो पिता का वचन और इधर भाई का सङ्कोच। भरतजी स्वभाव को मन मे समझकर प्रभु का चित्त हित स्थिति को प्राप्त नही होता।

व्याख्या : दूसरे समाचार को सुनते ही सरकार समझ गये कि भरत मेरे अभिषेक की तैयारी किये हुए आ रहे हैं। अतः यह सुनते ही सोच की मात्रा अधिक बढ गयी। पिता की आज्ञा और भाई का सङ्कोच इन दोनो मे कोई कम प्यारा नही है। अत. दोनों पक्षो के लिए इत शब्द का प्रयोग हुआ है। यदि तारतम्य होता तो जिधर अधिक प्रवृत्ति होती उधर के लिए इत और जिधर कम प्रवृत्ति होती उधर के लिए उत आता। ग्रन्थभर मे इत उत का इसी भाव मे प्रयोग हुआ है। इस समय परिस्थिति ऐसी आगयी कि या तो पिता का वचन छोडें या भाई का सङ्कोच छोडें। तीसरा मार्ग नही है। अत· सरकार को बडा सोच हुआ।

रामजी भरत के स्वभाव को सोचते हैं कि भरत को मेरे चरणो मे प्रेम है। यथा : राम चरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजै न पासू। बहुत सम्भव है कि भरतजी राज्य स्वीकार न करें। तब क्या होगा ? मै पिता का वचन छोड़ नही सकता। भरत राज्य स्वीकार नही करता। ऐसी विकट स्थिति मे तीसरा मार्ग कौन है जिससे सामञ्जस्य बैठ जाय। ऐसा कोई मार्ग दिखायी नही पड़ता।

समाधान तब भा यह जाने। भरत कहे महु साधु सयाने ॥
लखनु लखेउ प्रभु हृदय खभारू। कहत समय सम नीति बिचारू ॥३॥

अर्थ : तब यह जानकर समाधान हुआ कि भरत मेरी आज्ञा मे हैं और सयाने साधु हैं। लक्ष्मणजी ने लखा कि प्रभु के हृदय मे सोच है। समयानुकूल नीति का विचार कहा।

व्याख्या : इस विचार से सामञ्जस्य बैठ गया कि भरत मेरी आज्ञा मानने-वाले हैं। यथा : मोरेहुँ भरत न पेलिहहिं मनसहुँ राम रजाय। तथा : भरत राम आयसु अनुसारी। इसके अतिरिक्त भरत सयाने साधु हैं। मुझे पुत्रधर्म से विमुख होने पर कभी हठ न करेंगे। स्वयं कष्ट सह जावेंगे पर किसी के धर्म पर आघात न होने देगें।

लक्ष्मणजी सदा प्रभु की चित्तवृत्ति को लखा करते हैं। सो इन्होने लखा कि सरकार कहते कुछ नही पर इनके हृदय मे सोच है। सीताजी ने बुरा सपना देखा है और उसका फल सरकार ने कह दिया कि कोई बड़ा अनिष्ट का समाचार सुनावेगा। यह किरात आकर चतुङ्गिनी सेना के साथ भरतजी के आगमन का समाचार दे रहा है। यह समाचार अति अनिष्टकर तभी हो सकता है जब भरत के मन मे पाप आवे। अतः यह अवसर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाने का है। यह विचार का समय

नहीं है कि भरत धर्म की मर्यादा कैसे मिटावेंगे और मुझसे प्रेम करना कैसे छोड़ देगें। अतः समयानुकूल नीतिका विचार कहने लगे।

बिनु पूछें कछु कहउँ गोसाईं। सेवकु समयँ न ढीठ ढिठाई ॥
तुम्ह सर्बग्य सिरोमनि स्वामी। आपुनि समुझि कहउँ अनुगामी ॥४॥

अर्थ : हे स्वामी ! बिना पूछे ही कुछ कहता हूँ। सेवक समय पर ढिठाई करने से ढीठ नहीं होता। आप सर्वज्ञो में शिरोमणि है। मैं सेवक हूँ। अपनी समझ कहता हूँ।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने कहा कि बिना पूछे कुछ कहना ढिठाई है। यह ख्यापन करना है कि मैं बड़ा समझदार हूँ। पर मेरी ढिठाई समय : मौके की है। अतः इस ढिठाई से मैं ढीठ नहीं समझा जा सकता। अथवा यह सेवक का समय है अतः मेरी ढिठाई ढिठाई नहीं है। सेना सिर पर आगयी। उसका सामना करना मुझ सेवक का काम है। प्रभु सर्वज्ञो मे शिरोमणि है। मै अल्पज्ञ जीव हूँ। आप का ही समझना उपादेय है पर मै अपनी समझ कहता हूँ। भरतजी के आगमन के दो ही कारण हो सकते हैं। एक तो जैसा सरकार सोचते हैं। दूसरा वह जो कि मै सोचता हूँ।

दो. नाथ सुहृद सुठि सरल चित, सील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जियँ, जानिअ आपु समान ॥२२७॥

अर्थ : नाथ ! आप सुहृद अत्यन्त सरलचित्त और शील स्नेह के निधान हैं। सबके ऊपर आपकी प्रीति है। सब पर विश्वास है और सबको अपने समान जानते है।

व्याख्या : लक्ष्मणजी कहते हैं कि जो मैं सोचता हूँ उसे सरकार सोच नहीं सकते। क्योंकि निष्कारण भला चाहने का आपका स्वभाव है। मन वाणी और कर्म एक रूप है। महात्मा हैं। शील और स्नेह के निधान हैं। आप दु शील निर्दय स्वार्थी कपटियो की बातें समझ नहीं सकते। क्योंकि सब पर आपका प्रेम है और सब पर विश्वास है। अत प्रीति प्रतीतिवाली बात ही सोचते है। यह सोचना भी ठीक ही है। क्योंकि जो जैसा होता है वैसा ही ससार को देखता है।

बिषई जीव पाइ प्रभुताई। मूढ मोह बस होहिं जनाई ॥
भरत नीति रत साधु सुजाना। प्रभु पद प्रेमु सकल जगु जाना ॥१॥

अर्थ : विषयी जीव जब प्रभुता पाते हैं तो वे मूढ अज्ञान के वश अपने को जानते हैं। भरतजी नीतिरत हैं। सुजान साधु हैं। उनकी सरकार की चरणो मे प्रीति है। यह सारा ससार जानता है।

व्याख्या : तीन प्रकार के जीव ससार मे होते है। १ सयाने सिद्ध २ साधक और ३. विषयी। यथा बिषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिविध जीव जग बेद बखाने।

उनमे से सिद्ध और साधक तो सम्पत्ति पाकर अधिक नम्र हो जाते है। यथा : फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि नियराय। पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसपति पाइ। परन्तु विषयी जीव की बात ही दूसरी है। उन्हे सम्पत्ति न रहे, प्रभुता न रहे तभी उनकी चित्तवृत्ति शान्त रहती है। बडे सीधे और बडे अच्छे बने रहते है। पर जहाँ उनको प्रभुता मिली तहाँ वे होश के बाहर हो जाते हैं। अपने को जनाने की धुन उन्हे सवार हो जाती है। मूढ लोग ही विषयी होते हैं। प्रभुता पाने से उनकी मूढता अधिक बढ जाती है। तब वे अपनी प्रभुता के ख्यापन के लिए अनर्थ करने लगते हैं। यह साधारण नियम है।

नीतिरत साधु प्रकृति हरिभक्त के प्रभुता पाने से तो ससार को सुख होता है। यथा : बिस्व सुखद जिमि इदु तमारी। वे सूर्य चन्द्र की भाँति सम्पूर्ण विश्व के सुखदाता हो जाते हैं। परन्तु यहाँ तो अद्भुत बात हुई। भरतजी नीतिरत भी हैं और साधुओ मे सुजान है। उनकी प्रसिद्धि है कि सरकार के चरणो के अनुरागी है।

तेऊ आज राज पदु पाई। चले धरम मरजाद मेटाई॥
कुटिल कुबधु कुअवसरु ताकी। जानि राम बनवास एकाकी॥२॥

अर्थ : वे भी आज राज्यपद पाकर धर्म की मर्यादा को मिटा चले। जो कुटिल कुबन्धु होते हैं वे कुअवसर देखनेवाले होते है। उन्होने रामजी को वनवास मे अकेला जानकर।

व्याख्या अत यह ठीक है 'श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि। देखिये जिन भरतजी मे आज के पहिले ऐसे उत्कृष्ट गुण थे आज जब उन्हे राजपद मिल गया तो धर्म की मर्यादा मिटाकर चल पडे। धर्म मे कर्म ज्ञान उपासना तीनो का अन्तर्भाव है। सो भरतजी ने तीनो मिटाया : कर्मपथ से विचलित हुए। यथा : भरत न राजनीति उर आनी। तब कलक अब जीवन हानी। ज्ञान भी नही रह गया : सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहि समर न जीतनि हारा। उपासना भी गयी जानहि सानुज रामहि मारी। करौ अकटक राज सुखारी।

भरतजी की इस करणी को देखकर पता चलता है कि अपने को असमर्थ पाकर अपने रूप को छिपाये रहे। राज पाने पर अपने यथार्थ रूप को प्रकट कर दिया। भरत कुबन्धु हैं। सुबन्धु तो कुअवसर मे सहाय होते है। यथा : होहि कुठायँ सुबधु सहाये। ये कुअवसर के ताक मे रहे। वह कुअवसर अब मिला। अयोध्या मे तो सारी प्रजा आपके साथ है। वहाँ आपका क्या कर सकते थे? यहाँ देखा कि वन मे अकेले हैं। यद्यपि आप अकेले नही है। पर वे जानते है कि अकेले हैं। सरकार सुठि सरल हैं। भरत कुबन्धु हैं। सरकार सील सनेह निधान हैं। भरत कुअवसर ताकी है। सरकार को तो : सब पर प्रीति प्रतीति जि है और भरत अकटक राज करने आये हैं।

करि कुमंत्रु मन साजि समाजू। आए करइ अकटक राजू ॥
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। आए दल बटोरि दोउ भाई ॥३॥

अर्थ : मन मे बुरी सलाह ठानकर और समाज सजाकर अकण्टक राज्य करने आये हैं। करोडो प्रकार की कुटिलता की कल्पना करके दोनों भाई सेना इकट्ठी करके आये हैं।

व्याख्या : अत: आप अपने समान भरत को न समझिये। इन्होने अपने मन मे कुमन्त्र विचारा है। इसलिए साज समाज छोड़कर अकण्टक राज करने चले हैं। माता से जो कसर रह गयी उसे पूरा करने चले हैं। उसने १४ वर्ष के लिए सरकारी वनवास माँगा। पर चौदह वर्ष के बाद तो क्षत्रिय अपना धर्म सँभाले गा ही। राज्य के लिए युद्ध होगा ही। ऐसा निश्चय करके भरत आपको अकण्टक समझते हैं। अतः कण्टकोद्धार के लिए सेना इकट्ठी करके आये हैं।

इन्होने करोडो प्रकार से कुटिलता की कल्पना की है। अपने मे कुटिलता है। इसलिए आप ऐसे महापुरुष मे उन्हे करोडो प्रकार की कुटिलता दिखायी पड़ रही है। शत्रुघ्न भी षड्यन्त्र मे सम्मिलित हैं। अत दोनों भाई सेना लिये आ रहे हैं।

जौं जिय होति न कपट कुचाली। केहि सोहात रथ बाजि गजाली ॥
भरतहि दोसु देइ को जाएँ। जग बौराइ राजपद पाएँ ॥४॥

अर्थ : यदि इनके जी मे कपट कुचाल न होती तो रथ घोडे और हाथियो की पक्ति किसे अच्छी लगती। व्यर्थ ही भरत को दोष कौन दे। राजपद पाने पर सभी उन्मत्त हो जाते हैं।

व्याख्या : यदि कहिये कि भरतजी सरकार से मिलने आये हैं। उनके मन मे कपट कुचाल नही है। उनके मन मे सरकार के वनवास होने का दु ख है। अतः राजा होने पर भी भाई की समवेदना से मिलने आ रहे हैं तो यह बात भी नहीं है। यदि दु खी होते तो उन्हें यह ठाट बाट अच्छा न लगता। उन्हे ठाट बाट इतना प्रिय है कि केवल भेंट करने के लिए चतुरङ्गिनी सेना साथ लिये हुए है। यही इस बात का यथेष्ट प्रमाण है कि उन्हे सरकार के वनवास का दु ख नही बल्कि खुशी है।

अपनी बात की पुष्टि करते हुए लक्ष्मणजी कहते है कि यही ससार का नियम है कि जो राजपद पा जावे वही पागल हो जाय। अतः हमारा भरतजी को दोष देना व्यर्थ है जो दोष सभी से हो जाता हो उसके लिए किसी एक को दोषी नही कहा जा सकता।

दो. ससि गुरु तिय गामी नहुषु, चढेउ भूमिसुर जान।
लोक बेद ते बिमुख भा, अधम को बेन समान ॥२२८॥

अर्थ : चन्द्रमा ने गुरु स्त्री से गमन किया। नहुष ब्राह्मणो के द्वारा ले चलने-

वाले यान पर चढ़े। राजा वेन सा अधम तो कोई नही हुआ। क्योकि वह लोक और वेद दोनो से विमुख हुआ।

व्याख्या : उदाहरण देते है। चन्द्रमा ने राज्य पाकर : औषधियो और ब्राह्मणों के पति होकर महापातक किया। गुरुतल्पग हुए। क्या ससार अन्य सुन्दरियो से रिक्त हो गया था। नहुष राजा इन्द्रत्व पाकर ऐसे यान पर चढने की धृष्टता की जिसके ढोने मे ब्रह्मर्षि लोग लगाये गये थे। क्या ससार मे उसे दूसरी सवारी न मिली। ब्रह्मर्षियो के यान पर चढने मे क्या कोई विशेष सुख है। राजा वेणु लोक वेद दोनो से गया। न सासारिक सुख ही किया न धर्म ही कमाया। उसने परमेश्वर से कोई सम्बन्ध न रक्खा। न प्रेमी ही हुआ न वैरी ही हुआ। उसकी आज्ञा थी : न यष्टव्यं न होतव्यं न दातव्य कदाचन। कोई यज्ञ न करे, हवन न करे और न कोई दान करे। यज्ञ और होम मे खाद्य पदार्थ के हवन करने से लोगो की हानि होती है। दान करने से आलसियो की सख्या बढती है। अत यह कर्म कोई कर न पावे। इसलिए कहते है कि वेन सा नीच कौन होगा ?

सहस बाहु सुरनाथ त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काऊ॥१॥

अर्थ : कार्तवीर्यार्जुन इन्द्र तथा त्रिशकु राजा इनमे से किसे राजमद ने कलङ्क नही दिया ? भरत ने यह उचित उपाय किया कि शत्रु और ऋण का शेष भी नही रखना चाहिए।

व्याख्या . सहस्रबाहु कार्त्तवीर्यार्जुन ने ऋषि की गाय चाही। उन्हे रत्नभुक् होने का मद था और वह जमदग्नि ऋषि की गाय रत्न थी। ऋषिजी ने देने से इनकार कर दिया। इस कलह मे ऋषिजी मारे गये। उनके अपराध से इक्कीस बार पृथ्वी नि क्षत्र की गयी। यह कलङ्क राजा सहस्रबाहु को राजमद के कारण लगा। नही तो राजा सहस्रबाहु ऐसे योगी थे कि चौदहो भुवन मे चौदह शरीर धारण करके एक ही समय मे अपना राज्याभिषेक कराया था। इन्द्र रत्नभुक् होने के अभिमान से स्त्रीरत्न अहल्या के जार हुए और घोर दुर्दशा को प्राप्त हुए। आज तक वह कलक न गया। सहस्र नेत्र के रूप मे उनके शरीर मे विद्यमान हैं। त्रिशकु राजा ने सशरीर स्वर्ग जाने की धुन मे गुरु वसिष्ठजी का अपमान किया। ऋषि पुत्र के शाप से चाण्डाल हो गये। महर्षि विश्वामित्र की कृपा से ऊर्ध्वगति भी हुई तो आजतक स्वर्ग मे उलटे लटके हैं। सो राजमद से सबको कलङ्क लगता ही है।

भरतजी तो राजमद से पागल नही हुए। जैसा कि ये लोग हो गये थे। ये तो उचित उपाय कर रहे हैं। नीति शास्त्र कहता है : ऋणशेषोऽग्निशेषश्च व्याधिशेष-स्तथैव च। विवर्धते पुनर्यस्मात् तस्माच्छेष न कारयेत्। ऋण और शत्रु का शेष भी न रहने देना चाहिए। क्योकि ये समय पाकर बढ जाते हैं। यदि कोई कहे कि हम लोग तो भाई भाई हैं शत्रु कैसे हुए ? तो एक भोग्य वस्तु के निमित्त सहोदरो मे बड़ा भारी बैर खडा हो जाता है। यथा : एकामिषप्रभवमेव सहोदराणामुज्जृम्भते

जगति वैरमिति प्रसिद्धम् । भरत की दृष्टि से आप वैरी हैं । अत यह प्रयत्न भरतजी का कण्टकोद्धार के लिए है ।

एक कीन्ह नहिं भरत भलाई । निदरे रामु जानि असहाई ॥
समुझि परिहि सो आजु बिसेखी । समर सरोष राम मुखु पेखी ॥२॥

अर्थ . भरत ने एक बात अच्छी नही की जो रामजी का असहाय जानकर निरादर किया है । सो आज वह भी विशेष रूप से समझ मे आ जायगा जब युद्ध म क्रुद्ध रघुनाथजी का मुख देखेंगे ।

व्याख्या आज वे असहाय हैं । इसलिए रामजी को असहाय जानकर निरादर करने चले हैं । जब तक रामजी ससहाय थे तब तक तो सेवक ही बने फिरते थे । यथा प्रभु पद प्रेम सकल जग जाना । उन्होने समझ लिया है कि रामजी असहाय हैं । पर हैं नही । धनुप हाथ मे रहते असहाय कैसे हैं ?

भरतजी ने आज तक रामजी का क्रुद्ध मुख देखा ही नही है । क्योकि सग्राम मे कभी साथ नही रहे । मैंने सुबाहु मारीच के युद्ध मे कालानल के सदृश मुख रघुनाथजी का देखा है । वह मुख आज भरतजी को सग्राम भूमि मे दिखायी पडेगा । तब उन्हे विशेष रूप से समझ पडेगा कि रामजी का अनादर करके बहुत ही बुरा किया । यथा राम विरोध कुसल चह सठ हठ बस अति अग्य ।

एतना कहत नीति रस भूला । रन रस बिटपु पुलक मिस फूला ॥
प्रभु पद बंदि सीस रज राखी । बोले सत्य सहज बल भाखी ॥३॥

अर्थ इतना कहते हुए नीति रस भूल गया और युद्ध रस रूपी वृक्ष पुलक के व्याज से फूल उठा । प्रभु के चरणो मे नमस्कार करके रजको सिर पर चढाया और सच्चे सहज बल की घोपणा करते हुए बोले ।

व्याख्या उनके रहते सरकार को युद्ध करना पडेगा । इस बात को वीर लक्ष्मण सहन नहीं कर सकते । युद्ध मे सरकार के मुख के देखने मे भरत असमर्थ होगे । इस बात के मुख से निकालते ही नीतिरस विस्मरण हो गया । क्योकि रणरस का बडे वेग से आविर्भाव हुआ । लक्ष्मणजी को पुलक हो गया मानो रणरस रूपी वृक्ष के लिए बहार आगयी । लक्ष्मणजी मानो स्वय रणरस हैं और पुलक होना उनका पुष्पित हो उठना है ।

अब फल लग रहा है । युद्ध के लिए आज्ञा माँगेंगे । इसलिए वन्दना करते हैं । भाव यह कि सरकार को धनुप उठाना न पडेगा । सरकारी चरण रज के प्रभाव से लक्ष्मण सब करेगा । इसलिए चरणरज सिर पर धारण करते हैं । युद्ध मे दर्प करना वीर की शोभा है । अत दर्प करने मे भी लक्ष्मणजी अपने बल को बढ़ाकर नही कह रहे हैं । अपने स्वाभाविक बल का सत्य स्वरूप वर्णन करते हैं ।

अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहि उपचरा न थोरा॥
कहँ लगि सहिअ रहिअ मन मारे। नाथ साथ धनु हाथ हमारे॥४॥

अर्थ हे नाथ ! मेरे आचरण को अनुचित न मानियेगा। भरत ने हम लोगो की कम पूजा नही की। कहाँ तक सहे और मन मारे रहे। नाथ मेरे साथ हैं और धनुष मेरे हाथ मे है।

व्याख्या लक्ष्मणजी को डर है कि उनके इस आचरण से सरकार अप्रसन्न होगे। कहेगे कि तुम अनुचित करते हो। अत व्यङ्ग से कह रहे हैं कि भरत ने हम लोगो की थोडी पूजा नही की। माता छोडाया। पिता छोडाया। कुटुम्ब छोडाया। राज्य छोडाया। अब हम लोग वन वन मारे फिरते हैं। इतने पर भी सन्तोष नही। अब सेना लेकर प्राण लने आये हैं।

सहने की भी तो कोई सीमा होती है। बिना एक बिन्दु रक्त गिराये हम लोगो ने राज्य छोड दिया। घर कुटुम्ब सर्वस्व छोड दिया। वन मे दु सह कष्ट बिना एक शब्द मुख स निकाल भाग रहे हैं। तिस पर हमे सेना बल दिखाने आये हैं। तो अब बतलाइये कहाँ तक सहे। यदि कोई कहे कि अनाथ असहाय के लिए अन्य उपाय क्या है ? तो इस पर कहते है कि मै असहाय भी नही हूँ। हमारा सहाय धनुष है। मैं अनाथ भी नही हूँ। मेरे नाथ मेरे साथ हैं।

दो छत्र जाति रघुकुल जनमु, राम अनुग जग जान।
लातहुँ मारे चढति सिर, नीच को धूरि समान॥२२९॥

अर्थ एक तो क्षत्रिय जाति दूसरे रघुकुल म जन्म। ससार जानता है कि मै राम का अनुगामी हूँ। धूल भी लात मारने से सिर चढती है। उसके बराबर तो नीच कोई नही है।

व्याख्या धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते। क्षत्रिय के लिए धर्म युद्ध से अधिक कल्याणकर कुछ भी नही। युद्ध हमारे लिए प्रेय भी है श्रेय भी है। दूसरे रघुकुल मे जन्म है। जिस कुल मे कोई सग्राम मे पीठ नही दिखाता। तीसरे मैं सरकार का अनुगामी हूँ। ऐसे अवसर पर अनुगामी ही अग्रगामी होता है। अत मैं चुप नहीं रह सकता। धूल तो महा नीच है। लात खाते ही खाते धूल हुई है। पर उसे कोई हाथ से मारे तो सिर चढ जाती है। भरत ने लात तो पहिले मारा। अब हाथ मारने आये हैं। अत मै उनके सिर चढ जाऊँगा। आगे बढकर भरत से लोहा लूँगा।

उठि करजोरि रजायसु माँगा। मनहु बीर रस सोवत जागा॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासनु सायकु हाथा॥१॥

अर्थ उठकर हाथ जोड आज्ञा माँगी। मानो वीर रस सोते से जग गया। सिर मे जटा बाँधी कमर मे तरकस कसा और धनुष को चढाकर हाथ मे बाण ले लिया।

व्याख्या : इतना कहकर लक्ष्मणजी उठ खड़े हुए। बिना आज्ञा युद्ध नही कर सकते थे। इसलिए रजायसु माँगा। मानो लक्ष्मणजी मे वीर रस सो रहा था वह जाग उठा। प्रसुप्तावस्था से उदारावस्था को प्राप्त हुआ। सरकार चुप हैं। सब कुछ सुन रहे है। लक्ष्मणजी ने फिर भी युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी। आगे चलकर सेना का सामना करना है।

जटा बाँधा जिसमे युद्ध करते समय आँख के सामने न आ जावे। तरकस कमर मे बाँधा जिसमें युद्ध करते समय ईप्सित बाण के निकाल लेने मे सुभीता हो। धनुष पर प्रत्यञ्चा चढाना ही धनुष को साजना है। शत्रु का सामना होने पर प्रहार मे देर न हो इसलिए एक बाण तरकस से निकालकर हाथ मे ले लिया।

आजु राम सेवक जसु लेऊँ। भरतहि समर सिखावन देऊँ ॥
राम निरादर कर फलु पाई। सोवहुँ समर सेज दोउ भाई ॥२॥

अर्थ · आज रामजी के सेवक होने का यश लूँगा। भरत को लड़ना सिखाऊँगा। रामजी के निरादर का फल पाकर दोनो भाई रणशय्या पर सोवें।

व्याख्या : लक्ष्मणजी यशोधन है। बडा भारी लाभ रामसेवक रूपी यश है। आज सेवा धर्म की परीक्षा का समय आगया है। आज भरत से युद्ध करना ही सरकारी सेवा है। सो उसमे यश लूँगा। भरत को बतलाऊँगा कि इस प्रकार से लड़ना होता है। तब ससार जानेगा कि तीनो भाइयो मे रामजी का सेवक तो लक्ष्मण है।

निदरे राम जानि असहाई। सो उस निरादर का फल पावें। राम निरादर का फल यही है कि रणशय्या पर दोनो भाई सोवें। भावार्थ यह कि मेरे हाथ उन लोगो का वध होगा। वे राम निरादर का फल पावेंगे। मैं तो निमित्त मात्र होकर यश का भागी हूँगा। राम का निरादर करनेवाला तो उसी समय गत प्राण हो जाता है जिस समय कि निरादर करता है। उसके मारने मे रक्खा क्या है। आये दल बटोरि दोउ भाई। अत सोवहु समर सेज दोउ भाई। भाव यह कि भरत लक्ष्मण मे भाई का नाता है। मुझसे कोई नाता नही। मानिय सबहि राम के नाते। जब रामजी के वैरी हैं तो हमारे वैरी है।

आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू ॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू ॥३॥

अर्थ : सब समाज आज भले ही जुट गया है पिछले क्रोध को आज प्रकट करूँगा। जैसे सिंह गजगणो का सहार करता है और बाज जैसे लवा को लपेट लेता है।

व्याख्या शत्रु का पूरा समाज का समाज हाथ लग गया। नही तो यह पता लगाना कठिन होता कि शत्रु समाज मे कौन कौन लोग हैं। बस इतने ही के सहार से शत्रु मात्र का सहार हो जायगा। वरदान से बँधे हुए हम क्रोध को दबाये

बैठे हैं। रिसि उर मारि रंक जिमि राजा। बिपिन बसै तापस के साजा। सो गति हमारी हो रही है। लक्ष्मण के हृदय मे आरम्भ से ही चोट है। यथा समाचार जब लछिमन पाये। व्याकुल बिलखि बदन उठि धाये। तथा पुनि कछु लखन कही कटु बानी प्रभु बरजे बड अनुचित जानी अत क्रोध को प्रकट न कर सके।

आज तो बात दूसरी हो गयी। भाग्य से स्वय भरत सेना साजकर चढ आये हैं। अब तो पिछल क्रोध के प्रकट करने का समय आगया। अब तो युद्ध करने मे वरदान बाधक न होगा। आज सबको मारूँगा। समशीलवीर भरत शत्रुघ्न तथा सेनानायकादि है। उनका ऐसा विदारण करूँगा जैसे सिंह अकेला गजयूथ का विदारण करता है। रही सेना वह बिचारी क्या लडेगी? लाख लवा क्या एक बाज से युद्ध कर सकते है। बाज के चपेट से लवा कही दिखायी नही पडते। यथा बाज झपट जिमि लवा लुकाने।

तैसेहिं भरतहि सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता॥
जौ सहाय कर संकरु आई। तौ मारउँ रन राम दोहाई॥४॥

अर्थ वैसे ही भरत को सेना समेत और छोटे भाई के समेत रणक्षेत्र म निरादर करके गिराऊँगा। यदि शिवजी भी सहायता के लिए आवेंगे तो भी राम दोहाई रण म विना मारे न छोड़ूँगा।

व्याख्या सानुज भरत के लिए लक्ष्मणजी जिमिकरि निकर दलइ मृगराजू और सेना के मर्दन के विषय म लेइ लपेटि लावा जिमि बाजू। उपमा देते है। उन्होने रामजी का निरादर किया है। उसका फल समर भूमि म निरादर करके दूँगा। अर्थात् खेलाकर मारूँगा।

शङ्कर भगवान् सहारकर्ता है। अत इनका सामना कोई नही कर सकता। तो यदि शङ्करजी भी भरतजी की सहायता करें तो भी राम दोहाई मै रण मे भरत को मार ही डालूँगा। दूसरे स्थान मे भी लक्ष्मणजी ने इन्ही शब्दो मे शङ्करजी को स्मरण किया है। यथा जो सत सकर करैं सहाई। तदपि हतौ रन राम दोहाई। अत यह शङ्का उठनी स्वाभाविक है कि रामजी के अत्यन्त प्रिय शङ्करजी पर लक्ष्मणजी इस भाँति आक्षेप क्यो करते हैं? इन स्थलो मे शङ्करजी का कोई प्रसङ्ग भी नही था। फिर व्यर्थ उन्हे अपमानित क्यो करते हैं?

बात यह है कि इन स्थलो मे शङ्कर सम्बन्धी आक्षेप सूचक शब्दो म वक्ता का तात्पर्य नही है। तात्पर्य तो इस बात पर जोर देने मे है कि मैं शत्रु का वध अवश्य करूँगा। क्योकि शङ्कर भगवान् का इन स्थलो मे कोई प्रसङ्ग नही है। अत तत्सम्बन्धी तात्पर्य नही है। न निन्दा निन्द्य निन्दितु प्रवृत्ता किन्तु विधेय स्तोतुम्। निन्दा का निन्द्य के निन्दा मे तात्पर्य नही है। किन्तु विधेय की स्तुति मे तात्पर्य है। शास्त्रा म जहाँ तुलसीमाला और ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण की महिमा है वही भस्म रुद्राक्ष की निन्दा है और जहाँ भस्म रुद्राक्ष धारण की महिमा कही गई है वहाँ तुलसीमाला और ऊर्ध्वपुण्ड्र की निन्दा की गयी है।

ऐसे वाक्यों में मोह उन्ही को होता है जो तात्पर्य निर्णय की विधि से अनभिज्ञ हैं। जहाँ ऊर्ध्वपुण्ड्र तुलसीमाला धारण की महिमा कही जा रही है वहाँ भस्म रुद्राक्ष धारण का कोई प्रसङ्ग नही है। अतः वह निन्दा तुलसीमाला और ऊर्ध्वपुण्ड्र की स्तुति के लिए है भस्म रुद्राक्ष की निन्दा के लिए नही। इसी भाँति जहाँ भस्म रुद्राक्ष की महिमा गायी गयी है वहाँ तुलसीमाला और ऊर्ध्वपुण्ड्र की निन्दा भस्म रुद्राक्ष की स्तुति के लिए है तुलसी ऊर्ध्वपुण्ड्र की निन्दा के लिए नही। इस बात को न समझकर लोग व्यर्थ बड़ा भारी विवाद उपस्थित करते हैं।

अतः यहाँ शिवजी पर आक्षेप केवल शत्रु वध के निश्चय पर जोर देने के लिए है न कि शिवजी की निन्दा के लिए। आज भी लोग कह बैठते हैं कि ब्रह्मा आवें तो भी मैं नही मानूँगा उनका तात्पर्य न मानने पर रहता है। ब्रह्मदेव की आज्ञा भङ्ग पर नही।

दो. अति सरोष मापे लखनु, लखि सुनि सपथ प्रवान।
समय लोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान ॥२३०॥

अर्थ : लक्ष्मणजी को अत्यन्त क्रोध मे भरा हुआ देखकर और उनके प्रमाण शपथ को सुनकर सब लोग डर गये और लोकपतियो ने घबराकर भागना चाहा।

व्याख्या : क्रोध के स्पष्ट चिन्ह देखकर जाना कि लक्ष्मणजी अतिक्रुद्ध है। यथा : माखे लखन कुटिल भइ भौंहें। रदपट फरकत नैन रिसौंहे। और प्रमाण शपथ सुनकर समझा कि ये कर दिखावेंगे। यह तो प्रलयवाला क्रोध है। अतः लोकवासी लोग सभय हो गये और लोकपति लोक छोड़कर भागना चाहते हैं। जैसे भूकम्प मे लोग घर छोड़कर भागते हैं। जनकपुर मे भी : लखन सकोप बचन जे बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले। इस समय तो शपथ लिया है। अतः लोकपति भागना चाहते हैं। लक्ष्मणजी जगत् के आधार साक्षात् शेष है। अत. उनके कोप से जगत् व्याकुल हो उठता है। जाग्रत के विभु के क्रोध के सामने कौन ठहरेगा ?

जगु भय मगन गगन भइ बानी। लखन बाहुबलु बिपुल बखानी॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा॥१॥

अर्थ : जगत् तो भय में मग्न था। इधर आकाश वाणी हुई। लक्ष्मणजी के बाहुबल की विपुलता का बखान किया। हे तात! तुम्हारे प्रताप और प्रभाव को कौन कह सकता है और कौन जाननेवाला है।

व्याख्या : यहाँ जग शब्द से जगत् की अधिष्ठातृ देवता अभिप्रेत है। नही तो जड से हर्ष और भय बन नही सकता। आकाश से देवता बोले। देवता दिखायी नही पड रहे हैं। शब्द सुनायी पड़ रहा है। इसलिए कहते हैं कि आकाशवाणी हुई। वीरो के शान्त करने का यही उपाय है कि उनके उत्कर्ष का वर्णन किया जाय। अपकर्ष कहना तो तेजोवध है और शत्रु पक्ष के उत्कर्ष कहने से क्रोध ही बढता है। इसलिए लक्ष्मणजी के बाहुबल का वर्णन देवताओ ने किया कि आप कन्दुक :

गेंद की भाँति ब्राह्माण्ड के उठाने मे समर्थ हैं। कच्चे घडे की भाँति उसे तोड़ सकते हैं। मन्दर और मेरु को मूली की भाँति तोड़ सकते है इत्यादि।

बाहुबल कहने के बाद प्रताप कहते है। प्रताप बल से पृथक् होकर काम करता है। यथा : समुझि रामप्रताप कपि कोपा। सभा माँझ पन करि पद रोपा। प्रताप और प्रभुता दोनों बल से पृथक् काम करते है। भेद यही है कि प्रताप में ताप का अनुभव होता है प्रभाव मे ऐश्वर्य का। देवता लोग कहते हैं कि आप अनन्त हैं। अनन्त के प्रभाव और प्रताप का ज्ञान ही किसी को नही हो सकता। उसका वर्णन कैसे सम्भव हैं। यथा : जय अनत जय जगदाधारा।

अनुचित उचित काजु किछु कोऊ। समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ ॥
सहसा करि पाछे पछिताही। कहहिं वेद बुध ते बुध नाही ॥२॥

अर्थ : कोई भी कार्य हो उचित और अनुचित विचारकर तब उसे करना चाहिए। जिसमे सब लोग अच्छा कहे। जो एकाएक कर बैठने के बाद पीछे से पछताते है वेद और विद्वान् कहते हैं कि वे पण्डित नही हैं।

व्याख्या : आकाशवाणी द्वारा देवता कहते है कि अनुचित उचित का विचार करके ही कार्य करना चाहिए। यही नियम है। यहाँ अनुचित होने जा रहा है इसी से उसे पहिले कहा। देवताओ से गुरुजी ने कहा था : करहु भरत पद प्रीति सोहाई। सो यह आकाशवाणी भरत पद प्रीति का फल है। नही तो : रामहिं भरतहि भेंट न होई का सयोग तो जुट ही गया था। यह : आकाशवाणी लक्ष्मणजी के क्रोध को अनुचित ठहराती है।

सहसा विदधीत न क्रियामविवेक: परमापदा पदम्। एकाएक कोई काम नही कर बैठना चाहिए। क्योकि अविवेक बडे भारी आपदा का कारण है। नीति रस भूल गये थे। उसे देवता लोग याद दिलाते है कि जो बिना विचारे भावावेश मे काम कर बैठता है उसे पीछे पछताना होता है। ऐसा कार्य आपके योग्य नहीं है। क्योकि ऐसा करनेवाले की निन्दा वेद ने भी की है और विद्वान् लोग भी कहते हैं कि बिना विचारे काम करनेवाला पण्डित नही है।

सुनि सुर बचन लखन सकुचाने। राम सीय सादर सनमाने ॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब तें कठिन राजमदु भाई ॥३॥

अर्थ : देवताओं के वचन सुनकर लक्ष्मणजी सङ्कुचित हो गये। रामजी और सीताजी ने उनका आदर के साथ सम्मान किया और कहा हे तात ! तुमने सुन्दर नीति कही। राजमद सबसे कठिन है।

व्याख्या : जब देवताओ के वचन लक्ष्मणजी ने सुने तो उन्हे सङ्कोच हुआ। देवता मिथ्या कह नही सकते। सरकार की ही समझ ठीक है। मैने बेसमझे बडे भाई को क्या कह डाला। यह समझकर सङ्कुचित हुए। तब रामजी और जानकीजी ने आदर के साथ सम्मान किया। लक्ष्मणजी की बाँह पकड़कर सन्निकट बिठाया।

भरतजी ने पहिले कहा था : परिहरि राम सीय जग माँही। कोउ नहिं कहहि मोर मत नाँही। लक्ष्मणजी भी नही कहेगे। दूसरे को गिनती क्या ? वही हुआ।

सरकार पहिले लक्ष्मणजी की नीति की प्रशंसा करते हैं। यही कायदा है कि जिसके बातो का उत्तर देना हो तो पहिले उसके कथन के उस अंश की प्रशसा करनी चाहिए जितना कि उपादेय हो। तत्पश्चात् अनुपादेय अश का खण्डन करना चाहिए। पहिले खण्डन ही आरम्भ करने से उपादेय अंश की प्रशसा करने के लिए अवसर नही मिलता। अत. सरकार ने पहिले नीति की प्रशंसा की : कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकात। यह खाये बौरात है वह पाये बौरात। लक्ष्मणजी ने कहा था : जग बौराय राजपद पाये। उसी की पुष्टि सरकार कर रहे हैं। यहाँ मद शब्द मद्य के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। भाव यह कि सभी मद्यो मे राजरूपी मद्य का नशा बडा कठिन हैं।

जो अँचवत मातहिं नृप तेई। नाहिन साधुसभा जेहिं सेई ॥
सुनहुं लखन भल भरत सरीसा। विधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ॥४॥

अर्थ : उसे पीते वे ही राजा लोग मतवाले हो जाते हैं जिन्होने साधु सभा की सेवा नही की। लक्ष्मण ! सुनो भरत सा भला ब्रह्मा की सृष्टि मे न कोई सुना गया न देखा गया।

व्याख्या : पर इस मद्य की मादकता साधुसेवियो पर प्रभाव नही डाल सकती। जो साधुसेवी नही हैं उनके विवेक को यह हरण कर ही लेती है। विषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिविध जीव जग बेद बखाने। राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभा बड आदर तासू। साधु सभा मे बैठनेवाला जानता है कि उस सभा मे राजा का मान नही है। भक्तो का मान है।

ब्रह्मा का प्रपञ्च ही गुण अवगुण मिलाकर बना है। इसमे गुण अवगुण ऐसे मिले हुए हैं जैसे दूध मे जल मिल जाता है। यथा : सगुनु खीर अवगुनु जल ताता। मिलइ रचइ परपच बिधाता। पर भरत ने हस की भाँति उसमे से गुण को ही ग्रहण किया है। अवगुण को एक बारगी त्याग कर दिया है। यथा : गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्ह उँजियारी। भरत हस रबि बस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोप बिभागा। भरत साधु शिरोमणि हैं।

दो. भरतहि होइ न राजमदु, बिधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँ कि काजी सीकरनि, छीरसिंधु बिनसाइ ॥२३१॥

अर्थ : भरत को तो विधि हरिहर पद पाने पर भी राजमद नही हो सकता। क्या काँजी के छीटे से क्षीरसिन्धु विकृत हो सकता है।

व्याख्या : यह कतिपय देश का राज्य क्या वस्तु है जो कि नदी देश पर्वतादि से सीमित है। विधि हरिहर का अधिकार असीम है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर चलता है। सो उनका पद यदि अकेले भरतजी को मिल जाय तो भी उन्हे राजमद नहीं

हो सकता। थोड़े दूध को छेना मे परिवर्तन करने के लिए उसमे काँजी का छीटा दिया जाता है जिससे दूध फट जाता है। पर उसका कुछ भी प्रभाव क्षीरसिन्धु पर नही पड़ सकता। विधि हरिहर पद भी भरतरूपी अगाध क्षीरसिन्धु के लिए काँजी का छीटा है। इसमे उसमे विकार आ नही सकता।

तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई॥
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी। सहज छमा बरु छाड़इ छोनी॥१॥

अर्थ : अन्धकार चाहे दोपहर के सूर्य को निगल जाय, आकाश चाहे डूबकर मेघ मे समा जाय, अगस्त्यजी गोपद के जल मे डूब जाय, पृथ्वी चाहे स्वाभाविकी क्षमा छोड़ दे।

व्याख्या : पञ्चभूतों मे कभी विकार नही होता। केवल सृष्टि के आरम्भ मे तथा प्रलय के समय विकार होता है। क्योकि इनको अपने स्वभाव पर स्थिर रहने से ही जगत् की स्थिति है। यथा : गगन समीर अनल जल धरनी। इन्हकइ नाथ सहज जड करनी। तव प्रेरित माया उपजाये। सृष्टि हेतु सब ग्रथनि गाये। प्रभु आयसु जेहि कहँ जो अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई। सो तेज का स्वभाव है कि वह अन्धकार को नष्ट कर देता है। अन्धकार तेज के सामने ठहर नही सकता। सो तेज: पुञ्ज मध्याह्न के सूर्य को चाहे अन्धकार ग्रस ले। आकाश सबको अवकाश प्रदान करता है। सो वह सङ्कुचित होकर मेघ मे मिल जाय। अगस्त्यजी समुद्र का शोषण कर गये थे। सो गोपद का जल ऐसा रूप धारण करे कि अगस्त्यजी को ही डुबा दे। पृथ्वी की क्षमा से ही संसार चल रहा है। वह सब कुछ सहन किया करती है। वह भी चाहे अपनी स्वाभाविकी क्षमा का परित्याग करे। इस भाँति तेज, आकाश, जल और पृथ्वी के विषय मे कहकर अब वायु के विषय में कहते हैं।

मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमदु भरतहि भाई॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥२॥

अर्थ : मच्छर की फूँक से चाहे मेरु पर्वत उड जाय। पर हे भाई! भरत को राजमद नही हो सकता। हे तात! तुम्हारी शपथ और पिता की दोहाई भरत के ऐसा पवित्र और अच्छा भाई कही नही है।

व्याख्या : गुणों मे तीव्रता या मन्दता का होना ही विकार है। अत: पञ्चभूतो मे दोनो प्रकार का विकार दिखाते हुए कहते है कि मच्छर के फूँक से रूई के कण मे भी गति नही देखी गयी। वह फूँक यदि मेरु को उडा दे ऐसा भारी परिवर्तन हो पर भरत को राजमद नही हो सकता। यथा : भरत सुभाउ सुसीलताई। सदा एकरस बरनि न जाई। भाव यह कि पचभूतो मे भले ही विकार हो जाय पर भरत के स्वभाव मे विकार आ नही सकता।

भरत पर कुटिल कुबंधु का आरोप न करो। तुम सा प्यारा कोई नही। पिता सा पूज्य कोई नही। सो मैं दोनो की शपथ लेकर कहता हूँ कि भरत के ऐसा पवित्र

सुबन्धु कोई नही। भाईपन के नाते तुम भी वैसे नही। तुम्हे तो राज्य छूटने का क्रोध है। भरत राज्य को गिनता नही। हम लोगो के कष्टो को सोचकर दु खी हुआ आ रहा है।

सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता। मिलइ रचइ परपंचु बिधाता ॥
भरतु हंस रबिबंस तडागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा ॥३॥

अर्थ : गुण रूपी दूध और अवगुण रूपी जल मिलाकर ब्रह्मा ने इस ससार को रचा है। सूर्यवंश रूपी तालाब में भरत हस हैं। जिसने जन्म ग्रहण करके गुण दोष का विभाग किया है।

व्याख्या वेद पुराण और इतिहास सभी कहते हैं कि ब्रह्मदेव की सृष्टि गुण दोष को मिलाकर बनी है। यथा दु ख सुख पाप पुण्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती। दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सुजीवनु माहुरु मीचू। माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रक अवनीसा। कासी मग सुरसरि कबिनासा। मरु मालव महिदेव गवासा। सरग नरक अनुराग बिरागा। निगम अगम गुन दोष बिभागा। ऐसा गुण दोष मिला हुआ है कि पता ही नही चलता। वेद शास्त्र ने उसका विभाग करके बतलाया है। परन्तु अवगुण को छोडकर गुण को ग्रहण करने की शक्ति हस की भाँति सन्त को है। हस दूध और पानी मिले हुए मे से दूध को ग्रहण कर लेता है जल को छोड़ देता है। सो सूर्यवश में हंस की भाँति भरत सन्त है। जैसे हस से तालाब शोभित होता है उसी भाँति भरत से सूर्यकुल शोभित है। भरतजी ने जो किया भरतजी जो करते है या जो करेंगे सो सब गुण है : इसीलिए गुरुजी ने कहा : समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धर्मसारु जग होइहि सोई।

गहि गुन पय तजि अवगुन वारी। निज जस जगत कीन्ह उँजिआरी ॥
कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ। प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ ॥४॥

अर्थ : गुण रूपी दूध को लेकर और अवगुण रूपी जल का परित्याग करके अपने यश से ससार को उँजेला कर दिया। भरत के गुण शील और स्वभाव को वर्णन करते करते प्रेम के समुद्र मे रामजी मग्न हो गये।

व्याख्या : भरतजी ने ससार के सामने आदर्श उपस्थित कर दिया। संसार जान गया कि गुण क्या है और अवगुण क्या है। इस भाँति ससार में जो गुणावगुण के अविवेक का अन्धकार था सो मिट गया।

भरतजी के गुण शील स्वभाव पर सरकार रीझे हुए हैं। अतः उसके वर्णन करने मे रामजी प्रेम समुद्र मे मग्न हो रहे हैं : इसीलिए कहा है : भरत चरित करि नेम जे सप्रेम गावहि सुनहि। सीय राम पद प्रेम अवसि होइ भव रस बिरति। अथवा रामजी तो थोडे से प्रेम पर ही रीझ जाते हैं और भरत सुप्रेम पयोधि मे मग्न हो रहे हैं।

दो. सुनि रघुबर बानी बिबुध, देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो, प्रभु को कृपा निकेतु ॥२३२॥

अर्थ : रामजी की वाणी सुनकर और भरत पर प्रेम देखकर सब देवता लोग सराहने लगे कि प्रभु के ऐसा कृपा निधान कौन है ?

व्याख्या : रामजी की भरत सम्बन्धिनी गुण शील स्वभाव निरूपिणी वाणी सुनी। गुण यथा : सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महु सुना न दोसा। शील यथा : भरतहि होइ न राजमद विधि हरिहर पद पाइ। स्वभाव यथा : भरत हंस रबिबस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुण दोष बिभागा। और भरत पर रामजी का प्रेम देखा। यथा : प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ। सब देवता प्रशसा करने लगे कि रामजी के ऐसा कोई प्रभु कृपानिकेत नहीं है। भाव यह कि प्रभु लोग दूसरे की वेदना समझते ही नहीं। [1]लक्ष्मीवन्तो न जानन्ति प्रायेण परवेदनाम्। शेषो धराभराक्रान्तः शेते नारायणः स्वयम्। सरकार तो सेवक के प्रेम मे मग्न है। अतः ऐसा कृपानिधान स्वामी कहीं नहीं है।

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को ॥
कबि कुल अगम भरत गुन गाथा। को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा ॥१॥

अर्थ : यदि जगत् में भरत का जन्म न होता तो सब धर्मों की धुरा रूपी पृथ्वी को कौन धारण करता ? हे रघुनाथ ! कविकुल के पहुँच के बाहर भरत के गुणों की गाथा सिवा तुम्हारे और कौन जाने।

व्याख्या : धारणात् धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयति प्रजाः। सो एक धर्म का धारण करना कठिन हो जाता है सकल धर्म के धुरा को कौन धारण कर सकता है ? उसके धारण करने मे भरतजी ही समर्थ हैं। इनके धारण करने से धरणी की रक्षा है। यथा : भरत भूमि रह राउर राखी। बिना धर्म के धुर धारण किये धारण की हुई भी धरणी अरक्षित होकर नष्ट हो जाती है।

कवियो से कोई बात नहीं छिपी रहती। नारदहू यह भेद न जाना। लछिमनहू यह मरम न जाना। सो कवियो ने जान लिया। परन्तु भरत की गुणगाथा कवियो के लिए अगम है। क्योकि : कविहि अरथ आखर बल साँचा। अनुहर ताल गतिहि नट नाचा। अर्थ ही कवि के हृदय मे नहीं आता। यथा : कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुख अहमम मलिन जनेषु। जान सिरोमणि कोसल राऊ। मात्र उस गुण गाथ से परिचित हैं।

लखन राम सिय सुनि सुरबानी। अति सुखु लहेउ न जाइ बखानी ॥
इहाँ भरतु सब सहित सहाएं। मंदाकिनी पुनीत नहाएँ ॥२॥

---

१. लक्ष्मीवान् प्रायेण दूसरे के दु ख को नहीं समझते। शेष पर तो सम्पूर्ण पृथ्वी लदी हुई है। उस पर नारायण भी स्वय जाकर सोते हैं।

अर्थ . लक्ष्मणजी रामजी और सीताजी ने देवताओ की वाणी सुनकर ऐसा सुख पाया जिसका वर्णन नही हो सकता। यहाँ भरतजी ने सेना के साथ पवित्र मन्दाकिनी नदी मे स्नान किया।

व्याख्या · यह आकाश वाणी देवताओ की हुई थी। इसलिए कहते हैं कि तीनो मूर्ति बडे प्रसन्न हुए। उसमे पहिले लक्ष्मणजी को कहते हैं। महात्माओ का क्रोध व्यक्ति पर नही होता अवगुण पर होता है। अवगुण पर क्रोध हुआ। पर जब मालूम हो गया कि ये अवगुण भरतजी मे नही हैं। क्योंकि देवता अन्यथा नहीं कहते और भरतजी मे बडे दिव्यगुण हैं जिन्हे रामजी ही जानते हैं। तो लक्ष्मणजी बडे प्रसन्न हुए। रामजी और सीताजी को भी बडी प्रसन्नता हुई। अपने प्रिय के गुणगणो की प्रशसा देवताओ के मुख से सुनकर ऐसा सुख हुआ जिसका वर्णन नही किया जा सकता।

उहाँ राम रजनी अवसेषा। जागे सीय सपन अस देखा। कहकर जिस प्रसङ्ग को उठाया उसे यहाँ समाप्त कर रहे हैं। अत इहाँ शब्द का प्रयोग करके कथन आरम्भ करते हैं। भाव यह कि अब भरतजी का चरित कहेगे और उन्ही के साथ कवि अपने को मान रहे हैं। जल थल देखि बसे निसि बीते। कीन्ह गवनु रघुनाथ पिरीते। यहाँ से प्रसङ्ग छोडा था। अब मन्दाकिनी स्नान से प्रसङ्ग फिर से आरम्भ करते हैं। जहाँ ठहरे थे वहाँ से सन्निकट ही मन्दाकिनी थी। अत वही स्नान किया है। मन्दाकिनी गङ्गाजी की धारा है। इसलिए पुनीत कहते हैं। यथा · सुरसरि धार नाँउ मदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि।

सरित समीप राखि सब लोगा। माँगि मातु गुर सचिव नियोगा ॥
चले भरतु जहँ सिय रघुराई। साथ निपादनाथु लघु भाई ॥३॥

रामजी से भेंट

अर्थ : नदी के तीर पर सब लोगो को ठहराकर तथा माता गुरु और मन्त्री से आज्ञा माँगकर भरतजी वहाँ चले जहाँ सीताजी और रामजी थे। उनके साथ निपादराज और शत्रुघ्नजी थे।

व्याख्या शरण जा रहे हैं। इसलिए भरतजी किसी को साथ नही लेते। मन्दाकिनी के तीर पर सबके टिकने का भी सुभीता है। गुरुजी तथा माताओ को लेने के लिए स्वय सरकार को आना चाहिए। अत उन्हे भी साथ नही लिया। सरकार मुनिवृत्ति मे हैं। अत वहाँ साज समाज का जाना भी ठीक नही। अत अकेले जाने के लिए गुरुजी माताजी तथा मन्त्रियो से आज्ञा माँगी। निपादनाथ रास्ता दिखाने के लिए साथ हैं। शत्रुघ्न के साथ रहते हुए भी भरतजी दो नही गिने जाते। लक्ष्मण ने भी दो नही गिना।

समुझि मातु करतव सकुचाही। करत कुतरक कोटि मन माही ॥
रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ ॥४॥

अर्थ माता का करतव समझकर सङ्कुचित होते हैं और मन मे कुतर्क की कोटि करते हैं। रामजी लक्ष्मण और सीताजी मेरा नाम सुनकर स्थान छोड किसी दूसरी जगह न चले जायँ।

व्याख्या : माता के कुकृत्य से पुत्र को सङ्कोच होना स्वाभाविक है। माता ने जो कुछ किया पुत्र की कल्याण कामना के लिए ही किया। अत माता के करतव से पृथक् होना सम्भव नही है। इसलिए स्वय निपराध होते हुए भी सङ्कुचित हैं और ऐसी अवस्था मे जैसे कुतर्क की कोटियाँ मन मे उठती हैं वैसी ही उठ रही हैं।

भरतजी की कुतर्क की कोटि का प्रादेशमात्र कवि दिखलाते हैं। भरतजी सोचते है कि मेरे आने का समाचार सरकार को पहिले ही लग जायगा। क्योकि मेरे साथ सेना है। मेरे करतब पर ध्यान करके कही यह निश्चय न कर लें कि मैं भरत का मुख न देखूँगा। इसलिए कही तीनो मूर्ति आश्रम छोडकर दूसरी जगह न चले जायँ। जहाँ हमे पता न लग सके। सामान कोई पास नही है जिसे हटाने मे देर लगे। केवल उठकर दूसरी जगह चला जाना ही तो है।

दो मातु मतें महुँ मानि मोहि, जो किछु करहिं सो थोर।
अघ अवगुन छमि आदरहिं, समुझि आपनी ओर ॥२३३॥

अर्थ . मुझे माता के मत मे मानकर जो कुछ कर बैठें वह थोडा है और यदि अपनी ओर समझें तो पाप और अवगुण को क्षमा करके आदर कर सकते है।

व्याख्या यहाँ विचार करने मे दो ही पक्ष उठ सकते हैं। या तो मुझे माता की राय मे समझें जैसा कुछ लोगो ने समझा था एक भरत कर सम्मत कहही। तब तो मेरा अपराध सर्वथा अक्षम्य है। फिर मुझे यह आज्ञा होना तुम मुख न दिखलाओ यहाँ से चले जाओ आदि जो कुछ कहे वह थोडा ही होगा। अपराध इतना गुरुतर है कि कोई दण्ड उसके मुकाबिले का नही है और यदि मुझे अपनी ओर समझें माता की ओर न समझें तो मातृकृत अपराध को क्षमा करके आदर भी कर सकते है। जैसा पुरवासियो ने कहा था अहि अवगुन नहिं मनि गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई। अथवा यदि अपने स्वरूप पर ध्यान दें तो अघ अवगुण को क्षमा करके आदर भी कर सकते हैं।

जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी। जौं सनमानहिं सेवकु मानी॥
मोरे सरन रामहि की पनही। राम सुस्वामि दोसु सब जनही॥१॥

अर्थ · यदि मलिन मन जानकर त्याग करें या सेवक मानकर सम्मान करें। मेरे लिए तो रामजी की जूती ही शरण है। रामजी भले स्वामी हैं। दोप सब सेवक का है।

व्याख्या अब भरतजी अपना कर्तव्य निश्चय करते हैं। चाहे रामजी का उनके साथ जैसा वर्ताव हो। पर अपने लिए निश्चित मार्ग होना चाहिए। जिससे हर हालत मे काम लिया जा सके। मलिन मन का सरकार त्याग करते हैं। यथा

मोहि कपट छल छिद्र न भावा। परन्तु दूसरा पक्ष यह भी है निज अपराध रिसाहिं न काऊ। रहत न प्रभु चित चूक किये की। को साहिब सेवकहि नेवाजी। आपु समाज साज सब साजी। इत्यादि।

राम तो सुस्वामी हैं। उनमे दोष नही है। कुस्वामी पर सन्देह रहता है कि कदाचित् कुछ दोष स्वामी का भी हो। पर जब यह निश्चित है कि सुस्वामी हैं तब जो कुछ दोष सम्भव है वह जन का ही है। अत चाहे परित्याग करें चाहे सम्मान करें। मुझे उनकी जूती ही शरण है। पर जूती इस समय त्यक्त है। यथा : राम लखन सिय बिनु पग पनही। करि मुनिवेष फिरहिं बन बनही। अतः मै उसी त्यक्त जूती के शरण जाऊँगा या तो उसे पहना दूँगा नही तो उसी की उपासना करूँगा।

जग जस भाजन चातक मीना। नेम पेम निज निपुन नवीना ॥
अस मन गुनत चले मग जाता। सकुच सनेह सिथिल सब गाता ॥२॥

अर्थ : ससार मे पपीहा और मछली ये ही यश के पात्र हैं। जो अपने अपूर्व नेम और प्रेम मे निपुण हैं। ऐसा मन मे विचारते चले जाते हैं। सङ्कोच और प्रेम से सब शरीर शिथिल है।

व्याख्या : भरतजी मन मे कहते हैं कि ससार मे प्रेमियो मे से दो ने ही यश पाया : एक चातक ने और दूसरे मछली ने। चातक अपूर्व नेम मे निपुण है। यथा : डोलत विपुल बिहंग बन पियत पोखरिन्ह बारि। सुजस धवल चातक नवल तुही भुवन दस चारि। और मीन अपूर्व प्रेम मे निपुण है। यथा : मकर उरग दादुर कमठ जल जीवन जल गेह। तुलसी एकै मीन को है साँचिलो सनेह। भाव यह कि मीन के ऐसा प्रेम तो केवल चक्रवर्तीजी निबाह पाये और किसी से न निबहा। यथा : बदौ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि रामपद। बिछुरत दीन दयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ। अब तो चातकवाला नेम निर्वाह करना है। जो सुख सम्पत्ति राम घनश्याम से न मिले उसे स्वीकार न करना यही निश्चय है

भरतजी रास्ते चले जाते हैं और इसी प्रकार का विचार करते जाते हैं। यहाँ भाव सन्धि है। स्नेह के साथ सङ्कोच है। रास्ते मे ही स्नेह से शिथिल शरीर हो रहा है और सरकार के सन्मुख जाने मे सङ्कोच भी है। इस द्विविध मनोगति से सारा शरीर शिथिल है।

फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी। चलत भगति बल धीरज धोरी ॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ ॥३॥

अर्थ : माता की की हुई दुष्टता मानो पीछे हटाती है। पर धैर्य धुरीण : भरतजी भक्ति के बल से चल रहे हैं। जब रामजी के स्वभाव को समझते हैं तब रास्ते मे जल्दी जल्दी पैर पड़ता है।

व्याख्या : शरीर शिथिल हो रहा है। जिस पर माता की की हुई करणी

मानो पीछे फेर रही है कि कौन मुँह लेकर सामने जाऊँ। पर भरतजी धीर धुरीण हैं। भक्ति के बल से चले जा रहे हैं। भरतजी भक्त शिरोमणि हैं। उनकी गति माता की करणी के स्मरण से तो रुकती है पर जब सरकार के स्वभाव का स्मरण करते हैं : अस सुभाउ कहुँ सुनै न देखै। केहि खगेस रघुपति सम लेखैं। सुनहु सखा निज कहहुँ सुभाऊ। जान भुसुंडि सम्भु गिरि जाऊ। जौ नर होइ चराचर द्रोही। आवइ सभय सरन तकि मोही। तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना। तब तो आशा के सञ्चार से पैर जल्दी जल्दी उठने लगता है।

भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जल प्रवाह जल अलि गति जैसी ॥
देखि भरत कर सोचु सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू ॥४॥

अर्थ : उस समय भरतजी की दशा वैसी ही रही है जैसी कि भौंरे की जल प्रवाह मे होती है। भरतजी के सोच और स्नेह को देखकर निषादराज को तो अपने शरीर की सुधि न रह गयी।

व्याख्या : रामजी के स्वभाव के स्मरण से भरतजी की गति तीव्र हो जाती है और माता के दोष के स्मरण से एकाएक रुक जाते हैं। फिर चल पडते हैं। ऐसा ठहर ठहर कर वेग से चलने की उपमा गोस्वामीजी जल के भौंरे से देते हैं। वह प्रवाह मे वेग से चलता हुआ बार बार रुकता ही जाता है। गोस्वामीजी ने यह एक अद्भुत उपमा दी जिसे जहाँ तक मेरी जानकारी मे कोई भी कवि किसी अवसर में नही दे सका है।

निषादराज देखते हैं कि भरतजी कुछ सोचकर ठहर जाते हैं और फिर प्रसन्न होकर चल पडते हैं। इससे उनके सोच और स्नेह का अनुभव करते हुए निषादराज ऐसे मग्न हो गये कि उन्हे अपने देह की सुधि न रह गयी।

दो. लगे होन मंगल सगुन, सुनि गुनि कहत निषादु।
मिटिहि सोच होइहि हरषु, पुनि परिनाम बिषादु ॥२३४॥

अर्थ : मङ्गल शकुन होने लगे। उन्हे सुनकर और गुनकर निषादराज ने कहा कि सोच मिटेगा। हर्ष होगा। परन्तु परिणाम मे विषाद ही है।

व्याख्या : यहाँ शकुन का सुनना कहते हैं। इससे मालूम होता है कि यहाँ पक्षी की बोली से शकुन निर्णय किया जा रहा है। प्रधान शकुन तो पक्षी ही हैं। पक्षी को ही शकुन कहते हैं। अन्य शुभाशुभ सूचक घटनाएँ तो गौण हैं। निषादराज शकुन ज्ञान मे बडे पण्डित थे। इनकी युद्ध यात्रा के समय जो 'छीक हुई उसके फल निर्णय करने मे सगुनियो मे मतभेद हुआ तो उसका निर्णय निषादराज ने ही किया। यथा : नीक कह बूढा। पहिले पक्षी के बोलने से मालूम हुआ : मिटिहि सोच दूसरे के बोलने से पता लगा : होइहि हरख। तीसरे के बोलने से मालूम हुआ : पुनि परिनाम बिषाद। अथवा पक्षी नही दिखायी पड़ता है। केवल शब्द सुनायी पड़ता है।

इससे अनुमान हुआ कि हर्ष स्थायी नही होगा। उसी बात को निषादराज भरतजी से कह रहे हैं।

सेवक बचन सत्य सब जाने। आश्रम निकट जाइ निअराने ॥
भरत दीख बन सैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू ॥१॥

अर्थ सेवक की सब बातो को सत्य जाना। आश्रम के सन्निकट जाकर समीप पहुँच गये। भरतजी ने वन और पर्वत्त के समाज को देखा। ऐसे प्रसन्न हुए जैसे भूखा सुअन्न पाकर प्रसन्न होता है।

व्याख्या भरतजी ने सेवक के तीनो वचनो को सत्य जाना। अर्थात् सरकार का दर्शन होगा। इसलिए मिटिहि सोच कह रहा है। सरकार सम्मान करेंगे। इसलिए होइहि हरख कह रहा है। पर अवध नही लौटेंगे इसलिए परिणाम विषाद कह रहा है। आश्रम मे नही पहुँचे परन्तु राम वन जिसमे आश्रम है उसके निकट पहुँच गये।

इतने निकट पहुँचे कि वन और शैल का समाज दिखायी पडने लगा। सबका समाज पृथक् पृथक् होता है। सो कवि पहले वन समाज कहकर तब शैल समाज का वर्णन करेंगे। यहाँ उस समाज के देखने से भरतजी को कैसी प्रसन्नता हुई। उसी का वर्णन करते हैं। भूखे को अन्न चाहिए चाहे वह कैसा ही हो। कदन्न पाकर भी भूखा सुखी होता है। यदि उसे सुअन्न मिल जाय तो उसकी प्रसन्नता का क्या ठिकाना! उस वन शैल समाज को देखने से हो भरतजी अति प्रसन्न हैं। इस प्रसन्नता के साथ आतुरता का योग है। इसलिए भूखे के सुअन्न प्राप्ति से उपमित किया।

ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिबिध ताप पीडित ग्रह मारी ॥
जाइ सुराज सुदेस सुखारी। होहि भरत गति तेहि अनुहारी ॥२॥

अर्थ ईति प्रीति से जैसे प्रजा दुखी हो, तीनो ताप से तप्त हो, मारीग्रह से पीडित हो सो सुदेश और सुराज मे जाकर सुखी हो वैसी ही भरत की गति हो रही है।

व्याख्या भरतजी केवल अपने ही दुख से दुखी नही हैं उन्हे माताओ और प्रजाओ का भी भारी दुख है। यथा देखि न जाहिं बिकल महतारी। जरहिं त्रिविध जर पुर नर नारी। पहिले भरतजी के व्यक्तिगत दुख का मिटना कहकर अब प्रजावर्ग के दुख का मिटना कहते हैं। प्रजावर्ग के दुख के मिटने से भरतजी का दूसरे प्रकार का भी दुख मिटा।

अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषका शलभा शुका। प्रत्यासन्नाश्च राजान षडेता ईतय स्मृता। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहे, टिड्डी, सुग्गो का आक्रमण तथा राजाओ का सन्निकट आना ये छ इति कही गयी है। इन छओ के कारण दुर्भिक्ष पडता है। सो जैसे ईति आदि के डर से प्रजा 'देश छोडकर भाग चली हो उसे आधिदैविक

आधिभौतिक और आध्यात्मिक ताप भी हो, ग्रह भी उनके प्रतिकूल हो वे सुराज और सुदेश पाकर सुखी हो जाते है। सो अवधवासी ईति के भय से देश छोडकर चले आ रहे हैं। यथा : मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोकु न हृदय समाइ। मनहु करुन रस कन्ट कई उतरी अवध बजाइ। उन्हे आधिदैविक ताप भी है। यथा : मिलेहि माझ बिधि बात बिगारी। तथा कीन्ह मातु मिस काल कुचाली। ईति[1] भीति जनु पाकत साली। आध्यात्मिक ताप। यथा . तन कृस मन दुख बदन मलीने। बिकल मनहु माछी मधु छीने। आधिभौतिक ताप। यथा : नगर फैल गयी बात सुतीछी। छुअत चढी जनु सब तन बीछी। ग्रहमारी भी है। यथा : घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहु जमदूता।

ऐसी प्रजा को सुदेश की चाह होती है। जहाँ सुभिक्ष हो और सुराज की आवश्यकता होती है। जहाँ सुव्यवस्था हो। यदि उन्हे सुदेश और सुराज दोनो की प्राप्ति एक ही स्थल मे हो तो वे सुखी हो जाते हैं। सो पुर नर नारियो के दु ख की शान्ति समझकर भरतजी का दूसरे प्रकार का भी दु ख जाता रहा।

राम बास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा ॥
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू। बिपिन सुहावन पावन देसू ॥३॥

अर्थ . राम वास वन . वन की सम्पत्ति से ऐसा शोभित है जैसे अच्छे राजा की प्राप्ति से प्रजा सुखी होती है। विराग मन्त्री हैं विवेक राजा हैं। सुहावना वन ही पवित्र देश है।

व्याख्या पहिले राम वन का वर्णन कवि करते हैं कि वह वन वन की सम्पत्ति से शोभायमान है। अर्थात् मुनि तपस्वी के उपयोग की सामग्री से परिपूर्ण है। जैसे अच्छे राजा के होने से प्रजा सुखी हो जाती है। वन सात्त्विक प्रदेश है। यहाँ निवृत्तिमार्ग के ऋषि मुनि रहते हैं। उनके उपयुक्त सभी सामग्री यहाँ हैं।

वहाँ पर विराग मन्त्री हैं, विवेक राजा है और वन प्रदेश ही उत्तम देश है। जहाँ विवेक राजा का राज्य है। भाव यह कि ससार मे प्रायेण सर्वत्र ही मोह राजा का राज्य है और काम क्रोधादि का आधिपत्य है। पर यहाँ तो विवेक राजा की विजय है। मोह राजा के राज्य मे ससार दु ख झल रहा है। सुख तो तभी सुलभ है जब विवेक राज्य मे पदार्पण करे।

भट जम नियम सैल रजधानी। साति सुमति सुचि सुदर रानी ॥
सकल अग सपन्न सुराऊ। राम चरन आश्रित चित चाऊ ॥४॥

अर्थ : यम नियमादिक योद्धा हैं। पर्वत ही राजधानी है और शान्ति तथा सुमति सुन्दर रानियाँ हैं। श्रेष्ठ राजा सब अङ्गो से परिपूर्ण है और रामजी के चरणो के आश्रित होने से चित्त मे प्रसन्नता है।

---

१ यह छठी ईति है। करुण रस रूपी राजा का धावा अवध पर हो गया है।

व्याख्या · राजा विवेक के योद्धा पाँच यम और पाँच नियम हैं। जिस भाँति मोह राजा के काम क्रोधादि योद्धा है और विवेक राजा की राजधानी राम शैल है जिस भाँति मोह राजा की राजधानी इन्द्रपुर है। राजधानी उस प्रदेश को कहते हैं जहाँ स्वय राजा का निवास हो। शैल पर मानो विवेक राजा स्वय रहते हैं। राजा को दो पवित्र रानियाँ भी हैं एक तो शान्ति रानी है और दूसरी सुमति रानी हैं।

राजा के जितने अङ्ग सेना कोषादि हैं सबसे विवेक राजा सम्पन्न हैं और वे रामचरण के आश्रित हैं। अत स्नेह मे मग्न रहते हैं।

दो. जीति मोह महिपालु दल, सहित बिबेक भुआलु।
करत अकटक राजु पुर, सुख संपदा सुकालु ॥२३५॥

अर्थ · विवेक राजा मोह राजा को दल सहित जीतकर निष्कण्टक राज्य कर रहे हैं और पुर मे सुख सम्पत्ति और सुकाल है।

व्याख्या : इससे यह पता चलता है कि पहिले यहाँ भी मोह राजा का राज्य था। पर जब से सरकार का आगमन हुआ तब से सरकार के आश्रय से विवेक राज की जीत हो गयी। अब वे वन और प्रदेश मे अकण्टक राज्य करते हैं। वहाँ सुख सम्पदा और सुकाल बना हुआ है। भाव यह कि जिस भाँति पिण्ड मे विवेक जय से आनन्द होता है उसी भाँति राम वन और शैल मे आनन्द का साम्राज्य है। *यथा सेवक सुमिरत नाम सुप्रीति। बिनु श्रम प्रबल मोहदल जीती। फिरत सनेह मगन सुख अपने। नाम प्रसाद सोच नहिं सपने।*

बन प्रदेश मुनि बास घनेरे। जनु पुर नगर गाउँ गन खेरे ॥
बिपुल बिचित्र बिहग मृग नाना। प्रजा समाजु न जाइ बखाना ॥१॥

अर्थ : वन प्रदेश मे बहुत से मुनियो के निवास स्थान हैं। वे ही मानो पुर, नगर, गाँव और पुरवा हैं। बहुत से अनेक प्रकार के पक्षी और बहुत प्रकार के मृग हैं। वे ही ऐसे प्रजा समाज हैं जिनका वखान नहीं हो सकता है।

व्याख्या उस वन प्रदेश मे बहुत से मुनियो के आश्रम हैं। वे आश्रम ही मानो पुर नगर ग्राम और खेट विस्तार के तारतम्य से हैं। नगर बड़ा होता है। पुर उससे छोटा, ग्राम उससे भी छोटा होता है। खेट शब्द का प्राकृत रूप खेर है अर्थात् पुरवा। यथा : आप पाप को नगर बसावत सहि न सक्त पर खेरे।

अब उन पुर, नगर, ग्राम और खेरा के निवासी प्रजा कौन से हैं ? मुनि लोग प्रजा हो नहीं सक्ते और न एक आश्रम मे उतने मुनि ही रह सकते हैं कि उनकी उपमा नगरादि से दी जा सके। अतः कहते हैं कि उन आश्रमो मे अनेक प्रकार के बहुत से पक्षी बसे हुए हैं। उनमे अनेक प्रकार के मृग भी विचरते हैं। वे ही मानो प्रजा के समाज हैं। पक्षी ऐसे सुन्दर हैं, उनकी बोली इतनी सुहावनी है कि वर्णन नहीं किया जा सक्ता। सुन्दर मृग अनेक प्रकार से कलोल कर रहे हैं। उनके लिए भी ऐसी ही बात कही जा सकती है। भगवती ने कहा था : खग

मृग परिजन नगर बन। माँ कौसल्या ने कहा था : खग मृग चरण सरोरुह सेवी। सो उन्ही का प्रजा रूप से वर्णन हो रहा है।

खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष वृष साजु सराहा ॥
बयरु बिहाय चरहिं एक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा ॥२॥

अर्थ : गैंडा, हाथी, सिंह, व्याघ्र, सूअर, भैंसा, बैल के साज को देखकर प्रशंसा की। वे वैर छोड़कर जहाँ तहाँ विचर रहे हैं। मानो वे ही चतुरंगिणी सेना हैं।

व्याख्या : इस पशु समाज को जो देखता है वही प्रशंसा करता है। खगहा गैंड़े को, हरि सिंह को, बाराह बनैले सुअर को, महिष भैंस और वृष बैल को कहते हैं। इन सबों में एक दूसरे से वैर है। सो स्वाभाविक वैर छोडकर एक साथ विचर रहे हैं। जैसे चतुरंगिणी सेना विचर रही हो।

पहिले कह आये है : सकल अंग सपन्न सुराऊ। उन अङ्गो का वर्णन करते हुए सम्पत्ति, मन्त्री, देश, रानी, सेनापति, प्रजा, सेना का वर्णन करके अब सुराज के मङ्गल का वर्णन करते हैं।

झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। मनहुँ निसान बिबिध बिधि बाजहिं ॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन। कूजत मंजु मराल मुदित मन ॥३॥

अर्थ : झरना झरते हैं। मत्त हाथी गरजते हैं। मानो अनेक प्रकार के डंके बज रहे हैं। चकवा, चकोर, पपीहा, शुक, कोयल और हंस प्रसन्न मन होकर कूज रहे है।

व्याख्या : जहाँ मङ्गल होता है वहाँ डंके बजते हैं। वहाँ वाद्य, गान और नृत्य होता है। सो यहाँ जो झरना झर रहा और मत्त हाथी गरज रहे हैं। वे ही मानो डंके बज रहे हैं। ध्वनि मे भेद होने से बिबिध बिधि कहा।

यहाँ पर छ : पक्षियो का कूजना लिखा जा रहा है। जो भिन्न ऋतुओ मे बोलते हैं। पर आनन्दातिरेक से यहाँ सब बोल रहे हैं। ये ही मानो तालधारी हैं बाजे बजा रहे हैं। पुष्पवाटिका मे चातक कोकिल कीर चकोरा। कुजत विहंग नटत कल मोरा कह आये हैं। यहाँ नदी के निकट होने से चक और हंस अधिक कह रहे हैं।

अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा ॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला। सब समाजु मुद मंगल मूला ॥४॥

अर्थ : भौंरो के झुण्ड गाते और मोर नाच रहे हैं। मानो सुराज मे चारो ओर मङ्गल हो रहा है। विटप तृण सब फल और फूल से सम्पन्न हैं। सब समाज आनन्द और मङ्गल का मूल हो रहा है।

व्याख्या : जब तालधारी लोगो ने साज मिला लिया तब गान आरम्भ होता है। यहाँ भ्रमरगण ही गानेवाले हैं। जब गान होने लगा और वाद्य बजने लगे तब उस रस की पूर्ति तो नृत्य से ही हो सक्ती है। अतः कहते हैं कि मोर नाच रहे हैं।

नाचनेवाला बडे सजधज से आता है। पक्षियो मे मोर से अधिक सजधज किसी का नही है।

लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना। उनमे भी फल फूल लगे हैं। राजा राम चरन आश्रित चित चारु है। प्रजा बैर बिहाय चरहिं एक सगा। पक्षी नाच गा रहे हैं। वेलि विटप सब सफल सफूल है। इसलिए सब समाज को मङ्गल मूल कह रहे हैं।

दो. राम सैल सोभा निरखि, भरत हृदय अति पेमु।
तापस तप फल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेमु ॥२३६॥

अर्थ : राम शैल की शोभा देखकर भरतजी के हृदय में अत्यन्त प्रेम हो रहा है। जैसे तपस्या का फल प्राप्त होने पर तपस्वी नियमो की समाप्ति मे सुखी होता है।

व्याख्या : भरत दीख वन सैल समाजू : उपक्रम करके : राम सैल सोभा निरखि से उपसहार करते हैं। उसके देखने से सबके हृदय में आनन्द हुआ। पर भरत के हृदय मे अत्यन्त आनन्द हुआ। यहाँ प्रेम का आनन्द है। यथा : तदपि प्रीति कै प्रीति सुहाई। मानो तपस्वी को तप फल मिल गया और जो कष्ट कर नियम उसने स्वीकार किये थे वे सब समाप्त हो गये। उस समय जैसा सुख तपस्वी को होता है वैसा सुख भरतजी को रामशैल शोभा निरीक्षण से हुआ। क्योकि जहाँ रामजी होते हैं वही शोभा रहती है। भरतजी स्वय अयोध्या की व्यवस्था देख चुके हैं। श्रीहत सर सरिता वन बागा। नगर विसेषि भयावनु लागा। खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम बियोग कुरोग बिगोए। अत: रामजी के यहाँ होने के निश्चय से भरतजी को अत्यधिक सुख हुआ। जिस भरतलाल को भरद्वाजजी के विधि विस्मय दायक विभव का कोई प्रभाव न पडा उस पर राम शैल का ऐसा प्रभाव पडा कि उसके दर्शन के सुख मे मग्न हैं।

तब केवट ऊँचे चढि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई ॥
नाथ देखिअहि बिटप बिसाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला ॥१॥

अर्थ : तब केवट दौड़कर ऊँचे चढ गया और भरतजी से भुजा उठाकर कहने लगा कि हे नाथ! ये जो बडे बडे पेड देखे जाते हैं पाकर का पेड़ है। जामुन का पेड है। आम और आबनूस का पेड है।

व्याख्या : ऊँचे पर चढे जाने से दूर के और नीचे के दृश्य स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं। केवट ने ठीक अन्दाज कर लिया है। फिर भी निश्चय करने के लिए ऊँचे पर दौडकर चढ गया। भरतजी को अतिप्रिय के दर्शन कराने की उत्सुकता से शीघ्रता की और भरतजी को दिग्दर्शन कराने के लिए भुजा उठाकर बोला।

कहता है कि इस वन के पेडो मे जो बडे बडे पेडो का झुण्ड है उसे देखिये।

मृग परिजन नगर बन। माँ कौसल्या ने कहा था : खग मृग चरण सरोरुह सेव सो उन्हीं का प्रजा रूप से वर्णन हो रहा है।

खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष वृष साजु सराहा ॥
बयरु बिहाय चरहिं एक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा ॥२

अर्थ : गैंडा, हाथी, सिंह, व्याघ्र, सूअर, भैंसा, बैल के साज को देखकर प्रश की। वे वैर छोड़कर जहाँ तहाँ विचर रहे हैं। मानो वे ही चतुरंगिणी सेना हैं।

व्याख्या . इस पशु समाज को जो देखता है वही प्रशंसा करता है। खग गैंड़े को, हरि सिंह को, वाराह वनैले सुअर को, महिष भैंस और वृष बैल को कह हैं। इन सबों में एक दूसरे से वैर है। सो स्वाभाविक वैर छोड़कर एक साथ विच रहे हैं। जैसे चतुरंगिणी सेना विचर रही हो।

पहिले कह आये हैं · सकल अंग सपन्न सुराऊ। उन अङ्गो का वर्णन कर हुए सम्पत्ति, मन्त्री, देश, रानी, सेनापति, प्रजा, सेना का वर्णन करके अब सुरा के मङ्गल का वर्णन करते हैं।

झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। मनहुँ निसान बिबिध बिधि बाजहिं ॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन। कूजत मंजु मराल मुदित मन ॥३॥

अर्थ : झरना झरते हैं। मत्त हाथी गरजते हैं। मानो अनेक प्रकार के डके ब रहे हैं। चकवा, चकोर, पपीहा, शुक, कोयल और हंस प्रसन्न मन होकर कूज रहे हैं

व्याख्या : जहाँ मङ्गल होता है वहाँ डके बजते हैं। वहाँ वाद्य, गान औ नृत्य होता है। सो यहाँ जो झरना झर रहा और मत्त हाथी गरज रहे है। वे हैं मानो डके बज रहे हैं। ध्वनि मे भेद होने से विविध विधि कहा।

यहाँ पर छ : पक्षियो का कूजना लिखा जा रहा है। जो भिन्न ऋतुओं मे बोलते हैं। पर आनन्दातिरेक से यहाँ सब बोल रहे हैं। ये ही मानो तालधारी हैं बाजे बजा रहे हैं। पुष्पवाटिका मे चातक कोकिल कीर चकोरा। कुजत विहग नटत कल मोरा कह आये हैं। यहाँ नदी के निकट होने से चक और हंस अधिक कह रहे हैं।

अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा ॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला। सब समाजु मृदु मंगल मूला ॥४॥

अर्थ : भौंरो के झुण्ड गाते और मोर नाच रहे हैं। मानो सुराज मे चारो ओर मङ्गल हो रहा है। विटप तृण सब फल और फूल से सम्पन्न है। सब समाज आनन्द और मङ्गल का मूल हो रहा है।

व्याख्या : जब तालधारी लोगो ने साज मिला लिया तब गान आरम्भ होता है। यहाँ भ्रमरगण ही गानेवाले हैं। जब गान होने लगा और वाद्य बजने लगे तब उस रस की पूर्ति तो नृत्य से ही हो सकती है। अतः कहते हैं कि मोर नाच रहे हैं।

नाचनेवाला बड़े सजधज से आता है। पक्षियों में मोर से अधिक सजधज किसी का नहीं है।

लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन वर बेलि बिताना। उनमें भी फल फूल लगे हैं। राजा राम चरन आश्रित चित चाऊ हैं। प्रजा बैर बिहाय चरहिं एक संगा। पक्षी नाच गा रहे हैं। वेलि बिटप सब सफल सफूल हैं। इसलिए सब समाज को मङ्गल मूल कह रहे हैं।

दो. राम सैल सोभा निरखि, भरत हृदय अति पेमु।
तापस तप फल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेमु ॥२३६॥

अर्थ : राम शैल की शोभा देखकर भरतजी के हृदय में अत्यन्त प्रेम हो रहा है। जैसे तपस्या का फल प्राप्त होने पर तपस्वी नियमों की समाप्ति में सुखी होता है।

व्याख्या : भरत दीख वन सैल समाजू : उपक्रम करके : राम सैल सोभा निरखि से उपसंहार करते हैं। उसके देखने से सबके हृदय में आनन्द हुआ। पर भरत के हृदय में अत्यन्त आनन्द हुआ। यहाँ प्रेम का आनन्द है। यथा : तदपि प्रीति कै प्रीति सुहाई। मानो तपस्वी को तप फल मिल गया और जो कष्ट कर नियम उसने स्वीकार किये थे वे सब समाप्त हो गये। उस समय जैसा सुख तपस्वी को होता है वैसा सुख भरतजी को रामशैल शोभा निरीक्षण से हुआ। क्योंकि जहाँ रामजी होते हैं वहीं शोभा रहती है। भरतजी स्वयं अयोध्या की व्यवस्था देख चुके हैं। श्रीहत सर सरिता वन बागा। नगर बिसेषि भयावनु लागा। खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम वियोग कुरोग बिगोए। अतः रामजी के यहाँ होने के निश्चय से भरतजी को अत्यधिक सुख हुआ। जिस भरतलाल को भरद्वाजजी के विधि विस्मय दायक विभव का कोई प्रभाव न पड़ा उस पर राम शैल का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसके दर्शन के सुख में मग्न हैं।

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई ॥
नाथ देखिअहिं बिटप बिसाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला ॥१॥

अर्थ : तब केवट दौड़कर ऊँचे चढ गया और भरतजी से भुजा उठाकर कहने लगा कि हे नाथ! ये जो बड़े बड़े पेड़ देखे जाते हैं पाकर का पेड़ है। जामुन का पेड़ है। आम और आवनूस का पेड़ है।

व्याख्या : ऊँचे पर चढे जाने से दूर के और नीचे के दृश्य स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं। केवट ने ठीक अन्दाज कर लिया है। फिर भी निश्चय करने के लिए ऊँचे पर दौड़कर चढ गया। भरतजी को अतिप्रिय के दर्शन कराने की उत्सुकता से शीघ्रता की और भरतजी को दिग्दर्शन कराने के लिए भुजा उठाकर बोला।

कहता है कि इस वन के पेडो में जो बडे बड़े पेड़ों का झुण्ड है उसे देखिये।

उसमे पाकर जामुन रसाल और तमाल के पेड हैं। भाव यह कि इतने निकट पहुँच गये हैं कि वृक्षो की पहिचान हो रही है।

जिन्ह तरुबरन्ह मध्य बटु सोहा। मजु बिसालु देखि मनु मोहा ॥
नील सघन पल्लव फल लाला। अविचल छाँह सुखद सब काला ॥२॥

अर्थ उन श्रेष्ठ वृक्षो के बीच मे वट का वृक्ष शोभित हो रहा है। वह बडा सुन्दर है। विशाल है। उसके देखने से मनमोहित हो जाता है। नीले घने पत्ते हैं और लाल फल है। इसकी छाया घनी और सब काल मे सुख देनेवाली है।

व्याख्या अब पाँचवाँ पेड दिखला रहे हैं जो उपर्युक्त चारो वृक्षो के बीच मे है। वह वट का वृक्ष है। वट के पत्ते दूर से देखने से नीले रङ्ग के मालूम होते हैं। उन पत्तो मे लाल फल बडी शाभा दे रहे हैं। वटवृक्ष सभी वृक्षो मे बडा होता है। इसका फैलाव बहुत विस्तृत होता है। घने पत्तो के कारण धूप छनकर भी नही आ सकती इससे उसकी छाँह भी घनी होती है। जाडे मे गरम होती है। बरसात मे भी यह जल को बहुत रोकता है। अत ये सब गुण वट को छोडकर अन्य वृक्षो मे नही पाये जाते।

मानहुँ तिमिर अरुनमय रासी। बिरची बिधि सँकेलि सुषमासी ॥
ए तरु सरित समीप गोसाईं। रघुबर परनकुटी जहँ छाईं ॥३॥

अर्थ मानो ब्रह्मदेव ने अन्धकार और अरुणिमा की राशि को इकट्ठा करके परम शोभा सी रच दी है। ये पेड हे गोसाईं! नदी के तीर पर हैं। जहाँ रामजी ने पर्णकुटी बना रक्खी है।

व्याख्या अब पहिले जो कह आये हैं कि देखि मन मोहा उसी का कारण कहते है कि वटवृक्ष मे मानो परम शोभा सी छायी हुई है। ऐसा जान पडता है कि अन्धकार की राशि और अरुण राशि को मिलाकर इसे ब्रह्मदेव ने बनाया है। अन्धकार और अरुणिमा को लकर कुछ रचना करना मनुष्य द्वारा साध्य नही है। इसलिए कहते हैं कि मानो ब्रह्मदेव ने बना रक्खा है। नील सघन पल्लव मानो अन्धकार है और लाल लाल फूल मानो अरुणिमा है।

ये पेड मन्दाकिनी के तट पर हैं। सरकारी पर्णकुटी के आगे हैं। केवट कहता है कि मैंने कहा था जेहि बन जाइ रहब रघुराई। पर्णकुटी मैं करब सुहाई। सो मुझ यमुना पार से ही लौटा दिया है। कला विधान से मालूम होता है कि स्वय ही बनाया है।

तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए। कहुँ कहुँ सिय कहुँ लखन लगाए ॥
बट छायाँ बेदिका बनाई। सिय निज पानि सरोज सुहाई ॥४॥

अर्थ अनेक प्रकार के तुलसी के सुन्दर सुन्दर पेड कही कहीं सीताजी ने

कहीं कहीं लक्ष्मणजी ने लगा रक्खा है। वट की छाया मे वेदिका : चबूतरा बना हुआ है। उसे सीताजी ने अपने कर कमलो से बनाया है।

व्याख्या : निषादराज सब बातो की खबर दिन रात लिया करते थे। छोटी सी छोटी बातो का उन्हे पता है। कहते हैं कि बहुत से तुलसी के पेड वहाँ लगे हुए हैं। उनमे से किसी किसी को लक्ष्मणजी किसी किसी को सीताजी ने लगा रक्खा है। भाव यह कि तुलसी बहुत पवित्र है और रामजी को प्रिय है। यथा : रामहि प्रिय पावन तुलसी सी। पूजा के भी बडी उपयोगी है। स्वास्थ्य के लिए भी परम हितकर है। अतः कोई घर तुलसी से रहित न होना चाहिए।

वट की छाया मे जो वेदिका बनी है उसे सीताजी ने अपने हाथ से बनाया है। भाव यह : मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ होने पर भी लक्ष्मणजी तथा परम सुकुमारी जनक दुलारी सीताजी गृहस्थी के सब कार्य सानन्द अपने हाथो कर रही हैं।

दो. जहाँ बैठि मुनिगन सहित, नित सिय रामु सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब, आगम निगम पुरान ॥२३७॥

अर्थ : जहाँ मुनि समाज के साथ बैठकर सुजान सीता रामजी कथा इतिहास शास्त्र वेद और पुराण सुना करते हैं।

व्याख्या : वह वेदिका भी छोटी सी नही है जिसे सीताजी ने बनाया है। उस पर मुनियो की सभा लगती है। सीताजी और रामजी बडे सुजान हैं। कथा सुनने के बडे प्रेमी हैं। सब जानने पर भी बार बार सुनते है। यथा : वेद पुरान बसिष्ठ बखानहि। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं। भाव यह कि इन ग्रन्थो का श्रवण महापुण्य जनक है। कल्याणकांक्षी को इनका श्रवण नित्य करना चाहिए। मुनिगण मिलन बिसेष बन सबहि भाँति हित मोर : का साफल्य दिखला रहे हैं। बचपन से सरकार श्रवण के बडे रसिक हैं। यथा : वेद पुरान सुनहि मन लाई। आपु कहें अनुजन्ह समुझाई। काष्ठ जिह्वा स्वामीजी कहते हैं : श्रवनहिं सब भावन की जरिहैं। बिना सुने कोउ कैसे जनिहैं बिनु जाने कोउ का करिहैं।

सखा बचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी ॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई ॥१॥

अर्थ : सखा का वचन सुनकर पेड़ो को देखा तो भरतजी के आँखों मे जल उमग चला। दोनो भाई प्रणाम करते हुए चले। उस प्रेम को कहते हुए सरस्वती सङ्कुचित होती हैं।

व्याख्या : राम सैल सोभा निरखि भरत हृदय अति प्रेम। राम शैल की शोभा देखने से ही भरत के हृदय मे अत्यन्त प्रेम उमड़ा था। तब से निषादराज ने भुजा उठाकर दिखलाया कि इस वट विटप को देखिये। जिसके नीचे मुनि सभा मे सरकार कथा सुनते हैं। सखा के इस वचन को सुनकर विटप को देखा तो

प्रेम और अधिक उमड़ा आँखों में जल उमग आया। सरकार को अति निकट समझकर वही से प्रणाम करते चले। जिस भाँति मन्दिर का शिखर दर्शन करते ही परम भक्त लोग साष्टाङ्ग करते चलते हैं। पहिले ही कहा था : सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सो यही सिर के बल चलना है। उतनी दूर से समाज के साथ इस भाँति चलने में बड़ी बाधा थी। पर यहाँ तो निकट भी पहुँच गये और समाज भी साथ नही है। अतः साष्टाङ्ग प्रणाम करते चले।

यहाँ प्रीति के वर्णन का प्रसङ्ग आगया। कवियो को शारदा का भरोसा रहता है। उन्ही की कृपा से वर्णन करते हैं। यथा : भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवत धाई। सो स्वयं सरस्वती को प्रीति के वर्णन में सङ्कोच है। क्योकि उस प्रेम तक शारदा की भी गति नही है। वर्णन क्या करे ?

हरखहिं निरखि रामपद अंका। मानहु पारस पायेउ रंका ॥
रज सिर धरि हियँ नयनन्हि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं ॥२॥

अर्थ : रामजी के चरणों के चिह्न देखकर ऐसे प्रसन्न होते हैं जैसे दरिद्र को पारस मिल गया हो। धूलि को सिर पर धरकर हृदय और आँखो में लगाते हैं। रामजी से मिलने के बराबर सुख पाते हैं।

व्याख्या : यहाँ तक सरकार बराबर आते जाते हैं। दण्डवत् प्रणाम करते समय : ध्वज कुलिश अंकुश कञ्ज के चिह्न विस्पष्ट दिखायी पड़ रहे हैं। रामपद अङ्क पारस है। इसी से अभीष्ट सिद्धि होती है। रामजी मिलते हैं। पारस स्वयं सोना नही है। पत्थर है। पर सोना बनाता है। इसलिए उसका आदर सोना से भी अधिक है। गीधराज को दर्शन का बडी आर्ति रही। अतः उन्होने पद अङ्क का ही ध्यान किया। यथा : सुमिरत राम चरन चिन्ह रेखा। अति दरिद्र को सोना की बड़ी चाह है। इसलिए पारस पाने पर उसकी प्रसन्नता का अन्त नही है। इसी भाँति चरण चिह्न की प्राप्ति से भरतजी कृतकृत्य हैं।

उस अङ्क के रज को सिर पर धारण करते हैं। प्रिय वस्तु के लिए शरीर मे तीन ही स्थान है। सिर हृदय और नयन। अतः उस धूलि को सिर पर रक्खा। जो उंगली लगी रह गयी उसे हृदय मे लगाया। फिर भी सूक्ष्म अश, लगा रह गया उसे आँखो मे लगा रहे हैं। रामजी मिलते तो आँखो से देखते हृदय से लगाते। सिर से प्रणाम करते। यहाँ भी तीनो अङ्गो को इसी भाँति सुख मिल रहा है। इसीलिए कहते हैं · रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं।

देखि भरत गति अकथ अतीवाँ। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवाँ ॥
सखहिं सनेह बिबस मग भूला। कहि सुपंथ सुर, बरषहि फूला ॥३॥

अर्थ : भरत की अत्यन्त अकथनीय गति देखकर पशु पक्षी जड़ जीव प्रेम में मग्न हो गये। सखा तो प्रेम के विवश होने के कारण रास्ता भूल गया। तब देवताओ ने रास्ता बतलाकर फूल बरसाये।

व्याख्या : भरत दसा तेहि समय जस तस कहि सकहिं न सेषु। कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुख अह मम मलिन जनेषु। मन्दाकिनी के उस पार से ही भरतजी की अकथ दशा थी। इस समय तो अतीव अकथ है। इसका प्रभाव कोल किरात को कौन कहे जड जीव पशु पक्षी पर भी पडा। वे भी प्रेममग्न हो गये।

सखा निषादराज रास्ता दिखाने लिए साथ थे। पेडो को पहिचानते ही ऊँचे पर चढे। भलीभाँति मार्ग का निर्णय कर लिया। पर भरतजी का प्रेम देखकर वे भी ऐसे प्रेममग्न हुए कि उन्हे रास्ता भूल गया। बेरास्ते चल पडे। देवताओ को सेवा करने का अवसर मिल गया। उन लोगो ने सुन्दर रास्ता बतलाया और ऐसी प्रेमावस्था मे भरतजी के पूजन की महा महिमा समझकर फूल बरसाया।

निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेहु सराहन लागे ॥
होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को ॥४॥

अर्थ : देखकर सिद्ध और साधक भी अनुराग मे आगये। स्वाभाविक स्नेह की सराहना करने लगे। इस भूतल पर यदि भरतजी का अस्तित्व न होता तो जड को चेतन और चेतन को जड कौन करता ?

व्याख्या : भरत के प्रेम का प्रभाव पशु पक्षी आदि निम्न कोटि के जीवो तक पडा और सिद्ध साधक ऐसे उच्चकोटि के जीवो पर भी पडा। विराग के बानावाले सिद्ध साधक भी अनुराग मे आगये क्योकि विरागी जिसके अनुरागी होते हैं यथा : जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी उन्ही के ये भी अनुरागी हैं। अत स्वाभाविक प्रेम की प्रशसा करने लगे। वैधी भक्ति ऐसी हो नही सकती। यह तो स्वाभाविकी भक्ति है।

प्रशसा करते हुए कहते हैं कि यह सामर्थ्य भरत के ही प्रेम मे है जिसके प्रभाव से जड तो द्रवीभूत हो जायँ उनमे चेतन के धर्म दृष्टिगोचर होने लगे और चेतन स्तब्ध हो जायँ उनमे जड के धर्म लखायी पडने लगे। भाव यह कि भरत के कारण जगत् का बडा भारी उपकार हुआ और साधुओ के लिए तो आदर्श खडा हो गया। यथा :

दो० प्रेमु अमिअ मदरु बिरहु, भरतु पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित, कृपासिंधु रघुबीर ॥२३८॥

अर्थ : प्रेमरूपी अमृत को विरह रूपी मन्दर से भरत रूपी अथाह समुद्र को मथकर कृपा के समुद्र रामजी ने देवता रूपी साधु के लिए प्रकट किया।

व्याख्या : भरत गम्भीर पयोधि हैं। यथा : कबहुँ कि काँजी सीकरन्हि छीर सिंधु बिनसाइ। पयोधि का मन्थन तो मन्दर से हुआ। पर भरत रूपी गम्भीर पयोधि का मन्थन तो उससे नही हो सकता था। इसलिए उनके मन्थन के लिए विरह ही मन्दर हुआ। पयोधि को तो सुरासुर ने मन्थन किया था। परन्तु इस मन्दर के सञ्चालन की शक्ति तो उनमे भी नही। अतः सरकार ने स्वय अपने विरह से

मन्थन किया। भरतजी विचलित हो उठे। भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौन। उस पयोधि का मन्थन तो देवताओं के हित के लिए हुआ। पर भरत रूपी पयोधिका मन्थन साधुओं के लिए हुआ। क्योंकि मन्थन से प्रेमामृत प्रकट हुआ जिसके रसास्वादन करनेवाले साधु हैं। इतना बड़ा कष्ट साधुओं के हित के लिए उठाया। अतः कृपासिन्धु कहते हैं।

सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लखन सघन बन ओटा ॥
भरत दीख प्रभु आश्रमु पावन। सकल सुमंगल सदन सुहावन ॥१॥

अर्थ : सखा सहित मनोहर जोड़ी को घने वन के आड़ के कारण लक्ष्मणजी ने नही लखा। भरतजी ने प्रभु के पावन आश्रम को देखा। जो सब सुमङ्गल का सुन्दर घर था।

व्याख्या : भरत शत्रुघ्न की जोड़ी मनोहर है। यथा : सखि जस रामलखन कर जोटा। तैसइ भूप संग दुइ ढोटा। और सखा के संग हैं। अतः मिलने की बड़ी उत्कण्ठा होनी चाहिए। परन्तु लक्ष्मणजी ने नही लखा। लक्ष्मणजी सरकार का पहरा दिया करते हैं। बड़े सावधान रहते हैं। यथा : कछुक दूरि सजि बान सरासन। जागन लगे बैठि बीरासन। परन्तु बीच में सघन वन था। सघन वन में से बाहर की वस्तु दिखायी पड़ती है। परन्तु बाहर से सघन वन के भीतर कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता। अतः सावधान होने पर भी लक्ष्मणजी लख न सके।

परन्तु भरतजी ने प्रभु के आश्रम को देखा जो कि पवित्र भी था। सुमङ्गल भवन भी था और सुन्दर भी था। पवित्र वस्तु इष्ट प्रापक नही होता और यदि दोनो बातें हों भी तो वह सुन्दर नही होती। प्रभु के आश्रम मे तीनों बातें हैं।

करत प्रवेस मिटे दुख दावा। जनु जोगी परमारथु पावा ॥
देखे भरत लखन प्रभु आगें। पूछे बचन कहत अनुरागें ॥२॥

अर्थ : प्रवेश करते ही दुःख दावानल मिट गया। मानो योगी को परमार्थ की प्राप्ति हुई। भरतजी ने देखा कि लक्ष्मणजी सरकार के सामने हैं। पूछने पर अनुराग मे पगे हुए कुछ कह रहे हैं।

व्याख्या : भरतजी के हृदय मे दुःख का दावानल लगा हुआ है। वह उस आश्रम में प्रवेश करते ही मिट गया। यथा : एहि दुख दाह दहै दिन छाती। भूख न बासर नीद न राती। इससे उस आश्रम का सुमङ्गल सदन होना दिखलाया। दुखदाव भी मिटा और परम सुख की प्राप्ति हुई। दोषापनयन कहकर गुणाधान कहते है कि मानो योगी ने परमतत्त्व पा लिया। यथा : पावा परमतत्त्व जनु योगी। अमृत लहेउ जनु संतत रोगी। भावार्थ यह कि भरतजी मानो कृतकृत्य हो गये। यह वही समय है। जब सरकार पूछ रहे हैं कि भरतजी कहाँ तक आगये हैं। तुमने पेड़ पर चढ़कर क्या क्या देखा? और लक्ष्मणजी उत्तर दे रहे हैं। प्रसगप्राप्त बात तो यही है। वाल्मीकीय में लक्ष्मणजी का पेड पर चढना और भरतजी की सेना का अवलोकन

लिखा है। ग्रन्थकार कुछ स्पष्ट लिखते नही। अत अनुमान यही होता है कि लक्ष्मणजी के क्रोध की शान्ति के बाद सरकार उसी विषय मे कुछ पूछ रहे हैं।

सीस जटा कटि मुनि पट बाँधे। तून कसे कर सर धनु काँधे ॥
वेदी पर मुनि साधु समाजू। सीय सहित राजत रघुराजू ॥३॥

अर्थ सिर पर जटा बाँधे हुए हैं और कमर मे वल्कल बँधा हुआ है। तरकस कसे हुए हैं। हाथ मे बाण और कन्धे पर धनुष है। वेदी के ऊपर मुनि और साधुओ का समाज है। सीताजी के सहित रामजी सुशोभित है।

व्याख्या लक्ष्मणजी ने बीररस के आवेश मे युद्ध की तैयारी की थी अभी तक उसी वेष मे हैं। यथा बाँधि जटा सिर कटि कसि भाथा। साजि सरासन सायक हाथा। भेद इतना ही है कि उस समय सजा हुआ धनुप था। इस समय कन्धे पर लटक रहा है। लक्ष्मणजी वेदी के नीचे है। यह वही वेदी है जिसके बारे म निषादराज ने कहा था बट छाया बेदिका बनाई। सिय निज पानि सरोज सोहाई। जहाँ बैठि मुनि गन सहित नित सिय राम सुजान। सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान। सा सरकार भी बैठे है सीताजी भी बैठी हैं। मुनि समाज भी जुट गया है। सरकार का दरबार लगा हुआ है। इस मुनि मण्डली मे राम जानकी की बडी शोभा है। क्योंकि सरकार मुनिवेष मे हैं।

बलकल बसन जटिल तनु स्यामा। जिमि मुनिवेष कीन्ह रति कामा ॥
कर [1]कमलनि धनु सायकु फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत ॥४॥

अर्थ पेडो के छाल का कपडा है। शरीर श्याम है। मानो काम और रति ने मुनि का वेष बना रक्खा है। करकमलो से धनुप बाण फेरते हैं और सहासावलोकन से जी की जलन का हरण कर रहे है।

व्याख्या पीतरङ्ग के वल्कल धारण करने से स्याम सरीर सुभाय सुहावन की बडी शोभा हो रही है। सरकार का रङ्ग श्याम है। जगदम्बा का वर्ण गौर है। सौन्दर्य की पराकाष्ठा रति और काम मे ही माना गया है। अत कवि उपमा देते हैं कि मानो स्वय रति और काम ने ही मुनि का वेष धारण कर रक्खा है। रति का वर्ण गौर और काम का श्याम है।

सरकार वीरोचित स्वभावानुकूल अस्त्र शस्त्र से सदा सावधान रहते हैं। उसे सुधारा करते हैं। अभ्यास के लिए फेरा करते हैं। सो उस समय धनुष बाण फेर रहे हैं और हँसकर देख रहे हैं। उस सहासावलोकन से मानो जिय की जलन का हरण कर रहे हैं। भरतजी ने कहा था देखे बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ। सो मानो उसी के मिटाने के लिए हँसकर दख रहे हैं।

---

१ यहाँ परिणामालङ्कार है।

दो लसत मजु मुनि मडली, मध्य सीय रघुचदु ।
ग्यान सभाँ जनु तनु धरे, भगति सच्चिदानदु ॥२३९॥

अर्थ . सुन्दर मुनिमण्डली के बीच मे रामचन्द्र सीताजी के साथ विराजमान हैं। जैसे शरीर धारण किये हुए ज्ञान की सभा मे भक्ति और सच्चिदानन्द विराजमान हो।

व्याख्या · ज्ञान प्राचुर्य के कारण मुनि मण्डली की उपमा ज्ञानसभा से दी गयी। अर्थात् साक्षात् विवेक विराग शम दम मानो मूर्तिमान बैठे हैं और ज्ञान की शोभा बिना भक्ति के होती नही। यथा सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू। करनधार बिनु जिमि जल जानू। जोग कुजोग ग्यान अग्यानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू। सो सच्चिदानन्द राम है। यथा राम सच्चिदानद दिनेसा। और भक्ति उनको प्रिया हैं। यथा पुनि रघुबीरहिं भगति पियारी। अत सीय रघुचद की उपमा भक्ति सच्चिदानन्द से दी गयी। वे भी शरीर धारण किये हुए विराजमान है।

सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष सोक सुख दुख गन॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाई। भूतल परे लकुट की नाईं॥१॥

अर्थ भरतजी भाई और सखा सहित मगन मन हो गये। हर्ष शोक सुख दु ख सब भूल गये। हे नाथ ! रक्षा करो। हे गोसाईं ! रक्षा करो ऐसा कहकर दण्ड की भाँति पृथ्वी पर गिर गये।

व्याख्या भरतजी शत्रुघ्न और निषादराज सबका मन मग्न हो गया। अर्थात् अपना कार्य करने मे असमर्थ हो गया। अत हर्ष शोक सुख दु ख का स्मरण न रह गया। अनुभूतविषयासम्प्रमोष स्मृति । सो स्मृति नही रह गयी। पहिले हर्ष हुआ था। यथा हरषहिं निरखि रामपद अका। सुख यथा रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं। दु ख और शोक तो पहिले ही मिट गया था। यथा करत प्रवेस मिटे दुख दावा। जनु जोगी परमारथ पावा। इस समय तो स्मरण भी नही रह गया कि कभी शोक दु खादि थे।

भूयोऽर्थं मे दो बार पाहि कहा। यथा त्राहि त्राहि आरत हरन। अथवा प्रभु पितु बचन मोह बस बेली। आएउ इहाँ समाज सकेली। अत दोनो अपराध की क्षमा के लिए दो बार पाहि कहा। भरतजी दुर्बल हो रहे है। अत लकुटी की नाईं भूमि पर गिरना कहा। मनु शतरूपा हृष्टपुष्ट थे। अत उनके लिए लिखा परे दड इव गहि पद पानी।

बचन सप्रेम लखन पहिचाने। करत प्रनामु भरत जियँ जाने॥
बधु सनेह सरस एहिं ओरा। उत साहिब सेवा बस जोरा॥२॥

अर्थ लक्ष्मणजी ने प्रेम सहित वचन पहिचाने और ऐसा जी मे जाना कि

भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। इधर तो भाई का सरस प्रेम और उधर स्वामी की सेवा की प्रबलता।

व्याख्या : भरतजी के सप्रेम वचन को लक्ष्मण ने पहिचाना और किसी ने नहीं। क्योंकि सरकार की सेवा मे सावधान हैं। इतना ही नहीं यह भी जान लिया कि भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। भाई के सरस प्रेम ने इस ओर मन को खैंचा : दौड़कर भाई से लिपट जाने को जी चाहा और उधर सरकार पूछते थे। लखनलाल उत्तर दे रहे थे। अतः स्वामी की सेवा मे लगे थे। यथा : देखे भरत लखन प्रभु आगे। पूछें बचन कहत अनुरागे। गोस्वामीजी दोनों ओर इत लिखते हैं। यथा : इत पितु बच इत बंधु सकोचू।

मिलि न जाइ नहि गुदरत बनई। सुकवि लखन मन की गति भनई॥
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू॥३॥

अर्थ : न मिलते बनता है और न छोडते ही बनता है। सुकवि लक्ष्मण के चित्त की गति का वर्णन करता है। सेवा पर ही भार रख छोड़ा। जैसे पतङ्ग उड़ानेवाला चढी हुई पतङ्ग को खीचता हो।

व्याख्या : सेवा मे रहने से मिलि न जाइ और भाई के सरस प्रेम के खैंच से मन उस ओर से इधर भी नहीं आता। इसलिए कहते हैं : नहिं गुदरत बनई। छोडते भी नहीं बनता। लखनलाल दोनों ओर की खैंचतान मे पड़ गये। इस समय लखनलाल के मन की गति का वर्णन करना सुकवि का काम है सो सुकवि कहता है।

चङ्ग सीधे ऊपर नहीं जाती हवा के रुख पर जाती है। यहाँ चङ्ग उपमान है। मन उपमेय है। मन भरतजी की ओर खिचा। इसी को चङ्ग का चढना कहा। लक्ष्मणजी की उपमा खेलाड़ी : पतङ्गबाज से है सो खेलाड़ी ने पतङ्ग को हाथ से जाने न दिया। परेते पर बोझा दिया। यहाँ सेवा परेता है। उसी में लखनलाल की मनोवृत्ति रूप नख लिपटा हुआ है।

कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा॥
उठे रामु सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥४॥

अर्थ : लक्ष्मण ने प्रेम सहित पृथ्वी पर सिर नवाकर कहा कि हे रघुनाथ ! भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। रामचन्द्र इस बात को सुनते ही प्रेम से अधीर हो उठे। कपड़ा कहीं है। निषंग कहीं है। धनुष कहीं है और तीर कहीं है।

व्याख्या : बात करते करते प्रणाम का भाव यही कि अत्यन्त आवश्यकीय बात इस बीच मे आन पड़ी। यदि सादा प्रणाम होता तो बात के सिलसिले मे ही समझा जाता। अतः लक्ष्मणजी ने पृथ्वी पर सिर रखकर प्रणाम किया। भरतजी ने नाथ कहकर पाहि कहा था। अतः लक्ष्मणजी रघुनाथ सम्बोधन करके कहते हैं कि आप रघुकुल के नाथ हैं। रघुकुल के मुख्य भरत प्रणाम करते हैं।

लक्ष्मणजी का वचन सुनते ही सरकार उठे। उठते ही सबने देखा तीर की

भाँति भरत के पास पहुँचते कोई देख न पाया। अतः गोसाईंजी ने सरकार का चलना नही लिखा। उठने मे अधीरता दिखलाते हैं। खबर नही कि उत्तरीय कहाँ गिरा। हाथ से धनु सायक फेर रहे थे सो धनुष कहाँ गिरा। निषङ्ग और तीर कहाँ गिरे इसका ध्यान न रहा। रामजी को अधीर करनेवाला केवल प्रेम है।

दो. बरबस लिए उठाइ उर, लाये कृपानिधान।
भरत राम की मिलन लखि, बिसरे सबहि अपान ॥२४०॥

अर्थ : कृपा निधान रामचन्द्र ने भरत को जोर से उठाकर छाती से लगाया। भरत और रामजी के मिलने को देखकर सब अपनी सुधि भूल गये।

व्याख्या : प्रेम मे जो मग्न होता है उसे उठना अच्छा नही लगता। यथा : प्रेम मगन तेहि उठब न भावा। अतः कहते हैं कि बल पूर्वक सरकार ने उठा लिया। स्वयं प्रेम मे अधीर हैं। इसलिए हृदय से लगा लिया। भरतजी ने यह भी अनुमान किया था : जौ सनमानहि सेवक मानी। सो हृदय से लगाकर सम्मान किया। अतः प्रभु को कृपानिधान कह रहे हैं। सो मिलते समय ऐसी प्रीति बढ़ी कि देखनेवाले ऐसे मग्न हुए कि उन्हे अपनी सुधि न रही।

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबिकुल अगम करम मन बानी ॥
परम प्रेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई ॥१॥

अर्थ : मिलने का प्रेम कैसे वर्णन किया जाय। क्योकि कवियो के लिए मनसा वाचा कर्मणा अगम है। मन बुद्धि चित्त अहन्ता को भूलकर दोनो भाई परम प्रेम से परिपूर्ण हो रहे हैं।

व्याख्या : रामजी की प्रीति भरत के प्रति जैसी थी उसे वर्णन भी किया यथा : रामहि बंधु सोच दिन राती। अडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती था। भरत की प्रीति रामजी के प्रति जैसी थी सो भी कहा। यथा : राम चरन पकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजै न पासू। परन्तु कवि कहते हैं कि मिलने की प्रीति कैसे बखानी जा सकती है जब कि मार्ग मे चलने की प्रीति ही कविकुल के लिए अगम थी। यथा : कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुख अहमम मलिन जनेषु। वहाँ तो अगमता की उपमा दी थी। पर यहाँ तो सीधे कह रहे हैं कि मनसा वाचा कर्मणा अगम है।

परम प्रेम मे दोनो भाई ऐसे डूबाडूब हैं कि अन्तःकरण चतुष्टय का पता नही। प्रेम समाधि लग गयी। दर्शन करने से ही भरतजी को हर्ष शोक सुख दुःख गण भूल गया था। इस समय हर्ष शोक सुख दुःख गण के अनुभव के जो करण हैं : मन बुद्धि और चित्त उनकी भी विस्मृति हो गयी। भाव यह कि स्वयं मिलनेवालो को ही अपनी दशा का पता नही तो दूसरे कैसे जानें। मन मे प्रेम के भर जाने से उसकी गति रुद्ध हो गयी। यदा : प्रेम भरा मन निज गति छूँछा।

कहहु सुप्रेम प्रगट को करई। केहि छायाँ कबि मति अनुसरई ॥
कबिहि अरथ आखर बलु साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाँचा ॥२॥

अर्थ : कहिये तो उस प्रेम को कौन प्रकट करे। किस छाया का कवि की मति अनुसरण करे। कवि को तो अक्षर और अर्थ का सच्चा बल होता है। जैसे नट ताल की गति के अनुसार नाचता है।

व्याख्या . जिस प्रेम मे मन बुद्धि चित्त अहन्ता का विस्मरण हो गया वह कैसे प्रकट किया जा सकता है ? अन्त करण ही अन्त के प्रेम को प्रकट करते हैं। अन्त करण की गति की छाया का अनुसरण करके ही कवि वर्णन करते हैं। यहाँ अन्त करण मे गति ही नही। तब किस छाया का कवि अनुसरण करे। कवि को अक्षर और अर्थ का सच्चा बल है। शब्द और अर्थ ही काव्य का शरीर है। वह अक्षर और अर्थ का ऐसा प्रयोग करता है कि उसे सरस्वती का नृत्य कहा जाता है। कुछ भाव अक्षर के प्रयोग से ही प्रकट हो जाते हैं। कुछ अर्थ के बल से प्रकट होते हैं। परन्तु वह तभी सम्भव है जब मन बुद्धि चित्त अहङ्कार मे गति हो। बिना गति के ताल कैसे दिया जायगा। ताल कालक्रिया मानम् और बिना ताल के नाचनेवाला कैसे नृत्य करे। इस भाँति कविकुल के लिए कर्म मन वाणी से उस प्रीति को अगम बतलाया।

अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को ॥
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती। बाज सुराग कि गाँडर ताँती ॥३॥

अर्थ भरत और रामजी का स्नेह दुर्गम है। जहाँ ब्रह्मा विष्णु और रुद्र का भी मन नही जाता। उस प्रेम को मुझ सा कुबुद्धि कैसे कह सकता है। क्या भेंड की ताँत से अच्छा राग बज सकता है।

व्याख्या . अब मन से अगम कह रहे हैं कि बिधि हरिहर के मन के लिए अगम है। कवि तो मनुष्य है। उसकी क्या गिनती है। अहङ्कार शिव बुद्धि अज मनराशि चित्त महान। यहाँ मन बुधि चित्त अहमिति का ही विस्मरण है और विधि हरिहर उन्ही के अधिष्ठाता हैं। अत उनकी गति नही है।

विधि हरिहर सुमतियो के शिरोमणि हैं और मै तो कुमति हूँ। जब ऐसो की पहुँच नही तो मेरी पहुँच कहाँ तक हो सकती है। भेंड की ताँत आँत के नसो से सुराग नही बज सकता। सारङ्गी आदि मे बूढी भैंस आदि की आँत की नस का प्रयोग होता है तब अच्छा राग बजता है। भेंड की आँत छोटी होती है और उसमे लचक नही होती। अर्थात् मैं कुमति होकर उसे कैसे कह सकता हूँ। इस भाँति वाणी से अगम कहा। सङ्गीत मे तीन की आवश्यकता होती है। गान ताल और नृत्य की। इस भाँति कवित्व मे भी तीन की आवश्यकता होती है। शिक्षा जानकारी और शक्ति की। यहाँ विषम अगम्य शक्ति दुर्बल और कुमति गाँडर ताँती है। सुमति वृद्धा भैंसे की ताँती है। गाँडर ताँती से सुराग ही नही बजता और जिस गान के ताल का थाह नही वह गाँडर ताँती से कैसे बजेगा। गाँडर भेंड को कहते हैं। इसीलिए उसके चरवाहे को गँडेरिया कहा जाता है।

मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की । सुरगन सभय धकधकी धरकी ॥
समुझाये सुरगुरु जड़ जागे । बरषि प्रसून प्रसंसन लागे ॥४॥

अर्थ : भरत और रघुवर का मिलन देखकर देवताओं की तो डर से छाती धड़कने लगी । जब बृहस्पतिजी ने समझाया तब उनकी जड़ता गयी । फूलों की वर्षा करके प्रशंसा करने लगे ।

व्याख्या : इतने बड़े प्रेम को देखकर देवताओं का कलेजा हिलने लगा कि यह तो वही बात हुई जिसको हमलोग डरते थे । राम सँकोची प्रेमबस भरत सुप्रेम पयोधि । बनी बात बिगरन चहति करिअ जतनु छल सोधि । भरतजी निश्चय लौटा ले जावेंगे और रामजी लौट जायँगे । भरत का अनुरोध कभी व्यर्थ नहीं जा सकता । हम कहते रहे : करिअ प्रभु सोई । रामहि भरतहि भेंट न होई । पर गुरुजी ने नहीं माना । अब तो भेंट हो गयी । अब क्या उपाय है ?

गुरुजी ने समझाया कि रामजी के अनुरोध को भरत ही कैसे टालेंगे । इस समय भक्त और भगवान् का सम्मिलन हो रहा है । यही पूजन का समय है । तुम लोग क्या सोच रहे हो ? तब देवताओं की जड़ता गयी और पुष्पवृष्टि तथा स्तुति करने लगे ।

दो. मिलि सप्रेम रिपुसूदनहि, केवटु भेंटेउ राम ।
भूरि भायँ भेंटे भरत, लछिमन करत प्रनाम ॥२४१॥

अर्थ : प्रेम के साथ शत्रुघ्न से मिलकर फिर रामजी केवट से मिले । लक्ष्मण को प्रणाम करते देखकर भरतजी बड़े प्रेम के साथ उनसे मिले ।

व्याख्या : भरतजी के बाद सरकार शत्रुघ्नजी से मिले । तत्पश्चात् केवट से मिले । जब सरकार भरतजी से मिल चुके तब लक्ष्मणजी को प्रणाम करने का अवसर मिला । भरतजी लक्ष्मण से बड़े प्रेम के साथ मिले । तब तक सरकार केवट से मिले । लक्ष्मणजी की भी वही दशा है जो भरतजी की थी । ये भी उठना नहीं चाहते । अतः भरतजी का मिलना कहते हैं ।

भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई । बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई ॥
पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे । अभिमत आसिष पाइ अनंदे ॥१॥

अर्थ : तब फिर लक्ष्मणजी उमगकर छोटे भाई से मिले । फिर निषाद को छाती से लगा लिया । फिर दोनों भाइयों ने मुनियों की वन्दना की और ईप्सित आशीर्वाद पाकर आनन्दित हुए ।

व्याख्या : भरतजी से छूटते ही लक्ष्मणजी शत्रुघ्नजी से लिपट गये । प्रणाम करने तक का अवसर नहीं दिया । इतनी उत्सुकता ललकि शब्द से द्योतित होती है । इधर रामजी केवट से मिल चुके तब से लक्ष्मणजी ने उसे हृदय से लगा लिया । जब तक रामजी और भरतजी का मिलन हुआ तब तक लोग स्तब्ध होकर खड़े

रहे। फिर रामजी का और केवट मिलन तथा भरत लक्ष्मण मिलन एक काल मे हुआ। तत्पश्चात् लक्ष्मणजी ने केवट को हृदय से लगाया।

यह मिलन वेदी के बाहर हुआ। अब वहाँ से वेदी के पास लौटे तो देखा कि मुनि मण्डली खडी प्रेम मिलन देख रही है। अत मुनिगण को दोनो भाई भरत शत्रुघ्न ने प्रणाम किया। भगवद्भक्तिरस्तु यही अभिमत आशीर्वाद है। इस आशीर्वाद से दोनो भाइयो को बडा आनन्द हुआ। क्योकि मुनियो का अशीर्वाद है। निष्फल नही जा सकता।

सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय पद पदुम परागा॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए। सिर कर कमल परसि बैठाए॥२॥

अर्थ फिर भरतजी छोटे भाई के साथ उमगकर सीताजी के चरणो की धूलि को माथे चढाकर बार बार प्रणाम करने लगे। सीताजी ने उनके मस्तक को अपने कर कमल से स्पर्श करके उन्हे उठाया और बिठला दिया।

व्याख्या सरकार तो दौड पडे। लक्ष्मणजी भी साथ ही गये। पर सीताजी जहाँ की तहाँ रह गयी। अत वहाँ पहुँचने पर भरतजी ने पग धूलि ली। भगवती की चरण धूलि कही नही मिली थी। केवल कनकबिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीयसम लेखे। सरकार की चरण धूलि अपेक्षाकृत सुलभ है। पर भगवती की चरण धूलि महा दुर्लभ है। स्त्रियो के चरण स्पर्श का अधिकार भारतवर्ष मे अतिविरल है।

भगवती को बारम्बार भरतजी प्रणाम कर रहे है। क्योकि इनके अनुग्रह पर सरकार का अनुग्रह अवलम्बित है जब से यह भाव देश से उठ गया तब से घर मे फूट होने लगी। भगवती ने हाथ के इशारे से उठाया। सिर का स्पर्श कर कमल से किया। यह सौभाग्य भरतजी का ही हुआ।

सीयँ असीस दीन्ह मन माही। मगन सनेह देह सुधि नाही॥
सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच डर अपडर बीता॥३॥

अर्थ सीताजी ने मन ही मन मे आशीर्वाद दिया। वे स्नेह मे मग्न थी। उन्हे देह की सुधबुध नही थी। सब प्रकार से सीताजी को सानुकूल देखकर भरतजी सोच रहित हो गये। निर्मूल भय जाता रहा।

व्याख्या सीताजी आशीर्वाद देना चाहती हैं। परन्तु स्नेहाधिक्य से वाणी काम नही कर रही है। अत मन मे ही आशीर्वाद दिया। दोनो भाई परम प्रेम म पूर्ण थे। भगवती भी परम प्रेम मे पूर्ण हैं। इन्हे भी देह की सुधि नही है। भरतजी ने लख लिया। सिर के कर कमल द्वारा स्पर्श से जान लिया कि सीताजी सभी प्रकार से सानुकूल हैं। भरतजी को भरोसा भी ऐसा ही था। अवध की सभा मे कहा भी था : परिहरि रामुसीय जगमाँही। कोउ नहिं कहिहि मोर मत नाँही। फिर भी मन मे डर होता था कि कदाचित् दु खी हो। क्योकि दु खी होने के लिए

यथेष्ट कारण है। सो अब मालूम हुआ कि वह डर निर्मूल था। माता की पूरी प्रसन्नता है।

कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूँछा। प्रेम भरा मन निज गति छूँछा॥
तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि॥४॥

अर्थ : उस समय न किसी ने कुछ कहा न किसी ने कुछ पूछा। मन प्रेम से भर गया था। अतः अपनी स्वाभाविक गति से रीता था। उस अवसर केवट ने धैर्य धारण करके प्रणाम पूर्वक करबद्ध प्रार्थना की।

व्याख्या : इतने दिन के बाद भेंट हो रही है। कुशल मङ्गल पूछना चाहिए। परिस्थिति मे इतना बडा परिवर्तन हुआ है कि उस विषय की चर्चा होना प्राप्त है। सो कोई कुछ बोलता नही। सब व्यवहार का कारण मन की हलचल है। सो मन में प्रेम भरा है। अतः वह स्थिर हो रहा है। फिर पूछने या कहने की प्रक्रिया हो तो कैसे हो। बड़ी सावधानी रक्खी गयी है कि चक्रवर्तीजी के देहावसान का समाचार रामजी को गुरुजी के अनुपस्थिति मे न लगने पावे। नही तो उन्हे सँभालेगा कौन?

केवट ने धैर्य धारण किया। डूबती हुई नाव के समय धैर्य धारण करने का उसे अभ्यास है। कुशल कुछ कहने लायक नही। अयोध्या का हाल गुरुजी के मुख से ही कहा जाना चाहिए। किसे साहस है कि चक्रवर्तीजी का मरण सुनाये और किसे सामर्थ्य है कि रामजी को उस समय सँभाले। अतः पहिले इनकी भेंट गुरुजी से होनी चाहिए। अतः प्रणाम करके विनय करता है।

दो. नाथ साथ मुनिनाथ के, मातु सकल पुर लोग।
सेवक सेनप सचिव सब, आए बिकल बियोग॥२४२॥

अर्थ : हे नाथ! मुनिनाथ के साथ सब माताएँ, नगर निवासी, सेवक, सैनिक और मन्त्री सब लोग वियोग से व्याकुल आये हैं।

व्याख्या : निषादराज का भाव यह कि भरतजी तो सानुज मेरे साथ चले आये। उधर गुरुजी के साथ माताएँ और सब प्रजा है। इतना ही नही मन्त्री लोग सेनापति लोग आये हैं। कारण यह है कि सब सरकार के वियोग से विकल हैं। यथा : सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी। इस तरह से निषादराज कह रहे है। जिसमे चक्रवर्तीजी के विषय मे प्रश्न ही न उठे। समझ लें कि महाराज वहाँ हैं ही। सबके आने मे कोई हानि नही।

सीलसिंधु सुनि गुर आगवनू। सिय समीप राखे रिपुदमनू॥
चले सबेग रामु तेहि काला। धीर धरम धुर दीनदयाला॥१॥

अर्थ : शीलसिन्धु रामजी ने गुरुजी का आगमन सुनकर सीताजी के पास शत्रुघ्नजी को रक्खा। धैर्य और धर्म के धुरन्धर दीनदयालु उस समय वेग से चले।

व्याख्या : सदाचार के समुद्र हैं। जिस गुरुजी के कहने से पिता वचन त्याग सकते हैं यथा : अवसि फिरिहि गुरु आयसु मानी : उस गुरुजी का आगमन सुनकर क्षण भर भी नही ठहर सकते। निपादराज ने तो माताओ का भी आगमन कहा। पर सबसे अधिक प्रभाव रामजी पर गुरु के आगमन का पडा। सीताजी को साथ ले जाने से फिर वही ठहरना पडेगा और यहाँ ठहरना ठीक नही। अतः सीताजी की रक्षा के लिए शत्रुघ्नजी को छोड दिया। लक्ष्मणजी का भी जाना प्राप्त था। कुलवधू अरक्षित किसी भाँति नही छोड़ी जा सकती।

सरकार मत्तमजु कुजर वर गामी हैं। पर उस समय वेग से चले। गुरुजी के अगवानी की त्वरा है। इस भाँति और किसी स्थान पर चलना नही पाया जाता। गुरुजी घर पर आये तो वहाँ भी सरकार ने अगवानी किया। गुरु आगमन सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायेउ माथा। यहाँ तो गुरुजी अयोध्या से चलकर आ रहे हैं। अतः अधिक आगे होकर लेना चाहिए। धीर हैं। पण्डित हैं। धर्म के धुरा के वहन करनेवाले हैं। दीनो के ऊपर दया करनेवाले हैं। बडो का सम्मान करेंगे। वियोग से विकल लोगो की आर्त्ति का हरण करेंगे।

गुरहिं देखि सानुज अनुरागे। दंड प्रनाम करन प्रभु लागे॥
मुनिवर धाइ लिए उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई॥२॥

अर्थ : गुरुजी को देखकर भाई के साथ अनुराग मे आगये। प्रभु दण्ड प्रणाम करने लगे। मुनिवर ने दौडकर उन्हे छाती से लगा लिया और प्रेम मे उमगकर दोनो भाइयो से मिले।

व्याख्या : सरकार का आना सुनकर गुरुजी को आगे करके मिलने के लिए सब लोग इकट्ठे हो गये। जहाँ से गुरुजी पर दृष्टि पडी वही से सरकार ने दण्ड प्रणाम साष्टाङ्ग दण्डवत् आरम्भ किया। क्योकि गुरुजी के चरणो मे अटूट प्रेम है।

सरकार को साष्टाङ्ग करते हुए आते देखकर गुरुजी दौड पडे कि अब एक दण्डवत् भी अधिक न हो। गुरुजी प्रेम से उमगकर दोनो भाइयो से मिले। भावार्थ यह कि दोनो भाई साष्टाङ्ग प्रणाम करते आ रहे थे।

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि ते दंड प्रनामू॥
राम सखा रिषि बरबस भेंटा। जिमि महि लुठत सनेह समेटा॥३॥

अर्थ : फिर केवट ने प्रेम से पुलकित हो अपना नाम कहकर दूर से प्रणाम किया। ऋषिजी राम सखा से जबरदस्ती मिले। मानो जमीन पर गिरते हुए घी प्रेम को समेट लिया।

व्याख्या : सरकार के साथ आया है और तदीय हैं। सरकार दण्डवत् करते हैं तो निपादराज भी दण्डवत् करता है। गुरुजी को देखता है कि प्रेम के उमंग मे हैं कही मुझे छू न लें। अत दूर से दण्डवत् करता है। अपना नाम कहता है। यह

नियम हाथ लगा कि अत्यन्त प्रेम मे स्पृश्यास्पृश्य का विचार आर्यसन्तान न करे और अस्पृश्य जाति उनको धर्मरक्षा के लिए स्वय दूर रहे।

मुनिजो ने केवट को नही भेंटा रामसखा को भेंटा। रामसखित्व के सामने जाति का विचार कुछ नही। वह मिलना नही चाहता था। ऋषिजी जबरदस्ती मिले। घी का घडा तो लुढकना चाहता है पर सावधान पुरुष गिरते हुए घी को समेट लेता है गिरने नही देता। इसी भाँति मुनिजो स्नेह · प्रेम का पृथ्वी पर लुढकना न देख सके। निषादराज के मिलने मे मुनिजी ने बल और त्वरा दोनो से काम लिया। यहाँ स्नेह शब्द मे श्लेष है। स्नेह प्रेम घी तेल आदि का वाचक है।

रघुपति भगति सुमगल मूला। नभ सराहि सुर बरसहि फूला॥
एहि सम निपट नीच कोउ नाँही। बड बसिष्ठ सम को जग माँही॥४॥

अर्थ . आकाश मे देवता लोग रघुपति भक्ति सुमगल मूल है। ऐसी प्रशसा करके फूल की वर्षा कर रहे हैं। कहते हैं इसके ऐसा एक बारगी नीच कोई नही और वसिष्ठ से बडा ससार में कौन है?

व्याख्या : सकल सुमगल मूल जग रघुबर चरन सनेह। इस स्नेह को प्रारब्ध के मिटाने की शक्ति है। भक्ति ने इसे शुद्ध बना दिया। भक्ति की स्तुति देवता कर रहे हैं और पुष्पवृष्टि द्वारा गुणो का पूजन कर रहे है।

देवता लोग आश्चर्य कर रहे है कि निषाद अत्यन्त नीच जाति है और वसिष्ठजी से बडा कोई नही है जिन्हे रामजी के गुरु होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इन्होने ही विश्वामित्र को क्षत्रिय से ब्राह्मण बनाया। अत जो वसिष्ठजी करें वही प्रमाण है। वसिष्ठजी ने इसे स्पृश्य बना लिया। रामजी के मिलने पर देवताओ ने आश्चर्य नही किया। क्योकि ये तो सदा सर्वमत सर्वहित हैं। सभी से मिले मिलाये है। वसिष्ठजी के मिलने पर बडा आश्चर्य है। क्योकि ये तो कर्मकाण्डी हैं। इन्होने कर्मकाण्ड का अवहेलन कैसे किया।

दो जेहि लखि लखनहु ते अधिक, मिले मुदित मुनिराउ।
सो सीतापति भजन को, प्रकट प्रताप प्रभाउ॥२४३॥

अर्थ जिसे देखकर मुनिराज लक्ष्मणजी से भी अधिक आनन्दित होकर मिले। यह सब सीतापति के भजन का प्रत्यक्ष प्रभाव है।

व्याख्या वसिष्ठजी लक्ष्मणजी से भी अधिक आनन्दित होकर निषादराज से मिले। स्वय मुनिनाथ हैं। लक्ष्मणजी मिलना चाहते थे और यह नही चाहता था। अत मुनिजी को बलपूर्वक मिलना पडा। भजन सत्कार विशेष के पाने की इच्छा से नही किया जाता। पर भजन का प्रभाव ऐसा है कि भक्त का जगत् सत्कार करता है। उसमे भी उद्भवस्थिति सहारकारिणी, क्लेशहारिणी, सर्वश्रेयस्करी सीता के वल्लभ के भजन का प्रभाव क्यो न सकल सुमङ्गल मूल हो।

आरत लोग राम सबु जाना। करुनाकर सुजान भगवाना ॥
जो जेहि भायँ रहा अभिलाखी। तेहि तेहि कै तसि तसि रुचि राखी ॥१॥

अर्थ करुणा की खानि तथा सुजान भगवान् ने सब लोगो को जाना कि आर्त हो रहे हैं। जो जिस भाव का अभिलाषी रहा उसकी वैसी ही रुचि रक्खी।

व्याख्या शत्रुघ्नजी से मिलने के बाद और लोगो से मिलने की बारी है और सब लोग मिलने के लिए उत्सुक हैं। सब लोग अपने हृदय मे अपना पृथक् पृथक् मनोरथ लिये है कि मैं इस भाँति मिलूँगा। भगवान् सुजान है। यथा को जियके रघुबर बिनु बूझा। करुणाकर हैं। सबको देख रहे हैं कि मिलने के लिए आर्त हैं। अत जिसे जिस भाव से जिसकी मिलने की अभिलाषा थी उससे उसी भाव से मिले। किसी की रुचि म भेद न पडने पाया। मिलने मे सबकी रुचि रखते हैं। कोई कृपा कटाक्ष के भूखे थे। कोई चरणरज चाहते थे। कोई गल लगाना चाहते थे। कोई अपने सिर पर सरकार का हाथ चाहते थे। कोई वचनामृत सुनना चाहते थे। सो सबकी अभिलाषा पूर्ण की।

सानुज मिलि पल महु सब काहू। कीन्ह दूरि दुख दारुन दाहू ॥
यह बडि बात राम कै नाही। जिमि घट कोटि एक रबि छाँही ॥२॥

अर्थ एक पल मे भाई के सहित सबसे मिलकर दु ख और दारुण दाह को दूर किया। *रामजी के लिए यह बडी बात नही है। जैसे करोडो घडा मे एक सूर्य* की छाया पडती है।

व्याख्या यह भगवान् का ऐश्वर्य है कि एक पल म सबसे भाई के साथ मिले। अमित रूप प्रकटे तेहि काला। सो नही हुआ। सरकार उसी रूप से लक्ष्मणजी के साथ सबसे मिले। एहि दुख दाह दहै दिन छाती। सो दाह कार्य और दु ख कारण है। मानसिक दु ख दाह का कारण होता है। सो कारण के साथ कार्य को दूर किया।

अब उदाहरण देते हैं कि जैसे भगवान् सूर्य एक ही हैं पर प्रतिबिम्ब द्वारा करोडो घट से एक साथ मिलते हैं। उसी भाँति अपनी अघटित घटना पटीयसी माया द्वारा सबसे मिले।

मिलि केवटहि उमगि अनुरागा। पुरजन सकल सराहहि भागा ॥
देखी राम दुखित महतारी। जनु सुबेलि अवली हिम मारी ॥३॥

अर्थ सब पुरजन अनुराग से उमगकर केवट से मिलकर भाग्य की सराहना करते हैं। रामजी ने माताओ को दु खी देखा। जैसे सुन्दर लता की श्रेणी को पाला मार दिया हो।

व्याख्या सरकार से मिलकर सब केवट से मिलते हैं। गुरुजी का अनुमरण करते हैं। यद्यदाचरति श्रेष्ठ तत्तदेवेतरो जन । स यत् प्रमाण कुरुते लोकस्तदनु-

वर्तते। वास्तविक गुण पूजा के सामने जाति पर ध्यान नहीं दिया जाता। अपने भाग्य की प्रशंसा करते हैं। अथवा केवट के भाग्य की प्रशंसा करते हैं। केवट को सरकार का साथी मानते हैं। यह अयोध्यावासी नहीं है। वनवासी है।

देखी सासु आन अनुहारी। यह भाग सीताजी के स्वप्न का ठीक हो रहा है। कौसल्याजी को भरत ने देखा कनक कलप बर बेलि जनु मानहु हनी तुषार। यही अवस्था सब माताओं की रामजी देख रहे हैं। मानो सुनहली कल्पवल्ली को पाला मार दिया हो। पाला मारते ही बेली झुलस जाती है। सरकार सबसे मिलकर तब माताओं से मिल रहे हैं।

प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभायँ भगति मति भेई ॥
पग पर कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी ॥४॥

अर्थ पहिले रामजी कैकेयी से मिले। सरल स्वभाव के साथ और बुद्धि उनकी भक्तिरस से भीगी हुई थी। चरणों पर गिरकर फिर समझाया और दोष का कालकर्म और विधि के सिर पर रक्खा।

व्याख्या सरकार का यह हाल है कहैं मोहि मैया कहौ मैं न मैया भरत की बलैया लैहौं भैया तेरी मैया कैकेयी है। सरल सुभाय रघुराय तेहि मातु मानी काय मन बानी हूँ न जानी कै मतेई है। अत पहिले कैकेयी से सरल स्वभाव तथा भक्ति भरे हुए मिले।

कैकेयी रोने लगी। अत चरणों को पकडकर समझाया। भरद्वाजजी ने केवल विधि को दोष दिया था। सरकार ने काल कर्म और विधि को दोष दिया। इन्ही को कर्म फल प्राप्ति का कारण कहा।

जननी जनि होय दुखी जिय मे करनी बिधि की कछू जात न जानी।
सब नाचत कर्म की डोर बँधे अस कोइ नही अपने बस प्रानी॥
मतिहू तसि होत समय जस होत बृथा मन मे नर मानत ग्लानी।
सपनो सो सबै अपनो न कछु जिय जानि के हानि न मानत ज्ञानी॥

दो० भेंटी रघुबर मातु सब, करि प्रबोधु परितोषु।
अबु ईस आधीन जगु, काहु न देइअ दोषु ॥२४४॥

अर्थ फिर रामजी प्रबोध और परितोष करके सब माताओं से मिले। बोले हे अम्ब! यह जगत् ईश के अधीन है। किसी को दोष नहीं देना चाहिए।

व्याख्या तत्पश्चात् सब माताओं से मिले। यहाँ स्पष्ट है कि तीनों पट्टमहिषियों के अतिरिक्त जो माताएँ थीं उनसे मिले। सबकी वही दशा है। अत सबको समझाना बुझाना और परितुष्ट करना पडा। उन लोगों ने कैकेयी को दोष दिया। अत सरकार कहते हैं कि संसार ईश्वर के अधीन नटमर्कट की भाँति नाचता है। परतन्त्र को क्या दोष है? वह तो प्रेरक की प्रेरणानुसार आचरण करता है। अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते। अत किसी को दोष नहीं देना चाहिए।

गुरतिअ पद बंदे दुहुँ भाई। सहित विप्रतिय जे संग आई ॥
गंग गौरि सम बस सनमानी। देहिं असीस मुदित मृदु बानी ॥१॥

अर्थ : गुरुजी की स्त्री की दोनो भाइयो ने वन्दना की और जो ब्राह्मण की स्त्रियाँ उनके साथ आयी थी उन सबका गङ्गा और गौरी के समान सम्मान किया और वे प्रसन्न होकर मृदु वाणी से आशीर्वाद देने लगी।

व्याख्या : अरुन्धती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढि चले प्रथम मुनिराऊ। सो भगवती अरुन्धती भी आयी हुई हैं। वे भी रनिवास के साथ हैं। अतः उनके चरणो की भी दोनो भाइयो ने वन्दना की। इनसे मिलना नही कहते। केवल चरण वन्दना का अधिकार है। वसिष्ठजी के साथ ब्राह्मण लोग थे। भगवती अरुन्धती के साथ ब्राह्मणियाँ थी। ब्रह्मकुल शङ्कर रूप हैं। शङ्कर की दो शक्तियाँ उमा और गगा। अत. उनका सम्मान गगा और गौरी के समान किया। ब्राह्मणियो के सम्मान मे मनुष्य बुद्धि ही नही। सभी मङ्गल कार्य मे गगा और गौरी का पूजन किया जाता है। [1]आरम्भ मे गौरी का और अन्त मे गगाजी का। सम्मान करने से वे प्रसन्न हो गयी। मृदुवाणी मे आशीर्वाद देने लगी।

गहि पद लगे सुमित्रा अंका। जनु भेटी संपति अति रंका ॥
पुनि जननी चरनन दोउ भ्राता। परे प्रेम ब्याकुल सब गाता ॥२॥

अर्थ : सुमित्राजी के पावो पडकर उनके गोद मे ऐसे लिपटे जैसे अति दरिद्र को सम्पत्ति मिले। तत्पश्चात् माँ के चरणो मे दोनो भाई गिरे। प्रेम से उनके अग शिथिल थे।

व्याख्या : चरण पकडने के बाद दोनो भाई सुमित्राजी के गोद मे लिपट गये। छोडना नही चाहते। जैसे सम्पत्ति पाने पर दरिद्र उससे लिपट जाता है। अलग होना चाहता ही नही। सुमित्राजी का सिद्धान्त है : सकल सुकृत कर बड फल एहू। सीय रामपद कमल सनेहू। अतः सरकार भी उन्हे उसी भाँति चाहते हैं।

तत्पश्चात् माँ कौसल्या के चरणो मे गिरे। प्रेम से अपने को सँभाल नही सक रहे हैं। अत. प्रेम से सब शरीर व्याकुल है। अति मात्रा होने से प्रेम मे और सुख मे भी व्याकुलता होती है।

अति अनुराग अंब उर लाए। नयन सनेह सलिल अन्हवाए ॥
तेहि अवसर कर हरख बिपादू। किमि कबि कहइ मूक जिमि स्वादू ॥३॥

अर्थ : अत्यन्त प्रेम से माँ ने हृदय से लगा लिया। प्रेम के आँसू से नहला

---

१. गनपति गौरि गिरीस मनाई। चले राम तथा : तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ।

दिया। उस समय के हर्ष विषाद को कवि कैसे कहे। जैसे गूँगा स्वाद का वर्णन कैसे करे।

व्याख्या : माँ ने कहा था : सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जिअत बदन बिधु जोइहि। सो वह घड़ी आगयी। अति अनुराग से प्रेमाम्बु प्रवाह बह चला। हृदय मे लगाये हुए है आँखों से आँसू बह रहा है। वह सरकार के ऊपर पड़ रहा है। दोनो भाई भीग गये।

हर्ष मिलने का और विषाद बनवास का। उस समय हर्ष भी अत्यन्त हुआ। साथ ही साथ विषाद भी कम नही है। उसे कवि अनुभव करता है। पर कह नही सकता। स्वाद का कहना अशक्य है। गुड़ चीनी शहद मिश्री का अन्तर कोई कह नही सकता। अनुभव सब करते हैं। सो मूक तो बोलने मे ही असमर्थ है। वह स्वाद का वर्णन क्या कर सकता है। कवि हर्ष विषाद के संमिश्रण का कैसे वर्णन करें।

मिलि जननिहि सानुज रघुराऊ। गुरसन कहेउ कि धारिअ पाऊ॥
पुरजन पाइ मुनीस नियोगू। जल थल तकि उतरेउ लोगू॥४॥

अर्थ : भाई के सहित रामजी माँ से मिलने के बाद गुरुजी से कहा कि पधारिये। तब नगर के लोग मुनिजी की आज्ञा पाकर जलयुक्त थल देखकर उतरने लगे।

व्याख्या : उदासीन रूप से रहने का [1]वचन है। इसलिए सरकार प्रजावर्ग के साथ रहना नही चाहते। केवल गुरुजी से चलने को कहते हैं। माता के मिलन से मिलन की पूर्णाहुति। किसे ठहरने को कहे। किसे साथ चलने को कहे। इस असामञ्जस्य मे केवल गुरुजी से कहा। गुरुजी जैसा उचित समझें करें।

गुरुजी ने चलने के पहिले सबको वहीं ठहरने की आज्ञा दी। लोग जलाशय देख देखकर वहाँ ठहर गये। भरतजी के कहने से लोग नदी के किनारे ठहर गये थे। मालूम नही कहाँ निवास करना होगा। अब मालूम हुआ कि यही ठहरना है। अत. जल थल देखना पडा। नदी के किनारे धूप रहती है। अत. छाया और जल दोनो का सुभीता देखकर लोग उतरे।

दो. महिसुर मंत्री मातु गुर, गने लोग लिए साथ।
पावन आश्रम गवनु किय, भरत लखन रघुनाथ॥२४५॥

अर्थ : ब्राह्मण, मन्त्री, माताएँ और गुरु तथा गिने हुए लोगों को साथ मे लिया और भरत लक्ष्मण तथा रामजी पावन आश्रम को गये।

व्याख्या : गुरुजी ने अपने साथ ब्राह्मण, मन्त्री, और माताओ को लिया। कवि भी पद मैत्री से काम लेकर बार बार मकार का प्रयोग करते हैं महिसुर,

---

१. यथा : तापस बेष बिसेष उदासी।

मन्त्री और मातु और कम से कम लोग उनकी सेवा के लिए साथ मे लिया और आश्रम की ओर चले। शत्रुघ्नजी पहिले से वही हैं। इसलिए भरत, लखन और रघुनाथजी का चलना कहते हैं। गिने हुए लोग को साथ में लेने का भाव यह कि अनगिनती लोगो को वहाँ छोडा। अथवा साथ मे लेनेवालो को गिन लिया कि इनसे एक भी अधिक जाने न पावें।

सीय आइ मुनिवर पग लागी। उचित असीस लही मन मागी॥
गुरुपतिनिहि मुनि तियन्ह समेता। मिली पेमु कहि जाइ न जेता॥१॥

अर्थ : सीताजी आकर वसिष्ठजी के पावो पडी। मन माँगी हुई उचित आशीष प्राप्त हुई। तत्पश्चात् गुरुजी की स्त्री तथा मुनियो की स्त्रियो से मिलीं। वह प्रेम कहा नही जाता।

व्याख्या · गुरुजी को आया हुआ देखकर भगवती स्वय प्रणाम करने गयी। गुरुजी ने सावित्री भव ऐसा आशीर्वाद दिया। कुल वधुओ के लिए यही उचित आशीर्वाद है और यही सीताजी को ईप्सित था। सीताजी ने चाहा था कि गुरुजी से यही आशीर्वाद मिले और वही मिला। महिसुर मन्त्री और माताएँ गिने गिनाये लोग ही थे। अत सीताजी अकेले उस समाज मे चली गयी।

तत्पश्चात् अरुन्धतीजी के पास गयी। उनके साथ मुनिपत्नियाँ थी। उन लोगो से सीताजी जाकर मिली। उनसे मिलने मे अकथनीय प्रेम था। सीताजी ठीक क्रम के अनुसार मिल रही हैं। सरकार ने व्युत्क्रम कर दिया। माताओ को अति दु खो देखकर गुरुतिय वन्दन के पहिले ही उनसे मिल। यथा देखी राम दुखित महतारी। जनु सुबेलि अवली हिम मारी। प्रथम राम भेटी कैकेई।

बदि बदि पग सिय सबही के। आसिर बचन लहे प्रिय जी के॥
सासु सकल जब सीय निहारी। मूँदे नयन सहमि सुकुमारी॥२॥

अर्थ : सीताजी ने सभी के चरणो मे प्रणाम करके अपने जी के प्यारे आशीर्वाद पाये। सासुओ को जब सीताजी ने देखा तो सुकुमारी ने सहमकर आँखें बन्द कर ली।

व्याख्या : जितनी मुनि की स्त्रियाँ आयी थी सरकार ने सबका गङ्गा गौरी सा सम्मान किया। दूर से पूजन किया। भगवती पहिले सबसे मिली। तत्पश्चात् सबके चरणो की वन्दना की। उन लोगो ने भी जो हृदय को प्रिय रहा वही आशीर्वाद दिया। स्त्रियो मे तो एक ही आशीर्वाद सौभाग्य विषयक प्रचलित है।

सरकार ने माताओ को देखा। जनु सुबेलि अवली हिम मारी। परन्तु भगवती सुकुमारता के कारण देख न सकीं। भय से आँख मूंद ली। इतना बडा परिवर्तन माताओं मे हुआ है कि जो सीताजी निर्भीक वन मे गयी वे ही सासो की यह दशा देख न सकी।

परी बधिक बस मनहु मराली । काह कीन्ह करतार कुचाली ॥
तिन्ह सिय निरखि निपट दुखु पावा । सो सब सहिअ जो दैउ सहावा ॥३

अर्थ . मानों हंसिनियाँ बधिक के वश मे पडी हुई हैं । सोचने लगी : कत ने यह क्या कुचाल किया । उन्होने सीताजी को देखकर अत्यन्त ही दु ख पाय कहने लगी : जो दैव सहावें वह सहना ही है ।

व्याख्या . मानस सलिल सुधा प्रतिपाली । जिअइ कि लवन पयोधि मरार्ल सो मराली बधिक के वश पडी है । मानो आसन्न मृत्यु सी हैं । अति विकल है ब्रह्मदेव को दूषण देती हैं । जैसा सपना मे देखा था : देखी सासु आन अनुहारी । व दशा सासो की है । सरकार को माताएँ : जनु सुबेलि अबली हिम मारी : दिखा पड़ती है । क्योकि वे भी इनको सुबेलि की दृष्टि से देखती थी । यथा : मुदित म सब सखी सहेली । फलित बिलोकि मनोरथ बेली । और माता भगवती को मरार रूप से देखती थी । यथा जिअइ कि लवन पयोधि मराली । अतः उन्होने सास व मराली रूप देखा ।

सास ने सीताजी को आँख की पुतली की भाँति माना था । यथा : नय पुतरि करि प्रीति बढाई । राखेउ प्रान जानकिहि लाई । सो जानकी को तापस वे मे देखकर अत्यन्त दु खी हुईं और सब दु ख तो सहा अब यह भी सहना पडा कि पुत्रवधू तापस वेप मे है । सोचती हैं कि यह पूर्वजन्म के कर्म का फल है । पूर्वजन कृत कर्म तद्दैवमिति कथ्यते । इससे सहना ही पडेगा ।

जनक सुता तब उर धरि धीरा । नील नलिन लोयन भरि नीरा ॥
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई । तेहि अवसर करुना महि छाई ॥४।

अर्थ · तब राजा जनक की बेटी सीताजी ने हृदय मे धैर्य धारण करवे और नीले कमल से नेत्रों मे आँसू भरकर सब सासो से जाकर मिली । उस अवसर पर करुणा पृथ्वी पर छा गयी ।

व्याख्या : सीताजी महाराज जनक की बेटी हैं । तुरन्त धैर्य धारण किया *पर आँखो मे आँसू भर गये । भगवती की आँखो मे कज्जल है ।* इसलिए नीले कमल की उपमा कवि दे रहे हैं ।

जानकी प्रत्येक सास के पास जा जाकर मिली । उस समय करुण रस का ऐसा प्रवाह् बहा कि सम्पूर्ण पृथ्वी पर छा गया । छाई का भाव यह कि सब पर असर पडा । कोई बाकी न रहा ।

दो लागि लागि पग सबनि सिय, भेंटति अति अनुराग ।
हृदय असीसहि प्रेम बस, रहिअहु भरी सोहाग ॥२४६॥

अर्थ : सीताजी सबके पावो पर पड पड़कर अति प्रेम से मिलने लगी । वे लोग प्रेमवश हृदय से आशीर्वाद दे रही हैं कि सदा सौभाग्यवती रहोगी ।

व्याख्या : लडकियाँ माताओ से मिलती है। पर सास का चरण पकड़ती हैं। ऋषि पत्नियों मे माता की दृष्टि थी। अत' पहिले उनसे मिली। पूज्य होने के कारण प्रणाम पीछे किया। परन्तु रानियाँ तो सब सास हैं। अतः प्रणाम पहिले किया। पीछे से अति प्रेम के कारण मिली। सब का कण्ठ गद्गद है। जी भरा है। बोल नही सकती। अतः मन ही मन आशीर्वाद देती हैं। पति के जीवित रहने को सोहाग कहते हैं। तथा पति के प्रेम को भी सोहाग कहते हैं।

विकल सनेह सीय सब रानी। बैठन सबहि कहेउ गुर ग्यानी॥
कहि जग गति मायिक मुनिनाथा। कहे कछुक परमारथ गाथा॥१॥

अर्थ : सीताजी तथा सब रानियाँ स्नेह से व्याकुल हो रही थी। तब ज्ञानी गुरुजी ने सबको बैठने के लिए कहा। फिर मुनिनाथ ने जगत् की मायिक गति कहकर कुछ परमार्थ की गाथा कही।

व्याख्या : गुरुजी ज्ञानी हैं। अतः विकल नही हैं। यथा : सोक निवारेउ सबहि कर निज विज्ञान प्रकास। देखा कि सारा समाज विकल है। किसी को बैठने की सुधि नही है और अब महाराज चक्रवर्तीजी के स्वर्गारोहण का समाचार छिप नही सकता। अतः यही समय है कि रामजी को महाराज दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनाया जाय। इस समाचार के सुनाने मे पाण्डित्य है। रामजी को सँभालना है। यह अपने विरह मे महाराज का मरण सुनकर अति विकल होंगे। इसी से प्रयत्न पूर्वक इस समय तक इनसे चक्रवर्तीजी के मरण का समाचार छिपाया गया था। समाचार सुनाने के पहिले रामजी को उसके सुनाने के लिए तैयार करना है। अतः अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करने के लिए गुरुजी की आज्ञा हुई कि सब लोग बैठ जायँ। सब लोग जहाँ के तहाँ बैठ गये।

तब मुनियो के नाथ हैं इन्होंने जगत् की गति का मायिक होना वर्णन किया कि यह जगत् क्षणभंगुर है। यहाँ सब कुछ परिवर्तनशील है। यहाँ जो पैदा हुआ है वह अवश्य मरेगा। यहाँ सब कुछ मृत्यु के मुख मे है और व्यवहार स्थिर को भाँति है। यहाँ न कोई किसी का पिता है न कोई किसी का पुत्र है। कोई किसी का कुछ नही है। जैसे नदी मे बहते हुए काठ कुछ देर के लिए इकट्ठे हो जाते हैं और उसी नदी के वेग से फिर अलग अलग हो जाते हैं। इसी भाँति यहाँ पुत्र पिता स्त्री पति आदि का मिलना है। सब प्रकार से विछोह ही सिद्ध है और कुछ परमार्थ की गाथा कही। यथा : इस नश्वर ससार से चित्त हटाकर इसे स्वप्न समझकर उस सत्य वस्तु मे ही चित्त स्थिर करना चाहिए। जिसमें इस विश्व की उत्पत्ति स्थिति और लय होता है। जिसके प्रकाश से सृष्टि प्रकाशित होती है। जो आनन्द तथा प्रकाश रूप शान्त सनातन है। यह द्वैत अन्धकार है। उसका परित्याग करके उस परम भूतेश्वर का सहारा लेना चाहिए। तभी यह संसाररूपी महा बन्धन से मनुष्य छूट सकता है। इस भाँति ज्ञान की भूमिका तैयार करके तब :

नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा । सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा ॥
मरन हेत निज नेहु बिचारी । भे अति बिकल धीर धुरधारी ॥२॥

अर्थ राजा की स्वर्गयात्रा सुनायी । सुनकर रामजी को दु सह दु ख हुआ । मरने का कारण अपना स्नेह समझकर धीर धुरन्धर अत्यन्त व्याकुल हुए ।

व्याख्या वसिष्ठजी ने राजा दशरथ के स्वर्गारोहण का समाचार कहा कि तुम्हारे वियोग ' चक्रवर्तीजी ने शरीर परित्याग किया । इतनी भूमिका करने पर भी इस समाचार से सरकार को ऐसा दु ख हुआ कि सह न सके । दु ख के न सहे जाने पर जो मनुष्य की दशा होती है वह दशा रामजी की हुई । यद्यपि रामजी स्वभाव से धीर धुरन्धर थे । पर यह विचारकर कि मेरे प्रेम से ही महाराज की मृत्यु हुई अत्यन्त भारी विकलता रामजी को हुई । इसी विकलता को सोचकर सबने यही निश्चय किया था कि गुरुजी ही यह समाचार कहे ।

कुलिस कठोर सुनत कटु बानी । बिलपत लखन सीय सब रानी ॥
सोक बिकल अति सकल समाजू । मानहुँ राज अकाजेउ आजू ॥३॥

अर्थ वज्र के समान कठोर कटु वाणी सुनकर लक्ष्मणजी सीताजी तथा सब रानियाँ विलाप करने लगी । सारा समाज अत्यन्त शोक से विकल हो गया । मानो आज ही राजा का देहान्त हुआ है ।

व्याख्या महाराज के स्वर्गारोहण की वाणी सुनने मे कुलिश कठोर और ग्रहण करने मे कटु थी । लक्ष्मणजी सीताजी तथा सब रानियाँ विलाप करने लगी । लक्ष्मण और सीताजी ने अभी सुना है । इसलिए पहिले उनका नाम देते हैं । सारा समाज इस भाँति शोक विकल हुआ मानो चक्रवर्तीजी का देहान्त आज ही हुआ । यथा सोक बिकल सब रोवहिं रानी । रूप सील बल तेज बखानी । करहिं बिलाप अनेक प्रकारा । परहिं भूमितल बारहि बारा । भयउ कोलाहल अवध अति सुनि नृप राउर सोर । बिपुल बिहग बन परेउ निसि मानहु कुलिस कठोर ।

मुनिवर बहुरि राम समुझाए । सहित समाज सुसरित नहाए ॥
ब्रत निरबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा । मुनिहु कहे जलु काहु न लीन्हा ॥४॥

अर्थ मुनिवर ने फिर रामजी को समझाया । समाज के सहित मन्दाकिनी मे स्नान किया । उस दिन सरकार ने निर्जल व्रत किया । मुनिजी के कहने पर भी किसी ने जल ग्रहण नहीं किया ।

व्याख्या गुरुजी ने पहिले भी समझाया था । ज्ञान की भूमिका समझाना ही था । सिवा गुरुजी के सरकार को समझावे कौन ? गुरुजी ने रामजी को समझाया । क्योंकि सबसे अधिक विकलता उन्ही को थी । उनके समझाने पर सब लोग समझ जायेंगे । यथा तुम सुजान सब जानि जनि सोच करिय मतिमान । जनम मरन बिछुरन मिलन हित अनहित अज्ञान । झूठो सकल सनेह जग स्वारथ ही को नेह ।

सकल सैल दिन चारि को बन्धु मातु पितु गेह। उठहु तात धीरज धरहु बिलपत सकल समाज। चह्यौ पुत्र जेहि हेतु नृप बेगि करौ सो आज।

पिता का मरण सुनते ही अशौच लगता है। अतः स्नान प्राप्त है। समाज सब शोक ग्रस्त है। अतः सभी अशुचि हैं। सो समाज के सहित सरकार ने मन्दाकिनी में स्नान किया। सरकार ने उस दिन निर्जल व्रत किया। सबने वैसा ही किया। प्रेमातिरेक से गुरुजी का भी वचन किसी ने नहीं माना। गुरुजी का कहना आज्ञा नहीं है। धर्मशास्त्र का निर्णय मात्र है। गुरुजी का कहना था कि व्रत रामजी करें तो कर सकते हैं। तुम लोगों को व्रत आवश्यक नहीं। कम से कम जल तो पी लो। पर किसी ने न पीया।

दो. भोरु भये रघुनंदनहि, जो मुनि आयसु दीन्ह।
श्रद्धा भगति समेत प्रभु, सो सबु सादरु कीन्ह ॥२४७॥

अर्थ : सवेरा होने पर मुनिजी ने जो आज्ञा दी उसे श्रद्धा भक्ति के साथ प्रभु ने बड़े आदर के साथ किया।

व्याख्या : ज्येष्ठ पुत्र होने से प्रिय होने से और्ध्वदैहिक क्रिया का अधिकार रामजी को ही था। उनकी अनुपस्थिति में भरतजी ने सब कुछ किया था। अत. फिर से पितृ क्रिया रामजी ने की। यहाँ मुनिजी की आज्ञा ही सब कुछ है। श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। गुरुवेदान्तवाक्येषु विश्वास. श्रद्धा।

करि पितु क्रिया वेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक तम तरनी ॥
जासु नाम पावक अघ तूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला ॥१॥

अर्थ : जैसा वेद ने वर्णन किया है। वैसी पिता की क्रिया करके पापरूपी अन्धकार के लिए सूर्यरूप रामजी पवित्र हुए। जिसका नाम पापरूपी रूई के लिए अग्नि है। जिसका स्मरण सब सुमङ्गल का मूल है।

व्याख्या : जहाँ सूर्य हैं। वहाँ अन्धकार की प्राप्ति नहीं है जहाँ रामजी हैं वहाँ पातक की प्राप्ति नहीं है। फिर भी उन्होंने जैसा वेद ने वर्णन किया है उस विधान से क्रिया की। रामजी सात्त्विक कर्ता हैं। शास्त्र की मर्यादा का यथार्थ पालन करते हैं। अतः लौकिक व्यवहार के अनुसार शुद्ध हुए। नहीं तो उन्हें अशुद्धि कहाँ? इसी बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि प्रभु स्वय पातकरूपी अन्धकार के लिए सूर्य हैं और उनका नाम पापरूपी रूई के लिए अग्नि है। सूर्य को अन्धकार के नाश में कोई आयास नहीं : उदय तासु त्रिभुवन तम भागा। अग्नि के एक कण को भी रूई के अपार राशि के नाश में कुछ अधिक आयास नहीं है। जिसकी उपाधि होने से नाम में इतनी सामर्थ्य है कि पापराशि का तो नाश करता ही है सम्पूर्ण मङ्गल का भी विधान करता है। दोषापनयन ही नहीं गुणाधान भी करता है।

सुद्ध सो भयउ साधु संमत अस। तीरथ आवाहन सुरसरि जस ॥
सुद्ध भएँ दुइ बासर बीते। बोले गुर सन राम पिरीते ॥२॥

अर्थ वे शुद्ध हुए ऐसी साधुओ की सम्मति है। जैसे गङ्गाजी मे तीर्थ का आवाहन। शुद्ध हुए दो दिन बीते तब रामजी ने प्रीति के साथ गुरुजी से कहा।

व्याख्या यह साधु सम्मत है कि स्वय राजा अपने बनाये हुए नियम से शासित हो। मनुष्यरूप धारण करने पर स्वय भगवान् वेद की मर्यादा का पालन करें। उसके विधान के अनुसार शुद्ध हो। जिस भाँति गङ्गाजी परम पावन हैं। सर्व तीर्थमयी हैं। उन्हे पवित्र करने के लिए किसी तीर्थ की आवश्यकता नही है। फिर भी गङ्गाजी मे अन्य तीर्थों का आवाहन किया जाता है। साधु सम्मत नियम है कि जिस जल मे स्नान करना हो उसमे तीर्थों का पहिले आवाहन करे। जिसमे वह पुनीत हो जाय। उसी नियमानुसार गङ्गा स्नान करनेवाले गङ्गाजल को पवित्र करने के लिए तीर्थों का आवाहन करते हैं। इस पवित्रीकरण का यह अर्थ नही है कि गङ्गाजल अशुद्ध था। मतलब शास्त्र मर्यादा रक्षण से है। इसी भाँति *क्रिया करने पर रामजी का शुद्ध होना है। ज्येष्ठ कृ १४ को रामजी सम्भवत* शुद्ध हुए।

शुद्ध होने के बाद दो दिन और बीते। अर्थात् एकादशाह की क्रिया भी समाप्त हो गयी। अब जाने के लिए कहना है। सो प्रधान से ही कहना चाहिए। सब लोग गुरुजी के साथ आये हैं। यही समाचार महाराज को लगा था। नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुरलोग। अत उन्ही से कहना है। जाने के लिए कहने मे प्रीति का हनन होता है। अत प्रीति के साथ बोले।

नाथ लोग सब निपट दुखारी। कद मूल फल अबु अहारी॥
सानुज भरत सचिव सब माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता॥३॥

अर्थ हे नाथ! सब लोग अत्यन्त दु खी हैं। कन्द मूल फल और पानी से गुजर कर रहे है। शत्रुघ्न के साथ भरत मन्त्री और सब माताओ को देखकर मुझे एक पल युग के समान बीत रहा है।

व्याख्या जाने के लिए कहना है। इसलिए रामजी पहिले रहने के दु ख की चर्चा करते है। कहते हैं कि इन लोगो का दु ख मुझसे सहा नही जाता। ये लोग सुर सदन सुख घर छोडकर आये हैं और यहाँ कोई सुख का साधन नही है। भूमि सयन बलकल बसन असन कद फल मूल। अत सब लोग अत्यन्त ही दु खी हैं। यह तो प्रजा का हाल हुआ। शत्रुघ्न के सहित भरत, मन्त्री और माता सबको दु खी मैं नही देख सकता। सरकार अपने दु ख से दु खी नही है। अपने प्रमियो के दु ख से दु खी हैं। कहते हैं कि मुझे एक पल युग की भाँति बीतता है। निष्कारण इतना कष्ट क्यो उठा रहे हैं। भावार्थ यह कि इन लोगो को क्षणभर भी यहाँ रहना ठीक नही। जितना जल्दी हो सके सब लोग जायँ।

सब समेत पुर धारिअ पाऊ। आपु इहाँ अमरावति राऊ॥
बहुत कहेउँ सबु कियेउँ ढिठाई। उचित होइ तस करिअ गोसाईं॥४॥

अर्थ : सबके साथ अयोध्या पधारिये। आप यहाँ हैं और महाराज इन्द्रपुर में हैं। मैंने बहुत कह डाला। यह मैंने ढिठाई की। जैसा उचित हो वैसा करिये।

व्याख्या : आप सबके साथ अयोध्या पधारिये। भाव यह कि अपने साथ भरत शत्रुघ्न मन्त्री माता तथा पुरलोग को भी लेते जाइये। आप ही के साथ ये लोग आये हैं। आप के बिना अयोध्या अनाथ होगी। यदि महाराज होते तो कोई हर्ज नही था। वे भी तो अमरावती को कूच कर गये। अब अयोध्या का रक्षक कोई इस समय नही है। भाव यह कि यहाँ वहाँ दोनो जगह लोग दुःखी हैं।

आपको स्वयं सबकी चिन्ता है। मेरा इतना कह जाना अनुचित है। ढिठाई है। पर मेरे मन मे जो था मैंने कह दिया। मेरे बातो का ख्याल न करके जैसा उचित हो वैसा आप करें।

दो. धर्म सेतु करुनायतन, कस न कहहु अस राम।
लोग दुखित दिन दुइ दरस, देखि लहहुँ बिश्राम ॥२४८॥

अर्थ : हे धर्मसेतु करुणायतन राम! आप ऐसा क्यो न कहे? लोग दुःखित हैं। दो दिन आप का दर्शन पाकर विश्राम पा रहे हैं।

व्याख्या : गुरुजी कहते हैं कि आप धर्मसेतु है। प्रजा का इतना ध्यान होना, आपको उचित है। गुरु पर इतनी आस्था होनी ही चाहिए। करुणायतन हैं। अपने कद मूल फल अम्बु अहार से दुःख नही है। लोगो को ऐसा आहार मिलता है इस बात का इतना दुःख है कि पल युग के समान बीतता है। सो बात ऐसी नही है। लोग तो आपके दर्शन बिना दुःखी थे। दो दिन से दर्शन हो रहा है। सो विश्राम पा रहे हैं। कन्द मूल फल अम्बु आहार की किसी को चिन्ता नही है। अयोध्या का यथेष्ट रक्षा का प्रबन्ध भरतजी कर आये हैं। अतः उसकी चिन्ता नही है। इतने दिनो में कुछ बनता बिगडता नही।

राम बचन सुनि सभय समाजू। जनु जलनिधि महुँ बिकल जहाजू ॥
सुनि गुर गिरा सुमंगल मूला। भयउ मनहु मारुत अनुकूला ॥१॥

अर्थ : रामजी का वचन सुनकर सारा समाज डर गया। जैसे समुद्र मे जहाज विकल हो उठे। सुमङ्गलमूल गुरुजी का वचन सुना मानो अनुकूल हवा चल पड़ी।

व्याख्या : रामजी का कहना कि सबके साथ आप लौट जाइये सुनकर समाज का समाज भयभीत हो गया कि इनके घर लौट चलने का तो प्रश्न ही नही उठने पाया और यह सबको घर लौटा रहे हैं। मानो हम लोग इनके हाथ से चक्रवर्तीजी की क्रिया सम्पन्न कराने आये थे। भगवती कौसल्या ने कहा था : नाथ समुझि मन करिय बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू। करनधार तुम अवध जहाजू। चढेउ सकल प्रिय पथिक समाजू। धीरजु धरिय त पाइअ पारू। नाहिं त बूड़िहि सब परिवारू। सो कर्णधार तो चल बसे। सब लोग शोक सिन्धु मे डूब रहे थे। उन्हे भरतजी ने अवलम्ब दिया। सबको लेकर चित्रकूट आये। यथा : सोक

सिंधु बूडत सबहिं तुम्ह अवलबनु दीन्ह। यहाँ आने पर रामजी के वचनरूपी प्रतिकूल मारुत का ऐसा झोका लगा कि सारा जहाज विकल हो गया। उसी समय गुरुजी का वचन ऐसा मङ्गलमूल हुआ कि उससे सबकी बिदाई भी रुक गयी और यह बात भी स्पष्ट हो गयी कि प्रजा आपको अपनी आँखो के ओट नही चाहती। यह वचन तो ऐसा हुआ मानो हवा अनुकूल बह गयी।

पावन पय तिहुँ काल नहाही। जो बिलोक अघ ओघ नसाही॥
मंगलमूरति लोचन भरि भरि। निरखहिं हरषि दंडवत करि करि॥२॥

अर्थ : जिस जल के दर्शन से पाप समूह नष्ट हो जाता है उस पवित्र जल मे लोग त्रिकाल स्नान करते हैं। दण्डवत् करके लोग मङ्गल मूर्ति का दर्शन प्रसन्न होकर आँख भर कर रहे हैं।

व्याख्या : अब पवन को अनुकूलता मे जो सुख हुआ उसे कहते हैं। मन्दाकिनी गङ्गा की धारा है। पातक पोतक डाकिनि हैं। डाकिनी को देखने से बच्चे डरकर मर जाते हैं। इसी भाँति मन्दाकिनी के दर्शन से पाप नष्ट हो जाते हैं। उसके पवित्र जल मे सब लोग त्रिकाल स्नान करते हैं। स्नान के बाद दर्शन करते हैं। सरकार मङ्गल भवन अमङ्गल हारी है। उनका दर्शन आँख भरकर कर रहे हैं। क्योकि दर्शन की भूख है। पियत नयन पुट रूप पियूखा। मुदित सुअसन पाइ जिमि भूखा। पहिले साष्टाङ्ग दण्डवत् करते हैं। तत्पश्चात् खडे होकर दर्शन कर रहे है भाव यह कि किसी की सरकार के प्रति मनुष्य बुद्धि नही है।

राम सैल बन देखन जाँही। जहँ सुख सकल सकल दुख नाँही॥
झरना झरहिं सुधासम बारी। त्रिबिध तापहर त्रिबिध बयारी॥३॥

अर्थ रामशैल और रामवन देखने जाते हैं। जहाँ सब सुख है और दु ख सब के सब नही हैं। झरनो से अमृत के समान जल झरता है और त्रिविध ताप हरनेवाली त्रिविध वायु चल रही है।

व्याख्या तत्पश्चात् सब लोग यात्रा के लिए जाते थे। रामशैल और वन की यात्रा करते थे। वे लोग राम वन से बाहर ही टिकाये गये थे। अत वहाँ यात्रा के लिए जाते हैं। रामशैल वन की महिमा कहते है कि वहाँ सभी सुख हैं। शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ही द्वारा बाह्य ज्ञान होता है। सो वहाँ सब अनुकूल हैं और दु ख सबके सब नही हैं। वहाँ शान्ति ऐसी है कि सब दु:ख भाग जाते हैं और मन को परम विश्राम मिलता है। अब सब सुखो का वर्णन करते है कि झरनो के जल अमृत की भाँति स्वादु और तोषदायक है। शीतल मन्द सुगन्ध वायु चलती है। वह ऐसी अद्भुत है कि आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक ताप का हरण करती है और ससार की त्रिविध वायु तो केवल भौतिक ताप को कम करने वाली होती है।

विटप वेलि तृन अगनित जाती। फल प्रसून पल्लव बहु भाँती॥
सुदर सिला सुखद तरु छाही। जाइ बरनि बन छबि केहि पाही॥४॥

अर्थ अगणित जाति के विटप वेलि और तृण थे। फल फूल और पत्ते अनेक प्रकार के थे। सुन्दर चट्टान और सुख देनेवाली पेडो की छाया थी। वन की शोभा किससे वर्णन की जा सकती है।

व्याख्या रामशैल का वर्णन करके वन का वर्णन करते हैं। ऐसा वन है जिसमे एक ही जाति के पेड नही हैं सभी जाति के पेड हैं। जिनकी गिनती नही हो सकती। यही हाल वल्ली और तृण का है। अत अपूर्व शोभा वन की हो रही है। विटप मे फल हैं। वल्ली मे फूल हैं और तृण मे पत्ते हैं। जब विटप वेलि और तृण अगणित जाति के हैं तब फल फूल और पत्ते भी उतने ही भाँति के होगे।

सुन्दर चट्टान पडी है। चलते चलते थक जानेवालो के लिए वे विश्रामप्रद हैं और वे भी पेडो की छाँह मे है। जैसे बागो मे कुरसियाँ लगी रहती हैं। कवि का कहना है कि वन की छवि ऐसी है जो किसी से वर्णन की नही जा सकती। यथा : सो वन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रकट रघुवीर बिराजा।

दो सरनि सरोरुह जल बिहग, कूजत गुजत भृग।
बैर बिगत बिहरत बिपिन, मृग बिहग बहु रग॥२४९॥

अर्थ तालाबो मे कमल खिल रहे है। जल के पक्षी कूज रहे हैं और भौंरे गूँज रहे है। वैर को छोडकर वन मे मृग और बहुत रङ्ग के पक्षी विहार कर रहे हैं।

व्याख्या सरनि सरोरुह से गन्ध कहा। बिहग कूजत गुजत भृग से शब्द कहा। झरना झरहि सुधासम बारी से रस कहा। त्रिविध ताप हर त्रिबिध बयारी से स्पर्श कहा। जाइ बरनि बन छवि केहि पाही से रूप कहा। इस भाँति उस वन को सर्वेन्द्रिय तर्पण कहा।

कोल किरात भिल्ल बनबासी। मधु सुचि सुदर स्वादु सुधा सी॥
भरि भरि परन पुटी रचि रूरी। कद मूल फल अकुर जूरी॥१॥

अर्थ वन के रहनेवाले कोलकिरात और भील पवित्र सुन्दर और अमृत सी सुस्वाद मधु को सुन्दर पत्तो की दोनियाँ रचकर उनमे भरकर और कन्द मूल फल अङ्कुर और जूरी को।

व्याख्या कोल किरात भील ये सब जङ्गली जातियो के नाम हैं। रामजी के पधारने पर भी इन सबो ने आतिथ्य सत्कार किया था। यथा कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रक जनु लूटन सोना। अब अयोध्यावासी जो वन मे विहरने गये हैं उनके आतिथ्य सत्कार का उपक्रम करते हैं। वे लोग पत्ते की दोनियो मे शहद भर भरकर लाये जङ्गली जाति ऐसी सुन्दर दोनियाँ बनाते है जिनमे भरा

हुआ जल टपक नही सकता। मधु शब्द का शहद भी अर्थ है और मद्य भी अर्थ है। इसीलिए शुचि शब्द दिया जिसमे शहद का ही बोध हो। सुन्दर स्वादु मधु कमल की होती है। कदाचित् ही कोई वस्तु ऐसी स्वादु होती हो। इसलिए अमृत सी कहते हैं। जङ्गली जाति मीठे के नाम पर केवल शहद को ही जानते हैं। अतः उनके आतिथ्य सत्कार मे प्रधानता मधु की है। इसलिए पहले उसी का उल्लेख करते हैं। कन्द मूल फल अकुर जूरी का तो बोझा ही है। इसलिए उनके लिए पात्र नही कहा। अथवा उन्हे भी दोनो मे भरकर लाये। जूरी बनारस प्रान्त की भाषा है। जिस अङ्कुर मे पत्ते आजायें और फटकर अलग न हो उसे जूरी कहते हैं। सूरन आदि की जूरी ही खाने के काम मे आती है। क्योकि वह गला नही काटती।

सबहि देहिं करि बिनय प्रनामा। कहि कहि स्वादु भेदु गुन नामा ॥
देहिं लोग बहु मोल न लेही। फेरत राम दोहाई देही ॥२॥

अर्थ : सबको विनय और प्रणाम करके देते हैं। उनके स्वाद का भेद बतलाते हैं। उनके गुण कहते हैं। नाम बतलाते हैं। लोग उनका अधिक मूल्य देते हैं। फिर भी नही लेते। फेरने पर रामजीकी दोहाई देते हैं।

व्याख्या नगर के लोग वन के कन्द मूलादि को क्या जानें। इसलिए उन्हे उनका स्वाद गुण और नाम बतलाते हैं। भाव यह कि जो आपकी प्रकृति के अनुकूल पडे उसे स्वीकार करिये। जिसे बतलाइये उसे और लावें। उनके स्वीकार करने से अपने को कृतकृत्य समझते हैं। अत प्रणाम पूर्वक स्वीकार करने के लिए विनय करते हैं।

उनकी श्रद्धाभक्ति से प्रसन्न होकर अवधवासी उनकी बहुत कीमत देते हैं। वे कीमत लेने पर राजी नही। अवधवासी मुफ्त मे लेना नही चाहते। अत फेर देते हैं। इस पर वे रामजी की दोहाई देते हैं। विनय प्रणाम से जब काम न चला तब स्वामी की दोहाई दी।

कहहिं सनेह मगन मृदु बानी। मानत साधु प्रेम पहिचानी ॥
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसनु राम प्रसादा ॥३॥

अर्थ वे स्नेह मे मग्न होकर कोमल वाणी से कहते थे कि प्रेम की पहिचान करके साधु लोग मानते हैं। आप लोग पुण्यात्मा है। हम नीच निषाद हैं। रामजी के प्रसाद से आपका दर्शन मिला।

व्याख्या · वे प्रेम मे मग्न हैं कि हमारे यहाँ ऐसे ऐसे पुण्यात्मा अतिथि आये हैं। अत मृदुवाणी बोलते हैं कि आप लोग साधु हैं। साधु लोग प्रेम के ग्राहक होते है। यह प्रेमोपहार है। हम लोग भी व्यवसायी नही हैं।

हम लोग आप लोगो के पादार्पण से कृतकृत्य हैं। क्योकि आप उत्तम हैं। सुकृती हैं। उस जन्म मे सुकृत किया है तब ऐसा जन्म पाया है। इस जन्म मे भी पुण्य ही कमा रहे हैं। किसी दूसरे की वस्तु बिना कीमत चुकाये लेना नही चाहते।

हम निषाद है। निषाद पापी जाति मात्र का उपलक्षण है। अत: निषाद मे कोल किरात भिल्ल तीनो का अन्तर्भाव है। निषाद कहने का भाव यह कि पूर्वजन्म के पाप से नीचकुल मे जन्म हुआ और इस जन्म मे भी पापाचरण ही हो रहा है। हमारा इतना भाग्य कहाँ कि आप लोगो का दर्शन हमे मिले। यह तो रामजी की कृपा है कि आपका दर्शन मिला। वे कृपा करके यहाँ आये और उसी कारण से आप यहाँ आये हुए हैं।

हमहि अगम अति दरसु तुम्हारा। जस मरु धरनि देवधुनि धारा॥
राम कृपाल निषाद नेवाजा। परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा॥४॥

अर्थ : हम लोगो को तो आपका दर्शन दुर्लभ है। जैसे मरुभूमि मे गङ्गाजी की धारा दुर्लभ है। कृपालु रामजी ने निषादो पर दया की। परिजन प्रजा को भी राजा का अनुगमन करना चाहिए।

व्याख्या : कोल किरात कहते हैं कि हम लोगो की भूमि मरुभूमि तुल्य है। जहाँ जल दुर्लभ है। कूप भी ऐसे विरल हैं जहाँ कठिनता से भी जल की प्राप्ति हो सके वहाँ जैसे गङ्गा की धारा बह उठे। इस भाँति आपका आगमन हमारे यहाँ हुआ है। हम लोग कृतकृत्य हो गये तो क्या हम गङ्गा की धारा की पूजा न करें। गङ्गा की धारा को क्या यह शोभा देता है कि वह कहे कि मैं पापियो का उपहार न ग्रहण करूँगी। तब गङ्गा आयी क्यो ? गङ्गा का आगमन तो पापियो के उद्धार के लिए ही होता है।

कृपाल रामजी ने निषादो पर कृपा की। निषादराज का सत्कार स्वीकार किया। यहाँ आने पर हम लोग जो कुछ कन्द मूल फल ले गये उसे स्वीकार किया। आप लोग तो उनकी प्रजा है। प्रजा को राजा का अनुगमन करना चाहिए। राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठा. पापे पापा समे समा.। राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा। अत. आप लोग हमारा प्रत्याख्यान न कीजिये।

दो. यह जियँ जानि सँकोचु तजि, करिअ छोहु लखि नेहु।
हमहि कृतारथ करन लगि, फल तृन अंकुर लेहु॥२५०॥

अर्थ : ऐसा जी मे जानकर सङ्कोच छोडकर हमारा स्नेह देखकर छोह कीजिये। हम लोगो को कृतार्थ करने के लिए फल तृण और अङ्कुर को स्वीकार कीजिये।

व्याख्या : राजा रामचन्द्र ने हमारे सत्कार को स्वीकार किया। दाम देने की बात भी जबान पर न लाये। आप क्यो सङ्कोच करते है। आपके लिए रास्ता साफ है कि राजा स्वीकार कर चुके तो हमे क्या दोष है। अत: सङ्कोच न करिये। हम छोटे हैं। हम पर छोह करिये। हमारा प्रेम देखिये कि वन मे से ढूंढकर अच्छे फूल फल लाये हैं। आपको आवश्यकता नही है। अयोध्या से रसद लदकर आयी है।

पर हम कृतार्थ कैसे होगे। आप हम लोगो को कृतार्थ करने के लिए स्वीकार करिये। हमारे गार्हस्थ्य धर्म की रक्षा कीजिये।

तुम्ह प्रिय पाहुने बन पगु धारे। सेवा जोगु न भाग हमारे॥
देब काह हम तुम्हहि गोसाईं। ईंधनु पात किरात मिताईं[1]॥१॥

अर्थ : आप प्रिय अतिथि वन मे पधारे हैं। हमारे भाग्य आपकी सेवा करने योग्य नही। हे गोसाईं। हम आपको क्या देगें। किरात की मित्रता तो ईंधन और पत्ते की होती है।

व्याख्या : पाहुन अर्थात् अतिथि। अतिथि कहकर पूज्य होना द्योतित किया। प्रिय दर्शन होने से प्रिय पाहुन कहते हैं। यथा प्रिय पाहुने भूप सुतचारी। यह अघटित घटना हुई कि आपका पधारना वन मे हुआ। हमारा धर्म है कि आपकी पूजा करें। मन मे बडा उत्साह भी है कि आपकी पूजा करें। परन्तु भाग्य हमारा खोटा है तस पूजा चाहिअ जस देवता। हममे आपकी पूजा की शक्ति नही है। हम आपका उचित सत्कार नही कर सकते।

आपको सङ्कोच है कि हम दूसरे का मुफ्त कैसे लें। यहाँ हमारे पास धरा ही क्या है जो आपको दें। प्रसिद्ध कहावत है ईंधन पात किरात मिताईं। किरात प्रेम करें तो ईंधन दें और पत्ते दें। सो हम ईंधन पत्तेवाले आप ऐसे ऐश्वर्य-वान् की पूजा कैसे करे।

यह हमारि अति बडि सेवकाई। लेहि न बासन बसन चोराई॥
हम जड जीव जीवगन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥२॥

अर्थ हमारी बडी भारी सेवा यही है कि हम आपका बरतन कपडा नही चुरा लेते। हम जड जीव हैं। जीवगण को मारा करते हैं। कुटिल, कुचाली, कुमति और कुजाति हैं।

व्याख्या आप ऐसे महान् हैं कि हमारे दिये हुए फल फूल को भी बिना मूल्य दिये स्वीकार नही करते और हम ऐसे नीच हैं कि चोरी करके भी दूसरे की वस्तु ले लेते हैं। हमे कपडे बर्तन कहाँ मिले। अत उसके लिए चोरी करते है। आपके यहाँ कपडे और बर्तन भरे पडे हैं। पर हमने नही चोराया। यह हमारी थोडी सेवकाई नही है। आप नही समझ सकते कि कपडा और बर्तन देखने के बाद एक किरात को चोरी से मन को रोकने मे कितने बडे मनोनिग्रह से काम लेना पडता है।

केवल चोरी ही नही प्राण मारकर चोरी करते हैं। हिंसा ही हमारा उद्यम है। हम जडजीव हैं। जीवो को मारा करते हैं। मन से कुटिल हैं। करणो से कुचाली हैं। बुद्धि से कुमति हैं और व्यवहार मे कुजाति हैं। दिन रात द्रोह करते हैं।

---

१ यहाँ लोकोक्ति अलङ्कार है।

पाप करत निसि बासर जाही। नहि पट कटि नहि पेट अघाही ॥
सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ। यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ ॥३॥

अर्थ : पाप करते रात दिन बीतता है। न तो कमर में कपड़ा है और न पेट अघाता है। हमको कभी धर्म बुद्धि कैसी ? यह तो रघुनन्दन के दर्शन का प्रभाव है।

व्याख्या : किरात कहते हैं कि हम लोग रात दिन पाप ही करते हैं। चोरी और हिंसा की जीविका है। फिर भी भूखे नगे रहते हैं। जीवन निर्वाह दुष्कर है। पुनर्दरिद्री पुनरेव पापी। पाप करते हैं लोग लौकिक सुख के लिए। हमे पाप करने पर भी अन्न वस्त्र दुर्लभ है। यह तो जाग्रत का हाल है।

अब सपने का हाल सुनिये। जाग्रत के संस्कारानुसार ही स्वप्न होता है। अतः स्वप्न मे भी पाप कर्म ही देखते हैं। धर्मबुद्धि सपने में भी दुर्लभ है। यह धर्मबुद्धि जो हम लोगों में पाप देख रहे हैं कि अतिथि सत्कार का भाव जाग्रत हुआ है वह तो रघुनन्दन के दर्शन का प्रभाव है। आपके राजा द्वारा ही तो हममे धर्मबुद्धि का उदय हुआ है। हम सत्कार करने चले हैं और आप ही प्रत्याख्यान द्वारा उसका अवरोध कर रहे हैं।

जब तें प्रभु पद पदुम निहारे। मिटे दुसह दुख दोष हमारे ॥
बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्हके भाग सराहन लागे ॥४॥

अर्थ : जब से सरकारी चरण कमलों का हमे दर्शन हुआ हमारे दुःसह दुख और दोष मिट गये। वचन सुनकर पुरजन अनुराग में आगये। उनके भाग्य की प्रशंसा करने लगे।

व्याख्या : सरकार के दर्शन से बुद्धि भी पलटी और दु.ख दोष भी मिटा। दोष होने से ही दु.ख होता है। अतः दु.ख अपने कारण के साथ मिट गया।

भविष्य में भी पाप की आशङ्का नही रह गयी। इस समय हम सब तरह से शुद्ध हैं। सरकार के दर्शन के बाद भी क्या हम मे दोष लगा है।

विनती युक्तियुक्त भक्ति संयुत वचन सुनकर पुरजनो को अनुराग हुआ। वे लोग उनके भाग्य की सराहना करने लगे : बड़ भागी बन अवध अभागी। जो रघु-बंश तिलक तुम त्यागी। भाग्यवान् ये लोग हैं जिनमे सरकार आकर बसे हुए हैं। आज हम लोग अभागी हो रहे हैं जिन्हे छोडकर सरकार यहाँ आये हैं।

छं. लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावही।
बोलनि मिलनि सिय राम चरन सनेहु लखि सुखु पावही ॥
नरनारि निदरहि नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा।
तुलसी कृपा रघुबंसमनि की लोह लै लौका तिरा ॥

अर्थ : सब लोग उनके भाग की सराहना करते हैं और अनुराग के वचन सुनाते हैं। उन लोगो का बोलना मिलना और सीता रामजी के ऊपर जो उनका

स्नेह है उसे लखकर सुख पा रहे हैं। नर नारी कोल भीलो की वाणी सुनकर अपने प्रेम का अनादर करते है। श्री तुलसीदास कहते हैं कि यह रघुवशमणि की कृपा है कि लोहा लेकर लौका तिर गया।

व्याख्या यहाँ प्रसङ्ग यह है कि अवधवासियो मे और किरातो मे शास्त्रार्थ छिड गया है। जङ्गली लोग आतिथ्य के लिए कन्द मूल फल लाये हैं। अवधवासी उसका मूल्य देना चाहते हैं और न लेने पर उनका कन्द मूल फल फेर देते हैं। हम अन्त्यजो का प्रतिग्रह क्यो करें। धर्मशास्त्र मे यह महा निषिद्ध है। जङ्गलियो का उत्तरपक्ष यह था कि सरकार के दर्शन से हमारे दोष दु ख मिट गये। यह दान भी नही है आतिथ्य सत्कार है। उदाहरण मे वे स्वय सरकार को देते है कि उन्होने हमारा सत्कार स्वीकार किया है। इस वाग्युद्ध के अन्त मे जङ्गलियो की जीत हुई। अवधवासियो के पास उत्तर नही रह गया। उनका प्रेम देखकर अपने प्रेम की निन्दा करने लगे। अर्थात् उन्हे सत्कार स्वीकार करना पडा। इसी बात को महाकवि ने चार अक्षरो मे कहा लोहा लै लौका तिरा। अर्थात् सामना करके लौका तिर गया। लोहा लेना सामना करना या लडाई करने को कहते हैं। यथा सनमुख लोह भरत सन लेउँ। लौका तिरने का अधम साधन है सो समर मे लोहा लेकर सामना करके जहाज का तिरना कठिन हो जाता है। यहाँ अवध-वासियो से मनिगन पुर नर नारि सुजाती। सुचि अमोल सुदर सब भाँति। से सामना करके अर्थात् शास्त्रार्थ करके लौका कुटिल कुचाली कुमति कुजाती। तिर गया। अर्थात् पार पा गया। अवधवासियो को उनका फल मूलादि ग्रहण करना पडा।

दो बिहरहिं बन चहुँ ओर, प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब।
जल ज्यौ दादुर मोर, भये पीन पावस प्रथम ॥२५१॥

अर्थ सब लोग प्रसन्न होकर वन मे चारो ओर प्रतिदिन विचर रहे हैं। पहली ही वर्षा मे जिस प्रकार मेढक और मोर मोटे हो जाते हैं उसी प्रकार इन लोगो की भी दशा हो गयी।

व्याख्या मानसिक सुख दु ख का प्रभाव शरीर पर कितना बडा पडता है। इसी बात को दिखाते हुए कवि कहते हैं कि नित्य लोग प्रसन्न मन से वन मे चारो ओर विचरते है जहँ सुख सकल सकल दुख नाही। अत उनकी दशा उन मेढक और मोरो सी हो रही है जो पहिली ही बरसात मे हृष्ट पुष्ट हो जाते है।

बर्षारितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास। राम नाम बर बरन जुग सावन भादो मास। एक ऐसे है जो मोर की भाँति ठहर ठहरकर सुस्वर से नामोच्चारण करते हैं और कुछ ऐसे हैं जो मेढक की भाँति नाम की धुन बाँधते हैं। ये राम घनश्याम की कृपा दृष्टि को वृष्टि से पहिली ही वर्षा भक्ति की उमग मे हृष्ट पुष्ट हो हो गये। नही तो तनकृस मन दुख बदन मलीने थे।

पुरजन नारि मगन अति प्रीती । बासर जाहिं पलक सम बीती ॥
सीय सासु प्रति वेष बनाई । सादर करइ सरिस सेवकाई ॥१॥

अर्थ पुर नर नारि अत्यन्त प्रीति म मग्न थे । पलक की भाँति दिन बीत रहे थे। सीताजी जितनी सास थी उतने वेष बनाकर आदर के साथ समान सेवा करती थी ।

व्याख्या पुर नर नारी ऐसे प्रेम मे मग्न हुए कि बाहर का उन्हे कुछ अनुसन्धान भी नही रहा । पूरा दिन बीत गया । उन्हे मालूम हो रहा है कि एक निमेप बीता है । अत्यन्त सुख के दिन बीतते देर नही लगती । यथा मास दिवसकर दिवस भा मरम न जानै कोइ ।

सब लोगो का हाल कहकर अब रनिवास का हाल कहते हैं । भगवती सास की सेवा के लिए पहुँच गयी । सासो की सेवा की बडी अभिलाषा है । यथा सेवा समय दैउ बन दीन्हा । मोर मनोरथ सफल न कीन्हा । सो मनोरथ के पूरा करने का अवसर हाथ लगा । सास हैं सख्या मे अधिक । एक शरीर से सबकी सेवा हो नही सकती । अत जिस भाँति सबसे मिलने के लिए सरकार ने अमित रूप धारण किया उसी भाँति भगवती भी जितनी सास थी उनती हो गयी । निरादर के साथ सेवा किसी काम की नही । अत सादर सबकी समान भाव से सेवा करने लगी । जैसी सेवा कौसल्या की वैसी ही सेवा कैकेयी की ।

लखा न मरमु राम बिनु काहू । माया सब सिय माया माहूँ ॥
सीय सासु सेवा बस कीन्ही । तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्ही ॥२॥

अर्थ इस भेद को सिवा रामजी के और कोई नही लख पाया । क्योकि सब माया सीताजी की माया के अन्तर्गत है । सीताजी ने सासुवो को सेवा के वश कर लिया । उन्होने सुख पाकर शिक्षा और आशीर्वाद दिये ।

व्याख्या सब सास समझ रही है कि सीता केवल मेरी सेवा मे है । यहाँ पृथक् पृथक् महल भी नही हैं । सब दासियाँ सब जगह आ जा रही हैं । फिर भी इस मर्म को कोई न लख सका कि सीताजी की सब सासो के पास युगपत् उपस्थिति कैसे हो रही है । न लखने का कारण देते हैं कि यह सीताजी की माया है और जितनी माया है सबकी सब इसके सीताजी की माया के अन्तर्गत हैं । आदि सक्ति जेहि जग उपजाया । सोउ अवतरिहि मोरि यह माया । अत जिसकी माया है वही मर्म को लख सका । विवाह के समय भी जो महिमा भगवती ने प्रकट किया था उसे रघुनायक ही जान सके थे । जीव उस माया के मर्म को कैसे लख सकता है ?

भगवती ने ऐसी सेवा की कि सास सब उनके वश मे हो गयी । उन्हे बडा सुख हुआ । सुख मिलने पर बडो से दो वस्तुएँ मिलती हैं । एक शिक्षा और दूसरा आशीर्वाद । सो दोनो मिला ।

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई । कुटिल रानि पछितानि अघाई ॥
अवनि जमहि जाचति कैकेई । महि न बीचु बिधि मीचु न देई ॥३॥

अर्थ : सीताजी के सहित दोनों भाइयो को सरल देखकर कुटिल रानी पेट भर पछतायी। अब कैकेयी पृथ्वी और यम से याचना करती है। पर न तो पृथ्वी फटती है और न ब्रह्मदेव मृत्यु देते हैं।

व्याख्या : सब माताओं का हाल कहकर अब रानी कैकेयी का हाल कहते हैं। सीताजी की सेवा के वश हो गयी। उन्होने रामजी को कुटिल समझा था। यथा : सहज सरल रघुवर बचन कुमति कुटिल करि जान। अब देखा कि दोनों भाई सरल हैं। रामजी ने जो कहा था : सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी। तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा। मुनिगन मिलन बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर। तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर। भरतु प्रान प्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू। सो इनका आन्तरिक भाव था। वन देने से मुझ पर कुछ भी रोष नही है और सीता भी वैसी ही हैं। मैंने इस महासाधुओं के साथ क्या किया ? पछतायी तो पहिले भी थी। पर अब पेटभर पछतायी। यह पश्चात्ताप तो तभी मिटे जब पृथ्वी फटे मै समा जाऊँ या विधाता मुझे मौत दें। अतः पृथ्वी और यम से प्रार्थना करती हैं। पर न तो पृथ्वी फटती है न विधाता मौत देते हैं। यम भी विधाता की आज्ञा के अनुवर्ती है। बिना विधाता की आज्ञा के मृत्यु भी नही दे सकते। अतः यम न कहकर विधाता कहा।

लोकहु वेद विदित कबि कहहीं । राम बिमुख थलु नरक न लहहीं ॥
यह संसउ सब के मन माँही । राम गवनु बिधि अवध कि नाँहीं ॥४॥

अर्थ : यह बात लोक और वेद मे प्रसिद्ध है और कवि भी कहते हैं कि रामविमुख को नरक भी स्थान नही देता। यह सशय सबके मन मे है कि हे विधि ! रामजी अवध जायँगे कि नहीं।

व्याख्या : इस बात पर सबका ऐकमत्य है कि राम विमुख का कही ठिकाना नही लगता। अन्य पापियो का तो ठिकाना नरक मे लगता है। पर राम विमुख को स्थान देना नरक भी स्वीकार नहीं करता। सब जग ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुवीर बिमुख सुनु भ्राता।

रनिवास का हाल कहकर अब रामजी के घर के लौटने के विषय मे क्या हो रहा है उसका वर्णन करते हुए कहते हैं कि सबके मन मे यह सशय है कि रामजी घर लौटते हैं कि नही। उनके कहने से उनका रुख स्पष्ट है कि लौटना नही चाहते। पर गुरुजी हम लोगो की ओर से बोल रहे हैं। इसलिए सब लोग सशय मे पडे हुए हैं कि देखें क्या होता है।

दो. निसि न नीद नहिं भूख दिन, भरतु बिकल सुचि सोच ।
नीच कीच बिच मगन जस, मीनहिं सलिल सँकोच ॥२५२॥

अर्थ : न रात को नीद है न दिन को भूख है । भरतजी पवित्र सोच मे विकल हैं । जैसे कीच मे नीचे डूबी हुई मछली को जल का सङ्कोच हो . जल न मिले ।

व्याख्या : सोच करनेवाले को न रात को नीद लगती है न दिन को भूख लगती है । महात्माओं का सोच भी पवित्र होता है । क्योकि वह अविद्या के अन्तर्गत न होकर विद्या के अन्तर्गत होता है । विकलता भी साधारण नही है । अवधि अम्बु प्रिय परिजन मीना । सो यहाँ दो दिन की अवधि है वह भो बीत चली । पानी सूख चला कीचड़ बाकी है । कीचड़ के भी सूखने के भय से महाविकल है । इसी भाँति भरतलालजी की विकलता कहा । ये बडे मच्छ हैं । इसलिए विकलता विशेष है और मछलियो के लायक पानी है । उन्हे सोच नही वे मगन हैं । यथा : पुर नर नारि मगन अति प्रीती ।

कीन्हि मातु मिस काल कुचाली । ईति भीति जस पाकत साली ॥
केहि बिधि होइ राम अभिषेकू । मोहि अवकलत उपाउ न एकू ॥१॥

अर्थ : माता के व्याज से काल ने कुचाल किया । जैसे धान पकते समय ईति का भय हो । किस विधि से रामजी का अभिषेक हो मुझे ता कोई उपाय नही फुर रहा है ।

व्याख्या : अब भरतजी का सोच कहते हैं । भरतजी को कैकेयी का पछिनावा है । अत. कहते हैं कि माता को तो ब्याज बनाया कराल काल ने । यथा : सब कर आज सुकृत फल बीता । भयउ कराल काल विपरीता । क्योकि सभी कार्यो की सिद्धि मे काल असाधारण कारण है । उपमा देते हैं कि जैसे धान पकने के समय अतिवृष्टि हो पडे । अथवा कोई दूसरी ईति आ पडे । अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषक, टिड्डी और राजाओ का आक्रमण यह सब ईतियाँ हैं । इसी भाँति सरकार के राज्याभिषेक के समय कैकेयी का वरदान हुआ । यथा : मोर मनोरथ सुरतरु फूला । फरत करिनि जिमि हतेउ समूला ।

सब लोग तो केवल सशय मे पडे हैं कि देखें रामजी लौटते हैं या नही । पर भरतजी तो उपाय सोच रहे हैं कि किस उपाय से रामजी का अभिषेक हो । किस भाँति लौटने पर राजी हो जायँ । तव अभिषेक के लिए कहा जाय । जिससे राजसी ठाट से घर लौटें । पर कोई उपाय स्थिर नही कर पा रहे हैं । सबसे प्रबल उपाय मौजूद है । पर उनसे काम कैसे लिया जाय । अतः भरतजी कहते हैं कि कोई सामञ्जस्य नही बैठता ।

अवसि फिरिहि गुर आयसु मानी । मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी ॥
मातु कहेहुँ बहुरहि रघुराऊ । राम जननि हठ करबि कि काऊ ॥२॥

अर्थ गुरुजी की आज्ञा मानकर तो निश्चय ही लौट चलेंगे। पर मुनिजी रामजी का रुख देख लेंगे तब कहेगे। माता के कहने पर भी रामजी लौटेंगे। पर वे राम की माता हैं वे क्या कभी हठ करेंगी ?

व्याख्या सबसे बडा उपाय तो यह है कि गुरुजी आज्ञा दें तो पिता की आज्ञा गुरुजी की आज्ञा के सामने हट जायगी। आचार्यो यस्तु या जाति विधिवद्वेद पारग। उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साजरामरा। पिता तो इस स्थूल देह को उत्पन्न करता है। पर आचार्य से जो जन्म सावित्री द्वारा होता है वही सत्य है और अजर अमर है। अत गुरु का पद पिता से भी बडा है। उनके आज्ञा देने पर निश्चय अयोध्या लौट चलेंगे। पर गुरुजी तो उनका रुख देखते है। यदि उनका रुख अनुकूल होगा तभी आज्ञा देंगे। वन चलते समय महल से निकलकर गुरुजी के ही द्वार पर खडे हुए। गुरुजी चाहते तो रोक लेते। पर गुरुजी ने रुख नही पाया। इसलिए नही रोका।

इनके बाद माता का दर्जा है। माता यदि हठ पकड ले तो भी लौट चलेंगे। पहिले भी माता ने कहा था जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बडि माता। जौं पितु मातु कह्यौ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना। पर यह रामजी की माता हैं। यह कभी हठ करेगी नही। वन जाते रोका भी तो यह कह दिया कि यदि कैकेयी की भी आज्ञा हो तो चले जाओ। हठ करना तो मेरी माता जानती है कि चाहे प्रलय हो जाय वह अपने हठ से नही हटती। सो कौसल्याजी कभी हठ करेंगी ही नही।

मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि मह कुसमउ बाम विधाता ॥
जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू। हरगिरि ते गुरु सेवक धरमू ॥३॥

अर्थ मै तो सेवक हूँ। मेरी बात ही क्या ? तिस पर कुसमय है और विधाता प्रतिकूल है। यदि मैं हठ कर बैठूँ तो यह बडा भारी बुरा काम होगा। क्योंकि सेवक का धर्म कैलाश से भी भारी है।

व्याख्या भरतजी समझ रहे हैं कि इनके बाद यदि किसी का प्रभाव पड सकता है तो मेरा ही पड सकता है। सरकार स्वय कहेगे तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार सँकोचू। फिर भी मै तो सेवक हूँ। सेवक की बात ही क्या है। उसका धर्म स्वामी को सङ्कोच न आने देना ही है। यथा जो सेवक साहिबहि सकोची। निज हित चहै तासु मति पोची। सो मैं यदि हठ कर बैठता हूँ तब तो सेवक धर्म ही जाता रहेगा। इससे बढकर अनुचित क्या होगा ? सेवक धर्म का सँभाल बडा कठिन है। कैलाश पर्वत उठाना उतना कठिन नही है रावण ने कैलाश उठाया पर सेवक धर्म सँभाल न सका। स्वामी का घर ही उखाड डाला। अत मै हठ कर नही सकता।

एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैन बिहानी ॥
प्रात नहाइ प्रभुहि सिरु नाई। बैठत पठए रिषयँ बोलाई ॥४॥

अर्थ एक युक्ति भी मन मे नही ठहरी ।भरत को सोचते ही सोचते रात वीत गयी । सवेरे नहाकर और प्रभु को प्रणाम करके वैठते ही ऋषिजी ने बुला भेजा ।

व्याख्या भरतजी ने इन उपायो के अतिरिक्त और भी उपाय सोचे जिनका वर्णन विस्तार से आगे होगा । जिसमे पिताजी का वचन भी बना रहे और सरकार अयोध्या भी लौट चलें और वह यह है कि हम दोनो भाई अपना अपना हिस्सा पलट लें। रामजी मानते हैं पिता दीन्ह मोहि कानन राजू । सो कानन का राज मैं ले लूँ और अवध का राज्य रामजी स्वीकार करे । पर यह बात प्रमाण न होने पावेगी । सरकार मुझ भी पिता के वचन से न हटने दगे । यह बात प्रमाण तो तव हो जब गुरुजी इसकी व्यवस्था दे । पर यह बात गुरुजी क्यो नही कहते । इसी विचार मे रात वीत गयी कोई बात मन मे वैठी नही । सब लोग सोये पर भरतजी जागते ही रह गये ।

भरतजी भी स्नान करके सरकार के दर्शन के लिए जाते है । सो ज्योही दर्शन करके लौटकर बैठे तब तक ऋषिजी का बोलावा आगया । ऋषिजी का भाव यह कि दो दिन के लिए मैंने कहा था । सा बीत गया अब काम की बात हानी चाहिए ।

प्रथम सभा पुनि रघुपति वहु विधि समझाए प्रकरण

दो गुर पद कमल प्रनामु करि, बैठे आयसु पाइ ।
विप्र महाजन सचिव सब, जुरे सभासद आइ ॥२५३॥

अर्थ गुरुजी के चरणो मे प्रणाम करके आज्ञा पाकर वैठे । ब्राह्मण, महाजन, मन्त्री सब सभासद आकर जुट गये ।

व्याख्या सरकार ने गुरुजी से ही कहा था सब समेत पुर धारिअ पाऊँ । आप इहाँ अमरावतिराऊ उचित होय सा करिअ गोसाईं । अत अब क्या करना उचित है । इसलिए गुरुजी ने सवेरा होते ही ब्राह्मण, महाजन अगुआ मन्त्री को वुलवाया और भरतजी को बुलवाया । भरतजी ने आकर चरणकमलो की वन्दना की । गुरुजी की आज्ञा पाकर वैठ गये । तब तक सब समाज जुट गया । सभा लग गयी ।

बोले मुनिवरु समय समाना । सुनहु सभासद भरत सुजाना ॥
धरम धुरीन भानुकुल भानू । राजा राम स्ववस भगवानू ॥१॥
सत्य सध पालक श्रुति सेतू । राम जनमु जग मगल हेतू ॥

अर्थ श्रेष्ठ मुनिजी समय के अनुसार बोले कि ह सभासदो तथा सुजान भरत सुनो । धर्म के धुरन्धर तथा सूर्यकुल के सूर्य राजाराम स्वतन्त्र भगवान् हैं । वे सत्यसन्ध हैं । श्रुतिसेतु पालक हैं । राम का जन्म ससार के मङ्गल के हेतु हुआ है ।

व्याख्या मननात् मुनि । वसिष्ठजी मनन करनेवालो म श्रेष्ठ हैं । ये जा सबसे सम्मति पूछ रहे हैं यही समयानुकूल बोलना है । अयोध्या मे यही निश्चय

हुआ था अवसि चलिअ वन रामु हँ। तथा जेहि सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि राम रजधानी। सो रामजी के पास तो हम लोग पहुँच गये। अब रामजी अयोध्या कैसे लौटें कैसे उनका अभिषेक हो यही विचार करना है। इसी लए गुरुजी ने सभा इकट्ठी की है। जिसम सबकी लाभ हानि हो उसमे सबकी सम्मति लेनी चाहिए। सभा के धर्माधर्म मे सबका भाग है। अत सभासदो को पहिल सम्बोधन करते हैं। परन्तु गुरुजी जानते है कि इनमे करने धरनेवाले भरत हैं। अत विशेष लक्ष्य भरत की ओर है। उन्हे सुजान कहकर भणित भगति मति गति का जानकार होना सूचित किया।

अब कहते हैं कि रामजी धर्मधुरीण हैं। धर्म से डिगेंगे नही। भानुकुलभानु हैं। यथा जानहु तात तरनि कुल रीती। सत्यसध पितु कीरति प्रीती। पिता की कीर्ति को न बिगडने देगे। सत्यसन्ध हैं सत्य को छोड़ेंगे नही। श्रुति सेतुपालक है। पितृ देवो भव मातृ देवो भव आदि जो वेद का मार्ग है उसे नष्ट न होने देंगे। रामजी का जन्म केवल अयोध्या के मङ्गल के लिए नही है सम्पूर्ण ससार के मङ्गल के लिए है। सच्चे राजा तो राम ही हैं। इनकी आज्ञा का उल्लघन हो नही सकता। क्योकि सदा स्वतन्त्र हैं। और सभी परवश हैं। माया के नचाने से नाचते हैं। ये भगवान् हैं। *उत्पत्ति प्रलयञ्चैव भूतानामगतिं गतिं। वेत्ति विद्यामविद्यांश्च स वाच्यो भगवान् इति।* जो उत्पत्ति, प्रलय प्राणियो की अगति, गति, विद्या और अविद्या को जाने उसे भगवान् कहते हैं।

गुर पितु मातु बचन अनुसारी। खल दल दलन देव हितकारी॥
नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथु॥२॥

अर्थ गुरु पिता माता के वचन के अनुसार चलनेवाले है। खल दल के दलन करनेवाले और देवता के हितकारी हैं। नीति प्रीति परमार्थ और स्वार्थ को राम की भाँति यथार्थ कोई नही जानता।

व्याख्या कभी पिता की आज्ञा उल्लघन नही करेंगे। पूर्व के छवो विशेषणो का यही साराश है। अब पिछल दो विशेषणो का साराश कहते है कि इन्हे खल दल का नाश और देवताओ का हित करना है तुलसिदास जो रहौं मातु हित को सुर साधु बिप्र भय टारें।

इसके अतिरिक्त रामजी सा जानकार भी कोई नही। नीति प्रीति परमार्थ और स्वार्थ के भीतर ही सब कुछ है। सो इन चारो विषयो का इनके समान कोई जाननेवाला नही है। चारो को विचार के ही वन मे आये हैं। यथा परमार्थ मुनिगन मिलन बिशेष बन। नीति तेहि पर पित आयसु। प्रीति सम्मत जननी तोर। स्वार्थ भरत प्रान प्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू।

बिधि हरि हरु ससि रवि दिसिपाला। माया जीव करम कुलि काला॥
अहिप महिप जँह लगि प्रभुताई। जोग सिद्धि निगमागम गाई॥३॥

अर्थ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, चन्द्र, सूर्य, दिक्पाल, माया, जीव, कर्म और काल ये सब शेष से लेकर राजा तक जो प्रभुताई है और योग की सिद्धियाँ जिनका गान वेद ने किया है।

व्याख्या विधि हरि हर उत्पत्ति स्थिति और लय करनेवाले हैं। रवि शशि संसार के हित कर्त्ता और इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ये क्रमश पूर्वादि दिशाओ के पालन करनेवाले है। माया जो सारे ससार को नचानेवाली है। जीव ससार का भोक्ता है। उसी के भोग के लिए ससार बना हुआ है और कर्म जिसकी मूर्त्ति ससार है और काल गुणो का क्षोभक जिसके कारण प्रकृति मे वैषम्य होकर सृष्टि होती है और जो सबका सहारकर्त्ता है प्रभुताई की सीमा शेष से लेकर राजा तक है। शेष पृथ्वी को धारण किये हुए हैं। राजा भी प्रजा रूपी धर्म द्वारा देश विदेश को धारण करता है और योग की अनेक सिद्धियाँ जो वेदादि शास्त्रो द्वारा प्रतिपादित हैं।

करि बिचार जिय देखहु नीकें। राम रजाइ सीस सबही के ॥४॥

अर्थ अच्छी तरह से जी मे विचार करके देखो। रामजी की आज्ञा सबके सिर पर है।

व्याख्या यहाँ पर वसिष्ठजी सरकार के ऐश्वर्य को एक बारगी खोले देते है। महात्मा है। सभा मे अन्यथा भाषण नही करेंगे। दूसरे यह कि त्रिकालज्ञ हैं। उन्हे भरतजी की इस भावना का उत्तर देना है. मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी। कहते है कि सब लोग विचार करके अच्छी तरह से देखो। यह जो ससार का बडा भारी आडम्बर चल रहा है उसके चलानेवाले क्षण भर विश्राम न करके जो अपने कार्य मे तत्पर हैं वे किसकी न हटाई जानेवाली आज्ञा के वशीभूत होकर काम कर रहे हैं। सभी रामजी की आज्ञा के वशीभूत है। वैसा ही चलने म उन्हे सुख है। यथा प्रभु अज्ञा जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई।

दो राखे राम रजाइ रुख, हम सब कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब, सब मिलि समत सोइ ॥२५४॥

अर्थ रामजी की आज्ञा और रुख रखने से ही हम लोगो का कल्याण होगा। यह समझकर आप लोग सुचतुर हैं। सब लोग मिलकर राय बिठाओ।

व्याख्या गुरुजी का कहना है कि राय करने के पहिले इस बात को दृढ रूप से मन मे रख लो कि रामजी की आज्ञा मानने और रुचि रखने मे ही सबका कल्याण है। उनकी आज्ञा और रुख के विरुद्ध कार्य करने मे भलाई नही है। उनकी आज्ञा और रुख के विरुद्ध चाहे मैं आज्ञा दूँ। चाहे कौसल्याजी हठ करें। चाहे भरतजी सङ्कोच डालें। कभी कल्याणप्रद फल नही हो सकता। अत उनकी आज्ञा और रुख को ध्यान मे रखते हुए आप लोग कोई रास्ता सोचें।

सब कहँ सुखद राम अभिषेकू । मंगल मोद मूल मग एकू ॥
केहि विधि अवध चलहिं रघुराऊ । कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ ॥१॥

अर्थ रामजी का अभिषेक होना सबके लिए सुखद है और यही एक रास्ता मङ्गल मोद का मूल है। अब किस विधि से रामजी अवध चलें इस बात को आप लोग समझकर कहिये। वही उपाय किया जाय।

व्याख्या भरतजी सोचते थे केहि विधि होइ राम अभिषेकू। मोहि अवकलत उपाउ न एकू। गुरुजी भी वही बात कहते हैं और उसका उपाय सबसे पूछते हैं। क्योंकि सबको इसी में सुख है। यही रास्ता मङ्गलमूल है और अभिषेक तभी सम्भव है जब रामजी अयोध्या लौटने को राजी हो। अब इनके लौटाने की विधि क्या होगी? पिता के वचन को ये छोडेंगे नहीं और बिना छोडे अयोध्या जाना कैसे बनता है? और बिना अयोध्या जाने को राजी हुए अभिषेक कैसे बनता है? अभिषेक मे झगडा नहीं है। उसे रामजी मान जायँगे। क्योकि पिता ने भरतजी को राज्य दिया। भरत उसे स्वीकार करते हैं और रामजी के चरणो मे अर्पित किया चाहते है। अत अभिषेक मे बाधा नहीं है। बाधा है अयोध्या लौटने में। उसे कैसे दूर किया जाय। इसी पर आप लोग विचार करिये। जो उपाय निश्चित हो तदनुसार ही काम किया जाय।

सब सादर सुनि मुनिवर बानी । नय परमारथ स्वारथ सानी ॥
उतरु न आव लोग भए भोरे । तब सिरु नाइ भरत कर जोरे ॥२॥

अर्थ सब ने आदर के साथ मुनिवर की श्रेष्ठ वाणी सुनी। जो नीति परमार्थ और स्वार्थ से सनी हुई थी। किसी से जवाब नहीं चलता। लोग भोले हो गये। तब सिर नवाकर भरतजी ने हाथ जोडा।

व्याख्या बोले मुनिबर समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना। इस भाँति सबसे सम्मति पूछना मुनिजी की नीतिमत्ता है। रामजी के स्वरूप का ज्ञान कराना परमार्थ है राखे राम रजाय रुख हम सबकर हित होइ। यह स्वार्थ है। इस भाँति वसिष्ठजी की नय परमारथ स्वारथ सानी वाणी सबने आदर से सुनी। भाव यह कि सबको विश्वास है कि मुनिजी कहते हैं वही तथ्य और वही पथ्य है।

वसिष्ठजी पहले सभासदो को सम्बोधन करके बोले थे। अत पहिले उन्ही से उत्तर की आशा थी। सो इन लोगो की बुद्धि काम नहीं करती। अत कवि ने कहा कि लोग भोले हो गये। अपनी बुद्धि का सभी को अभिमान होता है। पर जब वह काम नहीं करती तब लाचार होकर मानना ही पडता है कि बुद्धि काम नहीं कर रही है। अत सब लोग चुप है। सबको चुप देखकर भरतजी ने माथा नवाकर हाथ जोडा। अर्थात् कुछ कहा चाहते हैं।

भानुवंस भये भूप घनेरे। अधिक एक ते एक बडेरे ॥
जनम हेतु सब कहँ पितु माता। करम सुभासुभ देइ विधाता ॥३॥

अर्थ : सूर्यवंश मे बहुत से राजा लोग हुए। उनमे से एक से एक अधिक और बडे भी हुए। माँ बाप से उनका जन्म हुआ और शुभाशुभ कर्म ब्रह्मदेव ने दिया।

व्याख्या : वैवस्वत मन्वन्तर भर मे सूर्यवंशी राजाओ की प्रधानता रहती है। सो सूर्यवंश मे न जाने कितने राजा हुए और बडे बडे प्रतापी हुए। किसे कम कहा जाय और किसे अधिक कहा जाय। पर इन लोगो के बडप्पन का कारण क्या हुआ ? इसे विचारने पर तो यही देखा जाता है कि माता पिता तो केवल जन्म के कारण हुए और ब्रह्मदेव ने उस जन्म मे भोगने के लिए शुभाशुभ कर्म का विधान कर दिया। अर्थात् प्रारब्ध कर्म निश्चित कर दिये। भाव यह कि माता पिता जन्म के साथी हैं पर कर्म का साथी कोई नही। ब्रह्मदेव के नियत शुभाशुभ कर्म को भोगने के सिवा अन्य गति नही।

दलि दुख सजइ सकल कल्याना। अस असीस राउरि जग जाना ॥
सो गोसाईं विधि गति जेहि छेंकी। सकै को टारि टेक जो टेकी ॥४॥

अर्थ : संसार जानता है कि आपका आशीर्वाद ऐसा है कि दुःख को नाश करके सब कल्याणो को साज देता है। आप ऐसे स्वामी हैं कि ब्रह्मदेव की गति को भी रोक देते हैं। आपने जो टेक किया उसे कौन टाल सक्ता है।

व्याख्या : ब्रह्मदेव ने जो शुभाशुभ नियत कर दिया उसे मिटानेवाला कोई नही। यथा : कह मुनीस हिमवत सुनु जो विधि लिखा लिलार। देव यज्ञ गन्धर्व मुनि कोउ न मेटनिहार। सो सूर्यवश के पुरोहित आप हैं। आपके आशीर्वाद से सूर्यकुल के राजाओ का दुःख टलकर सदा कल्याण हुआ। आपके आशीर्वाद का यह प्रताप ससार जानता है। अर्थात् मेरे कुल का कल्याण तो सदा आप द्वारा होता आया है।

ब्रह्मा की गति शुभाशुभ कर्मों का विपाक है। सो अशुभ कर्म के विपाक को आप सदा से रोकते आये है। माता पिता की की हुई रक्षा न हुई। वे तो जन्म के साथी थे। विधाता ने शुभाशुभ दोनो कर्म दिया। उनसे भी कोई सहायता नही मिली। सहायता तो आपसे सदा मिलती आयी है। आपने हमारे कुल के लिए ब्रह्मा की गति को भी रोका है। आपने जो टेक धर लिया उसे ब्रह्मा भी नही टाल सकते। तो दूसरे की गिनती क्या ? अत आप यदि रामजी को लौटने की टेक पकड लें तो कौन बाधा कर सकता है ?

दो. बूझिअ मोहि उपाउ अब, सो सब मोर अभागु।
सुनि सनेहमय बचन गुर, उर उमगा अनुरागु ॥२५५॥

अर्थ : अब आप मुझसे उपाय पूछते हैं। यह सब मेरा अभाग्य है। स्नेहमय वचन सुनकर गुरुजी के हृदय मे अनुराग उमड पडा।

व्याख्या : उपाय बतलानेवाले आप सो मुझसे उपाय पूछते हैं। यह हमारा अभाग्य नही है तो क्या है ? हम तो आज्ञाकारी ठहरे। आज्ञा देनेवाले तो आप हैं। यही हमारे कुल का रास्ता है। यथा · मोहि सम यह अनुभयेउ न दूजे। सब पायेउँ रज पावनि पूजे। उत्तर मे भरतजी ने ऐसे स्नेहमय वचन कहे कि गुरुजी के हृदय में अनुराग उमग आया। तात्पर्य यह कि आप उपाय बतलाइये। हम लोग तदनुकूल आचरण करें।

तात बात फुरि राम कृपाही। राम विमुख सिधि सपनेहुँ नाही॥
सकुचउँ तात कहत एक बाता। (अरध तजहि बुध सरबसु जाता॥१॥
तुम कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअहि लखन सीय रघुराई॥
सुनि सुबचन हरखे दोउ भ्राता)। भे प्रमोद परिपूरन गाता॥२॥

अर्थ हे तात ! पर राम कृपा की बदौलत ही यह बात है। राम के विमुख तो सपने मे भी सिद्धि नही है। बेटा ! मैं एक बात कहने मे सङ्कोच करता हूँ · बुद्धिमान् लोग सर्वस्व जाता देखकर आधा छोड देते हैं। तुम दोनो भाई वन जाओ। लक्ष्मण सीता और रामजी को लौटा लिया जाय। ऐसा सुन्दर वचन सुनते ही दोनो भाई के शरीर मे पुलक हो गया।

व्याख्या मैं टेक कर लेता था उसे कर डालता था। यह बात सच है। पर वह सिद्धि भी तो रामकृपा का ही फल है। यहाँ तो राम से ही काम पड गया है। अत· टेक चल नही सकती। राम की कृपा से टेक निबहता है। उनके विमुख होने से सिद्धि कहाँ ?

गुरुजी ने यह बात तो कही। फिर भी उपाय बतलाने का बोझा तो उन पर ही रहा। पर जो उपाय था उसके कहने मे गुरुजी को सङ्कोच था। राजा ने अयोध्या का राज भरत को दिया और चौदह वर्ष के लिए वन का राज्य रामचन्द्र को। यथा · पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। सो दोनो भाई अपना अपना भाग बदल लो। तुम वन जाओ। राम राज पर जायँ। पर निरपराध भरत को वन कैसे भेजें। अत· कहा : सकुचउँ तात कहत एक बाता। परम बुद्धिमान् भरतजी भी वसिष्ठ के ही शिष्य थे। कहते ही लख लिया कि गुरुजी के मन में यह बात है। सो आनन्द से भर उठे।

श्री गोस्वामीजी : जहाँ प्रेम तहँ नेम नहिं - का अनुसरण करते हुए से मालूम होते हैं। सातो काण्ड मे कोई भी नियम निबहने नही दिया है। छ काण्डो मे श्लोको से मङ्गलाचरण करते हुए भी लङ्का मे दोहे से मङ्गलाचरण कर दिया। केवल अयोध्या मे प्रायेण नियम निबहा है। परन्तु उसमे भी कई स्थानो पर सात अर्धालियाँ हैं। पचीस दोहे पर बराबर छन्द आते गये हैं। पर स्थल पर २६ दोहो

पर छन्द दिया है। आरण्य मे तो दो अर्धालियो के बाद भी छन्द देखा गया है। अतः किसी विशेष स्थल पर छ अर्धालियाँ भी आश्चर्य जनक नही है।

राजापुर की प्रति को मैं प्रतिष्ठित प्राचीनतम प्रति मानता हूँ। उनमे उपर्युक्त कोष्ठान्तर्गत चार अर्धालियाँ अर्धं तजहिं बुध सर्बस जाता। आदि नही है। न उनकी आवश्यकता है और न सामञ्जस्य बैठता है। सर्बस क्या है ? अर्धं क्या है ? जो अर्धं बतलाया जाता है वह वस्तुत अर्ध होता है कि नही ? लखन सीय रघुबीर के लौटने मे दोनो भाइयो के वन जाने की कारणता कैसे हुई ? इन प्रश्नो का यथार्थ उत्तर नही मिलता। तुम कानन गवनहु दोउ भाई। ऐसा गुरुजी का आदेश सुनने पर भी उनसे : कीजिय बचन प्रवान कहकर प्रमाण माँगना और वन को न चले जाना और गुरुजी के सकुचहुँ तात कहत एक बाता। कहकर एकदम न ठहरना और बेधडक उस बात को कह डालना अस्वाभाविक मालूम पडता है।

यह बात अवश्य है कि अयोध्या में गुप्त भाव भरे हुए हैं और कठिनता से हाथ आते हैं। इस काण्ड मे आदेश से कम काम लिया जाता है। रुख से काम लिया जाता है। भरतजी को सोचते सोचते रात बीत गयी। कोई युक्ति प्रभु के लौटाने की स्थिर नही कर सके। कौन भरतजी ? जिनके महिमा सिन्धु के किनारे मुनिजी की मति अबला सी खडी रह गयी। उनके मन में यह धर्मसम्मत युक्ति भी आयी कि पिता ने प्रभु को चौदह वर्ष के लिए वन दिया और मुझे राज्य दिया। सो प्रभु तो उसे स्वीकार करके वन चले आये। पर मुझे अस्वीकार है। इसलिए हम दोनो भाई अपना अपना हिस्सा अदल बदल कर लें। इस भाँति प्रभु के धर्म मे पीडा भी न होगी। केवल यह एक युक्ति है जिसे धर्मसम्मत कह सकते हैं। पर प्रभु मुझे भी पिता की आज्ञा से हटने न देंगे। यथा मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि मँह कुसमउ बाम बिधाता। इसलिए यह युक्ति भी ठहर न सकी।

यहाँ सभा मे मुनिजी सरकार के लौटने का उपाय पूछने लगे। भरतजी खिझलाकर कहने लगे : बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु। इस पर गुरुजी ने उसी एक मात्र उपाय को कहना चाहा। पर उस उपाय का कहनेवाला भी कैकेयी की भाँति निन्द्य समझा जायगा। अत इतना ही कहकर ठहर गये : सकुचहुँ तात कहत एक बाता।

मुनिजी के मुख से यह बात निकलते ही समझनेवाले लोग समझ गये कि वह कौन सी बात है। भरतजी प्रसन्न हो गये कि इस बात पर यदि मुनिजी स्थिर हो जायँ तो सरकार को भी मानना पडेगा। रह गयी मुझे निष्कारण वन भेजने की बात जिसके कहने मे मुनिजी को सङ्कोच है सो तो मुझे परम इष्ट है। अतएव मुनिजी के सङ्कोच मिटाने और उन्हे उसी बात पर दृढ रखने के लिए कहते हैं : कानन करहुँ जनम भर बासू। एहि ते अधिक न मोर सुपासू ॥ नाथ निज कीजिअ बचन प्रवान।

यह बात अवश्य है कि इस प्रकार अर्थ करने मे दोनो भाइयो के हिस्से के अदल बदलवाली बात की कल्पना करनी होगी। परन्तु भरत के वन भेजने में

ऐसी कल्पना बिना किये अर्थ बैठ ही नही सकता। चाहे कोई भी अर्थ किया जाय। अत मै राजापुर की प्रति के पाठ से पूर्ण सम्मत हूँ और कौष्ठान्तर्गत चार पद मुझे क्षेपक मालूम होते हैं।

मन प्रसन्न तन तेजु बिराजा। जनु जिय राउ रामु भये राजा ॥
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी। सम दुख सुख सब रोवहिं रानी ॥३॥

अर्थ मन प्रसन्न हो गया। शरीर मे तेज विराजमान हो गया। मानो चक्रवर्तीजी गये और रामजी राजा हो गये। लोगो को लाभ अधिक और हानि थोडी थी। रानियो के लिए दु ख सुख समान ही रह गया। वे रोने लगी।

व्याख्या दो बात का शोक था। एक चक्रवर्तीजी के सुरपुर गमन का। दूसरे राम के वनवास का। सो मानो दोनो बिगडी हुई बातें बन गयी। ऐसी प्रसन्नता भरतजी को हुई। दशरथजी के जी उठने के समान खुशी हुई। अत मन प्रसन्न हो गया और रामजी के राजा होने के समान उत्साह हुआ। अत शरीर मे तेज विराजमान हुआ। नही तो गँवारी कह रही थी मुख प्रसन्न नहिं मानस खेदा। इतनी खुशी का कारण यह कि भरतजी सोचते हैं कि रामजी के राजा होने से लोगो को बडा लाभ होगा और मेरे वन जाने से हानि बहुत थोडी होगी। पर रानियाँ रोने लगी कि एक बेटा लौटा तो दूसरा वन चला। उनके लिए बात वह की वही रह गयी।

कहहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हे। फलु जग जीवन्ह अभिमत दीन्हे ॥
कानन करउँ जनम भरि बासू। एहि ते अधिक न मोर सुपासू ॥४॥

अर्थ भरतजी ने कहा कि मुनिजी का कहा करने से ससार के जीवो को अभिमत देने का फल मिलेगा। मैं जन्म भर वन मे ही रहूँ इससे बढकर मुझे कोई सुभीता नही है।

व्याख्या भरतजी कहते है सकचहुँ तात कहत एक बाता। कहकर मुनिजी को जो बात अभिप्रेत हैं। उसके करने से जगत् के जीवो को अभिमत दान का फल होगा। रामजी के वनवास से सारे विश्व को शोक है। उनका राज पर लौटना सबको इष्ट है। सम्पूर्ण विश्व को अभिमत दान के पुण्य की सीमा नही है। इसके लिए यदि मै जन्म भर वनवास करूँ तो भी थोडा है। इससे अच्छा सुअवसर कब मिलेगा कि केवल वनवास करने से जीव मात्र के अभिमत दान का फल मिले।

गुरुजी ने जिस बात का इशारा मात्र किया था उसके खोल देने से भरतजी का यह अभिप्राय था कि कहने मे जब गुरुजी सङ्कुचित होते है तो उनको सङ्कोच मे रखना उचित नही। अत स्वय उस बात को स्पष्ट करके तदनुकूल कार्य करने मे अपना बडा भाग्य होना ख्यापन करते हैं।

दो अन्तरजामी रामु सिय, तुम सरवग्य सुजान।
जौ फुर कहहु त नाथ निज, कीजिअ बचनु प्रवान ॥२५६॥

अर्थ : राम सीता अन्तर्यामी हैं और आप सर्वज्ञ तथा सुजान हैं। यदि आप सच कह रहे हैं तो हे नाथ ! आप अपने वचन को प्रमाण कीजिये अर्थात् पूरा कीजिये।

व्याख्या : भरतजी ने कहा कि आप जिस बात को कह रहे हैं वह मुझे स्वीकार है। उसे करने में मुझे बड़ा आनन्द है। चौदह वर्ष नहीं मैं यावज्जीवन वनवास के लिए प्रस्तुत हूँ। मेरी बातें बनावटी नहीं स्वयं सरकार तथा महारानी सीता देवी अन्तर्यामी हैं और आप सर्वज्ञों में भी सुजान हैं। देख लीजिये कि मेरे हृदय में कितना आनन्द है। सम्बन्ध प्रागल्भ्य से कहते हैं कि यदि आपने मुझे बहकाने के लिए न कहा हो तो अपने वचन का प्रमाण कीजिये। सरकार को लौटाइये और मुझे वन भेजिये।

भरत बचन सुनि देखि सनेहू। सभा सहित मुनि भयउ बिदेहू॥
भरत महा महिमा जलरासी। मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी॥१॥

अर्थ : भरत का वचन सुनकर और उनकी प्रीति देखकर मुनि वसिष्ठ को सभा के सहित देह की सुधि न रही। भरत की महा महिमा रूपी समुद्र के तट पर मुनिजी की बुद्धि स्त्री के समान खड़ी रह गयी।

व्याख्या : कानन करहुँ जनम भर बासू। एहि ते अधिक न मोर सुपासू। इत्यादि वचन सुनकर : मन प्रसन्न तन तेज बिराजा। जनु जिय राउ राम भये राजा। ऐसी प्रेम की दशा देखकर न मुनिजी को तन मन की सुधि रह गयी और न सभासदों को तन मन की सुधि रह गयी।

भरत की प्रशंसा करने के लिए उनकी महिमा का बखान करने के लिए मुनिजी का जी उमगा। पर मुनिजी की बुद्धि नहीं काम करती कि कैसे भरतजी का बखान करें। उनकी महा महिमा देखकर मुनिजी की बुद्धि ऐसी स्तब्ध रह गयी जैसे महा समुद्र को देखकर कोई स्त्री स्तब्ध रह जाय और उसे न सूझे कि इसमें मेरी गति कैसे हो। यहाँ अबला शब्द देखकर गोस्वामीजी ने यह दिखलाया कि वह प्रबला है अबला नहीं है जो दुःसाहस कर बैठे।

गा चह पार जतनु हियँ हेरा। पावत नाव न बोहितु बेरा॥
अउर करहि को भरत बड़ाई। सरसी सीप कि सिंधु समाई॥२॥

अर्थ : पार जाना चाहती है। मन से अनेक उपाय ढूँढे। पर उसे न नाव ही मिली न जहाज ही मिला और न बेड़ा ही हाथ लगा। दूसरा कौन भरत की बड़ाई कर सकता है। क्या तालाब की सीप में समुद्र समा सकता है ?

व्याख्या : समुद्र का सन्तरण भुज बल से नहीं हो सकता। अतः उसका उपाय नाव जहाज या बेड़ा की प्राप्ति है। इसी भाँति जब मुनिजी की बुद्धि ने भरत की महा महिमा रूपी समुद्र के पार करने के लिए विद्यारूपी नाव वेदरूपी जहाज और शरीररूपी बेड़ा का सहारा चाहा। पर कोई प्राप्त न हुआ। सब प्रयत्न

निष्फल गये · विद्या के नाव होने का प्रमाण। यथा : केवट वुधि विद्या बड़ि नावा। वेद के जहाज होने का प्रमाण। यथा : वंदौं चारिउ वेद भव वारिधि बोहित सरिस। शरीर के बेड़ा होने का प्रमाण। यथा : नर तन भव वारिधि कहुँ बेरो।

भावार्थ यह कि न तो विद्या के बल से पद्यादि की रचना से भरत की महामहिमा कह सके। न वेद मन्त्रो के उद्धरण से ही महिमा कही जा सकी। न न शरीर की चेष्टा से ही हृद्गत भाव व्यक्त कर सके। अतः मुनिजी की बुद्धि स्तब्ध रह गयी।

जब विवेक सागर गुरु वसिष्ठजी ही बडाई करने मे असमर्थ रहे तो दूसरे किस मे यह सामर्थ्य कहाँ से आवे कि भरत की बड़ाई कर सके। समुद्र से सीपी निकलती है। उसमे समुद्र नही समा सकता। अत जव समुद्र की सीपी मे जो कि दीर्घाकार होती है समुद्र नही समा सकता। तो तालाब की सीपी में जो कि अति क्षुद्राकार होती है समुद्र कैसे समायेगा ? अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाय मन विधि हरिहर को। विधि समुद्र हैं। उससे उत्पन्न सीपी स्थानीय वसिष्ठजी है। सो भरत के स्नेह की महिमा मे विधि की गति नही। तव वसिष्ठजी की गति न होना स्वभाव से प्राप्त है। सामान्य लोग तो पल्वल की सीपी हैं। इनकी उत्पत्ति जीवो से है। इनके मन में भरत की महिमा कैसे आ सक्ती है।

भरतु मुनिहि मन भीतर भाए। सहित समाज राम पहिं आए॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु। बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु॥३॥

अर्थ भरतजी मुनिजी के मन मे बहुत अच्छे लगे। तब समाज के सहित रामजी के पास आये। प्रभु ने प्रणाम करके सुन्दर आसन दिये और सब मुनिजी की आज्ञा पाकर बैठ गये।

व्याख्या मुनिजी भरतजी की बडाई तो नही कर सके। पर उनके हृदय मे उनकी महिमा का अनुभव हुआ और भरतजी पर उनका बडा प्रेम हो गया। अत. कुछ न कहकर भरतजी का काम करने के लिए रामजी के पास चल पडे। सारा समाज साथ हो गया। रामजी के पास पहुँचे। सरकार ने उठकर समयानुकूल सुन्दर आसन दिये। सरकार के सामने सब खडा रहना चाहते हैं। मुनिजी के अनुशासन पाने पर बैठे। यथा : बैठन सर्बाहि कह्यो गुरुज्ञानी।

बोले मुनिवरु बचन बिचारी। देस काल अवसर अनुहारी॥
सुनहुँ राम सरबग्य सुजाना। धरम नीति गुन ग्यान निधाना॥४॥

अर्थ मुनियो मे श्रेष्ठ वसिष्ठजी देश काल और अवसर के अनुसार विचार कर बोले। हे सर्वज्ञ, सुजान, धर्म नीति, गुण और ज्ञान के निधान रामजी सुनिये।

व्याख्या : मुनिजी ने जब भरतजी को बुलवाया था उस अवसर पर समय के समान बोले थे। यथा : बोले मुनिवर समय समाना। पर यहाँ रामजी के सामने देश काल अवसर के अनुसार बोले। मुनिजी ने विचार किया कि ऐसे अवसर पर

रामजी से ही उपाय पूछना चाहिए। यहाँ सब लोग वन मे हैं। राजगद्दी खाली पड़ी है। सब लोग आर्त हो रहे हैं। भरतजी गद्दी स्वीकार नही करते। ऐसी स्थिति अधिक दिन चल नही सकती एव मनन करनेवाले श्रेष्ठ मुनिजी देश काल अवसर का विचार करते हुए बोले।

रामजी को सम्बोधन करते हुए सर्वज्ञ सुजान धर्म नीति और गुणनिधानादि विशेषण से विशेषित करते हैं। भाव यह कि एव गुण विशेषण विशिष्ट पुरुष ही ऐसे अवसर पर उपाय कह सकता है। रामजी सर्वज्ञ शिरोमणि हैं। कोई बात उनसे छिपी नही। सुजान हैं। गुण ग्राहक हैं। सबका सम्मान जानते हैं। धर्म नीति मे बाधा न पड़े। दोष और मोह से सम्पर्क न हो ऐसा उपाय बतला सकते हैं।

दो. सबके उर अंतर बसहु, जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी भरत हित, होइ सो कहहु उपाउ ॥२५७॥

अर्थ : सबके हृदय मे वास करते हो। सबके भाव कुभाव को जानते हो। जिससे पुरजन माता और भरत का हित हो ऐसा उपाय बतलाओ।

व्याख्या : सबके उर अतर बसहु। कहकर वसिष्ठजी आज ऐश्वर्य खोले देते हैं। क्योकि सबके हृदय देश मे रहनेवाला तो केवल ईश्वर है। ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। सो रामजी से किसी के हृदय का भाव छिपा नही है। अतः परिस्थिति समझाने की आवश्यकता नही। जो रामजी उपाय कहे वही धर्माविरोधी होगा। सन्तोष कारक होगा और हित होगा। अत कहते हैं : पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहहुँ उपाउ।

भाव यह कि हम लोगो को उपाय नही सूझ रहा है। पुरजन जननी भरत हित पर ध्यान देने से धर्म मे बाधा है। धर्म की रक्षा करने से पुरजन जननी भरत हित नही होता और पुरजन जननी भरत हित किसी भाँति उपेक्षा का विषय भी नही है।

आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ ॥
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ ॥१॥

अर्थ : आर्त विचारकर कभी नही कहते। जुआडी को अपना ही दाँव सूझता है। मुनिजी का वचन सुनकर रामजी कहने लगे कि नाथ! उपाय तो आपके हाथ मे है।

व्याख्या : इस पर यदि कहा जाय कि आप गुरु हैं। विवेक सागर हैं। आपके हाथ मे विश्व बदरीफल के समान है। आपका ही उपाय बतलाना प्राप्त है। अतः कहते हैं कि इस समय मैं आर्त हूँ। मैं विचार पूर्वक कुछ नही कह सकता। आर्त होने का कारण कहते हैं कि मेरी दशा इस समय जुआडी की सी हो रही है। मुझे भरत की रुचि रखने के अतिरिक्त और कुछ सूझ नही रहा है जुआडी को अपना ही दाँव सूझता है। हमारे सर्वस्व तो आप हैं। यथा : मुनि जन धन सर्बस सिव प्राना।

सो आप लौटते हैं। या वन जाते हैं। यही दाँव लगा हुआ है। सो मुझे आपका लौटना ही सूझता है। उचित अनुचित नही सूझता। इतने में ही मुनिजी को जो कुछ कहना रहा सब कह दिया।

मुनिजी ने कहा था पुरजन जननी भरत हित होय सो कहिय उपाय। इस पर सरकार कहते हैं कि उपाय आपके हाथ है और तदनुसार कार्य करना मेरा काम है। दोनो भाई एक ही बात बोलते हैं। भरतजी ने कहा : बूझिअ मोहि उपाय अब सो सब मोर अभाग। और रामजी कह रहे हैं : नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ। अर्थात् उपाय कहना आपका कर्तव्य और आज्ञापालन मेरा कर्तव्य है।

सबकर हित रुख राउरि राखे। आयसु किए मुदित फुर भाखें॥
प्रथम जो आयसु मो कहुँ होई। माथे मानि करउँ सिख सोई॥२॥

अर्थ : आपका रुख रखने मे सच कहने और प्रसन्न होकर आज्ञा पालन मे सबका हित है। पहिले मुझे जो आज्ञा हो मै उस शिक्षा को माथे पर चढाकर करूँगा।

व्याख्या : मन से आपके रुख पर ध्यान रक्खे। कर्म से आपकी आज्ञा प्रसन्न मन से पालन करे और वचन को सत्य कहे। इसी मे पुरजन जननी और भरत सबका हित है। केवल कहता ही नही हूँ करने को स्वय तैयार हूँ। आज्ञा हो वन जाऊँ। आज्ञा हो अवध फिर चलूँ। पिता की आज्ञा छोड दूँ। जो आज्ञा हो वही करूँ और प्रसन्नता से महाप्रसाद रूप से आज्ञा को सिर चढाऊँ। यदि इस पर कहा जाय कि आप तो मान लेंगे। पर क्या इसी भाँति और लोग भी मानेंगे ? अत: कहते है :

पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाई। सो सब भाँति घटिहि सेवकाई॥
कह मुनि राम सत्य तुम भाखा। भरत सनेह विचारु न राखा॥३॥

अर्थ : तत्पश्चात् जिसको जो आज्ञा होगी वह सब तरह से सेवकाई करेगा। मुनिजी ने कहा कि रामजी ! आपने सत्य कहा। पर भरत के स्नेह ने विचार रहने नही दिया।

व्याख्या : भाव यह कि मै ही नही सब लोगो को आपकी आज्ञा माननी होगी। आपकी आज्ञा पालन करने के लिए ही मैंने जन्म लिया है। यथा : आयसु काह कहिय किन मोही। आप आर्त क्यो होते है ?

मुनिजी ने कहा कि रामजी ! आपका कहना ठीक है। सारा समाज और स्वय आप भी मेरा कहना मानेंगे। पर मै तो गुरु हूँ। मुझे तो जो धर्म है वही कहना चाहिए। पर भरत के स्नेह ने मुझे विचारपथ से विचलित कर दिया है। यहाँ सीधे सीधे धर्म कथन से भरत के प्रेम को बडा धक्का पहुँचेगा। प्रेमी प्रेमपात्र के समझाने से ही समझ सकता है। केवल धर्म की व्यवस्था देने से नही समझता।

तेहि ते कहउँ बहोरि बहोरी। भरत भगति बस भइ मति मोरी॥
मोरे जान भरत रुचि राखी। जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी॥४॥

अर्थ : इसलिए मै बार बार कहता हूँ कि मेरी बुद्धि भरत की भक्ति के वश हो गयी है। मेरी समझ मे भरत की रुचि रखकर जो कीजियेगा वही शुभ होगा। इस विषय मे मै शङ्कर को साक्षी देता हूँ।

व्याख्या : वसिष्ठजी कहते हैं कि पहिले भी मैंने कहा था : भरत हित होय सो कहिय उपाउ। और अब भी कहता हूँ भरत सनेह विचार न राखा। मेरी बुद्धि अपने वश मे नही है। भरत की भक्ति के वश हो गयी है। भरत जैसा चाहते है। मेरी बुद्धि वैसी ही हो गयी है। मैं इस समय यथार्थ कहने मे असमर्थ हूँ। फिर भी इतना कहे देता हूँ कि चाहे घर लौटिये चाहे वन जाइये पर जो करिये वह भरत की रुचि रखते हुए करिये। इसमे सन्देह न कीजिये कि भरत की रुचि रखने मे अधर्म स्पर्श करेगा। मैं शङ्कर को साक्षी देकर कहता हूँ कि भरतजी की रुचि रखकर जो हो कुछ किया जायगा उससे शुभ ही होगा। क्योकि भरत जो समझेंगे कहेगे करेंगे वही ससार मे धर्मसार होगा।

दो भरत बिनय सादर सुनिअ, करिअ बिचार बहोरि।
करब साधुमत लोकमत, नृपनय निगम निचोरि ॥२५८॥

अर्थ भरतजी के विनय को आदर के साथ सुनिये और फिर से विचार कीजिये और साधुमत लोकमत राजनीति और वेद का जो निचोड हो वही कीजिये।

व्याख्या भरत की रुचि समझने के लिए उनके सन्तोष के लिए भरत के विनय को तदनुकूल कार्य करने का भाव हृदय मे रखकर सुनिये। मैं यह नही कहता कि वैसा कर ही डालिये। भरत का मनोभङ्ग न होने पावे और साधुमत लोकमत राजनीति और वेद का सार ग्रहण करके कार्य कीजिये। मुनिजी भरत के विनय का बल देख चुके हैं जिससे कि उनकी बुद्धि भरत के वश हो गयी। मुनिजी जानते हैं कि भरत की विनय सुनने के बाद भक्तवत्सल बिना द्रवीभूत हुए नही रह सकते। साराश यह कि आप उचित ही करिये पर भरत को सन्तुष्ट करके।

गुर अनुराग भरत पर देखी। राम हृदय आनदु बिसेखी ॥
भरतहि धरम धुरधर जानी। निज सेवक तन मानस बानी ॥१॥

अर्थ : गुरुजी का अनुराग भरत पर देखकर रामजी को विशेष आनन्द हुआ। भरतजी को धर्म धुरन्धर और मनसा वाचा कर्मणा अपना सेवक जानकर।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : भरत मुनिहि मन भीतर भाये। सो मन के भीतर अच्छा लगना ही अनुराग है। वह अनुराग गुरुजी के वचनो से खूब विस्पष्ट हो गया। मोरे जान भरत रुचि राखी। जो कीजिय सो सुभ सिव साखी। इससे अधिक क्या कहा जा सकता है ? सो गुरुजी का इतना प्रेम भरत पर देखकर सबको आनन्द हुआ। पर रामजी को विशेष आनन्द हुआ। क्योकि भरत रामजी को प्राणप्यारे हैं।

यथा : तुम रघुपतिहिं प्राणहुँ ते प्यारे। अपने प्रिय का इतना बडा भाग्य देखकर विशेष आनन्द हुआ।

रामजी की अपार भक्ति गुरु चरणो में है। गुरुजी के अनुराग होने से भरतजी को बडभागी समझा और उनको अपना आज्ञाकारी तथा सयाने साधु पहिले से ही जानते थे। यथा : भरत कहे मँह साधु सयाने। अतः भरतजी पर ही निर्णय छोड़ देना रामजी ने ठीक समझा। नीति भी है कि जिस पर भार दे उसे पहिले समझ भी लेना चाहिए।

बोले गुर आयसु अनुकूला। बचन मंजु मृदु मंगलमूला ॥
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भएउ न भुअन भरत सम भाई ॥२॥

अर्थ : गुरुजी की आज्ञा के अनुकूल मनोहर कोमल और मङ्गलमूल वचन बोले। हे नाथ! आपकी शपथ और पिता के चरणो की दोहाई देकर कहता हूँ कि इस ससार मे भरत सा भाई कोई हुआ नहीं।

व्याख्या : गुरुजी की आज्ञा के अनुकूल रामजी बोले। अर्थात् भरतजी की रुचि को भलीभाँति स्थान देने के लिए बोले :

नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुवन भरत सम भाई ॥
जे गुर पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बडभागी ॥
मंजुवचन : राउर जापर अस अनुरागू। को कहि सकै भरत कर भागू ॥
मृदु वचन : लखि लघु बंधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई ॥
मङ्गलमूल वचन : भरत कहहिं सोइ किये भलाई।

शपथ दो ही का लिया जाता है पूज्य का या प्रिय का। यहाँ रघुनाथजी दोनो का शपथ लेते हैं : पूज्य वसिष्ठजी का और प्रिय पिताजी का और कहते है : भयउ न भुवन भरत सम भाई। इस भाँति भरत के स्नेह का विचार किया। भरतजी के पीठ पीछे भी लक्ष्मणजी से कहा था : लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना।

जे गुर पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी ॥
राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू ॥३॥

अर्थ : जो गुरु के चरण कमल के अनुरागी है वे लोक और वेद मे भी बडभागी माने जाते हैं। आपका जिस पर ऐसा अनुराग है उस भरत के भाग्य को कौन कह सकता है।

व्याख्या : गुरु के चरण मे प्रीति होने से इस लोक और परलोक दोनो मे कल्याण होता है। इसलिए लोकहुँ वेदहुँ बड़भागी कहा। यथा : बंदौ गुरुपद पदुम परागा से : बडे भाग उर आवै जासू तक।

यहाँ तो बात बहुत चढी बढी है। स्वयं गुरुजी कहते हैं : भरत भगति बस

भइ मति मोरी। इत्यादि। यहाँ तो गुरुजी का अनुराग भरत पर है। इसलिए भरत के भाग्य का वर्णन कौन कर सकता है।

लखि लघु बधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बडाई॥
भरत कहहि सोइ किएँ भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई॥४॥

अर्थ छोटे भाई को देखकर उसके मुँह पर बडाई करने मे बुद्धि को सङ्कोच होता है। भरत जो कहे वैसा ही करने मे भलाई है। ऐसा कहकर रामजी चुप हो गये।

व्याख्या बडे के सम्मुख उनकी बडाई करना स्तुति प्राप्त है। परन्तु अपने से छोटे की बडाई उसके मुख पर नही करना चाहिए। भरत छोटा भाई है। उसके सामने उसकी बडाई करने मे बुद्धि सङ्कुचित होती है। तात्पर्य यह कि भरत म बडे गुण हैं जो मैं उनके सामने नही कह सकता।

जब भरतजी सामने नही रहे तब रामजी ने लक्ष्मण से भरतजा की बडाई करते कहा था।

सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपच महँ सुना न दीसा॥
भरतहि होइ न राजमद बिधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँकि काँजी सीकरनि छीर सिंधु बिनसाइ॥
सगुन खीर अवगुन जल ताता। मिलइ रचइ परपच बिधाता॥
भरत हस रबिबस तडागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा॥
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्ह उँजियारी॥ इत्यादि।

अन्त मे रामजी ने कहा कि भरत जो कहे तदनुसार कार्य करने म भलाई है। भाव यह कि भरत साधुमत लोकमत नृप नय निगम को अवहेलना कभी करेंगे नही। अत यही विचार ठीक है कि भरत जो कहे वही सब करें मै भी करूँ।

दो तब मुनि बोले भरत सन, सबु सँकोचु तजि तात।
कृपासिंधु प्रिय बधु सन, कहहु हृदयँ की बात॥२५९॥

अर्थ तब मुनिजी ने भरत से कहा कि हे तात! सब सङ्कोच छोडकर कृपासिन्धु प्रिय बन्धु रामजी से अपने हृदय की बात कह डालो।

व्याख्या रामजी को चुप देखकर मुनिजी बोले कि यही अवसर है अपने हृदय की बात कहने का। तुम मुझसे उपाय के लिए कहते थे। सो उपाय मैंने कर दिया। रामजी ने सब निर्णय तुम्हारे ऊपर छोड दिया। इस समय यदि सङ्कोच करोगे ता बात न बनेगी। फिर जिससे कहना है वे कृपासिन्धु हैं और प्रिय बन्धु हैं। उनसे दिल खोलकर बोलो। महूँ सनेह सकोचबस सन्मुख कहेउँ न बैन वाली बात इस अवसर पर ठीक नही।

सुनि मुनि बचन राम रुख पाई । गुर साहिब अनुकूल अघाई ॥
लखि अपने सिर सबु छरु भारू । कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारू ॥१॥

अर्थ : मुनिजी का वचन सुनकर रामजी का रुख पाकर गुरु और स्वामी क
पूरी तरह से अनुकूल देखकर और अपने ऊपर नहीं सँभलनेवाला बोझा अनुभ
करके कुछ कह नहीं सकते भरतजी विचार कर रहे हैं।

व्याख्या : मुनिजी का वचन सुना। सङ्कोच छोड़कर बोलने के लिए औ
सरकार का भी रुख पाया कि हाँ कहो। गुरुजी ने कहा था : राखे राम रजा
रुख हम सबकर हित होय। सो रुख भी देख लिया। अवसर ठीक पाकर ही बोलन
चाहिए। सो भरतजी ने देख लिया कि गुरुजी और स्वामी रामजी पूरी तरह
अनुकूल हैं। विनय करने का यही अवसर है।

गुरुजी ने मेरी ओर से बहुत कहा। अतः स्वामी रामजी ने सब बोझा मे
ऊपर छोड़ दिया। यह बोझा मेरे सँभालने लायक नहीं है। पिता के वचन त्याग
से अधर्म है। सो उसे त्यागने को कैसे कहूँ। नहीं कहता हूँ तो पुरजन जननी औ
अपना स्वार्थ भी नहीं सधता। इधर सँभालो तो उधर नहीं सँभलता। उध
सँभालो तो इधर नहीं सँभलता। अपने ऊपर बोझा : जिम्मेदारी आ पड़ना बड़
कठिन समस्या है। वही भरतजी जो सोचते थे : अवसि फिरब गुरु आयसु मानी
मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी। मातु कहे बहुरहिं रघुराऊ। राम जननि ह
करबि कि काऊ। मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेति मँह कुसमउ बाम बिधाता
वही जब उनके ऊपर सब बोझा रख दिया गया तब लौटने के लिए कहने मे
हिचकते हैं। विचार करने लगे कि रामजन्म संसार भर के मङ्गल के लिए है
रामजी खलदल दलन देव हितकारी हैं। सो देवताओं का हित इनके वन जाने मे
है। प्रजाओं का हित इनके लौटने मे है। यहाँ क्या करना चाहिए।

पुलकि सरीर सभाँ भये ठाढे । नीरज नयन नेह जल बाढ़े ॥
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा । एहि ते अधिक कहौं मैं काहा ॥२॥

अर्थ : शरीर मे पुलक हो गया। सभा में खड़े हो गये। कमल ऐसे नेत्र आँसू
से भर गये। कहने लगे कि मेरा कहना तो मुनिनाथ ने निवाह दिया। इससे अधिक
मैं क्या कहूँ ?

व्याख्या : गुर और स्वामी को अनुकूल जानकर भरतजी को हर्ष से सात्त्विक
भाव हुआ। रोंगटे खड़े हो गये। नेत्रों मे जल भर आया। बोलने के लिए सभा में
खड़े हो गये। सबके हित अनहित का प्रश्न है। भरत के मन्त्र को ही पसन्द करके
सब लोग भरतजी के साथ आये हैं। अतः सब कुछ भरतजी के विनय पर ही निर्भर
है। अतः सबके सुनने के लिए भरतजी खड़े होकर बोले। अथवा बड़ों की सभा है।
अतः बोलने के समय खड़े हो गये। सभा में खड़ा होकर बोलने की रीति अति प्राचीन
मालूम होती है।

भरतजी कथन के प्रारम्भ मे ही मुनिजी के कथन की चर्चा करते हैं कि जो कुछ मुझे कहना था वह सब मुनिजी ने कह दिया। अर्थात् मेरी ओर से बोलने मे गुरुजी ने कुछ बाकी नहीं छोडा।

मै जानऊँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मो पर कृपा सनेह बिसेखी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी॥३॥

अर्थ • मैं अपने स्वामी का स्वभाव जानता हूँ कि अपराधी पर भी कभी क्रोध नही करते। मुझ पर तो अधिक प्रेम करते हैं। खेल मे भी क्रोध करते कभी नही देखा।

व्याख्या भयउ न भुवन भरत सम भाई का उत्तर देते हुए कहते हैं कि यह तो मेरी जानी बात है कि अपराधी पर भी कभी न क्रोध करने का सरकार का स्वभाव है। मैंने पहिले ही कहा था यद्यपि मैं अनभल अपराधी। भा मोहिं कारन सकल उपाधी। तदपि सरन सम्मुख मोहिं देखी। छमि सब करिहै कृपा बिसेखी। वही हुआ। मेरे अपराध पर ध्यान नही उलटे मेरे भाईपन की प्रशसा हो रही है।

मेरे ऊपर तो सदा से ही अधिक कृपा करने का स्वभाव है। खेलने मे झगडा हो ही जाता। मैंने तो खेलने मे भी सरकार को कभी क्रोध करते नही देखा। यथा कहत राम बिधु बदन रिसौंहे सपनेहुँ लख्यौ न काउ। सो आज भी मुझ पर परम कृपा है।

सिसुपन ते परिहरेउँ न सगू। कबहु न कीन्ह मोर मन भगू॥
मै प्रभु कृपा रीति जियँ जोही। हारेहु खेल जितावहिं मोही॥४॥

अर्थ बचपन से कभी साथ नही छोडा। कभी मेरा मन नही तोडा। मैंने प्रभु की कृपा की रीति का अनुभव किया है कि हारा हुआ खेल भी मुझे जिता देते थे।

व्याख्या भरतजी सिसुपन ते परिहरेउ न सगू कहकर अपना दु ख प्रकट कर रहे हैं कि आज जन्म का सग छूट रहा है। रामचरन पकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजै न पासू। सो आज भौंरे का कमल से विछोह हो रहा है। आज तक सरकार ने कभी मेरा मन भङ्ग नही किया। बचपन मे भी जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दियावत दाउँ। सो आज मेरा मन भङ्ग हो रहा है।

मैंने प्रभु की कृपा की रीति का अनुभव किया है कि हारी हुई बाजी मुझे जिता देते थे। वही स्वभाव पडा है। वही आशा दृढ है। आज भी मेरी हारी हुई बाजी जिताइये।

दो महूँ सनेह सकोच बस, सनमुख कही न बयन।
दरसन तृपति न आजु लगि, पेम पियासे नयन॥२६०॥

नये घोघे से ही कोई मूल्यवान् वस्तु नही निकलती तो पुराने से मोती कै निकलेगी। कही ताल पाठ है। वहाँ पर यह अर्थ करना होगा कि जब समुद्र के घो से मोती नही निकलती तो ताल के घोघे से कैसे निकलेगी।

सपनेहु दोस क लेस न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू ॥
बिनु समझे निज अघ परिपाकू। जारिउँ जायँ जननि कहि काकू ॥३।

अर्थ : सपने मे भी किसी के दोष का लेश नही है। मेरा दुर्भाग्य रूपी सम का थाह नही है। बिना अपने पापो का परिणाम समझे मैंने माता को का कहकर व्यर्थ जलाया।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि किसी को दोष का लेश भी नही है। न ब्रह्मदेव का कोई दोष है और न माता का ही दोष है। बिना पाप के दुःख होत नही। पूर्वजन्म कृत कर्म ही वर्तमान जन्म का भाग है। मेरे पूर्वार्जित कर्म ख खोटे हैं। अतः इस जन्म मे मेरा ऐसा अभाग्य उदय हुआ कि उसे अथाह सम कहा जा सकता है। इस बात को बिना समझे मैंने व्यर्थ ही काकु का प्रयोग कर अर्थात् : जननी तू जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ। ऐसा कहकर माँ का दुःखाया। भिन्नकण्ठध्वनिर्धीरैः काकुरित्यभिधीयते। भिन्न कण्ठध्वनि को पण्डि लोग काकु कहते हैं।

हृदयँ हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहि भल मोरा ॥
गुर गोसाइँ साहिब सिय रामू। लागत मोहि नीक परिनामू ॥४।

अर्थ : मैं अपने मन से चारो ओर ढूंढकर थक गया। केवल एक ही भाँ अच्छी तरह से मेरा भला है कि गुरुजी समर्थ हैं और सीताराम मालिक है। मु परिणाम भला मालूम पड़ता है।

व्याख्या : एकौ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहिं रैन बिहानी। अत भरद्वाजजी से भी कहा : एहि कुरोग कर औषध नाँही। सोधेउँ सकल बिस्व म माँही। यही बात यहाँ कह रहे हैं कि कोई उपाय ऐसा नही जिसमे मेरा भलोभाँ भला हो। एक ही बात का आसरा है कि गुरुजी समर्थ हैं। यथा : सो गोसा बिधि गति जेहि छेकी और सीताराम स्वामी हैं। इन्हे छोडकर मुझे निर्दोष कह वाला कोई नही है। यथा : परिहरि रामसीय जग माँही। कोउ नहिं कहिहि मे मत नाँही। इनके किये मेरा सब प्रकार से भला होगा और इन सब बातो क परिणाम अच्छा होगा।

दो. साधु सभा गुर प्रभु निकट, कहउँ सुथल सति भाउ।
प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर, जानहिं मुनि रघुराउ ॥२६१।

अर्थ : साधु सभा मे गुरुजी और स्वामी के निकट तथा पवित्र स्थल मे

सच्चे भाव से कह रहा हूँ। यह प्रेम है कि प्रपञ्च है। झूठ है कि सत्य है। इसे मुनिजी और रामजी जानते हैं।

व्याख्या : अब हृदय की बात कहते हैं। अतः शपथ ले रहे हैं कि मैं सत्यभाव से कहता हूँ। यहाँ साधु सभा है। तिस पर स्वयं गुरुदेव और स्वामी भी बैठे हैं। चित्रकूट सा तीर्थ है यहाँ पर मैं कह रहा हूँ। असत्य नही कह सकता। यदि कहना भी चाहूँ तो बात छिप नही सकती। मुनि वसिष्ठजी तथा साक्षात् रघुराज खूब समझते है कि मेरा प्रेम है या प्रपञ्च है। मैं झूठ कह रहा हूँ या सच कह रहा हूँ। गुरुजी सर्वज्ञ है और रघुराज अन्तर्यामी हैं।

भूपति मरन पेम पनु राखी। जननी कुमति जगतु सबु साखी॥
देखि न जाहिं बिकल महतारी। जरहिं दुसह जर पुर नर नारी॥१॥

अर्थ : प्रेम के प्रण की रक्षा करके महाराज का देहावसान हुआ। माँ की दुर्बुद्धि को संसार जानता है। माँ लोग ऐसी विकल है कि देखते नही बनता। पुर के नर नारी दु सह ज्वर से जल रहे हैं।

व्याख्या : पहिला शूल यह है कि पिता का देहावसान हुआ। परन्तु सन्तोष की बात इतनी हुई कि प्रेमप्रण की रक्षा मे हुआ। जिसकी प्रशसा स्वय गुरुजी ने किया। यथा : भूप धरमब्रतु सत्य सहारा। जेहि तनु परिहरि प्रेम निबाहा। दूसरी विपत्ति यह कि माँ का दुर्यश ससार मे फैल गया। जिसकी दुर्बुद्धि से महाराज का मरण हुआ। यदि माँ का मरण हो गया होता तो वह भी सह्य था। पर अपयश होना असह्य है। गुरुजी को भी कहना पड़ा। यथा : प्रथम कथा सब मुनिबर बरनी। कैकइ कुटिल कीन्ह जस करनी।

तीसरा शूल यह कि कौसल्यादि माता ऐसी विकल हैं उनकी दशा देखी नही जाती। यथा : मलिन बसन बिबरन बिकल कृस सरीर दुख भार। कनक कलप बर बेलि बन मानहुँ हनी तुसार। चौथा यह कि प्रजागण दु सही विरह यातना भोग रहे हैं। यथा : नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहु सबन्हि सब सम्पति हारी।

महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला॥
सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि बेष लखन सिय साथा॥२॥

अर्थ : मैं ही सब अनर्थों का मूल हूँ। सो सुनकर और समझकर सब शूल मैंने सहा। परन्तु रघुनाथजी लक्ष्मण और सीता के साथ मुनि का वेष बनाकर वन गये। यह सुनकर।

व्याख्या : ये सब अनर्थ मेरे कारण हुए। यथा : सुतहि राज रामहि बन-बासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू। यह सब सुना और मन मे यह विचारा कि जब मैं ही सब अनर्थ का मूल हूँ तो मुझे छोड़कर इन शूलों को कौन सहेगा। अत. ये तीनों शूल सहन करने योग्य न होने पर भी मैं सहन कर गया।

अब शूलो से बड़ा शूल कहते है कि जब सुना कि रघुनाथजी वन को गये। साथ में सीता और लक्ष्मणजी गये और मुनिवेष बनाकर गये।

यथा : राम गवन बन अनरथ मूला।
जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला॥
तथा : पितु आयसु भूषन बसन तात तजे रघुबीर।
बिसमउ हरख न हृदय कछु पहिरे बलकल चीर॥
चले बिपिन सुनि सिय संग लागी। रहइ न रामचरन अनुरागी॥
सुनतहि लखन चले उठि साथा। रहहि न जतन किये रघुनाथा॥

बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाँए। संकर साखि रहेउँ एहि धाए॥
बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भएउ न बेहू॥३॥

अर्थ : कि बिना जूते के पैदल गये। शङ्कर साक्षी हैं कि इस घाव से भी मैं बँच गया। फिर निषाद का स्नेह देखकर इस वज्र से कठिन हृदय में छेद नही हुआ।

व्याख्या : ऐसी दशा में भी पैदल वन गये। पैर में जूते भी नही। यह चोट ऐसी बैठी कि इससे बचना कठिन था। शङ्कर को साक्षी देकर भरतजी कह रहे है कि फिर भी मै बँच गया। यथा : भरतहि बिसरयो पितु मरन सुनत राम बन गौन। हेतु अपनपौ जानि जिअ थकित रहे धरि मौन। फिर निषाद का प्रेम देखा कि सरकार के लिए मरने को तैयार था। यथा : भरत भाइ नृप मै जन नीचू। बड़े भाग अस पाइअ मीचू। इसका प्रेम देखने पर तो मेरे कलेजे को फट जाना चाहता था कि जिसके प्रेम से निषाद प्राण देने को प्रस्तुत है उसका भाई होकर मै जीवित हूँ। पर मेरा कलेजा नही फटा। यह वज्र से भी अधिक कठिन है।

अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जड़ सबइ सहाई॥
जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहि बिषम बिष तापस तीछी॥४॥

अर्थ : अब तो मैंने सब आँखों से देख लिया। जीव जड़ को जीते रहने से सभी सहना पड़ता है 'जिसे देखकर विषम विषवाली साँपिन और बीछी भी जो तपस्वियों के लिए भी तीखी है रास्ता छोड़ देती है।

व्याख्या : पहिले तो सब सुनता आता था। यहाँ आकर तो सब अपनी आँखो देख लिया। अब तो शरीर छूट जाना चाहिए था। परन्तु नही छूटा। यह शूल भी मैं सह गया। जड़ जीव जो अवसर आने पर भी नही मरता उसे क्या क्या नही सहना पड़ता ?

भयानक विषैली साँपिन और बीछी अधिक अन्धकार मे बड़ी विकराल हो उठती है। तनिक सा खटका होते ही काटती है। तपस्वियो के लिए तो उनका वैर त्यागना प्राप्त है। यथा : अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः। परन्तु वे नही त्यागती। रामजी के देखने से वे भी आर्द्र हो जाती है। रामजी को देखकर उनका

भी वैर छूट जाता है। वे भी इतनी भली हो जाती हैं कि रास्ता छोडकर हट जाती हैं।

दो. तेइ रघुनन्दनु लखनु सिय, अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख, दैउ सहावइ काहि ॥२६२॥

अर्थ वे ही रघुनन्दन लक्ष्मण और सीता जिसे वैरी मालूम पडे उसके बेटे को छोडकर दैव दु सह दु ख किसे सहावे।

व्याख्या : जिस रामजी लक्ष्मण और जानकी की तपस्वियो से भी अधिक अहिंसा प्रतिष्ठा है। अथवा जिस राम जानकी और लक्ष्मण को वन को साँपिन बीछी भी हित मानते हैं उन्हे जिसने अहित माना उसे घोर दण्ड होना ही चाहिए। फिर माता के लिए पुत्र का दु सह दु ख अतीव असह्य है। अत उसके बेटे को दु सह दु ख सहाना दैव का कर्त्तव्य हो जाता है। क्योकि दैव शुभाशुभ फल का देनेवाला है। यथा कर्म सुभासुभ देइ विधाता।

सुनि अति बिकल भरत बर बानी। आरति प्रीति बिनय नय सानी॥
सोक मगन सब सभा खँभारू। मनहु कमल बन परेउ तुषारू ॥१॥

अर्थ भरतजी की अति विकल आर्त्ति प्रीति विनय और नय से सनी हुई वाणी सुनकर सब सभा अति शोकयुक्त हो गयी जैसे कमल वन मे पाला पड गया हो।

व्याख्या यद्यपि भरतजी की वाणी अत्यन्त व्याकुलता से भरी है। फिर भी उसमे आर्त्ति, प्रीति, विनय और नय सना हुआ है। पहिले नय कहा। यथा कहब मोर मुनि नाथ निबाहा। एहि ते अधिक कहब मैं काहा। फिर विनय किया। यथा मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। तब प्रीति कहा। यथा महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कहेउँ न बैन। अन्त मे आर्त्ति कहा। यथा तेइ रघुनन्दन लखन सिय अनहित लागे जाहिं।

भरतजी का ऐसा वचन सुनते ही सभी सभासद् के हृदयो मे शोक उमड आया। सब दु खी हो गये। उनके आकार और चेष्टा ऐसी दैन्यसूचक हो गयी जैसे कमल वन मे पाला पडे और वह खाक स्याह हो जाय। ऐसे ही अवसर पर खँभार शब्द का प्रयोग अन्यत्र भी देखा जाता है। यथा देखि निबिडतम दसहु दिसि कपि दल परेउ खँभार।

कहि अनेक बिधि कथा पुरानी। भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी॥
बोले उचित बचन रघुनदू। दिनकर कुल कैरव बन चदू ॥२॥

अर्थ अनेक प्रकार की पुरानी कथाएँ कहकर मुनि ज्ञानी ने भरतजी को समझाया। सूर्यकुल रूपी कोईं के चन्द्रमा रघुनन्दन रामजी उचित वचन बोले।

व्याख्या ऐसे अवसर पर प्राचीन कथा जिसमे ससार के अनित्यत्व का वर्णन हो और महापुरुषो के महाविपत्ति मे धैर्य धारण करने का वर्णन हो सुनाने

से ही शोकयुक्त का शोक थमता है। अत ज्ञानी मुनिजी ने अनेक विधि से ऐसी कथाएँ कही।

पूत प्रह्लाद को न लाग्यौ पापलेश पितु पार करने को तासु भक्ति भई नैयासी।
त्योही पृथुराज को न लाग्यो वेनु कृत पाप प्रबल प्रताप पुहुमीहू भई गैयासी।
भगति बखानौं भूरि भापय बखानौं तेरी बिरति बखानौ एक वात नहिं मैयासी।
दुखित न होउ देखि दोष जननी को तुम कीरति तुम्हारी जग जागत जुन्हैयासी।

दो बिना पुण्य सुख होत नहिं दु ख न होत बिनु पाप।
काहुहिं दोप न दीजिये समुझि मनहिं मन आप॥
राम सच्चिदानन्द घन तहाँ नही दु ख लेश।
ताते बहुत न कीजये हिय महँ व्यर्थ कलेश॥

मुनिजी स्वय ज्ञानी है। अत उनके कथन का प्रभाव भरतजी पर पडा और उन्हे प्रबोध हुआ।

वसिष्ठजी के उपदेश और भरतजी के प्रबोध के बाद रघुनन्दन रामजी बोले। ये रघुकुल रूपी कैरव कोईं के वन के लिए चन्द्रमा हैं। इनके उदय से कैरव वन खिल उठता है। शोक का अपनयन गुरुजी ने किया। अब आनन्द का आधान रामजी करेंगे। इनकी वाणी मे ऐसा प्रभाव है कि तुषार के मारे कमल वन को कैरव वन बनाकर प्रफुल्लित कर दिया। फिर भी मुख से जो वचन निकलते हैं वे मनोरञ्जक होते हुए भी उचित ही होते हैं।

तात जायँ जिय करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी॥
तीन काल तिभुवन मत मोरें। पुन्यसिलोक तात तर तोरे॥३॥

अर्थ हे तात! ईश्वर के अधीन जीव की गति जानकर तुम व्यर्थ जी मे ग्लानि करते हो। मेरे मत से तो तीनो काल मे जो पुण्य श्लोक तीनो लोक के है वे सब तुम्हारे नीचे हैं।

व्याख्या सुभ अरु असुभ कर्म अनुहारी। ईस देइ फल हृदय विचारी। शुभाशुभ फल का देनेवाला ईश्वर है। अत कर्म बन्धन से निबद्ध जीव की गति ईश्वर के अधीन है। फिर ग्लानि करना ही व्यर्थ है। ग्लानि करने से ईश्वरीय व्यवस्था उलट नही सकती।

रह गयी तुम्हारी वात। सो तुम्हारे विपय मे मै यह कह सकता हूँ कि जिन पुण्यात्माओ का नाम मङ्गलमय दिन बीतने के लिए प्रात काल लिया जाता है वे सब तुमसे निम्नकोटि मे हैं। तुम्हारे ऐसा पुण्य श्लोक तीनो लोक मे न हुआ न है और न होगा।

उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोकु परलोकु नसाई॥
दोसु देइ जननिहि जड तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई॥४॥

अर्थ तुम्हारे ऊपर किसी प्रकार की कुटिलता हृदय म लाते ही लोक भी

जाता रहेगा और परलोक भी नष्ट होगा। माता को वे ही जड़ दोष देते है जिन्होने कभी गुरु और साधु की सभा का सेवन नही किया है।

व्याख्या : मही सकल अनरथ कर मूला : इस भरतजी की उक्ति का उत्तर देते हुए सरकार कहते हैं कि तुम्हारे ऊपर जो मन से भी कुटिलता का आरोप करेगा उसका लोक परलोक सब बिगड़ जायगा। जितने ही पवित्र पुरुष का निन्दक निन्दा करता है उतनी ही उसके दोष को मात्रा बड़ी हो जाती है। सो तुम्हारे ऐसे पुण्यात्मा पर मिथ्यारोपण का भाव भी मन मे आना परम अकल्याण का कारण होगा।

भरतजी ने कहा था : जननी कुमति जगत सब साखी : इस उक्ति का उत्तर देते हुए कहते है कि माता को दोष देना अनुचित है। माता को दोष तो जड व्यक्ति दिया करते है जिन्हे समझ नही। मातृदेवो : भव ऐसा वेद कहता है। उनका हर प्रकार से मान करना चाहिए। जिसने गुरु साधु की सभा का सेवन किया है वह जानता है कि कोई भी किसी के दु:ख सुख का देनेवाला नही है। अपना कर्म ही शुभाशुभ फल देते हैं। यथा : जीव कर्मबस दु:ख सुख भागी। फिर गुरु सेवी और साधु सेवी माता को दु:ख देनेवाली कैसे मान सकते है ? भरतजी तुम तो गुरु साधु सेवी हो। तुम ऐसा न कहो। जिसे ज्ञान नही है वह दूसरे को दु:ख सुख देनेवाला मानता है।

दो. मिटिहहि पाप प्रपंच सब, अखिल अमगल भार।
लोक सुजसु परलोक सुखु, सुमिरत नामु तुम्हार ॥२६३॥

अर्थ : तुम्हारा नामस्मरण से सब पाप प्रपञ्च और सम्पूर्ण अमङ्गल के समूह मिट जायँगे और इस लोक मे सुयश और परलोक मे सुख होगा।

व्याख्या : भरतजी सब पुण्य श्लोको मे बडे है। अत उनके नामस्मरण की महिमा सरकार श्रीमुख से कहते हैं कि तुम्हारे नामस्मरण से पाप का प्रपञ्च भी मिटेगा और अमङ्गल भी नष्ट होगे। स्मरण करनेवाले को इस लोक मे कीर्ति और परलोक मे आनन्द प्राप्त होगा। तुम्हारी अकीर्ति का तो प्रश्न ही नही है। *यथा : समन सकल उतपात सब भरत चरित जप जाग।* सरकार ने कह दिया : उर आनत तुम पर कुटिलाई। जाइ लोक परलोक नसाई। इससे कुछ अयोध्यावासी जिन्होने भरत का सम्मत कहा था लोक परलोक से भ्रष्ट हो चले थे उनका परिहार सरकार ने इस वचन से कर दिया कि वे भी भरतजी का नाम लेकर लोक मे सुयश और परलोक मे सुख के भागी होगे।

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी ॥
तात कुतरक करहु जनि जाएँ। बैर पेम नहिं दुरइ दुराएँ ॥१॥

अर्थ : मै शिवजी को साक्षी देकर स्वभाव कहता हूँ। हे भरतजी! कि तुम्हारे रखने से पृथ्वी ठहरी है। हे तात! तुम व्यर्थ का कुतर्क न करो। वैर और प्रेम छिपाये नही छिपता।

व्याख्या : सरकार उस भाव को समझ रहे हैं जिससे प्रेरित होकर भरतजी ने कहा था : मोहि राज हठि देहौ जबही। रमा रसातल जाइहि तबही। आदर्श बिगड जाने से पृथ्वी रसातल को जाती है। अत: राजा का आचरण ऐसा होना चाहिए जिसमे प्रजा का आदर्श न बिगडने पावे। भरतजी के राज्य स्वीकार से प्रजा का आदर्श बिगड जाता। प्रजा के सामने यह आदर्श उपस्थित हो जाता कि पिता के मरने की परवाह न करके भाई को वनवास देकर स्वार्थ साधन करना चाहिए। ससार की व्यवस्था ही बिगड जाती और लोगो का घोर पतन होता : जैसा कि आजकल हो रहा है। अत सरकार कहते हैं कि आदर्श के न बिगड़ने देने का श्रेय तुम्हे ही है। अत तुम्हारे रक्षा करने से ससार बडे भारी पतन से बच रहा है।

जिससे कोई लाभ न हो ऐसा सुतर्क भी करना निष्फल है और निष्फल कुतर्क तो करना ही नही चाहिए। भगवती कैकेयी न कोदव हैं। न सबुक काली है। न साँपिन बीछी हैं। उनमे कोई दोष नही है और न तुममे दोष का लेश है। ते रघुनदन लखन सिय अनहित लागेजाहि। तासु तनय तजि दुसह दुख दैव सहावै काहि। ऐसी बाते करना कुतर्क है और इससे कोई लाभ भी नही है। तुम्हे अपने प्रेम के लिए शपथ लेने की आवश्यकता नही। वैर और प्रेम ये दोनो भाव ऐसे हैं कि इन्हे कोई छिपाना भी चाहे तो छिपा नही सकता। निषादराज ने भी यही कहा था : लखब सनेहु सुभाव सुहाएँ। बैरु प्रीति नहिं दुरइ दुराएँ।

मुनिगन निकट बिहग मृग जाही। बाधक बधिक बिलोकि पराही॥
हित अनहित पसु पंछिउ जाना। मानुष तनु गुन ग्यान निधाना॥२॥

अर्थ : मुनियो के पास चिड़ियाँ और जानवर चले जाते हैं और बाधक तथा वधिक को देखकर भागते हैं। अपना हित और अनहित पक्षी और पशु भी जानते हैं। मनुष्य का शरीर तो गुण ज्ञानका निधान है।

व्याख्या : मुनिगण अहिंसा मे प्रतिष्ठित हैं। वे जीव जन्तु से भी प्रेम करते हैं। अत. उनके प्रेम का प्रभाव पशु पक्षी पर भी पड़ता है। वे नि शङ्क उनके पास पहुँच जाते हैं और बाधक वधिक का प्रभाव इतना उग्र होता है कि उन्हे देखकर पशु पक्षी भाग खडे होते हैं। अत: यह सिद्ध है कि हित अनहित का परिज्ञान अज्ञानी पशु और पक्षियो को भी हो जाता है। फिर मनुष्य को क्यो न होगा। मनुष्य का चोला तो गुण ज्ञान का भण्डार है। उसे हित अनहित का ज्ञान होना स्वाभाविक है। नहि कस्तूरिकामोद शपथेन विभाव्यते। कस्तूरी की सुगन्ध शपथ से नही प्रमाणित की जाती। भाव यह कि तुम्हारा प्रेम ससार देख रहा है।

तात तुम्हहि मैं जानेउँ नीके। करौ काह असमंजसु जीके॥
राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ पेम पनु लागी॥३॥

अर्थ : हे तात! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। पर करूँ क्या? जी में बडा

असामञ्जस्य हो रहा है। महाराज ने मेरा त्याग करके सत्य की रक्षा की और प्रेम के प्रण के लिए शरीर त्याग दिया।

व्याख्या तुम्हे तो वचपन से देख रहा हूँ। यथा जनमे एक सग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई। कनबेध उपबीत बिआहा। सग सग सब भयेउ उछाहा। अत तुम्हे अच्छी तरह जानता हूँ और तुम्हारे प्रेम प्रण को सफल भी करना चाहता हूँ। पर करूँ क्या? बडा भारी असामञ्जस्य उठ खडा हुआ है। उसकी विधि किसी भाँति नही वैठा सका। पिताजी भी असामञ्जजस्य मे पड गये थे। सत्य और प्रेम का सामञ्जस्य नही बैठता था। अत मुझे त्याग करके उन्होने सत्य की प्रतिष्ठा की और मेरे प्रेम के निर्वाह मे शरीर ही त्याग दिया। इस भाँति उन्होने तो सामञ्जस्य बिठा लिया।

तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार सकोचू॥
तापर गुरु मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउ सोइ कीन्हा॥४॥

अर्थ उनके वचन के मिटाने मे मन मे सोच हो रहा है और उससे भी अधिक तुम्हारा सङ्कोच है। उसके ऊपर स्वय गुरु की आज्ञा हो गयी। अत जो तुम कहो उसे निश्चय सिर चढाकर करना चाहता हूँ।

व्याख्या असामञ्जस्य यह है कि उस सत्यप्रतिज्ञ प्रमनिधि पिता के वचन को कैसे मिटा दूँ और इधर तुम्हारा सङ्कोच मैं किसी भाँति नही छोड सकता। जब से तुम्हारा आना सुना तभी से इस असामञ्जस्य मे पडा हूँ। यथा सो मुनि रामहि भा अति सोचू। उत पितुवच इत बधु सँकोचू। एसी स्थिति मे पड गया कि किसे छोड़ूँ किसे ग्रहण करूँ। फिर भी पलडा तुम्हारे ही ओर झुकता था। अब तो कोई बात ही नहो है। गुरुजी ने आज्ञा दे दी। यथा मोरे जान भरत रुचि राखी। रजो कीजिअ सो सुभ सिव साखी। अब तो जो तुम कहो वही मै करना चाहता हूँ।

दो मनु प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करौ सोइ आजु।
सत्यसध रघुबर बचन, सुनि भा सुखी समाजु॥२६४॥

अर्थ मन प्रसन्न करके और सङ्कोच छोड करके जो कहो सो मैं आज करूँ। सत्यसन्ध रघुवर रामजी के बचन को सुनकर समाज सुखी हो गया।

व्याख्या रामजी कहते हैं कि भरत तुम्हारी सङ्कोची वान है। गुरुजी ने भी कहा और मै भी कहता हूँ कि सङ्कोच छोडकर स्पष्ट कहो कि क्या चाहते हो इतना ही नही प्रसन्न मन से कहो। जिसम तुम प्रसन्न हा वही मै किया चाहता हूँ। जो तुम कहोगे उसे आज ही करूँगा हीलाहवाली नही। बोलो क्या चाहते हो।

सरकार का वचन सुनकर सारा समाज सुखी हो गया। रघुकुल कैरव वनचन्द के वचन को सुनकर कैरव वन खिल उठा। क्योकि सरकार सत्यसन्ध है। जो कह दिया वह निश्चय करेंगे। भरतजी लौटने को कहेगे ही। अत आशा की पूर्ति होते देखकर सब प्रसन्न हो गये।

सुर गन सहित सभय सुरराजू । सोचहि चाहत होन अकाजू ॥
बनत उपाउ करत कछु नाँही । राम सरन सब गे मन माँही ॥१॥

अर्थ : देवगण के सहित इन्द्र भयभीत हो गये। सोचने लगे कि अब काम बिगडा चाहता है और कुछ करते धरते बन नही रहा है। सो सब मन से रामजी के शरण गये।

व्याख्या : रामजी की बात सुनकर सब देव समाज डर गया। इन्द्र भी डर गये कि रामजी ने तो सब बोझा भरतजी पर डाल दिया। अब भरतजी क्या कहेंगे कि आप वन चले जाइये। भरतजी कहेंगे ही अयोध्या लौटाने को। सरकार सत्यसन्ध हैं। अयोध्या लौट जायँगे और यदि वे अयोध्या चले गये तो फिर सीताहरण और रावण वध कैसे होगा ? रावण स्वयं रामजी से लड़ने नही आवेगा। सुबाहु वध हुआ। विराध वध हुआ। पर रावण चुप रह गये। रामजी निष्कारण उसका वध करेंगे नही। तब तो हम लोगो का दुःख फिर ज्यो का त्यों रह गया।

हम पहिले ही कह रहे थे : करिय जतन छल सोधि। जिसमे रामजी से भरत की भेंट न हो। पर गुरुजी ने कहा : भगत सिरोमनि भरत से जनि डरपहु सुरपाल। अब क्या करें ? समय का बड़ा सङ्कोच है। रामजी और भरतजी पर माया चल नही सकती। दूसरे पर चलावे तो उसे कार्य मे परिणत करने के लिए समय चाहिए। रामजी इधर प्रतिज्ञा कर बैठे हैं : मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौ सोइ आज। अतः अब तो कोई उपाय नही है। सभा बैठी हुई है। इस समय हम लोग प्रत्यक्ष जाकर कुछ कह नही सकते। अतः कोई उपाय नही है। इस भाँति अपने को असमर्थ पाकर सब देवता लोग मन से रामजी के शरण गये।

बहुरि बिचारि परसपर कहही । रघुपति भगत भगतिबस अहही ॥
सुधि करि अंबरीष दुरबासा । भे सुर सुरपति निपट निरासा ॥२॥

अर्थ : फिर विचारकर आपस मे कहने लगे कि रघुपति तो भक्त की भक्ति के वश मे रहते हैं। राजा अम्बरीष और दुर्वासा का कथानक स्मरण करके देवगण और इन्द्र अत्यन्त निराश हो गये।

व्याख्या : शरण जाने के बाद यह बुद्धि फुरी कि अब रामजी के हाथ रह ही क्या गया। ये तो भक्त के वश मे हैं। भरत ने जो प्रार्थना की तो इन्होने सब भार भरत पर ही डाल दिया। यही इनका स्वभाव है। जब दुर्वासा शरण मे गये तो कह दिया : अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज। इसी तरह हम लोगो को भी टका सा जवाब मिल गया : अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव। अतः अब तो राम शरण से भी आशा नहीं।

सहे सुरन्ह बहु काल बिपादा । नरहरि किए प्रगट प्रहलादा ॥
लगि लगि कान कहहि धुनि माथा । अब सुर काज भरत के हाथा ॥३॥

अर्थ देवताओ ने बहुत काल तक दुःख उठाया। पर नृसिंह को प्रह्लाद ने प्रकट किया। सब एक दूसरे के कान लगकर और सिर धुनकर कहने लगे कि अब देवताओ का काम तो भरत के हाथ मे है।

व्याख्या सरकार को देवताओ से कही अधिक भक्त का ध्यान रहता है। पहिले भी हिरण्यकश्यप ने क्या कम दुःख दिया। पर सरकार प्रकट नही हुए। इन्हे तो भक्त प्रकट करता है। प्रह्लाद पर दुःख पडा तब प्रकट हुए। अत इनका वन जाना या अयोध्या लौटना अब भरत के हाथ है।

अत लज्जा से सभा मे खुले मैदान नही कह रहे हैं। एक दूसरे के कान मे कह रहे हैं और पश्चात्ताप से सिर पीटते हैं कि हम सब लोगो ने तो मिलकर पाँव रोपकर भरत का अपकार किया। यथा पाँव रोपि सब मिलि मोहिं घाला। अब भरत के हाथ मे मेरी कार्यसिद्धि आयी। अत बात बिगडी ही बिगडाई है।

आन उपाई न देखिअ देवा। मानत रामु सुसेवक सेवा ॥
हिय सपेम सुमिरहु सब भरतहि। निज गुन सील राम बस करतहि ॥४॥

अर्थ हे देवता लोग! दूसरा उपाय तो अब कुछ दिखाता नही। रामजी सुसेवक की सेवा का मानते हैं। अत प्रेमयुक्त हृदय से सब कोई भरत का स्मरण करो। जिसने अपने गुण और शील से रामजी को वश कर लिया है।

व्याख्या सब देवता लोग इसी बात पर आगये कि सिवा भरत के शरण गये कोई उपाय नही है। क्योकि रामजी सुसेवक की सेवा को मानते है। देवताओ का सङ्कोच उसके सामने कुछ नहीं है। परन्तु भरत की शरण जाने का भी तो अवसर नही है। अत हृदय से ही भरतजी को प्रेम से सुमिरो। भरतजी बडे शीलवान् हैं। बडे गुणी हैं। हम लोगो का काम बिगडने नही देंगे। उनमे कम शील और गुण है। रामजी तो उनके शील और गुण के वश है।

दो सुनि सुर मत सुरगुर कहेउ, भल तुम्हार बड भागु।
सकल सुमगल मूल जग, भरत चरन अनुरागु ॥२६५॥

अर्थ देवताओ की सम्मति सुनकर वृहस्पतिजी ने कहा कि तुम्हारा बडा अच्छा भाग्य है। ससार मे भरत के चरण मे अनुराग होना सब शुभमङ्गलो का मूल है।

व्याख्या देवताओ की सम्मति जब गुरु वृहस्पति ने सुनी तब बोले। अभी तक चुप रहे क्योकि पहिले की उनकी कही हुई बात देवताओ के मन मे ठीक नही बैठी थी। उन्होने पहिले ही कह दिया था भगत सिरोमनि भरत से जनि डरपहु सुरपाल। सो सुरपाल समाज सहित डर गये। गुरुजी चुप है कि डर रहे हैं तो डरने दो। हम क्या करें। हमने तो पहिले ही कह दिया है कि मत डरो। अब जब देखा कि देवता भरतजी के शरण मे मन से जाना चाहते है तो इस प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए गुरुजी ने कहा कि तुम्हारा भाग्य अच्छा है और बडा भाग्य

है कि तुम्हारे मन मे भरत के शरण जाने की बात आगयी। भरत के चरण मे अनुराग होना इस ससार में सब सुमङ्गलो का मूल है। अतः तुम्हारा मङ्गल होनेवाला है। उन लोगो का अभाग है जिनके मन मे भरत की भक्ति नही आती।

सीतापति सेवक सेवकाई। कामधेनु सय सरिस सुहाई॥
भरत भगति तुम्हरे मन आई। तजहु सोचु बिधि बात बनाई॥१॥

अर्थ : सीतापति सेवक की सेवकाई सौ कामधेनु के समान सुन्दर है। तुम्हारे मन मे भरत की भक्ति आगयी। सब सोच छोड दो। ब्रह्माजी ने ही बात बना दी।

व्याख्या : सीतापति के सेवक भरत हैं। उनकी सेवकाई अर्थात् भक्ति सौ कामधेनु के समान कल्याणकारिणी है। रामजी की भक्ति तो एक ही कामधेनु के समान कही गयी है। यथा 'सुनु खगेस हरि भगति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन उपाई। ते जड कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आकु फिरहिं पय लागी। एक कामधेनु सब मनोरथ पूर्ण करती है सौ कामधेनु क्यो न पूरा करेंगी?

तुम लोगो के मन मे यह बात जो आयी : हिय सप्रेम सुमिरहु सब भरतहि। सो मानो सौ कामधेनु का आगमन हुआ। अब मनोरथ पूर्ण होने मे सन्देह नहीं है। पहिले जो तुम लोगो ने विचार किया था : रामहि भरतहि भेंट न होई। वह बात बिगड़ने का रास्ता था। विधि सानुकूल होते हैं तब भरत की भक्ति मन मे आती है। अत· अब सोच छोड दो स्वयं ब्रह्मा ने ही बात बना दी। मेरे कहने पर बात मन मे न आयी और इस समय आगयो तो यह ब्रह्मा की ही करतूत है।

देखु देवपति भरत प्रभाऊ। सहज सुभायँ बिबस रघुराऊ॥
मन थिर करहु देव डरु नाँही। भरतहि जानि राम परिछाही॥२॥

अर्थ : हे देवराज! भरत का प्रभाव देखो। रामजी जिसके सहज स्वभाव से वश हो रहे हैं। भरतजी को राम की परछाही जानकर देवता लोग! मन को स्थिर करो। डर की कोई बात नही है।

व्याख्या : गुरुजी कहते है कि भरत के प्रभाव को आँखो देख लो। भरत ने न कोई तप किया, न आराधना की। अपने स्वभावानुकूल काम करते जा रहे हैं और उस पर रामजी उनके वश मे हैं। कह रहे हैं 'कहहु करउँ सो आज। भरत के मन रखने के सामने न पिता का वचन ही कुछ है और न तुम लोगो का सङ्कोच ही किसी गिनती मे है।

तुम्हारा मन चञ्चल हो उठा है। उसे स्थिर करो। क्योकि डर की कोई बात नही है। भरत को राम की परिछाही : प्रतिविम्ब जानो। पुरुप जैसी चेष्टा करता है उसका प्रतिविम्ब भी वैसी ही चेष्टा करता है। प्रतिविम्य बिम्ब के प्रतिकूल चेष्टा कर नही सकता।

सुनि सुरगुर सुर संमत सोचू । अंतरजामी प्रभुहि संकोचू ॥
निज सिर भारु भरत जियँ जाना । करत कोटि विधि उर अनुमाना ॥३॥

अर्थ : बृहस्पतिजी और देवताओ की सलाह और विचार सुनकर प्रभु अन्तर्यामी को सङ्कोच हुआ । भरतजी मन मे जान गये कि सब बोझा मेरे ऊपर है । इसलिए करोडो प्रकार का अनुमान करने लगे ।

व्याख्या : बृहस्पतिजी की सम्मति और देवताओ का विचार सरकार ने सुना । उनके लिए व्यवधान कोई वस्तु नही है । बातचीत आकाश मे होती थी । पर सरकार सब सुनते थे । गुरुजी की सम्मति भी सुनी और देवताओ का विचार भी सुना । अत· सरकार सङ्कुचित हुए । सङ्कुचित होने का यथेष्ट कारण भी है । यथा : प्रभु प्रनाम करि दीन्ह भरोसो । चले मुदित मन डर न खरोसो । सो आज सब निर्णय भरत पर छोडे बैठे है । अन्तर्यामी हेतु गर्भ विशेषण है । सबके अन्तर का हाल जानते हैं ।

देवताओ का विचार कहकर जहाँ से प्रसङ्ग छोडा था वही फिर उठाते है । रामजी के यह कहने से कि कहहु करउँ सोइ आज । भरतजी ने जान लिया कि सरकार ने सब बोझा मेरे ऊपर छोड दिया । पिता के वचन का भार, प्रजा के सुख का भार, स्वामी के धर्म का भार, माताओ की अभिरुचि का भार, देवताओ के कार्य का भार, सब भरतजी पर आ पडा । अतः तर्क की कोटियाँ उठी । स्वामी के धर्म को बचाते हैं तो पुरजन परिजन माताओ के दु ख का अन्त नही और अवध लौट चलने को कहते है तो देवताओ का कार्य बिगडता है और सरकार के धर्म मे बाधा पडती है । मैं सेवक हूँ स्वामी का धर्म कैसे बिगडने दूँ इत्यादि ।

जरि विचारु मन दीन्ही ठीका । राम रजायसु आपन नीका ॥
निज पन तजि राखेउ पन मोरा । छोहु सनेहु कीन्ह नहिं थोरा ॥४॥

अर्थ : विचार करके मन मे यही ठीक किया कि रामजी की आज्ञा मे ही अपनी भलाई है । अपना प्रण छोडकर मेरा प्रण रक्खा । सो थोडा छोह और स्नेह नही किया ।

व्याख्या : विचार करके गुरुजी के उपदेश पर आगये : राखे राम रजाय रुख हम सब कर हित होइ । राजा वही है जिसकी रजायसु . आज्ञा सब पर चले । अब यदि रामजी की आज्ञा से सब कार्य होना आरम्भ हो जाय तो स्वभावत· वे राजा हो जाते हैं । अत यदि न भी लौटे तो भी राज्य की स्वीकृति तो हो ही जाती है । जीव का कल्याण ईश्वर की आज्ञापालन मे है । यथा · प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई । सो तेहि भाँति रहे सुख लहई ।

जिस समय सरकार ने कह दिया : मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौ सोइ आज । उसी समय वन से लौटना और सिंहासनारूढ होना स्वीकार कर लिया । अपना प्रण छोड दिया और मेरा प्रण रख लिया । छोह और स्नेह की सीमा हो

गयी। अब जो वह आज्ञा दें वही करने में भलाई है। ऐसे मालिक को सङ्कोच में डालना अच्छा नही।

दो. कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सब बिधि सीतानाथ।
करि प्रनामु बोलेउ भरतु, जोरि जलज जुग हाथ ॥२६६॥

अर्थ : सीतानाथ ने सब प्रकार से मुझ पर अत्यन्त अनुग्रह किया। दोनों कर कमल जोड़कर और प्रमाण करके भरतजी बोले।

व्याख्या : तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिसेखी। यह आशा जो भरतजी को थी वह परिपूर्ण हो गयी। सीतानाथ पद से दिखलाया कि सीताजी की भी वैसी ही कृपा हुई। यथा : सब बिधि सानुकूल लखि सीता। मे निसोच, उर अपडर बीता। अतः सरकार के कथन के उत्तर मे विनय करने के लिए प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोले।

कहउँ कहावउँ का अब स्वामी। कृपा अंबुनिधि अंतरजामी ॥
गुर प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मन कल्पित सूला ॥१॥

अर्थ : हे स्वामिन्! क्या मैं कहूँ और क्या कहलाऊँ। आप कृपा के समुद्र हैं और अन्तर्यामी हैं। गुरुजी प्रसन्न हैं। स्वामी अनुकूल हैं। मलिन मन का कल्पित शूल मिट गया।

व्याख्या : भरतजी बड़े सङ्कोची हैं। यदि कुछ कहना होता है तो दूसरे से कहलाते हैं। यथा : महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कहेउँ न बैन। अतः कहते हैं कि मैं क्या कहूँ या दूसरे से कहलाऊँ। कृपा के समुद्र और अन्तर्यामी से कहना क्या है? कहना या कहलाना तो उससे होता है जिसे कृपा भी थोड़ी हो और मन की बात भी न जानता हो। यहाँ तो कृपा का समुद्र उमड़ रहा है और किसी के हृदय की बात छिपी नहीं है।

गुरुजी ने कह दिया : मोरे जान भरत रुचि राखी। जो किजिअ सो सुभ सिव साखी। अतः देख लिया कि गुरुजी प्रसन्न हैं। सरकार स्वयं कह रहे हैं : तेहि ते अधिक तुम्हारा सकोचू। अब इससे अधिक अनुकूलता क्या होगी। मेरा मन मलिन है। अतः बात जल्दी समझ में नही आती। मन की मिथ्या कल्पना से शूल उठता था : राम लखन सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ। सो शूल जाता रहा। मैं गुरुजी को भी अप्रसन्न समझता था। यथा : बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभाग। अब मन का सब दुःख मिट गया।

अपडर डरेउँ न सोच समूलें। रबिहि न दोसु देव दिसि भूलें ॥
मोर अभागु मातु कुटिलाई। बिधि गति विषम काल कठिनाई ॥२॥

अर्थ : मैं झूठे डर से डर गया। मेरा सोच निर्मूल था। जिसे दिग्भ्रम हुआ

हो सूर्य को दोप नही देना चाहिए। मेरा अभाग और माँ की कुटिलता ब्रह्मा की विपमगति और काल की कठिनता।

व्याख्या सरकार के तात तुमहि मैं जानउँ नीके। इस कहने का उत्तर देते हैं कि दोप सरकार का नही। दोप मेरा है कि मैं निष्कारण भय से भीत हो गया। मेरी गति दिग्भ्रमवाले की सी हो गयी। दिग्भ्रमवाले को सूर्यनारायण पश्चिम उदित होते प्रतीत होते हैं तो उसमे सूर्यनारायण का कोई दोप नही। वे तो यथा पूर्व सदा पूर्व मे ही उदय होगे। दोप तो दिग्भ्रमवाले की मति का है जो विपरीत समझ रहा है।

बात यह हुई कि चार बातें आ पडी। १ मेरा अभाग्य उदय हो गया। २ माँ ने कुटिलता से काम लिया। ३ ब्रह्माजी बायें हो गये और ४ कराल काल उपस्थित हो गया। १ मोर अभाग। यथा झूठ काह पछिताउँ अभागी। २ माँ की कुटिलता। यथा कैकयनदनि मदमति कठिन कुटिलपन कीन्ह। ३ विधिगति विपय। यथा बिधि बाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी और। ४ काल कठिनाई। यथा भयउ कराल काल विपरीता।

पाउँ रोपि सब मिलि मोहि घाला। प्रनतपाल पन आपन पाला ॥
येह नइ रीति न राउरि होई। लोकहुँ वद विदित नहिं गोई ॥३॥

अर्थ सबने मिलकर पाँव रोपकर मेरा सत्यानाश किया। पर प्रणतपाल ने अपने प्रण का पालन किया। यह आपकी नयी रीति नही है। लोक और वेद मे विदित है। कही छिपी नही है।

व्याख्या उपर्युक्त चारो ने प्रतिज्ञा करके मेरा सर्वनाश किया। पाँव रोपना का अर्थ प्रतिज्ञा करना है। यथा सुनु दसकठ कहौं पन रोपी। इन चारो के विरोध करने पर रक्षा का उपाय नही। पर प्रणतपाल ने अपना प्रण पालन किया। सरकार का प्रण है कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्त प्रणश्यति ताते नाश न होइ भक्त कर। सरकार ने मुझ बचा लिया।

यह सरकार की बडी पुरानी नीति है। मेरी रक्षा करने मे किसी नयी रीति से काम नही लिया गया। यह नीति अनादिकाल से चली आती है। अत वेद ने भी कहा है लोक म भी सब कोई जानता है। इसी से सङ्कट आ पडने पर बडा भारी नास्तिक भी सरकार की शरण जाता है। क्योकि यह प्रसिद्ध बात है कि सरकार अशरण शरण हैं और अकारण करुण हैं।

जगु अनभल भल एकु गोसाईं। कहिअ होइ भल कासु भलाईं ॥
देउ देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख विमुख न काहुहि काऊ ॥४॥

अर्थ ससार तो बुरा है। एक सरकार ही भले हैं। फिर किसकी भलाई से भला हो ? हे देव। आपका स्वभाव कल्पवृक्ष सा है। न आप कभी किसी के सम्मुख रहते हैं और न विमुख रहते हैं।

व्याख्या : भरत भूमि रह राउर राखी का उत्तर देते हुए भरतजी कहते हैं कि सरकार ही केवल भले हैं। क्योकि सच्चिदानन्द रूप हैं। जगत् तो अनित्य जड और दु:ख रूप है। जगत् मे भलाई है ही नही। उससे भलाई कैसे होगी। उसमे यदि कही भलाई की झलक दिखायी पडे तो वह सरकार की ही भलाई की झलक है।

सरकार देव है और स्वभाव सरकार का देवतरु अर्थात् कल्पवृक्ष सा है। कल्पवृक्ष न किसी के अनुकूल है न प्रतिकूल है। अपने स्वरूप मे स्थित है। कितना भी कोई बुरा हो कल्पवृक्ष किसी को दण्ड देने नही जाता और न भले को इनाम देने जाता है।

दो. जाइ निकट पहिचानि तरु, छाँह समनि सब सोच।
माँगत अभिमत पाव जग, राउ रंकु भल पोच ॥२६७॥

अर्थ : कल्पवृक्ष के पास जाय। उसे पहिचाने तो उसकी छाया से सब सोच नष्ट होता है और माँगने से राजा रक भले बुरे संसार मे उससे अभिलषित पदार्थ प्राप्त करते है।

व्याख्या : कल्पवृक्ष तो कही है ही। पर वह किसी को लाभ नही पहुँचाता। जिसे लाभ प्राप्त करना हो वह उसके पास जाय। तथा अन्य वृक्षो मे उसे पहिचाने। तो इतना फल वह तुरन्त देता है कि उसके छाँह मे जानेवाले का सोच हरण कर लेता है और यदि उससे प्रार्थना करे तो जो चाहे वही मिलता है।

इसी प्रकार जिसे कल्याण की कामना हो वह सरकार के सम्मुख जाय। सरकार को पहिचाने। आश्रय ग्रहण करे। तो इतने से ही उसके कोटि जन्म के पाप नष्ट हो जाते है। यथा : सनमुख होइ जीव मोहि जबही। जन्म कोटि अघ नासहि तबही और माँगने से तो जो जिसकी अभिलाषा करता है उसकी प्राप्ति होती है। यथा : मोर दरस अमोघ जगमाँही।

लखि सब बिधि गुर स्वामि सनेहू। मिटेउ छोभु नहि मन संदेहू ॥
अब करुना कर कीजिअ सोई। जनहित प्रभु चित छोभु न होई ॥१॥

अर्थ : सब प्रकार से गुरु और स्वामी का स्नेह लख करके मेरा क्षोभ मिट गया। अब मन मे सन्देह नही है। हे करुणाकर! अब ऐसा कीजिये कि सेवक के लिए प्रभु के चित्त मे क्षोभ न हो।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि मेरे मन मे क्षोभ भी था और सन्देह भी था। क्षोभ यथा : मही सकल अनरथ कर मूला। और सन्देह यथा : जौ परिहरहि मलिन मनु जानी। जौ सनमानहि सेवक मानी। अब दोनो मिट गया। गुरुजी का इतना स्नेह कि मेरे लिए सरकार से कहा : भरत भगति बस भइ मति मोरी। और सरकार का इतना स्नेह कि मेरे सङ्कोच को पिता के वचन से अधिक माना। अत: अब न तो क्षोभ है न सन्देह है।

सरकार करुणाकर मेरे ऊपर करुणा करके सब कुछ करने को तैयार है। पर ऐसे मालिक को क्षोभ मे डाल देने से मेरा धर्म बिगडेगा। अतः अब मेरी यही प्रार्थना है कि सरकार वैसा ही करें जिसमे मेरे कारण सरकार का चित्त क्षुब्ध न हो।

जो सेवकु साहिबहि सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची ॥
सेवक हित साहिब सेवकाई। करइ सकल सुख लोभ बिहाई ॥२॥

अर्थ : जो सेवक मालिक को सङ्कोच मे डालकर अपना हित चाहता है उसकी बुद्धि नीच है। सेवक का हित तो इसी मे है कि स्वामी की सेवकाई सब सुखो का लोभ छोड़कर करे।

व्याख्या : सेवक का धर्म बड़ा गहन है। योगियो के लिए भी अगम्य है। जहाँ मालिक पयादे पाँव चले वहाँ सेवक का सिर बल चलना उचित है। यथा सिर भरि जाउँ उचित अस मोरा। अत सेवक का मालिक को सङ्कोच मे डालकर अपना काम निकालना नीचता है।

सेवक का धर्म यह है कि सब सुखो का लोभ छोडकर मालिक की सेवा करे। जो सेवक अपना सुख चाहेगा वह सेवा क्या करेगा ? अत' मैं अपने सुख के लिए तो सरकार को सङ्कोच मे डाल ही नही सकता।

स्वारथु नाथ फिरे सबही का। किये रजाइ कोटि बिधि नीका ॥
यह स्वारथ परमारथ सारू। सकल सुकृत फल सुगति सिंगारू ॥३॥

अर्थ : हे नाथ ! आपके लौटने मे सबका स्वार्थ है। पर आपकी आज्ञा शिरोधार्य करना कोटि गुना अच्छा है। यही स्वार्थ और परमार्थ का सार है। सब पुण्यो का फल है और सुगति का शृङ्गार है।

व्याख्या : सरकार के वियोग मे पुर नर नारी विकल हैं। यथा ' जरहि बिषम ज्वर पुर नर नारी। अत' सरकार के लौट चलने से उनका ज्वर उतर जायगा। यथा : सब कँह सुखद राम अभिषेकू। वे सुखी हो जायँगे। यह अच्छी बात है। पर इससे करोडगुनी अच्छी बात यह है कि सब आपकी आज्ञा माने। क्योकि सबका कल्याण तो आपकी आज्ञा मानने से ही होगा। गुरुजी ने कह दिया है ' राखे राम रजाय रुख हम सबकर हित होइ। क्योकि प्रभु की आज्ञा जिसके लिए जो हो वह उसी भाँति से चलने मे सुख पाता है। मनुष्य प्रेय के लोभ मे आकर श्रेय को हाथ से जाने देते हैं। यह उनकी भूल है। श्रेय तो सरकार के आज्ञापालन मे है। यथा प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई।

सरकार की आज्ञा का पालन ही स्वार्थ का सार है। यथा : स्वारथ साँच जीव कहँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा। और परमार्थ का सार भी यह है। यथा : सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन रामपद नेहू। अर्थात् सरकार की भक्ति ही स्वार्थ परमार्थ का सार है और : आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। अर्थात्

उत्तमोत्तम भक्ति सरकार की आज्ञा का पालन है। यही सब पुण्यों का फल है। यथा : जहँ लगि साधन बेद बखानी। सबकर फल हरि भगति भवानी। और यही सुगति का शृङ्गार है। यथा : सोह न राम प्रेम बिनु ज्ञानू। करनधार बिनु जिमि जल जानू। जोग कुजोग ग्यान अग्यानू। जँह नहि राम प्रेम परधानू।

देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी॥
तिलक समाजु साजि सब आना। करिअ सुफल प्रभु जौ मनु माना॥४॥

अर्थ : हे देव ! एक विनती मेरी है। उसे सुन लीजिये। तत्पश्चात् जो उचित हो वह कीजिये। तिलक का सब समाज साज करके लाया हूँ। यदि सरकार का जी चाहे तो उसे सफल कीजिये।

व्याख्या : मुनिजी ने आज्ञा दी थी : कृपासिन्धु प्रियबधु सन कहहु हृदय की बात। सो हृदय की बात कह रहे है कि वन मे ही राज्य देने के लिए तिलक साज सजा सजाया आया हुआ है। यदि सरकार का जी चाहे तो सफल कर दीजिये। यह मेरी विनय है। इसी के लिए गुरुजी ने कहा है : भरत बिनय सादर सुनिय करिय बिचार बहोरि। करब लोकमत बेदमत नृप नय निगम निचोरि। अब इस पर विचार करिये। जैसा उचित समझिये वैसा कीजिये। यह तो प्रथम पक्ष है।

दो. सानुज[1] पठइअ मोहि बन, कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरिअहि बंधु दोउ, नाथ चलौ मै साथ॥२६८॥

अर्थ : अथवा मुझे छोटे भाई के साथ वन भेज दीजिये और सबको सनाथ कीजिये। यदि यह भी स्वीकार न हो : तो दोनों भाई लौट जायँ मैं साथ चलूँ।

व्याख्या : मुनिजी की सोची हुई बात कह रहे हैं कि दोनो भाइयों मे दायका अदल बदल हो जाय। आप राज्य पर जाइये और मैं वन जाऊँ। इससे लाभ यह होगा कि प्रजा सनाथ हो जायगी। वह सरकार में ही अनुरक्त है। शत्रुघ्नजी विनय भरतजी से कर चुके हैं कि आप वन जाइयेगा तो मुझे अवश्य साथ ले लीजियेगा। अतः शत्रुघ्न सहित वन जाने की आज्ञा माँग रहे हैं। यदि यह भी पसन्द न हो तो तीसरा पक्ष कहते हैं कि दोनों भाई लक्ष्मण शत्रुघ्न घर फिर जायँ और सरकार के साथ मै वन चलूँ। भरतजी का मुख्य आशय यह है कि मुझे सरकार की सेवा का सौभाग्य हो। अयोध्या लौटकर शासन मे हाथ न लगाना पडे। एक क्षण के लिए राज्य भरतजी को स्वीकार नही।

नतरु जाहिं बन तीनिउँ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई॥१॥

अर्थ : नही तो हम तीनों भाई वन जायँ। सरकार जनकनन्दनी के साथ जायँ। जिस प्रकार सरकार का मन प्रसन्न हो हे करुणासागर ! वही कीजिये।

१. यहाँ आक्षेप : प्रथम अलङ्कार है।

व्याख्या : भाव यह कि सर्व प्रधान विनय तो यह है कि सरकार अपना अभिषेक स्वीकार करें। फिर राजा की इच्छा चाहे जहां से राज्य करें। नही तो राज्य मे और वन मे अदला बदली हो जाय। यह भी नही तो : कर्ता भोक्ता त्वमेव हि। ऐसा सरकार ने लक्ष्मणजी से कहा है। सो उन्ही को राज्य पर भेज दिया जाय। सहायता के लिए साथ मे शत्रुघ्न रहे और सेवा मे मै रहूँ। यदि सरकार समझें कि वन का शासन इस समय कठिन व्यापार है वह मुझसे ही सधेगा। यथा : पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड काजू। तो आप के स्थान पर हम तीनो भाई वन जायँ। तीनो मिलकर काम सँभाल लेगें। हवि के विभाग के अनुसार भी रामचन्द्र के हवि के तुल्य शेष तीनो भाइयो का हवि मिलाकर होता है। यथा : अर्ध भाग कौसिल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा। इत्यादि।

सीय सहित कहने का यह भाव है कि कही यह आज्ञा न हो कि मैं सीता को लौटा देता हूँ। इतने से हो सन्तोष करो। यथा : जौं सिय भवन रहै कह अबा। मो कँह होइ बहुत अवलबा। यथा : तौ तुम्ह विनय करेहु कर जोरी। फेरिय प्रभु मिथिलेस किसोरी।

भरतजी कहते हैं कि यदि ये चारो विधियाँ नापसन्द हो तो जिस विधि से सरकार का मन प्रसन्न हो वही किया जाय। मैं यह जोर नही देता कि इन चार पक्षो मे से सरकार किसी को अवश्य स्वीकार करें। सरकार करुणासागर है। सरकार जो करेंगे वही ठीक होगा।

देव दीन्ह सबु मोहि अभारू। मोरे नीति न धरम बिचारू ॥
कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत के चित चेतू ॥२॥

अर्थ : हे देव ! आप ने सब बोझा मेरे ऊपर रख दिया और मुझे नीति और धर्म का विचार नही है। जो वचन कहता हूँ सो स्वार्थ के लिए कहता हूँ। क्योकि आर्त्त के मन मे विवेक नही रहता।

व्याख्या : भरतजी कहते है कि नीति और धर्म के विचार की यहाँ आवश्यकता है। यह विवेचना करना है कि धर्म मे बाधा भी न हो और अपना स्वार्थ भी सधे। सो मुझमे यह सामर्थ्य नही। यथा एकौ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैन बिहानी। सो बोझा मेरे ऊपर डाला गया है। उसके वहन मे मैं समर्थ नही हूँ। इस पर कहा जा सकता है कि तब तुमने ये चार पक्ष कैसे उठाये ? इस पर भरतजी कहते हैं। इन चारो पक्षो मे मेरा स्वार्थ साधन होता है। स्वार्थ के कारण मैं आर्त्त हो रहा हूँ। आर्त्त को विचार शक्ति नही होती गुरुजी ने ठीक ही हा था : आरत कहहिं बिचारिन काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ।

उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवकु लखि लाज लजाई ॥
अस मै अवगुन उदधि अगाधू। स्वामि सनेहँ सराहत साधू ॥३॥

अर्थ : जो स्वामी की आज्ञा सुनकर उत्तर दे उस सेवक को देखकर लज्जा भी लज्जित हो जाती है। मैं ऐसे दोषों का अथाह समुद्र हूँ। यह स्वामी का स्नेह है कि मेरी प्रशसा साधु कहकर कर रहे हैं।

व्याख्या : स्वामी का रुख देखकर ही काम कर देना चाहिए। सेवक का धर्म है कि स्वामी के मन में मन मिलाये हुए उसके मनोनुकूल चले। यथा : जोगवत रहहिं मनहि मन दीन्हें। यदि स्वामी को कहना पड़ा तब तो अवश्य ही कर डालना चाहिए। फिर भी न करे तो लज्जा की बात है और यदि सेवक ने उत्तर दे दिया तो इससे बढ़कर लज्जा की बात क्या होगी : भृत्यश्चोत्तरदायक:। भृत्य का उत्तर देना बड़ा भारी दोष है।

मै तो ऐसा दोष का समुद्र हूँ कि सरकार की आज्ञा पाकर भी स्वीकार नही किया और यहाँ उत्तर देने को खड़ा हो गया। पर सरकार ऐसे करुणासागर हैं कि मेरी साधुता की सराहना करते है कि साधुता के कारण भरत मेरा वचन नही मानता। भरत साधु हैं। यथा : पुन्यसिलोक तात तर तोरे।

अब कृपाल मोहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाहि न पावा ॥
प्रभु पद सपथ कहहुँ सति भाऊ। जग मंगल हित एक उपाऊ ॥४॥

अर्थ : हे कृपाल ! अब मुझे यही मत अच्छा लगता है कि जिसमें स्वामी के मन में सङ्कोच न पाया जाय। प्रभु के चरण की शपथ सच्चे भाव से कहता हूँ कि संसार के मङ्गल के लिए एक ही उपाय है।

व्याख्या : जब सरकार ने कह दिया कि जो भरत कहे उसे आज कर डालूँगा तब तो बात सब पलटा खा गयी। भरत तो सेवक है। सरकार की आज्ञा का पालन करनेवाला है। उसे आज्ञा देने का अधिकार भी नही है। वह ऐसा चाह भी नही सकता। सरकार मालिक हैं। सरकार के मन मे सङ्कोच न हो। प्रसन्न चित्त से आज्ञा दें। मालिक तो वही है जिसकी आज्ञा चले। सरकार आज्ञा दें और उसी के अनुसार सब चलें। यही मेरा अब अभीष्ट है। अतः सरकार के चरण की शपथ लेकर शुद्ध हृदय से कहता हूँ कि संसार के मङ्गल के लिए यही एक उपाय है। सब कहँ सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद मूल मगु एकू। सो सरकार की आज्ञा देने से और सबका उसका पालन करने से वह काम हो जाता है। अभिषेक आज हो या दस दिन बाद हो।

दो. प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देव।
सो सिर धरि धरि करिहि सबु, मिटिहि अनट अवरेव ॥२६९॥

अर्थ : सरकार प्रसन्न होकर सङ्कोच छोड़कर जिसे जो आज्ञा देंगे वही शिरोधार्य करके सब लोग करेंगे। बड़ा भारी उपद्रव और उलझन मिट जावेगी।

व्याख्या : सरकार ने कहा था : तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार संकोचू। अतः भरतजी कहते हैं कि सोच छोड़ दीजिये। प्रसन्न मन से आज्ञा

दीजिये और सङ्कोच भी न करिये। जिस भाँति सरकार ने भरतजी से कहा था : मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सो आज। सो भरतजी भी उसी भाँति सरकार पर सब भार छोडते हुए कहते हैं : प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देब इत्यादि। सो सिर धरि धरि करिहि सब : कहने का भाव यह कि इस समय भरतजी सम्पूर्ण प्रजावर्ग की ओर से बोल रहे हैं। गुरुजी के किये हुए निर्णय पर आगये ' राखे राम रजाय रुख हम सबकर हित होय। अतः कह रहे है कि आज्ञा पालन से ही यह कठिन अवरेब मिट जायगा। अर्थात् जो कुछ दु ख सुख होगा। वह राजाज्ञा के पालन मे होगा। अतः सरकार के दु ख से दु खी प्रजा को बहुत बड़ा आश्वासन होगा।

भरत बचन सुचि सुनि सुर हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥
असमजस बस अवध निबासी। प्रमुदित मन तापस बनवासी॥१॥

अर्थ : भरतजी का वचन सुनकर देवता प्रसन्न हो गये और वाह वाह कहकर उन पर फूल बरसाने लगे। अयोध्या निवासी असमञ्जस मे पड गये और तपस्वी तथा वन के निवासियो का मन प्रसन्न हो गया।

व्याख्या : वचन की शुचिता यही है कि वह सत्य प्रिय और हित हो। इसलिए शुचि कहा अथवा धर्मयुक्त होने से तथा स्वार्थ विहीन होने से भरतजी के वचन को शुचि कहा। सरकार का वचन सुनने से देवताओ के सहित इन्द्र भयभीत हो गये थे। सो भरतजी का वचन सुनकर हर्षित हुए कि जब रामजी पर बात आगयी तो ये अपनी प्रसन्नता से पिता का वचन नही छोडेंगे और अवधवासी भी असमञ्जस मे पड गये कि देखे भरतजी के कहे हुए पक्षो मे से रामजी किसे पसन्द करते है। बहुत सम्भावना तो यही है कि न लौटें। रामजी का वचन सुनकर बेचारे सुखी हो गये थे। सो फिर असमञ्जस मे फँस गये। तपस्वी और वनवासियो ने समझ लिया कि जब रामजी पर बात आगयी तो नही लौटना ही सिद्ध है। अतः सरकार के सहवास के आनन्द से वञ्चित न होगे। भावार्थ यह कि अपने अपने स्वार्थानुकूल लोगो को हर्ष या विषाद हुआ।

चुपहि रहे रघुनाथ सकोची। प्रभु गति देखि सभा सब सोची॥
जनक दूत तेहि अवसर आए। मुनि बसिष्ठ सुनि बेगि बोलाए॥२॥

अर्थ सङ्कोची रघुनाथजी चुप ही रह गये। प्रभु की गति देखकर सभा की सभा सोच मे पड गयी। उसी अवसर पर जनकजी के दूत आये। सुनकर वसिष्ठजी ने उन्हे तुरन्त बुलवाया।

व्याख्या : कोउ न राम सम स्वामि सँकोची। सरकार का स्वभाव ही सङ्कोची है। यद्यपि भरतजी ने कहा कि सरकार सङ्कोच छोडकर आज्ञा दें। पर सरकार सङ्कोच नही छोड़ सकते है। कैसे कह दें कि तुम लोग लौट जाओ मै नही जाऊँगा।

सब सभा के लोगों को सरकार का सङ्कोच देखकर सोच पैदा हो गया कि ये अयोध्या जाने के लक्षण नहीं हैं।

सरकार सङ्कोच में पड़े हुए चुप हैं। सभा स्तब्ध है कि देखें क्या आज्ञा होती है। तब से प्रतिहारियों ने समाचार दिया कि महाराज जनक के दूत आये हैं। यह समाचार ऐसा आया कि सब काम ही रुक गया। गुरुजी ने कहा कि जल्दी बुलाओ। भाव यह कि जनकजी का समाचार सुनने के पहिले ही रामजी कोई निर्णय न कर दें।

करि प्रनाम तिन रामु निहारे। बेषु देखि भए निपट दुखारे॥
दूतन्ह मुनिवर बूझीं बाता। कहहु बिदेह भूप कुसलाता॥३॥

अर्थ : प्रणाम करके उन्होने रामजी को देखा तो वेष देखकर बड़े दुःखी हुए। मुनिजी ने दूतों से कहा कि विदेह राजा कुशल कहो।

व्याख्या : दूत लोग सभा मे उपस्थित हुए। प्रणाम करके रामजी को देखा। विवाह के समय देखा था। कहाँ वह वेष और कहाँ वल्कल वसन पहिने और जटा बनाये हुए देखा। अतः दूतों को बडा भारी दु.ख हुआ।

मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठजी ने इसके पहिले कि दूत कुछ कहें पूछा विदेह राजा का कुशल कहो। भाव यह कि राजा जनक विदेह हैं। उन्हे देहाध्यास नही है। इतना बड़ा अनर्थ अयोध्या में हो गया। जनकपुर से कोई पूछने न आया कि क्या हो रहा है। अतः यह जानने की उत्सुकता है कि महाराज विदेह कुशल से तो हैं?

सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चरबर जोरें हाथा॥
बूझब राउर सादर साईं। कुसल हेतु सो भयेउ गोसाईं॥४॥

अर्थ : सुनकर सङ्कुचित होकर दूत लोग नमस्कार करके हाथ जोड़े हुए बोले कि आपका जो आदर के साथ पूछना हुआ वही कुशल का कारण हो गया।

व्याख्या : मुनिजी के पूछने की ध्वनि समझकर दूत लोग सङ्कुचित हुए। परन्तु दूतों में ये श्रेष्ठ है। उत्तर देना जानते हैं। उन सबों ने तो पहिले पृथ्वी पर सिर रखकर प्रणाम किया। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर : अत्यन्त विनय से बोले।

दूतों ने कहा कि आपने जो आदर के साथ पूछा कि विदेह राजा कुशल से तो है? आपने राजा कुशल से हैं ऐसा नही पूछा। आदर के लिए विदेह विशेषण दिया। वही विदेहता ही कुशल का कारण हो गयी। भाव यह कि अयोध्या के समाचार से महाराज को ऐसी चोट लगी कि विदेह होने के कारण रक्षा हो गयी। नही तो वहाँ भी अनर्थ हो ही चुका था।

दो. नाहि त कोसल नाथ कें, साथ कुसल गइ नाथ।
मिथिला अवध बिसेष ते, जगु सब भयउ अनाथ॥२७०॥

अर्थ · हे नाथ ! नही तो कोसलनाथ महाराज दशरथ के साथ कुशल चली गयी। सारा जगत् अनाथ हो गया और मिथिला अवध तो विशेषरूप से अनाथ हो गये।

व्याख्या · दूत कहते हैं कि वस्तुस्थिति तो यह है कि कुशल तो कोसलनाथ साथ लेते गये। कोसलनाथ यद्यपि अवध के ही राजा थे पर चक्रवर्ती थे। सभी राजा उनकी कृपा के भिखारी बने रहते थे। यथा · नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे। लोकप करहिं प्रीति रुख राखे। उन पर उनका शासन चलता था। अत महाराज के देहावसान से ससार अनाथ हो गया। महाराज जनक तो सेवक सेव्यभाव रखते थे। यथा · यह राज साज समाज सेवक जानवी बिनु गथ लये। अत मिथिला और अवध विशेषरूप से अनाथ हो गये। क्योकि इनसे उनका साक्षात् सम्बन्ध था। मिथिला के लोग तो महाराज से ऐसी प्रीति रखते थे दसरथ गवन सोहाइ न काहू। भावार्थ यह कि महाराज के देहावसान का दु ख अवध से कम मिथिला म नही मनाया गया।

कोसलपति गति सुनि जनकौरा। भे सब लोग सोक बस बौरा ॥
जेहि देखे तेहि समय बिदेहू। नामु सत्य अस लाग न केहू ॥१॥

अर्थ कोसलपति की गति सुनकर जनकपुर के लोग तो मारे शोक के पागल हो गये। उस समय जिसने महाराज विदेह को देखा उसे उनका विदेह नाम सच्चा न मालूम हुआ।

व्याख्या रामजी के विरह मे महाराज के देहावसान के समाचार का ऐसा प्रभाव जनकपुर निवासियो के ऊपर पडा कि सब पागल से हो गये। किसी को अपनी सुधि न रह गयी और महाराज जो मिथिलाया प्रदग्धाया न मे किञ्चित् प्रदह्यते। माननेवाले थे। वे तो ऐसे विकल हुए कि उस समय जिसने उन्हे देखा उसे यही मालूम हुआ कि इनका नाम विदेह नाहक लोगो ने रख छोडा है। इन्हे तो प्रबल देहाध्यास है। समधी के मरने का समाचार पाकर इस भाँति तो कोई सामान्य पुरुष भी विकल नही होता।

रानि कुचालि सुनत नरपालहिं। सूझ न कछु जस मनि बिनु ब्यालहिं ॥
भरत राज रघुबर बनबासू। भा मिथिलेसहिं हृदयँ हराँसू ॥२॥

अर्थ रानी की कुचाल को सुनते ही राजा की ऐसी दशा हो गयी जैसे मणि के बिना सर्प की हो जाती है। उन्हे कुछ सूझ ही नही पडता था। भरत को राज और राम का वनवास सुनकर मिथिलाधिपति के हृदय मे अत्यन्त दु ख हुआ।

व्याख्या स्वायम्भू मनु ने वर माँगा था मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुमहि अधीना। सो जल बिनु मीन की दशा महाराज दशरथ की हुई उन्होने प्राण ही त्याग दिया और मणि बिनु फनि की दशा राजा जनक की हुई। यथा मनि बिनु फनि जियै व्याकुल बेहाल रे। और यह सब रानी

के कुचाल से हुआ। अत: उसका प्रतीकार कुछ नही हो सकता था। यदि दूसरे द्वारा ऐसी बात होती तो महाराज दण्ड विधान करते। अब कुचाल को स्पष्ट करता हुआ दूत कहता है: भरत राज रामहि बनबासू। यह दोनो बातें ऐसी आपड़ी कि कुछ किया नही जा सकता था। भरत का राज्य अनिष्ट नही कहा जा सकता था। पर राम के वनवास से उसका सम्बन्ध जुटने से इष्ट भी नही कहा जा सकता। जैसे राम जामाता तैसे भरत जामाता। यहाँ पुरुषार्थ को एकदम कोई स्थान ही नही था। अतः महाराज के हृदय मे ह्रास हुआ।

नृप बूझे बुध सचिव समाजू। कहहु बिचारि उचित का आजू ॥
समुझि अवध असमंजस दोऊ। चलिअ कि रहिअ न कह कछु कोऊ ॥३॥

अर्थ : महाराज ने विद्वत् समाज तथा मन्त्रिमण्डल से पूछा कि इस अवसर पर क्या करना चाहिए। अवध के दोनों असामञ्जस्यों को समझकर चलना चाहिए या रह जाना चाहिए। इस प्रश्न पर सब मौन रह गये।

व्याख्या : अपनी बुद्धि काम करते न देखकर महाराज ने विद्वत् समाज और मन्त्रिमण्डल बुलाया। बडा विकट प्रश्न है। अतः राज्य के सभी बुद्धिमान् इकट्ठे किये गये। प्रश्न यह सामने रक्खा गया कि ऐसे अवसर पर महाराज को क्या करना चाहिए। अयोध्या प्रस्थान करें या यही ठहरकर देखें कि आगे क्या होता है। तब उचित अवसर पर कुछ किया जाय। इसी प्रश्न पर विचार करना था।

रामजी और भरतजी दोनो दामाद हैं। किसी एक का पक्ष लिया नही जा सकता। जाने पर किसी न किसी का पक्ष ग्रहण करना ही होगा। रामजी वन गये भरत को राज्य मिला। पर इतने से ही मामला ठण्ढा नही हुआ। रामजी के विरह मे चक्रवर्तीजी ने प्राणत्याग किया। प्रजा रामजी मे ही अनुरक्त है। नही तो भरत के राज्य के साथ साथ रामजी को वनवास माँगने का क्या अभिप्राय था? जब चक्रवर्तीजी ही सामञ्जस्य नही बिठा सके तो दूसरा कैसे बिठा सकेगा? तिस पर जनकजी का सम्बन्ध ऐसा है कि ये कुछ भी नही कह सकते। अत: न जाना ही ठीक है। पर दूसरा पक्ष यह भी है कि इस समय अयोध्या मे आग लगी हुई है। यथा : बिधि कैकयी किरातिनि कीन्ही। जिन्ह दव दुसह दसहु दिसि दीन्ही। ऐसे समय पर अति सन्निकट सम्बन्धी दूर खडे तमाशा कैसे देख सकते हैं? अत. इन दोनो असामञ्जस्य को देखकर किसी से कोई निश्चित निर्णय करते नही बना।

नृपहिं धीर धरि हृदय बिचारी। पठए अवध चतुर चर चारी ॥
बूझि भरत सतिभाउ कुभाऊ। आएहु बेगि न होइ लखाऊ ॥४॥

अर्थ : राजा ने ही धैर्य धारण करके विचार किया और चार चतुर दूतों को अयोध्या भेजा और आज्ञा दी कि भरतजी का सद्भाव दुर्भाव समझकर जल्द आवो। पर कोई तुम लोगों को लख न सके।

व्याख्या : महाराज ने देख लिया कि किसी की बुद्धि काम नही करती है।

धीरजु धर्म मित्र अरु नारी। आपत काल परखिअहिं चारी। सो महाराज ने धैर्य धारण करके स्वय विचार किया कि रानी कैकेयी के कुभाव का पता चल गया। परन्तु भरतजी के मन मे क्या है इस बात का पता बिना लगे कर्तव्य निश्चित नही किया जा सकता। अत अत्यन्त चतुर चार दूतो को बुलाया और उन्हे अयोध्या भेजा कि जाकर के सद्भाव या कुभाव का पता लगावें। वेषभूषा और भाषा आदि से कोई लख न पावे कि ये दूत बाहर से पता लगाने आये हैं और जितना सम्भव हो उतनी शीघ्रता इस काम मे करें।

दो गए अवध चर भरत गति, बूझि देखि करतूति।
चले चित्रकूटहि भरत, चार चले तिरहूति ॥२७१॥

अर्थ दूत लोग अवध गये। भरत की गति का पता लगाकर और करतूत देखकर जब भरतजी चित्रकूट चल तब दूत मिथिला चले।

व्याख्या वसिष्ठजी के पूछने की ध्वनि समझकर दूत महाराज का हाल भी कहने लगे। भाव यह कि चक्रवर्तीजी के देहावसान का समाचार पाते ही शोक के प्रथम वेग समाप्त होने पर महाराज स्वय अवध चलने को तैयार थे। परन्तु बिना सब बात समझे काम करना उचित न समझकर दूतो को सच्चा पता लगाने के लिए भेजा। ऐसे अवसरो पर राजकाज मे जिन भावो का प्रदर्शन किया जाता है वे प्रायेण वास्तविक नही होते। दूतो से ही असली भेद हाथ लगता है। सो दूत अवध आये। आप लोगो को पता न लगा और सब समाचार लेकर जब भरतजी चित्रकूट चले तब दूत भी मिथिला चल। यही कारण महाराज के देर करने का हुआ। यदि आपके यहाँ से समाचार गया होता तो महाराज के आने मे देर न होती।

दूतन्ह आइ भरत कइ करनी। जनक समाज जथामति बरनी ॥
सुनि गुरु परिजन सचिव महीपति। भे सब सोच सनेह बिकल अति ॥१॥

अर्थ दूतो ने आकर भरतजी की करणी जनकजी की सभा मे यथा बुद्धि वर्णन की। सुन करके गुरु सभासद मन्त्री और राजा सबके सब सोच और स्नेह मे अत्यन्त विकल हो गये।

व्याख्या भरतजी के ही सद्भाव और कुभाव के जानने के लिए दूत भेजे गये थे। अत उन लोगो ने भरतजी की मङ्गलमय करणी का वर्णन राज समाज मे किया और कहा कि हम लोग भरतजी की करणी यथामति कह रहे हैं। नही तो वह अवर्णनीय है।

महाराज उस समय सभा म थे। अत गुरु परिजन और मन्त्री लोग भी थे। यह समाचार सुनकर सब सोच और प्रेम मे मग्न हो गये। सोच रामजी का और प्रेम भरतजी का। रामजी पिता का वचन हटाकर लौट आवेंगे इस बात मे सबको सन्देह है और भरत राज्य स्वीकार नही करेंगे। यह भी निश्चय है। तब हाला

क्या है ? इस प्रकार का सोच पैदा हुआ और भरतजी की प्रेम कथा सुनने से सबके मन मे प्रेम उमड आया।

धरि धीरजु करि भरत बडाई। लिए सुभट साहनी बोलाई ॥
घर पुर देस राखि रखवारे। हय गय रथ बहु जान सँवारे ॥२॥

अर्थ : धैर्य धारण करके भरतजी की बडाई की। योद्धाओ और सेनापतियो को बुलवाया। घर राजधानी और देश की रक्षा का प्रबन्ध करके हाथी, घोडे, रथ और बहुत सी सवारियाँ सजायी।

व्याख्या : जिस भाँति चक्रवर्तीजी के निधन पर सबका धैर्य छूट गया था उसी भाँति भरतजी की करणी सुनकर भी सबका धैर्य जाता रहा। पहिली बार भी महाराज ने ही सब के पहिले धैर्य धारण किया। इस बार भी उन्ही ने ही अपने को सबके पहले सँभाला और निश्चय कर लिया कि चलना चाहिए और देर न होने पावे। भरतजी और रामजी मे कोई बात तय पाने के पहले मेरा पहुँचना जरूरी है। ऐसा सोचकर महाराज ने पहले घर की रक्षा की। तत्पश्चात् राजधानी और तत्पश्चात् देश की रक्षा की व्यवस्था की। जहाँ जैसा उचित था सेना और सेनापति स्थापित किये गये और साथ चलने के लिए चतुरङ्गिणी सेना तथा बहुत सी सवारियाँ सजायी गयी। दूतो से सुन चुके हैं कि भरतजी के साथ रनिवास की भी यात्रा हुई है। अत महाराज ने भी रनिवास का ले जाना उचित समझा। ऐसी आपत्ति के समय बेटी दामाद से मिलने की उन लोगो को उत्कट इच्छा होना स्वाभाविक था।

दुघरी साधि चले ततकाला। किए बिश्रामु न मग महिपाला ॥
भोरहिं आजु रहाइ प्रयागा। चले जमुन उतरन सबु लागा ॥३॥

अर्थ दुघरी साध के उसी समय चल पडे। महाराज ने रास्ते मे विश्राम भी नही किया। आज प्रात काल ही प्रयाग स्नान करके चल पडे। लोग यमुना पार करने लगे।

व्याख्या काल बल प्राप्त करने के लिए मुहूर्त देखकर ही कार्य करने की विधि है और यात्रा का मुहूर्त बडी कठिनता से मिलता है। यहाँ चलने की बडी शीघ्रता है। ऐसे अवसर के लिए दुघडिया मुहूर्त का विधान है। अत्यन्तावश्यकता मे उसी से काम लिया जाता है। वह मुहूर्त दो घडी म एक बार आ जाता है। अत तत्काल यात्रा के लिए दुघडिया साइत देखी गयी। महाराज चल पडे सो अत्यन्त शीघ्र पहुँचने के लिए रास्ते म विश्राम भो नही किया। आज प्रात काल प्रयागराज पहुँच गये। त्रिवेणी स्नान करके चल पडे। बीच मे यमुनाजी पडी। पार करने की व्यवस्था हुई। लोग उतरने लगे।

खबरि लेन हम पठये नाथा। तिन कहि अस महि नायउ माथा ॥
साथ किरात छ सातक दीन्हे। मुनिवर तुरत बिदा चर कीन्हे ॥४॥

अर्थ : हे नाथ ! हम लोगों को खबर लेने के लिए भेजा है। ऐसा कहकर उन सबों ने सिर झुकाया। छः सात किरात साथ देकर मुनिजी ने तुरन्त उन सबों को विदा किया।

व्याख्या : मुनिजी के जिज्ञास्य विषय का उत्तर देकर उन सबों ने पुनः प्रणाम किया। अर्थात् यह दिखलाया कि हम लोगों का इतना ही कथन था। हम लोग तो केवल खबर लेने आये हैं। कोई विशेष बात हम लोगों को नहीं कहनी है।

मुनिजी ने समझ लिया कि महाराज जनक इन लोगों का इन्तजार करते होंगे। अतः इनका रोकना ठीक नही। अतः तुरन्त उनको विदा किया तथा उन सबको सरल मार्ग दिखाने तथा महाराज को सेना सहित सुभीते के रास्ते से लाने के लिए छः सात किरातों को साथ कर दिया।

जनकागमन प्रसङ्ग

दो. सुनत जनक आगवनु सबु, हरषेउ अवध समाजु।
रघुनंदनहि सकोचु बड़, सोच बिबस सुरराजु ॥२७२॥

अर्थ : जनकजी का आना सुनकर अयोध्या का समाज प्रसन्न हो उठा। रामजी बड़े सङ्कोच में पड़ गये और इन्द्र देवता को तो बड़ा सोच हुआ।

व्याख्या : जनकजी के आने के समाचार मात्र से मामला पलटा खा गया। अवध निवासी असमञ्जस में पड़े हुए थे सो हर्षित हो गये। भरतजी का वचन सुनकर देवता हर्षित हो गये थे सो सोच के विवश हो गये। महाराज रामचन्द्र वैसे ही सङ्कोच के वश चुप हो रहे थे सो उनका सोच और भी बढ़ गया। महाराज जनक चक्रवर्तीजी के समकक्ष हैं। इनका बड़ा भारी प्रभाव सब पर है। इनके स्वयं आने का रामजी के लौटाने को छोड़कर दूसरा अर्थ हो नहीं सकता।

गरइ गलानि कुटिल कैकेई। काहि कहै केहि दूषनु देई ॥
अस मन आनि मुदित नर नारी। भयउ बहोरि रहब दिन चारी ॥१॥

अर्थ : कुटिल कैकेयी ग्लानि से गली जाती है। किस से कहे और किसे दूषण दे। स्त्री पुरुष तो यह बात मन में लाकर प्रसन्न हो रहे हैं कि फिर चार दिन तो रहना हो गया।

व्याख्या : जनकजी का आगमन सुनकर कैकेयी तो ग्लानि के मारे गली जाने लगी कि समधी आ रहे हैं। वे क्या कहेंगे। स्त्रियों को समधी का बड़ा ख्याल होता है। पछताती तो पहिले से ही थी। यथा : लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई। अब उसकी ग्लानि से बुरी दशा है। ग्लानि से सम्भावित पुरुष की तो मृत्यु हो जाती है। यथा : कह्यौ राजबन दियो नारिवस गरि गलानि गये राउ। कैकेयी का इस समय कोई सहानुभूति करनेवाला नहीं है। जिससे कि वह अपना दुःख कहे। क्योंकि कहने से भी कुछ दुःख घट जाता है और कोई

ऐसा भी नही है जिसे वह दोष दे कि मैं अमुक के बहकावे मे आगयी। कुबरी को भी दोष नही दे सकती। क्योकि कुलमान्य जठेरी तथा उसके परम प्रिय सखियो ने बहुत समझाया था और अन्त में यह भी दिया : जौ नहिं लगिहौ कहे हमारे। नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे। सो सखियों की सलाह छोड़कर उसने मतिमन्द कूबरी की बात क्यो मानी ? अत. स्पष्ट सब दोष उसी का था। उसने सखियो की भी सहानुभूति खो दी। अब मन ही मन मर रही है। किसी से कुछ कह नही सकती।

जनकजी के आने का परिणाम क्या होगा ? इस बात पर तर्क वितर्क न करके लोग इतने पर ही प्रसन्न है कि मिथिलेश के आने से चार दिन ठहरने का अवसर और हाथ लग गया।

एहि प्रकार गत बासर सोऊ। प्रात नहान लाग सबु कोऊ॥
करि मज्जनु पूजहि नर नारी। गनप गौरि तिपुरारि तमारी॥२॥

अर्थ : इस प्रकार वह दिन बीता। प्रात काल होते ही सब लोग नहाने लगे। नहा नहाकर स्त्री और पुरुष, गणेश, गौरी और सूर्य का पूजन करते हैं।

व्याख्या : अपने अपने हृद्‌गत भावो के उधेड़बुन मे शेष दिन भी बीत गया। यहां दिन मे रात का भी अन्तर्भाव है। सवेरा हुआ। जनकजी के आने की बात है। इसलिए तुरन्त नित्यकृत्य के निर्वाह मे लग गये। अब अवधवासियो की दिनचर्या कहते हैं।

पहिले स्नान किया। सन्ध्या तर्पणादि का उसी मे अन्तर्भाव है। तब पूजन आरम्भ हुआ। अवधवासी स्मार्त वैष्णव हैं। शिवद्रोही नही हैं। शिव विष्णु मे अभेद है। यथा : माधवोमाधवावीशौ सर्वसम्पद्‌विधायिनौ। वन्दे परस्परात्मनौ परस्पर-नुतिप्रियौ। माधव विष्णु और उमाधव शिवजी दोनों सम्पत्ति के देनेवाले हैं। दोनो एक दूसरे की आत्मा हैं और दोनो को एक दूसरे की वन्दना करना प्रिय है। स्मार्त वैष्णव पञ्चदेवोपासक होते हैं। अत. ये लोग गणपति, गौरी, शिवजी और सूर्य का पूजन करते हैं।

रमा रमन पद बंदि बहोरी। बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी॥
राजा रामु जानकी रानी। आँनद अवधि अवध रजधानी॥३॥

अर्थ : तत्पश्चात् रमारमण विष्णु भगवान् के चरणो की वन्दना करके अञ्जलि और अञ्चल जोड़कर विनय करते हैं कि रामजी राजा हो। जानकी रानी हो और आनन्द की सीमा अयोध्या राजधानी हो।

व्याख्या : यहां रमारमण शब्द का अन्वय पूर्व की अर्धाली के साथ है अर्थात् पूजहिं क्रिया का कर्म रमारमण शब्द है। पूजन के बाद चरणो की वन्दना करके पुरुष लोग अञ्जलि बांधकर और स्त्रियां अञ्चल जोड़कर विनय करती हैं कि रामजी राजा हो। प्रजा सिवा [illegible]

जानकी रानी हों। सबकी प्रीति जैसे रामजी मे है वैसी ही जानकीजी मे है। इस मनोहर जोडी के देखते रहने की बड़ी अभिलाषा है। यथा : फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिहौ नयन मनोहर जोरी।

राजा लोग अपने पसन्द के अनुसार कभी राजधानी बदल भी देते हैं। सो ऐसा न हो राजधानी अयोध्या ही रहे। क्योकि अयोध्या आनन्द की पराकाष्ठा है। सरकार के चार विग्रहो मे एक है। यथा : रामस्य नाम रूपञ्च लीलाधाम परात्परम्। एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् रामस्य विग्रह.। पाठभेद: एतच्चतुष्टय नित्य सच्चिदान्दविग्रहम्। तथा : अवध प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहिं राम धनुपानी।

सुबस बसउ फिरि सहित समाजा। भरतहि रामु करहुँ जुबराजा॥
एहि सुख सुधा सीचि सब काहू। देव देहु जगजीवन लाहू॥४॥

अर्थ : फिर आनन्द सहित सब समाज बसे। भरत को रामजी युवराज बनावें। इस सुखरूपी अमृत से सीचकर हे देव ससार मे जीने का लाभ दीजिये।

व्याख्या : भरतजी पहिले ही कह चुके हैं : मिटै कुजोग राम फिरि आये। बसिहि अवध नहि आन उपाये। नही तो सब बारहबाट हो जायँगे। वही बात आज प्रजा पञ्चदेव की उपासना करके माँगती है कि राजा राम हो जानकी रानी हो इत्यादि। तब यह प्रश्न उठता है कि महाराज ने भरत को टोका देने का वचन दिया है। उसकी क्या गति होगी। इस पर कहते हैं कि चक्रवर्तीजी ने यौवराज्य के टीका का वचन दिया था। सो रामजी भरत को युवराज का टीका कर दें। चक्रवर्तीजी का वचन भी बना रह जाता है।

सब लोग दु सह ज्वर से जल रहे हैं। सो इस सुखरूपी अमृत से पञ्चदेव सबको सीचें। बिना इस अमृत का सिञ्चन किये ज्वर और जलन दोनो न मिटेगी। अभिलाप सबका यही है। यथा : कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा। कनक सिंहासन सीय समेता। बैठहिं राम होइ चित चेता। उसी अभिलाप मे बाधा पडने से ज्वर है। अभिलाप की पूर्ति ही जीवन का लाभ है। अतः हमारे जीवन का लाभ इसी मे है कि रामजी राजा हो इत्यादि।

दो. गुर समाज भाइन्ह सहित, रामराजु पुर होउ।
अछत राम राजा अवध, मरिअ माँग सबु कोउ॥२७३॥

अर्थ : बडो के समाज के और भाइयो के सहित रामजी का राज्य पुर मे हो और राम के राजा रहते ही सबका देहावसान हो जाय।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी तो चले गये। चौदह वर्ष मे न जाने कितने लोग चले जायँगे। उनका अभिलाप पूरा न हो सकेगा। भरतजी जो स्वयं वन जाने को तैयार हैं। भाइयो को भी साथ ले जाने को कह रहे हैं। सो भी न हो। ऐसा न होने से जो सुख हम लोग चाहते हैं वह पूरा न होगा। यथा : सम दु ख सुख सब

रोवहिं रानी। और रामजी का वियोग किसी को कभी न हो। हम सबकी मृत्यु रामजी के राजा रहते ही हो जाय।

सुनि सनेहमय पुरजन बानी। निंदहि जोग बिरति मुनि ज्ञानी॥
एहि बिधि नित्य करम करि पुरजन। रामहि करहिं प्रनाम पुलकि तन॥१॥

अर्थ : पुरजन की प्रेममय वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि योग और वैराग्य की निन्दा करते हैं। इस भाँति नित्यकर्म करके पुरजन रामजी को पुलकित शरीर होकर प्रणाम करते हैं।

व्याख्या : वाणी से पुरजन के प्रेम का उत्कर्ष जानकर ज्ञानी लोग लगे वैराग्य और योग की निन्दा करने। प्रजा राजा के सम्बन्ध के कारण इनकी इतनी प्रीति बढ़ी हुई है। अतः सम्बन्ध ही परतम भाव है। जिससे बिना ध्यान, बिना तप, बिना योग और बिना ज्ञान के श्रीरघुनन्दन पर अव्यभिचारिणी प्रीति होती है। यथा 'एभ्य. परतमो भाव' सम्बन्धाख्य स्वय स्वराट्। विना ध्यानेन तपसा योग ज्ञान विनैव हि। श्रीरघुनन्दने प्रीति पराह्यव्यभिचारिणी। वर्धतेऽनुदिन विप्र सत्य सत्य न चान्यथा'[1]। सो यह सम्बन्धाख्य महाभाव का प्रभाव है कि इन सामान्य लोगो की जिनका ध्यान तप योग से कोई सम्बन्ध नही है रामजी मे ऐसी प्रीति है। अत. वैराग्य और योग सम्बन्धाख्य भाव के सामने कुछ नही है।

नित्य कर्म को विधि ऊपर कह आये हैं। सभी लोग पञ्चदेव की उपासना करके राम सम्बन्धी माँगन माँगते हैं। तत्पश्चात् रामजी को प्रणाम करने के लिए जाते हैं।

ऊँच नीच मध्यम नरनारी। लहहिं दरसु निज निज अनुहारी॥
सावधान सबही सनमानहि। सकल सराहत कृपानिधानहि॥२॥

अर्थ : उच्च नीच और मध्यम श्रेणी के नरनारी अपने अपने अनुसार दर्शन पातेहैं। भगवान् : सावधान होकर सबका सम्मान करते हैं और सब कृपानिधान की बड़ाई करते हैं।

व्याख्या . पुर नरनारी मे सात्त्विक राजस और तामस सभी प्रकृति के लोग आये हैं और वे सब सरकार के दर्शन के लिए गये। पर सबको एक रूप दर्शन नही हो रहा है। सात्त्विक रूप का दर्शन पाते हैं। राजसिक राजसरूप का दर्शन पाते हैं और तामसिक तामसरूप का दर्शन पाते हैं। तीनों प्रकार का ध्यान शास्त्रो मे कहा गया है।

सरकार बडी साहिबी मे बडे सावधान हैं। ऐसा नही होता कि कोई उपेक्षित रह जाय। जो राजदर्शन के लिए जाता है सरकार सबका सम्मान करते हैं। यथा : अस कपि एक न सेना माही। राम कुसल जेहि पूछी नाही। सम्मान ही सब

---

१. अहिर्बुध्न्यसंहितायाम्।

दानो मे वडा है। सो सम्मान पाकर सब कृतकृत्य हैं और सरकार की बडाई करते हैं। कहते है कि यह कृपानिधान की कृपा है जो हमारा इतना सम्मान हो रहा है।

लरिकाइहि तें रघुवर वानी। पालत नीति प्रीति पहिचानी ॥
सील सकोच सिंधु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ ॥३॥

अर्थ वचपन से ही सरकार का स्वभाव है कि प्रीति की पहिचान करके नीतिका पालन करते है। श्रीरघुनाथ शील सङ्कोच के समुद्र हैं। उनका श्रीमुख सुन्दर नेत्र सुहावना और स्वभाव सरल है। भगवान् सुमुख हैं। मीठी वाणी वोलते हैं और सुलोचन हैं सदा कृपा दृष्टि से देखते हैं।

व्याख्या रीझत राम सनेह निसोते। प्रीति पहिचान यह रीति दरवार की। पुरलोग कहते हैं कि लोगो मे सद्गुण सिखाने से आते है। पर सरकार मे तो यह गुण वचपन से ही दिखायी पडते हैं। प्रीति की पहिचान करके नीति का पालन करते है। व्यवहार यथायोग्य करते हैं। परन्तु प्रीति के पहिचान की झलक बरावर रहती है। शील सङ्कोच के तो समुद्र हैं। सुमुख सुलोचन होने से उसका प्रभाव और भी वढ जाता है। तिस पर सरल स्वभाव होने से उत्कर्ष की सीमा हो जाती है।

शील। यथा चारिउ सील रूप गुन धामा।
तदपि अधिक सुखसागर रामा ॥
सङ्कोच। यथा चुपहि रहे रघुनाथ सँकोची।
प्रभु गति देखि सभा सव सोची ॥
सुमुख। यथा सव बिधि सव पुरलोग सुखारी।
रामचद्र मुखचद निहारी ॥
सुलोचन। यथा मामवलोकय पकज लोचन।
कृपा विलोकनि सोच विमोचन ॥
सरल सुभाऊ। यथा रामहि मातु वचन सव भाए।
जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए ॥

कहत राम गुन गन अनुरागे। सव निज भाग सराहन लागे ॥
हम सम पुन्य पुज जग थोरे। जिनहि रामु जानत करि मोरे ॥४॥

अर्थ रामजी के गुणगणो को कहते कहते अनुराग मे आगये। सब अपने भाग्य की सराहना करने लगे कि हम लोगो के समान पुण्यपुञ्ज ससार मे थोडे ही लोग हैं। जिन्हे राम अपना करके मानते है।

व्याख्या सरकार के गुणगण ही ऐसे है कि उनके स्मरण करने से अनुराग वढता है। यथा सुमिरि सुमिरि गुनग्राम राम के उर अनुराग वढाउ। उपर्युक्त चौपाई म जो गुणगण सरकार के कहे गये हैं उनके स्मरण करने से रामपद मे अनुराग वढता है। अत उन लोगो का अनुराग वढा। तव अपने अपने भाग्य की

सराहना करने लगे। ऐसे ही स्थल मे भाग्य की सराहना की उ सराहना करने से बड़े की स्तुति ध्वनित हो।

जो अतिप्रिय हो वही अपना होता है। जिससे प्रेम नही वह भी अपना नही माना जाता। सरकार हम लोगो को अपना करके जान हम लोग सरकार को अतिप्रिय हैं। यथा अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी योगीन्द्र मुनीन्द्र बड़े बड़े पुण्यपुञ्ज चाहते है कि उनका सरकार पर प्रेम सरकार हमारे पर प्रेम करते है। अत हमारे पुण्य का क्या ठिकाना ? अपने भाग्य की बड़ाई करते है।

दो. प्रेम मगन तेहि समय सब, सुनि आवत मिथिलेसु।
सहित सभा सम्भ्रम उठेउ, रविकुल कमल दिनेसु॥

अर्थ : उस समय सब प्रेम मे मग्न थे। समाचार आया कि मिथिलेश हैं। अत सभा के सहित सूर्यकुल कमल के सूर्य एकाएक उठ खड़े हुए।

व्याख्या सब लोग मिथिलेश के आगमन की आशा से ही नित्यकृत्य निर्वाह करके पास जुट गये थे और सरकार से सम्मान पाकर उनके गुणो के स्म से प्रेम मे विभोर हो रहे थे। उन्हे स्मरण भी नही रहा कि क्यो यहाँ इकट्ठे हुए तब से समाचार मिला कि महाराज जनक आ रहे हैं। महाराज की इतनी प्रति सरकार की दृष्टि मे है कि घबड़ाये से उठ खड़े हुए और सभा की सभा उसी भ उठ खड़ी हुई।

भाइ सचिव गुर पुरजन साथा। आगे गवनु कीन्ह रघुनाथा॥
गिरिबरु दीख जनकपति जबही। करि प्रनामु रथु त्यागेउ तबही॥१॥

अर्थ भाई मन्त्री गुरु और पुरजन को साथ लिये हुए रघुनाथजी आगे चले। राजा जनक ने जब पर्वतो मे श्रेष्ठ चित्रकूट को देखा तो उसी समय प्रणाम करके रथ से उतर पड़े।

व्याख्या : सरकार से ज्यो ही जनकराज का आगमन सुना त्यो ही ससम्भ्रम उठे और उनको आगे से लेने के लिए चल पड़े। सभा मे उस समय भाई गुरु और पुरजन जुटे थे। वे भी साथ ही लिये। अभी राजा जनक इतनी दूर है कि शैलशृङ्ग का दर्शन हुआ ही चाहता है। सो दर्शन होते ही महाराज ने चित्रकूट को प्रणाम किया और तीर्थ का आदर करते हुए रथ से उतर पड़े। यहाँ से महाराज जनक समाज सहित सरकार से मिलने पैदल चले और उधर समाज सहित सरकार उनसे मिलने पैदल चले आ रहे हैं। जिस भाँति रघुपति शब्द का प्रयोग होता है उसी भाँति जनकपति शब्द का प्रयोग है।

राम दरसु लालसा उछाहू। पथ श्रम लेसु कलेसु न काहू॥
मन तहँ जहँ रघुबर बैदेही। बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही॥२॥

अर्थ : रामजी के दर्शन की लालसा और उत्साह से रास्ते के परिश्रम के लेश का भी क्लेश किसी को नही है। उनका मन तो रामजी मे लगा था। बिना मन के दु ख सुख की सुध किसको हो।

व्याख्या · राजा जनक के समाज का वर्णन करते हुए कहते है कि श्रीराम जानकी के दर्शन की लालसा और शीघ्र दर्शन की दृढ आशा से सबको ऐसा उत्साह है कि रास्ते चलने मे परिश्रम पडा है। उसके क्लेश का लेश भी किसी मे नही है। जनकपुर से चित्रकूट चले आ रहे हैं और रास्ते मे कही विश्राम भी नही किया। अत सबके थक जाने मे सन्देह नही है। परन्तु कोई थकावट का अनुभव नही कर रहा है। क्योकि सबका मन रामजी मे ऐसा लगा है कि तन की सुध बुध किसी को नही और शीघ्र दर्शन पाने के उत्साह से सब भरे हैं। इससे अयोध्यावासियो सा ही प्रेम मिथिलावासियो का भी दिखलाया।

आवत जनकु चले एहि भाँती। सहित समाज प्रेम मति माती ॥
आये निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परसपर लागे ॥३॥

अर्थ इस भाँति समाज सहित जनकजी चले आरहे थे। उन लोगो की बुद्धि प्रेम से मतवाली हो रही थी। निकट पहुँचकर सबको अनुराग हुआ और आदर के साथ एक दूसरे से मिलने लगे।

व्याख्या · इस भाँति लालसा उत्साह और प्रेम मे मग्न जनकजी समाज के साथ बढे चले आते थे। उधर से रघुनाथजी समाज सहित आगये। रास्ते मे भेंट हो गयी। दोनो समाज के लोग दूसरे समाज से परिचित हैं। देखते ही अनुराग उमड़ पडा। अत आदर से आपस में मिलने लगे। परिस्थिति मे बडा अन्तर है। इसलिए कवि आनन्द की चर्चा नही कर रहे है। जैसा व्याह के समय किया था। यथा : जनु आनद समुद्र दुइ मिलत बिहाइ सुबेल।

लगे जनक मुनिजन पद वन्दन। रिषिन्ह प्रनामु कीन्ह रघुनन्दन ॥
भाइन्ह सहित रामु मिलि राजहि। चले लेवाइ समेत समाजहि ॥४॥

अर्थ : जनकजी मुनियो की चरण वन्दना करने लगे और ऋषियो को रामजी ने प्रणाम किया। भाइयो के सहित रामजी महाराज से मिलकर समाज के सहित उन्हे लिवा चले।

व्याख्या · अवध समाज मे रामजी आगे हैं। मिथिला समाज मे जनकजी आगे हैं। अत· गोस्वामीजी पहिले इन्ही की व्यवस्था कहते हैं कि जनकजी तो वसिष्ठ वामदेवादि की वन्दना करने लगे और रामजी शतानन्द विश्वामित्रादि की वन्दना करने लगे। सगे सम्बन्धी से मिलने के पहिले ऋषियो की वन्दना आवश्यक समझी गयी। तत्पश्चात् रामजी भाइयो के साथ महाराज जनक से मिले और उन्हे समाज के साथ लिवा चले। ऐसे अवसर पर रास्ता दिखाने के लिए छोटे भी वडे के आगे चलते हैं।

दो आश्रम सागर सांत रस, पूरन पावन पाथु।
सेन मनहुँ करुना सरित, लिए जाहिं रघुनाथु ॥२७५॥

अर्थ शान्त रसरूपी पावन जल से भरे हुए आश्रमरूपी समुद्र की ओर मानो सेनारूपी करुणानदी को रामजी लिवाये जा रहे हैं।

व्याख्या जिस भाँति राजा भगीरथ गङ्गाजी को लिवाकर समुद्र म मिला दिया। स्वय रथ पर आगे आगे चले और गङ्गाजी पीछे पीछे चली उसी भाँति रघुनाथजी सेनारूपी सरित को आश्रमरूपी समुद्र की ओर लिवा ले चल। यहाँ आश्रम की उपमा समुद्र से दी। समुद्र क्षीरजल से भरा होता है और आश्रम शान्तरस के जल से पूर्ण है। समुद्र का जल पावन नही होता। केवल विशेप विशेप अवसर तथा विशेप विशेप तीर्थ के योग होने पर ही उसके स्पर्श का विधान है। पर शान्तरस रूपी जल तो सदा पावन है।

सेना की उपमा करुणा नदी से दी। चक्रवर्तीजी के देहावसान के वाद आज ही अवघ तथा जनकपुर के समाज से भेट हुई। भेंट होने से घाव ताजा हो गया। दोनो समाज मे करुणा छा गयी। सव विलाप करते जा रहे हैं। इसी से उनकी उपमा करुणा सरित से दिया। रामजी आगे आगे चल रहे हैं। सबको अपने आश्रम मे लिवाये जाते हैं। अत करुणा सरित का लिवा जाना उनके लिए कहा गया है।

वोरित ग्यान विराग करारे। वचन ससोक मिलन नद नारे॥
सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तटवर कर भंगा॥१॥

अर्थ ज्ञान विराग रूपी करारों का डुबोती हुई चली। शोकयुक्त वचनरूपी नदनारे मिलते गये। सोच रूपी हवा से उच्छ्वासरूपी तरङ्गें उठने लगी। धैर्यरूपी तट के वृक्ष गिरने लगे।

व्याख्या समुद्र मे अनेक नदियाँ अनेक दिशाओ से आकर मिलती हैं। यहाँ रामजी के आश्रम की उपमा शान्तरस के समुद्र से दी गयी है। उसमे भी कुछ शान्तिरस की नदियो का आकर मिलना मानना ही होगा। जिन रास्ता से मुनिगण आकर सरकार का दर्शन करते थे उन्हें शान्तिरस की नदिया से उपमित किया जा सकता है। उन्ही रास्तो मे एक वह भी है जिससे रघुनाथजी महाराज जनक को लिवाये जा रहे हैं। आज उस रास्ते से शोकयुक्त समाज जा रहा है। अत वह शान्तिरस की नदी उस अत्यन्त भारी करुणारस की नदी से जिसे रघुनाथजी लिये जाते हैं ऐसी दव गयी है कि उसके ज्ञान विराग के करारे भी डूव गये। ज्ञान विरागरूप करारा शान्तरस की नदी का ही माना जा सकता है। करुणा सरित का नही माना जा सकता। भाव यह कि वडे वडे ज्ञानी विरागी भी करुणारस म मग्न हो रहे हैं। शोक भरे वचन नद और नाले हैं। जिससे नदी की वृद्धि होती जा रही है। सोच से जो उच्छ्वास ले रहे हैं वही मानों वायुजनित तरङ्ग हैं। धैर्यरूपी तट के वृक्ष जो अभी तक वद्धमूल थे इस प्रवल तरङ्ग से छिन्नमूल होकर गिरते जा रह

हैं। भाव यह कि जिनका धैर्य अभी तक छूटा न था वह भी शोकपूरित उच्छ्वास से छूटा जा रहा है।

बिषम बिषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भवँर अवर्त अपारा ॥
केवट बुध बिद्या बडि नावा। सकहि न खेइ ऐक नहि आवा ॥२॥

अर्थ विषम विषाद ही त्वरावती धारा है। उसमे भयरूपी भँवर और भ्रमरूपी आवर्त चक्कर पड रहा है। पण्डित लोग विद्यारूपी बडी नाव के केवट है। सो वे नाव के चलाने मे असमर्थ है। क्योकि वे किंकर्तव्यविमूढ हो रहे है।

व्याख्या लोगो मे जो विषम विषाद है वही इस करुणा नदी की तीव्र धारा है। त्वरावती शब्द का प्राकृत रूप तोरावती हुआ। विषाद मे क्या होनेवाला है इस बात का भय उत्पन्न होता है और यथार्थ अनुभव की शक्ति जाती रहती है। इसलिए भ्रम होता है। इसीलिए विषादरूपी धारा का भँवर भय को और आवर्त भ्रम को कहा। भँवर और आवर्त वेगवती धारा मे ही पडते हैं। उसी भाँति विषम विषाद मे भय और भ्रम उत्पन्न होता है।

विषादरूपी धारा के पार करने मे विद्यारूपी नाव द्वारा पण्डितरूपी केवट ही समर्थ हैं। अर्थात् विद्या के बल से पण्डित ही ऐसी समय मे धैर्य बँधा सकते हैं। सो उनका किया भी कुछ नही हो रहा है। विषाद का वेग इतना बढा हुआ है कि उन्हे इस बात का अन्दाज ही नही लगता है कि कैसे धैर्य बँधावें।

बनचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हिय हारे ॥
आश्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अबुधि अकुलाई ॥३॥

अर्थ बटोहीरूपी बिचारे वन के फिरनेवाले काले और किरात उसे देखकर स्थगित हो गये। उनकी हिम्मत छूट गयी। जब वह आश्रमरूपी समुद्र मे जा मिली तो मानो समुद्र आकुल हो उठा।

व्याख्या जिस वेगवती नदी मे बडी बडी नाव और केवट की बुद्धि नही काम करती वहाँ वन मे फिरनेवाले कोल किरात क्या कर सकते है। वे तो बिचारे हैं। उनका कोई चारा नही। उनके पास तो छोटी सी भी नाव नही है। उनकी हिम्मत तो इसी नदी को देखकर छूट जाती है। वे किंकर्तव्यविमूढ होकर देखते ही रह जाते हैं।

दु खी समाज को देखकर राह चलते हुए की भी इच्छा होती है कि उनके दु ख का कारण पूछें और उन्हे धैर्य बँधावें। सो यहाँ वन मे विचरनेवाले कोल किरात ही बटोही स्थानीय हैं। वे ही इस दु खी समाज के साथ समवेदना प्रकट करके धैर्य बँधाने का प्रयत्न कर सकते है। पर इस समाज मे इस समय विषाद का इतना वेग है कि बडे बडे ज्ञानी विरागी शोकमग्न हो रहे हैं। इनकी दशा देखकर ही वे अल्पज्ञ कोल किरात स्तब्ध हो गये। उन्हे कुछ भी चेष्टा करने का साहस न हुआ।

जब वह करुणा नदी जाकर आश्रमरूपी समुद्र से मिली तो मानो समुद्र आकुल हो उठा। अर्थात् वह शान्त रस से भरापूरा आश्रम इन विषाद करनेवालों के पहुँचने से कोलाहल पूर्ण हो गया।

सोक बिकल दोउ राज समाजा। रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा॥
भूप रूप गुन सील सराही। रोवहिं सोक सिंधु अवगाही॥४॥

अर्थ : दोनो राज समाज शोक से विकल है। न वहाँ ज्ञान है। न धैर्य है। न लज्जा है। महाराज : दशरथ के रूप गुण और शील की सराहना करके शोक सिन्धु में स्नान करनेवाले रो रहे हैं।

व्याख्या : जहाँ गङ्गा जाकर समुद्र से मिलती है उसे गङ्गासागर तीर्थ कहते हैं। वहाँ लोग स्नान करते हैं। यहाँ भी करुणा नदी और आश्रम सागर का सङ्गम हुआ है। यहाँ के स्नान करनेवाले यात्री दोनो राज समाज हैं। करुणा नदी के सङ्गम से वह आश्रम शोक सिन्धु हो गया। इसी मे यात्री स्नान करते हैं। अर्थात् शोक से विकल हैं। उनका धैर्य छूट गया है। ज्ञान का कही पता नही। उन्हे रोने मे छाती पीटने मे देह के सँभाल के बाहर हो जाने मे लज्जा नही है। वे स्तुति पाठ की भाँति महाराज चक्रवर्तीजी के रूप गुण और शील की प्रशसा करते हैं और रो रहे हैं।

छं. अवगाहि सोच समुद्र सोचहिं नारि नर ब्याकुल महाँ।
दै दोष सकल सरोस बोलहि बाम बिधि कीन्हौ कहाँ॥
सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह की।
तुलसी न समरथु कोउ जो तरि सकै सरित सनेह की॥

अर्थ : शोक समुद्र मे स्नान करके स्त्री पुरुष अत्यन्त व्याकुल है। वे ब्रह्मा को दोष देकर रोष के साथ कह रहे हैं कि वामविधि ने क्या कर दिया। देवता सिद्ध तपस्वी और योगी लोगो ने महाराज विदेह की दशा देखी। तुलसीदास कहते है कि ऐसा समर्थ कोई नही है जो स्नेह की नदी का अतिक्रमण कर सके।

व्याख्या : यद्यपि चक्रवर्तीजी के देहावसान हुए एक महीना बीत गया है। दोनो समाज अपना शोक दबाये हुए थे। पर दोनो स्नेहियो का समाज मिल गया है। रामजी का वेष देखकर जनकपुर निवासियो का दु ख फूट पड़ा जो कि उन्हे वरवेष मे देख चुके थे। उनके दु ख फूटने से अयोध्यावासियो का भी दु ख ताजा हो गया। दोनो समाज इस समय रामजी के आश्रम मे ठहरकर रो रहे हैं। उसी दृश्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि नर नारी अत्यन्त व्याकुल हैं। उन्होने मानो शोक समुद्र मे स्नान किया है। वे सोच रहे हैं कि क्या हो रहा था और क्या हो गया ? वे इसमे ब्रह्मदेव को दोष दे रहे हैं और क्रोध से कह रहे हैं कि प्रतिकूल होकर ब्रह्मदेव ने यह क्या कर दिया।

ऊपर कह आये हैं : रहा न ज्ञान न धीरज लाजा। उसी को यहाँ दिखला रहे हैं। व्याकुल महा : से धैर्य का न रहना कहा। शोक समुद्र मे स्नान से ज्ञान का न रहना कहा। दे दोष सकल सरोष बोलहिं बाम बिधि कीन्हो कहा : से लज्जा न रहना कहा। राजा विदेह मुनियो के भी गुरु स्थानीय हैं। यथा : जासु ज्ञान रवि भव निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल विकासा। उनकी दशा सुरसिद्ध तापस योगियो ने देखी कि महा शोकाकुल हो रहे हैं। अत गोस्वामीजी कहते हैं कि जब देहाध्यास रहित जनकजी की यह दशा है तब यही कहना पडता है कि स्नेह की नदी के सन्तरण का सामर्थ्य किसी को भी नही।

सो. किए अमित उपदेस, जहँ तहँ लोगन्ह मुनिबरन।
धीरज धरिअ नरेस, कहेउ बसिष्ठ बिदेह सन ॥२७६॥

अर्थ · जहाँ तहाँ लोगो को मुनियो ने बहुत से उपदेश दिये। वसिष्ठजी ने महाराज से कहा कि राजन्! धैर्य धारण कीजिये।

व्याख्या : डूबते हुए लोगो को सहारा देने के लिए मुनिगण ने हाथ बढाया। अर्थात् स्नेह सरित के पार करने मे लोगो को असमर्थ देखकर महात्मा लोग करुणा करके ज्ञानोपदेश जहाँ तहाँ देने लगे। क्योकि प्रेम का वेग ज्ञान से ही शान्त होता है। यथा परम प्रेम तिनकर प्रभु देखा। कहा बिबिध बिधि ग्यान बेसेखा। यहाँ तो विदेह राजा जिन्हे देहाध्यास नही वे भी स्नेह सरित मे गोता खा रहे हैं। उन्हे कौन उपदेश दे। अत उन्हे वसिष्ठजी ने केवल इतना कहकर सावधान किया कि राजा अपनी जिम्मेदारी को समझें। यदि राजा ही धैर्य छोडेगा तो प्रजा कैसे धैर्य धारण करेगी।

जासु ग्यानु रबि भव निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल बिकासा ॥
तेहि कि मोह ममता निअराई। यह सिय राम सनेह बड़ाई ॥१॥

अर्थ : जिसके ज्ञानरूपी सूर्य से ससाररूपी रात्रि का नाश हो जाता है और वचनरूपी किरण के लगने से मुनिरूपी कमल खिल उठते हैं। उनके निकट क्या मोह ममता आ सकती है? यह तो सीता राम के प्रेम की बडाई है।

व्याख्या : उत्तरकाण्ड मे ज्ञान दीपक का वर्णन है। जिसके प्रकाश से साधक के भेद भ्रम का नाश होता है। आत्मानुभव सुख होता है। परन्तु जनकजी का ज्ञान ऐसा है कि संसाररूपी रात्रि को ही नष्ट कर देता है और उनके वचन ऐसे होते है कि सुनकर मुनि लोग कमल की भाँति खिल उठते हैं। उस ज्ञान रवि के सामने मोह ममतारूपी अन्धकार जा नही सकता। यथा : तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू। उनमे जो मोह ममता दिखलायी पडती है वह भक्ति का उत्कर्ष हैं। मोह ममता नही है। वही स्नेह पुत्र कलत्रादि मे होने से मोह ममता कहलाता है। यदि परमेश्वर मे हो तो भक्ति कहलाता है और परम कल्याण का कारण होता है।

यथा आत्मारामश्च[१] मुनयो निर्ग्रन्थाअप्युरुक्रमे । कुर्वन्त्यहैतुकी भक्तिमित्थ भूतगुणो हरि ।

बिसई साधक सिद्ध सयाने । त्रिबिध जीव जग बेद बखाने ॥
राम सनेह सरस मन जासू । साधु सभाँ बड आदर तासू ॥२॥

अर्थ विषयी साधक और सयाने सिद्ध इन तीन प्रकार के जीव का होना वेद वर्णन करता है। परन्तु जिसका मन रामजी के प्रेम से सरस होता है। साधु सभा मे उसका बडा आदर होता है।

व्याख्या वेदादि शास्त्र कहते हैं कि तीन प्रकार के ही जीव होते हैं। एक जो विषय मे लिप्त हैं। दूसरे जो सद्गति के लिए यत्नशील हैं और तीसरे सयाने सिद्ध अर्थात् जीवन्मुक्त मुनीन्द्र। साधु सभा मे यथास्थान सभी का आदर है। परन्तु बडा आदर तो उसी का है जिसका हृदय रामजी के स्नेह मे सरस हो। चाहे वह विषयी ही क्यो न हो। अर्थात् जिसका चित्त भगवत् चरित्र से द्रवीभूत हो उसी का अत्यन्त आदर होता है। कठोर चित्तवाले का वैसा आदर नही होता।

सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू । करनधार बिनु जिमि जल जानू ॥
मुनि बहुबिधि बिदेहु समुझाए । रामघाट सब लोग नहाए ॥३॥

अर्थ रामजी के प्रेम के बिना ज्ञान की शोभा उसी भाँति नही होती जैसे बिना कर्णधार के जलयान की शोभा नही होती। मुनिजी ने अनेक प्रकार से विदेह राजा को समझाया। सब लोगो ने रामघाट पर स्नान किया।

व्याख्या निरुपास्ति ज्ञान से पतन होता है। इसलिए सोपास्ति ज्ञान की ही प्रशसा है। यथा जे ज्ञान मान बिमत्त तव भय हरनि भगति न आदरी। ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी। ज्ञान और भक्ति से वही सम्बन्ध है जो नाव और कर्णधार मे है। नाव मनुष्य को जल मे डूबने नही देगी। पर वह स्वय लक्ष्य स्थान प्राप्ति कराने अर्थात् पार पहुँचाने मे असमथ है। कर्णधार ही उसे पार पहुँचा सकता है। इसी भाँति ज्ञान साधक को भवसागर मे डूबने से बचा सकता है। पर उसके पार नही पहुँचा सकता। पार तो भक्ति ही पहुँचावेगी। यथा बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तब जे होइ रहे। जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे। भाव यह कि जनकजी का ज्ञान सोपास्ति ज्ञान था।

वसिष्ठजी ने बहुत प्रकार से विदेहराज को समझाया। यथा

जनम होत नृप मरन हित मरन जनम हित होय।
चला चली चहुँदिसि लखिय थिर कतहूँ नहिं कोय॥

---

१ आत्माराम मुनिगण जिनकी चिज्जडमयी ग्रन्थि छूट गयी है वे भी भगवान् में निष्कारण भक्ति करते हैं। क्योकि भगवान् के गुण ही ऐसे हैं।

थिर मानै गन्धर्वपुर दामिनि सरद पयोद।
सो थिर मानि शरीर को करै विनोद प्रमोद॥
गिरिहु गिरत तारा खसत सूख जाति जल राशि।
ध्रुवहु अध्रुव जग होत है कतहुँ न कोउ अविनाशि॥
शशक शृग वन्ध्या तनय मृगजल सम जग जानि।
दुख सुख सम करि जानिये, किये शोक हित हानि॥
तुमसे ज्ञान विधान को उचित न करन विषाद।
जानत हौ एहि जगत को तीन काल मे बाध॥
सत्यसन्ध दसरथ नृपति, धर्म निरत जग जान।
तीनि काल तिहु भुवन मे नहि कोउ तासु समान॥
शोचनीय सो होइ नहि मनमह करहु विचार।
करि विवेक धीरज धरहु ज्ञानिन्ह के सरदार॥

शोक भी एक प्रकार का सूतक है। अत सबने रामघाट पर स्नान किया। जहाँ सरकार एक बार स्नान करते हैं उस घाट का नाम रामघाट पड जाता है। सरकार के स्नान से तीर्थ का उत्कर्ष बढ जाता है। शृङ्गवेरपुर मे भी इसी भाँति रामघाट नाम पडा। यथा रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मनु मगनु मिले जनु रामू।

सकल सोक संकुल नर नारी। सो बासरु बीतेउ बिनु बारी॥
पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू। प्रिय परिजन कर कौन बिचारू॥४॥

अर्थ सब नरनारी शोक से परिपूर्ण थे। वह दिन बिना जल के ही बीत गया। पशु पक्षी और मृगो ने भी कुछ न खाया। प्रिय परिजन की तो बात ही क्या है?

व्याख्या लोगो का शोक ऐसा बढ गया था कि उस दिन किसी ने जल भी ग्रहण नही किया। यद्यपि मुनि लोगो ने बहुत उपदेश दिया। फिर भी शोक का दृढ सस्कार मिटा नही। दोनो समाज के भेंट हो जाने से चोट ताजी हो गयी। उसका प्रभाव वातावरण पर ऐसा पडा कि पशु खग मृग ने भी आहार ग्रहण नही किया। यहाँ पशु से अभिप्राय सेना के हाथी घोडो से है और खग मृग से अभिप्राय वन्य पशु पक्षी से है। जब इन लोगो की ऐसी दशा हुई तब सगे सम्बन्धियो के लिए यह कहना कि उन्होने भी जल नही ग्रहण किया व्यर्थ है।

दो दोउ समाजु निमिराजु रघु, राजु नहाने प्रात।
बैठे सब बट बिटप तर, मन मलीन कृस गात॥२७७॥

अर्थ महाराज जनक और रामचन्द्रजी तथा दोनो समाजो ने प्रात स्नान किया और दोनो जाकर वटवृक्ष के नीचे बैठे। उनके मन मलिन थे और शरीर दुर्बल था।

व्याख्या : रात मे दोनो समाज मे से किसी को नीद नही आयी। शोक से भूख नीद जाती रहती है। सवेरा होने की देर थी। सबने स्नानादि नित्य कर्म किये। तत्पश्चात् वट के पेड तले इकट्ठे हुए। वटवृक्ष का ही इतना बडा होना सम्भव है कि जिसके नीचे दो राजसमाज एकत्रित हो सकें। मन की खिन्नता का ऐसा प्रभाव पडता है कि कल जो हट्टे कट्टे थे यथा : जल ज्यौं दादुर मोर भये पीन पावस प्रथम : वे ही आज कृशगात हो गये है। दृढ मूलक शोक का सस्कार मुनियो के उपदेश से भी नही मिटा। स्नान करने पर भी मन मलिन हो रहे है।

जे महिसुर दसरथ पुर वासी। जे मिथिलापतिनगर निवासी ॥
हंस वंस गुर जनक पुरोधा। जिन्ह जग मगु परमारथु सोधा ॥१॥

अर्थ : दशरथपुर के रहनेवाले जो ब्राह्मण थे और जो जनकपुर के रहनेवाले थे तथा सूर्यवंश के गुरु तथा जनकजी के पुरोहित जिन्होने ससार मे परमार्थ का मार्ग ढूँढ निकाला था।

व्याख्या : जनकजी का आना सुनकर कल मुनि लोग आस पास से आगये थे। उन लोगो ने उपदेश किया था। आज वे लोग नही है और लोगो मे केवल शोक का वेग रुक मात्र गया है। पर भीतर ज्यो का त्यो बना हुआ है। अतः अयोध्या तथा मिथिला के महीसुर जो मोहजनित सशय के हरण मे समर्थ हैं वे लोग तथा सूर्यवश के गुरु ज्ञाननिधि वसिष्ठजी तथा पुरोहित शतानन्दजी जिन्होने ससार मे परमार्थ पथ ठीक कर लिया है कि कैसा आचरण करने से जीव परमार्थ पथ मे अग्रसर होता है।

लगे कहन उपदेस अनेका। सहित धरम नय बिरति बिबेका ॥
कौसिक कहि कहि कथा पुरानी। समझाई सब सभा सुबानी ॥२॥

अर्थ : वे लोक धर्म नीति वैराग्य और विवेक युक्त अनेक उपदेश कथन करने लगे। विश्वामित्रजी ने अनेक पुरानी कथाओ को कहकर सम्पूर्ण सभा को सुन्दर वाणी से समझाया।

व्याख्या : जनकपुर के लोगो को वहाँ के ब्राह्मण, अयोध्या के रहनेवालो को अयोध्या के ब्राह्मण, अयोध्या के राज घराने को वसिष्ठजी तथा मिथिला के राज-घराने को शतानन्दजी उपदेश करने लगे। इन लोगो को परमार्थ का रास्ता मालूम था। अतः इनके उपदेश का प्रभाव पडा। पहिले विषादयोग होता है। तब ज्ञानयोग के उपदेश का अवसर उपस्थित होता है। विषण्ण होकर आर्त्त हो गये थे। अतः इनमे उपदेश की पात्रता आगयी थी। अधिकारानुसार कही धर्म नीतिका उपदेश हो रहा है। यथा : सोचनीय नहिं कोसल राऊ। भुवन चारि दस प्रगट प्रभाऊ। कही विरति का उपदेश। यथा : राम बिरह तजि तन छन भगू। भूप सोच कर कौन प्रसंगू। कही ज्ञान का। यथा : जो तनु धरौं तजौं पुनि अनायास हरि जान। जिमि नूतन पट पहिरै नर परिहरै पुरान।

पीछे से विश्वामित्रजी ने पुरानी कथाएँ, हरिश्चन्द्र, शिवि, दधीचि, रन्तिदेवादि की कथाएँ कहकर सम्पूर्ण सभा को समझाया कि धर्माचरण मे जितना ही कष्ट होता है उतना ही अनुष्ठाता के पुण्य का उत्कर्ष है। विश्वामित्रजी का समझाना। यथा

आया है सो जायगा सुनहु सभासद वृद।
यहाँ शोक करना नही कोई भी स्वच्छन्द॥
वे हैं धन्य जो धर्म के लिए उठाते कष्ट।
उनका जीना व्यर्थं जो धर्म पन्थ से भ्रष्ट॥
सत्य न छोडा भूप ने दिया देह को छोड।
दुनिया मे हो गया इक नृप दशरथ बेजोड॥
तौल तराजू पर दिया काटि काटि निज मांस।
गुरुता बढी कपोत की शिबि नहि हुए उदास॥
गये काटते अन्त तक कांप उठा ससार।
कठिन परिक्षा धर्म की धन्य जो पावे पार॥
राज गया रानी बिकी बिके डोम के हाथ।
हरिश्चन्द्र फिर भी नही तजे धर्म का साथ॥
वामन ने बलि को ठगा बलि ने तजा न धर्म।
नाप दिया निज देह को कठिन धर्म का मर्म॥
बढी विरह ज्वाला बडी जल भुन गया शरीर।
सत्य न दशरथ तज सके ऐसे थे मति धीर॥
ऐसे राजा की प्रजा होकरके तुम लोग।
शोक तजो धीरज धरो नश्वर सुख दुख भोग॥

तब रघुनाथ कौसिकहि कहेऊ। हाथ कालि जल बिनु सबु रहेऊ॥
मुनि कह उचित कहत रघुराई। गयउ बीति दिन पहर अढाई॥३॥

अर्थ तब रघुनाथजी ने विश्वामित्रजी से कहा कि हे नाथ! कल सब लोग निर्जल रह गये। मुनिजी ने कहा कि रघुनाथजी ठीक कहते हैं। ढाई प्रहर दिन भी बीत गया।

व्याख्या सबका सोच रघुनाथजी को है। यथा सानुज भरत सचिव सब माता। देखि माहि पल जिमि जुग जाता विश्वामित्रजी का उपदेश समाप्त होते ही सरकार ने उनसे कहा कि सबको भोजन करने के लिए आज्ञा दीजिये। कल किसी ने पानी तक नही पीया है। अत क्षुधातृषा भी चित्त के दु ख बढाने म सहायक है। प्राप्त तो यह था कि आज लोग नित्य की अपेक्षा सवेरे ही भोजन करते।

श्री रघुनाथजी का आशय समझकर मुनिजी महाराज जनक की ओर अभिमुख होकर कहते हैं कि श्री रामजी का कहना उचित है। कल का दिन तो बीता ही

आज भी मध्याह्न से ऊपर आधा पहर बीत गया। मध्याह्न तक भोजन कर लेने का विधान है।

रिषि रुख लखि कह तेरहुति राजू। इहाँ उचित नहिं असन अनाजू ॥
कहा भूप भल सबहिं सोहाना। पाइ रजायसु चले नहाना ॥४॥

अर्थ ऋषिजी का रुख देखकर विदेहराज ने कहा कि यहाँ अन्न खाना उचित नही। सबको यह बात अच्छी लगी। कहने लगे कि महाराज ठीक कहते हैं और राजा की आज्ञा पाकर नहाने चले।

व्याख्या विश्वामित्रजी का आशय कि अब सब लोगो को भोजन करना चाहिए। समझकर महाराज जनक बोले कि यहाँ आश्रम मे जहाँ कि श्रीरामजी कन्द मूल फल खाते हैं। हम लोगो का अन्न खाना ठीक नही हैं। यह बात सबको ठीक जँची। सब कहने लगे कि महाराज ठीक कह रहे हैं। सब लोग आज्ञा माँग माँगकर मध्याह्न स्नान के लिए चल। तीर्थ म आने से सब लोग त्रिकाल स्नान मन्दाकिनी मे करते हैं। यथा मन्दाकिनी मज्जन तिहुँकाला।

दो तेहि अवसर फल फूल दल, मूल अनेक प्रकार।
लै आये बनचर बिपुल, भरि भरि काँवरि भार ॥२७८॥

अर्थ उसी समय बहुत से वनवासी कोल भील फल फूल मूल अनेक प्रकार के भारो वहँगियो मे भर भरकर ल आये।

व्याख्या उधर कोल भिल्लो को आतिथ्य सत्कार की चिन्ता लगी। सो उन लोगो ने बहुत फल फूल कन्द मूल इकट्ठे किये जिसमे सारे समाज का सत्कार हो सके। आतिथ्य सत्कार तो अवधवासियो से पहले ही स्वीकार करा चुके हैं। यथा तुलसी कृपा रघुबस मनि की लोह लै लौका तिरा। सो उसी समय जबकि लोग नहाने चले वे सब वहँगियो मे भर भरकर कन्द मूल फलादि ले आये।

कामद मे गिरि राम प्रसादा। अवलोकत अपहरत बिषादा ॥
सर सरिता बन भूमि बिभागा। जनु उमगत आनद अनुरागा ॥१॥

अर्थ रामजी के प्रसाद से पर्वत कामदायक हो गया। उसके देखने से विषाद जाता रहता था। तालाब नदी वन और भूमि का विभाग ऐसा था कि मानो आनन्द और अनुराग उमडा पडता है।

व्याख्या अब प्रश्न यह उठता है पर्वत पर इतना कन्द मूल फल कहाँ से आगया कि दोनो समाज के लिए यथेष्ट हो। इसलिए ग्रन्थकार कहते हैं कि रामजी के प्रसाद से वह पर्वत कामद हो गया। कामधेनु कामतरु तो सुना था पर कामद गिरि सुनने म नहीं आया। रामजी के प्रसाद से उस पर्वत मे कामनापूर्ण करने की शक्ति आगयी। जिसने जो कन्द मूल फल जिस परिणाम मे चाहा उसे वह उसी परिणाम म मिला और मनोहर ऐसा हो गया कि उसके देखने से विषाद का नाश

हो जाय। सब लोग विषण्ण थे। मुनियो के समझाने बुझाने से धैर्य बँधा था। अतः उन पर अनुग्रह करके सरकार ने ऐसी शक्ति पहाड को दी। सर शैल विपिन विभाग मे ऐसी शोभा होती है कि उसके देखने से भगवत् चरणों मे अनुराग उपजता है। यथा : निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा। यहाँ भगवत् कृपा से ऐसी शोभा हुई कि उन विभागो से मानो आनन्द और अनुराग उमगा पड़ता है।

बेलि बिटप सब सफल सफूला। बोलत खग मृग अलि अनुकूला ॥
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू। त्रिबिध समीर सुखद सब काहू ॥२॥

अर्थ . लताएँ और वृक्ष फल और फूल से युक्त हो गये। खग मृग और भौंरे अनुकूल बोलते थे। उस अवसर पर वन मे अधिक उछाह था। शीतल मन्द सुगन्ध वायु सबको सुख देनेवाली वहती थी।

व्याख्या · ऋतु और कुऋतु की कालगति का उल्लङ्घन करके सभी वेलि विटप पुष्पित और फलित हो गये। इससे वन का कामदातृत्व कहा और खग के अनुकूल बोलने से उसका मनोहरत्व कहा। उस वन मे तो सदा उछाह रहता था। यथा · अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मगल चहुँ ओरा। परन्तु इस अवसर मे उछाह बढ गया। यहाँ तक कि जेठ के महीने मे शीतल मन्द सुगन्धि युक्त वायु चलने लगी। वन का वातावरण ऐसा हो गया कि उसका प्रभाव बिना लोगो पर पडे न रह सके।

जाइ न बरनि मनोहरताई। (जनु महि करत जनक पहुनाई ॥
तब सब लोग नहाइ नहाई)। राम जनक मुनि आयसु पाई ॥३॥

अर्थ : वहाँ की सुन्दरता का वर्णन नही की जा सकती : मानो पृथ्वी जनक आतिथ्य सत्कार कर रही हो। तब सब लोग स्नान करके रामजी जनकजी और मुनिजी की आज्ञा पाकर।

व्याख्या : अवलोकत अपहरत बिषादा · से इस प्रसङ्ग का उपक्रम करके : जाइ न बरनि मनोहरताई : से यहाँ उपसहार करते हैं। कोष्ठान्तर्गत पद राजापुर के प्रति मे नही है और खटकते भी हैं। जाइ न बरनि मनोहरताई · कहने से स्पष्ट है कि यहाँ मनोहरता का वर्णन समाप्त हो गया। जाइ न बरनि मनोहरताई के पहिले ही उत्प्रेक्षा के लिए अवसर था। वर्णन समाप्त करने के बाद उत्प्रेक्षा से उसी प्रसङ्ग को उठाना शोभा नही देता। अत इसे मै क्षेपक मानता हूँ।

देखि देखि तरुबर अनुरागे। जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे ॥
दल फल मूल कंद बिधि नाना। पावन सुदर सुधा समाना ॥४॥

अर्थ : श्रेष्ठ वृक्षो को देखकर पुरजनो को अनुराग हुआ और वे जहाँ तहाँ

जनकजी की गति देखी कि ये महात्मा स्नेह से विशेष शिथिल हो गये
वड़ा सङ्कोच रघुनाथजी को है।

राम भगतिमय भरतु निहारे। सुर स्वारथी हहरि हिय
सब कोउ राम प्रेममय पेखा। भए अलेख[1] सोच बस ले

अर्थ : भरतजी को देखा कि राम भक्तिमय हो रहे है। तो स्वार्थ
ने हहरकर हाथ पैर ढीला करके हिम्मत छोड दी। सब किसी को
राम प्रेममय हो रहे हैं तो देवता लोग ऐसे सोचवश हुए कि उनका
हो सकता।

व्याख्या : गुरुजी और जनकजी की दशा तो देखी ही थी। अब
को देखते है तो वे रामप्रेममय हो रहे हैं। इन तीनो व्यक्तियो पर देवताओ
चल नही सकती। अत: देवताओ ने भयभीत होकर हिम्मत छोड दी। राम
स्वभाव को देवता जानते हैं कि वे भक्तो के पराधीन से हो जाते है। अत.
लौट जाने के भय से भीत हो गये।

इतना ही नही वहाँ सभी को राम प्रेममय देख रहे है। अत उनके सोच
अन्त नही है। समझ रहे हैं कि ऐसे प्रेमियो के एक मत होने मे कितनी देर लगेगी

दो. रामु सनेह सकोच बस, कह ससोच सुरराजु।
रचहु प्रपंचहिं पंच मिलि, नाहि त भयउ अकाजु ॥२९४॥

अर्थ : शोकयुक्त होकर देवराज ने कहा कि रामजी सङ्कोची हैं और प्रेम के
वश हैं। अत. सब पञ्च लोग मिलकर प्रपञ्च रचो। नही तो वात विगडा चाहती है।

व्याख्या शोक के वश सब देवताओ की ऐसी गति देखकर स्वय देवराज
शोकयुक्त होकर बोल उठे कि रामजी का सङ्कोची स्वभाव है और वे स्नेह के
वशीभूत हो जाते हैं। अत· अब चुप रहने का समय नही है। सब पञ्च मिलकर
माया करो। एक दो की माया से काम न चलेगा। यदि त्रुटि हुई तो काम को
विगड़ने मे देर नही है। यही समय पुरुषार्थ करने का है।

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देबि देव सरनागत पाही॥
फेरि भरत मति करि निज माया। पालु विबुध कुल करि छल छाया॥१॥

अर्थ : देवताओ ने सरस्वती का स्ममण करके स्तुति की और कहा कि हे
देवि! हम लोग शरण मे आये हैं रक्षा करो। अपनी माया करके भरत की बुद्धि
फेर दो और छल की छाया करके देवकुल की रक्षा करो।

व्याख्या : सरस्वती का ही आवाहन और स्तुति करके देवता लोगो ने रामा-
भिषेक मे विघ्न किया। रामजी को वनवास हुआ। भरतजी के प्रेम के कारण वह

१. यहाँ विरोधाभास . अलङ्कार है।

हो जाय। सब लोग विषण्ण थे। मुनियो के समझाने बुझाने से धैर्य बँधा था। अतः उन पर अनुग्रह करके सरकार ने ऐसी शक्ति पहाड को दी। सर शैल विपिन विभाग मे ऐसी शोभा होती है कि उसके देखने से भगवत् चरणो मे अनुराग उपजता है। यथा . निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा। यहाँ भगवत् कृपा से ऐसी शोभा हुई कि उन विभागो से मानो आनन्द और अनुराग उमगा पडता है।

बेलि बिटप सब सफल सफूला। बोलत खग मृग अलि अनुकूला ॥
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू। त्रिबिध समीर सुखद सब काहू ॥२॥

अर्थ : लताएँ और वृक्ष फल और फूल से युक्त हो गये। खग मृग और भौंरे अनुकूल बोलते थे। उस अवसर पर वन मे अधिक उछाह था। शीतल मन्द सुगन्ध वायु सबको सुख देनेवाली बहती थी।

व्याख्या : ऋतु और कुऋतु की कालगति का उल्लङ्घन करके सभी बेलि विटप पुष्पित और फलित हो गये। इससे वन का कामदातृत्व कहा और खग के अनुकूल बोलने से उसका मनोहरत्व कहा। उस वन मे तो सदा उछाह रहता था। यथा : अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मगल चहुँ ओरा। परन्तु इस अवसर मे उछाह बढ गया। यहाँ तक कि जेठ के महीने मे शीतल मन्द सुगन्धि युक्त वायु चलने लगी। वन का वातावरण ऐसा हो गया कि उसका प्रभाव बिना लोगो पर पडे न रह सके।

जाइ न बरनि मनोहरताई। (जनु महि करत जनक पहुनाई ॥
तब सब लोग नहाइ नहाई)। राम जनक मुनि आयसु पाई ॥३॥

अर्थ : वहाँ की सुन्दरता का वर्णन नही की जा सकती . मानो पृथ्वी जनक आतिथ्य सत्कार कर रही हो। तब सब लोग स्नान करके रामजी जनकजी और मुनिजी की आज्ञा पाकर।

व्याख्या : अवलोकत अपहरत बिषादा : से इस प्रसङ्ग का उपक्रम करके : जाइ न बरनि मनोहरताई : से यहाँ उपसहार करते हैं। कोष्ठान्तर्गत पद राजापुर के प्रति मे नही है और खटकते भी हैं। जाइ न बरनि मनोहरताई · कहने से स्पष्ट है कि यहाँ मनोहरता का वर्णन समाप्त हो गया। जाइ न बरनि मनोहरताई के पहिले ही उत्प्रेक्षा के लिए अवसर था। वर्णन समाप्त करने के बाद उत्प्रेक्षा से उसी प्रसङ्ग को उठाना शोभा नही देता। अत इसे मैं क्षेपक मानता हूँ।

देखि देखि तरुवर अनुरागे। जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे ॥
दल फल मूल कद बिधि नाना। पावन सुदर सुधा समाना ॥४॥

अर्थ : श्रेष्ठ वृक्षो को देखकर पुरजनो को अनुराग हुआ और वे जहाँ तहाँ

जनकजी की गति देखी कि ये महात्मा स्नेह से विशेष शिथिल हो गये। इनका बहुत बडा सङ्कोच रघुनाथजी को है।

राम भगतिमय भरतु निहारे। सुर स्वारथी हहरि हिय हारे॥
सब कोउ राम प्रेममय पेखा। भए अलेख[1] सोच बस लेखा॥४॥

अर्थ : भरतजी को देखा कि राम भक्तिमय हो रहे हैं। तो स्वार्थी देवताओ ने हहरकर हाथ पैर ढीला करके हिम्मत छोड दी। सब किसी को देखा कि राम प्रेममय हो रहे हैं तो देवता लोग ऐसे सोचवश हुए कि उनका लेखा नही हो सकता।

व्याख्या : गुरुजी और जनकजी की दशा तो देखी ही थी। अब भरतजी को देखते हैं तो वे रामप्रेममय हो रहे हैं। इन तीनो व्यक्तियो पर देवताओ का बल चल नही सकती। अतः देवताओं ने भयभीत होकर हिम्मत छोड दी। रामजी के स्वभाव को देवता जानते हैं कि वे भक्तो के पराधीन से हो जाते हैं। अतः उनके लौट जाने के भय से भीत हो गये।

इतना ही नही वहाँ सभी को राम प्रेममय देख रहे हैं। अतः उनके सोच का अन्त नही है। समझ रहे है कि ऐसे प्रेमियो के एक मत होने मे कितनी देर लगेगी।

दो. रामु सनेह सकोच बस, कह ससोच सुरराजु।
रचहु प्रपंचहिं पंच मिलि, नाहि त भयउ अकाजु॥२९४॥

अर्थ : शोकयुक्त होकर देवराज ने कहा कि रामजी सङ्कोची हैं और प्रेम के वश हैं। अतः सब पञ्च लोग मिलकर प्रपञ्च रचो। नही तो बात बिगडा चाहती है।

व्याख्या : शोक के वश सब देवताओ की ऐसी गति देखकर स्वयं देवराज शोकयुक्त होकर बोल उठे कि रामजी का सङ्कोची स्वभाव है और वे स्नेह के वशीभूत हो जाते है। अतः अब चुप रहने का समय नही है। सब पञ्च मिलकर माया करो। एक दो की माया से काम न चलेगा। यदि त्रुटि हुई तो काम को बिगड़ने मे देर नही है। यही समय पुरुषार्थ करने का है।

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देबि देव सरनागत पाही॥
फेरि भरत मति करि निज माया। पालु बिबुध कुल करि छल छाया॥१॥

अर्थ : देवताओ ने सरस्वती का स्मरण करके स्तुति की और कहा कि हे देवि! हम लोग शरण मे आये हैं रक्षा करो। अपनी माया करके भरत की बुद्धि फेर दो और छल की छाया करके देवकुल की रक्षा करो।

व्याख्या : सरस्वती का ही आवाहन और स्तुति करके देवता लोगो ने रामाभिषेक मे विघ्न किया। रामजी को वनवास हुआ। भरतजी के प्रेम के कारण वह

---

१. यहाँ विरोधाभास : अलङ्कार है।

सब प्रयत्न आज निष्फल हुआ चाहता है। अतः इन्द्र की आज्ञा मानकर देवताओं ने प्रपञ्च रचने के लिए फिर सरस्वती का आवाहन किया। उन्हें प्रसन्न करने के लिए स्तुति की। उन्हे सङ्कोच में डालने के लिए शरणागत हुए।

अन्त में अपना प्रयोजन निवेदन करते है कि भरत को बुद्धिरूपी आतप से हम लोग पीड़ित हैं। अतः माया करके भरत की बुद्धि तू फेर दे। माया के आवरण की छाया में हम लोग घोर आतप से बच जायँ। जैसे पहले कर चुकी हो। यथा : अजम पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।

बिबुध बिनय सुनि देबि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी ॥
मो सन कहहु भरत मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू ॥२॥

अर्थ : देवताओं की स्तुति और विनय सरस्वतीजी ने आकर सुनी। परन्तु सरस्वती बडी सयानी हैं। देवता स्वार्थ के कारण जड़ हो गये है। यह जानकर बोली कि मुझे भरत की बुद्धि फेरने को कहते है। इन्हे नेत्र तो हजार हैं। पर सुमेरु पर्वत नही दीखता।

व्याख्या : इनकी बुद्धि काम नही करती। जहाँ बिबुध कुमुद द्विजराज स्वयं बैठे है। वहाँ विबुध : देवताओ को भय कहाँ ? परन्तु देवता स्वार्थान्ध हो गये हैं। इनकी विवेक दृष्टि मारी पडी है। स्थूल दृष्टि हजार होने से भी कोई आँखवाला नही हो जाता। देखो हजार आँख होने पर भी इन्द्र को यह नही सूझ रहा है कि किसकी बुद्धि फेरी जा सकती है और किसकी नही फेरी जा सकती। रामजी के परम प्रेमी की बुद्धि कौन फेर सकता है। उनके स्नेह तक त्रिदेव का मन नही जाता वहाँ मेरी क्या गति है। पहिले जो मैने बुद्धि फेरा था तो मन्दमति मन्थरा की बुद्धि को फेरा था। मन्थरा सेर है और भरत सुमेरु हैं। कहाँ मन्थरा और कहाँ भरत।

बिधि हरि हर माया बड़ि भारी। सोउ न भरत मति सकै निहारी ॥
सो मति मोहि कहत करु भोरी। चंदिनि कर कि चंडकर चोरी ॥३॥

अर्थ : विधि हरिहर की माया बड़ी भारी है। वह भी भरत की मति की ओर देख नही सकती। उस मति को भोरी करने के लिए मुझे कहते हो। चाँदनी सूर्य को कैसे चुरा सकती है।

व्याख्या : जिसे भरत के स्वरूप का ज्ञान है वह समझ सकता है कि विधि हरिहर ईश्वर है। उनकी माया के बल से ससार की उत्पत्ति पालन और लय हुआ करता है। पर उनकी स्थिति भरत के सामने ऐसी है जैसे क्षीरसागर के सामने काँजी के दो चार बिन्दु। भरत की बुद्धि सूर्य के समान है। मायारूपी अन्धकार उसके सामने टिक नही सकता। मैं तो विधि की आश्रिता हूँ। चाँद की चाँदनी हूँ। मेरे तेज के सामने खद्योत भले ही छिप जायँ। सूर्य कैसे छिप सकते हैं। भाव यह

कि जिस भाँति सूर्य की ज्योति से ही चन्द्र प्रकाशित है उसी भाँति भरत के तेज से ही विधि हरिहर का तेज है। तुम लोगों को भरत के स्वरूप का बोध नहीं है।

भरत हृदय सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू॥
अस कहि सारद गइ विधि लोका। बिबुध बिकल निसि मानहु कोका॥४॥

अर्थ : भरत के हृदय मे राम जानकी का निवास है। वहाँ अन्धकार कहाँ जहाँ सूर्य का प्रकाश है। ऐसा कहकर सरस्वती ब्रह्मलोक चली गयी। देवता लोग ऐसे विकल हो गये जैसे रात को चकवा।

व्याख्या : भरतजी की इतनी बडी महिमा का कारण यह है कि उनके हृदय मे राम जानकी का निवास है। रामजी सूर्य हैं। सीताजी उनकी प्रभा हैं। इसीलिए भरतजी की बुद्धि सूर्यरूप हो रही हैं। भरतजी की महिमा विधि हरिहर से अधिक कही गयी है। वहाँ मायारूपी अन्धकार की गति कहाँ ?

ऐसा कहकर सरस्वतीजी ब्रह्मलोक चली गयी। देवताओ को और कुछ कहने सुनने का अवसर नही दिया। देवताओ के लिए सूर्यास्त हो गया। वे कोक की भाँति विकल हो गये।

दो. सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमंत्र कुठाटु।
रचि प्रपंचु माया प्रवल, भय भ्रम अरति उचाटु॥२९५॥

अर्थ : देवता स्वार्थी हैं। उनका मन मलीन है। उन्होने सलाह करके कुसाज साजा। प्रपञ्च, प्रवल माया, भय, भ्रम, अप्रीति और उचाट की रचना की।

व्याख्या : देवताओ को स्वार्थी कहने पर भी मलिन मन कहा। क्योंकि सरस्वती के समझाने पर भी उन्हे बोध न हुआ। यथा : तदपि मलिन मन बोध न आवा। भरतजी ने कहा था : सबके सम्मत सर्वहित करिअ प्रेम पहिचानि। तो सबको यदि उचाट हो जाय : भ्रमादि हो जाय तो काम बन सकता है। भरत पर माया नही चल सकती। लोगो पर तो चल सकती है। देवताओ की समष्टि की माया है। इसलिए प्रवल माया कहते हैं। लोगो को वन मे भय लगने लगा। मन मे अस्थिरता आगयी। घर की ओर भी मन दौडने लगा। सरकार की प्रीति भी कम हो गयी। चित्त मे उचाट हो गया।

करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरत हाथ सबु काजु अकाजू॥
गये जनकु रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रबिकुल दीपा॥१॥

अर्थ : कुचाल करके इन्द्र सोचने लगे कि काम का बिगाड या सुधार तो भरत के हाथ मे है। जनकजी सब रामजी के पास गये। रविकुलदीप ने सबका सम्मान किया।

व्याख्या : यद्यपि सब देवताओं ने मिलकर प्रपञ्च : माया रची। फिर भी सबके सरदार होने से इन्द्र का नाम लिया जा रहा है। उन्हीं की आज्ञा से माया

रची गयी। अब वे सोचने लगे कि जिनके ऊपर माया काम करेगी उनके हाथ में तो कुछ है नहीं। काम का बिगाड़ना या सुधारना तो भरतजी के हाथ में है और उन पर यह माया भी काम नहीं कर सकती। कवि ने : भूप भरत सब साधु समाजू। गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू : से प्रसङ्ग छोड़ा था। बीच मे देवताओं का हाल कहने लगे। अब फिर वहीं से प्रसङ्ग उठाते हैं कि जनकजी रामजी के पास पहुँचे। प्रधान होने से उन्हीं का नाम लिया। रामजी ने सबका सम्मान किया।

जब रामजी को सुमन्त चक्रवर्तीजी के यहाँ लिवा चले तब दीप कहा था। यथा : रघुकुल दीपहिं चले लवाई। यहाँ जनकजी के सामने भी दीप ही कह रहे है। भानुकुल भानु नहीं कहते अथवा राम और भरत दोनों दीप है। यथा : जानेउ सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा।

समय समाज धर्म अबिरोधा। बोले तब रघुबंस पुरोधा॥
जनक भरत संबादु सुनाई। भरत कहाउति कही सुहाई॥२॥

अर्थ : रघुवंश के पुरोहित तब समय समाज और धर्म के अनुकूल बोले। उन्होने जनक और भरत की बातचीत कह सुनायी और भरतजी की सोहावनी उक्ति भी कही।

व्याख्या : सरकार ने वसिष्ठजी से कहा था : उचित होय सो कीजिय नाथा। अतः तुरन्त वसिष्ठजी काम मे लग गये। जनकजी के पास गये। उन्हें लिये दिये भरतजी के पास गये। समय समाज और धर्म के अविरोध बोलना ही उचित है। वसिष्ठजी रघुवंश के पुरोहित है। पूज्य है। सब प्रकार से हितचिन्तक हैं। इनका कहना कोई टाल नहीं सकता।

समय ऐसा उपस्थित है कि कोई कुछ निर्णय नहीं कर पाता। जनकजी ने भरत के ऊपर सब छोड़ा कि जो भरत कहे सो किया जाय और भरतजी कहते हैं : राखि राम रुख धर्म ब्रत पराधीन मोहि जानि। सबके सम्मत सर्बहित करिय प्रेम पहिचानि। अवध समाज के मुखिया भरत मैथिल समाज के मुखिया राजा जनक। सो इन्हीं दोनो की सम्मति सारे समाज की सम्मति समझनी चाहिए। ऐसे अवसर पर वसिष्ठ कहते हैं कि मेरी सम्मति यह है।

तात राम जस आयसु देहू। सो सब करइ मोर मत एहू॥
सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी। बोले सत्य सरल मृदु बानी॥३॥

अर्थ : हे तात राम ! तुम जैसी आज्ञा दो वही सब करे। मेरा तो यही मत है। सुनकर रामजी दोनो हाथ जोड़कर मृदु वाणी बोले।

व्याख्या : नीति प्रीति परमार्थ और स्वार्थ सबके तुम यथार्थ जानकार हो। अतः सबके सम्मत सर्वहित का निर्णय तुम्हीं कर सकते हो। अत. तुम जो आज्ञा दो वही सब लोग करें। इससे भरत के सेवाधर्म का भी निर्वाह हो जायगा। क्योंकि

इसके बाद जो कुछ भरत करेंगे वह सब करना तुम्हारी आज्ञा का पालन होने से सेवकाई के अन्तर्गत होगा।

यह सुनकर रामजी ने आज्ञा नहीं दी। बड़ों के सामने जैसा बोलना चाहिए वैसा बोले। दोनों हाथ जोड़कर सत्य सरल और मृदु वाणी बोले।

विद्यमान आपुनि मिथिलेसू। मोर कहब सब भाँति भदेसू॥
राउर राय रजायसु होई। राउरि सपथ सही सिर सोई॥८॥

अर्थ : स्वयं मिथिलेश के विद्यमान होते हुए मेरा कहना सब तरह से गँवारपन है। आपकी और महाराज की जो आज्ञा हो मैं आपकी शपथ खाकर कहता हूँ कि वही मेरे लिए ठीक है और शिरोधार्य है।

व्याख्या : पिता के समान महाराज मिथिलेश है। उनके सामने आज्ञा देना अनुचित है। किसी प्रकार उचित नहीं है। आप गुरु हैं। आपकी आज्ञा सर्वोपरि है। अतः आप दोनों बड़े उपस्थित हैं। आप लोग सम्मति कर लीजिये। वही मुझे शिरोधार्य होगा। इसके लिए मैं आपकी शपथ लेता हूँ। भाव यह कि यदि आप लोगों की यही आज्ञा हुई कि तुम लौट चलो तो मैं पिता का वचन छोड़ दूँगा। यही रामजी की सत्य सरल और मृदु वाणी है।

दो. राम सपथ सुनि मुनि जनकु, सकुचे सभा समेत।
सकल बिलोकत भरत मुखु, बनइ न ऊतरु देत॥२९६॥

अर्थ : रामजी की शपथ सुनकर मुनिजी और जनकजी सभा समेत सङ्कुचित हो गये। सब लोग भरतजी का मुख देखने लगे। किसी से उत्तर देते नहीं बनता।

व्याख्या : धर्म के मर्म के जाननेवाले महापुरुष पिता के वचन के उल्लंघन करने की सम्मति दे नहीं सकते। तो जब लौटने को कह ही नहीं सकते तो और कहेंगे ही क्या? अतः किसी को उत्तर नहीं सूझता। रामजीने सरल बात कही कि मुझे तो बड़ों की बात माननी है। उनका वचन मानकर वन आया। अब स्वयं गुरुजी तथा पिता सदृश मिथिलेश कहे कि तुम लौट चलो तो मैं चलूँ। अब गुरुजी तथा जनकजी धर्मविरोध कैसे करें। इसलिए जवाब नहीं सूझता। भरतजी का मुख देखते हैं कि तुमसे जो कुछ कहते बने इस समय कहो। क्योंकि तुम्हीं इस कार्य में अग्रसर हो।

सभा सकुच बस भरत निहारी। रामबंधु धरि धीरजु भारी॥
कुसमउ देखि सनेहु सँभारा। बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा॥१॥

अर्थ : भरतजी ने देखा कि सभा सङ्कोच के वश में पड़ गयी। तब रामजी के भाई ने भारी धैर्यधारण किया। कुसमय देखकर इस भाँति स्नेह को सँभाला जिस भाँति बढ़ते हुए विन्ध्याचल को अगस्त्यजी ने रोक दिया था।

व्याख्या : भरतजी ने देखा कि रामजी के शपथ पूर्वक कहने से अब किसी

को उत्तर नही सूझ रहा है। सबके सब सङ्कोच मे पड गये। भरतजी प्रेम से भरे हुए हैं। जनकजी के आ जाने पर स्वयं कुछ कहना नही चाहते। अत्यन्त आवश्यकता पडने पर एक बार बोले थे। अब फिर बिना बोले काम नही चलता। अत भारी धैर्य धारण करके बोले। रामजी भाई हैं। उनको उत्तर देने मे ये ही समर्थ हैं।

कथा है कि किसी समय विन्ध्याचल बढने लगा। उसका इरादा इतना बढने का था जिसमे सूर्यनारायण उसकी परिक्रमा करने लगें जिस भाँति सुमेरु की परिक्रमा करते हैं। इस अस्वाभाविक बढाव को देखकर देवताओं को भय हुआ। वे लोग काशी आकर अगस्त्यजी को लिवा ले गये जो विन्ध्य के गुरु थे। उन्हे देखकर विन्ध्याचल ने साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। मुनिजी ने कहा कि जब तक मैं दक्षिण से नही लौटता तब तक यो ही पडे रहो। उस समय से विन्ध्याचल का बढना रुक गया। अगस्त्यजी दक्षिण से लौटे ही नही।

यहाँ इतने से ही तात्पर्य है कि भरतजी का प्रेम विन्ध्याचल की भाँति बढता चला जाता था। उसे रोकने से सद्गुणरूपी सुरगण असमर्थ थे। फिर भी भरतजी ने उसे ऐसा रोका जैसे अगस्त्यजी ने विन्ध्याचल को बढने से रोक दिया। अर्थात् प्रेम को प्रसुप्तावस्था मे ला दिया।

यहाँ भरतजी की समता अगस्त्य मुनि से और प्रेम की विन्ध्याचल से है।

सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी बिमल गुन गन जगजोनी ॥
भरत बिबेक बराह बिसाला। अनायास उधरी तेहि काला ॥२॥

अर्थ : शोकरूपी हिरण्याक्ष ने निर्मल गुणरूपी जग को उत्पन्न करनेवाली बुद्धिरूपी पृथ्वी को हर लिया था। भरत के विचाररूपी विशाल वराह ने उसका तत्काल उद्धार किया।

व्याख्या : कथा है कि किसी समय हिरण्याक्ष नामी दैत्य पृथ्वी को हरण करके पाताल मे ले गया था। उसे वाराह रूप मे प्रकट होकर भगवान् ऊपर ले आये। यहाँ शोक को हिरण्याक्ष कहा। उसने सबकी बुद्धि हरण कर ली। समष्टि की बुद्धि होने से उसे पृथ्वी से उपमित किया। जिस भाँति पृथ्वी स्थावर जङ्गम का उत्पत्ति स्थान है उसी भाँति बुद्धि भी सब गुणगणो का उत्पत्ति स्थान है। भरत के विवेक ने उसका उद्धार किया। इसीलिए उसे वाराह कहा। भरत के विवेक से सबको बात सूझने लगी। यह बात किसी को न सूझो कि सरकार से कहे कि आप पिता का वचन मानिये। भरत नही मान रहे हैं। उन्हे मानने के लिए आज्ञा दीजिये। आपकी आज्ञा से भरत सब करें। उनका सेवाधर्म न बिगडे।

करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे। रामु राउ गुरु साधु निहोरे ॥
छमब आजु अति अनुचित मोरा। कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा ॥३॥

अर्थ : भरतजी ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। तत्पश्चात् श्रीरामजी का

जनकजी का गुरुजी का और साधुओं का निहोरा किया और बोले कि आज मेरे अत्यन्त अनुचित आचरण को क्षमा कीजियेगा। मैं कोमल मुख से कठोर बातें कहता हूँ।

व्याख्या पहिले प्रणाम किया। तत्पश्चात् रामजी जानकीजी गुरुजी और साधुओं से क्षमा करने के लिए निहोरा किया कि आज मैं अत्यन्त अनुचित कर रहा हूँ। बात सरकार से और गुरुजनों से हो रही है। इस बीच म मेरा हस्तक्षेप अनुचित है और तिस पर मैं कठोर कहूँगा जो कहना कि मेरे ऐसे व्यक्ति के लिए शोभा नहीं देता। अत मेरे इस भारी अनुचित कर्म को आप लोग क्षमा करें। इसके लिए मैं निहोरा करता हूँ।

हियँ सुमिरी सारदा सुहाई। मानस ते मुख पकज आई॥
बिमल बिबेक धरम नय साली। भरत भारती मजु मराली॥४॥

अर्थ हृदय से स्मरण करते ही सुन्दर सरस्वती मानस से मुखकमल मे आगयी। भरतजी को सरस्वती निर्मल विवेक धर्म और नीतिवाली सुन्दर हंसिनी रूप थी।

व्याख्या · यह भरतजी की सरस्वती हैं। अत बडी सुन्दर है। भरतजी ने उनका स्मरण किया। ये उनके मानस मे रहती हैं। इसलिए उन्हे मराली कहा। स्मरण करते ही भरतजी के मुख म आगयी। वाणी की सुन्दरता तभी है जब उसम विवेक धर्म और नीति तीनो का याग हो। वाणीरूपी हंसिनी गुणरूपी पय और दोषरूपी जल को अलग करती हैं। पर यह हंसिनी धर्म और नीति से भी युक्त हैं। अत अधिक सुन्दर है।

दो निरखि बिबेक बिलोचननि, सिथिल सनेह समाजु।
करि प्रनामु बोले भरतु, सुमिरि सीय रघुराजु॥२९७॥

अर्थ विवेकरूपी नेत्र से सारे समाज को स्नेह से शिथिल देखकर उन्हे प्रणाम किया और राम जानकी को स्मरण कर भरतजी बोले।

व्याख्या रामजी के स्नेह में मग्न समाज को देखकर भरतजी ने उस समाज को प्रणाम किया। यदि समाज का समाज प्रेममग्न हो तो वह सब प्रकार से प्रणम्य हो जाता है। बोलने के पहिले रामजानकी के स्मरण का भाव यह कि अपनी बात का सही उत्तर आप ही मेरे द्वारा दीजिये।

प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी। पूज्य परम हित अतरजामी॥
सरल सुसाहिबु सील निधानू। प्रनतपाल सर्बग्य सुजानू॥१॥

अर्थ : हे प्रभो! आप पिता माता सुहृद परमहित अन्तर्यामी हैं। आप सरल सुस्वामी शीलनिधान प्रणतपाल सर्वज्ञ और सुजान हैं।

व्याख्या यहाँ भरतजी ने अठारह विशेषण दिये हैं। जिनमे सात तो

बन्धबोधक हैं और शेष सरकार के गुणो के व्यापक है। ये ही विरदावली हैं नका वर्णन भरतजी करेंगे। अगस्त्य सहिता मे सम्बन्ध को परतम स्वराट् भाव ३ा है। इसके द्वारा बिना ध्यान और विना योग के बिना तप के और बिना न के श्री रघुनन्दन मे परा अव्यभिचारिणी प्रीति नित्य बढती ही रहती है। ा : एभ्य परतमो भावो सम्वन्धाख्य स्वयं स्वराट्। विना ध्यानेन तपसा योग न विनैव हि। श्रीरघुनन्दने प्रीतिः पराह्यव्यभिचारिणी। वर्धतेऽनुदिन विप्र सत्य य न चान्यथा। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं : मोहि तोहि नाते अनेक मानिये जो वै। सो भरतजी ने सात सम्बन्ध माने। पिता माता सुहृद गुरु स्वामी पूज्य र परम हित के सम्बन्ध। यहाँ पर भरतजी ने भाई के सम्बन्ध को नही गिनाया। ोकि उसके लिए कह आये हैं . दसरथ सुअन राम लघु भाई। दीन्ह मोहि बिधि दि बड़ाई। अङ्गद ने तीन सम्वन्ध माना था गुरु का पिता का और माता का। ा . मोरे तुम प्रभु गुरु पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जल जाता। यहाँ तो त सात सम्बन्ध हैं। भाव यह कि मैं आपको छोड़कर कहाँ जा सकता हूँ।

प्रभु यथा . राजाराम स्वबस भगवानू।
पितु यथा : ज्येष्ठ भ्राता पितु. समः।
मातु यथा : रामहि बधु सोच दिन राती।
अडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती॥
सुहृद यथा ' सिसुपन ते परिहरेउ न संगू।
कबहु न कीन्ह मोर मन भगू॥
गुरु यथा : वेद पुरान सुनहि मनलाई।
आप कहहि अनुजहि समुझाई॥
स्वामी यथा : जेठ स्वामि सेवक लघु भाई।
पूज्य यथा . पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते।
सब मानिये राम के नाते॥
परमहित यथा . भरत सरिस प्रिय को जगमांही।
कवहुँ न कीन्ह मोर मन भगू।

अब सरकार के सद्गुण कहते हैं कि श्रीमद से लोग टेढे हो जाते हैं। यथा : ोमद वक्र न कीन्ह केहि। पर सरकार महान् श्रीमान् होने पर भी सरल है। रकार सुस्वामी हैं। अपनी ओर देखकर कुसेवक का भी भरण करते हैं। यथा : 'म सुस्वामि कुसेवक मोसो। निज दिसि देखि दयानिधि पोसो। तिस पर भी शील ाधान हैं। सेवक की ढिठाई पर ध्यान नही देते। यथा प्रभु तरु तर कपि डारपर किये आपु समान। तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निधान। प्रणत के पालन रनेवाले हैं। यथा : सकृत प्रणाम किये अपनाये। सर्वज्ञ हैं। यथा : तुमसे कछु न ७पी करुनानिधि तुम ही अन्तरजामी। सुजान हैं। जन के जी की बात जानते हैं। था . राम सुजान जान जन जी की। समर्थ हैं। दोष अपनी क्रिया उन पर नही कर क्ते। यथा समरथ कहँ नहि दोष गोसाइँ। रवि पावक सुरसरि की नाइँ।

समरथु सरनागत हितकारी । गुनगाहकु अवगुन अघहारी ॥
स्वामि गोसाइँहि सरिस गोसाईं । मोहि समान मै सांइ दोहाईं ॥२॥

अर्थ : समर्थ हैं। शरणागत के हित करनेवाले हैं। गुणग्राहक हैं। अवगुण और पाप के नाश करनेवाले हैं। हे स्वामी ! मालिक तो मालिक से ही हैं और मैं भी अपने ही जैसा हूँ। स्वामी की शपथ लेकर कहता हूँ।

व्याख्या : समर्थ के विषय मे ऊपर कह आये हैं। अथवा समर्थ शब्द का अन्वय शरणागत हितकारी के साथ है। भाव यह कि सरकार शरणागत के हित करने मे समर्थ हैं। यथा : जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहौं ताहि प्रान की नाईं। सरन गये प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा। सरकार गुणग्राहक हैं। यथा : देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने। सरकार अवगुन अघहारी हैं। यथा : करौं सद्य तेहि साधु समाना।

अनन्वयालङ्कार से अपने इस कथन का तात्पर्य कहते हैं कि न तो आप सा भला स्वामी कहीं है और न मुझ सा बुरा सेवक ही कोई है। यथा : राम सो खरो है कौन मोसो कौन खोटो। राम सो बड़ो है कौन मोसो कौन छोटो। अब अपनी खोटाई कहते हैं :

प्रभु पितु बचन मोह बस पेली। आयेउँ इहाँ समाजु सकेली ॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू। अमिअँ अमरपद माहुरु मीचू ॥३॥

अर्थ : प्रभु और पिता के वचन को मोह के वश हटाकर यहाँ समाज इकट्ठा करके आया हूँ। संसार मे बुरा भला ऊँचा और नीचा अमृत अमरपद विष और मृत्यु है।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि भलाई मे मेरे मालिक का जोड़ नहीं और खोटाई मे मेरा कोई जोड़ नहीं। मैं ऐसा खोटा कि अज्ञान के वश में आकर प्रभु सम्मत पिता के वचन को न मानकर मैं यहाँ समाज इकट्ठा करके आया। भाव यह कि प्रभु और पिता के वचन मानने में विचार को स्थान नहीं है। इस पर विचार करना ज्ञान नहीं है अज्ञान है। सो प्रभुसम्मत पिता के वचन का मैंने स्वय तो उल्लङ्घन किया ही और आपसे भी उल्लङ्घन कराने के लिए गुरु माता सचिव तथा पुरजनों को इकट्ठा करके यहाँ ले आया। इस बात का भी विचार न किया कि आज्ञा कोई हटा नहीं सकता। चाहे भला हो चाहे बुरा हो। चाहे ऊँचा हो चाहे नीचा हो। चाहे अमृत हो चाहे विष हो। चाहे अमरपद हो चाहे मृत्यु ही हो। सबको मानना पड़ता है।

राम रजाइ मेटि मन माँहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाँहीं ॥
सो मइ सब बिधि कीन्ह ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई ॥४॥

अर्थ : पर जिसने रामजी की आज्ञा को मन से भी मेटा हो ऐसा कहीं भी

किसी को न देखा न सुना। सो मैंने सब प्रकार से ढिठाई की। पर स्वामी ने उस ढिठाई को स्नेह और सेवा मान लिया।

व्याख्या उपर्युक्त भलो और बुरो मे कितनो को तो मैने देखा है और कितनो को सुना है। पर ऐसा सामर्थ्य कही किसी मे न पाया जो आपकी आज्ञा मन से भी मेट सके। भाव यह नट मर्कट इव सबहि नचावत। राम खगेस बेद अस गावत। तथा प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई। प्रभु आज्ञा अपेल श्रुति गाई। करहु सो बेगि जो तुमहि सोहाई।

मैंने ऐसे प्रभु की आज्ञा को सब प्रकार से न मानने की ढिठाई की। यह मेरी खोटाई है और उस ढिठाई को स्नेह और सेवकाई मान लेना यह सरकार का अघहारित्व है।

दो. कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर।
दूपन भे भूपन सरिस, सुजसु चारु चहुँ ओर ॥२९८॥

अर्थ अपनी कृपा और भलाई से नाथ ने मेरा भला किया। मेरे दूपण हो भूपण हो गये और सुन्दर सुयश चारो ओर फैल गया।

व्याख्या जग अनभल भल एकु गोसाईं। कहिअ होइ भल कासु भलाईं। सा मुझम भलाई थी ही नही। सरकार ने कृपा करके ऐसी भलाई की कि मेरे दूपण ही भूपण हो गये। मेरी ढिठाई लोगो की दृष्टि मे स्नेह और सेवा के रूप म परिणत हा गयी। सरकार ने प्रशसा कर दिया भयउ न भुवन भरत सम भाई। सो मेरा सुन्दर सुयश चारो ओर फैल गया। यह सरकार का गुणग्राहकत्व है।

राउरि रीति सुबानि बडाई। जगत बिदित निगमागम गाई॥
कूर कुटिल खल कुमति कलकी। नीच निसील निरीस निसकी ॥१॥

अर्थ आपकी सुन्दर रीति आपका सुन्दर स्वभाव आपकी बडाई ससार म प्रसिद्ध है। उसका गान वेद शास्त्र ने किया है। जो क्रूर, कुटिल, खल, कुबुद्धि, कलङ्की, नीच, दु शील, नास्तिक और नि शङ्क है।

व्याख्या सरकार की रीति ही ऐसा है कि पतिता को पवित्र करते हैं। इसी से पतितपावन बिरद है। यथा ऐसी कौन प्रभु की रीति। बिरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति। स्वभाव ऐसा सुन्दर है कि नीच से भी प्रीति करते हैं यदि उसम प्रेम हो। यथा श्रीरघुबीर की यह बानि। नीच हूँ सो करत प्रीति सुप्रीति उर अनुमानि। बडाई अर्थात् महिमा की तो सीमा ही नही है। यथा महिमा अमित न कहि सकहिं सहस सारदा सेस। यह बात छिपी नही है। ससार जानता है। वेद और शास्त्रो म इसकी प्रशसा है। यह सरकार का समरथ सरनागत हितकारित्व है।

क्रूर म दया नही हाती और दया म ही सब धर्मों का निवास है। यथा दया म बसत नाथ सकल धरम। कुटिल म सरलता नही हाती। कुटिल ही दुरात्मा है। उसके मन वाणी और कर्म म एकवाक्यता नही। यथा मनस्यन्यत् वचस्यन्यत्

कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम् । खल निष्कारण ही दूसरे की बुराई करते हैं। यथा खल बिनु कारण पर अपकारी । तामसी बुद्धिवालो की विपरीत बुद्धि होती है। वे अधर्म को ही धर्म समझते हैं। हित को अनहित समझते हैं। यथा . तव उर कुमति बसी विपरीता । हित अनहित मानहुँ रिपु प्रीता। कलङ्की को दुनिया बुरा कहती है। यथा : कुल कलंक जेहि जनम्यौ मोही। अपजस भाजन प्रिय जन द्रोही। लोक वेद से बहिष्कृत को नीच कहते हैं। यथा : लोक वेद बाहर सब भाँती। आचारहीन को दु शील कहते हैं। उन्हे वेद भी पवित्र नही कर सकते। यथा . आचारहीन न पुनन्ति वेदा । निरीश ही असुर हैं। यथा : मानहि मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहि सेवा । जिनके अस आचरण भवानी । ते जानहु निसिचर सब प्रानी। नि:शङ्क से भाव यह कि जिनको परलोक का डर नही। यथा स्वारथ बस परलोक नसाही। ये शरण में रक्खे जाने के पात्र नही हैं।

तेउ सुनि सरन सामुहे आए। सकृत प्रनाम किहे अपनाए ॥
देखि दोप कबहु न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने ॥२॥

अर्थ : वे भी सुनकर जहाँ सामने आये और एक बार प्रणाम किया तहाँ आपने अपना लिया। देखकर भी दोष को हृदय में स्थान नही देते। गुणो को सुनकर भी साधुसमाज मे बखान करते हैं।

व्याख्या : ऐसे क्रूर कुटिल खल से सभी दूर भागते है। पर सरकार की बात दूसरी है। आपके सामने यदि ऐसा पुरुष भी आपके गुण गणो को सुनकर शरण में आवे तो एक बार प्रणाम करने से ही आप उसे अपना लेते है। पहिली बात यह है कि आपके सुयश सुनने से उसे यह सङ्कल्प हो कि मैं ऐसे के अनुकूल चलूँगा। इनके प्रतिकूल का परित्याग करूँगा और उसे विश्वास हो जाय कि सरकार निश्चय मेरी रक्षा करेंगे मैं इन्ही को अपना रक्षक मानूँगा। मुझ से तो सब बिगड़ गया और अपने को सरकार को समर्पण कर दें तो सरकार एक प्रणाम से प्रसन्न होकर उसे अपना बना लेते हैं। वह तदीय हो जाता है।

यथा : सनमुख होइ जीव मोहि जबही। जनम कोटि अघ नासहिं तबही।
जौ नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही।
तजि मदमोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु समाना।

उसके एक प्रणाम से रामजी प्रसन्न हो जाते हैं। उस प्रणाम की बडी महिमा है। यहाँ : प्रनत पाल सरवज्ञ सुजानू का साफल्य दिखलाया।

उसके दोषो को कभी हृदय मे स्थान नही देते। देखते हुए भी नही देखते।

यथा : जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली।
फिरि सुकठ सोइ कीन्हि कुचाली॥
सोइ करतूति बिभीषन केरी।
सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी॥

तेहि भरतहि भेंटत सनमाने।
गजमर्मा रघुवीर बखाने॥

जो सदोष हो चुका उससे चूक भी हो जाय तो वह फिर परित्यक्त नहीं होता। ऐसा सुन्दर सरकार का स्वभाव है। अब बड़ाई कहते हैं।

को साहिब सेवकहि नेवाजी। आपु समाज साज सब साजी॥
निज करतूति न समुझिअ सपनें। सेवक सकुच सोचु उर अपने॥३॥

अर्थ: ऐसा कौन स्वामी है जो सेवक पर कृपा करके अपने सब समाज और साज साज दे। अपनी करतूत पर स्वप्न में भी ध्यान न दे। यदि सेवक को सङ्कोच हो तो अपने मन में सोच हो।

व्याख्या: सेवक कैसा भी हितचिन्तक हो पर उसे कोई बराबरी का दर्जा नहीं देता। पर रामजी की यह बड़ाई है कि उसका स्वय समाज साज देते हैं।

यथा बालि त्रास ब्याकुल दिन राती।
तन बहु व्रन चिंता जर छाती॥
सो सुग्रीव कीन्ह कपि राऊ।
अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ॥
प्रभु तरुतर कपि डारपर ते किये आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निधान॥

सरकार का स्वभाव बड़ा विस्मरणशील है। स्वय जो जो भलाई किया है उसे भूल जाते हैं और सेवक को यदि सङ्कोच हो तो उन्हें मन में सोच होता है अर्थात् सङ्कोच मिटाने का प्रयत्न करते हैं। यथा: सकुच बिहाय मागु नृप मोही। तथा मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सोइ आजु।

सो गोसाईं नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी॥
पसु नाचत सुक पाठ प्रबीना। गुन गति नट पाठक आधीना॥४॥

अर्थ: ऐसा मालिक दूसरा कोई नहीं है। मैं भुजा उठाकर और प्रण करके कहता हूँ। पशु नाचते हैं और तोता पाठ करने में प्रवीण होता है। परन्तु गुण और गति नट और पाठक के अधीन होता है।

व्याख्या: भरतजी कहते हैं कि मालिक तो बहुत हैं। पर ऐसा मालिक कोई है नहीं। भुजा उठाकर प्रण रोपकर मैं कहता हूँ: सारी सभा में सबका साक्षी देने के लिए भुजा उठाकर प्रण किया जाता है। यथा: निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह। कि: स्वामि गोसाईंहि सरिस गोसाईं।

सरकार ने जो कहा: भयउ न भुवन भरत सम भाई इत्यादि। उसपर भरतजी कहते हैं कि इसमें मेरी करतूत कुछ नहीं। पशु नाचता है। उसके नृत्य की गति नट के आधीन होती है। उसकी शिक्षा के अनुसार वह नाचता है। तोता श्लोक

पढ़ता है। वह कुछ नही समझता। जैसा सिखाया हुआ है वैसा कहता है। सो मेरे में जो गुण दिखायी पड़ते है वे सरकार की प्रेरणा से हैं। यह अन्तर्यामित्व है।

दो. यों सुधारि सनमानि जन, किये साधु सिरमोर।
को कृपालु बिनु पालिहै, बिरदावलि बरजोर ॥२९९॥

अर्थ : इस भाँति अपने जन को सुधारकर और सम्मान देकर साधुओ का सिरमौर बना दिया। कृपालु के बिना ऐसी बाँकी विरदावली का कौन बल पूर्वक पालन कर सकता है।

व्याख्या : मुझमे गुण कहाँ। जो दिखायी पड़ते हैं वे सरकार के सिखाये हैं। यथा : बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आप कहहिं अनुजन्ह समुझाई। अथवा मैने तो ढिठाई की। न पिता की आज्ञा मानी न सरकार की शिक्षा मानी। परन्तु सरकार ने बलपूर्वक बिगड़ी हुई बात को सुधार दिया। यथा : सुनहु लखन भल भरत सरीखा। बिधि प्रपच महु सुना न दीखा। सम्मान दिया। यथा : उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषग कहुँ तीरा। साधु सिरमौर बनाया। यथा : भरतहिं होइ न राजमद बिधि हरि हर पद पाइ। कबहुँ कि काँजो सीकरन्हि छीर सिंधु बिनसाइ। यहाँ : प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी। पूज्य परम हित का साफल्य दिखलाया।

सोक सनेह कि बाल सुभाएँ। आयेउँ लाइ रजायसु बाएँ॥
तबहुँ कृपाल हेरि निज ओरा। सबहि भाँति भल मानेउ मोरा ॥१॥

अर्थ : शोक से स्नेह से या बाल स्वभाव से आज्ञा को हटाकर मै यहाँ आया। फिर भी कृपालु ने अपनी ओर देखकर सभी भाँति से मेरा भला ही माना।

व्याख्या : भरतजी अपना दोष कहते हैं कि मैं स्वय निश्चय नही कर सकता कि मै यहाँ क्यो आया ? शोक के कारण आया कि स्नेह के कारण आया कि बाल-स्वभाव से आया। यहाँ बाल का अर्थ अज्ञानी है। अर्थात् स्वभाव से मै अज्ञानी हूँ। उसी स्वभाव की प्रेरणा से आया है। चाहे जैसे आया पर आज्ञा उल्लंघन करके ही आया। क्योकि आज्ञा पालन मे विचार को स्थान नही है। यथा : मातु पिता गुरु प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभजानी। शोक यथा : राम लखन सिय बिनु पग पनही। करि मुनिबेष फिरहि बन बनही। एहि दु ख दाह दहै दिन छाती। भूख न बासर नींद न राती।

स्नेह यथा : देखे बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ।

बाल सुभाएँ यथा : आन उपाउ मोहि नहिं सूझा।

सरकार कृपालु हैं। अपनी ओर देखते हैं। जन के दोष को नही देखते। जब मुझ से आज्ञा भङ्ग का अपराध नही हुआ था तब तो भला मानना ही था। यथा : तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ। मो कहु दरस तुम्हार प्रभु सब मम पुन्य प्रभाउ। आज्ञा भङ्ग करने पर भी भला ही माना। नही तो मैं इस योग्य

दानन्द दिनेश कहा। ऐसे महाप्रभु की शपथ लेकर अपनी रुचि कहते हैं। जो जाग्रत अवस्था में तो सदा बनी ही रहती है। स्वप्न भी जाग्रत के सस्कार के अनुरूप ही होता है। अत स्वप्न मे भी यही रुचि सस्कार रूप से रहती है। घोर निद्रा के समय म भी वह बीज रूप से रहती है। गुरुजी ने सरकार को मेरी रुचि रखने को कहा। सरकार भी उसके रखने के लिए सब तरह से तैयार हैं। अत मैं उसे कहे देता हूँ।

सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई ॥
अग्या सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जन पावइ देवा ॥२॥

अर्थ स्वामी की सेवा मे स्नेह हो। चारो फल सम्बन्धी स्वार्थ रूपी छल छोडकर हो। अच्छे स्वामी की सबसे बडी सेवा आज्ञा पालन है। वही प्रसाद आपका दास चाहता है।

व्याख्या सच्ची सेवा मे स्वार्थ ही छल है और जितने स्वार्थ है वे अर्थ धर्म काम और मोक्ष के अन्तर्गत हैं। अत इनसे रहित स्वामी की सेवा मे सहज स्नेह चाहता हूँ। कपट प्रीति या कृत्रिम प्रीति नही चाहता। सेवा मे भी सबसे बडी स्वामी की आज्ञा है। अत आप कृपा करके आज्ञा दें। उसी का मैं पालन करूँ। आपकी आज्ञा से जो कुछ मैं करूँगा। वही सरकार की सेवा हो जायेगी। अत अब मैं यही प्रसाद चाहता हूँ कि मुझे आज्ञा हो कि भरत ! तू यह कर। बस इतना ही मेरा अभीष्ट है।

अस कहि प्रेम बिबस भए भारी। पुलक सरीर बिलोचन बारी ॥
प्रभु पद कमल गहे अकुलाई। समउ सनेहु न सो कहि जाई ॥३॥

अर्थ ऐसा कहकर भारी प्रेम के वश हुए। उनके शरीर मे पुलक हो आया। आँखें डबडबा आयी। सरकार के चरण को व्याकुल होकर पकड लिया। उस समय का वह स्नेह कहा नही जाता।

व्याख्या पहिले स्नेह सँभाला था। बढत विन्ध्य जिमि घटज निवारा। परन्तु इस बात के निवेदन करने मे वह स्नेह नही सँभल सका। फूट चला। अत एकदम प्रेम के विवश हो गये। उन्हे सात्त्विक भाव हो गया। प्रेम मे डूबने लगे। आधार की भाँति चरण को व्याकुल होकर पकड लिया। भरतजी को सब दु ख स्वीकार है। पर सरकार असामञ्जस्य मे न रहे।

कृपासिंधु सनमानि सुबानी। बैठाये समीप गहि पानी ॥
भरत बिनय सुनि देखि सुभाऊ। सिथिल सनेह सभा रघुराऊ ॥४॥

अर्थ कृपासिन्धु ने सुन्दर वाणी से सम्मान करके हाथ पकडकर बैठाया। भरतजी का विनय सुनकर और स्वभाव देखकर सारी सभा और स्वयं रामजी स्नेह से शिथिल हो गये।

अर्धाली मे 'तापर राम प्रेम सिसु सोहा' कहकर वर्णन किया। यही प्रेम जनकजी के ज्ञान का अवलम्बन हुआ। तापस वेप मे सीताजी को देखकर जो प्रेम बढा उसी की समता अक्षय वट से दी गयी है। उसी के आधार पर रामप्रेम था। जनकजी के लिए रामप्रेम का आधार सीताप्रेम का ही होना स्वाभाविक है। वही प्रेम ज्ञान का अवलम्बन हुआ। उसी से विशेष परितोष हुआ।

अब परितोष का रूप कहते हैं कि इस पतिप्रेम से रघुकुल निमिकुल दोनो पवित्र हुए। ऐसा सती बेटी के उत्पन्न होने से पितृकुल और पतिकुल दोनो पवित्र हो जाते हैं। सो तेरा सुयश ससार मे फैल गया। सभी कहते हैं कि धन्य है ससार जिसमे ऐसी स्त्रीरत्न उत्पन्न होती है।

जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अड करोरी॥
गग अवनि थल तीनि बडेरे। एहि किए साधु समाज घनेरे॥२॥

अर्थ : तुम्हारी कीर्तिरूपी नदी गङ्गाजी को भी जीतकर करोडो ब्रह्माण्ड मे चली गयी। गङ्गाजी के तीन बडे स्थल पृथ्वी पर हैं। पर इस कीर्ति ने बहुत से साधु समाज बनाये।

व्याख्या : जनकजी कहते हैं कि त्रिपथगा गङ्गा तो केवल तीनो लोको मे गयी हैं। पर तेरी कीर्तिरूपी नदी तो करोडो ब्रह्माण्डो मे पहुँच गयी। गङ्गाजी ने केवल तीन बडे तीर्थ बनाये। १ हरद्वार २ प्रयाग और ३ गङ्गा सागर। पर तेरी कीर्ति नदी ने न जाने कितने साधु समाज बना दिये। जो तीर्थ को भी तीर्थ बनाते हैं। यथा तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि। भाव यह कि धर्म के लिए कष्ट सहने का ऐसा उदाहरण तुमने स्थापन किया कि कितने लोग धर्म के लिए कष्ट सहने को खडे हो जावेंगे और यही साधुता है।

पितु कह सत्य सनेह सुबानी। सिय सकुच महुँ मनहुँ समानी॥
पुनि पितु मातु लीन्हि उर लाई। सिख आसिष हित दीन्हि सुहाई॥३॥

अर्थ : पिता तो सच्ची स्नेह युक्त सुन्दर वाणी कहते थे। पर सीताजी तो मानो सङ्कोच मे गडी जाती थी। फिर पिता माता ने उन्हे गले से लगा लिया और हितकर शिक्षा तथा आशीर्वाद दिया।

व्याख्या : जनकजी ने प्रेम से सच्ची बात प्रशसा के रूप मे कहा। यह पिता के मुख से अपने पतिप्रेम की प्रशसा सुनकर सीताजी अत्यन्त सङ्कुचित होती जाती थी। स्नेहमयी वाणी यथा : पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ। सत्य वाणी यथा सुयस धवल जग कह सब कोऊ। सुवाणी यथा : जिति सुरसरि कीरति सरितोरी : इत्यादि :

अति प्रेम से फिर पिता ने और माता ने हृदय से लगाया। कवि वात्सल्य दिखलाते हुए कहते हैं कि पिता माता ने शिक्षा दी कि इसी भाँति धर्मपालन करने से ही दोनो लोक बनता है इत्यादि और आशीर्वाद दिया। यद्यपि यहाँ सीताजी

द्वारा वन्दना नही लिखा। फिर भी आशीर्वाद देने से प्रणाम का अनुमान करना पडेगा।

कहति न सीय सकुचि मनमाही। इहाँ बसब रजनी भल नाही॥
लखि रुख रानि जनायउ राऊ। हृदयँ सराहत सीलु सुभाऊ॥४॥

अर्थ सीताजी मन मे सङ्कोच करती हुई यह कह न सकी कि यहाँ रात को रहना ठीक नही। रानी ने रुख समझकर महाराज को सूचित किया और मन से शील स्वभाव की प्रशसा की।

व्याख्या सीताजी रामजी के साथ वानप्रस्थ धर्म से रहती है। सरकार को : मुनि ब्रत बेष अहार · की आज्ञा पिता द्वारा मिली हुई है। वानप्रस्थावस्था मे क्षत्रिय पत्नी के साथ शयन करें और दोनो के बीच से साक्षीरूप से खड्ग रक्खा रहे। अतः रामजी के पास जाना आवश्यक था। पर सङ्कोच से कह नही सकती थी। पर उनका रुख देखकर माँ समझ गयी। हृदय से सीताजी के शील स्वभाव की प्रशसा करती हुई महाराज जनक से जाकर कहा कि सीताजी कहती नही है पर उनका जाना आवश्यक है।

दो. बार बार मिलि भेंटि सिय, बिदा कीन्हि सनमानि।
कही समय सिर भरत गति, रानि सुबानि सयानि॥२८७॥

अर्थ · सीताजी से बार बार मिलकर और सम्मान करके उन्हे विदा किया और चतुर रानी तो ठीक अवसर देखकर भरत का हाल सुन्दर वाणी से कह सुनाया।

व्याख्या · अत्यन्त प्रेम के कारण बार बार मिली। समय ऐसा था कि विदाई मे कुछ दे नही सकते थे। अत. सम्मान करके ही सीताजी को विदा किया। कौसल्याजी ने कहा था : रानि रायसन अवसर पाई। अपनी भाँति कहब समुझाई। सो सयानी रानी ने अच्छा मौका देखकर भरतजी का हाल सुन्दर वाणी द्वारा राजा से कहा कि भरत का प्रेम ऐसा है कि इन्हे घर लौटाने मे बड़ा खतरा मालूम होता है। इनका प्रेम भी महाराज दशरथ सा ही है। एक गलती हो चुकी है कि महाराज दशरथ को लोगो ने रामजी के पास वन मे नही भेजा। अब दूसरी गलती भरत को अयोध्या भेजकर न करनी चाहिए। बल्कि लक्ष्मण को अयोध्या भेज दिया जाय इत्यादि।

सुनि भूपाल भरत ब्यवहारू। सोन सुगध सुधा ससि सारू॥
मूँदे सजल नयन पुलके तन। सुजसु सराहन लगे मुदित मन॥१॥

अर्थ : राजा ने भरत का व्यवहार सुनकर जो सोने मे सुगन्ध और चन्द्रमा के सारभूत अमृत सा था आँखें मूद ली और शरीर उनका पुलकित हो गया तथा प्रसन्न मन होकर उनके सुयश की प्रशसा करने लगे।

व्याख्या : गति और व्यवहार समानार्थक शब्द है। उस व्यवहार को सोना सा कहा। पर सोने मे सुगन्ध नही स्वाद नही। इस व्यवहार रूपी सोने मे सुगन्ध भी है और अमृत सा स्वाद भी है। व्यवहार मे सोनापन भरतजी का स्वभाव है। *यथा : कनकहि बान चढै जिमि दाहे। कनको पुनि पखान ते होई। जारेउ सहज न परिहरि सोई।* कसे कनक मनि पारिख पाये। पुरुष परखियहि समय सुभायें। सुवास से भाईपन कहा। यथा : १. अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास। २. भायप भलि चहु बंधु की। १ जल माधुरी २ सुवास। सुधा ससि सारू से भक्ति कहा। यथा : राम सनेह सुधाकर सारू। भाव यह कि भरत का व्यवहार अलौकिक सोना है जो इस ससार मे नही है। अमृत भी अनेक प्रकार का होता है। वह भी अमृत ही था जिसे पाताल मे पीकर भीमसेन बलवान हुए थे। पर वह उन्हे अमर न कर सका। वह पाताल लोक का अमृत था। परन्तु चन्द्रमा मे जो अमृत है उसे देवता लोग पान करते हैं। वह अमृतो मे भी उत्तम कोटि का है। इसी भाँति भरतजी की भक्ति भी उत्तम कोटि की है।

ऐसे व्यवहार को सुनकर महाराज जनक को सात्त्विक भाव हुआ। आनन्द से उन्होने आँखें बन्द कर ली। रोगटें खडे हो गये। बोल न सके। मन ही मन सुयश की सराहना करने लगे। भाव यह कि तन मन वचन से प्रेम मे मग्न हो गये। मूँदे सजल नयन से तन की दशा कही। सुजस सराहन लगे से वचन की दशा कही और मुदित मन से मन की दशा कही।

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरत कथा भव बंध बिमोचनि ॥
धरम राजनय ब्रह्मबिचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू ॥२॥

अर्थ : राजा ने कहा कि हे सुमुखि सुलोचनि! भरत की कथा भवबन्धन से छुडानेवाली है। तुम सावधान होकर सुनो। धर्म राजनीति और ब्रह्मविचार इन विषयो मे यथामति मेरी पहुँच है।

व्याख्या : जनकजी प्रिया होने से सुमुखि सुलोचनि सम्बोधन देते हैं। अथवा रानी का नाम सुलोचनि . सुनयना है और सुमुखि नाम का विशेषण है। भरत की कथा असाधारण है। उसके सुनने से भवबन्धन कट जाता है। यथा ' भरत चरित करि नेम तुलसी जे सादर सुनहि। सीय रामपद प्रेम अवसि होइ भवरस बिरति। अतः मैं जो कहता हूँ उसे सावधान होकर सुनो।

मेरी गति तीन विषयो मे है। धर्मशास्त्र मे राजनीति मे और ब्रह्मविद्या मे। इन तीनो विषयो की यदि कोई बात हो तो उसमे मैं अपनी सम्मति दे सकता हूँ। अपनी बुद्धि के अनुसार निर्णय भी कर सकता हूँ।

सो मति मोर भरत महिमाही। कहइ काह छल छुअति न छाँही ॥
बिधि गनपति अहिपति सिव सारद। कबि कोबिद बुध बुद्धि बिसारद ॥३॥

भरत चरित कीरति करतूती । धरम सील गुन बिमल बिभूती ॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू । सुचि सुरसरि रुचि निदरि सुधाहू ॥४॥

अर्थ वह मेरी बुद्धि भरत की महिमा का क्या वर्णन करे । उसकी छाया को भी छल छू नही पाता । ब्रह्मदेव गणेश शेष सारद कवि कोविद और बुद्धि विशारद पण्डित के लिए भरत का चरित कीर्ति करतूति धर्म शील गुण और निर्मल ऐश्वर्य सुनने और समझने में तो सबको सुखद है और गङ्गाजल सा पवित्र और अमृत से अधिक सुस्वादु है ।

व्याख्या महाराज जनक कहते हैं कि वह मेरी बुद्धि जो धर्मशास्त्र राजनीति और ब्रह्मविचार मे काम कर जाती है भरत महिमा कहने मे कुण्ठित हो जाती है । किसी विषय के कथन करने मे उसे सीमित करना पडता है । उसका आदि अन्त कहना पडता है । महिमा का विचार वही तक है जहाँ तक छल का स्पर्श नही है । छल का स्पर्श होते ही महिमा समाप्त हो जाती है । अत जहाँ तक छल नही है वही तक महिमा का वर्णन होता है । पर भरत की महिमा की छाया का छल स्पर्श नही करता । अत उसका वर्णन हो तो कैसे हो ?

१ विधि, २ गणपति, ३ अहिपति, ४ शिव, ५ शारद, ६ कोविद कवि और ७ बुद्धि विशारद पण्डित । ये ही सात बडे वर्णन करनेवाले हैं । इन सब लोगो को १ भरत का चरित्र, २ कीर्ति, ३ करतूति, ४ धर्म, ५ शील, ६ गुण और ७ निर्मल विभूति, समझने और सुनने मे सुखद है ।

१ विधि को चरित्र सुखद सृष्टि रक्षा के कारण । यथा
सोक सिंधु बूडत सबहि तुम अवलंब न दीन्ह ।

२ गणपति को कीर्ति सुखद विघ्न विनाशकारी होने से । यथा
समन अमित उतपात सब भरत चरित जप जाग ।

३ शेषजी को करतूति सुखद पृथ्वी सँभालने से । यथा
भरत भूमि रह राउर राखी ।

४ शिवजी को धर्म सुखद रामभक्ति होने से । यथा
रामभगति मय भरत निहारे ॥

५ शारदा को शील सुखद स्वार्थ रहित होने से । यथा
परमारथ स्वारथ सुख सारे ।
भरत न सपनेहु मनहु निहारे ॥

६ कवि कोविद को गुण सुखद रसास्वाद होने से । यथा
करहु सो प्रेम प्रगट को करई ।
केहि छाया कबि मति अनुसरई ॥

७ बुद्धि विशारद पण्डित को विमल विभूति सुखद शिक्षामय होने से । यथा
भरतहि होइ न राज मद बिधि हरिहर पद पाइ ।

क्योंकि ये गङ्गाजल की भाँति पवित्र है। छलहीन होने से और अमृत से भी मीठे हैं। राम प्रेममय होने से।

दो. निरवधि[1] गुन निरुपम पुरुषु, भरतु भरत सम जानि।
कहिअ सुमेरु कि सेर सम, कबिकुल मति सकुचानि ॥२८८॥

अर्थ : असीम गुणवाले उपमारहित पुरुष भरत भरत के ही समान हैं। सुमेरु को क्या सेर के समान कहा जायगा? इसलिए : कवि समाज की बुद्धि सङ्कुचित हो गयी।

व्याख्या : भरत के गुणो की सीमा नहीं इसलिए निरवधि कहा और उनकी उपमा भी नहीं इसलिए निरुपम कहा। अनन्वयालङ्कार देते हुए महाराज कहते हैं कि भरत के समान भरत ही हैं। दूसरे लोगों से समानता दी नहीं जा सकती। अन्य लोगो में और भरत मे उतना ही अन्तर है जितना कि सुमेरु पर्वत और सेर : बटखरे मे है। अतः दूसरे से उपमा देने मे कवि की बुद्धि सङ्कुचित होती है कि इतना बड़ा वैषम्य होते हुए उसे सामान्य धर्म मे लाना ठीक नहीं।

अगम सबहि बरनत बर बरनी। जिमि जलहीन मीन गमु धरनी ॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहि रामु न सकहि बखानी ॥१॥

अर्थ : हे श्रेष्ठ वर्णवाली! सभी के लिए वर्णन करना अगम है। जैसे जल रहित पृथ्वी पर मछली की गति नहीं होती। हे रानी! भरतजी की असीम महिमा रामजी जानते हैं। परन्तु वे भी वर्णन नहीं कर सकते।

व्याख्या : भरत का चरित विषय वासना रहित है। इसलिए उसकी उपमा जलहीन धरनी से दी गयी। विषय को अत्यत्र जल और मन को मीन माना गया है। यथा : विषय बारि मन मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक। विषयरूपी जल से मनरूपी मछली क्षण भर के लिए भी अलग नहीं हो सकती। इसलिए निर्विषय वस्तु में मन की गति होना वैसा ही है जैसे जलहीन स्थान में मीन की गति। अतः भरत के चरित्र में किसी की गति नहीं है। मछली जानती ही नहीं कि बिना जल का प्रदेश कैसा होता है। इसी भाँति भरत की महिमा कोई नहीं जानता। केवल रामजी जानते है क्योकि वे भी विषय रस से रूखे हैं। यथा : राम पुनीत विषय रस रूखे। परन्तु वे भी कह नहीं सकते। क्योंकि कहना और सीमित करना एक बात है। असीम का वर्णन हो नहीं सकता। असीमता जानी जा सकती है पर कही नहीं जा सकती। अतः भरत की महिमा रामजी जानते है कि असीम है। कही नहीं जा सकती इसीलिए तो असीम है।

बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ। तिय जिय की रुचि लखि कह राऊ ॥
बर नहि लखनु भरत बन जाँही। सब कर भल सबके मन माँही ॥२॥

---

१. यहाँ अनन्वयालङ्कार है।

अर्थ : प्रेम के साथ भरत की महिमा का वर्णन करके स्त्री की रुचि देखकर राजा ने कहा कि भरत वन जायँ। इसी मे सबका भला है और यही बात सबके मन मे है। लक्ष्मण का जाना अच्छा नही।

व्याख्या : पहिले राजा जनक ने भरतजी की महत्ता का वर्णन किया। रानी ने भरत की गति कहने मे इस बात के दिखलाने का पूरा प्रयत्न किया कि लक्ष्मणजी को रोक लिया जाय और भरत को रामजी के साथ वन जाने दिया जाय। क्योंकि रामजी का विरह भरत के लिए असह्य है। लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी मिलकर राजकाज सँभालेंगे। अतः रानी की रुचि का समर्थन करते हुए राजा ने कहा कि जो तुमने कहा है वह सबके भले की बात है और सभी यह चाहते हैं कि लक्ष्मण का जाना ठीक नही। भरतजी वन जायँ।

देबि परंतु भरतु रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी ॥
भरतु अवधि सनेह ममता की। यद्यपि राम सीम समता की ॥३॥

अर्थ : परन्तु हे देवी! भरत और रामजी की प्रीति और प्रतीति मे तर्क काम नही करता। यद्यपि रामजी समता की सीमा है तथापि भरत स्नेह और ममता की सीमा हैं।

व्याख्या : जनकजी रानी से कहते हैं कि तुम्हारा तर्क ठीक है। परन्तु रामजी मे और भरत मे कितनी प्रीति है और कितनी प्रतीति है इसमे तर्क काम नही करता। क्योंकि बुद्धि की वहाँ तक पहुँच नही।

जिस भरतजी के कल्याण के लिए तुम उनका वन जाना सोच रही हो वे अपना कल्याण किस बात मे मानेंगे। रामजी की आज्ञा पालन मे या उन पर सङ्कोच डालने मे यह कौन कह सकता है।

यद्यपि रामजी समता की सीमा है। उनके साथ चाहे लक्ष्मण जायँ या भरत जायँ उनके लिए दोनो बराबर हैं। पर भरत भी स्नेह और ममता की सीमा है। वे कभी लक्ष्मणजी या रामजी के मन मे ठेस नही लगने देंगे।

परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ॥
साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू ॥४॥

अर्थ : परमार्थ और स्वार्थ के सारे सुखो को तो मानो भरत ने कभी सपने मे भी नही देखा। साधन और सिद्धि : दोनो रामजी के चरणो का प्रेम है। मुझे तो यही भरत का मत मालूम पड़ता है।

व्याख्या : भरत ने प्रयागराज से माँगा : *अर्थ न धर्म न काम रुचि गति न चहौं निर्वान*। अर्थ धर्म काम से स्वार्थ सुख कहा और निर्वाण गति से परमार्थ सुख कहा। इन दोनो सुखों को भरतजी चाहते नही। मानो इनकी ओर कभी आँख उठाकर देखा ही नही है।

नियम तो यही है कि भक्ति से मुक्ति सुलभ हो जाती है। यथा राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवै बरिआईं। रामभक्ति साधन हुई और मुक्ति साध्य हुई। यही साधारण नियम है। यथा भक्तिर्मुक्तिविधायनी भगवत श्रीरामचन्द्रस्य हि। परन्तु मुझे मालूम होता है कि भरतजी साधन और सिद्धि भक्ति को ही मानते हैं। रामभजन करके वे भक्ति ही चाहते हैं मुक्ति नही चाहते। यथा सगुन उपासक मोक्ष न लही। तिनकहँ राम भगति निज देही।

दो भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं, मनसहु राम रजाइ।
करिअ न सोचु सनेह बस, कहेहु भूप बिलखाइ ॥२८९॥

अर्थ भूल करके भरतजी मन से भी रामजी की आज्ञा का उल्लघन न करेंगे। प्रेम के वश होकर सोच न करो। ऐसा राजा ने विलखकर कहा।

व्याख्या आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सबसे बडी सेवा आज्ञापालन है। रामजी आज्ञा देंगे कि तुम राज्य पर जाओ तो भरत मन से भी उसका उल्लघन न करेंगे। दु ख सह लगें। सो जिसे दु ख झेलना है वह स्वय झलने के लिए तैयार हो तो उसके लिए सोच न करना चाहिए। स्नेह के वश होकर शोक करना व्यर्थ है। यह बात राजा ने विलखकर कहा।

राम भरत गुन गनत सप्रीती। निसि दपतिहि पलक सम बीती ॥
राज समाज प्रात जुग जागे। न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे ॥१॥

अर्थ रामजी और भरतजी के गुणो को प्रेम के साथ गिनते हुए दोनो प्राणी को सारी रात पलक के समान बीत गयी। सवेरे दोनो राज समाज जागे और नहा नहाकर देव पूजन करने लगे।

व्याख्या न तो रामजी के गुणो की सख्या और न भरतजी के गुणो की सीमा थी। यथा जल सीकर महिरज गनि जाही। रघुपति गुन नहिं बरनि सिराही। तथा निरवधि गुन निरुपम पुरुष भरत भरत सम जानि। भगवान् और भागवत के गुण ही ऐसे है। उनकी गणना मे बडा मन लगता है। अत दोना प्राणी रात भर उन्ही की गणना करते रहे। रात कब बीत गयी उन लोगो को पता नही। राजा रानी तो जागते रहे पर समाज खूब सोया। अत उनका जागना लिखते। उठने के साथ ही नित्यकृत्य मे लग गये। गनप गौरि तिपुरारि तमारी। रमारमन पद बदि बहोरी। बिनवहि अजुलि अचल जोरी। इत्यादि।

२२ दूसरी सभा रघुपति प्रबोध प्रसङ्ग

गे नहाइ गुर पहि रघुराई। बदि चरन बोले रुख पाई ॥
नाथ भरतु पुरजन महतारी। सोक बिकल बनवास दुखारी ॥२॥

अर्थ रघुराज स्नान करके गुरुजी के पास गये। चरण की वन्दना करके

रुख पाकर बोले। हे नाथ! भरत, नगरनिवासी और माताएँ सब सोच से विकल और वनवास से दुःखी हैं।

व्याख्या : सब लोगों ने तो नहा नहाकर इष्टदेवों का पूजन किया। पर सरकार के तो इष्टदेव गुरुजी हैं। ये स्नानादि करके गुरुजी के दर्शन को जाते हैं। आज भी इसीलिए गये। पर आज कुछ कहना है मुनिजी ने समझ लिया। सो मुनिजी का जब रुख पाया कि क्या कहना चाहते हो। तो चरण वन्दना करके बोले।

भरत, पुरजन और माताएँ ये सब लोग मानसिक और शारीरक कष्ट से दुःखी है। शोक विकल से मानसिक कष्ट कहा और वनवास से शारीरक कष्ट कहा। गुरुजी तो तपस्वी है। अतः उनके दुःख का नाम नहीं लेते। ये लोग व्यर्थ दुःख सह रहे हैं।

सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भये सहत कलेसू॥
उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा। हित सबही कर रउरे हाथा॥३॥

अर्थ : महाराज मिथिलेश को सहित समाज कष्ट उठाते बहुत दिन हो गये। इसलिए हे नाथ! जो उचित हो वही कीजिये। आप ही के हाथ सबका हित है।

व्याख्या : भरत माता पुरजन तो क्लेश उठा रहे हैं। सम्बन्धी भी कष्ट उठा रहे है। राजा मिथिलेश के कष्ट उठाने का कोई कारण नहीं है। फिर वे भी कष्ट उठा रहे है। पहिले भी मैने कहा था। तब आज्ञा हुई : लोग दुखित दिन दुइ दरस देखि लहुँ बिश्राम। सो वे दो दिन तो कभी के बीत गये। तब से मिथिलेश आगये। इन्हे भी आये कई दिन हो गये। मुझे जो कहना था कह दिया आगे आप मालिक है। जो आप उचित समझें सो करें। आपकी ही आज्ञा मानने और रुख रखने में सबकी भलाई है। आप जैसा कहेंगे वैसा ही सब करेगे। अतः जिसमें सबका हित हो सो कीजिये। हित सदा उचित करने में होता है। ध्वनि यह है कि पिता के वचन की रक्षा हो।

अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुलके लखि सीलु सुभाऊ॥
तुम्ह बिनु राम सकल सुख साजा। नरक सरिस दुहु राज समाजा॥४॥

अर्थ : ऐसा कहकर रामजी अति सङ्कुचित हो गये। मुनिजी शील स्वभाव देखकर पुलकित हो गये। कहा हे राम! तुम्हारे बिना दोनो राजसमाज का सुख साज नरक के समान है।

व्याख्या : गुरुजी को कुछ भी करने के लिए विनय करने में भी रामजी को सङ्कोच होता है। पहिले भी जाने के लिए जब कहा था तब अन्त में यही कहा बहुत कहेउँ सब कियेउँ ढिठाई। उचित होय तस करिअ गोसाईं। वही बात फिर कह रहे है। इसलिए अत्यन्त सकुचे। मुनिजी प्रभु का सङ्कोची स्वभाव देखकर मग्न हो गये। पुलक हो आया। अस सुभाउ कहुँ सुनै न देखौं। केहि खगेस रघुपति सम लेखौं।

प्रिय के विरह मे सुख के साज और भी दु खदायी हो जाते हैं। अत गुरुजी कहते हैं कि दोनो समाज को सुख तो तुम्हारे सयोग मे है। तुम्हारे विरह में ये सुख के साज नरक समान दु खदायक हो जायेंगे।

दो. प्रान प्रान के जीव के, जिव सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सोहात गृह, जिनहि तिनहि विधि वाम ॥२९०॥

अर्थ : हे तात ! तुम प्राण के प्राण हो। जीव के जीव हो और सुख के सुख हो। तुमको छोडकर जिन्हे घर अच्छा लगता है उन पर विधाता बायें हो गये हैं।

व्याख्या : सब लोग कष्ट सह रहे हैं। इस बात का उत्तर देते हुए वसिष्ठजी कहते हैं कि सुख के मूल स्रोत तो आप हैं। आपके छोडने मे सुख कहाँ ? आप ही के कारण प्राण प्राणन क्रिया करता है। इसलिए आप प्राण के प्राण हैं। जिस बिम्ब का जीव प्रतिबिम्ब है वह बिम्ब आप ही हैं। इसलिए आप जीव के जीव हैं। विषय सुख के भी मूल में ब्रह्म सुख है। इसलिए आप सुख के सुख हैं। गृह मे भी सुख है। पर वह सुख भी आप के होने से है। आपको छोडकर सुख कहाँ। यथा : जगदातमा प्रानपति रामा। तासु विमुख किमि लह बिश्रामा। यही साधारण नियम है। स्वभाव से जीव और ब्रह्म में स्नेह है। यथा ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू। जिस पर विधाता वाम होते हैं उसका स्वभाव पलट जाता है। यथा : भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। अत आपको छोडकर जिसे घर अच्छा लगा उसके लिए समझ लेना चाहिए कि इस पर विधाता ही बाये हो गये। भाव यह कि सब लोग यही रहने से सुखी हैं किसी को घर जाने की रुचि नही है।

सो सुख करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू। जहँ नहि राम पेम परधानू ॥१॥

अर्थ : वह सुख और वह कर्म धर्म जल जाय जिसमे रामजी के चरणो मे प्रेम न हो। वह योग कुयोग है। वह ज्ञान अज्ञान है। जिसमे रामजी का प्रेम प्रधान न हो।

व्याख्या . उचित होय सो कीजिय नाथा का उत्तर देते हुए गुरुजी कहते हैं कि यहाँ उचित अनुचित कुछ नही। जिससे धर्म अर्थ और काम मे बाधा न हो वही उचित है। परन्तु जिस धर्मार्थ काम मे आप के चरणो के प्रेम का अभाव हो वह धर्मार्थ काम जले। उससे कोई प्रयोजन नही।

जिस योग मे रामप्रेम न हो उससे मोह का नाश नही होता और जिस ज्ञान मे रामप्रेम की प्रधानता न हो वह तारने मे समर्थ नहीं होता। यथा : पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह बिटप नहिं सकै उपारी। तथा : सोह न रामप्रेम बिनु ज्ञानू। करनधार बिनु जिमि जलजानू।

तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्ह तेही। तुम्ह जानहु जिअँ जो जेहि केही॥
राउर आयसु सिर सबही के। बिदित कृपालहि गति सब नीके ॥२॥

अर्थ　तुम्हारे विना दु खी और तुमसे ही सब सुखी है। जिसके हृदय मे जो है उसे तुम जानते हो। आपकी आज्ञा सवके सिर पर है। हे कृपाल ! आपको सबकी गति विदित है।

व्याख्या　चाहे विपयी हो। चाहे साधक हो। चाहे सिद्ध हो। सव तुम्हारे विना दु खी रहते है। यथा　तन कृस मन दु ख बदन मलीने। विकल मनहु माछो लघु छीने और तुम्हारी उपस्थिति से सब सुखी होते हैं। यथा　सब विधि सब पुरलोग सुखारी। रामचद मुखचद निहारी। तुम्ही सवके हृदय के जाननेवाले हो। यथा　को जिय कै रघुबर बिनु बूझा।

जो आपने कहा ' हित सवही कर रउरे हाथा। सो बात नही है। आपकी आज्ञा सबके सिर पर है। मेरे सिर पर भी है। क्योकि आप कृपाल है और अन्तर्यामी सवकी गति जानते हैं। यथा　सवके उर अन्तर बसहु जानहु भाउ कुभाउ। जीव चाहे कैसा ही बडा हो ईश के ऐसा नही हो सकता। अत आपकी ही आज्ञा के पालन से सवका हित है। यथा　प्रभु आज्ञा अपेल स्तुति गाई। तथा　प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई।

आपु आश्रमहि धारिअ पाऊ। भयउ सनेह सिथिल मुनिराऊ॥
करि प्रनामु तब राम सिधाए। रिपि धरि धीर जनक पहँ आए॥३॥
राम वचन गुरु नृपहि सुनाए। सील सनेह सुभाव सुहाए॥

अर्थ　अब आप आश्रम मे पधारिये। यह कहकर मुनिराज प्रेम से शिथिल हो गये। रामजी प्रणाम करके चले गये। ऋपिजी धैर्य धारण करके जनकजी के पास आये। गुरुजी ने रामजी का शील स्नेह और स्वभाव से सुन्दर वचन राजा को सुनाया।

व्याख्या　ऋषिजी ने आपु आश्रमहिं धारिअ पाऊँ। कहकर यह जना दिया कि मै आपका अभिप्राय समझ गया। वही होगा। रामजी के वचन सुनकर ऋपिजी स्वय स्नेह से शिथिल हो गये थे। अत रामजी के चल जाने पर धैर्य धारण करके महाराज जनक के यहाँ आये और रामजी का शील स्नेह और उनका स्वाभाविक सुन्दर वचन उन्हे कह सुनाया। शील यथा　बदि चरन बोले रुख पाई। तथा　अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। स्नेह यथा　नाथ भरतु पुरजन महतारी। साक बिकल बनवास दुखारी। सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भये सहत कलेसू। सुन्दर स्वभाव यथा उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा। हित सबही कर तुम्हरे हाथा।

इस भाँति ऋपिजी ने महाराज को रामजी के आन्तरिक भावो से परिचित करा दिया। कोष्ठान्तर्गत दो पद राजापुर की प्रति म नही है। पर इन्हे बिना माने काम नही चलता।

महाराज अब कीजिअ सोई। सवकर धर्म सहित हित होई॥४॥

अर्थ : गुरुजी ने कहा कि महाराज ! अब वही कीजिये जिससे सबका सहित हित हो।

व्याख्या : भाव यह कि यह अर्धाली रामजी के वचन ' उचित होइ सोइ कीजे नाथा का अनुवाद है। धर्म सहित सबका हित करना ही उचित है। चक्रवर्तीजी के न रहने पर जनकजी की उपस्थिति मे उनकी ही आज्ञा सब पर चलेगी। अतः मुनिजी उन्ही से कहते है।

दो. ग्यान निधान सुजान सुचि, धरम धीर नरपाल।
तुम्ह बिनु असमंजस समन, को समरथ एहि काल ॥२९१॥

अर्थ : हे राजन् ! तुम ज्ञान के घर सुजान पवित्र और धर्मधीर हो। तुम्हारे बिना इस असामञ्जस्य के मिटाने मे इस समय कौन समर्थ है।

व्याख्या : भाव यह धर्म राजनय ब्रह्म बिचारू। इहाँ यथा मति मोर प्रचारू। जनकजी ने कहा था सो मुनिजी जिन विशेषणो से राजा को सम्बोधित करते है उनका भी यही अभिप्राय है। ज्ञान निधान से ब्रह्म विचार कहा। सुचि सुजान से राजनय कहा। धर्मधीर से धर्मशास्त्र का ज्ञान कहा। ऐसा गुणी राजा इस समय मे कौन है। सामञ्जस्य बिठाना निर्णय करना राजा का काम है। यहाँ जो असामञ्जस्य आ पडा है कि धर्म पर ध्यान देने से सबका अहित होता है। सबका हित करने से रामजी का धर्म जाता है। इस असामञ्जस्य को आप ही मिटा सकते है।

सुनि मुनि बचन जनक अनुरागे। लखि गति ग्यानु बिरागु बिरागे ॥
सिथिल सनेह गुनत मन माँही। आए इहाँ कीन्ह भल नाँही ॥१॥

अर्थ : मुनिजी का वचन सुनने से जनकजी प्रेम मे आगये। उनकी गति देखकर ज्ञान विराग को भी विराग हो गया। स्नेह से शिथिल होकर मन मे विचार करने लगे कि मैंने यहाँ आकर अच्छा नही किया।

व्याख्या : जनकजी ने जब मुनिजी का वचन सुना कि आप इस प्रेम और धर्म के सामञ्जस्य को बिठलाइये। जिसका स्पष्ट अर्थ यही है कि मुझसे सामञ्जस्य नही बैठता तो जनकजी स्वय प्रेम मे आगये। रामानुराग का दर्जा ज्ञान विराग से बढा चढा है। जनकजी का अनुराग देखकर ज्ञान विराग को भी विराग हो गया कि अब हम यहाँ नही रहेगे। अब अनुराग ही यहाँ रहे। क्योकि काम आ पडने पर जनकजी अनुराग का ही सम्मान करते है। वे हृदय से अनुरागी है। यथा : जाहि रामपद गूढ सनेहू। इनके लिए राजा जनक विचारते है। यहाँ धर्म तो यही है कि रामजी वन जायँ और स्नेह वन जाने देना नही चाहता। मैं सम्बन्धी हूँ। मै कैसे कहूँ कि रामजी का वन जाना ही ठीक है अत मेरा यहाँ आना ठीक नही हुआ।

रामहि राय कहेउ बन जाना। कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रवाना ॥
हम अब बन ते बनहि पठाई। प्रमुदित फिरब विवेक बड़ाई ॥२॥

अर्थ : चक्रवर्तीजी ने रामजी को वन जाने को कहा और स्वयं उन्होंने प्यारे के प्रेम को सच्चा कर दिखलाया और हम अब रामजी को वन मे ही भेजकर विवेक की बडाई के साथ लौटेंगे।

व्याख्या : भाव यह कि जनकजी चक्रवर्तीजी के समकक्ष हैं। यथा : सम समधी देखा हम आजू। सो चक्रवर्तीजी ने तो रामजी को वन मे भेजकर धर्म निबाहा और अपना शरीर छोडकर प्रेम का निर्वाह भी कर दिखाया। यही तो एक मात्र रास्ता धर्म और प्रेम के सामञ्जस्य बिठाने का है। यह तो नही है कि मैं रामजी को वन से लौटा ले चलने के बदले वन जाने की सम्मति देकर घर लौटूँ और यह समझकर सन्तोष कर लूँ कि मैं बड़ा विवेकी हूँ।

तापस मुनि महिसुर सुनि देखी। भये प्रेम बस बिकल बिसेखी ॥
समउ समुझि धरि धीरजु राजा। चले भरत पहि सहित समाजा ॥३॥

अर्थ तपस्वी मुनि और ब्राह्मण लोग सुनकर और देखकर प्रेम के वश हो विशेष व्याकुल हुए। फिर राजा समय का विचार करके और धैर्य धारण करके समाज के सहित भरतजी के पास आये।

व्याख्या सभी लोगो की बात नही कहते। जो लोग विराग का व्रत लिये हुए है वे भी वसिष्ठजी की बात सुनकर और दोनो महाज्ञानियो की दशा देखकर प्रेमवश हो गये। उनकी विकलता सामान्य लोगो से भी अधिक थी। क्योकि वे विषय की सूक्ष्मता को विशेषरूप से समझ रहे थे।

प्रजा का रञ्जन करनेवाला ही राजा कहलाता है। राजा ने सोचा कि मेरी विकलता के व्यक्त होने से प्रजा अधिक विकल होगी और मेरी स्थिति ऐसी हैं कि जब मै यहाँ आया हूँ तो मुझे ही सामञ्जस्य बिठलाना है। वसिष्ठजी कहते हैं। अत राजा ने धैर्य धारण किया। जनकजो राजा है। सामञ्जस्य बिठलाने की विधि जानते हैं। देखा कि सम्पूर्ण प्रजा की दृष्टि इस समय भरतजी पर है और प्रेम भी भरतजी का सबसे अधिक है। धर्म के भी जानकार भरतजी हैं। अत सामञ्जस्य बिठाने का भार भरत पर ही छोडा जाय। अत कुछ न कहकर समाज सहित भरतजी के पास चल पडे।

भरत आइ आगे भइ लीन्हे। अवसर सरिस सुआसन दीन्हे ॥
तात भरत कह तिरहुति राऊ। तुम्हहि बिदित रघुबीर सुभाऊ ॥४॥

अर्थ भरतजी ने आगे आकर उनका स्वागत किया और समयानुकूल अच्छा आसन दिया। तिरहुत तीरयुक्त के राजा ने कहा कि हे तात भरत ! तुम्हें रामजी का स्वभाव मालूम है।

व्याख्या श्वसुर भी पिता के तुल्य है। अत जनकजी का आगमन जानकर भरतजी आगे आकर उनका स्वागत करके अपने डेरे पर लिवा ले गये। यहाँ वन मे सिंहासन का योग नही था। अत सुन्दर आसन जो इस समय दिया जा सकता था सो दिया।

बैठने के बाद महाराज जनक ने भरतजी को सम्बोधन करते हुए कहा कि तुम तो जानते हो कि रामजी का कैसा सङ्कोची स्वभाव है। यथा कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची।

दो राम सत्यब्रत धर्म रत, सब पर सीलु सनेहु।
सकट सहत सँकोच बस, कहिय जो आयसु देहु ॥२९२॥

अर्थ रामजी सत्यव्रत है। धर्म मे रत हैं। सब पर उनका स्नेह और शील है। सङ्कोच के वश पडे हुए सङ्कट सह रहे है। इसलिए जो तुम आज्ञा दो उनसे कहा जाय।

व्याख्या रामजी के सङ्कोच को और भी स्पष्ट करते हुए कहते है कि रामजी का व्रत ही सत्य है और सदा धर्म मे ही लगे रहते हैं। अर्थात् सत्य और धर्म वे छोड नही सकते और सत्य धर्म तो यही है कि वे वन जायँ। साथ ही साथ उन्हे सबका शील है और सब पर उनका स्नेह है। अत यह स्पष्ट आज्ञा भी नही दे रहे हैं कि तुम लोग यहाँ से चले जाओ। मै नही लौट सकता। वे शील स्नेह भी नहीं छोड सकते। अत वे सङ्कोच वश सङ्कट सह रहे है। उन्हे सङ्कट से छुडाना तुम्हारा काम है। अब एक बात स्पष्ट हो जानी चाहिए। यह द्विविधा की दशा असह्य है। अत तुम जो आज्ञा दो वही उनसे करने का कहा जाय। भाव यह कि तुम्हारे ऐसा उनका स्नेही कोई नही है। तुम्ही उन्हे लौटाने आये हो। हम लोग तो तुम्हारे पक्ष को पुष्ट करने आये है। अत रामजी के सत्यव्रत और धर्म को विचार करके तथा स्नेह को भी ध्यान मे रखकर जो तुम निर्णय करके कहो वही हम लोग चलकर रामजी से करने के लिए कहे।

सुनि तन पुलकि नयन भरि बारी। बोले भरतु धीर धरि भारी॥
प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू। कुलगुरु सम हित माय न बापू॥१॥

अर्थ सुनकर भरतजी को पुलक हो गया और आँखो मे आँसू भर आया। भरत जी भारी धैर्य धारण करके बोले। आप प्रभु पूज्य पिता के समान है। कुलगुरु के समान हितकारी न बाप है और न माँ है।

व्याख्या जनकजी का उपर्युक्त वचन सुनकर भरतजी को सात्त्विक भाव हुआ, उनके रोगटे खडे हो गये। नेत्रो मे जल आगया। उन्हे बोलने मे भारी धैर्य धारण करना पडा। यहाँ प्रेमियो का समाज इकट्ठा हुआ है। सबका धैर्य छूटा जा रहा है। जनकजी चलते है तो धैर्य धारण करके चलते हैं। भरतजी बोलते हैं तो भारी धैर्य धारण करके बोलते है।

पिता धर्मंत पुत्रो का प्रभु भी हैं और पूज्य भी है। श्वशुर पिता के तुल्य है। इसलिए भरतजी कहते हैं कि आप प्रभु पूज्य पिता के तुल्य हैं। धर्म यही है कि आप आज्ञा दें और मै पालन करूँ और कुलगुरु आप से भी अधिक है। क्योकि वे पिता और माता से भी विशेष हितकारी हैं। उन्हे मुझे आज्ञा देनी चाहिए। मुझसे सम्मति न पूछनी चाहिए।

कौसिकादि मुनि सचिव समाजू। ग्यान अंबुनिधि आपुनु आजू ॥
सिसु सेवकु आयसु अनुगामी। जानि मोहि सिख देइअ स्वामी ॥२॥

अर्थ : विश्वामित्रादि मुनिसमाज है। सचिवसमाज है। हे स्वामी ! मुझे बच्चा सेवक और आज्ञा पालक जानकर आप लोग आज्ञा दीजिये।

व्याख्या विश्वामित्रादि मुनिगण सभी प्रभु और पूज्य हैं। पिताजी का मन्त्री समाज है। सभी को मुझे आज्ञा देने और उपदेश देने का अधिकार है। स्वय आप आज दिन ज्ञान के समुद्र है। सभी ऋषि मुनि आपका थाप मानते हैं। मैं आप के लिए शिशु, गुरुजी के लिए सेवक और शेष महानुभावो के लिए विधेय हूँ। आप लोगो के सामने मुझे आज्ञा देने का अधिकार नही है। मै तो आज्ञाकारी हूँ। ऐसा जानकर आप लोग आज्ञा दीजिये।

एहि समाज थल बूझब राउर। मौन मलिन मै बोलब बाउर ॥
छोटे बदन कहौ बडि बाता। छमब तात लखि बाम बिधाता ॥३॥

अर्थ ऐसे समाज मे ऐसी जगह मे आपका पूछना ! मुझसे मैं मौन हूँ और मलिन हूँ। मै उलटा सुलटा बोलूँगा। मैं छोटे मुँह बडी बात कहता हूँ। हे तात ! विधाता को बायें समझकर आप क्षमा कीजियेगा।

व्याख्या : बडे का प्रश्रय : अदब यहाँ तक माना जाता है कि जब से भरतजी आये हैं लक्ष्मणजी मौन है कि जो कुछ बातचीत करना होगा भरतजी करेंगे। उनके सामने मेरा बोलना अनुचित है और जब से जनकजी आये है भरतजी मौन है कि मुझ से बडा बोलने के लिए आगया है। बोलते भी हैं तो कहते है कि मेरा कहना छोटे मुँह बडी बात के सदृश है। उसे क्षमा कीजिये। जिसके विधाता विमुख हो जाते हैं वह ऐसा ही बोलता है।

इसीलिए भरतजी कहते हैं कि मै तो सब भार आप पर छोडकर मौन हूँ। जो आप कर दें सो स्वीकार है और दूसरो बात यह कि मैं दु खी हूँ। इसलिए अन्त करण मलिन हा रहा है। न जाने कैसी बात मुख से निकल जाय। भाव यह कि आप लोग बडे हैं। आपकी आज्ञा रामजी पर चल सकती है। सो आप लोग कुछ कहते नही। मुझ सेवक से कहने के लिए कहते हैं। ऐसी बातें मेरे मन मे है जिसके कहने मे धृष्टता है। अत कहते हैं . मै बोलब बाउर। रामजी के पास भरत या लक्ष्मण मे से कोई न कोई रहता ही है। इसी से शत्रुघ्नजी को बोलने का अवसर ही रामायण भर मे न मिला।

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना । सेवा धरमु कठिन जग जाना ॥
स्वामि धरमु स्वारथहि विरोधू । वैरु अध प्रेमहि न प्रबोधू ॥४॥

अर्थ वेद शास्त्र और पुरान म प्रसिद्ध है और ससार जानता है कि सेवाधर्म कठिन है । स्वामी के धर्म और स्वार्थ मे विरोध है, वैर अन्धा है, और प्रेम का प्रबोध नही होता ।

व्याख्या यहां स्वामी के धर्म से और सेवक के स्वार्थ से विरोध पड गया है । स्वामी का धर्म यथा मैं सोइ धर्म सुलभ करि पावा । तजे तिहूँ पुर अपजस छावा । सेवक का स्वार्थ । यथा जेहि सुनि बिनय मोहि जनु जानी । आवहिं बहुरि राम रजधानी । दोनो मे विरोध पड गया । दोनो एक साथ नही हो सकता । स्वामी का धर्म सेवक के स्वार्थ को नही देख सकता और न सेवक का स्वार्थ स्वामी के धर्म को देख सकता है । क्योकि वैर अन्धा है । इस पर यदि यह कहा जाय कि फिर सेवक अपना स्वार्थ छोडे तो इस पर यह कहते हैं कि प्रेम को प्रबोध नही । वह मानता नही ।

दो राखि राम रुख धरमु व्रतु, पराधीन मोहि जानि ।
सब कें समत सर्व हित, करिय पेमु पहिचानि ॥२९३॥

अर्थ रामजी का रुख धर्म व्रत की रक्षा करते हुए, मेरी पराधीनता पर ध्यान देते हुए, सब की राय से जो सबका हित हो उसे प्रेम पहिचान कर करना चाहिए ।

व्याख्या भरतजी कहते हैं कि मेरा सेवाधर्म न बिगडने पावे । इसलिए रामजी का रुख रखिये और स्वामी का धर्म व्रत न भङ्ग हो इसलिए उसकी भी रक्षा कीजिये । मुझे कुछ कहने का अधिकार नही । अत मुझे पराधीन जान लीजिये । मेरा विचार छोडिय । जिसमे सबकी राय हो सबका हित होता हो उसे प्रेम के पहिचान के साथ कीजिये । जिसम दरबार का कायदा न बिगडने पाये । यथा प्रीति पहिचान यह रीति दरबार की । कहिय जो आयसु देउ का उत्तर देते हुए भरतजी कहते हैं कि मैंने पहिल ही कहा था मौन मलिन मैं बोलब बाउर । आप एक सामञ्जस्य बिठाने के लिए मेरे यहाँ आये और मैंने बहुत से सामञ्जस्य बिठाने के लिए निवेदन किया ।

भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ । सहित समाज सराहत राऊ ॥
सुगम अगम मृदु मजु कठोरे । अरथु अमित अति आखर थोरे ॥१॥

अर्थ भरत के वचन सुनकर और स्वभाव देखकर समाज सहित राजा जनक प्रशसा करने लगे कि भरतजी की वाणी सुगम भी है अगम भी है । मृदु मञ्जु भी है । कठोर भी है । असीम अर्थ है और अक्षर थोडे है ।

व्याख्या सब लोग भरतजी की वाणी और स्वभाव पर मुग्ध है कि क्या

वाणी है और कैसा सुन्दर स्वभाव है कि सब कुछ कह दिया पर कठोरता व्यक्त न हुई। वाणी की प्रशसा करते हैं कि सुनने मे तो सुगम है पर समझने मे अगम है। विनय प्रेम युक्त होने से मृदु है। निर्दोष होने से मञ्जु है। फिर भी कठोर उत्तर है कि आप कुलगुरु हैं। अवस फिरव गुरु आयसु मानी। और आप पिता के समान हैं। सब कुछ कह सकते हैं। पर कुछ कहना नही चाहते। मुझ पराधीन सेवक से कहलाना चाहते हैं। ऐसी ध्वनि निकलती है। इससे कठोर भी है। स्वामिधर्म स्वारथहिं बिरोधू। बैर अध प्रेमहि न प्रबोधू। इतने से अक्षरो मे असीम अर्थ भरा पडा है।

जिमि मुखु मुकुर मुकुरु निज पानी। गहि न जाइ अस अदभुत बानी॥
भूप भरतु मुनि साधु समाजू। गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू॥२॥

अर्थ जैसे दर्पण मे मुख का प्रतिबिम्ब हो और दर्पण अपने हाथ मे हो। पर मुख का प्रतिबिम्ब पकडा नही जाता। ऐसी अद्भुतवाणी है। तब राजा जनक भरत और मुनि साधु का समाज देवकुल कुमुद चन्द्र रामचन्द्र के पास गये।

व्याख्या भरतजी की वाणी दर्पण की भाँति निर्मल है और उसमे प्रतिबिम्बित मुख अत्यन्त स्पष्ट हैं। दर्पण इतना छोटा कि हाथ म आगया। फिर भी इतना बडा मुख ज्यो का त्यो उसमे आगया। पर यह सामर्थ्य किसी को नही कि उस प्रतिबिम्बित मुख को कोई पकड सके। हाथ के भीतर दर्पण और उसके भीतर मुख फिर भी हाथ उसे नही पकड सकता। यही अद्भुतता है। ऐसी ही भरतजी की वाणी है। बात स्पष्ट और थोडे शब्दो मे कही। पर पकड मे नही आती है। भाव यह कि भरत के वचन का उत्तर किसी के पास नही।

वसिष्ठजी जनक के पास गये। वे भरतजी के पास गये। कुछ निर्णय न हुआ। अब सब लोग मिलकर रामजी के पास जा रहे हैं।

सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा। मनहुँ मीनगन नव जल जोगा॥
देव प्रथम कुलगुर गति देखी। निरखि बिदेह सनेह बिसेखी॥३॥

अर्थ यह समाचार सुनकर लोग सोच से ऐसे व्याकुल हुए जैसे नये जल के याग से मछलियाँ व्याकुल होती हैं। देवताओ ने पहले कुलगुरु की गति देखी। फिर राजा जनक के विशेष प्रेम को देखा।

व्याख्या जलती हुई पृथ्वी पर जब पहिला जल गिरता है तो वह भी तप्त हो जाता है और जब वह जल जलाशय मे पहुँचता है तो मछलियाँ व्याकुल हो उठती हैं। इसी प्रकार यह समाचार पाकर लोग विकल हो गये। समाचार नवीन जल स्थानीय है।

देवताओ को अपना स्वार्थ इतना सताये हुए है कि ये प्रत्येक हलचलो पर निगाह रखत हैं। उन्होने पहिल कुलगुरु की गति देख ली कि स्नेह से शिथिल हो रहे हैं। इनकी आज्ञा मिलने पर रामजी पिता के वचन को भी नही मानेंगे। इधर

जनकजी की गति देखी कि ये महात्मा स्नेह से विशेष शिथिल हो गये। इनका बहुत बड़ा सङ्कोच रघुनाथजी को है।

राम भगतिमय भरतु निहारे। सुर स्वारथी हहरि हिय हारे॥
सब कोउ राम प्रेममय पेखा। भए अलेख[1] सोच बस लेखा॥४॥

अर्थ · भरतजी को देखा कि राम भक्तिमय हो रहे हैं। तो स्वार्थी देवताओं ने हहरकर हाथ पैर ढीला करके हिम्मत छोड़ दी। सब किसी को देखा कि राम प्रेममय हो रहे हैं तो देवता लोग ऐसे सोचवश हुए कि उनका लेखा नहीं हो सकता।

व्याख्या गुरुजी और जनकजी की दशा तो देखी ही थी। अब भरतजी को देखते हैं तो वे रामप्रेममय हो रहे हैं। इन तीनों व्यक्तियों पर देवताओं का बल चल नहीं सकती। अत देवताओं ने भयभीत होकर हिम्मत छोड़ दी। रामजी के स्वभाव को देवता जानते हैं कि वे भक्तों के पराधीन से हो जाते है। अत उनके लौट जाने के भय से भीत हो गये।

इतना ही नहीं वहाँ सभी को राम प्रेममय देख रहे है। अत उनके सोच का अन्त नहीं है। समझ रहे हैं कि ऐसे प्रेमियों के एक मत होने में कितनी देर लगेगी।

दो रामु सनेह सकोच बस, कह ससोच सुरराजु।
रचहु प्रपञ्चहि पञ्च मिलि, नाहि त भयउ अकाजु॥२९४॥

अर्थ शोकयुक्त होकर देवराज ने कहा कि रामजी सङ्कोची हैं और प्रेम के वश हैं। अत सब पञ्च लोग मिलकर प्रपञ्च रचो। नहीं तो बात बिगड़ा चाहती है।

व्याख्या शोक के वश सब देवताओं की ऐसी गति देखकर स्वय देवराज शोकयुक्त होकर बोल उठे कि रामजी का सङ्कोची स्वभाव है और वे स्नेह के वशीभूत हो जाते हैं। अत अब चुप रहने का समय नहीं है। सब पञ्च मिलकर माया करो। एक दो की माया से काम न चलेगा। यदि त्रुटि हुई तो काम को बिगड़ने मे देर नहीं है। यही समय पुरुषार्थ करने का है।

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देबि देव सरनागत पाही॥
फेरि भरत मति करि निज माया। पालु बिबुध कुल करि छल छाया॥१॥

अर्थ देवताओं ने सरस्वती का स्मरण करके स्तुति की और कहा कि हे देवि! हम लोग शरण मे आये हैं रक्षा करो। अपनी माया करके भरत की बुद्धि फेर दो और छल की छाया करके देवकुल की रक्षा करो।

व्याख्या · सरस्वती का ही आवाहन और स्तुति करके देवता लोगों ने रामाभिषेक मे विघ्न किया। रामजी को वनवास हुआ। भरतजी के प्रेम के कारण वह

१ यहाँ विरोधाभास अलङ्कार है।

सब प्रयत्न आज निष्फल हुआ चाहता है। अत इन्द्र की आज्ञा मानकर देवताओ ने प्रपञ्च रचने के लिए फिर सरस्वती का आवाहन किया। उन्हे प्रसन्न करने के लिए स्तुति की। उन्हे सङ्कोच मे डालने के लिए शरणागत हुए।

अन्त मे अपना प्रयोजन निवेदन करते है कि भरत को बुद्धिरूपी आतप से हम लोग पीडित है। अत माया करके भरत की बुद्धि तू फेर दे। माया के आवरण की छाया मे हम लोग घोर आतप से बच जायँ। जैसे पहले कर चुकी हो। यथा : अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।

बिबुध बिनय सुनि देबि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड जानी ॥
मो सन कहहु भरत मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू ॥२॥

अर्थ देवताओ की स्तुति और विनय सरस्वतीजी ने आकर सुनी। परन्तु सरस्वती बडी सयानी है। देवता स्वार्थ के कारण जड हो गये हैं। यह जानकर बोली कि मुझे भरत की बुद्धि फेरने को कहते है। इन्हे नेत्र तो हजार हैं। पर सुमेरु पर्वत नही दीखता।

व्याख्या इनकी बुद्धि काम नही करती। जहाँ बिबुध कुमुद द्विजराज स्वय बैठे है। वहाँ बिबुध देवताओ को भय कहाँ ? परन्तु देवता स्वार्थान्ध हो गये है। इनकी विवेक दृष्टि मारी पडी है। स्थूल दृष्टि हजार होने से भी कोई आँखवाला नही हो जाता। देखो हजार आँख होने पर भी इन्द्र को यह नही सूझ रहा है कि किसकी बुद्धि फेरी जा सकती है और किसकी नही फेरी जा सकती। रामजी के परम प्रेमी की बुद्धि कौन फेर सकता है। उनके स्नेह तक त्रिदेव का मन नही जाता वहाँ मेरी क्या गति है। पहिले जो मैने बुद्धि फेरा था तो मन्दमति मन्थरा की बुद्धि को फेरा था। मन्थरा सेर है और भरत सुमेरु है। कहाँ मन्थरा और कहाँ भरत।

बिधि हरि हर माया बडि भारी। सोउ न भरत मति सकै निहारी ॥
सो मति मोहि कहत करु भोरी। चदिनि कर कि चडकर चोरी ॥३॥

अर्थ विधि हरिहर की माया बडी भारी है। वह भी भरत की मति की ओर देख नही सकती। उस मति को भोरी करने के लिए मुझे कहते हो। चाँदनी सूर्य को कैसे चुरा सकती है।

व्याख्या : जिसे भरत के स्वरूप का ज्ञान है वह समझ सकता है कि विधि हरिहर ईश्वर है। उनकी माया के बल से ससार की उत्पत्ति पालन और लय हुआ करता है। पर उनकी स्थिति भरत के सामने ऐसी है जैसे क्षीरसागर के सामने काँजी के दो चार बिन्दु। भरत की बुद्धि सूर्य के समान है। मायारूपी अन्धकार उसके सामने टिक नही सकता। मैं तो विधि की आश्रिता हूँ। चाँद की चाँदनी हूँ। मेरे तेज के सामने खद्योत भले ही छिप जायँ। सूर्य कैसे छिप सकते हैं। भाव यह

कि जिस भाँति सूर्य की ज्योति से ही चन्द्र प्रकाशित है उसी भाँति भरत के तेज से ही विधि हरिहर का तेज है। तुम लोगो को भरत के स्वरूप का बोध नही है।

भरत हृदय सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू॥
अस कहि सारद गइ विधि लोका। विबुध बिकल निसि मानहु कोका॥४॥

अर्थ : भरत के हृदय में राम जानकी का निवास है। वहाँ अन्धकार कहाँ जहाँ सूर्य का प्रकाश है। ऐसा कहकर सरस्वती ब्रह्मलोक चली गयी। देवता लोग ऐसे विकल हो गये जैसे रात को चकवा।

व्याख्या : भरतजी की इतनी बड़ी महिमा का कारण यह है कि उनके हृदय में राम जानकी का निवास है। रामजी सूर्य हैं। सीताजी उनकी प्रभा हैं। इसीलिए भरतजी की बुद्धि सूर्यरूप हो रही हैं। भरतजी की महिमा विधि हरिहर से अधिक कही गयी है। वहाँ मायारूपी अन्धकार की गति कहाँ ?

ऐसा कहकर सरस्वतीजी ब्रह्मलोक चली गयी। देवताओ को और कुछ कहने सुनने का अवसर नही दिया। देवताओ के लिए सूर्यास्त हो गया। वे कोक की भाँति विकल हो गये।

दो. सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमंत्र कुठाटु।
रचि प्रपंचु माया प्रबल, भय भ्रम अरति उचाटु॥२९५॥

अर्थ : देवता स्वार्थी हैं। उनका मन मलीन है। उन्होने सलाह करके कुसाज साजा। प्रपञ्च, प्रबल माया, भय, भ्रम, अप्रीति और उचाट की रचना की।

व्याख्या : देवताओं को स्वार्थी कहने पर भी मलिन मन कहा। क्योकि सरस्वती के समझाने पर भी उन्हे बोध न हुआ। यथा तदपि मलिन मन बोध न आवा। भरतजी ने कहा था . सबके सम्मत सर्वहित करिअ प्रेम पहिचानि। तो सबको यदि उचाट हो जाय . भ्रमादि हो जाय तो काम बन सकता है। भरत पर माया नही चल सकती। लोगो पर तो चल सकती है। देवताओ की समष्टि की माया है। इसलिए प्रबल माया कहते हैं। लोगो को वन मे भय लगने लगा। मन मे अस्थिरता आगयी। घर की ओर भी मन दौडने लगा। सरकार की प्रीति भी कम हो गयी। चित्त मे उचाट हो गया।

करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरत हाथ सबु काजु अकाजू॥
गये जनकु रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रविकुल दीपा॥१॥

अर्थ : कुचाल करके इन्द्र सोचने लगे कि काम का बिगाड या सुधार तो भरत के हाथ मे है। जनकजी तब रामजी के पास गये। रविकुलदीप ने सबका सम्मान किया।

व्याख्या : यद्यपि सब देवताओं ने मिलकर प्रपञ्च माया रची। फिर भी सबके सरदार होने से इन्द्र का नाम लिया जा रहा है। उन्ही की आज्ञा से माया

रची गयी। अब वे सोचने लगे कि जिनके ऊपर माया काम करेगी उनके हाथ मे तो कुछ है नही। काम का बिगाडना या सुधारना तो भरतजी के हाथ में है और उन पर यह माया भी काम नही कर सकती। कवि ने : भूप भरत सब साधु समाजू। गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू से प्रसङ्ग छोड़ा था। बीच मे देवताओ का हाल कहने लगे। अब फिर वही से प्रसङ्ग उठाते हैं कि जनकजी रामजी के पास पहुँचे। प्रधान होने से उन्ही का नाम लिया। रामजी ने सबका सम्मान किया।

जब रामजी को सुमन्त चक्रवर्तीजी के यहाँ लिवा चले तब दीप कहा था। यथा : रघुकुल दीपहि चले लवाई। यहाँ जनकजी के सामने भी दीप ही कह रहे है। भानुकुल भानु नही कहते अथवा राम और भरत दोनो दीप है। यथा : जानेउ सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा।

समय समाज धर्म अबिरोधा। बोले तब रघुबस पुरोधा ॥
जनक भरत संवादु सुनाई। भरत कहाउति कही सुहाई ॥२॥

अर्थ रघुवश के पुरोहित तब समय समाज और धर्म के अनुकूल बोले। उन्होंने जनक और भरत की बातचीत कह सुनायी और भरतजी की सोहावनी उक्ति भी कही।

व्याख्या : सरकार ने वसिष्ठजी से कहा था : उचित होय सो कीजिय नाथा। अत तुरन्त वसिष्ठजी काम मे लग गये। जनकजी के पास गये। उन्हे लिये दिये भरतजी के पास गये। समय समाज और धर्म के अविरोध बोलना ही उचित है। वसिष्ठजी रघुवश के पुरोहित है। पूज्य है। सब प्रकार से हितचिन्तक हैं। इनका कहना कोई टाल नही सकता।

समय ऐसा उपस्थित है कि कोई कुछ निर्णय नही कर पाता। जनकजी ने भरत के ऊपर सब छोडा कि जो भरत कहे सो किया जाय और भरतजी कहते हैं राखि राम रुख धर्म व्रत पराधीन मोहि जानि। सबके सम्मत सर्वहित करिय प्रेम पहिचानि। अवध समाज के मुखिया भरत मैथिल समाज के मुखिया राजा जनक। सो इन्ही दोनो की सम्मति सारे समाज की सम्मति समझनी चाहिए। ऐसे अवसर पर वसिष्ठ कहते हैं कि मेरी सम्मति यह है।

तात राम जस आयसु देहू। सो सब करइ मोर मत एहू ॥
सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी। बोले सत्य सरल मृदु बानी ॥३॥

अर्थ : हे तात राम ! तुम जैसी आज्ञा दो वही सब करें। मेरा तो यही मत है। सुनकर रामजी दोनो हाथ जोडकर मृदु वाणी बोले।

व्याख्या : नीति प्रीति परमार्थ और स्वार्थ सबके तुम यथार्थ जानकार हो। अत सबके सम्मत सर्वहित का निर्णय तुम्ही कर सकते हो। अत तुम जो आज्ञा दो वही सब लोग करें। इससे भरत के सेवाधर्म का भी निर्वाह हो जायगा। क्योकि

इसके बाद जो कुछ भरत करेंगे वह सब करना तुम्हारी आज्ञा का पालन होने से सेवकाई के अन्तर्गत होगा।

यह सुनकर रामजी ने आज्ञा नहीं दी। बड़ों के सामने जैसा बोलना चाहिए वैसा बोले। दोनों हाथ जोड़कर सत्य सरल और मृदु वाणी बोले।

विद्यमान आपुनि मिथिलेसू। मोर कहब सब भाँति भदेसू॥
राउर राय रजायसु होई। राउरि सपथ सही सिर सोई॥४॥

अर्थ: स्वयं मिथिलेश के विद्यमान होते हुए मेरा कहना सब तरह से गँवार-पन है। आपकी और महाराज की जो आज्ञा हो मैं आपकी शपथ खाकर कहता हूँ कि वही मेरे लिए ठीक है और शिरोधार्य है।

व्याख्या: पिता के समान महाराज मिथिलेश हैं। उनके सामने आज्ञा देना अनुचित है। किसी प्रकार उचित नहीं है। आप गुरु हैं। आपकी आज्ञा सर्वोपरि है। अतः आप दोनों बड़े उपस्थित हैं। आप लोग सम्मति कर लीजिये। वही मुझे शिरोधार्य होगा। इसके लिए मैं आपकी शपथ लेता हूँ। भाव यह कि यदि आप लोगों की यही आज्ञा हुई कि तुम लौट चलो तो मैं पिता का वचन छोड़ दूँगा। यही रामजी की सत्य सरल और मृदु वाणी है।

दो. राम सपथ सुनि मुनि जनकु, सकुचे सभा समेत।
सकल बिलोकत भरत मुखु, बनइ न ऊतरु देत॥२९६॥

अर्थ: रामजी की शपथ सुनकर मुनिजी और जनकजी सभा समेत सङ्कुचित हो गये। सब लोग भरतजी का मुख देखने लगे। किसी से उत्तर देते नहीं बनता।

व्याख्या: धर्म के मर्म के जाननेवाले महापुरुष पिता के वचन के उल्लंघन करने को सम्मति दे नहीं सकते। तो जब लौटने को कह ही नहीं सकते तो और कहेंगे ही क्या? अतः किसी को उत्तर नहीं सूझता। रामजीने सरल बात कही कि मुझे तो बड़ों की बात माननी है। उनका वचन मानकर वन आया। अब स्वयं गुरुजी तथा पिता सदृश मिथिलेश कहें कि तुम लौट चलो तो मैं चलूँ। अब गुरुजी तथा जनकजी धर्मविरोध कैसे करें। इसलिए जवाब नहीं सूझता। भरतजी का मुख देखते हैं कि तुमसे जो कुछ कहते बने इस समय कहो। क्योंकि तुम्हीं इस कार्य में अग्रसर हो।

सभा सकुच बस भरत निहारी। रामबंधु धरि धीरजु भारी॥
कुसमउ देखि सनेहु सँभारा। बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा॥१॥

अर्थ: भरतजी ने देखा कि सभा सङ्कोच के वश में पड़ गयी। तब रामजी के भाई ने भारी धैर्यधारण किया। कुसमय देखकर इस भाँति स्नेह को सँभाला जिस भाँति बढ़ते हुए विन्ध्याचल को अगस्त्यजी ने रोक दिया था।

व्याख्या: भरतजी ने देखा कि रामजी के शपथ पूर्वक कहने से अब किसी

को उत्तर नही सूझ रहा है। सबके सब सङ्कोच मे पड गये। भरतजी प्रेम से भरे हुए हैं। जनकजी के आ जाने पर स्वयं कुछ कहना नही चाहते। अत्यन्त आवश्यकता पडने पर एक बार बोले थे। अब फिर बिना बोले काम नही चलता। अत भारी धैर्य धारण करके बोले। रामजी भाई है। उनको उत्तर देने मे ये ही समर्थ है।

कथा है कि किसी समय विन्ध्याचल बढने लगा। उसका इरादा इतना बढने का था जिसमे सूर्यनारायण उसकी परिक्रमा करने लगें · जिस भाँति सुमेरु की परिक्रमा करते हैं। इस अस्वाभाविक बढाव को देखकर देवताओ को भय हुआ। वे लोग काशी आकर अगस्त्यजी को लिवा ले गये जो विन्ध्य के गुरु थे। उन्हे देखकर विन्ध्याचल ने साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। मुनिजी ने कहा कि जब तक मैं दक्षिण से नही लौटता तब तक यो ही पडे रहो। उस समय से विन्घ्याचल का बढना रुक गया। अगस्त्यजी दक्षिण से लौटे ही नही।

यहाँ इतने से ही तात्पर्य है कि भरतजी का प्रेम विन्घ्याचल की भाँति बढता चला जाता था। उसे रोकने से सद्‌गुणरूपी सुरगण असमर्थ थे। फिर भी भरतजी ने उसे ऐसा रोका जैसे अगस्त्यजी ने विन्ध्याचल को बढने से रोक दिया। अर्थात् प्रेम को प्रसुप्तावस्था मे ला दिया।

यहाँ भरतजी की समता अगस्त्य मुनि से और प्रेम की विन्ध्याचल से है।

सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी बिमल गुन गन जगजोनी ॥
भरत बिबेक बराह बिसाला। अनायास उधरी तेहि काला ॥२॥

अर्थ शोकरूपी हिरण्याक्ष ने निर्मल गुणरूपी जग को उत्पन्न करनेवाली बुद्धिरूपी पृथ्वी को हर लिया था। भरत के विचाररूपी विशाल वराह ने उसका तत्काल उद्धार किया।

व्याख्या · कथा है कि किसी समय हिरण्याक्ष नामी दैत्य पृथ्वी को हरण करके पाताल मे ले गया था। उसे वाराह रूप मे प्रकट होकर भगवान् ऊपर ले आये। यहाँ शोक को हिरण्याक्ष कहा। उसने सबकी बुद्धि हरण कर ली। समष्टि की बुद्धि होने से उसे पृथ्वी से उपमित किया। जिस भाँति पृथ्वी स्थावर जङ्गम का उत्पत्ति स्थान है उसी भाँति बुद्धि भी सब गुणगणो का उत्पत्ति स्थान है। भरत के विवेक ने उसका उद्धार किया। इसीलिए उसे वाराह कहा। भरत के विवेक से सबको बात सूझने लगी। यह बात किसी को न सूझी कि सरकार से कहे कि आप पिता का वचन मानिये। भरत नही मान रहे हैं। उन्हे मानने के लिए आज्ञा दीजिये। आपकी आज्ञा से भरत सब करें। उनका सेवाधर्म न बिगडे।

करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे। राम राउ गुरु साधु निहोरे ॥
छमब आजु अति अनुचित मोरा। कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा ॥३॥

अर्थ : भरतजी ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। तत्पश्चात् श्रीरामजी का

जनकजी का गुरुजी का और साधुओ का निहोरा किया और बोले कि आज मेरे अत्यन्त अनुचित : आचरण को क्षमा कीजियेगा। मैं कोमल मुख से कठोर बातें कहता हूँ।

व्याख्या : पहिले प्रणाम किया। तत्पश्चात् रामजी जानकीजी गुरुजी और साधुओ से क्षमा करने के लिए निहोरा किया कि आज मैं अत्यन्त अनुचित कर रहा हूँ। बात सरकार से और गुरुजनो से हो रही है। इस बीच में मेरा हस्तक्षेप अनुचित है और तिस पर मैं कठोर कहूँगा जो कहना कि मेरे ऐसे व्यक्ति के लिए शोभा नहीं देता। अतः मेरे इस भारी अनुचित कर्म को आप लोग क्षमा करें। इसके लिए मैं निहोरा करता हूँ।

हियँ सुमिरी सारदा सुहाई। मानस ते मुख पंकज आई ॥
बिमल बिबेक धरम नय साली। भरत भारती मंजु मराली ॥४॥

अर्थ : हृदय से स्मरण करते ही सुन्दर सरस्वती मानस से मुखकमल मे आगयी। भरतजी की सरस्वती निर्मल विवेक धर्म और नीतिवाली सुन्दर हसिनी रूप थीं।

व्याख्या : यह भरतजी की सरस्वती हैं। अतः बडी सुन्दर हैं। भरतजी ने उनका स्मरण किया। ये उनके मानस मे रहती हैं। इसलिए उन्हे मराली कहा। स्मरण करते ही भरतजी के मुख मे आगयी। वाणी की सुन्दरता तभी है जब उसमें विवेक धर्म और नीति तीनो का योग हो। वाणीरूपी हसिनी गुणरूपी पय और दोषरूपी जल को अलग करती हैं। पर यह हसिनी धर्म और नीति से भी युक्त है। अत अधिक सुन्दर हैं।

दो. निरखि बिबेक बिलोचननि, सिथिल सनेह समाजु।
करि प्रनामु बोले भरतु, सुमिरि सीय रघुराजु ॥२९७॥

अर्थ : विवेकरूपी नेत्र से सारे समाज को स्नेह से शिथिल देखकर उन्हे प्रणाम किया और राम जानकी को स्मरण कर भरतजी बोले।

व्याख्या . रामजी के स्नेह मे मग्न समाज को देखकर भरतजी ने उस समाज को प्रणाम किया। यदि समाज का समाज प्रेममग्न हो तो वह सब प्रकार से प्रणम्य हो जाता है। बोलने के पहिले रामजानकी के स्मरण का भाव यह कि अपनी बात का सही उत्तर आप ही मेरे द्वारा दीजिये।

प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी। पूज्य परम हित अतरजामी ॥
सरल सुसाहिबु सील निधानू। प्रनतपालु सर्बग्य सुजानू ॥१॥

अर्थ : हे प्रभो ! आप पिता माता सुहृद परमहित अन्तर्यामी हैं। आप सरल सुस्वामी शीलनिधान प्रणतपाल सर्वज्ञ और सुजान हैं।

व्याख्या : यहाँ भरतजी ने अठारह विशेषण दिये हैं। जिनमे सात तो

सम्बन्धबोधक है और शेष सरकार के गुणो के व्यापक हैं। ये ही विरदावली हैं जिनका वर्णन भरतजी करेंगे। अगस्त्य सहिता म सम्बन्ध को परतम स्वराट् भाव कहा है। इसके द्वारा बिना ध्यान और बिना योग के बिना तप के और बिना ज्ञान के श्री रघुनन्दन मे परा अव्यभिचारिणी प्रीति नित्य वढती ही रहती है। यथा एभ्य परतमो भावो सम्बन्धाख्य स्वय स्वराट्। बिना ध्यानेन तपसा योग ज्ञान विनैव हि। श्रीरघुनन्दने प्रीति पराह्यव्यभिचारिणी। वधतेऽनुदिन विप्र सत्य सत्य न चान्यथा। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं मोहि तोहि नाते अनेक मानिये जो भावे। सो भरतजी ने सात सम्बन्ध माने। पिता माता सुहृद गुरु स्वामी पूज्य और परम हित के सम्बन्ध। यहाँ पर भरतजी ने भाई के सम्बन्ध को नही गिनाया। क्योकि उसके लिए कह आये हैं दसरथ सुअन राम लघु भाई। दीन्ह मोहि बिधि बादि बडाई। अङ्गद ने तीन सम्बन्ध माना था गुरु का पिता का और माता का। यथा मोरे तुम प्रभु गुरु पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जल जाता। यहाँ तो सात सात सम्बन्ध हैं। भाव यह कि मै आपको छोडकर कहाँ जा सकता हूँ।

प्रभु यथा राजाराम स्ववस भगवानू।
पितु यथा ज्येष्ठ भ्राता पितु सम।
मातु यथा रामहि बधु सोच दिन राती।
अडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती॥
सुहृद यथा सिसुपन ते परिहरेउ न सगू।
कबहु न कीन्ह मोर मन भंगू॥
गुरु यथा वेद पुरान सुनहि मनलाई।
आप कहहिं अनुजहि समुझाई॥
स्वामी यथा जेठ स्वामि सेवक लघु भाई।
पूज्य यथा पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते।
सब मानिये राम के नाते॥
परमहित यथा भरत सरिस प्रिय को जगमांही।
कवहुँ न कीन्ह मोर मन भगू।

अब सरकार के सद्गुण कहते है कि श्रीमद से लोग टेढे हो जाते है। यथा श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि। पर सरकार महान् श्रीमान् होने पर भी सरल है। सरकार सुस्वामी हैं। अपनी ओर देखकर कुसेवक का भी भरण करते है। यथा राम सुस्वामि कुसवक मोसो। निज दिसि देखि दयानिधि पोसो। तिस पर भी शील निधान हैं। सेवक की ढिठाई पर ध्यान नही देते। यथा प्रभु तरु तर कपि डारपर ते किये आपु समान। तुलसी कहूँ न राम स साहिब सील निधान। प्रणत के पालन करनेवाल हैं। यथा सकृत प्रणाम किये अपनाये। सर्वज्ञ है। यथा तुमसे कछु न छिपी करुनानिधि तुम ही अन्तरजामी। सुजान हैं। जन के जी की बात जानते हैं। यथा राम सुजान जान जन जी की। समर्थ हैं। दोप अपनी क्रिया उन पर नही कर सकते। यथा समरथ कह नहि दोप गोसाइँ। रवि पावक सुरसरि की नाइँ।

समरथु सरनागत हितकारी । गुनगाहकु अवगुन अघहारी ॥
स्वामि गोसाइँहि सरिस गोसाईं । मोहि समान मै साइ दोहाईं ॥२॥

अर्थ : समर्थ हैं। शरणागत के हित करनेवाले हैं। गुणग्राहक है। अवगुण और पाप के नाश करनेवाले हैं। हे स्वामी ! मालिक तो मालिक से ही है और मै भी अपने ही जैसा हूँ। स्वामी की शपथ लेकर कहता हूँ।

व्याख्या : समर्थ के विषय मे ऊपर कह आये हैं। अथवा समर्थ शब्द का अन्वय शरणागत हितकारी के साथ है। भाव यह कि सरकार शरणागत के हित करने मे समर्थ हैं। यथा : जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहौं ताहि प्रान की नाईं। सरन गये प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा। सरकार गुणग्राहक हैं। यथा : देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने। सरकार अवगुन अघहारी हैं। यथा : करौं सद्य तेहि साधु समाना।

अनन्वयालङ्कार से अपने इस कथन का तात्पर्य कहते हैं कि न तो आप सा भला स्वामी कही है और न मुझ सा बुरा सेवक ही कोई है। यथा : राम सो खरो है कौन मोसो कौन खोटो। राम सो बड़ो है कौन मोसो कौन छोटो। अब अपनी खोटाई कहते हैं :

प्रभु पितु बचन मोह बस पेली । आयेउँ इहाँ समाजु सकेली ॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू । अमिअ अमरपद माहुरु मीचू ॥३॥

अर्थ : प्रभु और पिता के वचन को मोह के वश हटाकर यहाँ समाज इकट्ठा करके आया हूँ। ससार मे बुरा भला ऊँचा और नीचा अमृत अमरपद विष और मृत्यु है।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि भलाई मे मेरे मालिक का जोड़ नही और खोटाई मे मेरा कोई जोड नही। मैं ऐसा खोटा कि अज्ञान के वश मे आकर प्रभु सम्मत पिता के वचन को न मानकर मै यहाँ समाज इकट्ठा करके आया। भाव यह कि प्रभु और पिता के वचन मानने मे विचार को स्थान नही है। इस पर विचार करना ज्ञान नही है अज्ञान है। सो प्रभुसम्मत पिता के वचन का मैंने स्वय तो उल्लङ्घन किया ही और आपसे भी उल्लङ्घन कराने के लिए गुरु माता सचिव तथा पुरजनो को इकट्ठा करके यहाँ ले आया। इस बात का भी विचार न किया कि आज्ञा कोई हटा नही सकता। चाहे भला हो चाहे बुरा हो। चाहे ऊँचा हो चाहे नीचा हो। चाहे अमृत हो चाहे विष हो। चाहे अमरपद हो चाहे मृत्यु ही हो। सबको मानना पड़ता है।

राम रजाइ मेटि मन माँही । देखा सुना कतहु कोउ नाँही ॥
सो मइ सब बिधि कीन्ह ढिठाई । प्रभु मानी सनेह सेवकाई ॥४॥

अर्थ : पर जिसने रामजी की आज्ञा को मन से भी मेटा हो ऐसा कही भी

किसी को न देखा न सुना। सो मैंने सब प्रकार से ढिठाई की। पर स्वामी ने उस ढिठाई को स्नेह और सेवा मान लिया।

व्याख्या उपर्युक्त भलो और बुरो मे कितनो को तो मैने देखा है और कितनो को सुना है। पर ऐसा सामर्थ्य कही किसी मे न पाया जो आपकी आज्ञा मन से भी मेट सके। भाव यह नट मर्कट इव सबहि नचावत। राम खगेस वेद अस गावत। तथा प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई। प्रभु आज्ञा अपेल श्रुति गाई। करहु सो बेगि जो तुमहि सोहाई।

मैंने ऐसे प्रभु की आज्ञा को सब प्रकार से न मानने की ढिठाई की। यह मेरी खोटाई है और उस ढिठाई को स्नेह और सेवकाई मान लेना यह सरकार का अघहारित्व है।

दो. कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषन सरिस, सुजसु चारु चहु ओर ॥२९८॥

अर्थ अपनी कृपा और भलाई से नाथ ने मेरा भला किया। मेरे दूषण ही भूषण हो गये और सुन्दर सुयश चारो ओर फैल गया।

व्याख्या जग अनभल भल एकु गोसाईं। कहिअ होइ भल कासु भलाईं। सो मुझमे भलाई थी ही नही। सरकार ने कृपा करके ऐसी भलाई की कि मेरे दूषण ही भूषण हो गये। मेरी ढिठाई लोगो की दृष्टि म स्नेह और सेवा के रूप मे परिणत हो गयी। सरकार ने प्रशसा कर दिया भयउ न भुवन भरत सम भाई। सो मेरा सुन्दर सुयश चारो ओर फैल गया। यह सरकार का गुणग्राहकत्व है।

राउरि रीति सुबानि बडाई। जगत बिदित निगमागम गाई ॥
क्रूर कुटिल खल कुमति कलकी। नीच निसील निरीस निसकी ॥१॥

अर्थ आपकी सुन्दर रीति आपका सुन्दर स्वभाव आपकी बडाई ससार मे प्रसिद्ध है। उसका गान वेद शास्त्र ने किया है। जो क्रूर, कुटिल, खल, कुबुद्धि, कलङ्की, नीच, दु शील, नास्तिक और नि शङ्क है।

व्याख्या सरकार की रीति ही ऐसी है कि पतितो को पवित्र करते है। इसी से पतितपावन विरद है। यथा ऐसी कौन प्रभु की रीति। बिरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति। स्वभाव ऐसा सुन्दर है कि नीच से भी प्रीति करते है यदि उसम प्रेम हो। यथा श्रीरघुबीर की यह बानि। नीच हूँ सो करत प्रीति सुप्रीति उर अनुमानि। बडाई अर्थात् महिमा की तो सीमा ही नही है। यथा महिमा अमित न कहि सकहि सहस सारदा सेस। यह बात छिपी नही है। ससार जानता है। वेद और शास्त्रो म इसकी प्रशसा है। यह सरकार का समरथ सरनागत हितकारित्व है।

क्रूर म दया नही होती और दया मे ही सब धर्मों का निवास है। यथा दया म बसत नाथ सकल धरम। कुटिल म सरलता नही होती। कुटिल ही दुरात्मा है। उसके मन वाणी और कर्म म एकवाक्यता नही। यथा मनस्यन्यत् वचस्यन्यत्

कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम् । खल निष्कारण ही दूसरे की बुराई करते हैं। यथा खल बिनु कारण पर अपकारी । तामसी बुद्धिवालो की विपरीत बुद्धि होती है। वे अधर्म को ही धर्म समझते हैं। हित को अनहित समझते हैं। यथा तव उर कुमति बसी बिपरीता । हित अनहित मानहुँ रिपु प्रीता । कलङ्की को दुनिया बुरा कहती है। यथा ' कुल कलक जेहि जनम्यो मोही । अपजस भाजन प्रिय जन द्रोही । लोक वेद से बहिष्कृत को नीच कहते हैं । यथा : लोक वेद बाहर सब भाँती । आचारहीन को दु शील कहते है । उन्हे वेद भी पवित्र नही कर सकते । यथा आचारहीन न पुनन्ति वेदा. । निरीश ही असुर है । यथा : मानहि मातु पिता नहिं देवा । साधुन्ह सन करवावहि सेवा । जिनके अस आचरण भवानी । ते जानहु निसिचर सब प्रानी । नि शङ्क से भाव यह कि जिनको परलोक का डर नही । यथा स्वारथ बस परलोक नसाही । ये शरण मे रक्खे जाने के पात्र नहीं हैं।

तेउ सुनि सरन सामुहे आए । सकृत प्रनाम किहे अपनाए ॥
देखि दोप कबहु न उर आने । सुनि गुन साधु समाज बखाने ॥२॥

अर्थ : वे भी सुनकर जहाँ सामने आये और एक बार प्रणाम किया तहाँ आपने अपना लिया । देखकर भी दोष को हृदय मे स्थान नही देते । गुणो को सुनकर भी साधुसमाज मे बखान करते है।

व्याख्या : ऐसे क्रूर कुटिल खल से सभी दूर भागते हैं । पर सरकार की बात दूसरी है । आपके सामने यदि ऐसा पुरुष भी आपके गुण गणो को सुनकर शरण मे आवे तो एक बार प्रणाम करने से ही आप उसे अपना लेते है। पहिली बात यह है कि आपके सुयश सुनने से उसे यह सङ्कल्प हो कि मै ऐसे के अनुकूल चलूँगा । इनके प्रतिकूल का परित्याग करूँगा और उसे विश्वास हो जाय कि सरकार निश्चय मेरी रक्षा करेंगे मैं इन्ही को अपना रक्षक मानूँगा। मुझ से तो सब बिगड गया और अपने को सरकार को समर्पण कर दें तो सरकार एक प्रणाम से प्रसन्न होकर उसे अपना बना लेते हैं । वह तदीय हो जाता है।

यथा : सनमुख होइ जीव मोहि जबही । जनम कोटि अघ नासहिं तबही ।
जौं नर होइ चराचर द्रोही । आवै सभय सरन तकि मोही ।
तजि मदमोह कपट छल नाना । करौं सद्य तेहि साधु समाना ।

उसके एक प्रणाम से रामजी प्रसन्न हो जाते है । उस प्रणाम की बडी महिमा है । यहाँ : प्रनत पाल सरवज्ञ सुजानू का साफल्य दिखलाया ।

उसके दोपो को कभी हृदय मे स्थान नही देते । देखते हुए भी नही देखते ।

यथा : जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली ।
फिरि सुकठ सोइ कीन्हि कुचाली ॥
सोइ करतूति बिभीपन केरी ।
सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी ॥

तेहि भरतहि भेटत सनमाने।
राजसभाँ रघुबीर बखाने॥

जो तदीय हो चुका उससे चूक भी हो जाय तो वह फिर परित्यक्त नही होता। ऐसा सुन्दर सरकार का स्वभाव है। अब बडाई कहते हैं।

को साहिब सेवकहि नेवाजी। आपु समाज साज सब साजी॥
निज करतूति न समुझिअ सपने। सेवक सकुच सोचु उर अपने॥३॥

अर्थ ऐसा कौन स्वामी है जो सेवक पर कृपा करके अपने सब समाज और साज साज दे। अपनी करतूत पर स्वप्न में भी ध्यान न दे। यदि सेवक को सङ्कोच हो तो अपने मन मे सोच हो।

व्याख्या सेवक कैसा भी हितचिन्तक हो पर उसे कोई बराबरी का दर्जा नही देता। पर रामजी की यह बडाई है कि उसका स्वय समाज साज देते हैं।

यथा बालि त्रास ब्याकुल दिन राती।
तन बहु ब्रन चिंता जर छाती॥
सो सुग्रीव कीन्ह कपि राऊ।
अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ॥
प्रभु तरुतर कपि डारपर ते किये आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निधान॥

सरकार का स्वभाव बडा विस्मरणशील है। स्वय जो जो भलाई किया है उसे भूल जाते हैं और सेवक को यदि सङ्कोच हो तो उन्हे मन मे सोच होता है अर्थात् सङ्कोच मिटाने का प्रयत्न करते हैं। यथा सकुच बिहाय मागु नृप मोही। तथा मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सोइ आजु।

सो गोसाइँ नहि दूसर को पी। भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी॥
पसु नाचत सुक पाठ प्रवीना। गुन गति नट पाठक आधीना॥४॥

अर्थ ऐसा मालिक दूसरा कोई नही है। मै भुजा उठाकर और प्रण करके कहता हूँ। पशु नाचते हैं और तोता पाठ करने मे प्रवीण होता है। परन्तु गुण और गति नट और पाठक के अधीन होता है।

व्याख्या भरतजी कहते है कि मालिक तो बहुत हैं। पर ऐसा मालिक कोई है नही। भुजा उठाकर प्रण रोपकर मै कहता हूँ सारी सभा मे सबका साक्षी देने के लिए भुजा उठाकर प्रण किया जाता है। यथा निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह। कि : स्वामि गोसाइँहि सरिस गोसाइँ।

सरकार ने जो कहा . भयउ न भुवन भरत सम भाई इत्यादि। उसपर भरतजी कहते है कि इसमे मेरी करतूत कुछ नही। पशु नाचता है। उसके नृत्य की गति नट के आधीन होती है। उसकी शिक्षा के अनुसार वह नाचता है। तोता श्लोक

पढ़ता है। वह कुछ नहीं समझता। जैसा सिखाया हुआ है वैसा कहता है। सो मेरे मे जो गुण दिखायी पड़ते हैं वे सरकार की प्रेरणा से हैं। यह अन्तर्यामित्व है।

दो. यों सुधारि सनमानि जन, किये साधु सिरमोर।
को कृपालु बिनु पालिहैं, बिरदावलि बरजोर ॥२९९॥

अर्थ : इस भाँति अपने जन को सुधारकर और सम्मान देकर साधुओं का सिरमोर बना दिया। कृपालु के बिना ऐसी बाँकी विरदावली का कौन बल पूर्वक पालन कर सकता है।

व्याख्या : मुझमे गुण कहाँ। जो दिखायी पड़ते है वे सरकार के सिखाये हैं। यथा : वेद पुरान सुनहि मन लाई। आप कहहिं अनुजन्ह समुझाई। अथवा मैंने तो ढिठाई की। न पिता की आज्ञा मानी न सरकार की शिक्षा मानी। परन्तु सरकार ने बलपूर्वक बिगड़ी हुई बात को सुधार दिया। यथा : सुनहु लखन भल भरत सरीखा। बिधि प्रपंच मह सुना न दीखा। सम्मान दिया। यथा : उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषग कहुँ तीरा। साधु सिरमौर बनाया। यथा : भरतहि होइ न राजमद बिधि हरि हर पद पाइ। कबहुँ कि काँजी सीकरन्हि छीर सिंधु बिनसाइ। यहाँ : प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी। पूज्य परम हित का साफल्य दिखलाया।

सोक सनेह कि बाल सुभाएँ। आयेउँ लाइ रजायसु बाएँ॥
तबहुँ कृपाल हेरि निज ओरा। सबहि भाँति भल मानेउ मोरा॥१॥

अर्थ : शोक से स्नेह से या बाल स्वभाव से आज्ञा को हटाकर मैं यहाँ आया। फिर भी कृपालु ने अपनी ओर देखकर सभी भाँति से मेरा भला ही माना।

व्याख्या : भरतजी अपना दोष कहते हैं कि मैं स्वयं निश्चय नहीं कर सकता कि मैं यहाँ क्यों आया? शोक के कारण आया कि स्नेह के कारण आया कि बाल-स्वभाव से आया। यहाँ बाल का अर्थ अज्ञानी है। अर्थात् स्वभाव से मै अज्ञानी हूँ। उसी स्वभाव की प्रेरणा से आया है। चाहे जैसे आया पर आज्ञा उल्लंघन करके ही आया। क्योंकि आज्ञा पालन मे विचार को स्थान नहीं है। यथा : मातु पिता गुरु प्रभु के बानी। बिनहि बिचार करिअ सुभजानी। शोक यथा : राम लखन सिय बिनु पग पनही। करि मुनिबेष फिरहि बन बनही। एहि दुख दाह दहै दिन छाती। भूख न बासर नीद न राती।

स्नेह यथा : देखे बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ।

बाल सुभाएँ यथा : आन उपाउ मोहि नहिं सूझा।

सरकार कृपालु हैं। अपनी ओर देखते हैं। जन के दोष को नहीं देखते। जब मुझ से आज्ञा भङ्ग का अपराध नहीं हुआ था तब तो भला मानना ही था। यथा : तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ। मो कहु दरस तुम्हार प्रभु सब मम पुन्य प्रभाउ। आज्ञा भङ्ग करने पर भी भला ही माना। नहीं तो मैं इस योग्य

था कि मेरा मुख भी न देखते। यथा राम लखन सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ। सो मुझ दर्शन दिया।

देखेउँ पायँ सुमगल मूला। जानेउँ स्वामी सहज अनुकूला ॥
बडे समाज बिलोकेउँ भागू। बडी चूक साहिब अनुरागू ॥२॥

अर्थ सुमङ्गलमल चरणो का दर्शन पाया। जाना कि स्वामी की स्वभाविक कृपा बनी है। बडे समाज मे अपना भाग्य देखा कि मुझ से बडी चूक होने पर भी स्वामी अनुकूल हैं।

व्याख्या सरकार मेरा नाम सुनने पर भी दूसरी जगह नही चले गये। इन मङ्गलमूल चरणो का दर्शन हुआ। तब मुझे मालूम हुआ कि सरकार की स्वाभाविक अनुकूलता म कोई भेद नही पडा।

इतना ही नही। इतनी बडी चूक पर भी स्वामी का इतना अधिक अनुराग है। इससे मैं अपने को बडभागी मानता हूँ। यह सभा बडो की है। जिसमे गुरु श्वशुर माता सचिव तथा वृद्ध महाजन सभी एकत्रित हैं। इसमे सरकार ने पिता के वचन के गौरव से अधिक मेरे सङ्कोच को स्थान दिया। यथा तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार सकोचू जो मैं कहूँ वही कर डालने पर तैयार हो गये और श्रीमुख से मेरे भाग्य की बडाई की।

कृपा अनुग्रह अगु अघाई। कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई ॥
राखा मोर दुलार गोसाईं। अपने सील सुभायँ भलाई ॥३॥

अर्थ हे गोसाईं! हे कृपानिधे! आप ने कृपा और साङ्ग अनुग्रह जी खोलकर अधिकता क साथ किया। अपने शील स्वभाव और भलाई से मेरा दुलार रक्खा।

व्याख्या भरतजी कहते हैं कि मेरे अपराधो को केवल क्षमा ही नही किया बल्कि उन अपराधो को ही सद्गुण का रूप दे दिया। दूषण भूषण हो गये। दुर्यश सुयश हो गया। सम्मान मिला। मैं साधुओ का सिरमौर बन गया। मेरे लिए पिता का बचन तक त्यागने को प्रस्तुत हो गये। अब कृपा और अनुग्रह का कौन सा अङ्ग बचा जिसका प्रयोग मुझ पर जी खोलकर और पूरी तरह से नही किया गया।

मेरा दुलार सदा से होता आया हैं। उसे ब्रह्मा नही सह सके। माँ के ब्याज से उसम बीज डालना चाहा। यथा बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीच जननी मिस पारा। परन्तु सरकार ने अपने शील स्वभाव और भलाई से मेरा दुलार रख लिया। ब्रह्मा का बिगाडा भी नही बिगडा। सरकार का शील स्वभाव और भलाई प्रख्यात है।

शील यथा तुलसी कहूँ न राम ते साहिब सील निधान।
स्वभाव यथा जासु स्वभाव अरिहु अनुकूला।

भलाई। यथा : राम निकाई रावरी है सबही को नीक।

नाथ निपट मइ कीन्हि ढिठाई। स्वामि समाज सकोच विहाई ॥
अविनय विनय जथारुचि बानी। छमिहि देउ अति आरति जानी ॥४॥

अर्थ : हे नाथ ! मैंने अत्यन्त ढिठाई की। जो स्वामी और समाज के सङ्कोच को छोडकर नरम और कड़ी मनमानी वाणी कही। हे राजन् ! उसे मुझे अत्यन्त आर्त्त जानकर क्षमा करें।

व्याख्या : कहऊँ बदन मृदु बचन कठोरा से उपक्रम करके : अविनय विनय यथा रुचि बानी से उपसंहार कर रहे हैं। यहाँ स्वामी और बड़ो का समाज उपस्थित है। ऐसे समाज मे सङ्कोच ही उचित है। यदि बोले भी तो सयत भाषा मे ही बोलना उचित है। भरतजी कहते है सो मैं सङ्कोच छोड़कर इतना बोल गया और उसमे कठोर वाणी भी कही। यथा · फरइ कि कोदव बालि सुसाली। मुकता प्रसव कि सबुक काली इत्यादि। अतः क्षमा माँगता हूँ। मैं अत्यन्त आर्त्त हूँ और आप सुस्वामी हैं। यथा : कटु कहिये गाढे परे सुनि समुझि सुसाँईं।

दो. सुहृद सुजान सुसाहिबहि, बहुत कहब बड़ि खोरि।
आयसु देइअ देव अब, सबुइ सुधारी मोरि ॥३००॥

अर्थ : सुहृद सुजान और सुस्वामी से बहुत कहना भी बडा दोप है। हे राजन् ! अब आप आज्ञा दें और मेरा सब कुछ सुधार दें।

व्याख्या : सुहृद सुजान और सुसाहिब से अधिक न कहना चाहिए। क्योकि अधिक कहने का यह अर्थ होता है कि स्वामी सुहृद सुजान नही हैं। अब मैं विनती कर चुका और सरकार ने सादर सुना भी। अब आप आज्ञा दें। आपके आज्ञा देने से ही सब सुधर जायगा। भाव यह कि जिसकी आज्ञा चले वही राजा है। आपकी आज्ञा से मैं काम करूँगा तो राजा आप रहे मैं सेवक रहा। मेरा सेवधर्म बना रह जायगा। सरकार ने मेरे दूपण को भूपण तो किया। अब आज्ञा देकर मेरी बिगड़ी भी सुधार दें। यथा : बिगरी बनावै कृपानिधि की कृपा नई।

प्रभु पद पदुम पराग दोहाई। सत्य सुकृत सुख सीव सुहाई ॥
सो करि कहउँ हिये अपने की। रुचि जागत सोवत सपनेकी ॥१॥

अर्थ : जो सत्य सुकृत और सुख की सुन्दर सीमा हैं उस स्वामी के चरण कमल के रज की दोहाई देकर जागत सोवत और सपने की रुचि जो हृदय मे है कहता हूँ।

व्याख्या : सरकार सुन्दर सत्य की सीमा हैं। जगत् मे आपेक्षिक सत्य है। पूर्ण रूपेण सत्य तो सरकार ही हैं। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। सत्यसंध दृढव्रत रघुराई। सरकार सुकृत की सीमा हैं। यथा : सुकृत सनेह अवधि रघुराई। सरकार आनन्द की सीमा हैं। यथा : जो आनन्द सिंधु सुख रासी। इस भाँति रामजी को सच्चित-

दानन्द दिनेश कहा। ऐसे महाप्रभु की शपथ लेकर अपनी रुचि कहते हैं। जो जाग्रत अवस्था मे तो सदा बनी ही रहती है। स्वप्न भी जाग्रत के सस्कार के अनुरूप ही होता है। अत स्वप्न मे भी यही रुचि सस्कार रूप से रहती है। घोर निद्रा के समय मे भी वह बीज रूप से रहती है। गुरुजी ने सरकार को मेरी रुचि रखने को कहा। सरकार भी उसके रखने के लिए सब तरह से तैयार हैं। अत मैं उसे कहे देता हूँ।

सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥
अग्या सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जन पावइ देवा॥२॥

अर्थ स्वामी की सेवा मे स्नेह हो। चारो फल सम्बन्धी स्वार्थ रूपी छल छोडकर हो। अच्छे स्वामी की सबसे बडी सेवा आज्ञा पालन है। वही प्रसाद आपका दास चाहता है।

व्याख्या सच्ची सेवा मे स्वार्थ ही छल है और जितने स्वार्थ हैं वे अर्थ धर्म काम और मोक्ष के अन्तर्गत हैं। अत इनसे रहित स्वामी की सेवा मे सहज स्नेह चाहता हूँ। कपट प्रीति या कृत्रिम प्रीति नही चाहता। सेवा मे भी सबसे बडी स्वामी की आज्ञा है। अत आप कृपा करके आज्ञा दें। उसी का मैं पालन करूँ। आपकी आज्ञा से जो कुछ मै करूँगा। वही सरकार की सेवा हो जायेगी। अत अब मै यही प्रसाद चाहता हूँ कि मुझे आज्ञा हो कि भरत ! तू यह कर। बस इतना ही मेरा अभीष्ट है।

अस कहि प्रेम बिबस भए भारी। पुलक सरीर बिलोचन बारी॥
प्रभु पद कमल गहे अकुलाई। समउ सनेहु न सो कहि जाई॥३॥

अर्थ ऐसा कहकर भारी प्रेम के वश हुए। उनके शरीर मे पुलक हो आया। आँखें डबडबा आयी। सरकार के चरण को व्याकुल होकर पकड लिया। उस समय का वह स्नेह कहा नही जाता।

व्याख्या पहिले स्नेह सँभाला था। बढत बिन्ध्य जिमि घटज निवारा। परन्तु इस बात के निवेदन करने मे वह स्नेह नही सँभल सका। फूट चला। अत एकदम प्रेम के विवश हो गये। उन्हे सात्त्विक भाव हो गया। प्रेम मे डूबने लगे। आधार की भाँति चरण को व्याकुल होकर पकड लिया। भरतजी को सब दु ख स्वीकार है। पर सरकार असामञ्जस्य म न रहे।

कृपासिंधु सनमानि सुबानी। बैठाये समीप गहि पानी॥
भरत बिनय सुनि देखि सुभाऊ। सिथिल सनेह सभा रघुराऊ॥४॥

अर्थ कृपासिन्धु ने सुन्दर वाणी से सम्मान करके हाथ पकडकर बैठाया। भरतजी का विनय सुनकर और स्वभाव देखकर सारी सभा और स्वयं रामजी स्नेह से शिथिल हो गये।

व्याख्या : भरतजी चरणो पर गिरे थे। सरकार ने उनका हाथ पकडकर निकट बैठाया। सरकार कृपासिन्धु हैं। भरतजी के आचरण से द्रवीभूत हो गये। उनका सत्कार सुन्दर वाणी से किया। सभा ने और रामजी ने भरतजी का विनय सुना। जिसका तात्पर्य यह था कि मेरा स्वामीसेवक भाव न विगडे। भरतजी सब दु ख सहने को तैयार हैं। पर सरकार की आज्ञा से। निर्गलितार्थ यह कि आप मालिक होना स्वीकार करिये। सब कुछ आप की आज्ञा से हो।

सुरगुरुजी ने पहिले ही कहा था : देखु देवपति भरत प्रभाऊ। सहज सनेह बिवस रघुराऊ। सो विनय सुनकर और स्वभाव देखकर सभा सहित रामजी स्नेह से शिथिल हो गये।

छं. रघुराउ सिथिल सनेहु साधु समाज मुनि मिथिला धनी।
मन महु सराहत भरत भायप भगति की महिमा घनी॥
भरतहि प्रसंसत बिबुध बरखत सुमन मानस मलिन से।
तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिन से॥

अर्थ : रामजी साधु समाज मुनि मिथिलेश सब स्नेह से शिथिल हो गये और मन ही मन भरतजी के भाईपन तथा भक्ति की महा महिमा की सराहना करने लगे। देवता लोग भरतजी की प्रशसा करते हैं और मलिन मन से फूल वरसाते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि सब लोग सुनकर विकल हो गये और रात आने पर कमल की भाँति सङ्कुचित हो गये।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : सिथिल सनेह सभा रघुराऊ। इसी पुरइन का कमल है : रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिलाधनी। सभा मे ये ही लोग थे। वे सबके सब स्नेह मे ऐसे शिथिल हो गये कि मुख से वाक्य नही निकलता। भरतजी के भाईपन की सराहना मन ही मन कर रहे हैं कि भरतजी सब दु ख सहने को तैयार हैं। पर रामजी के चित्त पर सङ्कोच की छाया तक नही आने देते और भक्ति की महामहिमा की प्रशसा करते हैं कि जिसके प्रभाव से सारी सभा जिसमें ऐसे ऐसे धुरन्धर ज्ञानी भी हैं स्नेह से शिथिल हो गयी। सभा की गति कहकर अब देवताओ का हाल कहते हैं कि अपनी कार्य सिद्धि भरतजी द्वारा होने देखकर फूलो का वर्षा कर रहे हैं। पर मलिन मन से करते हैं। क्योंकि मन इनका शुद्ध नही है। लोगों की यह अवस्था हुई कि यह दशा सुनकर वे मुरझा गये। पहले उनका छटपटाना कहा था। यथा : सुनि सुचि सोच बिकल सब लोगा। मनहु मीनगन नव जल जोगा। अब उनका मुरझाना कहते हैं कि निशागमन के कारण जैसे कमल सङ्कुचित हो जाता है वैसे हो गये।

सो. देखि दुखारी दीन, दुहु समाज नर नारि सब।
मघवा महा मलीन, मुए मारि मंगल चहत॥२०१॥

अर्थ दोनो समाज के सब नर नारियो को दीन दुखी देखकर महामलिन इन्द्र मरे हुए को मारकर मङ्गल चाहते हैं।

व्याख्या जो स्वयं दुख से दुखी हो रहा हो उसे और दुख देने के लिए तत्पर होना ही मरे हुए को मारना है। सभा का सब समाचार पाकर लोग बडे दुखी हुए। इन्द्र ने देखा कि इनका दुखी होना भी सरकार के लौट चलने का कारण हो सकता है। अत ऐसा उपाय होना चाहिए जिसमे लोगो की बुद्धि ही पलट जाय। ये रामजी के साथ वन म रहना चाहते हैं। सो उन्हे घर लौटना अच्छा लगने लगे। दीन दुखियो का मन स्वस्थ नही होता। उन पर माया शीघ्र काम करती है। अत यही समय माया करने का है। देवता मानस मलिन हैं। देवराज इन्द्र महा-मलिन हैं।

कपट कुचालि सीव सुरराजू। पर अकाज प्रिय आपन काजू॥
काक समान पाकरिपु रीती। छली मलीन कतहूँ न प्रतीती॥१॥

अर्थ देवराज तो कपट और कुचाल की सीमा हैं। इन्हे दूसरे का काम बिगाडना और अपना काम बनाना प्रिय है। इन्द्र की रीति कौवे के समान है। छली हैं। मलिन हैं। इन्हे कही भी विश्वास नही है।

व्याख्या इन्द्र को केवल अपना काम प्रिय हो इतनी ही बात नही। दूसरे का काम बिगाडना भी उतना ही प्रिय है। देवता लोगो को केवल अपना काम प्रिय था। अपना काम हाते ही फूलो की वर्षा करने लगे। परन्तु इन्द्र से लागो मे इतनी भक्ति का होना न देखा गया। उनके मानसिक सद्भाव को बिगाडने पर तुल गये।

उनकी रीति कौवे की रीति सी है। जिस भाँति कौआ छली मलिन होता है उसे किसी का विश्वास नही होता। उसी भाँति इन्द्र भी छली है। मलिन हैं। दिव्य शरीर प्राप्त करने पर भी इनके हृदय का मालिन्य दूर नही हुआ। माया कर ही बैठे। इन्हे कही विश्वास नही। स्पष्ट देख रहे है कि भरतजी रामजी की आज्ञानुसार ही चलना चाहते हैं और रामजी को पिता की आज्ञा शिरोधार्य है। पर इन्द्र को इन पर भी विश्वास नही। कदाचित् लोगो के अनुरोध से ही रामजी लौट जायँ इस सन्देह के कारण उन पर माया चलाना चाहते हैं। भाव यह कि जहाँ विषय की लोलुपता है वहाँ कपट और कुचाल रहेगा ही। इन्द्रपद विषय भोग की सीमा है। अत वहा कपट कुचाल की पराकाष्ठा रहेगी ही।

प्रथम कुमत करि कपटु सकेला। सो उचाटु सबके सिर मेला॥
सुरमाया सब लोग बिमोहे। राम प्रेम अतिसय न बिछोहे॥२॥

अर्थ पहिल ही कुमन्त्रणा करके माया की रचना की थी। उसी उच्चाटन को सबके ऊपर डाल दिया। देवताओ की माया से सब लोग मोहित हो गये। रामजी के प्रेम से अत्यन्त बिरहाकुल नही हुए।

व्याख्या रचि प्रपच माया प्रवल भय भ्रम अरति उचाट। इस प्रकार जो माया पहिले सब ने मिलकर बनायी थी उसी का प्रयोग समय पाकर सबके ऊपर कर दिया। यहाँ उच्चाटन के अन्तर्गत भय भ्रम और आर्त्ति को समझ लेना चाहिए। देवताओ ने उच्चाटन का प्रयोग किया। इससे लोगो को रामजी के विरह का जितना दु ख होना था उतना नही हुआ। कर मीजहिं सिर धुनि पछिताही। जिमि बिनु पख विहग अकुलाही। ऐसी दशा नहीं हुई।

भय उचाट बस मन थिर नाही। छन वन रुचि छन सदन सोहाही॥
दुविध मनोगति प्रजा दुखारी। सरित सिंधु सगम जनु वारी॥३॥

अर्थ भय और उचाट के वश हो गये। मनमे स्थिरता नही रह गयी। क्षण मे वन मे रहने को जी चाहने लगा। दूसरे क्षण मे घर की ओर मन दौडने लगा। मन की द्विविध गति से प्रजा दु खी हो गयी जैसे नदी और समुद्र के सङ्गम मे श्रेष्ठ जल की दशा हो जाती है।

व्याख्या उच्चाटनवाली माया सबके हृदय मे काम करने लगी। ज्वारभाटा आने लगा। कभी समुद्र के पानी का वग नदी मे आ जाता है। इससे नदी मे बाढ आजाती है और कभी उसके हट जाने से स्वाभाविक अवस्था मे हो जाती है। इसी भाँति उनके हृदय म कभी रामजीका प्रेम अत्यन्त अधिक हो जाता है और कभी घर को सुधि आने से कम हो जाता है। पर सर्वथा प्रेमाभाव नही होता।

नदी की गति स्वाभाविक समुद्र की ओर जाने की है। पर समुद्र का सङ्गम होने पर उस गति म बाधा आ पडती है। समुद्र के झोके के कारण नदी का जल कभी उलट पडता है और उसकी उलटी गति हो जाती है फिर ठीक हो जाता है। फिर उलटा बहने लगता है। यह क्रम सङ्गम पर चला ही करता है। जल की एक गति नही होने पाती। यही दशा लोगो के चित्त नदी की हो गयी। मन रामसिन्धु की ओर तो अनवरत जाता ही रहता है पर बार बार घर की ओर भी लौटता है।

दुचित कतहुँ परितोषु न लहही। एक एक सन मरमु न कहही॥
लखि हियँ हँसि कह कृपानिधानू। सरिस स्वान मघवान जुवानू॥४॥

अर्थ मनकी द्विविध गति हो जाने से कही भी सन्ताप नही हो रहा है। एक दूसरे से मर्म नही कह रहे हैं। इस बात को लखकर कृपानिधान मन ही मन हँसकर कहने लगे कि स्वान जवान और मघवान इन्द्र एक से ही हैं।

व्याख्या न घर म मन ठहरता है न वन म लगता है। कही शान्ति नही पाता। मन के इस प्रकार के परिवर्तन को कोई एक दूसरे पर प्रकाशित नही करता। सङ्कोच मालूम होता है कि कही सुख समेत सम्वत दुइ साता। पल सम होहिं न जनिअहिं जाता। इत्यादि भावना थी और यहाँ दो ही दिन म घर की ओर मन दौडने लगा।

इस वात को कृपा सिन्धु रामजी ने लखा। कृपा सिन्धु हैं। यह देखकर भी अप्रसन्न नही होते। मन ही मन इन्द्र की करणी पर हँसते हैं कि व्याकरण शास्त्र मे भी श्वन् युवन् मघवन् शब्दो की एक ही गति है। यथा श्वयुवमघोनामतद्धिते। व्यवहार मे भी ऐसा ही जान पडता है। विषय लोलुपता तीनो मे समान है।

दो भरतु जनकु मुनिजन सचिव, साधु सचेत विहाइ।
लागि देवमाया सर्बाहि, तथा जोगु जनु पाइ ॥३०२॥

अर्थ भरत, जनक, मुनिगण, मन्त्री और सावधान साधुओ को छोडकर देववाओ की माया और सभी को जो जैसा था उसे वैसी ही लगी।

व्याख्या सो उचाट सबके सिर मेला। इसलिए सबको देवमाया लगी। किसी को कम किसी को अधिक। उनकी साधुता और सावधानता के तारतम्यानुसार लगी। भरतजी, जनकजी, मुनिगण, मन्त्रिगण और सावधान साधु पर देवमाया का कोई प्रभाव नही पडा। भाव यह राम भगति चितामनि सुन्दर। बसइ गरुड जाके उर अतर। तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकै कछु निज प्रभुताई।

कृपा सिंधु लखि लोग दुखारे। निज सनेह सुरपति छल भारे ॥
सभा राउ गुरु महिसुर मन्त्री। भरत भगति सब कै मति जन्त्री ॥१॥

अर्थ कृपा सिन्धु रामजी ने देखा कि लोग मेरे स्नेह और इन्द्र की प्रबल माया से दुखी हो रहे हैं और सभा, राजा, गुरुजी, ब्राह्मण और मन्त्रियो की बुद्धि को भरतजी की भक्ति ने जकड रक्खा है।

व्याख्या सरकार ने देखा कि द्विविधा मे पडे हुए लोग दुखी हो रहे हैं। इन्द्र की माया उन्हे घर की ओर खीच ले जाती है। मेरा स्नेह भी छोडते नही बनता और इधर सभा, महाराज, जनक, वसिष्ठजी, ब्राह्मण और मन्त्री समाज भरत की भक्ति के वशीभूत हो रहा है। यथा रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिलाधनी। कोई अपने काबू मे नही है।

रामहि चितवत चित्र लिखे से। सकुचत बोलत बचन सिखे से ॥
भरत प्रीति नति बिनय बडाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई ॥२॥

अर्थ रामजी को इस भाँति देख रहे है मानो चित्र मे लिखे गये हो और बोलते हुए सङ्कुचित होते है। मानो सिखायी हुई बातें बोल रहे हैं। भरत की प्रीति नम्रता विनय और बडाई सुनने मे तो सुख देनेवाली है पर उसका वर्णन कठिन है।

व्याख्या अत जिन्ह इन्द्र की माया लगी है व भी और जिन्हे नही लगी है वे भी एकटक रामजी की ओर दख रहे हैं कि देखें सरकार की क्या मर्जी होती है। सबको स्वय कुछ कहने मे सङ्कोच हो रहा है जैसे सिखी सिखायी बात कहने मे सङ्कोच होता है। जो बात मन से उठती है वह बिना कहे नही रही जाती और सिखी सिखायी बात समय पडने पर भूल जाती है।

भरतजी की प्रीति यथा अस कहि प्रेम विवस भये भारी।
भरतजी की नति यथा प्रभु पद पदुम गहे अकुलाई।
भरतजी की विनय यथा प्रभु पद पदुम पराग दोहाई।
सत्य सुकृत सुख सीम सोहाई॥
सो करि कहौं हिये अपने की।
रुचि जागत सोवत सपने की॥
भरतजी की बडाई यथा सहज सनेह स्वामि सेवकाई।
स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥

जासु विलोकि भगति लवलेसू। प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू॥
महिमा तासु कहै किमि तुलसी। भगति सुभाय सुमति हियँ हुलसी॥३॥

अर्थ जिसके भक्ति के लवलेश को देखकर मुनिगण और मिथिलेश प्रेम मे मग्न हो गये। उसकी महिमा तुलसी कैसे कहे। भक्ति के स्वभाव से सुमति तो उठी।

व्याख्या भरत सुप्रेम पयोधि। भरत जी प्रेम के समुद्र हैं। समुद्र की तरङ्ग तट पर स्थित मनुष्य को सराबोर कर देती है। पर भरत ऐसे समुद्र हैं कि इनकी भक्ति के लवलेश के दर्शन से मुनिगण और स्वय मिथिलेश जैसे ज्ञानी प्रेम मे मग्न हो जाते है। उस भक्ति की महिमा तुलसी कैसे कह सकता है। परन्तु भक्ति का स्वभाव है कि उसके कारण सुमति उठती है। सो हृदय म सुमति उठी परन्तु

आपु छोटि महिमा बडि जानी। कविकुल कानि मानि सकुचानी॥
कहि न सकत गुन रुचि अधिकाई। मति गति बाल बचन की नाई॥४॥

अर्थ अपने को छोटी और महिमा को बडी जानकर कविकुल की मर्यादा पर ध्यान देकर सङ्कुचित हो गयी। गुण कह नही सकती और रुचि अधिक है। सो वुद्धि की गति बच्चा के वचन जैसी हो गयी।

व्याख्या भक्ति के प्रभाव से सुमति तो उठी पर उसने देखा कि मैं छोटी हूँ और महिमा बडी है। मेरा वर्णन करने के लिए प्रयत्न करना कविकुल की प्रतिष्ठा को बिगाडना है। अत गुणो का वर्णन कर नही सकती और रुचि वर्णन करने की बहुत है। अत उसकी गति बालक के वचन सी हो गयी। बालक को बोलने की बडी रुचि है। पर उससे बोलते बनता नही।

दो भरत विमल जसु विमल बिधु, सुमति चकोर कुमारि।
उदित विमल जन हृदय नभ, एकटक रही निहारि॥२०३॥

अर्थ भरत का निर्मल यशरूपी चन्द्रमा जो भक्त के हृदयरूपी आकाश म उदय हुआ है उसे सुमतिरूपी चकोर की कन्या टकटकी लगाये देखती रह गयी।

व्याख्या नव विधु विमल तात जस तोरा। रघुवर किंकर कुमुद चकोरा गुरु अपमान दोष नहि दूषा। वही भरत का निर्मल यश भक्त के निर्मल हृदय रूपी

इस बात को कृपा सिन्धु रामजी ने लखा। कृपा सिन्धु हैं। यह देखकर भी अप्रसन्न नही होते। मन ही मन इन्द्र की करणी पर हँसते हैं कि व्याकरण शास्त्र मे भी श्वन् युवन् मघवन् शब्दो की एक ही गति है। यथा : श्वयुवमघोनामतद्धिते। व्यवहार मे भी ऐसा ही जान पडता है। विषय लोलुपता तीनो मे समान है।

दो. भरतु जनकु मुनिजन सचिव, साधु सचेत बिहाइ।
लागि देवमाया सबहिं, तथा जोगु जनु पाइ ॥३०२॥

अर्थ : भरत, जनक, मुनिगण, मन्त्री और सावधान साधुओ को छोडकर देववाओ की माया और सभी को जो जैसा था उसे वैसी ही लगी।

व्याख्या : सो उचाट सबके सिर मेला। इसलिए सबको देवमाया लगी। किसी को कम किसी को अधिक। उनकी साधुता और सावधानता के तारतम्यानुसार लगी। भरतजी, जनकजी, मुनिगण, मन्त्रिगण और सावधान साधु पर देवमाया का कोई प्रभाव नही पडा। भाव यह : राम भगति चिंतामनि सुन्दर। बसइ गरुड जाके उर अतर। तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकै कछु निज प्रभुताई।

कृपा सिंधु लखि लोग दुखारे। निज सनेह सुरपति छल भारे॥
सभा राउ गुरु महिसुर मंत्री। भरत भगति सब कै मति जत्री ॥१॥

अर्थ : कृपा सिन्धु रामजी ने देखा कि लोग मेरे स्नेह और इन्द्र की प्रबल माया से दु खी हो रहे हैं और सभा, राजा, गुरुजी, ब्राह्मण और मन्त्रियो की बुद्धि को भरतजी की भक्ति ने जकड रक्खा है।

व्याख्या सरकार ने देखा कि द्विविधा मे पडे हुए लोग दु खी हो रहे हैं। इन्द्र की माया उन्हे घर की ओर खीच ले जाती है। मेरा स्नेह भी छोडते नही बनता और इधर सभा, महाराज, जनक, वसिष्ठजी, ब्राह्मण और मन्त्री समाज भरत की भक्ति के वशीभूत हो रहा है। यथा : रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिलाधनी। कोई अपने काबू मे नही है।

रामहिं चितवत चित्र लिखे से। सकुचत बोलत बचन सिखे से॥
भरत प्रीति नति बिनय बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई ॥२॥

अर्थ : रामजी को इस भाँति देख रहे है मानो चित्र मे लिखे गये हो और बोलते हुए सङ्कुचित होते है। मानो सिखायी हुई बातें बोल रहे है। भरत की प्रीति नम्रता विनय और बडाई सुनने मे तो सुख देनेवाली है पर उसका वर्णन कठिन है।

व्याख्या : अत. जिन्हे इन्द्र की माया लगी है वे भी और जिन्हे नही लगी है वे भी एकटक रामजी की ओर देख रहे हैं कि देखें सरकार की क्या मर्जी होती है। सबको स्वय कुछ कहने मे सङ्कोच हो रहा है जैसे सिखी सिखायी बात कहने मे सङ्कोच होता है। जो बात मन से उठती है वह बिना कहे नही रही जाती और सिखी सिखायी बात समय पडने पर भूल जाती है।

भरतजी की प्रीति यथा अस कहि प्रेम बिबस भये भारी।
भरतजी की नति यथा प्रभु पद पदुम गहे अकुलाई।
भरतजी की विनय यथा प्रभु पद पदुम पराग दोहाई।
सत्य सुकृत सुख सीम सोहाई॥
सो करि कहौं हिये अपने की।
रुचि जागत सोवत सपने की॥
भरतजी की बडाई यथा सहज सनेह स्वामि सेवकाई।
स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥

जासु बिलोकि भगति लवलेसू। प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू॥
महिमा तासु कहै किमि तुलसी। भगति सुभाय सुमति हियँ हुलसी॥३॥

अर्थ जिसके भक्ति के लवलेश को देखकर मुनिगण और मिथिलेश प्रेम मे मग्न हो गये। उसकी महिमा तुलसी कैसे कहे। भक्ति के स्वभाव से सुमति तो उठी।

व्याख्या भरत सुप्रेम पयोधि। भरत जी प्रेम के समुद्र हैं। समुद्र की तरङ्ग तट पर स्थित मनुष्य को सराबोर कर देती है। पर भरत ऐसे समुद्र हैं कि इनकी भक्ति के लवलेश के दर्शन से मुनिगण और स्वय मिथिलेश जैसे ज्ञानी प्रेम मे मग्न हो जाते हैं। उस भक्ति की महिमा तुलसी कैसे कह सकता है। परन्तु भक्ति का स्वभाव है कि उसके कारण सुमति उठती है। सो हृदय मे सुमति उठी परन्तु

आपु छोटि महिमा बडि जानी। कबिकुल कानि मानि सकुचानी॥
कहि न सकत गुन रुचि अधिकाई। मति गति बाल बचन की नाई॥४॥

अर्थ अपने को छोटी और महिमा को बडी जानकर कविकुल की मर्यादा पर ध्यान देकर सङ्कुचित हो गयी। गुण कह नही सकती और रुचि अधिक है। सो बुद्धि की गति बच्चो के वचन जैसी हो गयी।

व्याख्या भक्ति के प्रभाव से सुमति तो उठी पर उसने देखा कि मैं छोटी हूँ और महिमा बडी है। मेरा वर्णन करने के लिए प्रयत्न करना कविकुल की प्रतिष्ठा को बिगाड़ना है। अत गुणो का वर्णन कर नही सकती और रुचि वर्णन करने की बहुत है। अत उसकी गति बालक के वचन सी हो गयी। बालक को बोलने की बडी रुचि है। पर उससे बोलते बनता नही।

दो भरत बिमल जसु बिमल बिधु, सुमति चकोर कुमारि।
उदित बिमल जन हृदय नभ, एकटक रही निहारि॥३०३॥

अर्थ भरत का निर्मल यशरूपी चन्द्रमा जो भक्त के हृदयरूपी आकाश म उदय हुआ है उसे सुमतिरूपी चकोर की कन्या टकटकी लगाये देखती रह गयी।

व्याख्या नव बिधु बिमल तात जस तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा॥ गुरु अपमान दोष नहि दूषा। वही भरत का निर्मल यश भक्त के निर्मल हृदय रूपी

आकाश मे उदित हुआ। उसे सुमतिरूपी चकोर कुमारि एकटक देखती रह गयी। कुछ कह न सकी। सुमति भक्ति के स्वभाव से अभी उत्पन्न हुई है। यथा भगति सुभाय सुमति हिय हुलसी। इसलिए चकोरी न कहकर चकोरकुमारि कहा। बोलने की कुशलता भी उसमे नही है। प्रेम भी नया है। अत वर्णन म सर्वथा असमर्थ है।

भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ। लघु मति चापलता कवि छमहू ॥
कहत सुनत सतिभाउ भरत को। सीय राम पद होइ न रत को ॥१॥

अर्थ भरत का स्वभाव वेद को भी सुगम नही है। हे कविलोग ! लघुमति की चपलता आप लोग क्ष्मा करें। भरत के सत्य भाव को कहते सुनते हुए सीतारामजी के चरणो म कौन रत नही होगा।

व्याख्या त्रैगुण्यविषया वेदा। वेद का विषय त्रैगुण्य है और भरत का सुन्दर भाव त्रैगुण्य से परे है। परमहसो को प्रिय हैं। अतएव कहते हैं न सुगम निगमहूँ। ऐसे महापुरुष के गुण वर्णन की रुचि की अधिकता यदि लघुमति तुलसीदास को हो तो उसका प्रयत्न चपलता ही है। अत कवि लोगो से गोस्वामीजी क्षमा माँगते हैं।

अब ऐसे प्रयत्न करने का कारण कहते हैं कि भरतजी के सद्भाव कथन श्रवण से उस भाव का मज्जन पान हो जाता है। यथा मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अबिबेका। अत भरत के सद्भाव मे मज्जन करने से उसे पान करने से श्रीसीताराम के चरणो म प्रीति उत्पन्न होती है। अत इस कथन का प्रयत्न भी महाफल देनेवाला है।

सुमिरत भरतहि प्रेमु राम को। जेहि न सुलभु तेहि सरिस बाम को ॥
देखि दयाल दसा सबही की। राम सुजान जानि जन जी की ॥२॥

अर्थ भरतजी को स्मरण करते हुए भी जिसे रामजी का प्रेम सुलभ न हो। उसके ऐसा वाम कौन है ? दयाल रामजी ने सबकी दशा देखी। सरकार सुजान हैं। जन के जी की बात जानते हैं।

व्याख्या सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह बिसेखे। नाम स्मरण से ही नामी म विशेप प्रेम हो जाता है। भरतजी का स्मरण करना और रामजी मे प्रम होना एक बात है। यथा तुम्ह तउ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु राम सनेहू। अत भरत के स्मरण से ही रामप्रेम की प्राप्ति होनी चाहिए। जिसे नही हुई उसके ऐसा बुरा कोई नही।

रामजी दयालु है। उन्होने सबकी दशा देखी कि सब दु खी हैं। तिस पर इन्द्र की माया का भी प्रभाव इन पर पडा है। सुजान हैं। उनकी मनोगति भी देख रहे हैं कि बिचारे द्विविधा म पडे हैं। साधु समाज ने मुनि मिथिलश की दशा देखी कि स्नेह से शिथिल हैं। भरत की दशा देखी कि प्रेम मे आकुल हो रहे है। अत

धरम धुरीन धीर नय नागर। सत्य सनेह सील सुख सागर ॥
देसु कालु लखि समउ समाजू। नीति प्रीति पालक रघुराजू ॥३॥

अर्थ : धर्म के धुरन्धर, धीर, नीति मे चतुर, सत्यस्नेह और सुख के समुद्र नीति और प्रीति के पालन करनेवाले रघुराज, देशकाल, समाज और अवसर देखकर।

व्याख्या : सरकार धर्मधुरन्धर हैं : धर्म कभी छोड़ेंगे नही। धीर हैं : नही लौटेंगे। नयनागर हैं : सभी विषमताओ का सामञ्जस्य बिठावेंगे। सत्य के सागर हैं : प्रतिज्ञा भङ्ग कभी न करेंगे। स्नेह के सागर हैं प्रेम का भङ्ग न करेंगे। शील के सागर हैं शील भङ्ग नही करेंगे और सुख सागर है : सबको सुख पहुँचावेंगे। देश काल अवसर और समाज का ध्यान रखते हुए नीति प्रीति का पालन करते हुए बोले।

बोले बचन बानि सरबसु से। हित परिनाम सुनत ससिरसु से ॥
तात भरत तुम्ह धरम धुरीना। लोक बेद बिद प्रेम प्रवीना ॥४॥

अर्थ : रामजी वाणी के सर्वस्व जैसे वचन बोले। जो परिणाम मे हित और सुनने मे अमृत सा था। हे भैया भरत ! तुम धर्म धुरीण हो। लोक और वेद को जाननेवाले हो और प्रेम मे प्रवीण हो।

व्याख्या : बिमल बिबेक धरम नयसाली। भरत भारती मजु मराली। भरत की वाणी ऐसी थी। उसके उत्तर मे रामजी का वचन मानो वाणी का सर्वस्व था। क्योंकि : हित मनोहारि च दुर्लभ वच और सरकार के वचन परिणाम मे हित और सुनने मे अमृत से मनोहारी था।

भरतजी ने कहा था : प्रभु पितु बचन मोह वस पेली। आयेउँ इहाँ समाज सकेली। मैंने सरकारी आज्ञा भङ्ग किया। मैं अपराधी हूँ। इस पर सरकार कहते हैं कि तुम धर्मधुरीण हो। जो तुमने किया वही धर्म है। लोक और वेद के जाननेवाले के लिए ऐसा ही करना प्राप्त था। ऐसा ही करने से प्रेम का निर्वाह होता है। तुम्हारे आचरण का कही जोड नही है।

दो. करम बचनु मानस बिमल, तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुरु समाज लघु बंधु गुन, कुसमय किमि कहि जात ॥३०४॥

अर्थ : हे तात ! कर्म वचन और मन की निर्मलता मे तुम तुम ही जैसे हो। बडो के समाज मे छोटे भाई का गुण इस कुसमय मे कैसे कहा जा सकता है।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि तुमने जो कहा है : मोहि समान मैं साइँ दोहाई। सो ठीक है। सचमुच तुम्हारा जोड नही। परन्तु अवगुणो मे नही गुणो मे। तुम्हारे ऐसा : कर्म वचन मानस बिमल। कहाँ खोजने से मिलेगा। यह समय तुम्हारे गुणो के कथन के अनुकूल नही है। क्योंकि उसका अर्थ दूसरा लग जायगा

और बडो के समाज मे छोटे भाई के गुणो का वर्णन भी उचित नही है। तुम अपने को सापराध मत मानो। तुम्हारे गुणो पर मैं मुग्ध हूँ।

जानहु तात तरनि कुल रीति। सत्यसध पितु कीरति प्रीती ॥
समउ समाजु लाज गुरुजन की। उदासीन हित अनहित मन की ॥१॥

अर्थ हे तात! सूर्यकुल की रीति जानते हो कि सत्यसन्ध होते हैं और पिता की कीर्ति पर प्रीति होती है। समय समाज बडो की लज्जा और उदासीन मित्र और शत्रु के मन को भी जानते हो।

व्याख्या सरकार कहते हैं कि हे तात! तुम सूर्यकुल की रीति जानते हो रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहु बरु बचनु न जाई। अज, दिलीप, रघु आदि जितने महाराज इस कुल में हुए हैं सभी सत्यसन्ध हुए है। सभी पिता की कीर्ति के बढानेवाले हुए। अत सत्य का अनादर नही होना चाहिए और पिता की कीर्ति न बिगडनी चाहिए। तुम समय को भी जान रहे हो कि कैसा कठिन समय उपस्थित है कि सब व्यवस्था ही डाँवाडोल हो रही है। समाज की भी दशा जान रहे हो कि सब अपने को अनाथ मान रहे हैं। गुरुजन की लज्जा को भी तुम जान रहे हो कि ये कैसे सङ्कोच मे पडे है कि सामञ्जस्य बिठाना भी चाहते हैं फिर भी स्वय कुछ नही कह रहे हैं। हमी दोनो भाइयो को आपस मे निर्णय करने के लिए कह रहे हैं। राजाओ के कितने शत्रु मित्र होते हैं। कितने उदासीन होते हैं। उनका पता लगाना कठिन होता है। परन्तु तुम राजकाज से भली भाँति परिचित हो। तुम सबको जानते हो। इतना ही नही उनके मन मे क्या है यह भी तुम्हे अविदित नही है।

तुमहि बिदित सबही कर करमू। आपन मोर परम हित धरमू ॥
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा। तदपि कहउँ अवसर अनुसारा ॥२॥

अर्थ तुम सबके कर्मो को भी जानते हो। अपने और मेरे परमहित और धर्म को भी जानते हो। मुझे सब तरह से तुम्हारा भरोसा है। फिर भी अवसर के अनुसार कहता हूँ।

व्याख्या शत्रु मित्र और उदासीनो ने कब कब क्या क्या किया है। सो भी तुम जानते हो अर्थात् राज्य के मर्मो के जानकार हो। मेरा परमहित कैसे होगा। मेरा धर्म क्या है। तथा स्वय तुम्हारा परमहित कैसे होगा तथा स्वय तुम्हारा धम क्या है। उसे भी जानते हो। भावार्थ यह कि शासकोचित सभी बातें तुम मे मौजूद हैं। अत मुझे तुम्हारा भरोसा सब प्रकार से है। फिर भी अवसर ऐसा प्राप्त है कि मुझे मुख से कहना ही पड रहा है।

तात तात बिनु बात हमारी। केवल गुरकुल कृपा सँभारी ॥
नतरु प्रजा परिजन परिवारू। हमहि सहित सबु होत खुआरू ॥३॥

अर्थ • हे तात ! पिताजी के बिना हमारी बात को केवल कुलगुरु की कृपा ने सँभाल लिया। नही तो प्रजा नगरवासी कुटुम्बी सभी हमारे साथ बडे दु ख को प्राप्त होते।

व्याख्या हम लोगो की बात तो बिगड ही चुकी थी। चक्रवर्तीजी का देहान्त हुआ और वहाँ हम चारो भाइयो मे से कोई नही। ऐसे ही समय मे शत्रुओ की बन पडती है। सो कुलगुरु ने चक्रवर्तीजी के देहावसान के समाचार को नगर की सीमा के बाहर जाने नही दिया। महाराज के शव को तेलभरी नाव मे रक्खा। तुम्हे बुलाने के लिए दूत कैकय देश मे भेजा। मुझे बुलाने के लिए यहाँ कोई नही आया। यदि कोई आता तो मुझे अपनी प्रतिज्ञा छोडकर पिता की क्रिया करने के लिए अयोध्या जाना ही पडता। सम्भव था कि मैं उस चोट को न सह सकता। तो और भी अनर्थ होता। तुम्हे भी गुरुजी ने पिताजी के मरण और मेरे वनवास का समाचार नही भेजा। केवल इतना ही कहलाया कि गुरुजी ने बुलाया है। ठीक समाचार मिलने से तुम्हारी वहाँ क्या दशा होती कौन कह सकता है। गुरुजी की उपस्थिति मे समाचार मिलने पर चोट हम लोगो को लगी। उसे गुरुजी ने अपने विज्ञान के प्रकाश से सँभाल लिया। इसी भाँति माताओ को भी गुरुजी ने सँभाला। प्रजा परिवार का सरक्षण भी राजा के अभाव मे गुरुजी ने ही किया। यदि गुरुजी ने यह सब न किया होता तो हम लोग सभी प्रजा परिवार के सहित नष्ट भ्रष्ट हो जाते।

जौं बिनु अवसर अथव दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू॥
तस उतपातु तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा॥४॥

अर्थ यदि बेसमय ही सूर्य अस्त हो जायँ तो कहो ससार मे किसे कष्ट न होगा। ऐसा उत्पात हे तात ! ब्रह्मदेव ने किया। पर मुनिजी तथा मिथिलाधिपति ने सबको बँचा लिया।

व्याख्या रामजी भी विधि को ही उत्पात का कारण बतला रहे हैं। यह उत्पात इतना प्रबल था कि जैसे बेसमय सूर्य का अस्त होना। बेसमय मे सूर्य का अस्त होना विधि के किये ही हो सकता है। दूसरे को ऐसा सामर्थ्य ही नही है। ऐसा होने पर ससार मे उथल पुथल मच जाना स्वाभाविक है। समय पर अस्त होना तो स्वाभाविक नियम ही है। चक्रवर्तीजी का प्रियविरह मे शरीरत्याग अनवसर का सूर्यास्त था। उस समय सब सँभालना गुरुजी का ही काम था। गुरुजी जिस भाँति सदा से विधिगति को रोकते आये हैं वैसे ही इस बार भी रोका। महाराज के देहावसान का पता लगने के बाद जनकजी ने भी रक्षा का प्रयत्न किया। स्वय रक्षा के लिए सन्नद्ध होकर दूतो के द्वारा समाचार लेते रहे। इसलिए जनकजी का भी नाम पीछे से रक्षा के कार्य मे जोड दिया।

दो. राज काज सब लाज पति, धरम धरनि धन धाम।
गुर प्रभाव पालिहि सबहि, भल होइहि परिनाम॥३०५॥

अर्थ : सब राजकार्य, लज्जा, प्रतिष्ठा, धर्म, धरणी, धन और धाम का पालन गुरुजी की कृपा करेगी और परिणाम अच्छा होगा।

व्याख्या : मोहि राज हठि दै हौ जबही। रसा रसातल जाइहि तबही। आदि बातें जो तुम्हारे मनमे भरी हैं : उन्हे छोडो। राजकार्य लज्जा प्रतिष्ठा धर्म धरणी आदि का पालन गुरु के प्रसाद से होता रहेगा। मुझे या तुम्हे तो निमित्त मात्र होना है। भावार्थ यह कि गुरुजी की आज्ञा मानते हुए चले चलना मात्र हम लोगो का काम है। परिणाम की चिन्ता कदापि नही करनी चाहिए। गुरु की आज्ञा पालन रूप मे जो कुछ होगा उसका परिणाम बुरा हो नही सकता।

सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुरु प्रसाद रखवारा ॥
मातु पिता गुर स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू ॥१॥

अर्थ : समाज के सहित तुम्हारा और हमारा रक्षक घर और वन मे गुरुजी की कृपा है। माता पिता गुरु और स्वामी की आज्ञा सम्पूर्ण धर्मरूपी धरणी के लिए शेष रूप है।

व्याख्या भाव यह कि ' राज काज सब लाजपति धरम धरनि धन धाम का रक्षक तो गुरुजी का प्रभाव है और हमारा तुम्हारा रक्षक उनका प्रसाद है। प्रभाव प्रभुता को कहते हैं और प्रसाद कृपा को कहते हैं। गुरुजो बैठे रहेगे . उनके प्रभाव से राजकार्य आदि ठीक चलता रहेगा और उनकी कृपा से मेरी रक्षा वन मे होती रहेगी और घर मे तुम्हारी रक्षा होती रहेगी।

क्योकि माता पिता गुरु और स्वामी की आज्ञा पर ही सब धर्म उसी भाँति टिके हुए हैं जैसे पृथ्वी शेषजी पर टिकी है। सम्पूर्ण धर्मो के सँभालने की शक्ति केवल माता पिता गुरु और स्वामी की आज्ञा पालन मे है दूसरे मे नही। सम्पूर्ण धर्म का विचार करके पृथक् पृथक् पालन मे कौन समर्थ है ? माता पिता आदि की आज्ञा पालन से ही सब धर्मो का पालन आप से आप हो जाता है।

सो तुम करहु करावहु मोहू। तात तरनि कुल पालक होहू ॥
साधक एक सकल सिधि देनी। कीरति सुगति भूतिमय वेनी ॥२॥

अर्थ · उसे तुम भी करो और मुझ से भी कराओ। हे तात ! सूर्यकुल के पालक बनो। साधक के लिए यह सब सिद्धिया की देनेवाली कीर्त्ति सुगति और भूतिमय त्रिवेणी एक ही है।

व्याख्या : भाव यह कि यदि तुम मुझ से पिता के वचन का पालन न कराओगे तो मै न कर सकूँगा। मै तो कह चुका हूँ : मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु। अत पिता की आज्ञा का पालन तुम भी करो और मुझ से भी कराओ। इस भाँति सूर्यकुल की रक्षा करो। नही तो सूर्यकुल की सत्यसन्ध पितु कीरति प्रीतीवाली रीति मिट जायगी।

कामनाओ के पूर्ण करनेवाली त्रिवेणी मे जिस भाँति गङ्गा यमुना और

सरस्वती का सङ्गम है उसी भाँति पिता की आज्ञापालनरूपी त्रिवेणी में कीर्ति सुगति और भूति तीनो का सङ्गम है और यह साधना सकल सिद्धियों को देनेवाली है।

सो बिचारि सहि संकटु भारी। करहु प्रजा परिवारु सुखारी ॥
बाँटी बिपति सबहि मोहि भाई। तुमहि अवधि भरि बड़ि कठिनाई ॥३॥

अर्थ : यह विचारकर भारी सङ्कट सहकर तुम प्रजा और परिवार को सुखी करो। हे भाई ! मुझ पर विपत्ति आयी। उसे सबने बाँट ली। फिर तुम्हे तो चौदह वर्ष की अवधि तक बहुत कष्ट है।

व्याख्या : ऐसा विचार करके हमारे वन जाने के सङ्कट को सहो। मैं जानता हूँ कि मेरे वन जाने को तुम पिता के मरण से भी बड़ा सङ्कट मानते हो : इसलिए संकटु कहते हैं। उसे तुम सहो और प्रजा परिवार को सुखी करो। तुम्हारे लिए राज्य सङ्कट है। फिर भी प्रजा परिवारके सुख के लिए इस सङ्कट को सहो।

विपत्ति बँटानेवाला वही है जो उस विपत्ति में दु खी हो और स्वयं साथ में दुःख भोगे। यथा : बिपति बँटावनिहार बंधु बिनु करौं भरोसो का को। सो मेरी विपत्ति को सबने बाँट लिया। यथा : राम दरस हित नेम ब्रत लगे करन नर नारि। मनहु कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि। सो मै तुम्हे विपत्ति बाँटने को कहता हूँ राज करने के लिए नही कहता।

जानि तुम्हहि मृदु कहउँ कठोरा। कुसमय तात न अनुचित मोरा ॥
होहिं कुठायँ सुबंधु सहायें। ओड़िअहिं हाथ असनिहु के घायें ॥४॥

अर्थ : तुम्हे कोमल जानकर भी मै कठोर कह रहा हूँ। यह समय ही ऐसा कठिन है। मेरा अनुचित नही है। ऐसे बुरे समय पर अच्छे भाई ही सहायक होते हैं, वज्र की चोट को भी हाथ से ही रोका जाता है।

व्याख्या : तुम्हारे ऐसे कोमल स्वभाव के पुरुष से यह कहना कि तुम भारी सङ्कट सह जाओ कठोरता है। पर समय ही ऐसा उपस्थित है कि मैं लाचार होकर कह रहा हूँ। इसलिए मेरा कहना भी अनुचित नही है। वज्र की चोट ऊपर आयी तो सिवा हाथ के और कौन आड़े आवेगा। यही भारी विपत्ति ऊपर आयी तो सिवा भाई के और किसे आगे करें। राज्य विपत्ति है : इसे तुम जानते हो। मैं जानता हूँ। ससार नही जानता। उसे चौदह वर्ष सँभाल दो। उसके बाद मैं आकर सँभाल लूँगा। राज्ये गृध्नन्त्यविद्वासो ममत्वाहृतचेतसः। अहंमानमहामानमदमत्ता न मादृशाः। मूढ़ लोग जिनके चित्त को अहन्ता ममता ने ग्रस लिया है राज्य चाहते हैं। मेरे ऐसे लोग नही चाहते। वि ७.१.७।

दो. सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिब होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि, सुकबि सराहहिं सोइ ॥३०६॥

अर्थ सेवक तो हाथ पैर और आँख सा होता है और मालिक मुख की भाँति होता है। तुलसीदास कहते है कि इस तरह की प्रीति की रीति सुनकर सुकवि उसकी बडाई करते हैं।

व्याख्या परस्पर भावयन्त श्रेय परमवाप्स्यथ। सेवक और स्वामी दोनो राज्य मे परस्परोपकारक हैं। भाव यह है कि तुम प्रसाद चाहते हो। यथा : सो प्रसाद जन पावइ देवा। सो यही नियम है कि कर पद नयन सेवक हैं। खाद्य लाकर मुख को अर्पण करते है और फिर उसी के रस को प्रसाद रूप से ग्रहण करते हैं। इस भाँति सरकार ने भरत के राज्य अर्पण को स्वीकार किया और पुन प्रसाद रूप से भरत को सुपुर्द करते हैं। यही प्रीति की रीति है और इसी की सुकवि प्रशसा करते हैं। निर्गलितार्थ यह कि मुझे राज्य स्वीकार है। अब तुम उसके सेवक की भाँति चलाओ।

सभा सकल सुनि रघुबर बानी। प्रेम पयोधि अमिअ जनु सानी॥
सिथिल समाजु सनेह समाधी। देखि दसा चुप सारद साधी॥१॥

अर्थ सारी सभा ने रामजी की वाणी सुनी। जो प्रेम के समुद्र के समान अमृत से सनी थी। सारा समाज स्नेह की समाधि मे शिथिल हो गया। यह दशा देखकर सरस्वती मौन हो गयी।

व्याख्या रामजी की वाणी मे से प्रेम का समुद्र उमड पडता था। उसका जल लवण समुद्र के जल की भाँति खारा न था। अमृत के समान मीठा था। जैसे परिचित समुद्र का जल लवण से सना होता है उसी भाँति प्रेम समुद्र मानो अमृत से सना हुआ था।

सभी सभासद् भरतजी के वचन से स्नेह मे शिथिल हो रहे थे। रामजी की वाणी सुनते ही उनको प्रेम समाधि लग गयी। गोरक्ष सहिता के मत से प्रेम समाधि भी समाधि का एक भेद है। सो सब के सब प्रेम समाधि मे मग्न हो गये। उन लोगो की यह दशा देखकर समाधि भङ्ग के भय से सरस्वती भी चुप हो गयी। नही तो स्वभावत वे तो मुखर हैं। यथा गिरा मुखर तन अर्ध भवानी। भाव यह कि सब चुप है। किसी के मुख से बात नही निकलती। सन्नाटा छा गया।

भरतहि भयउ परम सतोषू। सनमुख स्वामि बिमुख दुखु दोषू॥
मुखु प्रसन्न मन मिटा बिषादू। भा जनु गूँगेहि गिरा प्रसादू॥२॥

अर्थ भरतजी को परम सन्तोष हुआ कि स्वामी अनुकूल है और दोष दु ख हट गया। भरतजी का मुखमण्डल प्रसन्न हो गया। मन से विषाद मिट गया। जैसे गूँगे पर सरस्वती की कृपा हो गयी हो।

व्याख्या सन्तोष तो सभा मात्र को हुआ। पर भरतजी को परम सन्तोष हुआ। कारण कहते हैं कि स्वामी हमारे अनुकूल है और दोष तथा उसका कार्य दु ख दूर हो गया। सरकार ने राज्य स्वीकार कर लिया। कर पद नयन की भाति

काम करने के लिए आज्ञा हुई। अब मेरा शासन करना भी राज करना नहीं हैं। विपत्ति बटाना है। रामजी की सेवा करना है।

भरतजी का विषण्ण मुख प्रसन्न हो गया। ग्रामवासियों तक ने कहा था : मुख प्रसन्न नहिं मानस खेदा। मानस खेद भी दूर हो गया। जनकजी से कहा था : मौन मलिन मैं बोलब बाउर। सो मानो गूँगे पर सरस्वती की कृपा हो गयी। वह बोलने भी लगा और उसे सब शास्त्र भी फुरने लगा। ऐसी प्रसन्नता भरतजी को हुई।

कीन्ह सप्रेम प्रनामु बहोरी। बोले पानि पंकरुह जोरी॥
नाथ भयेउ सुखु साथ गए को। लहेउँ लाहु जग जनमु भए को॥३॥

अर्थ : फिर प्रेम के साथ प्रणाम किया और करकमल जोड़कर बोले। हे नाथ ! *साथ जाने का सुख मुझे मिल गया। संसार में जन्म लेने का लाभ मिल गया।*

व्याख्या : सप्रेम : से मनसा। बोले : से वाचा और : पानि पंकरुह जोरी : से कर्मणा प्रेम कहा। अब यह प्रणाम *कृतकृत्य होने का है अथवा पुनः कुछ कहना* चाहते हैं। अतः प्रणाम करते हैं। हाथ जोड़कर बोलने का भाव यह कि दसों नह जोड़कर मैं सेवा के लिए प्रस्तुत हूँ।

भरतजी कहते हैं कि मुझे बड़ी अभिलाषा थी कि मैं लक्ष्मण की भाँति साथ वन में जाता और सेवा करता। इसलिए मैंने कहा था : नतरु फेरिअहि बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ। क्योंकि सरकार की सेवा में ही जीवन जन्म का लाभ है। यथा : जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि रामचरन चित लावा। सो लाभ मुझे मिल गया। सरकार के साथ वन में जाने से सेवा करने से जो सुख मिलता वही सुख मुझे अयोध्या में रहकर सरकारी सेवा करने से मिलेगा। भावार्थ यह कि भरतजी ने रामजी का वनवास और अपना अवधवास स्वीकार कर लिया।

अब कृपाल जस आयसु होई। करउँ सीस धरि सादर सोई॥
सो अवलंब देउ मोहि देई। अवधि पार पावउँ जेहि सेई॥४॥

अर्थ : हे कृपालु ! अब आपकी जैसी आज्ञा हो वही सिर धरकर आदर के साथ करूँ। आप मुझे वह अवलम्ब दीजिये। जिसकी सेवा करके अवधि का पार पा जाऊँ।

व्याख्या : बात सब ठीक हो गयी। फिर भी भरतजी स्पष्ट आज्ञा के लिए विनय करते हैं। भाव यह : प्रभु पितु बचन मोह बस पेली। आयेउँ इहाँ समाज सकेली। सो बात अब नहीं होगी। अब जो आज्ञा होगी उसे शिरोधार्य करके आदर के साथ पालन करूँगा।

चरण की सेवा साक्षात् रूप से नहीं कर सकता तो ऐसा आधार तो [illegible] चाहिए। जिसे चरणों का प्रतीक मानकर सेवा करता हुआ अवधि का [illegible] सकूँ। बिना अवलम्ब चौदह वर्ष काटे नहीं कटेगा।

दो. देव देव अभिषेक हित, गुर अनुसासनु पाइ।
आनेउँ सब तीरथ सलिल, तेहि कहँ काह रजाइ ॥३०७॥

अर्थ : हे राजन्! आपके अभिषेक के लिए सब तीर्थों का जल गुरुजी की आज्ञा पाकर लाया हूँ। उसके लिए क्या आज्ञा होती है।

व्याख्या : अभिषेक मे सब तीर्थों के जल की आवश्यकता पड़ती है। सो गुरुजी की आज्ञानुसार चक्रवर्तीजी ने मँगवाया था। यथा : आनहु सकल सुतीरथ पानी। उस जल को गुरुजी की आज्ञा से ही साथ लाया हूँ। अन्य सामग्री तो टिकाऊ हैं। पर जल तो चौदह वर्ष नही रह सकता। सब तीर्थों का जल होने से अद्भुत वस्तु हो गयी। आपके ही अभिषेक के लिए प्रस्तुत किया गया है। अतः अब आप जैसी आज्ञा दें वैसा किया जाय।

एकु मनोरथु बड़ मन माही। सभय सकोच जात कहि नाही ॥
कहहु तात प्रभु आयेसु पाई। बोले बानि सनेह सुहाई ॥१॥

अर्थ : एक बड़ी लालसा मन मे है। परन्तु भय और सङ्कोच के कारण कहते नही बनता। प्रभु की आज्ञा हुई कि हे भाई! कहो। तब सुन्दर स्नेहमय वाणी बोले।

व्याख्या : पहिले कह चुके हैं : राम सैल सोभा निरखि भरत हृदय अति प्रेम। सो अति प्रेम होने से उसके देखने की बड़ी लालसा है। सब लोगो ने घूम घूमकर देखा। यथा : विहरहिं वन चहुँ ओर प्रति दिन प्रमुदित लोग सब। जल ज्यों दादुर मोर भये पीन पावस प्रथम। परन्तु भरतजी सोच मे ही पड़े रहे : निसि न नीद नहिं भूख दिन भरत विकल सुठि सोच। नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सकोच। इन्होने घूमकर नही देखा। अब सोच के दूर होने पर वह लालसा जाग पडी। अतः कहते हैं कि मन मे बड़ी लालसा है।

बड़ो के सामने सैर सपाटा की लालसा प्रकट करने मे सङ्कोच होना स्वाभाविक है। यथा : लखन हृदय लालसा बिसेखी। जाइ जनकपुर आइअ देखी। प्रभु भय बहुरि मुनिहि सकुचाही। प्रगट न कहहिं मनहि मुसुकाही। यहाँ उसी भाँति भरतजी को भी कहने मे भय और सङ्कोच होता है। परन्तु लालसा के अधिक होने से कहना ही पडा।

चित्रकूट सुचि थल तीरथ बन। खग मृग सर सरि निर्झर गिरिगन ॥
प्रभु पद अंकित अवनि बिसेखी। आयसु होइ त आवउँ देखी ॥२॥

अर्थ : यदि आज्ञा हो तो चित्रकूट के पवित्र स्थल, तीर्थ, वन, पक्षी, मृग, नदी तालाब झरने, पर्वत और विशेष करके सरकार के चरण चिह्न से अङ्कित भूमि को देख आऊँ।

व्याख्या : चित्रकूट मे प्रवेश करते समय भरतजी ने वहाँ की शोभा देखी

तो उस वन के भली भाँति देखने की लालसा उसी समय हुई। परन्तु वह समय पर्यटन के लिए उपयुक्त नहीं था। उसी लालसा को ही प्रकट करते हुए उस हृदय का वर्णन करते हुए कवि ने कहा . भरत दीख बन सैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू''"राम वास वन सपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा ''बन प्रदेस मुनि वास घनेरे ''विपुल बिचित्र विहंग मृग नाना। प्रजा समाज न जाइ बखाना'' झरना झरहि मत्त गज गाजहि इत्यादि। उस पर भी वह भूमि प्रभुपद अंकित होने से बड़ी सौभाग्यवती हो गयी है। यथा · हरखहि निरखि राम पद अंका। जनु मेटी सपति अति रंका। अत· इन वस्तुओ के देखने की आज्ञा चाहते हैं।

अवसि अत्रि आयसु सिर धरहू। तात बिगत भय कानन चरहू ॥
मुनि प्रसाद वनु मगल दाता। पावन परम सुहावन भ्राता ॥३॥

अर्थ : हे तात ! अवश्य अत्रिजी की आज्ञा को शिरोधार्य करो। हे भाई ! निर्भय होकर वन मे विचरो। मुनिजी की कृपा से यह वन मङ्गलदाता पावन और परम सुहावना है।

व्याख्या . यहाँ के मुख्य ऋषि अत्रिजी हैं। यथा : अत्रि आदि मुनिवर जहँ वसही। करहि जोग जप तप तन कसही। सो जो विधि से बतलावें उसी विधि और क्रम से यात्रा करो। फिर वन के विचरने मे कोई भय नहीं है। किसी तपस्वी या मुनि को उद्वेग न होगा। इस वन में जो पवित्रता, शोभा और माङ्गल्य जो देख रहे हो वह मुनिजी के प्रसाद से है। यहाँ की प्रधान नदी मन्दाकिनी भी उन्ही की धर्मपत्नी भगवती अनुसूया की लायी हुई हैं।

रिषिनायकु जहँ आयसु देही। राखेहु तीरथ जलु थल तेही ॥
सुनि प्रभु वचन भरत सुखु पावा। मुनि पद कमल मुदित सिरु नावा ॥४॥

अर्थ · ऋषियो के राजा अत्रिजी की जहाँ के लिए आज्ञा हो वहाँ तीर्थ के जल को रखना। प्रभु का वचन सुनकर भरतजी को सुख हुआ और प्रसन्न होकर मुनिजी के चरणो मे सिर नवाया।

व्याख्या : भरतजी ने पहिले पूछा था : आनेउँ सब तीरथ सलिल तेहि कहँ कहा रजाइ। उसके उत्तर मे रामजी कहते हैं कि यहाँ अत्रिजी का शासन है। उन्ही से पूछो कि जल कहाँ रक्खा जाय। जहाँ बतलावें वही रख देना। रख देना कहने का भाव यह है कि वे ही जानते हैं कि कहाँ रख देने से वह जल सदा बना रहेगा।

लालसा पूर्ति के अनुकूल आज्ञा पाने से भरतजी को सुख हुआ। मुनिजी भी उस सभा मे आसीन थे और सब सुन रहे थे। भरतजी ने जाकर उनके चरणो मे प्रसन्न होकर प्रणाम किया। भाव यह कि अब जैसी आज्ञा आपकी हो वैसा करूँ। सरकार जो कुछ करते है ऋषियो की आज्ञा लेकर करते हैं। वैसी ही आज्ञा भी भरतजी को दी।

दो. भरत राम संवाद सुनि, सकल सुमंगल मूल।
सुर स्वारथी सराहि कुल, बरषत सुरतरु फूल ॥३०८॥

अर्थ : भरत और रामजी के सकल सुमङ्गल मूल सम्वाद को सुनकर स्वार्थी देवता लोग कुल की प्रशंसा करते हुए हर्षित होकर कल्पवृक्ष के फूल बरसाने लगे।

व्याख्या : भरतजी और रामजी का सम्वाद सभी मङ्गलों का मूल है : कीरति सुगति भूति मय बेनी। इसी में सारे संसार के सुमङ्गल का बीज निहित है। इसलिए इसे सुमङ्गल मूल कहते है। इसे सुनकर देवता लोग हर्षित होकर कल्पवृक्ष के फूल बरसाने लगे। पहिले फूल बरसे थे। उस समय मलिन मन से बरसे थे। अब हर्षित होकर वर्षा कर रहे हैं। क्योंकि निश्चय हो गया कि रामजी अयोध्या न लौटेंगे और सूर्यकुल की प्रशंसा करते हैं। स्तुति करते हैं कि इस कुल में सभी धर्मात्मा हैं। स्वार्थी केवल अपना स्वार्थ देखते हैं। संसार का भला बुरा नहीं देखते। देवता लोग अपना काम बिगड़ते देखकर जिन रघुवंशियों पर : रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाट फेंका था इस समय अपना काम बनते देखकर उन्ही पर कल्पवृक्ष का फूल बरसा रहे हैं।

धन्य भरत जय राम गोसाईं। कहत देव हरषत बरिआईं॥
मुनि मिथिलेस सभाँ सब काहू। भरत बचन सुनि भयेउ उछाहू ॥१॥

अर्थ : भरत धन्य हैं। राम गोसाईं का उत्कर्ष है। ऐसा देवता कहते है और जबरदस्ती प्रसन्न होते हैं। मुनिजी को मिथिलेश को और सभी सभासद् को भरत के वचन को सुनकर उत्साह हुआ।

व्याख्या : देवता लोग कहते है कि भरत पुण्यात्मा है। अपने कष्ट का ख्याल न किया। संसार के मङ्गल पर ध्यान दिया। इसलिए धन्य हैं। सुकृती पुण्यवान् धन्यः। और स्वामी रामजी का उत्कर्ष है कि जैसा हम लोगों को भरोसा दिया था वैसा ही किया। सबका मन भी रख दिया। धर्म सम्बन्धी असामञ्जस्य भी मिटा दिया। इसलिए उनकी जय जयकार है। देवताओं का कार्य अग्रसर हुआ। इसलिए प्रसन्नता प्रकाश करते हैं। परन्तु उन्हें सच्ची प्रसन्नता नहीं हुई। उनकी प्रसन्नता पूरी तो तब होती जब उनकी माया द्वारा कार्य होता। सो उनकी माया द्वारा तो कोई कार्य हुआ नही। वह तो रामजी, भरतजी, जनकजी, तथा सावधान साधुओं पर काम ही न कर सकी। जो कुछ हुआ सो रामजी की और भरतजी की सज्जनता के कारण हुआ। किसी तरह कार्य तो हो गया। इसलिए मन में व्यर्थ माया के प्रयोग करने की लज्जा भी है। अतः प्रसन्नता सच्ची नहीं है।

सबको भरत का स्नेह देखकर भय था कि यदि रामजी न लौटे तो इनकी क्या दशा होगी। पर जब उनका वचन सुना : नाथ भयउ सुख साथ गए को। लहेउँ लाहु जग जनम भए को। तो मुनिजी, जनकजी तथा सभी सभासदों को उछाह हुआ।

भरत राम गुन ग्राम सनेहू । पुलकि प्रसंसत राउ बिदेहू ॥
सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन । नेमु पेमु अतिपावन पावन ॥२॥

अर्थ : विदेह राजा पुलकित होकर भरत और रामजी के गुणगण तथा स्नेह की प्रशंसा करने लगे। सेवक और स्वामी दोनो का स्वभाव सुहावना है। उनका नियम और प्रेम अत्यन्त पवित्र को भी पवित्र करनेवाला है।

व्याख्या : देहाध्यास रहित राजा जनक को भी भरत और रामजी के गुणो और प्रेम को देखकर आनन्द से पुलक हो गया। प्रशसा करने लगे कि दोनो भाइयो मे कैसा स्नेह है। जो देखने मे नही आता और कैसे अद्भुत गुण हैं। जिनके कारण बडा भारी असामञ्जस्य दूर हुआ। जिसे देखकर मेरे मन मे यह बात उठ गयी : आये इहाँ कीन्ह भल नाही।

गुणग्राम। यथा : सेवक स्वामि सुभाव सोहावन। स्नेह। यथा : नेम प्रेम अतिपावन पावन। जो पावन होता है वह सोहावन नही होता और जो सोहावन होता है वह पावन नही होता। पर यहाँ तो दोनो भाइयो के स्वभाव नेम और प्रेम मे सुन्दरता और पावनता भरी है। ज्ञान अतिपावन है। यथा : नहि ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते। परन्तु इनका नेम उसको भी पवित्र करनेवाला है। यथा : भक्तार्थं कल्पित द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्।

मति अनुसार सराहन लागे । सचिव सभासद सब अनुरागे ॥
सुनि सुनि राम भरत सम्बादू । दुहु समाज हियँ हरषु बिषादू ॥३॥

अर्थ : मन्त्री और सभासद सब अनुराग से अपनी बुद्धि के अनुसार प्रशसा करने लगे। रामजी और भरतजी के सम्वाद को सुन सुनकर दोनो समाज के हृदय मे हर्ष और विषाद दोनो हुआ।

व्याख्या : सबकी समाधि भङ्ग हो गयी। सरस्वती खुल गयी। मन्त्री और सभासद सभी अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार प्रशसा करने लगे। पूरी प्रशसा तो हो नही सकती। फिर भी अनुराग ऐसा है कि बिना प्रशसा किये रहा नही जाता।

सबका तो सभा मे प्रवेश सम्भव नही था। अत सभा मे जो जो हुआ सो सब कर्ण परम्परा से सब लोगो को मालूम हुआ। पता लगने पर सबको हर्ष भी हुआ और विषाद भी हुआ। रामजी के राज्य स्वीकार से हर्ष हुआ और चौदह वर्ष का विछोह तो सहना पडेगा इस बात का विषाद भी हुआ। सभी के मन मे यह शङ्का थी कि चौदह वर्ष के बाद भी रामजी राज्य स्वीकार नही करेंगे।

राममातु दुखु सुखु सम जानी । कहि गुन राम प्रबोधी रानी ॥
एक कहहिं रघुबीर बडाई । एक सराहत भरत भलाई ॥४॥

अर्थ : रामजी की माता ने दुःख सुख को समान जानकर रामजी के गुणो

का वर्णन करके रानियो को समझाया। एक रामजी की बडाई करने लगी। एक भरत की सज्जनता की प्रशंसा करने लगी।

व्याख्या समदु खसुख धीरम्। दु ख सुख को समान देखना ही पण्डिताई है। रामजी की माता हैं। कारण के गुण कार्य मे रहते है। माता समदु खसुख धीर हैं। इसलिए रामजी भी वैसे ही हैं। अत कौसल्या माता ने सुख दु ख सम जानकर और रानियो को जो विषाद कर रही थी समझाया कि रामजी ता साधु हैं। उन्हे सुख दु ख बराबर है। राम वैराग्यवान् हैं राम धर्मात्मा हैं। इनका वनवास मे कोई अनिष्ट नही हो सकता इत्यादि।

रानियो मे कोई रामजी की बडाई करती है कि रामजी कैसे सत्यप्रतिज्ञ हैं। कैसे धर्मात्मा हैं। कैसे शीलवान् हैं। इसी भाँति कोई कैसे साधु हैं कैसे आज्ञाकारी हैं। कैसे प्रेमी हैं इत्यादि भरत की सज्जनता कह रही हैं।

दो अत्रि कहेउ तब भरत सन, सैल समीप सुकूप।
राखिअ तीरथ तोय तहँ, पावन अमिअ अनूप ॥३०९॥

अर्थ अत्रिजी ने भरतजी से तब कहा कि इस पर्वत के सन्निकट एक कूआँ है। यह पवित्र अमृत रूप अनुपम है। तीर्थ जल वही रखिये।

व्याख्या सरकार ने भरतजी स कहा था कि अत्रिजी जहाँ कहे वहाँ तीर्थ जल रख दो। अत अत्रिजी ने भरत से कहा कि कही दूर नही जाना है। इसी पर्वत के निकट एक सुन्दर कूआँ है जो स्वय पवित्र है। उसी मे यह तीर्थ जल रखखा। गुणवान् मे देने से इसका महत्त्व और भी बढ जायगा। नदी नही बतलाया। क्योकि उसमे जल ठहर नही सकता। कूआँ मे छोडने से वह कूआँ सदा के लिए परम पावन हो जायगा। तीर्थजलप्रभाव के कारण पावन है। गुण होने से अमिअ है और अनादि सिद्ध स्थल होने से अनूप है।

भरत अत्रि अनुसासन पाई। जल भाजन सब दिये चलाई ॥
सानुज आपु अत्रि मुनि साधू। सहित गये जहँ कूप अगाधू ॥१॥

अर्थ भरतजी ने अत्रि मुनि की आज्ञा पाकर सब जलपात्रो को रवाना कर दिया। स्वय भाई के सहित, अत्रि मुनि और साधुओ के सङ्ग वहाँ गये जहाँ वह अथाह कूआँ था।

व्याख्या अत्रिजी ने यह तो बतला दिया कि इसी पर्वत के सन्निकट कूआँ है। उसी मे तीर्थ जल रखना चाहिए। परन्तु किस मुहूर्त मे जल का स्थापन करना चाहिए? कौन स्थापन करे? किस विधि से स्थापन हो? इन सब बातो के लिए जब भरतजी ने पूछा तब अत्रिजी की आज्ञा हुई कि आज ही मुहूर्त अच्छा है। जल ले चलो। अत भरतजी ने सब जलपात्रो का तुरन्त रवाना कर दिया और भरतजी शत्रुघ्नजी अत्रिमुनि तथा साधुगण उस जल के पीछे पीछे चले।

पावन पाय पुन्यथल राखा । प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाखा ॥
तात अनादि सिद्ध थल एहू । लोपेउ काल बिदित नहिं केहू ॥२॥

अर्थ : उस पवित्र जल को उस पुण्य स्थल मे स्थापन किया और प्रेम से प्रसन्न होकर महर्षि अत्रि ने कहा कि हे तात ! यह अनादि सिद्धपीठ है। बहुत दिन से इसका लोप हो गया था। किसी को इसका पता न रहा।

व्याख्या : इस पृथ्वी में भिन्न भिन्न स्थानों का भिन्न भिन्न प्रभाव है। जिस भाँति कही केसर होता है कहीं घास तक नहीं जमती। कही धान होता है तो कही गेहूँ होता है। इसी भाँति कोई स्थल धर्म के लिए अनुकूल है तो कोई अर्थ के लिए अनुकूल है। कोई काम के लिए अनुकूल है और कोई मोक्षदायक है। इसी भाँति बहुत से सिद्धपीठ हैं जहाँ अनुष्ठान करने से सिद्धि की प्राप्ति होती है। ऐसे सिद्धपीठ भी कही किसी महापुरुष के तपश्चर्या से बन गये हैं और कोई स्वभाव से ही बने हुए हैं। जिस स्थल मे जल रखने का प्रस्ताव मुनिजी ने किया था वह अनादि सिद्धपीठ था। मुनिजी कहते हैं कि काल के प्रभाव से यह पट गया था। किसी को मालूम भी नही था कि यहाँ तीर्थ है। वहाँ जल का स्थापन करके मुनिजी उस तीर्थ की महिमा कहने लगे। संसार का उपकार होने से मुनिजी बड़े प्रसन्न हैं और प्रेम से भरे हुए हैं।

तब सेवकन्ह सरस थलु देखा। कीन्ह सुजल हित कूप बिसेखा ॥
बिधि बस भयउ बिस्व उपकारू। सुगम अगम अति धरम बिचारू ॥३॥

अर्थ : तुम्हारे सेवकों ने देखा कि इस स्थल मे खोदने से पानी जल्दी निकलेगा। अत. सुन्दर जल के लिए विशेष कूआँ बना दिया। सो दैवयोग से संसार का उपकार हो गया। धर्म का विचार अत्यन्त सुगम भी और अगम भी है।

व्याख्या : सेना प्रस्थान के पहिले ही कुछ लोग आगे से जाकर उसके विश्राम के लिए उपयुक्त स्थल ठीक करते हैं और उसके ठहरने की व्यवस्था करते हैं। जहाँ जलाशय नही होता वहाँ पहिले से ही कूप खोदकर तैयार कर देते हैं। क्योंकि प्यास लग जाने पर कूआँ खोदते नही बनता। मुनिजी ने भरतजी से कहा कि तुम्हारी सेना के अग्रगामी दल ने देखा कि यहाँ सेना का विश्राम होना चाहिए और जल यहाँ पर वही सेना के उपयोग के लिए यथेष्ट नही है। विशेषज्ञो ने बतलाया कि इस स्थान पर खोदने से जल मिलेगा। अतः यही खोदकर कूआँ बना दिया : मालूम होता है कि भरतजी की सेना यही ठहरी थी। क्योंकि गुरुजी की आज्ञा से गिने गिनाये लोग ही आश्रम में गये।

सो दैवयोग से संसार का उपकार हो गया। सेना तो आकर चली गयी। परन्तु कूआँ बना हुआ है। इसके जल से जो काम लेगें उन्हे पुण्य होगा। अतः बड़े भारी तीर्थ का उद्धार अनायास हो गया। कही धर्म बड़ी सुगमता से अनायास प्राप्त होता है और किसी अवसर पर बड़े आयास करने पर भी प्राप्त होना कठिन हो

जाता है। इसी को कहते हैं धर्मस्य सूक्ष्मा गति। सो यह बडा भारी पुण्य कार्य तीर्थोद्धार अनायास तुम्हारे द्वारा हो गया।

भरतकूप अब कहिहै लोगा। अति पावन तीरथ जल जोगा॥
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी। होइहि बिमल करम मन बानी॥४॥

अर्थ लोग अब इसे भरतकूप कहेगे। यह अत्यन्त पवित्र तीर्थ जल के योग्य था। प्रेम और नेम के सहित इसमे स्नान करने से प्राणी कर्म मन और वाणी से निर्मल हो जायँगे।

व्याख्या मज्जन और पान करने से तीर्थ का जल पाप हरण करता है। भगवद् गुणानुवाद से वाणी निर्मल होती है। शास्त्र विचार से मन निर्मल होता है। परन्तु इस कूप मे यह अपूर्वता है कि यदि प्रेम और नियम के साथ इसका सेवन हो तो यह कर्म मन और वाणी तीनो के निर्मल कर देने मे समर्थ है।

दो कहत कूप महिमा सकल, गये जहाँ रघुराउ॥
अत्रि सुनायेउ रघुबरहि, तीरथ पुन्य प्रभाउ॥३१०॥

अर्थ कूप की महिमा कहते हुए सब रामजी के पास गये। तब मुनिजी ने रघुनाथजी को तीर्थ के पुण्य प्रभाव को सुनाया।

व्याख्या सुनि अनुकथन परस्पर होई। पथिक समाज सोह सर सोई। सो लौटते समय तीर्थ के पुण्य प्रभाव का कथनानुकथन हो जाता था। तीर्थ सम्बन्धी बातो म ही रास्ता कटा। सरकार के पास पहुँचने पर रामजी को अत्रि मुनिजी ने उन्हे तीर्थ का पुण्य प्रभाव सुनाया। जिस समय मुनिजी ने उसकी फलस्तुति की थी उस समय रघुनाथजी नही थे और उन्हे सुनाना परमावश्यक था। उनके सुन लने से ही कथन की हुई महिमा स्थायी भी हो गयी।

कहत धरम इतिहास सप्रीती। भयउ भोरु निसि सो सुख बीती॥
नित्य निबाहि भरत दोउ भाई। राम अत्रि गुर आयसु पाई॥१॥

अर्थ धार्मिक इतिहास कहते कहते सवेरा हो गया। वह रात सुख से बीत गयी। नित्य कर्म का निर्वाह करके दोनो भाई भरत रामजी गुरु और अत्रि की आज्ञा पाकर।

व्याख्या उस पुण्य स्थल मे जो जो धार्मिक घटनाएँ हुई थी उनका इतिहास अत्रिजी प्रेम से वर्णन करने लगे। सब लोग प्रेम से सुनने लगे। इस भाँति सारी रात बीत गयी। किसी को कुछ मालूम न हुआ। भावार्थ यह कि उस स्थल का ऐसा महा माहात्म्य है जिसके वर्णन मे अनेक कथाएँ अत्रिजी ने सुनायी।

नित्य कर्म भी सक्षेप से किया। इसीलिए निर्वाह करना चाहते है। शास्त्र भी ऐसे समय मे नित्यकर्म के सक्षेप करने की आज्ञा देता है। दोनो भाई अर्थात् भरत शत्रुघ्न ने पहिले सरकार की आज्ञा प्राप्त की। स्वामी की आज्ञा प्राप्त की

जिसमे रामवन मे पर्यटन का अधिकार प्राप्त हो। तत्पश्चात् गुरु की आज्ञा प्राप्त की। जिसमे सुकृत की शोभा हो। तत्पश्चात् अत्रिजी की आज्ञा प्राप्त की। जिसमे मुनि तापस के बाधा पाने का भय न हो।

सहित समाज साज सब सादे। चले राम बन अटन पयादे ॥
कोमल चरन चलत बिनु पनही। भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनही ॥२॥

अर्थ : समाज के सहित सादे साज से राम वन की यात्रा के लिए पैदल चले। विना जूते के कोमल चरणो द्वारा चल रहे है। अत पृथ्वी मन ही मन सकुचाकर कोमल हो गयी।

व्याख्या . तीर्थाटन की विधि कहते हैं। तीर्थाटन मे ठाटवाट मना है। इसलिए सब साज समाज सादा है। राजसी ठाट कोई भी नही। यहाँ तक कि पैर मे जूते भी नही। पैदल वन मे चले जा रहे हैं। चक्रवर्ती के पुत्र हैं। बिना जूते के पैदल चलने का अभ्यास नही और चरण भी इतने कोमल हैं कि पृथ्वी पर चलने योग्य नही।

उनको इस भाँति चलते देखकर पृथ्वी को अपने मन मे अपनी कठिनाई पर सङ्कोच हुआ। अत वह स्वय कोमल हो गयी जिसमे भरतजी उसके कठोरता का अनुभव न करें। जिसकी रक्खी भूमि रह रही है उसको दु खद होने मे पृथ्वी को सङ्कोच है। यथा . भरत भूमि रह राउर राखी।

कुस कंटक काँकरी कुराई। कटु कठोर कुबस्तु दुराई ॥
महि मजुल मृदु मारग कीन्हे। वहत समीर त्रिविध सुख लीन्हे ॥३॥

अर्थ : कुश, कण्टक, कङ्कडी, कुराई, कटु कठोर बुरी वस्तुओ को छिपाकर पृथ्वी ने सुन्दर कोमल रास्ता कर दिये और सुख लिये शीतल मन्द सुगन्ध वायु बहने लगी।

व्याख्या रास्ते के छोटे गड्हे जिसके चारो ओर घास पात जम जाते है। उसे कुराई कहते हैं। कोई इसका अर्थ कुरैया का वृक्ष कहते हैं। भूमि के मृदु होने का वर्णन करते हैं कि उसने अति कठोर बुरी वस्तुओ को अपने भीतर कर लिया। जिसमे कोमल चरणो को कष्ट न हो। गड्हो के अभाव से मार्ग मञ्जुल हो गया और कुश कण्टकादि के न होने से मृदु हो गया। ज्येष्ठ के महीने मे लू चलती है। सो यहाँ शीतल मन्द सुगन्ध वायु वहती है जिससे शरीर को सुख मिले।

सुमन बरपि सुर घन करि छाँही। बिटप फूलि फलि तृन मृदुताही ॥
मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी। सेवहि सकल राम प्रिय जानी ॥४॥

अर्थ : देवता फूल बरस करके, बादल छाया करके, पेड़ फूल व फलकर, तृण कोमल होकर, मृग देखकर, पक्षी सुन्दर वाणी बोलकर सब भरतजी की सेवा करते हैं। वे जानते हैं कि ये रामजी को प्रिय हैं।

व्याख्या : त्रिविध समीर : से स्पर्श सुख कहा। सुमन वृष्टि : से गन्ध सुख कहा। बिटप फूलि फलि : से रस सुख कहा। मृग बिलोकि : से रूप सुख कहा और खग बोलि सुबानी : से शब्द कहा। इससे सर्वेन्द्रिय तर्पण दृश्य का वर्णन किया। जो राम को प्रिय होता है उस पर चराचर की कृपा स्वभाव से होती है। राम सब की आत्मा है। अतः अपनी आत्मा के प्रिय की कौन सेवा नही करेगा ?

जो जिसको प्रिय होता है। उसकी शक्ति उसमे काम करने लगती है। महात्माओं में अलौकिक शक्ति के काम करने का यही रहस्य है। भरतजी रामजी को अत्यन्त प्रिय है। अतः उनकी जड़ को चेतन बनानेवाली शक्ति भरत में काम कर रही है। यथा : होत न भूतल भाव भरत को। अचर सचर चर अचर करत को। अतः भरत के सन्निधान मे उनका जड़त्व अत्यन्त शिथिल हो गया और उन्होने भरत को राम प्रिय जानकर उनकी सेवा की।

दो. सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु, राम कहत जमुहात।
राम प्रानप्रिय भरत कहुँ, यह न होइ बड़ि बात ॥३११॥

अर्थ : साधारण पुरुष को भी जो राम कहकर जँभाई लेता है उसे सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं। सो राम के प्राणप्रिय भरत के लिए यह बड़ी बात नहीं है।

व्याख्या : श्रोता के चित्त मे शङ्का हो सकती है कि ऐसी सिद्धि होनी कि उसके सान्निध्य से अचर को भी ज्ञान हो जाय बड़ी बात है। इस पर गोस्वामीजी कहते हैं कि यह भरत के लिए बड़ी बात नही है। क्योकि भरतजी रामजी को प्राण प्रिय हैं। उनमे रामजी की सब शक्तियाँ काम कर सकती हैं। जो लोग रामजी का इतना ध्यान रखते है कि कम से कम जँभाई लेने के समय तो उनका नाम मुँह से निकले। ऐसे ध्यान रखनेवाले को भी सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं और भरतजी तो रामजी को ऐसे प्रिय हैं कि रामजी उनका दिन रात ध्यान रखते हैं। यथा : रामहि बधु सोच दिन राती। अडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती।

यहाँ पर गोस्वामीजी ने सिद्धि प्राप्ति का अत्यन्त सरल मार्ग बतला दिया। साधक को बस इतना ध्यान नाम का रखना पडेगा कि जँभाई के समय अवश्य नाम मुख से निकल जाय। इतने ध्यान के सतत बने रहने से सामान्य अधिकारी को भी सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं। नाम का प्राण से सम्बन्ध होने पर सिद्धियाँ मिलती है। नाम का निःश्वास प्रश्वासात्मक जप करने से प्राणो से नाम का सम्बन्ध हो जाता है।

एहि बिधि भरत फिरत बन माही। नेमु प्रेमु लखि मुनि सकुचाही ॥
पुन्य जलासय भूमि बिभागा। खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा ॥१॥

अर्थ : इस विधि से भरतजी वन में घूम रहे हैं। नेम प्रेम देखकर मुनियों को

सङ्कोच हो रहा है। पवित्र जलाशय, भूखण्ड, पक्षी, मृग, तृण, वृक्ष, पर्वत, वन और बाग।

व्याख्या भरतजी के वन की यात्रा की विधि का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि इस विधि से भरतजी वन की यात्रा कर रहे हैं। राजकुमार होकर अत्यन्त सादे वेष से पैदल विना जूता के ऐसे वन मे जहाँ कुश कण्टक कङ्कड़ी भरी हुई है जेठ के महीने की धूप मे घूम रहे हैं। इसे देखकर मुनि लोगो को भी सङ्कोच होता है कि हम लोग भी इस भाँति नही यात्रा कर सकते। कम से कम पादुका तो धारण कर ही लेते हैं और न हम लोगो मे ऐसा प्रेम ही है कि सरकार के चरण चिह्नो को देखकर ऐसा हर्ष हो जैसा भरत को हो रहा है।

चित्रकूट के जलाशय पावन हैं। जिन्हे देखकर देवनदी और देवसर ईर्ष्या करते हैं। यथा 'जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिनहि देवसर सरित सराहहिं। भूखण्ड पवित्र है। क्योकि वे सरकार के चरण चिह्नो से अङ्कित हैं। पक्षी मृग वेलि विटप तृण सब धन्य हैं। क्योकि उन्हे रामजी का सन्निधान प्राप्त हैं। यथा चित्रकूट के विहँग मृग बेलि बिटप तृन जाति। पुन्य पुज सब धन्य अति कहत देव दिन राति।

चारु पवित्र विचित्र बिसेखी। बूझत भरतु दिव्य सब देखी॥
सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ। हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ॥२॥

अर्थ सुन्दर पवित्र और विशेष विचित्र तथा दिव्य देखकर भरतजी पूछते हैं और ऋषिराज उनके प्रश्नो को सुनकर प्रसन्न मन से उनके हेतु गुण और प्रभाव बतलाते हैं।

व्याख्या जलाशय, भूमि विभाग, खग, मृग, तृण, तरु सब अलौकिक शोभा सम्पन्न हैं। मानो इस लोक के हैं ही नही। इसलिए भरतजी जलाशय के पुण्यमय होने का हेतु पूछते हैं। खग मृग के नाम पूछते हैं। तृण तरु के गुण पूछते हैं। गिरि वन बाग का पुण्य प्रभाव पूछते हैं और अत्रि मुनि सबका पृथक् पृथक् वर्णन करते हैं। भाव यह कि यात्रा मे यात्री को इन सब बातो की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। केवल रास्ता नापने से यात्रा का साफल्य नही है।

कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा॥
कतहुँ बैठि मुनि आयसु पाई। सुमिरत सीय सहित दोउ भाई॥३॥

अर्थ कही स्नान करते थे। कही प्रणाम करते थे। कही मनोहर वन का दर्शन करते थे। कही मुनिजी की आज्ञा पाकर बैठ जाते थे और सीताजी के साथ रामजी का स्मरण करते थे।

व्याख्या पुण्य जलाशयो मे स्नान करते थे। भूमि विभाग को प्रणाम करते थे। खग मृग तृण तरु को देखते थे। वन बाग मे मुनिजी की आज्ञा से ठहर जाते थे और बैठकर रामजानकी का स्मरण करते थे। भक्त को भगवान् के स्मरण चिन्तन

मे ही विश्राम मिलता है सृष्टि वैचित्र्य के देखने से उन्हे उस स्रष्टा के विचित्र महा-सृष्टिनैपुण्य का ध्यान बँधता है ।

देखि सुभाउ सनेहु सुसेवा । देहि असीस मुदित बनदेवा ॥
फिरहि गएँ दिनु पहर अढाई । प्रभु पद कमल बिलोकहिं आई ॥४॥

अर्थ : स्वभाव स्नेह और अच्छी सेवा देखकर वनदेव प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हैं । ढाई पहर बीतने पर यात्रा से लौटते है और सरकार के चरण कमलो का दर्शन करते हैं ।

व्याख्या : वनो के भी पृथक् पृथक् अधिष्ठातृ देवता और देवियाँ होती है । यथा : बनदेवी बनदेव उदारा । करिहहि सास ससुर सम सारा । सो वनदेव भरतजी का स्नेह देखकर कि सरकार के चरणो मे इतनी प्रीति है । स्वभाव देखकर कि मुनिजी की आज्ञा से ही सब कुछ करते हैं । एक एक वस्तु के विषय मे जानकारी प्राप्त करते है । माहात्म्य जानकर कही स्नान करते हैं और कही प्रणाम करते है । ऐसी सेवा देखकर वनदेवता प्रसन्न हो जाते हैं और आशीर्वाद देते है ।

इस भाँति भरतजी ढाई पहर तक तो यात्रा मे व्यतीत करते हैं । तब अपराह्ण मे भोजनादि के लिए लौटते हैं । लौटने पर फिर सरकार के चरणो का दर्शन करते है और उसी दर्शन से यात्रा की परिपूर्णता मानते है ।

दो. देखे थल तीरथ सकल, भरत पाँच दिन माँझ ।
कहत सुनत हरिहर सुजसु, गयउ दिवस भइ साँझ ॥३१२॥

अर्थ : भरतजी ने पाँच दिन मे चित्रकूट के सब तीर्थो का दर्शन कर लिया । हरिहर का सुयश कहते सुनते दिन बीता और सन्ध्या हुई ।

व्याख्या : आज भी चित्रकूट की यात्रा पाँच दिनो मे की जाती है । पाँच दिनो मे यात्रा पूर्ण हुई । यात्रा के दिनो मे अवशिष्ट समय को हरिहर सुयश के कथन श्रवण मे विताना चाहिए । अत: कहते हैं कि भरतजी का दिन इस भाँति यात्रा के नियमो को पालन करते बीता ।

तीसरी सभा

भोर न्हाइ सबु जुरा समाजू । भरत भूमिसुर तिरहुति राजू ॥
भल दिनु आजु जानि मन माही । रामु कृपाल कहत सकुचाही ॥१॥

अर्थ : सवेरे नहाकर सब समाज जुटा । जिसमे भरतजी ब्राह्मण लोग तथा तिरहुत के राजा थे । आज अच्छा दिन है ऐसा मन मे जानने पर भी राम कृपालु कहने मे सङ्कोच करते हैं ।

व्याख्या : सब कुछ निर्णय हो गया । भरतजी की समाज के सहित यात्रा भी समाप्त हो गयी । लोग नहा नहाकर सरकार के पास आगये । अब उन लोगो

को छुट्टी माँगनी चाहिए। पर कोई कुछ कहता नहीं है। रामजी मन में सोच रहे हैं कि आज यात्रा के लिए शुभ मुहूर्त है। यात्रा का मुहूर्त जल्दी मिलता नहीं। अतः इन लोगों को आज चला जाना चाहिए। पर मैं कैसे कहूँ कि आप लोग जाइये। रामजी इस सङ्कोच में पड़ गये। बड़े कृपालु हैं। निष्ठुर वचन मुख से कहना नही चाहते।

गुर नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी॥
सील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची॥२॥

अर्थ : रामजी ने गुरु, राजा, भरत तथा सभा की ओर देखा। फिर सङ्कुचित होकर नीचे देखने लगे। शील की प्रशंसा करके सभा ने सोचा कि राम के समान सङ्कोची मालिक कहीं नहीं हैं।

व्याख्या : शुभ मुहूर्त का ध्यान गुरुजी को होना चाहिए। इसलिए उनकी ओर देखा। महाराज जनक को ख्याल होना चाहिए कि दोनों राज्य सूने पड़े हैं। इसलिए जनकजी की ओर देखा। भरतजी ने वन देखने के लिए आज्ञा माँगा था। सो देख चुके। अब ठहरने का कारण नहीं है। अतः उनकी ओर देखा। अन्य लोगों को ठहर ठहरकर घर की सुधि आ जाती है। यथा : छन वन रुचि छन सदन सोहाहीं। अतः उन लोगों की ओर देखा। जब कोई न बोला तो सङ्कोच से निगाह नीची कर ली।

सभी सभासद रुख पहिचाननेवाले हैं। समझ लिया कि सरकार विदा करना चाहते हैं। पर सङ्कोच से कह नहीं रहे है। मन ही मन प्रशंसा करते हैं कि ऐसा सङ्कोची मालिक कहाँ मिलेगा। रामजी शील के सागर हैं।

भरत सुजान राम रुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिसेखी॥
करि दंडवत कहत कर जोरी। राखी नाथ सकल रुचि मोरी॥३॥

अर्थ : सुजान भरतजी ने रामजी का रुख देखा। विशेष धैर्य धारण करके प्रेम के साथ उठे। दण्डवत् करके हाथ जोड़कर बोले कि नाथ ने मेरी सब रुचि रख ली।

व्याख्या : भरत सुजान हैं। समझते है कि सरकार से छुट्टी भी मुझे ही लेनी पड़ेगी। मेरी ही मन्त्र से सब लोग यहाँ आये हैं। अतः विदाई के लिए कोई न कहेगा और रामजी के सबकी ओर देखने और सङ्कुचित होने का मतलब यही है कि आज अच्छा दिन है। अब सब लोग प्रस्थान करें। अतः रामजी के वियोग जन्य दुःख के सहन करने के लिए विशेष धैर्य धारण किया और प्रेम के साथ उठकर दण्डवत् प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोले कि सरकार ने मेरी सभी रुचि रख ली। मुझे सेवक जानकर सम्मानित किया। मेरा कलङ्क मिट गया। मेरे कहने पर अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करने के लिए भी तैयार हो गये। वन की यात्रा के

लिए भी आज्ञा दे दी। अतः मेरा आना सार्थक हुआ। यथा : नाथ भयउ सुख साथ गए को। लहेउँ लाहु जग जनम भए को।

मोहि लगि सहेउ सबहि सतापू। बहुत भाँति दुखु पावा आपू ॥
अब गोसाइँ मोहि देउ रजाई। सेवउँ अवध अवधि भर जाई ॥४॥

अर्थ : मेरे लिए सभी सन्ताप सहा और बहुत भाँति स्वय दु ख उठाया। हे स्वामी ! अब मुझे आज्ञा मिले कि मै जाकर अवधि भर अवध की सेवा करूँ।

व्याख्या : भरतजी कहते है कि मेरे लिए सरकार को मानसिक सन्ताप सब प्रकार का सहना पडा। मैने सरकारी आज्ञा नही मानी। सबको इकट्ठा करके सरकार को सङ्कोच मे डाला। सरकार के चित्त मे क्षोभ हुआ। कष्ट उठाया। यथा राम सत्यव्रत धर्मरत सबकर सील सनेहु। सकट सहत सकोच बस कहिअ जो आयसु देहु। और भी बहुत प्रकार के दु ख आपको हुए। अब मैं अधिक कष्ट देना नही चाहता। केवल आज्ञा चाहता हूँ। मुझे आज्ञा हो कि जब तक सरकार वन से नही लौटते तब तक मै अयोध्या की सेवा करूँ। अर्थात् प्रजा पालन करूँ।

दो. जेहिं उपाय पुनि पाँय जनु, देखइ दीनदयाल।
सो सिख देइअ अवधि लगि, कोसल पाल कृपाल ३१३॥

अर्थ हे कोसलपाल कृपाल ! अवधि तक के लिए मुझे ऐसी शिक्षा दीजिये जिस उपाय से हे दीनदयाल ! यह दास फिर चरणो का दर्शन करे।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि कोसलपाल आप है। आप ही कोसल के प्रकृत राजा हैं। प्रजा के हृदय पर आप का राज्य है। मै तो कोसलपुर का सेवक होकर उसकी सेवा उतने ही दिन करूँगा जितने दिन कि आप वन मे हैं। अब आप कृपा करके ऐसी शिक्षा दीजिये जिससे मै अयोध्या का पालन भी करूँ और लौटने पर सरकार उसे जूठा न समझें और मैं भी जिस उपाय का अवलम्बन करके उतने दिन तक जीवन धारण कर सकूँ। भाव यह है कि आप दीनदयाल है। कृपाल हैं। मैं दीन हो रहा हूँ। मुझे यह उपाय नही सूझ रहा है कि चौदह वर्ष तक विना आपके मैं कैसे जीवन धारण कर सकूँगा और लौटने पर सरकार को यह धारणा भी न हो कि चौदह वर्ष तक भरत ने शासन किया तो अब मै जाकर इसे कैसे हटाऊँ। इसी को शासन करने दो। सरकार की दयालु प्रकृति होने से मुझे यह भी भय हो रहा है। अत: कृपा करके आप ही उपाय बताइये।

पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि सरस सनेह सगाई ॥
राउर बदि भल भव दुख दाहू। प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू ॥१॥

अर्थ : हे गोसाईं ! पुरजन कुटुम्बी और प्रजा सब स्नेह के सगापन से सरस और पवित्र हैं। आप के लिए ससार के दु ख का दाह भी भला है। प्रभु के बिना परम पद का लाभ भी व्यर्थ है।

व्याख्या : अपनी ओर से कहकर अब प्रजा की ओर से कहते हैं कि पुरजन और परिजन सब स्नेह के नाते से सरस है। यथा : हम सम पुन्य पुंज जग थोरे। जिनहि राम जानत करि मोरे। अतः सब पवित्र हैं। क्योंकि भक्ति से ही अन्तःकरण शुद्ध होता है। प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभ्यन्तर मल कबहुँ कि जाई।

सभी की यह व्यवस्था है कि आपके लिए यदि संसार दुःख का दाह भी हो तो अच्छा मानते हैं। भाव यह कि संसार के दुःख का दाह यदि अपने लिए हो तो बुरा है। यथा : डरपहिं धीर गहन सुधि आये। पर आपके लिए वह भी सहना परम सुखद है। यथा : सुख समेत संवत दुइ साता। पल सम होहिं न जनिअहिं जाता। और यदि आप न हो तो परम पद की प्राप्ति भी व्यर्थ है। यथा : सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोक्ष सुख त्यागी।

स्वामि सुजानु जानि सबही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की ॥
प्रनतपालु पालिहि सब काहू। देउ दुहूँ दिसि ओर निबाहू ॥२॥

अर्थ : हे स्वामि सुजान प्रणतपाल ! आप तो सबके हृदय की रुचि और रहनी सम्बन्धी जी की लालसा जानकर सबका पालन करेंगे। दोनों तरफ का पूरा निर्वाह करेंगे।

व्याख्या : सुजान तो वही हैं जो हृदय की बात जान लें। आप सुजान स्वामी हैं। सबके हृदय की बात जानते हैं। आपसे किसी की रुचि, लालसा और रहनी छिपी नहीं है।

रुचि यथा : दोउ समाज अस रुचि मन माँही।
बिनु सिय राम फिरब भल नाँही ॥
दाहिन दैउ होइ जब सबही।
राम समीप बसिअ बन तबही ॥
लालसा यथा : गनप गौरि त्रिपुरारि तमारी।
रमा रमनपद बंदि बहोरी।
बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी ॥
राजा राम जानकी रानी।
आनँद अवधि अवध रजधानी ॥
गुरु समाज भाइन्ह सहित रामराज पुर होउ।
अछत राम राजा अवध मरिअ माँग सब कोउ ॥
रहनि यथा : राम दरस हित नेम ब्रत लगे करन नर नारि।
मनहु कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि ॥

आप प्रणतपाल हैं। यहाँ सभी प्रणत हैं। यथा : मंगल मूरति लोचन भरि भरि। निरखहिं हरषि दंडवत करि करि। अतः सरकार सबका पालन करेंगे और घर और वन दोनों ओर का निर्वाह करेंगे।

अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो । कियें बिचारु न सोचु खरो सो ॥
आरति मोर नाथ कर छोहू । दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठु हठि मोहू ॥३॥

अर्थ मुझे तो ऐसा बडा भारी भरोसा है । यदि विचार करता हूँ तो सोच की बात कुछ भी नही है । अपनी आर्त्ति और सरकार का छोह दोनो ने मिलकर मुझे हठ करके ढीठ बना दिया ।

व्याख्या भरतजी कहते है कि सरकार सबका पालन करेंगे । घर वन दोनो का निर्वाह करेगे । इस बात का मुझे पूरा भरोसा है । अत विचार करने पर तो सोच को कही स्थान नही है । फिर भी मैं सोच करता हूँ । अविनय विनय यथा रुचि वाणी बोलता हूँ । तो यह मेरी ढिठाई है । मै ढिठाई करना चाहता नही । परन्तु मैं आर्त्त हूँ और आर्त्त से ढिठाई हो ही जाती है । यथा आरति बस सनमुख भइउँ बिलग न मानव तात । और छोह करने से भी बच्चे ढीठ हो जाते हैं । सो सरकार का छोह इतना है कि उसने भी मुझे ढीठ बना दिया है ।

यह बड दोषु दूरि करि स्वामी । तजि सकोच सिखइअ अनुगामी ॥
भरत विनय सुनि सबहि प्रससी । छीर नीर बिवरन गति हसी ॥४॥

अर्थ हे स्वामिन् ! इस बडे दोष को दूर करके मै अनुचर हूँ मुझे शिक्षा दीजिये । भरत की प्रार्थना सुनकर सबने प्रशसा की कि भरतजी की वाणी दूध और जल को अलग करने के लिए हस सी थी ।

व्याख्या वात्सल्य को स्थान देकर सरकार मेरा सम्मान करते हैं । इससे मेरी ढिठाई बढती है । मैं इसे बडा दोष मानता हूँ । सो सरकार मेरा सम्मान न कर और सङ्कोच छोडकर मुझे शिक्षा दें कि मैं अवध की सेवा किस भाँति करूँ । मुझ जो बिधि पालन करने की सरकार बतलायेंगे उसी विधि से मै पालन करने का प्रयत्न करूँगा । भावार्थ यह कि आपके अयोध्या म न रहने पर आपकी आज्ञा से अवध का पालन करना मुझे स्वीकार है । परन्तु जिस विधि से मैं पालन करूँ वह विधि भी आपकी बतलायी हुई होगी तभी सेवा धर्म निबहेगा ।

ऐसे गुण दोष की पृथक् करनेवाली वाणी की उपमा हस से दी गयी है । इसे सुनकर सभी ने प्रशसा की ।

दो दीनबधु सुनि बधु के, बचन दीन छलहीन ।
देस काल अवसर सरिस, बोले राम प्रबीन ॥३१४॥

अर्थ दीनबन्धु प्रवीण रामचन्द्र भाई के छलहीन दीन वचन सुनकर देश काल और अवसर के अनुकूल बोल ।

व्याख्या सरकार दीनबन्धु है । भरतजी बन्धु भी है और दीन वचन बोल रहे हैं । सरकार प्रवीण हैं । जानते हैं कि इस वचन म छल की छाया नही है । यदि भरतजी शिक्षा के लिए प्रार्थना करते हैं तो उनका ऐसा करना उचित है । अत

देश काल और अवसर अनुसार बोले। देश काल और अवसर के अनुसार बोलना ही प्रवीणता है।

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरहिं नृपहि घर बन की॥
माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहि तुम्हहि सपनेहु न कलेसू॥१॥

अर्थ हे तात! मेरी परिजन की, घर की और वन की चिन्ता गुरुजी और महाराज को है। हम लोगो के सिर पर गुरुजी और मिथिलाधिपति बने हैं। हमे और तुम्हें सपने मे भी क्लेश नही है।

व्याख्या : भरतजी ने कहा था 'देव दुहू दिसि ओर निबाहू। उसी के उत्तर मे सरकार कहते हैं हम लोग अनाथ नही हैं कि चिन्ता करें कि घर मे क्या होता होगा या वन मे क्या होता होगा। भरतजी ने सब बोझा अपने बडे रामजी पर रक्खा और रामजी सब बोझा अपने बडे गुरुजी तथा महाराज जनक पर रख रहे हैं।

हम लोगो के सिर पर गुरुजी तथा महाराज मिथिलेश के करकमलो की छाया है। हमे या तुम्हे चिन्ता करने की कोई बात नही है। गुरुजी तथा महाराज जनक सदा रक्षा करेंगे।

मोर तुम्हार परम पुरुषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु॥
पितु आयसु पालिहिं दुहु भाई। लोक बेद भल भूप भलाई॥२॥

अर्थ · मेरा तुम्हारा परम पुरुषार्थ स्वार्थ सुयश और परमार्थ यही है कि दोनो भाई पिता की आज्ञा पालन करें। राजा की भलाई से लोक और वेद मे भी भला है।

व्याख्या · नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान जथारथ। सो रामजी निर्णय किये देते है कि स्वार्थ, सुयश, धर्म और पुरुषार्थ सब कुछ पिता की आज्ञा पालन करने मे हैं। यथा · पिता धर्म पिता कर्म पितैव परमा गति। पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वे देवता। अत रामजी कहते हैं कि हम दोनो भाइयो की सब तरह से भलाई पिता की आज्ञा के पालन करने म है। आज्ञा पालन से सुरपुर मे चक्रवर्तीजी को सन्तोष होगा। उनका सत्य अक्षुण्ण रह जायगा। उनकी भलाई होगी तो हम लोगो का भी लोक और परलोक सुधरेगा। यहाँ वेद शब्द परलोक का उपलक्षण है। क्योकि वह अज्ञातार्थ का ज्ञापक है।

गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई॥३॥

अर्थ · गुरु पिता माता स्वामी की शिक्षा पालन करने से बेरास्ते चलने पर भी पैर खाले मे नही पडता। ऐसा विचार करके सब सोच छोडकर अवधि पर्यन्त अवध का पालन करो।

व्याख्या स्वय वेद कहता है मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । स्वामी भी पिता ही है । क्योकि वह रक्षा करता है । पातीति पिता । पिता शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ ही रक्षक है । इन चारो मे देवभाव रखना चाहिए । जिस भांति देवता की आज्ञा मे विचार को स्थान नही है तदनुसार कार्य करने से हानि हो नही सकती । ईश्वरीय सहायता होती है । गुरु पिता माता स्वामी को आज्ञा अटपटी होने पर भी हानिकारक नही हो सकती । परिणाम उसका अच्छा ही होता है । रामजी के कहने का भावार्थ यह है कि हम लोग तो भल रास्ते पर चल रहे हैं हमारी हानि कैसे होगी ?

अब रामजी आज्ञा देते हैं कि ऐसा विचारकर सब सोच छोडकर चौदह वर्ष तक अयोध्या का पालन करो । लौट आने पर मैं सँभाल लूँगा ।

देसु कोसु परिजन परिवारू । गुर पद रजहिं लाग छरुभारू ॥
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी । पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी ॥४॥

अर्थ देश, कोश, पुरवासी और परिवार आदि की जिम्मेदारी तो गुरुजी के चरणो की धूलि को है । तुम मुनिजी माता और मन्त्रियो की शिक्षा मानकर पृथ्वी प्रजा और राजधानी की रक्षा करना ।

व्याख्या भरतजी ने शिक्षा देने के लिए प्रार्थना की थी । अत सरकार कहते हैं कि तुम्हे तीन काम करना है पृथ्वी का पालन । प्रजा का पालन और राजधानी का पालन । सो गुरुजी माता और मन्त्रियो की सम्मति लेकर करना । पृथ्वी दूसरे के अधिकार मे न जाने पावे । प्रजा दु खी न हो और राजधानी की व्यवस्था बिगडने न पावे । राजधानी ही सम्पूर्ण व्यवहार का स्रोत है ।

दो मुखिआ मुखु सो चाहिये, खान पान कहुँ एक ।
पालइ पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित बिबेक ॥२१५॥

अर्थ तुलसीदासजी कहते हैं कि मुखिया मुख की भांति होना चाहिए । जो अकेले खाय और पीये । पर सब अङ्गो का विवेक के सहित पालन पोषण करे ।

व्याख्या मुख अकेले हो खाता है और पीता है । पर अपने पास कुछ नही रखता । उसे कूँच पीसकर पाक के योग्य बनाकर पक्वाशय के सुपुर्द कर देता है और वहाँ से उसका रस बनकर यथायोग्य सब अङ्गो का पोषण होता है । विवेक के साथ भोजन का भाव यह कि इतना न खा जावे कि अजीर्ण हो जाय । न इतना कम खाय कि शरीर क्षीण हो जाय । शुद्ध और पथ्य पदार्थ का ही सेवन करे ।

इसी भांति मुखिया को आचरण करना चाहिए । वह जो कुछ ग्रहण करे इसमे से कुछ अपने पास न रक्खे । सबका सब सार्वजनिक कार्य विभाग के सुपुर्द कर दे और वहाँ से यथोचित सबका पालन हो । इतना अधिक कर न लें कि प्रजापीडा हो और इतना कम भी न ले कि शासन व्यवस्था दुर्बल हो जाय । जिनसे कर लेना उचित है उन्ही से ले । शास्त्रीय मर्यादा भङ्ग न हो ।

राजधरम सरबसु एतनोई। जिमि मन माँह मनोरथ गोई ॥
बंधु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोषु न साँती ॥१॥

अर्थ : राजधर्म का सार सर्वस्व इतना ही है। जैसे मन में मनोरथ छिपा रहता है। रामजी ने बहुत प्रकार से समझाया। परन्तु बिना आधार के न मन में सन्तोष हुआ न शान्ति हुई।

व्याख्या : रामजी कहते हैं कि इतना ही राजधर्म का सर्वस्व है। शेष का सम्पूर्ण राजधर्म इसका विस्तार है। इस पर ध्यान रहने से सम्पूर्ण राजधर्म का पालन होगा। जैसे सम्पूर्ण मनोरथो का निवास मन मे ही रहता है उसी भाँति सम्पूर्ण राजधर्म इसी दोहे में है। इस भाँति राजधर्म की शिक्षा देकर बहुत भाँति से भरतजी को समझाया। यथा :

तुम्हरे निबाहे निबहेगी सबही कि बलि उर धरि धीर धर्म मारग सँवारिये।
जा में विजय आनंद बधाई तिहुँलोक बजै विप्र सुर साधु महि सकट निवारिये॥
होवै सुरकाज महाराज को वचन साँच तात कुल कीरति पताका फहराइये।
वचन तिहारो मानि आइके करौगो राज अवधि बिताय तौलों अवध सँवारिये॥

इस प्रकार से बहुत समझाया। परन्तु भरतजी साकारोपासक हैं। उन्हें आधार चाहिए। बिना आधार के उन्हे न सन्तोष है न शान्ति है।

भरत सील गुरु सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू ॥
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही ॥२॥

अर्थ : भरत का शील और गुरु तथा सचिव का समाज, रघुराज सङ्कोच और स्नेह के वश में पड़ गये। कृपा करके प्रभु ने अपने खड़ाऊँ दिये जिन्हे आदर के साथ भरतजी ने सिर पर चढ़ा लिये।

व्याख्या : इधर भरतजी का शील उधर बड़ों का तथा पिता के मन्त्रियों का समाज। भरतजी अवलम्ब चाहते है। बड़े के अभाव में उसकी चरण पादुका के ही उपासना की सनातन रीति है। अतः अपनी चरण पादुका देना प्राप्त है। परन्तु बड़ों के समाज मे अपनी चरण पादुका देने में रामजी को सङ्कोच है। भरत का इतना शील स्नेह है कि उनके माँगने पर कैसे न दें। इधर बड़ो के समाज मे अपने चरण पादुका के देने मे सङ्कोच है। अतः रामजी सङ्कोच के वश में पड़ गये। अन्त मे स्नेह की ही विजय हुई। सरकार को चरणपादुका देनी पड़ी।

चरन पीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के ॥
संपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के ॥३॥

अर्थ : करुणानिधान के खड़ाऊँ : चरणपीठ मानो प्रजाप्राण के दो पहरेदार हैं। भरतजी के प्रेमरूपी रत्न के लिए डब्बा है। जाव के यत्न के लिए मानो दो अक्षर है।

व्याख्या : सरकार के खडाऊँ मानो दो पहरेदार प्रजा के प्राण के हैं। वे उसे निकलने न देंगे। प्रजा यह समझकर प्राण धारण करेगी कि सिंहासन पर रामजी नही हैं तो उनका खड़ाऊँ तो है। अब निर्विवाद रूप से रामजी का राज्य है।

रक्षा के लिए रत्न पेटक में रक्खे जाते हैं। पेटक मे दो ढकने होते हैं। भरत-जी का प्रेम बडा बहुमूल्य है। इसलिए उसे रत्न कहते हैं। जिस भाँति रत्न का आधार पेटक होता है। उसी भाँति भरतजी के प्रेम का आधार दोनो खडाऊँ हुए। भरतजी उन्ही का पूजन करेंगे। सिंहासन पर स्थापित करेंगे। उन्ही से आज्ञा लेकर सब राजकाज सँभालेंगे।

इन खडाऊँ की आराधना से रामजी की प्राप्ति होगी। जिस भाँति रा और म दोनो के जप से रामजी की प्राप्ति जीव को होती है। यथा : नाम निरूपन नाम जतन से। सोउ प्रकटत जिमि मोल रतन से।

कुल कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन सेवा सुधरम के ॥
भरत मुदित अवलंब लहे ते। अस सुख जस सिय राम रहे तें ॥४॥

अर्थ : कुल के लिए मानो किवाड़ थे। कर्म के लिए मानो दोनो कुशल हाथ थे। सेवारूपी सुधर्म के लिए मानो दोनो नेत्र थे। अवलम्ब प्राप्त होने से भरत प्रसन्न हुए। उन्हें ऐसा सुख हुआ जैसा सीता राम के रह जाने से होता।

व्याख्या : कुल के लोगों के लिए भी वह खड़ाऊँ प्राणाधार हुआ। अतः कुल का रक्षक हुआ। कपाट से रक्षा होती है। यथा : ध्यान तुम्हार कपाट। कपाट भी दो होते हैं और खडाऊँ भी दो होते हैं। कर्म का कौशल यही है कि वह बन्ध का कारण न हो। इन खड़ाऊँ को सिंहासनारूढ करके जो राजकार्य भरतजी करेंगे वह बन्धन का कारण न होगा। इसलिए उन्हे कर्म के लिए दो कुशल हाथो से उपमित किया। सेवारूपी सुधर्म के लिए तो वे मानो दोनो आँख हो गये। माँगि माँगि आयसु करत राज काज बहु भाँति। भरतजी उन्ही खड़ाऊँ की आज्ञा से सब राजकार्य करते थे। ये खड़ाऊँ न होते तो किससे आज्ञा माँगते। आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। अतः वह सेवा अन्धो की सेवा सी होती। मन मे स्थिर न कर सकते कि जो मैं कर रहा हूँ वह सरकार की मर्जी के अनुकूल है या नही। खड़ाऊँ के कारण निश्चय करने मे सुभीता था। इसलिए उसे आँख कहा।

दो. माँगेउ बिदा प्रनामु करि, राम लिये उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति, कुटिल कुअवसरु पाइ ॥३१६॥

अर्थ : प्रमाण करके विदा माँगा। रामजी ने हृदय से लगा लिया। कुटिल इन्द्र ने कुअवसर पाकर लोगो के चित्त मे उचाट कर दिया था।

व्याख्या : पाँवरी मिल गयी। अतः काम पूरा हो गया। इसलिए भरतजी ने प्रणाम किया और विदा माँगी। रामजी ने हृदय से लगा लिया। भाव यह कि तुम प्राण से प्यारे हो। अवश होकर मैं विदा करता हूँ। कवि इन्द्र को कपटी कहते हैं

कि ऐसे करुणा के अवसर मे भी उन्हे कपट न भूला। देखा कि यह मेरे लिये बडा अच्छा अवसर है। इस समय उचाट का प्रयोग करने से रामजी अप्रसन्न न होगे और लोगो ने जो निश्चय किया था कि बिना रामजी के फिरना अच्छा नही वे हठ भी न करेंगे।

सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी। अवधि आस सम जीवनि जी की ॥
नतरु लखन सिय राम वियोगा। हहरि मरत सब लोग कुरोगा ॥१॥

अर्थ : वह कुचाल सब के लिए अच्छी हो गयी। अवधि की आशा के समान जीव की जीवन हो गयी। नही तो लक्ष्मण सीता और राम के वियोगरूपी कुरोग से सब लोग हहरकर मर जाते।

व्याख्या : अवधि आस सब राखहिं प्राना। सबका जीवनाधार अवधि हो गयी थी। अर्थात् सब यह आशा लगाये जी रहे थे कि चौदह वर्ष बाद फिर भेंट होगी। उसी भाँति यह उच्चाटन भी जीवनाधार हो गया। नही तो लक्ष्मण सीता और रामजी का वियोग ऐसा कुरोग था जो सबका प्राण लेकर ही छोडता। उच्चाटन के कारण वियोग व्यथा बहुत कुछ कम हो गयी।

रामकृपा अवरेब सुधारी। बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी ॥
भेटत भुज भरि भाइ भरत सो। राम प्रेमरसु कहि न परत सो ॥२॥

अर्थ : रामजी की कृपा ने अवरेब सुधार दिया। देवताओ की सेना गुणदायक गोहार हो गयी। भुजा भरके भरत से भाई को भेंटते हुए रामजी का वह प्रेमरस कहते नहीं बनता।

व्याख्या : देवताओ ने तो लोगो की बुद्धि को विकृत करने के लिए उच्चाटन का प्रयोग किया था। इससे उनकी बुद्धि मे विकार भी हो गया। पर रामजी की कृपा से वह विकार लाभदायक हो गया। बिगरी बनावै कृपानिधि की कृपा नई। अवरेब टेढी काट को कहते हैं। सो देवताओ की यह टेढी चाल ' कुचाल रामकृपा से हितकर सिद्ध हुई। देवता लोग तो सब मिलकर अहित करने चले थे। जिस भाँति सेना अहित करने चलती है। पर रामजी की कृपा से वह सेना गोहार हो गयी। हित-कारिणी हो गयी। निर्बल की सहायता के लिए जो लोग इकट्ठे होकर चलते हैं उसे गोहार कहा जाता है। यथा : गाय गोहार तिरिया गोहार आदि।

भयउ न भुवन भरत सम भाई। सो ऐसे भाई का गाढ आलिङ्गन करने मे जिस प्रीतिरस का प्रादुर्भाव हुआ वह सर्वथा अवर्णनीय था।

तन मन बचन उमग अनुरागा। धीर धुरंधर धीरजु त्यागा ॥
बारिज लोचन मोचत बारी। देखि दसा सुर सभा दुखारी ॥३॥

अर्थ : शरीर मन और वचन मे अनुराग उमड़ पड़ा। धैर्यधारियो के धुरन्धर ने

धैर्य छोड दिया। कमल ऐसे नेत्रो से जल गिर रहा है। इस दशा को देखकर देवसभा दु खी हो गयी।

व्याख्या · तन मन बचन से रामजी का उमङ्ग कही नही कहा गया। क्योकि सरकार का स्वभाव हर्ष शोक से रहित है। यथा : बिस्मय हरख रहित रघुराऊ। तुम जानहु सब राम प्रभाऊ। सो यहाँ प्रेम ऐसा बढा कि सरकार के स्वभाव मे भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। इतने बडे धीर का धैर्य डग गया। आँखो से जल गिरने लगा।

देवताओ का तो काम वन रहा था। पर सरकार की दशा देखकर वे भी दु खी हो गये। इसीलिए सेना शब्द का प्रयोग न करके कवि ने सभा शब्द का प्रयोग किया।

मुनिगन गुर धुर धीर जनक से। ग्यान अनल मन कसे कनक से ॥
जे बिरचि निरलेप उपाए। पदुम पत्र जिमि जग जल जाए ॥४॥

अर्थ मुनि समाज गुरु वसिष्ठजी और जनक के समान धीर जिनका मन-रूपी सोना ज्ञान की अग्नि मे कसा हुआ था। जिन्हे ब्रह्मदेव ने निर्लेप उत्पन्न ही किया था। ससाररूपी जल मे जो कमल के पत्ते की भाँति पैदा हुए थे।

व्याख्या : मुनि समाज का अर्थ ही ज्ञानी समाज है। स्थितधीर्मुनिरुच्यते। क्योकि स्थितप्रज्ञ को ही मुनि कहते है। उनमे भी वसिष्ठजी सबसे अग्रगण्य जिन्होंने योगवासिष्ठ कहा है और जनक के समान धीर। जिनका कहना है · सहज बिराग रूप मन मोरा। मिथिलाया न मे किञ्चित् प्रदह्यते। वामदेवादि गर्भज्ञानी। जो ससार मे ही पैदा हुए। ससार से ही जीवन धारण करते हैं। फिर भी पद्मपत्र की भाँति निर्लेप रहते हैं। वे भी।

दो तेउ बिलोकि रघुबर भरत, प्रीति अनूप अपार।
भए मगन मन तन बचन, सहित बिराग बिचार ॥३१७॥

अर्थ : वे भी रामजी के मिलने की अनुपम अपार प्रीति देखकर विराग और विचार के सहित तन मन वचन से मग्न हो गये।

व्याख्या भरत और रामजी की प्रीति की उपमा नही है। क्योकि प्रीति तो स्वार्थ को लेकर होती है। यथा सुर नर मुनि सबकै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती। और इनकी प्रीति मे स्वार्थ का लेश नही। इसलिए प्रीति को अनूप कहा और राम सकोची प्रेम बस भरत सुप्रेम पयोधि। इससे अपार कहा और भी अनूपता यह है कि ऐसे ऐसे ज्ञानी भी उसे देखकर प्रेम मे डूबने लगे। उनका विवेक विचार भी डूबने लगा। ज्ञानी तो पद्मपत्रमिवाम्भसा रहते हैं। उनके प्रेम मे डूबने का तो प्रश्न ही नही उठता। वे विवेक के जहाज पर चढे हैं। पर यह प्रेम ऐसा अनूप अपार था कि इसे देखकर डूबने लगे और ऐसा अपार था कि पार न पा सके।

भावार्थ यह कि ऐसे ऐसे लोग भी प्रेमाकुल हो गये। उनका विवेक विचार उ समय कार्य करने मे असमर्थ हो गया।

जहाँ जनक गुरु गति मति भोरी । प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी ॥
वरनत रघुबर भरत वियोगू । सुनि कठोर कवि जानिहि लोगू ॥१॥

अर्थ : जहाँ जनक और गुरुजी की मति की गति भोली हो जाती है उ प्राकृत प्रीति कहना बड़े दोष की बात है। रामजी और भरत के वियोग का वर्ण करने से सुनकर लोग कवि को कठोर जानेंगे।

व्याख्या : ऊपर कह आये हैं कि मुनिगण वसिष्ठजी और जनकीजो राम औ भरत की अपार प्रीति देखकर विवेक विचार के साथ मग्न हो गये। अर्थात् उन लोगं की मति गति भोली हो गयी। वह प्रीति सासारिक प्रीति नही है। वह भक्त औ भगवान् की प्रीति अलौकिक है। संसार से मन हटाकर ही भगवान् मे लगान सम्भव है। अतः उस प्रीति को सांसारिक प्रीति कथमपि नही कहा जा सकता। उरे सांसारिक प्रीति भाई भाई की प्रीति कहने मे बडा दोष है।

दूसरी वात यह है कि रामजी और भरतजी के वियोग वर्णन में इतनी करुण है कि उसके वर्णन को सुनकर लोग वर्णन करनेवाले को कठोर कहेगे। अतः जे विषय वर्णनातीत है और उसके वर्णन के प्रयत्न मे सुननेवाले भी उसे बुरा कहे उस विषयको अछूता छोड़ देना ही ठीक है।

सो सकोचु रसु अकथ सुबानी । समउ सनेहु सुमिरि सकुचानी ॥
भेटि भरतु रघुबर समुझाए । पुनि रिपुदवनु हरखि हिय लाए ॥२॥

अर्थ : वह सङ्कोच है और रस कथनीय नही है। सुन्दर वाणी समय के स्नेह को स्मरण करके सङ्कुचित हो गयी। रामजी ने भरत से गले मिलकर उन्हे समझाया। तत्पश्चात् फिर शत्रुघ्नजी को हर्षित होकर हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : एक तो कठोर कहे जाने का सङ्कोच दूसरे वियोग में रसका उत्कर्ष संयोग से भी अधिक हो जाता है। सो राम और भरत के वियोग का रस सर्वथा अकथनीय है। अतः कवि की सुवाणी उस समय के स्नेह को स्मरण करके सङ्कुचित हो गयी। कुछ कह न सकी अर्थात् अपना नृत्य उसने वन्द कर दिया।

अब निष्कर्ष कहते हैं कि रामजी ने भरतजी से गले मिलकर उन्हे समझाया।

यथा : मै पितु बचन प्रमाण करि करि पूरन सुरकाज।
जब लगि आवत तात तुम पालहु राज समाज॥
अघटित घटना जो घटी सो सुर माया जानि।
सोच करहु' जनि ईस बस जीव सदा जिय जानि॥
निज स्वारथ हित सब सहत दु'ख सुख योग वियोग।
जग मंगल हित सहहि दु.ख तात धन्य ते लोग॥

शत्रुघ्न सबसे छोटे हैं। उन पर बडा वात्सल्य है। अत हर्ष से हृदय से लगा लिया।

सेवक सचिव भरत रुख पाई। निज निज काज लगे सब जाई॥
सुनि दारुन दुखु दुहूँ समाजा। लगे चलन के साजन साजा॥३॥

अर्थ सेवक और मन्त्री भरतजी का रुख पाकर अपने अपने काम मे सब लग गये। दारुण दु ख की बात सुनकर दोनो समाज चलने का साज सजने लगे।

व्याख्या सरकार के समझाने से भरतजी को प्रबोध हो गया। क्योंकि पादुका प्राप्त कर चुके थे। अत उनका चलने का रुख हुआ। रुख देखकर मन्त्री लोग अपने कार्य मे लगे। तिलक का साज साथ आया था। सबको सँभालकर ले चलना, सेना को आज्ञा देना, माताओ के चलने की व्यवस्था आदि मे तथा सेवक लोग अपनी अपनी सेवा सम्बन्धी व्यवस्थाओ मे लग गये। रुख पाकर कार्य करने की विशेषता। अयोध्याकाण्ड भर मे गोस्वामीजी ने दिखलाया है। चिन्तित कार्य करना ही उत्तम सेवक का लक्षण है। आज्ञा पाने पर कार्य करनेवाले मध्यम हैं। आज्ञा पाने पर भी आनाकानी करनेवाले अधम है।

दोनो समाज ने सुन लिया कि भरतजी विदा हो लिये। तो उन्हें दारुण दु ख हुआ। देवताओ की माया के काम करते रहने पर भी उनके प्रेम की मात्रा मे अधिक ह्रास नही हुआ। इतना ही हुआ कि वे दु:खी मन से चलने को तैयार हो गये। अपना अपना बोरिया बधना बाँधने लगे।

प्रभु पद पदुम बदि दोउ भाई। चले सीस धरि राम रजाई॥
मुनि तापस बनदेव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी॥४॥

अर्थ सरकार के चरण कमलो की वन्दना करके दोनो भाई रामजी की आज्ञा शिरोधार्य करके चले। मुनि तपस्वी और वनदेव का निहोरा किया। सबका बार बार सम्मान किया।

व्याख्या दोनो भाई भरतजी और शत्रुघ्नजी ने मिलने के बाद रामजी के चरण कमलो की वन्दना की और चल पडे। जो सरकार से प्राप्त होता है उसे भरतजी शिरोधार्य करते हैं। पादुका मिली उसे शिरोधार्य किया। यथा प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही। इस समय जाने के लिए आज्ञा हुई उसे भी शिरोधार्य किया। पहिले भरतजी ने कहा था अब गोसाइँ मोहि होइ रजाई। सेवहुँ अवध अवधि भरि जाई। सो आज्ञा मिल गयी कि अवधि भर अर्थात् मेरे लौटने तक जाकर राज्य की सेवा करो। अत आज्ञानुसार सेवा करने के लिए भरतजी चल। चलते समय मुनि तपस्वी और वनदेवो का भरतजी ने निहोरा किया। बार बार सम्मान किया कि आप लोगो ने बडी कृपा की। हम लोगो के दु ख सुख मे बडी सहानुभूति दिखलायी। ऐसी ही कृपा सदा बनी रहे इत्यादि।

दो. लखनहिं भेटि प्रनामु करि, सिर धरि सिय पद धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि, सकल सुमगल मूरि ॥३१८॥

अर्थ लक्ष्मणजी से गले मिलकर और प्रणामपूर्वक सीताजी की चरण की धूलि सिर पर धारण करके सकल सुमङ्गल मूल आशीर्वाद श्रवण करके प्रेम के साथ प्रस्थान किया।

व्याख्या : इस समय लक्ष्मणजी सीताजी के सन्निकट थे। सो दोनो भाई लक्ष्मणजी से मिले। प्रणामादि प्रक्रिया मिलने के ही अन्तर्गत है। तत्पश्चात् भगवती जनकनन्दिनी को प्रणाम करके उनकी चरण की धूलि को सिर पर धारण किया। भगवती की चरण धूलि की महा महिमा भरतजी जानते हैं। आये तब भी उस धूलि को सिर पर धारण किया था। जाने के समय भी सिर पर धारण कर रहे हैं। इस समय भगवती ने स्पष्ट शब्दो मे आशीर्वाद दिया। पहिले से ही चित्त को सावधान आशीर्वाद देने के लिए किये हुए हैं। माता का आशीर्वाद अमोघ है। यथा · आसिस तव अमोघ विख्याता। अत सुमङ्गल मूल कहते हैं।

सानुज राम नृपहि सिर नाई। कीन्हि बहुत बिधि बिनय बड़ाई ॥
देव दया बस बड़ दुखु पायेउ। सहित समाज काननहि आयेउ ॥१॥

अर्थ . लक्ष्मण के सहित रामजी ने जनकजी को प्रणाम किया और बहुत विधि से विनय और स्तुति की। कहा कि राजन्! आपने दया परवश होकर बहुत दु ख पाया। समाज के सहित वन मे चले आये।

व्याख्या : भरतजी के विदा होने पर लक्ष्मणजी ने समझ लिया कि अब सरकार जनकजी को विदा करेंगे। अत लक्ष्मणजी रामजी के पास चले आये और उनके साथ जनकजी को प्रणाम किया। श्री रामजी ने जनकजी की स्तुति की। ऐसे अवसर पर बडों की स्तुति करना प्राप्त है। विनय भी किया। सक्षेप में स्तुति कहते है कि आप ब्रह्मज्ञानियो के सरदार हैं। आपकी सब मे समदृष्टि है। अत आपके लिए अपना पराया कुछ भी नही। आपका कष्ट उठाना केवल दयापरवश होने से होता है। सो आपने बडा कष्ट उठाया। समाज के सहित जनकपुर से यहाँ वन मे चले आये।

पुर पगु धारिअ देइ असीसा। कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा ॥
मुनि महिदेव साधु सनमाने। बिदा किए हरि हर सम जाने ॥२॥

अर्थ : अब आशीर्वाद देकर पुर को पधारिये। महाराज ने धैर्य धारण करके प्रस्थान किया। मुनिगण, साधुगण, ब्राह्मणों का सम्मान करके हरि और हर के समान करके विदा किया।

व्याख्या : सरकार जनकजी से कहते हैं कि आपको कष्ट उठाते बहुत दिन हुए। सो अब हम लोगो को आशीर्वाद दीजिये। आपके आशीर्वाद से ही हम लोगो का मङ्गल होगा और अब राजधानी को सनाथ कीजिये। महाराज स्नेह से विह्वल

हो रहे थे। रामजी का वचन सुनकर धैर्य धारण किया और चल पडे। फिर भी स्पष्ट शब्दो मे आशीर्वाद न दे सके।

तत्पश्चात् सरकार ने मुनिगणो ब्राह्मणो और साधुओं को विदा किया। उन लोगो का सम्मान हरि और हर की भाँति किया। त्रिदेव मे ब्रह्मा विष्णु और महादेव तीन देवता हैं। सो अपूज्य होने से ब्रह्मदेव का उल्लेख कवि ने नही किया।

सासु समीप गये दोउ भाई। फिरे बंदि पग आसिप पाई ॥
कौसिक बामदेव जावाली। पुरजन परिजन सचिव सुचाली ॥३॥

अर्थ : दोनो भाई सास के पास गये और चरणवन्दना की तथा आशीर्वाद पाकर लौटे। विश्वामित्र, वामदेव, जावालि, परिजन, पुरजन तथा सज्जन मन्त्रियों को।

व्याख्या : फिर दोनो भाई सास से मिलने जनकजी के डेरा पर गये। जाकर चरणवन्दना की। महाराज आशीर्वाद न दे सके। दोनो भाइयो के मिलन प्रीति देखने से अत्यन्त विह्वल हो गये थे। सास ने नही देखा था। अतः वे आशीर्वाद देने मे समर्थ हुईं।

जनक समाज को विदा करके सरकार धनुर्वेद के गुरु विश्वामित्र गर्भज्ञानी वामदेव तथा जावालि महर्षि तथा परिजन, पुरजन, सज्जन तथा मन्त्रियो को सम्मान करके लौटाया। परिजन पुरजन और मन्त्रिगण अपने अपने कामो मे लगे थे। अत उनके पास जा जाकर कृपानिधि ने सबका सत्कार किया सरकार का स्वभाव सज्जन सदाचारी के पास स्वय जाने का है। सुचाली शब्द से कवि ने वही बात जनायी।

जथा जोगु करि बिनय प्रनामा। बिदा किये सब सानुज रामा ॥
नारि पुरुष लघु मध्य बडेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे ॥४॥

अर्थ : यथा योग्य विनय प्रणाम करके भाई के साथ रामजी ने विदा किया। कृपानिधान ने सब छोटे मध्यम और बडे स्त्री और पुरुषो को सम्मान करके लौटाया।

व्याख्या : प्रणाम मे भी दर्जा है। कोई वाङ्मात्र पूजन का अधिकारी है। किसी का चरण स्पर्श किया जाता है। किसी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया जाता है। इसी प्रकार से विनय मे भी त रतम्य है। अत रामजी ने भाई के सहित सभी पूज्य महानुभावो को यथायोग्य प्रणाम तथा विनय पूर्वक विदा किया। पूज्यपूजा व्यतिक्रम नही होने पाया। प्रभु कृपानिधि हैं। शेष लोगो मे जो छोटे बडे मध्यम स्त्री और पुरुष थे उन सबका सम्मान करके घर लौटाया। सामान्य लोगो की विदाई न कह कर सम्मानपूर्वक घर लौटाना कहा।

दो. भरत मातु पद बंदि प्रभु, सुचि सनेह मिलि भेंटि।
बिदा कीन्ह सजि पालकी, सकुच सोच सब मेटि ॥३१९॥

अर्थ · भरतजी की माता के चरणों की वन्दना करके पवित्र प्रेम से उनसे मिले भेंटे। उनका सङ्कोच और सोच को मिटाकर पालकी सजाकर विदा किया।

व्याख्या : अब माताओ को विदा करना शेष रहा। सो जिस भाँति : प्रथम राम भेंटी कैकेई। उसी भाँति पहिले कैकेयी को ही विदा किया। पवित्र स्नेह से न मिलने का यथेष्ट कारण था। अत· कवि कहते है कि पवित्र स्नेह से मिल भेटकर : गले लगाकर विदा किया। उनका सङ्कोच और सोच दूर किया। उनके आने पर भी सरल स्वभाव और भक्ति से मिले थे पर देखा कि उनका सङ्कोच और सोच गया नही है। बिना बात स्पष्ट किये सङ्कोच सोच जा नही सकता। अत. देवमाया के भेद को स्पष्ट कहकर और भूभार उतारने के लिए वन जाने की आवश्यकता बतलाकर उसे सोच सङ्कोच से विनिर्मुक्त किया। सम्मान के लिए स्वय पालकी सजाकर उस पर विठाया।

परिजन मातु पितहिं मिलि सीता। फिरी प्रानप्रिय प्रेम पुनीता॥
करि प्रनामु भेंटी सब सासू। प्रेम कहत कबि हिय न हुलासू॥१॥

अर्थ : प्राणपति मे जिसका पवित्र प्रेम है। ऐसी सीताजी परिजन माता और पिता से मिलकर लौट आयी। तत्पश्चात् प्रणाम करके सब सासो से मिली। प्रेम के वर्णन करने मे कविहृदय मे हुलास नही है।

व्याख्या : जब भरतजी प्रणाम करने आये और आशीर्वाद लेकर चले गये तब यह समझकर कि विदाई हो रही है सीताजी जनकजी के डेरे पर गयी। उसी समय दोनो भाई राम और लक्ष्मणजी भी सास से मिलने आये। सीताजी पहिले परिजनो से मिली। पीछे माता और पिता से मिलकर लौट आयी। क्योकि प्राणप्रिय रामचन्द्र मे उनका पुनीत प्रेम है। यथा : प्रीति पुरातन लखै न कोई। तथा : मन बिहँसे रघुबसमनि प्रीति अलौकिक जानि।

अवध प्रान्त की रीति है कि बेटियाँ माँ से मिलती है प्रणाम नही करती। माताएँ भी बेटियो से मिल लेती हैं आशीर्वाद नही देती। तदनुसार कवि ने भी सीताजी का माता आदि से मिलना ही कहा। प्रणाम आशीर्वाद नही कहा।

लौटने पर सीताजी सास लोगो के डेरो पर गयी। उनसे प्रणाम करके तब मिली। उस समय जो प्रेम का दृश्य हुआ वह ऐसा करुणामय था कि उसके लिखने मे कवि के हृदय मे उल्लास नही होता। अत नही लिखा।

सुनि सिख अभिमत आसिष पाई। रही सीय दुहु प्रीति समाई॥
रघुपति पटु पालकी मँगाई। करि प्रबोधु सब मातु चढाई॥२॥

अर्थ : शिक्षा सुनकर और जो चाहा आशीर्वाद पाकर सीता दोनो ओर को प्रीति मे मग्न हो गयी। रामजी ने अच्छी पालकियाँ मँगायी और समझा बुझाकर सब माताओ को चढाया।

व्याख्या · सास लोगो ने शिक्षा दी कि इस भाँति पति तथा देवर के साथ

बर्ताव करना इत्यादि और मनचाहा आशीर्वाद दिया कि परमेश्वर तुम्हे पति देवर के साथ कुशलपूर्वक वन से घर लौटावें। यथा : पति देवर सग कुसल बहोरी। आइ करौ जेहि पूजा तोरी। तब से रामजी भी कैकेयी को विदा करके आगये। सीताजी मैके और ससुराल दोनो ओर की प्रीति मे मग्न हो रही थी।

रामजी ने अच्छी पालकियाँ मँगायी। माताओकी इच्छा जाने की नही। अत उन्हे समझाया। यथा :

अवधि मात्र धीरज धरिअ अम्ब समुझि बिधि बाम।
जेहि पावै परितोष नृप अधिक बसत सुर धाम॥
तुम्हरे दुख कीन्हे अधिक पीर भरत हिय होइ।
रहैं सुखी जेहि बिधि भरत सब मिलि कीजै सोइ॥
त्यागि मोह ममता सकल सिर धरि ईस रजाय।
भजिय ताहि ससार भ्रम जाते जाय नसाय॥

एवं समझा बुझाकर पालकियो पर चढाया।

बार बार हिलि मिलि दुहु भाई। सम सनेह जननी पहुँचाई॥
साजि बाजि गज बाहन नाना। भूप भरत दल कीन्ह पयाना॥३॥

अर्थ : दोनो भाई बार बार हिल मिलकर समान स्नेह के साथ माताओ को पहुँचाया। घोडे हाथी आदि अनेक प्रकार के वाहनो का साजकर राजा जनक और भरत की सेनाओ ने प्रस्थान किया।

व्याख्या : सब माताओ से हिलने मिलने मे लक्ष्मणजी साथ हैं। माताओ के साथ ठीक बच्चो सा भाव वात्सल्य की दृढता के लिए दर्शाया। सब माताओ के समान स्नेह के साथ सेना तक पहुँचाया।

इधर सेना भी आयी थी। इससे गजबाजि का सजाना लिखते हैं। आने के समय दोनो सेनाएँ अलग-अलग आयी। अब विदा होकर साथ साथ चल रही है। क्योकि जनकजी अवध जाना चाहते हैं। जनकजी बडे हैं। इससे उनकी सवारी आगे आगे चल रही है। भरतजी समाज सहित उनके पीछे है।

हृदय रामु सिय लखनु समेता। चले जाहिं सब लोग अचेता॥
बसह बाजि गज पसु हिय हारे। चले जाहिं परबस मन मारे॥४॥

अर्थ : लक्ष्मण के सहित राम जानकी हृदय मे हैं। सब लोग अचेत चले जा रहे हैं। बैल घोडे हाथी आदि पशु मन मारे हिय हारे परवश मे पडे चले जा रहे हैं।

व्याख्या : राम जानकी तथा लक्ष्मण को साथ नही ले जा सके तो उनकी मनोमयी मूर्तियों को हृदय मे धारण किये हुए चले जा रहे हैं। पर साक्षात् उनका साथ नही है। अत. अचेत हैं। अर्थात् अन्तर्यामी की प्रेरणा से चले जा रहे हैं। मन जाने का अब भी नही है।

अचेत का उदाहरण देते हुए लिखते हैं कि सेना में क्रम नही है। पहिले बैल चल रहे हैं। सबसे आगे चलनेवाले घोड़े उनके पीछे हैं। हाथी बीच मे चल रहे हैं। वेसर महिष उनके पीछे हैं। उनका मन भी जाने का नही है। पर पराये वश में हैं। अतः हियहारे चले जा रहे हैं। उत्साह उन्हे भी नहीं है।

दो. गुर गुरतिय पद बंदि प्रभु, सीता लखन समेत।
फिरे हरख बिसमय सहित, आये परन निकेत ॥३२०॥

अर्थ : सरकार सीता और लक्ष्मण के सहित गुरु और गुरु की स्त्री के चरणो की वन्दना करके हर्ष और विस्मय के साथ लौटे और अपने पर्णकुटी मे आये।

व्याख्या : सबसे प्रधान होने के कारण अन्त मे भगवती अरुन्धती के साथ वसिष्ठजी की वन्दना की। गुरुजी भी जनकीजी की भाँति धैर्य सँभाले रह गये। आशीर्वाद तक न दे सके। गुरुजी की वन्दना है। धर्मकृत्य है। अतः सपत्नीक वन्दना किया। यथा : धरे चरन सिय सहित बहोरी। रघुनाथजी हर्ष विस्मय रहित हैं। सो हर्ष विस्मय सहित लौटे। सङ्कोचवश सङ्कट मे पडे थे। उसके छूटने से हर्ष और प्रिय परिजन के वियोग से विस्मय।

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदय बड बिरह बिषादू ॥
कोल किरात भिल्ल बनचारी। फेरे फिरे जोहारि जोहारी ॥१॥

अर्थ : सम्मान करके निषाद को विदा किया। वह चल पडा। उसके हृदय मे बडा विरह और विषाद था। कोल किरात भील वन के रहनेवाले लौटने पर जोहार कर करके लौटे।

व्याख्या : सबके पीछे विदा किया। क्योंकि निषादराज पर्णकुटी के यहाँ बैठे रह गये थे। सरकार लौटकर आये तब उसका सम्मान करके विदाई की। निषादराज विदा करने पर चल तो पडे पर उनकी इच्छा जाने की नही थी। सरकार के विरह से उनके हृदय मे बड़ा विषाद हुआ था।

कोल किरात भील आदि वन के रहनेवाले सरकार के यहाँ इतने अतिथियो का आना देखकर आप से आप सेवा के लिए उपस्थित हो गये थे। इतने दिन साथ रहने से उन्हे सरकार का साथ छोडा अच्छा नही लगता था। अत सरकार ने कहा कि अब तुम लोग अपने अपने निवास स्थान को लौट जाओ। तब जोहार करके लौटे।

प्रभु सिय लखन बैठि बट छाही। प्रिय परिजन बियोग बिलखाही ॥
भरत सनेहु सुभाउ सुबानी। प्रिया अनुज सन कहत बखानी ॥२॥

अर्थ : प्रभु सीताजी लक्ष्मणजी वट की छाया के तले बैठकर प्रिय परिजन के वियोग मे बिलखने लगे। भरतजी का स्नेह स्वभाव सुवाणी सरकार प्रिया और अनुज से बखान करके कहने लगे।

व्याख्या इस समय वट तले कोई नहीं है। केवल यही तीन प्राणी बैठे हैं और प्रिय परिजन के वियोग में बिलख रहे हैं। उधर वे लोग भी विरह मे अचेत चले जाते थे। ये यथा मा प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम्। यह युक्ति चरितार्थ हो रही थी।

सरकार भरत के स्वभाव स्नेह और सुवाणी का वर्णन प्रिया और अनुज से करने लगे।

भरत का स्वभाव यथा भरत सुभाउ न सुगम निगमहू।
भरत का स्नेह यथा होत न भूतल भाव भरत को।
सचर अचर चर अचर करत को॥
भरत की सुवाणी यथा बिमल विवेक धरम नय साली।
भरत भारती मंजु मराली॥

प्रीति प्रतीति बचन मन करनी। श्रीमुख राम प्रेम बस बरनी॥
तेहि अवसर खग मृग जल मीना। चित्रकूट चर अचर मलीना॥३॥

अर्थ रामजी ने भरतजी के मनसा वाचा कर्मणा प्रीति प्रतीति का वर्णन प्रेम के वश होकर श्रीमुख से किया। उस अवसर मे चित्रकूट के पक्षी मृग और पानी की मछलियाँ चर और अचर सब उदास हो गये।

व्याख्या सरकार प्रेम के वश म हैं। इसलिए श्रीमुख से भरतजी के मनसा वाचा कर्मणा प्रीति प्रतीति का वर्णन सीताजी और लक्ष्मणजी स कर रहे हैं। सच्चा बखान वही है जो सामने भी किया जाय और पीठ पीछे भी किया जाय। यथा बामदेव रघुकुल गुर ज्ञानी। बहुरि गाधिसुत कथा बखानी। यह बखान विश्वामित्रजी के चले जाने पर किया गया। जो कि उनकी कथा का बखान उनके सामने हो चुका था।

यथा मुनि मन अगम गाधिसुत करनी।
मुदित बसिष्ठ बिपुल बिधि बरनी॥
बोले बामदेव सब साँची।
कीरति कलित लोकतिहुँ माँची॥

उस समय चित्रकूट के आकाशवासी खग पृथ्वी पर के रहनेवाले मृग तथा जल मे की रहनेवाली मछलियाँ जिन्हे दर्शन का भी सौभाग्य प्राप्त न था सबके सब खिन्न हो गये। चर और अचर के उदास होने का कारण यह है कि चित्रकूट के अधिष्ठात्री देवता स्वय इस वियोग के दृश्य को देखकर दुःखी हो गये थे।

बिबुध बिलोकि दसा रघुबर की। बरषि सुमन कहि गति घर घर की॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह भरोसो। चले मुदित मन डर न खरो सो॥४॥

अर्थ देवताओं ने रामजी की दशा देखकर फूलों की वर्षा की और घर घर

की जो गति हो रही थी सो निवेदन किया। प्रभु ने प्रणाम करके भरोसा दिया। प्रसन्न होकर चले। उन्हे तृण के समान भी भय नही रह गया।

व्याख्या : सरकार को पीड़ित देखकर मन पलटने के लिए देवताओं ने पुष्प की वर्षा की और रावण के कारण जो दशा उन लोगो की हो रही थी उसका पृथक् पृथक् वर्णन किया। उसमे सरकार के हृदय से वीररस का उदय हो। दूसरी बात यह भी है कि वनवास के प्रधान कारण होने से अपने को सापराध भी मानते हैं। अतः अपनी अपनी पीड़ा को कथा कह सुनायी कि बिना सरकार के आये हम लोगो की पीड़ा मिट नही सकती थी इसलिए हम लोग निरुपाय थे।

सरकार मर्यादापुरुषोत्तम हैं। अत' प्रणाम किया और उन लोगो को भरोसा दिया कि अब मैं आगया। अब आप लोग चिन्ता न करें। सुनकर देवता लोग प्रसन्न हो गये। सरकार के अप्रसन्न होने का भय जाता रहा और सरकार के भरोसा देने से रावण से पिण्ड छूटने का दृढ विश्वास हो गया। अत अपने अपने लोक को चले। नही तो जब से भरतजी चले थे देवता लोग साथ थे। उन्हे बड़ी उत्सुक्ता थी कि देखें क्या होता है।

दो. सानुज सीय समेत प्रभु, राजत परन कुटीर।
भगति ग्यानु बैराग्य जनु, सोहत धरे सरीर ॥३२१॥

अर्थ : लक्ष्मण और सीताजी के साथ सरकार पर्णकुटी मे ऐसे शोभित हैं जैसे भक्ति ज्ञान और वैराग्य शरीर धारण करके शोभित हो।

व्याख्या : यहाँ कवि सरकार की कथा को विश्राम दे रहे हैं। पहिले जब आकर चित्रकूट मे ठहरे थे। तब आनन्द का वर्णन करते हुए कहा था : राम लखन सीता सहित सोभित परन निकेत। जिमि वासव बस अमर पुर सची जयन्त समेत। इस समय प्रभु वियोगावस्था मे है। इसलिए पर्ण निकेत न कहकर पर्ण कुटीर कह रहे हैं। लक्ष्मणजी की उपमा जयन्त से न देकर वैराग्य से दे रहे हैं। सीताजी को शची न कहकर भक्ति कह रहे हैं। सरकार को वासव न कहकर सशरीर ज्ञान से उपमित कर रहे हैं। निर्गलितार्थ यह कि सरकार जिस अवस्था मे रहे उसी मे उनकी शोभा है। यहां कथा को विश्राम देकर अब जहाँ से भरतचरित्त छोड़ा था वही से उठाते हैं।

१३. पादुका सहित अवध प्रत्यागमन प्रसङ्ग

मुनि महिसुर गुर भरत भुआलू। राम बिरह सब साज बिहालू ॥
प्रभु गुन ग्राम गनत मन माही। सब चुपचाप चले मग जाही ॥१॥

अर्थ : मुनि, ब्राह्मण लोग, गुरुजी, भरतजी तथा राजा जनक तथा सब साज समाज रामजी के विरह मे बेहाल हो रहा है। सरकार के गुणग्राम को मन मे गुनते हुए सब चुपचाप रास्ते मे चले जा रहे हैं।

व्याख्या : बसह बाजि गज पसुहिय हारे। चले जात परबस मन मारे। यहाँ से प्रसङ्ग छोड़ा था। अब : राम बिरह सब साज बिहालू। कहकर उसी प्रसङ्ग को फिर से उठाते हैं। पहिले कह आये हैं : हृदय राम सिय लखन समेता। चले जात सब लोग अचेता। उसी बात को : प्रभु गुन ग्राम गुनत मन माँही। पद से कह रहे हैं। चले जात सब लोग अचेता : का अनुवाद करते हुए कहते हैं : सब चुपचाप चले मग जाही।

जमुना उतरि पार सबु भएऊ। सो बासर बिनु भोजन गएऊ ॥
उतरि देवसरि दूसर बासू। रामसखाँ सब कीन्ह सुपासू ॥२॥

अर्थ : यमुना उतरकर सब लोग पार हुए। वह दिन बिना भोजन के बीत गया। दूरे दिन गङ्गापार करके डेरा डाला। रामसखा निषादराज ने सब सुभीता किया।

व्याख्या : लौटते समय सीधा रास्ता पकड़ा। पहिले ही दिन यमुना पार करके डेरा डाला। जिसमे सबेरे नाव पर चढने उतरने का टण्टा न रहे। विषादी को भूख नही लगती। अतः किसी ने कुछ खाया नही। प्रयागराज जाना नही था। इसलिए दूसरे दिन गङ्गापार करके डेरा डाला। दो दो सेना एक साथ चल रही हैं। अत॰ सिवा नदी के किनारे के दूसरी जगह पड़ाव पड़ नही सकता। गङ्गा पार होने पर शृङ्गवेरपुर मे आगये। वहाँ निषादराज का निवास स्थान है। अतः उसने सब सुभीता कर दिया।

सई उतरि गोमती नहाये। चौथें दिवस अवधपुर आये ॥
जनकु रहे पुर बासर चारी। राज काज सब साज सँभारी ॥३॥

अर्थ : फिर सई उतरकर गोमती नदी मे स्नान किया। चौथे दिन अयोध्या पहुँच गये। जनकजी चार दिन राजधानी मे रहे। राजकाज और सब साज को सँभाला।

व्याख्या : जाते समय : तमसा प्रथम दिवस करि बासू। दूसर गोमति तीर निवासू। सई तीर बसि चले बिहाने। लौटाते समय पहिले सई पड़ी। तब गोमती पड़ी। दो दिन का रास्ता एक दिन मे तय किया। अवध पुर आये : कहने से ही तमसा पार होना कह दिया गया।

जनकजी का पहिले पहल अयोध्या आना ग्रन्थकार लिखते हैं। अयोध्या आकर जनकजी चार दिन ठहरे। इसी बीच मे वहाँ के शासन प्रणाली का निरीक्षण किया। सेना कोष दुर्ग आदि की व्यवस्था का निरीक्षण किया। देख लिया कि सब ठीक है। तब :

सौंपि सचिव गुर भरतहि राजू। तेरहुति चले साजि सब साजू ॥
नगर नारि नर गुर सिख मानी। बसे सुखेन राम रजधानी ॥४॥

अर्थ मन्त्री गुरु और भरत को राज्य सौंपकर सब साज सजकर मिथिला को प्रस्थान किया। नगर के नर नारी गुरुजी की शिक्षा मानकर सुख से रामजी की राजधानी मे बसे।

व्याख्या जनकजी ने राज्य की व्यवस्था मन्त्रियो के जिम्मे किया। गुरुजी को निरीक्षण का भार दिया। शासन भरतजी के सुपुर्द करके मिथिला को प्रस्थान किया। सेना साथ है। इसलिए सब साज साजना कहते हैं। सौंपने का भाव यह कि यह थाती रामजी की है। जब तक वे न लौटें तब तक सँभालो। कोई अड़चन आ पड़े तो मुझे समाचार दो।

लोगो ने सुना कि रामजी नही लौटे। अत वे बड़े दु खी हुए। उनका मन उचटा हुआ है। अवध म बसना नही चाहते। पर गुरुजी ने सबको समझाया कि रामजी नही लौटे यह ठीक है। पर राज उन्होंने स्वीकार कर लिया। यह राज उन्ही का है और उन्ही की राजधानी है। उनकी अनुपस्थिति म राज्यभार भरतजी के ऊपर है। आप लोग किसी बात की चिन्ता न करें। इस भाँति गुरुजी के प्रबोध करने पर सब लोग सुख से बसे।

दो राम दरस लगि लोग सब, करत नेम उपवास।
तजि तजि भूषन भोग सुख, जिअत अवधि की आस ॥३२२॥

अर्थ रामजी के दर्शन के लिए सब लोग नियम और उपवास करने लगे। भूषण और भोग सुख को छोड दिया। रामजी के दर्शन की आशा से सब जी रहे हैं।

व्याख्या फिर लोगो का नियम उपवास आरम्भ हो गया। नियम यथा पय अहार फल असन इक । उपवास यथा निसि भोजन इक लोग। काम्य कर्म सब लोगो ने बन्द कर दिया। भूषण से आभिमानिक सुख होता है। अत उसे भी छोडा। उस भाँति अनुष्ठान करने से ही इष्ट की प्राप्ति होती है। इन लोगो की इष्टप्राप्ति रामजी का दर्शन है। ये उसी की आशा से जीवन धारण कर रहे हैं।

२४ भरत रहनि प्रसङ्ग

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निज निज काज पाइ सिख ओधे ॥
पुनि सिख दीन्हि बोलि लघु भाई। सौंपी सकल मातु सेवकाई ॥१

अर्थ भरतजी ने मन्त्रियो और सुसेवको को समझाया। वे सब शिक्षा पाकर अपने अपने काम मे लग गये। फिर छोटे भाई को बुलाकर शिक्षा दी। सब माताओ की सेवा उन्हे सौंपी।

व्याख्या नगर के लोगो को गुरुजी ने समझाया और वे उनका कहना मानकर अवध मे सुख से बसे। गुरुजी आज्ञा मे रामजी भी हैं। भरतजी भी हैं। अत जो गुरुजी ने कहा उसमे सन्देह करने के लिए किसी को स्थान नही है।

इसलिए प्रजा मात्र को दिलासा गुरुजी ने दिया और प्रजा ने उसे माना। जनकजी के सौपने के अनुसार गुरुजी ने कार्यारम्भ कर दिया।

इस समय शासक भरतजी है। पर वे राजकाज मे दिन रात व्यस्त रहना नही चाहते। अत मन्त्रियो और कामदारो को बुलाकर[1] समझाया कार्य विभाग करके उन लोगो मे काम बाँट दिया और वे लोग अपने अपने काम मे लग गये। अब रह गयी माताओ की सेवा। उसे छोटे भाई शत्रुघ्न के सुपुर्द किया। दूसरे से यह सेवा बन नही सकती थी और उन्हे तत्सम्बन्धी शिक्षा भी दी।

भूसुर बोलि भरत कर जोरे। करि प्रनाम बय बिनय निहोरे ॥
ऊँच नीच कारजु भल पोचू। आयसु देब न करब सकोचू ॥२॥

अर्थ ब्राह्मणो को बुलाकर भरतजी ने हाथ जोडे और प्रणाम करके विनय निहोरा किया कि ऊँचा नीचा भला बुरा जो काम हो उसके लिए आज्ञा दीजियेगा। सङ्कोच न कीजियेगा।

व्याख्या भरतजी ने तत्पश्चात् ब्राह्मणो को बुलवाया। ये पृथ्वी के देवता हैं। इनकी प्रजा मे गिनती नही है। प्रजा मे गिनती वैश्य और शूद्र की है। इसलिए राजा विशाम्पति कहलाता है। ब्राह्मणो के लिए किसी पर दावा करने का विधान नही है। वह अपने अपराधी को अपनी तपस्या के बल से दण्ड दे। अत भरतजी ने उन्हे प्रणाम किया। उनसे बहुत विनती की और उनका निहोरा किया कि जो उनकी आज्ञा मे न चले उनके लिए मुझे आज्ञा दें। सङ्कोच न करें कि नित्य उठकर आज्ञा देना भी अच्छा नही है। मै उस आज्ञा के लिए कृतज्ञ हूँगा और जिस प्रकार का कार्य हो उसके लिए मुझे आज्ञा मिले। इस बात का सङ्कोच न किया जाय कि अमुक कार्य ऐसा तुच्छ है। ऐसा छोटा है। इसके लिए भरत को कैसे कहे इत्यादि।

परिजन पुरजन प्रजा बोलाए। समाधानु करि सुबस बसाए ॥
सानुज गे गुरु गेहँ बहोरी। करि दडवत कहत कर जोरी ॥३॥

---

१ जब लगि प्रभु आवत नाही तब लगि सब अधिकार।
जो जाको जैसो रह्यो सो सब करै सँभार ॥
सम्मति रघुपति की सकल राज पाट धन धाम।
योग क्षेम बाढै सदा समुझि सँभारो काम ॥
दुखी प्रजा रघुपति विरह करहु तासु मनुहार।
करहि सकल सत भाव से वेद विहित आचार ॥
होय न पावै पाप कहुँ करिअ नित्य यह सोध।
रहै प्रजा सुख शान्ति से बढै न कतहुँ विरोध ॥
सेवक धर्म सँभारिये सजग होउ सब कोय।
परमधर्म सब को सदा स्वामी के हित होय।

अर्थ : परिजन पुरजन और प्रजाओ को बुलवाया। उनका उन्हे स्वतन्त्र करके बसाया। छोटे भाई के साथ गुरुजी के घर गये करके हाथ जोड़कर बोले।

व्याख्या : तत्पश्चात् परिजन अर्थात् कुटुम्बी क्षत्रियवर्ग को बु धानी के रहनेवाले तथा देशवासियो को बुलवाया। उनका समाधान कि सरकार धर्मशाप मे बँधे रहने के कारण नही लौटे फिर भी उन्होने रा कर लिया है। मैं तो उनकी आज्ञा से आप लोगो की सेवा करूँगा। आ व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य मे कोई बाधा नही पडने पायेगी।

फिर शत्रुघ्नजी को लिये हुए गुरुजी के पास गये। जिसमे जो कुछ उससे शत्रुघ्नजी परिचित रहे। वहाँ गुरुजी को दण्डप्रणाम किया और बोले

आयसु होइ त रहउँ सनेमा। बोले मुनि तन पुलकि सपेमा
समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई

अर्थ : आज्ञा हो तो नियमपूर्वक रहूँ। मुनिजी पुलकित होकर प्रेम से कि जो कुछ तुम समझोगे, कहोगे, करोगे, ससार मे वही धर्म का सार : तथ्य हो

व्याख्या : रामजी पिता की आज्ञा से मुनिव्रत वेप आहार स्वीकार किये हैं। उनके इस भाँति जीवन पालन करने पर मैं सुख नही चाहता। मैं भी भाँति रहना चाहता हूँ। पर उस भाँति रहने के लिए बडे की आज्ञा की आवश्यक है। सो आप यदि आज्ञा दें तो मैं उसी नियम से रहूँ। भरतजी की यह वा सुनकर मुनिजी प्रेम से पुलकित हो उठे और बोले कि तुम्हारी ऐसी स्थिति ह गयी है कि जो तुम मन मे समझोगे, वाणी से कहोगे, और कर्म से आचरण करोगे वही धर्म का सार होगा। अर्थात् तुम साक्षात्कृतधर्मा हो गये। तुम्हारे लिए किसी की आज्ञा की आवश्यकता न रह गयी और न धर्मशास्त्र देखने की आवश्यकता रही।

दो. सुनि सिख पाइ असीस बड़ि, गनक बोलि दिनु साधि।
सिघासनु प्रभु पादुका, बैठारे निरुपाधि ॥३२३॥

अर्थ : शिक्षा सुनकर और बहुत बडा आशीर्वाद पाकर ज्योतिपियों को बुलाकर सुदिन निश्चय किया और सरकार को पादुकाओ को सिंहासन पर निर्विघ्न प्रतिष्ठित कर दिया।

व्याख्या : मुनिजी की शिक्षा हुई कि जो कुछ तुम सोच रहे हो। उसे नि.सन्देह कर डालो। क्योंकि वही धर्म होगा। संसार धर्म के अनुसार चलकर अपने को कृत-कृत्य मानता है। परन्तु तुम जो आचरण करोगे वही धर्म होगा। यह इतना बड़ा आशीर्वाद है जो किसी को कभी मिला नही। अत: भरतजी ने ज्योतिपियों को बुलाकर शुभ मुहूर्त निकलवाया और उसी मुहूर्त मे सरकार की पादुका को सिंहासनारूढ़ किया। इस प्रकार से पिता की आज्ञा से जो राज्य मिला था उसे रामजी को

अर्पण किया। पितु आयसु पालिअ दोउ भाई कहकर जो रामजी ने आज्ञा दी थी उस वचन को भी पूरा किया। इसके लिए गुरुजी से सुदिन नही पूछा। गुरुजी तो सरकार के अभिषेक का सुदिन बतलावेंगे। यथा गुरु वसिष्ठ द्विज लिये बुलाई। आज सुघरी सुदिन समुदाई। रामजी के अभिषेक मे उपाधि उठ खडी हुई थी। अत भरतजी ने सरकारी पादुका को निर्विघ्न सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया।

इस सिंहासन पर पादुका प्रतिष्ठत हो चुकी है। इस पर सरकार का अभिषेक होना ठीक नही। यही समझकर प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा। तुरत दिव्य सिंहासन माँगा। रबि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन्ह सिर नाई।

राम मातु गुर पद सिरु नाई। प्रभु पद पीठ रजायसु पाई॥
नंदिगाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा॥१॥

अर्थ रामजी की माता के और गुरुजी के चरणो मे प्रणाम करके और सरकार की पादुका की आज्ञा पा करके नन्दिग्राम मे पत्ते की कुटिया बनाकर धर्म धुरधीर भरतजीने निवास किया।

व्याख्या आज्ञा अपनी माता से ही माँगना उचित था। यथा बिदा मातु सन आवहुँ माँगी। पर भरतजी ने उनका त्याग किया था। यथा तज्यो पिता प्रहलाद बिभीषन बधु भरत महतारी। अत रामजी की माता से आज्ञा माँगी। उन्ही को माता मानते हैं। यहाँ केवल प्रणाम ही लिखा है। पर इस प्रणाम का तात्पर्य स्वीकृति प्राप्त करना है। गुरुजी की स्वीकृति तो मिल चुकी है। तत्पश्चात् स्वामी के अभाव म उनकी पादुका से आज्ञा ली। क्योकि वे ही बिमल नयन सेवा सुधरम के हैं। देवताओ के अस्त्र शस्त्र आभूषण वाहन सभी उनके स्वरूप से पृथक् नही होते। अत पादुका ने आज्ञा दे दी। यह तो आखर युग जनु जीव जतन के हैं। इनसे तो सरकार स्वय रत्न से मूल्य की भाँति प्रकट होते हैं। सो उन्हे प्रकट करके आज्ञा ले ली।

नन्दिग्राम तीन पुण्य [1]ग्रामो मे से एक है और राजधानी से अत्यन्त दूर है और न अत्यन्त निकट है। वही पर्णकुटी बनायी। सरकार को पर्णकुटी मे रहते देख आये हैं। अत महल मे न रहेंगे। धर्म धुरधीर हैं। अपने रहने के लिए पर्णकुटी बनायी।

जटा जूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुस साँथरी सँवारी॥
असन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा॥२॥

अर्थ सिर मे जटाजूट और वल्कल वसन धारण किया। पृथ्वी खोदकर कुश लेकर साथरी बनायी। भोजन, वसन, बरतन, व्रत, नेम आदि कठिन ऋषि धर्म को प्रेम के साथ करने लगे।

---

१ शालग्राम नन्दिग्राम [illegible]।

व्याख्या : देखा था कि सरकार वल्कल वसन और जटा धारण किये हुए हैं। अत. आप ने भी जटा धारण की और वल्कल वसन पहिना। देख आये हैं कि सरकार साँथरी पर सोते हैं। इसलिए भरतजी ने भी कुशाओ की साथरी बनायी। छिन्न मूल होने से कुशा अशुद्ध हो जाते हैं। इसलिए पृथ्वी खोदकर कुशा निकाले। सरकार का मुनिव्रत वेप आहार है। अत भरतजी ने भी उन्ही की भाँति भोजन वसन और वरतनो से काम लिया और व्रत तथा नियम जैसा वानप्रस्थ अवस्था मे किया जाता है करने लगे। वानप्रस्थ का धर्म वडा कठिन है। पर भरतजी प्रेम से उसका पालन करने लगे।

भूपन वसन भोग सुख भूरी। मन तन वचन तजे तिन तूरी ॥
अवधराजु सुरराजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनद लजाई ॥३॥

अर्थ : भूपण वसन और भोग के वडे भारी सुख को मनसा वाचा कर्मणा तृण के समान तोडकर फेंक दिया। अवध के राज्य को इन्द्र भी सिहाते थे और चक्रवर्तीजी के धन को सुनकर कुबेरजी भी लज्जित होते थे।

व्याख्या : धर्मशील महाराज दशरथ के राज्य मे सुख सम्पत्ति विना बुलाये ही चली आती थी। यथा रिधि सिधि सपति नदी सुहाई। उमगि अवध अवुधि कहँ धाई। कहि न जाइ कछु नगर विभूती। जनु एतनिअ विरचि करतूती। अत. अवध का राज्य ऐसा सुखसमृद्धि से भरा था और चक्रवर्तीजी के पास इतना धन था कि उसे त्रिलोकीनाथ इन्द्र और धनाधिप कुबेर ईर्ष्या करते थे। लज्जित होते थे कि लोकपाल होने पर भी हम राजा दशरथ के जोड के नही हैं। ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ विभूती।

तेहि पुर बसत भरत विनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥
रमा विलासु राम अनुरागी। तजत वमन जिमि जन बड़भागी ॥४॥

अर्थ . उस पुर मे भरतजी रागरहित होकर बसते हैं जैसे चम्पक बाग मे भौरा बसे। लक्ष्मी के विलास को वडभागी रामानुरागी वमन की भाँति त्याग देते हैं।

व्याख्या : ऐसे समृद्ध राज्य मे जहाँ : करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा। भरतजी विरक्त की भाँति रहते हैं। उन्हे सुख नही। क्योकि वे तो रामजी के चरण कमल के भौंरे हैं। वही सुख मानते हैं। चम्पक बाग मे उन्हे सुख कहाँ ? अयोध्या चम्पक बाग की भाँति सबको सुखदायी है पर भरत को नही। चम्पा मे गुन बहुत है रूप रग अरु बास। पर यह अवगुन एक है कि भँवर न आवे पास। सो दैवयोग से भरतरूपी भौंरे को अवधरूपी चम्पक बाग मे बसना पडा। अत उसमे विरक्त की भाँति वे बस रहे हैं।

कारण यह कि लक्ष्मी का विलास रामानुरागी के अनुकूल नही पडता है। वे उसे पचा नही सकते। अजीर्ण अन्न की भाँति वह उनके लिए महा कष्टकर होता है। वमन की भाँति उसे परित्याग करके ही वे सुखी होते हैं।

दो० राम पेम भाजन भरतु, बडे न येहि करतूति ।
चातक हस सराहिअत, टेक विवेक बिभूति ॥३२४॥

अर्थ रामजी के प्रेमपात्र भरतजी इस करतूति से बडे नही हैं। टेक की विभूति से चातक की और विवेक की विभूति से हस की प्रशसा होती है।

व्याख्या लक्ष्मी के प्रेम भाजन रामजी हैं। यथा जासु कृपा कटाच्छ सुर चाहत चितव न सोइ। राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोइ। और रामजी के प्रेम भाजन भरतजी हैं। भरतजी की ऐसी महिमा है कि उनके गुणो पर रामजी मुग्ध है और रामजी के गुणो पर लक्ष्मी मुग्ध हैं। अत लक्ष्मी के गुणो पर यदि भरतजी न मुग्ध हो तो उनके लिए कोई बात नही है। उनके लिए ऐसा टेक तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। और ऐसा विवेक तजत बमन जिमि जन बडभागी। कोई बडी बात नही है। टेक के लिए चातक की प्रशसा ठीक है। विवेक विभूति के लिए हस की प्रशसा उचित है। क्योकि वे पक्षी होकर ऐसा टेक और ऐसी क्षीर नीर विवरण की विभूति को धारण करते हैं।

देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटइ तेजु बलु मुखछवि सोई॥
नित नव राम पेम पनु पीना। बढत धरम दलु मन न मलीना॥१॥

अर्थ शरीर प्रतिदिन दुर्बल होकर घटता जाता था। पर तेज और बल नही घटता था और मुख की शोभा भी वैसी ही थी। नित्य नवीन रामप्रेम प्रण से पुष्ट होकर धर्म दल बढता जाता था और मन उदास नही होता था।

व्याख्या जिस भाँति कसरत करनेवालो का शरीर दुर्बल हो जाता है परन्तु उसमे कस बढता जाता है। उसी भाँति योग जप तप से शरीर की स्थूलता मात्र कम हुई तेज और बल नही। यथा करहि जोग जप तप तन कसही। यथार्थ बल के ह्रास न होने से मुख छवि मे अन्तर नही पडा। दल अर्थात् जप तप आदि नित्य नये रामप्रेम के प्रण से पुष्ट होकर बढते जाते थे। उदासी मन मे आने नही पाती थी। अत शरीर की दुर्बलता से कोई वास्तविक हानि नही थी। क्योकि दिव्य तेज और दिव्य बल जिनका सम्बन्ध धर्म से है वह बढ रहा था। बिना रामप्रेम के धर्म पुष्ट नही होता।

जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे॥
सम दम सजम नियम उपासा। नखत भरत हियँ बिमल अकासा॥२॥

अर्थ जिस भाँति शरद ऋतु के प्रकाश से जल तो घटता है परन्तु बेंत का विलास बढता है। कमल खिल जाते हैं। शम, यम, नियम, उपवासरूपी नक्षत्र भरत के निर्मल हृदयरूपी आकाश म शोभित होते हैं।

व्याख्या शरद ऋतु मे वर्षा की बुढाई आजाती है। इसलिए जल घटने लगता है। पर बेंत मे पत्ते नये नये बढ जाते हैं और कमल फूलने लगते हैं। यहाँ

भरतजी का शरीर ही तालाब है। वह मुनि व्रतरूपी शरद के आगमन से क्षीण तो होने लगा।

यहाँ भरतजी का शरीर जल है। वह नेमरूपी शरद के आगमन से नित्य घट रहा है। परन्तु जल का आश्रित वेंत बढ रहा है। उसके पत्ते पुष्ट हो रहे हैं। कमल विकसित हो रहा है। यहाँ धर्मदल को वेतसविलास से उपमित किया है और अम्लान मन को विकसित कमल से उपमित किया है। यहाँ दल शब्द मे श्लेष है। धर्म के पक्ष मे इसका अर्थ सेना होगा और वेंत के पक्ष मे पत्ता अर्थ किया जायगा। भावार्थ यह कि भरतजी की धर्म सम्पत्ति बढती जाती है और मन मे म्लानता नही आने पाती। शरदागमन से भरत का दहराकाश हृदयाकाश निर्मल हो गया है। शम, दम, नियम, उपवास आदि नक्षत्र स्पष्टरूप से चमक रहे हैं।

ध्रुव बिस्वासु अवधि राकासी। स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी॥
राम पेम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा॥३॥

अर्थ विश्वास ही ध्रुव तारा है। अवधि पूर्णिमा सी है। स्वामी की सुरति-रूपी सुरवी थी प्रकाशित हो रही है। रामजी का प्रेम ही निश्चल और निष्कलङ्क चन्द्रमा है जो समाज के सहित नित्य शोभायमान है।

व्याख्या : ताराओ मे ध्रुव अविचल है। यथा ध्रुव अबिचल कबहूँ न चलै। इसी भाँति भरतजी के हृदय मे रामजी के प्रति अविचल विश्वास है। वही ध्रुव है और चौदह वर्ष की अवधि ही पूर्णिमा तिथि है। बारहो पूर्णिमाओ मे शरद पूर्णिमा बडी सुन्दर होती है। इसी भाँति सयोगदशा के प्रेम से वियोग के समय के प्रेम मे अधिक चमत्कार है। स्वामी की स्मृतिरूपी सुरवीथी सम्पूर्ण आकाश मे फैली हुई है। उसका प्रकाश बहुत स्पष्ट हो रहा है एव राम प्रेमरूपी चन्द्रमा समाज के सहित भरतजी के हृदयरूपी निर्मल नभ मे नित्य अत्यन्त शोभायमान है। भेद इतना ही है कि यह चन्द्रमा सदा कलङ्कयुक्त है और चलायमान है। पर रामप्रेम-रूपी चन्द्र निश्चल और निष्कलङ्क है। वीथी की सख्या नव शास्त्रकारो ने बतलाया है। १ नाग वीथी २ गज वीथी ३ ऐरावती वीथी ४ आर्षभी वीथी ५ गो वीथी ६ जारद्गवी वीथी ७ अज वीथी ८ मार्गी वीथी और ९ वैश्वानरी वीथी। ये नवो वीथियाँ सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल मे फैली हुई है। तीन तीन नक्षत्र एक एक वीथी मे पडते हैं। इस भाँति सत्ताइस नक्षत्रो मे नव वीथियाँ है। स्मरण करने-वाले स्मरणीय के [1]गुणग्रामो को ही स्मरण करते है। अत. सुरवीथी से स्वामि सुरति को उपमित किया।

---

१. ये नवगुण गुरुजी के कहे हुए हैं जिनकी सुरति भरतलाल सदा किया करते है। यथा १. धर्म धुरीन २. भानुकुल भानू ३. राजाराम ४. स्ववस ५ भगवान् ६. सत्यसन्ध ७ पालक श्रुति सेतू ८. रामजन्म जग मगल हेतू ९ गुर पितु मातु बचन अनुसारी १०. खल दल दलन देव हितकारी।

भरत रहनि समुझनि करतूती । भगति बिरति गुन बिमल बिभूती ॥
बरनत सकल सुकबि सकुचाही । सेस गनेस गिरा गमु नाही ॥४॥

अर्थ : भरत का रहन सहन समझ और करतूत, उनकी भक्ति, उनका वैराग्य, उनकी निर्मल विभूति का वर्णन करने मे सभी सुकवि सङ्कुचित होते हैं। शेष गणेश और सरस्वती की गति नही है।

व्याख्या : १. भरत रहनि यथा : तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा।
चचरीक जनु चपक बागा ॥
२ समुझनि यथा : रमा बिलास राम अनुरागी।
तजत बमन जिमि जन बड़भागी ॥
३. करतूति यथा : रामप्रेम भाजन भरतु बडे न एहि करतूति।
चातक हस सराहिअत टेक बिबेक बिभूति ॥
४. भगति यथा : नित नव राम प्रेम पन पीना।
५ बिरति यथा : बढत धरम दल मन न मलीना ॥
६. गुन यथा : सम दम संजम नियम उपासा।
नखत भरत हिय बिमल अकासा ॥
७ बिमल बिभूति यथा : रामप्रेमु बिधु अचल अदोषा।
सहित समाज सोह नित चोखा ॥

भाव यह कि कवि समझ रहे हैं कि मुझसे वर्णन ठीक नही हुआ। अतः कहते हैं कि सभी सुकवि को सङ्कोच होता है। अतः मुझे सङ्कोच होना ठीक ही है। क्योकि भक्त की महिमा शेष शारदा भी नही कह सकते। स्वय सरकार कहते हैं : कहि सक न सारद सेप नारद सुनत पद पकज गहे। अस दीनबन्धु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे। गणेश और शारदा दोनो समकक्ष के योग्यतावाले हैं : एक वाङ्मय है और दूसरी वाग्देवता है। यथा : वर्णानामर्थसंघाना रसाना छन्दसामपि। मङ्गलानाञ्च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ। अतः गणेशजी के लिए भी वही बात कही गयी।

दो. नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति।
माँगि माँगि आयसु करत, राज काज बहु भाँति ॥३२५॥

अर्थ : नित्य प्रभु की पादुका की पूजा करते हैं, प्रीति हृदय मे समाती नही और आज्ञा माँग माँगकर बहुत भाँति के राजकार्य का सम्पादन करते हैं।

व्याख्या : नित पूजत प्रभु पाँवरी : कर्मणा। प्रीति न हृदय समात : मनसा। माँगि माँगि आयसु करत : वाचा। प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही। अतः करुणानिधान के चरणपीठ को सिंहासनारूढ किया। सीताराम की भावना से उसकी नित्य पूजा करते हैं और राजकार्य करने मे उसकी आज्ञा माँग लेते हैं। क्योकि वही : कुल कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन

सेवा सुधरम के : स्थानीय हैं। उसी के द्वारा भरतजी की जिज्ञासा सरकार तक पहुँचती है और वहाँ से जो आज्ञा होती है वह भरतजी तक पहुँच जाती है। उपासना के बल से पादुका टेलीफोन का काम दे रहा है।

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू ॥
लखन राम सिय कानन बसहीं। भरतु भवन बसि तपु तनु कसहीं ॥१॥

अर्थ : शरीर में पुलक है। हृदय में रामजानकी हैं। जिह्वा से नाम जप हो रहा है। नेत्रो मे जल है। लक्ष्मण राम और सीता तो वन में बसते हैं। पर भरतजी तो घर में ही रहते हुए तप से तन को कस रहे हैं।

व्याख्या : अब भरतजी की दशा कहते हैं। प्रेमातिशय से शरीर में पुलक और नेत्रों में जल बना रहता है। यह तो शरीर की दशा है और सदा हृदय मे रामजानकी का निवास रहता है। यह मन की दशा है और जिह्वा से नाम का जप चला जा रहा है। यह वचन की दशा है। लक्ष्मण राम और जानकी तो वनमें बसते हैं। फिर भी ऐसे रङ्ग से रहते हैं जैसे शची और जयन्त के साथ इन्द्र अमरावती मे रहते हैं। समय पाकर भगवती का पुष्प शृङ्गार भी हो जाता है। यथा : एक बार चुनि कुसुम सोहाए। निजकर भूषन राम बनाए। सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर। परन्तु भरतजी अयोध्या में ही रहते हुए ऋषियोंकी भाँति तप से शरीर को कस रहे हैं। यथा : अत्रि आदि मुनिवर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं।

दोउ दिसि समुझि कहत सबु लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू ॥
मुनि ब्रत नेमु साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं ॥२॥

अर्थ : दोनों ओर का विचार करके सब लोग कहते हैं कि सब प्रकार से तो भरत ही सराहना के योग्य हैं। भरतजी का नियम और व्रत सुनकर साधु सङ्कुचित होते हैं और दशा देखकर मुनीश्वर लज्जित हो जाते हैं।

व्याख्या : लोग रामजी का रहन सहन देख आये हैं और अब भरतजी का रहन सहन देखते हैं। दोनों का मिलान करते हैं तो इसी निश्चय पर पहुँचते हैं कि सब विधि से भरतजी की सराहना उचित है। रामजी तो पिता के वाक्य से वन में गये। मुनिव्रत वेष आहार स्वीकार किया। उनकी इस विधि से सराहना है। इधर भरतजी को पिता ने राज्य दिया। परन्तु भरतजी ने उसका परित्याग किया। सेवाधर्म को अग्रसर करके रामजी की पादुका को सिंहासनारूढ किया। अब उसी की सेवा करते हैं। मुनिजी की आज्ञा लेकर मुनिव्रत वेष आहार सम्पूर्ण भोग सामग्री के रहते हुए घर में रहकर कर रहे हैं। अतः भरतजी सभी विधि से प्रशंसा के योग्य हैं।

साधु लोग सब कुछ छोड़कर नियमव्रत करते हैं। सो भरतजी का नियम व्रत घर मे ही उनसे बढ़ा चढ़ा है। मननशील मुनि लोग वन मे रहकर स्थितप्रज्ञ होते

हैं। यहाँ भरतजी सदा प्रेम मे डूबाडूब रहते हैं। अत: इनकी दशा सुनकर साधु और मुनियो को सङ्कोच होता है : हम लोगो ने गृहस्थी छोडा फिर भी ऐसा नियम व्रत और भगवत् प्रेम का निर्वाह नही कर सकते। यही सङ्कोच है।

परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर मजु मुद मंगल करनू ॥
हरन कठिन कलि कलुप कलेसू। महामोह निसि दलन दिनेसू ॥३॥

अर्थ भरतजी का चरित्र परम पवित्र, मधुर, सुन्दर, मुद और मङ्गल का करनेवाला है। कठिन कलियुग के कलुप : पाप और क्लेश को हरण करनेवाला है और महामोहरूपी रात्रि को दूर करने के लिए तो सूर्य है।

व्याख्या कवि उपसहार करते है कि भरत का चरित्र परम पवित्र है। साधु और मुनियो के लिए भी अनुकरणीय है। बडा ही मधुर है। यथा : नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदय समाति। माँगि माँगि आयसु करत राज काज बहु भाँति। सुन्दर ऐसा है कि सब लोग सराहना करते हैं। यथा : सब बिधि भरत सराहन जोगू। मुद मङ्गल करण ऐसा है : सुनि व्रत नेम साधु सकुचाही। देखि दसा मुनिराज लजाही। प्रशस्त आचरण ही मङ्गल है तथा कलियुग मे पाप और क्लेश की तीक्ष्णता का आधिक्य है। उसे हरनेवाला है और महामोह को तो ऐसा नाश करता है जैसे सूर्य रात्रि का नाश करते हैं। कही अन्धकार का लेश नही रह जाता। क्लेश पाँच है : अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेप, भिनिवेश। आचरण म रहनि, समुझनि करतूति, भगति, विरति, गुन और विभूती इन सातो का अन्तर्भाव है।

पाप पुंज कुजर मृगराजू। समन सकल सताप समाजू ॥
जन रजन भजन भव भारू। राम सनेह सुधाकर सारू ॥४॥

अर्थ पापरूप हाथी के लिए तो सिंहरूप है। सन्ताप समाज के लिए यम-रूप हैं। भक्तो के मन को प्रसन्न करनेवाला, ससार के भार को दूर करनेवाला और राम के स्नेहरूपी चन्द्र का तो साररूप अमृत है।

व्याख्या : इन सातो की फलश्रुति कहते हुए बतलाते हैं कि भरतजी की रहनि : कठिन कलि कलुप और क्लेश को हरनेवाली हैं। उनकी समुझनि महामोह निसि दलन दिनेश हैं। उनकी करतूति : पापपुंज कुजर मृगराज हैं। उनकी भक्ति सकल सन्ताप समाज के लिए यमराज हैं। यमराज का ही नाम शमन है। यथा शमनो यमराड् यम। भरतजी की विरति जनरञ्जन है। उनके गुण भवभार भञ्जन है और उनकी विभूति : रामसनेह सुधाकर सार है।

छ. सिय राम प्रेम पियूप पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम विपम व्रत आचरत को ॥
दुख दाह दारिद दभ दूपन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को ॥

अर्थ : रामजानकी के प्रेम से भरे हुए भरत का यदि जन्म न हुआ होता तो मुनि के मन के लिए भी अगम यम, नियम, शम, दम और विषम व्रत का आचरण कौन करता ? दुःख जलन दरिद्र दम्भ और दूषण को सुयश के बहाने से कौन हरण करता ? कलिकाल में भी तुलसी ऐसे शठों को हठ करके रामजी के सम्मुख कौन करता ?

व्याख्या : सीताराम के चरणों में भरतजी का प्रेम जन्म से ही था। यथा : 'तुम तउ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु राम सनेहू। रामजी में प्रेम होना और सीताजी में प्रेम होना एक ही बात है। क्योंकि रामजी और सीताजी : देखिअत भिन्न न भिन्न हैं। इसीलिए : सिय राम प्रेम कहा। रामजी में अवधवासियों को इतना प्रेम था : पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग। करत राम हित नेम व्रत परिहरि भूषन भोग। और भरतजी तो रामप्रिय और लघु भाई थे। इसलिए उन्होंने जो यम, नियम, शम, दम और विषम व्रत किये वह मुनि लोगों के लिए करने को कौन चलावे मन से भी अगम था। अर्थात् ऐसा अनुष्ठान किसी ने नहीं किया। भाव यह है कि जिसे रामभक्ति होती है वह राम की प्राप्ति के लिए शम, दम, यम, नियमादि विषम व्रत का आचरण करता है। जो रामजी की प्राप्ति के लिए अनुष्ठान नहीं करता है उसे रामभक्ति हुई ही नहीं।

अब भरत चरित्र की फलश्रुति कहते हैं। भरत चरित्र से दीपापनयन होता है उसे कहते हैं कि दुःख दाह दरिद्र दम्भ और दूषण का इस चरित्र के श्रवण से नाश होता है। यम के श्रवण से दुःख का नाश होता है। नियम के श्रवण से दाह का नाश होता है। शम के श्रवण से दरिद्रता का नाश होता है। दम के श्रवण से दम्भ का नाश होता है और विषम व्रत के श्रवण से दूषण का नाश होता है।

यम	१.	भरत की अहिंसा	यथा : देखि दसा मुनिराज लजाही। भरत दयानिधि दीन्ह छड़ाई।
	२.	,, अस्तेय	यथा : संपति सब रघुपति कर आही।
	३.	,, ब्रह्मचर्य	यथा : नन्दिग्राम करि पर्नकुटीरा।
	४.	,, अपरिग्रह	यथा : जटाजूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुस साथरी सँवारी।
	५.	,, सत्य	यथा : कहहुँ साँच सब सुनि पतियाहू।
नियम	१.	,, तप	यथा : भरत भवन बसि तप तन कसही।
	२.	,, शौच	यथा : करत सकल रिषि धर्म सप्रेमा।
	३.	,, सन्तोष	यथा : भरत मुदित अवलब लहे ते। अस सुख जस सिय राम रहे ते।
	४.	,, स्वाध्याय	यथा : जोहू नाम जप लोचन नीरू।
	५.	,, ईश्वर प्रणिधान	यथा : नित पूजत प्रभु पाँवरी। प्रीति न हृदय समात।

शम यथा : पुलक गात हिय सिय रघुबीरू।
जीह नामु जप लोचन नीरू॥
दम यथा : भूषन बसन भोग सुख भूरी।
मन तन बचन तजे तृन तूरी॥
व्रत : विषम यथा : मुनि ब्रत नेम साधु सकुचाही।

दोषारनयन कहकर गुणाधान कहते हैं कि इस कराल कलिकाल मे भी अत्यन्त शठो को हठ करके राम सम्मुख तो भरत का यश ही करता है! जो अपने अज्ञान को राम पर धरनेवाले शठ हैं। यथा : ते सठ हठ बस संसय करही। निज अज्ञान राम पर धरही। वे भी यदि भरत चरित्र सुने तो यह चरित्र उन्हे बलपूर्वक रामजी के सम्मुख कर देता है।

सो. भरत चरित करि नेमु, तुलसी जे सारद सुनहिं।
सीय राम पद पेमु, अवसि होइ भव रस बिरति ॥३२६॥

अर्थ : भरत चरित्र को जो नियम पूर्वक प्रेम से गाते या सुनते है उनको अवश्य श्रीसीतारामजी के चरणो मे प्रेम होता है और संसार के रस से उन्हे अवश्य वैराग्य हो जाता है।

व्याख्या : अत्यन्त शठ के लिए रामभक्ति प्राप्त करने का यही साधन है कि भरत चरित्र को प्रेम और नेम के साथ गान करे या सुने। उसकी शठता छूट जाती है। वह भव रस मे निरत था सो विरत हो जायगा। वह अपने अज्ञान का आरोप रामजी पर करता था। सो उसकी : गुन तुम्हार समुझै निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा। ऐसी बुद्धि अवश्य हो जायगी।

भरत चरित्र की इति नही है। अत. ग्रन्थकार ने इति नही दिया।

नम. शिवाय

मङ्गलाचरण

श्लो. मूलं[1] धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेंदुमानंददं
वैराग्यांबुजभास्करं ह्यघघनध्वांतापहं तापहं ।
मोहांभोधरपूगपाटनविधौ स्वःसम्भवं शंकरं
वंदे ब्रह्मकुलं कलंकशमनं श्रीरामभूपप्रियं ॥१॥

अर्थ : धर्मरूपी वृक्ष के मूल, विवेकरूपी समुद्र को आनन्द देनेवाले पूर्णचन्द्र, वैराग्यरूपी कमल के लिए सूर्यरूप, पापरूपी अन्धकार को निश्चय ही मिटानेवाले, तीनो तापो के हरण करनेवाले, मोहरूपी बादलो के समूह को छिन्न भिन्न करने की क्रिया मे वायुरूप तथा शंकररूप, श्री राजा रामचन्द्र के प्रिय, कलङ्कनाशक ब्रह्मकुल की मैं वन्दना करता हूँ।

व्याख्या : जिस भाँति शङ्कररूप हनुमानजी की वन्दना करने से शिवजी की पृथक् वन्दना सुन्दरकाण्ड मे नही की। उसी भाँति इस काण्ड मे भी शङ्कररूप ब्रह्मकुल की वन्दना करते हैं। पृथक् वन्दना शङ्करजी की नही करते। इस काण्ड के कथानुसार सरकार का ब्रह्मकुल मे निवास अनेक वर्षों तक होता रहा। किसी ब्रह्मकुल मे पन्द्रह दिन ही रहे। किसी मे छ महीने रहे। वनवास का अत्यधिक भाग यो ही व्यतीत किया। इसलिए उस महावन का नाम महाकोसल पड गया। कहा भी है सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह। ब्रह्मकुल की रक्षा के लिए ही शेष कथा का विस्तार हुआ। यथा निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह। इसी के लिए अगस्त्यजी से मन्त्र पूछा। यथा : अब सो मत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौ सुर द्रोही। अत कवि ने भी शङ्कर की वन्दना ब्रह्मकुल के रूप मे ही की। शङ्करजी अष्टमूर्ति है। १ पृथ्वी २ अप ३ तेज ४ वायु ५ आकाश ६ सूर्य ७ चन्द्र और ८ यजमान। इसी भाँति ब्रह्मकुल भी अष्टमूर्ति हैं। उसी का विवरण करते हैं। गीताभाष्य मे भाष्यकार कहते हैं : ब्राह्मणत्वस्य हि[2] रक्षणेन रक्षितो भवति वैदिको धर्मः। अत धर्मवृक्ष का मूल ब्रह्मकुल ही है। एव वृक्षमूल कहकर पृथ्वीरूप कहा : १

विवेक का कोई ओर छोर नही है। इसीलिए इसकी उपमा समुद्र से दी जाती है। यथा : गुर बिबेक सागर जग जाना। उस विवेक समुद्र को आनन्द देनेवाला ब्रह्मकुल है। ब्रह्मकुल के दर्शन से विवेक की वृद्धि होती है। ब्राह्मणो के दर्शन न होने से विदेश मे गये हुए क्षत्रिय ही म्लेच्छ, हूण, पुल्कस यवन आदि हो गये। अत ब्रह्मकुल को चन्द्ररूप कहा : २

---

१. शार्दूल विक्रीडित छन्द है।
२ ब्राह्मणत्व की ही रक्षा से वैदिक धर्म की रक्षा होती है।

वैराग्यरूपी कमल का पोषण करनेवाला ब्रह्मकुल सूर्यरूप हैं : ३. ब्रह्मकुल के उदय से ही वैराग्य विकसित हो उठता है। यथा : प्रथमहि विप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती। एहि कर फल पुनि विषय बिरागा।

पापान्धकार के नाश के लिए ब्रह्मकुल तेजरूप हैं : ४. ब्राह्मण के दक्षिण अङ्गुष्ठ में सब तीर्थों का निवास है। अतः विप्रपादोदक के पान करनेवाले के सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।

तापनाशक होने से ब्रह्मकुल को जलरूप कहा : ५ यथा : विपद्घनध्वान्त-सहस्रभानवः समीहितार्थार्पणकामधेनवः। अपारसंसारसमुद्रसेतवः पुनन्तु मां ब्राह्मण-पादरेणवः॥

मोहरूपी मेघ आकाशरूपी आत्मस्वरूप को आच्छादित कर देता है। उसे तितरबितर कर देने में वायुरूप ब्रह्मकुल समर्थ हैं : ६ यथा : बदौं प्रथम मही सुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना।

आकाश अवकाश प्रदान से सबका कल्याण करता है। इसलिए वह शङ्कर हैं। ब्रह्मकुल भी अपने ब्रह्मकर्म से संसार का कल्याण करता है। इसलिए वह भी शङ्कर हैं। इस भाँति ब्रह्मकुल को आकाशरूप कहा : ७

श्रीरामभूपप्रियं का अर्थ है श्रीरामभूप प्रिय हैं जिसको। या जो रामभूप को प्रिय है। यथा : हरितोषन व्रत द्विज सेवकाई। यजमान यज्ञ से भगवान् की पूजा करता है। इसलिए वह भगवान् को प्रिय है और ब्राह्मण का कर्म ही यजन याजन है। अत: ब्रह्मकुल को यजमान रूप कहा : ८.

इस भाँति अष्ट मूर्ति ब्रह्मकुल शङ्कररूप होकर कलङ्क का नाश करता है। कलङ्क ब्रह्मकुल की कृपा विना नहीं छूटता। जब ब्राह्मण प्रायश्चित्तादि से पवित्र करके किसी को ग्रहण करते हैं तभी उसका कलङ्क छूटता है। ऐसे ब्रह्मकुल की श्रीग्रन्थकार वन्दना करते हैं।

श्लो. [1]सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरं।
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे ॥२॥

अर्थ : जिनका शरीर घना आनन्दरूपी जल बरसानेवाले मेघों के समान शोभायुक्त हैं। जो पीताम्बर धारण किये हैं और सुन्दर[2] हैं। जिनके हाथों में बाण और धनुष है। जिसका कटि भाग उत्तम तरकस के भार से सुशोभित है। कमल के

१ यह भी शार्दूल विक्रीडित छन्द है।
२. समविभक्ताङ्ग।

समान जिसके विशाल नेत्र है। जो मस्तक पर जटाजूट धारण करने से अत्यन्त शोभायमान हैं और जो सीताजी और लक्ष्मणजी सहित मार्ग मे चले जा रहे हैं। ऐसे आनन्द देनेवाले श्री रामचन्द्रजी को मैं भजता हूं।

व्याख्या : बादल जल की वर्षा करते हैं। परन्तु सरकार का शरीर आनन्द बरसानेवाला बादल है। अत' वैसी ही उसकी शोभा है। पीतवल्कल उनके शरीर पर आ जाने से पीताम्बर की शोभा दे रहा है अथवा भगवती जनकनन्दनी पीताम्बर धारण किये हुए है। उसका आरोप सरकार पर करके उनको पीताम्बर कह रहे हैं। यथा : छत्रिणो गच्छन्ति कहने मे जो छाता नही लगाये हुए हैं उस पर भी छातावाले का आरोप होता है। अथवा श्याम शरीर पर पीताम्बर सा मुनिपट अत्यन्त खिल रहा है। इससे सुन्दर कहते हैं। हाथ मे धनुर्बाण और कटि मे तूणीर की शोभा है। इससे भक्त विपत्तिभञ्जन गुण का वर्णन किया। यथा : राजिव नयन धरे धनु सायक। भगत बिपति भजन सुखदायक। कृपादृष्टि युक्त होने से : राजीवायत लोचन कहा। यथा . चितइ कृपाकरि राजिव नैना। जटाजूट धारण करने से शोभा घटी नही, प्रत्युत और बढ़ गयी। यथा : मरकत सयलपर लरत दामिनि कोटि। सीता और लक्ष्मण के साथ मार्ग चलने से और भी मनोहरता बढी। यथा : जनु मधु मदन मध्य रति लसई। ऐसे सुन्दर राम को गोस्वामीजी कहते हैं कि मैं प्रणाम करता हूं।

सान्द्रानन्दपयोद सौभागतनु से : रघुपति चित्रकूटबसि जाना। चरित किये श्रुति सुधा समाना कहा। पीताम्बर सुन्दर से दिव्यबसन भूषन पहिराये। जे नित नूतन अमल सोहाये। अर्थात् अत्रि मिलन कहा। पाणौ बाणशरासनो कटिलसत्तूणीरभार वरं से : विराध वध तथा खरदूषण वध कहा। राजीवायतलोचन से : मुनियो पर कृपा कहा। धृतजटाजूटेन सशोभित से मुनिवेष में भी सूर्पणखा[1] का आसक्त होना कहा। सीतालक्ष्मणसयुत से · पञ्चवटी निवास कहा। पथिगत से : सीतान्वेषण कहा। अभिराम से : शवरी गीध गति तथा नारद वरदान कहा। इस प्रकार सरकार के ध्यान वर्णन के व्याज से अरण्यकाण्ड की सम्पूर्ण कथाओ के प्रतीक दे दिये।

इस काण्ड मे सीताहरण होगा। अत. दो ही श्लोको मे वन्दना किया। सुन्दरकाण्ड मे पता लग जायगा तब फिर उस काण्ड से तीन श्लोको मे वन्दना प्रारम्भ हो जायगी।

२५. सुरपति सुत करनी प्रसग

सो. उमा[1] राम गुन गूढ, पडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह बिमूढ, जे हरि बिमुख न धर्म रति ॥१॥

---

१. यहाँ मुद्रा अलङ्कार है।

अर्थ हे उमा ! रामजी के गुण गूढ हैं। पण्डित मुनि इससे वैराग्य प्राप्त करते हैं। परन्तु जो विमूढ हैं। परमेश्वर से विमुख हैं और जिन्हे धर्म मे प्रेम नही है वे मोह को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या अरण्यकाण्ड की कथा मे ही उमा को सती शरीर मे मोह हुआ था। अत शङ्कर भगवान् सावधान करते हैं। जब से रामजी जनकपुर मे गये तब से लेकर यहाँ तक की कथा मे गोस्वामीजी के वक्तृत्व की ही प्रधानता है। धनुषभङ्ग हुआ, ब्याह हुआ, वनवास हुआ, भरतजी मनाने गये, महाराज जनक आये, भरत जी को पादुका मिली, भरतजी के साथ महाराज जनक अवध आये, राज को सँभाल-कर जनकपुर लौट गये, यह सब माधुर्य की कथा थी। अत गोस्वामीजी ही बोलते रहे। ऐश्वर्य की कथा आते ही ज्ञान घाट के वक्ता शिवजी बोल उठे · उमा राम गुन गूढ। गूढ कथा को ज्ञानी ही समझ सकता है।

जो शीघ्र लखाई न पडे उसे गूढ कहते हैं। यथा गूढ प्रेम लखि परै न काहू। लखनेवाले पण्डित ज्ञानी और मुनि मनन करनेवाले हैं। उन्हे राम गुण मे वैराग्य होता है। यथा कामिन्ह कै दीनता देखाई। धीरन्ह के मन विरति दृढाई। जिसे सीधी बात न समझ पडे उसे मूढ कहते हैं। यथा माया विवस भये मुनि मूढा। समुझी नहिं हरि गिरा निगूढा। जिन्हे बात उलटी समझ पडे वे विमूढ है। विमूढ होने से ज्ञान के अधिकारी नही। हरिविमुख होने से भक्ति के अधिकारी नही। धर्म रति न होने से कर्म के अधिकारी नही। ऐसे वेदबाह्यो को रामगुण से मोह प्राप्त होता है। भरत चरित ऐसा नही है। यथा भरत चरित करि नेमु तुलसी जे सादर सुनहिं। सीयराम पद प्रेम अवसि होहिं भव रस विरति। भरत चरित्त समाप्त हुआ। अत रामचरित प्रारम्भ करने के पहिल अपने शिवजी श्रोता को सावधान करते हैं।

पुर नर भरत प्रीति मै गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई॥
अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन। करत जे वन सुर नर मुनि भावन ॥१॥

अर्थ पुरवासियो और भरतजी के अनुपम और सुन्दर प्रेम का मैने अपनी बुद्धि के अनुसार गान किया। अब अत्यन्त पवित्र प्रभु के चरित्र सुनो जिसे सुर नर मुनि भावन चरित्र को वे वन मे कर रहे है।

व्याख्या अब द्वितीय सोपान और तृतीय सोपान के दाब की कथा चली एक सीढी दूसरे को दाबकर ही बनती है। उसे दोनो की सन्धि समझना चाहिए। इसे सङ्गति भी कह सकते हैं। पुर नर प्रीति पहिले यथा राम दरस हित लोग सब करत नेम उपवास। परिहरि भूषन भोग सुख जिअत अवध की आस। तत्पश्चात् भरत की प्रीति कही। यथा नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदय समात। माँगि माँगि आयसु करत राज काज बहु भाँति। मति अनुरूप कहकर यथार्थ गान मे अपनी असमर्थता कहा। भगवान् और भागवत का यश मति अनुरूप ही कहा जा सकता है। यथा बरनत सकल सुकबि सकुचाही। सेष गनेस गिरा गमु नाही। अनूप

यथा : मुनिमन अगम जम नियम सम दम बिषम व्रत आचरत को। सुहाई यथा : कलि काल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को।

शिवजी कहते हैं कि तुम सेवक का चरित सुन चुकी। अब प्रभु का चरित सुनो। एहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी। खग मृग सुर तापस हितकारी। सो वह पावन चरित था। इस चरित मे खग मृग के स्थान मे नर का हित होने लगा। अतः इसे अतिपावन कहते हैं। अथवा भक्तिका शृङ्गार रस के योग से अत्यन्त उत्कर्ष हो उठता है, इसलिए अतिपावन कहा।

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए॥
सीतहिं पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर॥२॥

अर्थ—एक बार सुन्दर सुन्दर फूल चुनकर रामजी ने अपने हाथों से गहने बनाये और सीताजी को अत्यन्त आदर के साथ पहिनाये। तब सुन्दर स्फटिक की शिला पर बैठे।

व्याख्या : शृङ्गार तो प्रायेण करते ही रहते थे। यथा : सिय अंग लिखे धातु राग सुमननि भूषन बिभाग तिलक करनि का कहौ कला निधान की। माधुरी बिलास हास गावत यश तुलसीदास बसत हृदय जोरी प्रिय परम प्रान की। गीतावली। इस समय एक बार की बात कही जाती है। कुसुम : कहने से वसन्त ऋतु कहा। क्योंकि इसी ऋतु मे कुसुम फूलता है। सुहाये चुनि : कहने का भाव यह कि भूषण बनाने योग्य फूल। निजकर . कहने का भाव यह कि पूजन के लिए अपने हाथों से फूल चुनने का विधान है। दूसरे यह कि भूषण बनानेवाला ही जान सकता है कि किन किन फूलो की कितनी आवश्यकता है। राम बनाये · कहने से प्रभु की रसिकता कलाज्ञान तथा शास्त्रनिष्ठा सूचित की। स्त्रियो की पूजा वस्त्र भूषण द्वारा करनेका शास्त्र विधान है और तापस बेष बिसेख उदासी : रहने का वरदान है। अत फूलो के गहने जगदम्बा के पूजन के लिए बना रहे हैं। नवरात्र मे पूजन का माहात्म्य अधिक है।

सादर पहिराये : कहने से पूजन करना कहा। सुन्दरी सीता सुन्दर राम सुन्दर फटिक शिला पर बैठे हैं। सामने मन्दाकिनी बह रही हैं। उस पार सामने जयन्त टीला है। चारो ओर हरियाली छा रही है। अद्भुत झाँकी है।

सुरपति सुत धरि बायस बेखा। सठ चाहत रघुपति बल देखा॥
जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महा मंदमति पावन चाहा॥३॥

अर्थ : इन्द्र का बेटा शठ था। उसने कौए का रूप धारण करके रघुपति का बल देखना चाहा। जैसे महामन्दमति चीटी समुद्र का थाह पाना चाहे।

व्याख्या : बल की महिमा सुन रक्खा था। चरित्र से विलासप्रियता सूचित हुई। अतः सन्देह हुआ। सुरपति सुत : कहने का भाव यह है : ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकैं पराई बिभूती। ऐसे का बेटा है। रङ्ग मे भङ्ग करने चला। दूसरे यह कि : काक समान पाक रिपुरीती। छली मलीन न कतहुँ प्रतीती। उनका

बेटा होने से यह भी छली मलिन और प्रतीतिहीन है। आप्त पुरुषों से सुनने पर भी इसे प्रतीति नहीं। काक सा स्वभाव है। अत वही वेष धारण किया। छली है। समझता है कि किसी को सम्भावना भी नहीं होगी कि सुरपति का बेटा काक बनेगा। शठ है व्यर्थ दुराव करता है। उसकी इच्छा है कि किसी को पता भी न लगे और मैं परीक्षा ले लूँ। इसलिए यह रूप लाया। कपट सार सूची सहस बाँधि बचन परवास। करि दुराव चह चातुरी सो सठ तुलसीदास।

पिपीलिका के लिए जल की रेखा दुर्लंघ्य है। उसके लिए समुद्र के थाह पाने की वासना ही महाअमङ्गलरूप है। कोई चींटी ऐसी मतिमन्द नहीं है जो किसी घट के जल का भी थाह जानना चाहती हो। पर यह महामतिमन्द है। चींटी होकर समुद्र का थाह स्वयं लेना चाहता है।

सीता[1] चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मंदमति कारन कागा॥
चला रुधिर रघुनायक जाना। सीक धनुष सायक संधाना॥४॥

अर्थ : काग होने के कारण सीताजी के चरण में मूढ़ मन्दमति चोंच मारकर भागा। रक्त बह चला तो रघुनाथजी ने जाना। सीक के धनुष पर बाण का सन्धान किया।

व्याख्या : मूढ़ बेसमझ को कहते हैं। बेसमझी के कारण भगवत् अपराध और भागवत अपराध दोनों कर बैठा। रामजी तो चाहने पर परीक्षा भी दे देते हैं। यथा कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अतिरन धीरा। दुंदुभि अस्थिताल देखराये। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाये। ऐसे सरल प्रभु से कपट करके दा दो अपराध करने की क्या आवश्यकता थी। अतः मूढ़ कहा। अवसर चूक गया। इसलिए मन्दमति कहा। यथा : अहह मंदमनु अवसर चूका। जगदम्बा के चरणों को पाकर लोग कौन सा मनोरथ नहीं सिद्ध कर लेते। सो इस मन्दमति ने उस पर प्रहार किया। कारण कागा : भाव यह कि मन उसका कौआ सा था ही। शरीर भी कौआ का धारण कर लिया। अत. भीतर बाहर से कौआ ही हो गया। अत मूढ़ता और मति की मन्दता का परिचय दे रहा है। सीताजी के चरण में चोंच मारकर भागा। रामजी ने आघात करने के समय न जाना। जगदम्बा के अङ्क में आराम करते थे। यथा : ममाङ्के भरताग्रजः। जब गरम गरम रक्त का शरीर से योग हुआ तब जाना। रघुकुल की प्रतिष्ठा रखने के लिए बाध्य थे। नहीं तो देवताओं के रक्षक हैं। शृङ्गार में थे धनुष बाण पास न था। क्रियासिद्धि: सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे। सीक का ही धनुष बाण बना लिया। कौआ उड़ाने के लिए यही बहुत है। उसने भी समझा कि रामजी ने मुझे कौआ ही जाना है। इसलिए सीक धनुष और बाण से मुझे डरा रहे हैं।

---

१. ऐन्द्रः काकस्तदागत्य नखैस्तुण्डेन चाक्षतत्। मत्पादाङ्गुष्ठमारक्तं विददाराभिधावया। (अध्या०) इन्द्र का बेटा काक बनकर नख और चोंच से मेरे पैर के अँगूठे मे चोट किया।

दो. अति कृपाल रघुनायक, सदा दीन पर नेह ।
ता सन आइ कीन्ह छलु, मूरख अवगुन गेह ॥१॥

अर्थ : रघुनाथजी अत्यन्त कृपालु हैं। सदा दीनो पर उनकी अनुकम्पा रहती है। मूर्ख अवगुण के घर ने उनसे आकर छल किया।

व्याख्या : रघुनाथ अति कृपालु हैं। यदि यह उनका अपराध किये होता तो क्रोध भी नहीं करते। यथा : सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ। जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई। उनका दीन पर सदा प्रेम रहता है। यदि यह दीन होकर सुग्रीव की भाँति बल मे सन्देह करता तो कृपा पूर्वक उसको बल भी दिखा देते और उसका अकल्याण भी न होता। ऐसे प्रभु से छल करना मूर्खता और दोषाकरता का परिचय देना है। छल तो उससे किया जाता है जिससे सरलता से काम न निकले। ऐसे कृपालु दीनानाथ से छल किया। अत मूर्ख है। अवगुण का घर है। उसे अच्छी बात सूझती ही नहीं।

प्रेरित मत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि वायस भय पावा ॥
धरि निज रूप गयउ पितु पाँही। राम विमुख राखा तेहि नाँही ॥१॥

अर्थ मन्त्र से प्रेरित होकर ब्रह्मास्त्र दौड़ा। कौआ भयभीत होकर भाग चला। अपना रूप धारण करके पिता के पास गया। पर राम विमुख होने से उसने नहीं रक्खा।

व्याख्या वह सीक का बाण मन्त्र बल से ऐषीकास्त्र हो गया। ऐषीकास्त्र ब्रह्मास्त्र का भेद है। उसका प्रयोग सीक द्वारा ही होता है। जिस भाँति यह देखने मे कौआ पर वस्तुत इन्द्र पुत्र था, उसी भाँति उसके प्रति जिस बाण का प्रयोग किया गया वह देखने म सीक था। पर वस्तुत ब्राह्मास्त्र था। जयन्त ने पहिले सीक ही समझा। अत निर्भय था। पर जब उसने ऐषीकास्त्र कालानल के समान तेज देखा तो डर के भागा। वायस भय पावा कहने का भाव यह कि काँय काँय करता भागा।

पातीति पिता। पिता शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ ही रक्षक है। पुत्र का परमाश्रय पिता ही होता है। अत पहिले इन्द्रलोक गया। वहाँ काक का प्रवेश नहीं। इसलिए काक रूप परित्याग करके अपना रूप धारण किया। दूसरे यह कि काक रूप होने से पिता के पहिचानने मे विलम्ब की सम्भावना थी और विलम्ब होने से अस्त्र के मार लेने का भय था। इसलिए अपना रूप धारण किया। तीसरे पिता की अप्रसन्नता का भी भय था कि तूने काक रूप क्यो धारण किया। चौथे यह पिता के लिए पुत्र प्रिय दर्शन है। अत अपने रूप मे होने से वात्सल्य की अधिक आशा थी। सो पिता ने रक्खा नहीं। अर्थात् निकाल दिया कि जैसा किये है वैसा फल भोग। मैं इसमे कुछ नहीं कर सकता। जयन्त ने ज्ञान बल और दिव्य बल तो

देख ही लिया। ब्रह्मास्त्र को अप्रतिक्रिय जानकर ही भागा है। अब प्रभाव का अनुभव कर रहा है।

भा निरास उपजी मन त्रासा। यथा चक्र भय रिषि दुर्वासा॥
ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका। फिरा श्रमित ब्याकुल भय सोका॥२॥

अर्थ : निराश हो गया। उसके मन में त्रास उत्पन्न हो गया जिस भाँति दुर्वासा ऋषि चक्र से सन्त्रस्त हो गये थे। वह ब्रह्मलोक शिवलोकादि समस्त लोकों में थका हुआ और भय शोक से व्याकुल होकर भागता फिरा।

व्याख्या : पहिले जयन्त को आशा थी कि पिता रक्षा करेंगे। उनके प्रत्याख्यान से वह निराश हो गया। पहिले भयभीत होकर भागा था अब सन्त्रस्त हो गया। जैसे चक्र के भय से दुर्वासा ऋषि निराश और सन्त्रस्त हो गये थे वही दशा इसकी हो गयी। अम्बरीष राजा के यहाँ दुर्वासा ऋषि अतिथि हो गये। उस दिन द्वादशी थोड़ी थी। राजा एकादशी व्रत करके पारण करने जा रहा था। ऋषिजी से भोजन के लिए प्रार्थना किया। ऋषिजी ने स्वीकार किया और आवश्यक कार्य के लिए यमुना किनारे गये। ऋषिजी के आने में देर हुई। इधर द्वादशी बीत रही थी। इसलिए ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर राजा ने जल प्राशन कर लिया। इस पर क्रुद्ध होकर ऋषि ने कृत्या प्रकट की। सुदर्शनचक्र राजा की रक्षा करता था। उसने कृत्या को तो भस्म कर ही दिया स्वयं दुर्वासा ऋषिजी पर धावा कर दिया।

ऋषिजी भाग चले। चक्र ने पीछा किया। जितना ऋषिजी भागते थे उतना ही सुदर्शन भी दौड़कर उनका पीछा करता था। ऋषिजी सन्त्रस्त होकर शरण खोजने लगे। पर किसी ने उन्हे शरण नहीं दी।

इसी भाँति जयन्त भी भागता हुआ देवताओं की परम शरण ब्रह्माजी के पास गया। वहाँ भी शरण न मिली तो अवढर दानी शिवजी के शरण गया। वहाँ से भी निराश होकर वरुण कुबेरादिक के लोकों में घूमता फिरा। दौड़ते-दौड़ते श्रमित हो गया। भय और शोक से उसकी बुरी गत हो गयी।

काहू बैठन कहा न ओही। राखि को सकै राम कर द्रोही॥
मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना॥३॥

अर्थ : किसी ने उसे बैठने तक को नहीं कहा। रामजी के द्रोही की कौन रक्षा कर सकता है। माता मौत हो जाती है। पिता यमराज के समान हो जाते हैं। हे गरुड़जी! अमृत विष हो जाता है।

व्याख्या : शरण में रखना तो दूर की बात है। किसी ने यह भी नहीं कहा कि बहुत थके हो। दम भर विश्राम कर लो। क्योंकि उसके पीछे ही पीछे रामजी का बाण भी साथ ही जाता था। राम के द्रोही की रक्षा करने में कोई समर्थ नहीं। यथा : जौं खल भयेसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही।

यहाँ भगवान् के उत्कर्ष का प्रसङ्ग है। अतः उपासना घाट के वक्ता भुसुण्डिजी बोल उठे : सुनु हरिजाना। जब माता पिता की यह गति है तो सम्पूर्ण जगत् के विरोधी हो जाने में कौन सन्देह है। पिता के प्रत्याख्यान के अन्तर्गत ही माता का भी प्रत्याख्यान आ जाता है। उस समय इन्द्राणी भी वही थी। जब बाण पीछा कर रहा हो उस समय लौटाना मृत्यु के मुख में फेंकना ही है। इसलिए कहा : मातु मृत्यु पितु समन समाना। मृत्यु और शमन : यम एक ही वस्तु है पुल्लिङ्ग स्त्रीलिङ्ग मात्र का भेद है। रक्षा और नाश की शक्ति किसी वस्तु में नहीं है। प्रभु के अनुग्रह निग्रह में है। अनुग्रह हो तो सुमेरु भी रेणु हो जाय और निग्रह हो तो माँ बाप भी मृत्यु और यम हो जायँ। इसी प्रकार प्राणद शक्ति और मारक शक्ति अमृत विष मे नही है। सरकारी अनुग्रह हो तो विष अमृत हो जाता है। नही तो अमृत विष हो जाता है। सुरलोक मे अमृत का होना प्रसिद्ध है। सो पिता माता ने अमृत से सिञ्चन नही किया। रामविरोधी के लिए उसे भी विष ही समझा।

मित्र करै सत रिपु कै करनी। ता कहुँ बिबुधनदी बैतरनी॥
सब जगु ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता॥४॥

अर्थ : मित्र सौ शत्रु की करणी करता है। उसके लिए गङ्गाजी वैतरणी हो जाती है। हे भाई! जो राम विमुख हो तो सम्पूर्ण संसार उसके लिए अग्नि से भी गरम हो जाता है।

व्याख्या : राम के विमुख होते ही जमीन आसमान पलट जाता है। मित्र सौ शत्रु की करणी कर बैठता है। अपने समझ मे वह भला करता है। पर उससे बड़ी हानि हो जाती है। यहाँ जयन्त की काया पलट विद्या ने उसके सौ शत्रु के समान हानि की। न उसे कायापलट विद्या आती और न वह काक होकर भगवती पर प्रहार करता। शङ्कर भगवान् के जटा मे सकल कलुष विध्वंसिनी गङ्गाजी सदा रहती हैं। परन्तु जयन्त के पाप का हरण न कर सकी। उसे वैतरणीरूप दिखायी पड़ी। वहाँ से भी वह भागा।

सम्पूर्ण जगत् उसे अग्नि से अधिक दाहक हो गया। कही वह बैठ नही पाता : राम विमुख थल नरक न लहही। प्रभु के सम्मुख होने से अग्नि भी शीतल हो जाती है। यथा : गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई। गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। रामकृपा करि चितवा जाही। भाव यह कि जीवन मरण, साध्यासाध्य, लाभ हानि तथा शीतोष्ण की शक्तियाँ सरकार के विमुख सम्मुख होने पर अवलम्बित हैं। स्वतन्त्ररूपेण किसी वस्तु मे नही है। प्रभु के विमुख होने से जयन्त के लिए सब कुछ उलटा हो गया।

नारद देखा बिकल जयंता। लागि दया कोमल चित संता॥
पठवा तुरत राम पहिं ताही। कहेसि पुकार प्रनत हित पाही॥५॥

अर्थ : नारदजी ने जयन्त को विकल देखा। सन्त का चित्त कोमल होता है। सो दया आगयी। तुरन्त उसे रामजी के पास भेजा। उसने पुकारकर कहा कि हे प्रणत के हित करनेवाले ! रक्षा कीजिये।

व्याख्या : नारदजी ने जयन्त को देखा। पर वह इतना विकल था कि उसने नारदजी को नही देखा। सन्तो मे यही विशेषता है कि ये राम विमुख पर भी दया करते हैं। इसीलिए कहा गया है : *बिधि हरिहर कबि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी।* जयन्त : कहने का भाव यह कि इन्द्र और इन्द्राणी से लालित पालित इसे मालूम भी नही था कि विकलता किसे कहते हैं। दूसरा भाव यह कि इस समय अपने असली रूप में हैं। काक रूप मे नही हैं। सन्त हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह पर कहै न जाना। निज परिताप द्रवै नवनीता। पर दुख द्रवहिं सत सुपुनीता। जिस पर पिता ने दया न की, पितामह ने न की, अवढरदानी शङ्कर ने न की। उस पर सन्त की दया हो गयी और वह दया अमोघ है।

सन्त लोग ऐसी युक्ति बतलाते हैं कि तुरन्त कार्यसिद्धि हो। नारदजी बोले कि शरण के लिए क्यो व्यर्थ अन्य स्थानो मे टक्कर मारता है। तू स्वय रामजी के शरण मे चला जा। मन्त्र और विधि बतला दी। मन्त्र : प्रणत हित पाही। विधि : कहेसि पुकारि। पुकारकर कहने का भाव यह कि मद, मोह, कपट को अवसर न मिले। मद मोह कपट छलवाले पुकारकर शरण नही जा सकते।

आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयाल रघुराई॥
अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। मै मतिमंद जान नहिं पाई॥६॥

अर्थ : आतुर और सभीत होकर उसने चरण पकड लिये और कहा हे दयाल ! हे रघुराई ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। आप के बेतौल बल और प्रभुता को मैं मतिमन्द जान न सका।

व्याख्या : अति विकल था। इसलिए उसे आतुर कहा। विकलता का कारण भय था। *इसलिए सभय कहा अथवा शरण ग्रहण के लिए आतुर था।* शरण आने मे तीन बातो की आवश्यकता है १. भयभीत होना २ शरण ताककर आना ३ मद मोह कपट छलादि का त्याग। यथा : जौ नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही। तजि मद मोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु समाना। तीनो बातें जयन्त मे दिखलाया। सभय : शब्द से भयभीत होना कहा। आतुर शब्द से शरण ताकना कहा। पाहि पाहि की पुकार से : मद मोह कपट छल त्याग कहा। अथवा सभय से : मनसा। गहेसि पद जाई से : कर्मणा और त्राहि त्राहि दयाल रघुराई : वाचा शरण ग्रहण कहा।

सरकार के सीक धनुष सायक मे इतना सामर्थ्य है कि ब्रह्म रुद्र भी उससे रक्षा नही कर सकते। इससे अतुलित बल कहा और : काहू बैठन कहा न ओही। इससे, अतुलित प्रभुताई कहा। अब परीक्षा हो चुकी। देख लिया। सब देवताओ ने

समझा मैं न समझ सका। अतः मैं मतिमन्द हूँ। सीताजी को पुष्प से शृङ्गारित करते देखकर विलासी समझ लिया था।

निज कृत कर्म जनित फल पाएउ। अब प्रभु पाहि सरन तकि आएउ ॥
सुनि कृपाल अति आरत बानी। एक नयन करि तजा भवानी ॥७॥

अर्थ : अपने किये हुए कर्म का फल पा चुका। हे प्रभो ! अब रक्षा कीजिये। मैं शरण ताककर आया हूँ। हे भवानी ! कृपालु रामजी ने अत्यन्त आर्तवाणी सुनकर उसकी एक आँख फोड़कर छोड़ दिया।

व्याख्या : जयन्त कहता है : राम बिमुख थल नरक न लहही। यह बात ठीक है। संसार मे मुझे कही त्राण नही है। यही मेरे किये हुए कर्म का फल है। जब फल पा चुका तब शरण के उपदेष्टा गुरु मिल गये। मैं अनन्य शरण हूँ। अनन्यता द्योतित करने के लिए कवि ने शरण का ताकना कहा। यथा : सब ताकेसि रघुनायक सरना। आवे समय सरन तकि मोही। भाव यह कि आप ही रक्षा करें तो होय। नही तो मै मरा।

सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ। कृपाल हैं। उसका वध नही चाहा। इसलिए बाण ने उसे मारा नही केवल उसके पीछे लगा हुआ उसे डराता गया। अब आर्तवाणी सुना। इसलिए काना करके छोड़ दिया। ब्रह्मास्त्र अमोघ है। अप्रतिक्रिय है। अत: वह खाली जा नही सकता। उसकी मर्यादा भी रखनी है। एक नेत्र के नष्ट होने से भी काम नही रुकता। अतः उस अस्त्र को एक नेत्र पर ही गिराया। सरकार एक बाण सन्धान कर लेते है तो फिर नही लौटाते। यहाँ तो बाण चल गया था। अतः बाण की मर्यादा रक्षा के लिए जयन्त को एक नेत्र देना पड़ा। अथवा अपना अपराध क्षमा कर दिया। पर भक्त का अपराध अक्षम्य है। अतः एक नयन करके ही प्राण छोड दिया। प्रभु नेत्र की भाँति जानकीजी तथा लक्ष्मणजी की रक्षा करते है। यथा : जोगवहिं प्रभु सिय लखनहिं कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे। अतः जानकीजी पर प्रहार करनेवाले के नेत्र पर प्रहार न्याय था।

दो. कीन्ह मोह बस द्रोह, जद्यपि तेहि कर बध उचित।
प्रभु छाडेउ करि छोह, को कृपाल रघुबीर सम ॥२॥

अर्थ : उसने मोहवश द्रोह किया था। उसका तो वध ही दण्ड था। पर प्रभु ने छोह करके छोड़ दिया। रघुवीर के समान कृपाल कौन है ?

व्याख्या : रामजी का बल जानने के लिए सीताजी पर चोट करना अन्याय की पराकाष्ठा है। द्रोह का कोई कारण नही था। मोहवश द्रोह करनेवाले का दण्ड ही वध है। शरण आने से छोह किया प्राण छोड़ दिया। ऐसे द्रोही पर कृपा करना रघुवीर का ही काम है। अत. गोस्वामीजी आक्षेपार्थ प्रश्न करते है : को कृपाल रघुबीर सम ? अर्थात् कोई नही।

रघुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित किए श्रुति सुधा समाना ॥
बहुरि राम अस मन अनुमाना। होइहि भीर सबहि मोहि जाना ॥१॥

२६. प्रभु अत्रि भेंट प्रसंग

अर्थ : रघुपति ने चित्रकूट में बसकर श्रवणामृत चरित्र किये। फिर रामजी ने यह अनुमान किया कि सब लोग मुझे जान गये। अब : भीड़ होगी।

व्याख्या : वाल्मीकिजी ने कहा था : चित्रकूट गिरि करहु निवासू। जहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू। उसी का साफल्य दिखलाते हैं। सब भाँति सुपास दिखलाने के लिए शृङ्गार रस का वर्णन किया। केवल पुष्प शृङ्गार ही नही नाना प्रकार के चरित्र किये। जिस भाँति राधानाथ का विहार स्थल वृन्दावन है उसी भाँति सीतानाथ का विहार स्थल प्रमोदवन प्रसिद्ध है। चरित्र मे शृङ्गार रस के योग से माधुर्यातिशय हो गया। इसलिए : श्रुति सुधा समाना या अति सुधा समाना कहते हैं। अथवा अलौकिक रति ही वेदों का सार है। इसलिए : श्रुतिसुधा समाना कहा।

सरकार ने निषादराज को यमुनातीर से हो विदा कर दिया, जिसमें सबको निवासस्थल का पता न चले। सरकार अवध निवासियों के प्रेम को जानते हैं। यथा : जेहि राखें रहु घर रखवारी। सो जानै जनु गरदन मारी। सब रामजी का दर्शन चाहते हैं। घर की रखवारी के लिए रहना नहीं चाहते। अब तो भरतजी समाज के साथ निवासस्थल देख गये। अब तो अयोध्या भर को सरकार के निवास स्थान का पता चल गया। अयोध्या से बराबर आना जाना लगा रहेगा। भीड़ बनी ही रहेगी। विशेष रूप से घर से उदासीन रहने का वरदान महाराज से माँगा गया है। यथा : तापस वेष बिशेष उदासी। चौदह बरिस राम बनवासी। अतः श्रीरामजी ने निवास-स्थल बदल देने का निश्चय किया।

सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई। सीता सहित चले द्वौ भाई ॥
अत्रि के आश्रम जब प्रभु गएऊ। सुनत महा मुनि हरषित भएऊ ॥२॥

अर्थ : सब मुनियों से विदा लेकर सीता सहित दोनों भाई चले। जब प्रभु अत्रिजी के आश्रम पर पहुँचे तो सुनते ही महामुनिजी प्रसन्न हो उठे।

व्याख्या : वाल्मीकिजी की आज्ञा लेकर तो चित्रकूट आये थे। अब चलने के समय सब मुनियो से विदा लेकर चलते हैं। राजधर्म दिखला रहे हैं कि राजा सब कार्य ब्राह्मणो की आज्ञा से करें। शासनशक्ति सदा ज्ञानशक्ति के सामने अब नतमस्तक हो। यहाँ तो सब मुनियो की तपस्या सफल करने आये थे। यथा : चलहु सफल श्रम सबकर करहू। अतः सबसे विदा लेना प्राप्त है। एहि विधि सीय सहित दोउ भाई। बसहिं बिपिन सुरमुनि सुखदाई। अतः अब चलने के समय कहते हैं : सीता सहित चले द्वौ भाई। यहाँ : सुरपति सुत करणीवाला प्रसङ्ग समाप्त हुआ। अब : प्रभु अरु अत्रि भेंट प्रसङ्ग चला।

चित्रकूटवासी मुनियो मे अत्रिजी प्रधान हैं। यथा : अत्रि आदि मुनिवर बहु बसही। अथवा : मुनि नायक जहँ आयसु देही। राखहु तीरथ जल थल तेही। अतः सब मुनियोंसे विदा ले लेने पर भी इनसे विदा लेना आवश्यक था। अतः उनके आश्रम पर गये। मुनिजी ने शिष्यो द्वारा प्रभु के आगमन का समाचार सुना। बडे हर्षित हुए : सेवक सदन स्वामि आगमनू। मगल मूल अमगल दमनू।

पुलकित गात अत्रि उठि धाए। देखि रामु आतुर चलि आए॥
करत दडवत मुनि उर लाए। प्रेम वारि द्वौ जन अन्हवाए॥३॥

अर्थ—पुलकित शरीर होकर अत्रिजी उठकर दौड पडे। यह देखकर रामजी आतुरता के साथ चले आये। दण्डवत् करते ही मुनिजी ने हृदय से लगा लिया और प्रेमाश्रु से दोनो को स्नान कराया।

व्याख्या अत्रिजी हर्षित हुए। इसलिए सात्त्विक भाव हुआ। रोमाञ्च हो गया। आश्रम मण्डल मे सरकार का पादार्पण हुआ। आगे से आकर लेना चाहिए। इस शिष्टाचार मे अन्तर न पडने पावे। इसलिए उठि धाए कहा। मुनिजी आतुर हैं। दौडे चले आते हैं। इसलिए रामजी भी आतुरता से चले आये। भगवती साथ मे हैं इसलिए दौडे नही। पर मानसिक अवस्था समान ही है। ये यथा मा प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम्। यह नियम है। इस भाँति स्वागत कहा।

अत्रिजी को अतिप्रम है। इसलिए भलीभाँति दण्डवत् भी नही करने दिया। उठाकर हृदय से लगा लिया। सरकार मर्यादा पालन करते हैं। मुनिजी भी उसका उल्लघन नही कर सक्ते। पर आनन्दाश्रु की झरी लग गयी। आशीर्वाद तक न दे सके। मानो आनन्दाश्रु से ही स्नान करा रहे हैं। यहाँ षोडशोपचार पूजा होगी। यथा आसन स्वागत पाद्य अर्घ्यमाचमनीयकम्। मधुपर्काचमन स्नान वस्त्र चाभरणानि च। सुगन्ध सुमनो धूप दीप नैवेद्यवन्दनम्।

देखि राम छवि नयन जुडाने। सादर निज आश्रम तब आने॥
करि पूजा कहि बचन सुहाए। दिए मूल फल प्रभु मन भाए॥४॥

अर्थ · श्रीरामजी की छवि देखकर मुनिजी के नेत्र शीतल हो गये। तब वे उनको आदरपूर्वक अपने आश्रम मे ले आये। सुन्दर वचनो को कहकर पूजा की और मूल फल का नैवेद्य लगाया जो प्रभु को बहुत अच्छे लगे।

व्याख्या . घनश्याम राम के दर्शन से आँखें शीतल हुई। मुनिजी दौडकर आश्रम के बाहर ही सरकार से मिले थे। अत आदर के साथ लिवा ले गये। रामायण मे सभी स्थलो पर जिस भाग्यवान् को दोनो भाइयो का दर्शन हुआ उसने पहिले तो दोनो भाइयो को देखकर आनन्द पाया। पर पीछे से आँखें प्रभु मे ही बँध गयी। यथा . पहिलें : दीन्ह असीस देखि भल जोटा। पर पीछे से : रामहि चितइ रहे भरि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन। इत्यादि।

शेष पूजा, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय मधुपर्क, आचमन, वस्त्र, आभरण,

गन्ध, पुष्प, धूप, दीप से तथा मेरा बडा भाग्य है, मैं कृतकृत्य हुआ इत्यादि वचन कहकर किया। अथवा सुहाये वचन वेद वाक्यो से पूजन किया। अन्त मे मूल फल का नैवेद्य लगाया। भक्ति से अर्पण किये गये। अत मनभायें लिखते हैं। यथा • पत्र पुष्प फल तोय यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदह भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मन । गी

दो प्रभु आसन आसीन, भरि लोचन सोभा निरखि।
मुनिवर परम प्रवीन, जोरि पानि अस्तुति करत ॥३॥

अर्थ प्रभु आसन पर विराजमान हैं। नेत्र भरकर उनकी शोभा देख करके परम प्रवीण मुनिश्रेष्ठ हाथ जोडकर स्तुति करने लगे।

व्याख्या जब से सरकार आसन पर बैठे हैं तब से मुनि पूजाम लगे हैं। पूजा करते हुए भी शोभा देखते जा रहे हैं। परन्तु कृत्य म लगे रहने से आँखभर देख न सके। अत आसन पर बैठी हुई पूजित मूर्त्ति की शोभा आँख भरकर पूजन के बाद देखा। मुनिजी परम प्रवीण हैं। पूजा के बाद स्तुति भी होनी चाहिए। अत हाथ जोडकर स्तुति करते हैं। अथवा या लोकद्वयसाधनी चतुरता सा चातुरी चातुरी। इसलिए ऐसी स्तुति करते हैं जिससे दोनो लोक सधे। क्योकि मुनिवर परम प्रवीण हैं। यह गुणग्राम स्तुति नवाँ अश्लेषा नक्षत्र है। इसकी फल स्तुति प्रियपालक परलोक लोक के है।

नमामि भक्तवत्सल। कृपालु सील कोमल॥
भजामि ते पदाम्बुज। अकामिना स्वधामद ॥१॥

अर्थ हे भक्तवत्सल! हे कृपालु, हे कोमल स्वभाववाले! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। निष्काम पुरुषो को अपना परम धाम देनेवाले आपके चरणो को मैं भजता हूँ।

व्याख्या विश्ववास भगवान् भक्त पर कृपा करके प्रकट हुए हैं। इसलिए भक्तवत्सल कृपालु कहा। यथा भक्तवछल प्रभु कृपा निधाना। विस्ववास प्रगटे भगवाना। केवल प्रकट ही नही होते। भक्त पर बडा छोह करते हैं। जेहि जन पर ममता अति छोहू। जेहि करुणा करि कीन्ह न कोहू। गई बहोरि गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू। कभी भक्त पर क्रोध नही करते। उसकी बिगडी सुधारा करते हैं। अत कोमल सील कहते हैं। यथा अति दयालु गुरु स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा। एक सूल माहि बिसर न काऊ। गुरु कर कोमल सील सुभाऊ। इससे भजनीय भगवान् का स्वभाव कहा।

अब सामर्थ्य कहते हैं सरकार के चरण कमल कामना रहित जनो को स्वधाम देते हैं। यथा तन तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम पूरन कामा। ऐसे चरण कमलो को मैं भजता हूँ।

निकाम स्याम सुदर। भवाबुनाथ मदर ॥
प्रफुल्ल कज लोचन। मदादि दोष मोचन ॥२॥

अर्थ आप अत्यन्त श्याम सुन्दर ससाररूपी समुद्र के मन्थन के लिए मन्दराचल रूप, फूले हुए कमल के समान नेत्रवाल और मद आदि दोषों को नष्ट करनेवाले हैं।

व्याख्या स्याम सरीर सुभाय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन। अत सरकार के श्याम शरीर को अति सुन्दर कहा। शरीर की सुन्दरता बन्ध का कारण होती है। उसी सुन्दरता म बँधा हुआ ससार दु ख पाता है। पर यह सुन्दरता भवसागर को अभिभूत करनेवाली है। अत उसे मन्दर रूप कहते हैं।

प्रफुल्ल कञ्ज की उपमा देकर नेत्रो की सुन्दरता कहा। मदादि दोष मोचन कहकर उसका प्रभाव कहा। उसी नेत्र मे कृपावलोकनि बसती है। क्रोध मनोज मोह मद माया। छूटै सकल राम की दाया। इसीलिए श्रीनारदजी ने विनय किया मामवलोकय पकज लोचन।

प्रलब वाहु विक्रम। प्रभोऽप्रमेय वैभव ॥
निषग चाप सायक। धर त्रिलोक नायक ॥३॥

अर्थ हे प्रभो! आप की लम्बी भुजा का पराक्रम और आपका ऐश्वर्य अप्रमेय है। आप तरकस और धनुष धारण करनेवाल। तीनो लोको के स्वामी हैं।

व्याख्या कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ प्रभु। अत प्रभु सम्बोधन दिया। आजानुभुज हैं। अत प्रलम्ब बाहु कहा। उसके बल की सीमा नही। वही पृथ्वी का भार हरण करने मे समथ है। यथा भुजबल बिपुल भार महि खडित। अथवा सुमिरत श्री रघुबीर की बाहे। होत सुगम भव उदधि अगम अति कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहें। सीतल सुखद छाँह जेहिकर की मेटत पापताप माया। निसि वासर तेहिकर सरोज की चाहत तुलसीदास छाया। अप्रमेय वैभव यथा जो नहि देखा नहि सुना जो मनहू न समाय। सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाय। जो कुछ भुसुण्डिजी ने देखा वह प्रभु का वैभव नहीं था।

सरकार जो धनुष बाण धारण किये रहते है। जो अखण्ड दण्डायमान काल तथा खण्ड काल के प्रतीक हैं। निषङ्ग खण्ड कालो का कोष है। तथा लव निमेष परमान जुग वर्ष कल्पसर चड। भजसि न मन तेहि रामकहँ काल जासु कोदड। अत त्रिलोक के नायक हैं। यहाँ तक नित्य दिव्य मूर्ति का वर्णन है।

दिनेस वस मडन। महेस चाप खडन ॥
मुनीद्र सत रजन। सुरारि वृद भजन ॥४॥

अर्थ आप सूर्यकुल के भूषण हैं। शिवजी के धनुष के तोडनेवाल हैं। मुनीश और सन्तो को सुख देनेवाल और देवताओ के शत्रु समूह के नाश करनेवाल हैं।

व्याख्या : दिनेशवंश मण्डन कहकर सूर्यवंश मे अवतार कहा। महेशचाप खण्डन कहकर सीता स्वयम्वर कहा। इस भाँति बालकाण्ड की कथा सूत्र रूप मे कहा। जन्म से लेकर विवाह तक की कथा इसी का विस्तार है।

सरकार मुनिगण के मिलन मे सब प्रकार से अपना हित मानते हैं। वनवास स्वीकार के समय श्रीमुख से कहते हैं : मुनिगन मिलन बिसेष बन सबहि भाँति हित मोर। और वन मे जाकर मुनियो के श्रम को सफल करते हैं। यथा अत्रि आदि मुनिवर बहु बसही। करहिं जोग जप तप तन कसही। चलहु सफल श्रम सबकर करहू। राम देहु गौरव गिरि बरहू। मुनियो का अस्थि समूह देखकर पृथ्वी को निशिचर हीन करने की प्रतिज्ञा करते है। यथा निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुबीर नयन जल छाए। निसिचर हीन करहुँ महि भुज उठाई पन कीन्ह। सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह। तब से निशिचर हीन महि करने का उद्योग प्रारम्भ हुआ। अगस्त्यजी से मन्त्र पूछा अब सो मन्त्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं मुनि द्रोही। मुनि ने पञ्चवटी मे निवास का मन्त्र दिया। वही सूर्पणखा की नाक कटी और राक्षसो से वैर बँधा। इसीलिए : मुनीन्द्र सतरंजन कह रहे हैं।

उसी कारण से खरदूषण से युद्ध हुआ। सीताजी हरी गयी। उन्हे खोजते समय सुग्रीव मिताई हुई। लङ्कापर चढाई हुई और निशिचर वंश का विनाश हुआ। इसलिए : सुरारि वृंद भजन कहा एव अयोध्याकाण्ड, अरण्य, सुन्दर, किष्किन्धा और लङ्का की कथा सूत्र रूप से कही।

मनोज वैरि वंदित। अजादि देव सेवित॥
विशुद्ध बोध विग्रह। समस्त दूषणापह॥५॥

अर्थ : आप कामारि शिवजी द्वारा वन्दित तथा ब्रह्मादि देव सेवित हैं। आप की मूर्ति विशुद्ध बोधमय है और आप सब दोषो के नष्ट करनेवाले।

व्याख्या : राक्षसो के वध के बाद लङ्का मे ही शिवजी आये। ब्रह्मादि देवगण आये और प्रभु की स्तुति की। अत. कामारि वन्दित तथा ब्रह्मादि देवो से सेवित होना कह रहे हैं : कोसलेन्द्र पदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेश वन्दितौ। अथवा : मन जात किरात निपात किये। मृगलोग कुभोग सरे न हिये। हतिनाथ अनाथन्हि पाहि हरे। बिषया बन पाँवर भूलि परे। अर्थात् सरकार की सेवा से कामजय होता है और देवो की सेवा से देवत्व प्राप्ति होती है। यह सूचित किया।

लीलाविग्रह भी पाञ्चभौतिक नही है। यथा . चिदानद मय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी। माया का परदा कुछ काल के लिए कुछ हट जाता है और विशुद्ध बोधमय विग्रह प्रकट हो जाता है। यही प्रभु का अवतार है। यथा : भये प्रगट कृपाला। उस लीला विग्रह के सम्मुख होते ही सब दूषण नष्ट हो जाते हैं। यथा सम्मुख होइ जीव मोहि जबही। जन्म कोटि अघ नासहिं तबही। इससे शिव ब्रह्मादि से सेवित और वन्दित होने का कारण भी कहा।

नमामि इंदिरापतिं । सुखाकरं सतां गतिं ॥
भजे सशक्ति सानुजं । शचीपति प्रियानुजं ॥६॥

अर्थ मैं लक्ष्मीपति को नमस्कार करता हूँ। जो सुखो की खानि तथा सत्य पुरुषो की गति हैं। मैं शचीपति के छोटे भाई को शक्ति और अनुज के साथ भजता हूँ।

व्याख्या इन्दिरापति कहकर रामजी का अयोध्या मे राज्याभिषेक कहा। यथा राम बाम दिसि सोहति रमारूप गुन खानि। देखि मातु सब हरखी जनम सुफल निज जानि। सुखाकर से रामराज्य की सुख सम्पदा कहा। यथा रामराज्य कर सुख सपदा। बरनि न सकहि फनीस सारदा। सतां गतिम् कहकर सन्तो का दर्शन के लिए आगमन कहा। यथा नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा। दिन प्रति सकल अयोध्या आवहिं। देखि नगर बिराग बिसरावहिं।

सीताजी शक्ति हैं। सरकार शक्तिमान् हैं। शक्ति और शक्तिमान् मे भेद नही है। सानुज से भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्नरूपी अशो का ग्रहण है। सरकार अशी हैं। यथा असन्ह सहित देह धरि ताता शचीपति के अनुज तो बहुत से देवता हैं। पर प्रिय अनुज तो उपेन्द्र वामनरूप से सरकार ही हैं। जिन्होने बलि को छल कर त्रिलोकी इन्द्र को दी। यहाँ भी माया मानुष रूप धारण करके रावण से त्रिलोकी को छीनकर इन्द्र को ही लौटाने क फेर मे हैं। अत वामनावतार का उल्लख करते हैं। सरकार गुणातीत अरु भोग पुरन्दर हैं। अत शचीपति प्रियानुज कहते है।

त्वदंघ्रिमूल ये नरा । भजंति हीन मत्सरा ॥
पतंति नो भवार्णवे । वितर्क वीचि संकुले ॥७॥

अर्थ जो मनुष्य मत्सर रहित होकर आपके पैर के तलवे का भजन करते हैं वे वितर्करूपी तरङ्गो से परे भवसागर मे नही पडते।

व्याख्या यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावताम्। सरकार के चरण ही भवसागर के लिए नौकारूप हैं। नौका का आश्रय ग्रहण करनेवाला पार चला जाता है और जल से उसका स्पर्श नही होता। इसी भाँति सरकार के चरणतल के भजन करनेवाले का सस्पर्श ससार म रखते हुए भी ससार से लेप नही रहता। वे ससार म गिरते नही। शर्त यही है कि उनमे मत्सरता न हो। मत्सर मान मद चोर हैं। ये भक्तिमणि को चुरा ले जाते हैं। अत शुद्ध हृदय से भजन होना चाहिए। सागर मे नित्य नयी तरङ्गें उठा करती है। कभी वह क्षीणकल्लोल नही होता। उसी भाँति भवसागर मे तर्क वितर्क की लहरें उठा करती हैं। इन्ही के थपेडो से तिरने म असमर्थ होकर प्राणी डूब जाता है। यथा खेद खिन्न मन तर्क बढाई। भयउँ मोहबस तुम्हरिहि नाई।

तिरनेवाले भी दो प्रकार के होते हैं। एक ऐसे हैं जो भक्ति ही चाहते हैं

मुक्ति नहीं चाहते। यथा : राउर बदि भलभव दुख दाहू। प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू। ऐसे भक्त भी वितर्क वीचि सङ्कुल भवसागर में नही पड़ते। सरकार के चरणों का शरण ग्रहण किये हुए जहाज पर सैर करते हुए फिरते हैं और दूसरों को भी कृतार्थ करते हैं और एक ऐसे हैं जो भजन से मुक्ति चाहते हैं। भवसागर से पार चले जाते हैं और फिर उन्हें जहाज की भी आवश्यकता नही रह जाती। ऐसे दोनों प्रकार के भक्तों को संसार सागर बाधा नही कर सकता। यहाँ तक भक्ति कहा।

विविक्तवासिनः सदा। भजंति मुक्तये मुदा॥
निरस्य इन्द्रियादिकं। प्रयान्ति ते गतिं स्वकं॥८॥

अर्थ : एकान्तवासी सदा प्रसन्नतापूर्वक मुक्ति के लिए इन्द्रियो का निग्रह करके भजन करते हैं। वे अपने स्वरूप को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या : इनमें से मुक्ति चाहनेवाले : मुमुक्षु जनसंबाध वर्जित स्थान मे रहकर आनन्द से भजन करते है। देहेन्द्रियादिको को अपने से पृथक् मानते हुए अन्वय व्यतिरेक द्वारा स्वात्मगति अर्थात् कैवल्य को प्राप्त होते हैं। यथा : राम भजत सोई मुकुति गोसाईं। अन इच्छित आवइ बरिआईं। पहिले नमामि भक्त वत्सलं : कहकर भजनीय का स्वभाव कहा। अकामिनां स्वधामद : कहकर भजनीय का सामर्थ्य कहा। निकाम श्यामसुन्दरं : कहकर स्वरूप कहा। दिनेश वशमंडनं आदि कहकर चरित्र कहा। त्वदङ्घ्रिमूल ये नराः आदि कहकर भक्ति और मुक्ति के लिए भजन करने का उपदेश देते हैं।

तमेकमद्भुतं प्रभुं। निरीहमीश्वरं विभुं॥
जगत्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं॥९॥

अर्थ : उसी एक, अद्भुत प्रभु, इच्छारहित, ईश्वर, व्यापक, जगद्गुरु, नित्य, तुरीय और केवल को।

व्याख्या : आप निर्गुण रूप में जगत् से विलक्षण हैं। अतः अद्भुत हैं तथा सगुण रूप से भी अद्भुत है। यथा : जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहू न समाय। सो अब अद्भुत देखेउँ बरनि कवन विधि जाय। तथा प्रभु होने पर भी निरीह हैं और ईश्वर होकर विभु है। अतः सभी प्रकार से अद्भुत है। आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः। आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।

स सर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। इस योगसूत्र का ठीक उल्था है : जगद्गुरु च शाश्वतं। यह अनन्तकाल से सबका गुरु है। ब्रह्मदेव को भी जिसने वेद दिया। आज भी गुरुमुख से वही उपदेश करता है। नही तो एक मनुष्य दूसरे का गुरु नही हो सकता। मनुष्य विनाशी है। ईश्वर अविनाशी हैं। वे ही अनादि गुरु हैं। वे ही जिसके मुख द्वारा उपदेश करते हैं उसी को ससार गुरु मानता है।

सो अनादि गुरु आप ही है। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था से परे होने से आप तुरीय कहे जाते है। तीनो अवस्था की भी अपेक्षा न करके आप केवल तुरीय अर्थात् तुरीयातीत हैं।

भजामि भाववल्लभं। कुयोगिना सुदुर्लभं ॥
स्वभक्त कल्प पादप। समं सुसेव्यमन्वहं ॥१०॥

अर्थ : जो भाव प्रिय, कुयोगियो के लिए अत्यन्त दुर्लभ, अपने भक्तो के लिए कल्पवृक्ष सम और सदा सुखपूर्वक सेवन करने योग्य हैं। ऐसे आपको : मै निरन्तर भजता हूँ।

व्याख्या : ऐसे तुरीय का भजन जाग्रदावस्था मे कैसे सम्भव है। इस पर कहते है कि भाव आपको प्यारा है। जिस भाव से जो भजता है। उसके लिए वैसे ही हो जाते है। यथा . जाकी माया बस बिरचि सिव नाचत पार न पायो। करतल ताल बजाइ ग्वाल जुवतिन्ह सोइ नाच नचायो इत्यादि। जो भगवद्भक्ति हीन योग है उसी को कुयोग कहते हैं। यथा : योग कुयोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं रामप्रेम परधानू। कुयोगियो के लिए आप इसलिए दुर्लभ हैं कि वे मोह वृक्ष उखाड नही सकते। यथा पुरुष कुयोगी सुनु उरगारी। मोह बिटप नहिं सकैं उपारी।

भक्तयोगी के लिए आप कल्पवृक्ष हैं। यथा · देव देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ। जाइ निकट पहिचानि तरु छाँह समन सब सोच। माँगे अभिमत पाइ जग राव रक भल पोच। आप वैषम्यरहित हैं। यथा : यद्यपि सम नहिं राग न रोषू। आप सदा सुसेव्य हैं। यथा बलि पूजा चाहत नही चाहत एक प्रीति।

अनूप रूप भूपति। नतोहमुर्विजा पति ॥
प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्ज भक्ति देहि मे ॥११॥

अर्थ : हे अनूप रूप पृथ्वीपति ! हे धरणीसुता नाथ ! मै आपको प्रणाम करता हूँ। मुझ पर प्रसन्न होइये। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मुझे अपने चरणो की भक्ति दीजिये।

व्याख्या : आप सगुण रूप भी है और निर्गुण रूप भी हैं। अथवा आप मे अनुपम सौन्दर्य है। इसलिए अनूप रूप हैं। आप पृथ्वीपति भी है और पृथ्वी की कन्या सीता के भी पति हैं। पति शब्द पा रक्षणे धातु से बना है। सो रक्षा करनेवाले को पति कहते है और सप्तपदी के बाद वर को पति सज्ञा होती है। यहाँ पति शब्द दोनो अर्थ मे आया है। धरणी की आप रक्षा करनेवाले हैं और धरणी सुता के आप स्वामी हैं।

जो एक बार प्रणाम करता है उसे आप अपना लेते है। मैने तो तीन बार प्रणाम किया है। यथा : १. नमामि भक्तवत्सलं २. नमामि इन्दिरापति और

३. प्रसीद मे नमामि ते। अतः भक्ति माँगते हैं। यह स्तुति : भक्तवत्सलं से प्रारम्भ होकर : भक्ति देहि मे से समाप्त होती है। इसका आरम्भ और पर्यवसान दोनों भक्ति में है। आदि अन्त के मिलने से चक्राकार आकृति हो जाती है। अतः इसका वर्णन अश्लेषा नक्षत्र की भाँति चक्राकार है और भजन ही इसमें तारे की भाँति पाँच स्थानों में चमकता है। यथा : १ भजामि ते पदाम्बुजं २. भजे सशक्ति सानुजं ३. भजति हीनमत्सरा: ४ भजंति मुक्तये मुदा ५. भजामि भाववल्लभं।

पठंति ये स्तवं इदं। नरादरेण ते पदं ॥
व्रजंति नात्र संशयं। त्वदीय भक्तिसंयुता: ॥१२॥

अर्थ : जो इस स्तुति को आदर से पढ़ते हैं वे आपकी भक्ति संयुक्त होकर आपके पद को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या : फलश्रुति कहते हैं : प्रिय पालक परलोक लोक के। २८ गुणग्रामों की अट्ठाईस फलश्रुतियाँ बालकाण्ड के आरम्भ में ही कही गयी हैं। यह नवाँ गुणग्राम है। गुणग्राम को ही स्तुति कहते हैं। भक्तिरूपी पूर्णिमा में ये नक्षत्रों की भाँति सुशोभित हैं। नवी नक्षत्र अश्लेषा है। उसका आकार चक्र सा है और उसमें पाँच तारे चमकते हैं। ये बातें ऊपर दिखला दी गयी हैं। फलश्रुतियाँ भी ठीक इसी क्रम से हैं। यथा : जल मंगल गुनग्राम राम के। दानि सकल धन धर्म धाम के। इत्यादि। यहाँ : ते पद व्रजंति से परलोक का पालक कहा और त्वदीय भक्तिसंयुता से इस लोक का पालक कहा। यथा : सोह सैल गिरिजा गृह आये। जिमि जन राम भगति के पाये।

दो. बिनती करि मुनि नाइ सिरु, कह कर जोरि बहोरि।
चरन सरोरुह नाथ जनि, कबहुँ तजै मति मोरि ॥४॥

अर्थ : विनती करके मुनिजी ने सिर नवाया और फिर हाथ जोड़कर बोले कि चरण कमल को हे नाथ ! कभी मेरी बुद्धि परित्याग न करे।

व्याख्या : जोरि पाणि अस्तुति करत : से उपक्रम और बिनती करि मुनि सिर : से उपसंहार है। पहिले हाथ जोड़कर स्तुति की थी। अब हाथ जोड़कर वरदान माँगते हैं कि आप सबके हृदय के प्रेरक हैं। मेरी मति को ऐसी प्रेरणा कीजिये कि इन चरण कमलों को कभी न छोड़े। इस समय तो मेरी बुद्धि इन चरणों में लगी है। क्योंकि साक्षात् दर्शन हो रहा है। पर आपके चले जाने पर समय पाकर कहीं मेरी बुद्धि बहिर्मुख न हो जाय। क्योंकि चरणों के छोड़ने पर फिर कहीं ठिकाना नहीं है। यथा : श्रीरघुवीर चरन चितन तजि नाहि न ठौर कहूँ। मुनिजी योग जप और तप से शरीर को कस रहे थे। यथा : करहिं जोग जप तप तन कसहीं। आज उस परिश्रम के फल की प्राप्ति का अवसर आया है। अतः मुनिजी बुद्धि की प्रेरणा का वरदान माँगकर गायत्री जप के लक्ष्य की ही सिद्धि चाह रहे हैं। गायत्री की उपासना में बुद्धि की प्रेरणा ही माँगी जाती है।

सरकार जिससे वड़ा का नाता मान लेते हैं उसके वरदान माँगने पर एवमस्तु नही कहते। अभीष्ट प्रदान कर देते हैं। तत्पश्चात् मुनिजी के कहने पर सीताजी भगवती अनुसूया के पास गयी।

अनसूया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील विनीता ॥
रिषिपतिनी मन सुख अधिकाई। आसिप देइ निकट बैठाई ॥१॥

अर्थ : फिर सुशील और विनीत सीताजी अनसूया के चरणो को पकड़कर उनसे मिली। ऋषिपत्नी के मन मे बड़ा सुख हुआ। उन्होंने आशीर्वाद देकर निकट बिठलाया।

व्याख्या : न गुणान् गुणिनो हन्ति स्तौति चान्यगुणानपि। न हसेत् परदोषाश्च सानसूया प्रकीर्त्यते। जो गुणी के गुण मे दोष नही लगाता और दूसरे के गुणों की स्तुति करता है दूसरे के दोषो का उपहास नही करता उसे अनसूया कहते हैं। अत्रिजो की पत्नी का जैसा नाम था वैसा ही गुण था। ये पतिव्रताओ की शिरोमणि थी। इनके राम अत्रिजी ही थे। दूसरे राम को ये नही जानती थी। अतः दर्शन के लिए नही आयी। ऋषिपत्नी के पास जगदम्बा सीताजी गयी। बड़ी विनीत हैं। इसलिए जाकर चरण ग्रहण किया। सुशील हैं : इसलिए मिली। स्त्रियो के लिए दण्डवत् प्रणाम की विधि नही। प्रणाम करके परिष्वङ्ग देने का ही सदाचार है। यथा : करि प्रनाम भेटी सब सासू।

अनसूयाजी का परिचय देते हुए कवि कहते हैं कि ऋषिजी की पत्नी हैं। आह्लादिनी शक्ति भगवती सीताजी के परिष्वङ्ग से उन्हें बड़ा सुख प्राप्त हुआ। सीताजी ने चरण ग्रहण किया। इसलिए आशीर्वाद दिया . सौभाग्यवती भव। पुत्रवती भव। यही आशीर्वाद स्त्री समाज मे आज भी प्रचलित है। सीताजी ने दूर बैठना चाहा तो आदर से उन्हे निकट बिठलाया। मनसा : सुख अधिकाई। वचसा : आसिप देइ और कर्मणा : निकट बैठाई।

दिब्य बसन भूपन पहिराए। जे नित नूतन अमल सुहाए ॥
कह रिषिवधू सरस मृदु बानी। नारि धर्म कछु ब्याज बखानी ॥२॥

अर्थ : दिव्य कपडे और गहने पहिनाये। जो सदा नये स्वच्छ और सुन्दर बने रहते थे। फिर ऋषिपत्नी कुछ स्त्रीधर्म के व्याज से मधुर और कोमल वाणी से बखानकर कहने लगी।

व्याख्या : भगवती अनसूया चन्द्र की माता हैं। चन्द्र से ही क्षत्रियो का प्रधान वंश चला है। सूर्यवंश और चन्द्रवंश मे कन्या का लेन देन है। इसलिए अनसूयाजी कुलवृद्धा हैं। अतः उनका प्रीतिदान स्वीकार करना पड़ा। सम्भवतः इसी भय से सीताजी फिर किसी ऋषिपत्नी से नही मिली। अनसूयाजी तापस वेप मे जानकीजी को नही देख सकी। अतः दिव्य वसन भूपण पहिनाया। जिसमें वनवास की अवधि भर काम दे। दिव्य वसन भूषण का प्रभाव कहते हैं कि जो कभी पुराना मैला तथा

विकृत न हो। ऋषिजी ने सरकार का पूजन किया। ऋषिपत्नी जानकी जी का पूजन करती हैं। स्त्रियों का पूजन वस्त्रालङ्कार से ही होता है।

ऋषिजी ने पूजनोत्तर श्रीरामचन्द्र से सोहाए वचन कहे थे। अब ऋषिपत्नी पूजनोपरान्त सरस मृदुवाणी बोली। नारीधर्म के व्याज से सीताजी की स्तुति की तथा ससार को उपदेश दिया। यथा : कहेउँ कथा ससार हित। पातिव्रत्य पुरःसर ही भगवती का वनवास हुआ था। अतः पातिव्रत्य धर्म वर्णन से सरसता कहा। अर्थतः सरस और शब्दतः मधुर।

मातु पिता भ्राता हितकारी। मित प्रद सब सुनु राजकुमारी ॥
अमित दानि भर्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेवन तेही ॥३॥

अर्थ : हे राजकुमारी! सुनो : माता, पिता, भाई सभी हित करनेवाले हैं। परन्तु वे सब एक सीमा तक ही देनेवाले हैं। परन्तु हे जानकी! पति तो असीम देनेवाला है। वह स्त्री अधम है। जो ऐसे पति की सेवा नही करती।

व्याख्या : हितकारियों मे माता प्रथम है। पिता उसके बाद है। भाई का तीसरा नम्बर है। ये सब देनेवाले हैं। पर इनके देने की सीमा है। राजकुमारो सम्बोधन का भाव यह है कि महाराज जनक ने इतना दिया फिर भी दायज की सीमा थी। सर्वस्व न दे सके। यही संसार की रीति है। माता पिता देते हैं और कह देते हैं कि बेटी! इतना सब तुम्हारा है। इसलिए मितदानी हैं।

भर्ता यह नहीं कहता। उसका जो कुछ है सब पर स्त्री का अधिकार है। यथा : प्रिया प्रान सुत सर्वस मोरे। परिजन प्रजा सकल बस तोरे। यह बात भर्ता ही कह सकता है। मित ददाति च पिता मितं भ्राता मित सुत.। अमितस्य च दातार भर्तारं कानुसेवयेत्। अतः भर्ता की सेवा न करनेवाली स्त्री अधम है। तुमने तो पति सेवा के लिए राज्य छोड़ा। तुम उत्तम हो।

धीरजु धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहि चारी ॥
वृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना ॥४॥

अर्थ : धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री, इन चारों की परीक्षा आपत्ति के समय होती है। बूढ़ा, रोगी, मूर्ख, दरिद्र, अन्धा, बहरा, क्रोधी और अत्यन्त दीन।

व्याख्या : सम्पत्तिकाल मे धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री ये चारों अनुकूल रहते हैं। विपत्तिकाल ही इनकी कसौटी है। अर्थात् तुम्हारी भाँति परीक्षा में कोई उत्तीर्ण नही हुआ। यथा : तापस बेष जनक सिय देखी। भयउ प्रेमु परितोषु बिसेषी। पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ। जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी। आपत्तिकाल कहकर ऐसा उदाहरण देती हैं जिनसे सुख मिल ही नही सकता।

ये आठ दुःखद होने से अपमान के पात्र हो जाते हैं। १. वृद्ध जो पाँचवी अवस्था अपक्षय को प्राप्त है। २. रोगवश अर्थात् असाध्य रोग से गृहीत कुष्ठी आदि

हैं। ३ वुद्धिविहीन ४ धनहीन ५ चक्षुरिन्द्रियहीन ६ और वहिरा ७ क्रोधी स्वभाव तथा ८ अति दीना स्त्री की प्रतिष्ठा तथा सुख पति से ही है। उसमे यदि ऐसे दोष हो फिर भी पति अपमान की वस्तु नही है।

ऐसेहु पति कर किए अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥
एकं धर्मं एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा ॥५॥

अर्थ : ऐसे पति का भी अपमान करने से स्त्री यमपुर मे अनेक प्रकार के दु ख पाती है। मनसा वाचा कर्मणा पति के चरणो मे प्रेम करना। स्त्री के लिए बस एक ही धर्म है एक ही व्रत है और एक ही नियम है।

व्याख्या पति का अपमान नरक मे गिरानेवाला है। चाहे पति उपर्युक्त दोषो से युक्त ही क्यो न हो। उपर्युक्त दोषियो मे पापी को नही गिनाया। पापी जबतक प्रायश्चित्त न कर ले तब तक त्याज्य है। पति के अपमान से यमपुर प्राप्ति और नरक मे घोर दण्ड होता है। जो अपमान के पात्र नही हैं उनके अपमान से नरक होने मे कहना ही क्या है। जिस प्रकार लोकोत्तर सुख प्राप्ति के लिए स्वर्ग है उसी प्रकार लोकोत्तर दु ख के लिए नरक है।

अनेक धर्म है। असख्यात व्रत है। बहुत से नियम हैं। परन्तु स्त्री के लिए कोई भी नही है। उसका पति से पृथक् नियम व्रतादि मे अधिकार नही है। पतिपद प्रेम होने से ही उसे सम्पूर्ण धर्म, व्रत और नियम का फल मिल जाता है। स्त्री यदि कोई व्रत या नियम का पालन करना चाहे तो पति की आज्ञा से उसके कल्याण के लिए कर सकती है। प्रेम रहते अनादर नही होता। अत अनादर करते ही स्त्रियाँ पतित हो जाती हैं। किसी प्रकार से प्रेम मे व्यभिचार न होने पावे। अथवा काम से प्रेम धर्म, वचन से प्रेमव्रत, और मन से प्रेम यही स्त्रियो के लिए नियम है।

जग पतिव्रता चार विधि अहही। बेद पुरान सत सब कहही ॥
उत्तम के अस बस मन माँही। सपनेहु आन पुरुष जग नाँही ॥६॥

अर्थ · ससार मे चार प्रकार की पतिव्रताएँ हैं। वेद पुराण और सब सन्त ऐसा ही कहते हैं। उत्तम के मन मे ऐसा भाव बसा रहता है कि सपने मे भी जगत् मे दूसरा पुरुष नही है।

व्याख्या पतिव्रता के चार प्रकार के होने मे सबका ऐकमत्य है। अर्थात् यह शिष्टानुगृहीत सिद्धान्त है। स्त्री पुरुष मे भोक्तृ भोग्य दृष्टि स्वभाविकी है। स्वभाविकी प्रवृत्ति के निरोध मे ही शास्त्र की उपयोगिता है। वह निरोध स्त्रियो मे चार प्रकार से सम्भव है। स्वभाविकी प्रवृत्ति का सर्वात्मना निरोध हठात् नही हो सकता। अत उस दृष्टि को सब पर से हटाकर एक मे केन्द्रित करना शास्त्रीया प्रवृत्ति है। अत स्त्री का अपनी भोक्तृ दृष्टि को पाणिगृहीता के ऊपर ही केन्द्रित करना पातिव्रत्य है। उसी का चार प्रकार कहा गया है १ भोक्तृभोग्य दृष्टि कही

न होकर केवल पति मे ही होना। २ भोक्तृभोग्य दृष्टि को सब ओर से खीचकर केवल पति मे केन्द्रित करना। ३ भोक्तृभोग्य दृष्टि केन्द्रित नही हो सकी। पर धर्मादि के विचार से इन्द्रियदमन करना। ४ दूसरो के भय आदि से धर्म का निभ जाना।

इनमे प्रथम श्रेणी की स्त्रियाँ उत्तम हैं जो पुरुषरूप से अपने पति को ही जानती हैं। दूसरे के पुरुत्व की भावना ही नही है। यद्यपि स्वप्न मे अपना वश नही है। पर बिना वासना के स्वप्न भी नही होता। अत उन्हे स्वप्न मे भी पर पुरुष मे पुरुत्व की भावना नही होती।

मध्यम परपति देखै कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकृष्ट त्रिय श्रुति अस कहई ॥७॥

अर्थ मध्यम पराये पति को ऐसे देखती है जैसे वह अपना भाई पिता या पुत्र हो। जो धर्म का विचारकर और अपने कुल की मर्यादा समझकर बची रहती हैं वह निकृष्ट स्त्री है। ऐसा वेद का मत है।

व्याख्या वह स्त्री मध्यम श्रेणी की है जिसे दूसरो म भी पुरुत्व की भावना है पर उन्हे भोग्यदृष्टि से नही देखती। समानवयस्क पर भाई की दृष्टि, वयोवृद्ध पर पिता की दृष्टि, अल्पवयस्क पर पुत्र की दृष्टि रखती है। यहाँ तक मानसिक अपवित्रता को स्थान नही है।

परन्तु जिस स्त्री को अन्य पुरुष के प्रति भोग्यदृष्टि तो हुई पर वह धर्म का विचार करके कुल की मर्यादा पर ध्यान करके व्यभिचार से बच जाती है। उसकी शारीरिक शुद्धता अक्षुण्ण है। मानसिक अशुद्धि भी अधिक नही हुई। अत वह पतिव्रताओ मे निकृष्ट है।

बिनु अवसर भय ते रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई ॥
पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई ॥८॥

अर्थ जो अवसर न मिलने से या भय से बच जाती है उसे ससार मे अधम पतिव्रता समझना। पति को ठगकर जो परपति से रति करती है वह सौ कल्प तक रौरव नरक मे पडती है।

व्याख्या। जिसे कोई विचार नही है। केवल भय से या अवसर न मिलने से पतिव्रता बनी हुई है वह भी शारीरिक शुद्धि के कारण से पतिव्रता ही है। पर उनमे अधम है। क्योकि उसकी रक्षा मे उसका विचार करना नही है। दूसरो का भय कारण है। अत पातिव्रत्य की रक्षा के लिए स्त्रियो पर रोक लगाये गये हैं। जिसमे उनका परलोक और यह लोक बना रहे। स्वार्थान्धता इसमे कारण नही हैं। स्थान नास्ति क्षणो नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नर । तेन नारद नारीणा सतीत्वमुपजायते। स्थान नही है। फुरसत नही कोई प्रार्थना करनेवाला नही है। तब जाकर हे नारद स्त्रियो मे सतीत्व उत्पन्न होता है। पातिव्रत्य उत्पन्न होने पर भी कुमारावस्था मे पिता, यौवन मे पति और वृद्धावस्था मे पुत्र रक्षा करे। स्त्री मे स्वतन्त्रता

की योग्यता प्रकृति के नियम से नही है। स्वतन्त्रता के लिए प्रोत्साहन देनेवाले ही उनके धर्मनाश के कारण हैं। वे भला चाहते हुए भी अज्ञानवश उनका महा अकल्याण करते हैं।

यहाँ तक स्वकीया के विषय मे कहा। अब परकीया के विषय मे कहते हैं। जो पतिव्रता का आडम्बर बनाये हुए अपने पति को धोखा देकर दूसरे से प्रेम करती है उसने यहाँ तो प्रतिष्ठा बना रक्खी है पर परलोक मे धोखा नही चलता। वहाँ उसे सौ कल्प तक घोर नरक भोगना पडेगा। एक सहस्र चतुर्युगो का एक कल्प होता है।

छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समझ तेहि सम को खोटी॥
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाँडि छल गहई॥९॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥

अर्थ : क्षण भर के सुख के लिए जो सौ करोड़ जन्म के दु ख को नही समझती उसके ऐसी खोटी कौन है। जो स्त्री छल छोडकर पातिव्रत्य धर्म ग्रहण करती है वह बिना परिश्रम के परमगति को प्राप्त होती है। जो पति के प्रतिकूल है वह जहाँ जाकर जन्म लेती है वही युवावस्था के प्राप्त होने पर विधवा हो जाती है।

व्याख्या : विषयसुख क्षणभङ्गुर है। इसके लिए उसने अपना सौ कोटि जन्म बिगाडा। अल्प के लिए बडी भारी हानि को कुछ न गिना। इसलिए उसे अत्यन्त खोटी बतलाते है। खोटे की परिभाषा ही यही है। जो थोडे से लाभ के लिए अपना धर्म छोड़े। विषयेन्द्रियसयोगात् यत्तदग्रेऽमृतोपमम्। परिणामे विषमिव तत्सुख राजस स्मृतम्। विषय और इन्द्रिय के सयोग से जो पहिले अमृत सा जान पड़े और परिणाम मे विष के समान हो उसे राजस सुख कहते हैं। पहिले तो रतिसुख ही राजस है। सो भी धर्मविरुद्ध होने से घोर तामस हो गया। तामस का फल ही अधोगति है। उसे असख्य जन्म तक श्व-सूकरादि योनियो म दु ख भोगना पड़ता है।

पुरुषगण यज्ञ मे दान से तथा ऐसे ही अन्य कष्टसाध्य उपायो से क्रमश प्राजापत्य आदि लोको को प्राप्त होते हैं। किन्तु स्त्रियाँ तन मन वचन से पति की सेवा करने से ही उनकी हितकारिणी होकर पति के समान शुभ लोको को अनायास ही प्राप्त कर लेती हैं जो कि पुरुषो को अत्यन्त परिश्रम से मिलते हैं। इसलिए स्त्रियाँ धन्य हैं।

ऐसे उदाहरण भी हैं जहाँ सतीत्व भङ्ग नही हुआ पर पति से विरोध हो गया। उस प्रतिकूलाचरण का दण्ड कहते हैं कि ऐसी स्त्री का जहाँ जन्म होता है वहाँ भी पतिसुख उससे छीन लिया जाता है। वह तरुणावस्था मे विधवा हो जाती है। तरुणावस्था मे विधवा होना परमेश्वरीय दण्ड है। उसके भोग लेने मे ही कल्याण है। इसीलिए शास्त्रो मे विधवा विवाह का विधान नही है।

सो सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय ॥
सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं ।
तोहि प्रान प्रिय राम कहेउ कथा ससार हित ॥५॥

अर्थ : स्त्री स्वभाव से ही अपवित्र होती है। उन्हे शुभ गति पतिसेवा से होती है। आज भी तुलसी हरि को प्रिय हैं और चारो वेद उनके यश का गान करते हैं।

व्याख्या : स्त्री के शरीर की बनावट ही ऐसी है कि वे शुद्ध नही रह सकती। वे महीने मे तीन दिन क्रम से चाण्डाली, ब्रह्मघातिनी और रजकी की भाँति अशुद्ध रहती हैं। पुरुष के शुक्र को नौ मास गर्भ के रूप मे धारण करती हैं। इसलिए सहज अपावनी कहा। फिर भी पति से इनकी शुभ गति होती है। अन्य उपाय इनकी सद्गति का है नही। पति के पाणिग्रहण से इनके शरीर का पति के शरीर से अभेद हो जाता है। वे उसकी अर्धाङ्गिनी हो जाती हैं। अत उपर्युक्त दोष पति सेवा करनेवाली को नही लगता। इसलिए हिन्दुओं मे लडके भले ही बिना ब्याहे रह जायँ पर लडकी बिना ब्याही नही रहने पाती। इतना ही नही कि वे दोष से विनिर्मुक्त हो जाती हैं। उनकी शुभ गति होती है। उसके यश को चारो वेद गाते हैं। अर्थात् उसकी शाश्वती गति होती है। क्योकि पतिव्रता स्त्री भगवान् को प्रिय होती है। यथा : परम सती असुराधिप नारी। तेहि बल ताहि न जितहिं पुरारी। छल करि टारयौ तासु व्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह। जब तेहि जान्यौ मर्म सब साप कोप करि दीन्ह। तासु श्राप प्रभु कीन्ह प्रमाना। आज भी वही असुराधिप नारी तुलसी रूप से भगवान् के गले की हार बनी रहती है। यथा · रामहि प्रिय पावन तुलसी सी।

सीता नाम स्मरण से पातिव्रत्य का निर्वाह होता है। अत पहिले की भाँति · सुनु राजकुमारी न कहकर नाम लेकर . सुनु सीता कहती हैं। तुम्हारा तो नाम लेकर स्त्रियाँ पातिव्रत्य धर्म का निर्वाह करेंगी। तुम्हारे लिए क्या कहना है। तुम पतिप्राणा हो। गौरी का नाम लेकर स्त्रियाँ पातिव्रत्यरूपी खड्गधारा पर चढती हैं और तुम्हारा नाम लेकर उनका निर्वाह होता है। गुणवान से कहने से सम्वाद का ससार मे प्रसार हो जाता है और उससे ससार का हित हो जाता है। इसलिए तुम से कहा। तुम्हे उपदेश देने के लिए नही।

सुनि जानकी परम सुख पावा। सादर तासु चरन सिरु नावा ॥
तब मुनि सन कह कृपानिधाना। आयसु होइ जाउँ बन आना ॥१॥

अर्थ . सुनकर जानकीजी को परम सुख हुआ। आदर के साथ उनके चरणो मे सिर नवाया। तब मुनिजी से कृपानिधान रामजी ने कहा कि आज्ञा हो तो दूसरे वन मे जाऊँ।

व्याख्या : जिस धर्म पर परम प्रेम था उसीका निरूपण सरस मृदुवाणी द्वारा सुनने से बड़ा भारी सुख हुआ। अथवा परम सुख पावा कहकर शिष्य की कृतकृत्यता दिखलाया। उपदेश की समाप्ति पर प्रणाम करना चाहिए। यथा : तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। अथवा विदा होने के लिए प्रणाम करती हैं।

जब देखा कि सम्वाद समाप्त हो गया जानकीजी प्रणाम कर चुकी तब सरकार ने विदाई के लिए आज्ञा माँगी। ऋषि की आज्ञा लेकर ही नया काम करते हैं। वाल्मीकिजी की आज्ञा लेकर ही चित्रकूट मे बसे थे। अत्रिजी की आज्ञा लेकर तब दूसरे वन मे जायँगे। कृपानिधान हैं। अत्रि आदि का श्रम सफल कर चुके। अब अन्य ऋषियो के श्रम को सफल करने के लिए जाना चाहते हैं।

संतत मो पर कृपा करेहू। सेवक जानि तजेहु जनि नेहू ॥
धर्म धुरंधर प्रभु कै बानी। सुनि सप्रेम बोले मुनि ज्ञानी ॥२॥

अर्थ : सदा मुझपर कृपा करते रहियेगा। मुझे सेवक जानकर स्नेह न छोड़ियेगा। धर्मधुरन्धर प्रभु की वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि प्रेम पूर्वक बोले।

व्याख्या · प्रभु अपना कुशल ऋषियो की दया पर निर्भर मानते हैं। इसलिए सदा कृपा बनाये रखने के लिए प्रार्थना करते हैं। यथा : हमरे कुसल तुम्हारिहि दाया। मुनिजी सेवक सेव्य भाव के उपासक हैं और प्रभु ब्रह्मण्य देव हैं। अतः ये भी सेवक सेव्य भाव रखते हैं। अत कह रहे हैं कि सेवक जानकर प्रेम बनाये रखियेगा। यथा : सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनै प्रभु पोसे। ब्राह्मणत्व की रक्षा से ही वैदिक धर्म की रक्षा होती है। सो ब्राह्मणत्व का इतना बडा आदर है कि प्रभु अपने को अत्रि के ब्राह्मण होने के नाते सेवक कह रहे हैं। अत. धर्मधुरन्धर कहा। मुनिजी ज्ञानी हैं। पर भक्ति को नही छोडते। अत विनीत वाणी सुनकर भक्ति के सहित बोले। आत्मारामाश्च मुनय· निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकी भक्तिमित्थं-भूतगुणो हरिः। भागवते।

जासु कृपा अज सिव सनकादी। चहत सकल परमारथ बादी ॥
ते तुम्ह राम अकाम पिआरे। दीन बंधु मृदु बचन उचारे ॥३॥

अर्थ : जिसकी कृपा ब्रह्म शिव सनकादिक सभी परमार्थवादी चाहा करते हैं। आप वे ही अकाम प्रिय दीनबन्धु राम हैं। मृदु वचन बोल रहे हैं।

व्याख्या : ब्रह्मदेव ब्रह्मविद्या के सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। शिवजी साक्षात् दक्षिणा मूर्ति हैं। यथा : तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इद श्रीदक्षिणामूर्तये। सनकादिक निवृत्ति मार्ग के उपदेष्टा है। ये सभी परमार्थवादी है। ये लोग आपकी कृपा चाहते हैं। क्योकि आप स्वयं परमार्थ रूप हैं। यथा : राम ब्रह्म परमारथ रूपा।

जिन्हे और वस्तुएँ प्यारी हैं, उन्हे आप प्यारे नही हो सकते। अत: आप अकाम पियारे हैं परन्तु दीनबन्धु हैं और मैं अकाम न होने पर भी दीन हूँ। इसलिए दया करके ऐसा मृदु वचन कह रहे हैं। यह आपका अप्रतिम शील है।

अब जानी मैं श्री चतुराई । भजी तुमहि सब देव बिहाई ॥
जेहि समान अतिसय नहि कोई । ता कर सील कस न अस होई ॥४॥

अर्थ : अब मैंने लक्ष्मीजी की चतुराई समझी। जिन्होने सब देवताओ को छोड़कर आपको ही भजा। जिसके न तो कोई समान है। न बढ़कर है। उसका शील ऐसा क्यों न हो ?

व्याख्या : आपका शील देखकर मुझे लक्ष्मीजी की चतुरता का पता चला कि उन्होंने सीधे सीधे शील को देखा। ऐसा शील किसी मे न पाया। अतः सबको छोड़कर आपका ही भजन किया। त्रैलोक्य की प्रभुता शीलवान् का ही भजन करती हैं : महाभारत मे शीलनिरूपणाध्याय द्रष्टव्य है।

शील ही उत्कर्ष का कारण है। तुम्हारे समान कोई नही है तो वढ़कर कोई कैसे हो सकता है। अतः तुम्ही अपने एक तुच्छ सेवक को इतनी बड़ाई देने में समर्थ हो। नत्वत्समस्त्वभ्यधिक· कुतोऽन्यः। गीतायाम्. । अतः आप मे ही ऐसे शील का होना सम्भव है।

केहि बिधि कहौ जाहु अब स्वामी । कहहु नाथ तुम्ह अंतरजामी ॥
अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा । लोचन जल वह पुलक सरीरा ॥५॥

अर्थ . हे स्वामी ! मैं किस प्रकार कहूँ कि चले जाइये। हे नाथ ! आप अन्तर्यामी हैं। आप ही बतलाइये ऐसा कहकर धीर मुनि प्रभु को देखने लगे। उनके नेत्रो से जल बह चला और शरीर पुलकित हो उठा।

व्याख्या : आयसु होइ जाउँ बन आना : के उत्तर मे मुनिजी कहते हैं : तुमसे कछु न छिपी करुनानिधि तुम हौ अंतरजामी। विनय। मेरा मन आपको छोड़ने को नही चाहता और आप स्वामी होकर आज्ञा माँग रहे हैं। अतः नही भी नही कर सकते। अब आप ही बताइये कि मै आपको जाने के लिए कैसे कहूँ ?

यद्यपि ज्ञानी मुनि धैर्यवाले हैं। फिर भी प्रेम के वश हो गये। आने पर भी : प्रेम बारि दोउ जन अन्हवाये। और जाते समय भी : लोचन जल वह पुलक सरीरा। ऐसी दशा हो गयी।

छं. तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिए ।
मन ग्यान गुन गोतीत प्रभु मै दीख जप तप का किए ।
जप जोग धर्म समूह ते नर भगति अनुपम पावई ।
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिनु दास तुलसी गावई ॥

अर्थ : मुनिजी अत्यन्त प्रेम से पूर्ण हैं। शरीर मे पुलक है। मुख कमल मे आँखें लगी हुई हैं। विचारते हैं कि मैंने क्या जप तप किये थे कि मन ज्ञान और इन्द्रियो से परे प्रभु के दर्शन पाये। जप योग और धर्म समूह से मनुष्य को अनुपम

भक्ति की प्राप्ति होती है। रघुवर के पुनीत चरित को रात दिन तुलसी दास गान करता है।

व्याख्या : ज्ञानी मुनि जब अत्यन्त प्रेम में मग्न हो जाते हैं तो वह दशा कहते नही बनती। यथा : निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी। उसी दशा का यहाँ यथासाध्य वर्णन है। मुनिजी के शरीर मे पुलकावलि छायी हुई है। एकटक होकर मुख की शोभा देख रहे हैं। अत्यन्त सुख का अनुभव हो रहा है। अतः कहते हैं कि जो जप तप मैंने किये वह क्या था? इस सुख के आगे कुछ न था। जप योग और धर्म का बहुत अनुष्ठान करने से तब अनुपम भक्ति की प्राप्ति होती है। जप वचसा, योग मनसा और धर्म कर्मणा अनुष्ठित होता है। मनसा वाचा कर्मणा साधन करने से भक्ति मिलती है। मुझसे तो कुछ न बन पडा।

दासो मे तुलसी बड़ा निकम्मा है। यथा : साहिब सीतानाथ सो सेवक तुलसीदास। उससे जप योग धर्म समूह कुछ नही बन पड़ता और दृढ भक्ति चाहता है। इसलिए रात दिन रघुवीर का यशगान किया करता है। रावनारि जस पावन गावहिं सुनहि जे लोग। राम भगति दृढ पावहिं बिनु बिराग जप जोग।

दो. कलिमल समन दमन मन, राम सुजस सुखमूल।
सादर सुनहि जे तिन्ह पर, रामु रहहिं अनुकूल॥

अर्थ : कलियुग के मल का नाश करनेवाला मन का दमन करनेवाला रामजी का सुयश सुख का मूल है। आदर के साथ श्रवण करनेवाले पर रामजी अनुकूल हो जाते है।

व्याख्या : मन के दमन से ही सुख होता है। कलिमल से दूषित मन का निरोध होता नही। अतः अयोध्याकाण्डान्तर्गत रामचरित को : कलि मल समन दमन मन कहा। कलि का अर्थ और अवगुण ही कलि मल है। दूसरी कोई बात न सोचे। एकाग्र होकर कथा श्रवण करे। यही सादर श्रवण है। यथा : एहि बिधि अमित जुगुति मन गुनेऊँ। मुनि उपदेस न सादर सुनेऊँ। कथा कहने की अपेक्षा श्रवण का माहात्म्य अधिक बतला रहे हैं। भरत चरित सुनने से भी सीय रामपद प्रेम की प्राप्ति होती है और राम चरित्र सुनने से श्रीरामजी की अनुकूलता होती है। यथा : ताकहँ प्रभु कछु अगम नहि जापर तुम अनुकूल। प्रभु प्रताप बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल।

अयोध्याकाण्ड मे : राम लखन सीता सहित सोहत परन निकेत। जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत। यहाँ तक रामयश है। इसके बाद सुमन्त का लौटना तथा चक्रवर्तीजी का देहान्त कहकर भरत चरित्र आरम्भ कर दिया और भरत चरित्र की समाप्ति करते हुए काण्ड की समाप्ति कर दी। इति न देकर कथन की अपूर्णता दिखलाया। पर वस्तुतः अयोध्याकाण्ड की समाप्ति चित्रकूट की कथा की समाप्ति के साथ है। अतः अयोध्याकाण्ड की सन्धि यहाँ तक आयी है। वाल्मीकि

तथा अध्यात्म मे भी अयोध्याकाण्ड की समाप्ति चित्रकूट की कथा समाप्त होने पर ही माना है।

सो. कठिन काल मल कोस, धर्मु न ग्यान न जोग जप।
परिहरि सकल भरोस, रामहि भर्जाहं ते चतुर नर ॥६॥

अर्थ : यह कठिन काल कलिमल का निधान है। इसमे ज्ञान योग जप सभी असम्भव हैं। इसलिए सब भरोसा छोडकर जो राम को भजते हैं वे ही मनुष्य चतुर है।

व्याख्या : अघ अवगुण की खानि होने से कलियुग को मलकोष तथा कठिन कहा। यथा : सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परायन सब नर नारी। अत. धर्म न ज्ञान न योग जप यह सब कुछ नही हो सकता। ये सब निर्विकार चित्त से ही साध्य हैं। अतः इनका भरोसा नही। अनुष्ठान का निषेध नही है। पर भरोसा इनका नही है। भरोसा भजन का है। देशकाल का विचार करके कार्य करनेवाला चतुर है। अत चतुरता इसी में है कि रामजी का भजन करे।

२७. विराधवध प्रसङ्ग

मुनि पद कमल नाइ करि सीसा। चले बनहि सुर नर मुनि ईसा ॥
आगे रामु अनुज पुनि पाछे। मुनिवर बेष बने अति काछे ॥१॥

अर्थ मुनिजी के चरणो मे सिर नवाकर देवता मनुष्य और मुनियो के स्वामी वन को चले। रामजी आगे है। छोटे भाई पीछे हैं। श्रेष्ठ मुनि का वेष बनाये अत्यन्त . कसे कसाये सुशोभित हैं।

व्याख्या : यद्यपि मुनिजी ने प्रेमवश स्पष्ट आज्ञा नही दी। फिर भी ' केहि बिधि कहौं जाहु वन स्वामी। कहने से आज्ञा हो ही गयी। अत प्रणाम करके चले। अर्थात् इस वन से दूसरे वन मे चले। प्राकृत सीमा के अनुसार वनों का भी विभाग होता है। उनके नाम भी होते हैं। सुर नर मुनि की रक्षा के लिए अधिक सङ्कट सहन करेंगे। इसलिए सुर नर मुनि ईसा : कहा। अथवा यद्यपि सुर नर मुनि ईश हैं तथापि मर्यादा पालन के निमित्त मुनि चरण कमल को प्रणाम करके चले।

चित्रकूट जाने के समय का वर्णन है : आगे राम लखनु बने पाछें। तापस बेष बिराजत काछें। यहाँ लखन के स्थान मे अनुज शब्द का प्रयोग हुआ। परन्तु बात वही है। उसी वेष और उसी क्रम से चले। अत पुनि कहा। लखन प्यार से पुकारने का नाम था। सो उसका प्रयोग अयोध्याकाण्ड तक हुआ। अब अवध से दूर जा रहे हैं और ऐश्वर्यप्रधान लीला आरम्भ हो रही है। अत. लछिमन सीता आदि नामो का प्रयोग होगा। यहाँ भी लखन न कहकर अनुज शब्द का प्रयोग किया। यहाँ से घोर वन आरम्भ हुआ। विकट परिस्थिति के सामना की भी सम्भावना है। अतः सब प्रकार से तैयार होकर चल रहे हैं।

उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥
सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिं बर बाटा॥२॥

अर्थ : दोनों के बीच में श्री जानकी कैसी शोभित हैं। जैसे ब्रह्म और जीव के बीच में माया हो। नदी पर्वत और दुर्गम घाटियाँ स्वामी को पहिचानकर सुन्दर रास्ता दे देते हैं।

व्याख्या : श्री शब्द के प्रयोग से ही दिखलाया कि इस समय भगवती सीता तापस वेष मे नही हैं। दिव्य वसन भूपन पहिरे हुए हैं। जो ऋषिवधू भगवती अनसूया ने पहिना दिया था।

ब्रह्म का अनुसरण माया करती है और जीव माया का अनुसरण करता है। यथा : माया वस्य जीव अभिमानी। ईस वस्य माया गुनखानी। ब्रह्म माया को नही देखता माया ब्रह्म को देखा करती है। यथा : सोइ प्रभु भ्रूबिलास खग राजा। नाच नटी इव सहित समाजा। अथवा ब्रह्म जीव में भेद नही है। माया बीच में आकर भेद बनाये हुए हैं। यथा : मुधा भेद जद्यपि कृत माया। इसलिए रामजी की उपमा ब्रह्म से सीताजी की माया से और लक्ष्मणजी की जीव से दिया।

अत्रिजी के आश्रम से विराधवन पहुँचने मे सरिता सर गिरि अवघट घाट सभी मिलते हैं। उनके अभिमानी देवता प्रभु को पहिचानकर सुन्दर मार्ग देते हैं। यथा : बनदेवी बन देव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा। ब्रह्म माया और जीव की भाँति शोभा है। अतः पहिचानने में कठिनता नही है।

जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया॥
मिला असुर बिराध मग जाता। आवत ही रघुबीर निपाता॥३॥

अर्थ : जहाँ जहाँ रघुराज देव जाते हैं वहाँ वहाँ आकाश से मेघ छाया करते जाते है। रास्ते मे जाते हुए विराध राक्षस मिला। सामने आते ही श्रीरघुवीर ने उसे मार गिराया।

व्याख्या : यहाँ देव शब्द के प्रयोग से ऐश्वर्य द्योतन किया। यहाँ अधिदैव चरित्र का प्राधान्य है। जहाँ प्रभु जाते हैं वही मेघ छत्र की भाँति छाया करते हैं। आकाश मण्डल मे घिरे नही हैं। द्यावा पृथ्वी सब सेवा में तत्पर हैं।

असुर विराध कहने से आसुरी सम्पत्ति द्योतन किया। दम्भोदर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च। अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्। इससे विराध मे सब दुर्गुण दिखाये। ये सब लोग विश्राम ले रहे थे और विराध रास्ते से जा रहा था। आवत ही रघुबीर निपाता : विराध का आततायी होना दिखलाया : आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्। रघुवीर निपाता पद से विराध का पराक्रमी होना द्योतित किया।

तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं आवा । देखि दुखी निज धाम पठावा ॥
पुनि आए जहँ मुनि सरभंगा । सुंदर अनुज जानकी संगा ॥४॥

२८. शरभंग देह त्याग प्रसंग

अर्थ : उसने तुरन्त ही सुन्दर रूप प्राप्त किया । दु खी देखकर उसे अपने धाम मे भेज दिया । फिर वे सुन्दर भाई और जानकी के साथ शरभङ्ग मुनिजी के पास आये ।

व्याख्या : प्रभु के बाणो के प्रहार से विराध के अङ्ग प्रत्यङ्ग जर्जर हो गये । वर प्रसाद से उसके प्राण नही निकलते थे । अतः गड्ढा खोदकर उसी मे उसे तोप दिया । यथा : खनि गर्त गोपित विराधा और उसे दु खी देखकर अपने धाम मे भेज दिया । धाम जाने योग्य सुन्दर रूप उसे मिल गया जिसे धारणकर वह राम धाम गया ।

वहाँ से दो कोस पर शरभग मुनि का आश्रम था । उनकी तीनो मूर्ति की उपासना थी । अत कहते हैं · सुंदर अनुज जानकी सगा । वरदान मे भी मुनिजी ने तीनो मूर्तियो को अपने हृदय मे वास माँगेंगे । यथा सीता अनुज सहित प्रभु नील जलद तनु स्याम । मम हिय बसहु निरतर सगुन रूप श्रीराम ।

दो. देखि राम मुख पंकज, मुनिवर लोचन भृंग ।
सादर पान करत अति, धन्य जनम सरभग ॥७॥

अर्थ . श्रीरामजी के मुख कमल को देखकर श्रेष्ठ मुनिजी की आँखें भौंरा होकर आदर के साथ पान कर रही हैं । शरभग का जन्म धन्य है ।

व्याख्या : मुनिजी की आँखें भृङ्ग होकर रूप मकरन्द का पान कर रही हैं । यथा : पियत नयन पुट रूप पियूषा । मन तो चोरी चल गया । इसलिए उसका उल्लेख नही करते । यथा : निजपन राख्यौ जन मन चोरा । इसीलिए प्रणाम आशीर्वाद नही कहते । शरभङ्गजी का जन्म अति धन्य कहा । क्योकि खूब ठगे गये । यहाँ तो ठगे जाने का ही माहात्म्य है । सरकार के दर्शन पर भी जिसका मन चोरी न जाय सावधान रहे उसे श्री गोस्वामिपाद धिक्कार देते है । यथा : ठगिसी रही जे न ठगे धिक ते । कविता । एक बात और है । चोर से प्रणाम आशीर्वाद का शिष्टाचार नही है । रूप सुधा का पान करनेवाला धन्य और अति पान करनेवाला अति धन्य हैं । सो शरभङ्गजी अतिधन्यो मे हैं । देखा तो तीनो व्यक्तियो को पर ध्यान तो राममुख पकज मकरन्द का ही कर रहे हैं ।

कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला । संकर मानस राजमराला ॥
जात रहेउँ बिरंचि के धामा । सुनेउँ श्रवन बन ऐहहिं रामा ॥१॥

अर्थ : मुनि ने कहा कि हे रघुवीर ! हे शङ्कर के मानस के राजहस ! सुनो । मैं ब्रह्मलोक को जा रहा था । कान से सुन पाया कि वन मे रामजी आवेंगे ।

व्याख्या अभी विराध वध किये चले आ रहे हैं। इसलिए रघुवीर कहा। यथा : आवत ही रघुवीर निपाता। कृपा करके दर्शन दिया। इसलिए कृपाल कह रहे हैं। अपने मानस मे बसाना है। इसलिए 'सकर मानस राज मराल कहते हैं। राज मराल से सौन्दर्य तथा गाम्भीर्य का आधिक्य द्योतन किया। मुनिजी ने प्रभु को बोलने न दिया। आप ही बोलते चले गये। बडी जल्दी है। प्रभु खडे हैं।

इन्द्र भगवान् लेने आये थे ब्रह्मलोक ले जाने के लिए। पर प्रभु के दर्शन के सामने ब्रह्मलोक क्या है? इसलिए नही गये। चलने की तैयारी कर चुके थे। प्रभु के आने का समाचार पाकर रुके। अत पूजा सत्कार कुछ न कर सके। काक्षामृत्यु हैं : जब चाहे तब मरें। इनके लिए मरना कुछ नही है। केवल आने जाने की बात है।

चितवत पथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि[1] जुडानी छाती॥
नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥२॥

अर्थ . दिन रात बराबर आपकी राह देख रहा था। अब सरकार को देखकर छाती ठण्ढी हुई। हे नाथ! मैं सब साधनो से हीन हूँ। मुझे दीन सेवक जानकर आपने कृपा की।

व्याख्या घोर वन मे यही एक मार्ग है। कही आप रात को इधर से निकल न जायँ इसलिए रात दिन बराबर रास्ता देखता रहा। सोया नही। देखे बिनु रघुनाथ पद जिय की जरनि न जाय। सो अब जलन गयी। छाती ठण्ढी हुई।

अपने को सकल साधन से हीन मानना कार्पण्य है। भक्त के लिए यह भाव आवश्यक है। प्रभु का दर्शन क्रियासाध्य नही कृपासाध्य है। सरकार को दीन प्रिय हैं। अत दीन सेवक जानकर आपने दर्शन दिया।

सो कछु देव न मोहि निहोरा। निज पन राखेउ जन मन चोरा॥
तब लगि रहहु दीन हित लागी। जब लगि मिलौं तुम्हहि तनु त्यागी॥३॥

अर्थ हे देव! यह मेरे ऊपर कुछ भी एहसान नही है। आप जन के मन के चोर हैं। अपने प्रण की रक्षा आपने की है। जब से शरीर त्यागकर आपसे मिल जाता हूँ तब तक दीन के हित के लिए यही ठहरे रहिये।

व्याख्या . तस्कराणा पतये नम । चोर तो धन चुराते हैं। आप भक्तो का मन चुराते हैं। मेरा मन चुरा लिया। मैं दीन हो रहा हूँ। क्षण भर आपके बिना नही रह सकता। कही मन लेकर चले न जाना। इसलिए तब तक ठहरिये। अब आपसे मिलने मे स्थूल शरीर का ही व्यवधान है। उसे छोडकर आपसे मिलना चाहता हूँ। सदा आपके पास बना रहूँ अर्थात् सामीप्य मुक्ति चाहते है।

---

१ यहाँ प्रहर्षण अलङ्कार है।

जोगु जग्य जप तप जत कीन्हा । प्रभु कहुँ देइ भगति वर लीन्हा ॥
येहि विधि सर रचि मुनि सरभंगा । बैठे हृदय छाड़ि सब संगा ॥४॥

अर्थ : योग यज्ञ जप और तप जो कुछ मुनिजी ने किया था वह सब प्र को समर्पण करके भक्ति वर ले लिया । इस प्रकार से चिता बनाकर शरभङ्ग मु सब आसक्तियों को छोड़कर उस पर बैठ गये ।

व्याख्या : सभी शुभ कर्मों को रामजी को अर्पण कर दिया । यथा : यत्करो यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत् । यत् तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् । औ उसके बदले में भक्ति वरदान माँग लिया । मुनिजी बडे चतुर हैं । इस भाँति अध्रु को देकर ध्रुवपद को प्राप्त किया । क्योंकि : तीर्थाटन साधन समुदाई । जोग बिरा ज्ञान निपुनाई । नाना कर्म धर्म व्रत दाना । सजम जम जप तप मख नाना । भूतदय द्विज गुरु सेवकाई । बिद्या विनय विबेक बड़ाई । जहँ लगि साधन वेद बखानी सबका फल हरि भगति भवानी ।

एहि विधि : कहने का भाव यह है कि सब कर्मो को ब्रह्मार्पण करके भक्तिव ले करके और इहलोक परलोक की सब वासना छोड़ करके योगाग्नि से शरीर त्या करेंगे । अतः स्वयं चिता रचकर उस पर बैठे ।

दो. सीता अनुज समेत प्रभु, नील जलद तनु स्याम ।
मम हिय बसहु निरंतर, सगुन रूप श्रीराम ॥८॥

अर्थ : नीले बादल के समान श्याम शरीरवाले श्रीरामजी सगुण रूप से हे प्रभु ! सीता और लक्ष्मण के सहित निरन्तर मेरे हृदय मे वास कीजिये ।

व्याख्या : सीता अनुज सहित अपने हृदय में बसाते हैं । अपने हृदय को प्रभु के निवास के लिए भवन बना रहे हैं । अतः भवनाकार यह गुणग्राम : स्तुति दसवी मघा नक्षत्र है । इसमें पाँच तारे चमकते हैं । पाँच कार्य हुए हैं । वे ही पाँच तारे हैं : १. कहने से सुना : बन ऐहैं रामा २. प्रभु को देखकर छाती शीतल हुई ३. शरीर छोड़कर प्रभु से मिलना चाहा ४. भक्ति वर लिया ५ सीता अनुज समेत प्रभु को हृदय में बसाकर देह त्याग किया । इसकी फल स्तुति है : सचिव भूपति बिचार के ।

इसी नील जलद तनु श्याम ने मन चुराया था । सो चोर को स्त्री भाई सहित हृदय में बन्द कर लिया । कभी बाहर न जाने देंगे । अतः निरन्तर कहते हैं । यद्यपि निर्गुण सगुण रूप में अन्तर नही । पर चोरी सगुण रूप ने की है । अतः वे ही कैद भी रहें । भाव यह कि प्रभु निर्गुण रूप से तो सबके हृदय में बसते हैं पर इससे दु.ख तो नही दूर होता । यथा : अस प्रभु हृदय अछत अविकारी । सकल जीव जग दीन दुःखारी । दुःख दूर तो सगुण रूप के बसने से होता है । इसलिए सगुण रूप से बसाते हैं । सीता लक्ष्मण के साथ ही प्रभु का मुख्य त्रिकोण रूप बनता है । अतः दोनों के साथ हृदय में बसाने का बरदान माँगा ।

असं कहि जोग अगिनि तनु जारा । राम कृपा बैकुंठ सिधारा ॥
ताते मुनि हरि लीन न भयऊ । प्रथमहि भेद भगति बर लयऊ ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर शरभङ्गजी ने योगाग्नि से अपने शरीर को जला डाला और रामजी की कृपा से वैकुण्ठ चले गये। पहिले भेदभक्ति का वर माँग रक्खा था। इसलिए मुनिजी भगवान् मे लीन नही हुए।

व्याख्या : योगाग्नि से शरीर त्यागने की क्रिया समान ही थी। इसलिए सतीजी और शरभङ्गजी के देहत्याग प्रकरण मे दोनो स्थान मे एक ही पद का प्रयोग किया। अस कहि जोग अगिनि तन जारा। तब लगि रहौं दीन हित लागी। जब लगि तुम्हहि मिलौ तनु त्यागी : कहकर सरकार को खड़ा कराये हुए हैं। अतः वही जल्दी है। एवमस्तु सुनने की भी प्रतीक्षा नही की। कृपा का बड़ा भरोसा है। कहा भी है : सुनु रघुबीर कृपाला। कीन्ही कृपा जानि जन दीना। अतः रामकृपा वैकुण्ठ सरकार का रूप ही है। उसकी लोक मे गणना नही है। यथा : कहु मतिमद लोक वैकुंठा।

योगाग्नि से शरीर छोडनेवाले को हरिपद लीन होना चाहिए। यथा : तजि जोग पावक देह हरिपद लीन भइ जहँ नहि फिरे। परन्तु मुनिजी लीन नही हुए। इसका कारण देते हैं कि अभेद भक्ति से जीव लीन होता है। भेदभक्ति से नही। यथा ताते उमा मोक्ष नहिं पायो। दसरथ भेदभक्ति मन लायो। सती के लीन न होने मे भी ऐसा ही कारण हुआ। यथा : सती मरत हरिसन बर माँगा। जन्म जन्म सिव पद अनुरागा।

रिषि निकाय मुनिबर गति देखी । सुखी भए निज हृदय बिसेखी ॥
अस्तुति करहि सकल मुनि बृंदा । जयति प्रनत हित करुना कंदा ॥२॥

अर्थ : ऋषि समूह मुनिश्रेष्ठ की श्रेष्ठ गति देखकर अपने मन मे विशेष सुखी हुए। सब मुनि लोग स्तुति कर रहे हैं कि प्रणाम करनेवाले हितकारी करुणा के मेघ की जय हो।

व्याख्या : ऋषि मन्त्रद्रष्टा हैं। उन लोगो ने मुनिवर का वैकुण्ठ पधारना देखा तो अपने मन मे बडे हर्षित हुए। यह ऋषियो की मुदिता है कि पुण्यवान् की उत्तम गति से उन्हे प्रसन्नता हुई ईर्ष्या नही हुई : विराध वध का समाचार पाने से। शरभङ्ग के आश्रम आते आते ऋषियो की भीड इकट्ठी हो गयी। उन्हे प्रभु से अपना कष्ट निवेदन करना है। प्रभु को देखकर सुखी हुए। मुनिवर की गति देखकर विशेष सुखी हुए। अतः प्रणत हित और करुणाकन्द की जय ऐसा कहकर स्तुति करते हैं। प्रणतहित कहकर अपनी शरणागति दिखलायी और करुणाकन्द कहकर सभी ऋषियो पर करुणादृष्टि की वृष्टि की आशा दिखलायी।

पुनि रघुनाथ चले बन आगे । मुनिबर बृंद बिपुल सँग लागें ॥
अस्थि समूह देखि रघुराया । पूँछी मुनिन्ह लागि अति दाया ॥३॥

अर्थ : फिर रघुनाथजी आगे वन मे चले। श्रेष्ठ मुनि लोगो का बड़ा समूह साथ लग गया। हड्डियो का ढेर देखकर रघुनाथजी को बडी दया आयी। मुनियो से पूछा।

व्याख्या : रघुनाथ हैं। अनाथ मुनियो को सनाथ करने आये है। पहिले कह चुके हैं कि चले बनहि सुर नर मुनि ईसा। शरभङ्ग के आश्रम पर ठहर गये थे। अत: आगे चलना कहते हैं। अपने अपने यहां ले जाने के लिए मुनि लोगो ने साथ पकड़ लिया। अस्थि समूह देखने से प्राणियो के असामयिक मृत्यु का अनुमान हुआ। इससे बड़ी दया हुई। इतने नर कङ्काल के एकत्र होने का कोई विशेष कारण होना चाहिए : इससे पूछा। मुनियो के मुख से अत्याचारियो के अत्याचार का वर्णन सुनना चाहते हैं। राजधर्म का आश्रयण करके उनका दण्ड विधान करना है।

जानतहूँ पूछिअ कस स्वामी। सबदरसी तुम्ह अंतरजामी॥
निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुबीर नयन जल छाए॥४॥

अर्थ : जानते हुए भी आप कैसे पूछते हैं। हे स्वामी! आप तो सर्वज्ञ और अन्तर्यामी हैं। राक्षसो के समूह ने सब मुनियो को खा डाला है। सुनकर श्रीरघुवीर की आँख डवडवा आयी।

व्याख्या : आप सर्वज्ञ हैं। सब कुछ जानते हैं, अन्तर्यामी हैं। आप से कुछ छिपा नही है। अत: यह घटना भी आपको अविदित नही है। फिर क्यो पूछते हैं? भाव यह कि पापियो के पाप कहने मे भी दोष है पर आप स्वामी हैं। आपको आज्ञा अपेल है। अत: निवेदन करते हैं। राक्षस लोग इकट्ठे होकर सब मुनियों का यहाँ भोजन किया है। राक्षसो के आहार ही मनुष्य हैं कि पुन: ब्राह्मणो का खाना तो उन्हे अति प्रिय है। यथा : खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। मुनि लोग गर्भगत बालक की भाँति प्रतिरोध करने मे असमर्थ थे। अतः उनका भोज इसी स्थान पर राक्षसो द्वारा हुआ।

सरकार केवल युद्धवीर दानवीर ही नही हैं दयावीर भी हैं। इसलिए रघुवीर शब्द का प्रयोग किया। उपर्युक्त बातें सुनते ही करुणाकर की आँखों में जल आगया। अपराधियो के अपराध का पर्याप्त प्रमाण मिल गया। अत: दण्ड विधान के लिए प्रतिज्ञा हो रही है।

दो. निसिचर हीन करउँ महि, भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह॥९॥

अर्थ : भुजा उठाकर प्रतिज्ञा की कि मैं पृथ्वी को बिना राक्षस की कर दूँगा। फिर सब मुनियो के आश्रमो मे जा जाकर उन्हे सुख दिया।

व्याख्या : मुनियो ने कहा : निसिचर निकर सकल मुनि खाए। [illegible] सरकार प्रतिज्ञा करते हैं : निसिचर हीन करउँ महि। [illegible]

देने के लिए भुज उठाइ प्रन कीन्ह। अपना दृढ निश्चय सूचित करने के लिए भुजा उठाकर प्रण करने का नियम है। यथा भुजा उठाइ कहौं प्रन रोपी। प्रन बिदेह-कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल। बहुत से ऋषि इस अभिलाषा से साथ थे कि सरकार को अपने अपने आश्रम मे ले चलें। अत सरकार सबके आश्रमो मे गये और सुख दीन्ह कहने का भाव यह कि सबके आश्रमो मे ठहरे। किसी के आश्रम पर पन्द्रह दिन, किसी के यहाँ एक महीना, किसी के आश्रम पर डेढ महीना, किसी के आश्रम पर तीन महीना, कही छ महीना, कही सालभर। इस भाँति वनवास की अवधि का दस साल व्यतीत किया। राक्षस लोग विराध वध से सशङ्क हो गये थे। अत एक भी हाथ न लगे। उन सबो ने उधर का रास्ता छोड दिया। इसके बाद सुतीक्ष्ण प्रीति प्रसङ्ग आरम्भ करते हैं।

२९ सुतीक्ष्ण प्रीति प्रसग

मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना। नाम सुतीछन रति भगवाना॥
मन क्रम बचन राम पद सेवक। सपनेहुँ आन भरोस न देवक॥१॥

अर्थ मुनि अगस्त्य के एक सुजान शिष्य थे। उनका नाम सुतीक्ष्ण था। उनकी भगवान् मे भक्ति थी। मन कर्म और वचन से रामजी के चरणो के सेवक थे। उन्हे सपने मे भी दूसरे देवता का भरोसा न था।

व्याख्या अगस्त्य मुनि के बहुत शिष्य थे। कोई कर्मठ थे, कोई योगी थे, कोई, ज्ञानी थे, उनमे सुतीक्ष्णजी बडे सुजान थे। क्योंकि उनकी रति भगवान् मे थी। यथा राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभा बड आदर तासू। मुनि अगस्त्य कर शिष्य कहने का भाव यह कि महा प्रभावशाली ऋषि के शिष्य थे। उनकी भक्ति प्रसिद्ध है। अगस्त्यसहिता रामभक्ति का प्रधान ग्रन्थ है। उनका शिष्य कहकर उनमे भी रामोपासना सूचित किया।

मनक्रम बचन छाडि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई। सो ये मन वचन कर्म से रामजी के चरणो के सेवक थे। अत सरकारी कृपा के पात्र थे। सेवकाई मे भी अनन्यता कहते हैं कि नित्य नैमित्तिक कर्म के निर्वाह करने मे जिन जिन देवताओ के पूजन स्तवन या व्रत का विधान है। सो सब करते थे। पर भरोसा किसी का स्वप्न मे भी नही करते थे। उन्हे केवल रामजी का भरोसा था।

प्रभु आगवनु श्रवन सुनि पावा। करत मनोरथ आतुर धावा॥
हे बिधि दीनबधु रघुराया। मो से सठ पर करिहहि दाया॥२॥

अर्थ कानो से प्रभु का आगमन सुन पाया। मनोरथ करते हुए आतुरता से दौड पडे। क्या यह सम्भव है कि दीनबन्धु रघुराज मुझ से शठ पर दया करेंगे?।

व्याख्या चलते फिरते किसी भाँति वह बात कान मे पड गयी कि सरकार इधर आ रहे हैं। इस बात को पक्की करने के लिए अवसर कहाँ? आतुर हो दौड

पड़े। प्रेमपात्र के आगमन को सुनते ही प्रेमी के मनोरथों का अन्त नहीं रह जाता। यथा : करत मनोरथ बहु मन माही। एक बिधि करत मनोरथ जात न लागी पार। आतुर धावा : से पहिली दशा अभिलाष कहा। : १ :

हे विधि : कहकर ब्रह्मदेव का आश्चर्य के साथ स्मरण करते हैं। विधि का कार्य तो विधि से होता है। मेरे ऊपर दया करने की कौन विधि है ? मैं शठ हूँ। शठ सेवक तो स्वामी के लिए शूल समान होता है। क्या प्रभु की दीनबन्धुता इतनी है कि मेरे ऐसे भारी शठ पर भी उनकी अनुकम्पा होगी ? यह दूसरी दशा चिन्ता है। : २ :

सहित अनुज मोहि राम गोसाईं। मिलिहहिं निज सेवक की नाईं ॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाही। भगति बिरति न ग्यान मन माही ॥३॥

अर्थ : क्या छोटे भाई के सहित स्वामी रामजी मुझसे निज सेवक की भाँति मिलेंगे। मेरे मन में तो दृढ़ भरोसा नहीं होगा। क्योंकि मेरे मन में भक्ति, वैराग्य या ज्ञान नहीं है।

व्याख्या : ऊपर की अर्धाली में कहा है कि क्या मुझसे शठ पर दया करेंगे। अब उसी बात को स्पष्ट करते हैं। वह कौन सी दया है जो सुतीक्ष्णजी चाह रहे हैं ? सो वह दया सरकार का परिष्वङ्ग देना है और वह दया परिष्वङ्ग ऐसा हो जो निज दास को सरकार देते हैं। क्योंकि परिष्वङ्ग तो पिता, माता, पुत्र, सखा आदि को भी दिया जाता है। पर उसे मुनिजी नहीं चाहते। क्योंकि सरकार को सबसे अधिक प्रिय निज दास हैं। स्वयं भरतजी ने प्रभु द्वारा निज दास की भाँति स्मरण किये जाने की अभिलाषा प्रकट की। यथा : निज दास ज्यों रघुबंस भूषन कबहुँ मन सुमिरन करयो। मुनिजी उसी भाव से मिलना चाह रहे हैं और उससे भी भाई सहित मिलने में पूरा सत्कार है। भगवत् भागवत दोनों के मिलने का सुख है। यथा : अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। अब प्रश्न यह रहा कि निज दास किसे कहते हैं ? इस बात को स्वयं प्रभु ने स्पष्ट किया है : तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। जिसे प्रभु को छोड़कर दूसरे की आशा नहीं वही निज दास है। परिष्वङ्ग मिलने को कहते हैं। सरकार ने स्वयं कहा है कि परिष्वङ्ग से अधिक मेरे पास देने के लिए कुछ नहीं है। उसी अत्यन्त सुख का स्मरण करके मुनिजी विह्वल हैं। यह तीसरी अवस्था स्मरण है। : ३ : रामजी गोसाईं हैं। सब के मालिक हैं। दयालु हैं। ये शठ सेवक की प्रीति रुचि रखनेवाले हैं। अतः मुझसे अनुज के साथ निज सेवक की भाँति मिलना उनके लिए असम्भव तो नहीं है। यह चौथी अवस्था सरकार का गुण कथन है। : ४ :

मुनिजी कहते हैं कि फिर भी मेरे मन में दृढ़ भरोसा नहीं हो रहा है। क्योंकि मेरे में साधन का बड़ा घाटा है। भक्ति पथ पर मैं आरूढ़ नहीं हूँ : श्रुति सम्मत हरि भगति पथ सजुत बिरति बिबेक। हरिभक्ति में भक्ति वैराग्य और विवेक तीनों चाहिए।

मुझमे तीनो मे से एक भी नही है। अत उनकी दीनबन्धुता का भरोसा है। अपनी ओर दृष्टि करने से तो दृढता नही होती। यह पाँचवी दशा उद्वेग है। : ५ :

नहि सतसग जोग जप जागा। नहि दृढ चरन कमल अनुरागा ॥
एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाके गति न आन की ॥४॥

अर्थ : इधर तो सत्सङ्ग योग जप यज्ञ कुछ भी नही और न चरण कमल मे दृढ अनुराग है। हाँ करुणा निधान का ऐसा स्वभाव है कि उनको वही प्रिय है। जिसे दूसरे का भरोसा न हो।

व्याख्या *श्रुति सम्मत हरि भगति पथ वैधी भक्ति है।* इसके अतिरिक्त पाँच साधन और भी है। १ सत्सङ्ग यथा सतसगति मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला। २ योग यथा : करहि जोग जोगी जेहि लागी। ३ जप यथा : द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग। ४ यज्ञ यथा त्रेता बिबिध यज्ञ नर करही। प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरही। ५ दृढ चरन कमल अनुराग यथा 'पद कमल परागा रस अनुरागा। मम मनमधुप करइ पाना। अर्थात् रागानुगा भक्ति। यहाँ पाँच मे एक भी नही। यह छठी दशा प्रलाप है। ६ प्रिय को विद्यमान मानकर निरर्थक वचन रचना है।

तब उनके कारुणिक स्वभाव का भरोसा है। मुझे अन्य गति नही है और उन्हे अनन्यगतिक प्रिय हैं। यथा है तुलसी के एक गुन अवगुन बिधि कह लोग। भलो भरोसो रावरो राम रीझिबे जोग।

होइहै सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पकज भव मोचन ॥
निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी ॥५॥

अर्थ : भव मोचन मुख कमल के दर्शन से आज मेरी आँखें सुफल होगी। मुनि ज्ञानी पूर्ण प्रेम मे निमग्न हो गये। हे भवानी ! वह दशा कही नही जा सकती।

व्याख्या : अत यह निश्चय किया कि दर्शन मिलेगा। लोचन का साफल्य सरकार के दर्शन से होता है। यथा करहु सुफल सब के नयन सुन्दर बदन देखाइ। आँखें तो अगणित जन्म से मिलती चली आयी है सफल कभी न हुईं। सफल हुई होती तो जन्म ही क्यो होता। इसलिए वदन पकज का भव मोचन विशेषण दिया।

सुतीक्ष्णजी ज्ञानी मुनि हैं। योगवासिष्ठ के प्रधान श्रोता हैं। तथापि निर्भर प्रेम मे मग्न हैं। यह रामजी के प्रेम की महिमा है। यथा मोह मगन मति नहि बिदेह की। महिमा सिय रघुबर सनेह की। आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था. अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरि । ज्ञानघाट के वक्ता जवाब देते हैं कि वह दशा कही नही जा सकती। जिसकी यह दशा है वह स्वय उस दशा को नही समझ रहा है। यह सातवी दशा उन्माद है। ७ .

न अरु बिदिसि पथ नहिं सूझा। को मैं चलेउ कहाँ नहिं बूझा ॥
हुँक फिरि पाछे पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई ॥६॥

अर्थ : उन्हे दिशा विदिशा और रास्ता कुछ भी सूझ नही रहा है। मैं कौन हूँ जा रहा हूँ। इसका भी चेत नही है। कभी घूमकर पीछे चले जाते हैं। कभी का गान करके नाचने लगते हैं।

व्याख्या : पहिले करत मनोरथ आतुर धावा। अब मनोरथ करते करते निर्भर मे विभोर होने से रास्ता सूझना वन्द हो गया। उन्हे यह पता नही कि पूर्व, चम, उत्तर, दक्खिन किघर है। नैऋत्य, वायव्य, अग्नि और ईशान कोण कौन इधर उधर देखते हैं। कुछ मालूम नही होता। दशा बढती ही गयी अपने को गये। कहाँ चले थे यह भी मालूम नही' पन्थ का न सूझना आठवी दशा घि है। : ८

जब कहाँ जाते है. यही भूल गये तब लौट पडे, फिर लौटना भूलकर गान करके नाचने लगे : होइहि सुलभ आजु मम लोचन। इस आशा पर इतना न्द बढा हुआ है : आगे जाते जाते रुक गये। लौटे तो फिर गति रुक गयी। यह ता का सञ्चार नवी दशा है। . ९ :

वरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखहिं तरु ओट लुकाई ॥
तसै प्रेम देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदय हरन भव भीरा ॥७॥

अर्थ · मुनि ने प्रगाढ प्रेमाभक्ति प्राप्त कर ली। सरकार वृक्ष की आड मे छिपे देख रहे हैं। मुनि का अत्यन्त प्रेम देखकर भव भय के हरण करनेवाले रामजी य मे प्रकट हो गये।

व्याख्या : जडता का सञ्चार कहकर अविरल भक्ति की प्राप्ति कहते हैं। इतने तक सरकार पेड के आड मे खडे देख रहे थे। भक्तो के पागलपन की दशा कार को प्रिय है। छिपे इसलिए हैं कि प्रकट होने से विप्रलम्भावस्था ही समाप्त जायगी।

असह्य प्रेमवेग अर्थात् दशम दशा . मरण की प्राप्ति होते देखकर हृदय मे प्रकट। दशा ऐसी थी कि पत्ता खटकने से काम विगडता। इसलिए तरु ओट से सामने ने का प्रयत्न नही किया। हृदय मे प्रकट हो गये। अतिशय प्रेम से ही प्रभु प्रकट ने हैं और उसी से भव भय का नाश होता है।

ने मग माँझ अचल होइ वैसा। पुलक सरीर पनस फल जैसा ॥
र रघुनाथ निकट चलि आए। देखि दसा निज जन मन भाए ॥८॥

अर्थ · मुनिजी बीच रास्ते मे अचल होकर बैठ गये। उनका शरीर कटहल के ान रोमाञ्चित हो गया। तब रामजी उनके पास चले आये और अपने भक्त की ा देखकर अपना भक्त उन्हे बहुत प्यारा लगा।

व्याख्या : मुनिजी को प्रेम समाधि लग गयी। नही तो बीच रास्ते में कोई अचल होकर नही बैठता। ये रास्ते मे ही अचल हुए। क्योकि रास्ते मे ही इन्हे हरि की प्राप्ति हुई। आनन्द से अद्भुत पुलक हो गया। कटहल के काँटे घने पुलक के ऐसे होते हैं। मुनिजी के शरीर मे कोई स्थान ऐसा न रह गया जहाँ उत्तम पुलक न हो।

जब रामजी ने देख लिया कि मुनिजी अत्यन्त आनन्द से पुलकित हैं। तब निकट गये। प्रभु का स्वभाव है कि निज जन को अपना लेते हैं। सुतीक्ष्णजी का मनोरथ भी था कि रामजी उन्हे निज जन जाकर मिलें। यथा : निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाउ कपि कुल मन भावा।

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यान जनित सुख पावा॥
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा॥९॥

अर्थ : मुनिजी को रामजी ने अनेक भाँति से जगाया। पर मुनिजी नही जागे। क्योकि उन्हे सरकार के ध्यान का सुख मिल रहा था। तब रामजी ने राजा के रूप को अन्तर्धान कर दिया और उनके हृदय मे चतुर्भुज रूप दिखलाया।

व्याख्या : सोने से मूर्च्छा से तथा समाधि से व्युत्थान दशा मे होश मे आने को जागना कहते हैं। अतः श्रीरामजी ने समाधि अवस्था से उन्हे जाग्रत अवस्था मे लाने की अनेक चेष्टा की। जो जो उपाय समाधि से उतारने के हैं सो सब काम मे लाये। पर उनकी समाधि भङ्ग न हुई। तात्पर्य यह कि प्रेमाधिक्य से आप से आप समाधि लग जाती है और ऐसी लगती है कि उससे उतारना कठिन हो जाता है। क्योकि समाधि जनित आनन्द को साधक छोड़ना नही चाहता। सरकार ने देखा कि इस तरह ये न जागेंगे।

ये माधुर्य के उपासक थे। ऐश्वर्य रूप के नहीं थे। भूप रूप माधुर्य का रूप है और चतुर्भुज रूप ऐश्वर्य का है। यद्यपि दोनो रूप सरकार के ही हैं। द्विचत्वारि षडष्टासा दश द्वादश षोडश। अष्टादशामी कथिता हस्ताः शङ्खादिभिर्युता। पूर्व तापनीये। दो, चार, छ, आठ, दस, बारह, सोलह, अठारह हाथ तक भगवान् रामभद्र के शङ्ख आदि से युक्त माने गये हैं। पर भूप रूपवाली माधुर्य मूर्ति द्विभुज है। मुनिजी उसी के उपासक थे। प्रभु ने उस मूर्ति को अन्तर्धान कर लिया और उसके स्थान पर चतुर्भुज मूर्ति शङ्खचक्रादि से युक्त प्रकट कर दिया।

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसे। बिकल हीन मनि फनिवर जैसे॥
आगे देखि राम तनु स्यामा। सीता अनुज सहित सुख धामा॥१०॥

अर्थ : मुनिजी तब किस भाँति आकुल होकर उठे। जैसे मणि ले लेने से श्रेष्ठ सर्प व्याकुल होकर उठता है। आगे देखा कि श्यामसुन्दर सुखधाम राम सीता और अनुज के सहित विराजमान हैं।

व्याख्या : मुनिजी ने भूप रूप की शोभा को हृदय मे धारण कर रक्खा था। यथा : निरखि राम सोभा उर धरहू। निज मनि फनि मूरति मनि करहू। अपने मन को फणि सर्प और प्रभु की मूर्ति को मणि बना रक्खा था। माधुर्योपासको के लिए भूप रूप ही अति सुन्दर है। विष्णु चारि भुज बिधि मुख चारी। बिकट वेष मुख पच पुरारी। अपर देउ अस कोउ न आही। एहि छबि सखी पटतरिअ जाही। सो उस रूप के अन्तर्धान होते ही चतुर्भुज रूप का कुछ भी ख्याल न करते हुए मुनिजी मणिहीन भुजङ्ग की भाँति विकल होकर उठे। यथा : सूखहिं अधर जरहिं सब अगू। मनहु दीन मति हीन भुअगू।

त्रेता मे विष्णु भगवान् का पीतरङ्ग रहता है। यहाँ तनु स्यामा पाठ होने से यह अर्थापत्ति होती है कि चतुर्भुज मूर्ति जो प्रकट हुई थी उसका श्याम तन भी नही था। जिसने सर्प का मणि लिया · उस पर सर्प का बडा क्रोध होता है। समाधि भङ्ग करनेवाले पर समाधिस्थ का भयानक क्रोध होता है। यथा : भयउ ईस मन छोभ बिसेखी। नयन उघारि सकल दिसि देखी। सौरभ पल्लव मदन बिलोका। भयउ कोप कपेउ त्रैलोका। तब सिव तीसर नैन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा। अत· मुनिजी ने आँख खोलकर देखना चाहा कि किसने उनकी समाधि भङ्ग की। तो आगे अपने परम प्रिय सुखधाम राम की मूर्ति पाते हैं। मनोरथ से भी अधिक की प्राप्ति होती है। अनुज तो साथ मे ही हैं। जगदम्बा जानकीजी भी साथ मे हैं।

परेउ लकुट इव चरनन लागी। प्रेम मगन मुनिवर बडभागी ॥
भुज बिसाल गहि लिए उठाई। परम प्रीति राखे उर लाई ॥११॥

अर्थ : बडे भाग्यवान् मुनियो मे श्रेष्ठ प्रेम मे मग्न होकर छडी की भाँति गिरकर चरणो मे लगे। सरकार ने विशाल भुजाओ से पकडकर उन्हे उठा लिया और बडे प्रेम से उन्हे हृदय मे लगाये रहे।

व्याख्या : प्रेम मगन कहने से देह दशा की विस्मृति कहा। चरणो मे छडी के गिरने की भाँति गिरे। इस भाँति गिरने से चोट लगेगी। इस बात का ध्यान न रहा। बडा भाग्यवान् वही है जिसे सरकार के चरणो की प्राप्ति हो · श्री गोस्वामीजी लकुट और दण्ड मे कुछ भेद करते हैं। लकुट पतला होता है। दण्ड मोटा होता है। मुनिजी दुर्बल हैं। अत इनकी उपमा लकुट से देते हैं। भरतजी भी प्रभु के विरह से दुर्बल हो गये थे। उनके लिए भी कवि लिखते हैं . भूतल परेउ लकुट की नाईं। मनुजी आकाशवाणी सुनकर हृष्ट पुष्ट हो गये थे। यथा . हृष्ट पुष्ट तनु भयउ सोहाये। मानहु अबहिं भवन ते आये। अत· उनकी उपमा दण्ड से देत हैं। यथा : हरस बिबस तन दसा भुलानी। परेउ दण्ड इव गहि पद पानी। ऐसे को हो यहाँ प्रेम मगन शब्द से कहा।

प्रभु की भुजाएँ विशाल हैं। दूर से ही उठा लेती हैं। मुनिजी का मनोरथ पूर्ण हो रहा है। राम गोसाईं निज सेवक की भाँति मिल रहे हैं। मुनिजी लकुट

व्याख्या : मुनिजी को प्रेम समाधि लग गयी। नही तो बीच रास्ते में कोई अचल होकर नही बैठता। ये रास्ते मे ही अचल हुए। क्योकि रास्ते मे ही इन्हें हरि की प्राप्ति हुई। आनन्द से अद्भुत पुलक हो गया। कटहल के काँटे घने पुलक के ऐसे होते हैं। मुनिजी के शरीर मे कोई स्थान ऐसा न रह गया जहाँ उत्तम पुलक न हो।

जब रामजी ने देख लिया कि मुनिजी अत्यन्त आनन्द से पुलकित हैं। तब निकट गये। प्रभु का स्वभाव है कि निज जन को अपना लेते हैं। सुतीक्ष्णजी का मनोरथ भी था कि रामजी उन्हे निज जन जाकर मिलें। यथा : निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाउ कपि कुल मन भावा।

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यान जनित सुख पावा॥
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा॥९॥

अर्थ : मुनिजी को रामजी ने अनेक भाँति से जगाया। पर मुनिजी नही जागे। क्योकि उन्हे सरकार के ध्यान का सुख मिल रहा था। तब रामजी ने राजा के रूप को अन्तर्धान कर दिया और उनके हृदय मे चतुर्भुज रूप दिखलाया।

व्याख्या : सोने से मूर्च्छा से तथा समाधि से व्युत्थान दशा मे होश मे आने को जागना कहते हैं। अतः श्रीरामजी ने समाधि अवस्था से उन्हें जाग्रत अवस्था मे लाने की अनेक चेष्टा की। जो जो उपाय समाधि से उतारने के हैं सो सब काम मे लाये। पर उनकी समाधि भङ्ग न हुई। तात्पर्य यह कि प्रेमाधिक्य से आप से आप समाधि लग जाती है और ऐसी लगती है कि उससे उतारना कठिन हो जाता है। क्योकि समाधि जनित आनन्द को साधक छोड़ना नही चाहता। सरकार ने देखा कि इस तरह ये न जागेंगे।

ये माधुर्य के उपासक थे। ऐश्वर्य रूप के नहीं थे। भूप रूप माधुर्य का रूप है और चतुर्भुज रूप ऐश्वर्य का है। यद्यपि दोनो रूप सरकार के ही है। द्विचत्वारि षडष्टासा दश द्वादश षोडश। अष्टादशामी कथिता हस्ताः शङ्खादिभिर्युताः। पूर्व तापनीये। दो, चार, छ, आठ, दस, बारह, सोलह, अठारह हाथ तक भगवान् रामभद्र के शङ्ख आदि से युक्त माने गये हैं। पर भूप रूपवाली माधुर्य मूर्ति द्विभुज है। मुनिजी उसी के उपासक थे। प्रभु ने उस मूर्ति को अन्तर्धान कर लिया और उसके स्थान पर चतुर्भुज मूर्ति शङ्खचक्रादि से युक्त प्रकट कर दिया।

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसे। बिकल हीन मनि फनिवर जैसें॥
आगे देखि राम तनु स्यामा। सीता अनुज सहित सुख धामा॥१०॥

अर्थ : मुनिजी तब किस भाँति आकुल होकर उठे। जैसे मणि ले लेने से श्रेष्ठ सर्प व्याकुल होकर उठता है। आगे देखा कि श्यामसुन्दर सुखधाम राम सीता और अनुज के सहित विराजमान हैं।

की भाँति चरणो मे पडे हैं। उठना नही चाहते। छडी आपसे नही उठती : उठाने से उठती है। अतः प्रभु ने अपने हाथो से इन्हे उठा लिया। अपना दास उन्हे सबसे अधिक प्रिय है। इसलिए परम प्रेम से हृदय मे लगाये हुए हैं। विरह सन्तप्त हृदय को शान्ति दे रहे हैं।

मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला। कनक तरुहि जनु भेंट तमाला ॥
राम बदनु बिलोकि मुनि ठाढा। मानहु चित्र माँझ लिखि काढा ॥१२॥

अर्थ : मुनिजी से मिलते हुए कृपाल ऐसे शोभित हुए जैसे धतूर के पेड़ से तमाल : आबनूस पेड मिल रहा हो। मुनिजी खडे हुए श्रीरामजी का मुख देख रहे हैं। मानो चित्र मे लिखकर बनाये गये हो।

व्याख्या : प्रेमाधिक्य से भक्त भगवन्त दोनो मे जाड्य है। इसलिए पेडो से उपमा दी। मुनिजी को इस समय भी पुलक है। अत· उनकी उपमा धतूर के वृक्ष से दिया। धतूर का फल भी कटहल के फल सा कटकित होता है। प्रभु की उपमा तमाल वृक्ष से दिया। तमाल वृक्ष श्याम होता है। उसके पत्ते भी श्याम होते हैं। अतः प्रभु से उपमित किया।

मिलने के बाद मुनिजी खडे हुए मुह देख रहे है। कुछ कहने सुनने की सामर्थ्य नही है। न होश है। जैसे चित्र मे लिखे हुए मुनि जैसे लिखे जाते है वैसे ही बने रहते हैं। यदि आँख खुली है तो खुली ही रहती है। पलक गिरती ही नही। सिवा दर्शन के किसी अन्य भाव का हृदय मे स्थान नही है।

दो. तब मुनि हृदय धीर धरि, गहि पद बारहि बार।
निज आश्रम प्रभु आनि करि, पूजा बिबिध प्रकार ॥१०॥

अर्थ : तब मुनिजी धैर्य धारण करके और बार बार चरणो को पकडकर प्रभु को अपने आश्रम मे ले आये और अनेक प्रकार से पूजा।

व्याख्या : दु ख मे जो उद्विग्न न हो, सुख की जिसे इच्छा न हो, राग द्वेष भय जिसका निकल गया हो, उसे मुनि कहते हैं। इस समय उनका धैर्य छूटा हुआ है। सो हृदय मे धैर्य धारण किया। प्रेम से बार बार चरण ग्रहण करते हैं। अथवा अपने आश्रम मे लिवा चलने के लिए बार बार सङ्कोच मे डाल रहे हैं। यथा · बार बार गहि चरण सकोची। यहाँ सरकार की ओर से प्रणाम दण्डवत् कुछ नही हो रहा है। क्योकि ऐश्वर्य खुल गया है। रास्ते मे पूजा नही हो सकती। अतः आश्रम मे लिवा लाये। षोडशोपचार राजोपचारादि पूजनो मे से जो जो सम्भव था सब किया। इसलिए बिबिध प्रकार कहा।

कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी। अस्तुति करौ कवन बिधि तोरी ॥
महिमा अमित मोरि मति थोरी। रबि सनमुख खद्योत अँजोरी ॥१॥

अर्थ : मुनि ने कहा हे प्रभु ! मेरी विनती सुनो। तुम्हारी स्तुति किस विधि से करूँ। महिमा अपार है और मेरी बुद्धि थोड़ी है। जैसे सूर्य के सामने जुगनू का प्रकाश।

व्याख्या : पूजा के बाद स्तुति होनी चाहिए। सो पूजा तो शास्त्रानुसार कर डाला। उसके लिए विधि नही पूछा। पर स्तुति करने मे तो शास्त्र भी असमर्थ है। यथा : महिमा निगम नेति कहि गाई। अत स्तुति की विधि नही सूझती। सो सरकार से ही विनय करते हैं कि आप ही विधि बतलाइये। यदि नही बतलाते तो स्तुति करने मे बिगड जाय तो मेरा दोष नही।

विधि न समझने का कारण बतलाते हैं कि आपकी महिमा का पारावार नही और महिमा कथन को ही स्तुति कहते हैं। तिस पर मेरी बुद्धि बहुत थोडी है। जब प्रभु की महिमा की ओर देखती है तब काम नही करती। वैसे ससार मे तो खूब काम करती है। तथा निसि तम घन खद्योत बिराजा। पर सूर्य का सामना पड़ते ही खद्योत का प्रकाश सूर्य के प्रकाश मे लीन हो जाता है। कुछ भी काम नही कर सकता। पता भी नही चलता कि खद्योत भी ससार मे कही है। ऐसी ही मेरी बुद्धि की गति हो रही है। जो लोग प्रवीण हैं उनकी बुद्धि भी दीपादिवत् निस्तेज हो जाती है। पर अपने अस्तित्व का प्रकाश करती है। यथा : मुनिवर परम प्रवीन जोरि पानि अस्तुति करत। यहाँ तो मेरी जुगनू की दशा है। रात मे भी जुगनू चमकते चमकते रह जाता है। एकरस प्रकाश नही कर पाता। दिन मे क्या प्रकाश करेगा।

स्याम तामरस दाम सरीर। जटा मुकुट परिधान मुनि चीर ॥
पानि चाप सर कटि तूनीर। नौमि निरतर श्रीरघुबीरं ॥२॥

अर्थ : नीलकमल की माला के समान शरीरवाले। जटा का मुकुट और मुनिवस्त्र धारण करनेवाले हाथो मे धनुष बाण लिये हुए। तथा कमर मे तरकस कसे हुए श्रीरघुवीर को मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : स्याम तामरस दाम शरीर : से सुन्दरता कहा। यथा : स्यामसरोज दाम सम सुन्दर। जटा मुकुट परिधान मुनिचीर : से धर्म परायणता कही। यथा : पितु आयसु भूषन बसन तात तजे रघुबीर। हृदय न हरष बिषाद कछु पहिरे बलकल चीर। अथवा ऐसा सौन्दर्य है कि जटा मुकुट मालूम होता है और वल्कल परिधान मालूम होता है। यथा : पीताम्बर सुदर। पानि चाप सर कटि तूनीरं से द्विभुज मूर्ति कहा। तथा भक्तो की सब प्रकार से रक्षा दिखलाया। यथा तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा। प्रभु की ऐसी श्री है कि लोभ मोहादि सामने ठहर नही सकते। सरकार को सशस्त्र देखते ही भाग जाते हैं। इसलिए श्रीरघुवीर कहा। अथवा श्रीरूपिणी सीताजी साथ हैं इसलिए श्रीरघुवीर कहा। यथा : उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी प्रभु का। स्वभाव है कि एक बार प्रणाम

करनेवाले को अपना कर लेते हैं। इसलिए तदीय होने के लिए निरन्तर प्रणाम करते हैं। यह पहला नमस्कार है। यह स्तुति वीररस से भी है। इसलिए इसे विचाररूपी भूप का सुभट फल श्रुति प्रकरण में कहा है। अथवा असाध्य जानकर भी उत्साह के साथ स्तुति करते चले जाते हैं। अतः इसकी स्तुति विचार भूपति की सुभटरूपा है।

मोह विपिन घन दहन कृशानुः। संत सरोरुह कानन भानुः॥
निसिचर करि बरूथ मृगराजः। त्रातु सदा नो भव खग बाज.॥३॥

अर्थ : हे मोहरूपी घन बन के जलाने के लिए अग्निरूप, हे सन्तरूपी कमल वन के सूर्य, हे राक्षस रूपी हाथी के झुण्ड के लिए सिंह, हे संसाररूपी चिड़िया के लिए बाजरूप! हमारी रक्षा कीजिए।

व्याख्या : अति दुःखद होने से मोह को विपिन कहा। यथा : डरपहिं धार गहत सुधि आये। घन कहने का भाव यह कि इसमें पड़ने से मनुष्य मार्गभ्रष्ट हो जाता है। और फिर उससे बाहर निकलना कठिन हो जाता है। मोह विपिन में भी सरकार अव्यक्त रूप से भरे पड़े हैं। पर उसमें अति सघर्ष होने से। यथा : करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहि विप्रधेनु सुर धरनी। प्रभु अग्नि की भाँति व्यक्त हो जाते हैं। मोह विपिन का नाश कर देते हैं। इससे अवतार का कारण कहा। अब कार्य कहते हैं। प्रभु के उदय से सूर्योदय की भाँति सन्तरूपी कमल का बन विकसित हो उठता है। इस भाँति साधु परित्राण कहकर दुष्टों का विनाश कहते हैं। प्रभु को प्रतिज्ञा करके बन में रहते इतने दिन बीते। पर एक भी राक्षस हाथ न चढ़ा। जिस भाँति सिंह का गन्ध न सहकर हाथी जंगल छोड़ देते हैं। उसी भाँति प्रभु का गन्ध, सहने में राक्षस असमर्थ हो जाते हैं। अब प्रभु का मोक्षदातृत्व गुण कहते है। आवागमन भव है। उसे खग कहा है। खग का आकाश मे और पृथ्वी में आना जाना लगा रहता है। बाज उसको भक्षण कर जाता है। प्रभु भी भव भय को भक्षण करके मुक्ति देते हैं। त्रासु कहकर अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना की। स्वरूप को नमस्कार करके मनमे बसाते हैं और गुणों से अपनी रक्षा चाहते हैं।

अरुन नयन राजीव सुवेसं। सीता नयन चकोर निसेसं॥
हर हृदि मानस बाल मरालं। नौमि राम उर बाहु विसालं॥४॥

अर्थ : जो लाल कमल से लाल नेत्र वाले और सुन्दर वेष वाले हैं। जो सीताजी के नेत्र चकोर के चन्द्रमा है और जो शिवजी के हृदयरूपी मानसरोवर के लिए जो हंस हैं ऐसे विशाल वक्षःस्थल और भुजावाले रामजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : नयन की अरुणिमा चक्रवर्ती होने का चिन्ह है। कमल से नेत्रो की उपमा कृपा कटाक्ष के लिए दी जाती है। यथा : मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा विलोकनि सोच विमोचन। पहिले रूप का वर्णन किया था। फिर गुण वर्णन करने

लगे। अब फिर रूप वर्णन करते हैं। यथा : वल्कल बसन जटिल तनु स्यामा। जनु मुनिवेष कीन्ह रति कामा। इस भाँति सुवेष हैं। अब सुन्दरता की पराकाष्ठा कहते हैं कि सीताजी ऐसी सुन्दरी के नेत्ररूपी चकोर के लिए चन्द्रमा है। यथा : जाइ समीप राम छवि देखी। रही जनु कुँअरि चित्र अवरेखीं।

बूढ़े मुनि ने संकर मानस राज मराल कहकर वर्णन किया था। ये मुनि शिष्य हैं। इसलिए बाल मराल कह रहे हैं। सीता जी साक्षात् देखती हैं। इसलिए चन्द्र चकोर की उपमा दी। शिवजी ध्यान से देखते हैं इसलिए उनके हृदयरूपी मानसरोवर का हंस बतलाया। उर बाहु बिसाल कहकर विक्रम सूचित करते हैं। श्री रघुबीर कहकर रघुकुल में जन्म दिखलाया। सीता नयन चकोर कहकर विवाह कहा। यह दूसरा नमस्कार है।

संसय सर्प ग्रसन उरगादः। समन सुकर्कस तर्क विषादः॥
भव भंजन रंजन सुर जूथः। त्रातु सदा नो कृपा बरूथः॥५॥

अर्थ : जो संशयरूपी सर्प के ग्रसन के लिए गरुड़ हैं। अत्यन्त कर्कश तर्क जनित विषाद के नाश करनेवाले हैं। आवागमन को मिटानेवाले और देवताओं के समूह को आनन्द देने वाले हैं। ऐसे कृपा के समूह रामजी सदा हमारी रक्षा करें।

व्याख्या : संशय को सर्प कहते हैं। क्योंकि संशयग्रस्त के हृदय में दुःखद कुतर्क की लहरें उठती हैं। यथा : संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु व्राता। सो संशय सर्प ही आपका भक्ष्य है। इसलिए गरुड़ से उपमा दी। सर्प का ग्रास तो हुआ। पर जिसका उसने दंशन किया है उसकी रक्षा कैसे होगी? अतः कहते हैं कि आप दुःखद तर्क विषाद के भी शमन करनेवाले हैं। विष के उतरने के कारण भी गरुड़ ही होते हैं। गारुड़ी विद्या से विष उतरता है। एवं ज्ञान स्वरूप कहा : यथा : ज्ञान उदय जिमि संसय जाहीं। इस स्तुति में भव का उल्लेख तीन बार आया है। १. ज्ञानियों के लिए संसार की पारमार्थिक स्थिति है ही नहीं। केवल व्यावहारिकी स्थिति है। इसलिए उनके लिए वह खग है। कभी काम खग से ही पड़ जाता है। उसके लिए प्रभु बाज हैं। उसे निर्मूल कर देते हैं। तब सजात वाद सामने आ जाता है। २. कर्मठों के लिए संसार वास्तविक है। इसलिए उसका भङ्ग कर देते हैं तब दैवी प्रकृतिवालों को सुखानुभव होता है। अतः भव भंजन रंजन सुर यूथः कहा। ३. भक्तों के लिए सेतु हो जाते हैं। उनका आश्रयण करके भक्त भव सरिता के आरपार आया जाया करते हैं। उन्हें भव सरिता बाधक नहीं है।

निर्गुन सगुन विषम सम रूपं। ग्यान गिरा गोऽतीतमनूपं॥
अमलमखिल - मनवद्यमपारं। नौमि राम भंजन महि भारं॥६॥

अर्थ : जो निर्गुण, सगुण, विषम और समरूप हैं। जो ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से अतीत हैं। जो अनूप, निर्मल सम्पूर्ण, दोष रहित, अनन्त और पृथ्वी का भार उतारनेवाले हैं। ऐसे रामजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : निर्गुण सगुण कहकर मिश्र ब्रह्म कहा। विषम समरूप कहकर जगन्मय कहा। ग्यान गिरा गोतीत से साक्षात् ब्रह्म कहा। तीनों होने से अनूप कहा। यथा : अनूप रूप भूपतिं। अवतार रूप मे तीनो का समावेश है। यथा : ब्रह्माड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै। सो मम उर बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै। अमल से शुद्ध, अविरल से पूर्ण, अनवद्य से निर्विकार, अपार से व्यापक अथवा अपरिच्छिन्न कहा। भजन महिभार से पूर्णावतारधारण करके रावणादि का बध कहा। यथा : अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी। गिरि सर सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक पर द्रोही। ऐसे रामजी को नमस्कार करते हैं। यह तीसरा नमस्कार है।

भक्त कल्पपादप आरामः। तर्जन क्रोध लोभ मद कामः॥
अति नागर भव सागर सेतुः। त्रातु सदा दिनकर कुल केतुः॥७॥

अर्थ : जो भक्त के लिए कल्पवृक्ष के बाग हैं। क्रोध, लोभ, मद और काम को डांटनेवाले हैं। अत्यन्त चतुर और ससार समुद्र के सेतु हैं। ऐसे सूर्यकुल के ध्वजारूप श्रीरामजी हमारी रक्षा करें।

व्याख्या : रूप कहकर फिर गुण कहते हैं। कल्पवृक्ष तो सबके लिए समान है। किसी के सन्मुख या विमुख नही है। उसके निकट जाने और पहिचानने की आवश्यकता है। माँगने से वह चाही हुई वस्तु दे देता है। परन्तु भक्त को तो किसी वस्तु की कामना नही है। यथा : नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये। वह तो उन्ही प्रभु को ही चाहता है। इसलिए उसके लिए प्रभु कल्पवृक्ष के बाग हो जाते हैं। उन्ही मे भक्त विहार करते हैं। उसी बाग की सुन्दरता देखने में मग्न रहते हैं। उन्हे काम, क्रोधादिक शत्रुओ का भी भय नही रहता। क्योकि प्रभु उन्हे भगा देते हैं। अतः तर्जन क्रोध लोभ मद काम कह रहे हैं। इन्हे शत्रु इसलिए कहा कि ये ही जीव को नरक में ले जाते है। यथा : काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।

नागर चतुर को कहते हैं। यहाँ प्रभु को अति नागर कहते हैं। प्रभु भक्त के लोक परलोक दोनो को सँभालते हैं। भवसागर के सेतु हैं। इनका आश्रयण करने से अनायासेन भवसागर पार किया जा सकता है। यथा : अति अपार जे सरित वर जौ नृप सेतु कराहिं। चढि पिपीलकउ परम लघु बिनु श्रम पारहिं जाहिं। सर्वात्मना साधनहीन चीटी जिस भाँति सेतु का आश्रयण करके अनायासेन पार चली जाती है उसी भाँति सभी साधनो से हीन भक्त भी केवल प्रभु का आश्रय करके अनायासेन भवसागर पार हो जाते हैं। उन्हे भवसागर के मध्य उत्ताल तरङ्ग तथा मकर उरग बाधा नही कर सकते। दिनकर कुलसेतु कहकर रामावतार कहा। मुनिजी उन्ही से सदा अपनी रक्षा चाहते हैं। दूसरे से नही। यथा : बनै तो रघुबर ते बनै या बिगरै भरपूर। तुलसी बनै जो और तेहि बनिबे मह धूर।

अतुलित भुज प्रताप बल धामः । कलि मल बिपुल बिभंजन नामः ॥
धर्म वर्म नर्मद गुन ग्राम. । संतत संतनोतु मम रामः ॥८॥

अर्थ : जिसके भुज प्रताप की तौल नही । जो बल के धाम है । जिसका नाम कलि के विशाल मल का नाश करनेवाला है । जो धर्म के कवच हैं । जिनका गुणग्राम सुख देनेवाला है । ऐसे राम सदा मेरा कल्याण करें ।

व्याख्या : सक्षेप मे नाम रूप लीला और धाम चारो कह रहे हैं । अतुलित-भुजप्रतापबलधामः से रूप कहा : कलिमलविपुलविभजननाम. से नाम कहा । धर्मवर्मनर्मदगुणग्राम से लीला कहा : और सतत सतनोतु मम राम. से धाम के लिए प्रार्थना करते हैं ।

प्रभु बल के धाम हैं । उन्ही के बल से सम्पूर्ण सृष्टि चल रही है । यथा सुनु रावन ब्रह्माड निकाया । पाइ जासु बल विरचति माया । जाके बल विरचि हरि ईसा । पालत सृजत हरत दससीसा । जा बल सीस धरत सहसानन । अडकोस समेत गिरि कानन । इत्यादि । उनके भुजा के प्रताप की भी तुलना नहीं है । यथा ब्रह्म धाम सिवपुर सब लोका । फिरा श्रमित व्याकुल भय सोका । काहू बैठन कहा न ओही । राखि को सकै राम कर द्रोही । अन्त मे वही जयंत कहता है अतुलित बल अतुलित प्रभुताई । मैं मतिमद जान नहि पाई । नाम की प्रभुता ऐसी है कि इस कराल कलिकाल मे लोक परलोक उसी द्वारा सिद्ध होता है । नही तो सब धर्मों को कलिमल ग्रसे हुए हैं । किसी से काम नही चलता । यथा नाम काम तरु काल कराला । सुमिरत समन सकल भव जाला । प्रभु के गुणग्राम से धर्म की रक्षा होती है और सुख मिलता है । यथा : राम को सुमिरिबो सब बिधि ही को राज रे । रामको बिसारिबो निषेध सिरताज रे । तथा : एहि विधि कहत राम गुनग्रामा । पावा अनिर्वाच्य बिश्रामा ।

तीन प्रकारसे भजन कहा गया है । तस्यैवाह ममैवासौ स एवाहमिति त्रिधा । मैं उनका हूँ । वे मेरे हैं और वही मे हूँ । ये ही तीन प्रकार हैं । सेवक आरम्भ मे समझता है कि मैं उनका हूँ । जब सम्बन्ध प्रागल्भ्य होता है तब समझता है कि वे मेरे हैं और जब उस प्रागल्भ्य की अति वृद्धि होती है तब समझने लगता है कि उनमे और मुझमे भेद नही है । यहाँ पर मुनिजी सम्बन्ध प्रागल्भ्य से मम रामः कह रहे हैं और उन्ही से सदा अपना कल्याण चाहते है । यथा . मोर दास कहाइ नर आसा । करै तो कहहु कहाँ बिस्वासा ।

जदपि बिरज ब्यापक अबिनासी । सब के हृदय निरंतर बासी ॥
तदपि अनुज श्री सहित खरारी । बसतु मनसि मम कानन चारी ॥९॥

अर्थ : यद्यपि आप निर्मल व्यापक और अविनाशी है । सबके हृदय मे निरन्तर वास करते हैं । फिर भी छोटे भाई और लक्ष्मी के सहित हे खरारि ! हे काननचारी ! मेरे मन मे बसो ।

व्याख्या विरज से प्रकृति पार कहा। व्यापक से। अपरिच्छिन्न कहा। अविनासी से नित्य कहा। अर्थात् निर्गुण रूप से सरकार सबके हृदय मे निवास करते हैं। फिर भी ससार के सब जीव दीन और दु खी हो रहे है। अत निर्गुण रूप से काम नही चलता। इसलिए मुनिजी सगुण रूप से हृदय मे बसाना चाहते हैं और सगुण रूप मे भी उस रूप से जिस रूप मे उस समय लीला कर रहे हैं। क्योकि लीला विग्रह से ही काननचारी होकर मुनिगण को सुलभ हो रहे है। खरारि होकर उन्हे अभय दे रहे हैं। अनुज लक्ष्मण तथा श्री सीता शक्ति साथ मे है। अत उनके साथ ही हृदय मे बसाना चाहते हैं जिसम सानन्द निवास हो। यथा राम लखन सीता सहित सोहत परन निकेत। जिमि बासव बस अमरपुर सची जयत समेत। भाव यह कि दण्डक वन की भाँति अपने मनको पवित्र करने की प्रार्थना करते हैं।

जे जानहि ते जानहु स्वामी। सगुन अगुन उर अतरजामी ॥
जो कोसल पति राजिव नयना। करौ सो रामु हृदय मम अयना ॥१०॥

अर्थ हे स्वामी! जो आपको सगुण निर्गुण और उर अन्तर्यामी भी जानते हैं वे जाना कर। मेरे हृदय को तो जो राजीवनयन कोसलपत्ति राम हैं वे ही घर बनावें।

व्याख्या रामजी सगुण निर्गुण तथा अन्तर्यामी रूप है। ऐसा शास्त्र कहता है। और शास्त्रज्ञ लाग इस बात को जानते हैं। सो उनका जानना उन्ही के लिए कल्याणदायक हो। मै तो ऐश्वर्य उपासक नही। मेरे लिए तो माधुर्य ही सब कुछ है। अत मै सगुण निर्गुण या अन्तर्यामी रूप नही चाहता। मै तो राजीवलोचन कोसलपति रामको हृदय मे बसाना चाहता हूँ। सो रामजी अवतीर्ण होकर कासल-पति हुए हैं। वे मेरे मन में घर करें। पहिले काननचारी रूप से बसने की प्रार्थना की थी। फिर सोचा कि यह रूप तो कुछ ही दिनो के लिए है। इसके बाद जाकर अयोध्या के राजा हो जायँगे। अत कोसलपति होकर भी हृदय मे निवास करें।

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥
सुनि मुनि बचनु राम मन भाए। बहुरि हरषि मुनिवर उर लाए ॥११॥

अर्थ ऐसा भूलकर अभिमान न छूटे कि मैं सेवक हूँ और श्री रघुनाथजी मेर स्वामी हैं। मुनिजी का वचन सुनकर श्रीरामजी मन मे बहुत प्रसन्न हुए। तब उन्होने फिर हर्षित होकर श्रेष्ठ मुनि को हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : सरकार को अभिमान प्रिय नही है। अत भक्त को अभिमान होने देना प्रभु नही चाहते। यथा : जन अभिमान न राखहि काऊ। पर सेवक सेव्यभाव-वाला अभिमान तो भक्ति का प्राण है। इतना ही ज्ञानी और भक्त मे अन्तर है। ज्ञानी भी ब्रह्ममय जगत् को देखता है। भक्त भी ब्रह्ममय देखता है। पर ज्ञानी मे कोई अभिमान नही रहता। अपने अस्तित्व को भी ब्रह्म म लय कर देता है। भक्त

सेवक रूप से अपना अस्तित्व अलग बनाये रहता है। यथा : मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।

यह गुणग्राम पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र है। इसमे दो तारे चमक रहे हैं। एक रूप और दूसरा गुण। नौमि के साथ द्वितीयान्त विभक्तिवाले रूप के विशेषण हैं और त्रातु के साथ प्रथमान्त विभक्तिवाले गुणबोधक शब्द हैं। इन्ही दोनो तारागो की चमक सम्पूर्ण स्तुति मे है। दूसरी बात यह है कि इस तारा का रूप मञ्च सा है। मञ्च की स्थिरता नही। जहाँ आवश्यक हो उठाकर रख दिया। इसी भाँति इस स्तुति मे स्थिरता नही है। कहीं बसहु मनसि मन काननचारी : कहीं काननचारी को बसाते हैं तो कही कोसलपति को बसाना चाहते हैं। यही मम हिय गगन इन्दु इव बनहु : कहते हैं। सिद्धान्त तो यह है कि सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम। ते नर प्रान समान मम जिन्हके द्विजपद प्रेम। अतः सगुणोपासना ही ध्येय जानकर मुनिजी के वचन सरकार को प्यारे लगे। प्राण समान प्रिय होने से फिर हृदय से लगाया।

परम प्रसन्न जानु मुनि मोही। जो वर माँगहु देउँ सो तोही॥
मुनि कह मैं वर कबहुँ न जाँचा। समुझि न परइ झूठ का साँचा॥१२॥

अर्थ : हे मुनि! मुझे परम प्रसन्न जानो। जो वर माँगो वही तुम्हे दूँ। मुनि ने कहा कि मैंने कभी वर नही माँगा। क्योकि यह रूढि का साँचा समझ मे नहीं आता। अथवा क्या झूठ है क्या सत्य है : यह समझ मे नही आता।

व्याख्या : प्रभु की प्रसन्नता अमोघ है और मुनिपर परम प्रसन्न है। अतः कहते हैं कि मुझे परम प्रसन्न जानकर माँगो अर्थात् माँगने में कसर न करो। यह शङ्का मन मे न करो कि अमुक वस्तु न मिलेगी। जो तुम्हे अच्छा लगेगा वही तुमको दूँगा। सरकार महादानी हैं। याचक को प्रोत्साहन देते हैं कि थोड़ा न माँगना। यथा : बोले कृपा निधान पुनि अति प्रसन्न मोहि जानि। माँगहुँ वर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि।

मुनिजी ने कहा कि वरदान तो मैंने कभी माँगा नही। क्योकि यह ससार रूढि का साँचा है। बस ऐसा ही न जाने कब से चढा आता है। अच्छे बुरे का पता नही चलता। सम्भव है कि जिसे मैं अमृत समझता हूँ वह विष हो। यदि झूठ का साँचा पाठ माना जाय तो यह अर्थ करना होगा कि मुझे झूठ और सच का परिज्ञान नही। झूठ और सच की पहिचान बिना ब्रह्मज्ञान के होती नही। यथा : झूठेहु सत्य जाहि बिनु जाने। जिमि भुजग बिनु रजु पहिचाने। और मुझे ब्रह्मज्ञान नही है। इससे मुझे पहिचान नही है। सम्भव है कि कोई मिथ्या वस्तु माँग लें। इसीलिए मैंने कभी वरदान नहीं माँगा। सदा से फलानुसन्धान रहित कर्म करते आये।

तुम्हहि नीक लागै रघुराई। सो मोहि देहु दास सुखदाई॥
अबिरल भगति बिरति बिग्याना। होहु सकल गुन ग्यान निधाना॥१३॥

अर्थ : हे रघुनाथजी ! जो तुम्हे अच्छा लगे। हे दासो के सुख देनेवाले ! वही मुझे दो। तुम प्रगाढ भक्ति, वैराग्य, विज्ञान और सभी गुण और ज्ञान के निधान हो जाओ।

व्याख्या : प्रभु मांगने के लिए कहते हैं। अतः अवश्य मांगूँगा। सो हे रघुनाथजी ! आप सर्वज्ञ हैं। आप दासो के सुख देनेवाले हैं और मैं आपका दास हूँ। आप निर्णय कर सकते हैं कि कौन वस्तु मेरे लिए सुखकारक होगी। आप मुझे सुखी करना चाहते है : इसलिए जो वर मांगहु देहु सो तोही कह रहे हैं। पर मेरी चाह तो यही है जो आपको अच्छी लगे। जो आप न चाहे वह मैं भी नही चाहता। सो अपने पसन्द के अनुसार ही मुझे दो।

प्रभु ने मुनीजी की बात को युक्तियुक्त समझकर स्वय उनके हितकर पदार्थों का निर्णय किया। अथवा अपने पसन्द के अनुसार बोले कि पांच बातें हमें पसन्द है : १ अविरल भक्ति २ वैराग्य ३ विज्ञान ४ सकल गुण निधानता तथा ५. ज्ञान निधानता। अत. पाँचो तुम्हे दिया।

प्रभु जो दीन्ह सो बरु मैं पावा। अब सो देहु मोहि जो भावा ॥१४॥

अर्थ प्रभुने जो दिया वह वर तो मैने पा लिया। अब जो मुझे अच्छा लगा सो दीजिये।

व्याख्या : सरकार के देते ही पाँचो बातें मुनिजी को प्राप्त हो गयी। वे स्वय अनुभव कर रहे है कि अविरल भक्ति विज्ञानादि पाँचो गुण उनमे प्रवेश कर गये। अतः कहते हैं कि सरकार ने जो जो दिया सो सब मुझे मिल गया। अब सब बातें मेरी समझ मे आने लगी। फिर भी देखते है कि जिस बात की मुझे चाह थी वह परम कल्याणकारी है और उसे सरकार ने नही दिया। अतः कहते हैं कि अब मुझे जो अच्छा लगा है उसे दीजिये।

दो. अनुज जानकी सहित प्रभु, चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इदु इव, बसहु सदा येह काम ॥११॥

अर्थ : हे प्रभो ! हे रामजी ! कामना यह है कि छोटे भाई लक्ष्मण और सीताजी के सहित मेरे हृदय रूपी आकाश मे चन्द्रमा की भाँति निवास कीजिये।

व्याख्या : परन्तु चाहने मे दो बात हो गयी थी। बसतु हृदय मम कानन चारी और जो कोसलपति राजिव नयना। करहु सो राम हृदय मम अयना। अतः इस बार और भी सँभालकर माँगते हैं। रामजी का निवास वन मे तो बहुत थोड़े दिनो के लिए है और कोसलपुरी मे तो बहुत दिनो तक रहेगा पर सदा तो नही रहेगा और चन्द्रमा का निवास आकाश मे रहता है। अतः मुनिजी चन्द्रमा की भाँति सरकार को अपने हृदय गगन मे सदा के लिए बसाना चाहते हैं। सूर्य की भाँति अकेले नही। जैसे चन्द्रमा बुध और रोहिणी के साथ बसते हैं उसी भाँति सरकार भी छोटे भाई लक्ष्मण तथा सीताजी के सहित बसें। कभी सरकार का

विछोह न हो। इस भाँति मुनिजी ने सदा के लिए तीनों मूर्तियों को हृदय में बसा लिया।

एवमस्तु करि रमानिवासा। हरखि चले कुंभज रिषि पासा॥
बहुत दिवस गुर दरसनु पाएँ। भए मोहि एहिं आश्रमु आएँ॥१॥

अर्थ : एवमस्तु ऐसा वरदान देकर रमानिवास रामजी हर्षित होकर अगस्त्य ऋषि के पास चले। गुरुजी का दर्शन पाये और इस आश्रम में आये मुझे बहुत दिन हुए।

व्याख्या : सरकार परम प्रसन्न हैं। अतः स्वयं भी वर दिया और मुनिजी के माँगे हुए वर के लिए ऐसा ही हो कहा और एक रूप से उनके हृदय में निवास किया। दूसरे रूप से चले। अगस्त्यजी वसिष्ठजी के भाई हैं। अतः उनके दर्शन के लिए हर्षित होकर चले।

अगस्त्यजी से रावण वध के लिए मन्त्र लेंगे। शरणागत मुनियों के त्रास का हरण करके उन्हें सुख देंगे। इसलिए रमानिवास कह रहे हैं। यथा : दे भक्ति रमानिवास त्रासहरण सरन सुखदायक।

गुरुजी के आश्रम में जाने का प्रभु का विचार जानकर सुतीक्ष्णजी ने कहा कि गुरुजी के आश्रम को छोड़कर यहाँ मुझे बहुत दिन हुए और जब से यहाँ आये तब से गुरुजी का दर्शन नहीं किया : इतने सन्निकट होने पर भी गुरुजी का दर्शन न करना शास्त्रविरुद्ध है और उसकी अभिलाषा भी है। फिर भी न जाने का कारण था। बिना सरकार को सङ्ग लिये गुरुजी के पास जा नहीं सकते थे।

अब प्रभु संग जाउँ गुर पाँहीं। तुम्ह कहँ नाथ निहोरा नाँहीं॥
देखि कृपानिधि मुनि चतुराई। लिए संग बिहँसे द्वौ भाई॥२॥

अर्थ : अब प्रभु के साथ गुरुजी के पास चलूँ। हे नाथ! यह निहोरा आप पर नहीं है। कृपानिधि मुनिजी की चतुराई देखकर उन्हें साथ ले लिया और दोनों भाई विहँसे।

व्याख्या : मुनिजी कहते हैं कि अब आपके सङ्ग गुरुजी के पास चलूँगा। आपको पहुँचाने नहीं जा रहा हूँ। इसलिए आप पर निहोरा नहीं है। अपने मतलब से जा रहा हूँ।

प्रभु कृपानिधि हैं। नयी कृपा करते ही जाते हैं। यथा : बिगरी बनावै कृपानिधि की कृपा नई। मुनिजी की चतुराई देखा कि साथ में चलकर मुझे गुरुजी को दक्षिणा रूप में देना चाहते हैं। गुरुजी के पास बिना मेरे साथ न जाने का अर्थ क्या है? अतः मुनिजी की चतुराई पर दोनों भाई खूब हँसे और साथ ले लिया।

३०. प्रभु अगस्त्यसत्संग

पंथ कहत निज भगति अनूपा। मुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा॥
तुरत सुतीछन गुर पहँ गयऊ। करि दंडवत कहत अस भयऊ॥३॥

अर्थ : रास्ते मे अपनी अनूप भक्ति का वर्णन करते हुए सुरभूप रामजी मुनिजी के आश्रम पर पहुँच गये। सुतीक्ष्णजी तुरन्त गुरुजी के पास गये और दण्डवत् करके ऐसा कहने लगे।

व्याख्या : बातचीत करते करते रास्ता कट जाता है। अतः रास्ता चलते बातचीत होती जाती है। यथा : बरनत पथ बिबिध इतिहासा। बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा। मुनिजी को भक्ति प्रिय है और सरकार को भी वही प्रिय है। इसलिए अनूप भक्ति जो सुख की मूल है उसका वर्णन करते चले। यथा : भगति तात अनुपम सुख मूला। मिलइ जो संत होहिं अनुकूला। सुरभूप हैं। प्रजा के हित के लिए पहुँचे।

सुतीक्ष्णजी गुरुजी के पास त्वरित गति से आगे बढ गये और जाकर दण्डवत् किया। गुरुजी साकांक्ष हुए कि गुरु दक्षिणा मे रामजी को मिलाने के लिए कहकर गया था। इतने दिनो के बाद आया है। देखें क्या कहता है ?

नाथ कोसलाधीस कुमारा। आए मिलन जगत आधारा ॥
राम अनुज समेत बैदेही। निसि दिनु देव जपत हहु जेही ॥४॥

अर्थ हे नाथ! कोशलाधीश के कुमार जगत् के आधार रामजी छोटे भाई तथा जानकीजी के समेत मिलने आये हैं। हे देव! जिनका आप दिन रात जप करते हैं।

व्याख्या : कोसलाधीस कुमारा कहकर दाशरथि राम अर्थात् अवतार होना द्योतित किया। यथा ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरी प्रकट नरभूपा। तिनके गृह अवतरिहौं जाई। जगत् आधार से ब्रह्म कहा। यथा : एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। आये मिलन से गुरु दक्षिणा की उपस्थिति कही। गुरुजी राम वाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर के उपासक हैं। अतः केवल रामजी के आने की बात सुनकर मनोरथ को पूर्ण न मानते हुए उतने प्रसन्न हुए जितना होना चाहिए था।

सुतीक्ष्णजी की बुद्धि बडी तीक्ष्ण है। तुरन्त समझ गये। अतः कहते हैं : अनुज समेत बैदेही : आये हुए हैं। रात दिन जिसे आपजपा करते है : कहकर अभिलाषा की पूर्ति की ओर सङ्केत करते हैं।

सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए। हरि बिलोकि लोचन जल छाए ॥
मुनि पद कमल परे द्वौ भाई। रिषि अति प्रीति लिये उर लाई ॥५॥

अर्थ : यह सुनते ही अगस्त्यजी तुरन्त उठकर दौडे। भगवान् को देखते ही उनकी आँखो मे जल भर आया। दोनो भाई मुनिजी के चरणो मे गिरे। ऋषिजी ने अत्यन्त प्रेम से हृदय मे लगा लिया।

व्याख्या : सुनते ही अगस्त्यजी अति उत्कण्ठा से उठकर दौड़ पडे। आगे जाकर लेना चाहिए। कही चले न आवें और इस सत्कार से मैं वञ्चित रह जाऊँ

अथवा आश्रम द्वार पर ही कहीं खड़े न हों। प्रभु को देखा तो सात्त्विक भाव हुआ। आँखों में आनन्दाश्रु छा गया। दृष्टि थोड़ी हो गयी। गुरुजी के सम्बन्ध से दोनों भाइयों ने दण्डवत् किया। अगस्त्यजी बड़े ऊँचे दर्जे के ऋषि हैं। इनके यहाँ साक्षात् शङ्कर भगवान् सत्सङ्ग के लिए आते हैं। सनकादिक आते हैं। यथा : एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गये कुंभज रिषि पाहीं। तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घट संभव मुनि बिग्यानी। दण्डवत् करते देखकर ऋषिजी ने अत्यन्त प्रीति से हृदय में लगा लिया। अपने सन्तप्त हृदय को शीतल किया।

सादर कुसल पूँछि मुनि ग्यानी। आसन बर बैठारे आनी॥
पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा। मोहि सम भाग्यवंत नहिं दूजा॥६॥

अर्थ : ज्ञानी मुनि ने आदरपूर्वक कुशल पूछकर उन्हें लाकर आसन पर बिठलाया। फिर बहुत प्रकार से प्रभु की पूजा करके बोले कि मेरे समान दूसरा कोई भाग्यवान् नहीं है।

व्याख्या : मुनि ज्ञानी कहकर उनकी भक्ति को अहैतुकी कहा। यथा : आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः। आदर से विनय पूछना सत्कार का प्रथम अङ्ग है। तत्पश्चात् आश्रम में ले गये। आसन दिया। सरकार को उनके सामने आसन पर बैठाने में सङ्कोच है। अतः मुनिजी ने आग्रहपूर्वक बिठाया। भगवती गायत्रीरूपा ब्राह्मणों की उपास्य देवता हैं। अतः उसके उपासना के विरुद्ध पड़ने की आशङ्का से प्रणाम नहीं करती। केवल बड़ों की आज्ञा से वसिष्ठजी को प्रणाम करती हैं। यथा : सास ससुर गुरु सेवा करेहू।

पञ्चोपचार, षोडशोपचार, सहस्रोपचार पूजा की जाती है। यहाँ कोई नियम नहीं। जितने प्रकार की पूजाएँ बन पड़ीं सभी की गयी। तत्पश्चात् अपने भाग्य की प्रशंसा की। साक्षात् प्रभु के आगमन से बढ़कर और भाग्य क्या होगा। अथवा सरकार की प्राप्ति से भाग्यवान् तो और लोग भी हुए। पर गुरुदक्षिणा में सरकार को मुनिजी ने ही पाया। इसलिए मो सम भाग्यवंत नहिं दूजा कह रहे हैं।

जहँ लगि रहे अपर मुनि बृंदा। हरखे सब बिलोकि सुख कंदा॥७॥

अर्थ : जितने मुनि थे वे सब सुख के बादल रामजी को देखकर हर्षित हुए।

व्याख्या : अपर मुनिवृन्द श्रीराम मन्त्र की व्याख्या सुन रहे थे। जिस समय प्रभु आये उस समय अगस्त्यजी श्रीराम मन्त्र की व्याख्या कर रहे थे। व्याख्या समाप्त होते न होते श्रीरामजी की प्राप्ति हो गयी। आनन्द की वर्षा हो गयी। यथा : भूसुर ससि नव बृंद बलाहक हैं। अतः मुनि लोग नव शस्य की भाँति आनन्द कन्द की प्राप्ति से हर्षित हो उठे।

दो. मुनि समूह महँ बैठे, सनमुख सब की ओर।
सरद इंदु तन चितवत, मानहु निकर चकोर॥१२॥

अर्थ : मुनि समूह के बीच मे रामजी सबके सम्मुख बैठे। जैसे चकोर का समूह शरत्चन्द्र की ओर टकटकी लगाये देख रहा हो।

व्याख्या : मुनिमण्डली के मध्य मे बैठे हैं। और किसी की ओर पीठ नही है। सब अपने सामने ही देख रहे हैं। मुनिलोग बड़े प्रेमी हैं। बडे आनन्द से दर्शन कर रहे हैं। इसलिए चकोर निकर से उपमा दी। रामजी बड़े सुन्दर हैं। इसलिए उन्हे शरत्चन्द्र से उपमित किया। चकोरो को चन्द्रमा का दर्शन बड़ा प्रिय है। किं पुन. शरत्चन्द्र के दर्शन से तो वे अघाते ही नही। ऐसी ही मुनियो की दशा हुई। चन्द्रमा का पृष्ठ भाग किसी को दृष्टिगोचर नही होता। क्योंकि चन्द्रमा अपनी धुरी पर नही घूमते। सरकार का इच्छामय रूप है। अतः सङ्कल्पानुसार दर्शन हो रहा है।

तब रघुबीर कहा मुनि पाँही। तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाँही ॥
तुम्ह जानहु जेहि कारन आयेउँ। ताते तात न कहि समझाएउँ ॥१॥

अर्थ · तब रघुबीर ने मुनिजी से कहा हे प्रभो ! आपसे कोई छिपाव नही है। मैं जिस कारण से आया हूँ आप जानते है। इससे हे तात ! मैने समझाकर नही कहा।

व्याख्या : जब पूजनोपरान्त मुनिजी कृतकृत्य होकर बैठे तब कहा। रघुबीर है : अपनी प्रतिज्ञा · निसिचर हीन करौ महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह : पूरी किया चाहते हैं। अगस्त्यजी को सरकार प्रभु कहते है। स्वामी सेवक का नाता जोड़े बैठे हैं। स्वामी से छिपाव नही करना चाहिए। यथा : स्वामिहि सर्व भाव छल त्यागी। अत· कहते हैं कि आप से कोई छिपाव नही है। भावार्थ यह कि औरो से छिपाव है। यथा : गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु।

दूसरी बात यह कि जो भेद जानता हो उससे क्या दुराव है। लोग तो यही जानते हैं कि कैकेयी के वरदान के कारण पिता ने वन दिया। इसीलिए आये हैं। पर मुख्य कारण आप जानते हैं। तुलसी जौ गृह रहौं मातु हित को सुरधेनु विप्र भय टारै। गी। वाल्मीकिजी से थोड़ा दुराव किया था। सो उन्होने सारा भेद ही खोल दिया। यथा : श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीस माया जानकी। जो सृजति जग पालति हरति रुख पाइ कृपा निधान की। जो सहस सीस अहीस महिधर लखन सचराचर धनी। सुरकाज धरि नरराज तन चले दलन खल निसिचर अनी। अतः कहते हैं कि आप जानते हैं विस्तार से कहने की अवश्यकता नही है।

अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं मुनिद्रोही ॥
मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी। पूछेहु नाथ मोहि का जानी ॥२॥

अर्थ : हे प्रभो ! अब मुझे ऐसा मन्त्र दीजिये जिस प्रकार से मुनिद्रोही को मैं मारूँ। प्रभु की वाणी सुनकर मुनिजी मुसकुराये : बोले कि मुझसे नाथ ! क्या समझकर पूछ रहे है।

व्याख्या : भाव यह कि प्रतिज्ञा तो कर दिया कि निसिचर हीन करौं महि पर तब से एक निसिचर भी हाथ न लगा। विराध वध से सब सावधान हो गये हैं। सामना बचा जाते हैं। अब ऐसा मन्त्र चाहिए कि जिसमें निसिचर सामने आवें और उन्हें मार सकूँ। यहाँ मन्त्र शब्द का अर्थ सम्मति है। यथा : मंत्र न यह लछिमन मन भावा।

रामजी मुनिजी को प्रभु कहते हैं। और मुनिजी रामजी को प्रभु कहते हैं। परस्पर एक दूसरे में स्वामी सेवक भाव मान रहे हैं। मुनिजी मुसकुराये कि सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् होकर कैसी अल्पज्ञ तथा अल्प सामर्थ्य की सी वाणी बोल रहे हैं। अतः कहते है कि मुझे क्या समझकर पूछा। नियम यह है कि अपने अधिक जानकार से बात पूछी जाती है। क्या मै आपके पूछने योग्य हूँ जो आप पूछ रहे हैं। प्रभु के स्थान पूछने पर वाल्मीकिजीने भी ऐसा ही उत्तर दिया था कि जहँ न होउ तहँ देउँ कहि तुम्हहि बतावौं ठाउँ। भरद्वाजजी से रास्ता पूछा तो उन्होने कहा : सुगम सकल मग तुम कहँ अहही। ऐसा ही उत्तर अगस्त्यजी दे रहे हैं।

तुम्हरेइ भजन प्रभाव अघारी। जानौं महिमा कछुक तुम्हारी ॥
ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया ॥३॥

अर्थ : हे पाप नाशक ! तुम्हारे ही भजन के प्रभाव से तुम्हारी कुछ महिमा मैं जानता हूँ। तुम्हारी माया गूलर के विशाल वृक्ष के समान है। जिसमें ब्रह्माण्डो के अनेक समूह फलरूप से लगे हुए हैं।

व्याख्या : मुनिजी कहते हैं कि मेरी जानकारी इतनी ही है कि आपकी महिमा का प्रादेशमात्र जानता हूँ। इतना ज्ञान भी आपके भजन से ही हुआ। यथा : जाना चहहिं गूढ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहिं तेऊ। यही तो मेरी जानकारी है। उसे भी सुन लीजिये।

मुनिजी ने प्रभु की माया की उपमा गूलर के वृक्ष से दिया। इससे अच्छी उपमा दूसरी मिलनी दुर्लभ है। अब साधारण धर्म कहते हैं। गूलर के वृक्ष मे तमाम फलों के गुच्छे लगते हैं। उसी भाँति मायावृक्ष में ब्रह्माण्ड निकाय लगे हुए है। यथा : रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मांड।

जीव चराचर जंतु समाना। भीतर बसहिं न जानहि आना ॥
ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भय डरत सदा सोउ काला ॥४॥

अर्थ : ये चराचर जीव उन फलो के जन्तु के समान है। जो उनके भीतर बसते हैं। और दूसरा कुछ भी नही जानते। उन फलो का खानेवाला काल है। वह कठिन कराल है। पर आपके डर से वह भक्त सदा डरा करता है।

व्याख्या : जिस भाँति गूलर के फल के भीतर जन्तु बसते हैं उसी भाँति ब्रह्माण्ड के भीतर चराचर जीव बसते हैं। न उन जन्तुओ को गूलर के फल के बाहर का कोई वृत्तान्त ज्ञात है और न चराचर जीवो को अपने ब्रह्माण्ड के बाहर का

कुछ पता है। मुनिजी कहते हैं कि मैंने आपके भजन के प्रभाव से इतना ही जान पाया है कि यही ब्रह्माण्ड सब कुछ नही है। ऐसे ऐसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड मायावृक्ष मे गूलर के फल के गुच्छो की भाँति गुथे हुए है।

वह मायावृक्ष मानो काल के लिए ही लगा हुआ है। गूलर के फल की भाँति ही काल भी एक ब्रह्माण्ड का एक ही ग्रास करता है। लोग गूलर के फल को फोडकर उसमे के जीवो को पहिले उडा देते है। तब उसे खाते हैं। पर काल ब्रह्माण्डो को जीवो के सहित खा जाते है। इसलिए कठिन कराल है। इस भाँति सब ब्रह्माण्डो को खाया करता है। गूलर वृक्ष की ही भाँति मायावृक्ष मे नये नये ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ करते हैं। और काल उनका कलेवा किया करता है। वह ऐसा कराल है कि उसका पेट भरता नही। केवल कलेवा से किसी का काम नही चलता। यथा सुर नर असुर नाग मुनि देवा। नाथ सकल जग काल कलेवा और प्रभु तो काल व्याल के भी भक्षक साक्षात् गरुड रूप हैं। अपने अन्तक से सभी डरते हैं। अत वह काल भी आपके भय से भयभीत रहता है। भाव यह है कि उस काल का भी अन्त है। देशत कालत वस्तुत अपरिच्छिन्न केवल आप हैं। आप ही कालत्रयातीत हैं।

ते तुम्ह सकल लोकपति साँई। पूछेहु मोहि मनुज की नाईं॥
यह बर मागउँ कृपानिकेता। बसहु हृदय श्री अनुज समेता॥५॥

अर्थ वे ही आप सब लोगो के स्वामी होकर भी मुझसे मनुष्य की भाँति पूछ रहे हैं। हे कृपानिकेत! मैं तो यह वर माँगता हूँ कि मेरे हृदय मे सीताजी तथा छोटे भाई के सहित सदा निवास कीजिये।

व्याख्या जैसी बात आपने पूछा ऐसी बातें तो मनुष्य पूछा करते है। आप तो मनुष्य नही हैं। आप तो काल के भी काल अखिल ब्रह्माण्डनायक हैं। आप स्वामी हैं। आपके ऐसा कहने से अस्मदादिक को मोह हो सकता है। यथा प्रभु जोइ कहहु तुम्हहि सब सोहा। हमरे होत बचन सुनि मोहा। अत मोह के भय से तुरन्त मुनिजी ने वरदान माँगा। अनुज श्री सहित बसने से फिर मोह का भय न होगा। अत मेरे हृदय म सीता और अनुज सहित बसिये। यथा तब लगि हृदय बसत खलना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि माथा। तथा भरत हृदय सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू गुरु शिष्य की समान रुचि है। सुतीक्ष्णजी ने भी हृदय मे बसाने के लिए वरदान माँगा था।

अबिरल भगति बिरति सतसगा। चरन सरोरुह प्रीति अभगा॥
जद्यपि ब्रह्म अखड अनता। अनुभव गम्य भजहि जेहि सता॥६॥

अर्थ और प्रगाढ भक्ति वैराग्य सत्सग तथा चरण कमलो मे अटूट प्रेम

माँगता हूँ। यद्यपि जिस अखण्ड और अनन्त ब्रह्म को सन्त भजते हैं वे अ: ही जाने जाते हैं।

व्याख्या : अन्तराय रहित भक्ति को अविरल भक्ति कहते हैं। यह सब का फल है। यथा : सबकर फल हरि भगति भवानी। वैराग्य सब धर्मों का फ यथा : तेहिकर फल पुनि विषय विरागा। सत्सङ्ग फल सिद्धि है। यथा : सतर मुद मगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला। इस भाँति मुनिजी ने फल ही माँगा। फिर भी अटूट प्रेम के लिए प्रार्थना करते हैं। प्रेम का प्रवाह धारावत् अविच्छिन्न होना चाहिए। बीच मे भङ्ग न हो। भजन तो वैरभाव से होता है। यथा : वैरभाव सुमिरत मोहि निसिचर : पर मुनिजी को वैसा भ पसन्द नही। क्योंकि उससे जाड़े मे गङ्गास्नान की भाँति इस लोक मे आनन्द न मिलता। अतः प्रेम भाव से भजन चाहते हैं। गरमी मे गङ्गास्नान की भाँति भाव से भजन करने मे इस लोक और परलोक दोनो मे सुख है अथवा अविर भक्ति तो निर्गुण रूप की भी होती है। अत. चरण सरोरुह प्रीति अभङ्गा से बा स्पष्ट कर दिया कि सगुण रूप की भक्ति मुनिजी चाहते हैं।

मुनिजी ने दोषापनयन के लिए सरकार का हृदय मे निवास माँगा। अः गुणाधान के लिए अविरल भक्ति आदि माँग रहे हैं।

अब सगुण भक्ति माँगने का कारण कहते हैं। यद्यपि निर्गुण रूप से प्रभु ब्रह्म है। अत्यन्त बृहत् अर्थात् व्यापक है। वस्तुत अपरिच्छिन्न है। अखण्ड होने से देशतः अपरिच्छिन्न है। अनन्त होने से कालत अपरिच्छिन्न है। अनुभवगम्य है अर्थात् स्वसंवेद्य है। परम अधिकारी सन्त लोग उनका भजन करते हैं। यथा : मोहि परम अधिकारी जानी। लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा : और यही परमार्थ रूप है।

अस तव रूप बखानौ जानौ। फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानौ ॥
संतत दासन्ह देहु बड़ाई। ताते मोहि पूँछेहु रघुराई ॥७॥

अर्थ : ऐसे रूप का मैं वर्णन करता हूँ और जानता हूँ। फिर भी लौट लौटकर सगुण ब्रह्म मे ही रति मानता हूँ। आप सदा से ही दासो को बड़ाई देते आये हैं। इसीलिए हे रघुनाथजी! आपने मुझसे पूछा है।

व्याख्या : सरकार के इस परमार्थ रूप का मैं वर्णन भी किया करता हूँ। ऐसा कहने पर भी मुनिजी कहते हैं कि रूप को मैं जानता हूँ। भाव यह कि वर्णन तो परोक्ष ज्ञानवाले भी किया करते हैं। पर उन्हे अनुभव नहीं है और वह रूप अनुभवगम्य है। मुनिजी का कहना है कि मुझे अनुभव भी है। अर्थात् अपरोक्ष ज्ञान भी है। फिर भी उस अनुभव से बारबार हटकर सगुण रूप मे प्रीति करता हूँ। यथा : सुनि गुन गान समाधि बिसारी। सादर सुनहि परम अधिकारी : अतः समाधि छोडकर सगुण ब्रह्म पे प्रीति करता हूँ। क्योंकि प्रभु मे गुण ही ऐसे हैं।

यह स्तुति उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र है। इसमे दो तारे चमकते हैं सगुण और निर्गुण। आकार शय्या का सा है। जिस भाँति दिनभर घूम फिरकर मनुष्य शय्या मे ही विश्राम पाता है इसी भाँति निराधार निर्गुण मे घूम घामकर शय्या की भाँति सगुण मे ही रति होती है। यथा अस तव रूप बखानौ जानौ। फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानौ इस स्तुति की फलश्रुति मे ग्रन्थकार ने कुम्भज शब्द रखकर स्पष्ट कर दिया कि यह अगस्त्यजी की स्तुति है। उन्ही की भाँति अपार लोभसमुद्र को सोख जाती है। यथा कुभज लोभ उदधि अपार के। जिसे यह भावना हो गयी कि इस ब्रह्माण्ड मे हम गूलर फल के कीट की भाँति रहते हैं : कुछ जानते नही उसमे लोभ की भावना रह नही सकती।

मुनिजी के वरदान माँगने पर सरकार ने एवमस्तु नही कहा। क्योकि उन्हें बडा मान लिया है पर दे दिया। मुनिजी अनुभव कर रहे हैं कि वरदान मिल गया। अब जो मन्त्र पूछा गया था उसके विषय म कहते हैं कि मैं दास हूँ। प्रभु की प्रीति दास पर अधिक है। अत उन्हे बडाई देते हैं। नही तो आपके लिए अज्ञेय क्या है ? प्रभु के पूछने पर हठात् गुरु की भाँति उपदेश करने बैठना धृष्टता है और कुछ न कहना आज्ञा भङ्ग है। अत भूमिकापूर्वक उत्तर देते हैं।

३१ दण्डक वन की पावनता

है प्रभु परम मनोहर ठाँऊँ। पावन पचवटी तेहि नाँऊँ ॥
दडक बनु पुनीत प्रभु करहू। उग्र श्राप मुनिवर कर हरहू ॥८॥

अर्थ है प्रभो ! एक परम मनोहर स्थान है। पवित्र पञ्चवटी उसका नाम है। हे प्रभो ! आप दण्डक वन को पवित्र कीजिये और श्रेष्ठ मुनि के उग्र शाप को दूर कीजिये।

व्याख्या अब अपनी सम्मत्ति कहते हैं कि दण्डक वन मे एक स्थान है जिसे पञ्चवटी कहते हैं। वह परम मनोहर है। अश्वत्थो बिल्ववृक्षश्चवटो धात्री अशोककम्। वटीपञ्चकमित्युक्त स्थापयेत् पञ्चदिक्षु च। वहाँ पाँच दिशाआ मे पञ्चवट स्थापित हैं। पीपल, बेल, वट, आँवला और अशोक। उसका नाम पवित्र है। वह स्थान तो भृगुमुनि के शाप से अपवित्र हो चुका है वह दण्डक राजा का राज्य था। उसने मुनिपुत्री के साथ बलात्कार किया। इस पर मुनिजी ने दारुण शाप दिया। वह राज्य नष्ट होकर वन हो गया। वहाँ राक्षस रहते है। मुनि नही रह सकते। उसको शाप विनिर्मुक्त करने मे आप ही समर्थ है। अर्थात् वहाँ आपको राक्षस मिलेंगे। वह स्थान बडा रमणीय है। आपके जाने से शाप के कारण जो अपवित्रता आगयी है राक्षसा का निवासस्थल हो गया है वह अपवित्रता दूर हो जायगी।

बास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया ॥
चले राम मुनि आयसु पाई। तुरतहिं पचवटी नियराई ॥९॥

अर्थ : हे रघुकुल के राजा ! आप वहीं वास कीजिये और सब मुनियों पर दया कीजिये। मुनिजी की आज्ञा पाकर रामजी वहाँ से तुरन्त ही चल दिये और पञ्चवटी के सन्निकट पहुँच गये।

व्याख्या : आपके निवास योग्य वह स्थल है। वहीं आप निवास कीजिये। आप रघुकुल के राजा हैं। आपको दुष्टों को दण्ड देने का अधिकार और सामर्थ्य है। मुनिजी महात्मा हैं। राक्षसों का वध करना न कहकर मुनियों : पर दया करने को कहते हैं। मुनियों पर दया करके ही प्रभु प्रतिज्ञा कर चुके हैं : निसिचर हीन करौं महि। उस प्रतिज्ञा की पूर्ति वहीं निवास करने से होगी। दुष्टों का निग्रह ही सज्जनों पर अनुग्रह करना है। यही बड़ी भारी अहिंसा है और दुष्टों पर अनुग्रह ही बड़ी भारी हिंसा है। इस अहिंसा के सिद्धान्त के स्थापना के लिए ही अवतार होता है। यथा : परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।

आज्ञा पाने से ही आज्ञा माँगना अर्थतः सिद्ध है। प्रतिज्ञा पूर्ति की उत्कट इच्छा है। अतः तुरन्त चल दिये। इसलिए केवल रामजी का ही चलना लिखते हैं। क्योंकि केवल उन्हीं ने प्रतिज्ञा की थी। वहाँ से पञ्चवटी दो योजन पर थी। अतः उसी दिन उसके निकट पहुँच गये।

३२. गीध मैत्री प्रसङ्ग

दो. गीधराज सै भेंट भइ, बहु बिधि प्रीति बढाइ।
गोदावरी निकट प्रभु, रहे परन गृह छाइ ॥१३.७॥

३३. पञ्चवटी निवास मुनित्रास भञ्जन प्रसङ्ग

अर्थ : वहाँ गीधराज से भेंट हुई। उसके साथ बहुत प्रकार से प्रेम बढ़ाकर प्रभु गोदावरी नदी के निकट पत्ते की कुटी बनाकर रहने लगे।

व्याख्या : गीधराज का नाम जटायु था। वे वहाँ रहते थे। उनसे भेंट हुई। बड़े पुराने परिचित निकले। महाराज दशरथ की उनकी मैत्री थी। इस भेंट से वह प्रीति और बढी। उन्होंने कहा कि जिस समय आप दोनों भाई आखेट के लिए जायेंगे उस समय मैं जानकीजी की रक्षा करूँगा। एक सहायक मिलने के नाते से भी प्रीति बढी। इसलिए कवि लिखते हैं : बहु बिधि प्रीति बढाइ। प्रभु समर्थ हैं : गोदावरी नाम की पुण्य नदी के निकट पर्णकुटी बनाकर ठहर गये। नहीं तो वहाँ राक्षसों का इतना भय था कि देवता लोग कुटी बनाने नहीं आये। जैसा कि चित्रकूट में किया था या प्रवर्षण गिरि पर करेंगे। यथा : प्रथमहिं देवन्ह गिरि गुहा राखी रुचिर बनाइ। राम कृपा निधि कछु दिन बास करहिंगे आइ।

जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भये मुनि बीती त्रासा ॥
गिरि बन नदी ताल छबि छाए। दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए ॥१॥

अर्थ : जब से रामजी ने वहाँ निवास किया मुनि लोग सुखी हो गये। उनका डर जाता रहा। पहाड वन नदी ताल सब शोभा से छा गये। नित्य प्रति वे अधिक सुहावने होने लगे।

व्याख्या : अगस्त्यजी ने कहा था। बास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजिअ सकल मुनिन्ह पर दाया। उसी का साफल्य दिखला रहे हैं। दया यह हुई कि वे अभय हो गये। सूर्पणखा रावण से कहेगी कि जिन्हकर भुजबल पाइ दसानन। अभय भये विचरत मुनि कानन। दण्डकारण्य के बाहर रहनेवाले भी त्रस्त रहते थे। अब तो सभी मुनि निर्भय आनन्द से वन में घूमने लगे।

अब मुनिजी के दूसरे वचन का साफल्य दिखलाते है। दूसरा वचन यह था कि दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। सो दण्डक वन पुनीत हो गया। परम मनोहर होने पर भी भयप्रद था। इससे उसकी मनोहरता दबी हुई थी। अब भय के हट जाने से निर्दोष हो गया। अत कहते हैं कि शोभा छा गयी। इतना ही नही प्रभु के निवास के माहात्म्य से शोभा नित्य बढ़ने लगी। गिरि, वन, नदी और ताल ये ही प्राकृत दृश्य हैं। दण्डक वन में ये सब थे। इनकी शोभा नित्य नवीन मालूम होने लगी।

खग मृग बृंद अनंदित रहहीं। मधुप मधुर गुंजत छबि लहहीं॥
सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रकट रघुबीर बिराजा॥२॥

अर्थ पशु पक्षी सब आनन्दित होकर रहने लगे और मधुर गुंजार करते भौंरे शोभा पा रहे थे। जहाँ प्रत्यक्ष रघुवीर विराजमान है उस वन का स्वयं शेषजी वर्णन नही कर सकते।

व्याख्या . प्रभु के निवास से चित्रकूट की भाँति यहाँ भी सब जीवो ने सहज वैर छोड दिया और उस वन मे एक दूसरे से प्रेम करने लगे। यथा : सहज बैर सब जीवन्ह त्यागा। गिरिपर सकल करहिं अनुरागा। अत. कहते है : खग मृग बृंद अनंदित रहहीं। वन के पेड सदा फूलने फलने लगे। यथा . फूलहिं फलहिं सदा तरु कानन। फल फूलो की सरसता कहते है कि भौंरे गूँज रहे थे। फल फूलो की शोभा भौरो के गूजने से हो जाती है। अत· छबि लहहीं कह रहे हैं। वन मे भी छवि है और वनवासी जीवो मे भी छवि है।

सभी वर्णन करनेवालो मे शेषजी को बडा सुभीता है। फणमण्डल से मण्डित होने से सब ओर एक साथ देखते है और वर्णन करने का साधन भी अत्यन्त अधिक है। सहस्रमुख हैं और एक एक मुख मे दो दो जिह्वाएँ हैं। सब ओर से सबका वर्णन अनेक भाँति से एक साथ कर सकते हैं। पर यहाँ तो प्रभु के आने से क्षण क्षण नित्य नवीन शोभा बढ रही है। वर्णन करते ही करते शोभा आगे बढ जाती है। तब कैसे वर्णन कर सकें? इससे दण्डक वन का केवल दोषापनयन नही कहा। गुणाधान भी कहा।

३४. लक्ष्मणोपदेश प्रसग

एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छलहीना॥
सुर नर मुनि सचराचर साँई। मै पूछौ निज प्रभु की नाँई॥३॥

अर्थ : एक बार प्रभु सुख से बैठे थे। उस समय लक्ष्मणजी ने छलहीन वचन कहे। हे सुर नर मुनि तथा चराचर के स्वामी! मैं अपने स्वामी की भाँति पूछता हूँ।

व्याख्या : एकबार : भाव यह कि देश पहिले कह चुके है। सो वन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रकट रघुवीर बिराजा। अर्थात् दण्डक वन का यह वृत्तान्त है। समय के लिए कह रहे हैं कि दिन निश्चित नही। पर अगस्त्यजी से मिलकर पञ्चवटी मे ठहरने के बाद और सूर्पणखा के आगमन के पहिले ही किसी दिन।

प्रभु कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ. प्रभुः अर्थात् समर्थ हैं। दण्डक वन का उग्र शाप हरण करके उसे पवित्र करके विराजमान हैं। यथा . अगस्त्य वचन : दडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र श्राप मुनिवर कर हरहूँ।

सुख आसीना : भाव यह कि नित्य क्रिया करके सावकाश बैठे है। एकान्त है। जनकनन्दनी भी वहाँ पर नही है। ऐसा हो समय प्रश्न के लिए उपयुक्त है। सुखासन से बैठे हैं। योगशास्त्र का भी यही अनुशासन है कि स्थिरसुखमासनम्।

लछिमन : बचपन से ही प्रभु के चरणो मे प्रेम करनेवाले है। यथा : बारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी। अर्थात् भक्त भी और सखा भी।

छलहीन वचन कहे : यहाँ अहङ्कार का अनुवेध ही छल है। अन्याय युक्त प्रश्न करनेवाले का उत्तर देना निषिद्ध है। यथा : नापृष्ट कस्यचिद् ब्रूयात् न चान्यायेन पृच्छतः। यहाँ छलहीन शब्द से सच्ची जिज्ञासा दिखलायी। सुनी चहैं प्रभु मुख कै बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी।

सुरनर मुनि सचराचर साइँ . भाव यह कि आप सर्वेश्वर हैं। सबके गुरु है। स सर्वेषामपि गुरु कालेनानवच्छेदात्। जगद्गुरु च शाश्वत। तुरीयमेव केवल। इत्यादि।

मैं पूछौ · भाव यह कि मैं तो आपका निज दास हूँ। यथा : गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू। जहँ लगि जगत् सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजगाई। मोरे सबुइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबधु उर अतरजामी।

निज प्रभु की नाइँ : भाव यह कि जीव और ईश्वर मे अनेक सम्बन्ध है। यथा : मोहि तोहि नातो अनेक मानिये जो भावै। सो मुझे तो आप की ही गति है। दूसरे की आशा नही। अत निज प्रभु की नाइँ पूछता हूँ। यथा . पुनि मोहि तिन्हते प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा।

मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा । सब तजि करौ चरन रज सेवा ॥
कहहु ग्यान बिराग अरु माया । कहहु सो भगति करहु जेहि दाया ॥४॥

अर्थ ' हे देव ! मुझे वही समझाकर कहो । जिससे सब त्याग करके चरणरज की सेवा करूँ । मुझे ज्ञान विराग और माया बतलाओ और वह भक्ति बतलाओ जिससे दया करते हो ।

व्याख्या देवा श्रीरामजी इष्टदेव हैं । इसलिए देव सम्बोधन दिया । जिसकी सेवा करनी है उसीसे सेवा की विधि जान लने से भ्रम को स्थान नही रह जाता । सो सेव्य होने से उनका देव शब्द से सम्बोधन किया गया ।

सोइ मोहि समुझाइ कहो यद्यपि छहो प्रश्नो के लिए समझाकर कहने के लिए प्रार्थना है । तथापि सोइ शब्द के प्रयोग से अन्तिम प्रश्न पर अधिक जोर मालूम पडता है । क्योकि सिद्धान्त तो थोडे शब्दोमे ही कहा जा सकता है । परन्तु साधन के बिना विस्तारपूर्वक कहे काम नही चलता । यह प्रश्न साधन विषयक है ।

सब तजि भाव यह कि आप सुर नर मुनि सचराचर साईं है । आपका सभी भजन करते हैं । रागी पुरुष को श्री चरणा म अति अनुराग नही हो सकता । वह तो विरागी को ही हो सकता है । यथा जेहि लागि विरागी अति अनुरागी विगत मोह मुनि बृदा । दूसरा भाव यह है कि बिना सब कुछ तजे रात दिन भजन नही हो सकता । यथा अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती । सब तजि भजन करौ दिनराती ।

चरन रज सेवा करौं लक्ष्मणजी का बडा प्रेम श्री चरणो मे है । यथा चापत चरन लपन उर लाये । समय सप्रेम परम सचुपाये । वह प्रेम पिपासा बढती ही जाती है । अत चरण रज सेवा को ही लक्ष्मणजी पूछते हैं । यहाँ पर चरण रज सेवा कहकर अपना आर्ताधिकारी होना मूचित किया ।

ग्यान दूसरा प्रश्न ज्ञान विषयक है । क्योकि कहहिं सत मुनि वेद पुराना । नहिं कुछ दुर्लभ ग्यान समाना । तथा ग्यान मोच्छ प्रद वेद बखाना । विषय सम्बन्धी ज्ञान तो सभी को है । पर जानने योग्य ज्ञान कौन सा है ?

बिराग तीसरा प्रश्न विराग विषयक है । क्योकि यही विवेक राजा का मन्त्री है । यथा सचिव विराग विवेक नरेसू । इसके बिना सन्यासी भी उपहास योग्य समझा जाता है । यथा सब नृप भये जोग उपहासी । जैसे बिन बिराग सन्यासी । वह विराग क्या है ?

अरु माया यद्यपि माया मे ही ससार पडा हुआ है । तथापि उसके जानने की आवश्यकता है । क्योकि इसके चरित्र को कोई लख नही पाता । और इसी के वश मे पडा हुआ ससार नाच रहा है । यथा जो माया सब जगहि नचावा । जासु चरित लखि काहु न पावा । यह माया बिना रामजी की कृपा के नही छटती । लक्ष्मणजी इसका भी परिचय जानना चाहते हैं । यह चौथा प्रश्न है ।

कहहु सो भगति : भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से है। एक तो भावव्युत्पत्ति है। यथा : भजनं अन्तःकरणस्य भगवदाकारता भक्तिः । भजन अर्थात् अन्तःकरण की भगवदाकारता भक्ति है और दूसरे मे करणव्युत्पत्ति होती है। यथा : भज्यते सेव्यते भगवदाकारमन्त.करण क्रियते अनया। जिससे सेवन अर्थात् भगवदाकार अन्त करण किया जाता है उसे भक्ति कहते हैं। पहिली को फलरूपा और दूसरी को साधनरूपा भक्ति कहते हैं। शाण्डिल्यशतसूत्री तथा नारद-भक्तिसूत्र मे परम प्रेम को भक्ति माना है। यथा सा पराऽनुरक्तिरीश्वरे। शा सू.। सा त्वस्मै परमप्रेमरूपा। परन्तु यह सात्त्विकी परिभाषा है। इसके अन्तर्गत राजस और तामस भक्त नही आ सक्ते। भक्तिरसायन मे दी हुई परिभाषा मे सभी प्रकार के भक्तो का समावेश है। यथा ' द्रुतस्य भगवद्धर्माद् धारावाहिकता गता। सर्वेशे या मनोवृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते। भगवत् गुणश्रवण से जिसका चित्त द्रवीभूत होता है उसकी चित्तवृत्ति यदि परमेश्वर मे धारावाहिकता को प्राप्त हो तो उसे भक्ति कहते है।

कहहु जेहि दाया भजत कृपा करिहैं रघुराई। सो रघुराई सात्त्विकी भक्ति होने पर तो कृपा करते ही हैं। राजसी और तामसी भक्ति होने पर भी करते हैं। यथा : उमा राम मृदु चित करुनाकर। बैर भाव सुमिरत मोहि निसिचर। देहि परम गति सो जिअ जानी। अस कृपालु को कहहु भवानी।

दो. ईश्वर जीव भेद प्रभु, सकल कहहु समुझाइ।
जाते होइ चरन रति, सोक मोह भ्रम जाइ ॥१४.८॥

अर्थ : प्रभो ! ईश्वर और जीव मे क्या भेद है। यह सब समझाकर कहिए। जिसमे आपके चरणो मे प्रेम होकर शोक मोह तथा भ्रम दूर हो।

व्याख्या : ईश्वर जीव भेद . भाव यह कि ईश्वर भी चेतन है और जीव भी चेतन है। दोनो कर्म करते है। दोनो माया से सम्बद्ध हैं। दोनो अनादि हैं। फिर दोनो मे अन्तर क्या ?

प्रभु : भाव यह कि पहिले ही कह आये हैं कि मै पूछहुँ निज प्रभु की नाईं। अतः इस लछिमन उपदेश प्रकरण भर मे सरकार के लिए प्रायेण प्रभु शब्द का ही प्रयोग है। यथा : एक बार प्रभु सुख आसीना। मै पूछौ निज प्रभु की नाईं। ईश्वर जीव भेद प्रभु सकल कहहु समुझाइ। तथा लछिमन प्रभु चरनहि सिरनावा।

सकल कहहु समुझाइ : भाव यह कि छहो प्रश्न समझाकर कहिए। यहाँ इन प्रश्नो का उत्तर केवल व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ अथवा परिभाषा मात्र से हो सकता है। अत. प्रार्थना की जा रही है कि समझाकर कहिए। समझाने से ही भ्रान्ति दूर होती है।

जाते होइ चरन रति : अपना लक्ष्य भी कहे देते हैं कि मेरा लक्ष्य भक्ति है : मुक्ति नही। जिसका लक्ष्य मुक्ति है उसके समझाने का मार्ग दूसरा है। जैसा कि

उत्तरकाण्ड के ज्ञान दीपक प्रसङ्ग में विस्तृत रूप से कहा गया है और भक्ति के समझाने का दूसरा ही मार्ग है। जो इस प्रकरण मे कहा जायगा।

सोक मोह भ्रम जाई : इष्टवियोग जन्य दु:ख से शोक होता है। मोह अज्ञान को कहते हैं। भ्रम अन्यथा ज्ञान कहते हैं। इसके विना हटे भक्ति नही होती। यथा : होइ विवेक मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा। इससे यह भी दिखला दिया कि ये ही प्रश्न सब प्रश्नो के मूल हैं। इनका अभ्रान्त उत्तर यदि मन में बैठ जाय तो शोक माह भय निवृत्तिपूर्वक भक्ति प्राप्ति का अधिकार होता है।

थोरेहु मंह सब कहहुँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चितु लाई ॥
मै अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हे जीव निकाया ॥१॥

अर्थ : हे तात! मैं थोडे ही में सब समझाकर कहता हूँ। तुम बुद्धि मन और चित्त लगाकर सुनो। मै मेरा तैं और तेरा यही माया है। जिसने जीव समूह को वश कर रक्खा है।

व्याख्या : थोरेहु मँह सब कहहुँ बुझाई : यह वक्ता का पाण्डित्य है कि सब कुछ समझाकर कहे और विस्तार न होने पावे। कितना काम तो उत्तर के क्रम से निकाल दिया। यहाँ देखेगे कि प्रश्न के क्रम से उत्तर का क्रम भिन्न है। मोहि समझाइ कहौं सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा : ऐसा प्रश्न किया। पर सरकार ने इस प्रश्न का उत्तर पहिले न देकर चौथे प्रश्न का उत्तर : मै अरु मोर तोर तैं माया कहकर देते हैं। क्योकि भूमौ पतित पादाना भूमिरेव पर बलम् जो जमीन पर गिरा है वह उसी को टेककर उठेगा। सब लोग माया ही मे पड़े है। अत: पहिले माया को ही समझना उचित समझा। उसके समझ लेने पर शेष का समझना कष्टसाध्य नही रह जाता। तात : यह प्यार का शब्द है। बड़े छोटे सबके लिये आता है। यथा : तात तात बिनु बात हमारी। तात सुनावहु मोहि निदानू। इत्यादि।

सुनहु मन मति चितु लाई : सकल्पविकल्पात्मक मन है। निश्चयात्मिका बुद्धि होती है। चित्त धारण करता है। परन्तु अन्त.करण चार हैं : मन बुद्धि चित्त और अहङ्कार। सो तीन को लगाकर सुनने को कहते हैं। अहङ्कार का निषेध उसका नाम न लेकर करते है। अहङ्कार से जिज्ञासा की पात्रता नही रह जाती। और एकाग्रता के लिए मन बुद्धि चित्त को लगा देने की अनिवार्य आवश्यकता है।

मैं अरु मोर : बोलने वाला अपने को मैं कहता है। इसी को व्याकरण मे उत्तम पुरुष कहते हैं। यहाँ मैं शब्द का प्रयोग मुख्य अर्थ मे हुआ। अर्थात् चिदाभास और कूटस्थ का एकीभाव। अविद्या मे पड़े हुए चेतन के प्रतिबिम्ब को चिदाभास कहते हैं। और उसके अधिष्ठानभूत चिदश को कूटस्थ कहते है। कूटस्थ और चिदाभास का विवेक न करके दोनो को एक मान लेना ही यहाँ एकीभाव है। इसी अर्थ में मैं शब्द का प्रयोग सर्व साधारण किया करते है।

मै शब्द के षष्ठी का रूप मोर है। इसके द्वारा गृहादि से अपने सम्बन्ध का बोध होता है। यही मैं अरु मोर सब अनर्थों की [1]जड है। पहिले मै अहभाव का स्फुरण होता है। उसके फुरते ही जगत् दृश्य सपने की भाँति सामने खडा हो जाता है। मैं अरु मोर को ही मोह निशा कहा है। इसी रात मे सोता हुआ मनुष्य ससार रूपी स्वप्न देख रहा है। यथा . मै तैं मोर मूढता त्यागू। महामोह निसि सोवत जागू।

तोर तैं : मै का प्रतिद्वन्द्वी तैं है सो कोई यह न समझ ले कि तै और तोर माया की सीमा के बाहर है। अतः इसका अलग उल्लेख किया गया। बोलनेवाला जिससे बोलता है उसे तैं तुम आप कहता है। इसे व्याकरण मे मध्यम पुरुष कहा है। मैं के स्फुरण के बाद तै का स्फुरण होता है। इसलिए मै अरु मोर के बाद तै अरु तोर का उल्लेख किया। मोर की भाँति तोर भी तै के षष्ठी का रूप है। और सम्बन्ध स्थापन करता है।

माया : भाव यह कि मै अरु मोर तोर तै माया है। निस्तत्त्व है। कार्य तो इसका दिखलाई पडता है। अधिष्ठान से इसकी पृथक् सत्ता कुछ भी नही है। जिस भाँति सीप मे रजत तीन काल मे नही है। पर प्रत्यक्ष भासता है। यह भासना निस्तत्त्व है। पर यह मिटाये नही मिटता। इसी भाँति माया की स्थिति है। वह तीन काल मे नही है। पर ससार भ्रम किसी के हटाये नही हटता। यथा : जासु सत्य ताते जड माया। भास सत्य इव मोह सहाया।

रजत सीप महुँ भास जिमि यथा भानु कर बारि।
जदपि मृषा तिहुकाल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि॥

एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई॥

जेहि बस कीन्हे : भाव यह कि जिसे माया ने वश्य कर रक्खा है। इससे माया का कार्य कहते हैं। माया और प्रकृति पर्यायवाची शब्द हैं। यथा : माया तु प्रकृति विन्द्यात् मायिनं तु महेश्वरम्। इसी से सम्पूर्ण जगत् की रचना होती है और इसी ने सबको वश्य कर रक्खा है। यथा : जीव चराचर बस कै राखे। सो माया प्रभु सो भय भाखे।

जीव निकाया : भाव यह कि कूटस्थ चिदाभास और लिङ्ग शरीर के समूह को जीव कहते हैं। ये जीव असख्य है। ये सब माया के वश हैं। जिस भाँति जल मे पडा हुआ प्रतिबिम्ब जल के वश मे होता है जल के ऊपर उठने से वह ऊपर उठता है। जल के नीचे गिरने से वह नीचे गिरता है। जल के चञ्चल होने से वह चञ्चल होता है। इसी भाँति जीव माया के वश रहता है। माया जैसा कराती है

---

१. अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या चास्वे स्वमिति या मति।
ममारतरुसम्भूतिबीजमेतद् द्विधा स्थितम्॥ वि पु ६.७.११

अनात्मा मे आत्मबुद्धि मैं और जो अपना नही है उसे अपना मानना : मोर ये ही दोनों ससार वृक्ष की उत्पत्ति के बीज हैं।

वैसा करता है। यथा ईश्वर अस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी। सो मायावस भयउ गोसाईं। बँध्यौ कीर मरकट की नाईं।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ॥२॥

अर्थ इन्द्रिय विषय और मन की जहाँ तक दौड है इन सबको हे भाई। माया जानना। उसके दोनो भेदो को सुनो एक अपर विद्या और दूसरी अविद्या।

व्याख्या गो गोचर गो अर्थात् इन्द्रियाँ। इन्द्रियाँ दश हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय। गोचर अर्थात् पाँच विषय शब्द स्पश रूप रस और गन्ध।

जहँ लगि मन जाई मनकी दौड बहुत दूर तक होती है। यह मन स्थूलतम पदार्थों म अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड तक जाता है और सूक्ष्मतम पदार्थ मे महत् तत्त्व तथा प्रकृति तक पहुँचता है। सो सब माया जानेहु अर्थात् परा प्रकृति अपरा प्रकृति ये दोनो ही माया हैं। जो हो न सके उसे कर दिखलानेवाली माया है। इसलिए अघटितघटनापटीयसी कहते हैं।

भाई भाई सम्बोधन से अपना प्रम द्योतित किया। जिस भाँति सदा से शिक्षा देते आये हैं। उसी भाँति इस बार भो शिक्षा द रहे हैं। यथा

राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती॥
वेद पुरान सुनहि मन लाई। आपु कहहिं अनुजहि समुझाई॥

तेहि कर भेद ऊपर कहा जा चुका है कि माया और प्रकृति पर्यायवाची शब्द हैं। मैं अरु मोर तोर तैं माया कहकर परा प्रकृति का वर्णन किया जो कि जीवभूत होकर जगत् को धारण किये हुए है और गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई। कहकर अपरा प्रकृति का वणन किया। अब दूसरे प्रकार से उसके भेद कहेगे।

सुनहु तुम सोऊ यद्यपि भेद विषयक प्रश्न नही है। तथापि विषय को स्पष्ट करने के लिए उसके भेद का भी वर्णन करेंगे। उसके सुनने के लिए कह रहे है।

विद्या अपर अविद्या दोऊ उस माया के दो भेद हैं। एक अपर विद्या दूसरी अविद्या। यथा प्रभु सेवकहि न व्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित व्यापै तेहि विद्या। अङ्गो सहित वेदत्रयो अपरा विद्या है। तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्ववेद शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्त ज्यौतिषमिति। मुण्डक। अपरा विद्या कहने से ही पता चलता है कि कोई पराविद्या भी उसकी चचा आगे की जायगी। यहाँ अपरा विद्या तथा अविद्या का वर्णन किया जा रहा है जा माया की सीमा के भीतर है।

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा॥
एक रचइ जग गुन बस जाके। प्रभु प्ररित नहिं निज बल ताके॥३॥

अर्थ एक दुष्ट अत्यन्त दु खरुप है। जिसके वश म आकर जीव ससार कूप

मे पड़ा हुआ है और एक जिसके वश मे गुण : सत्त्व रजस् और तमस् हैं प्रभु से प्रेरित होकर संसार को रचते हैं। उसे अपना वल नही है।

व्याख्या : एक दुष्ट : यहाँ एक एक कहकर क्रम नही देते। क्योंकि क्रम इष्ट नही है। पहले अविद्या का ही वर्णन करना है। उसे दुष्ट इसलिए कहा कि वह दोषयुक्त है। शुद्धसत्त्वप्रधाना नही है। जो दुष्ट होता है दोषयुक्त होता है। उससे दूसरे को पीड़ा पहुँचती है। अतः कहते हैं :

अतिसय दुःख रूपा : यह दुष्ट अविद्या अविशुद्धि के तारतम्य से अनेक प्रकार की होती है। यही स्थूल और सूक्ष्म शरीर की कारणभूता : प्रकृति की अवस्था विशेष कारण कहलाती है। पञ्च महाभूतो से निर्मित इस अस्थि मासमय देह को स्थूल शरीर कहते हैं। इसी के भीतर इसका अनुकरण करती हुई अपञ्चीकृत महाभूत तथा उसके कार्य पञ्च प्राण दश इन्द्रिय मन और बुद्धि की बनी हुई सूक्ष्म देह है। इन दोनो सूक्ष्म और स्थूल शरीरो से अविद्या द्वारा ही जीव बद्ध होता है। यथा :

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥
सो माया बस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं॥
जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई॥
तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी॥
जिय जब तें हरि तें बिलगान्यौ। तब तें देह गेह निज जान्यौ॥
माया बस स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रम ते दारुन दुख पायो॥

पायो जो दारुन दुसह दुख सुख लेस सपनेहु नहि मिल्यौ।
भव सूल सोक अनेक जेहि तेहि पंथ तू हठि हठि चल्यौ॥
बहु जोनि जन्मि जरा बिपति मतिमन्द हरि जान्यौ नहीं।
श्रीराम बिनु बिश्राम मूढ बिचारु लखु पायौ कही॥
विनय. १३६.

जेहि बस जीव परा भवकूपा : अविद्या द्वारा स्थूल सूक्ष्म शरीर का अध्यास भ्रम ही बन्धन है। इसी बन्धन के कारण जीव भवकूप मे पड़ा हुआ दुःख पा रहा है। द्वैत ही भवकूप है। जगत् ईश्वर का कार्य : रचित है और जीव का भोज्य है। माया वृत्यात्मक ईश्वर का सङ्कल्प जगत् की उत्पत्ति का कारण है और मनो-वृत्यात्मक जीव का सङ्कल्प भोग का साधन है। जैसे ईश्वर ने स्त्री बना दी। अब उसी को कोई भार्या, कोई बहू, कोई ननद, कोई देवरानी और कोई माता मानता है। वह मांसमयी स्त्री तो एक ही है। परन्तु मनोमयी के अनेक भेद हो गये। जीव का बन्धन करनेवाली यह मनोमयी : स्त्री है। ईश्वर की बनायी हुई मांसमयी बन्धन करनेवाली नही है। इस भाँति द्वैत दो प्रकार का है। एक ईश्वरकृत और दूसरा जीवकृत। ईश्वरकृत द्वैत बन्धन का कारण नही है। सो जीवकृत द्वैत को भवकूप कह रहे हैं। कूप इसलिए कहते हैं कि यह तमोमय दुःख रूप है और इससे

बाहर केवल अपने पुरुषार्थ द्वारा निकलना भी कठिन है। करुणानिधान भगवान् या उनके कृपापात्र गुरु ही करावलम्बन देकर बाहर निकाल सकते हैं। विनय मे गोस्वामीजी ने द्वैत को भवकूप कहा है। यथा

द्वैतरूप भवकूप परौं नहिं अस कछु जतन बिचारो।

उसी अविद्या को मोहशक्ति कहा गया है। माया मे निर्माण शक्ति की भाँति एक मोहशक्ति भी है। वही जीव को मोहित करती है। मोह से अतीशता को प्राप्त होकर भवकूप मे पडा जीव सोचता है

मैं जन्म्यौ मोहि मातु पिता तिय तनय धाम धन।
ये मेरे हैं शत्रु मित्र विद्या वल परिजन॥
यो ही यह विद्वान् चित्त फुरना से धल्पित।
दखत बहु बिधि स्वप्न अविद्या ते अति निद्रित॥१॥

तथा बोत हैं विपवल्लि बोज दु ख को जो प्रेम के नाम से।
होते हैं अँखुए भरे अनल के सो नेह के धाम से॥
शोकारण्य वढा विशाल इनसे सौ लाख शाखा धरे।
देहो को दहता तुपानल यथा निर्धूम ज्वाला भरे॥२॥

प्रबोधचन्द्रोदय

एक रचइ जग वह भगवती अपरा विद्या ससार की रचना करती है। यहाँ रचना उपलक्षण है। इसीके साथ पालन और उपसहार भी समझ लेना चाहिए। यह अपरा विद्या भगवान् की पुरातनी परा नाम्नी शक्ति है।

सर्वशक्ति परा विष्णोर्ऋग्यजु सामसज्ञिता।
सैषा त्रयो तपत्यंहो जगतश्च हिनस्ति या॥७॥
सैषा विष्णु स्थित स्थित्या जगत पालनोद्यत।
ऋग्यजु सामभूतोऽन्त सवितुर्द्विज तिष्ठति॥३॥
मासि मासि रविर्यो यस्तत्र तत्र हि सा परा।
त्रयीमयो विष्णुशक्तिरवस्थान करोति वै॥९॥
ऋच स्तुवन्ति पूर्वाह्ले मध्याह्नेऽथ यजूंषि वै।
वृहद्रथन्तरादीनि सामान्यह्न क्षये रविम्॥१०॥
अङ्गमेषा त्रयो विष्णोर्ऋग्यजु सामसज्ञिता।
विष्णुशक्तिरवस्थान सदादित्ये करोति सा॥११॥
न केवल रवे शक्तिर्वैष्णवी सा त्रयीमयी।
ब्रह्माथ पुरुषो रुद्रस्त्रयमेतत् त्रयीमयम्॥१२॥
सर्गादौ ऋङ्मयो ब्रह्मा स्थितौ विष्णुर्यजुर्मय।
रुद्र साममयोऽन्ताय तस्मात् तस्याशुचिर्ध्वनि॥१३॥
एव सा सात्त्विको शक्तिर्वैष्णवी या त्रयीमयी।
आत्मसप्तगणस्थ त भास्वन्तमधितिष्ठति॥१४॥

तया चाधिष्ठितः सोऽपि जाज्वलीति स्वरश्मिभि ।
तमः समस्तजगता नाश नयति चाखिलम् ।।१५।।
अंश २ अ० ११ ' विष्णुपुराण

इसी को ऋक्, यजु', साम कहते है। यही त्रयी सूर्य को ताप प्रदान करती है। संसार के पाप को नाश करती है। स्थिति के समय यही विष्णु होकर जगत् का पालन करती है। यही ऋक्, यजु', साम रूप से सूर्य के भीतर ठहरी हुई है। प्रत्येक मास मे जो पृथक् पृथक् सूर्य कहे गये हैं उनमे यह वेद त्रयी रूपिणी पराशक्ति निवास करती है। पूर्वाह्ण से ऋक्, मध्याह्न से यजु और सायंकाल वृहद्रथन्तरादि साम श्रुतियाँ सूर्य की स्तुति करती हैं। यह ऋक्, यजु' सामरूपिणी वेदत्रयी भगवान् विष्णु का ही अङ्ग है। ये सदा आदित्य मे रहती हैं। यह त्रयीमयी वैष्णवी शक्ति केवल सूर्य की ही नही है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तीनो त्रयीमय हैं। सर्ग के आदि मे ब्रह्मदेव ऋक्मय होते हैं। पालन के समय विष्णु यजुर्मय होते हैं। और अन्त मे रुद्र साममय होते हैं। इसीलिए उसकी ध्वनि अपवित्र कही गयी है। इस प्रकार यह त्रयीमयी वैष्णवी शक्ति अपने सातो गणो मे स्थित सूर्य मे अवस्थित रहती है। उसमे अधिष्ठित सूर्यदेव अपनी प्रखर रश्मियो से प्रज्वलित होकर ससार के सम्पूर्ण अन्धकार को नष्ट करते हैं। इस भाँति त्रयीमयी अपरा विद्या ही ससार की रचनेवाली है। यथा :

एतना मन आवत खगराया। रघुपति प्रेरित व्यापी माया ।। अपरा विद्या
सो माया न दुखद मोहि काही। आन जीव इव ससृत नाही ।।
उदर माझ सुनु अडजराया। देखेउँ बहु ब्रह्माण्ड निकाया ।।
अति विचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक ते एका ।।
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगणित उडगन रवि रजनीसा ।।
अगनित लोकपाल जमकाला। अगनित भूधर भूमि बिसाला ।।
सागर सरि सर बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा ।।
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किंनर। चारि प्रकार जीव सचराचर ।।

दो० जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवन बिधि जाइ ।।
एक एक ब्रह्माड महुँ रहौं बरष सत एक।
एहि बिधि देखत फिरौं मै अड कटाह अनेक ।।

लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता। भिन्न बिस्नु सिव मनु दिसित्राता ।।
नर गन्धर्व भूत बेताला। किंनर निसिचर पसु खग ब्याला ।।
देव दनुज गन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहि भाँती ।।
महि सरि सागर सर गिरि नाला। सब प्रपच तहँ आनहि आना ।।
भ्रमत मोहि ब्रह्माड अनेका। बीते मनहुँ कल्प सत एका ।। इत्यादि।

गुन बस जाकें : इस अपरा विद्या के वश मे गुण है। विशुद्ध सत्त्व प्रधाना

होने से उसमे जो ब्रह्म का प्रतिविम्ब पडता है वह पूर्ण होता है। उसी को सर्वज्ञ ईश्वर कहते हैं। उन्ही की यह परा शक्ति सत्त्व रज और तम को वश मे रखती है। ब्रह्मा विष्णु रुद्रमयी होने से यह सत्त्व रज तम की अधिष्ठात्री देवी है। अत इसके वश म गुण है। उसके जिस रूप से हम परिचित हैं वह उसकी वाङ्मयी मूर्ति है।

प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें भगवान् कहते हैं कि वेद नामवाली पुरातनी परा[1] शक्ति मेरी है। यह सर्ग के आदि मे ऋक् यजु साम रूप से प्रवृत्त होती है। अर्थात् उसको प्रवृत्त करनेवाला, उसके प्रभु भगवान् हैं। उनकी प्रेरणा बिना वह कुछ नही कर सकती। अत कहते हैं नहिं निज वल ताकें। शक्तिमान् से पृथक् शक्ति की कोई सत्ता नही होती। अत कहा गया कि उसको अपना स्वतन्त्ररूपेण बल नही है। यथा

सुनु रावन ब्रह्माड निकाया। पाइ जासु बल विरचति माया ॥
लव निमेष महँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया ॥
जासु सत्यता ते जड माया। भास सत्य इव मोह सहाया ॥

अपरा विद्या और अविद्या दोनो माया के भेद हैं। अत दोनो के लिए माया शब्द व्यवहृत है। प्रसङ्ग से पहिचानना चाहिए। चौथे प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ।

ज्ञान मान जहँ एकौ नाँही। देख ब्रह्म समान सब माँही ॥
कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीन गुन त्यागी ॥४॥

अर्थ जहाँ एक भी मान नही है। ब्रह्म को सब मे समान देखता है। वही ज्ञान है। हे तात उसे परम वैराग्यवान् कहा गया है। जो तृण के समान सिद्धि तीनो गुणो का त्यागी हो।

ज्ञान पराविद्या[2] जिससे अक्षर ब्रह्म जाना जाता है। इसी को ब्रह्मविद्या कहते हैं। चारो[3] महावाक्यो द्वारा ब्रह्मका उपदेश होता है। उसमे से छान्दोग्य श्रुतिगत वाक्य का उपदेश लोमश महर्षि ने भुसुण्डि को ब्राह्मण जन्म मे किया था। यथा

लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा ॥
अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभवगम्य अखड अनूपा ॥
मन गोतीत अमल अविनासी। निर्विकार निरवधि सुख रासी ॥
सो तैं तोहि तोहि नहिं भेदा। वारि बीचि इव गावहिं वेदा ॥

---

१ ममैवैषा परा शक्तिर्वेदसज्ञा पुरातनी। ऋग्यजु सामरूपेण सर्गादौ सम्प्रवर्तते ॥ कूर्मपुराणे।

२ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।

३ चारो वेदो से चार महावाक्य लिये गये हैं १ ऋग्वेदान्तर्गत ऐतरेय आरण्यक से २ यजुर्वेदान्तर्गत बृहदारण्यक से ३ सामवेदान्तर्गत छान्दोग्य से और ४ अथर्व वेद से।

इसी को ज्ञान कहा है। क्योंकि आगे चलकर गरुड़जी भुमुण्डिजी से पूछते हैं कि कहहिं संत मुनि वेद पुराना। नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना। सोइ मुनि तुम्ह सन कहेउ गोसाईं। नहिं आदरेहु भगति की नाईं। शेष तीन वाक्य भी इसी भाँति ब्रह्म जीव के ऐक्य का प्रतिपादन करते हैं। यहाँ भगवान् लक्ष्मणजी को ऐतरेय आरण्यक गत महावाक्य प्रज्ञानं के तात्पर्य का उपदेश कर रहे हैं।

मान जहँ एकौ नाहीं : मीयते अनेन इति मानम्। जिससे नापा जाता है उसे मान कहते हैं। वह मान लघु, गुरु, महत्, अणु, उत्तम, मध्यम, अधम आदि भेद से अनेक प्रकारके होते हैं। ब्रह्मा, इन्द्रादि देव उत्तम हैं। मनुष्य मध्यम हैं। अश्व गजादि अधम हैं। एवं विद्या विनयसम्पन्न ब्राह्मण तथा गौ पूज्य, हाथी मध्यम, कुत्ता श्वान आदि निकृष्ट हैं। ये बातें मान से सिद्ध हैं। यह मान देहादिकों में ही सम्भव है पर जो चेतन ब्रह्म सबमें व्याप्त है उसका कोई मान नहीं है।

देख ब्रह्म समान सब माहीं : चक्षु इन्द्रिय द्वारा निकले हुए अन्तःकरण वृत्ति से उपहित चैतन्य से ही पुरुष दर्शन योग्य रूपादि को देखता है। श्रोत्र द्वारा निकले हुए अन्तःकरणवृत्ति उपाधिवाले चैतन्य से सुनता है। घ्राण द्वारा निकले हुए अन्तःकरणवृत्ति उपहित चैतन्य से सूँघता है। वागिन्द्रियावच्छिन्न चैतन्य से बोलता है। रसेन्द्रिय द्वारा निकले हुए अन्तःकरणवृत्ति उपहित चैतन्य से चखता है। वही प्रज्ञान चैतन्य ब्रह्म है और वह सबमें समान है। इन्द्रियादि की विकलता या सकलता से दर्शनादि में तारतम्य हो सकता है। परन्तु चैतन्य सबमें समान ही है ऐसी समान दृष्टि रखना ही ज्ञान है। यथा :

बिषय करन सुर जीव समेता। सकल एक ते एक सचेता॥
सबकर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवध पति सोई॥

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू।

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राम मय जानि।
बन्दौं सबके पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥
उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत का सन करहिं बिरोध॥
देस काल दिसि बिदिसहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥
अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम ते प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥

: यह दूसरे प्रश्न का उत्तर हुआ

तात : प्यार का शब्द है। यहाँ छोटे भाई के लिए आया है। भाव यह कि तुमने वैराग्य के विषय में प्रश्न किया है। सो वैराग्य तुम्हें स्वभाव से ही प्राप्त है वनगमन के समय में मैंने स्वयं देख लिया है। यथा :

राम बिलोकि बन्धु कर जोरे। देह गेह सब सन तृन तोरे॥
मातु चरन सिर नाइ चले तुरत संकित हृदय।
वागुर विषम तोराइ मनहु भाग मृग भाग बस॥

अत तुमसे वैराग्य का वर्णन करना केवल कथा को विस्तार देना है। अतः जो वैराग्य से भी साध्य परम वैराग्य है। उसका वर्णन मैं तुमसे करूँगा।

सो परम बिरागी कहिअ . भाव यह कि विषय दो प्रकार का है : एक दृष्ट और दूसरा आनुश्रविक। जो इस लोक मे देखा सुना जाता है वह दृष्ट कहलाता है जैसे शब्द रूपादि। अनुश्रव वेद को कहते है। सो जिसका पता वेद से लगता है उसे आनुश्रविक कहते है। जैसे स्वर्गादि। सो दोनो प्रकार के विषयो के परिणाम विरसत्व के देखने से जिनको इनका लोभ नही रह गया वे इन विषयो के वश्य नही होते। विषय ही उनके वश मे रहते हैं। उनके वैराग्य की वशीकार सज्ञा है। यथा ' यहि तन कर फल बिषय न भाई। सरगहु स्वल्प अन्त दुखदाई। इन विषयविषयक वैराग्यवालो को परम विरागी नही कहते। परम विरागी का लक्षण है '

तृन सम सिद्धि तीन गुन त्यागी ' जिसने अणिमादिक अष्ट सिद्धि तथा सत्त्व, रज और तम का त्याग किया हो वह परम विरागी है। पहला वैराग्य अर्थात् ऊपर कहा हुआ वैराग्य विषयविषयक था। पर परम वैराग्य तो गुण विषयक होता है। गुण विषयक वैराग्य ही सच्चा वैराग्य है। ऐसे वैराग्यवान् को परम विरागी कहना चाहिए। यथा :

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिन'।
रजवर्जं रसोऽप्यस्य पर दृष्ट्वा निवर्तते ॥ गीता २ ५९

बिधि हरिहर तप देखि अपारा। सनु समीप आये बहु बारा॥
माँगहु बर बहु भाँति लोभाए। परम धीर नहिं चलहिं चलाए॥

यहाँ रजोगुण के अधिष्ठाता विधि सत्त्वगुण के अधिष्ठाता हरि और तमोगुण के अधिष्ठाता हर अपने गुण सम्बन्धी सब प्रकार के सुख तथा सिद्धियो का लोभ दिखा रहे हैं। पर परम वैराग्यवान् स्वायम्भू मनु को उन गुणो तथा सिद्धियो की इच्छा नही हुई। यह तीसरे प्रश्न का उत्तर हुआ।

दो माया ईस न आपु कहुँ, जान कहिअ सो जीव।
वध मोच्छ प्रद सर्वपर, माया प्रेरक सीव ॥९.१५॥

अर्थ जो माया, ईश्वर और अपने को न जाने उसे जीव कहा जाता है और जो वन्ध मोक्ष का देनेवाला, सबके परे, माया का प्रेरक है वह शिव है।

व्याख्या माया ईस न आपु कहुँ जान . भाव यह कि माया का ज्ञान . ईश्वर का ज्ञान तथा अपने आत्मा का ज्ञान ऐसा परस्पर सापेक्ष है कि एक के ज्ञान के लिए शेष दो का ज्ञान अनिवार्य है। क्योकि ब्रह्म और जीव मे भेद करनेवाली केवल माया है।

यथा ' ब्रह्म जीव बिच माया जैसी। तथा . मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया। उस माया की स्थिति बडी ही विचित्र है। न वह सत् है न असत् है न सदसत् है। न भिन्न है न अभिन्न है न भिन्नाभिन्न है। न

निरवयव है न सावयव है। वह ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान से हटाई जा सकती है। यथा : कोऊ वह सत्य झूठ कर कोऊ जुगल प्रवल करि मानै। तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै। वह माया जिसकी सत्यता से भासती है उस मायी ईश्वर का विना निरूपण किये माया का निरूपण कैसे होग ? अथवा जिस [1]जीव पर उसका अधिकार है उसका विना निरूपण किये ही माया कैसे जानी जायेगी ? इसी भाँति जिसका अंश [2]जीव है उसी अंशी का विना निरूपण किये अथवा जिस [3]माया ने उस अखण्ड ईश्वर का अंश कल्पित किया है उसका विना निरूपण किये जीव का निरूपण कैसे होगा ? एवं जिसके कारण ईश्वर मायी है और जिसके अंश होने से वह अंशी है उस माया और जीव के निरूपण विना ईश्वर का निरूपण कैसे होगा ? और बिना निरूपण किये ज्ञान कैसे होगा ? अत जिसे एक का सम्यक् ज्ञान नहीं है उसे तीनों का सम्यक् ज्ञान नहीं है। इसीलिए कहा . माया ईस न आपु कहँ जान। जिसे माया, ईश्वर व अपना ज्ञान नहीं है।

कहिअ सो जीव . ऐसे अज्ञानी अथवा अल्पज्ञ को जीव कहते हैं। अर्थात् अज्ञान और अल्पज्ञता ही उसे जीव बनाये हुए है। अज्ञान का हटाना और स्वरूप का ज्ञान एक ही वस्तु है। ज्ञान होते तो वह जीव नहीं रह जाता। वह ब्रह्मपद को [4]प्राप्त हो जाता है। यथा ·

सोइ जानै जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुमहि होइ जाई॥

बन्ध मोच्छप्रद . मिथ्या ज्ञानकृत जो कर्तृत्वाभिमान है उसे बन्ध कहते हैं और तत्त्वज्ञान से जो अज्ञान और उसके कार्य का अभाव होता है उसी को मोक्ष कहते हैं। सो बन्धप्रद ईश्वर है वही कर्मफल दाता है। जीव भी अनादि है और उसके कर्म भी अनादि हैं। ये दोनों बीजाङ्कुर न्याय से सिद्ध हैं। सदा से ही अङ्कुर का कारण बीज और बीज का कारण अङ्कुर होता चला आया है। इसी भाँति

---

१. माया बस मति मंद अभागी। हृदय जवनिका बहु बिधि लागी॥

२ ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥

३ बाधा काटा जिनने उस आदि पुरुष को।
पुरजन ने बाटा शाश्वत जगदीश्वर को॥
उन ब्रह्मविदों का विद्या द्वारा विधि से।
हो मरण पुराहृत ब्रह्मैकत्व हो फिर से॥ प्र. च.।

४ प्राप्त नहीं बाधित नहीं नहीं उदित नहिं अस्त।
क्रम विकास वा लय नहीं नहीं असत नहि सत्त॥
नहीं असत्र नहिं सत्त लोकत्रय बाधित होता।
मेरा सहज प्रकास उदित भासित जब होता॥
बरनै मिश्र बिचारि प्रबोधोदय मैं प्राक्तन।
होगा भूले कभी जीव पदवी अब प्राप्त न॥ प्र. च.।

जन्म का कारण पूर्वार्जित कर्म और उसका भी कारण पूर्वजन्म यह क्रम अनादि काल से चला आता है और ईश्वर भी अनादि काल से तत्तत् कर्मों का फल देता चला आता है। इसी से उसे बन्धप्रद कहते हैं। यथा जेहि बाध्यो सुर असुर नाग मुनि प्रबल कर्म की डोरी। वही ईश्वर मोक्षप्रद भी है। उसी की कृपा से जीव मिथ्या ज्ञानकृत कर्तृत्वादि अभिमान से छूटता है। यथा 'तुलसीदास यह मोह सृखला छुटिहै तुम्हरे छोरे। दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेता तरन्ति ते। भगवान् कहते हैं यह मेरी दैवी गुणमयी माया पार पाने योग्य नही है। जो मेरी शरण मे आते हैं वे ही इस माया को हर सकते हैं।

सर्वपर वही ईश्वर सबके परे हैं। सबका उपादान होने से प्रकृति सबका कारण है। परन्तु ईश्वर उससे भी परे है। यथा

प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी॥
जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा॥
सोइ प्रभु भ्रूबिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित सहाजा॥
जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनि हारे॥

माया प्ररक सीव प्रश्न है कि ईश्वर जीवहि भेद प्रभु सकल कहहु समुझाइ। सो उसका उत्तर देते हुए जीव का लक्षण कहकर शिव अर्थात् ईश्वर का लक्षण कहते हैं। तद्भव रूप से शकार का [1]सकार और ह्रस्व का [2]दीर्घ विकल्प करके होता है। इस भांति शिव का प्राकृत रूप सीव है। शिव नाम ईश्वर का है। विष्णुसहस्रनाम मे भी शिव शम्भु शङ्करादि नाम आये हैं। शिव और राम म अभेद माना गया है। यथा सेवक स्वामि सखा सियजी के। हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के। तथा पूजि पार्थिव नाएउ माथा। लिंग थापि बिधित करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा। कहकर शिवजी को रामजी का आत्मा[3] ही

---

१ शषो स २ ४३ प्राकृतप्रकाशे। सवत्र शकार षकार का सकार होता है।

२ ईत् सिंहजिह्वयोश्च ॥१७॥ चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थ ।
सिंह सीहो जिह्वा जीहा यहाँ इकार का ईकार हुआ।

३ रुद्रस्य परमो विष्णुर्विष्णोश्च परमः शिव ।
एक एव द्विधा भूतो लोके चरति नित्यश ॥
न विना शकर विष्णुन विना केशव शिव ।
तस्मादेकत्वमायातौ रुद्रोपेन्द्रौ तु तौ पुरा ॥ हरिवंशे

अथ रुद्र के बड विष्णु हैं और विष्णु के बड रुद्र हैं। एक ही दो भाग होकर लोक मे विचरते हैं। बिना शंकर के विष्णु नही और बिना केशव के शिव नहीं। इसलिए पहले ही रुद्र और विष्णु एकत्व को प्राप्त हुए।

ये त्वेन विष्णुमव्यक्त मां च देव महेश्वरम्। एकीभावेन पश्यन्ति न तेषां पुनरुद्भव ॥
तस्मादनादिनिधन विष्णुमात्मानमव्ययम्। मामिव सप्रपश्यध्व पूजयध्व तथव च ॥
कूर्म पुराण ईश्वर गीता।

स्वीकार किया है। क्योंकि सबके प्रिय आत्मा ही होता है। अयमात्मा परानन्दः परप्रेमास्पदं यत । तात्पर्य यह कि जीव शिव से वास्तविक भेद नही है। सच्चिदानन्द रूप से जीव और शिव मे अभेद है। पर माया ने कल्पित भेद कर रखा है। व्यवहार काल मे वह भेद सत्य भी है। शिव बन्ध मोक्षप्रद सर्व पर और मायाप्रेरक है एक हैं। जीव बद्ध हैं, अभिमानी हैं, माया के वश में हैं और अनेक हैं। यथा : माया वश परिछिन्न जड जीव कि ईश समान।

ग्यान अखंड एक सीतावर। माया बस्य जीव सचराचर ॥
जौ सबके रह ज्ञान एक रस। ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस ॥
माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुन खानी ॥
परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता ॥
मुधा भेद यद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया ॥

दो० रामचन्द्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान।
ज्ञानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान ॥

यह छठे प्रश्नका उत्तर हुआ।

[1]धर्म ते बिरति जोग ते ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना ॥
जा तें बेगि द्रवउँ मै भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई ॥१॥

अर्थ : धर्म से वैराग्य, वैराग्य से योग और योग से ज्ञान होता है और वेद

अर्थ : जो इन अव्यक्त विष्णु और मुझ देव महेश्वर को एक भाव से देखेगा उसका फिर जन्म नहीं होगा। इसलिए अनादिनिधन विष्णु अव्यय आत्मा को मेरे ऐसा देखो और उसी भाँति पूजा करो।

ये नमस्यन्ति गोविन्दं ते नमस्यन्ति शंकरम्।
येऽर्चयन्ति हरिं भक्त्या तेऽर्चयन्ति वृषध्वजम् ॥
ये द्विषन्ति विरूपाक्षं ते द्विषन्ति जनार्दनम्।
ये रुद्रं नाभिजानन्ति ते न जानन्ति केशवम् ॥

रुद्रहृदय उपनिषद्.

अर्थ : जो गोविन्द को नमस्कार करते हैं वे शंकर को नमस्कार करते हैं। जो हरि की भक्ति पूर्वक पूजा करते हैं वे वृषध्वज की पूजा करते हैं। जो विरूपाक्ष से द्वेष करते हैं वे जनार्दन से द्वेष करते हैं। जो रुद्र को नही जानते वे केशव को भी नहीं जानते। इत्यादि प्रमाणों से शास्त्र भरे पड़े हैं।

१ यहाँ कारणमाला अलङ्कार है।

बखान करता है कि ज्ञान मोक्ष देनेवाला है। जिससे मैं शीघ्र द्रवीभूत होता हूँ। वह तो[1] सब प्रकार के भक्तो को सुख देनेवाली मेरी भक्ति है।

धर्म तें बिरति · जो जगत् की स्थिति का कारण है . धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयति प्रजा। तथा प्राणियो की उन्नति और मोक्ष का हेतु है यतोऽभ्युदय नि श्रेयससिद्धि स धर्म। एव कल्याण का भी ब्राह्मणादि वर्णाश्रमावलम्बियो से जिसका अनुष्ठान किया जाता है चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म। उसे धर्म कहते हैं।

वेद ने दो प्रकार के धर्म बतलाये हैं एक प्रवृत्तिलक्षण और दूसरा निवृत्ति-लक्षण। ज्ञान वैराग्य जिसका लक्षण है उसे निवृत्तिलक्षण धर्म कहते हैं। वह साक्षात् कल्याण का हेतु है। वर्ण और आश्रम को लक्ष्य करके जो सासारिक उन्नति के लिए कहा गया है वह प्रवृत्तिलक्षण धर्म है। वह यद्यपि स्वर्गादि के साधन का हेतु है। फिर भी ईश्वरार्पण बुद्धि से फलकामना रहित होकर किये जाने पर अन्त -करण शुद्धि का कारण होता है। शुद्धान्त करण पुरुष के लिए ज्ञाननिष्ठा की योग्यता प्राप्ति द्वारा ज्ञानोत्पत्ति का कारण होने से वह मोक्ष का हेतु भी होता है। इसी को कर्मयोग भी कहते हैं।

गुरु सुर सत पितर महि देवा। करै सदा नृप सब कै सेवा।।
भूप धरम जे बेद बखाने। सकल करै सादर सुख माने।।
दिन प्रति देइ बिबिध बिधि दाना। सुनै शास्त्र बर बेद पुराना।।
नाना वापी कूप तडागा। सुमन वाटिका सुदर बागा।।
बिप्र भवन सुर भवन सुहाए। सब तीरथन्ह बिचित्र बनाए।।

जहँ लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग।
बार सहस्र सहस्र नृप किये सहित अनुराग।।

हृदय न कछु फल अनुसधाना। भूप बिबेकी परम सुजाना।।
करै जे धरम करम मन बानी। वासुदेव अर्पित नृप ग्यानी।।

इस प्रकार धर्माचरण से वैराग्य होता है। उसकी उत्पत्ति जिस विधि से होती है उसका विशद वर्णन शतपञ्च चौपाई ग्रन्थ मे मिलेगा। उसका सक्षेप इतना ही है कि शास्त्र विधि के अनुसार फल की काक्षा न रखते हुए कर्तव्य बुद्धि से आनन्द

---

१. १. नाम जीह जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरचि प्रपच वियोगी।।
ब्रह्म सुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा।।
२ जाना चहहि गूढ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहिं तेऊ।।
३. साधक नाम जपहिं लय लाये। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाये।।
४. जपहि नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसकट होहि सुखारी।।
राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा।।
५. सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष हृद तिनहुँ किये मन मीन।।

पूर्वक जप, तप, व्रत, यम, नियमादि वेदविहित शुभ धर्मों का आचरण श्रद्धापूर्वक करे और वे भावोपहत[1] न होने पावे। तब परम धर्म अहिंसा का उदय होता है। उसे वशीकृत निर्मल मन द्वारा विश्वास से दृढ करें। उस अहिंसा का योग, विषय-वासना त्याग, क्षमा, तोष और धृति से भी हो। जब ऐसी स्थिति हो जाय तब मुदिता तथा इन्द्रिय दमन पूर्वक सत्योक्ति वेद के अनुसार विचार करे तब निर्मल विराग का उदय होता है। यथा

सात्विक श्रद्धा धेनु सोहाई। जो हरि कृपा हृदयबस आई॥
जप तप व्रत यम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धरम अचारा॥
तेइ तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई॥
नोइ निवृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा॥
परम धरम मय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई॥
तोष मरुत तब छमा जुड़ावै। धृति सम जावन देइ जमावै॥
मुदिता मथै बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी॥
तब मथि काढि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता॥

योग ते ज्ञाना : वैराग्य से सत् लक्ष्य पर चित्त के स्थिर करने के अभ्यास से चित्तवृत्ति का निरोध होता है उसी को योग कहते हैं। योगी का कर्म अशुक्ला कृष्ण होता है। तब ममता मल के दूर होने से वही वैराग्य मे परिणत होता है। वह वैराग्य ज्ञान ही है। यही तत्पद का शोधन है। तत्पश्चात् सबमे ब्रह्मदृष्टि दृढ करे तब जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओ मे से क्रमश: वैषयिक ज्ञान उसके सस्कार और अज्ञान को दूर करे। तब तुरीय अवस्था की प्राप्ति होती है। इसे त्व पद का शोधन कहते हैं। सो त्व पद के लक्ष्यार्थ को तत्पद के लक्ष्यार्थ मे लीन करके सानन्द समाधि मे स्थित हो। वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ दो होते हैं। फल पेड मे होता है। फल शब्द का वाच्यार्थ पेड मे होनेवाली वस्तु विशेष है। परन्तु कर्मफल कहने से फल शब्द का वह अर्थ नही लिया जायगा। इसमे लक्ष्यार्थ लिया जायगा। यहाँ फल का लक्ष्यार्थ है कर्म का परिणाम : नतीजा। इसी भाँति त्व पद का वाच्यार्थ जीव और लक्ष्यार्थ कूटस्थ : तुरीय है एव तत् पद का वाच्यार्थ ईश्वर और लक्ष्यार्थ शुद्ध चेतन ब्रह्म है। यही अपरोक्ष ज्ञान है। यथा :

---

[1] तपो न कल्कोऽध्ययन न कल्क. स्वाभाविको ज्ञानविधिर्न कल्क.।
प्रसह्य वित्ताहरण न कल्क. सर्वाणि भावोपहतानि कल्क॥

अर्थ : तप करना पाप नही हैं। न वेद पढना पाप है। स्वाभाविक ज्ञान की विधि भी पाप नही है। हठ करके धन छीन लेना भी पाप नहीं है। परन्तु भावोपहत होने से सब पाप हो जाते हैं। भाव यह कि दम्भ के लिए तप करना। दूसरे को जीतने के लिए वेद पढना। बुरी नियत से देखना सुनना और धन के मालिक के भले के लिए नहीं केवल अपने स्वार्थ के लिए धन छीन लेना पाप है। क्योकि ऐसा करने में भाव बिगडता है।

दो. जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ॥
तब बिज्ञान निरूपिणी बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिया भरि धरै दृढ़ समता दियटि बनाइ॥
तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास ते काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि॥
एहि बिधि लेसै दीप तेजरासि बिज्ञानमय।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब॥

ज्ञान मोक्ष प्रद : भाव यह है कि तब अखण्ड : सोहमस्मि वृत्ति का उदय होता है। उससे आत्मानुभव सुख होता है। भेद भ्रम जाता रहता है। मोहादि दूर होते हैं। तब चिद् जड़ ग्रन्थि खुल जाती है और जीव का मोक्ष हो जाता है। यही ज्ञानयोग है। यथा :

सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भवमूल भेद भ्रम नासा॥
प्रबल अविद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटै अपारा॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजियारा। उर गृह बैठि ग्रंथि निरु आरा॥
छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई। तौ यह जीव कृतारथ होई॥
जौं निर्बिघ्न पथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद॥

बेद बखाना . वेद ने स्वयं ज्ञान का बखान किया है। यथा ' ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्य पन्था विद्यतेऽयनाय। ज्ञानादेव हि कैवल्यम्। बिना ज्ञान के मुक्ति नही होती। उसे जानने से ही मृत्यु का अतिक्रमण किया जा सकता है। मुक्ति का दूसरा मार्ग नही है। ज्ञान से ही कैवल्य की प्राप्ति होती है। इत्यादि। भाव यह कि मोक्ष का साक्षात् कारण ज्ञान है। यही संक्षेप मे अद्वैतवाद है। अन्य मोक्षप्रद साधन ज्ञान द्वारा ही मोक्ष देते हैं। काशी मोक्ष देती है। क्योंकि ज्ञानखानि है। भक्ति मुक्ति देती है। क्योंकि ज्ञान विज्ञान उसके अधीन हैं। यथा :

मुक्ति जन्म महि जानि ज्ञान खानि अघ हानिकर।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न॥
सो स्वतंत्र अवलम्ब न आना। तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना॥

भाई : यहाँ भाई सम्बाधन का भाव यह है कि तुम हमारे स्वभाव से परिचित हो। यहाँ मै अपना स्वभाव कहता हूँ। अथवा भाई होने से तुम्हारा मेरे मे भाव स्वाभाविक है और प्रेम का ही मार्ग सुलभ और सुखद है। उसी का मैं निरूपण करूँगा। यथा : सुलभ सुखद मारग यह भाई। भक्ति मोर पुरान श्रुति गाई। अतः भाई सम्बोधन दिया। मैं से सगुण ब्रह्म अभिप्रेत है। क्योंकि एकरस निर्विकार निर्गुण ब्रह्म मे द्रवता सम्भव नहीं। और यहाँ उसी का प्रसङ्ग है। सगुण ब्रह्म के

अवतारों में भी रामावतार प्रसक्त है। क्योंकि उसकी विशेषता कही गयी है। अध्यात्म रामायण कहता है 'अवतारा ह्यसङ्ख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः। तेषां सहस्रसदृशो रामो नाम जनैः श्रुतः'। अर्थात् सत्त्वनिधि हरि के बहुत से अवतार हैं। उनमें से जगद् विख्यात रामावतार सहस्रों के समान हैं और विनय में ग्रन्थकार भी कहते हैं कि : एकइ दानि सिरोमनि साँचो। हरिहु और अवतार आपने राखी वेद बड़ाई। लै चिउरा निधि दई सुदामहि जद्यपि बाल मिताई।

जाते वेगि द्रवउँ : भाव यह कि अन्य साधनों से भी मैं द्रवीभूत होता हूँ। परन्तु शीघ्र नहीं। क्योंकि उसमें साधक को अपने बल का भरोसा रहता है। उन्हें भगवान् ने प्रौढ तनय माना है। परन्तु अमानी दास को शिशु बालक सम माना है। जिसे अपना भरोसा कुछ नहीं। सर्वात्मना माँ का भरोसा है। यथा : मोरे प्रौढ तनय सम ज्ञानी। बालक सिसु सम दास अमानी। जनहि मोर बल निज बल ताही। दोउ कहँ काम क्रोध रिपु आही। भगवान् भी वीतचिन्त्य रहते हैं कि यह प्रौढ तनय है। यह काम क्रोधादि शत्रु का सामना कर लेगा। परन्तु अमानी दास की रखवारी करते हैं। यथा 'गहि सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखै जननी अरगाई। अतः मानना पड़ेगा कि भगवान् के शीघ्र द्रवीभूत होने के भी कारण हैं। दूसरी बात यह है कि निर्गुण की उपासना में अधिक क्लेश है। देहाभिमानियों की गति अव्यक्त में बड़ी कठिनता से होती है। सर्व कर्मों का सन्यास करके गुरु के पास जाना और वहाँ वेदान्त वाक्यों का विचार करना और उन विचारों से अनेक प्रकार के भ्रमों को दूर करने में महान् प्रयास करना पड़ता है। सगुणोपासना में कोई प्रतिबन्ध नहीं है। उसे ईश्वर की कृपासे स्वयं तत्त्वज्ञान का उदय होता है और ब्रह्मलोक के ऐश्वर्य को भोगकर कैवल्य प्राप्त करता है। गीता में भगवान् ने कहा है कि हे पार्थ! जो सब कर्मों को मुझे अर्पण करके मुझमें लग जाते हैं और अनन्य योग से मेरा ध्यान करते हुए उपासना करते हैं। ऐसे मुझ में चित्त लगानेवालों को मैं शीघ्र ही संसार सागर से पार कर देता हूँ। ध्यान देने योग्य बात यह है कि कभी वह करुणावरुणालय भक्तों पर द्रवीभूत होकर पूति दुर्गन्धियुक्त संसार में भी अवतीर्ण होता है। कभी राजा बन्दियों पर करुणा करके कारागार के निरीक्षण के लिए वहाँ पदार्पण करता है। यदि कभी ईश्वर अवतीर्ण ही न हो तो उसके होने का प्रमाण ही क्या है? उस अवतीर्ण रूप के भजन की बड़ी महत्ता है। क्योंकि वह अवतार उस विश्व रूप भगवान् की द्रवीभूत मूर्ति है। उसे कृपा करते देर नहीं लगती।

सो मम भगति : भक्ति प्रेम को कहते हैं। वही प्रेम यदि छोटों पर हो तो वात्सल्य कहलाता है। बराबर पर हो तो मैत्री सौहार्द या सख्य कहलाता है। बड़ों के प्रति हो तो भक्ति कहलाता है। वही प्रेम यदि संसारी पुरुषों पर हो तो बन्ध का कारण होता है और वही यदि ईश्वर के चरणों में हो तो भवबन्ध से मुक्ति देता है। यथा :

जननी जनक बन्धु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाध बरि डोरी॥

समदरसी इच्छा कछु नाही। हरख सोक भय नहिं मन माही ॥
अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसै धन जैसे ॥

इसी भक्ति से भगवान् शीघ्र ही द्रवीभूत होते हैं। द्रवीभूत होने का प्रारम्भ जीव के ईश्वर प्रति अनुकूल होते ही हो जाता है। यथा : सम्मुख होइ जीव मोहि जबही। जनम कोटि अघ नासहिं तबही। बिना करुणानिधान के प्रति अनुकूल हुए तो सब साधन ही निष्फल हैं। यथा जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहि राम प्रेम परधानू। निरुपास्ति ज्ञान भी टिकाऊ नही होता। क्योकि भक्ति ही योग और ज्ञान के भी विघ्नो को दूर करनेवाली है। यथा : अत प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्त-रायाभावश्च। यो १ पाद २९ सूत्र। अर्थात् भक्ति से प्रत्यक् चेतना का ज्ञान होता है और विघ्नो का नाश भी होता है। भक्ति के साथ होने से करुणानिधान की करुणा बनी रहती है और उसी से सिद्धि होती है। परन्तु उसमे देर लगती है। क्योकि भक्ति के साथ अन्य साधनो का मिश्रण रहता है। शुद्ध भक्ति होने से भगवान् की पूर्ण करुणा मे देर नही लगती। यथा ·

रामहि केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननि हारा ॥
रीझत राम सनेह निसोते। को जग मंद मलिन मति मोते ॥
जौ पै हरि जन के गुन गहते।
तौ सुरपति कुरुराज बालि सौ, कत हठि बैर बिसहते ॥
जौ जप जाग जोग व्रत बर्जित, केवल प्रेम न चहते ॥
तौ कत सुर मुनि बर बिहाइ, ब्रज गोप गेह बसि रहते ॥

भगत सुखदाई भाव यह कि दु खदाई पदार्थों को हटाकर ही भक्ति भगवती का पादार्पण होता है। जननी जनक बधु सुत दारा। आदि नश्वर पदार्थों मे ममता रहना ही दु खदाई है। सो भक्ति करने मे इनसे मनोवृत्ति को हटाकर तब भगवान् के चरणो मे लगायी जाती है। जब तक इनमे प्रेम है तब तक भक्ति कहाँ ? और जब अविनाशी भगवान् के चरणो मे मन लगा तब सुख ही सुख है। स्वयं भगवती भास्वती भक्ति मे ही ऐसी सामर्थ्य है कि भक्त के सन्निकट विपत्ति को फटकने नही देती। यथा : बचन काय मन मम गति जाही। सपनेहुँ बूझिअ बिपत्ति कि ताही। यदि भक्ति मे त्रुटि है तभी विपत्ति का आगमन होता है। भुसुण्डि ने कहा : देखेउँ करि सब करम गोसाईं। सुखी न भयेउँ अबहिं कि नाईं। भक्ति के सामने दूसरे की कौन कहे स्वयं माया का बल नही चलता। क्योकि भक्ति भगवान् की प्यारी है। यथा :

पुनि रघुबीरहि भगति पियारी। माया खलु नर्तकी बिचारी ॥
भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया ॥

भुसुण्डिजी कहते हैं कि भक्ति छोडकर सुख पाने का दूसरा उपाय नही है। यथा

श्रुति पुरान सब ग्रथ कहाही। रघुपति भगति बिना सुख नाही ॥
कमठ पीठ जामहि बरु बारा। बध्या सुत बरु काहुहि मारा ॥

फूलहिं नभ बरु बहु बिधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला॥
तृषा जाइ बरु मृगजल पाना। बरु जामहिं सस सीस बिषाना॥
अन्धकार बरु रबिहि नसावै। राम बिमुख न जीव सुख पावै॥
हिम ते अनल प्रगट बरु होई। बिमुख राम सुख पाव न कोई॥

इसी से चिद्रूप जीव और अचिद्रूप जगत् दोनो का शरीर माननेवाला विशिष्टाद्वैतवाद, जीव जगत् के सूक्ष्मतत्त्व को ईश्वर मे वर्तमान माननेवाला द्वैताद्वैतवाद, जीव ब्रह्म का सार्वकालिक भेद माननेवाला द्वैतवाद तथा जीव को अग्नि के स्फुलिङ्ग के समान अश माननेवाला शुद्धाद्वैतवाद सभी ने एक मुख से भक्ति को ही साधन माना है। अद्वैतवाद के परमाचार्य शङ्कर भगवान् . सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्। सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो हि न तारङ्गः कहते हैं। अर्थात् भेद चले जाने पर भी हे नाथ ! मैं तुम्हारा हूँ। मेरे तुम नही हो। समुद्र का तरङ्ग होता है तरङ्ग का समुद्र नही होता।

सो सुतंत्र अवलंब न आना। तेहि अधीन ज्ञान बिज्ञाना॥
भगति तात अनुपम सुख मूला। मिलइ जो संत होहिं अनुकूला॥२॥

अर्थ : वह : भक्ति स्वतन्त्र है। उसे : दूसरे का अवलम्बन नही है। ज्ञान विज्ञान उसके अधीन हैं। हे ! तात अनुपम सुख मूल भक्ति यदि सन्त अनुकूल हो तो मिलती है।

व्याख्या : सो सुतन्त्र : जो परमुखापेक्षी न हो वही स्वतन्त्र है। कर्म और ज्ञान स्वतन्त्र नही है। यज्ञ यागादि कर्म मे अधिकार, द्रव्य, विधान, सामर्थ्य, देश, काल आदि का बड़ा बखेड़ा है। उसकी सिद्धि इनके अधीन है। फिर भी यदि उसमे भक्ति का पुट न रहा तो उससे ससार ही दृढ होता चला जाता है। इसीलिए श्रीगोस्वामीजी कहते हैं :

सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न रामपद पंकज भाऊ॥
करतउ सुकृत न पाप सिराही। रक्त बीज इव बाढत जाही॥

ज्ञान भी स्वतन्त्र नही है। ऊपर कह आये हैं कि ज्ञानदीप के प्रज्ज्वलित करने मे तत् पद के और त्वं पद शोधन मे तथा एकीकरण मे कितने साधनो की अनिवार्य आवश्यकता है। सब कुछ होने पर भी आत्मानुभव प्रकाश मे तथा चित् जडग्रन्थि के छोड़ने मे अचिन्त्य बाधायें आ पड़ती हैं। यथा :

छोरत ग्रंथि जानि खगराया। बिघन अनेक करै तब माया॥
रिद्धि सिद्धि प्रेरै बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई॥
कल बल छल करि जाहिं समीपा। अचल बात बुझावहिं दीपा॥
जौं तेहि बुद्धि बिघ्न नहिं बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी॥
इन्द्री द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना॥
आवत देखहिं बिषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी॥

जब सो प्रभंजन उर गृह जाई। तबहिं दीप बिग्यान बुझाई॥
ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा॥
बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि बिधि दीप को बार बहोरी॥

दो तब फिर जीव बिबिध बिधि, पावइ संसृति क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर, तरि न जाइ बिहगेस॥

यदि ज्ञान सिद्ध हो तो भी भक्ति का आदर वहाँ भी अनिवार्य है। नही तो निरुपास्ति ज्ञान से साधक का पतन होता है। यथा : जो ज्ञान मान बिमत्त तव भव हरनि भगति न आदरी। ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी।

अवलम्ब न आना भक्ति के स्वातन्त्र्य का कारण कहते हैं कि उसे दूसरे का अवलम्बन नही है। वह कर्म : यज्ञादि और ज्ञान की मुखापेक्षी नही है। यह बात नही है कि बिना यज्ञ किये भक्ति होती ही नही। यहाँ पर ग्रन्थकार कहते हैं :

कौन धौं सोमयाजी अजामिल अधम। कौन गजराज धौं बाजपेयी। अर्थात् ये आर्त्त भक्त बिना यज्ञयागादि के ही कल्याण भाजन हुए और यह बात भी नही कि बिना ज्ञान के भक्ति न हो। किरातो को कौन बडा ज्ञान था। यथा : किरात बचन प्रभु प्रति

कीन्ह बास भल ठाउ बिचारी। इहाँ सकल रितु रहब सुखारी॥
हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई॥
बन बेहड गिरि कंदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा॥
तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब। सर निर्झर जल ठाँउ देखाउब॥
हम सेवक परिवार समेता। नाथ न सकुचब आयसु देता॥

दो बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुना अयन।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बयन॥

इसलिए भक्ति को स्वतन्त्र कहा है। भक्ति विशेप से चाहे हुए भगवान् भक्त के अभिमुख होते है और इच्छामात्र से उसके अभीष्ट प्रदान पूर्वक उस पर अनुग्रह करते हैं। ईश्वर की इच्छामात्र से उस भक्तयोगी को शीघ्र से शीघ्र समाधि की प्राप्ति होती है और समाधि का फल भी होता है। भगवत्स्मरण से भक्त को रोगादि विघ्न भी नही होते और स्वरूप[१] दर्शन भी उसे होता है। अत भक्ति की उपमा चिन्तामणि से दिया। जिस भाँति चिन्तामणि का प्रकाश स्वाभाविक है। दीप के प्रकाश की भाँति आगन्तुक नही है। उसी भाँति भक्ति मे स्वात्मानुभव प्रकाश स्वाभाविक है।

---

१. प्रणिधानाद् भक्तिविशेपादावर्जित ईश्वरस्तमनुगृह्णात्यभिधानमात्रेण। तदभिध्यानमात्रादपि योगिन आसन्नतम समाधिफल च भवति।

यो मा १.२३

ये तावदन्तराया व्याधिप्रभृतयस्ते तावदीश्वरप्रणिधानान्न भवन्ति। स्वरूपदर्शनमप्यास्य भवति। योग मा १ २९

जिस भाँति चिन्तामणि से सब सुखों का लाभ होता है उसी भाँति भक्ति से भी सर्वाभीष्ट की सिद्धि होती है। अतः भक्ति स्वत सब कुछ करने में समर्थ है। यथा :

राम भगति चिंतामनि सुन्दर। बसइ गरुड जाके उर अंतर॥
परम प्रकाश रूप दिन राती। नहिं कछु चहिय दिया घृत बाती॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥
प्रबल अविद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥
खल कामादि निकट नहिं जाही। बसै भगति जाके उर माही॥
गरल सुधा सम अरि हित होई। तेहि मनि बिन सुख पाव न कोई॥
व्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी॥
राम भगति मनि उर बस जाके। दुख लव लेस न सपनेहुँ ताके॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माही। जे मनि लागि सुजतन कराही॥

तेहि आधीन ज्ञान बिज्ञाना : ऊपर दिखला चुके हैं कि ज्ञान विराग की स्थिति बिना भक्ति के नही होती। श्रीमद् भागवत माहात्म्य में ज्ञान विराग के अधीन होने का बडा सुन्दर उपाख्यान हैं। वृन्दावन मे एक युवती सुन्दरी रुदन करती थी और दो वृद्ध पुरुप मृत्यु शय्या पर पडे ऊर्ध्वश्वास ले रहे थे। नारदजी के पूछने पर मालूम हुआ कि वृद्ध युवती भक्ति है और दोनो चेतना रहित पुरुप ज्ञान विराग उसके पुत्र हैं। वृन्दावन मे आने से भक्ति तो वृद्धा से तरुणी हो गयी। पर उसके पुत्रो का कोई उपकार नही हुआ। अन्त म नारद भगवान् के उद्योग से भागवत की कथा हुई और उससे ज्ञान विराग भी स्वस्थ हो गये। तात्पर्य्य यही है कि भक्ति से ही ज्ञान वैराग्य उत्पन्न हाते हैं तथा उसकी कृपा से स्वास्थ्य लाभ करते हैं। जिसे भक्ति होती है उसे ज्ञान विराग स्वय ही प्राप्त हो जाते हैं। यथा :

सब सुख खानि भगति तै माँगी। नहिं जग कोउ तोहि सम बडभागी॥
जो मुनि कोटि जतन नहिं लहही। जे जप जोग अनल तट दहही॥
रीझेउँ देखि तोरि चतुराई। मागेहु भगति मोहि अति भाई॥
सुनु बिहँग प्रसाद अब मोरे। सब सुभ गुन बसिहहिं उर तोरे॥
भगति ज्ञान बिज्ञान बिरागा। जोग चरित्र रहस्य बिभागा॥
जानब तै सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा॥

तात : प्रश्न हुआ था 'कहहु सो भगति कहहु जेहि दाया। आदेश हो रहा है। जाते बेगि द्रवौं मैं भाई। यहाँ भी प्रश्न से उत्तर मे विशेषता है। अतः प्यार के शब्द : तात से सम्बोधन करते हैं। ऊपर भी ऐसा ही हो चुका है। पूछा था सकल कहहु समुझाई। उत्तर हुआ : थोरेहि मह सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात। प्रश्न विराग के विषय मे हुआ। उत्तर मिला : सुनहु तात सो परम बिरागी। अतः निष्कर्ष यही निकला कि जहाँ प्रश्न से उत्तर मे कुछ विशेष बात प्यार के कारण कहनी है वहाँ तात शब्द से सम्बोधन करते हैं।

भगति अनुपम सुख मूला : भक्ति के तीन विभाग है : १. साधन २. भाव

और ३ प्रेम। जो करने से हो और जिससे उसके कारण नित्य सिद्ध भाव का हृदय मे आविर्भाव हो उसे साधन भक्ति कहते हैं। द्रवीभूत चित्तवृत्ति मे जब राम रङ्ग चढ जाता है तो उसे भाव भक्ति कहते हैं। जब श्रीराम चरण मे क्षण क्षण अविच्छिन्न आसक्ति बढती चले। गुणो की कामना न रहे। ऐसे परमानन्द शान्तिमय अनुभव रूप निरोध को प्रेमा भक्ति कहते हैं। १ साधन भक्ति यथा. भगति के कहौं बखानी। २ भाव भक्ति यथा भये काल बस जब पितु माता। मैं बन गयउँ भजन जन त्राता। ३ प्रेमा भक्ति यथा : अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखहिं तरु ओट लुकाई। जो भगति सदा बनी रहे। जिसमे कभी व्यवधान पडे ही नही। जिसमे अन्तराय का होना सम्भव ही नहीं वही अनुपम है। कर्म तो ऐसा हो नही सकता। क्योंकि उसका स्वरूप ही त्याग ग्रहणात्मक है। ज्ञान भी जीव म एक रस नही रह सकता। यथा जौ सबके रह ज्ञान एक रस। ईश्वर जीवहि भेद कहहु कस। परन्तु भक्ति ऐसी है जिसम अन्तराय सम्भव नही। उसी को अविरल, अनपायिनी, सिद्धा, अनन्या आदि अनेक नामो से कहते हैं। उस पर माया का भी बल नही चलता। अत वह अनूप हैं। सुखमूल है। यथा

राम भगति निरुपम निरुपाधी। बसइ जासु उर सदा अबाधी॥
तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकै कछु निज प्रभुताई॥
अस बिचारि जे मुनि बिज्ञानी। जाचहिं भगति सकलसुख सानी॥

मिलइ भाव यह कि कृपासाध्य है क्रियासाध्य नही। अपने पुरुषार्थ से उसे कोई नही प्राप्त कर सकता। वह भगवान् के अनुग्रह से ही मिलती है। यथा अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुराण जो गाव। जेहि खोजत योगीश मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव। भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपासिन्धु सुखधाम। सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम।

जो सन्त होहिं अनुकूला भाव यह कि प्रभु प्रसाद से ही वह मिलती है। चाहे साक्षात् प्रभु द्वारा मिले। चाहे उनके अपर रूप सन्तो द्वारा मिले। विशुद्ध सन्त का समागम भी बिना प्रभु की कृपा सम्भव नही है। यथा :

सन्त बिसुद्ध मिलहि •परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही॥

जिसके अङ्ग अङ्ग के प्रति वेदा ने लोको की कल्पना की है। उस प्रभु का दर्शन दुर्लभ है। स्वय भगवान् कहते हैं

सुदुर्दर्शमिद रूप दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्य दर्शनकाङ्क्षिण॥
नाह वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवविधो द्रष्टु दृष्टवानसि मा यथा॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवविधोऽर्जुन।
ज्ञातु द्रष्टु च तत्त्वेन प्रवेष्टु च परतप॥

गीता ११ ५२-५४

अर्थात् हे अर्जुन ! तुमने मेरे जिस सुदुर्दर्श रूप का दर्शन किया है उसके दर्शन के लिए देवता भी सदा लालायित रहते हैं। वेद से, तप से, दान से या यज्ञ से कोई मेरा दर्शन इस भाँति नही पा सकता जिस भाँति तुमने पाया है। केवल अनन्य भक्ति से ही भक्त इस प्रकार से जान सकता है देख सकता है और मेरे मे प्रवेश कर सकता है। सो विश्व रूप भगवान् समुद्र हैं। सबकी इन तक गति नही। यह पुरुषार्थ मेघरूपी सन्तो मे ही है कि भगवान् की ही मङ्गलमयी मधुर मनोहर मूर्ति भक्ति को लाकर मिला दे। आनन्दकन्द भगवान् चन्दन के वृक्ष हैं। पर सर्पादि विघ्नबाहुल्य से कोई चन्दन वृक्ष तक जा नही सकता। पर यह सामर्थ्य सन्तरूपी मरुत् मे ही है कि उसकी आनन्दमयी विभूति भक्ति को लाकर पुरुषार्थहीन प्राणी से मिला दे। इसलिए कहते हैं मिलै जो सन्त होहि अनुकूला। यथा

मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा॥
रामसिन्धु घन सज्जन धीरा। चदन तरु हरि सत समीरा॥
सब कर फल हरि भगति सोहाई। सो बिनु सत न काहू पाई॥
अस बिचारि जोइ कर सतसगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहगा॥

यह पाँचवें प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ। अब प्रथम प्रश्न का उत्तर कहते हैं।

भक्तियोग साधना

भगति के साधन कहहुँ बखानी। सुगम पथ मोहि पावहि प्रानी॥
प्रथमहि बिप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती॥३॥

अर्थ भक्ति के साधनो को बखान करके कहता हूँ। इस सुगम पन्थसे मुझे प्राणी प्राप्त होते हैं। पहिले ही विप्र के चरणो मे अति प्रीति हो और वैदिक रीति से अपने अपने कर्म मे निरत लगे हो। ७ २० बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।

व्याख्या भगति के साधन अबिरल भक्ति का प्रसङ्ग समाप्त हुआ। अब जो पहले प्रश्न किया था मोहि समुझाइ कहौ सो देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा। उसका आरम्भ होता है। भाव यह कि जिस साधन से सुख सम्पत्ति परिवार और बडाई आदि का परित्याग करके सेवकाई म जीव प्रवृत्त होता है उसका वर्णन किया जा रहा है। वे ही भक्ति क साधन हैं। ईश्वर के अस्तित्व का ज्ञान मनुष्य मे स्वाभाविक है। वह छोटे छोटे बच्चा म भी पाया जाता है। निरीश्वरवाद अस्वाभाविक है। बडी कठिनता से गले उतरता है। फिर भी ईश्वर नही है ऐसा अभ्रान्त ज्ञान तो किसी को होता ही नही। उसके बिना जाने भी ईश्वर के अस्तित्व की धारणा छिपी छिपायी कही न कही उसके हृदय म पडी ही रहती है। तब ईश्वर की प्राप्ति के लिय प्रयत्न करना उसके लिए स्वाभाविक है। फिर भी मनुष्य जो ईश्वर की भक्ति नही करता उसका कारण यह है कि सुख सम्पत्ति परिवार

बडाई इत्यादि उसके बाधक हैं। इन बाधको को दूर करने से हृदय में स्वत भक्ति का सञ्चार हो उठता है। यथा :

सुख सम्पति परिवार बडाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई॥
ये सब राम भगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक॥
अब प्रभु कृपा कहहु एहि भाँति। सब तजि भजनु करउँ दिन राती॥

कहहुँ बखानी. भाव यह कि समझाकर कहता हूँ। क्योकि प्रार्थना ही ऐसी है : मोहि समुझाइ कहौं सोइ देवा। साधन के वर्णन मे कुछ विस्तार करना ही पडता है। साधन अनेक होते हैं और उनके पूर्वापर का क्रम होता है। उनमें उलट फेर होने से सिद्धि मे कठिनाई होती है और ठीक क्रम से चलने मे सुगमता होती है और सिद्धि भी शीघ्र होती है। दूसरी बात यह कि ज्ञानपन्थ की भाँति यह अकथ कहानी नही है। जो न समझते ही बने न बखानते ही बने। यथा : सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनै न जात बखानी।

सुगम पंथ : जिस मार्ग से चलने मे विघ्नबाधा न हो। आयास न हो। वही सुगम पंथ है। इस पंथ पर चलनेवाली की रखवारी स्वय भगवान् करते हैं। अतः उसे विघ्नबाधा दबा नही सकती और उसमे योग जप तप व्रत उपवासादि कष्टकर अनुष्ठान नही है। आप से आप समाधि सिद्ध होती है। भक्ति योग के पथिक को भगवान् के सहारे से पार का प्राप्त करना कठिन नही होता है। यथा :

ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥
कहत कठिन समुझत कठिन साधन कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय ज्यौं पुनि प्रत्यूह अनेक॥
सीम कि चापि सकै कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥
कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा॥
सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी। सहज बिमल मन लागि समाधी॥

मोहि पावहिं प्रानी एक व्यापक अविनाशी अविकारी सच्चिदानन्दघन ब्रह्म सबके हृदय मे विद्यमान है पर उसकी प्राप्ति तो नही होती। यदि प्राप्ति होती तो जीव दीन दुखारी नही होते। काष्ठ मे अग्नि तो अव्यक्तरूप से व्याप्त है पर मन से काष्ठ और अग्नि को पृथक् करने से अग्नि की प्राप्ति नही होती। उसकी प्राप्ति तब होगी जब यत्न से उस अव्यक्त अग्नि को व्यक्तरूप मे लाया जाय। इसी भाँति अव्यक्त ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है। स्वय हृदय मे विराजमान है पर प्राप्ति उसकी नही होती। जब भक्ति द्वारा उसे व्यक्तरूप . सगुणरूप मे लाया जाय तब उसकी प्राप्ति होती है। हीरे मे मूल्य है पर हीरे से स्वय तो कोई काम नही चलता। जब यत्न किया जाय और उसके कुव्यक्त मूल्य को व्यक्तरूप मे लाया तब उससे काम चल सकता है। यथा .

सहे सुरन्ह बहुकाल बिषादा। नरहरि किये प्रगट प्रहलादू॥
एक दारुगत देखिय एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू॥
नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रकटत जिमि मोल रतन तें॥

प्रथमहि ' भाव यह कि भक्ति पथ पर पैर रखनेवाल को पहिले साधन भक्ति को अङ्गीकार करना पडता है। प्रथमहिं कहकर यह दिखलाया कि यहाँ जो कुछ कहा जायगा उसमे क्रम है। दूसरा तीसरा कहकर स्पष्ट न गिनाने पर भी क्रम समझ लेना चाहिए।

विप्र चरन अति प्रीति विप्र वेदपाठी ब्राह्मण को कहते हैं। ब्राह्मण मे यदि ब्राह्मणोचित गुण न हो तो भी उसका कर्मठ होना अनिवार्य है। वेद विहीन ब्राह्मण शोच्य हो जाता है। अत गोस्वामीजी ने विप्र शब्द का अधिक प्रयोग किया है। ब्राह्मण शब्द का अति विरल प्रयोग है। सो पहला साधन यह है कि विप्र के चरण मे अति प्रीति हो। क्योकि द्विज सेवकाई हरि तोषण व्रत है। विप्र के पूजित होने से भगवान् तुष्ट होते हैं। इसीलिए ये महिदेव कहलाते हैं।

अति प्रीति कहने का भाव यह कि उनसे शापित ताडित तथा अपमानित होने पर भी क्रोध न करे। उनकी पूजा ही करे। क्याकि शील गुणहीन ब्राह्मण के भी पूजन का विधान है। गुण ज्ञान प्रवीण शूद्र के पूजन का विधान नही है। पूर्व जन्म के [१]कर्मों से ही जाति आयु और भोग की प्राप्ति होती है। जो रमणीयाचरण है उनको रमणीय योनि की प्राप्त होती है वे ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य होते हैं और जो कपूयाचरण है उनको कपूय योनि की प्राप्ति होती है वे चाण्डाल योनि या कुत्ते की योनि को प्राप्त होते हैं। अत शील गुण रहित विप्र की पूजा वस्तुत उसके पूर्व जन्म के रमणीयाचरण की पूजा है। जिसके विपाक से उसे ब्राह्मण शरीर मिला है और गुण ज्ञान प्रवीण शूद्र की अपूज्यता उसके पूर्व जन्म के कपूयाचरण का परिचायक रूप है। इस जन्म का रमणीयाचरण अभी परिपक्व नही हुआ है। आगामी जन्म मे उसके आयु और जाति व भोग का कारण होगा। यथा

सुनु गन्धर्व कहौं मैं तोही। मोहि न सोहाय ब्रह्मकुल द्रोही॥
दो मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताके सब देव॥
सापत ताडत परुष कहता। बिप्र पूज्य अस गावहि संता॥
पूजिअ बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुनगन ग्यान प्रबीना॥

अत जिस भाँति अश्वत्थ तुलसी आदि स्वय अपने कल्याण सम्पादन मे असमर्थ हैं। पर उनके पूजको का कल्याण होता है। उसी भाँति शील गुण हीन विप्र अपना कल्याण करने मे असमर्थ हैं। पर उनके पूजक का कल्याण होता है।

निज निज कर्म निरत अपने वर्ण और अपने आश्रम के कर्म मे लगा रहे। भाव यह कि शोक मोहादि दोषा से जिनका चित्त घिरा हुआ है ऐसे सभी प्राणियो से स्वधर्म का त्याग और निषिद्ध धर्म का सेवन स्वाभाविक ही होता है तथा च "सर्वप्राणिना शोकमोहादि दोषाविष्टचेतसा स्वभावत एव स्वधर्मपरित्याग प्रतिषिद्ध

१ सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगा । पा० यो० सू०

सेवा च स्यात् । शा० भा० जैसे अर्जुन पहले स्वय ही क्षात्रधर्म रूप युद्ध मे प्रवृत्त हुआ था। तब भी शोक मोह द्वारा विवेक ज्ञान के दब जाने से उस युद्ध से उपरत हुआ और दूसरो का धर्म भिक्षाचरण मे प्रवृत्त होने लगा। अत ब्राह्मण मे जो अन्य जाति के कर्म करने की प्रवृत्ति देखी जाती है या हीन जाति मे जो उच्च जाति के कर्म करने की प्रवृत्ति देखी जाती है। इसी भाँति सन्यस्त मे जो गृहस्थ धर्म की प्रवृत्ति तथा गृहस्थ मे सन्यास धर्म की प्रवृत्ति है। उसका कारण शोक मोहादि से विवेक विज्ञान का दब जाना ही है। दूसरी बात यह है कि जिनका सम्बन्ध ब्राह्मणो से टूट जाता है। उनसे वर्णाश्रम धर्म का निर्वाह किसी भाँति सम्भव नही। मनु भगवान् ने स्पष्ट लिखा है कि यही के क्षत्रिय जो बाहर जाकर बसे। वे ब्राह्मणो से असम्बद्ध होने के कारण वर्णाश्रम धर्म से पतित होकर यवन, म्लेच्छ, पुल्कस, किरातादि अवस्था को प्राप्त हो गये हैं। स्वधर्मत्याग से मनुष्य पतित हो जाता है। यथा

विप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ वृषली स्वामी॥
सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना॥
गुन मन्दिर सुन्दर पति त्यागी। भजहिं नारि नर पर पुरुष अभागी॥
सौभागिनी बिभूषन हीना। बिधवन्ह के सिंगार नवीना॥
तपसी धनवत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही॥

इत्यादि।

श्रुति रीति भाव यह कि वेद की रीति से जिसका जो कर्म है वही करे। दूसरा न करे। अदृष्टार्थ का ज्ञान वेद तथा तच्चरणाश्रित शास्त्रो से ही हो सकता है। ईश्वर स्वर्ग या धर्म को किसी ने देखा नही। इनका ज्ञान अन्य किसी प्रमाणो से नही हो सकता। अचिन्त्या खलु ये भावा न तास्तर्केण योजयेत्। जो भाव अचिन्त्य हैं उन सब मे तर्क को स्थान नही देना चाहिए। अत धर्म कैसे पालन करना चाहिए इसे श्रुति ही बतला सकती है। लाखो मनुष्यो के एक स्वर के चिल्लाने से भी न कोई वस्तु पुण्य हो सकती है न पाप हो सकती है। करोडो आदमियो के एक साथ आवाज उठाने पर भी न शीशा हीरा हो सकता है और न हीरा शीशा हो सकता। इसका विवेक तो पारखी जौहरी ही कर सकता है। अत कल्पित आचार न करे। जो कर्म एक के लिए धर्म है वही दूसरे के लिए अधर्म हो जाता है। इसलिए कार्याकार्य की व्यवस्था मे शास्त्र ही प्रमाण है। शास्त्र विधान को जानकर ही कर्म करना चाहिए। तस्माच्छास्त्र प्रमाण ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्त कर्म कर्तुमिहार्हसि। गीता १६ २४। य शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारत। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुख न परा गतिम्। गीता १६ २३। जो शास्त्र विधि को छोडकर अपने मन का करते हैं उन्हे न तो सिद्धि मिलती है न सुख मिलता है। न उनको परा गति की प्राप्ति हाती है। श्रुतिरीति कर्म करने की यह है कि शास्त्रविहित कर्म को सग रहित होकर बिना रागद्वेष के फल की इच्छा न रखते हुए करे। तात्पर्यार्थ यह कि अपनी स्वाभाविकी प्रवृत्ति

को शास्त्रीया बनावे और उसे ऐसा दृढ बनावे कि उसके त्याग में उतनी ही कठिनता मालूम पड़े जितनी कि पहिले स्वाभाविकी प्रवृत्ति के त्याग में मालूम पड़ी थी। यथा :

सिवि दधीच हरिचंद नरेसा। सहे धरमहित कोटि कलेसा॥
रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरम धरेउ सहि संकट नाना॥
मैं सोइ धर्म सुलभ करि पावा। तजें तिहूँ पुर अपजस छावा॥
संभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू॥

एहि कर फल पुनि विषय विरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा॥
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाही। मम लीला रति अति मन माहीं॥४॥

अर्थ : इसका फल फिर विषय विराग है। तब मेरे धर्म में अनुराग उत्पन्न होता है। तब श्रवणादिक नव भक्तियां दृढ़ होती हैं और मन मे मेरी लीला की अत्यन्त प्रीति होती है।

एहि कर फल पुनि : भाव यह कि कार्यकारण शृंखला चल रही है। विप्रचरण प्रीति का फल श्रुतिरीति से स्वधर्माचरण। अब उसका फल कहते हैं। इसलिए पुनि शब्द का प्रयोग किया है।

विषय विरागा : अर्थात् वशीकार संज्ञा वैराग्य प्राप्त होता है। जिसका वर्णन पहले किया है जा चुका है। भाव यह कि शास्त्रीया प्रवृत्ति दृढ होने से ही वस्तु विचार का उदय होता है। तब विषय के दोष परिणाम विरसत्वादि दिखायी पड़ने लगते हैं। बिना दोष दर्शन के वैराग्य नही होता।

तुरत विरत होके रोक के इन्द्रियों को
स्मरण मनन से भी नारि के जी हटाऊँ।
सुरत विरसता को देह बीभत्सता को
प्रति दिन जिय सोचूँ काम यों नसाऊँ॥

कमलदल से सूक्ष्म चर्म विरचि यदि मढ़ता नही।
मांस के इस पिंड को त्वक् खोल में धरता नहीं॥
गृद्ध काक शृगाल लोहु मांस के भक्षक सदा।
टूटते इस देह पर मिलते कहाँ रक्षक तदा॥
कभी नही उपकार करेंगे किया नही करते।
पुत्र किसी के भी क्या तेरे सुखद नहीं होते॥
उनका विरह मर्मभेदी दुःख है नाहक उनके।
लिये बहुत सा मेहनत करना कष्ट बहुत सह के॥
ब्रह्मा इन्द्र मुनीस सागर मही मन्वादि दीर्घायु हैं।
वे भी लाख करोड़ होकर मरे ये जीव अल्पायु हैं॥

वो है मोह अहो प्रकाश करता जो शोक का लोक मे।
वुद्वुद से तनके लिये मिलन है जो पाँच का पाँच मे॥

प्रबोध चन्द्रोदय

वैराग्योदय की आवश्यकता दोनो मार्गो मे अनिवार्य है। धर्म ते विरति ज्ञानयोग प्रकरण मे कहा गया है और यहाँ भी वही वात कही जा रही है। पर इसके वाद की प्रक्रिया म भेद है। ज्ञानमार्गी वैराग्योदय के बाद योग द्वारा 'तत् त्व पद शोधन करके सोहमस्मि वृत्ति से आत्मानुभव करते हुए चिज्जड ग्रन्थि को सुलझाकर मोक्ष लाभ करते है। पर सगुणोपासक यह रास्ता नही पकडते। वे मोक्ष नही चाहते। उन्हे सिद्धा भक्ति चाहिए। यथा

सगुन उपासक मोक्ष न लेही। तिन कहँ राम भगति निज देही॥
साधन सिद्धि राम पद नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू॥

तब मम धर्म श्री रामजी कहते हैं कि मेरा धर्म उनके धर्मों का पता उनके गुण श्रवण से ही लग सकता है। अत उनके गुणगणो का श्रवण ही भगवद्धर्म है। यथा भगवद्धर्मश्च भगवद्गुणश्रवण न तु धर्मवुद्धया तदनुष्ठानपर्यन्त विवक्षितम्। भक्तिरसायने। अर्थ भगवद्धर्म भगवद्गुण श्रवण हैं। यहाँ धर्म बुद्धि से उसके अनुष्ठान तक की विवक्षा नही हैं। यथा तस्मात् केनाप्युपायेन मन कृष्णे निवेशयेत्। यहाँ केनाप्युपायेन का तात्पर्य यही है कि चाहे धर्मबुद्धि से अनुष्ठान करके चाहे न करके अर्थात् भगवद् गुण श्रवण से मन को भगवच्चरणो मे लगावे। अत कहते हैं

उपज अनुरागा भाव यह कि जव तक वैराग्य का उदय नही हुआ था तव तक तो विषय मे अनुराग था। मन सदा विषय के धर्मो म ही आसक्त रहता था और जब विषय से विराग हुआ तो स्वभाव से ही भगवान् की ओर जायगा। उनके करुणा भक्तवत्सलतादि गुणो पर अनुरक्त होगा यहाँ से भाव भक्ति का प्रारम्भ हुआ। यथा

समुझि समुझि गुनग्राम राम के उर अनुराग वढाउ।
मन मेरे मानै सिख मेरी। जौ निज भगति चहै हरि केरी॥
उर आनहि प्रभुकृत हित जेते। सेवहि ते जे अपन पौ चेते॥
दियो सुकुल जनम सरीर सुदर हेतु जो फल चारि को।
जो पाइ पडित परम पद पावत पुरारि मुरारि को॥
यह भरत खड समीप सुरसरि थल भलो सगति भली॥
तेरी कुमति कायर कलपवल्ली चहत विषफल फली॥

इत्यादि।

श्रवणादिक नव भक्ति १ श्रवणम् २ कीर्तन विष्णो ३ स्मरणम् ४ पाद सेवनम् ५ अर्चन ६ वन्दन ७ दास्य ८ सख्यम् ९ आत्मनिवेदनम्। ये ही श्रवणादिक नव भक्ति हैं।

१. श्रवण : १. नाम २. चरित्र ३. गुणादि के सुनने को श्रवण कहते हैं।
१. नाम श्रवण यथा : वेगि विलम्ब न कीजिये लीजिय उपदेस।
महाँ मंत्र जपिये सोई जेहि जपत महेस ॥
२. चरित्र श्रवण यथा : लागी सुनै श्रवन मन लाई।
आदिहि ते सब कथा सुनाई ॥
आसा वसन व्यसन येह तिन्हही।
रघुपति चरित होइ तह सुनही ॥
३ गुण कीर्तन, यथा : सुनत फिरौ हरिगुन अनुवादा।
अव्याहत गति संभु प्रसादा ॥
२. कीर्तन : १. नाम २ लीला और ३ गुणादि के गान को कीर्तन कहते हैं।
१. नाम कीर्तन यथा : राम नाम महिमा सुर कहहीं।
सुनि सुनि अवध लोग सुख लहही ॥
२. लीला कीर्तन यथा : बर तर कह हरि कथा प्रसंगा।
आवँहि सुनहि अनेक बिहंगा ॥
३ स्मरण : जिस किसी भाँति मन द्वारा सम्बन्ध को स्मरण कहते हैं। यह इतना बड़ा प्रबल साधन है कि इसके प्रभाव से भगवद्विरोधियों का भी उद्धार हो जाता है। यथा : उमा राम मृदु चित करुनाकर। बैर भाव सुमिरत मोहि निसिचर। देहिं परम गति अस जिय जानी। अस कृपालु को कहहु भवानी। तथा तुलसी अपने राम को रीझि भजै चह खीझ। खेत परे ते जामिहैं उलटो सीधो बीज। स्मरण यथा :

सुमिरत हरिहि साप गति बाधी। सहज विमल मन लागि समाधी ॥
सुमिरत रामहिं तजहिं जन तृन सम बिषय बिलासु।
राम प्रिया जग जननि सिय कछु न आचरज तासु ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखेउ रामू ॥ इत्यादि।

४. पाद सेवन : चरणों की पूजा सेवा। कुछ भक्त ऐसे हैं जो केवल चरणों का ही ध्यान पूजन करते हैं। कोई ऐसे हैं जो चरण चिह्नों का ही ध्यान पूजन किया करते है। यथा :

कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदय नहिं दूजा ॥
आगे परा गीध पति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा ॥

५. अर्चन : शुद्धि न्यासादि पूर्वाङ्ग निर्वाह पूर्वक उपचारों द्वारा मन्त्रों से पूजन को अर्चन कहते हैं। यथा :

तब मुनि हृदय धीर धरि, गहि पद बारहि बार।
निज आश्रम प्रभु आनि करि, पूजा बिबिध प्रकार ॥

६. वंदन : दण्डवत् प्रणाम यथा : सष्टत् प्रणाम किये अपनाए।
मंगल मूल प्रणाम जासु जग मूल अमंगल को खनै। विनय,

पुनि मन वचन करम रघुनायक । चरन कमल बदौं सब लायक ॥
मो ते होइ न प्रति उपकारा । बदौं तव पद बारबारा ॥

७ दास्य मैं ईश्वर का किङ्कर हूँ ऐसे अभिमान को दास्य कहते हैं । यथा
अस अभिमान जाइ जनि भोरे । मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥
मोर दास कहाइ नर आसा । करै तौ कहुँ कहाँ बिस्वासा ॥

८ सख्य सख्य के दो भेद हैं विश्वास और २ मित्रवृत्ति ।
१ विश्वास यथा है तुलसी के एक गुन अवगुन निधि कहै लोग ।
भलो भरोसो रावरो राम रीझिबे जोग ॥
२ मित्रवृत्ति तुलसी कहीहैं साँची रेख बार बार खाँची ।
ढील किये नाम महिमा की नाव बोरिहौं ॥ विनय

९ आत्म निवेदन आत्मा शब्द का दो अर्थ पण्डितो ने माना है । एक तो अहन्तास्पद देही और दूसरा ममतास्पद देह ।
देही यथा अब मैं जन्म सभ हित हारा । को गुन दोप न करै बिचारा ॥
देह यथा । हृदय घाउ मेरे पीर रघुबीरै ।
पाइ सजोवन जागि कहत यौं प्रेम पुलकि बिसराय सरीरै ॥
मोहि कहा बूझत पुनि पुनि जैसे पाठ अरथ चरचा कीरै ॥
सोभा सुख छति लाभ भूप कहँ केवल काति मोल हीरै ॥
तुलसी सुनि सौमित्रि वचन सब धरि न सकत धीरौ धीरैं ॥
उपमा राम लखन की प्रीति की क्यों दीजै खीरैं नीरैं ॥

दृढाही भाव यह है कि श्रवणादिक नव भक्तियो का कर्तव्य रूप से शास्त्रो मे वर्णन है । अत इनकी गिनती साधन भक्ति म है । साधक इनका आचरण स्वधर्मानुष्ठान समझकर करता आ रहा था । परन्तु अनुराग के बिना ये दृढमूलक नही हो पाती थी । अब प्रभु के धर्मो मे अनुराग उत्पन्न हो जाने से दृढमूलक हो गयी ।

मम लीला रति लीला का अर्थ चरित्र है । भगवान् आप्तकाम हैं । अत किसी प्रयोजन का उद्देश्य रखकर उनकी प्रवृत्ति नही होती । उनका चरित्र उनकी लीला है । परन्तु उनके चरित्र का कथन और श्रवण का उपयोग नवधा भक्ति के कीर्तन और श्रवण प्रकरण मे कहा जा चुका है । अत यहाँ पर लीला से उनके चरित्र के अनुकरण से तात्पर्य है । यथा खेलौ तहाँ बालकन्ह मीला । करौ सकल रघुनायक लीला । श्रीमद्भागवत म भी प्रमाधिक्य से गोपियो द्वारा भगवान् के चरित्र के अनुकरण का वर्णन है । यथा लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिका । अत यहाँ मम लीला का अर्थ हुआ रामलीला ।

लीला और नाटक बहुत अशो म समान होने पर भी एक वस्तु नही है । इन दोनो मे उतना ही भेद है जितना कि बाजार म रखी हुई मूर्ति और स्थापित मूर्ति म भेद होता है । लीला उपासना की दृष्टि से की जाती है । उसम मुकुट पूजा

होती है । ब्राह्मण के बच्चो का श्रीराम लक्ष्मण के रूप मे वरण होता है । और जब तक उनके सिर पर मुकुट रहता है तब तक उनकी पूजा प्रतिष्ठा भगवद्विग्रह के समान ही होती है । आज भी श्रीगोस्वामीजी के मन्दिर भदैनी काशी मे प्रतिवर्ष रामलीला होती है । इससे पता चलता है कि ग्रन्थकार का लीला के प्रति कितना अनुराग था । लीला से उपासको को असाधारण लाभ होता है । भक्तिरस के आविर्भाव के लिए तथा रस के अंकुरित होने के लिए श्रीरामलीला वर्षाऋतु है । आलम्बन उद्दीपनादि सभी सामग्री रामलीला से सुलभ हो जाती हैं ।

अति मन माही . भक्तो की रामलीला मे बडी प्रीति रहती है । बडा उत्साह रहता है । जिस मधुर मूर्ति की झाँकी श्रीरामलीला मे हो जाती है उसका दृढमूलक छाप हृदय मे बैठ जाता है । परम्परा के अनुसार श्रीरामलीला वर्ष मे एक बार आश्विन मास मे होती है । परन्तु उसकी प्रीति मन मे बराबर बनी रहती है और उन दिनो के लिए चित्त सदा लालायित रहता है जब कि लीला प्रारम्भ होती है । सुना जाता है कि ग्रन्थकार को श्रीअवध मे रामलीला के ब्याज से ही भगवद्दर्शन हुआ था । परतन्त्रता के दिनो मे स्वातन्त्र्य की भावना की बड़ी भारी रक्षा श्रीरामलीला से हुई और आज भी धार्मिक भावो का प्रभाव जैसा जनता पर पडता है वैसा अन्य उपायो से सम्भव नही । हताश हृदयो मे आशा लता को प्राण प्रदान तो रामलीला ही करती है ।

संत चरन पंकज अति प्रेमा । मन क्रम बचन भजन दृढ नेमा ॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा । सब मोहि कहँ जानै दृढ सेवा ॥५॥

अर्थ : संत चरन पंकज से अत्यन्त प्रीति होती है । मनसा वाचा कर्मणा मेरा भजन दृढ नियम से : होता है । गुरु पिता बन्धु पति और देवता सब कुछ मुझी को दृढ सेवावाला जानता है ।

संत चरन पंकज अति प्रेमा : जब लीला द्वारा साधक प्रत्यक्ष देखता है कि सन्तो के परित्राण के लिए ही प्रभु अवतार धारण करते हैं । सन्तो के मिलने की इच्छा के सामने उन्हे राज्य तिलक फीका मालूम पडता है : वनवास श्रेयस्कर बोध होता है । जब लीला मे प्रभु को सन्तचरणो मे अवनत होते देखते हैं तब सन्तचरण पङ्कज से अति प्रेम न होना आश्चर्य है । जब श्रीमुख से सन्तो की स्तुति सुनते हैं तब उनके प्रति साधक का अत्यन्त अनुराग बढता है । यथा :

सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ । जिन्ह ते मैं उनके बस रहऊँ ॥
षट् विकार जित अनघ अकामा । अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ॥
अमितबोध अनीह मित भोगी । सत्य सार कवि कोबिद जोगी ॥
सावधान मानद मद हीना । धीर धर्म गति परम प्रबीना ॥
दो० गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह ।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह ॥ इत्यादि ।

मुनि सुनु साधुन के गुन जे ते । कहि न सकहिं सारदश्रुति ते ते ॥
छ कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पकज गहे ।
अस दीनबन्धु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे ॥

परन्तु ऐसे सन्त महात्मा की पहिचान अत्यन्त कठिन है। बिना सन्तो के ससार चल नही सकता। वे सबको सब देशो मे सुलभ हैं। परन्तु विषयी जीव को उनकी पहिचान नही। अत उनकी प्राप्ति नही होती। उनकी प्राप्ति के लिए पुण्यपुञ्ज चाहिए। भगवान् की कृपा चाहिए। यथा

पुन्य पुज बिनु मिलहि न सता। सत सगति ससृति कर अता ॥
पुन्य एक जग महु नहि दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा ॥
सत बिसुद्ध मिलहि परि तेही। चितवहि राम कृपा करि जेही ॥

भगवान् भाववश्य हैं। इसलिए भाव भक्ति करनेवाले पर हरिकृपा होती है। उन्हें सन्त मिलते हैं और उनसे उनको भक्ति चिन्तामणि की प्राप्ति होती है। यथा

भाववस्य भगवान सुख निधान करुणा अयन।
तजि ईर्ष्या मदमान भजिय सदा सीता रमन ॥

मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा ॥
राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चदन तरु हरि सत समीरा ॥
सबकर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु सत न काहू पाई ॥
अस बिचारि जोइ कर सतसगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहगा ॥

मन क्रम बचन भजन दृढ नेमा भाव यह कि पहले उसे श्रवणादिक नव भक्ति दृढ हुई थी। अब सन्तो के प्रसाद से मनसा वाचा कर्मणा दृढ नियम के साथ भजन प्रारम्भ हुआ। राम भगति के बाधको की ओर से वृत्ति फिर गयी। यथा :

जरउ सो सपति सदन सुख सुहृद मातु पितु भाइ ॥
सनमुख होत जो रामपद कर इन कोटि सहाय ॥

मन क्रम बचन रामपद सेवक। सपनेहुँ आन भरोस न देवक ॥

अब साधक महात्मा पद को प्राप्त हुआ। जो मन मे हो वही वाणी मे हो। वही कर्म से हो। यह लक्षण महात्मा का है और मन मे दूसरी बात हो वाणी से कोई दूसरी बात कहे और कर्म उन दोनो से पृथक् ही कुछ करे यह दुरात्माका लक्षण है। मनस्येक वचस्येक कर्मण्येक महात्मनाम्। मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम्। वाणी से भजन करना और मन दूसरी ओर रहे अथवा कर्म से भजन करना वाणी से कुछ दूसरी बातें करते रहना तथा मन से अन्य विषयो का ध्यान करते रहना यथार्थ भजन नही है। मन मे भी भगवान् हो वाणी से भी उनकी स्तुति हो कर्म से उनकी परिचर्या होती रहे तब उस भजन का मन वच कर्म से भजन कहेगे।

दूसरी बात यह है भोजन की भाँति भजन भी हित है। अत इसे नित्य नियम के साथ प्रीतिपूर्वक करना चाहिए। अन्यथा भजन का ठीक प्रभाव नही पडता। यथा

भोजन करिय तृपिति हित लागी । जिमि सो असन पचव जठरागी ॥
असि हरि भगति सुगम सुखदाई । को अस मूढ़ न जाहि सोहाई ॥

गुरु पितु मातु : जिनके लिए स्वयं श्रुति भगवती कहती हैं मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । माता पिता आचार्य ये तीनों ही देव हैं । ये ही तीनो अग्नियाँ हैं । इन्ही की सेवा से लोक परलोक बनता है । इनकी आज्ञापालन मे यदि बुरे रास्ते पर चलना पडे तो भी अकल्याण नही होता । यथा :

गुरु पितु मातु स्वामि सिख पाले । चलेहुँ कुमग पग परहिं न खाले ॥

बन्धु पति देवा : बन्धु जो आडे समय मे काम आते हैं । यथा :

होहिं कुठाँय सुबंधु सहायें । ओड़िअहिं हाथ असनिहुँ के घाये ॥

पति का अर्थ स्वामी है । जिसका सब भाँति छल छोडकर सेवा का विधान है । यथा : भानु पीठि सेइअ उर आगी । स्वामिहि सर्व भाव छल त्यागी । देवता इष्ट फल देनेवाले हैं । यथा : इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः । तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः । गीतायाम् ३ १२.

यहाँ पर छ. को गिनाया है । और भी जितने प्रेम के पात्र हैं उन सबको भी समझ लेना ।

सब मो कह जानै . भाव यह कि सबकी ओर से ममता हटाकर श्रीरामजी से प्रीति करे । श्रीरामजी को ही माता पिता गुरु बन्धु स्वामी और देवता माने । अर्थात् माहात्म्य-ज्ञान युक्त सुदृढ और सबसे अधिक स्नेह हो । यथा :

राम मातु पितु बन्धु सुजन गुरु पूज्य परम हित ।
साहेब सखा सहाय नेह नाते पुनीत चित ॥
देस कोस कुल कर्म धर्म धन धाम धरनि गति ।
जाति पाँति सब भाँति लागि रामहि हमारि मति ॥
परमारथ स्वारथ सुजस सुलभ राम ते सकल फल ।
कह तुलसीदास अब जब कबहुँ एक राम त मोर भल ॥

दृढ सेवा : अर्थात् जिस साधक की सेवा दृढ हो गयी है । भाव यह कि जिसके लिए ऊपर लिख आये हैं : मन क्रम वचन भजन दृढ़ नेमा । दृढ सेवावाला भक्त सब नाता : सम्बन्ध जोडने मे समर्थ हो सकता है ।

मम गुन गावत पुलक सरीरा । गद्गद गिरा नयन बह नीरा ॥
काम आदि मद दंभ न जाके । तात निरन्तर बस मै ताके ॥६॥

अर्थ : मेरे गुणो का गान करते हुए जिसके शरीर मे रोमाञ्च हो जाय । गला भर उठे । आँखो से अश्रु की धारा बहे और काम आदि मद दम्भ जिसे न हो । हे तात ! मै उसके वश मे रहता हूँ ।

मम गुन गावत : भाव यह कि तब उस भक्ति की श्रीहरि मे अविच्छिन्न मनोगति हो जाती है । उन्ही का गुण बराबर गान किया करता है । उन्ही की

मूर्ति का ध्यान किया करता है। दूसरी कोई बात उसे अच्छी नही लगती और श्रीहरि को भी भक्तो का गान परम प्रिय है। उन्ही का वचन है नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न हि। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद। मैं न तो वैकुण्ठ म बसता हूँ और न योगियो के हृदय म वसता हूँ। हे नारद! जहाँ मेर भक्त गान करते हैं मैं वही रहता हूँ। इसकी कोई आवश्यकता नही कि वह गान स्वरताल युक्त मीठा हो। यह अभिप्राय होता तो कहते गायका यत्र गायन्ति। पर ऐसा नही कहते। अत भक्ता का गान उन्हे प्रिय है। चाहे वह सगीत दृष्टि से कैसा ही हो।

पुलक सरीरा गद्गद गिरा नयन बह नीरा शरीर म रोमाञ्च होना गला भर आना आखो से आँसू की धारा चलना। ये सब प्रेम म डूबाडूब होने के लक्षण है। यहाँ पर भक्तो के गानप्रिय होने का कारण कहते हैं। भक्त प्रम मे डूबाडूब है। वह प्रम मे मग्न होकर गान करता है। उसे लय स्वर ताल का पता नही। श्रीहरि ऐसे ही गान पर रीझ जाते है। भीतर के प्रेम के बाहरी लक्षण— पुलक शरीर गद्गद और नयन नीर हैं। यथा

कछु ह्वै न आई गयो जन्म जाय।
अति दुलभ तनु पाइ कपट तजि। भजे न राम मन वचन काय॥
रामविमुख सुख लह्यो न सपनेहुँ निसिवासर तयो तिहुँ ताय॥
सेये नहि सीतापति सेवक साधु सुमति भली भगति भाय॥
सुने न पुलकि तन कहे न मुदित मन किये जे चरित रघुवस राय॥

काम आदि मद दभ न जाके काम क्रोध मोह लोभ मद दभ आदि दुरभिसन्धि हैं। जो किसी कामना से गान करता हो वह भक्त हो अर्थार्थी भक्त हो पर प्रमा भक्ति उसे नही है। जो मदसे गान करता हो कि मै सगीत शास्त्र का आचार्य हूँ अथवा मुझसे गानेवाल दुलभ है उसे भी भगवद् गुणगान का कुछ फल तो होता ही है। पर प्रमभक्तिसे उसका कोई सम्बन्ध नही। अथवा जो लोभ से गान करता है कि गान करने से मुझे कुछ मिलगा या जो दम्भ से गान करता है कि लोग मुझे भक्त कहेगे उनका गान वैसा नही चाहे वह कितना ही लय सुर तानसे ठीक हो जो भगवान् को रिझा सके। अत गान सभी अभिसन्धियो से रहित होना चाहिए। यथा प्रम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअन्तर मल कबहुँ कि जाई।

तात प्रश्न है मोहि समुझाइ कह सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा। और उत्तर हो रहा है तात निरतर बस मै ताक। यहाँ भी उत्तर प्रश्न से कही अधिक विशेषता रखता है। इसलिए फिर तात सम्बोधन देते है।

निरतर बस मैं ताके श्रीमद्भागवत मे दुर्वासा से स्वय भगवान् ने कहा है कि हे ब्राह्मण! मै भक्त के पराधीन हू। एक प्रकार से अस्वतन्त्र हूँ। अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज। सो भगवान् ही भक्त के पराधीन रहते हैं। यथा

मनोगतिरविच्छिन्ना हरौ प्रेमपरिप्लुता । अभिसन्धिविनिर्मुक्ता भक्तिर्विष्णुवशंकरी । पञ्चरात्रे,

श्रीहरि मे अविच्छिन्न और अभिसन्धि रहित प्रेमपरिप्लुता मनोगति का होना ऐसी भक्ति है जो हरि को वश मे रखती है।

दो. वचन कर्म मन मोरि गति, भजनु करहि निहकाम।
तिन्हके हृदय कमल महुँ, करौ सदा बिस्राम ॥१६.१०॥

अर्थ : जिन्हे मनसा वाचा कर्मणा मेरी ही गति है और निष्काम भजन करते हैं उनके हृदय कमल में मैं सदा विश्राम करता हूँ।

व्याख्या : वचन कर्म मन मोरि गति : जिन्हे मनसा वाचा कर्मणा श्रीराम की ही गति है दूसरा चारा नही वे ही जागते सोते भगवान् की शरण मे रहते हैं। दूसरे से बोलना भी पडा तो सत्य प्रिय और विचारकर हित की बात बोलते हैं। उन्ही को दु ख सुख प्रशसा और गारी समान होती है। वे सबके हितकारी और सबके प्रिय होते हैं। यथा :

सबके प्रिय सबके हितकारी। दु ख सुख सरिस प्रसमा गारी ॥
कहहि सत्य प्रिय बचन विचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
तुम्हहि छाड़ि गति दूसर नाही। राम बसहु तिन्हके मन माही ॥

भजन करहि निहकाम : वे ही भक्त निष्काम भजन कर सकते हैं जिन्हे न तो परमार्थ की कामना है न गूढ गति जानना चाहते हैं। न उन्हें अणिमादिक सिद्धि चाहिए और न किसी सङ्कट से विनिर्मुक्ति चाहते हैं। यथा :

सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष हृद तिनहु किये मन मीन ॥

तिनके हृदय कमल महँ : भाव यह कि उन्ही के हृदय की शोभा है। इससे कमल को उपमा दी है। भ्रमर को भी उस कमल को छोड़ : दूसरि गति नही। वही हृदय ऐसा है जहाँ भगवान् सगुण रूप से रहते हैं। निर्गुण रूप से तो उनका निवास सभी हृदयो मे है। यथा :

व्यापक एक ब्रह्म अविनासी। सत चेतन घन आँनद रासी ॥
अस प्रभु हृदय अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी ॥

करहुँ सदा बिश्राम : जिनके हृदय में कुछ और कामनाएँ हैं उनके हृदय मे सगुण रूप से प्रकट होने पर भी श्री हरि विश्राम नही कर पाते। उसकी रुचि रखने के लिए सतत चञ्चल रहना पडता है। यथा . राम सदा सेवक रुचि राखी। वेद पुरान साधु सुर साखी। पर प्रेमाभक्तिवाले निष्काम भजन करते हैं। अत: भगवान् को विश्राम उन्ही के हृदयमे मिलता है। उस प्रेमाभक्ति के भी चौदह भेद श्रीवाल्मीकिजी ने कथन किया है। यथा :

१ जिन्हके श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हरि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिनके हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥
२ लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाखे॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी॥
तिन्हकें हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक॥
३ जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हिअँ तासु॥
४ प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा॥
तुम्हहि निवेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं॥
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी॥
कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदय नहिं दूजा॥
चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्हके मन माहीं॥
५ मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा॥
तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना॥
तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी॥

दो० सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ।
तिन्ह कें मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ॥

६ काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्हकें कपट दंभ नहिं माया। तिन्हकें हृदय बसहु रघुराया॥
७ सबके प्रिय सबके हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥
तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्हके मन माहीं॥
८ जननी सम जानहिं परनारी। धनु पराव बिष तें बिष भारी॥
जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी॥
जिन्हहि राम तुम्ह प्रानपिआरे। तिन्हके मन सुभ सदन तुम्हारे॥
९ स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह कें बसहु सीय सहित दोउ भ्रात॥
१० अवगुन तजि सब के गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका॥
११ गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥
१२ जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई॥
१३ सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना॥
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि कें उर डेरा॥

१४ जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम सन सहज सनेहु।
वसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेहु॥

भगति जोग मुनि अति सुख पावा। लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा॥

अर्थ : भक्तियोग सुनकर लछिमन को बड़ा सुख मिला। उन्होंने प्रभु चरणों में नमस्कार किया।

व्याख्या : भक्तियोग भक्ति के साधन कहहु बखानी से लेकर तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा तक भक्तियोग है। भक्तियोग सब योगों में उत्तम है। स्वयं भगवान् ने कहा है योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना। श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः। सभी योगियों में जो मुझमें मन लगाकर श्रद्धा पूर्वक मेरा भजन करता है वह सबसे बड़ा योगी है।

सुनि अति सुख पावा भाव यह कि कर्मयोग और ज्ञानयोग सुनकर सुख मिला। पर भक्तियोग सुनकर अति सुख मिला। प्रभु मुख की वाणी सुनने से सकल भ्रम की हानि होती है। अतः भक्तियोग के अभ्रान्त ज्ञान से परम सुख की प्राप्ति हुई।

लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा इसमें शिष्य की कृतकृत्यता कहा। मैं पूछौं निज प्रभु की नाईं से उपक्रम करके प्रभु चरनन्हि सिर नावा से उपसंहार करते हैं।

एहि विधि गये कछुक दिन बीती। कहत बिराग ग्यान गुन नीती॥१॥

अर्थ : इस प्रकार वैराग्य ज्ञान, गुण और नीति कहते हुए कुछ दिन बीत गये।

व्याख्या : इस भाँति कहते सुनते कुछ दिन बीत गये। भाव यह कि अवधि का समय बहुत बीत गया। अब थोड़ा ही शेष है। उसमें भी कुछ दिन कथा कहते सुनते बीता। ये कथाएँ वैराग्य, ज्ञान, गुण और नीति विषयक थीं। नीति में धर्मार्थ काम का सामञ्जस्य बिठाना होता है। सरकार का स्वभाव है कि भाइयों को शिक्षा दिया करते हैं। यथा राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती।

३५ सूर्पणखा विरूप करण प्रसङ्ग

सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जसि अहिनी॥
पंचवटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा॥२॥

अर्थ : सूर्पणखा नाम की रावण की बहन थी। जो नागिन जैसी भयानक और दुष्ट हृदय थी। वह एक बार पञ्चवटी गयी। दोनों कुमारों को देखकर विकल हो गयी।

व्याख्या सूपनखा जिमि कीन्हि कुरूपा प्रकरण आरम्भ हुआ। जैसे रावण

जगत् के रूलानेवाले थे वैसे ही उन्हे बहन विधाता ने दी थी। रावण के नाम से परिचय देकर उसका वैधव्य भी सूचित किया। जैसा रावण दुष्ट हृदय और सर्प की भाँति दारुण था। यथा जस पावन रावन नाग महा। उसी भाँति उसकी बहन भी साँपिन थी। रावण की बहिनी कहकर उसका प्रताप भी कहा। किसकी सामर्थ्य जो उसके प्रतिकूल आचरण करे। अहि से अहिनी अधिक दारुण होती है। रावण को दस सिर थे उसे दस नख सूप के से थे।

वह कुलटा थी। घूमा करती थी। एक बार पञ्चवटी पहुँच गयी। मुनिजी के मन्त्र के साफल्य का समय आ पहुँचा। मुनिजी ने कहा था है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पचवटी तेहि नाऊँ। बास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया। तदनुसार सरकार पञ्चवटी मे बसे। वहाँ सूर्पणखा पहुँची। पादचिह्न की शोभा पर मोहित होकर अन्वेषण करती हुई राम लक्ष्मण के पास तक पहुँच गयी। दोनो भाई यद्यपि मुनिवेष मे हैं पर हैं राजकुमार। वह कुलटा दोनो भाइयों पर मोहित हो गयी। अति कामासक्त होने से विकल हो गयी। उसने दोनो कुमारो को देखा। दोनो कुमारो ने उसे नही देखा।

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी ॥
होइ बिकल सक मनहिं न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी ॥३॥

अर्थ हे गरुडजी ! स्त्री मनोहर पुरुष को देखकर चाहे वह भाई, पिता, पुत्र ही क्यो न हो विकल हो जाती है। मन को रोक नही सकती। जैसे सूर्यकान्त मणि सूर्य को देखकर द्रवीभूत हो जाता है।

व्याख्या समान वयस्को म भ्राता, ज्येष्ठो मे पिता और कनिष्ठो मे पुत्र को भी देखकर विकल हो जाती हैं। उन्हे सम्बन्ध का भी विचार नही रह जाता। इनकी मनोहरता पर राक्षसी नारी आसक्त हो जाती हैं। यह नियम पतिव्रताओ पर लागू नही है। यथा ' उत्तम के अस बस मन माही। सपनेहु आन पुरुष जग नाही। इत्यादि।

ऐसी राक्षसी नारियो को सम्बन्ध या वय का भी विचार नही होता। वे रूपमात्र देखती हैं। अग्निस्राव हो सूर्यकान्तमणि का द्रवीभूत होना है। उसी भाँति उनके मन मे कामाग्नि प्रकट हो जाती है। स्त्री जाति सुलभ मान से अपने को रोकना भी चाहती हैं पर रोक नही सकती। सुवेष पुरुष दृष्ट्वा भ्रातर यदि वा सुतम्। योनि क्लिद्यति नारीणा सत्यं सत्य हि नारद। इसी बात को बडी पण्डिताई से गोस्वामीजी कह गये।

रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई ॥
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँजोग बिधि रचा बिचारी ॥४॥

अर्थ सुन्दर रूप धारण करके प्रभु के पास जाकर बहुत मुसकुराकर वचन

बोली। न तुम्हारे सा पुरुष है न मेरे समान स्त्री है। यह सयोग ब्रह्मदेव ने विचारकर रचा है।

व्याख्या सूर्पणखा महाविकट रूप स्थूलोदरी करालास्या थी। उसने माया से अपना सुन्दर रूप बनाया। जानती थी कि स्वाभाविक रूप से काम बिगड जायगा। ऐसा रूप बनाऊँ कि य मुझ पर मोहित हो जायँ करहि उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहि करि माया। सूर्पणखा मोहित तो दोनो भाइयो पर हुई थी। किन्तु प्रभु जानकर रामजी के पास गयी। स्वय दूती बनकर आयी। शृङ्गार का प्रस्ताव स्वय उसे ही करना ह। अत माया फैलाती हुई मुसकुराकर बोली। भाव यह कि स्मितपूर्वाभिभाषिणीवाली मुसकुराहट नही थी।

उसका कहना यह था कि तुम और मैं दोनो अप्रतिम सुन्दर हैं। सीता मुझ सी सुन्दरी नही है। यह तुम्हारे जोड की नही है। तुम्हारा इसका सयोग दैवत् हो गया। तुम्हारा और मरा सयोग ब्रह्मदेव ने विचारकर रचा है। जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेहि स्यामल वर रचेउ विचारी ऐसा जनकपुर म स्त्रियो ने कहा था। वही भाव लिये सूर्पणखा अपने को कह रही है।

मम अनुरूप पुरुष जग माही। देखेउँ खोजि लोक तिहुँ नाही ॥
ताते अब लगि रहिउँ कुमारी। मनु माना कछु तुम्हहि निहारी ॥५॥

अर्थ मेरे जोड का पुरुष ससार म नही है। मैंने तीना लोक खोजकर देख लिया। इसलिए अबतक कुमारी ही रह गयी। तुम्हे देखकर कुछ मन आकर्षित हुआ।

व्याख्या अनुरूप वर मिलने की इच्छा कन्या के लिए स्वाभाविक है। सूर्पणखा कहती है कि मेरे अनुरूप तो वर ही ससार म नही है। मैं तीनो लोक मे खोजकर देख चुकी। इससे स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि यह तीनो लोक मे अपने लिए पुरुष खोजती फिरती है। इसका भाइ रण मदमत्त होकर तीनो लोक मे फिरता है। उसे प्रतिभट नही मिलता रन मदमत्त फिरै जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा। और यह कामोन्मत्त होकर तीनो लोका म पुरुष खोजती फिरती है। पर कोई अनुरूप नही मिलता। जनकपुर की स्त्रियाँ परदे म रहनेवाली थी। अत वे बिचारी कहती हैं सोभा अस कहुँ सुनियत नाही। वे देखना नही कहती। यह देखना कहती है। अत इसका कुलटा होना ध्वनित है।

सूपणखा पूण युवती है। विवाह के काल का अतिक्रमण किये हुए है। ऐसी अवस्था मे रामजी को उसके परपूर्वा होने का सन्देह न उठे। इसलिए इतने वर्ष तक कुमारी रहने का कारण बतलाती है कि किसी को देखकर मन ही नही माना। विवाह कैसे करे। अत आज तक कुमारी ही हूँ। इस भाँति अपना स्वातन्त्र्य भी द्योतन किया। फिर भी स्त्री गुण सुलभ मान को कुछ बचाए हुए है। कहती है कि तुम्ह देखकर कुछ मन माना। पूरी तरह नही। अपने मन मे यह न समझना कि मैं बडा सुन्दर हूँ। मैं तुमसे अधिक सुन्दरी हूँ। परन्तु जब कही मन नही मानता

तो जहाँ थोड़ा भी मानता है उसी में सन्तोष करना चाहिए। भाव यह कि लङ्का मे स्त्री पुरुष के संयोग मे मन मानना ही कारण है। किसी धर्म बन्धन या समाज बन्धन की आवश्यकता नहीं होती।

सीतहिं चितइ कही प्रभु बाता। अहै कुँआर मोर लघु भ्राता॥
गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी। प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी॥६॥

अर्थ : सीताजी की ओर देखकर प्रभु ने यह बात कही कि मेरा छोटा भाई कुँआर है। लक्ष्मणजी के पास गयी। उन्होने शत्रु की बहन जानकर प्रभु को देखकर कोमल वाणी में कहा।

व्याख्या : सीताजी की ओर देखने का भाव यह कि मेरे तो स्त्री है। मेरा भाई कुमार है। यहाँ पर शङ्का होती कि लक्ष्मणजी का विवाह हो चुका था। उन्हे कुमार कहने से तो मिथ्या भाषण हो जायगा। उत्तर यह है गो ब्राह्मणहिंसायां वृत्त्यर्थे प्राणसङ्कटे स्त्रीषु नर्मविवादेषु नानृतं स्याद् जुगुप्सितम्। यहाँ स्पष्ट नर्मविवाद है। सूर्पणखा अपने को कुमारी बतला रही है। प्रभु ने नर्मविवाद मे भी मिथ्या को स्थान न मिले इसलिए लक्ष्मण को कुमार कह रहे हैं। राजा के बेटे कुमार कहलाते हैं। चाहे विवाह हुआ हो चाहे न हुआ हो। यथा . देखि बिकल भई जुगल कुमारा। यहाँ रामजी को भी कुमार ही राजपुत्र होने से कहा गया। यहाँ सरकार का लक्ष्मणजी को कुमार कहना परिहास में भी सत्य की रक्षा का अद्भुत उदाहरण है। सीताजी की ओर देखकर सूर्पणखा को उत्तर देने के अनेक कारण हैं। पहिले तो यह कि उसने कहा था : यह सयोग बिधि रचा बिचारी। उसके उत्तर मे सीताजी की ओर देखते हैं कि सयोग जो होना था हो गया। मै सस्त्रीक हूँ। दूसरा भाव यह कि रघुवशी के मन और दृष्टि को पराई स्त्री नही पाती। सूर्पणखा विद्युज्जिह्व की विधवा है। अतः इसकी ओर दृष्टि न देकर बातचीत के समय सीताजी की ओर देखते हैं। तीसरे यह कि दूसरी ओर देखकर बात करना अनादर सूचक है। चौथे यह कि इधर देखो : रुचिर रूप धारण करने पर भी ऐसी न बन सकी। मन माना कछु तुमहि निहारी : का उत्तर देते हुए कहते है : अहै कुमार मोर लघु भ्राता। वह भी मेरे सा ही है। उसे देखकर तुम्हारा मन मान जायगा : तुम अहिनी हो। यथा : दुष्ट हृदय दारुन जिमि अहिनी और वह तो साक्षात् अहीश है। यथा ' जो सहससीस अहीस महि धर लखन सचराचर धनी।

सूर्पणखा राक्षसी थी परिहास नही समझ सकी। वह तो दोनो मूर्तियो पर आसक्त थी। नही बड़े छोटे ही सही। अतः वह लक्ष्मणजी के पास तुरन्त पहुँची और सब बात कहा। लक्ष्मणजी की दृष्टि को उसकी माया आवृत न कर सकी। उन्होने जान लिया कि यह शत्रु : रावण की बहन है। यह लक्ष्मणजी का ऐश्वर्य है कि सूर्पणखा को देखकर उसे रावण की बहन उसके वेष बदलने पर भी पहिचान लिया। परन्तु अभी तो सीताहरण हुआ नही। रावण शत्रु कैसे हो गया? इसका उत्तर यह है कि रावण अधर्म मे निरत था और भूतद्रोही था। इसलिए वह परम

शत्रु था। यथा : यस्त्वधर्मेषु निरतः सर्वलोकविरोधकृत्। त रिपुं परमं विद्यात् शास्त्राणामेष निर्णयः। नारद पुराणे। सरकार का रुख देखने के लिए उनकी ओर देखते हैं। रुख देखकर समझ गये कि परिहास चलने देना चाहते हैं। अतः उससे कोमल वाणी बोले।

सुंदरि सुनु मै उनकर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा ॥
प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा। जो कछु करहिं उनहिं सब छाजा ॥७॥

अर्थ : हे सुन्दरी! सुनो मैं तो उनका दास हूँ। पराधीन हूँ। यहाँ तेरा सुभीता नही। वे प्रभु हैं। समर्थ हैं। कोसलपुर के राजा हैं। वे जो कुछ करें सभी शोभा देता है।

व्याख्या : पहिले ही सुन्दरि सम्बोधन करते हैं। भाव यह कि तुम सुन्दरी हो प्रत्याख्यान योग्य नही हो। पर करूँ क्या, मै तो उसका दास हूँ : जिनके पास से तुम लौटी आती हो। तुम सुन्दरी हो। रानी होने लायक हो। दासी बनना क्यो चाहती हो। भोग विलास के लिए स्वतन्त्र पुरुष चाहिए। मैं पराधीन हूँ और : पराधीन सपनेहु सुख नाही। जिसे सपने मे भी सुख नही वह तुम्हे सुख कहाँ से देगा।

रामजी की ओर देखकर ही बोल रहे हैं। ये भी पराई स्त्री की ओर दृष्टिपात नही करना चाहते। कहते हैं कि मै दास हूँ और वे मेरे प्रभु हैं। एक रानी होने से क्या हुआ ? वे समर्थ हैं। चाहे सो रानी ब्याहे। इनके पिता को तीन पटरानी और सात सौ रानियाँ थी, तुम दूसरी पटरानी होकर रहोगी। अतः उन्हे सात सौ ब्याह भी फबता है। दास एक स्त्री को सँभाल नही सकता। इसलिए बिना स्त्री का हूँ।

सेवक सुख चह मान भिखारी। ब्यसनी धनु सुभ गति बिभिचारी ॥
लोभी जसु चह चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी ॥८॥

अर्थ : सेवक सुख चाहे, भिखारी मान चाहे, व्यसनी धन चाहे, व्यभिचारी शुभगति चाहे, लोभी यश चाहे, संशयी चार चाहे। ये प्राणी आकाश का दोहन करके दूध चाहते है।

व्याख्या : सब धर्मो से सेवक धर्म कठोर है। अतः सेवक को अपने सुख की आशा ही न करना चाहिए। इसी भाँति भिखारी मान की आशा ही न करे। जिसे कुछ भी मान होगा वह भीख कैसे माँगेगा ? लोलुप भ्रमत गृह पशु ज्यों जहँ तहँ सिरपद त्रान बजै : ऐसा पुरुष मान की आशा कैसे करेगा। व्यसन में धन का दुष्प्रयोग होता है। व्यसनी धन खोनेवाला है। अत. उसे धनी होने की आशा छोड़ देनी चाहिए। परतियगामी को निश्चय नरक होता है। यथा : सुभ गति पाव कि परतियगामी। उसे शुभगति की आशा करनी व्यर्थ है। लोभी का प्रात काल कोई नाम नही लेता। उसका यश कैसा होगा। यह तो उदार के हिस्से की चीज है। उसके लिए लोभी की आशा झूठी है। सशयी को दोनो लोक

मे से किसी मे सुख नही। नाय लोकोस्ति न परो न सुख सशयात्मन । गी ।
अर्थात् चारो फल मे किसी की प्राप्ति नही हो सकती। यहाँ गुमान शब्द का अर्थ सशय है। यथा तुलसी जु पै गुमान को होतो कछू उपायु। तौ कि जानकिहि जानि जियँ परिहरते रघुराउ। अत संशयी को चारो फल की आशा निराशा ही है। चार से चार फल अभिप्रेत है। जैसे सोरह से सोलह शृङ्गार का ग्रहण होता है। यथा नव सप्त साजे सुदरी सब मत्त करिवर गामिनी।

अथवा गुमानी शब्द का अर्थ अभिमानी और चार शब्द का अर्थ दूत किया जाय। भाव यह कि दूत चाहे कि मेरा अभिमान अक्षुण्ण रहे यह भी असम्भव है। जब कि हनुमान्जी ऐसे दूत को कहना पडा मोहि न कछु बाधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा। निर्गलितार्थ यह है कि इन छवो की आशाएँ झूठी हैं।

पुनि फिरि राम निकट सो आई। प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई॥
लछिमन कहा तोहि सो बरई। जो तृन तोरि लाज परिहरई॥९॥

अर्थ वह लौटकर फिर रामजी के पास आयी। प्रभु ने फिर उसे लक्ष्मणजी के पास भेज दिया। लक्ष्मणजी ने कहा कि वही वरेगा जिसने लज्जा को तृण के समान तोडकर फेंक दिया हो।

व्याख्या सूर्पणखा लक्ष्मणजी के पास से फिरी कि ठीक है। दास से सुख न मिलेगा। मेरा रानी होना ही ठीक है। भाई लङ्केश्वर है मैं कोसलेश्वरी बनूँगी। ऐसा सोचकर सरकार के पास गयी। तब उन्होने समझाया कि रानी को सापत्न्य दु ख सहना ही पडता है। लक्ष्मण वैसा दास नही है। वह मेरा छोटा भाई है। वही कर्ता धर्ता है। वह कुमार रहे मैं दो दो व्याह कर लूँ। यह नही हो सकता। सूर्पणखा ने समझा कि ठीक है। इनसे तो व्याह तो हो जाय। स्वय मुझको ही क्या घाटा है। मैं इन्हे लेकर लङ्का चली जाऊँगी।

यह सब सोचकर वह लक्ष्मणजी के पास आयी कि क्या हुआ मुझे दासी रहना स्वीकार है। तब लक्ष्मणजी ने कहा तू बेहया है। जो बेहया हो वह तुझसे व्याह करे। इस प्रकार तू कामातुर हो गयी है कि हम दोनो भाइयो म से किसी पर तेरी स्थिरता नही। बडे को चाहकर छोटे को चाह और छोटे को चाहकर बडे को चाहते तुझे लाज न आयी। मुझे तो अब तुझे उनके पास भेजने म भी लज्जा आती है। इस भाँति कोरा जवाब लछिमनजी की ओर से मिल गया।

तब खिसिआनि राम पहिं गई। रूपु भयकर प्रगटत भई॥
सीतहि सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सयन बुझाई॥१०॥

अर्थ तब खिसियाई हुई रामजी के पास गयी। और अपना भयङ्कर रूप प्रकट किया। सीताजी को डरी हुई देखकर रामजी ने छोटे भाई को इशारे से कहा।

व्याख्या : कोरा जवाव पाकर खिसियाई कि रामजी ने जो इनके पास भेजा इसका अभिप्राय यह था कि मैं वेहया प्रमाणित हो जाऊँ। रामजी ने मेरी दुर्गति की। दोनों में से कोई मुझे व्याहना नहीं चाहता। ये मजाक कर रहे हैं। आगे कहेगी भी : तासु अनुज काट्यो श्रुति नासा। सुनि तव भगिनि करी परिहासा। अतः साम से काम न चलेगा। तब भयङ्कर रूप धारण करके सीताजी को खाने दौड़ी की यह मेरे मार्ग में कंटक है।

सीताजी को सभय देखकर रामजी ने छोटे भाई को इशारा कर दिया। ऋग् यजु साम अथर्व कहकर उँगली से आकाश को काटा। भाव यह कि श्रुति और नाक काट दो। ऋगादि श्रुति है और श्रुति कान को कहते हैं। आकाश का नाम नाक है और प्राकृत में नासिका को नाक कहते हैं। यथा : वेदनाम कहि अंगुरिन्ह खडि अकास। पाठयो सूपनखाहि लखन के पास।

दो. लछिमन अति लाघव सो, नाक कान बिनु कीन्ह।
ताके कर रावन कहुँ, मनो चुनौती दीन्हि ॥१७.११॥

अर्थ : लक्ष्मणजी ने बड़ी फुर्ती से उसे बिना नाक कान की कर दिया। मानो उसके हाथ से रावण को चुनौती दे दी।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने ऐसी फुर्ती की कि वह जान न पायी कि कब लक्ष्मणजी आये और कब शस्त्र चलाया। वह नाक पर हाथ न रख सकी : यथा : अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा। दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि धनु नभ मंडल सम भयऊ। लेत उठावत खैंचत गाढे। काहु न लखा देख सब ठाढे। यह सूर्पणखा का नाक काटना मानो रावण को चुनौती दी गयी कि तुम्हारे वहन का नाक कान मैंने काटा जो करना हो सो करो।

यह कर्म लक्ष्मणजी का इन्द्र से भी अशक्य था। किसकी सामर्थ्य जो रावण के जीते सूर्पणखा की नाक काटे। नाक कान काटना कवि ने नहीं कहा। क्योंकि काटते किसी ने देखा नहीं एकाएक बिना नाक कान की हो गयी। इससे अनुमान हुआ कि नाक कान काटा गया। रावण की वहन है। इसलिए रावण को चुनौती लक्ष्मणजी ने दी।

३६. खरदूषण वध प्रसंग

नाक कान बिनु भइ बिकरारा। जनु स्रव सैल गेरु कै धारा॥
खरदूपन पहिं गइ बिलपाता। धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता॥१॥

अर्थ : विना नाक कान के विकराल हो गयी। मानो पर्वत से गेरु की धारा वह रही हो। विलाप करती हुई खरदूषण के पास गयी, बोली भाई ! तेरे पौरुष और बल को धिक्कार है।

व्याख्या नाक ही मुख की शोभा है। सो नाक कान दोनो कट गये। भयङ्कर रूप तो उसका था ही। यथा 'रूप भयकर प्रगटत भई। अब बिना नाक कान के विकराल हो गयी। पर्वताकार उसका शरीर नाक कान कटने से तीन धाराएँ रक्त की बहने लगी। ऐसा मालूम होने लगा कि मानो अञ्जन पर्वत पर से गेरु की तीन धाराएँ गिर रही हो।

अब सूर्पणखा को प्रतिहिंसा वृत्ति उत्पन्न हुई। रोती चिल्लाती खरदूषण के पास गयी। खर इसका सगा भाई था। रावण के तुल्य बलवान् था और सन्निकट था। उसके पास पहुँचकर उसे धिक्कारने लगी कि तू जीता बैठा है और मेरी नाक कट गयी। तेरे बल और पौरुष को धिक्कार है। तेरे बल और पौरुष का जिसे भय होता वह मेरी नाक कैसे काटता? बहन है। उसे अपने भाई के बल पौरुष का बडा भरोसा था।

तेहि पूँछा सब कहेसि बुझाई। जातुधान सुनि सेन बनाई ॥
धाए निसिचर निकर बरूथा। जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा ॥२॥

अर्थ उसने पूछा तो सब समझाकर बतलाया। सुनकर उस राक्षस ने सेना तैयार की। राक्षसो के झुण्डो की सेना दौडी जैसे पक्षवान् कज्जलगिरि के समूह दौडते हो।

व्याख्या . खरदूषण ने पूछा कि किसने नाक काटी, क्यो काटी? उसने समझा दिया कि अवध के राजा के लडके हैं। मृगया के लिए वन मे आये हैं। मुझे सुना कि रावण की बहन है तो मुझसे परिहास करने लगे। मेरे नाराज होने पर उसके छोटे भाई ने नाक कान काट ली। यथा .

राजा है अँवध को अँवधि बल विक्रम को
नाँम राँम श्याँम सरसीरुह बरन हैं।
सग सुकुमारि नारि तीर गोदावरी के
करँत विहार मुनिगन को सँरन है ॥
ताको लघुभाँय हाँय पाँय के सजाँय मेरो
रूप हरि लीन्ह्यो काँटि नासिकाँ श्रवन हैं।
पिशित खियाँव ताँको शोणित पियाँव नातो
आँज दईमाँर मेरो निहिचित मरँन है ॥

खरदूषण ने सोचा कि राजा का लडका है तो सहाय भी होगा। दुर्बल का इतना सामर्थ्य और साहस कहाँ कि इसकी नाक कान काट सके। अत सेना साथ मे रहनी चाहिए। अत उसने सेना तैयार की। यूथपो को बुलाकर क्रमबद्ध होकर चलने का आदेश देना तथा योग्य सेनापति के अधीन कर देना यही सेना तैयार करना है।

खरदूषण की आज्ञा की देर थी। राक्षसो का झुण्ड दौड चला। बडा उत्साह है युद्ध करने का, साथ ही स्वामी के बहन की नाक कटने पर अमर्ष भी है। राजा

का लडका मुलायम आहार है। इसलिए झुण्ड के झुण्ड दौड पडे कि पहिले हमही जाकर मार डालें। राक्षस सब विशाल थे और काले थे। इसलिए कज्जलगिरियूथ से उपमा दी और वे सबके सब दौड पडे। इसलिए सपक्ष कह रहे हैं। पक्षहीन होने पर तो पर्वत अचल हो गये। ये सबके सब आसन्न मृत्यु है। इसलिए कवि : सहित प्राण कज्जलगिरि नही कह रहे हैं।

नाना बाहन नानाकारा। नानायुध धर घोर अपारा॥
सूपनखा आगे करि लीनी। असुभ रूप श्रुति नासा हीनी॥३॥

अर्थ : नाना प्रकार के वाहन थे। नाना प्रकार का आकार था। नाना प्रकार के अपार घोर हथियार थे। उन्होंने अशुभ रूप नककटी कनकटी सूर्पणखा को आगे कर लिया।

व्याख्या : सेना में नियम है कि आकार आयुध और वाहन एक सा होता है। पर राक्षसी सेना मे यह नियम नही। उनके वाहन भी नाना प्रकार के, उनके आकार भी नाना प्रकार के, उनके हथियार भी अनेक प्रकार के हैं। वे हथियार ऐसे घोर हैं कि प्रतिद्वन्द्वी को उनका पार पाना कठिन है। भाव यह कि खरदूषण की सेना बड़ी विकट थी जो देवताओं को युद्ध में जीत चुकी थी।

सबो ने सूर्पणखा को आगे कर लिया कि तू चलकर बतला कि शत्रु कहाँ है? अथवा अब तू आगे आगे चल। देखें कोई क्या कर लेता है। इससे उनकी बुद्धि का नाश कहा। जब यात्रा के समय अमङ्गल रूप को आगे कर लिया तब उनके मङ्गल की कौन आशा है।

असगुन अमित होहिं भयकारी। गनहिं न मृत्यु बिबस सब झारी॥
गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाही। देखि कटकु भट अति हरषाही॥४॥

अर्थ : अगणित भयङ्कर अपशकुन होने लगे। वे सबके सब मृत्यु के विवश हैं। इसलिए गिनते नही। वे गर्जते हैं। ललकारते हैं। आकाश मे उडते हैं। सेना को देखकर वीर लोग बडे प्रसन्न हो रहे हैं।

व्याख्या : प्रकृति अपनी परिस्थिति द्वारा भविष्य का ज्ञापन कराती है। विचारशील पुरुष उससे लाभ उठाते हैं। यहाँ युद्ध यात्रा के समय असख्य भय सूचक अपशकुन हो रहे हैं। यथा 'भट गिरहिं रथते बाजि गज चिक्करहिं भाजहिं साथ ते। गोमायु गीध कराल खर रव स्वान बोलहिं अति घने। जनु काल दूत उलूक बोलहि बचन परम भयावने। परन्तु जिनका भविष्य बुरा रहता है वे इन अपशकुनो से सचेत नही होते। यथा : भयउ कालबस काहु न माना। कहेसि बजावहु जुद्ध निसाना। इसी भाँति ये सब काल के वश थे। अत अपशकुन की परवाह न की। बल्कि गर्जते और ललकारते चले हैं। राक्षस होने से आकाश मे उडने की शक्ति है। सेना ऐसी बनी हुई कि देखकर सुभटो को बडा हर्ष है। क्योकि उनकी समझ मे जीत निश्चित है।

कोउ कह जिअत धरहु द्वौ भाई । धरि मारहु तिय लेहु छुडाई ॥
धूरि पूरि नभ मडल रहा । राम बोलाइ अनुज सन कहा ॥५॥

अर्थ : कोई कहता है कि जीते जी दोनो भाइयो को पकड लो । पकड कर मारो और स्त्री छीन लो । आकाश मे धूलि भर उठी । तब रामजी ने छोटे भाई को वुलाकर कहा ।

व्याख्या : मन मे बडा हर्ष है । इसलिए मनोरथ भी बढा चढा है । एक कहता है कि जीते जी पकड लो । वे हम लोगो से क्या लडँगे ? वीर का जीते जी वन्दी हो जाना बडे अपमान की वात है । दो ही भाई तो हैं । दो चार वार करें तो उसे सह लेना उनके चोट से हम मर तो जायँगे नही पर पकड लो जीते जी । जिसमे स्त्री हरण का दु ख वे अपनी आँखो देख लें । तब अपनी चाही हुई विधि से उनका वध करना । सूर्पणखा के नाक कान कटने का बदला तो तभी चुकेगा ।

सेना के चलने से धूलि उडती है । जिसके देखने से सेना के आने की सूचना मिल जाती है । यथा नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आश्रम गये । यहाँ तो आकाश मण्डल धूरि से भर गया । सरकार ने देखा । बात समझ गये । यहाँ पहिला काम सीताजी का हटाना है । सीताजी की रक्षा मे चित्त बँटा रहने से भली भाँति युद्ध न हो सकेगा । तब रामजी ने बुलाकर अपने छोटे भाई लक्ष्मण से कहा । सीताजी से नही कहा । छोटा भाई कहने का भाव यह कि सरकार की भाँति वे भी युद्ध मे समर्थ है । यथा अनुज निसाचर कटक सहारा ।

लै जानकिहि जाहु गिरि कदर । आवा निसिचर कटकु भयकर ॥
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी । चले सहित श्री सर धनु पानी ॥६॥
देखि राम रिपुदल चलि आवा । बिहँसि कठिन कोदड चढावा ॥७॥

अर्थ : जानकी को लेकर पर्वत की कन्दरा मे चले जाओ । राक्षसो की भयङ्कर सेना आ पहुँची । सावधान रहना ऐसी सरकार की वाणी सुनकर हाथ मे धनुष बाण लेकर श्री : सीता के सहित चले ।

रामजी ने देखा कि शत्रु की सेना आगयी । हँसे और कठिन धनुष पर प्रत्यञ्चा चढाया ।

व्याख्या : सीताजी तो राक्षसी को देखकर डर गयी थी । सेना देखने पर इनकी क्या गति होगी । अथवा नाक कान काटने का वदला स्त्री हरण है । सो मुख्य चोट जानकी पर तथा तुम पर होगा । तुमने नाक काटा है । सो जानकी को लेकर तुम पहाड की गुफा मे चले जाओ । वे न देख पावें कि तुम कहाँ हो । राक्षसी सेना के आने मे विलम्ब नही है और वहाँ भी सावधान रहना । कन्दरा मे जानकी रहे । द्वार पर तुम रहना । यदि राक्षस वहाँ तक पहुँच जायँ तो उनका वध करना । लक्ष्मणजी की इच्छा जाने की नही । स्वय युद्ध करना चाहते है । परन्तु प्रभु की वाणी को हटा न

अर्थ वगमेल आगये। पकडो पकडो कहते सुभट दौडे। जैसे अकेला देखकर उदयकालीन सूर्य को दानव घेर लेते है।

व्याख्या इतने अन्दाज से प्रभ ने युद्ध की तैयारी की कि इधर तैयारी समाप्त हुई और उधर शत्रु की सेना पहुँच गयी। घुडसवारो का दस्ता जो वाग मिलाकर सेना के आगे चलता है अर्थात् अग्रगामिनि सेना आगयी। प्रभु को अकेला देखकर जीते ही पकड लेने के लिए पकडो पकडो ऐसी अवाज देते दौडे और प्रभु को घेर लिया। कवि कहते है कि उस समय ऐसी शोभा हुई जैसे प्रात काल दस सहस्र मन्देह नाम के दैत्य उदयकालीन सूर्य को घेर लेते है। पौराणिकी कथा है कि नित्य उदयकाल मे दस सहस्र दैत्य सूर्यनारायण से युद्ध करने के लिए उन्हे घेर लेते है और मारे जाते है। ब्रह्मदेव के वरदान से फिर वे जी उठते है और नित्य सूर्यनारायण द्वारा मारे जाते हैं। सूर्यनारायण का कुछ कर नही पाते। बालरवि के साथ प्रभा भी नही चन्द्र भी नही रहते। इसलिए अकेला कहते हैं। यहाँ भी सरकार के साथ सीताजी भी नही और लक्ष्मणजी भी नही। अत अकेले थे। पास जाने का साहस नही। मुख से पकडो पकडो कहते हैं। इसलिए चारो ओर से घेर लिया।

प्रभु विलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी॥
सचिव बोलि बोले खर दूपन। यह कोउ नृपवालक नर भूपन॥१॥

अर्थ प्रभु को देखकर हाथ से बाण नही छूटता। राक्षसी सेना थकित रह गयी। तब मन्त्री को बुलाकर खरदूपण बोले कि यह कोई राजा का लडका मनुष्यो का भूपण है।

व्याख्या राक्षसा न दूर से घेरा डाल रक्खा है। सरकार तक शस्त्र की पहुँच नही है। बाण पहुँच सकता है। पर उसे चलाने का सामर्थ्य किसी को नही। प्रभु के देखने से साहस छूट गया। यह प्रभु की प्रभुता है। सबके सब स्थगित हो गये। यथा जिन बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लोगाई। लोग लोगाई थकित होते ही थे। आज रजनीचर धारी थकित हो गयी।

खरदूपण ने देखा कि क्या मामला है। सेना रुक क्यो गयी ? सरकार को देखते ही बात समझ गया। मन्त्री को बुलवाया। ऐसे तेजस्वी के सामने जाकर सन्देश कहना भी सामान्य दूत का काम नही है। अत मन्त्री को दूत बनाकर भेजना चाहता है। खर और दूपण का साथ बोलना कहकर दोनो का एकप्राण होना कहा। नृपबालक कहकर अल्पबल और अपरिपक्व बुद्धि होना द्योतित करता है। पर कहता है कि इन्हे देखने से आँखो को सुख मिल रहा है। अत ये नरभूपण हैं। यथा नरभूपण लोचन सुखदाई। खरदूपण ने समझ लिया कि अपराध सूर्पणखा का है। राजपुत्र हैं। व्यभिचारिणी समझकर दण्ड दिया है।

नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुदरताई॥२॥

अर्थ : नाग, असुर, सुर, नर और जितने मुनि हैं उनमें से कितनों को मैंने देखा है। जीता है और मार डाला है। पर हे भाइयो ! सुनते जाओ। मैंने ऐसी सुन्दरता नहीं देखी।

व्याख्या : जब सूर्पणखा तीनों लोक देख चुकी है तो खरदूषण के तीनों लोक को देख डालने में आश्चर्य ही क्या है ? अतः व्यवहार योग्य पाँच प्रकार की सृष्टि उनकी देखी हुई है। नाग असुर से पाताल लोक कहा। सुर से स्वर्गलोक कहा और नर और मुनि से मर्त्यलोक कहा। उनमें से जो बलवान् थे उन्हें जीता या मारा। पर हाथ कहीं रुका नहीं।

यहाँ हाथ रुक रहा है। अलौकिक सुन्दरता देखकर स्तब्ध है। अतः सबको सुनाकर कहता है कि जब से होश सँभाला ऐसी सुन्दरता नहीं देखी। उसके कहने का भाव यह कि तुम लोग भी सुन्दरता देखकर ही स्तब्ध हो प्रभुता से नहीं।

जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा ॥
देहु तुरत निज नारि दुराई। जीअत भवन जाहु द्वौ भाई ॥३॥

अर्थ : यद्यपि बहन को कुरूप कर दिया तथापि ये अनूप पुरुष हैं। वध के योग्य नहीं हैं। अपनी छिपाई हुई स्त्री दे दें और दोनों भाई जीते जी घर लौट जाएँ।

व्याख्या : इन्होंने अपराध बड़ा भारी किया। हमारे बहन का नाक कान काटकर कुरूप बना दिया। इस कुरूप करण का दण्ड तो वध ही है। सूर्पणखा मनुष्य के लिए तो बड़ी भयावनी थी। पर राक्षसों की दृष्टि में वहाँ भी सौन्दर्य था। रावण ने जब स्वर्ग पर धावा किया था उसी समय लङ्का से सूर्पणखा का हरण हुआ था। अतः खरदूषण कहते हैं कि इतना अपराध करने पर भी इनका वध उचित नहीं है। संसार से शोभा उठ जावेगी। इन्हें दूसरा दण्ड देना चाहिए। यह अकेले ही दिखाई पड़ते हैं। स्त्री और भाई नहीं दिखाई पड़ते। अतः सिद्ध है कि इन्होंने उस स्त्री को छिपा दिया है। सो उस छिपाई हुई स्त्री को दे दें। यही दण्ड है। मैं दोनों भाइयों का प्राण नहीं मारूँगा।

मोर कहा तुम ताहि सुनावहु। तासु बचन सुनि आतुर आवहु ॥
दूतन्ह कहा राम सन जाई। सुनत राम बोले मुसुकाई ॥४॥

अर्थ : मेरा यह कहना तुम लोग उसे जा सुनाओ और उसका वचन सुनकर शीघ्र लौट आवो। दूतों ने जाकर रामजी से कहा। सुनते ही रामजी ने मुसकुरा कर कहा।

व्याख्या : खरदूषण अङ्गुल्या निर्देश करके कहता है कि मेरा कहना तुम उसे जाकर सुना दो। यहाँ से कही हुई बात वह नहीं सुन सकता और तुरन्त आकर उसका उत्तर मुझसे कहो। खरदूषण के मन में सन्देह है कि रामजी इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करेंगे। उन्होंने अपने भाई के साथ स्त्री को हटा दिया है और अकेले निर्भीक

युद्ध के लिए खडे हैं। आतुर आवहु' कहने का भाव यह है कि जवाब सवाल न करना। जितनी कृपा मैं कर रहा हूँ वही बहुत है। सचिवगण ही दूत हैं। उन्होंने जाकर रामजी से कह डाला। दूसरे को इतना कहने का साहस न पडता। सरकार स्मितपूर्वाभिभाषी है। अत स्वभावत मुसकुराकर बोले अथवा उसकी चतुरता पर मुसकुराये कि बिना युद्ध किये ही जीत चाहता है। अथवा इस बात पर मुसकुराये कि इसने मुझे इतना नरम चारा समझ रक्खा है कि मै स्त्री देकर सन्धि कर लूँगा। अथवा अपने दौर्बल्य को कृपा रूप दे रहा है अथवा उसकी कामुकता पर मुसकुराये कि इसे यदि सुन्दरी स्त्री मिल जाय तो बहन का नाक कान काटना कुछ नही।

हम छत्री मृगया बन करही। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरही॥
रिपु बलवत देखि नहिं डरही। एक बार कालहु सन लरही॥५॥

अर्थ रामजी ने कहा हम क्षत्रिय है। वन मे आखेट करते फिरते हैं। तुम्हारे ऐसे दुष्ट पशुओ को तो खोजते फिरते है। बलवान् शत्रु को देखकर डरते नही। एक बार तो काल से भी लड जाते हैं।

व्याख्या प्रभु कहते हैं कि ऐसी बात तो किसी राक्षस से कहनी थी। जो स्त्री प्रतिष्ठा से अनभिज्ञ हो। हम क्षत्रिय है। क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्र क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रुढ। जो क्षत से रक्षा करे वह क्षत्रिय है। नगर की रक्षा करके बन मे आखेट करते है। खल मृग हिंसक जन्तु व्याघ्रादि को खाजते फिरते है। यदि कोई मिले तो कोसो उसके पीछे दौडते चले जाते है। तुम लोग भी पशु हो। आहार निद्रा भय मैथुन म ही आसक्त हो। धर्म से तुम्हारा कोई सम्बन्ध नही। यथा . आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्। धर्मो हि तेषामधिको विशेष धर्मेण हीना पशुभि समाना और पशुओमे भी दुष्ट पशु हो ऐसे पशु को तो हम लोग खोजते फिरते हैं। सो तुम लोग इतने हमे मिल गये हो। हम कैसे छोड सकते है ?

यदि कहो कि व्याघ्रादि मेरे सामने क्या है। हम बडे बलवान् हैं। तो हम लोग भी डरनेवाल नही। क्षत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलकु तेहि पामर आना। जौं रन हमहिं प्रचारै कोऊ। लरहिं सुखेन काल किन होऊ। काल से बली तो कोई नही। मैं उससे भी लडने को प्रस्तुत हूँ।

जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक। मुनि पालक खल सालक बालक॥
जौ न होइ बल घर फिरि जाहू। समर बिमुख मै हतौ न काहू॥६॥

अर्थ यद्यपि मैं मनुष्य हूँ। पर दनुजकुल का नाश करनेवाला हूँ। मुनियो का पालन करनेवाला और खलो के हृदय मे चुभनेवाला बालक हूँ। यदि बल न हो ता घर लौट जाओ। लडाई मे पीठ दिखानेवाले किसी को मैं नही मारता।

व्याख्या नरभूषण का उत्तर देते हुए प्रभु कहते है कि साधारणत मनुष्य राक्षसो के भक्ष्य हैं। पर मैं मनुष्य हूँ। पर दनुजकुल का नाश करनेवाला हूँ इससे

अपना अवतार होना भी ध्वनित किया। परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। अथवा मारीच सुबाहु वध की ओर लक्ष्य करते हुए कहते हैं। यथा ये कौसिक मख के रखवारे। जिन रन अजिर निसाचर मारे। अथवा अपनी प्रतिज्ञा को जनाया। जो अस्थि समूह देखकर किया था। निसिचर हीन करउँ महि।

ये कोउ नृप बालक का उत्तर देते हुए कहते हैं मुनि पालक खल सालक बालक। भाव यह कि खल वध का कारण मुनिपालन है। बिना खल वध के मुनि-पालन नहीं होता। साधुता से खल के स्वभाव के परिवर्तन की आशा मूर्खता है। अत खलो का वध ही सच्ची अहिंसा है।

प्रभु कहते हैं कि युद्ध करने के लिए चढ आये। तब युद्ध न करने मे दो ही पक्ष हैं। या तो हम दुर्बल और कादर हो या तुम दुर्बल और कादर हो। सो मैं तो काल से लडने को तैयार हूँ। रह गया दूसरा पक्ष कि तुम निर्बल और कादर हो तो मेरा वीर व्रत है। पीठ दिखानेवाले पर शस्त्र प्रहार नहीं करता। घर लौट जाओ। मैं पीछा करके मारनेवाला नहीं हूँ।

रन चढि करिअ कपट चतुराई। रिपु पर कृपा परम कदराई॥
दूतन्ह जाइ तुरत सब कहेऊ। सुनि खरदूषन उर अति दहेऊ॥७॥

अर्थ लडाई पर चढ आकर अब कपट चतुराई करते हो। शत्रु पर दया करना तो भारी कादर का लक्षण है। दूतो ने जाकर तुरन्त सब कह सुनाया। सुनकर खरदूषन का कलेजा अत्यन्त जल उठा।

व्याख्या . बध लायक नहिं पुरुष अनूपा का उत्तर। बिना लडे ही जीत चाहते हो। सेना की दुरवस्था देखकर भीतर से भयभीत हो। बाहर से दया का रूपक दिखाते हो। केवल धमकी देकर स्त्री लेना चाहते हो। बात ऐसी करते हो कि लडाई न पडे कपट चतुर नहिं होइ जनाई। मैं तुम्हारा शत्रु मैंने तुम्हारे बहन का नाक कान काटा। मेरे पर दया कैसी ? वस्तुत तुम कादर हो। केवल बातें बनाते हो।

जाने के समय जो वेग दूतो मे था लौटने के समय वह न रह गया। पारा उतर गया। अत जाना कहते हैं। आतुर आवहु आज्ञा थी। अत जाइ तुरत सब कहेऊ। सुनकर सबका कलेजा जल उठा। खरदूषण के हृदय मे तो अधिक दाह हुआ। इस पुरइन से जो छन्द रूपी कमल निकला है। वह निम्नोक्त है।

छ उर दहेउ कहेउ कि धरेहु धाए बिकट भट रजनीचरा।
सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा॥
प्रभु कीन्ह धनुष टँकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।
भए बधिर व्याकुल जातुधान न ज्ञान तेहि अवसर रहा॥

अर्थ कलेजा जल उठा। बोले कि पकड लो। विकट भट राक्षस दौड पडे। सब धनुष, बाण, भाला, बरछी, त्रिशूल, तलवार, बेवेंडा और गँडासा लिये हुए थे।

शर शक्ति तोमर शूल कृपाण परिघ और परशु की चोट सामने जाकर करते हैं। जिसे देखकर हाथ से बाण नही चलते थे मरण ठान लेने पर उन्ही के सामने जाकर प्रहार कर रहे हैं। उनको भागते देखकर प्रभु ने बाण चलाना बन्द कर दिया था। प्रतिज्ञा भी है समरबिमुख मैं हतौं न काहू। अब उनके सामने जब जाकर प्रहार करने लगे प्रभु ने प्रहार सहा।

पहिले भी कुपित थे। तब दूर से अस्त्र शस्त्र की वर्षा करते थे। अब परम कुपित हैं। अत सन्मुख जाकर चोट करते हैं। प्रभु ने तब फिर धनुष पर बाण चढाया। दूसरी लडाई प्रारम्भ हुई। इस लडाई मे लोहमय बाण नाराच छूटे। बिकट पिशाच कटने लगे। पिशितमाचमतीति पिशाच। मास खानेवाले को पिशाच कहते हैं। ये ही सब मुनियो को खाये थे।

उर सीस भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महि परन ॥
चिक्करत लागत बान। धर परत कुधर समान ॥५॥
भट कटत तन सत खड। पुनि उठत करि पाखड ॥
नभ उडत बहु भुज मुड। बिनु मौलि धावत रुड ॥६॥
खग कक काक सृगाल। कटकटहिं कठिन कराल ॥७॥

अर्थ छाती, सिर, हाथ, भुजा और पैर जहाँ तहाँ पृथ्वी पर गिरने लगे। बाण लगते ही चिग्घाडते हैं। धड पहाड की भाँति गिर रहे हैं। वीर लोग सौ सौ टुकडे कटकर गिर रहे है और फिर माया करके उठते हैं। आकाश म बहुत सी भुजाएँ और सिर उड रहे हैं। बिना सिर के रुण्ड दौड रहे हैं। चील्ह, कौए, आदि पक्षी और गीदड भयङ्कर कटकट शब्द कर रहे हैं।

व्याख्या नाराच के चाट से पाँच पाँच खण्ड होकर कट रहे हैं। यह कोई विशेष विद्या बनैती की है। क्योकि अन्यत्र भी नाराच चलने पर इसी भाँति कटना लिखा है। यथा जँह तहँ चल बिपुल नाराचा। लगे कटन भट बिकट पिसाचा। कटहि चरन सिर उर भुज दडा। बहु तक बीर होहिं सत खडा। जिन्हे देखो वे पाँच खण्ड होकर गिरते हैं।

बाणो का वेग और बढा तो सात खण्ड या सौ खण्ड होकर गिरने लगे। जब पाँच खण्ड होकर गिरना कहा था वहाँ धड का पहाड की भाँति गिरना कहा। अब तो सौ खण्ड होकर गिर रहे हैं। अत धडो का पहाड की भाँति गिरना नही लिखते। सौ खण्ड होने पर भी माया से सब खण्ड एकत्रित हो जाते है और वे सब उठ खडे होते हैं। यह नये प्रकार की माया है। ऐसी माया लङ्का के युद्ध मे भी नही देखी गयी। तब प्रभु ने युद्ध की शैली बदली। भुज मुण्डो को काट काटकर आकाश मे फेंकने लगे। जिसमे जुटने न पावें। तब बिना सिर के रुण्ड दौडने लगे।

अब रणभूमि मास रुधिरमय हो गयी। हिंसक जन्तु प्रकट हुए काक कक लै

भुजा उडाही। एकते छीनि एक लै खाँही। एक कहहिं ऐसेउ सौंघाई। सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई। जबुक निकर कटक्कट कट्टहिं। खाहिं अघाहिं हुआहिं दुपट्टहिं। जब रणभूमि मास रुधिरमय हो गयी तब हिंसक जीव प्रकट हुए। बीभत्स रस का प्रादुर्भाव हुआ। शृगाल को कवि ने कठिन कराल कहा है। क्योंकि मरते हुए का मास नोचकर खाते हैं। एक दूसरे पर कटकटाते हैं कि यह तो मेरा आहार है तू कैसे यहाँ आगया।

कटकटहिं जबुक भूत प्रेत पिसाच खर्प्पर सचही।
बेताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नचही॥
रघुबीर बान प्रचड खडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा।
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धरुधरु धरु करहिं भयकर गिरा॥१॥

अर्थ गीदड कटक्टाते हैं। भूत प्रत और पिशाच खप्पर मे रक्त जमा करते हैं। वीर बेताल खोपडियो पर ताल देते हैं और योगिनियाँ नाच रही हैं। रघुवीर के प्रचण्ड बाण योद्धाओ की छाती भुजा और सिरोको काट रहे हैं। वे जहाँ तहाँ गिरते हैं फिर उठकर लडते हैं और भयङ्कर शब्दसे पकडो पकडो कहते हैं।

व्याख्या प्रेत लोक के घोर जीव भी आ डँटे। पेटभर खाया पीया। अब दूसरे दिनके लिए खप्पर भरकर रख रहे हैं। निश्चिन्त होने के बाद आनन्द का जलसा आरम्भ हुआ। बेताल वीर नट कपाल को बजाकर ताल दे रहे हैं और योगिनी नृत्य कर रही हैं। ये योगिनी भी एक प्रकार की प्रेत ही है। रुधिर पान से सब मत्त हो रहे हैं। योद्धा लोग जहाँ उठे कि तीन टुकडे हुए। फिर भी वे माया से उठ खडे होते हैं और लडने लगते हैं। सबके सब रण मद म मत्त हैं। मालिक ने पकडने की आज्ञा दी थी। अत पकडो, पकडो, पकडो यही शब्द भयङ्कर ध्वनि से उच्चारण कर रहे हैं।

अतावरी गहि उडत गीध पिसाच कर गहि धावही।
सग्राम पुर बासी मनहु बहु बाल गुडी उडावही॥
मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट कहँरत परे।
अवलोकि निज दल बिकल भट त्रिसिरादि खरदूषन फिरे॥२॥

अर्थ अँतडियो को लेकर गीध उडे जाते हैं। उन्हें पिशाच हाथ से पकडे हुए दौडते हैं। मानो सग्रामरूपी पुर के रहनेवाले बहुत से बालक पतङ्ग उडा रहे हो। मारे गये। पृथ्वी पर गिराये गये बहुत से योद्धा कराहते हुए पट गये। अपनी सेना को बिकल देखकर त्रिशिरा आदि खरदूषण लौटे।

व्याख्या आँत स्वभावत लम्बी होती है। फिर शैतान की आँत तो बहुत लम्बी सुनी जाती है। सो उन्हे लेकर गीध उड चले। उनके दूसरे सिरो को पिशाचो ने पकड लिया और दौडने लगे तो ऐसा दृश्य उपस्थित हुआ मानो सग्राम भूमि ही

एक पुर है। वहाँ के रहनेवाले लडके पतङ्ग उडाते हो। सेना के कुछ लोग मारे गये। कुछ पछाड खाकर गिरे और बहुत से पडे पडे कराह रहे थे। खरदूषण त्रिशिरा ने देखा कि सेना समाप्त हो चली। तो स्वय सरकार की ओर लौट पडे। पहिले सैनिको को प्रेरणा करके सरकार से लडने के लिए भेजते थे। यथा भये क्रुद्ध तीनिउ भाई। जा भागि रन ते जाइ। तेहि वधब हम निज पान।

सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहि बारही।
करि कोप श्रीरघुबीर पर अगिनिति निसाचर डारही ॥
प्रभु निमिष महुँ रिपु सर निवारि पचारि डारे सायका।
दस दस बिसिख उर माँझ मारे सकल निसिचर नायका ॥३॥

अर्थ अगणित निशाचर श्रीरघुवीर के ऊपर बाण, बरछी, तोमर, फरसा, त्रिशूल और तलवार एक साथ ही फेंकने लगे। प्रभु ने क्षणभर म शत्रुओ के बाणो को दूर करके, ललकारकर बाण छोडे। प्रत्येक राक्षसो के नायक के हृदय मे दस दस बाण मार।

व्याख्या तीसरी लडाई प्रारम्भ हुई। खरदूषण त्रिशिरादि वीर योद्धा भी अकेले सरकार से युद्ध करने का साहस नही करते। क्रोध से भरे हुए दूर से हथियार फेंक रहे है। हथियारो की वर्षा हो गयी। प्रभु वीरव्रत है। उनकी अस्त्र शस्त्र वर्षा का सहन करते हुए अपने बाणो से उसका निवारण किया और प्रत्येक सेनापति के हृदय मे दस दस बाण मारे बहुतो के साथ युद्ध करते समयकी कोई प्रक्रिया है जिससे दस दस बाण प्रतिभटो के हृदय मे लगते है। यथा दसदस सर सब मारेसि परे भूमि कपि बीर।

छ महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी।
सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवध धनी ॥
सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक कर्यो।
देखहिं परसपर राम करि सग्राम रिपुदल लरि [1]मर्यो ॥४॥

अर्थ पृथ्वी पर गिरते है और उठकर योद्धा फिर लडते हैं मरते नही। और घनी माया कर रहे है। देवता लोग चौदह सहस्र प्रेतो मे अकेले श्री रामजी को देखकर डर रहे हैं। देवता और मुनियो को डरा हुआ देखकर मायानाथ ने बडा खेल किया कि एक दूसरे को राम दखते हुए सग्राम करके शत्रु की सेना लड मरी।

---

१ यह सग्राम मृगशिरा नक्षत्र है प्रथम मृगसीरस को जलपात। गोजर बीछी साँप छछूदर वीर बहूटी चरत। पहिले कह आये हैं वर्षा घोर निसाचररारी। सो वर्षा के दसो नक्षत्र बरसेंगे। यह सग्राम पहिले नक्षत्र की वर्षा है। सुरकुल सालि सुमगलकारी है। यथा हरषित बरखहिं सुमन सुर, बाजहिं गगन निसान।

व्याख्या : ये वीर अमर मालूम पड़े। क्योंकि कटकर टुकड़े टुकड़े होकर तो पृथ्वी पर गिरते थे। परन्तु फिर उठ जाते थे। मरते न थे और अत्यन्त दुरूह माया करते थे। कवि उन्हे प्रेत कहते हैं। क्योंकि ये मर मरकर जीते हैं। देवताओ ने देखा कि ये चौदह हजार प्रेत हैं और अवधेश रामजी अकेले हैं। अत डरने लगे कि देखें क्या होता है। सरकार ने देखा कि देवता और मुनि डर रहे है तो उनकी माया के जवाब मे एक खेल कर दिया कि वे सब एक दूसरे को राम देखने लगे और आपस मे ही कटकर मर गये।

दो. राम राम कहि तनु तजहिं, पावहिं पद निर्वान।
करि उपाय रिपु मारे, छन महुँ कृपानिधान ॥२०॥

अर्थ : राम राम कहकर शरीर छोड़ते हैं। निर्वाण पद को प्राप्त हो रहे हैं। इस भाँति उपाय करके कृपानिधान ने क्षण भर मे शत्रुओ का सहार कर दिया।

व्याख्या : एक दूसरे को शत्रु सेना के सैनिक राम देखने लगे। जो मारता है वह कहता है कि राम को मारा। जो मारा जाता है वह कहता है कि राम ने मारा। इस भाँति अन्तकाल मे सबके मुख से राम नाम का उच्चारण हो रहा है। अत सबको निर्वाण पद की प्राप्ति हो रही है। यथा : अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्। यः प्रयाति त्यजन् देह स याति परमा गतिम्। जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुकुत होत स्रुति गावा।

सरकार कृपानिधान है। ऐसा उपाय किया कि अनायासेन सब राक्षसो का मोक्ष हो गया।

दो. हरषित बरषहिं सुमन सुर, बाजहिं गगन निसान।
अस्तुति करि करि सब चले, सोभित बिबिध बिमान ॥१४.२०॥

अर्थ : प्रसन्न होकर देवता लोग फूल बरसाने लगे। आकाश मे डङ्का बजने लगा। स्तुति करके सब देव आकाश मे विमानो पर शोभायमान होकर चले।

व्याख्या देवता लोग डर गये थे सो हर्षित होकर फूल बरसाने लगे। राक्षसो से इतने भयभीत थे कि यहाँ पर्ण तृणशाला भी बनाने नही आये थे। सो आकाश मे डङ्का बजा रहे हैं। युद्ध देखने आये थे सो किसी ने नही जाना। अब जाते समय प्रत्यक्ष हो गये। आकाश मे विमान पर शोभित हुए।

जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सब के भय बीते॥
तब लछिमन सीतहि लै आए। प्रभु पद परत हरषि उर लाए ॥१॥

अर्थ : जब रघुनाथजी युद्ध मे शत्रु को जीत गये तब सुर नर मुनि सबका भय बीत गया। तब लक्ष्मण सीताजी को ले आये। पैर पड़ते हुए प्रभु ने हर्षित हो लक्ष्मणजी को हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : जब से सरकार पञ्चवटी मे ठहरे हैं मुनि लोगो का त्रास तो तभी

दूर हो गया था। यथा जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भये मुनि बीती सा। अब जब शत्रुओ को रण मे जीत लिया तब सुर नर मुनि सबका भय ाप्त हो गया।

आकाश मे निशान बजा। देवताओ ने स्तुति की। जब लक्ष्मणजी ने सुना र युद्ध का कोलाहल शान्त हो गया तब समझ लिया कि जीत हो गयी। तब ताजी को लेकर लक्ष्मणजी आये। प्रभु के चरणो मे नमस्कार किया। सरकार ने जय की खुशी मे हर्षित होकर हृदय से लगाया। माधुर्य लीला है। रण सङ्कट से निर्मुक्त होकर भाई से मिल रहे हैं। चुनौती तो सरकार ने लक्ष्मण के हाथ से लाया। परन्तु युद्ध की धार को अपने ऊपर लिया।

ता चितव स्याम मृदु गाता। परम प्रेम लोचन न अघाता॥
चबटी बसि श्रीरघुनायक। करत चरित सुर मुनि सुखदायक॥२॥

अर्थ : सीताजी श्याम मृदुगात को देख रही हैं। उन्हे परम प्रेम है। उनकी ाँखें नही अघाती। पञ्चवटी में बसकर श्री रघुनायक सुर मुनि सुखदायक चरित रते है।

व्याख्या : आँखें दर्शन की प्यासी हैं। निज पानि मनि महुँ देखिअत मूरति ,रूप निधान की। चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरह भयबस जानकी। ही जानकी समर सङ्कट से विनिर्मुक्त देखकर श्याम मृदु गात को परम प्रेम से देख ही हैं और जी चाह रहा है कि देखा ही करें।

चित्रकूट का चरित सुर नर मुनि भावन था। यथा : करत जे बन सुर नर ुनि भावन। पर पञ्चवटी का चरित सुरमुनि सुखदायक है। वहाँ नर का निवास ही। अतः उनका नाम नही लिखा। राक्षस मुनियो को खा गये तो कोलकिरात ो कैसे छोडते ?

३७. दशानन समाचार प्रसंग

ुआँ देखि खरदूषन केरा। जाइ सुपनखा रावन प्रेरा॥
ोलि बचन क्रोध करि भारी। देस कोस कै सुरति बिसारी॥३॥

अर्थ : खरदूषण का शव देखकर सूर्पणखा ने जाकर रावण को प्रेरणा िया। भारी क्रोध करके बोली कि देश और कोश की सुध विसराकर।

व्याख्या : धुआँ अर्थात् शव या लाश। पहिले गिरकर उठ जाते थे। मरत न करत माया अति घनी। पर इस बार नही उठे। अत सूर्पणखा ने जान लिया के मर गये। तब जाकर रावण को प्रेरणा किया। ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्ह। सो रावण तक चुनौती पहुँच गयी। पहिले खरदूषण को प्रेरा था : कुल में कुलटा उत्पन्न होने से कुल का नाश हो जाता है। दूसरा कोई रावण के प्रेरने मे समर्थ नही था।

सूर्पणखा का खरदूषण पर क्रोध था। पर रावण पर भारी क्रोध था। इसी के कारण विधवा हुई। विधवा होने के कारण नाक कान कटा। बहन है इसलिए भारी क्रोध कर सकती है। नही तो : कर जोरे सुर दिसिप बिनीता। राजा के लिए देश काल प्रधान है। सूर्पणखा रावण से कहती है कि तुझे दोनों की खबर नही। खरदूषण के मरने की खबर देने मे आ रही हूँ। तुझे नही मालूम की देश मे इस समय क्या हो रहा है। अब जनस्थान के कोष का भी कोई रक्षक नही रह गया।

करसि पान सोवसि दिनु राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती ॥
राजनीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा ॥४॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ। श्रम फल पढ़ें किये अरु पाएँ ॥
संग[1] तें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान ते लाजा ॥५॥
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहि बेगि नीति अस सुनी ॥६॥

अर्थ : तू शराब पीता है और दिन रात सोता है। तेरे सिर पर शत्रु है और तुझे खबर नही है। १. नीति के बिना राज पाने से २ और बिना धर्म के धन पाने से ३. भगवान् के समर्पण बिना सत् कर्म करने से ४. बिना विवेक उपजाये विद्या पढने से केवल श्रम ही फल है। संग हो जाने से सन्यासी। १. कुमन्त्र से राजा २. मान से ज्ञान ३. और पान से लाज ४. बिना ईमानदारी के प्रीति ५ और मद से गुणी ६ शीघ्र ही नष्ट होते हैं। ऐसी नीति सुनी गयी है।

व्याख्या : सूर्पणखा अपना दोप छिपाने के लिए सब दोप रावण के सिर मढ रही है कि तेरी असावधानी से तेरे शत्रु इतने वढ गये हैं कि आज उन्होने मेरी नाक काट ली। तू देश कोप की सुरति बिसारकर मद्यपान करता है और रात दिन पडा रहता है। सर्वशोक हरा सुरा मे मस्त रहता है। तुझे कुछ भी चिन्ता नही है। तेरा शत्रु अयोध्या से चलकर जनस्थान पहुँच गया। अब यहाँ आना चाहता है। तुझे वह नही छोड़ेगा।

तू नीति शास्त्र की अवहेलना करता है। मैंने जो नीति सुनी है उसे सुनाती हूँ। चार का श्रम ही फल होता है। छः का शीघ्र ही नाश होता है और छः को छोटा नही गिनना चाहिए।

१. बिना नीति के राज्य प्राप्ति में जो श्रम होता है वही[2] फल है। क्योंकि राज्य तो रहेगा नही। यथा 'राज कि रहै नीति बिनु जाने।' २. बिना धर्म के अर्थ के उपार्जन मे जो श्रम हुआ वही फल है। क्योंकि वह अर्थ अनर्थ है। टिकाऊ नही

---

१. यहाँ दीपकालङ्कार है।

२ तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये। आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पकौशलम्। कर्म वही है जिससे बन्ध न हो। विद्या वही है जिससे मोक्ष हो। दूसरे कर्म श्रम के लिए हैं और दूसरी विद्या शिल्प कौशलमात्र है।

हो सकता। ३. बिना हरि के समर्पण किये सत्कर्म के अनुष्ठान मे जो श्रम हुआ वही फल है। क्योकि वह बन्ध का कारण है। ४. और बिना विवेक उत्पन्न हुए विद्योपार्जन मे जो श्रम हुआ वही फल है। क्योकि विद्या का फल ही विवेक है। मै तो देखती हूँ कि तुम्हारे राज्य, धन, सत्कर्म और विद्या के उपार्जन का फल श्रम ही हुआ।

१ सङ्ग से यती का शीघ्र ही पतन होता है। यथा : सब नृप भये जोग उपहासी। जैसे बिनु बिराग संन्यासी।

२ कुमन्त्र से राजा का शीघ्र ही पतन होता है। यथा : सचिव बैद गुरु तीन जौ प्रिय बोलहिं भय आस। राजधर्म तन तीनि कर होइ बेगिही नास।

३ मान से ज्ञान का नाश होता है। क्योकि : ज्ञान मान जहँ एकौ नाही। देख ब्रह्म समान सब माही।

४ पान से तुरन्त लज्जा का नाश होता है। शराबी नङ्गे होकर नाचते बहुधा देखे गये हैं।

५ बिना ईमानदारी के प्रीति का तुरन्त नाश होता है। यथा : बिलग होत रस जाय कपट खटाई परत ही।

६ मद से गुणो का नाश होता है। यथा · अवगुन मूल सूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना।

मै देखती हूँ कि कुमन्त्र, मान, पान और मद से तेरे राज्य ज्ञान लज्जा और गुणो का नाश हो चला।

दो रिपु रुज पावक पाप प्रभु, अहि गनिअ न छोट करि।
अस कहि बिबिध बिलाप, करि लागी रोदनु करन ॥२१॥

अर्थ : शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, मालिक और सर्प को छोटा करके नही गिनना चाहिए। ऐसा कहकर अनेक प्रकार से विलाप करके रोने लगो।

व्याख्या : ये छ. गूढ वीर्य हैं। इनका तुरन्त उपाय करना चाहिए। ये कथमपि उपेक्षणीय नही हैं। मैं देखती हूँ कि तुम अति प्रबल शत्रु की उपेक्षा कर रहे हो।

ऐसा कहकर, छाती पीटकर, सिर कूटकर, जमीन पर पछाड़ खाकर रोने लगी। धैर्य धारण करके इतना नीति का उपदेश उसने इसलिए दिया जिसमे रावण समझे कि सूर्पणखा बडी विचारशीला है। इसने अनीति नही किया होगा। सब दाष राजपुत्रो का ही है।

दो. सभा माँझ परि ब्याकुल, बहु प्रकार कह रोइ।
तोहि जिअत दसकंधर, मोरि कि असि गति होइ ॥२१.१५॥

अर्थ : सभा के बीच मे व्याकुल होकर गिर पडी और बहुत प्रकार से रोकर कहा कि दशकन्धर! तेरे जीते ही जीते मेरी क्या ऐसो दशा होनी थी।

व्याख्या : बात और बढी अब सभा में गिर गयी और वहुत प्रकार से रोकर कहा कि तुम मर गये होते और मेरी नाक कटती तो मुझे सन्तोष होता। जिसको एक सिर होता है उसके जीते उसकी बहिन की नाक कोई काट नही सकता। पर तुझे दस सिर हैं। मुझे तैने विधवा किया। मुझे तो अब तेरी ही गति है।

सुनत सभासद उठे अकुलाई। समुझाई गहि बाँह उठाई ॥
कह लंकेस कहसि निज बाता। केइ तव नासा कान निपाता ॥१॥

अर्थ : सुनते ही सभासद व्याकुल होकर उठे। उसे समझाया और बाहु पकड़कर उठाया। रावण ने कहा कि अपनी बात कह कि तेरा नाक कान किसने काटा ?

व्याख्या : रावण अपने स्थान से न हिला। पिछली बात से सबने पहिचाना। नही तो पहिले पहिचान भी नही सके थे। आकुल होकर सभासद उठे कि राजा की बहन की नाक किसने काटी और उसे समझाने लगे :

सूपनखे धीरज धरहि अनहोनी यह बात।
किन कीन्ह्यौ कैसे भयो यह दारुण उत्पात ॥
मिटिहि इन्द्र पद ब्रह्मपद रहिहि न नेक निसानि।
दियो चुनौती कौन जग लकपतिहि लघु मानि ॥

इतना समझाने पर भी नही उठी। तब उसको भुजा पकड़कर उठाया।

तब रावण बोले कि अपना हाल कह। मैं क्या करता हूँ उससे तुझे क्या प्रयोजन ? यह बतला कि तेरी नाक और कान किसने काटा ?

अवध नृपति दसरथ के जाए। पुरुष[1] सिंह बन खेलन आए ॥
समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी। रहित निसाचर करिहहिं धरनी ॥२॥

अर्थ : अयोध्या के राजा दशरथ के बेटे जो कि पुरुषो मे सिंह है वन मे अहेर खेलने आये हैं। उनकी करणी मुझे समझ पड़ी कि वे पृथ्वी को निशिचर हीन करेंगे।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने सूर्पणखा से कहा था : प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा और सरकार के मुख से सुन चुकी है : हम क्षत्रिय मृगया वन करही। अयोध्या के राजा दशरथ की ख्याति संसार मे थी। यथा : जीति को सक संग्राम दसरथ के रन बाँकुरे। अतः उसने परिचय तदनुसार ही दिया और कहा कि उनकी करणी देखकर मुझे निश्चय हो गया कि वे पृथ्वी का निशिचरहीन किया चाहते हैं और कर डालेंगे। उन्होंने कहा था : हम क्षत्रिय मृगया वन करही। तुमसे खल मृग खोजत फिरही। वही कर दिखाया। करि उपाय रिपु मारे छन महँ कृपानिधान। एक ने चौदह सहस्र का सहार किया और उनका कोई कुछ न कर सका।

---

१. यह रत्नावली अलङ्कार है।

जिन्ह कर भुजबल पाइ दसानन । अभय भये विचरत मुनि कानन ॥
देखत बालक काल समाना । परम धीर धन्वी गुन नाना ॥३॥

अर्थ हे दशानन ! जिनके भुजबल को पाकर मुनि लोग निर्भय होकर वन म विचरते हैं । देखने मे तो बालक हैं । पर काल के समान हैं । बडे भारी धनुर्धर हैं और उनमे नाना प्रकार के गुण हैं ।

व्याख्या तुम्हारा शासन उस देश से उठ गया । अब वहाँ उनका शासन चल रहा है । जो मुनि लोग निशाचरो के डर से छिपे फिरते थे वे अब आनन्द से वन म विचरते है । किसी का सामर्थ्य नही कि उनसे बोल सके । यथा जब ते राम कीन्ह तहँ बासा । सुखी भये मुनि बीती त्रासा ।

वे देखने मे ही अल्पवयस्क हैं । राक्षसो के सहार करने म साक्षात् काल ही हैं । बडे भारी धनुर्धर हैं । उनकी बाण विद्या के आगे किसी का किया कुछ नही होता । इसके अतिरिक्त भी अनेक गुण हैं । न जाने कौन विद्या कर दी कि सारी सेना आपस म ही कट मरी ।

अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता । खल बध रत सुर मुनि सुखदाता ॥
सोभा धाम राम अस नामा । तिन्ह के सग नारि एक स्यामा ॥४॥

अर्थ उन दोनो भाइयो के बल प्रताप का कोई तौल नही है । वे देवता और मुनि के सुख देनेवाल हैं और खलो के नाश मे लगे रहते है ।

व्याख्या बल ऐसा है कि उनके धनुष का टङ्कार कोई सह नही सकता । यथा प्रभु कीन्ह धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा । और प्रताप ऐसा है कि उनकी ओर देखा नही जाता । यथा प्रभु बिलोकि सर सकहि न डारी । दोनो भाई एक से एक हैं मुनि पालक खल शालक बालक इस भगवदुक्ति का अनुवाद करती हुई कहती हैं खल बध रत सुर मुनि सुखदाता । छवि पर आसक्त ह । अत सोभा धाम कहती हैं । राक्षस लोग उन्हे राम कहते थे । यथा राम राम कहि तनु तजहि । अत कहती हैं राम अस नामा राक्षसो को नाम मालूम था । बहुत दिनो से नाम सुनते थे । सीताजी पर बडो डाह है । इसलिए परिचय देती है । तिनके सग नारि एक स्यामा । श्यामा भवति श्यामाङ्गी श्यामा षोडशवार्षिकी । अप्रसूता भवेत् श्यामा श्यामा मधुरभाषिणी । अप्रसूता और मधुरभाषिणी होने से श्यामा कहा । जानती हैं कि रावण को उसके नाक कान कटने की उतनी परवाह नही होगी । सुन्दरी स्त्री के लिए वह सब कुछ कर सकता है ।

रूप रासि बिधि नारि सँवारी । रति सत कोटि तासु बलिहारी ॥
तासु अनुज काटे स्रुति नासा । सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा ॥५॥

अर्थ विधाता ने उस स्त्री को ऐसी रूप की राशि बनाया है कि सौ करोड

रति भी उस पर निछावर हैं। उन्ही के छोटे भाई ने मेरे नाक कान काट डाले। मैं तेरी बहिन हूँ। यह सुनकर वे मुझसे हँसी करने लगे।

व्याख्या : रावण को कामुक जानकर सीताजी के रूप की प्रशसा करती है। राम शोभाधाम नारि रूप राशि। राम के अग अग पर वारिये कोटि कोटि शत काम। नारि के लिए कहती हैं · रति सतकोटि तासु बलिहारी। उसे ब्रह्माजी ने अपने हाथ से सँवारकर बनाया है। तुम्हारे महल मे ऐसी स्त्री एक भी नही है।

उसी राम के छोटे भाई ने नाक कान काटा। जब सुना कि मैं तुम्हारी बहिन हूँ तब मुझसे परिहास करने लगे। बड़ा कहने लगा कि छोटे से ब्याह कर लो। छोटा कहने लगा कि बडे से ब्याह करो स्वय ब्याह करने गयी थी इस बात को छिपा रक्खा। जब मैं चिढी तो नाक काट लिया।

खर दूपन सुनि लगे पुकारा। छन महुँ सकल कटक उन्ह मारा ॥
खर दूपन तिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता ॥६॥

अर्थ : मेरी पुकार सुनकर खरदूषण सहायता करने आये। पर उन्होने क्षण भर मे सारी सेना को मार डाला। खरदूपण और त्रिशिरा का वध सुनकर रावण के सारे अग जल उठे।

व्याख्या : अन्याय सुनकर ही कमजोर की ओर से गोहार इकट्ठा होता है। सो खरदूषण हमारी पुकार सुनकर सब सेना लेकर दण्ड देने गये। सो करि उपाय रिपु मारे छन महँ कृपानिधान। देखते देखते उन्होने सबका सहार कर दिया। सकल कटक मे खरदूपण त्रिशिरा भी आगये। नाक कान काटने से जलन न हुई। खर दूपण का मरना सुनकर जल भुन उठा। क्रोध से जलन होती है। पहिले अपना हो शरीर जलता है। शत्रु की हानि जब होगी तब होगी।

दो. सूपनखहि समुझाइ करि, बल बोलेसि बहु भाँति।
गयउ भवन अति सोच बस, नीद परै नहि राति ॥२२.१६॥

अर्थ : उसने सूर्पनखा को समझाकर बहुत प्रकार से अपने बल का बखान किया। किन्तु वह अत्यन्त चिन्तावश होकर अपने महल मे गया। उसे रात भर नीद नही पडी।

व्याख्या · समझाया कि हमारी ओर तो पूरा इन्तजाम था। १४००० सुभट के साथ खरदूपण तेरी रक्षा के लिए थे। जब उनको पता न लगा तो मुझे कैसे लग जाता ? अब तो उन्हे दण्ड देना मेरा काम ठहरा। खरदूपण मे केवल एक बल शारीरिक था। मुझे भुजबल, तपबल, अस्त्रबल, सेनाबल, दुर्गबल, सब बल है। राम मे क्या है ?

बढी भयानकता अधिक कटे नाक अरु कान।
अब केवल तव दरस ते मुनिगन तजिहैं प्रान ॥

देव यक्ष गन्धर्व नर मुनिमँह नाक प्रधान।
भीमरूप निशिचरन मे कौन नाक की मान॥
तदपि देहुँ बैरिहि तुरत उत्कट फल परिपाक।
करौ हवाले कालके जिन काट्यौ सब नाक॥
कौन बली या जगत् मे जो मोको समुहाय।
लोकपाल निज लोक ते मेरे भय भगि जाय॥
क्षण महँ एकार्णव करौं कहा नान की बात।
देव दनुज को को कहै कालहु मोहि डरात॥
मैं तेरे रिपु को अभी डारत मूल बहाय।
जाहु सुखेन सुषेनपहँ करिहैं अवसि सहाय॥

ऐसा कहकर दरबार बरखास्त कर दिया। अति सोच से रात नींद न आयी : सो किमि सोअ सोच अधिकाई।

सुर नर असुर नाग खग माँही। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाँही॥
खर दूषण मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता॥१॥

अर्थ : विचार करने लगा। देवता, मनुष्य, असुर, नाग और पक्षियो मे कोई ऐसा नही जो मेरे सेवक की भी बराबरी का हो। खर दूषण तो मेरे हो समान बलवान् थे। उन्हे भगवान् के सिवा और कौन मार सकता है।

व्याख्या : रावण सोचता है : कुमुख अकम्पन कुलिसरद धूम्रकेतु अतिकाय। एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय। ये सब हमारे अनुचर हैं। इन्ही का कोई प्रतिभट नही है। जग मे सुर नर असुर नाग खग हैं। ये ही पाँच पराक्रमी हैं। वे मेरे ही अनुचर के बराबर नही है।

जीव मे सामर्थ्य नही कि मेरे समान बलवान को मार सके। ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई। जीव मात्र के जय के लिए मेरे अनुचर यथेष्ट हैं। मेरे अनुचर भी ईश्वर के ही मारे मर सकते हैं।

सुर रंजन भंजन महि भारा। जौ भगवंत लीन्ह अवतारा॥
[1]तउ मैं जाइ बयरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ॥२॥

अर्थ देवताओ को आनन्द देनेवाले और पृथ्वी का भार हरण करनेवाले भगवान् ने यदि अवतार लिया है तो मैं जाकर उनसे हठपूर्वक वैर करूँगा और प्रभु के बाण से प्राण छोडकर भवसागर तर जाऊँगा।

व्याख्या : महा पण्डित है। जानता है कि मुझसे देवताओ को कष्ट है। हम लोगो के कारण पृथ्वी का भार बढ गया है। ऐसे ही अवसरो पर अवतार होता है। गुप्त अवतार भी होते हैं। यथा : वामनावतार, ईश्वर होकर यदि चाहे कि पता न

---

१ यहाँ विचित्रालङ्कार है।

लगे तो कैसे लग सकता है। और जीवों में भी ऐसे बलवान कभी कभी हो जाते हैं कि राक्षसों को मार लेते हैं। यथा : तेहि के सत सुत अरु दस भाई। खल अति अजय देव दुःखदाई। प्रथमहि भूप समर सब मारे। विप्र संत सुर देखि दुखारे। अतः यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि अवतार हुआ है। यदि ईश्वर हैं तो वैर नहीं करेंगे। सूर्पणखा कथित निरपराधता उसके मन मे नही आयी। मैं हठपूर्वक वैर करूँगा। क्योंकि निर्वाणदायक क्रोध जाकर भगति अवसहि बस करी। रावण अपनी गति के लिए व्यग्र है। इतना ही रावण विभीषण मे भेद है। विभीषण मे निश्चयात्मिका बुद्धि है रावण मे नही है। विभीषण भजन कर सकता है। रावण नही कर सकता। प्रभु शर से तीनो शरीरें नष्ट हो जाती हैं। यह प्रभु शर की विशेषता है।

होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा ॥
जौ नररूप भूप सुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ ॥३॥

अर्थ : इस तामस शरीर से भजन तो होगा नही। अतएव मन वचन और कर्म से यही दृढ निश्चय है। यदि वे मनुष्य रूप कोई राजकुमार होगे तो उन दोनो को रण मे जीतकर स्त्री को हर लूँगा।

व्याख्या : भजन करना ही सुगति का शास्त्रानुमोदित उपाय है। सो मुझसे होगा नही। वैर भली भाँति कर सकूँगा : मैं कौन सा काम भलीभाँति कर सकूँगा। इस बात को सोच निकालना साधारण पण्डिताई नही है। खूब विचार के बाद यही मन्त्र दृढ किया कि किसी की सलाह न मानूँगा। वैर करूँगा और यदि जिस पर मुझे अवतार का सन्देह है वह मनुष्य निकला तो जीतकर स्त्री हरण करूँगा : यद्यपि जीति पूर्वकालिक क्रिया है। इससे अर्थ निकला कि पहिले जीतकर पीछे स्त्री हरण करूँगा। पर इस पर कोई निश्चय नही है। निश्चय वैर करने मे और स्त्री हरण करने मे है।

चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ। बस मारीच सिंधु तट जहवाँ ॥

रामजी की युक्ति

इहाँ राम जसि जुगुति बनाई। सुनहु उमा सो कथा सुहाई ॥४॥

अर्थ : रावण रथ पर चढकर अकेला ही वहाँ चला जहाँ समुद्र के तट पर मारीच रहता था। शिवजी कहते हैं कि : हे पार्वती ! यहाँ श्रीरामचन्द्रजी ने जैसी युक्ति रची वह सुन्दर कथा सुनो।

व्याख्या : षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रः। ऐसा नीतिशास्त्र का आदेश है। अतः अकेला चला। सारथि को भी साथ न लिया। बस मारीच सिंधु तट जहवाँ : से पता चलता है कि और भी विचार उसने किया। जो उसकी क्रिया से लक्षित होता है। लिखा नही गया। माया से बचने के लिए साधुओ को भी युक्ति करनी चाहिए। व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवम् भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः। वे मूढ हार जाते

है जो मायावी से माया नही करते सम्बोधन से शिवजी उमा को सावधान करते है।

दो लछिमन गए बनहिं जब, लेन मूल फल कद।
जनकसुता सन बोले, बिहँसि कृपा सुख बृद ॥२३ १७॥

अर्थ लक्ष्मणजी जब कन्द मूल फल लेने के लिए वन मे गये तब कृपा और सुख के समूह श्रीरामचन्द्रजी हँसकर जानकीजी से बोले।

व्याख्या इधर प्रभु ने सोचा कि अब सूर्पणखा रावण के पास जावेगी। खर दूषण के व्यवहार से पता चल गया कि चोट सीताजी पर होगी। रावण सम्मुख सग्राम का साहस न करेगा। सीताहरण करेगा। रावण ने भी सबसे बात छिपायी। प्रभु भी लछिमन तक से बात छिपाते हैं। लक्ष्मण के जान लेने पर विलापादि न बन सकेगा। माया को प्रेरणा करना है इससे हँसे। रत्न की चोरी के लिए चोर चला। इधर रत्न बदल शीशा इमीटेशन उस स्थान पर रक्खा जा रहा है। चोर को धोखा देना चाहते है। इसलिए हँसकर बाले। भगवती पर कृपा है। उन्हे दु ख मे नही डालना चाहते। इससे कृपा सुखबृद कहा।

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मै कछु करबि ललित नरलीला॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौ निसाचर नासा॥१॥

अर्थ हे प्रिये! हे सुन्दर पातिव्रत धर्म पालन करनेवाली सुशीले! सुनो। मैं अब कुछ मनोहर मनुष्य लीला करूँगा। इसलिए जबतक मै राक्षसो का नाश करूँ तबतक तुम अग्नि में निवास करो।

व्याख्या सरकार करुणानिधान हैं। सुजान है। भगवती के शील सनेह को जानते हैं। यथा करुणानिधान सुजान सील सनेह जानत रावरो। करुणानिधान हैं। अत इस झमेले मै उनको डालना नही चाहते। झमेला बडा है। लै जानकिहि जाहु गिरि कदर से काम न चलगा। कुछ दिन तक अलग रखना है और भगवती के स्नेह को जानते हैं। अत कहते हैं सुनहु प्रिया। गुणग्राहक सुजान हैं। अत ब्रत रुचिर कहते हैं। भगवती के शीलको जानते है। अत सुशीला कहते है।

शुद्ध माधुर्य की लीला ललित नरलीला है। अभी तक ऐश्वर्य मिश्रित लीला किया है। और शुद्ध माधुर्य मे तुम्हे अत्यन्त कष्ट होगा। अधिक दिनो का विछोह होगा। हरण होगा राक्षसो की अश्लील बाते सुननी पडेंगी। अत ऐसे समय मे तुम्हारा साथ रहना ठीक नही है।

पावक मेरी ही विभूति है : वसूना पावकश्चास्मि तथा अग्निर्देवानामवमो विष्णु। अत उसमे निवास से सर्वथा मेरा वियोग न होगा और बिना पावक मे निवास किये प्रतिबिम्ब की उत्पत्ति न होगी : पावक सन्निधान विद्या से बायस्कोप मे प्रतिबिम्ब का खेल देखा जाता है। निसिचर नाश के समय तक तुम्हारे प्रतिबिम्ब से काम लिया जायगा। शपथ लेने के समय तुम अग्नि से प्रकट होना।

जबहिं राम सबु कहा बखानी । प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी ॥
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता । तैसेइ सील रूप सुबिनीता ॥२॥

अर्थ · श्रीरामजी ने ज्यो ही सब समझाकर कहा । त्यो ही श्रीसीताजी प्रभु के चरणो को हृदय मे धरकर अग्नि मे समा गयी । सीताजी ने अपनी ही छायामूर्ति वहाँ रख दी । जो उनके जैसे ही शील स्वभाव और रूपवाली तथा वैसे ही विनम्र थी ।

व्याख्या रामजी ने कहा रावण चल पडा तुम्हारे हरण के लिए । यदि छल मे कृतकार्य न होगा तो बल से हरण चाहेगा एवं रावण वध हो जायगा । परन्तु निशिचरहीन महि न हो सकेगी । अत निशिचरहीन महि करने के लिए यह आवश्यक है कि तुम्हारा हरण हो । कम से कम रावण यह समझे कि मैने सीता हरण कर लिया । प्रभु पद हृदय मे धारण करती हैं आधार के लिए । अग्नि मे लय हो गयी । क्योकि अग्नि से ही प्रकट होना है ।

सब समझाकर कहा । अत अपना प्रतिबिम्ब छोडती गयी । देवयोनि मे यह सामर्थ्य है । अथवा योग से भी अनेक शरीर प्रकट किया जा सकता है । बिम्ब और प्रतिबिम्ब के रूप मे तो भेद नही होता । यहाँ तो शील और विनय मे भी भेद नही था ।

लछिमनहूँ येह मरमु न जाना । जो कछु चरित रचा भगवाना ॥

३८ दशकन्धर मारीच बतकही प्रसङ्ग

दसमुख गयउ जहाँ मारीचा । नाइ माथ स्वारथ रत नीचा ॥३॥

अर्थ भगवान् ने जो कुछ लीला रची इस रहस्य को लक्ष्मणजी ने भी नही जाना । स्वार्थपरायण और नीच रावण वहाँ गया जहाँ मारीच था और उसको सिर नवाया ।

व्याख्या यह मर्म प्रभु और भगवती के ही बीच मे रहा । साहश्य ऐसा था कि लक्ष्मणजी भी नही समझ सके कि भगवती बदल गयी । नारद शाप नारि बिरह तुम होब दु खारी । का अभिनय लछिमन के जान जाने से नहीं हो सकता था । लछिमन कन्द मूल लेकर लौटे । देखा कि पहिले की तरह दोनो सरकार बैठे हैं । जबतक रावण मारीच के पास न पहुँचा तबतक यहाँ से सीताजी हटा दी गयी । लछिमनजी के लौट आने के बाद रावण मारीच के पास पहुँचा । तबतक अपने ही रूप म रहा । अत दशमुख कहते है । अथवा दसो सिर झुकाया । उसके एक प्रणाम मे दस प्रणाम है । नीच का जब स्वार्थ आ पडता है तब ऐसे ही प्रणाम करते हैं । यथा करि बिनती पद गहि दस सीसा । बोला बचन सुनहु जगदीसा ।

नवनि नीच कै अति दुखदाई । जिमि अकुस धनु उरग बिलाई ॥
भय दायक खल कै प्रिय बानी । जिमि अकाल के कुसुम भवानी ॥४॥

अर्थ : नीच का झुकना अत्यन्त दु खदायी होता है। जैसे अकुश धनुष साँप और विल्ली का झुकना। हे भवानी ! दुष्ट की मीठी वाणी भय देनेवाली होती है। जैसे बिना ऋतु के फूल।

व्याख्या : नीच का मिलना दु खदायी है। यथा मिलत एक दारुण दुख देही। और नवनि : अति दुखदायी है चाहे दूसरे की प्रेरणा से नमन करे। यथा ' अकुश धनु। चाहे स्वेच्छा से नमन करे। यथा ' उगर बिलाई। भाव यह कि यह प्रणाम मारीच के प्राण लेने के लिए है। यह नीच है। उसका कहना न मानेगा केवल स्वार्थ से प्रणाम मात्र करता है। यथा बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेहि नीचा।

खल प्रिय वाणी नही कहते बचन बज्र जेहि सदा पियारा। वे यदि प्रिय वाणी बोलें तो सावधान होना चाहिए। यह प्रिय वाणी प्राण घातक है। कुसुम बडा सुहावना होता है। वह कुसुम वसन्त मे ही फूलता है। यदि अन्य ऋतु मे फूले तो अनिष्ट सूचक है। रावण ने मधुर वाणी से अभिवादन किया। आगे दिखाया जायगा कि उसने अकुश धनु उरग और बिलाई की भाँति आचरण भी किया।

दो करि पूजा मारीच तब, सादर पूछी बात।
कवन हेतु मन ब्यग्र अति, अकसर आयेहु तात ॥२४ १८॥

अर्थ तब मारीच ने उसकी पूजा करके आदर पूर्वक बात पूछी हे तात ! आपका मन किस कारण इतना अधिक व्यग्र है और आप अत्यन्त अकेले क्यो आये हैं ?

व्याख्या राजा का आगमन है। अत पहिले पूजा की। तब बडे आदर से बात पूछी। सब बातें मधुर भी बोलते हैं। उलटी हैं। मन से अति ब्यग्र हैं और अत्यन्त अकेले भी हैं। यथा अति अकेल बन बिपुल कलेसू। राजा का दो चार के साथ रहना भी एकान्त ही समझा जाता है। किसी के साथ न रहना अति अकेल है। मनसा वाचा कर्मणा व्यग्रता दिखलायी। दशरथजी ने विश्वामित्र की पूजा करके तब आने का कारण पूछा। भुसुण्डिजी ने भी गरुडजी से ऐसा ही किया। यही सदाचार है।

दसमुख सकल कथा तेहि आगे। कही सहित अभिमान अभागे ॥
होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी। जेहि बिधि हरि आनौ नृपनारी ॥१॥

अर्थ भाग्यहीन रावण ने सारी कथा अभिमान सहित उसके सामने कही : और फिर कहा तुम छल करनेवाला कपट मृग बनो। जिस उपाय से मै उस राजवधू को हर लाऊँ।

व्याख्या दशमुख कहने का भाव यह कि दसो दिशा मे देखता जाता है कि हमे कोई देखता तो नही। चोरी खुलने का डर है। रावण ने किसी से सब कथा

नही कहो। सूर्पणखा का नासिका छेदन केवल मारीच से कहा। सो भी भव भजन पद विमुख अभागी ने अभिमान के सहित कहा। यथा सूर्पनखा का धोखे मे नाक कान काटा। खर दूषण ऐसे मूर्ख थे लड़ने गये राम से सो आपस मे ही लड़कर मर गये। अब अकुश देता है। होहु कपट मृग तुम छलकारी। धनु की भांति लक्ष्य स्थिर करता है जेहि बिधि हरि आनौ नृपनारी।

उपाय मे परिवर्तन कर रहा है। बलप्रयोग के साथ स्त्रीहरण का सकल्प छोड़ दिया। स्त्रीहरण करके हठपूर्वक वैर करना यही निश्चय हो गया। कहने लगा कि तुम मायावी हो। कपट मृग बनो। मृग बनकर छल करो। अकुश का काम कर रहा है महा मत्त गजराज कहँ बसकर अकुस खर्वं। अब धनुष का लक्ष्य वेध काम करना है जेहि बिधि हरि आनौ नृपनारी। बहिन के नाक कान काटने का यही उत्तर है। अर्थात् वह विधि भी तुम्ही को ठीक करना पड़ेगा जिसमे लछिमन भी वहाँ से हट जायँ। व्यग्रता के उत्तर मे सकल कथा कही।

तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा। ते नररूप चराचर ईसा॥
तासो तात बयरु नहि कीजै। मारे मरिअ जिआएँ जीजै॥२॥

अर्थ तब मारीच ने कहा हे दशशीश! सुनिये। वे मनुष्यरूप मे चराचर के ईश्वर है। हे तात! उनसे वैर न कीजिये। उन्ही के मारने से मरना और उनके जिलाने से जीना होता है।

व्याख्या तेहि पुनि बोलने का मुहावरा है। यथा मैं पुनि निज गुरु सन सुनी। विशेष बात कहने के अर्थ मे पुनि का प्रयोग है। सकल कथा तेहि आगे कही सहित अभिमान ' का उत्तर मारीच देता है कि अभिमान जीव से चलता है ईश्वर से नही। तुमने चराचर से वैर किया। यथा तुम सुर असुर चराचर जीते। पर चराचर के स्वामी से वैर न करो।

मारे मरिअ जिआए जीजै उन्हे मारने जिलाने दोनो का अधिकार है सुबाहु को मारना चाहा मार डाला। मुझे भी मार डालते। मै तो उन्ही का जिलाया जीता हूँ। जेहि बिधि हरि आनउ नृपनारी का उत्तर यही है कि नारी का हरण करना और अपने काल को बुलाना एक ही बात है।

मुनि मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा॥
सत योजन आएउँ छन माँही। तिन्ह सन बयरु किए भल नाँही॥३॥

अर्थ यही राजकुमार मुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए गये थे। उस समय श्री रघुनाथजी ने बिना फल का बाण मुझे मारा था। जिससे मैं क्षण भर मे सौ योजन पर आ गिरा। उनसे वैर करने मे भलाई नही है।

व्याख्या होहु कपट मृग तुम छलकारी का उत्तर देता है कि मैं उनका बाण नही सह सकता। तब तो कोमल अवस्था थी। अब तो प्रौढ हुए होगे। मैं विघ्न करने गया था। वे रक्षा करने गये थे। फर सहित मारते तो मैं भी मर

जाता। उस वार छोड दिया। इस वार मार ही डालेंगे हम लोगो से लडने बिना सेना के गये थे।

बिनु फर बाण राम तेहि मारा। सत योजन गा सागर पारा। भयानक बाण का वेग है। हम शत योजन फेंकना क्या साधारण बल की बात है। छलकारी मृग क्या बनेंगे ? वहाँ कोई विधि वैठने की नही। एक बाण मे मामला तय है। ऐसे प्रबल पुरुषार्थी के साथ वैर न करो। यद्यपि तुम्हारा भला वैर करने ही से हुआ है। लका वैर से मिली। पुष्पक वैर से मिला। यहाँ तो मृत्यु ही मिलनी है।

भइ मम कीट भृ ग की नाई। जहँ तहँ मै देखऊँ दोउ भाई ॥
जौ नर तात तदपि अति सूरा। तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा ॥४॥

अर्थ मेरी दशा तो भृगी कीडे की सी हो गयी है। जहाँ तहाँ श्रीराम लक्ष्मण दोनो भाइयो को ही देखने लगा और हे तात! यदि वे मनुष्य हैं तो भी वडे शूरवीर हैं। उनसे बिरोध करने मे पूरा न पडेगा।

व्याख्या भृग से छोटा कीट चारा ओर भृग ही भृग देखता है। उसी भाति मेरी वुद्धि म विकार आगया। अत्यन्त भीत हो गया था। बाण लगने के पहिले दोनो भाइयो को देखा था। वे ही दोना सब जगह दिखाई पडने लगे। मेरा सामथ्य उनके बाण के सामने जाने का नही है।

तुष्यतु दुर्जनन्यायेन कहता है मैं तो नर नही मानता। यदि नर भी मान लो तो अतिशूर हैं। सबके विरोध से पूरा पडा। भुजबल बिस्व वस्य करि राखेसि कोउ न स्वतन्त्र। परन्तु इनसे पूरा न पडेगा।

दो जेहि ताडका सुबाहु हति, खडेउ हर कोदड।
खर दूपन तिसिरा बधेउ, मनुज कि अस बरिवड ॥२५ १९॥

अर्थ जिसने ताडका और सुवाहु को मारकर शिवजी का धनुप तोड दिया और खर दूपण और त्रिशिरा का वध कर डाला। ऐसा प्रचण्ड बली कही मनुष्य हो सकता है।

व्याख्या ये चारा अमानुप कर्म थे। ताडका वध से मुनि ने चीन्हा। यथा तब मुनि निज नायहि जिय चीन्हो। सुबाहु वध से देव मुनि ने चीन्हा। यथा अस्तुति करहि दव मुनि बृंदा। धनुप भग से तुलसी ने चीन्हा। यथा कोदड भजेउ राम तुलसी जयति बचन उचारही। खर दूपण वध से सूपनखा ने चीन्हा। यथा खल वध रत सुर मुनि सुखदाता। अत कहता है मनुज कि अस बरिवड। इस तर्क मे आप भी जान जाइये। बचपन से ही इनके सब अमानुप कर्म है।

मारग जात भयानक भारी। केहि बिधि तात ताडका मारी ॥
घार निसाचर बिकट भट समर गनहि नहिं काहु।
मारेउ सहित सहाय किमि खल मारीच सुबाहु ॥

कमठ पीठ पविकूट कठोरा। नृप समाज महँ सिव धनु तोरा॥
सकल अमानुष कर्म तुम्हारे।

जाहु भवन कुल कुसल बिचारी। सुनत जरा दीन्हेसि बहु गारी॥
गुरु जिमि मूढ करसि मम बोधा। कहु जग मोहि समान को योधा॥१॥

अर्थ अत अपने कुल की कुशल विचारकर आप लौट जाइये। यह सुनकर रावण जल उठा और उसने बहुत सी गालियाँ दी। और कहा अरे मूर्ख! तू गुरु की तरह मुझे ज्ञान सिखाता है? बता तो ससार म मेरे समान योद्धा कौन है?

व्याख्या मारीच ने कहा जो रास्ता तुम पकडना चाहते हो उससे तो कुल का नाश हो जायगा राम रोष पावक अति घोरा। होइहि सलभ सकल कुल तोरा। जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई। भाव यह कि मैं तो जाऊँगा ही नही। तुम भी यह उद्योग छोड दो। पर रावण मन्त्र दृढ किये हुए हैं। इसके विरोध मे सुनना नही चाहता। जबतक सिद्धान्त निश्चय की कोटि मे नही पहुँचता तब तक विरोधी तर्क सुनने की प्रवृत्ति होती है। अत बिगडा आज्ञा भङ्ग भी करता है और मुझे भी बेवकूफ भी बनाता है। सर्प की भाँति रावण पलट गया। अभी प्रणाम किया है। अभी गाली देने लगा। क्षुद्र लोगो की यही दशा है। स्वार्थ सधते न देखकर जल उठा। मार डालता पर काम लेना है। इससे गाली ही दिया। उल्लू गधा आदि मूर्खता द्योतक शब्दो का प्रयोग किया गोस्वामीजी प्रेम की गाली भी नही कहते। यह तो द्वेष मूलक थी। सर्पो की भाँति विष वमन करता है।

तू मूढ है। सरल बात नही समझता। वह मनुजो म बरिबड होगा। पर नर बानर केहि लखे माही। नर मेरा क्या कर सकता है। तुझे सौ योजन फेंक दिया तो इससे क्या हुआ? कौन सी बडी बात किया? गुरु बोध कराने का अधिकारी है। मैं महापण्डित और तू महा मूर्ख। तू मुझे बोध देने चला। तुझे यह अधिकार कहाँ से हुआ जो ज्ञान देने चला है।

तब मारीच हृदय अनुमाना। नवहि बिरोधे नहिं कल्याना॥
शस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद बंदि कबि भानस गुनी॥२॥

अर्थ तब मारीच ने हृदय मे अनुमान किया कि शस्त्रधारी, भेद जानने वाला, समर्थ स्वामी, हठी, धनवान, वैद्य, भाट, कवि और रसोइया इन नौ व्यक्तियो से वैर करने मे कुशल नही होता।

व्याख्या अनुमान द्वारा सामान्य से विशेष म अवतरण होता है। नौ के विरोध से कल्याण नही होता। यह भी नव म से हैं। अत इसमे भी विरोध नही करना चाहिए। हृदय मे अनुमान करता है। अपने कल्याण का निर्णय मन मे ही करना चाहिए।

शस्त्री से विरोध नही करना चाहिए। उसका विश्वास नही कब चोट कर बैठे। नदीना च नखीना च शृगीणा शस्त्रपाणिनाम्। विश्वासो नैव कर्त्तव्य स्त्रीपु राजकुलेपु च। शस्त्र न हो तो भी मर्मी से विरोध न करे। मर्म पर आघात करेगा। यथा नाभी कुण्ड पियूप बस याके। नाथ जियत रावण बल ताके शस्त्री, मर्मी न होने पर भी प्रभु का विरोध नही करना। यथा प्रभुअहि गनिअ न छोट करि। कुछ भी न हो यदि शठ हो जिद्दी हो तो भी बचना चाहिए। वह सब सङ्कट सहकर भी अपकार करेगा। धनी से भी वैर नही करना चाहिए। अर्थस्य पुरुपो दास नार्था दासो हि कस्यचित्। उसे बहुत सहायक मिलेंगे। वैद्य प्राणधनानि च। वैद्य तो प्राण के धन है। इनसे वैर कभी नही करना चाहिए। बदी जहाँ तहाँ अपकीर्ति फैलाते हैं। कविपद के लालित्य से लोग उस पद को स्मरण कर लते है और उसकी अपकीर्ति अमर हो जाती है। रसोइया के हाथ तो सदा प्राण रहता है। अत इनसे वैर करने मे कल्याण नही होता।

उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकेसि रघुनायक सरना ॥
उतरु देत मोहि बधब अभागे। कस न मरो रघुपति सर लागे ॥३॥

अर्थ जब मारीच ने दोना प्रकार से अपना मरण देखा। तब उसने श्रीरघुनाथजी की शरण ताकी। सोचा कि उत्तर देते ही यह अभागा मुझे मार डालेगा। फिर श्रीरघुनाथजी के बाण लगने से ही क्यो न मरूँ।

व्याख्या रामादपि च मर्तव्य मर्तव्य रावणादपि। उभयोर्यदि मर्तव्य वर रामो न रावण। जब राम से भी मरना है और रावण से भी मरना है तो राम के हाथ से मरना ठीक है रावण के हाथ से नही। भगवान् का कथन है जो नर होय चराचर द्रोही। आवै समय सरण तकि मोही। तजि मद मोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु समाना। सो यह कपट छल न छोड सका। अत साधु समान नही बनाया। पर साधु की गति दे दी। कपट छल सहित शरण जाने से वह दण्ड होता है।

प्रश्न था कहु जग मोहि समान को जोधा। उत्तर तो यही है कि तब चोरी से स्त्री हरण क्यो करते हो? जाओ छीन लाओ। पर यह उत्तर सुनते ही यह अभागा मुझ मार डालगा। अब यह अभागा है। अपने कुल भर का सहार अपनी आँखो देखेगा। मेरा मरण देखना इसके लिए क्या है! तो अभागे के हाथ क्यो मरूँ? यह भवभजन पद विमुख है रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहै सही। सो सही परम गति क्यो न लें।

अस जिय जानि दसानन सगा। चला राम पद प्रेमु अभगा ॥
मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहौ परम सनेही ॥४॥

अर्थ हृदय मे वह ऐसा समझकर रावण के साथ चला। श्रीरामजी के चरणो मे उसका अखण्ड प्रेम है। उसके मनम इस बात का अत्यन्त हर्ष है कि आज मैं

अपने परम स्नेही श्रीरामजी को देखूँगा; किन्तु उसने यह हर्ष रावण को नहीं जनाया।

व्याख्या : गाली खाकर भी चुप देखकर रावण ने समझ लिया कि ठीक हो गया। अब बिलाई का कार्य करता है। बिलाई जिस भाँति चूहे को दाब ले जाती है उस भाँति ले चला। दशानन के सङ्ग जा रहा है। किसी ओर से भागकर निकल नहीं सकता। फिर भी रामपद प्रेम अभग है। जाता है रावण के साथ प्रेम राम में है। जिसके साथ जाता है उसका काम करेगा। राक्षस भी अपना वर्ग नहीं छोड़ता। मनुष्य छोड़ देता है। रामके हाथसे मरने की अभिलाषा है। क्योंकि प्रेमी के हाथसे मरने में भी आनन्द है।

प्राणभय से दर्शन नहीं करते थे। अब तो दर्शन करेंगे। अद्भुत प्रेमी हैं। उसे बड़ा हर्ष है। पर उस हर्ष को दबाये हैं। कहीं रावण न जान जाय नहीं तो मुझ पर अविश्वास करके अभी मार देगा। वह जानता है कि प्रभु परम सनेही हैं। सबको मारा मुझे छोड़ दिया।

छं. निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं।
श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं॥
निर्बान दायक क्रोध जा कर भगति अबसहि बस करी।
निज पानि सर संधानि सो मोहि बधिहि सुखसागर हरी॥

अर्थ : अपने परम प्रियतम को देखकर नेत्रों को सफल करके सुख पाऊँगा। जानकीजी सहित और छोटे भाई लक्ष्मणजी समेत कृपानिधान श्रीरामजी के चरणों में मन लगाऊँगा। जिनका क्रोध भी मोक्ष देनेवाला है और जिनकी भक्ति उन स्वतन्त्र भगवान् को भी वश में करनेवाली है। अहा! वे ही आनन्द के समुद्र श्रीहरि अपने हाथों से बाण सन्धान कर मेरा वध करेंगे।

व्याख्या : प्रियतम नहीं परम प्रीतम : स तु प्राणस्य प्राणाः। होइहैं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पकज भवमोचन। उन्हें आँखभर देखूँगा। श्री सहित नहीं देखा था। अनुज समेत तो देखा था। कृपा निकेत हैं। ऐसी कृपा सुनी देखी नहीं गयी कि उनका क्रोध भी कृपा ही है। क्रोध करें तो निर्वाण दें। भगवान् सर्वतन्त्रस्वतन्त्र हैं। पर भक्ति से वश हो जाते हैं : रीझे बस होहिं खीझे देत निज धाम रे। खर दूषण सरकार के हाथ से नहीं मरे फिर भी निर्वाण पाया। सुखसागर के हाथ मरने में भी सुख है। मेरा भाग्य देखो कि मारने के लिए मुझे लक्ष्य बनावेंगे। जिसे मुनि लोग लक्ष्य बनाते हैं। प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत्। प्रणव धनु है। आत्मा शर है और ब्रह्म लक्ष्य है। सो बाण की भाँति तन्मय होकर सावधानी से लक्ष्यवेध करना चाहिए।

दो. मम पाछें धर धावत, धरे सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहौं, धन्य न मो सम आन॥२०.२६॥

अर्थ : धनुष बाण धारण किये मेरे पीछे पीछे पकड़ने के लिए पृथ्वी पर दौड़ते हुए प्रभु को मैं फिर फिरकर देखूँगा। मेरे समान धन्य दूसरा कोई नही है।

व्याख्या : शरासन बाणधारी मूर्ति ध्येय है। यथा : बन खेलत राम फिरैं मृगया तुलसी छवि सो बरनै किमि कै। जानकीजी का भी यह ध्यान था · जेहि बिधि कपट कुरग सग धाइ चले श्रीराम। वह छवि अपूर्व है मुनि जेहि ध्यान न पावहिं नेति नेति कह बेद। मृग घूम घूमकर शिकारी को देखता है। बडे बडे प्रेमी और क्या करते हैं ? देखन मिस मृग बिहँग तरु फिरै बहोरि बहोरि। ऐसा भाग्य किसी का हुआ नही कि जिसके पीछे पीछे रामजी दौडते फिरें।

तेहि बन निकट दसानन गएऊ। तब मारीच कपट मृग भएऊ ॥
अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक देह मनि रचित बनाई ॥१॥

अर्थ : जब रावण उस वन के निकट पहुँचा तब मारीच कपट मृग बन गया। वह अत्यन्त ही विचित्र था। कुछ वर्णन नही किया जा सकता। सोने का शरीर मणियो की पच्चीकारी करके बनाया था।

व्याख्या · आश्रम निकट नही गया। वन निकट गया। आश्रम से निकलकर वन जाना पडता था। यथा · लछिमन गये बनहिं जब लेन मूल फल कन्द। कारण यह कि दशानन है कोई भी पहिचान सकता है। वन का पता सूर्पणखा से लग चुका है। वन के निकट तक दोनो अपने रूप मे गये। वहाँ पहुँचने पर मारीच कपट मृग हुआ। होहु कपट मृग तुम छलकारी · का साफल्य। खरदूषण की ओर से पीछे माया हुई। रावण ने माया से ही कार्य प्रारम्भ किया।

बनने की तारीफ तो इसमें है कि भेद लखाई न पडे। परन्तु माया से बनी हुई वस्तु प्राकृत से सुन्दर होती है। यहाँ प्राकृत मृग भगवती का चित्त आकर्षण न कर सकेगा। वन मे मृग फिरा ही करते हैं। अत अवर्णनीय रूप अति विचित्र धारण किया। मृग पीले होते हैं। अत कनकदेह बनाया। दाँत श्वेत, खुर सीग कृष्ण, जिह्वा लाल। अत हीरा नीलमणि माणिक्य के बनाये। जड मे चेतन की भाँति लचकने की शक्ति है। अत· अति विचित्र कहा माया वराह भी अति विचित्र था : नील महीधर सिखर सम देखि बिसाल बराह।

३९. माया सीताहरण प्रसंग

सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेषा ॥
सुनहु देव रघुबीर कृपाला। येहि मृग कर अति सुंदर छाला ॥२॥

अर्थ : सीताजी ने उस परम सुन्दर हिरन को देखा। जिसके अंग अग की छटा अत्यन्त मनोहर थी। वे बोली हे देव ! हे कृपालु रघुवीर ! सुनिये। इस मृग की छाल बहुत सुन्दर है।

व्याख्या सूर्पणखा रुचिर रूप धरि प्रभु पहँ आई। पर काम न चला दोनों भाइयो ने प्रत्याख्यान किया। अत परम रुचिर मृग बना। सीताजी परम रुचिर मृग देखकर ही मोहित हो सकती हैं। सीताजी ने मृग रूप देखा। पर दोनों भाइयो ने मारीच रूप देखा। दोनो भाई कथा कहने सुनने मे लगे हैं। अत पहिले न देखा। यथा बैठे हैं राम लखन अरु सीता। पंचवटी वर पर्णकुटी तर कहैं कछु कथा पुनीता। एक एक अंग सुष्ठु मनोहर है। जहाँ जाय मन तहँइ लुभाई।

दिवि क्रीडाविजिगीषा के अर्थ मे आता है। उसी का देव शब्द बनता है। सरकार कौतुकी हैं। शिकारी है। अत देव शब्द सम्बोधन दिया। अथवा देव हैं राजा हैं। राजा रत्नभुक् होते हैं। यह मृग रत्न है। उनके पास रहने योग्य है। रघुवीर के लिए इसके वध मे मया रखखा है। मुझ पर कृपा कीजिये। इसे जीता पकड लीजिये तो पायि पालिवे योग मजु मृग मारेउ मंजुल छाला। गी०

सत्यसध प्रभु बध करि येही। आनहु चर्म कहति बैदेही ॥
तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काज सँवारन ॥३॥

अर्थ जानकीजी ने कहा हे सत्यप्रतिज्ञ प्रभो ! इसको मारकर इसका चमडा ला दीजिये। तब श्री रघुनाथजी मारीच के कपट मृग बनने का सब कारण जानते हुए देवताओं का कार्य बनाने के लिए हर्षित होकर उठे।

व्याख्या आप सत्यसन्ध है। आप का निशाना खाली नही जा सकता है और समर्थ हैं। मृग पर अत्यन्त मोहित हैं। अत उपर्युक्त विशेषण देती हैं। यदि जीता न पकडा जाय तो इसे मारकर चमडा ल आइये। शोभा तो इसके चर्म मे ही है। यदि आप प्रतिज्ञा कर लें तो अवश्य लावेंगे।

सब कारण जानते हैं। रावण का भेजा मारीच आगया। इसीलिए इसका वध नही किया था। समुद्र पार फेंक दिया था। इसी के द्वारा सब कार्य देवताओ का सुधरेगा। उठे हरषि जिस कार्य के लिए चौदह वर्ष वनवास स्वीकार किया वह उपस्थित हो गया। प्रतिज्ञा पूरी होने का लक्षण देखकर उठे हरषि। क्योकि सुर काज सँवारना है।

मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। करतल चाप रुचिर सर साँधा ॥
प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई ॥४॥

अर्थ हिरन को देखकर श्रीरामजी ने कमर मे फेंटा बाँधा और हाथ मे धनुप लकर उस पर सुन्दर बाण चढाया। फिर प्रभु ने लक्ष्मणजी को समझाकर कहा। हे भाई ! वन म बहुत से राक्षस फिरते हैं।

व्याख्या पकडने के लिए दौडना है। अत कमर कसा। परम रुचिर मृग है। इसलिए शर भी रुचिर है। छिपाकर सन्धान करते हैं। इसलिए करतल कहा। दृष्टि बराबर मृग पर ही रही। कही निकल न जाय। तुमसे खल मृग खोजत फिरही। पूरी तैयारी करके सीताजी की रखवारी का बन्दोबस्त करते हैं। स्त्रिया की सदा

रक्षा करनी चाहिए। उन्होने सरकार से कहा। अतः स्वयं उठे। लक्ष्मणजी को न कहा। सीय लखन जेहि बिधि सुख लहहीं। सोइ रघुबीर करहिं सोई करहीं।

समझाया कि हम लोग निशाचरो से बद्धवैर हो चुके। मृग ऐसा होता नही। मेरे जाने पर सीताजी पर चोट न हो। हम दोनो भाइयों से डरते है। सामना न करेंगे। चोट सीता पर है और राक्षसों को भी दूर दूर से आते जाते देखता हूँ। सम्भव है कि एक आवे अथवा बहुत से आ जावें। नासिका छेदन का उत्तर स्त्री हरण है। मारीच आगया कोई माया हुआ चाहती है।

सीता केरि करहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी ॥
प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाए रामु सरासन साजी ॥५॥

अर्थ : तुम बुद्धि और विवेक के द्वारा बल और समय का विचार करके सीताजी की रखवारी करना। प्रभु को देखकर मृग भाग चला। श्रीरामचन्द्रजी भी धनुष चढाकर उसके पीछे दौडे।

व्याख्या : रामजी ने कहा कि सीताजी की रक्षा तुम्हे सुपुर्द करता हूँ। स्त्री रक्षा मे चार बात की आवश्यकता होती है। केवल १ बल से ही रक्षा नही होती? शत्रु छल से भी काम लेते हैं। अत: उसके समझने के लिए २ बुद्धि चाहिए। स्त्रियाँ अविवेकी होती है। अत: ३ विवेक से काम लेना चाहिए। जैसा ४ समय देखे वैसा काम करे। समय के प्रतिकूल कार्य निष्फल होता है।

बँध्यो वैर निशिचरन्ह ते भयो विपुल सहार।
छलही उनको परम बल जानत सब ससार ॥१॥
साहस सनमुख समर को अब ये करिहहिं नाँहि।
सोचहि सीता हरन ही को उपाय मन माँहि ॥२॥
दूर दूर ते देखियत निशिचर परैं लखाय।
पै हम दोऊ वधु ढिग सकैं न ये नियराय ॥३॥
होय न प्राकृत हिरन यह मायामय मारीच।
पै कर्तव्य प्रधान मम जाते छीजे नीच ॥४॥
पाइ कुअवसर रचि सकत ये प्रपच बहु भाँति।
ताते तात सजग रहेउ मायावी यह जाति ॥५॥

मारीच के मन मे तो यह बात है : निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं। फिर भी साथ मे आने की लाज है। अत वहाँ से हटाने के लिए भाग चला। रामजी धनुष चढाये हुए ही दौडे। पीछा किया। भक्त का मनोरथ पूर्ण हो रहा है : मम पाछे धर धावत धरे सरासन बान। फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहौं, धन्य न मो सम आन।

निगम नेति सिव ध्यान न पावा। मायामृग पाछे सोइ धावा ॥
कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटै कबहुँ छपाई ॥६॥

अर्थ : वेद जिनके विषय मे नेति नेति कहकर रह जाते हैं और शिवजी भी जिन्हे ध्यान मे नही पाते। वे ही श्रीरामजी माया से बने हुए मृग के पीछे दौड़ रहे हैं। वह कभी निकट आ जाता है और फिर दूर भाग जाता है। कभी प्रकट हो जाता है और कभी छिप जाता है।

व्याख्या : सरकार का अद्भुत माधुर्य है। वेद वाणी से न पा सके। नेति नेति जेहि वेद निरूपा। योगी शिव ध्यान मे न पा सके : जो हर हिय नयनन्हि कबहुँ निरखे नही अघाय। ये लोग जिसके पाने के लिए पीछे दौड़ते है। आज वह मायामृग के पीछे दौड़ा। यह सरकार की नरलीला है। उमा करत रघुपति नर लीला।

मारीच मृग दूर ले जाने का प्रयत्न कर रहा है। यदि बहुत दूर चला जाय तो शिकारी हताश होकर फिर जाय। इसलिए निकट भी आ जाता है। निकट ही बना रहे तो पकड़ा जाय। इसलिए दूर भागता है। अलक्षित रहे तो फिर शिकारी निराश हो लौट जाय। इसलिए प्रकट हो जाता है और लक्षित रहे तो मारा जाय। इसलिए छिप भी जाता है।

प्रगटत दुरत करत छल भूरी। येहि बिधि प्रभुहि गयेउ लै दूरी ॥
तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा ॥७॥

अर्थ : इस प्रकार प्रकट होता और छिपता हुआ तथा बहुतेरा छल कपट करता हुआ वह प्रभु को दूर ले गया। तब श्रीरामचन्द्रजी ने ताककर कठोर बाण मारा। जिसके लगते ही वह घोर शब्द करके पृथ्वी पर गिर पड़ा।

व्याख्या : अपनी जान भी बँचाता है और शिकारी का साहस भी नहीं छूटने देता। अतः प्रगटत दुरत चला जा रहा है। छल भी खूब करता है। यथा : तुरत कीन्ह नृप सर संधाना। महि मिलि गयउ बिलोकत बाना। यह दूर ले जाने की विधि है। पञ्चवटी से वस्तर : रियासत ले गया। वही मृगवध हुआ है। अब वहाँ के वन मे मृग होते ही नही।

इससे मालूम होता है कि रामजी ने हल्के बाण मारे। जिसमे घायल हो जाय। मरे नही और मैं पकड़ लूँ। इसी से रुचिर शर साधा था। इस भाँति सरकार दूर चले आये। रावण को पूरा मौका देते है। जब देख लिया कि काफी दूर आ गये तब ताककर जिसमे निशाना न चूके और कठिन शर जो प्राण ले ले मारा। राक्षस माया करता है। सरकार उसकी माया को मानते जाते हैं और वह माया उलटी पड़ती जाती है। जानकी हरण दानो को इष्ट है। घोर पुकार : जिसमे शब्द पञ्चवटी तक पहुँचे।

लछिमन कर प्रथमहि लै नामा। पाछे सुमिरेसि मन महुँ रामा ॥
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरिसि राम समेत सनेहा ॥८॥

अर्थ : उसने पहिले लक्ष्मणजी का नाम लेकर पीछे मन मे श्रीरामजी का

स्मरण किया। प्राण त्याग करते समय उसने अपना राक्षसी शरीर प्रकट किया और प्रेम सहित श्रीरामजी का स्मरण किया।

व्याख्या होहु कपट मृग तुम छलकारी कहा है सो छलकारी का साफल्य कहते हैं। लक्ष्मण को पुकारता है। पीछे से राम का स्मरण मुक्ति के लिए करता है। जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुकुत होइ स्तुति गावा उसने रावण का काम कर दिया।

प्राण त्याग के समय कपट छोडा। देह जो मृग रूप मे छिपा था प्रकट कर दिया। सादर सुमिरन जे नर करही। भव बारिधि गोपद इव तरही। स्नेह के साथ स्मरण ही सादर सुमिरन है।

अतर प्रेमु तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्ह सुजाना ॥९॥

अर्थ सर्वज्ञ श्रीरामजी ने उसके हृदय के प्रेम को पहचानकर उसे वह गति दी जो मुनियो को भी दुर्लभ है।

व्याख्या जगत् म ऐसे प्रेम की पहिचान नही है। विरोधी क्रियाओं के बीच मे अन्त प्रेम सरकार ने पहिचान लिया। सुजान है। उसे मुनिदुर्लभ गति दी। रीझत राम सनेह निसोते। निर्वाण मुनिदुर्लभ है। पर प्रभु ज्ञानशिरोमणि हैं। ऐसी दुर्लभ गति भी उस राक्षस का दे दी। तन ताकेसि रघुनायक सरना का साफल्य। सरकार ने भी ताककर बाण मारा कि मोक्ष हो जाय।

दो विपुल सुमन सुर बर्षहि, गावहि प्रभु गुन गाथ।
निज पर दीन्ह असुर कहुँ, दीनबन्धु रघुनाथ ॥२७ २१॥

अर्थ देवता बहुत से फूल बरसा रहे हैं और प्रभु के गुणो की गाथाएँ गा रहे हैं कि श्री रघुनाथजी ऐसे दीनबन्धु हैं कि उन्होंने असुर को अपना परम पद दे दिया।

व्याख्या खर दूषण वध म हर्षित बर्षहि सुमन सुर बाजहि गगन निसान। यहाँ निसान नही बजाते। रावण सुन लेगा। हर्षित भी नही हैं। सीता हरण हो रहा है पर उनके कल्याण की सिद्धि प्रारम्भ हो गयी। अत विपुल सुमन बरसा रहे हैं कि ऐसे दीनबन्धु हैं कि इसे अपना पद दिया। यह पक्का असुर था। प्रभु को पहिचानने पर भी इसने पराकाष्ठा की खलता की। मिलत एक दारुण दुख देही। असुर भी दीन हो जाय तो उसे निज पद देते हैं। सुमिरेसि राम समेत सनेहा। उसकी दीनता है।

खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा। सोह चाप पर कटि तूनीरा ॥
आरत गिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता ॥१॥

अर्थ दुष्ट मारीच को मारकर श्री रघुवीर तुरन्त लौट पडे। हाथ म धनुष

और कमर में तरकस शोभा दे रहा है। इधर जब सीता ने दुःख भरी वाणी सुनी तो वे बहुत ही भयभीत होकर लक्ष्मणजी से कहने लगी।

व्याख्या : यद्यपि मुनि दुर्लभ गति मिली पर था वह खल : परहित घृत जिनके मन माखी। जिमि कुठार चंदन आचरनी। प्रभु ने उसका प्राण छोड़ दिया था। सो उनके साथ इसने ऐसा घात किया। तुरत फिरे। उसके पुकारने पर चिन्ता हुई कि यह शब्द सीता सुनी होगी तो उसका क्या हाल हुआ होगा। इसने छल किया है। लक्ष्मण को सीताजी के पास से हटाने के लिए सीता हरण का उद्योग राक्षसों की ओर से हो रहा है। रघुवीर हैं। एक राक्षस को मारा। औरों का सामना करने के लिए त्वरा है। सीताजी ने जिन शब्दों से सम्बोधन किया है उनका साफल्य कवि ने दिखलाया। देव शब्द का साफल्य लिख चुके हैं। रघुवीर शब्द का साफल्य यहाँ हुआ। निज पद दीन्ह असुर कहँ : से दयाल शब्द सफल हुआ। तब तक राम कठिन सर मारा : से सत्यसन्ध शब्द का सफल हुआ। बिपुल सुमन सुर बर्षहि गावहि प्रभु गुण गाथा : से प्रभु शब्द सफल हुआ। खल वध से ही चाप तूणीर की शोभा है। यथा : तुम से खल मृग खोजत फिरही। काम न होने से हाथ में तीर नहीं है।

सुनी तो लछिमन ने भी पर बुद्धि से काम लिया। समझ गये कि मारीच की चाल है। पर सीताजी सुनकर परम सभीत हो गयी। तन पसेव कदली जिमि कांपी। पति भाव प्रधान है। ऐश्वर्य पर ध्यान नहीं है। जानती हैं कि लछिमन ने भी सुना। सुनकर उन्हें कोई तरद्दुत नहीं हुआ। फिर भी कहती हैं : सुनहु तात कोउ तुमहि पुकारत प्राणनाथ की नाई। कह्यो लखन हत्यो हिरन कोपि सिय हठि पठयो बरियाई। गीतावली.

जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहँसि कहा सुनु माता॥
भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहु संकट परै कि सोई॥२॥

अर्थ : तुम शीघ्र जाओ। तुम्हारे बड़े भाई सङ्कट में हैं। लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा : हे माता ! सुनो : जिनके भौं के इशारे मात्र से सारी सृष्टि और प्रलय हुआ करता है वे रामजी क्या कभी स्वप्न में भी सङ्कट में पड़ सकते हैं ?

व्याख्या : सङ्कट है देर करने से प्राणान्त होगा। भ्राता कहने से भाव यह : होहि कुठायँ सुबंधु सहायें। लक्ष्मणजी ने हँस दिया। इतने दिन साथ रही। महिमा न जान पायी। जब से सुमित्राजी ने कहा है : तात तुम्हार मातु बैदेही। तब से माँ कहते हैं : यह लक्ष्मणजी का विवेक है।

सृष्टि के भीतर ही सब जीव हैं। उन्ही से सङ्कट की सम्भावना है। सो सृष्टि और लय उनके भृकुटि विलास से होता है। इतनी बड़ी उनकी महिमा है। उन्हें सङ्कट की सम्भावना स्वप्न में भी नहीं। क्योंकि जाग्रत् के संस्कार से ही स्वप्न होता है। सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा।' रामहि समर न जीतन हारा। अतः लक्ष्मणजी कहते हैं कि यह राक्षस के मरणकाल का चिग्घाड़ है।

मरम बचन जब सीता बोला । हरि प्रेरित लछिमन मन डोला ॥
बन दिसि देव सौंपि सब काहू । चले जहाँ रावन ससि राहू ॥३॥

अर्थ इस पर सीताजी जब मर्म वचन कहने लगी तब भगवान् की प्रेरणा से लक्ष्मणजी का मन भी चञ्चल हो उठा। वे श्री सीताजी को वन और दिशाओं आदि के देवताओं को सौंपकर वहाँ चले जहाँ रावणरूपी चन्द्रमा के लिए राहुरूपी श्रीरामचन्द्रजी थे।

व्याख्या हँसने से खराब अर्थ लगा। तब मर्माघात करनेवाला अनुपयुक्त वचन कहा। इस बात को कवि ने अनुपयुक्त पद प्रयोग से दिखलाया सीता बोला अनुपयुक्त प्रयोग सा मालूम पडता है। पर अशुद्ध नहीं है। बोल धातु रूप है। उसे भूतकाल के अर्थ मे प्रयुक्त किया। ऐसा ही करते है। यथा कह सीता सुनु जती गोसाईं। कह सीता धरि धीरज गाढा। यहाँ केवल धातु रूप भूतकाल के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। अकार को दीर्घ तुकबन्दी के लिए किया। यथा मन अस रहन कहिहि मोहि रामा। अत बोला का प्रयोग अशुद्ध नहीं है।

लक्ष्मण का मन मर्म वचन सुनने पर भी न डोलता। पर हरि की प्रेरणा के आगे कुछ नही चलता हरि इच्छा भावी बलवाना।

यह लक्ष्मण का समय विचार है कि वनदेव, वनदेवी, दिशिदेव तथा जितने जीवजन्तु हैं सबको सौंपा। अर्थात् भगवान् विश्व रूप को सौंपा। राहु से चन्द्र प्रभाहीन हो जाते है। इसी भाँति रामजी से रावण भी प्रभाहीन हो गया है। यथा राक्षसान् मर्त्यरूपेण राहुर्मनसिज यथा। प्रभाहीनास्तथा कृत्वा राज्यार्हाणा महीभृताम्।

सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती के बेषा ॥
जाकें डर सुर असुर डेराही। निसि न नीद दिन अन्न न खांही ॥४॥

अर्थ · रावण शून्य के बीच देखकर सन्यासी के वेष मे श्री सीताजी के समीप आया। जिसके डर से देवता और दैत्य तक इतना डरते है कि रात को नीद नही आती और दिन म भर पेट अन्न नही खाते।

व्याख्या · वहाँ कोई नही था और चारो ओर रेखा खिची हुई थी। यथा रामानुज लघु रेख खँचाई। सो नहिं असि नाघेहु मनुसाई। तब यती के वेष से निकट आया जिसम विश्वास हो। अर्घ पाद्य भिक्षा देने के लिए शून्य से बाहर आजायें। त्रिदण्डी का रूप धारण किया जिसमे शिखा यज्ञोपवीत रह सके। यती से स्त्री हरण की आशङ्का ही नहीं होती।

जिसके डर से देवताओ को रात के समय नीद नही लगती। यथा सो किमि सोअ सोच अधिकाई। सोच से क्षुधा भी मारी जाती है। गले अन्न नही उतरता। देवताओ का अन्न अमृत है। सो श्रौत कर्म से बनता है। श्रौतकर्म दिन को ही होता है। अत दिन को अन्न न खाना कहा।

सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं ॥
इमि कुपथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा ॥५॥

अर्थ : वही दस सिरवाला रावण कुत्ते की तरह इधर उधर ताकता हुआ भड़िहाइ चोरी के लिए चला। हे गरुडजी! इस प्रकार कुमार्ग पर पैर रखते ही शरीर मे तेज तथा वुद्धि एव वल का लेश भी नही रह जाता।

व्याख्या रावण ऐसा पराक्रमी था और परमेश्वर की देन म भी उसे नव सिर अधिक मिले थे। सो यती का वेप धारण करके चला। यती को स्त्री की इच्छा होना ही कुत्तापन है। ऐसे को वान्ताशी कुत्ता कहते हैं। कही मालिक मकान देख न ले। लक्ष्मण या राम आ न जायँ। इस भय से रावण इधर उधर देखते जैसे भड़िहाई के लिए कुत्ते चलते हैं वैसे चले। खुले घर मे कुछ खाने को चीज पा जाने की लालच से दिहात मे कुत्त भड़िहाई के लिए चलते है। उन्हे डर लगा रहता है कि कही घर का मालिक न आजाय। नही तो बिना मारे नही छोडेगा।

स्वान कहकर तेज नाश कहा। इत उत चितइ चला से बल का नाश कहा। भड़िहाई से वुद्धि का नाश कहा।

नाना बिधि कहि कथा सुहाई। राजनीति भय प्रीति देखाई ॥
कह सीता सुनु जती गोसाईं। बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं ॥६॥

अर्थ रावण ने अनेको प्रकार की सुहावनी कथाएँ रचकर सुनायी सीताजी को राजनीति भय और प्रेम दिखलाया। सीताजी ने कहा हे यति गोसाईं! तुमने तो दुष्ट की तरह वचन कहे।

व्याख्या सन्यासी को उपदेश का अधिकार इन्द्र और अहिल्या की कथा कहा। राजा का रत्नभुक् होना कहा। भगवती को स्त्री रत्न कहा। राजा के अपमान करनेवाले को घोर दण्ड होता है। तुम महल मे रहने योग्य हो। मैं बहुत दिन से प्रीति करता हूँ।

सीताजी की ओर से सभ्यता की पराकाष्ठा है। यती को साक्षात् दुष्ट नही कहती। दुष्ट की नाईं कहती हैं। वेप के अनुकूल वचन नही हैं। मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्।

तब रावन निज रूप देखावा। भई सभय जब नामु सुनावा ॥
कह सीता धरि धीरजु गाढा। आइ गएउ प्रभु रहु खल ठाढा ॥७॥

अर्थ जब रावण ने अपना असली रूप दिखलाया और जब नाम सुनाया तब तो सीताजी भयभीत हो गयी। उन्होने गहरा धीरज धरकर कहा अरे दुष्ट! खडा तो रह! प्रभु आगये।

व्याख्या मैं यती नही हूँ इस बात के कहने के बदल अपना स्वरूप दिखलाया। अत उसके नाम से भय होता था। यथा कोधी स्रवण सुनेसि नहिं

मोही। नाम सुनकर सीताजी डरी कि इससे तो वैर बँधा हुआ है। इसके बहिन की नाक काटी गयी है। यह वैर चुकाने आया है। अत समीत हुईं।

ऐसी सभीत हुईं कि बहुत बडा धीरज धारण करके बोलने म समर्थ हुईं। सीताजी ने पहिला प्रयत्न उसके भगाने का किया कि प्रभु का आना सुनकर भाग जायगा। अपना स्वरूप धारण करने पर खल कहती हैं। जानती हैं कि दोनो सरकारो के न रहने पर इसे आने का साहस हुआ है।

जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा। भएसि कालबस निसिचर नाहा ॥
सुनत बचन दससीस रिसाना। मन महुँ चरन बदि सुख माना ॥८॥

अर्थ जैसे सिह की स्त्री को क्षुद्र खरगोश चाहे वैसे ही अरे राक्षसराज! तू काल के वश हुआ है। यह वचन सुनकर रावण लज्जित हो गया। पर मन म उसने सीताजी के चरणो की वन्दना करके सुख माना।

व्याख्या को प्रभु सग मोहि चितवन हारा। सिह बघुहि जिमि ससक सियारा। मै स्वय तेरा सहार करने मे समर्थ हूँ। शश को सिह वधू की चाह होना ही उसके कालवश होने का चिह्न है। नही तो सिहवधू की कामना कैसे करेगा।

उसने अपना स्वरूप दिखाया। नाम सुनाया वश मे लाने के लिए। यदि जानता कि इस भाँति फटकारा जायगा तो नाम न कहता। नाम सुनकर भी उसे शश कह रही है। अपने को सिहवधू कहती हैं। इस तेजस्विता पर लज्जित हो गया।

भगवती का उपासक है एहि के हृदय बस जानकी, जानकी उर मम बास है। भगवती के ध्यान से ही अजेय है। काटत सिर होइहि बिकल छूट जाइहि तब ध्यान। तब रावणहि हृदय महँ मरिहहि राम सुजान। जगदम्बा के उचित क्रोध पर मन मे सुख हुआ।

दो क्रोधवत तब रावन, लीन्हिसि रथ बैठाइ।
चला गगनपथ आतुर, भयँ रथ हाँकि न जाइ ॥२८ २२॥

अर्थ फिर क्रोध म आकर रावण ने सीताजी को रथ मे बिठा लिया और वह बडी उतावली के साथ आकाश मार्ग से चला। किन्तु डर के मारे उससे रथ हाँका नही जाता था।

व्याख्या माया से रथ उपस्थित हो गया। उस पर केश पकडकर सीताजी को बिठा लिया और गगन पथ से चला जहाँ मनुष्य की गति नही। भय से हाथ पैर भारी हो गये कि कहीं राम लक्ष्मण आ न जायँ। रथ हाँकते नही बनता। पर रावण का रूप देखते ही वनदेवी वनदेव तथा भूत मात्र भयभीत हो गये। अत वे भी रक्षा नही कर सके।

हा जगदेक बीर रघुराया। केहि अपराध बिसारेहु दाया ॥
आरति हरन सरन सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिननायक ॥१॥

अर्थ : हा जगत् के अद्वितीय वीर श्रीरघुनाथजी। आपने किस अपराध से मुझ पर दया भुला दी। हे दु:खो के हरनेवाले। हे शरणागत को सुख देनेवाले। हा रघुकुलरूपी कमल के सूर्य।

व्याख्या : जोर से चिल्लाती हैं कि सरकार तक शब्द पहुँचे। जगदेक वीर यथा : तुला पिनाक साहु नृप परिजन भट बटोरि सबके वल जोखे। परसुराम से वीर सिरोमनि क्षनमँह भये खेत के से धोखे। रघुराया सिव अज पूज्य चरन रघुराई। रघुकुल की प्रतिष्ठा की रक्षा इन्ही से है। विरह का प्रलाप है। प्रभु को पता भी नही। फिर भी मानो जानकर दया विसरा दिया। ऐसा उपालम्भ करती हैं। भर्ता को आज्ञा दी है यह अपराध अवश्य है सत्यसन्ध प्रभु बध कर एही। आनहु चर्म कहति वैदेही। पर यह ऐसा अपराध नही जिससे दया विस्मरण हो जाय। आप की तो दया विस्मरण होती ही नही।

आरति हरण से अपना आर्त्त होना कहा. जपहि नाम जन आरत भारी। मिटहि कुसक्ट होहि सुखारी। शरण सुखदायक से अपना शरण होना कहा। स्त्री को पति ही शरण है। आप शरण सुखदायक हैं मैं दु खी हूँ। आप दिननायक हैं : मैं रघुकुल की ही कमलिनी हूँ।

हा लछिमन तुम्हार नहि दोसा। सो फलु पायेउँ कीन्हेउँ रोसा॥
बिबिध बिलाप करति बैदेही। भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही॥२॥

अर्थ : हा लक्ष्मण तुम्हारा दोष नही है। मैने क्रोध किया उसका फल पाया। हा। प्रभु की कृपा तो बहुत हैं। परन्तु स्नेही प्रभु बहुत दूर रह गये हैं। एव श्रीजानकीजी बहुत प्रकार से विलाप कर रही हैं।

व्याख्या : अब देवर को स्मरण करती हैं। लक्ष्मण के हटाने का मै ही कारण हुई। मैं लक्ष्मण का दोष समझती थी। सो उनका दोष नही था। दोष हमारा था जो निर्दोष पर क्रोध किया। उसका फल पाया। प्रभु का वियोग हुआ। लक्ष्मण ऐसे देवर क्या रोष योग्य हैं।

कवि ससार की गति दिखलाते हैं कि वैदेही विविध विलाप करती है और कहती हैं कि प्रभु समर्थ हैं। कृपा भी बहुत है। स्नेह भी हैं। इसके हाथ से छूटने का सभी योग है। पर दूर हैं। मेरे शब्द उन तक नही पहुँचते।

बिपति मोर को प्रभुहि सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा॥
सीता कै बिलाप सुनि भारी। भए चराचर जीव दुखारी॥३॥

अर्थ : प्रभु को मेरी यह विपत्ति कौन सुनावे। पुरोडाश को गदहा खाना चाहता है। सीताजी का भारी विलाप सुनकर जड चेतन सभी जीव दु खी हो गये।

व्याख्या : कोई ऐसा नही जो मेरी विपत्ति प्रभु को सुनावे। किसी ने हरण करते नही देखा। न ले जाते कोई देख रहा है। फिर हमारी विपत्ति उन्हे कौन सुनावेगा ? जल मे डूब जाने या हिंसक जन्तु के खा जाने का भ्रम हो सकता है :

पुरोडाश चावल की टिकिया यज्ञाग्नि मे पकायी जाती है। उसे यज्ञ के बाहर के लोग नही प्राप्त कर सकते। दूर्वाकन्दनिकन्दन का उससे कौन सम्बन्ध।

विलाप मे इतनी करुणा थी कि स्थावर जङ्गम जीव दु खी हो गये। द्रवहि बचन सुनि कुलिस कठोरा। भाव यह कि वनदेव वनदेवी लोकपाल सब दु खी है। पर किसी को सामर्थ्य नही कि हिल सके।

गीधराज सुनि आरत बानी। रघुकुल तिलक नारि पहिचानी॥
अधम निसाचर लीन्हे जाई। जिमि मलेच्छ बस कपिला गाई॥४॥

अर्थ गीधराज जटायु ने सीताजी की दु ख भरी वाणी सुनकर पहिचान लिया कि ये रघुकुल तिलक श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी हैं। नीच राक्षस इनको लिये जा रहा है जैसे कपिला गाय म्लच्छ के पाले पड गयी हो।

व्याख्या पर गीधराज ऐसे नही है। अत इनका सुनना पृथक् लिखते है। आर्त्त के गीधराज सहायक हैं। तिस पर ' हाँ जगदेक वीर रघुराया से समझ लिया कि ये रघुकुल तिलक की स्त्री हैं और मेरी रघुकुल से मैत्री है।

अधम निशाचर चोरी से लिये जा रहा है। कपिला गाय बडी सीधी होती है। म्लच्छ गोभक्षक होते हैं। उनसे गाय का छुडाना सबका परम धर्म है। ऐसे प्रयत्न में प्राण की आहुति देना ही प्राप्त है। खर दूषण भी निशाचर थे। पर अधम नही थे। लडकर सीताजी को लिया चाहते थे। यह अधम है।

सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहौ जातुधान कर नासा॥
धावा क्रोधवत खग कैसे। छूटै पवि पर्वत कहूँ जैसे॥५॥

अर्थ हे सीते पुत्रि! भय मत कर। मै इस राक्षस का नाश करूँगा। वह पक्षी क्रोध मे भरकर कैसे दौडा जैसे पर्वत की ओर वज्र छूटता हो।

व्याख्या महाराज दशरथ का मित्र होने से वृद्ध होने से पुत्रि कहता है। अभय देता है। मैं मौजूद हूँ। मैं यातुधान का नाश करूँगा। सीताजी को ढाढस बँधाया और रावण को सचेत किया।

नीचे से ऊपर जा रहा है। वेग ऐसा है कि मालूम हाता है कि ऊपर से नीचे टूट रहा है। वज्र से ही पर्वत क पक्ष कटे है। पर्वत पर प्रहार करनेवाला वज्र ही है। सो गीधराज वज्र की भाँति रावणरूपी पर्वत आ रहे हैं।

रे रे दुष्ट ठाढ किन होई। निर्भय चलेसि न जानेहि मोही॥
आवत देखि कृतात समाना। फिरि दसकधर कर अनुमाना॥६॥

अर्थ . रे रे दुष्ट! खडा क्यो नही हाता? निडर हाकर चल दिया। मुझे तूने नही जाना। उसको यमराज के समान आता हुआ देखकर रावण घूमकर मन मे अनुमान करने लगा।

व्याख्या : रावण निकला चला ही जा रहा है। अतः खड़ा होने के लिए ललकारा। मेरी पहिले ही ललकार : करिहौं जातुधान कर नासा। पर ही खड़ा हो जाना चाहता था। अतः कारण पूछते हैं। तू राम लक्ष्मण के दूर होने से निर्भय जा रहा है। यह तुझे नहीं मालूम कि मैं पहरे पर हूँ। अपना पुरुषार्थ घोषित किया।

रावण ने मुड़कर देखा कि काल की भाँति क्रुद्ध चला आ रहा है। रावण लौट पड़ा कि इसके वेग के सामने रथ का वेग कुछ नहीं है। अनुमान करता है कि यह है कौन ? बड़ा भारी है। इतना बड़ा कौन हो सकता है ?

की मैंनाक कि खगपति होई। मम बल जान सहित पति सोई ॥
जाना जरठ जटायू एहा। मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा ॥७॥

अर्थ : यह या तो मैनाक पर्वत है या पक्षियों का स्वामी गरुड़ है। पर वह तो अपने स्वामी विष्णु सहित मेरे बल को जानता है। रावण ने उसे पहिचान लिया कि यह तो बूढ़ा जटाय है। यह मेरे हाथरूपी तीर्थ में शरीर छोड़ेगा।

व्याख्या : पर्वत है पर उड़ रहा है तो यह मैनाक है और कोई पर्वत तो उड़ नहीं सकते। निकट आने पर चोंच आदि दिखायी पड़े तब कहता है कि गरुड़ है पर अनुमान से तो यही सिद्ध है कि गरुड़ नहीं हो सकता। क्योंकि विष्णु और गरुड़ दोनों मेरे बल को जानते हैं : साहिब महेस सदा संकत रमेस मोहि।

जब और निकट आया तो उसके मुँह से निकल पड़ा कि यह तो बूढ़ा जटायु है। इनकी जवानी सत्ययुग में थी। यथा : हम दोउ बंधु प्रथम तरुनाई। त्रेता ब्रह्म मनुज तन धरिहि। बूढ़ा कहने का भाव कि अब इसमें बल नहीं है। वृद्धावस्था से दु:खी होकर शरीर छोड़ने के लिए मेरे पास चला आ रहा है। मेरे कररूपी तीर्थ में शरीर विसर्जन करेगा।

सुनत गीध क्रोधातुर धावा। कह सुनु रावण मोर सिखावा ॥
तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू। नाहि तो अस होइहि बहुबाहू ॥८॥

अर्थ : यह सुनकर गीध क्रोध में भरकर बड़े वेग से दौड़ा और बोला : रावण ! मेरा सिखावन सुन। जानकीजी को छोड़कर कुशल पूर्वक अपने घर चला जा। नहीं तो हे बहुत भुजाओंवाले ! ऐसा होगा कि :

व्याख्या : क्रुद्ध तो पहिले ही थे। पर इसका उत्तर ऐसा था कि गीधराज क्रोधातुर हो गये। पर वृद्ध कहा था इससे शिक्षा देने के लिए ठहर गये और कहा कि मेरी सीख सुन। भाव यह कि तू किसी की सीख नहीं सुनता। यदि पुलस्त्य और विश्रवा की सीख सुनता तो ऐसे कर्म में हाथ ही न लगाता। मैं परलोक की शिक्षा नहीं देता हूँ। इस लोक की ही शिक्षा देता हूँ : दोनों दोनों को पहिचान गये।

पहिले मैं ही तुम्हे कुशल से घर न जाने दूँगा। पर तुझे बहुत बाँह है। कदाचित् मेरे हाथ से बँचा भी तो :

राम रोष पावक अति घोरा। होइहि सकल सलभ कुल तोरा ॥
उतरु न देत दसानन जोधा। तबहिं गीध धावा करि क्रोधा ॥९॥

अर्थ : श्रीरामजी के क्रोधरूपी अत्यन्त भयानक अग्नि मे तेरा सारा वंश फनगा होकर भस्म हो जायगा। योद्धा रावण कुछ उत्तर नही देता। तब गीध क्रोध करके दौडा।

व्याख्या : जो घर कुशल सहित पहुँचे तो कुल सहित नाश होगा। रामजी का रोष घोर पावक है। पावक तुम्हारे कुल को भस्म कर देगा : यद्यपि लघुता राम कहँ तोहि बधे बड दोष। तदपि कठिन दसकठ सुनु क्षत्रि जाति कर रोष। राम रोष अति घोर पावक है। किसी को भी न छोडेगा। जानकी के छोड देने से बच जाओगे।

उत्तर कोई है नही। प्रत्युत्तर मे राम लक्ष्मण के आजाने का भय भी है। रावण योद्धा है। लड़ने को तैयार हो गया। गीधराज ने समझ लिया कि यह न मानेगा तब क्रोध से दौडे।

धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा। सीतहि राखि गीध पुनि फिरा ॥
चोचन्ह मारि बिदारेसि देही। दंड एक भइ मुरुछा तेही ॥१०॥

अर्थ : उसने रावण को बाल : शिखा पकडकर उसे रथ के नीचे गिरा दिया। रावण पृथ्वी पर गिर पडा। गीध सीताजी को अपने घोसले मे बिठाकर फिर लौटा और चोचो से मार मारकर रावण के शरीर को विदीर्ण कर डाला। इससे उसे एक घडी के लिए मूर्च्छा हो गयी।

व्याख्या : पहिला काम विरथ करना है। अत केश पकडकर पृथ्वी पर नीचे फेंक दिया। चोच से सिवाय केश पकडकर फेंकने के और क्या उपाय था! जब से रावण अपने को सँभाले तब तक अपने घोसले मे सीताजी को रखकर जहाँ रावण था वहाँ गीधराज आये। युद्ध के बीच मे सीताजी के रहने से युद्ध न हो सकेगा : रावण के केश पकडनेवाले गीधराज मन्दोदरी के केश पकडनेवाले हनुमानजी।

चोच के प्रहार भयानक हैं। किसी अस्त्र से नही रुकते। गीधराज पर चोट करता है तो पङ्ख पर रोकते है। गीधराज ने रावण के वज्र जैसे शरीर को विदार डाला। दूसरा वीर मर जाता। पर वह प्रसाद से न मरा। एक दण्ड मूर्च्छित हो गया। गीधराज खडे हैं। मूर्च्छित वीर पर चोट नही करते हैं।

तब सक्रोध निसिचर खिसिआना। काढेसि परम कराल कृपाना ॥
काटेसि पख परा खग धरनी। सुमिरि रामु करि अद्भुत करनी ॥११॥

अर्थ : तब खिसियाये हुए रावण ने क्रोधयुक्त होकर अत्यन्त भयानक तलवार निकाली और उससे जटायु के पख काट डाले। जटायु अद्भुत करणी करके और श्रीरामजी को स्मरण करके पृथ्वी पर गिर पडे।

व्याख्या : बल न चलने पर खिसिआया । जिसको वृद्ध समझकर अनादर किया उसी के हाथ से मूर्च्छा हुई । अतः खिसियाया । कराल अस्त्रों से काम न चला तब परम कराल कृपाण निकाला । यह शङ्करदत्त चन्द्रहास कृपाण है । इसके चोट से कोई बचता नही । पख से ही शस्त्र रोकते हैं सो पख ही काटा ।

आकाश में युद्ध होता था । पंख कटने से जटायुजी पृथ्वी पर गिरे । यथा : पंख बिनु खग अति दीना । गिरते समय राम का स्मरण किया मृत्यु समझकर । अद्‌भुत करणी : ऐसी दुर्दशा रावण की कोई कर न सका था । मुये मरत मरिहैं सकल घरी पहर के बीच । लह्यो न काहू आजुलौं गीधराज की मीच ।

सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी । चला उताइल त्रास न थोरी ॥
करति बिलाप जाति नभ सीता । ब्याध बिबस जनु मृगी सभीता ॥१२॥

अर्थ : सीताजी को फिर रथ पर चढाकर रावण बड़ी उतावली के साथ चला । उसे भय कम न था । सीताजी आकाश मे विलाप करती हुई जा रही है । मानो व्याध के वश में पड़ी हुई कोई भयभीत हिरनी हो ।

व्याख्या : पहिले : क्रोधवंत तब रावण लीन्हेसि रथ बैठाई । अब : सीतहि जान चढाई बहोरी । चला । पहिले : चलेउ गगन पथ आतुर । अब : चला उताइल । पहिले : भय रथ हाँकि न जाय । अब : त्रास न थोरी । अभी तो गीध मिला न जाने अब कौन मिले ।

सीताजी का फिर विलाप आरम्भ हुआ । अब आकाश में विलाप हो रहा है । कपिला गौ म्लेच्छ वश होने पर विलाप मात्र करती हैं और मृगी वन्यजन्तु हैं छटपटाती हैं । पर मृगी को छुड़ाने कौन आवे : अब कोई छुड़ाने न आवेगा । जिस दृष्टि से जटायु ने देखा उस दृष्टि से दूसरा कोई देख न सका । इसलिए मृगी की उपमा दी ।

गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी । कहि हरि नामु दीन्ह पट डारी ॥
एहि बिधि सीतहि सो लै गएऊ । बन असोक महु राखत भएऊ ॥१३॥

अर्थ : पर्वत पर बैठे हुए बन्दरों को देखकर सीताजी ने हरिनाम लेकर वस्त्र डाल दिया । इस प्रकार वह सीताजी को लें गया और उन्हे अशोक वन मे जा रक्खा ।

व्याख्या : गिरि ऋष्यमूक पर मन्त्रियों के सहित सुग्रीव विचार कर रहे थे । सीताजी को बड़ी चिन्ता है कि गीधराज भी मारे गये । अब फिर वही प्रश्न उठा : बिपत मोर को प्रभुहि सुनावा । अतः आभूषण बांधकर सुग्रीव की ओर फेंका और राम राम हा राम ऐसा पुकारा । भाव यह कि मैं राम की हूँ । राम को पट देना । हा राम ! अर्थात् इच्छा के प्रतिकूल यह लिये जाता है । रावण ने व्यग्रता में इस बात का ध्यान न किया ।

एहि विधि अर्थात् बलपूर्वक वह सीताजी को ले गया : रावण का महा अन्याय प्रमाणित हो गया। स्त्री हरण करनेवाला आततायी है। उसके वध मे विचार नही। अशोक वन अति सुरक्षित था। विभीषण के बिना बताये जिसका पता हनुमानजी को न चला। वहाँ ले जाकर उसने सीताजी को रक्खा।

दो. हारि परा खल बहु बिधि, भय अरु प्रीति देखाइ।
तब असोक पादप तर, राखिसि जतनु कराइ॥
जेहि बिधि कपट कुरग सँग, धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर, रटति रहति हरि नाम॥२९.२३॥

अर्थ सीताजी को बहुत प्रकार से भय और प्रीति दिखलाकर जब वह दुष्ट हार गया तब उन्हे यत्न करके अशोक वृक्ष के नीचे रख दिया। जिस प्रकार कपट मृग के साथ श्रीरामजी दौड चले थे उसी छवि को हृदय मे रखकर वे हरिनाम रटती रहती हैं।

व्याख्या दान और भेद के लिए कोई स्थान नही था। अत भय और प्रीति से काम लिया। खल है। खल को पर अकाज मे अधिक पुरुषार्थ हो जाता है। यथा 'पर अकाज भट सहसबाहु से। पर यहाँ हारना पडा। पहिले अशोक वन के प्रासाद मे रखना चाहा। पर भगवती वहाँ न रहेगी। वनवास मिला है। अतः अशोक वृक्ष के तले रक्खा और वहाँ भी पहरे मे।

प्रेम ते पीछे तिरीछे प्रियाहि चितै चित दै चले लै चित चोरे।
श्याम शरीर पसेउ लसै हुलसै तुलसी छबि सो मन मोरे॥
लोचन लोल चलै भृकुटी कल काम कमाननि सो तृण तोरे।
राजत राम कुरग के सग निपग कसे धनु से सर जोरे॥

यह विधि कपट कुरग के सग धाय चलने की है। उसी छवि ने चित्त चुराया है। अत उसी छवि को हृदय मे रखकर नाम रटती हैं।

४०. रघुवीर विरह वर्णन प्रसङ्ग

रघुपति अनुजहि आवत देखी। बाहिज चिंता कीन्ह बिसेखी॥
जनकसुता परिहरिउ अकेली। आयहु तात बचन मम पेली॥१॥

अर्थ . इधर श्रीरघुनाथजी ने छोटे भाई लक्ष्मणजी को आते देखकर वाह्य रूप मे बहुत चिन्ता की और कहा हे भाई! तुमने जानकीजी को अकेली छोड दिया और मेरा वचन टालकर यहाँ चले आये।

व्याख्या : अनुज को आते देखकर बाहर से विशेष चिन्ता की मुद्रा नाटक के पात्र की भाँति रामजी ने धारण की। पर हृदय से निश्चिन्त थे। व्यग्र होने के कारण अनुज ने सरकार को न देखा। चिन्तावाली बात भी बोले। बाह्य तभी लिखा जाता है जब अन्तर से भेद हो।

जनक सुता से भाव यह कि जिसके लिए इतना बडा समारोह हुआ था : देव दनुज धरि मनुज सरीरा।। बिपुल बीर आये रन धीरा। ऐसे स्त्री रत्न को अकेले क्यो छोडा ? अथवा यदि कोई अनिष्ट हुआ तो जनकजी को क्या जवाब देगें ? भोरेहु भरत न पेलिहहि मनसहुँ राम रजाइ। सो तुमने मेरी आज्ञा कैसे हटायी।

निसिचर निकर फिरहिं बन माही। मम मन सीता आस्रम नाही ॥
गहि पद कमल अनुज कर जोरी। कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी ॥२॥

अर्थ : राक्षसो के झुण्ड वन मे फिरते रहते हैं। मेरे मन मे ऐसा आता है कि सीता आश्रम मे नही हैं। छोटे भाई लक्ष्मणजी ने श्रीरामजी के चरण कमलो को पकडकर हाथ जोडकर कहा : हे नाथ! मेरा कुछ भी दोष नही है।

व्याख्या : मैने तुम्हे समझा दिया था ' फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई। सीता केरि करेहु रखवारी। मारीच ने तुम्हारा नाम लेकर इसीलिए पुकारा कि तुम चले आओ और इसीलिए मैने भी कहा था ' बुद्धि बिबेक बल समय बिचारी। सो तुमने बडी गलती की। अवश्य सीता को या तो राक्षस खा गये या हरण कर ले गये।

लक्ष्मणजी ने चरण पकडा अपराध क्षमापन के लिए। हाथ जोड़ा प्रार्थना करने के लिए। इसमे मेरा थोडा भी अपराध नही। सब अपराध सीताजी का है ऐसा ध्वनि से लक्षित कराते है। मुख से अपराध नही कहते। न वह मर्म वचन कहते है जो सीताजी बोल बैठी थी।

अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ। गोदावरि तट आस्रम जहवाँ ॥
आस्रम देखि जानकी हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना ॥३॥

अर्थ : लक्ष्मणजी सहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी वहाँ गये जहाँ गोदावरी के तट पर उनका आश्रम था। आश्रम को जानकीजी से रहित देखकर श्रीरामजी साधारण मनुष्य की भाँति व्याकुल और दु खी हो गये।

व्याख्या : भाई का उत्तर पाते ही बात समझ लिया फिर उनसे इस विषय मे कुछ न कहा। लक्ष्मणजी भी साथ लौट पडे। सीताजी होती तो आये लिखते। गोदावरी निकट प्रभु रहे पर्णगृह छाइ : आश्रम तो मन्दाकिनी के निकट भी था। अत आश्रम के साथ गोदावरी शब्द दिया।

पहिले ही कहा था . मम मन सीता आस्रम नाही वही बात हुई। जिस इन्द्रिय से जिस वस्तु का भाव ग्रहण होता है उसी से उसके अभाव का भी ग्रहण होता है। ससारिक पुरुष जैसे दीन और विकल होते है वैसे विकल हुए ' मुनि अति बिकल मोह मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाठी।

हा गुन खानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता ॥
लछिमन समुझाए बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाँती ॥४॥

अर्थ : हा गुणों की खानि जानकी ! हा रूप, शील, व्रत और नियमों में पवित्र सीते ! लक्ष्मणजी ने बहुत प्रकार से समझाया। तब श्री रामजी लताओं और वृक्षों की पंक्तियों से पूछते हुए चले।

व्याख्या : जिस भाँति भगवती ने विलाप किया . हा जगदेक वीर रघुराया। उसी भाँति सरकार भी विलाप करते है। उन्होने जगदेक वीर कहा। ये गुण खानि कहते हैं। उन्होने रघुराया कहा। ये जानकी सीता कहते हैं। उन्होने : आरति हरन सरन सुख दायक कहा। ये : रूप सील व्रत नेम पुनीता कहते है। अनुज दियो भरोसो तौ लौ है सोच खरोसो। सिय समाचार प्रभु जौ लौ न लहे।

लक्ष्मणजी ने समझाया कि सरकार को विलाप शोभा नही देता। उनका पता लगाना चाहिए :

नाथ रोकि मन सोक बस होहु न परम सुजान।
कलुषित मति अति करत नहिं तुमसे ज्ञान निधान ॥
लखि वियोग दुख तजहु प्रभु प्रेमपात्र को नेह।
गीलीहू बाती जरत जब लगि भरो सनेह ॥
तात तजिय यह कृपिण मति आनि हिये उत्साह।
अर्थी जन को अर्थ बिनु होइ न सकै निवाह ॥
नहिं दुर्लभ कछु तिनहि जग जिनहि सदा उत्साह।
नहिं कोउ बल उत्साह सम गोपद होय अथाह ॥
होत दुखी नहिं कर्म मे उत्साही जन कोय।
निश्चय सीता को मिलन उत्साहहि से होय ॥
तुम कहँ कैसो दीनता तुम त्रिभुवन आधार।
भूलि रहे निज रूप को कीजिय तनिक सँभार ॥
कहँ सीता कहि नाथ जब पूछेउ अति बिलखाय।
सहसा उठि मृगगन दयो दच्छिन दिसा दिखाय ॥
याते दच्छिन दिसि चलिय सीता हेरन हेतु।
चिन्ता कार्य बिनासिनी त्यागहु रघुकुल केतु ॥

सो उनकी बात मान गये तो लता तरु से पूछते चले। उन्मादावस्था कह रहे हैं। जो सुन सकता है वह देख भी सकता है। सीता के विलाप सुनि भारी। भये चराचर जीव दुखारी। यथा . तस्मात् शृण्वन्ति पादपा.। तथा : तस्मात् पश्यन्ति पादपाः। वहाँ लता वृक्ष थे।

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृगनैनी ॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना ॥५॥
कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहि भामिनी ॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ॥६॥

अर्थ · हे पक्षियो ! हे मृगगण ! हे भौंरे की पंक्तियो ! तुमने कहीं मृगनयनी सीता को देखा है ? खञ्जन, तोता, कबूतर, हिरण, मछली, भौंरों का समूह, प्रवीण कोल, कुन्दकली, अनार, बिजली, कमल, शरद का चन्द्रमा और नागिनी, वरुण का पाश, कामदेव का धनुष, हस, गज और सिंह ये सब आज अपनी प्रशसा सुन रहे हैं।

व्याख्या : वहाँ खग मृग और मधुकर थे। खग मृग बृंद अनंदित रहही। मुखर मधुप गुजत छवि लहही। सो न खग कूजते हैं। न मधुकर गूँजते हैं। न मृग कलोल करते हैं। अत समझा कि ये लोग कुछ जानते हैं। अत उन्ही से पूछते हैं। नाम न जानते हो तो रूप बतलाते हैं मृगनयनी। सरकार मृगलोचनी कहते ही थे। मृगलोचनि तुम भीरु सुभाए।

इस वर्णन मे कोई क्रम नही है। प्रेमोन्माद के कथन मे क्रम निबह भी नही सकता। गोस्वामीजी ने सरकार का नखशिख स्थान स्थान पर वर्णन किया है। भगवती के नखशिख के वर्णन का अधिकार नही है। पुत्र को माँ के नखशिख वर्णन का अधिकार स्वभावत नही है। अत वर्णन नही किया। यहाँ स्वय सरकार विरहावस्था मे नखशिख वर्णन कर रहे हैं। उसे भी कवि ने कितना सँभालकर लिखा। उपमेय का नाम तक नही आने दिया केवल उपमान कह रहे हैं। अठारह उपमाओ मे सब कहा। नेत्र की उपमा खञ्जन से, मृग मीन से, नासिका की शुक से, कण्ठ की कपोत से, केश की मधुप निकर, सर्पिणी और वरुण पाश से, स्वर की कोकिला से, दाँत की कुन्दकली और दाडिम से, वर्ण की दामिनी से, कर पद की कमल से, मुख की शरद शशि से, गति की हस और गज से और कटि की केहरि से उपमा दी जाती है।

इन अठारह की निन्दा होती रही कि ये उपमान सीताजी के सामने कुछ नही हैं। ये जूठी की भाँति सीताजी के अङ्गो के सामने घृणास्पद समझी जाती रही। यथा · सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरिय बिदेह कुमारी। अब प्रशसा हो रही है कि इनके सामने उपमेय कोई है ही नही।

श्रीफल कनक कदलि हरषाही। नेकु न संक सकुच मन माही ॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू ॥७॥

अर्थ . बेल और कनक कदली . एक प्रकार का केला। हर्षित हो रहे हैं। इनके मन मे जरा भी शङ्का और सङ्कोच नही है। हे जानकी ! सुनो। तुम्हारे बिना ये सब आज ऐसे हर्षित हैं मानो राज पा गये हो।

व्याख्या : कुच की उपमा श्रीफल से और कनक केदली की उपमा जघा से दी जाती है। ये अङ्ग आवृत रहते हैं। जो अङ्ग आवृत रहते हैं उनके उपमान को निरावरण देखकर कहते हैं कि इन्हे लज्जा नही है। अत. अनावृत है और शङ्का भी नही है कि कदाचित् जानकीजी आजायँ तो फिर ये फीके पड जायँगे। अथवा इस बात की भी शङ्का नही है कि कोई हरण कर लेगा।

आज तक तेरे रहने से ये नही हरखे। आज इतने र्हषित हैं मानो इन्हे राज मिल गया है राज्य म आभिमानिक सुख बडा भारी है। राज्य तुल्य भोग आमात्यादिक धनियो का भी होता है। पर उन्हे आभिमानिक सुख नही होता। आभिमानिक सुख ही साधारण धर्म है जिससे राज की उपमा दी। क्षत्रियो[1] को तो राज्य प्राप्ति से अधिक प्रिय और कुछ नही होता। अत रामजी उनके हर्ष की उपमा राज्य प्राप्ति के हर्ष से देते है।

किमि सहि जात अनख तोहि पाही। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाही ॥
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी ॥८॥

अर्थ तुमसे यह स्पर्द्धा कैसे सही जाती है? हे प्रिये! तुम शीघ्र ही प्रकट क्यो नही होती? इस प्रकार स्वामी श्रीरामजी सीताजी को खोजते हुए ऐसा विलाप करते हैं जैसे कोई महा विरही और अत्यन्त कामी पुरुष हो।

व्याख्या इनकी ऍंठ तू कैसे सह रही है। इनकी ऍंठ को प्रकट होकर क्यो नही मिटा देती। यहाँ प्रभु भी जानकी को प्रत्यक्ष कल्पना करके प्रलाप कर रहे हैं। मुझसे तो इनकी ऍंठ नही देखी जाती। क्योकि तुझसे स्पर्द्धा रखते हैं। तुझसे कैसे सहा जा रहा है। तू शीघ्र ही प्रकट होकर इनकी ऍंठ मिटा क्यो नही देती।

रावण के ल जाने की विधि कहकर अब सरकार के खोजने और विलाप करने की विधि कहते है। खोजने की विधि पूछत चल लता तरु पाँती। विलाप की विधि किसी उपमान को देखकर उपमेय स्मरण हो उठता है। भाव यह कि विधि ऐसी पकड रखी है जो अति विरही और अति कामी पकडते है।

पूरन काम रामु सुखरासी। मनुज चरित कर अज अबिनासी ॥

४१ गीधक्रिया प्रसङ्ग

आगे परा गीधपति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा ॥९॥

अर्थ पूर्णकाम, आनन्द की राशि अजन्मा और अविनाशी श्रीरामजी मनुष्यो के से चरित्र कर रहे हैं। आगे जाने पर उन्होने गीधपति जटायु को पडा देखा।

व्याख्या परन्तु सरकार पूर्णकाम है। अत उन्हे कामना नही। यथा कहेहु तात अस मोर प्रणामा। सब प्रकार प्रभु प्रण कामा। और सुखराशि हैं। उनका विलाप करना विडम्बना है। मनुज चरित कर रहे हैं। यथा एक बार अतिसै सब चरित किये रघुबीर। जो प्रभु बिपिन फिरत तुम देखा। बधु समेत धरे मुनि बेखा। जासु चरित अवलोकि भवानी। सती सरीर रहिहु बौरानी। नही तो न उनका जन्म होता है और न उनमे विकार आता है। उमा के समझाने के लिए माधुर्य के साथ ही ऐश्वर्य कहा।

---

१ राज्यलाभाद्विना नान्यत् क्षत्रियाणामतिप्रियम्। वि पु ६ ७ १

इस भाँति जहाँ जटायुजी पडे थे वहाँ पहुँच गये। गीधपति को सामने पडा हुआ देखा। गीधपति ने नही देखा। आसन्नमृत्यु हैं। आँख बन्द है। मानसिक क्रिया मात्र थोडी सी हो रही है। सरकार के चरण के चिह्न ध्वज कुलिश अकुश कज का ध्यान कर रहे हैं। गीध की दृष्टि तीव्र होती है। इन्होने सूक्ष्म रेखाओ को भी देखा था। उन रेखाओ पर मोहित थे। रेखाओ के ध्यान के पृथक् पृथक् माहात्म्य है। यथा : अकुश मन गज वशकारी है। वज्र पाप पहाड का नाश करता है। ध्वजा के ध्यान से परलोक जय होता है। कज भवमोचन है। इससे ताप नष्ट होता है। इत्यादि।

दो. कर सरोज सिर परसेउ, कृपासिन्धु रघुबीर।
निरखि राम छवि धाम मुख, बिगत भई सब पीर ॥३०.२४॥

अर्थ : कृपा सागर श्रीरघुवीर ने अपने कर कमल से उसके सिर का स्पर्श किया। श्रीरामजी का शोभाधाम मुख देखकर उसकी सब पीडा जाती रही।

व्याख्या · कबहुँ सो कर सरोज रघुनायक धरिहउ नाथ सीस मेरे। जेहि कर अभय किये जन आरत वारक विवस नाम टेरे। अभी तक गीध के घायल होने का कारण नही मालूम। फिर भी दु खी देखकर अस्पृश्य गीध के सिर पर हाथ रक्खा। क्योकि कृपासिन्धु है। रघुवीर हैं। अत. दयावीर भी है। सिर पर हाथ रखते ही आँख खुल गयी। तब मुख छवि देखा। देखते ही पीड़ा मिटी। क्योकि वदन पजक भव मोचन हैं। सब पीर, कालकर्म गुण सुभाव उसके सीस तपत।

तब कह गीध बचन धरि धीरा। सुनसु राम भजन भव भीरा ॥
नाथ दसानन एह गति कीन्ही। तेंहि खल जनक सुता हरि लीन्ही ॥१॥

अर्थ : तब धीरज धरकर गीधराज ने यह वचन कहा : हे जन्म मृत्यु के भय का नाश करनेवाले श्रीरामजी! सुनिये। हे नाथ! रावण ने मेरी यह दशा की है। उसी दुष्ट ने जानकीजी को हर ली है।

व्याख्या : सरकार की मुख छवि देखकर पीर मिटने पर धीर धारण किया। शरीर क्षत विक्षत होने से बोल नही सकते थे। उनको भवभीर दर्शन से मिट गयी। इसलिए भजन भवभीरा कहते हैं। राम नाम का भी उच्चारण हुआ। प्रभु कुछ पूछते नही हैं। पर इन्हे कहने की जल्दी है कि कही सीता की सुधि बिना दिये ही मेरे प्राण न निकल जायँ।

दशानन ने यह गति की। भाव यह है कि उसे दशमुख हैं। यही उसकी पहिचान है : दस सिर ताहि बीस भुजदडा। रावन नाम बीर बरिवडा। रावण का हाल कहते हैं कि वह खल है। उसने जनकसुता का हरण किया। जनक ऋषियो के मान्य हैं और यह ऋषिपुत्र होकर जनकसुता का हरण करता है। अर्थापत्ति से जटायुजी का जीतेजी जानकी को न जाने देना सिद्ध हुआ। गीधराज ने एहसान न

जताया। भगवती को चिन्ता थी : बिपति मोर को प्रभुहिं सुनावा। सो गीधराज ने सुना दिया।

लै दच्छिन दिसि गएउ गोसाईं। विलपति अति कुररी की नाईं॥
दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपानिधाना॥२॥

अर्थ : हे गोसाईं! वह उन्हे लेकर दक्षिण दिशा को गया है। सीताजी कुररी की तरह अत्यन्त विलाप कर रही थी। हे प्रभो! मैने आपके दर्शन के लिए ही प्राण रोक रक्खे थे। हे कृपानिधान! अब ये चलना चाहते हैं।

व्याख्या : अब खोजने का मार्ग बतलाते हैं। दक्षिण दिशा ले गया। आकाश मार्ग मे विलाप करती जाती थी। इससे कुररी की उपमा दी। कुररी क्रौञ्च पक्षी को कहते है। यह जोडा के बिछोह मे अत्यन्त विलाप करती है। पृथ्वी पर गिरने पर भी जाने की दिशा देख रक्खा था। किसी वस्तु मे अत्यन्त ममता रहने से जल्दी प्राण निकलता नही। मुझे दर्शन की अत्यन्त इच्छा थी। जिसमे सीताजी का समाचार दे सकूँ। क्षत विक्षत होने पर जीने के लिए प्राण रखने की इच्छा आवश्यक है। अथवा गीधराज की मृत्यु और मोक्ष दो वस्तु नही है। किसी वासना के रहने से मोक्ष नही होता। इसलिए गीधराज की मृत्यु नही हुई। अब कहते हैं कि वासना पूरी हो गयी। अतः अब चलना चाहता हूँ। इससे पहिले मैंने चलना नही चाहा : कांक्षा मृत्यु की सिद्धि प्राप्त हो गयी। सरकार का हाथ सिर पर है इसलिए कृपानिधान कहा।

राम कहा तनु राखहु ताता। मुख मुसुकाइ कही तेंहि बाता॥
जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुकुत होइ स्रुति गावा॥३॥

अर्थ : श्रीरामचन्द्रजी ने कहा : हे तात! शरीर को बनाये रखिये। तब उसने मुसकुराते मुँह से यह बात कही : मरते समय जिसका नाम मुख मे आ जाने से महान् पापी भी मुक्त हो जाता है। ऐसा वेद गाते हैं।

व्याख्या : रामजी ने कहा हे तात! आप शरीर रक्खें। यथा :

मेरे जान तात कछू दिन जी जै।
देखिअ आप सुअन सेवा सुख मोहि पितु को सुख दीजै।
दिव्य देह इच्छा जीवन जग विधि मनाइ मँगि लीजै॥
हरिहर सुजस सुनाइ दरस दै लोग कृतारथ कीजै॥

सुनकर गीधराज मुसकुराये कि भला! मैं ऐसा अवसर चूक सकता हूँ। यथा : जन्म जन्म मुनि जतन कराही। अत राम कहि आवत नाही। मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनहिं बनावा। और बोले यथा—

देखि बदन सुनि बचन अमिय तन राम नयन जल भीजे।
बोल्यो विहँसि विहँग रघुवर बलि कहौं सुभाव पती जे॥
मेरे मरिवे सम न चारि फल होहिं तौ क्यो न कही जे।
तुलसी प्रभु दियो उतरु मौन ही परी मानौ प्रेम सही जे॥

सो मम लोचन गोचर आगे। राखौं देह नाथ केहि खाँगे ॥
जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात करम निज तें गति पाई ॥४॥

अर्थ : वही आप मेरे नेत्रों के विषय होकर सामने खड़े हैं। हे नाथ ! अब मैं किस कमी की पूर्ति के लिए देह को रक्खूँ ? नेत्रों में जल भरकर श्रीरघुनाथजी कहने लगे : हे तात ! आपने अपने श्रेष्ठ कर्मों से दुर्लभ गति पायी।

व्याख्या : गीधराज ने कहा : मरती समय तुम्हारे नाम स्मरण का महा माहात्म्य है। महा पापी भी तर जाता है। पर उस समय तुम्हारे स्मरण की सम्भावना ही नहीं है : प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते। मेरा ऐसा सौभाग्य है कि ऐसे समय मे तुम स्वयं मेरे आँखों के सामने हो। अब किस घाटा की पूर्ति के लिए शरीर रक्खूँ।

रघुराई हैं बड़े कृतज्ञ। शरीर छोड़ने का निश्चय सुनकर आँख में आँसू आगया। कहने लगे : तुम जो दुर्लभ गति प्राप्ति कर रहे हो वह तुम्हारे कर्म का फल है।

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरनकामा ॥५॥

अर्थ : जिनके मन में दूसरे का हित बसता है उनके लिए जगत् में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। हे तात ! शरीर छोड़कर आप मेरे परम धाम में जाओ। मैं आपको क्या दूँ। आप तो पूर्णकाम हैं।

व्याख्या : स्वार्थ तो सबके मन में बसता है। पर जिस महापुरुष के मन में परहित बसे उसके अन्त समय में मेरा आना दुर्लभ नहीं है। क्योंकि : परहित सरिस धर्म नहिं भाई। तुमने परहित के लिए प्राण दिया है। सद्गति तुम्हारे हिस्से की चीज है। गीधराज : राखौं देह नाथ केहि खाँगे कह चुके हैं। अतः प्रभु भी उन्हे पूर्णकाम कह रहे हैं। पूर्णकाम को कोई कुछ दे नहीं सकता। पूर्णकाम के लिए ही राम धाम है। जहाँ से फिर लौटना नहीं पड़ता।

दो. [1]सीताहरण तात जनि, कहेहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित, कहिहि दसानन आइ ॥३१.२५॥

अर्थ : हे तात ! सीताहरण की बात आप जाकर पिताजी से न कहियेगा। यदि मैं राम हूँ तो दशमुख रावण कुटुम्ब सहित वहाँ जाकर स्वयं ही कहेगा।

व्याख्या : सीताहरण सुनकर पिताजी परलोक में भी दुःखी होंगे। हरण प्राप्ति दोनों साथ ही सुनेंगे तो दुःख न होगा। धर्मात्माओं के सङ्कल्प मात्र से परलोक में माता पिता पुत्र सुहृद् उपस्थित हो जाते हैं। सो तुम ऐसे लोक को जा रहे हो

१ यहाँ पर्यायोक्ति अलङ्कार है।

जहाँ स्मरण मात्र से मित्र उपस्थित होंगे। महाराज दशरथ उपस्थित हो जायँगे और महाराज के स्मरण से आप उपस्थित होंगे। सो यह चर्चा न करना। जटायुजी ने कहा था होइहि सलभ सकल कुल तोरा। उसी को दृढ करते हुए कहते हैं कि शीघ्र ही रावण कुल सहित वहाँ उपस्थित होगा। वह राग द्वेष शून्य देश है। रावणादि भी प्रेम से मिलेंगे। वही सब कथा कहेंगे। मेरो सुनियो तात सँदेसो। सीय हरन जनि कहेउ पिता सन होइहैं अधिक अँदेसो। रावरे पुन्य प्रताप अनल महँ अलप दिननि रिपु दहिहै। कुल समेत सुरसभा दसानन समाचार सब कहिहैं।

गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा॥
स्याम गात बिसाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी॥१॥

अर्थ जटायु ने गीध का देह त्यागकर हरि का रूप धारण किया और बहुत से दिव्य आभूषण और अनूप पीताम्बर पहना। श्याम शरीर है। विशाल चार भुजाएँ है और नेत्रों में जल भरकर वह स्तुति कर रहे हैं।

व्याख्या प्रभु ने कहा तनु तजि तात जाहु मम धामा। उसी का साफल्य दिखला रहे हैं कि जटायु की गीधवाली शरीर छूट गयी और हरिधाम मे जाने योग्य शरीर की प्राप्ति हुई। वह देह स्वय हरि के अनुरूप थी। मुकुट अङ्गदादि भूषणो से सुशोभित थी और दिव्य पिताम्बर धारण किये थी। उसका श्याम वर्ण था। विशाल चार भुजाएँ थी हरिलोक निवासियो का रूप भूषण वसनादि हरि के सदृश होता है। भोग और ऐश्वर्य भी वैसा ही होता है। केवल कौस्तुभ मणि विप्रचरण चिह्न नही रहता और न उत्पत्ति प्रलय का सामर्थ्य होता है।

दिव्य शरीर प्राप्ति के अनन्तर जटायुजी आँखो म आँसू भरकर स्तुति करने लगे।

छ जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।
दससीस बाहु प्रचड खडन चड सर मडन मही॥
पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचन।
नित नौमि राम कृपाल बाहु बिसाल भव भय मोचन॥

अर्थ हे रामजी! आपकी जय हो। आपका रूप अनुपम है। आप निर्गुण हैं। सगुण हैं और सत्य ही गुणा के प्रेरक है। दस सिरवाले रावण के प्रचण्ड भुजाओ को खण्ड खण्ड करने के लिए प्रचण्ड बाण धारण करनेवाले, पृथ्वी को सुशोभित करनेवाले, सजल मेघ के समान श्याम शरीरवाल कमल के समान मुख और कमल के समान नेत्रवाले, विशाल भुजाओवाले और भवभय से छुडानेवाल कृपालु श्रीरामजी को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या जटायुजी कहते हैं कि आपका राम रूप अनूप है। क्योकि वह सगुण भी है। निर्गुण भी है और वस्तुतस्तु गुण का प्रेरक है। अर्थात् आपके सगुण होने

पर भी निर्गुण रूप अक्षुण्ण ज्यो का त्यो बना हुआ है। निर्गुण होते हुए भी गुणो पर आपका सच्चा आधिपत्य है। आपकी प्रेरणा से घोर तामसी देह छूटकर मुझे यह शुद्ध सात्त्विकी शरीर प्राप्त हुआ है। मैं भविष्य को वर्तमान की भाँति देख रहा हूँ। ये आपके चण्ड बाण दशशीश के प्रचण्ड बाहु के खण्डन करनेवाले हैं और पृथ्वी को रोग विनिर्मुक्त करके शाभा प्रदान करनेवाल हैं। यथा दससीस विनासन बीस भुजा कृत दूर महामहि भूरि रुजा। आपका सजल जलद नील वर्ण, कमल सा मुख और कमल से ही बडे बडे नेत्र और विशाल भुजाएँ ससार के भय को दूर करनेवाली है। यथा स्याम सरूप सुभाय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन। निरखि बदन पकज भवमोचन। मामवलोकय पकज लोचन कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन तथा सुमिरत श्री रघुबीर की बाहे। होत सुगम भव उदधि अगम अति कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहे। आपसे पृथ्वी की शोभा हो रही है।

लोचन और भुज सबके सब भवमोचन हैं।

पाथोद गात भवमोचन	यथा स्यामल गात प्रणत भयमोचन।
सरोज मुख भवमोचन	यथा देखि बदन पकज भवमोचन।
राजीव लोचन भवमोचन	यथा राजीव बिलोचन भवभय मोचन।
बाहु विसाल भवभय मोचन	यथा सुमिरत श्रीरघुबीर की बाहें। होत सुगम भव उदधि अगम अति कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहें॥

अत हे कृपाल राम! मैं आपका नित्य नमस्कार करता हूँ।

बलमप्रमेयमनादिमजमव्यक्तमेकमगोचर।
गोविंद गोपर द्वद्वहर बिग्यानघन धरनीधर॥
जे राम मत्र जपत सत अनत जन मन रजन।
नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खल दल गजन॥

अर्थ आप अपरिमित बलवाले हैं। अनादि, अजन्मा, अव्यक्त, एक अगोचर गोविन्द वेद वाक्यो द्वारा जानने योग्य। इन्द्रियो से अतीत, जन्म मरण, सुख दु ख, हर्ष, शोकादि द्वन्द्वो को हरनेवाल विज्ञान की घनमूर्ति और पृथ्वो के आधार हैं तथा जो सत राम मत्र को जपते हैं उन अनन्त सेवका के मन का आनन्द देनेवाल हैं। उन निष्काम प्रिय तथा काम आदि दुष्टो के दलन करनेवाल श्रीराम जी को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या बलमप्रमेय - स सर्वशक्तिमान् होना कहा। अनादि कहकर पुराण पुरुष होना जनाया। अज कहकर माया से मानुप रूप धारण करना बतलाया। अव्यक्त कहकर मन बुद्धि से परे होना द्योतित किया। एक से एकमवाद्वितीयम्, नेह नानास्ति किञ्चन रूप को लक्षित किया। अगोचर कहकर इन्द्रिया से परे हाना कहा।

यथा न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनु शिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। गोविन्द कहकर औपनिषद पुरुष होना बतलाया। यथा तमौपनिषद पुरुष पृच्छामि। गोपर से विज्ञाता होना कहा। यथा विज्ञातार वा अरे केन विजानीयात्। द्वन्द्वहर से विपत्ति नाशक। विग्यान घन से ब्रह्मरूप और धरनीधर से सर्वाधिष्ठान कहा।

इस भाँति प्रभु के स्वरूप का वर्णन करके मन्त्रराज की महिमा कहते हैं कि अनन्त असख्य सन्तो ने इसी का जप किया है करेंगे और करते हैं और आनन्द को प्राप्त होते हैं। यथा बरन बिलोचन जनजिअ जोऊ।

जटायुजी कहते है कि मैं ऐसे राम की नित्य वन्दना करता हूँ। जिसे अकाम प्रिय हैं और जो अकाम को प्रिय है। क्योकि कामादि खल दल के नाश करनेवाले वे ही हैं। यथा तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा।

जेहि स्त्रुति निरजन ब्रह्म व्यापक बिरज अज कहि गावही।
करि ध्यान ग्यान बिराग योग अनेक मुनि जेहि पावही॥
सो प्रगट करुनाकद सोभा वृद अग जग मोहई।
मम हृदय पकज भृग अग अनग बहु छबि सोहई॥

अर्थ जिनको श्रुतियाँ माया से परे ब्रह्म व्यापक निर्विकार और जन्मरहित कहकर गान करती है। मुनि जिन्हे ध्यान, ज्ञान वैराग्य और योग आदि अनेक साधन करके पाते हैं। वे ही करुणाकन्द शाभा के समूह स्वयं प्रकट होकर जड चेतन समस्त जगत् को मोहित कर रहे हैं। वे ही मेरे हृदयकमल के भ्रमर रूप हैं और उनके अग अग मे बहुत से कामदेवा की छवि शोभा पा रही है।

व्याख्या श्रुति कहती है कि रामजी निरञ्जन है। अति सूक्ष्म होने से आकाश की भाँति निर्लेप हैं। ब्रह्म है। सबसे बडे हैं। व्यापक है। देश काल दोनो मे व्याप्त है। यथा देस काल दिसि बिदिसहु माँही। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाँही। विरज से अर्थात् प्रकृति के पार हैं। अत अज हैं। किसी भाँति परिछिन्न होने योग्य नही हैं। ध्यान, ज्ञान, विराग से अर्थात् काण्डत्रय की सहायता से योग द्वारा मुनि जिसे प्राप्त करते हैं। यथा ज्ञान कर्म च भक्तिश्च नान्योपायोऽस्ति भूतल। दूसरा उपाय कोई नही है। अब सुयोग कहते हैं कि वही नयन विषय हो रहे है। कारण यह है कि करुणाकन्द हैं। इस समय करुणा की वर्षा हो रही है। रामावतार ही करुणावतार है। इससे और भी सुभीता है। भयानक रूप से प्रकट होते तो लोग घबराते। यहाँ तो सुन्दरता से ससार को मोहित कर रहे हैं। जटायुजी कहते हैं कि कहाँ तक करुणा कही जाय। मेरे हृदय कमल के भृङ्ग हो रहे हैं। अङ्ग अङ्ग पर अनेक कामोकी शोभा हो रही है।

जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा ।
पश्यन्ति जं जोगी जतन करि करत मन गो बस सदा ॥
सो राम रमा निवास सतत दास बस त्रिभुवन धनी ।
मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी ॥

अर्थ : जो अगम और सुगम हैं। निर्मल स्वभाव हैं। विषम और सम हैं तथा सदा शीतल हैं। मन और इन्द्रियों को सदा वश मे करते हुए योगीजन बहुत साधन करने पर जिन्हे देख पाते हैं। वे तीनो लोकों के स्वामी रमानिवास श्रीरामजी निरन्तर अपने दासो के वश में रहते हैं। वे ही मेरे हृदय मे निवास करें। जिनकी पवित्र कीर्ति आवागमन को मिटानेवाली है।

व्याख्या : जो अगम हैं और सुगम भी हैं। यथा मुनि जेहि ध्यान न पावहिं नेति नेति कह वेद। सो अज प्रेम भगति बस कोसल्या के गोद। जिसका स्वभाव निर्मल है। यथा : रामहि मातु वचन सब भाये। जिमि सुरसरि गत सलिल सोहाये। जो सम भी हैं। विषम भी हैं। यथा : जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहइ न पाप पुण्य गुन दोषू। तदपि करइ सम बिषम विहारा। भक्त अभक्त हृदय अनुसारा। सदा शीतल हैं। यथा : सिसुपन ते पितु मातु बंधु गुरु सेवक सचिव सखाउ। कहत राम बिधु बदन रिसौहे सपनेहु लख्यौ न काउ। वह मासचक्षु से नहीं देखे जा सकते। उनके लिए योग दृष्टि तथा शास्त्र दृष्टि चाहिए। यथा : तदीक्षणस्य स्वाध्यायचक्षुर्योगस्तथा परम्। न मासचक्षुषा द्रष्टुं ब्रह्मभूतः स शक्यते। वि पु और योग दृष्टि के लिए चित्तवृत्ति का निरोध सदा चाहिए। दास पर वशता कहते हैं।

ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगति हेतु लीला तनु गहई॥
जग पावन कीरति विस्तरिहहि। गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहि॥

अतः जटायुजी उन्हे हृदय मे बसने के लिए प्रार्थना करते हैं। पाँच विषय का ही इसमें वर्णन है। १ सगुण रूप २ निर्गुण रूप ३ मन्त्र ४ अवतार ५ और भक्त परतन्त्रता। ये ही हस्तनक्षत्र के पाँच तारे हैं। इसकी फल श्रुति है : काम कोह कलिमल करि गन के। केहरि सावक जन मन बन के।

दो. अबिरल भगति माँगि बर, गीध गएउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित, निज कर कीन्ही राम ॥३२.२६॥

अर्थ : अखण्ड भक्ति का वर माँगकर गृध्रराज जटायु श्रीहरि के परम धाम को चले गये। श्रीरामचन्द्रजी ने उसकी दाह कर्म आदि सारी क्रियाएँ यथायोग्य अपने हाथो से की।

व्याख्या : अविरल भक्ति स्तुति के बाद माँगी। बड़े का नाता मान रक्खा है। इसलिए एवमस्तु नहीं कहा। सरकार ने : जाहु मम धामा कहा था। सो हरि

धाम गये। सरकार ने स्वय पिता की भावना से यथोचित क्रिया की। पक्षियो मे मास वितरण किया। तृप्यन्तु पक्षिण सर्वे तृप्तो भवतु पक्षिराट्। धाम देने के बाद क्रिया की आवश्यकता न थी। परन्तु गीधराज के शरीर की प्रतिष्ठा के लिए सरकार ने अपने हाथ से क्रिया की।

कोमल चित अति दीनदयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला ॥
गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्ही जो जाचत जोगी ॥१॥

अर्थ श्री रघुनाथजी अत्यन्त कोमल चित्तवाले दीनदयालु और बिना ही कारण कृपालु हैं। गीध पक्षियो मे भी अधम पक्षी और मासाहारी था। उसको भी वह दुर्लभ गति दी। जिसे योगीजन माँगते रहते हैं।

व्याख्या प्रायेण प्रभु लोग पर वेदना नही जानते कठोर चित्त होते हैं। पर अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। यद्यपि अखिल लोक कर राऊ। परन्तु श्रीरामजी अति कोमल चित्त हैं। अपना धाम देने पर भी सन्तोष नही। अपने हाथ से क्रिया करने लगे। दीनदयाल से सङ्कटहारी कहा। यथा दीनदयाल बिरद सभारी। हरहु नाथ मम सकट भारी। बिनु हेतु सनेही हैं। इसी भाँति बिनु हेतु कृपाल हैं। कोमल चित्त हैं। अत अविरल भक्ति दिया। दीनदयाल है। अत निज धाम दिया। निष्कारण कृपालु हैं। इसलिए अपने हाथ क्रिया किया। आप ही गुण देते है और आप ही उस गुण पर मुग्ध होते हैं।

भक्ति स्पृहारहित को दी जाती है। गीध को नही। हरि धाम पवित्र मुनियो के लिए है अधम खग के लिए नही। प्रभु के करकञ्ज की छाया दयालु लोगो के लिए है हिंसक के लिए नही। गीध शकुनाधम सब भाँति अपावन होते हैं। उनके जीवन का मूल्य क्या है ? अधम खग तो बहुत हैं। पर मुर्दा खानेवाला गीध ही है। योगी का सार्वभौम अहिंसा महाव्रत है। सो गीध को ऐसी गति दी जिसके लिए योगी लोग तरसते है।

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी ॥

४२ कबन्धवध तथा शबरी गति प्रसङ्ग

पुनि सीतहि खोजत द्वौ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई ॥२॥

अर्थ हे पार्वती ! सुनो। वे लोग अभागे हैं जो भगवान् को छोडकर विषयो से अनुराग करते है। फिर दोनो भाई सीताजी को खोजते हुए आगे चले। वे वन की सघनता देखते जाते हैं।

व्याख्या नर तन पाइ बिषय मन देही। पलटि सुधा ते सठ बिष लेही। हरि रूप सुधा है और विषय विष है। गीध से इतना ही हुआ कि हरिपद मे अनुरक्त हो गया। अत वह महा भाग्यवान् हो गया। गीध भाग्यवान् हुआ। रावण अभागी हुआ। पहले खग, मृग तथा मधुकर श्रेणी से सीता का पता पूछते थे। अब पता

लग गया। अत अब उनसे नही पूछते हैं पर खोजते हैं। यह नही मालूम कि रावण ने कहाँ रख छोडा है। वन बहुत बडा है। इतना बडा वन अब तक नही मिला। अत उसकी बहुतायत देखते हुए चले जाते हैं।

सकुल लता विटप घन कानन। बहु खग मृग तहँ गज पचानन ॥
आवत पथ कबध निपाता। तेहि सब कही साप कै बाता ॥३॥

अर्थं वह सघन वन लताओ और वृक्षो से भरा है। उसम बहुत से पक्षी, मृग, हाथी और सिंह रहते हैं। श्रीरामजी ने रास्ते मे आते हुए कबन्ध राक्षस को मारा। उसने शाप की सब बातें कही।

व्याख्या वन की घनता कहते है कि विटप से भरा हुआ था और उनमे लताएँ लिपटी हुई थी। फलदार वन है। खग मृग बहुत हैं। बडा घोर वन है। इसलिए गज पचानन भी हैं। मनुष्य का उल्लेख नही है। इससे ज्ञात होता है कि घोर निर्जन वन था। कबन्ध के भय से कोई आता जाता न था।

प्रभु जिधर जाते थे उधर वह आता था। इससे उसका मार्ग मे बाधक होना कहा। मरने के बाद वह अपने पूर्व रूप मे हो गया। शाप मिलने के कारण वह राक्षस हो गया था। मारे जाने को उसने उपकार माना। कृतज्ञता के प्रकाश के लिए उसने शाप का सब वृत्तान्त प्रभु से निवेदन किया कि मैं पूर्वजन्म मे बडा सुन्दर था। पर ऐसा ही भयानक रूप धारण करके मुनियो को डराता फिरता था।

दुरबासा मोहि दीन्ही सापा। प्रभु पद पेखि मिटा सो पापा ॥
सुनु गधर्व कहउ मै तोही। मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही ॥४॥

अर्थं उसने कहा कि इसी पर दुर्वासाजी ने मुझे शाप दे दिया। अब प्रभु के चरणो को देखने से वह पाप मिट गया। श्रीरामजी ने कहा हे गन्धर्व ! सुनो मैं तुम्हें कहता हूँ। ब्राह्मणकुल से द्रोह करनेवाला मुझे नही सुहाता।

व्याख्या दुर्वासा का शाप था। मिटनेवाला नही। वह देवासुर सग्राम मे लडा। इन्द्र का वज्र लगा। फिर भी शाप न मिटा। पाप के कटने के लिए ही मुनि लोग कृपा करके शाप देते हैं। सो पाप प्रभु के दर्शन से कटा। सन्मुख होइ जीव मोहि जबही। जन्म कोटि अघ नासहि तबहीं।

प्रभु ने गन्धर्व कहकर उसको सम्बोधन किया इससे पता चलता है कि पूर्वजन्म मे वह गन्धर्व था। और कहा कि मुझे ब्राह्मणकुल से द्रोह करनेवाला अच्छा नही लगता। ब्राह्मण[1] और गाय एक कुल की दो शाखा है। एक म मन्त्र और दूसर में हवि प्रतिष्ठित है। अर्थात् ये ही दोनो यज्ञ के मुख्य साधन हैं और यज्ञ से ही दोनो लोको का कल्याण होता है। गो ब्राह्मणकुल का द्रोह करना तो देवलोक

---

१ ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेक द्विधा कृतम्। एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरन्यत्र तिष्ठति। मनु

से चलते हुए व्यापार के बन्द करने की चेष्टा है। यह यज्ञपुरुष को प्रिय हो नही सकती। जिस भाँति गो के दुग्धादि से ही यज्ञ सम्पन्न होते हैं। बकरी के दूध से सम्पन्न नही हो सकते। उसी भाँति ब्राह्मण मुखोच्चरित मन्त्रो से ही यज्ञ सुसम्पन्न होते हैं। अब्राह्मण के मुखोच्चरित मन्त्र से नही होते। इसीलिए हिन्दू जाति और उसके शास्त्रो मे गोकुल और ब्राह्मणकुल का बडा मान है। यथा

दो मन क्रम बचन कपट तजि, जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव, बस ताके सब देव ॥३३.२७॥

अर्थ मन कर्म और वचन से कपट छोडकर जो ब्राह्मणो की सेवा करता है। मुझ समेत ब्रह्मा शिव आदि सब देवता उसके वश मे हो जाते हैं।

व्याख्या ब्राह्मणो का वेद म प्रधान अधिकार है। अत वे पृथ्वी के देवता हैं। आज भी जिसको शास्त्र का ज्ञान है उसे साक्षात् या परम्परया ब्राह्मणो से ही हुआ है। अत उनकी सेवा कपट छोडकर करनी चाहिए। बाहर से नम्र रहे और भीतर से नम्र नही यही कपट सहित सेवा है बाहिज नम्र देखि मोहि साई। बिप्र पढाव पुत्र की नाई। सब देवो के वशीकरण का द्विज सेवा ही उपाय है। यथा किं तस्य दुर्लभतरमिह लाके परत्र च। यस्य विप्रा प्रसीदन्ति शिवो विष्णुश्च सानुग। भाग०

सापत ताडत परुष कहता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता॥
पूजिय बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना ॥१॥

अर्थ शाप देता हुआ मारता हुआ और कठोर वचन कहता हुआ भी ब्राह्मण पूज्य हैं। ऐसा सन्त कहते है। शील और गुण से हीन भी ब्राह्मण पूजनीय है और गुणगणो से युक्त और ज्ञान म निपुण भी शूद्र पूजनीय नही है।

व्याख्या गुणत तो सभी पूज्य होता है। गुण की पूजा स्वाभाविक है। पर ब्राह्मण जन्मत भी पूज्य हैं। यदि उनम गुण भी ब्राह्मण के हो। वेदपाठी भी हो तो शापत मन से, ताडत कर्म से और परुष कहता वाणी से होने पर भी वे पूज्य हैं। शापत ताडत परुषवक्ता पूज्य योग्य नही है। पर विप्र हैं। उनके पूर्वजन्म के कुछ कर्म ऐसे है कि जिससे वे पूजा माने जाते है यथा तुलसी पीपल आदि। तद् य इह रमणीयचरणा अभ्याशोहयत् ते रमणीया योनिमापद्येरन्। ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशोहयत् कपूया योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा। भगवान् वासुदेव कहते हैं विप्र कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामका। घ्नन्त बहु शपन्त वा नमस्कुरुत नित्यश। भा०। मेरे भक्त अपराधी ब्राह्मण का भी द्रोह न करें। मारते हुए शाप देते हुए ब्राह्मण को भी नमस्कार ही करें। बधे पाप अपकीरति हारे। मारतहूँ पा परिय तुम्हारे। साप सीस धरि हरषि हिय प्रभु बहु बिनती कीन्ह। भृगुपति बकहिं कुठार उठाये। मन मुसुकाहिं राम सिर नाये। इत्यादि।

ब्राह्मण कम से कम गायत्री मात्र जाने, आचरण और गुण से हीन हो फिर भी पूजा उसकी होगी। जहाँ शास्त्रो मे ब्राह्मण पूजन विधान है वहाँ ब्राह्मणोचित गुणवाला शूद्र पूजित नही होगा। हीनगुणवाला ब्राह्मण ही पूजित होता है। यथा : तुलसी पूजन विधान मे तुलसी के स्थान पर अनार अगूर का पूजन नही हो सकता।

कहि निज धर्म ताहि समुझावा। निज पद प्रीति देखि मन भावा ॥
रघुपति चरन कमल सिरु नाई। गयउ गगन आपनि गति पाई ॥२॥

अर्थ · श्रीरामजी ने अपना धर्म कहकर उसे समझाया। अपने चरणो मे प्रेम देखकर वह उनके मन को अच्छा लगा। तदनन्तर श्रीरघुनाथजी के चरण कमलो मे सिर नवाकर वह अपनी गति गन्धर्व का स्वरूप पाकर आकाश मे चला गया।

व्याख्या : प्रभु ब्रह्मण्य देव हैं। ब्राह्मणो पर प्रीति करना अपना धर्म मानते हैं। यथा

प्रभु ब्रह्मण्य देव मैं जाना। मोहि निति पिता तजेउ भगवाना ॥
जेते धर्म सकाम सबै को फल कटु जानो।
धन दारा सुत गेह विनस्वर दुखमय मानो ॥
स्वर्गहु विनशन शील चारि दिन को सुखदाई।
श्री गुरु चरण सरोज शरण मे भूरि भलाई ॥
गुरु गोविन्द को निष्कपट सेवा विजयानन्द करो।
विरति ज्ञान संयुत सुभग भगति पथ नित अनुसरो ॥
सतसगति नित करौ शौच तप मौन निवाहो।
ब्रह्मचर्य व्रत धरौ अहिंसा समता चाहो ॥
जड चेतन को आतमरूप ईश्वर करि देखो।
गहो सदा सतोष सत रहनी जिय लेखो ॥
प्रभु सबमे सब प्रभुहि मे जानि अहता को तजो।
ये तेरह हैं भागवत सद्गुण विजयानद भजो ॥

अत द्विज सेवा को हरितोषण व्रत कहा गया है। इससे भगवान् तुष्ट होते हैं। इस बात को उसे समझाया। जिसमे फिर उससे ऐसी चूक न हो। अपने चरणो मे प्रेम देखकर उसे परम कल्याणकर उपदेश दिया। तब वह कृतकृत्य होकर प्रभु चरणो पर नत हुआ तथा गन्धर्व लोक को गया। स्वय भक्ति का उपदेश दे चुके हैं। उसे अन्यस्पृहा न होने से और कुछ न दिया। अत गगन जाना कहा। चरण मे सिर देने से ही ऊर्ध्व गति होती है। यथा अतिशय बड भागो चरणन्हि लागी जुगल नयन जल धार बही . गई पतिलोक अनन्द भरी। अधोगति हो गयी थी। सो ऊर्ध्व गति की बाधा दूर हो गयी।

ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी के आस्रम पगु धारा ॥
सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जिय भाए ॥३॥

अर्थं उदार श्रीरामजी उसे गति देकर शबरीजी के आश्रम पधारे। शबरीजी ने रामजी को घर मे आये देखा। तब मुनि : मतङ्गजी के वचनो को याद करके उनका मन प्रसन्न हो गया।

व्याख्या कबन्ध के उद्धार मे उदार कह रहे हैं। यथा . ऐसो को उदार जग माही। बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाही। कवन्ध ने क्या सेवा की। उदार हैं · गति देने से तृप्ति नही। घर जा जाकर गति देते हैं तथा · सुगम अगम बरदायक होने से उदार हैं। अथवा ऐसे उदार हैं कि शबरी के आश्रम चले। सकल मुनिन्ह के आस्रम जाइ जाइ सुख दीन्ह। सो शबरी कौन मुनि थी ? प्रभु के चरण पडने से उसकी कुटिया भी आश्रम हो गयी।

शबरी ने देखते ही पहिचान लिया कि ये ही राम हैं। शबरी उसे गृह ही समझती है। आश्रम का ख्याल उसे मन से भी नही है। राम किसी के गृह नही जाते। विभीषण ने कहा अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजे। सरकार नही गये। ग्रामवास उचित नही है। पर शबरी का गृह सरकार के विचार मे आश्रम ही है। मुनि के जिय भाये वचन, समझकर उसने पहिचाना। मुनिजी ने जो ध्यान बताया था सो आँखो के सामने देखा।

सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला ॥
स्याम गौर सुदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई ॥४॥

अर्थं · कमल सदृश नेत्र और विशाल भुजावाले सिर पर जटाओ का मुकुट और हृदय पर वनमाला धारण किये हुए सुन्दर साँवले और गोरे दोनो भाइयो के चरणो मे शबरी लिपट पडी।

व्याख्या मुनिजी ने उसको योग्यतानुकूल सामान्य ध्यान बतलाया था कि बड़ी बडी कमल की सी आँखें हैं। लम्बी लम्बी भुजाएँ हैं। दो गहना भी बतला दिया था। जटा का ही मुकुट और पैर तक लटकती हुई माला रहती है। यह भी उदारता है कि उसके ध्यानानुरूप वेष से उसके सामने आये। नही तो यहाँ नवमाला कहाँ से आगयी ?

दोनो भाई का एक रूप और वेष है। वर्ण मे केवल भेद है। शबरी चरणो मे लिपट गयी। स्त्री है। उसे चरण मे लिपटने का ही अधिकार है।

प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा ॥
सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुदर आसन बैठारे ॥५॥

अर्थ : वह प्रेम मे मग्न हो गयी। मुख से वचन न निकला। बार बार चरण कमलो मे सिर नवा रहा है। फिर उसने जल लेकर आदर पूर्वक दोनो भाइयो के चरण धोये और फिर उन्हे सुन्दर आसनो पर बिठाया।

व्याख्या : प्रेम मगन : मनसा। मुख वचन न आवा : वाचा। सिर नावा . कर्मणा। मुख से बोलना चाहती है। पर कहते नही बनता। तब बार बार प्रणाम करती है।

श्रीचरणों को केवट ने पखारा था। अब शबरी पखार रही है। शबरी बड़े इन्तजाम में थी। जब से मुनिजी कह गये तभी से नित्य नये आसन बनाती। सुन्दर सुन्दर कन्द मूल फल लाती। कौन जाने कब राम आवेंगे। शबरी के पूजन में न विधि है न मंत्र है। केवल भक्ति है। तीन उपचार से पूजन करती है। पाद्य आसन और नैवेद्य से।

दो. कंद मूल फल सुरस अति, दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए, बारंबार बखानि ॥३४.२८॥

अर्थ : उसने अत्यन्त रसीले और स्वादिष्ट कन्द मूल और फल लाकर श्रीरामजी को दिये। प्रभु ने बारंबार प्रशंसा करके उन्हे प्रेम सहित खाया।

व्याख्या : लाकर दिया कहने का भाव यह कि कहीं इकट्ठा करके रक्खे थी वहाँ से लाकर दिया। जब से गुरुजी कहकर चले गये कि तेरे पास रामजी आवेंगे : पर कब आवेंगे यह नहीं कहा · तब से नित्य शबरी पूजोपचार इकट्ठा करती थी। न जाने किस समय आ जावेंगे। इसलिए फलों को खाकर उनके मिठास की परीक्षा कर लेती थी। जो मीठे जँचते थे उन्हे तोड़कर नैवेद्य लगाने के लिए रख लेती थी। आज भी लोग सट्टी मे जाकर आम को चख लेते हैं। पसन्द आने पर खरीदते हैं। उसी भाँति जहाँ अति सरस कन्द मूल फल रक्खे थे वहाँ से लाकर रामजी को दिये। अति कृतज्ञ परम सुजान प्रभु ने उनका बार बार बखान करके भोजन किया। यहाँ यह न समझना चाहिए कि लक्ष्मणजी ने नहीं खाया। रामजी का खाना कहने मे ही लक्ष्मणजी का भोजन करना आगया। आगे चले बहुरि रघुराई का अर्थ यह नहीं है कि लक्ष्मणजी नहीं चले।

पानि जोरि आगें भइ ठाढी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढी ॥
केहि बिधि अस्तुति करौ तुम्हारी। अधम जाति मैं जडमति भारी ॥१॥

अर्थ : फिर वह हाथ जोडकर आगे खडी हो गयी। प्रभु को देखकर उसका प्रेम अत्यन्त बढ गया। कहा · मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ। मैं नीच जाति की और अत्यन्त मूढ़ बुद्धि हूँ।

व्याख्या · पहिले कन्द मूल फल परोसती थी। जब सरकार खा चुके तब हाथ जोडकर आगे खडी हुई स्तुति के लिए : भाव यह कि मेरी इतनी ही पूजा थी। मैं किसी योग्य नहीं। पूजा मे व्यग्र होने से एकाग्र होकर दर्शन नहीं कर सकी थी। प्रीति तो बढी हुई थी ही। दर्शन से और प्रीति बढी।

बोली कि मैं स्तुति की विधि नहीं जानती। तिस पर तुम्हारी स्तुति : स्तुति-र्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिर'। अधम जाति हूँ · कोई स्तोत्र भी कण्ठ नहीं है कि उससे स्तुति करूँ। भारी जडमति हूँ। अपने मन से कुछ कल्पना भी नहीं कर सकती।

अधम ते अधम अधम अति नारी । तिन्ह मँह मैं अतिमन्द अघारी ॥
कह रघुपति सुनु भामिनि वाता । मानउँ एक भगति कर नाता ॥२॥

अर्थ अधमाधमो मे भी स्त्री अधम हैं । उनमे भी हे पाप नाशन ! मै अतिमन्द हूँ । श्रीरघुनाथजी ने कहा कि हे भामिनि ! मेरी बात सुन । मैं तो केवल एक भक्ति का ही नाता मानता हूँ ।

व्याख्या पहिले अधम से जाति हीन कहा । दूसरे अधम शब्द से अघ जन्म महि कहा । तीसरा अधम शब्द नारी होने के नाते कहा । नारी होने से दोप मे उत्कर्ष आ जाता है । यथा काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि । तिय बिसेष पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि । ऐसी स्त्री भी यदि बुद्धिमती हो तो भी कुछ स्तुति कर ही सकती है । शबरी कहती है कि मैं ऐसी स्त्रियो मे भी भारी जडमति हूँ । स्तुति करना जानती भी नही । प्रभु के साक्षात्कार होने पर स्तुति करना चाहिए । अब मै क्या करूँ । जिससे आप प्रसन्न हो । यथा स्तोतुन्न जानामि देवेश किं करामि प्रसीद मे । अ रा

रघुपति हैं सुनि सनमानहिं सबहिं सुबानी । भगति भनिति मति गति पहिचानी । यह प्राकृत महि पाल सुभाऊ । जान सिरोमणि कौसल राऊ । रीझत राम सनेह निसोते । को जग मद मलिन मति मोते । अत कहते हैं मेरी बात सुन । मैं एक ही नाता सम्बन्ध मानता हूँ । भक्त मेरे नातेदार सम्बन्धी हैं । तू अधम क्यो कहती है । तू तो मेरी नातेदार है कवन्ध के प्रकरण मे जाति की बडाई किया । क्योकि वह गुण को वडा माननेवाला था । दोनो के सामञ्जस्य के लिए यहाँ गुण की प्रशसा करते हैं । क्योंकि यह जाति को बडा मानती है ।

जाति पाति कुल धर्म बडाई । धन बल परिजन गुन चतुराई ॥
भगति हीन नर सोहै कैसा । बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ॥३॥

अर्थ जाति, पाँति, कुल, धर्म, बडाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता । इन सबके होने पर भी भक्ति से रहित मनुष्य कैसा लगता है जैसे जलहीन बादल दिखायी पडता है ।

व्याख्या : दस गुण कहे जिससे मनुष्य की शोभा होती है । गुण की वृद्धि के साथ साथ शोभा का उत्कर्ष होता है । जाति मे होना ही शोभा की बात है । फिर यदि पाँति मे बैठने पावे तो शोभा और भी बढे । उससे भी यदि कुलीन हा तो क्या बात है । इसी भाँति दसो के होने से बडी भारी शोभा होती है ।

भक्तिहीन होने से ये दसो शोभाएँ व्यर्थ हैं । जैसे बिना जल का बादल । वह राम सुयश का वर्षा कर नहीं सकता । देखने मे तो वह स्वच्छ है, श्वेत है, पर उसमे मनुष्यता नही है । अत शाभा की कमी पड गयी बसन हीन नहिं सोह सुरारी । सब भूषण भूषित बर नारी ।

नवधा भगति कहउँ तोहि पाँही । सावधान सुनु धरु मन माँही ॥
प्रथम भगति सतन्ह कर सगा । दूसरि रति मम कथा प्रसगा ॥४॥

अर्थ मैं तुझसे अब अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ। तू सावधान होकर सुन और मन मे धारण कर। पहिली भक्ति है सन्तो का सत्सङ्ग। दूसरी भक्ति है मेरे कथा प्रसङ्ग मे प्रेम।

व्याख्या तुझसे कहता हूँ दूसरे किसी से नही कहा। भागवत धर्म गन्धर्व से कहा। नवधा भक्ति जिससे सम्बन्ध नाता स्थापित होता है उसे तुझसे कहता हूँ। यह चाण्डाल तक के लिए है। सुनने म अनवधानता होने से बात मन मे ठीक आवेगी नही। अत सावधान होकर मन में धारण कर। बिना मन मे धारण किये निश्चय न हो सकेगा कि कौन सी भक्ति कितनी मुझमे है और किसकी कमी है। सरकार को उसका सङ्कोच छुडाना है सेवक सकुच सोच उर अपने। और उसे नगरवासियो की भाँति उपदश देकर कृतकृत्य करना है। इसलिए नाता के स्पष्ट करने के व्याज से उसे नवधा भक्ति का उपदेश करते हैं।

श्रवण कीर्तन विष्णो स्मरण पादसेवनम्। अर्चन वन्दन दास्य सख्यमात्म-निवेदनम्। यही नवधा भक्ति प्रसिद्ध है और भगवान् ने भी इसी नवधा भक्ति का उपदेश लक्ष्मणजी को दिया। यथा स्रवणादिक नवभक्ति दृढाही। मम लीला रति अति मन माही। परन्तु शबरी को जिस नवधा भक्ति का उपदेश दिया वह तो स्पष्ट ही श्रवणादिक नवभक्ति से पृथक् है। इस पार्थक्य का कारण हाना चाहिए।

लक्ष्मणजी को सरकार ने भक्तियोग का उपदेश दिया। यथा भक्तियोग सुनि अति सुख पावा। लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा। जिसमे साधनभक्ति भावभक्ति तथा प्रेमा भक्ति तीनो का समावेश है। उसमे कोई बात छूटी नही है। यथा थोरेहि महँ सब कहौं बुझाई। सुनहु तात मति मन चितलाई। और यह भी मानना पडेगा कि दोनो उपदेशो का हृदय एक है। फिर भी प्रकार मे इतना बडा अन्तर क्यो ? यह प्रश्न बिना उठे नही रह सकता।

दोनो प्रकरणो को निविष्ट चित्त से मनन करने से यह बात मन मे आती है कि भक्तियोग का लक्ष्य भगवान् को अपना प्रेमपात्र बनाना है। भक्त को कोई कामना न होनी चाहिए। यहाँ तक कि प्रेमपात्र की प्रसन्नता की भी अपेक्षा न रहे। यथा जानहु राम कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुर साहिब द्रोही। सीता-राम चरन रति मोरे। अनुदिन बढउ अनुग्रह तोरे। तथा वचन कर्म मन मोरि गति भजन करै निष्काम। तिन्हके हृदय कमल महु करौ सदा विस्राम अर्थात् भक्तियोग का पर्यवसान भगवान् को प्रेमपात्र बनाने म है।

परन्तु शबरी को जिस नवधाभक्ति का उपदेश दिया है उसका पर्यवसान स्वय भगवान् के प्रेमपात्र बनने मे है। यथा नवमहुँ एकउ जिन्हके होई। नारि पुरुष सचराचर कोई। सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ तोरें।

शबरी अपने को भक्तियोग का अधिकारी नही मानती। यहाँ तक कि उसे स्तुति करने मे भी सङ्कोच है। कहती है केहि बिधि अस्तुति करौ तुम्हारी। अधम जाति मै जडमति भारी। अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह मँहु मै अतिमद अघारी। इस पर भगवान् उसे भक्ति के नव लक्षण बताते हैं। जिससे भक्त भगवान् का प्रेमपात्र बन जाता है। एव शबरी को आश्वासन देते हैं कि तू अपनेको अधम न जान। तुझमे नवो प्रकार की भक्ति है। इससे तू मुझ अतिशय प्रिय है। इसका प्रमाण यह जोगि वृद दुर्लभ गति जोई। तो कहँ आज सुलभ भइ सोई।

अत निष्कर्ष यह निकला कि भक्तियोग का पर्यवसान भगवान् को प्रेमपात्र बनाने मे है और शबरी को जिस नवधा भक्ति का उपदेश दिया उसका पर्यवसान भगवान् का प्रेमपात्र बनने मे है। अत दोनो मे पार्थक्य निष्कारण नही है। अत दोनो का पृथक् पृथक् उपदेश हुआ।

सरकार का उपदेश भगवद्गीता के उपदेश की भाँति किसी व्यक्ति विशेष के लिए ही नही है। पार्थो वत्स सुधीर्भोक्ता दुग्ध गीतामृत महत्। अर्जुन तो केवल बछडे थे। गीतामृत के भोक्ता तो पण्डित लोग है। इसी भाँति इन उपदेशो से लाभ उठानेवाल भक्त लोग हैं। लक्ष्मणजी तथा शबरी तो निमित्त मात्र हुए। शबरी मे नवधा भक्ति पूर्ण रूप से विद्यमान थी। फिर भी ससार के कल्याणार्थ उसे उपदेश दिया गया। जिस भाँति भगवती अनसूया ने सीताजी को पातिव्रत का उपदेश दिया। यथा

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम कहेउँ कथा ससार हित॥

एक भक्ति से कल्याण होता है। केवल सत्सग से ही सध जाता है। यथा अस विचारि जो कर सतसगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहगा। सतसगति मुद मगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला। दूसरी भक्ति रामकथा मे रति। यथा

रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेष बड लाहु॥
महा मोह महिखेस बिसाला। रामकथा कालिका कराला॥
रामकथा सुदर कर तारी। ससय बिहग उडावन हारी॥

दो गुरु पद पकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथी भगति मन गुन गन, करै कपट तजि गान॥३५ २९॥

अर्थ तीसरी अमान भक्ति है गुरु के चरण कमलो की सेवा और चौथी भक्ति यह है कि कपट छोडकर मेरे गुण समूहो का गान करे।

व्याख्या गुरु के चरण की सेवावाली भक्ति मानरहित होनी चाहिए। स्वय प्रभु उसे अपनाये हुए हैं। धनुष भङ्ग के लिए सीय स्वयम्बर म सब राजा लोग

इष्ट देवता को प्रणाम करके चले। पर प्रभु ने तो गुरु चरणों को प्रणाम किया। यथा : गुरुहि प्रनाम मनहि मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा। श्री चक्रवर्तीजी : राजा दशरथ कहते हैं : मोहि सम येहु अनुभयेउ न दूजे। सब पाँयेउ रज पावन पूजे। मानरहित यथा : गुरुपद पदुम पलोटत प्राते।

चौथी भक्ति हरि गुणगान है। भगवान् कहते हैं कि न मैं वैकुण्ठ में वसता हूँ और न योगियों के हृदय में वसता हूँ। मेरे भक्त जहाँ गान करते हैं वही मैं वसता हूँ। नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न हि। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।

परन्तु समय : शर्त यह है कि कपट छोड़कर मान करें। दूसरो के दिखाने के लिए या अपनी प्रसिद्धि के लिए नहीं। सभी पुण्य भावोपहत हो जाने पर पाप हो जाते हैं। यथा : सर्वाणि भावोपहतानि कल्कः।

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा॥१॥

अर्थ : मेरे मन्त्र का जप और मुझमे दृढ विश्वास : यह पाँचवीं भक्ति है जो वेदों में प्रसिद्ध है। छठी भक्ति है इन्द्रियों को निग्रह : शील : बहुत कार्यों से वैराग्य और निरन्तर सन्त पुरुषो के आचरण में लगे रहना।

व्याख्या : मननात् त्रायत इति मन्त्रः। कौनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। मन्त्र जप में तो विश्वास का अधिक उपयोग है। भविष्यतीति मनः कृत्वा सतत-मव्यथैः। जब वाणी मन मे प्रतिष्ठित हो और मन वाणी में प्रतिष्ठित हो तभी यथार्थ रूप से जप होता है। भगवती श्रुति कहती हैं : वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्मे एधि और श्रुति भगवती ने ही राममन्त्र में प्राणीमात्र का अधिकार बतलाया है। यथा : मन्त्रेषु तेषु सर्वेषामधिकारोऽस्ति देहिनाम्। इसीलिए कहते हैं : पंचम भजन सो बेद प्रकासा। दम से इन्द्रिय जय और शील से आचार का ग्रहण किया : बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्। काम्य कर्म से विरत हो नित्य नैमित्तिक से नहीं। सज्जनधर्म परोपकारादि हैं जिनका सविस्तर वर्णन : प्रभु नारद सम्वाद प्रकरण में है। उनमें सदा लगा रहे। यह छठी भक्ति हुई।

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मो तें संत अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ पर दोषा॥२॥

अर्थ : सातवी भक्ति है : जगत् भर को समभाव से मुझमें ओत प्रोत देखना और सन्तों को मुझसे भी अधिक करके मानना। आठवी भक्ति है : जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तोष करना और स्वप्न मे भी पराये दोषों को न देखना।

व्याख्या : सातवी भक्ति है : निज प्रभुमय देखहि जगत् कासन करहि विरोध।

परन्तु सन्तो को भगवान् से भी अधिक माने। क्योंकि भगवत्प्राप्ति उन्ही के द्वारा होती है। यथा : रामसिंधु घन सज्जन धीरा। चदन तरु हरि सत समीरा।

आठवी भक्ति है : यथा लाभ सन्तोष। सन्तोषादनुत्तमसुखलाभ। यो द सन्तोष से ऐसा सुख मिलता है जिससे बढकर कोई सुख नही है। यथा : कोउ बिस्राम कि पाव तात सहज सन्तोष बिनु। बिनु सन्ताप न काम नसाही। काम अछत सुख सपनेहु नाही। राम भजन बिनु मिटहि कि कामा।

और दूसरे का दोष तो सपने मे भी न देखे। दूसरे के दोष देखने का स्वभाव हो जाने से बिना जाने वे दोष अपने हृदय मे डेरा करने लगते हैं। इसीलिए परदोष निरीक्षण खल का लक्षण कहा गया है।

नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हिय हरष न दीना॥
नव महुँ एकउ जिन्ह के होई। नारि पुरुष सचराचर कोई॥३॥

अर्थ : नवी भक्ति है सरलता और सबके साथ कपट रहित व्यवहार करना : हृदय मे मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्था मे हर्ष और विषाद का न होना। इन नवो मे से जिनके एक भी होती है वह स्त्री पुरुष जड चेतन कोई भी हो।

व्याख्या सरलता महात्मा का लक्षण है। मनस्येक वचस्येक कर्मण्येक महात्मनाम्। शत्रु मे भी छलहीन साधु ही हो सकता है। हिंस्र स्वपापेन विहिंसित खलु साधु समत्वेन भयाद्विमुच्यते। मम भरास हिय यथा मोर दास कहाइ नर आसा। करै तो कहहु कहाँ बिस्वासा। तथा आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस। हर्ष और दीनता के लिए फिर कोई कारण नही रह जाता।

ये नवो भक्ति स्वतन्त्र हैं। इसीलिए कहते हैं कि इन नवो मे से एक[1] के भी होने से वह भक्त मुझे प्रिय होता है। इस नवधा भक्ति में एक का भी होना दुर्लभ है। नारी होने से अपने को अनधिकारी क्यो समझती है। पुरुष नपुसक नारि वा जीव चराचर कोइ। सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ।

आनिन्द्ययोन्यधिक्रियते पारम्पर्यात् सामान्यवत्। शा० भ० सू०। भक्ति मे निन्द्य योनि सामान्य रूप से सबको अधिकार है।

सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरे। सकल प्रकार भगति दृढ तोरें॥
जोगि बृन्द दुर्लभ गति जोई। तो कहुँ आज सुलभ भइ सोई॥४॥

अर्थ : हे भामिनि ! मुझे अत्यन्त वही प्रिय हैं। फिर तुझमे तो सभी प्रकार की भक्ति दृढ है। अतएव जो गति योगियो को भी दुर्लभ है वही आज तेरे लिए सुलभ हो गयी।

---

१ ईश्वर तुष्टेरे कोपि बली। शा० भ० सू०। एक का भी विशेष रूप से अनुष्ठान करने पर वही परमेश्वर को सन्तुष्ट करके बलवान् हो जाता है।

व्याख्या : नर नारि होने से मेरे वर्ताव मे भेद नही। रीझत राम सनेह निसोते। सकल प्रकार भक्ति दृढ होने से भामिनि कहा। तेजोमयी मूर्ति शबरी हो गयी।

योगि वृन्द दुर्लभ गति कैवल्य पद है अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। ससार को अति दुर्लभ तेरे लिए सुलभ हो गयी। आज का भाव यह कि काल पाकर नही आज ही तू मुक्त होगी।

मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा॥
जनकसुता कइ सुधि भामिनि। जानहि कहु करिबरगामिनि॥५॥

अर्थ : मेरे दर्शन का परम अनुपम फल यह है कि जीव अपने सहज स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। हे भामिनि! हे गजगामिनि! अब यदि तू जानकीजी की कुछ खबर जानती हो तो कह।

व्याख्या : सहज स्वरूप की प्राप्ति ही कैवल्य पद है। यह मेरे दर्शन का फल है। ईश्वर दृष्टि से दर्शन किया। मेरे साक्षात्कार विना मुक्ति नही होती। मेरा दर्शन : साक्षात्कार परम अनूप है। मेरा स्वरूप ही वना देता है।

भामिनि से उपक्रम करके ' कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। भामिनि मे अभ्यास : सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरे। तथा भामिनि से उपसहार करते हैं। यथा : जनकसुता कर सुधि भामिनि। उसके गति की भी प्रशसा करते हैं। यथा : जानहि कहु करिबरगामिनि। भाव यह है कि जिस भाँति प्रेम की मिठास शबरी के फलो मे थी उसी भाँति प्रेम का सौन्दर्य उसके शरीर मे था। जिसने उसके फल की प्रशसा की वही महाप्रभु उसके सौन्दर्य की भी प्रशसा कर रहे हैं एव सब प्रकार से उसका आदर कर रहे हैं। उसकी ग्लानि का सम्मार्जन कर रहे हैं। खोई हुई वस्तु को सबसे पूछना चाहिए। सीता हरण के बाद पहिली मनुष्य शबरी ही मिली। अतः उससे सीताजी की सुधि पूछते हैं। उसे कृतज्ञता प्रकाश का भी समय नहीं दे रहे हैं।

पंपा सरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई॥
सो सब कहिहि देव रघुबीरा। जानत हूँ पूछहु मति धीरा॥६॥

अर्थ : शबरी ने कहा : हे रघुनाथजी! आप पम्पा नामक सरोवर को जाइये। वहाँ आपकी सुग्रीव से मित्रता होगी। हे देव! हे रघुवीर! वह सब हाल बतावेगा। हे धीरबुद्धि! आप सब जानते हुए भी मुझसे पूछते हैं।

व्याख्या : शबरी ने सीताजी को स्वय नही देखा। सुग्रीव ने देखा है। योगबल से जानती है। अतः सुग्रीव का पता बतला रही है। अथवा गुरु मुख से पूरा रामायण सुन चुकी है। यथा : यह सब जागवलिक कहि राखा। गुरुजी ने तो कहा था कि सुग्रीव सब बतलावेंगे। हमे बतलाने को तो नही कहा था।

देव से कौतुक प्रियता अथवा सवज्ञता और रघुवोर से सामर्थ्यं कहा। तुमसे क्या छिपी है। यह आपका कौतुक है कि जानते हुए भी पूछते है। मतिधीर हैं राजनीति राखत सुर त्राता। अत रघुवीर कहा।

वार बार प्रभु पद सिरु नाई। प्रेम सहित सब कथा सुनाई ॥७॥

अर्थं वार बार प्रभु के चरणो मे सिर नवाकर प्रमसहित उसने सब कथा सुनायी।

व्याख्या उपक्रम म पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा कहा था। अब उपसहार मे भी कहते वार बार प्रभु पद सिर नाई। जोगि बद दुलभ मति जोई। तो कहँ आज सुलभ भइ सोई। कहने के बाद प्रभु ने शबरी को पुन कृतज्ञता प्रकाश करने का समय नही दिया। जनकसुता का हाल पूछने लगे। अत उत्तर देकर तब प्रणाम करती हैं। जिसे सक्षेप म कहा था उसे विस्तार मे कहने लगी।

छ कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदय पद पकज धरे।
तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे ॥
नर विविध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू।
बिस्वास करि कह दास तुलसी रामपद अनुरागहू ॥

अर्थं सब कथा कहकर भगवान् के मुख दशन कर हृदय म उनके चरण कमलो को धारण कर लिया और योगाग्नि से देह को त्यागकर वह उस दुर्लभ हरिपद मे लीन हो गयी जहाँ से लौटना नही होता। तुलसीदासजी कहते हैं कि अनेको प्रकार के कर्म अधम और बहुत से मत ये सब शोकप्रद हैं। हे मनुष्यो! इनका त्याग कर दो और विश्वास करके श्रीरामजी के चरणो म प्रेम करो।

व्याख्या सब कथा कही कैसे गुरुजी के पास आयी? कैसे गुरुजी की कृपा हुई? कैसे गुरुजी ने सब कथा सीताहरण रावण वध की कही थी। बदन पकज भव मोचन का निरीक्षण किया पर उपासक चरणो की थी। इसकी कथा मे चरण का ही बार बार उल्लख होता है। अत चरणो को ही हृदय मे रक्खा।

योगाग्नि से शरीर छोडा। उमा तथा शरभङ्ग ने भी योगाग्नि से शरीर छोडा। पर वे हरिपद लीन नही हुए। क्याकि वर दूसरे प्रकार का माँग चुके थे। इसने कोई वर नही माँगा। अत हरिपद लीन हुइ। उस पद से लौटना नही होता। न स पुनरावर्तते।

अत गोस्वामीजी नरजाति को शिक्षा देते हैं। बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्। अत काम्य धर्म के अनेक प्रकार हैं। बहुमत लखि श्रुति शास्त्र पुराणन्हि जहाँ तहाँ झगरो सो। इन्हे छोडो सबकर मत खग नायक एहा। करिय राम पद पकज नेहा। अत इन्ही मे अनुराग कर।

दो. जाति हीन अघ जन्म महि, मुक्त कीन्हि अस नारि।
महामन्द मन सुख चहसि, ऐसे प्रभुहि बिसारि ॥३६.३०॥

अर्थ : जो नीच जाति की और पापो की जन्मभूमि थी। ऐसी स्त्री को भी जिन्होंने मुक्त कर दिया। अरे महा दुर्बुद्धि मन ! तू ऐसे प्रभु को भूलकर सुख चाहता है।

व्याख्या : जिसका जन्म कर्म दोनो बिगडा हुआ। तिस पर स्त्री पाप योनि उसको मुक्त किया भजन पर रीझ के। यह मन महा मन्द है। जयन्त के मन सा है। सुख रूप को भूलकर सुख चाहता है। ऐसे प्रभुहि बिसार ' बलि पूजा चाहत नही चाहते एकै प्रीति। ऐसा प्रभु क्या भूलने योग्य है।

४३. सरोवरतीरगमन प्रसंग

चले राम त्यागा बन सोऊ। अतुलित बल नर केहरि दोऊ॥
बिरही इव प्रभु करत बिषादा। कहत कथा अनेक संबादा॥१॥

अर्थ : श्रीरामचन्द्रजी ने उस वन को भी छोड दिया और वे आगे चले। दोनो भाई अतुलित बलवान् और मनुष्यो मे सिंह के समान हैं। प्रभु विरही की तरह विषाद करते हुए अनेक कथाएँ और सवाद कहते हैं।

व्याख्या : बहुरि बिरह बरनत रघुबीरा। जेहि बिधि गये सरोवर तीरा। सो विरह वर्णन प्रसङ्ग कहते हैं। पुनि सीतहि खोजत दोउ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई। इसी वन मे शबरी का आश्रम था। अब उस वन को भी पीछे छोड दिया। एक वन को छोड दूसरे मे निर्भीक घुसे चले जा रहे हैं। अत: अतुलित बल कहा। रावण के वध का तो तौल रहा। वन मे निर्भीक घुसने से नर केहरि कहा। दो सिंह साथ नही रहते यहाँ दोनो साथ है।

एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहु महा बिरही अति कामी : की अवस्था तो नही है। फिर भी बिरही इव विषाद कर रहे हैं। कबहूँ योग वियोग न जाके। योग हुआ हो तो वियोग भी हो। अत. विरही इव विषाद करते हैं। नर गति भगत कृपालु देखाई। कथा भी विरह की सवाद भी विरह का। जो दूसरो मे हुई उसकी कथा : संवाद जो आपस मे हुआ।

लछिमन देखु बिपिन कइ सोभा। देखत केहि कर मन नहिं छोभा॥
नारि सहित सब खग मृग बृंदा। मानहुँ मोरि करत हहिं निंदा॥२॥

अर्थ : हे लक्ष्मण ! जरा वन की शोभा तो देखो। इसे देखकर किसका मन क्षुब्ध न होगा ? पक्षी और पशुओ के समूह सभी स्त्री सहित हैं। मानो ये मेरी निन्दा कर रहे हैं।

व्याख्या : अब कथा आरम्भ हुई। पिछला वन बडा था। यह सुहावना है। उद्दीपन उपस्थित हुआ। लक्ष्मण को दिखलाते हैं। कहेहू ते कछु दुख घटि होई : अत कहते हैं। आलम्बन की प्राप्ति मे भी लछिमन से ही कहा था। यथा : जासु बिलोकि अलौकिक शोभा। सहज पुनीत मोर मन सोभा।

इस उद्दीपन के समय सबको आलम्बन है। मैं निरालम्ब हूँ। खग मृग तक नारी सहित हैं और मैं नारी रहित हूँ। कोई खग मृग ऐसे नहीं जिन्हे जोडा न हो। जो कोई बिना जोडा के होता तो मैं अपनी निन्दा न मानता। खग मृग सा भी सुख मुझे प्राप्त नही है। वे निन्दा नहीं करते पर मुझे वैसी ही लज्जा हो रही है। जैसी निन्दा सुनने से होती है ग्लानि सञ्चारी है। मानो कहते हैं कि इन्होने नारी को साथ नही रक्खा। बडा बुरा किया। खग मृग मुझसे बुद्धिमान् हैं।

हमहि देखि मृग निकर पराही। मृगी कहहि तुम्ह कहँ भय नाही ॥
तुम्ह आनद करहु मृग जाए। कचन मृग खोजन ए आए ॥३॥

अर्थ हमे देखकर जब हिरनो के झुण्ड भागने लगते हैं तब हिरनियाँ उनसे कहती हैं तुमको भय नही है। तुम तो साधारण हिरनो से पैदा हुए हो। अत तुम आनन्द करो। ये तो सोने का हिरन खोजने आये हैं।

व्याख्या : मनुष्य को देखकर ही मृगादि वन्यजन्तु भाग जाते हैं ? कि पुन. धनुर्धारी को देखकर मृग जाति में भी स्त्री अवध्य हैं। अतः भय मृग को ही रहता है। सो मृग भाग खडे होते हैं कि ये मृग के खोज म आये हैं : मुझे मारेंगे। मनुष्य की आहट पाकर भागते हैं। पर प्रभु की शोभा दखकर खडे हो जाते है। इस पर प्रभु उत्प्रेक्षा करते हैं कि वे मृगी के कहने से भागते भागते रुक गये। मृग जाये : कहकर आर्यपुत्र की भाँति पति को सम्बोधन करती है और कहती हैं कि ये मृग के बच्चे को नहीं मारते। ये तो कञ्चनमृग को खोजने आये हैं। असम्भव हेममृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय।

सग[1] लाइ करिनी करि लेहीं। मानहुँ मोहि सिखावन देही ॥
शास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिय। भूप सुसेवित बस नहिं लेखिय ॥४॥

अर्थ : हाथी हथिनियो को साथ लगा लेते हैं। वे मानो मुझे शिक्षा देते है। भली भाँति चिन्तन किये हुए शास्त्र को भी बार बार देखते रहना चाहिए। अच्छी तरह सेवा किये हुए भी राजा को वश में नही समझना चाहिए।

व्याख्या : हथिनी छूट जाती हैं। पर हाथी बडा ख्याल रखते हैं। उसे सङ्ग ले लेते हैं। मुझे सिखाने के लिए नही। पर मुझे मालूम होता है कि मुझे सिखावन देते हैं। इन्हे इतनी वुद्धि हुई मुझे न हुई। यद्यपि जानकी ने मुझे कहा था कि जाओ : सत्यसन्ध प्रभु बध कर एही। आनहु चर्म कहति वैदेही। पर मुझे मानना नही था।

---

१. यहाँ निदर्शन . तीसरा अलङ्कार है।

मुझे उसका साथ छोडना नही चाहिए था। मृग तुच्छ जीव हैं। मेरे मन्दबुद्धि तथा लोभ की निन्दा करने लगे। ये गजराज हैं। वडे हैं। ये निन्दा नही करते। सिखावन देते हैं : शास्त्रं सुचिन्तितमपि प्रतिचिन्तनीयमाराधितोऽपि नृपति परिशङ्कनीय·।

राखिअ नारि जदपि उर माही। जुवती सास्त्र नृपति बस नाही ॥
देखहु तात बसंत सुहावा। प्रिया हीन मोहि भय उपजावा ॥५॥

अर्थ : और स्त्री को चाहे हृदय मे ही क्यो न रक्खा जाय। परन्तु युवती स्त्री, शास्त्र और राजा किसी के वश म नही रहते। हे तात ! इस सुन्दर बसन्त को तो देखो। प्रिया के बिना मुझको यह भय उत्पन्न कर रहा है।

व्याख्या : अङ्के स्थितापि युवती परिरक्षणीया। शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतो वशित्वम्। उर माही राखिय : आलिङ्गित भी रहे। अत अङ्के स्थिता और राखिय उर माही मे भेद नही है। भेद इतना ही है कि कुतो वशित्वं कहने के समय मे गोस्वामीजी ने युवती पद पहिले दिया। अर्थात् वश मे न आनेवालो मे युवती की प्रथम गणना है।

विपिन की शोभा कहते कहते मृग दिखायी पडे तो उसका हाल कहने लगे। तब से हाथी दिखायी पडा उससे अपना सम्वाद कहने लगे। अब फिर वन वर्णन प्रारम्भ किया। विपिन की शोभा का कारण कहते हैं। वसन्त सुहावा। प्रिया के सहित होने से यह उत्सव मनाने का समय था। उनके शृङ्गार के लिए फूलो के गहने वनाते। सो प्रिया के न होने से यह भयदायक हो गया। जे हित रहे करइ तेइ पीरा। मेरे लिए जमाना पलट गया।

दो. बिरह बिकल बलहीन मोहि, जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन मधुकर खग, मदन कीन्ह बगमेल ॥३७.३१॥

अर्थ : मुझे विरह से व्याकुल बलहीन और बिल्कुल अकेला जानकर कामदेव ने वन भौरो और पक्षियो को साथ लेकर मुझ पर धावा बोल दिया।

व्याख्या : काम से मेरी अनबन बहुत दिनो से चली आती है। एकबार पुष्पवाटिका मे मदन ने डङ्का दिया था। मानहु मदन दुदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही। पर उस समय उसका किया कुछ न हो सका। विश्व विजय मेरे हाथ लगी। यथा : बिस्व बिजय जसु जानकि पाई। तब से जानकी का विरह कभी हुआ नही। अत· उसका घात बैठा नही। इस समय मैं बिरह बिकल बलहीन हूँ : जब से सीताहरण हुआ है तब से राक्षस अदृश्य रूप से रामजी के पहरे पर हैं। बराबर रावण को खबर दिया करते हैं। उन्ही से खबर पाकर रावण ने अगद से कहा : तब प्रभु नारि बिरह बलहीना। और उसके समझ मे मैं अकेला हूँ। अत. मदन ने बगमेल किया है। बिपिन मधुकर खग उसकी सेना हैं। वसन्त मित्र है।

दो. देखि गयउ भ्राता सहित, तासु दूत सुनि बात ।
डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब, कटकु हटकि मन जात ॥३७॥

अर्थ : परन्तु जब उसका दूत यह देखा गया कि मै भाई के साथ हूँ तब उसकी बात सुनकर कामदेव ने मानो सेना को रोककर डेरा डाल दिया है ।

व्याख्या . त्रिबिधि बयारि बसीठी आयी । वन मे से दूत बाहर निकलकर आया सन्देश लेकर । पर दूत नही मालूम पडता । यह भेदिया है यथा : रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने । ब्रह्मचारी भाई साथ मे है । वह सहायक है · समझा बुझा लेता है । यह समाचार पाकर फौज को मानो आगे बढने से रोक दिया । तुमसे लक्ष्मण ! काम भय खाता है । डेरा दे दिया । समझ बूझकर धावा करेगा । कहाँ बगमेल किया था, कहाँ डेरा डार दिया यह सोचकर कि जब अकेला पावेंगे तब चोट करेंगे ।

बिटप बिसाल लता अरुझानी । बिबिध बितान दिये जनु तानी ॥
कदलि ताल बर ध्वजा पताका । देखि न मोह धीर मन जाका ॥१॥

अर्थ विशाल वृक्षो मे लताएँ उलझी हुई ऐसी मालूम होती हैं कि मानो नाना प्रकार के तम्बू तान दिये गये है । केला और ताड सुन्दर ध्वजा पताका के समान हैं । इन्हे देखकर वही नही मोहित होता जिसका मन धीर है ।

व्याख्या · डेरा दिया है, इससे पहिले डेरा का ही वर्णन प्रारम्भ किया । एक वृक्ष की लता दूसरे पर जा रही हैं । इस भाँति लाखो तम्बू तने हुए है । लताएँ अनेक रग की और अनेक प्रकार के फूलवाली होती है । इसलिए बिबिध बितान कहा । लता के फैलने का भी क्रम एक सा नही । परिमाण भी एक सा नही ।

चतुष्कोण झण्डे को ध्वजा त्रिकोण को पताका कहते हैं । फौज मे जहाँ तहाँ ध्वजा पताका फहराते हैं । ध्वजा छोटा पताका बडा होता है । कदली ध्वजा और ताल पताका हैं । ध्वजा पताका देखकर मनुष्य का साहस छूट जाता है कि शत्रु आया । ध्वजा पताका देखकर किला छोड़कर भागने का दृष्टान्त इतिहासो मे मिला है ।

बिबिध भाँति फूले तरु नाना । जनु बानत बने बहु बाना ॥
कहुँ कहुँ सुदर बिटप सुहाए । जनु भट बिलग बिलग होइ छाए ॥२॥

अर्थ : अनेको वृक्ष नाना प्रकार के फूले हुए हैं । मानो अलग अलग वर्दी धारण किये हुए बहुत से तीरन्दाज हो । कही कही सुन्दर वृक्ष शोभा दे रहे हैं । मानो योद्धा लोग अलग अलग होकर ठहरे हो ।

व्याख्या : वसन्त मे वृक्ष फूल उठते हैं । एक पेड मे एकही रंग के फूल होते हैं । वृक्ष नीचे से ऊपर तक फूल से लदे हैं मानो अनेक बीर अनेक प्रकार की वर्दी पहिने हैं । बानैत = सिपाही । धनुर्वेद सभी प्रकार के शास्त्रो की शिक्षा देता

है। अत: शस्त्रकुशल सिपाही को बानैत कहते हैं। ›डेरा पड गया है। इसलिए पलटन मे क्रम नही है बिलग बिलग है।

सुन्दर पेड बहुत नही होते। कुछ कुछ दूर पर होते है। इसी भाँति सभी सिपाही भट नही होते। वे अपने अपने समाज के साथ अलग अलग ठहरे हुए हैं। अत: उनकी उपमा सुन्दर वृक्ष से दी गयी है।

कूजत पिक मानहुँ गज माते। ढेक महोख ऊँट बिसराते॥
मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी॥३॥

अर्थ : कोयलें कूज रही है। मानो मतवाले हाथी चिग्घाड रहे हैं। ढेक और महोख पक्षी मानो ऊँट और खच्चर है। मोर, चकोर, तोते, कबूतर और हंस मानो सब सुन्दर ताजी घोडे हैं।

व्याख्या : मत्त गज गर्जते है और पिक कूजते हैं गर्जहि गज घंटा धुनि घोरा। विरही को पिक का कूजना हाथी के गर्जन सा डरावना प्रतीत होता है। पञ्चम निषाद प्रतीत होता है। आम के बौर पर बैठी कोकिल मालूम होती है कि गजराज के पाँव मे सोने का लगर पडा है। ढेक की टाँग लम्बी होती हैं। महोख चौडे होते हैं। गज का वर्णन करके बार बरदारी के जानवर ऊँट और खच्चर का वर्णन करते हैं।

मोर चकोर कोर की चाल अच्छी होती हैं। इससे इन्हे बरबाजी कहा और कबूतर और हस की बडी भारी गति है। इसलिए इन्हे ताजी कहा। कबूतर और घोड़ो के रग की भी बडी बारीकी है। कबूतरबाजो को खूब रंगो का पहिचान होता है।

तीतर लावक पदचर यूथा। बरनि न जाइ मनोज बरूथा॥
रथ गिरि सिला दुंदुभी झरना। चातक बंदी गुन गन बरना॥४॥

अर्थ : तीतर और बटेर पैदल सिपाही के झुण्ड हैं। कामदेव की सेना का वर्णन नही हो सकता। पर्वतो की शिलाएँ रथ और जल के झरने के नगाडे हैं। पपीहे भाट हैं जो गुण समूह का वर्णन करते है।

व्याख्या : तीतर लावा ऊँचे नही उडते। प्रायेण पैर से ही बड़ी तेजी से चलते है। इससे इन्हे पैदल कहा। काम की सेना का वर्णन नही हो सकता। लौकिक सेना का तो वर्णन सम्भव है। वन मे जितने पशु पक्षी हैं सब काम की सेना हैं : बन उपवन बाटिका तडागा। जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा।

जब रथ से घोडे खोल दिये जाते हैं तो रथ गिरि शिला की भाँति स्थिर दिखायी पडते हैं। झरना का शब्द हुआ करता है मानो दुदुभी बज रही है। नौबत झर रही है। चातक भाट की भाँति काम का गुण गा रहे हैं। पीय पीय कहकर उसे जगत् का प्रिय बतला रहे हैं। काम की जीत से ही संसार चल रहा है।

मधुकर मुखर भेरि सहनाई। त्रिविध बयार बसीठी आई ॥
चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हे। बिचरत सबहि चुनौती दीन्हे ॥५॥

अर्थ भौरो की गुञ्जार भेरी और शहनाई है। शीतल मन्द और सुगन्धित हवा मानो दूत बनकर आयी है। इस प्रकार चतुरङ्गिणी सेना साथ लिये कामदेव मानो सब को चुनौती देता हुआ विचर रहा है।

व्याख्या गुजत अलि लै चल मकरन्दा। ये मधुर मुखर होते हैं। अत इन्हे शहनाई और नगाडा कहा। शहनाई राजा के पास बजती है। जो हवा का झोका आया सो शीतल मन्द सुगन्धित था। इसलिए इसे बसीठी कहा। सुलह की बात लेकर आया हमारे शरण आ जाओ प्राण छोड देंगे। हम लोगो ने रावण को चुनौती दिया। यह जगत् को चुनौती देता घूमता है। जहाँ जहाँ बसन्त आया है वहाँ वहाँ यही हाल है। अथवा बसन्त की सेना संसार मे व्याप्त हो गयी है। अत सबको एक साथ चुनौती दे रहा है।

लछिमन देखत काम अनीका। रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका ॥
एहि के एक परम बल नारी। तेहि ते उबर सुभट सोइ भारी ॥६॥

अर्थ हे लक्ष्मण ! कामदेव की इस सेना को देखकर जो धीर बने रहते हैं जगत् मे उन्ही की वीरो मे प्रतिष्ठा होती है। इस कामदेव को एक स्त्री का बडा भारी बल है। क्योकि सासारिक भोगो मे स्त्री शरीर ही सर्वोत्कृष्ट भोग है। उससे जो बच जाय वही श्रेष्ठ योद्धा है।

व्याख्या पहिले देखने को कहा लछिमन देखु बिपिन कर सोभा। देखत केहि कर मन नहिं छोभा। देखहु तात बसन्त सुहावा। इत्यादि। इस भाँति कामियो की दीनता दिखायी। अब धीरो के मन मे विरति को दृढ करते है। कहते हैं कि जिसे क्षोभ न हुआ ससार मे उसी का लीक है रेख खँचाइ कहौं बल भाखी। वही बडा धीर है।

लोभ के इच्छा दम्भ बल काम के केवल नारि। नारि मे चित्त न हो तो काम अकिञ्चित्कर है। अवगुन मूल सूल प्रद प्रमदा सब दुख खानि। ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जिय जानि।

दो तात तीनि अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन, करहिं निमिष महुँ छोभ ॥३८॥

अर्थ हे तात ! काम क्रोध और लोभ ये तीन अत्यन्त प्रबल दुष्ट हैं। ये विज्ञान के धाम मुनियो के भी मनो को पलभर मे क्षुब्ध कर देते हैं।

व्याख्या बिना कारण वैर करते हैं। इसलिए खल कहा। इन्ही से प्रयुक्त होकर मनुष्य पापाचरण करते हैं। इसलिए प्रबल खल कहा। त्रिविध नरकस्येद द्वार नाशनमात्मन। काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रय त्यजेत्। काम एष

क्रोध एष रजोगुणसमुद्भव: । महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् । खल बिनु कारण पर अपकारी । मुनि मन छोभ करहिं छन माँही । ये आत्मा के नाश करनेवाले काम क्रोध और लोभ नरक के द्वार है । ये बडे खानेवाले पापी हैं । इन वैरियो को जाने रहो । ये निष्कारण अपकार करते हैं । मुनि के मन में पलक मारते क्षोभ करते हैं ।

दो. लोभ के इच्छा दंभ बल, काम के केवल नारि ।
क्रोध के परुष बचन बल, मुनिबर कहहि बिचारि ॥३८.३२॥

अर्थ : लोभ को इच्छा और दम्भ का बल है । काम को केवल स्त्री का बल है और क्रोध को कठोर वचनो का बल है । श्रेष्ठ मुनि विचारकर ऐसा कहते हैं ।

व्याख्या : इनका मर्म कहते हैं । इच्छा और दम्भ को स्थान न देने से लोभ मारा पडता है । स्त्री की कामना न रहने से काम मारा पडता है । परुष वचन के त्याग तथा सहन से क्रोध का जय होता है । मुनियों के ऊपर चोट करता है । अतः मुनियों ने उसका उपाय सोच निकाला है ।

गुनातीत सचराचर स्वामी । राम उमा सब अंतरजामी ॥
कामिन्ह कै दीनता देखाई । धीरन्ह के मन बिरति दृढ़ाई ॥१॥

अर्थ : शिवजी कहते हैं : हे पार्वती ! श्रीरामचन्द्रजी तीनो गुणो से परे चराचर जगत् के स्वामी और सबके अन्तर के यमन करनेवाले हैं । ऊपर की बातें कहकर : उन्होने कामी लोगों की बेवसी दिखलायी और विवेकी पुरुषो के मन मे वैराग्य को दृढ किया ।

व्याख्या : विषाद तमोगुण का कार्य है । सरकार गुणातीत है । अतः उनसे विषाद का सम्पर्क नही । चराचरात्मक जगत् उनका स्व है । जगत् से निर्लेप रहने पर भी वे उसके स्वामी हैं । चेतन जीव के भी प्रेरक हैं । वे विषाद से प्रेरित नही हो सकते । यही उमा को मोह हुआ था । अतः ज्ञान घाट के वक्ता यहाँ सरकार के स्वरूप का निरूपण करते है । अतः उमा सम्बोधन दिया ।

यह उनकी लीला है । फिर भी कुछ प्रयोजन होना चाहिए । अतः कहते हैं लोक शिक्षा के लिए : चाटत चाम सँवारत चामहि चाम बिना मन दोन : अवतार भी हो यदि स्त्री संग्रह करे तो उसे भी विलाप करना पडता है । दीनता का प्रदर्शन पण्डितो के हृदय मे वैराग्य सदीपनार्थ किया : उमा राम गुन गूढ का साफल्य ।

क्रोध मनोज लोभ मद माया । छूटहिं सकल राम की दाया ॥
सो नर इंद्रजाल नहि भूला । जा पर होइ सो नट अनुकूला ॥२॥

अर्थ : क्रोध, काम, लोभ, मद और माया ये सभी श्रीरामजी के दया से

छूट जाते हैं। वह नट भगवान् जिस पर प्रसन्न होता है वह मनुष्य इन्द्रजाल : माया : मे नही भूलता।

व्याख्या : सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपा बिलोकहिं जेही। तुम्हारी कृपा तुम्हहि रघुनन्दन। जानहिं भगत भगत उर चंदन। अतः सरकार की कृपा से माया ही छूट जाती है। कामनादि तो उसके अधीन हैं।

छूटने की प्रक्रिया कहते है। माया इन्द्रजाल है। सरकार नट हैं। यह संसार उसी नट का फैलाया हुआ इन्द्रजाल है। नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहि न ब्यापै माया। शेष जगत् उसी मे भूला फिरता है। नट तो इन्द्रजाल पसारनेवाला है। उसका कृपापात्र इन्द्रजाल में नही भूलता वह कैसे भूलेगा।

उमा कहउँ मै अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥
पुनि प्रभु गये सरोवर तीरा। पंपा नाम सुभग गंभीरा॥३॥

अर्थ हे उमा! मैं तुम्हे अपना अनुभव कहता हूँ : हरि का भजन ही सत्य है। यह सारा जगत् तो स्वप्न की भाँति असत् है। फिर प्रभु श्रीरामजी पम्पा नामक सुन्दर और गहरे सरोवर के तीर पर गये।

व्याख्या . कोई ऐसा कृपापात्र है भी जो इस इन्द्रजाल में न भूला हो। तो शिवजी पहिले अपने को ही उदाहरण रूप मे देते हैं। अतः अपना अनुभव कहते हैं। मुझे जगत् सपना सा मिथ्या प्रतीत होता है · व्यावहारिक सत्य स्वीकार नही है : दिखायी मुझे भी पडता है। पर मुझे उसके सत्यता का भान नही होता। सब प्रातिभासिक है। मुझे हरि भजन सत्य मालूम होता है। हरि भजन से ही संसार के मिथ्यात्व का निश्चय होता है। हरि भजन मात्र से सत् की प्रतीति होती है।

पपा सरहि जाहु रघुराई। सो सरकार वहाँ पहुँचे। गम्भीर सरोवर है और सुन्दर है। उत्तर मे मानस सरोवर है और दक्षिण मे पम्पा है। दोनो सुभग गम्भीर हैं। देखने में सुन्दर अवगाहन मे गम्भीर। गहराई आँख से दिखायी पड़ती है।

संत हृदय जस निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी॥
जहँ तहँ पियहिं बिबिध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा॥४॥

अर्थ · उसका जल सन्तो के हृदय जैसा निर्मल है। मन को हरनेवाले सुन्दर चार घाट बँधे हुए है। भाँति भाँति के पशु जहाँ तहाँ जल पी रहे हैं। मानो उदार दानी पुरुषो के घर याचको की भीड लगी हो।

व्याख्या . गहराई दिखायी पडने के लिए नि र्मल जल चाहिए। अतः कहते है सन्त हृदय की भाँति निर्मल है। सन्त लोग गम्भीर होते है। परन्तु ऐसे निर्मल हृदय के होते हैं कि कोई बात छिपाते नही। उनके हृदय की बात स्पष्ट मालूम हो जाती है। मनस्येक वचस्येक कर्मण्येक महात्मनाम्। ऐसा निर्मल हैं कि तल में पड़ी हुई वस्तु दिखायी पडती है। उस जगल मे भी घाट बँधा हुआ है। राजा की सावधानी द्योतित होती है।

बडा भारी सरोवर है। बहुत दूर तक फैला हुआ है। अत विविध मृग विना बाधा जल पी रहे हैं। सरोवर की उपमा उदार गृह से दिया। मृगों की उपमा याचकों से दिया। सबकी प्यास मिट रही है। मनोरथ पूर्ण हो रहा है। बस्ती सन्निकट नही है।

दो. पुरइनि सघन ओट जल, वेगि न पाइअ मर्म।
मायाछन्न न देखिऐ, जैसे निर्गुन ब्रह्म ॥३९. क॥

अर्थ : घनी पुरइनों के आड मे जल का जल्दी पता नही मिलता। जैसे माया के ढँके रहने के कारण निर्गुण ब्रह्म नही दीखता।

व्याख्या : देखने मे पुरइन पुरइन दिखायी पडती है। पत्तो ने जल को ढँक रक्खा है। कहाँ जल है इस बात का पता नही चलता और जल है सभी जगह। इसी भाँति निर्गुण ब्रह्म का पता नही चलता माया ही दिखायी पडती है जब कि निर्गुण ब्रह्म सर्वत्र है। इससे माया का अपने अधिष्ठान का ही आवरण करना दिखलाया। माया की तुच्छता भी दिखलायी। परिसीमित होना भी दिखलाया।

दो. सुखी मीन सब एक रस, अति अगाध जल माहि।
जथा धर्मसीलन्ह के, दिन सुख संजुत जाहि ॥३९.ख॥

अर्थ : उस सरोवर के अत्यन्त अथाह जल में सब मछलियाँ सदा एक समान सुखी रहती हैं। जैसे धर्मशील पुरुषो के सब दिन सुखपूर्वक बीतते हैं।

व्याख्या : धर्म वारि है। धर्मशील मछली है। अगाध धर्म होने से दुःख आ ही नही सकता : सुखी मीन जहँ नीर अगाधा। एक रस यथा : तुलसी पछिन के पिये घटै न सरवर नीर। धर्म किये धन ना घटै जो सहाय रघुबीर। अति अगाध जल न हो तो एक रस सुख नही रहता। वर्णास्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग। चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग। धर्मशीलन की उपमा मछलियो से दिया और धर्म की उपमा अगाध जल से दिया। धर्मो रक्षति रक्षित·। गोस्वामीजी प्रकृति वर्णन मे भी उपदेशात्मक उपमाएँ देते हैं। यथा वर्षा शरद वर्णन मे दिया।

विकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा॥
बोलत जल कुक्कुट कल हंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रससा ॥१॥

अर्थ : उसमे रंगबिरंगे कमल खिले हुए हैं। बहुत से भौंरे मधुर स्वर से गुञ्जार कर रहे हैं। जल के मुर्गे और राजहस बोल रहे हैं मानो प्रभु को देखकर उनकी प्रशसा कर रहे हों।

व्याख्या · फूले कमल सोह सर कैसा। निर्गुण ब्रह्म सगुन भए जैसा। जल को निर्गुण, पुरइन को माया, गुण को कमल कहा। गुणो मे नाना रङ्ग है· मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाये। माया से ऊपर माया मे ही ब्रह्म सगुण रूप से व्यक्त होते है।

जलपक्षी सिर उठा उठाकर बोलते हैं : मानो प्रभु की प्रशसा करते हैं। ये मृगो की भाँति निन्दा नही करते। ये निर्गुण ब्रह्म मे विचरण करनेवाले हैं। इनकी वाणी सुन्दर है। पर सगुण ब्रह्म की प्रशसा करते हैं। सगुण ब्रह्म दर्शनीय हैं।

चक्रवाक बक खग समुदाई। देखत बनइ बरनि नहिं जाई ॥
सुन्दर खग गन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बोलाई ॥२॥

अर्थ · चक्रवाक बगुले आदि पक्षियो का समुदाय देखते ही बनता है। उसका वर्णन नही किया जा सकता। सुन्दर पक्षियो की बोली बडी सुहावनी लगती है मानो रास्ते मे जाते हुए पथिक को बुलाये लेती हो।

व्याख्या : सरोवर जलपक्षियो से भरा है। अनेक रङ्ग के पक्षी चकवा बगुला आदि से बडी शोभा हो रही हैं। देखते ही बनता है कहते नही बनता। कहा भी है वयासि तद् व्याकरण विचित्रम्।

चहचहाहट सुनकर पथिक का जी चाह जाय कि वहाँ चलकर विश्राम कर लें। विश्राम करने की इच्छा नही है। इसलिए जात पथिक कहा। वे पक्षी देखने मे भी सुन्दर और उनकी गिरा भी मनोहर है।

ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए। चहुँ दिसि कानन विटप सुहाए ॥
चंपक बकुल कदब तमाला। पाटल पनस पनास रसाला ॥३॥

अर्थ उस झील के समीप मुनियो ने आश्रम बना रक्खे हैं। उसके चारो ओर वन के सुन्दर वृक्ष है। चम्पा मौलसिरी, कदम्ब, तमाल, पाटल, कटहल, ढाक और आम आदि।

व्याख्या महातीर्थ है। अत उसके सन्निकट मुनि लोग बसे हैं। धर्म कार्य मे जल का बराबर काम पडता है। अत तीर मे ही कुटिया छा रक्खा है। पेड और झाडियो के बीच मे कुटियाँ हैं।

अब वृक्ष और झाडियो का नाम गिनाते हैं। ये सब वृक्ष मुनियो के काम के है। आठ मे से चार फल फूलवाले है। शेष फूलवाले या पत्तेवाले हैं।

नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चचरीक पटली कर गाना ॥
सीतल मद सुगध सुभाऊ। सतत बहइ मनोहर बाऊ ॥४॥

अर्थ : बहुत प्रकार के वृक्ष नये नये पत्तो और पुष्पो से युक्त है जिन पर भौंरो के समूह गुञ्जार कर रहे हैं। स्वभाव से ही शीतल, मन्द, सुगन्धित एव मन को हरनेवाली हवा सदा बहती रहती है।

व्याख्या : नये पल्लव और कुसुम से वृक्ष की शोभा और चचरीक पटली से पुष्प पल्लव की शोभा है। मारे आनन्द के गान कर रहे हैं। क्योकि पत्र पुष्प मे रसबाहुल्य है। जितना गिनाया है सो उपलक्षण मात्र है। अनेक प्रकार के वृक्ष हैं।

पुण्य तीर्थ का माहात्म्य दिखलाते हैं। जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिनहि देवसर सरित सराहहिं। जिस सम्पत्ति से परोपकार नही वह सुसम्पत्ति भी नही है। क्योकि उसकी प्रथम गति नही है। यथा सो घन धन्य प्रथम गति जाकी।

जेहि तरुतर प्रभु बैठहिं जाई। करहि कल्पतरु तासु बडाई। यहाँ वर शब्द श्लिष्ट है। वट के पेड तल बैठे। यथा तेहि गिरि पर वट विपट विसाला। अविरल छाँह सुखद सब काला। रघुराई है। ऐसे स्थान पर बैठते हैं जहाँ दरवार लग सके। अनुज सहित बैठे। अनुज ही सहाय है। यथा देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात।

४४ प्रभु नारद सवाद

तहँ पुनि सकल देव मुनि आए। अस्तुति करि निज धाम सिधाए॥
बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला॥२॥

अर्थ फिर वहाँ सब देवता और मुनि आये और स्तुति करके अपने अपने धाम को चल गये। कृपालु रामजी परम प्रसन्न बैठे हुए छोटे भाई लक्ष्मणजी से रसीली कथाएँ कह रहे हैं।

व्याख्या सुरन्ह बिलोकि दसा रघुबर की। बरपि सुमन कह गति घर घर की। तथा निसिचर निकर सकल मुनि खाये। देवता और मुनि दोनो ने फिर याद किया था। सो देवमुनि के लिए सरकार ने राक्षसो से वैर किया। अत उन लोगो ने स्तुति की और चले गये। ईश्वर बुद्धि से आये। अत सरकार ने प्रणाम नहीं किया।

सदा भाई से कहा करते हैं। सूपनखा के आने पर कथा छूटी है। एहि बिधि गये कछुक दिन बीती। कहत बिराग ग्यान गुन नीति। फिर विरह का नाट्य होने लगा। नारदजी के शाप को अङ्गीकार करके तब तक अभिनय किया जब तक कि नारदजी को असह्य न हो जाय। नारद को सोच होते ही शाप का साफल्य हो गया। अब परम प्रसन्न बैठे हैं।

बिरहवत भगवतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेखी॥
मोर स्राप करि अगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा॥३॥

अर्थ भगवान् का विरह युक्त देखकर नारदजी के मन मे विशेष रूप से साच हुआ कि मेरे ही शाप को स्वीकार करके श्रीरामजी नाना प्रकार के दुखो का भार सह रहे हैं।

व्याख्या कबहूँ योग बियोग न जाके। उसको विरहवत देखकर नारदजी को विशेष सोच हुआ। अर्थात् सोच तो सबको हुआ। नारद को अपनी करतूत समझकर अधिक सोच हुआ। मुझ पर इतनी कृपा की कि मेरे कहने पर भी मेरी बात नही हटायी। इन्हे कर्म शुभाशुभ बाधा नही कर सकता। फिर भी मेरे शाप

को अङ्गीकार किया। अब करिहैं कीस सहाय तुम्हारी। इसे सत्य करने के लिए सुग्रीव की शरण जा रहे हैं। भूमि सयन बल्कल वसन असन कन्द फल मूल चल ही रहा है।

ऐसे प्रभुहि बिलोकउँ जाई। पुनि न बनिहि अस अवसरु आई॥
येह बिचार नारद कर बीना। गए जहाँ प्रभु सुख आसीना॥४॥

अर्थ ऐसे भक्तवत्सल प्रभु को जाकर देखूँ। फिर ऐसा अवसर न बन आवेगा। यह विचारकर नारदजी हाथ मे वीणा लिये हुए वहाँ गये जहाँ प्रभु सुखपूर्वक बैठे हुए थे।

व्याख्या प्रभु के अवतार तो अनेक हुए पर जैसी भक्तवत्सलता रामावतार म दिखा रहे हैं ऐसी तो कभी देखो नही गयी। अपने क्षुद्र भक्त के शाप को सत्य करने के लिए इतना कष्ट उठा रहे हैं। इस भक्तवत्सलता का तो कीर्तिस्तम्भ स्थापित करना चाहिए और वह कीर्तिस्तम्भ अचल तभी होगा जब रामनाम मत्स्य कूर्म वाराहादि नामो से अधिक महत्त्ववाला हो। इस समय मुझ पर सरकार की बडी भारी दया का उद्रेक है। इस समय जाकर वरदान के रूप मे यही बात माँगने से बहुत सम्भव है कि मिल जाय। क्योकि यही ऐसे वरदान माँगने का अवसर है है। फिर ऐसा अवसर नही मिलेगा। अत नारदजी ने परम वात्सल्यमयी भगवान् की मूर्ति के दर्शन करने का निश्चय किया।

वीणापाणि हैं। गाते बजाते चल। सुख आसीन तहाँ दोउ भाई। कथा हो रही है।

गावत राम चरित मृदु बानी। प्रेम सहित बहु भाँति बखानी॥
करत दडवत लिये उठाई। राखे बहुति बार उर लाई॥५॥

अर्थ वे कोमल वाणी से प्रेम के साथ बहुत प्रकार से बखान बखानकर रामचरित्र का गान करते हुए चले आ रहे थे। दण्डवत् करते देखकर श्रीरामचन्द्रजी ने नारदजी को उठा लिया और बहुत देर तक हृदय से लगाये रक्खा।

व्याख्या वीणा से कर्मणा। गावत रामचरित वाचा। प्रेम सहित मनसा। ऐसी मृदु वाणी कि वीणा का साथ दे सके।

दण्डवत कर नही पाये और प्रभु ने उठा लिया। अपराधी अपने को मानकर दण्डवत प्रणाम करते हैं। बहुत बार उर लाई। आश्वासन क लिए सोच मिटाने के लिए। तुम मुझे बडे प्रिय हो। तुम्हारे शाप क अनुसार बत्तने म मुझे सुख है। देखो मैं परम प्रसन्न हूँ। ये सब भाव बहुत देर तक हृदय लगान से द्योतित हुए।

स्वागत पूछि निकट बैठारे। लछिमन सादर चरन पखारे॥६॥

अर्थ फिर कुशल पूछकर पास बिठा लिया। लक्ष्मणजी ने आदर के साथ उनके चरण धोये।

व्याख्या स्वागत कर निकट आसन दिया। ईश्वर भाव लेकर आये हैं। इसलिए स्वयं पैर नहीं धोया। लक्ष्मणजी ने आदर से धोया। शास्त्र मर्यादा का पालन हो रहा है। पेड के नीचे बैठे है। फिर भी तृणभूमि, उदक और सूनृत से नारदजी का आतिथ्य हो रहा है। यथा : तृणानि भूमिरुदक वाक् चतुर्थी तु सूनृता। एतान्यपि सता गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन। मनु।

दो नाना बिधि बिनती करि, प्रभु प्रसन्न जियँ जानि।
नारद बोले वचन तव, जोरि सरोरुह पानि ॥४१.३५॥

अर्थ · बहुत प्रकार से विनती करके और प्रभु को मन मे प्रसन्न जानकर तब नारदजी कमल सदृश हाथो को जोडकर वचन बोले।

व्याख्या अपराध क्षमापन के लिए पहिले नाना विधि से विनती की। जब देख लिया कि प्रभु की मेरे ऊपर प्रसन्नता है। तब हाथ जोडकर बोले : मनोरथ पूर्ति के लिए विनय करने का उपयुक्त समय वही है जब दाता को अपने ऊपर प्रसन्नता हो।

सुनहु उदार सहज रघुनायक। सुदर अगम सुगम वर दायक ॥
देहु एक बर मागउँ स्वामी। जद्यपि जानत अंतरजामी ॥१॥

अर्थ हे स्वभाव से उदार श्रीरघुनाथजी ! सुनिये। आप सुन्दर अगम और सुगम वर के देनेवाले है। हे स्वामी ! मै एक वर माँगता हूँ वह मुझे दीजिये। यद्यपि आप अन्तर्यामी होने के नाते सब जानते ही हैं।

व्याख्या · सहज उदार होने का कारण देते हैं रघुनायक रघुकुल ही सहज उदार हैं। मगन लहइ न जिनके नाही। सरकार तो उस कुल के नायक है। सहज उदार से ही मनोवाञ्छित की प्राप्ति होती है। यथा : माँगहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि। माँगनेवाले से चूक हो तो सरकार सँभाल लेते है। अवढर दानी नही हैं। यथा . कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी। उदारता बडी है पर सुन्दरता पर भी ध्यान रहता है। अगम वर को भी सुगम की भाँति दे देते हैं एक लालसा बडि उर माही। सुगम अगम कहि जात सो नाही। तुमहि देत अति सुगम गोसाईं। अगम लागि मोहि निज कृपनाई।

स्वामी को छोडकर किससे माँगे। स्वामो हो समर्थ है। जो माँगेंगे वह उनका स्व है। उदार से अनेक वर माँगा जा सकता है। पर मैं एक ही वर माँगता हूँ जिससे अवश्य मिले। सो आप जानते हैं। क्योंकि आप ही माँगने के लिए प्रेरणा कर रहे हैं : को जिय की रघुबर बिन बूझा। पर वर मे शब्द प्रमाण है। इसलिए माँगता हूँ।

जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ। जन सन कबहु कि करउँ दुराऊ ॥
कवन बस्तु असि प्रिय मोहि लागी। जो मुनिवर न सकहु तुम्ह मागी ॥२॥

अर्थ : श्रीरामजी ने कहा : हे मुनि ! तुम मेरा स्वभाव जानते ही हो। क्या मैं अपने भक्तों से कभी कुछ छिपाव करता हूँ ? मुझे ऐसी कौन सी वस्तु प्रिय लगी है जिसे हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम नही माँग सकते ?

व्याख्या : जो वस्तु जिसे प्रिय होती है। उसे वह छिपाकर रखता है कि दूसरा ले न ले। परन्तु उसी वस्तु को उसे अपने प्रेम पात्र के देने मे हर्ष होता है। भगवान् नारदजी से कहते हैं कि तुम मेरे स्वभाव को जानते हो कि मुझे भक्त के समान कोई प्रिय नही है। यथा मोरे हित हरि सम नहि कोऊ। मैंने अपनी स्वतन्त्रता भक्त को दे रक्खी है। उनके परतन्त्र रहता हूँ। अहं भक्तपराधीन: ह्यस्वतन्त्र इव द्विज। मुझे ऐसी कौन वस्तु प्रिय लगी जिसे तुम नही माँग सकते। अतः माँगने में सङ्कोच क्यों करते हो ? यही पर : तब बिबाह मैं चाह्यौ कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा : इस शङ्का का बीज पड गया। नारदजी को याद आगया कि वह वस्तु विश्व मोहिनी थी। जिसे माँगने पर भी मुझे न देकर स्वयं ले लिया। यथा : दुलहिनि लै गये लच्छि निवासा। नृप समाज सब भयउ निरासा।

जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरें। अस बिस्वास तजहु जनि भोरें ॥
तब नारद बोले हरषाई। अस बर मागउँ करउँ ढिठाई ॥३॥

अर्थ : मुझे भक्त के लिए कुछ भी अदेय नही है। ऐसा विश्वास भूलकर भी मत छोडो। तब नारद जी हर्षित होकर बोले . मैं ऐसा वर माँगता हूँ यह धृष्टता करता हूँ।

व्याख्या : यह न समझो कि मैं कह दूँगा : अदेयस्तु वरो ह्ययं। अतः सङ्कोच छोड़कर माँगो : सकुच बिहाय माँगु नृप मोही। मोरे नहिं अदेय कछु तोही। विश्वास छोड़ने मे अकल्याण है। भक्तिपथ से पतन हो जाता है। नारद का माँगने मे साहस न पडते देखकर प्रोत्साहन के लिए पहिले ही देने के लिए वचनबद्ध हो रहे हैं। बडी इच्छा है कि नारद माँगें।

नारदजी प्रसन्न हो गये कि मनोवाञ्छा सिद्ध हुई। इनको अवस्था ठीक स्वायम्भू मनु सी है। वर माँगने मे आगा पीछा हो रहा है। बात ढिठाई की है। सरकार के नामो के महत्त्व मे उलट फेर करने का जीव को कौन सा अधिकार है। ऐसा वर माँगना अनधिकार चेष्टा है।

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। स्रुति कह अधिक एक तें एका ॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका ॥४॥

अर्थ : यद्यपि प्रभु के अनेको नाम हैं और वेद कहते हैं कि वे सब एक से एक बढकर हैं। तो भी हे नाथ ! राम नाम और पापरूपी पक्षियो के समूह के लिए वधिक होने में सब नामो से बढकर हो।

व्याख्या : ढिठाई को स्पष्ट करते हैं। राम अनन्त अनन्त गुनानी। जन्म कर्म अनन्त नामानी। उन नामो मे छोटा बड़ा कोई नही। एक से एक अधिक है।

इसमे वेद प्रमाण है। उसमे कुछ बोलना वेद मे हाथ लगाना है। वेद सरकार की वाणी है।

जिस अवतार मे इतनी भक्तवत्सलता है कि मेरी बात : शाप : झूठी न हो इसलिए सरकार इतना कष्ट सहन कर रहे हैं। उस अवतार का नाम सब नामो से अधिक हो। वेद मे हस्तक्षेप न हो। इसलिए कहते हैं कि अघ खग वधिकत्व मे अधिक हो। वधिक बडे बडे उपाय से चिडिया फँसाता है। यह नाम अघखग को निर्मूल कर दे।

दो राका रजनी भगति तव, राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगन बिमल, बसहुँ भगत उर ब्योम ॥४२॥

अर्थ आपकी भक्ति पूर्णिमा की रात्रि है। उसमे राम नाम यही पूर्णचन्द्र होकर और अन्य सब नाम तारागण होकर भक्तो के हृदयरूपी निर्मल आकाश मे निवास करें।

व्याख्या भक्ति मे लेशाविद्या स्वीकार है। इसी से राका रजनी कहा। उसमे पूर्णचन्द्र राम नाम हो। चन्द्र की भाँति मायान्धकार का नाशक हो। पर अकेले चन्द्र की भी शोभा नही और नाम भी तारो की भाँति साथ रहे। शोभा बढावें। पर महावीर्य राम नाम ही मे हो। भक्तो के दहराकाश मे सदा चाँदनी बनी रहे।

दो एवमस्तु मुनि सन कहेउ, कृपासिधु रघुनाथ।
तब नारद मन हरप अति, प्रभु पद नायउ माँथ ॥४२ ३६॥

अर्थ कृपासागर श्रीरघुनाथजी ने मुनि से ऐसा ही हो कहा। तब नारदजी ने मन मे अत्यन्त हर्षित होकर प्रभु के चरणो मे मस्तक नवाया।

व्याख्या कृपासिन्धु हैं। करुणानिधि हैं। नारद पर कृपा होती ही जाती है। रघुनाथ है। अत दे दिया। एवमस्तु कहा। कृतकृत्य होकर नारदजी प्रणाम करते हैं। मनोरथ की पूर्ति से अति हर्ष है।

अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। पुनि नारद बोले मृदु बानी ॥
राम जबहि प्रेरेहु निज माया। मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया ॥१॥

अर्थ श्रीरघुनाथजी को अत्यन्त प्रसन्न जानकर नारदजी फिर कोमल वाणी बोले हे रामजी! हे रघुनाथजी! सुनिये। जब आपने अपनी माया को प्रेरित करके मुझे मोहित किया था।

व्याख्या नारदजी ने देखा कि वर देने पर भी प्रसन्नता मे कुछ भी अन्तर न पडा। अत निश्चय किया कि इस समय अति प्रसन्न हैं। जो जो काम लेना हो उसे लेने का यही समय है। जो कुछ प्रष्टव्य है उसके पूछ लेने का भी यही समय है। अत नारदजी मृदु वाणी बोले।

जब काम मुझे मोहित न कर सका। आपकी माया से मैं मोहित हुआ। आप रघुराया हो। अभिमान नहीं रहने देता। यथा : श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी।

तब बिबाह मैं चाहउँ कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा ॥
सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥२॥

अर्थ : तब मैं विवाह करना चाहता था। हे प्रभु ! आपने मुझे किस कारण विवाह नहीं करने दिया। प्रभु बोले : हे मुनि ! सुनो। मैं तुम्हें उत्साह के साथ कहता हूँ कि जो समस्त आशा : भरोसा छोडकर केवल मुझको ही भजते हैं।

व्याख्या : मैंने कोई अनुचित बात ही चाही। विवाह करना धर्मविरुद्ध काम है। इसकी प्रशंसा शास्त्रों मे है। यथा : धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ। सो उसमें आप ही बाधक हुए। स्वयं ब्याह कर लिया। विश्वमोहिनी को स्वयं लेने के अतिरिक्त और कौन कारण हो सकता है। जिससे आपने मुझे ब्याह न करने दिया और आप कहते हैं : जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरे। ये दोनों बातें तो असमञ्जस हैं।

सरकार ने उत्तर दिया कि कार्य भार बढ जाने के भय से मैं हतोत्साह नहीं हूँ। अतः उत्साह के साथ कहता हूँ कि जो लोग सबका भरोसा छोड़कर मुझे भजते हैं : जिन्हे दूसरे किसी का भी भरोसा हो उन लोगो के लिए नहीं कहता। जिन्हे केवल मेरा भरोसा है उनके लिए कहता हूँ।

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालकहि राख महतारी ॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखै जननी अरगाई ॥३॥

अर्थ : मैं सदा उनकी वैसे ही रखवारी करता हूँ जैसे माता बालक की रक्षा करती है। छोटा बच्चा जब आग और साँप को पकड़ने दौडता है तो वहाँ माता उसे : अपने हाथो अलग करके बचा लेती है।

व्याख्या : दूसरे की भी भरोसा रखनेवालो की सदा रखवारी नहीं करता। सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनै प्रभु पोसे। उन्हे किसी का आसरा नहीं होता। इसलिए मैं भी उन्हे दूसरो पर नही छोड़ता। जैसे माँ बच्चे की रखवारी करती है। उसकी सब चेष्टाओ पर ध्यान रखती है।

शिशु बच्छ अर्थात् छोटा : नादान बच्चा। यथा : बहुरि बच्छ कहि लाल कहि रघुपति रघुबर तात। प्यार बच्चा : अगारा सूत्र चमकता है और सर्प बड़ा सुन्दर है। यह देखकर पकड़ने के लिए दौड़ता है। यहाँ विषय अनल है काम सर्प है। यथा : मनकरि विषय अनल बन जरई। काम भुजग डसत जब जाही। उस समय माँ लडके की इच्छाभिघात का ख्याल नहीं करती। बलपूर्वक हटा लेती है।

इसमे वेद प्रमाण है। उसमे कुछ वोलना वेद मे हाथ लगाना है। वेद सरकार की वाणी है।

जिस अवतार मे इतनी भक्तवत्सलता है कि मेरी बात : शाप : झूठी न हो इसलिए सरकार इतना कष्ट सहन कर रहे हैं। उस अवतार का नाम सब नामो से अधिक हो। वेद मे हस्तक्षेप न हो। इसलिए कहते हैं कि अघ खग वधिकत्व मे अधिक हो। वधिक बडे बडे उपाय से चिड़िया फंसाता है। यह नाम अघखग को निर्मूल कर दे।

दो राका रजनी भगति तव, राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगन बिमल, वसहुँ भगत उर ब्योम ॥४२॥

अर्थ आपकी भक्ति पूर्णिमा की रात्रि है। उसमे राम नाम यही पूर्णचन्द्र होकर और अन्य सब नाम तारागण होकर भक्तो के हृदयरूपी निर्मल आकाश मे निवास करें।

व्याख्या भक्ति मे लेशाविद्या स्वीकार है। इसी से राका रजनी कहा। उसमे पूर्णचन्द्र राम नाम हो। चन्द्र की भाँति मायान्धकार का नाशक हो। पर अकेले चन्द्र की भी शोभा नही और नाम भी तारो की भाँति साथ रहे। शोभा बढावें। पर महावीर्य राम नाम ही मे हो। भक्तो के दहराकाश मे सदा चाँदनी बनी रहे।

दो एवमस्तु मुनि सन कहेउ, कृपासिंधु रघुनाथ।
तब नारद मन हरप अति, प्रभु पद नायउ माँथ ॥४२.३६॥

अर्थ कृपासागर श्रीरघुनाथजी ने मुनि से ऐसा ही हो कहा। तब नारदजी ने मन मे अत्यन्त हर्षित होकर प्रभु के चरणो मे मस्तक नवाया।

व्याख्या कृपासिन्धु हैं। करुणानिधि हैं। नारद पर कृपा होती ही जाती है। रघुनाथ हैं। अत दे दिया। एवमस्तु कहा। कृतकृत्य होकर नारदजी प्रणाम करते हैं। मनोरथ की पूर्ति से अति हर्ष है।

अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। पुनि नारद बोले मृदु बानी॥
राम जवहि प्रेरेहु निज माया। मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया ॥१॥

अर्थ श्रीरघुनाथजी को अत्यन्त प्रसन्न जानकर नारदजी फिर कोमल वाणी बोले हे रामजी! हे रघुनाथजी! सुनिये। जब आपने अपनी माया को प्ररित करके मुझे मोहित किया था।

व्याख्या नारदजी ने देखा कि वर देने पर भी प्रसन्नता मे कुछ भी अन्तर न पडा। अत निश्चय किया कि इस समय अति प्रसन्न हैं। जो जो काम लेना हो उसे लेने का यही समय है। जो कुछ प्रष्टव्य है उसके पूछ लेने का भी यही समय है। अत नारदजी मृदु वाणी बोले।

जब काम मुझे मोहित न कर सका। आपकी माया से मैं मोहित हुआ। आप रघुराया हो। अभिमान नही रहने देता। यथा : श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी।

तब बिबाह मैं चाहें कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा ॥
सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥२॥

अर्थ : तब मैं विवाह करना चाहता था। हे प्रभु ! आपने मुझे किस कारण विवाह नही करने दिया। प्रभु बोले : हे मुनि ! सुनो। मैं तुम्हे उत्साह के साथ कहता हूँ कि जो समस्त आशा : भरोसा छोड़कर केवल मुझको ही भजते हैं।

व्याख्या : मैंने कोई अनुचित बात ·ही चाही। विवाह करना धर्माविरुद्ध काम है। इसकी प्रशंसा शास्त्रों मे है। यथा : धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ। सो उसमें आप ही बाधक हुए। स्वयं व्याह कर लिया। विश्वमोहिनी को स्वयं लेने के अतिरिक्त और कौन कारण हो सकता है। जिससे आपने मुझे व्याह न करने दिया और आप कहते हैं : जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरे। ये दोनो बातें तो असमञ्जस हैं।

सरकार ने उत्तर दिया कि कार्य भार बढ जाने के भय से मैं हतोत्साह नही हूँ। अतः उत्साह के साथ कहता हूँ कि जो लोग सबका भरोसा छोड़कर मुझे भजते हैं : जिन्हें दूसरे किसी का भी भरोसा हो उन लोगो के लिए नही कहता। जिन्हे केवल मेरा भरोसा है उनके लिए कहता हूँ।

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालकहि राख महतारी ॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखै जननी अरगाई ॥३॥

अर्थ : मैं सदा उनकी वैसे ही रखवारी करता हूँ जैसे माता बालक की रक्षा करती है। छोटा बच्चा जब आग और साँप को पकड़ने दौड़ता है तो वहाँ माता उसे : अपने हाथो अलग करके बचा लेती है।

व्याख्या : दूसरे की भी भरोसा रखनेवालो की सदा रखवारी नही करता। सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनै प्रभु पोसे। उन्हे किसी का आसरा नहीं होता। इसलिए मैं भी उन्हे दूसरो पर नही छोड़ता। जैसे माँ बच्चे की रखवारी करती है। उसकी सब चेष्टाओ पर ध्यान रखती है।

शिशु बच्छ अर्थात् छोटा : नादान बच्चा। यथा : बहुरि बच्छ कहि लाल कहि रघुपति रघुवर तात। प्यार बच्चा : अगारा खूब चमकता है और सर्प बडा सुन्दर है। यह देखकर पकड़ने के लिए दौडता है। यहाँ विषय अनल है काम सर्प है। यथा : मनकरि बिषय अनल बन जरई। काम भुजंग डसत जब जाही। उस समय माँ लड़के की इच्छाभिघात का ख्याल नही करती। बलपूर्वक हटा लेती है।

प्रौढ भए तेहि सुत पर माता। प्रीति करै नहि पाछिलि बाता ॥
मोरे प्रौढ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी ॥४॥

अर्थ किन्तु जब वह सयाना हो जाता है तब उस पुत्र पर माता प्रेम तो करती है। परन्तु पिछली बात नही रहती। ज्ञानी मेरे सयाने पुत्र के समान हैं और अपने सामर्थ्य का मान न करनेवाले सेवक मेरे शिशु पुत्र के समान है।

व्याख्या : वही बच्चा जब कुछ बडा हो जाता है फिर भी माँ प्रीति करती है। पर प्रत्येक चेष्टा पर ध्यान नही रखती। माँ जानती है कि इसे इतना ज्ञान है कि भले बुरे को पहिचान सकता है। इसी भाँति ज्ञान के कारण ईश्वर की ओर से देखरेख कम हो जाती है कि ज्ञान है सँभाल लेगा।

ज्ञानी प्रौढ तनय है। अमानी दास बालक शिशु है। यहाँ बच्छ शिशु का अर्थ खुल गया इसका अर्थ बालक शिशु है।

जनहि मोरे बल निज बल ताही। दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही ॥
येह बिचारि पडित मोहि भजही। पाएहुँ ज्ञान भगति नहि तजही ॥५॥

अर्थ मेरे सेवक को केवल मेरा ही बल रहता है और उसे ज्ञानी को अपना बल होता है। पर काम क्रोधरूपी शत्रु तो दोनो के लिए हैं। ऐसा विचारकर बुद्धिमान् लोग मुझको ही भजते हैं। व ज्ञान प्राप्ति होने पर भी भक्ति को नही छोडते।

व्याख्या भेद का कारण कहते हैं। भक्त को मेरा भरोसा और ज्ञानी को अपना भरोसा रहता है। यथा तामैश्वर्य्यपरां काश्यप परत्वात्। आत्मैक्यपरा बादरायण। ईश्वर का आश्रय करना यह काश्यप का मत है। आत्मा का आश्रय करना बादरायण का मत है। मेरी ओर से भेद नही है। भेद ज्ञानी की ओर से है। उसने मेरा भरोसा छोडा। अपना भरोसा किया। काम क्रोध तो ज्ञानी और भक्त दोनो के शत्रु हैं।

पण्डित अपना भरोसा नही रखते। यही उनकी पण्डिताई है। जिसमे हर समय मुझे उन पर ध्यान रखना पडे। ज्ञानी होकर भी भक्ति करते है। ज्ञानी होकर यदि मुझे न भजा तो उसे यथार्थ ज्ञान नही हुआ। वाक्य ज्ञान कुशल मात्र हैं।

दो काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद, मायारूपी नारि ॥४३.३७॥

अर्थ काम, क्रोध, लोभ, और मद आदि अज्ञान की प्रबल सेना है। इसम माया की साक्षात् मूर्ति स्त्री तो अत्यन्त दारुण दुःख देनेवाली है।

व्याख्या ये सब मोह की फौज हैं। ये सब दारुण दुखद हैं। उनमे स्त्री तो मायारूपिणी ही है। यह अति दारुण दुःखद है। काम क्रोधादि तो इसके सेवक है।

मोह न अंध कीन्ह केहि केही । को जग काम नचाव न जेही ॥
तृष्णा केहि न कीन्ह बौराहा । केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा ॥
ज्ञानी तापस शूर कवि, कोविद गुन आगार ।
केहि कै लोभ बिडंबना, कीन्ह न येहि संसार ॥
यह सब माया कर परिवारा । प्रबल अमित को बरनै पारा ॥
सिव चतुरानन जाहि डराही । अपर जीव केहि लेखे माँही ॥

मायारूपी नारी का भाव यह कि वस्तु विचार से कुछ नहीं ठहरती । अब नारी का मायामयत्व बतलाते हैं ।

सुनु मुनि कह पुराण स्रुति संता । मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता ॥
जप तप नेम जलासय झारी । होइ ग्रीषम सोखइ सब नारी ॥१॥

अर्थ : हे मुनि ! सुनो । पुराण वेद और सन्त कहते हैं कि मोहरूपी वन को विकसित करने के लिए स्त्री वसन्त ऋतु के समान है । जप तप नियमरूपी सम्पूर्ण जलाशयों को स्त्री ग्रीष्म रूप होकर सर्वथा सोख लेती है ।

व्याख्या : पुराण, श्रुति के कहने पर भी सन्तो के कहने की अपेक्षा रहती है कि अमुक धर्म शिष्टानुगृहीत है कि नही । मोह विपिन है । महा कष्टकर इसमें जो भूला सो बाहर नही निकल सकता । डरपहिं धीर गहन सुधि आये । नारि वसन्त है । मोह विपिन पल्लवित्त पुष्पित्त हो उठता है । मोह विपिन यों ही दुःखद है । फिर जहाँ स्त्री आयी तब फिर क्या कहना है । अब बाल बच्चे होंगे । माया बढ़ती ही जावेगी ।

१. जप २. तप ३. नियम से ही कार्य की क्षमता होती है । १. जपात् सिद्धि प्रजायते । २. तप बल रचै प्रपच बिधाता । तप अधार सब सृष्टि भवानी । ३. नियम : नेम प्रेमु शंकर कर देखा । अविचल हृदयँ भगति कै रेखा । प्रगटे राम कृतज्ञ कृपाला । सो ये तीनों जलाश्रय की भाँति उपयोगी है । जलाश्रय तीन सर कूप वापी हैं । यथा : बन बाग उपवन वाटिका सर कूप वापी सोहही । ग्रीष्म में चाहे कोई सर वापी कूप बिना सूखे रह जाय । पर नारी तो सब जप तप नियम सोख ही लेती हैं : मुनि अति बिकल मोह मति नाठी । जप तप कछु न होइ तेहि काला : वन को बढ़ाती है जल को सुखाती है ।

काम क्रोध मद मत्सर भेका । इन्हहि हरषप्रद बरषा एका ॥
दुर्बासना कुमुद समुदाई । तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई ॥२॥

अर्थ : काम क्रोध मद और डाह आदि मेढक हैं । इनको वर्षाऋतु होकर हर्ष प्रदान करनेवाली एक मात्र स्त्री है । बुरी वासनाएँ कुमुदो के समूह हैं । उनको सदैव सुख देनेवाली यह शरद् ऋतु है ।

व्याख्या : सर सूखने से भेकों को नष्ट हो जाना चाहिए । सो उनके लिए वर्षा हो जाती है । मरे भी जी उठते हैं । ये काम क्रोध मत्सर भेक हैं । ये व्यर्थ

टरटराया करते है। कभी राम नही कहते। जीभ सो दादुर जीभ समाना। एका का अर्थ बेजोड है।

कुमुद रात को फूलते हैं। शरदऋतु मे इनकी बढोत्तरी होती है। दुर्वासना रात को बढती है। चोरी जारी रात मे ही होती है। इन्हे शरद ऋतु होकर बढाती है। भाव यह कि षड्ऋतुरूपा होकर कालचक्र रूपिणी है। एक साथ अनेक ऋतु का कार्य कर रही है। और सब भाँति हानिकारक है।

धर्म सकल सरसीरुह बृंदा। होइ हिम तिन्हहि दहै सुख मंदा ॥
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई ॥३॥

अर्थ समस्त धर्म कमलो के झुण्ड हैं। यह मन्द : विषयजन्य सुख देनेवाली स्त्री हिम ऋतु होकर उन्हे जला डालती है। फिर मानसरूपी जवास का समूह स्त्रीरूपी शिशिर ऋतु को पाकर हरा भरा हो जाता है।

व्याख्या · धर्म कमल है। हिमऋतु सब कमलो का नाश करती है। एक कमल भी नही बचता। स्त्री सुख देकर धर्म का नाश करती है और वह सुख भी मन्द सुख है। आपातमात्रमधुरा विषयोपभोगा। नारदजी के चरण पंकज का भाव ही हरण कर लिया। कहने लगे स्वारथ साधक कुटिल तुम सदा कपट व्यवहार। सरकार के विमुख हो गये। और · सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पकज भाऊ।

जवास मे काँटा ही काँटा होता है। ममता भी जवास की भाँति कण्टकाकीर्ण है। कलेजे मे चुभती है। शिशिर ऋतु मे इसकी वृद्धि होती है। वर्षा मे नाश होता है। सो काम क्रोधरूपी भेक के लिए वर्षा होने पर भी यह ममता जवास के लिए शिशिर हो जाती है। चार को सुख और दा को दु ख देती है।

पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड रजनी अँधियारी ॥
बुधि बलु सील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना ॥४॥

अर्थ पापरूपी उल्लुओ के समूह के लिए यह स्त्री सुख देनेवाली घोर अन्धकारमयी रात्रि है। बुद्धि, बल, शील और सत्य ये सब मछलियो को फाँसने के लिए स्त्री वशी के समान है। चतुर पुरुष ऐसा कहते हैं।

व्याख्या मोह निसा सब सोवनिहारा। सो यह अमावस की रात्रि है। इसमे किसी का प्रचार नही। केवल पाप उलूक का प्रचार इसमे होता है। पुण्य पक्षी तो इसमे अन्धे रहते है। स्त्री पाने पर न भीतर का ज्ञान रहता है न बाहर का।

जप तप नियम जलाश्रय के बुद्धि बल शील सत्य मे सब मीन है। इन्ही से इनका जीवन है। स्त्री वशी है। उसमे - परम प्रेम मृदु चारो। परम प्रेम चारा है। चारा के लाभ से बुद्धि बल शील सत्य सब मारे पडते हैं। इनके कारण मनुष्य

दुर्बुद्धि निर्बल दुःशील और झूठा हो जाता है। जो जो गुण तुम्हारे मे है सो सब हरण हो जाता। दुर्गुण आकर डेरा लगाते हैं।

दो अवगुन मूल सूलप्रद, प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन, मुनि मै यह जियँ जानि ॥४४ ३८॥

अर्थ युवती स्त्री अवगुणो की मूल, पीडा देनेवाली और सब दुःखो की खान है। इसलिए हे मुनि! मैंने जी मे ऐसा जानकर तुमको विवाह करने से रोका था।

व्याख्या संसृति मूल सूलप्रद नाना। सकल सोकदायक अभिमाना। सो उस अभिमान को तोडने का उपाय किया था। यदि ब्याह हो जाता तो प्रमदा सग्रह से अवगुन मूल नाना शूलप्रद वस्तु तो बनी ही रहती। तुम अनर्थ से न बच सकते। अत मैने ब्याह से रोक 'दया। प्रमदा कहने का भाव यह कि इन्हे मद बना ही रहती है। यह उपदेश यति तथा ब्रह्मचारी के लिए है। यहाँ पर अच्छी बुरी स्त्री का प्रश्न नही है। ब्रह्मचारी स्त्री मात्र से विरत हो। न पश्येत् लिखितामपि। चित्र की स्त्री न देखे। गृहस्थ के लिए तो कह ही आये हैं नारि सहित सब खग मृग वृंदा। मानहु मोरि करतहहिं निन्दा।

सुनि रघुपति के बचन सुहाए। मुनि तन पुलक नयन भरि आए ॥
कहहु कवन प्रभु कै असि रीती। सेवक पर ममता अरु प्रीती ॥१॥

अर्थ श्रीरघुनाथजी के सुन्दर वचन सुनकर मुनि का शरीर पुलकित हो गया और नेत्र भर आये। वे सोचने लगे कहो तो किस प्रभु की ऐसी रीति है कि जिसका सेवक पर इतना ममत्व और प्रम हो।

व्याख्या अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। तब प्रश्न किया। उत्तर देने पर कहते है मुनि रघुपति के बचन सुहाए। ऐसे भाये कि सात्त्विक भाव हो गया यह समझकर कि मैने क्या समझा था और सरकार का क्या भाव था।

ऐसा मालिक कौन होगा कि गाली सुनकर भी कल्याण ही करे। यथा मथत सिंधु रुद्रहि बौराएहु सदा कपट ब्यवहारु। सेवक पर ऐसी ममता यथा साप सीस धरि हरखि हिय प्रभु बहु बिनती कीन्ह। ऐसी प्रीति यथा निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्ह।

सेवाधर्म कठिन जग जाना। सो स्वामी धर्म को कठिन करके दिखला दिया।

जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी। ग्यान रंक नर मंद अभागी ॥
पुनि सादर बोले मुनि नारद। सुनहु राम बिग्यान बिसारद ॥२॥

अर्थ जो मनुष्य भ्रम को त्यागकर ऐसे प्रभु को नहीं भजते वे ज्ञान के कङ्गाल दुर्बुद्धि और अभागे हैं। फिर नारद मुनि आदर सहित बोल हे विज्ञान विशारद श्रीरामजी! सुनिये।

व्याख्या : यहाँ : प्रभु रक्षा करेंगे ऐसे विश्वास का न होना ही भ्रम है। जिसे भजनीय में ही भ्रम है उसे ज्ञान कहाँ हुआ ? वह मोहवश है। अतः मन्द है। न वह शिशु वच्छ ही हो सका। न प्रौढ तनय ही हो सका। अतः अभागी है।

नारदजी का गद्गद कण्ठ है। इससे मृदु वचन न कह सके सादर बोले। मुनि हैं। मनन शील हैं। मन में ठीक किया कि सरकार ने सन्तों को बड़ा ऊँचा पद दिया। स्वयं कहते हैं और अपने वचन के प्रमाण में : सुनु मुनि कह पुराण स्रुति संता। कहते हैं। सो सन्त को कैसे पहिचाने। अतः इन्हींसे लक्षण पूछना चाहिए। ये विज्ञान विशारद हैं।

संतन्ह के लच्छन रघुबीरा। कहहु नाथ भव भंजन भीरा॥
सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ। जिन्ह ते मैं उन्ह के बस रहऊँ॥३॥

अर्थ : हे रघुवीर ! हे भवभय का नाश करनेवाले मेरे नाथ ! अब कृपाकर सन्तों के लक्षण कहिये। श्रीरामजी ने कहा : हे मुनि ! सुनो। मैं सन्तों के गुणों को कहता हूँ जिनके कारण मैं उनके वश में रहता हूँ।

व्याख्या : सरकार भवभय भंजन और भीर भञ्जन है। भीर : आपत्ति को कहते हैं। असाधारण धर्म को लक्षण कहते हैं। आप रघुवीर हैं। दया करके कहिये।

दूसरी बात प्रारम्भ होती है। अतः सुनु कहते हैं। सन्तो के गुण ही उनके लक्षण हैं। वे असन्त में नही पाये जाते हैं। उनकी बातें मेरे लिए प्रमाण है। क्योंकि मैं स्वयं उनके वश मे रहता हूँ : भगति अवसहि बस करी।

षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुखधामा॥
अमितबोध अनीह मितभोगी। सत्यसार कबि कोबिद जोगी॥४॥

अर्थ : वे सन्त, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर इन छः दोषों को जीते हुए, पाप रहित, कामना रहित, स्थिर बुद्धि, सर्व त्यागी, बाहर भीतर से पवित्र, सुख के धाम, असीम ज्ञानवान्, इच्छारहित, मिताहारी, सत्यनिष्ठ, कवि, विद्वान् और योगी होते हैं।

व्याख्या : पहिला लक्षण षट् विकार काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर उनके वश मे हैं। वे इनके वश नही है। अनघ हैं सञ्चित पाप भी नष्ट हो गये हैं और क्रियमाण से लेप नहीं है। अकाम हैं वासना रहित हैं। अचल हैं। अपने धर्म से चलायमान नही होते। यथा : वट बिस्वास अचल निज धर्मा। अकिञ्चन है। किसी वस्तु में उन्हे ममत्व बुद्धि नही है। बाहर भीतर से शुद्ध होते हैं। फलतः सुखधाम हैं।

उनका ज्ञान परिच्छिन्न नही है। यथैकेन मृत्पिण्डेन विज्ञातेन सर्वं मृण्मय विज्ञातं भवति। जैसे एक मिट्टी के पिण्ड के जान लेने से उसके सभी विकार घटशरावादि जाने जाते हैं। उसी भाँति एक ब्रह्म के ज्ञान होने से कुछ ज्ञातव्य शेष नही रह जाता। इसलिए उन्हे अमित बोध कहा। अब उन्हे इच्छा नही होती। ऐसे ज्ञानी विधि निषेध से परे होते हैं। फिर भी मितभोगी होते है। भिक्षा, कौपीन, कंथा, पादुका मे

ही उनका भोग सीमित रहता है। सत्यसार : व्यवहार सच्चा है। सच्चा लेना, सच्चा देना, सच्चा भोजन, सत्य चबेना। मितभोगी और सत्यसार होने से कवि · त्रिकालज्ञ हो जाते हैं। उन्हे वेदार्थ का भान होने लगता है। आपसे आप निरुद्ध होकर मन भगवच्चरण मे लग जाता है। कुयोगी भी नही है। मोह विटप के उखाडने में समर्थ हैं : इससे ज्ञान कहा।

सावधान मानद मदहीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना ॥५॥

अर्थ : सावधान, दूसरो को मान देनेवाले, अभिमान रहित, धैर्यवान्, धर्म की गति मे अत्यन्त निपुण होते हैं।

व्याख्या : सावधान का अर्थ है प्रमादरहित . प्रमादो वै मृत्यु । इन्हे दूसरे को मान देने मे प्रमाद नही होता। जो मान देता है वह स्वय भी मान चाहता है। वे मदहीन रहते हैं। मान नही चाहते। धीर हैं · ते धीर अछत बिकार हेतु जे रहत मनसिज बस किये। धर्मगति बहुत सूक्ष्म होती है। गहना कर्मणो गति । सो उनकी गति मे परम प्रवीण हैं। कर्म विकर्म अकर्म तीनो की सूक्ष्मता को समझते हैं इसमे कर्म कहा।

दो गुनागार ससार दुख, रहित बिगत सदेह।
तजि मम चरण सरोज प्रिय, तिन्ह कहुँ देह न गेह ॥६ ४५ ३९॥

अर्थ · गुणो के घर ससार के दु खो से रहित और सन्देहो से सर्वथा छूटे हुए होते हैं। मेरे चरण कमलो को छोडकर उनको न देह ही प्रिय होती है न घर ही।

व्याख्या . पण्डिते च गुणा सर्वे। खल अघ अगुण साधु गुण गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा। गुण के आस्पद वे ही है। ससृत सन्निपात दारुण दुःख से रहित हैं। कभी कभी विद्या व्याप जाती है। अत विद्या के दु ख का निषेध नही किया : हरि सेवकहि न व्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित व्यापे तेहि बिद्या। उन्हे सन्देह होता ही नही। मेरा चरण ही प्रिय है देह गेह प्रिय नही। मेरे चरण के सम्बन्ध से देह गेह मे प्रेम है। यदि बाधक हो तो उसे त्याग देवें . इससे भक्ति कहा।

निज गुन स्रवण सुनत सकुचाही। पर गुन सुनत अधिक हरषाही ।'
सम सीतल नहि त्यागहि नीति। सरल सुभाउ सबहि सन प्रीती ॥७ १॥

· अर्थ कानो से अपने गुण सुनने मे सकुचाते हैं। दूसरो के गुण सुनने मे विशेष हर्षित होते हैं। सम और शीतल हैं। न्याय का कभी त्याग नही करते। सरल स्वभाव होते हैं और सभी से प्रेम रखते हैं।

व्याख्या निरभिमान हैं। ससार अपने गुण को सुनकर फूल उठता है पर उन्हे सङ्कोच होता है। गुणो के ठीक महत्त्व को जानते हैं। उनके मन मुताबिक वे गुण अपने मे नही पाते। ऐसा उदार हृदय है कि पर गुण से हर्ष होता है। ससार

परगुण सहन नही कर सकता। वे गुणो पर आसक्त हैं। गुणो की वढोत्तरी परम इष्ट है।

वे सम हैं यथा : निज प्रभु मय देखहिं जगत। शीतल हैं यथा : जहाँ सान्ति सत गुरु की दई। तहाँ क्रोध की जरि जरि गई। नीति नही छोडते : नीति विरोध सोहाइ न मोही। सब पर प्रीति प्रतीति जिय जानिय आपु समान। अतः स्वभाव से सरल होते है। सब पर प्रीति करते हैं : आत्मवत् सर्वभूतेपु य. पश्यति स पश्यति। अर्थात् भक्त मे भगवान् के सब गुण आ जाते हैं।

जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिंद बिप्र पद प्रेमा ॥
स्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया ॥८.२॥

अर्थ वे जप, तप, व्रत, दम, सयम और नियम मे रत रहते हैं। और गुरु गोविन्द तथा ब्राह्मणो के चरणो मे, प्रेम रखते हैं। उनमे श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया, प्रसन्नता और मेरे चरणो मे निष्कपट प्रेम होता है।

व्याख्या : उन्हे जप · मन्त्र का अभ्यास। तप चान्द्रायणादि। व्रत . एकादशी आदि। दम इन्द्रिय निग्रह। सयम धारणा ध्यान समाधि। नेम : कार्यानुष्ठान मे दृढता। उसमे भङ्ग न हो। गुरु : ज्ञानदाता। गोविन्द गोरक्षक भगवान् और विप्र इन पर स्वाभाविक प्रीति होती है।

श्रद्धा जननीव पाति योगिनम् · माँ की भाँति योगी की रक्षा करती है। श्रद्धा बिन धर्म नहिं होई। क्षमा क्रोध का जीतनेवाली है। सामर्थ्य रहते अपराधी को दण्ड न देना क्षमा है। सुखी लोगो मे मित्रता का भाव रखना। उनसे वैर न करना। दु खी पर दया। पुण्यात्माओ को देखकर प्रसन्न होना · मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणा सुखदु.खपुण्यापुण्यविषयाणा भावनातश्चित्तप्रसादनम्। ये सब गुण उनमे होते हैं।

बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना ॥
दभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ ॥९.३॥

अर्थ तथा उन्हे वैराग्य, विवेक, विनय, विज्ञान और वेद पुराण का यथार्थ ज्ञान रहता है। वे दम्भ, अभिमान, मद कभी नही करते और भूलकर भी कुमार्ग पर पैर नही रखते।

व्याख्या विवेक राजा है। विराग उसका मन्त्री है। यथा · सचिव बिराग बिबेक नरेसू। विनय विद्या का फल है। ज्ञानी होने पर भी विनय रहे। अपरोक्ष ज्ञान को विज्ञान कहते हैं। उन्हे वेद पुराण का यथार्थ बोध होता है। श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ कहाते हैं। वेद पुराण के जाननेवाले वहुत हैं। पर यथार्थ बोध सबको नही है। सन्तो मे ये सब गुण होते हैं।

अब जो सन्त नही करते उसे कहते हैं। १ दम्भ · करौं जो कछु धरौं सचि पचि सुकृत सिला बटोरि। पैठि उर वरवस दयानिधि दंभ लेत अजोरि। २ मान यथा :

सकल सोक दायक अभिमाना । ३. मद यथा : श्रीमद वक्रन कीन्ह केहि । ४. कुमार्ग मे पैर रखना । ये चार बात सन्त कभी नही करते ।

गावहि सुनहि सदा मम लीला । हेतु रहित परहित रत लीला ॥
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते । कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते ॥१०.४॥

अर्थ · सदा मेरी लीला को गाते सुनते हैं और बिना ही कारण दूसरो के हित में लगे रहते हैं । हे मुनि ! सन्तो के जितने गुण हैं उनको सरस्वती और वेद भी नही कह सकते ।

व्याख्या : मेरी लीला गावे भी सुने भी : श्रोता मिले तो गावे वक्ता मिले तो सुने । निष्कारण परोपकार कहते हैं । यथा : पर उपकार वचन मन काया । सत सहज सुभाव खगराया । प्रकरण का उपसहार करते हुए अन्त मे दो प्रधान गुण कहा । यहाँ तक असाधारण गुण कहा : जिनते मैं उनके बस रहहू । वैसे तो अगणित गुण हैं ।

शारदा स्वर्गलोक की वक्ता, श्रुति मर्त्यलोक की वक्ता । वे भी सन्तो के सब गुण नही कह सकते । भाव यह कि अकथनीय हैं । वैखरी मे उनका वर्णन नही हो सकता : सत हृदय नवनीत समाना । कहा कविन्ह पै कहै न जाना । निज परिताप द्रवै नवनीता । पर दु ख द्रवहिं सत सुपुनीता ।

छं. कहि सक न सारद सेप नारद सुनत पद पंकज गहे ।
अस दीनबंधु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे ॥
सिरु नाइ बारहि बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए ।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रँग रँए ॥

अर्थ : शेप और शारदा भी नही कह सकते : यह सुनते ही नारदजी ने श्रीरामजी के चरण कमल पकड़ लिये । दीनबन्धु कृपालु प्रभु ने इस प्रकार अपने श्रीमुख से अपने भक्तो के गुण कहे । भगवान् के चरणो मे बार बार सिर नवाकर नारदजी ब्रह्मलोक को चले गये । तुलसीदासजी कहते हैं कि वे पुरुष धन्य हैं जो सब आशा छोडकर केवल श्रीहरि के रग मे रँग गये है ।

व्याख्या : पूर्व अर्धाली मे शेप को कहने के लिए स्थान नही था । अतः छन्द मे कहते हैं । शिष्य की कृतकृत्यता । अपने सेवक का गुण कोई अपने मुख से नही कहता । सरकार की इतनी अनुकम्पा है कि अपने मुख से सेवक के गुण कहे । अर्थात् भागवत धर्म का वर्णन किया । नारदजी ने इसीलिए पूछा था कि जो गुण अपने मे न हो उसके लिए मैं प्रयत्न करूँ । सो देखा कि मेरे गुणो को अपने मुख से कह रहे हैं । अत' बार बार चरणो मे सिर नवाया ।

परगुण सहन नही कर सकता। वे गुणो पर आसक्त हैं। गुणो की बढोत्तरी परम इष्ट है।

वे सम हैं यथा : निज प्रभु मय देखहि जगत। शीतल हैं यथा : जहाँ सान्ति सत गुरु की दई। तहाँ क्रोध की जरि जरि गई। नीति नही छोडते : नीति विरोध सोहाइ न मोही। सब पर प्रीति प्रतीति जिय जानिय आपु समान। अतः स्वभाव से सरल होते हैं। सब पर प्रीति करते हैं : आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति। अर्थात् भक्त मे भगवान् के सब गुण आ जाते हैं।

जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिंद बिप्र पद प्रेमा ॥
स्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया ॥८.२॥

अर्थ वे जप, तप, व्रत, दम, सयम और नियम मे रत रहते हैं। और गुरु गोविन्द तथा ब्राह्मणों के चरणो मे प्रेम रखते हैं। उनमे श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया, प्रसन्नता और मेरे चरणो मे निष्कपट प्रेम होता है।

व्याख्या : उन्हे जप मन्त्र का अभ्यास। तप चान्द्रायणादि। व्रत · एकादशी आदि। दम इन्द्रिय निग्रह। सयम धारणा ध्यान समाधि। नेम : कार्यानुष्ठान मे दृढता। उसमे भङ्ग न हो। गुरु : ज्ञानदाता। गोविन्द . गोरक्षक भगवान् और विप्र इन पर स्वाभाविक प्रीति होती है।

श्रद्धा जननीव पाति योगिनम् · माँ की भाँति योगी की रक्षा करती है। श्रद्धा बिन धर्म नहि होई। क्षमा · क्रोध का जीतनेवाली है। सामर्थ्य रहते अपराधी को दण्ड न देना क्षमा है। सुखी लोगो मे मित्रता का भाव रखना। उनसे वैर न करना। दु खी पर दया। पुण्यात्माओ को देखकर प्रसन्न होना मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणा सुखदु खपुण्यापुण्यविषयाणा भावनातश्चित्तप्रसादनम्। ये सब गुण उनमे होते हैं।

बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना ॥
दभ मान मद करहि न काऊ। भूलि न देहि कुमारग पाऊ ॥९.३॥

अर्थ तथा उन्हे वैराग्य, विवेक, विनय, विज्ञान और वेद पुराण का यथार्थ ज्ञान रहता है। वे दम्भ, अभिमान, मद कभी नही करते और भूलकर भी कुमार्ग पर पैर नही रखते।

व्याख्या विवेक राजा है। विराग उसका मन्त्री है। यथा सचिव बिराग बिबेक नरेसू। विनय विद्या का फल है। ज्ञानी होने पर भी विनय रहे। अपरोक्ष ज्ञान को विज्ञान कहते हैं। उन्हे वेद पुराण का यथार्थ बोध होता है। श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ कहाते हैं। वेद पुराण के जाननेवाले बहुत हैं। पर यथार्थ बोध सबको नही । सन्तो मे ये सब गुण होते है।

अब जो सन्त नही करते उसे कहते हैं। १ दम्भ करौं जो कछु धरौं सचि पचि सुकृत सिला बटोरि। पैठि उर बरबस दयानिधि दभ लेत अजोरि। २ मान यथा :

सकल सोक दायक अभिमाना । ३. मद यथा : श्रीमद वक्रन कीन्ह केहि । ४. कुमार्ग मे पैर रखना । ये चार बात सन्त कभी नही करते ।

गावहि सुनहि सदा मम लीला । हेतु रहित परहित रत लीला ।।
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते । कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते ।।१०.४।।

अर्थ : सदा मेरी लीला को गाते सुनते है और बिना ही कारण दूसरो के हित में लगे रहते है । हे मुनि ! सन्तो के जितने गुण है उनको सरस्वती और वेद भी नही कह सकते ।

व्याख्या : मेरी लीला गावे भी सुने भी · श्रोता मिले तो गावे वक्ता मिले तो सुने । निष्कारण परोपकार कहते हैं । यथा · पर उपकार बचन मन काया । सत सहज सुभाव खगराया । प्रकरण का उपसहार करते हुए अन्त मे दो प्रधान गुण कहा । यहाँ तक असाधारण गुण कहा : जिनते मै उनके बस रहहू । वैसे तो अगणित गुण हैं ।

शारदा स्वर्गलोक की वक्ता, श्रुति मर्त्यलोक की वक्ता । वे भी सन्तो के सब गुण नही कह सकते । भाव यह कि अकथनीय हैं । वैखरी मे उनका वर्णन नही हो सकता : सत हृदय नवनीत समाना । कहा कविन्ह पै कहै न जाना । निज परिताप द्रवै नवनीता । पर दु ख द्रवहि सत सुपुनीता ।

छं. कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे ।
अस दीनबंधु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे ।।
सिरु नाइ बारहि बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए ।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रँग रँए ।।

अर्थ : शेष और शारदा भी नही कह सकते : यह सुनते ही नारदजी ने श्रीरामजी के चरण कमल पकड लिये । दीनबन्धु कृपालु प्रभु ने इस प्रकार अपने श्रीमुख से अपने भक्तो के गुण कहे । भगवान् के चरणो मे बार बार सिर नवाकर नारदजी ब्रह्मलोक को चले गये । तुलसीदासजी कहते हैं कि वे पुरुष धन्य हैं जो सब आशा छोडकर केवल श्रीहरि के रग मे रँग गये है ।

व्याख्या : पूर्व अर्धाली मे शेष को कहने के लिए स्थान नही था । अत: छन्द मे कहते हैं । शिष्य की कृतकृत्यता । अपने सेवक का गुण कोई अपने मुख से नही कहता । सरकार की इतनी अनुकम्पा है कि अपने मुख से सेवक के गुण कहे । अर्थात् भागवत धर्म का वर्णन किया । नारदजी ने इसीलिए पूछा था कि जो गुण अपने मे न हों उसके लिए मैं प्रयत्न करूँ । सो देखा कि मेरे गुणो को अपने मुख से कह रहे हैं । अत: बार बार चरणो मे सिर नवाया ।

आशा छोडकर हरि के रंग मे रँग जाने म ही सब गुण है।

सोइ सरवग्य गुनी सोइ ज्ञाता। सोइ महि मडित पडित दाता ॥
धर्मपरायण सोइ कुलत्राता। रामचरण जाकर मन राता ॥
बिधि हरिहर कबि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी ॥
सतसगति दुर्लभ ससारा। निमिष दड भरि एकौ बारा ॥

दो रावनारि जसु पावन, गावहि सुनहिं जे लोग।
राम भगति दृढ पावहि, बिनु बिराग जप जोग ॥४६ क॥

अर्थ जो लाग रावण के शत्रु अथवा जिसका शत्रु रावण है ऐसे श्रीरामजी का पवित्र यश गावेंगे और सुनेगें वे वैराग्य जप और योग के बिना ही श्रीरामजी की दृढ भक्ति पावेंगे।

व्याख्या रावण का यश मन्द। रावणारि का पावन। इस काण्ड मे लक्ष्मण से वैर हो गया। इसलिए रावणारि कहते है। भक्ति के साधन हैं विराग जप और योग। यथा जप योग धर्म समूह ते नर भगति अनुपम पावई। सो कथा गान और श्रवण से मिल जाती है। यह इस काण्ड का माहात्म्य है।

दो दीप सिखा सम जुवति तनु, मन जनि होसि पतग।
भजहि राम तजि कामु मदु, करहि सदा सतसग ॥४६ ख ४०॥

अर्थ युवती स्त्रियो का शरीर दीपक की लौ के समान है। हे मन ! तू उसका पतिगा न बन। काम और मद को छोडकर श्री रामचन्द्रजी का भजन कर और सदा सत्सग कर।

व्याख्या दीपशिखा को मनोहर देखकर मन पतग होकर कूदता है और भस्म हो जाता है। यौवनावस्था मे ही मनोहर है। जहाँ यौवनावस्था गयी तहाँ मनोहरता भी चली जाती है। अपने मन को शिक्षा देते है। सरकार ने नारदजी को स्त्री सग्रह नहीं करने दिया। अत तू भी सग्रह न कर।

काम मद भजन पथ के बाधक है। इन्हे छोडकर भजन कर और सदा सत्सग कर। यथा तुलसी पट नव छिद्र को सतसगति सर बोर। बाहर रहै न प्रेम जल कीजै जतन करोर। उमा रामगुण गूढ पण्डित मुनि पावहि बिरति का साफल्य दिखलाया।

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वसने विमलवैराग्यसपादनो नाम तृतीय सोपान समाप्त

यह काण्ड श्रीरामचरित मानस म आरण्यक का काम देता है।